सिख-इतिहास

लेखक

ठाकुर देशराज

प्रकाशक

ग्रामोत्थान विद्यापीठ, संगरिया

सिख-इतिहास

लेखक

ठाकुर देशराज

प्रकाशक

ग्रामोत्थान विद्यापीठ, संगरिया

प्रथमबार २०००

मूल्य

पच्चीस रुपए

वैशाख, संवत् २०४१

प्रकाशक : ग्रामोत्थान विद्यापीठ संगरिया, जिला गंगानगर (राजस्थान)

मुद्रक : हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, २७ शिवाश्रम, क्वीन्स रोड, दिल्ली

समर्पण

भारत की अनेक धार्मिक संस्थाओं के प्राण और इस
युग में भामाशाह की प्रतिमूर्ति तथा भारत व भारत
से अन्यत्र हिन्दु, बौद्ध, सिख आदि सभी को सिद्ध
पुरुषों, एवं देश के धन्य ऋषि-मुनियों और साधु
सन्तों द्वारा मर्यादित परम्परा की अक्षुण्ण, अबाध्य,
अनवरत पवित्र-पावन-धारा में बहते देखने के इच्छुक

श्री सेठ जुगलकिशोर जी बिरला

के कर-कमलों में

सादर, सप्रेम और निष्ठा-पूर्वक समर्पित



सिख-इतिहास पर कुछ सम्मतियाँ

यह हर्ष की बात है कि श्री स्वामी केशवानन्द जी ने सिखों का महान और पूर्ण इतिहास (हिन्दी में) प्रकाशित कराया है। इससे न केवल सिख ही प्रसन्न होंगे बल्कि हिन्दुओं को भी गुरु महानुभावों के आदर्श-जीवन और अमृत-मयी शिक्षाओं को पढ़कर लाभ प्राप्त होगा।

मैं चाहता हूँ इस इतिहास का सिख और हिन्दू घरों में समान रूप से आदर और प्रचार हो। इस इतिहास के लेखक ठाकुर देशराज जी भी बधाई के पात्र हैं। जिन्होंने इसे बड़े परिश्रम पूर्वक तैयार किया है।

अमृतसर
२३—४—५४

तारा सिंह (मास्टर)
अमृतसर

●

सिखों के वीर पूर्ण इतिहास को हिन्दी में लिखकर ठाकुर देशराज जी ने हिन्दी-साहित्य की एक बड़ी कमी को पूरा किया है, साथ ही सिखों के साथ भी अहसान किया है। स्वामी केशवानन्द जी भी कम धन्यवाद के पात्र नहीं हैं जिन्होंने इतने बड़े ग्रन्थ के प्रकाशन का समस्त भार उठाया है। मैं प्रत्येक सिख से आशा करूँगा कि वह इस इतिहास को प्रत्येक घर में पहुँचाने की कोशिश करे।

पटियाला
२४—४—५४

ज्ञानसिंह राड़ेवाला
भू० पू० मुख्य मत्री, पेप्सू

●

स्वामी केशवानन्द जी को मैं निकट से जानता हूँ। उन्होंने शिक्षा-प्रचार और साहित्य सवर्धन का बहुत कार्य किया है। अब उन्होंने हिन्दी में सिखों का एक मुकम्मिल इतिहास तैयार कराया है। जिसमें गुरुओं से लेकर सिख-सरदारों, सिख शहीदों, सिख महिलाओं और सिखों की राजनैतिक, धार्मिक एवम सामाजिक प्रवृत्तियों का सन् १९४८ तक का विशद और सजीव वर्णन है। उनके इस कार्य में शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी ने भी आर्थिक सहायता दी है। स्वामी जी के इस प्रयास का मैं हृदय से स्वागत करता हूँ। साथ ही इसके लेखक ठाकुर देशराज जी के परिश्रम और लग्न की हृदय से प्रशंसा करता हूँ। मेरी इच्छा है कि प्रत्येक साहित्यिक व्यक्ति के पास और वाचनालयों में इसकी एक-एक प्रति हो।

जालंधर
२३—४—५४

ज्ञानी करतारसिंह
भू० पू० मत्री पजाब

●

हिन्दी में सिखों सम्बन्धी पूरी जानकारी कराने वाली एक पुस्तक की बड़ी आवश्यकता थी। मुझे प्रसन्नता है कि स्वामी केशवानन्द जी ने इस आवश्यकता को पूरा कर दिया है। उन्होंने हिन्दी के [illegible] ठाकुर देशराज जी से हिन्दी मे सिख इतिहास लिखाकर सिख और हिन्दू सभी [illegible] लोगों [illegible] भारत की [illegible] परम्पराओं में प्रेम रखते हैं।

[illegible] गुरुदासपुरी
[illegible] कमेटी

अमृतसर
२७—४—५४

○

राजस्थान और पंजाब की जहाँ सरहदें मिलती हैं उन फीरोजपुर, हिसार [illegible] जिलों में स्वामी केशवानन्द जी ने शिक्षा प्रचार और नव चेतना पैदा करने के लिए [illegible] कार्य सिखों का राष्ट्रभाषा हिन्दी में एक मुस्तनद और मुकम्मिल [illegible] इतिहास की छपाई और कागज तो बढ़िया है ही, किन्तु विषय, वर्णन भी [illegible] सुन्दर है। [illegible] इसको कई वर्ष की मेहनत से तैयार किया है। मैं चाहता हूं प्रत्येक [illegible]।

ज्ञानी गुरमुखसिंह मुसाफिर
[illegible]—पंजाब [illegible] कमेटी

नई दिल्ली
४—५—५४

○

हिन्दी मे सिख गुरुओं और सिख शहीदों पर [illegible] एक पुस्तक की बड़ी जरूरत थी। मुझे खुशी है कि स्वामी केशवानन्द जी ने जो [illegible] इस कमी को भी पूरा कर दिया है। हिन्दी में सिख इतिहास प्रकाशित करके उन्होंने हिन्दी भाषा [illegible] और सिख और हिन्दू दोनो ही उनके इस काम के लिये उनके कृतज्ञ हैं। मैं चाहता हूँ [illegible] हो जिससे इसके प्रकाशकों का उत्साह बढ़े।

नई दिल्ली
२३—४—५४

हुकमसिंह एम० पी०

○

मुझे यह कहते प्रसन्नता होती है कि ठाकुर देशराज जी ने हिन्दी में सिखों का एक मुकम्मिल और मुस्तनद इतिहास लिखा है। इसके लिये हम उनके आभारी हैं (राजनैतिक कान्फ्रेंस भरतपुर मे दिये गये भाषण का एक अंश)

ईश्वरसिंह मझैल
भू० पू० मन्त्री पंजाब

○

हिन्दी सिख इतिहास के सम्बन्ध मे मैं हृदय से इस बात का आकांक्षी हूँ कि प्रत्येक हिन्दी पढ़े-लिखे सिख के घर इसकी पहुँच हो। इसके लेखक ठाकुर देशराज व प्रकाशक स्वामी केशवानन्द दोनो ही धन्यवाद के पात्र हैं।

जालंधर
२५—४—५४

अमरसिंह दोसान्झ
मैनेजिंग डायरेक्टर दैनिक "अकाली पत्रिका"

सिक्ख गुरुओं और अमर शहीदों और सिख वीरों के महान कारनामों की गाथायें हिन्दी जगत तक पहुँचाने का जो यत्न माननीय स्वामी केशवानन्द जी ने ठाकुर देशराज से एक पूर्ण और प्रामाणिक इतिहास लिखाकर कराया है। इससे मुझे विशेष प्रसन्नता हुई है। मैं ऐसे प्रान्त सिख और हिन्दू से जो हिन्दी जानता है, आशा करता हूं कि इस इतिहास की एक प्रति अपने पास रखें।

दिल्ली
२—५—५५

दर्शनसिंह फेरूमान
संसद सदस्य

●

मुझे इस बात को जानकर निहायत खुशी हुई कि हिन्दी में भी सिखों का एक विस्तृत विवरण वाला इतिहास प्रकाशित हो रहा है। मैं इस प्रयत्न का हार्दिक स्वागत करता हूँ और आशा करता हूँ कि इस इतिहास को हिन्दी जगत में उचित आदर प्राप्त होगा।

देहली
४—५—५५

बुद्धसिंह नारंग
मालिक : अखबार "फतेह" और "प्रीतम"

●

हिन्दी में ठाकुर देशराज जी ने जो सिख इतिहास लिखा है वह सर्वांगपूर्ण और प्रामाणिक होने के साथ ही सरस भी है। मैं चाहता हूँ कि सभी भारतीयों में जो सिख हो चाहे हिन्दू इसका अधिकाधिक प्रचार होवे।

नई दिल्ली
६—५—५५

अमरसिंह एम० ए०
सम्पादक—साप्ताहिक "रिपब्लिक"

●

हिन्दी में सिखों का गौरव पूर्ण इतिहास देखकर मुझे इतनी खुशी हुई जिसका इजहार नहीं कर सकता। यह एक बहुत अच्छा काम है जिसकी हरएक समझदार आदमी प्रशंसा करेगा। मैं चाहता हूँ कि सिख इसकी हजारों प्रतियाँ खरीद कर इस इतिहास के लेखक ठाकुर देशराज और प्रकाशक स्वामी केशवानन्द के उत्साह को बढ़ावें।

नई दिल्ली
८—५—५५

गोपालसिंह (कौमी)

●

यह सर्वांगपूर्ण इतिहास हिन्दी साहित्य के विशेष अंग की पूर्ति करेगा। इस इतिहास में सिक्खों से सम्बन्ध रखने वाली प्रत्येक बात का सविस्तर वर्णन है। इसे 'सिक्ख-विश्व कोश' कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

—डा० बाबूराम सक्सेना, एम० ए०, डी० लिट्०
प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग

●

ठाकुर देशराज जी द्वारा लिखित हिन्दी में '[illegible] इतिहास' तथा [illegible] पढ़ा है। इस ग्रंथ में सुयोग्य तथा खोजी लेखक ने [illegible] है। हिन्दी पढ़ी-लिखी जनता के लिये यह इतिहास एक अमूल्य वस्तु है।

ज्ञानी हरिनामसिंह 'वल्लभ'

[illegible] दिल्ली।

लेखक



ठाकुर देशराज

भूमिका लेखक



डाक्टर गंडासिंह

भूमिका

I have read through most of the History of Sikhs in Hindi by Thakur Desh Raj and have suggested certain changes here and there. I am now of opinion that it is the best book so far written on the subject in Hindi and Thakur Desh Raj deserves to be congratulated for the commendable work that he has produced. It is a complete History of the Sikhs from the time of the Gurus to that of the desolution of the Sikh Empire, with an account of Sikh Institutions and customs and manners. It contains also chapters on the Sikh States and prominent Jagirs.

He has made a very valuable addition in the Hindi literature and the Indian public in general should be thankful to him for the service he has done to the sacred cause of national history. The Sikh Community also owes him a debt of gratitude for placing their history when published, in the hands of millions of the Hindi-knowing Indians. The learned author has tried to go into the spirit of the teachings of the Gurus and to express them with spirit and enthusiasm, and, to my mind he has succeeded to a great extent.

The greatest credit is due to Swami Keshwanand, the founder of the Sahitya Sadan, Abohar for the undertaking of its publication which should be whole-heartedly helped by one and all interested in Sikh History.

Sd/ Ganda Singh
Research Scholar In Sikh History,
Khalsa College, Amritsar.

ठाकुर देशराज द्वारा लिखित हिन्दी सिख इतिहास का मैंने अधिकांश भाग पढ़ा है और जहाँ तहाँ कुछ परिवर्तन के सुझाव दिये हैं। मेरी राय अब यह है कि हिन्दी में इस विषय की यह पुस्तक सर्वोत्तम है और इस प्रशंसनीय कार्य के लिए बधाई के पात्र हैं।

गुरुओं के उद्भव काल से लेकर सिख साम्राज्य के अधःपतन तथा सिख संस्थाओं व सिखों के रीति रिवाजों के वर्णन सहित सर्वांगीण इतिहास है। इसके अलावा इसमें सिख राज्यों तथा महत्त्वशाली जागीरों का भी उल्लेख है।

लेखक ने इस इतिहास के द्वारा हिन्दी साहित्य में एक बहुमूल्य वृद्धि की है और इस राष्ट्रीय इतिहास के पुनीत कार्य द्वारा जो सेवा की है उसके लिए भारतीय जनता को कृतज्ञ होना चाहिए। सिख जाति उनकी ऋणी है कि उनका इतिहास प्रकाशित होकर लाखों हिन्दी भाषी लोगों के हाथों पहुँच रहा है। विद्वान लेखक ने गुरुओं की शिक्षा की तह तक पहुँचने का प्रयास किया है और मेरे ख्याल में लेखक इस प्रयत्न में बहुत दूर तक सफल हुआ है।

साहित्य सदन अबोहर के संस्थापक स्वामी केशवानन्द जी विशेष रूप से श्रेय के पात्र हैं जिन्हों ने इतिहास को प्रकाशित करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली है।

सिख इतिहास में रुचि रखने वाले समस्त लोगों को इस काम में उनकी हार्दिक सहायता करनी चाहिए।

ह० गण्डासिंह
अन्वेषक—सिख इतिहास विभाग,
खालसा कालेज, अमृतसर

प्रस्तावना

पंजाब प्रकृति का क्रीड़ास्थल कहलाता है। शस्य श्यामला का विशेषण भारत के लिए सत्यत: ही यहाँ लागू होता है। पंजाब से अभिप्राय उस समूचे पंजाब से है जिसका चित्र आज भी लोगों के हृदय में अमिट रूप से विराजमान है, ऐसा पंजाब सदा होड़ प्रकृति का क्रीड़ा-कौतुक रहा है, और आज भी उसका कटा हुआ अंग अपनी शोभा खो नहीं बैठा है। इसी पावन भूमि पर उद्भव हुआ वेदों का गान उफनते हुए नद और नदियों की चलती हुई तरंगों के साथ-साथ सारे भारत में फैला। पंजाब की भूमि का प्रत्येक कण अपने अन्दर एक इतिहास का चित्र लिये बैठा है। जरा सा प्रयत्न करने पर ही उसकी झलक दिखाई दे सकती है।

पंजाब को जहाँ अपने साहित्य-भंडार पर और उन साहित्यकारों पर—जिनके साहित्य ने संसार को अमरता का संदेश दिया है—गर्व है, वहाँ पंजाब अपने वीरों और साधु, सन्तों पर भी स्वाभिमान करता है जिन्होंने अपने तन, मन, से इसकी समुन्नति में सहयोग दिया। यूनान के आक्रमणकारियों को विफल बनाने में और उनकी तथाकथित सभ्यता से भारत को बचाये रखने में, इसी पंजाब ने सब से बढ़ कर भाग लिया है, यहाँ की विश्व विद्यापीठ तक्षशिला के स्नातक, चाहे वे राजनीति के स्नातक रहे हों या कृषि के। अपनी शिक्षा के कारण सारे संसार में अपनी महिमा एवं चातुरी का झंडा लहरा चुके हैं। चाणक्य, चन्द्रगुप्त, पाणिनी, चरक आदि का नाम प्रत्येक व्यक्ति जानता है। यह सब पजाब के सपूत थे अत: इन सब पर पंजाब को गर्व है, यह भी सबको पता है कि पंजाब ने कभी अपना 'पानी' नहीं खोया. वह तो सदा अपने समूचे देश के 'पानी' को न खोने देने के लिये संघर्ष करता रहा है।

इसी पंचनद की पवित्र भूमि में लगभग पौने पाँच सौ वर्ष पहले प्रभु की अमर ज्योति के सच्चे रूप श्री गुरु नानक देव जी ने जन्म लिया और उन्हीं के शिष्य (सिख) अपने तन, मन और धन से धर्म नाशकों से जूझते रहे हैं तथा अपना बलिदान देकर भी धर्म उद्धार में प्रवृत्त रहे हैं। स्वयं गुरु नानकदेव जी की दिव्य आँखों ने भारत का भविष्य देख लिया था इसी कारण बिना किसी भेद-भाव के सबको एक सूत्र में बांधने का क्रम उन्होंने चलाया, उन की शिक्षाओं से अनुप्राणित शिष्यों का जो समूह संगठित हुआ वही सिख समाज के नाम से अभिहित हुआ।

श्री गुरु नानक देव जी से पहले भारत का चित्र ठाकुर देशराज जी द्वारा लिखे गये इस इतिहास में पूर्णतया अंकित है, सचमुच ऐसी ही दशा थी उस समय के भारत की यद्यपि यवनों और हिन्दुओं में एकता भाव उत्पन्न करने के लिए कबीर, रामानन्द और जायसी द्वारा प्रयत्न हुए अवश्य थे किन्तु सफलता के चिह्न दृष्टिगोचर नहीं हो रहे थे चूँकि हिन्दू जाति अपने ऊपर से आत्म विश्वास खो बैठी थी अत: इस बात की आवश्यकता थी कि उसमें नवोत्साह और आत्म-विश्वास पैदा किया जाय। नानक देव जी

ने यही किया और खोई हुई शक्ति को फिर से प्राप्त करने का काम उनके दशम रूप श्री गुरु गोविन्दसिंह जी। ने इसी बात को 'पंथ प्रकाश' में इस प्रकार व्यक्त किया है।

"भई अधिक जब ऐस विरामी, तब विचार ईश्वर जग स्वामी।
पालन हेत सनातन नेतै, वैदिक धरम रतन के हेते।
आप प्रभु गुरु नानक रूप, प्रगट भए जग में गुरु भूप।

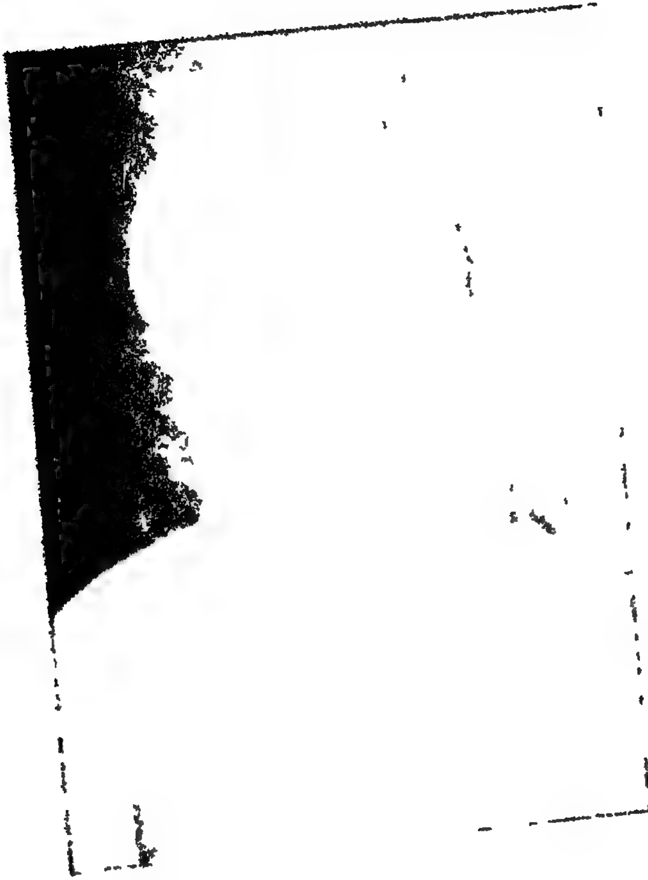
यह शब्द स्पष्ट ही उस समय वैदिक के धर्म की क्रियाओं में ढील सूचित करते हैं, और था भी सच-मुच ऐसा ही, क्योंकि पाखण्डवाद पूरी तरह व्याप्त हो रहा था, इस पाखण्ड में वैदिक धर्म की शुद्धता की रक्षा आवश्यक थी जिसे गुरु नानक देव जी ने पूर्ण किया। अनेक प्रकार के मत मतान्तरों और आपस के वैमनस्य के बीहड़ जगलों से भटकने वाले लोगों के लिये एक अमर संदेश लेकर श्री गुरु नानक आये और उन्होंने लोगों को धीरज, सत्य और संतोष का पाठ पढ़ाया। गुरु नानक देव और उनके परवर्तियों का यह पुनीत कार्य भी निर्विघ्न रूप से न चलने दिया गया। उनके शिष्य समुदाय पर अनेक विपत्तियों के पहाड़ ढाहे गये। जिसके कारण उनके पथ का पथिक बनना हँसी खेल का काम नहीं रहा। इसी परि-स्थिति का मार्मिक चित्रण दसवें नानक श्री गुरु गोविन्दसिंह जी के उस वाक्य से हमारे सामने आता है। "जो तोहि प्रेम खेलन का चाव, सिरधर तली गली मोरी आव।" वास्तव में ही सिख लोग घोर से घोर यन्त्रणायें सहकर और सभी प्रकार के अत्याचारों का सामना करके आगे बढ़े और गुरु गोविन्दसिंह के "सिर धर तली गली मोरी आव" के आह्वान में पूरा किया।

गुरु नानकदेव जी और उनके परवर्ती गुरुओं के विषय में इसी इतिहास में सब कुछ लिख दिया गया है। हम तो केवल इतना कहना चाहते हैं कि उनकी शान्तमयी भावना ने सदा सिखों को उत्तेजित होने से रोका। पर वे कब तक यवनों के अत्याचार के सामने झुके रहते। यह ठीक है कि श्री गुरु महानुभावों के दिव्य सन्देश को कुछ यवनों ने भी अपनाया परन्तु अपार राज्य और शासन की मदान्धता उन्हें अधिक न रोक रख सकी। दौर आरम्भ हुआ, किसी महापुरुष को गाय के चमड़े में मढ़वाया गया, किसी को जलते रेत से भूना गया, और किसी को जलते चिमटों से नोचा गया, आखिर क्यों? क्योंकि वे सत्यनाम के उपासक थे, और अपने धर्म में आस्था रखते थे, वे इस देश के लिये, इसकी आन के लिये सब कुछ स्वाहा कर रहे थे। प्राणों की बलि देकर भी इसकी प्रतिष्ठा बनाये रखना चाहते थे और स्पष्ट शब्दों में वह उन धर्मान्ध अत्याचारियों के विरोध में अपनी छाती तानकर खड़े हो रहे थे जो सारे देश को इस्लाम के झंडे के नीचे लाना चाहते थे, धर्म शब्द जिन अर्थों को अपने अन्दर छिपाये हुए है वे उसी के सच्चे उपासक थे। धर्म की इसी ज्योति की अखण्डता को उन्होंने कायम रखा। भले ही इस्लाम की आंधी चली, दीपक बुझाने का प्रयत्न किया परन्तु एक दीपक की लौ बुझाई नहीं कि दूसरे का दिव्य प्रकाश फैल उठा। उनका सिद्धान्त था —

दीपक ते दीपक प्रगाया त्रै भुवन ज्योति जगाई।
दीपक की जोत सदा ही जले
इक जन जाए दूजा आये ज्योति अमर रहे।

इसी अमर ज्योति की एक शिखा—जिसे हम श्री गुरु तेगबहादुर जी के नाम से संबोधन कर सकते हैं—जब अपने दिव्य प्रकाश से जनमन को प्रकाशित कर रही थी। अत्याचारियों द्वारा बुझा दी गई तो इस हिन्दू जाति की आँखें भौचक्की हुईं और ज्यों ही वह ज्योति गुरु गोविन्दसिंह जी के रूप में

प्रस्तावना - लेखक



श्री सन्त इन्द्रसिंह जी 'चक्रवर्ती'

[illegible] आगे बढ़ा। और महान आत्मा अदृष्ट ज्योति के [illegible] पुकार को पूरा किया। यह समय कैसा [illegible] है।

[illegible] ॥
[illegible] निरताप ॥
[illegible] मुगलि खपाए।
[illegible] दुनियों से कटवाए।
[illegible] नाम मढ़ाए।
[illegible] हाथो।
[illegible] मरवाए।
[illegible] जिन मारो।
[illegible] कर डारे।

[illegible] —"[illegible] दुष्ट मथन को मूल उखारन" के लिये [illegible] जी आगे बढ़े। [illegible] इनके लिए यह आवश्यक था कि शक्ति [illegible] जो करना चाहिए था, "चण्डी चरित्र" इसका प्रमाण है।

[illegible] है—

[illegible]।
[illegible] ॥
[illegible] जात तर।
[illegible] ॥ (सर्व लोह प्रकाश)

[illegible] इसके लिए उन्हें बहुत मूल्य चुकाना पड़ा, मित्रों के [illegible] बलिदान भी देना पड़ा, परन्तु दशमेश पिता का ही यह हृदय था कि अपने देश और धर्म के लिए [illegible] पर चलने से पांव नहीं रोका। यह ज्योति अपना [illegible] सतत जलती रही। इसी ज्योति के एक [illegible] बहादुर में भी मिलता है, जिसके बलिदान की कहानी इतिहास अपने अमर शब्दों में पुकार पुकार कर सुनाता है।

[illegible] श्री गुरु नानक देव जी ने सरस दृष्टि से ताका था वह महाराज रणजीतसिंह तक ही सीमित रह गई। इसके बाद भी चली, मगर लंगड़ा कर। यह सच्ची बात है कि जो सुन्दर दृश्य भारत को चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में देखने को मिला था वैसा ही शायद थोड़ा बहुत कम इस भारत ने महाराजा रणजीतसिंह के समय में देखा। वेद विहित रंग का केसरिया झंडा उन्होंने कहां तक लहराया था इसे इतिहास के पाठक स्वयं जान जाएंगे। बस इसके बाद तो गुरु महाराज के शिष्य (सिख) अपना दूसरा ही रूप ले बैठे जिससे आज तक भी उन्हें अवकाश नहीं मिला।

रणजीतसिंह जी के पश्चात सिख बादशाहत समाप्त हो गई। विलासिता की घुट्टी जो अंगरेज भारत के लिए विशेष तौर से लाया था उसे पीकर यह शिष्य पंथ यादवों की तरह परस्पर लड़कर विनष्ट

होने का उपक्रम कर वैठा, परन्तु सत्य धर्म की भागीरथी सतगुरु श्री रामसिंह जी महाराज का पावन वर-दान पाकर साहस के साथ साथ अत्याचार को मिटाने की उमगों के तरंगों के रूप में उछलती हुई आगे बढी। गौ, गरीब की रक्षा, यज्ञ हवन की पुनीत भावना के पोषण का मूल मन्त्र लेकर सद्गुरु श्री रामसिंह जी महाराज के शिष्य वर्ग ने सिख पथ की सच्चे रूप में सेवा की। गौ गरीब द्रोही, यज्ञ हवन के नाशकों का नाश चुन चुन कर किया, और इस तरह अगरेज का बिछाया हुआ जाल तोड़ने के लिये सहयोग की नींव डाली।

इस इतिहास के लेखक ठाकुर देशराज से बन्दाबहादुर के सम्बन्ध में मेरा मतभेद है वह यह कि बन्दा सिंह नहीं बना। उसने अपने को गुरु जी का बन्दा अवश्य कहा था किन्तु पाहिल नहीं ली थी। बन्दा को बन्दासिंह कहना वैसा ही है जैसा आदमी को आदमी सिंह व मनुष्य को मनुष्य सिंह।

पुस्तक की भाषा छपाई आदि सब सुन्दर है। कहीं कहीं कुछ शब्द ऐसे आ गए हैं जो भारत की ससद में बाहर से आने वाले अरबी, ईरानी और तुरकी के राजदूतों की तरह अपना वेष निराला लिए हुए होने के कारण अहिन्दी जान पड़ते हैं। ठाकुर श्री देशराज जी का प्रयत्न वास्तव में महान और स्तुत्य है। इस इतिहास की विशेषता यह है कि सिखों सम्बन्धी कोई भी बात छोड़ी नहीं गई है। लिखने की शैली इतनी अच्छी है कि कहीं कहीं तो इतिहास उपन्यास का सा आनन्द देता है। वास्तव में इसी कृति में ठाकुर साहिब की कला अपना रूप लेकर उपस्थित हुई है।

मेरा यह सौभाग्य है कि मुझे ऐसे विशिष्ट इतिहास के लिए कुछ पक्तियां लिखने का अवसर मिला है। इसके लिए हिन्दी जगत को भी कृतज्ञ होना चाहिए कि उसे सिख इतिहास का पूर्ण रूप अवलोकनार्थ प्राप्त हो रहा है। यह सब कृपा स्वामी श्री केशवानन्द जी की है जिन्हों ने सदा अपने अनथक प्रयत्नों से हिन्दी जगत को ठाकुर श्री देशराज जी जैसे हीरों से जगमगाने का काम किया है। स्वामी जी के कार्य और प्रणाली से शायद ही कोई अपरिचित होगा।

अन्त मे मैं ठाकुर श्री देशराज जी के प्रति कृतज्ञ हूं कि उन्हों ने हिन्दी जगत को एक ऐसा अमूल्य ग्रन्थ रत्न दिया है जिसकी कि आभा में हम अपने गत वैभव देख सकते हैं। मुझे यह कहने में भी प्रसन्नता है कि इन पक्तियों के लिखने में श्री ओमप्रकाश आनन्द ने मेरा हाथ बटा कर मेरी व्यस्तता को कम किया है। मैं आशा रखता हूं कि ऐसी अमूल्य पुस्तक का सर्वत्र मान होगा और यह सफलता प्राप्त करेगी।

उपभाषा विशेषज्ञ, पजाबी विभाग
पटियाला ५-१-१९७४

सत इन्द्रसिंह चक्रवर्ती

लेखक की ओर से

[illegible] इतिहास [illegible] जिसका नाम भारत के कोने कोने [illegible] उनका यह नाम पिछली शताब्दियों में किये गये [illegible] उन्होंने अपने को हर क्षेत्र में योग्य बनाकर भी शोहरत [illegible] है।

[illegible] जातियों में होती है किन्तु उन्होंने राजपूत और जाटों की भांति एक ही [illegible] है। [illegible] है। उनमें विद्वान, योद्धा, व्यवसायी और कलाकार अथवा [illegible] है।

[illegible] जहाँ [illegible] बलिदान की भावना और [illegible] है। वहाँ उनमें प्रत्येक काम में चिपट कर उसमें [illegible] होने की लगन और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये [illegible] भी है। वे खूब परिश्रमी होते हैं। [illegible] जिसमें सिख [illegible] की दौड़ न कर रहे हों। कौन सा प्रांत और देश है जहाँ वे न पहुँच रहे हों। और [illegible] उन्होंने अपने को एक जाति के रूप में उदार समाज के रूप में परिणित कर लिया है। वैसे ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो 'सिख' आरम्भ से ही एक जाति की अपेक्षा समाज ही हैं। क्योंकि उनमें एक ही वर्ण अथवा एक ही जाति के लोग नहीं हैं। उनमें सभी वर्णों, सभी जातियों और पेशों के लोग आरम्भ से ही हैं। किन्तु वे सब हैं, हिन्दू जाति की इन जातियों में से ही।

आज भारत में उनका एक अपना समाज और अपना पंथ है। कुछ ब्राह्मणों की अनुदारता कुछ उनकी खुद अपने को अलग रखने की चाह और कुछ अंग्रेज शासकों के प्रोत्साहन के फलस्वरूप उनका भारतमें एक तीसरा धर्म और तीसरा समाज जैसा बन गया है।

वैसे नस्ल और वंश परम्परा से तथा धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों से वे भी उतने ही आर्य-हिन्दू हैं। जितनी उत्तरी भारत की कोई भी जाति हो सकती है किन्तु उनके अलग संगठन और वेश भूषा तथा नित्य नैमितिक आचार व्यवहार के ढंग ने उन्हें अलग समाज के रूप में परिणित कर दिया है।

उत्तरी भारत के प्रायः हिन्दू यह मानते हैं कि सिखों ने एक समय भारत की लाज और हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिये बड़े-बड़े बलिदान किये थे। प्रत्येक हिन्दू की गुरुनानक में अपार श्रद्धा है और गुरु गोविन्दसिंह के शौर्य और तप से समस्त हिन्दू जनता प्रभावित है। यही कारण है कि दिल्ली से लेकर पेशावर तक के प्रत्येक हिन्दू के घर में गुरुओं की फोटो उसी प्रेम से सजी हुई पाई जायेंगी, जिस प्रेम से कि अन्य महापुरुषों की, और ग्रन्थ साहब तो उनके लाखों की उपासना-पुस्तक है।

पंजाब के हिन्दू गुरुओं और उनके बहादुर शिष्यों के कारनामों को बड़े चाव से पढ़ते हैं। यह चाव दिल्ली से नीचे के भारत में भी आरम्भ से ही है और अब जब कि पंजाबसे बाहर भी सिख प्रभाव बढ़ने लगा है तो यह चाव

और भी बढ गया है किन्तु हिन्दी-भाषी भारत के हिन्दुओं के लिए सिखों के सम्बन्ध में पूरी जानकारी देने वाले ग्रन्थ का एक दम अभाव था। कुछ छोटी-छोटी किताबें सिखों और उनके गुरुओं के सम्बन्ध में हिन्दी में प्रकाशित हुईं किन्तु वे सिखों सम्बन्धी सभी जिज्ञासाओं का समाधान करने वाली न थीं।

जाट-इतिहास के लिखने के समय में सिखों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना मुझे भी आवश्यक हो गया। क्योंकि सिखों में जाटों की एक बडी आबादी है तथा हिन्दू जाट और सिख जाट भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के अनुयायी होते हुए भी शादी सम्बन्धों में अलग नहीं है। भरतपुर, धौलपुर और मुरसान के हिन्दू जाट-राज पटियाला, जींद, फरीदकोट और नाभा सिख-जाट-राजों में ब्याह जाते रहे हैं। सिखों की वीरतापूर्ण अनेक गाथाओं से मैं चौ० रिछपालसिंह जी धमेड़ा के लेखों द्वारा जोकि जाटवीर में लगातार प्रकाशित हुए थे, सन १६२५ से ही परिचित हो चुका था।

सन् १६३४ ई० के बसन्त पर जाट इतिहास प्रकाशित हुआ। सिख-जाटों में भी उसकी कदर हुई। सिख जाटों ने उसे इतना पसन्द किया कि सीरीज के रूप में कुछ उत्साही सिखों ने उर्दू में उसका प्रकाशन आरम्भ कर दिया। इससे मेरे मन में सिखों की पूरी जानकारी हिन्दू जगत के सामने रखने की उत्कंठा उत्पन्न हुई किन्तु यह उत्कंठा शीघ्र ही अमल में न आ सकी।

सन् १६३७ में चौधरी देवासिंह बोचल्या जोकि जयपुर राज्य (अब राजस्थान) के शेखावाटी इलाके के निवासी हैं। साहित्य-सदन अबोहर[1] पहुँचे। वहाँ उनकी सदन के संस्थापक और ग्रामोत्थान विद्यापीठ, संगरिया के संचालक स्वामी केशवानद जी से भेंट हुई और उन्होंने मेरा लिखा जाट इतिहास स्वामी जी को दिखाया।

स्वामी केशवानद जी के दर्शन सन् १६३२ में मैं अजमेर के ऐतिहासिक आर्य-सम्मेलन में चौधरी हरिश्चन्द्र जी गगानगर और जीवनराम जी दीनगढ़ के सौजन्य से कर चुका था। जब देवासिंह जी ने लिखा कि आपको अबोहर आकर स्वामी जी से मिलना चाहिए तो मैं बिना विलम्ब के अबोहर पहुँचा और चूंकि स्वामीजी सिखों के बीच में रहते थे अतः मैंने उनसे सिख इतिहास लिखने में मेरी सहायता करने की प्रार्थना की। जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया, यही सिख इतिहास के लिखने की प्रेरणा का इतिहास है।

सन् १६३८ ई० मे स्वामी केशवानन्द जी ने फीरोजपुर जिले के कुछ प्रतिष्ठित सिखों से जिनमें एक दो तो शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के भी मेम्बर थे एक सिख इतिहास कमेटी बना दी। मैं अबोहर बैठ गया। पूरे आठ महीने उपलब्ध सामग्री का अध्ययन किया। उसके बाद आचार्य बंशीधर जी को जोकि आजकल नई शिक्षा के प्रयोग-कर्त्ताओं में अपना अच्छा स्थान रखते हैं और जिनके लिये जोधपुर के लोक-प्रिय मंत्रिमंडल ने एक लाख रुपया देकर एक शिक्षालय जोधपुर में खुलवा दिया है—साथ लेकर फीरोजपुर के कन्या महाविद्यालय की लाइब्रेरी में बैठा। उन दिनों फीरोजपुर के कन्या महाविद्यालय की आचार्या और संचालिका बीबी गुरुबख्शकौर थीं जोकि इस महाविद्यालय के संस्थापक और स्त्री शिक्षा के प्रबल हिमायती भाई तख्तसिंह जी की सुपुत्री थीं। उन्होंने हमे पूरी सुविधायें हमारे अध्ययन और खोज कार्य के लिये दीं। अध्ययन के इन दिनों में मैंने सिखों के तीर्थों और प्रमुख ऐतिहासिक स्थानों की यात्रा भी की। मैं कह सकता हूँ कि इस कार्य के लिये मैंने कम से कम पचास हजार पृष्ठ व सैंकड़ों छोटी मोटी पुस्तकें पढ़ीं। तब यह सिख-इतिहास जो अब पाठकों के हाथ में है,तैयार हुआ। इसके लिखने के दिनों में मैंने १५-१६ घंटे रोज परिश्रम किया है।

१ पंजाब में साहित्य सदन अबोहर अपने ढंग की एक बड़ी हिन्दी संस्था है। इसके अधीनस्थ एक बड़ा पुस्तकालय और संग्रहालय है। विशारद, रत्न, प्रभाकर आदि परीक्षाओं के दिलाने के लिये एक शिक्षणालय भी है। गांवों के लिये चलता पुस्तकालय है।

जब इतिहास पूरा हो गया तो स्वामी केशवानन्द जी ने मुझे सिखों के प्रसिद्ध और तपस्वी लेखक भाई वीरसिंह जी के पास भेजा। भाई वीरसिंह जी का सिखों में बहुत आदर है। उन्होंने सिख साहित्य का बहुत ही अधिक सृजन किया है वे पंजाबी सिख और का [illegible] से मिले। मेरे लिखे इतिहास के कुछ प्रसंग उन्होंने सुने और मुझे एक चिट्ठी खालसा कालेज के प्रोफेसर (अब [illegible]) सरदार गंडासिंह के नाम लिखकर उनके पास भेजा। उन दिनों वे वहाँ के ही प्रोफेसर थे। उन्होंने सारी बात देखकर इतिहास को सुना और तब इस ग्रंथ की भूमिका लिखी।

इसके पश्चात् देश में [illegible] के कार्य आरम्भ हो गये और प्रजामण्डल के प्रेसीडेन्ट की हैसियत से मैं भरतपुर की जेल में बन्द था। फिर सन् १९४२ का "अंग्रेजो भारत छोड़ो" आन्दोलन आरम्भ हो गया जिसमें स्वामी केशवानन्द जी भी जेल गये। इसके बाद कितने ही इसी प्रकार की बातें रहीं। स्वामी जी और मैं राजनैतिक कार्यों में व्यस्त रहे। मैं भरतपुर में पहले तो असेम्बली का डिप्टी लीडर और फिर राजस्व मंत्री बन कर कुछ व्यस्त रहा और इधर स्वामी जी [illegible] के [illegible] सीट को [illegible] देने में लिपट गये। इस प्रकार सन् १९५३ आ गया। सन् १९५४ के होने वाले आम चुनावों में मैं हार गया और स्वामी जी को उनका [illegible] राज्यसभा में ला बिठाया। स्वामीजी ने मेरी हार को शुभ काम में परिणित करने के लिये मुझे [illegible] लिख दिया।

इसका [illegible] भाग मैंने हिन्दी में पहले ही लिखा है। और यह इसका [illegible] ही कृति है। शेष इतिहास में यहाँ वहाँ कुछ बदला है और [illegible] भी गई है। इसका भाग [illegible] नहीं है जो सन् १९४७ के पहले लिखा गया था।

यह इतिहास हिन्दू और सिख दोनों का ध्यान में रख कर लिखा गया है इसलिये इसमें सरल हिन्दी के प्रयोग की कोशिश की गई है। सिख भाई हिन्दी को भी कठिन मानते हैं किन्तु बहुत यत्न करने पर भी और अधिक सरल एवं उर्दू-मय न बना सका। कुछ लोग ऐसे भी हैं जिन्हें इसमें उर्दू शब्दों के प्रयोग पर प्रसन्नता नहीं होगी।

इस ग्रन्थ की भाषा, शैली और सामग्री कैसी है? इसका निर्णय पाठक ही करेंगे। मैं तो यही कह सकता हूँ कि मैंने इसे पूर्ण सावधानी, परिश्रम और निष्पक्ष भाव से लिखा है।

सिख इतिहास की अनेक घटनाओं और तथ्यों पर सिख इतिहास के लेखकों में मतभेद रहा है और अब भी है। उनमें से मोटे मोटे मतभेद इन बातों पर है।

(१) गुरुनानक देव कातिक में हुए या वैसाख में? दोनों पक्ष अपने अपने समर्थन में अनेक प्रमाण पेश करते हैं। मैंने उनका जन्म कातिक में ही माना है। उसका आधार उनका नाम है। क्योंकि उनका नाम उनके जन्म नक्षत्र ग्रह और राशियों के आधार पर रक्खा गया था जो उनके जन्म के समय वर्तमान थे। इसीलिये मैंने उनकी जन्म कुण्डलियाँ भी इस ग्रंथ में अंकित कर दी हैं। सिख लेखक जन्म कुण्डलियों पर विश्वास नहीं करते। वे करें या न करें जन्म कुण्डली बनवाने वाला तो कालूराय था जो पक्का सनातनी हिन्दू था। और नाम रखने वाले भी सनातनी पंडित थे न कि आज के लेखक।

(२) गुरु गोविंदसिंहजी के पुत्रों का सरहिंदकी दीवारों में चुने जानेपर भी मतभेद है। मैं कागजों, दस्तावेजों से भी अधिक प्रामाणिक लोक श्रुतियों को मानता हूँ। सैकड़ों वर्ष से पीढ़ी दर पीढ़ी सारा पंजाबवर्ष ही सुनता आ रहा है कि गुरु गोविंदसिंह जी के दो पुत्र सरहिंद की दीवारों में चुन दिये गये थे।

(३) कुछ लोग यह भी कहते हैं कि गुरु गोविंदसिंह जी के दो पुत्रों का चमकौर में मारा जाना सही नहीं है। इस प्रकार के लेखकों में ५२ कवियों में से कविवर सेनापति भी हैं जो कि गुरु गोविंदसिंह जी के दरबारी कवि थे। यह विषय अवश्य अनुसंधान चाहता है।

(४) बन्दा वैरागी सिख नहीं बना। यह बात अधिकांश में वे विद्वान कहते हैं जो सिख नहीं हैं। बेचारे

बन्दा के जीवन मे उनके प्रतिद्वंदी सिखों ने कहा कि बन्दा सिख नहीं है। और आज भी सिख कहते हैं कि बन्दा सिख नहीं था। मैं भी कहता हूं कि बन्दा आज का जैसा सिख तो नहीं था जो पहले तो हिन्दू भी नहीं मानता किन्तु वह गुरुगोविदसिंह जी का बन्दा अवश्य बना था वरना तो वह माधवदास था जो कि [illegible] का वैरागी रूप था। बन्दा तो उसका अपना स्वीकार किया हुआ तीसरा रूप था। यदि वह सिख नहीं बना था तो ये सारे सिख क्यों उसे गुरू के रूप मे देखने लगे ? और बन्दई सिख आज भी क्यों सिख समाज में शामिल होते हैं। वह सिख तो अवश्य था किन्तु यह बात दूसरी है कि वह सिंह था या सिख बन्दा।

(५) गुरु गोविंदसिंह ने यह भी नहीं कहा कि "मेरे बाद गुरु [illegible] नहीं है और ग्रन्थ साहब ही को गुरुस्वरूप मानना।" न भी कहा हो तब भी इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि सिखों की यह धारणा इतनी दृढ़ बन गई है कि वे इसके लिए किसी दूसरे प्रमाण की आवश्यकता नहीं समझते।

ऐसी ही कुछ और भी बातें हैं। किन्तु मैं विवाद में पड़ने की अपेक्षा [illegible] सिख इतिहास की उस सामग्री को जो अंग्रेजी, उर्दू और गुरुमुखी में लिखी हुई [illegible] में उपलब्ध थी किन्तु हिन्दी मे उसका अभाव था एकत्रित करने भर तक सीमित रहा हूँ। मैंने [illegible] और [illegible] को ही अपनाया है। विद्वता के प्रदर्शन के लिए ऊंचे लेखक जो रास्ता [illegible] हैं। वह मैंने किसी भी [illegible] पर नहीं छेड़ी। क्योंकि मेरा इरादा सिख इतिहास या सिख धर्म पर निबन्ध लिखने का नहीं, बल्कि घटनाओं और तथ्यों का संकलन करने का था - वही मैंने किया है। मैं सिख नहीं हूँ। इसलिए न मेरा दृष्टिकोण सिख लेखकों जैसा रहा है और न उदासियों सिंह-सभाइयों और नामधारियों का जैसा। मैं पंजाबी भी नहीं हूं। इसलिए मेरा दृष्टिकोण पंजाबी हिन्दू लेखकों जैसा भी नहीं रहा है। मैंने जैसा सिख इतिहास को समझा और [illegible] जैसा प्राप्त सामग्री से मुझे समझ पड़ा वैसा ही मैंने लिखा है।

मैं मानता हूं कि इस इतिहास मे उदासियों, नामधारियों और निर्मलों आदि का वर्णन थोड़ा है किन्तु सिख इतिहास (समष्टि) से जितना उनका वर्णन सम्बन्ध रखता है उतना ही तो इसमें आ सकता था।

मुझे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रूफ देखते समय मुझ से कुछ भूलें असंशोधित रहने में हो गई हैं। यथा हकीकतराय और फूलसाहब को कम्पोजीटरों ने यह सोचकर कि सिख इतिहास में तो सिंह ही सिंह हैं—राय और साहब की बजाय सिंह लिख दिया और वह मेरी नजर से भी बच गया। इसी तरह कहीं कहीं [illegible] के [illegible] स्थान मे त्रुटियां हो गई हैं किंतु जहां तक मैं जानता हूँ, इरादतन मैंने ऐसा नहीं किया।

देहली में रहते समय इस ग्रंथ का जो भाग लिखा गया है। उसमें ज्ञानी हरनामसिंह जी "वल्लभ" का उचित सहयोग रहा है। वे मेरे पुराने सिख मित्रों में से हैं।

मैं स्वामी केशवानन्द जी का चिरकृतज्ञ रहूँगा क्योंकि उन्हीं की सजगता और उत्साह वर्द्धन का यह फल है कि इतने बड़े ग्रंथ और भारत की एक महान् जाति का इतिहास लिखने का श्रेय मुझे प्राप्त हुआ। मैं उनके एक सुयोग्य कार्य-कर्त्ता श्री कुलभूषणजी जो बीसियों वर्ष से उनके सहकारी रहे हैं—का भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने कि पत्र व्यवहार प्रूफ संशोधन और प्रकाशन सम्बन्धी सलाह मशविरे में मुझे तथा स्वामी जी को काफी सहायता दी है। हिन्दी प्रिंटिंग-प्रेस देहली—जिसमें कि यह इतिहास छपा है—के संचालक श्री श्यामकुमार और श्यामसुन्दर जी का मैं इसलिए कृतज्ञ हूं कि उन्होंने इसे शीघ्र प्रकाशित करने में लग्न से काम किया है।

जघीना (भरतपुर)
वैसाख सं० २०११

देशराज

प्रकाशकीय वक्तव्य

इसमें भी कोई इनकार नहीं कर सकता कि सिख गुरुओं के हिन्दू जाति और भारत देश पर बहुत बड़े अहसान हैं। स्वामी दयानन्द, राजा राम मोहन राय और परमहंस रामकृष्ण से पहले जिन्होंने बिना जाति और धर्म भेद के अपने उपदेशों को मनुष्य मात्र के लिए फैलाया था—वे सिख गुरु ही थे। उनकी वाणियों से सर्व साधारण ने लाभ उठाया। उनका मिशन सब के लिये था और उन्होंने सबको अपना समझा।

'गुरु ग्रन्थ साहिब' में दस गुरुवाणियों का संग्रह है। यहां बिना जाति और मजहब के भेद के दूसरे सन्तों की वाणियों का भी संग्रह है जिनमें छींबी (नामा) जुलाहे (कबीर) चमार (रैदास) जाट (धन्ना) ब्राह्मण (रामानन्द) और मुस्लिम फकीर (शेख फरीद) जैसे विभिन्न जातियों और धर्मों के सन्त शामिल हैं।

सचाई यह है कि गुरुओं की वाणी की रचना भाषा या बोली को लेकर जाति या कुटुम्बको लेकर अथवा अन्य किसी स्वार्थ या आग्रह को लेकर नहीं हुई है। और इन वाणियों के द्वारा नये आचार विचार नये सम्प्रदाय एव नवीन धर्म के स्थापन के प्रयत्न की बजाय पुरानी रूढ़ियों, रस्म रिवाजों, आचार विचारों के आडम्बरों और पाखण्डों को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न और प्रचार किया गया है। जिससे कि लोग सरल जीवन, उत्तम आचार वाले और सब के साथ भलाई का बर्ताव करने वाले बन जायें तथा "वसुधैव कुटुम्बकम" (संसार हमारा कुटुम्ब है) के सिद्धान्त को अपनाकर सुख और शान्ति का जीवन बितायें।

इन महात्मा गुरुओं की वाणी में भक्ति का ऊंचे से ऊंचा सिद्धान्त "ब्रह्म दीसै ब्रह्म सुणियै ब्रह्मो ब्रह्म बखानिये। आतम पसारा करनहारा ब्रह्म भिन्न न जाणिये।" भरा पड़ा है। जो वेद, शास्त्र और पुराणोंको पढ़ते तो हैं किन्तु उनकी शिक्षाओं पर अमल नहीं करते हैं। उनके लिये भी "चार पुकारें न तू माने। षट भी एकों बात बखानें॥ दस अष्टी मिलि एको कहिआ। तौ भी जोगी भेद न लहिआ॥" शब्दों में चेतावनी दी थी।

उस युग के लोगों के हृदय में भय, आशंका, भ्रम और आत्म-ग्लानि के भावों को दूर करके ईश्वर में दृढ़ विश्वास, आस्था और भक्ति पैदा करना अत्यावश्यक था। प्रातः काल मुहूर्त्त में उठना, शौच स्नान करना और फिर भजन में लगना। इस तरह की जीवन चर्य्या बनाना और शुभकर्मों में (लोगों को) लगाना उनके उपदेशों का मूल उद्देश्य था। "किती सुन्दरी की करी रंगन बहुत तरंग। अचरज रूप मतन धरै नानक नामै रंग॥" का आदर्श-उनके सन्मुख था।

गुरुओं का प्रधान मार्ग भक्ति मार्ग था। वे स्वयम् भक्ति स्वरूप थे और दूसरे लोगों को भी ऐसा ही बनाना चाहते थे। उनके इस मार्ग में भी जब विघ्न पड़ा तब वे भक्ति के साथ ही पुरुषार्थ (युद्ध) को भी अपनाने को विवश हुए। यह स्पष्ट गुरु हरिगोविन्द जी ने तब बदली जब कि उनके पिता गुरु अर्जुन देव जी को अकारण अनेक असहनीय यंत्रणायें देकर बलिदान कर दिया गया। इससे पहले तो गुरु लोग अपने भक्ति-मार्ग को ही प्रशस्त करने में लगे हुए थे। गुरु नानकदेवजी के भक्ति चेतावनी संबंधी जो प्रवचन थे। गुरु अंगद देव जी ने उन्हें उस

समय की पंजाब में प्रचलित लिपि में जो पत्र गुरुमुखी के नाम से [illegible]
भक्ति के साथ सेवा का--अपने जीवन को उत्कृष्ट सेवामय बनाने [illegible]
भक्ति को साकार रूप देने और अभिर आस्था उत्पन्न करने [illegible]
अर्जुनदेव जी ने अपने समय तक की समस्त गुरुवाणियों और [illegible]
का संग्रह कराया। यही संग्रह "ग्रन्थ साहिब" के नाम से [illegible]।

हम पहिले ही कह चुके हैं कि गुरु लोग अपने [illegible]
हरण गुरु नानकदेव जी द्वारा अपने पुत्रों की बजाय [illegible]
उनके बड़े पुत्र बाबा श्रीचन्द जी उत्कृष्ट विद्वान और [illegible]
अतः गुरु नानकदेव जी ने उनको उसी मार्ग पर चलने [illegible]

गुरु नानक देव में जो तप भावना और [illegible]
भाव था वह अंगद देव जी में प्रस्फुटित हुआ और [illegible]
अंगददेव जी का सिख समाज दोनों ही समान [illegible]
आगे बढ़ाया। पंजाब में बाहर उदासियों ने नानक मत [illegible]
का कल्याण चाहते थे तो गुरु लोग भी अपने आदि गुरु [illegible]
थे। छठे गुरु हरिगोविन्द जी ने अपने जेष्ठ पुत्र गुरुदित्ता जी [illegible]
चल कर दीन दुखियों के टिक्का (सहारा) बने।

गुरु हरिगोविन्द जी ने समाहित होकर [illegible]
उसमें नवें गुरु श्री तेगबहादुरजी तक साधारण सी ही प्रगति [illegible]
परिवर्तन आया कि न केवल सिखों बल्कि सारे पंजाब अथवा [illegible]
हो गया।

गुरु तेगबहादुर जी के अनुपम बलिदान के बाद जो [illegible]
आई। वही आगे चलकर खालसा पंथ की आधार शिला बनी। गुरु [illegible]
सुयोग्य पुत्र एवं उत्तराधिकारी श्री गुरु गोविन्द सिंह जी ने जिस प्रकार उस समय [illegible]
करने के लिये खालसा पंथ को जन्म दिया यह उन्हीं की विलक्षण [illegible]। [illegible]
को जब वे नवोत्साह से मंडित करने के प्रयत्न में असफल हुए तो जिस प्रकार पुराने [illegible] निराश होने पर कुछ
ऋषियों ने आबू में यज्ञ करके चार नये क्षत्रिय खानदानों का निर्माण किया और [illegible] (सूर्य और
चन्द्र नहीं) अग्निवंश के नाम से अभिहित किया था। उसी भांति काल और स्थिति के [illegible] गुरु गोविन्दसिंह जी
ने राजपूत-क्षत्रियों से निराश होकर एक नये योद्धा सम्प्रदाय को जन्म दिया और उसे खालसा (विशुद्ध एवं कसौटी पर
कसा हुआ) के नाम से संबोधित किया। खालसा में बिना जाति पांति भेद के उन सब [illegible] जाट, कहार, नाई
छीपी को शामिल किया जो सिर देने को उद्यत हुए। उनको गुरु गोविन्द सिंह जी ने यह पाठ भी पढ़ा दिया कि
"एक पिता एकस के हम बालक।" इस प्रकार जाति पांति के थोथे आडम्बरों को एक ओर फेंकने वालों के एक नये
समाज "खालसा" को उन्होंने जन्म दिया। वे समझते थे मनुष्य परिस्थितियों का पुतला है। जैसी परिस्थितियों में
वह पलेगा वैसा ही बन जायगा। जब भेड़ियों की मांद में पाला गया मानव-बालक भेड़ियों जैसे स्वभाव और रहन सहन
का बन जाता है तो उसे शूरवीर, सज्जन और दयालु भी बनाया जा सकता है। परिस्थितियां और संस्कार मनुष्य को
कुछ से कुछ बना देते हैं। तैमूर और चंगेज ने जहां भेड़ बकरियों की भांति एक समय पंजाब के हिन्दुओं को जिबह किया

था वह गुरु गोविन्दसिंह की दीक्षा से अभिषिक्त हुए इन लोगों ने गुरु के 'बाजन से चिड़ी लड़ाऊँ' गीत को चरितार्थ कर दिया। इससे भी बढ़कर बात यह कि हिन्दुओं द्वारा मनुष्यों में शूद्र और नीच घोषित किये जाने वाले लोगों को गुरु गोविन्दसिंह ने "रंगरेटा गुरु का बेटा" घोषित कर दिया था।

गुरु गोविन्दसिंह में उच्च कोटि का योद्धापन ही प्राप्त था। यहां उनमें एक विद्वान, एक दाता और एक राजनेता के गुणों का भी सम्मिश्रण था। वे एक साथ ही एक महान योद्धा, एक दयालु गुरु, एक साहित्यज्ञ और कला मर्मज्ञ विद्वान् तथा एक महान दार्शनिक और सत्पुरुष थे। उनकी साहित्यिक प्रतिभा का आभास हमें दशम ग्रन्थ में मिलता है। इस गुण से प्रभावित होकर उनके दरबार में विद्वान् कवियों का एक भारी जमघट रहता था, उन्होंने संस्कृत के ज्ञान के लिये अपने कई सिक्खों को काशी भी भेजा था। जिनमें अनेकों संस्कृत के विद्वान होकर वापिस आये और गुरुमत ग्रन्थों का जिन्होंने संस्कृत में अनुवाद भी किया।

गुरु गोविन्दसिंह ने त्याग और बलिदानों का जो सिलसिला आरम्भ किया था। वह एक दिन रंग लाया और [illegible] गुरु, पुत्र, [illegible] मानव रत्नों के बलिदानों की नींव पर सिक्ख अथवा खालसा राज्य की नींव पड़ गई। कुरुक्षेत्र से लेकर लद्दाख के उस पार तक और काश्मीर जम्मू की सुहावनी भूमि से लेकर सिन्ध की पश्चिमी सीमाओं तक खालसा राज्य का झंडा लहरा गया।

सिक्ख राज्य बढ़े। उनका लोहा दुर्दान्त पठान भी मान गये। वे और भी बढ़ते यदि अपने व्यक्तिगत हितों की तरफ़ी और स्वार्थ का परित्याग [illegible] करते रहते जैसा कि गुरुओं का उन्हें उपदेश था। किन्तु वे ऐसा न कर सके और अंग्रेजी सत्ता उनके राज को निगल गई। उनको ही नहीं सारे भारत को ही निगल गई।

कोई भी सत्ता न तो सुस्थिर ही रहता है और न स्थायी ही। भारत भी उठा और वह स्वतन्त्र हो गया। आज भारत स्वतन्त्र है। स्वतन्त्र भारत के अनुकूल ही सबको आज फिर एक मन एक प्राण हो जाना है। एक मन होने के लिये एक दूसरे के भावों के समझने के लिये एक भाषा की आवश्यकता होती है। भारतीय संविधान ने हिन्दी को जो कि देवनागरी लिपि में लिखी जाती है राष्ट्र की भाषा स्वीकार किया है। कुछ लोग प्रांतीय भाषाओं की आवाज उठा रहे हैं और भाषाओं के आधार पर ही प्रांतों की रचना भी चाहते हैं। सिक्खों ने भी चाहे सामूहिक रूप में और चाहे एक पार्टी के रूप में पंजाबी भाषी प्रांत की मांग आरम्भ की है। पंजाबी पंजाब के समस्त निवासियों की बोली है। उसमें न तो हिन्दुओं को यह समझना है कि पंजाबी से सिक्ख उनके ऊपर हावी हो जायेंगे। और न सिक्खों को ही यह समझना है कि पंजाबी केवल उन्हीं की है। हमें तो कहना यह है कि प्रत्येक सिक्ख को हिन्दी सीखनी चाहिये क्योंकि उनका समस्त धार्मिक साहित्य हिन्दी बोली में है। बिना हिन्दी के अच्छे ज्ञान के वे अपने धर्म के मर्म को कैसे जान सकेंगे। उनके धर्म को आज कोई खतरा नहीं। आज तो देश विधर्मियों के हाथ में नहीं है। मैं जानता हूँ कि विषय अप्रासंगिक है किन्तु है सिक्खों के भावी भारत में सुयोग देने के लिये, उन्हें सच्चे सिक्ख बनाने के पक्ष में। और सच्चे सिक्ख के अर्थ सच्चे भारतीय के ही हैं।

अब तक मैंने सिक्खों, सिक्ख गुरुओं और सिक्खों की पूर्व परिस्थितियों एवं उनके उत्थान और ह्रास पर लिखा अब कुछ शब्द उस "सिक्ख-इतिहास" पर लिखना चाहता हूँ जो पाठकों के हाथ में है।

१५ वर्ष पूर्व की बात है कि ठाकुर देशराज जी ने सिक्ख-इतिहास के लिखने में मेरी सहायता की आकांक्षा प्रकट की। मैंने भी यह अनुभव किया कि हिन्दी साहित्य में सिक्खों सम्बन्धी सर्व प्रकार की जानकारी की एक पुस्तक का होना आवश्यक है अतः मैंने फीरोजपुर जिले के कुछ प्रतिष्ठित सज्जनों की एक समिति इस काम में परामर्श और उचित सहायता देने के लिये बना दी और साहित्य सदन अबोहर में बैठकर लिखने की सुविधायें भी ठाकुर देशराज जी को प्रदान कर दीं।

ठाकुर देशराज जी परिश्रमी, लग्नशील और सिद्ध-हस्त लेखक हैं। इसलिये उन्होंने इस काम में [illegible] चिपट कर और पूर्ण हिम्मत करके साल डेढ़ साल के भीतर-भीतर इस काम को पूरा कर लिया। [illegible] पुस्तकों का भण्डार था ही, उनके सिवा भी जिन उर्दू, फारसी और अंग्रेजी [illegible] पड़ी। उन्हें मगाने का प्रयत्न किया गया और जो न मिलीं उनके देखने के लिये [illegible] और [illegible] कालेज अमृतसर में लेखक महोदय को जाना पड़ा।

दैवयोग से इतिहास लिखने के दिनों में ही द्वितीय महायुद्ध और [illegible] आन्दोलन आरम्भ हो गया। साथ ही बाजार में कागज मिलने में कठिनाइयां आ [illegible] गई, [illegible] छपने का मामला खटाई में पड़ गया।

दो वर्ष पहले ठाकुर देशराज जी ने इसे प्रकाशित करने का प्रश्न उठाया। [illegible] मगरिया के प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित करने का संकल्प किया किन्तु चूंकि [illegible] बड़े ग्रन्थ के प्रकाशन के व्यय को सहन करने की सामर्थ्य न थी [illegible] शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी अमृतसर को इस पवित्र काम में सहायता देने के लिये लिखा। [illegible] पांच हजार रुपया नकद देकर हमारे उत्साह को बढ़ाया। अतः इस ग्रन्थ की प्रकाशन संस्था, शिरोमणि गुरुद्वारा कमेटी की अत्यन्त आभारी तथा कृतज्ञ है।

इसके पश्चात हमने अपने इलाके के उदार और साहित्य प्रेमी [illegible] और यह उन उदार सहायकों की ही उदारता का फल है कि यह महत्त्वपूर्ण इतिहास प्रकाशित हो सका है। आशा यह थी कि यह इतिहास तीन चार मास में ही छप जायेगा किन्तु ऐसा न हो सका और लगभग एक वर्ष [illegible] कारण कि इतनी बड़ी रकम के जुटाने में समय तो लगना ही था इसके सिवा बीच में [illegible] लगभग बुखार के हवाले रहना पड़ा और एक फसल यों ही निकल गई। इसके अतिरिक्त भी [illegible] अनेक कठिनाइयाँ और हानियां हमें तथा ग्रामोत्थान विद्यापीठ को सहन करनी [illegible] करने के कारण विद्यापीठ के अन्य आवश्यक कार्यों के लिये ठीक समय पर योग न दिया जा सका। [illegible] इतिहास के प्रकाशित होने से प्रसन्नता है कारण कि इससे हिन्दी साहित्य में एक अभाव की पूर्ति होती है। [illegible] जाति और सिक्ख धर्म के सम्बन्ध में हिन्दी जनता को सही परिचय प्राप्त करने का साधन प्रस्तुत हो गया है। यह इतिहास एक प्रकार से सिखों सम्बन्धी जानकारी के लिये कोष है। इसके साथ ही एक प्रशंसनीय काम लेखक ने यह किया है कि इसमें लगभग सवासौ पृष्ठका "गुरु-मत-दर्शन" अध्याय और जोड़ दिया है। सिक्खधर्म जिसे कि 'गुरुमत' कहा जाता है अपने अन्दर क्या दार्शनिकता रखता है और वह दार्शनिकता हिन्दू दर्शन के साथ कितना मेल खाती है? तथा उसका आधार और प्रवाह क्या है? इस विषय पर पूरा प्रकाश इस अध्याय में डाला गया है। जो [illegible] के लिये भी अध्ययन की एक अच्छी सामग्री प्रस्तुत करता है।

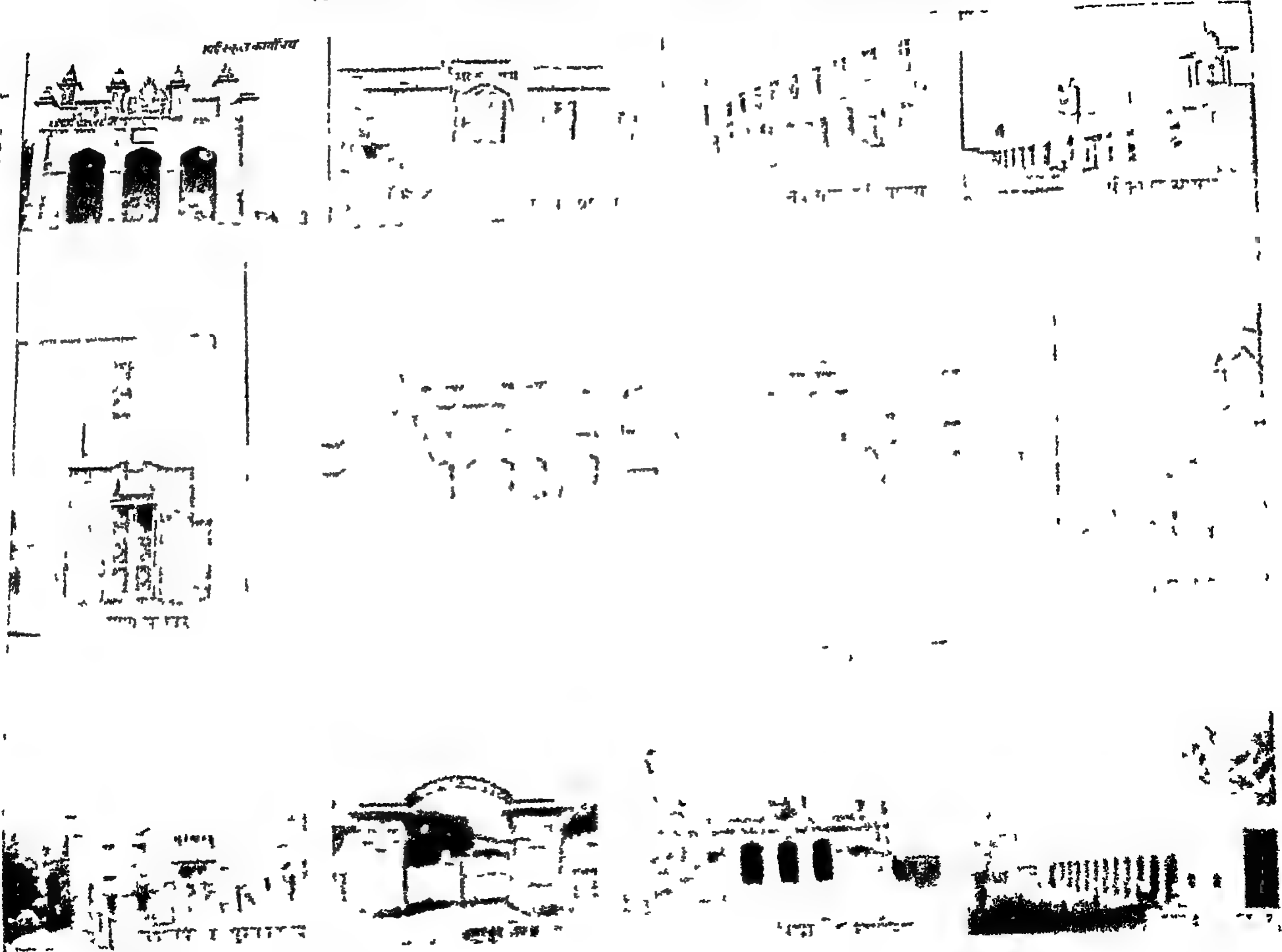
एक बात जिस पर कि इतिहास के लेखक ठाकुर देशराज जी ने बहुत कम प्रकाश डाला है। हम और कहना चाहते हैं वह यह कि पंजाब और पंजाब से बाहर गुरुमत के फैलाव के लिये सिक्ख गुरुओं और उनके प्रचारकों की भांति ही उदासीन सम्प्रदाय के आचार्यों और विद्वानों ने भी काफी काम किया है। उदासीन सम्प्रदाय के पुनरुद्धार कर्ता बाबा श्रीचन्द जी थे जो गुरु नानकदेव जी के ज्येष्ठ पुत्र थे। अपने पिता के संसर्ग से वैराग्य उन्हें वपौती में मिला था। वह सनक, सनन्दन, शंकराचार्य और ऋषि दयानन्द की भांति बाल-ब्रह्मचारी और बाल सन्यासी थे। हिन्दुओं की आश्रम व्यवस्थाके अनुसार सन्यास (७५ वर्ष की आयु के पश्चात आरम्भ होने वाला) चौथा आश्रम है किन्तु वे [illegible] सन्यासी हो गये थे। उनके तप और त्याग का आदर गुरु घर

साहित्य सदन, अबोहर



पंजाब की एक प्रसिद्ध हिंदी प्रचारक संस्था जहाँ बैठ कर यह इतिहास लिखा गया

ग्रामोत्थान विद्यापीठ, संगरिया (राजस्थान)



से भी होता था। स्वयं गुरु श्री हरिगोविन्द जी ने अपने बड़े पुत्र गुरु दित्ता जी को बाबा जी की सेवा में भेंट कर दिया था। आरम्भ से इस प्रकार का घनिष्ठ सम्बन्ध उदासियों और गुरु घराने में था। उस समय उदासी पूर्ण भारत में [illegible] घूमते थे। और इस में सन्देह नहीं कि उदासी सन्तों ने नानक पन्थ का काफी प्रचार किया। जहाँ जहाँ गुरु [illegible] भी गये वहाँ वहाँ इन्होंने गुरुद्वारे (डेरे) बनवाये और वहाँ पर अपने भक्तों को गुरु वाणी का रसास्वादन कराते रहे। उनकी भी धार्मिक पुस्तक ग्रन्थ साहब रही।

लखनऊ, शाहजहाँपुर और रूहेलखण्ड के [illegible] को इन उदासीन साधुओं के चमत्कार के सामने झुकना पड़ा था और वे भी इनके भक्त बन गये थे।

प्रयाग, काशी आदि में जो कुम्भ के मेले होते हैं, उनमें उदासी साधुओं ने बड़ी कुर्बानियां और प्रयत्नों के बाद [illegible] भारतीय [illegible] जुलूस निकालने का हक लिया। अब तक भी बाबा श्रीचन्द के [illegible] ग्रन्थ साहब को [illegible] पर निकालते हैं।

पंजाब से बाहर भारत में इनके [illegible] भी बाबा नानक का नाम और उनकी वाणियों का कीर्तन करते देखा है। जगह जगह उदासीन साधु रहते हैं और इनने नानक धर्म का प्रचार किया है। इस प्रकार उदासीन साधु एक बड़े समय तक [illegible] किन्तु बाद में गुरुद्वारों पर सिक्खों ने अधिकार का काम अपने हाथ लिया [illegible] गई हैं। वर्तमान में कुछ भी हो किन्तु भूत में गुरु मत के प्रचार में उदासी, निर्मले और सहजधारी अलग अलग नहीं रहे। उनका मूल एक है। उदासी गुरु नानक देव के पुत्र बाबा श्रीचन्द के अनुयायी हैं तो निर्मले उनके प्रिय शिष्य अंगद देव जी की शिष्य परम्परा में हैं।

यह एक ऐतिहासिक सचाई थी जिस की ओर मुझे संकेत करना था अतः इसी हेतु यह थोड़ी सी पंक्तियां लिखनी पड़ी हैं कि उदासियों की नानक धर्म के प्रचार में कम सेवायें नहीं हैं। उन्होंने बड़ी बड़ी कठिनाइयों से संस्कृत शिक्षा पाकर फिर संस्कृत में 'गुरु नानक चन्द्रोदय' 'जपुजी साहब का संस्कृत भाष्य' 'गुरु नानक गीता' 'गुरु नानक निरंकार [illegible]' आदि ग्रन्थ लिख कर गुरुमत का प्रकाश और प्रचार किया था। गुरुमुखी न जानने के कारण काशी, उज्जैन, जयपुर, प्रयाग आदि के जो पण्डितजन गुरुनानक के मन्तव्यों से अजान थे उनको गुरुमत का सन्देश इन्हीं उदासियों ने पहुंचाया था। अतः उदासियों का भी गुरुमत-प्रचार में एक अच्छा भाग और स्थान है।

—केशवानन्द

लेखक का परिचय

इस सिख इतिहास के लेखक श्री ठाकुर देशराज राजस्थान के प्रथम श्रेणी के उन किसान नेताओं में से हैं, जिन्होंने पिछली दो दशाब्दियों में राजस्थान के किसानों में जागृति पैदा करने में अपने को खपाया है। उन्होंने राजस्थान के किसानों में उस समय जागृति का कार्य आरम्भ किया था जबकि राजाओं और जागीरदारों का आतंक अपनी पराकाष्ठा पर था। सीकर और शेखावाटी के किसान-आन्दोलन आपके ही नेतृत्व में सचालित हुए थे।

भरतपुर में कांग्रेस (प्रजामंडल) को जन्म देने का श्रेय आप ही को है। सन् १९३०, १९३१ और १९४८ में आपने तीन बार जेल-यात्रा की। जयपुर राज्य में आप के प्रवेश पर दो साल से ऊपर पाबन्दी रही और बीकानेर के षडयन्त्र केस में जो महाराजा गंगासिंह के समय में सत्यनारायण सर्राफ, गोपालदास स्वामी आदि पर चला था, उसमें भी आप का नाम लिया गया। अजमेर-मेरवाड़ा, बीकानेर, जोधपुर जयपुर, अलवर और भरतपुर आपके कार्य के क्षेत्र रहे। इस तरह से राजस्थान में इनका भारी नाम और काम है।

साहित्यिक क्षेत्र में उन्होंने 'राजस्थान सन्देश', 'गणेश', 'किसान गर्जन', 'किसान जागरा' और 'नव जागृति' के सम्पादक तथा 'जाट-इतिहास' 'किसान-राज्य', "ग्रामीण कहानियां", "शेखावाटी के बोल" आदि पुस्तकों के रचयिता के रूप में ख्याति प्राप्त की है।

ठाकुर देशराज जी का जन्म ब्रज में सवत् १९५८ विक्रमी में द्वितीय आषाढ़ सुदी एकादशी को भरतपुर राज्य के जघीना गाँव में श्री ठाकुर छीतरसिंह के घर माता सुन्दरी देवी के उदर से जन्म लेने का आपको सौभाग्य प्राप्त हुआ।

सन् १९२३ में आपकी सार्वजनिक कार्यों में रुचि उत्पन्न हुई और इसी समय से आर्य समाज, हिन्दू सभा और जाट महासभा के कामों में हिस्सा लेने लग गये। पंजाब में लाला लाजपतराय पर लाठी चार्ज होने के बाद आपने कांग्रेस के कामों में भाग लेना आरम्भ कर दिया और सन् १९४७ तक बराबर कांग्रेस के कार्यों में भाग लेते रहे। उसके पश्चात् से आपके जीवन का लक्ष्य साहित्य सेवा और किसानों की जागृति बन गया। एक बार आप हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन के लिये आगरे जिले की ओर से प्रतिनिधि चुने गये थे। उन दिनों आप भरतपुर से निर्वासित होने के कारण आगरे में ही रहते थे।

सन् १९४४ में जब भरतपुर में ऐसेम्बली की स्थापना हुई जिसका कि नाम ब्रजजया प्रतिनिधि समिति था उसमें आपकी किसान पार्टी बहुमत से निर्वाचित हुई और आप उस ऐसेम्बली के डिप्टी स्पीकर चुने गये और इस पद पर लगातार ४ वर्ष तक आपने काम किया। सन् १९४८ में जब भरतपुर में लोकप्रिय मन्त्रिमण्डल की स्थापना हुई तो आप उसमें राजस्व मन्त्री चुने गये।

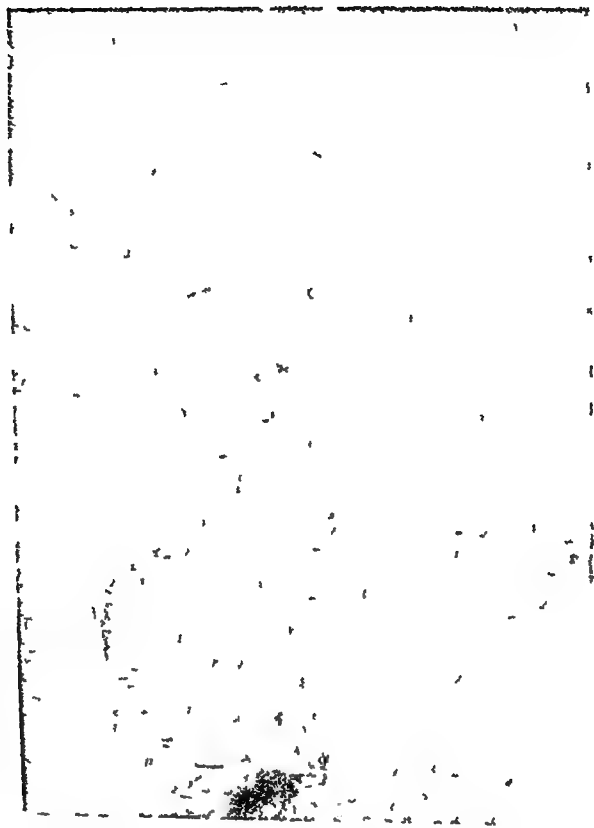
इस प्रकार आपने राजनैतिक और साहित्यिक दोनों ही क्षेत्रों में काफी प्रसिद्धि प्राप्त की है। आप परिश्रमी, मननशील और धुन के पक्के आदमियों में से हैं। मिलनसारी और सौजन्य आपके ईश्वर-प्रदत्त गुण हैं।

ग्रामोत्थान विद्यापीठ,

कुलभूषण



श्री कुलभूषण



श्री ज्ञानी हरिनामसिंह 'वल्लभ

कृतज्ञता-ज्ञापन

यह उचित ही होगा कि 'सिक्ख इतिहास' के प्रकाशन के अवसर पर हम उन मित्रों और हितैषियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करें जिनका इस इतिहास के प्रकाशन में सौहार्दपूर्ण सहयोग रहा है।

सब से अधिक श्रेय के पात्र हैं सरदार गंडासिंह जी—जो इस इतिहास के लिखने के दिनों में खालसा कालेज अमृतसर में 'सिक्ख हिस्ट्री' के रिसर्च स्कालर एवं प्रोफेसर थे और अब पेप्सु में पुरातत्व के डाइरेक्टर हैं। इस बीच में आपने अहमदशाह अब्दाली पर निबन्ध (थीसिस) लिखकर डाक्टरेट भी प्राप्त कर लिया है।

उन्होंने अपने कामों में व्यस्त रहते हुए भी समय निकाल कर इस इतिहास के लगभग तीन चौथाई भाग का अध्ययन किया है और फिर अपनी अमूल्य सम्मति प्रदान करने का अनुग्रह किया है। उनकी सम्मति हम भूमिका शीर्षक से इस इतिहास में प्रकाशित कर रहे हैं।

इस अवसर पर हम सिक्खों की सर्व प्रिय धार्मिक एवं साहित्यिक संस्था—"शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी" अमृतसर की उस उदारता को भी नहीं भुला सकते हैं जो उसने मुक्त-हस्त से इस इतिहास को छपाने के लिये पांच हजार रुपये की नकद रकम प्रदान करके की है। हम हृदय से कमेटी के पदाधिकारियों और सदस्यों के कृतज्ञ हैं।

फाजिलका व मुक्तसर (तहसील) इलाके के सम्पन्न सरदारों ने भी इस पुनीत कार्य में उत्साहपूर्वक आर्थिक सहायता दी है। चकी रुयो वाहल के सरदार श्री रघुराजसिंह गुरुराजसिंह जी, झोंटवाली के सरदार श्री जोगेन्द्रसिंह जी और गोबिन्दगढ़ के सरदार श्री करतारसिंह जी, बाडीवाला के सरदार लालसिंह जी और गहाँदोब के सरदार ईश्वरसिंह जी और अबलखराना के सरदार टेकसिंह जी ने अपना समय देकर इस काम के लिये आर्थिक सहायता संग्रह कराई। जिन-जिन लोगों ने इस कार्य में हमें सहायता दी उनकी सूची इस इतिहास के अन्तिम पृष्ठों में प्रकाशित कर रहे हैं।

नामधारी सिक्खों के प्रसिद्ध विद्वान सत इन्द्रसिंह चक्रवर्ती ने प्रस्तावना के लिये कुछ शब्द लिखने का अनुग्रह किया है हम उनके भी कृतज्ञ हैं।

दरबार साहिब पटियाला द्वारा प्रकाशित 'गुरुशब्द रत्नाकर' महान कोष के लेखक व प्रकाशक के हम इसलिये कृतज्ञ हैं कि उसके चित्रों के आधार पर हमने कुछ चित्र इस इतिहास के लिये तैयार कराये हैं।

श्री सेठ जुगलकिशोर जी बिड़ला ने जो कि समस्त 'आर्य्य',(हिन्दू) धर्मों की एकता के प्रबल समर्थक हैं तथा जिन्हें सिक्ख भी अपने मित्र की दृष्टि से देखते हैं, उसका समर्पण स्वीकार किया है इससे हमें पूर्ण प्रसन्नता और संतुष्टि है।

यह कहने में हमें प्रसन्नता होती है कि इसके लिखाने का गोरव पंजाब की प्रसिद्ध संस्था साहित्य-सदन अबोहर को है और प्रकाशित कराने का श्रेय ग्रामोत्थान विद्यापीठ, संगरिया को। इन दोनों ही संस्थाओं से हमारा सम्बन्ध है और दोनों का ही इस शुभ काम में सहयोग है।

—केशवानन्द

सिख इतिहास की विषय सूची

विषय

चित्र-सूची

पंजाबी प्रेस सदरबाजार दिल्ली के सौजन्य से महाराजा रणजीतसिंह, बाबा फूलसिंह, गुरु रामदास जी, बलिदान. गुरु गोविन्दसिंह जी, गुरु नानकदेव जी, हरिसिंह नलुवा, बाबा दीपसिंह जी तथा शहीद बन्दा बहादुर के चित्रों के डिजाइन प्राप्त हुए हैं जिनके आधार पर ब्लाक बनवा कर इस इतिहास में चित्र दिये गये हैं। अत हम प्रेस मालिकान के कृतज्ञ हैं। उक्त चित्रों का कापी राइट पंजाबी प्रेस को ही है।

प्रकाशक—

पहला अध्याय

गुरु नानक से पहले का भारत

इस बात से प्रत्येक भारतीय जानकार है कि गुरु नानक देव जी महाराज का जिस समय जन्म हुआ था, उस समय हिन्दू धर्म और भारत देश एक भयंकर खतरे में से गुजर रहे थे। काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और सिन्ध-बिलोचिस्तान से लेकर आसाम तक सारा देश उन लोगों की हुकूमत में था जो न तो भारतवासी ही थे और न इस देश के वासियों के सहधर्मी ही। वे मंगोल, तुर्क, ईरान और अफगानिस्तान प्रभृति देशों के उन भारत-विजयी लोगों की सन्तान थे जिन्होंने गुरु नानकदेव जी से ५००-६०० वर्ष पूर्व से भारत में—लूट खसोट और स्वधर्म प्रचार के लिये आना आरभ किया था और फिर जीवन निर्वाह की सुविधायें—स्वदेश की अपेक्षा अधिक मात्रा में—यहां पाकर बस जाना उचित समझा।

इनमें अधिकांश अपने धर्म के पक्के और दूसरे धर्मों के प्रति घोर तास्सुबी थे। शासकों की अपेक्षा इनका पुरोहित वर्ग जो काजी और मुल्लाओं के नाम से अभिहित होता था—दूसरे धर्मों के प्रति अधिक असहिष्णुता के भाव रखता था। हालांकि इन लोगों ने हिन्दुस्तान को अनेक अच्छे ख्यालात और कला कौशल के दान दिये किन्तु धर्म-प्रसार के इनके जो ढंग थे वह मानवता की सीमा से बहुत परे और हृदय हिला देने वाले थे यही कारण था कि हिन्दुओं की उस समय की दशा खाण्डव-वन के उन जीव धारियों की जैसी थी जो दावानल में धाय-धाय जल रहा था।

भारत देश और हिन्दू जाति के इन जलते-बलते दिनों में भी यह बात नहीं थी कि हिन्दू राजाओं के राज्यों से देश शून्य था। गणना के लिहाज से तो उस समय भी लगभग आधे देश में राजपूत नाम से मशहूर होने वाले अनेक हिन्दू खान्दान राज करते थे। ये सब मिलकर चाहते तो इन अत्याचारों को खत्म भी कर सकते थे और भारत को स्वतन्त्र भी किन्तु यह लोग ऐसा न कर सके, (उलटा) हुआ यह कि इन्होंने परस्पर एक दूसरे की स्वतन्त्रता अपहरण कराने के लिये देश को रौंदने वाले और हिन्दू धर्म को ध्वंस करने वालों का साथ दिया। यह (राजपूत) लोग आपस में ऊंच-नीच के भावों से यहां तक ओत-प्रोत थे कि एक दूसरे की अधीनता एवं अनुशासन में रहना अपने वंश की हेटी समझते थे किन्तु विधर्मी शासकों के साथ इनमें से अनेकों ने लड़की देने में भी वंश मर्यादा का लोप न समझा। हमें यह कहने में कोई हिचक नहीं है कि मराठा और सिखों के उस प्रयत्न में भी इन लोगों द्वारा बाधा

पहुँची जो उन्होंने हिन्दू पादशाही स्थापित करने के लिए किया था। और यही कारण है कि भारत को राजनैतिक मुक्ति दिलाने और हिन्दू धर्म को इस्लाम की आक्रमणकारी लपटों से बचाने के लिए गुरु नानकदेव जी के दशवें उत्तराधिकारी गुरु गोविन्दसिंह जी को एक नई जाति (खालसा) की स्थापना करनी पड़ी।

गुरु नानक जी से पूर्व भारत की सामाजिक दशा बताने के लिए हमें कुछ अधिक सफाई के साथ चर्चा करनी पड़ेगी।

६०० ई० से १२ वीं सदी तक

इतिहासकारों के मत में ईसा की छठी सदी से लगाकर बारहवीं सदी के अन्त तक का समय राजपूत काल माना जाता है। क्योंकि इस बीच में भारत में जितने भी शासक खानदान थे वे सब अपने को राजपूत कहते थे और यह भी सही है कि इन छः सौ वर्षों तक भारत में राजपूतों का ही आधिपत्य रहा। वैसे इसके बाद भी और कल तक राजपूतों के भारत में अनेकों राज्य रहे हैं किन्तु वे समय उनकी पूर्ण मुख्तियारी के समय नहीं कहे जा सकते। सर्वाधिकारिता उनकी [illegible] भारत नष्ट हो गई। भारत के इतिहास में इन छः सौ वर्षों का हिन्दू काल भी माना जाता है इसका कारण यही है कि हिन्दू नाम से अभिहित होने वाले धर्म और जाति इन्हीं ६०० वर्षों में [illegible] इन्हीं वर्षों में बौद्ध और जैनधर्मों का खात्मा[1] किया गया था। हमारा मौजूदा हिन्दू धर्म बौद्ध-जैन धर्मों के नष्ट किये जाने के बाद का निर्माण किया हुआ ही है। ये दोनों धर्म आर्य वंश के लोगों में और आर्य कुमारों द्वारा ही[2] प्रादुर्भूत भी हुए थे किन्तु कुछ अंशों में ब्राह्मण विरोधी होने के कारण इनके और ब्राह्मणों का संघर्ष छिड़ गया। ब्राह्मण अपने प्रयत्न में सफल हुए और उन्होंने बौद्ध धर्म का तो भारत में निशान ही मिटा दिया। थानेश्वर के प्रसिद्ध राजा हर्षवर्द्धन शिलादित्य के बाद बौद्धों में कोई नामी राजा शेष न रह गया था। सिन्ध और काबुल के प्रदेशों के जो छोटे-छोटे बौद्ध राजा थे वह भी ब्राह्मणों ने राज्यच्युत कर दिये। बौद्ध धर्म को छोड़ कर जो क्षत्रिय खानदान ब्राह्मण धर्म स्वीकार कर लेते थे वे राजपूत नाम से अभिहित होते थे। नये ऐसे समूह भी जो प्राचीन क्षत्रिय वंशों के तो उत्तराधिकारी न थे किन्तु जिन्होंने ब्राह्मण धर्म को स्वीकार कर लिया और राजशक्ति भी प्राप्त कर ली थी वे भी राजपूत दल में शामिल कर दिये गये। अग्नि वंशी राजपूतों के लिए भी इतिहासकारों का ऐसा ही ख्याल है। अनेक स्थानों पर बौद्ध राज्यों को नष्ट करके ब्राह्मण लोग खुद भी शासक बने। सिन्ध के साहसीराय[3] और काबुल के लल्लिय बौद्ध राजा को हटाने के बाद क्रमशः चच और सामन्त नाम के ब्राह्मणों के अधिकार कर लेने की बात काफी प्रकाश में आचुकी है। आगे चलकर ऐसे ब्राह्मण शासक खानदान भी राजपूत समुदाय में ही मिल गये। इस तरह से इन छः सौ वर्षों में बौद्ध धर्म और साम्राज्य के भवन को ढाकर जो इमारत खड़ी की गई थी वह हिन्दू-धर्म और राजपूत-साम्राज्य के नाम से मशहूर हुई।

यह छः सौ वर्ष का समय भी ऐसा समय नहीं था जिसे हम भारत के लिए एकता और शांति का समय कह सकें। बाहरी तौर से हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज की रचना अवश्य इस समय में हो रही थी[3]

१ जैन धर्म कुछ ससकती अवस्था में भारत में अभी भी शेष है। —लेखक

२ देखो हिन्दू मिडीवल इण्डिया अथवा भारतीय संस्कृति का इतिहास। ४. देखो चचनामा

३ मौजूदा हिन्दू धर्म बौद्ध धर्म के बाद का है। जो कि कुछ अंशों में वैदिक की भी छाया है। और यह उन समस्त बौद्ध जैन विरोधी सम्प्रदायों का संगठन है जो शैव, शाक्त, वैष्णव आदि नामों से प्रकट हुए थे।

सिन्ध पर कैसे गया. भिन्नता और विद्वेष की अग्नि अन्दर ही अन्दर काफी सुलग रही थी। आठवीं सदी में सिन्ध को अरब वालों ने छीन लिया था। इसका एक कारण— और भारी कारण—यह भी था कि सिन्ध के जाट, लुहाने और दूसरे इसी प्रकार के लोगों ने सिन्ध के राजा दाहिर का साथ नहीं दिया। ऐसे भी उल्लेख हैं कि दाहिर के बाप चच ने उनके साथ केवल इस कारण से कि वे बौद्ध थे पशुओं का सा व्यवहार किया था। उनके लिये घोड़ों पर चढ़ना हथियार बांधना और सुन्दर वस्त्र पहनना तक निषिद्ध करार दे दिया था।[1] मुहम्मद कासिम चन्द सवारों से सारे सिन्ध को छीन ले और पंजाब की ओर भी बढ़ आवे यह कम आश्चर्य की बात नहीं है किन्तु वास्तविकता तो यह है कि सिन्ध और पंजाब का जनसमूह उस समय एक मन था जो विदेशी आक्रान्ता का मुकाबिला करता। इस तरह यह कहा जा सकता है कि भारत इन छः सौ वर्षों में जनता के रूप में तनिक भी न पिरोया जा सका था किन्तु हुआ यह था कि वह छोटे-छोटे टुकड़ों—जाति-पांति और सम्प्रदायों में बंट गया था।

पिछले एक हजार वर्ष

गुरु नानक देव जी के जन्म से पहिले का एक हजार वर्ष का लँबा समय भारतवर्ष के लिये निहायत ही बुरा समय कहा जा सकता है कासिम, गजनवी, गोरी और तैमूर जैसे आक्रान्ता भारत के इस सिरे से घुसते हैं और मार-काट लूट-पाट करते रहे। लूटते खसोटते चले जाते हैं, साथ ही जब विदा होते हैं तो इस देश के लूट के माल को भी इसी देश के आदमियों के सिर पर रखवाकर ले जाते हैं। मन्दिरों को ढहा देते हैं। मूर्तियों को चूर कर देते हैं। माँ, बहिन और बेटियों को भेड़ों और बकरियों की भाँति हाँक ले जाते हैं किन्तु राष्ट्र की आत्मा नहीं तिलमिलाती है उसका पुरुषत्व नहीं जागृत होता है। और न यह अपमान से जमीन में गड़ता है। यह क्या बात थी? ऐसा क्या था? आज यह बात हमारे दिमाग को परेशान कर डालती है। वास्तव में बात यह है कि उस समय राष्ट्रीयता तो थी ही कहाँ? लोग राष्ट्र का तो नाम तक न जानते थे। समस्त राष्ट्र (देश) के लिये सोचने वाला कोई न तो उस समय व्यक्ति ही था और नाहीं कोई सम्प्रदाय और पंथ। प्रत्येक व्यक्ति केवल अपनी चिन्ता करता था समिष्ट-वाद कतई नष्ट हो चुका था। अपनी चिन्ता भी केवल मुक्ति की। स्वच्छता और स्वस्थता की नहीं। शरीर को नाशवान मानकर "एक दिन मिट्टी में मिल जाना है क्यों धोता नर कंकाल को" इस लोकोक्ति को लोग अपना सिद्धान्त बनाये हुये थे। ग्यारहवीं सदी के अरब यात्री अलबरुनी ने बताया है कि लोग शरीर और घरों की शुद्धता की ओर बहुत ही कम ध्यान देते हैं। नाखूनों को बढ़ाये रहते हैं। साधु और पुजारी कहे जाने वाले लोग तो और भी मैले कुचैले रहते हैं।

उस समय के धर्म ने भारत को निराशावाद की अतुल सम्पति दी हुई थी। संसार उनके लिये मिथ्या और परिवार भार रूप था। हालांकि इस मिथ्या संसार में ही वे सब प्रकार के आनन्द भोगते थे, गीता का सुन्दर उपदेश कौन किसको मारता और कौन मरता है? बिल्कुल उलटे रूप में माना जा रहा था। आत्म-विश्वास और स्वावलंब कतई नष्ट हो चुके थे। भयंकर से भयंकर और छोटी से छोटी आपत्ति को ईश्वर का कोप समझते थे, "ईश्वर को ऐसा ही करना था, उसकी मर्जी के आगे पेश नहीं जाती है।" यह उस समय हिन्दू जाति का मोटो था। भूत, पिशाच, देवी देवता और अदृश्य पर उनका

१. देखो चचनामा।

भारी विश्वास था। मुहम्मद कासिम ने जब सिन्ध को घेरा तो युद्ध के पहले ही भविष्य । [illegible] की गई कि लडाई करना व्यर्थ है अरबों से जीता न जा सकेगा। पृथ्वीराज रासो में भी इस का। [illegible] है। अदृश्य वाणी पृथ्वीराज को भी सूचना देती है कि तुम्हें गोरी से हारना पडेगा। आगम व पुराणादि धार्मिक ग्रन्थों में भी भारत के भविष्य को पहले से ही चित्रित कर दिया गया था। यह भविष्य कथन किया तो इसलिये जाता था कि भविष्य वक्ताओं का मान बढे किन्तु सिन्ध आदि का जन भविष्य वक्ताओं से जो अपार बाधा होने को था उसका किसी भी भविष्य वक्ता ने ख्याल नहीं किया? करते भी क्यों जबकि उनके दिल में समष्टि के हित का कोई ख्याल ही न था। इस तरह से यह [illegible] जन-सख्या रखने वाला भारत देश अंधविश्वासों और विभिन्न सम्प्रदायों और जातियों के कारण [illegible] के पौधों की तरह बँटा हुआ था। जत्थेबन्दी की तो कोई भावना देश में थी ही नहीं। [illegible] इतना कहने भर को जत्थे बन्दी थी कि हम अमुक सम्प्रदाय और पंथ के हैं। धर्म और सम्प्रदायों में भी लोग इसलिये थे कि वे मुक्ति दिलाने में सहायक होंगे। परलोक का रास्ता बतावेंगे इस तरह यह परलोक का भूखा भारत इहलोक में पुरुषत्व हीन और "अनागतं [illegible]" ऐसा जीवन बिता रहा था।

इस स्थिति का इतिहास

भारत देश में इस प्रकार की हीन और नाकाबिले बर्दाश्त हालत पैदा क्यों हो गई थी। इस बात का कुछ इतिहास पेश करना अच्छा ही होगा। क्योंकि उसमें अवलोकन को समझने में भी सहायता मिलेगी।

सांकेतिक तौर पर यह हम पहले ही बता चुके हैं कि बौद्ध और जैन धर्मों ने ब्राह्मण धर्म के खिलाफ काफी प्रचार किया था जैनों ने ब्राह्मण वर्ण ही को उड़ा दिया था। केवल—क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र–तीन ही वर्ण रक्खे थे। उन पर टैक्स भी लगा दिये थे। अतः ब्राह्मणों ने भी अपनी मान मर्यादा को कायम रखने के लिये प्रयत्नों में कोई कसर न छोडी। एक समय आया कि बौद्ध धर्म गिरने लगा। उसके गिरने के कारणों में उसकी आन्तरिक कमजोरी ने भी साथ दिया। आन्तरिक कमजोरियों में दो कमजोरी मुख्य हैं। एक भिक्षु और भिक्षुनिओं में संयम का बाँध टूट जाना दूसरे बौद्ध राजाओं का युद्ध से घबराना, कारण कि युद्ध में जो नर सहार होता था उससे वे अपने अहिंसा सिद्धान्तों के कारण घबराते थे। ब्राह्मण प्रचारकों ने बौद्ध और जैन राजाओं की इन दोनों कमजोरियों से लाभ उठाया। मगध, अंग, बंग और कलिंग के बौद्ध राजाओं को उसके ब्राह्मण-धर्मी वजीरों ने गद्दी से उतार दिया। मालवे और मध्य भारत में यही हुआ। नन्द, मौर्य वज्जियन, वर्द्धन और आन्ध्र लोगों के स्थान पर पुष्यमित्र, कन्व और गुप्त आदि नये वंश प्रकट हुए। जिन्होंने बड़े बड़े अश्वमेध यज्ञ भी किये ताकि उनके—धारण किये हुए नए धर्म का और भी अधिकाधिक प्रचार हो।

उत्तर काल में समस्त भारत में इस नवधर्म से मंडित राज-वंशों का राज्य हो गया। जो शिशो-दिया, राठौर, चौहान और सोलंकी आदि नामों से प्रसिद्ध हो चुके थे। इतनी बड़ी राजनैतिक सफलता प्राप्त करने में ब्राह्मण और बौद्ध धर्मावलंबियों में संघर्ष भी काफी हुए। रक्त पात भी हुए किन्तु हमें उन समस्त घटनाओं पर प्रकाश नहीं डालना है। हाँ, इतना अवश्य कह देना है कि इस प्रकार की राजसत्ता प्राप्त कर लेने से ब्राह्मणों ने अपने उस खोये हुए वैभव से अधिक (पुन) प्राप्त कर लिया जितना कि वे बौद्ध और जैनों के समय में खो चुके थे।

राजनैतिक सत्ता प्राप्त करने के प्रयत्नों के अलावा ब्राह्मणों के उन प्रयत्नों का भी कम महत्व नहीं है, जो उन्होंने जैन और बौद्धों के महान दार्शनिक ज्ञान को पीछे हटा देने के लिए किया था। जैन-बौद्ध दर्शनों में ईश्वर, जीव और प्रकृति के सम्बन्ध में अत्यन्त गहराई में पैठ कर जो सिद्धान्त स्थिर किए गये हैं उनके मुकाबले पर टिकने की ठोस दार्शनिक मालमसाला बिना पेश किए जैन और बौद्ध पंडितों को परास्त नहीं किया जा सकता था। उधर बौद्ध-काल में इस ओर किया गया ब्राह्मणों का प्रयत्न भारत ही नहीं अपितु संसार के लिए एक अनुपम प्रयत्न है। यह प्रयत्न षट्-दर्शन के रूप में आज संसार के सामने है। आधुनिक भारत के समस्त सम्प्रदायों में जो भी सार-पदार्थ है वह इन षट्-दर्शनों की छाया प्रतिच्छाया है।

किन्तु, दर्शनों के ऊंचे ज्ञान सर्व साधारण की समझने की चीज नहीं होते हैं, इसलिये ब्राह्मणों का यह महान ज्ञान भी शास्त्रों और कर्मकांड के पंडितों तक—सो भी केवल वाद-विवाद की वस्तु के रूप में—रह गया। जैन और बौद्ध धर्मों के भी समस्त अनुयायी इस उच्च ज्ञान को नहीं जानते थे जो उनके दर्शनों में है। प्रायः समस्त बौद्ध लोग अपने धर्म में आस्था प्रकट करने के लिए महात्मा बुद्ध की स्वर्ण-प्रतिमाओं की पूजा किया करते थे। जैन लोग भी स्वामी पार्श्वनाथ और महावीर जी की सुसज्जित एवं नग्न मूर्तियों की पूजा कर अपने अटल-धर्मप्रेम का परिचय देते थे। इस तरह से ये दोनों धर्म सामूहिक रूप से पौत्तलिक (मूर्ति पूजक) धर्म थे। इनकी प्रतिस्पर्द्धा में खड़े किए गये नवीन हिन्दू धर्म में भी आगे चल कर मूर्ति पूजा को स्थान मिल गया। शंकराचार्य और कुमारिल भट्ट के बाद जो संत इस धर्म को आगे बढ़ाने वाले हुए उन्होंने अपने इष्ट देवों को पूजा के लिए साकार रूप कर दिया।

वेदों में परमात्मा को ब्रह्मा (सृजन कर्ता), विष्णु (पालन कर्ता) और शिव (कल्याण कर्ता) के नामों से याद किया गया है। उसके इन त्रिरूपों के आधार पर उनकी मूर्तियां मन्दिर और मठों में स्थापित कर दी गईं। प्रकृति के उपासकों ने माया, महामाया और इस प्रकार जगदम्बा आदि की मूर्तियां कायम कर लीं। मूर्ति पूजा का यह पहला रूप था जो बौद्धों के प्रतिरोध में नवीन हिन्दू समाज ने ग्रहण किया।

जैन लोगों में पूर्व-भव (पुराने जन्म) की बातें बताने का बड़ा रिवाज था। कह नहीं सकते भारत में यह रिवाज वे कहां से लाए थे क्योंकि भारत के वैदिक, स्नातक और औपनिषधक किसी भी समय में यह-पूर्व भव बताने की प्रथा न थी। इस तरह से अपरिपक्व मस्तिष्क के लोगों पर बड़ा असर पड़ता था। ब्राह्मण वर्ग द्वारा निर्मित नये हिन्दू धर्म में भी कुछ हेर-फेर के साथ इस रिवाज को ग्रहण कर लिया। हाथ की रेखाओं को देख कर भूत भविष्य की बातें बताने की कला ईजाद कर ली गई जिसे सामुद्रिक शास्त्र का नाम दिया गया। कहा गया कि महेश से यह विद्या समुद्र ने सीखी थी। महेश के मानी लोग उस शिवजी के समझते हैं जो इतिहासों में असुरों के साथ लड़ता हुआ अथवा उन्हें वर देता हुआ वर्णन किया गया है। वास्तव में मौर्यों से पहले नन्द काल में महेश एक प्रसिद्ध वैयाकरण गुजरा है समुद्र नाम का पंडित उसका शिष्य था। पाणिनी से कुछ ही पहले महेश वैयाकरण हुआ है। इसके साथ ही कुग्रहों और कुमुहुर्तों के अनिष्ट को भी गणित ज्योतिष में शामिल कर लिया। भविष्य जानने के लिये स्वभावतः उत्कंठा होती है।

शरीर शास्त्र के अनुसार यह बात आश्चर्य की नहीं कि नाक के दो नथुनों से बारी-बारी से हवा का आवागमन होता है। शरीर के भीतर प्रवाहित होने वाली वायु का रक्त गति से सम्बन्ध होने के कारण उसका शरीर और मन पर भी सुस्ती फुर्ती आलस्य और नींद एवं उत्साह अनुत्साह के रूप में असर पड़ता

है। दॉया स्वर चलता हो तब स्फूर्तिवान और बाया चलता हो तो मूर्ख। [illegible] कार्यों मे कुछ लोग इसका खयाल रखते थे आगे इसी को [illegible] की प्रणाली [illegible] गई।

इस तरह से हिन्दू समाज ब्राह्मणों के [illegible] निरन्तर [illegible] होता गया और वह प्रत्येक बुद्धि हीनता और अकर्मण्यता के जाल में फसता गया। [illegible] कि शिव, विष्णु और ब्रह्मा का स्थान राम, कृष्ण [illegible] भैरो, [illegible], भूमिया आदि के रूप मे आ गए। आगे की सदियो में तो [illegible] गाव मे [illegible] भैरों का एक महादेव का एक रामकृष्ण का और एक हनुमान [illegible] गया। [illegible] को गाव की रोग धोग से रक्षा करने वाला, भैरो और हनुमान [illegible], महादेव को सम्पत्ति देने वाला और रामकृष्ण को वैकुण्ठ धाम [illegible] वाला [illegible] गई। चेचक के निकलने पर देवी माता का नाराज हो जाना और [illegible] होना माना जाने लगा था। इन मठो मे जो लोग नियुक्त [illegible] और [illegible] मे रोगो को दूर करने और देवताओ को प्रसन्न करने का काम [illegible]। [illegible] लग गये थे कि शत्रु के आयु, बल, कुटुम्ब और धन का नाश भी [illegible] कराया जा सकता है। कौन नही जानता कि महमूद गजनवी के सोमनाथ [illegible] कहा गया था कि वे स्वत ही यवनो का नाश कर देंगे। [illegible]। शिवाजी जैसा बहादुर और चतुर आदमी भी लड़ने मे पहले देवी के मन्दिर मे [illegible] था। इस तरह का अन्ध विश्वास पूरी गहराई के साथ ईसा की आरम्भिक सदियों मे गुरु नानक जी के [illegible] काल तक फैल चुका था।

संतों के हाथ बागडोर

बौद्ध और जैन धर्मो का मुकाबिला और विनाश केवल ब्राह्मण [illegible] ही ने कर दिया हो, ऐसी बात नहीं है। इसमे अनेको उन गृह त्यागी साधु संतो का भी [illegible] जैन यतियों अथवा बौद्धभिक्षुओं की भॉति घरबार और समस्त सुखो को छोड़ कर त्यागी हो चुके थे, स्वामी शंकराचार्य जी उन बौद्ध भिक्षुओं की जानकारी भी प्राप्त कर चुके थे जो बिना ही ज्ञान और योग्यता के भिक्षु बन जाते थे और अपनी युवा अवस्था के झकोरो मे सयम करने मे भी विफल सिद्ध होते थे। अत. उन्होंने साधू बनने के कुछ कड़े नियम व प्रतिबन्ध रक्खे। स्त्रियों के साध्वी बनने के रिवाज को तो उन्होंने कतई उठा दिया था। साधु बनने का अधिकार भी उन्होंने केवल द्विजों के लिये ही रक्खा। शायद वे समझते होंगे कि द्विज जातिया तो शिक्षित होना अपना अटल नियम बनाये रक्खेंगी किन्तु खेद कहना पड़ता है कि ऐसा हुआ नहीं, द्विजो मे भी आगे के समय मे तो अधिकांश समूह निरक्षर ही रहता रहा। और इन द्विजों मे से साधु संत बनने वाले भी अधिकाश निरक्षर ही रहते थे। समाज के पास इन संतों का सम्पर्क ब्राह्मण पुरोहितों की अपेक्षा अधिक था और ब्राह्मण वैसे भी अपनी अनन्तकाल से चली आई आदत के अनुसार यजमानी के काम मे ही लगे रहते थे। उपदेश का प्राय. सारा भार इन साधु संतों पर ही था। परिव्राजक और स्थानिक इनके दो मुख्य समूह थे। इस प्रकार जनता की मनोवृत्ति के संचालन की बागडोर प्राय' इन साधु संतों के हाथ आ गई थी। इनमे पढ़े लिखे और निरक्षर—जैसा कि ऊपर कह चुके हैं दोनों प्रकार के होते थे और अधिकारा मे तो अनपढ ही होते थे। फिर भला समाज का कहा तक

कल्याण इन लोगों के हाथों हो सकता था। भांग के कारण जनता से इन्हें पैसे भी काफी मिलते थे अतः भांग, गांजा और चरस के दम लगाने का दुर्व्यसन इन लोगों में घर कर गया। आगे इन लोगों ने हथियार धारण कर लिये। फिर संघ का नाम नागा लोगों के अखाड़ों की संख्या भी बढ़ने लगी। पौत्तलिक धर्म को इन लोगों ने ब्राह्मणों की अपेक्षा कहीं बहुत ज्यादा उत्तेजन दिया।

किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि इन साधु संतों में से सब ही एक से निकले, कुछ तो इतने ऊंचे चरित्र और सदाचार के थे जो अपना नाम धार्मिक इतिहास में अमर कर गये हैं। उन्हीं प्रसिद्ध संतों में से कुछेक के सम्बन्ध और उनके कार्यों का वर्णन हम दिग्दर्शन कराना चाहते हैं। किन्तु इससे पहले हम यह भी दिखाना चाहते हैं कि स्वामी शंकराचार्य की साधु संतों सम्बन्धी जो प्रणाली थी उसमें गुरु नानक जी ने एक ऐसा संशोधन किया जिससे पावन एक परिवर्तनकारी रूप इस प्रथा में हो गया। उन्होंने अपनी शिक्षा और भक्ति निर्देशों में साफ तौर से स्पष्ट ऐलान किया कि यह कोई आवश्यक बात नहीं है कि परमेश्वर अथवा सद्गति घर को छोड़ देने से ही प्राप्त हो सकेगी। महात्मा कबीर भी इसी सिद्धान्त के मत थे। पूरा विवेचन तो इस प्रसंग पर आगे के पृष्ठों में करेंगे। यहां तो केवल इन थोड़े से संतों के कार्यों पर प्रकाश डालते हैं जिनका कि हिन्दू समाज के अंग प्रत्यंग पर एक बड़ा भारी प्रभाव पड़ा था और जिसके कारण इसे सुदिन और दुर्दिन भी देखने पड़े थे।

शंकराचार्य जी के दस शिष्य थे जो दसनाम से मशहूर हैं। उनमें से चार तो मठाधीश हुए। इन मठों में शिव मूर्ति की उपासना की जाती है क्योंकि इन शिष्यों का ख्याल था कि स्वामी शंकराचार्य जी साक्षात शिवजी का अवतार थे। शेष छः ने नास्तिक पंथ का अनुकरण किया। यह घटना दसवीं शताब्दी की है। कहा जाता है रामानुज शंकराचार्य जी के भानजे और शिष्य थे

रामानुज

उन्होंने शंकराचार्य जी से कहा था कि आपका पंथ मुझे नहीं जचता उसमें कुछ सुधार होना चाहिए। स्वामी शंकराचार्य जी के बाद स्वामी रामानुज जी ने अपना पथ अलग से चलाया। इस पथ में प्रायः ब्राह्मण ही लिये जाते थे। उनके आचार सम्बन्धी कुछ कठोर नियमों का भी निर्माण किया। उपासना शिवजी की बजाय विष्णु की रक्खी। तिलक, माला छाप का भिन्न प्रकार के साम्प्रदायिक चिह्न नियत किए। रामानुज कहते थे कि निराकार ईश्वर का चिन्तन सर्व साधारण के लिए असम्भव है। अतः उसका रूप और स्वभाव निश्चित करना आवश्यक है। अतः उन्होंने विष्णु की कल्पना श्वेत वस्त्रधारी और श्वेत भोजन धारी के रूप में पेश की। इस सम्प्रदाय के लोग भी श्वेत वस्त्रों का ही अधिक पसन्द करने लगे और विष्णु मूर्तियों के सामने भोग भी सफेद—खीर, दही, मिश्री और खंड आदि पदार्थों का ही लगने लगा।

रामानुज ने विष्णु पूजा के अलावा अपने सम्प्रदाय में गुरु पूजा भी प्रचलित की। तन, मन, धन सब गुरु चरणों पर अर्पण की प्रवृत्ति शनैः शनैः पराकाष्ठा पर उनके सम्प्रदाय में पहुँच गई। इसका फल यह हुआ कि लोगों की स्वतन्त्रतापूर्वक सोचने की बुद्धि कतई तौर से नष्ट हो गई। कर्मवाद की फिलासफी पीछे पड़ गई। अन्ध विश्वास घोरतम रूप से फैल गया। स्वामी रामानुज का यह समय ११-१२ वीं ई० सदी का है।

स्वामी रामानुजचार्य का यह मत वैष्णव मत के नाम से मशहूर हुआ। इसे प्रचारित करने के लिये आपने शंकराचार्य के अद्वैतवाद और शैवों के मायावाद के विरुद्ध काफी प्रचार किया था। उन्होंने अपने ही समय में ७०० विष्णु मन्दिर बनवा दिये थे।

ईश्वर जीव और प्रकृति को भिन्न मानते हुए भी [illegible] अवतार लेने की कल्पना रक्खी थी। दुष्टों के संहार और धर्म की स्थापना के लिए परमात्मा अवतार धारण करता है। [illegible] इस कल्पना से स्वामी रामानुज शैवों के मुकाबिले में [illegible] हुए हों किन्तु सर्व साधारण को इस सिद्धान्त के अपनाने से हानि भी हुई। [illegible] की प्रवृत्ति उनके अन्दर से नष्ट हो गई और उसका फल यह हुआ कि [illegible] इस देश में किये तो लोग इस आशा में [illegible] कि इन दुष्टों का [illegible] भगवान [illegible]।

छूत, छात और आचार विचार के [illegible] सिद्धान्त [illegible] है। भिन्न समाज के टुकड़े करने और नीच ऊंच के भाव पैदा करने में [illegible] इस सिद्धान्त ने कुछ कम काम नहीं किया। दक्षिण में तो [illegible] इस सिद्धान्त का इतना घातक प्रभाव पड़ा कि अछूत लोगों की छाया पड़ने से [illegible] अपवित्र मानने लगे। [illegible] अब तक तालाबों में इतना [illegible] पहुँच जाय।

रामानुज के बाद दूसरा नाम जो भक्ति जगत में आता है वह स्वामी रामानन्द जी का है। आपने 'श्री' या लक्ष्मी सम्प्रदाय की स्थापना की और [illegible] राम सीता या कृष्ण राधा की पूजा के रूप में परिवर्तित हो गई। [illegible] स्वामी रामानन्द जी ने सभी जातियों को वैष्णव होने का रास्ता खोल दिया था। [illegible] भारत में वैष्णव मत फैलने में समर्थ हुआ। आपके बाद माधवाचार्य, वल्लभाचार्य और निम्बकाचार्य ने कुछ [illegible] और भी [illegible] किया। रामानन्द जी मूर्ति पूजा के पक्षपाती थे किन्तु माधव, वल्लभ और निम्बार्क ने मूर्ति पूजा का खूब [illegible] प्रचार किया।

रामानंद

विष्णु के स्थान पर रामचन्द्र जी की पूजा का प्रचार स्वामी रामानन्द जी के ही समय में आरंभ हुआ था। रामचन्द्र और सीता जी क्रमशः विष्णु और लक्ष्मी जी के अवतार हैं यह कल्पना स्वामी रामानंद जी के समय में आरम्भ हुई और आगे की सदियों में तो इस प्रकार से लोगों के दिमाग में भर कर गई कि यह ज्ञात होने लगा मानो कल्पान्तर से यह बात सही है।

शंकर मत रामानुज और रामानन्द प्रभृत्ति मतों के उपदेशों और सिद्धान्तों में भेद रहा तो ऐसी बात नहीं। हां यह रहा था कि दिन पर दिन नये सम्प्रदाय उठते जा रहे थे। इस नाम के स्थान पर शंकराचार्य के अनुयाइयों के ही लगभग १०० फिरके बन चुके थे कोई उनके अद्वैतवाद को लेकर अलग पथ चला रहा था तो कोई योग मार्ग को लेकर। पंजाब में प्रकट होने वाले गुरु गोरखनाथ जी ने योग धर्म का ही प्रचार किया। रामानुजी लोगों के जैसे शंख, चक्र, गदा पद्म के चिह्न थे गोरखनाथी लोग गले में रुद्राक्ष की माला और कानों में भारी-भारी कुंडल पहनते थे। वस्त्र श्वेत और पीत की अपेक्षा गेरुए पहनते थे। यह गोरखनाथी संतों की पहचान थी। पंजाब प्रान्त में इस मत का खूब प्रचार हुआ। वास्तव में गोरखनाथ जी का पथ सिद्धमत और शिव मत का एक मिश्रित रूपान्तर था। चूंकि इस पंथ में स्त्रियों को भी गुरु मंत्र दिया जाता था अतः शिव मूर्ति के साथ पार्वती जी की भी पूजा और उपासना आरंभ हो गई। भारत में जोगियों की एक बड़ी भारी जाति गोरखनाथी साधुओं का विकृत रूप है।

गोरखनाथ

मनुष्यता के अधिक नजदीक ले जाने वाला और प्रत्येक मनुष्य के लिए कल्याण के भाव रखने वाला इन संतों में महात्मा कबीर है। कहा तो यह जाता है कि वे स्वामी रामानन्द जी के शिष्य थे किन्तु उन्होंने जो भी कुछ कहा है वह उनका निज का ज्ञान और अन्तर आत्मा की आवाज थी। उन्होंने

कबीर

वैदिक धर्म के निस्सार और व्यर्थ क्रियाओं के विरोध में स्पष्ट आवाज उठाई थी। वे एक धर्म प्रचारक की अपेक्षा समाज सुधारक अधिक थे। द्विज लोग इनसे सदैव असन्तुष्ट रहे। हीन जातियों ने उनके उपदेशों को बड़ी तत्परता से ग्रहण किया। ईश्वर के सम्बन्ध में वे अपने विचार अलंकारिक भाषा में प्रकट करते थे। वे बहुत उदार थे किन्तु व्यक्ति निर्माण के लिए वे भी दूसरे संतों की तरह चुप ही रहे।

बंगाल में चैतन्य स्वामी ने वही किया जो दक्षिण में रामानुज और मध्य भारत में रामानन्द वल्लभ प्रभृति संतों ने किया था। आपने राधा कृष्ण की पूजा का प्रचलन किया। आप गा, गा, कर और नाच कर प्रभु भक्ति का प्रचार करते थे। सारा बंगाल आपके रंग में रंगा हुआ था। शक्ति (दुर्गे)

चैतन्य

पूजा का केन्द्र बंगाल उनके प्रचार से शाक्त और वैष्णव दोनों मतों के रंग में अद्भुत प्रकार में रंग गया। इसी प्रकार का ढंग मध्य भारत में वल्लभाचार्य के प्रचार से हुआ। यहां भी लोग मन्दिरों में नाच कूद कर हरि कीर्तन करने लग गये। मन्दिरों में देवता की राधा रूप में अर्चना करने का रिवाज भी चल पड़ा। पुजारियों की भाति ही मंदिरों में पुजारिनों का दल भी बढ़ने लगा। दक्षिण में देवदासियों और ब्रज में सखियाँ मन्दिरों की शोभा बढ़ाने लगीं। यह भक्ति का प्रेम यहां तक बढ़ा कि भगवान कृष्ण ही सबके सच्चे पति माने जाने लगे। विवाहित पतियों के लिए स्त्रियां यह कहने लग गईं "आप तो मेरे शरीर के पति हैं आत्मा के पति आप नहीं। स्त्री पुरुष के नैसर्गिक प्रेम को इस से बड़ा धक्का लगा। तीर्थयात्री प्रायः सभी स्त्रियाँ अपने सत गुरुओं की सेवा में अधिकांश समय बिताने लगीं। कुछ ने शादियां करना भी बन्द कर दिया वह अपने को भगवान कृष्ण की पत्नी मानने लगीं। तन, मन, कृष्ण के अर्पण के बाद स्वार्थी साधु अपने लिए कृष्ण का प्रतिबिम्ब बताने लगे। यह यहां तक न रही कुछ पुरुष भी अपने को राधा ललिता और चन्द्रकला समझने लगे। इस तरह ब्रज में सखी सम्प्रदाय की नींव पडी।

भारत के संतों की बराबर ही मीरा का भी ऊँचा स्थान है उसके भजन और पद हृदयों में भक्ति का संचार किये बगैर नहीं रह सकते। राना कुम्भा की यह राजमहिषी भी भक्ति आवेश में अपने को कृष्ण की पत्नी का भाव रखती थी। उसने स्पष्ट कहा था "कोई कहो कुलटा कुलीन कोई कहो कलंकिनी

मीरा

किन्तु मेरे तो गिरधर गुपाल और ना कोई"। मीरा के उज्ज्वल चरित्र और कठिन तप के लिए हमारे हृदय अभिमान से भर जाते हैं किन्तु यह रोग सारे देश में गलत तरीके पर फैल रहा था और यही तत्कालीन समाज के लिए गर्त की ओर ले जाने वाला भी था।

राम और कृष्ण की सपत्नीक पूजा को स्थायित्व और अटल महत्व देने वाले दो महात्मा भारत में बहुत ऊंचे दर्जे के हुए हैं। एक सूरदास जी और दूसरे तुलसीदास जी। ये दोनों जहाँ स्वयं आदर्श थे वहाँ इनके कार्य भी हिन्दू समाज को ऊँचा उठाने वाले सिद्ध हुए हैं। यद्यपि सिख गुरुओं की भांति इन्होंने कोई रणवीरों का दल खड़ा नहीं किया फिर भी यह हिन्दू जाति को रक्षा का सूर और तुलसीदास अभेद कवच पहना गए। भक्ति के साथ ही चरित निर्माण की ओर समाज

एवं धर्म संशोधन की चर्चा करते [illegible] गई। भारत के हजारों सम्प्रदायों को एक करने के लिए तुलसीदास का प्रयत्न [illegible] है। उनका रामायण, वैष्णव, शैव, शाक्त, अद्वैतवादी और [illegible] समझा जा सकता है। उसमें जाति देश और समाज निर्माण के लिए सब कुछ है। "[illegible]" [illegible] एक हज़ार के लम्बे अर्से के बाद महात्मा तुलसीदास के [illegible] है। भक्ति के साथ [illegible], साहस, धैर्य, उत्साह और पुरुषत्व की शिक्षा [illegible] तुलसीदास [illegible] है। [illegible] की पत्नी बनने की रुचि रखने वाली स्त्रियों के लिए तुलसीदास ने [illegible] नेमा। तन मन वचन पति चरनन प्रेमा" [illegible] वैराग्य [illegible] तुलसीदास ही थे।

इस प्रकार सन् ६०० से लेकर गुरु नानक जी के समय तक [illegible] हुए हैं। जिन्होंने अपने-अपने सिद्धान्तों के [illegible] सम्प्रदाय [illegible] किए। [illegible] समय

[illegible] संत

गुरु नानक जी अवतरित हुए थे। [illegible] समाज अनेक सम्प्रदायों में बट गया था। दक्षिण भारत, [illegible] भारत और [illegible] भारत में [illegible] हजारों संत समुदाय थे।

इन सम्प्रदायों का देश और समाज पर जैसा असर [illegible] भली प्रकार समझ में आ सकता है। फिर भी यहाँ [illegible] सम्प्रदायों [illegible] उत्पन्न हुई नास्तिकता को भले ही दूर कर दिया [illegible] किन्तु [illegible] लोगों को हुई थी और न [illegible] था। [illegible], सारा देश

प्रभाव

मूर्ति पूजक हो गया था। [illegible] और हज़ारों देवताओं की मूर्तियाँ पूजी जाती थीं। [illegible] नष्ट हो चुका था और बहु देव पूजा प्रचलित हो गई थी। उन मूर्ति देवों के चमत्कार और [illegible] की विचित्र कहानियाँ भी पुजारी लोग सेवकों को सुनाते थे। इस तरह से सर्व साधारण [illegible], पराश्रयी और कुण्ठित बुद्धि हो रहा था। रोग, शोक और दुःख सब का आना जाना ([illegible]) इन देवताओं की प्रसन्नता अथवा कोप का फल समझते थे। मारण, उच्चाटन, जन्तर-मन्तर से अधिक से अधिक शक्ति का विश्वास होने लगा था। व्यक्ति और समाज का तेज, ओज, बुद्धि, साहस, शौर्य और आत्म चिन्तन तथा पौरुष नष्ट हो चुका था। पारस्परिक सहयोग, साहचर्य, समाज में नाम निशान को भी शेष न रह गये थे। सम्प्रदाय भेद, श्रेणी भेद और जाति भेद ने सारे हिन्दू समाज को छिन्न-भिन्न कर रक्खा था यद्यपि देश में उस समय ३० करोड़ मनुष्य बसते थे किन्तु समान उद्देश्य और समान महत्त्वाकांक्षाओं वाले तीस लाख तो क्या तीस हजार भी न थे।

किसी भी कार्य को वे अपने बल और बुद्धि के भरोसे पर न तो आरम्भ ही करते थे और न उसे पूरा कर लेने की अपने में सामर्थ्य ही समझते थे। व्यापार के लिए 'बाहर जाने के लिए' खेत में बीज बोने के लिए, बच्चों की शादी करने के लिए प्रायः सब ही कामों के लिए सगुन दिखाते थे या मुहूर्त पूछते थे। पहलवानों को यद्यपि कुश्ती अपने ही बल पर लड़नी पड़ती थी किन्तु उसे जीतने का विश्वास रखना पड़ता था भैरों बाबा की मेहरबानी पर। दुकानदार को सौदा दुकान में ही बेचना पड़ता था किन्तु विश्वास उसका यही रहता था कि लाभ महादेव की कृपा से ही होगा।

बात यह न थी कि सत्ता और तलवार इस समय ब्राह्मणों या साधु सन्तों के ही हाथ में हो। अव्वल तो इनमें भी शास्त्र और विद्वान लोगों का एक कम पाया जाता था किन्तु यहां पर तो पहले सिरे के मूर्ख और ढोंगी हिन्दू जाति के नेता बने बैठे थे। ज्ञान-विज्ञान और बुद्धि का तो नाम निशान भी शेष न रहा था। यह इस समय के भारत की सामाजिक और धार्मिक अवस्था है जब कि निरंकारी गुरु नानकदेव पैदा हुए थे और यह अवस्था कोई पचास वर्ष में पैदा नहीं हुई थी किन्तु यह अवस्था पूर्व एक हजार वर्ष से थी। ईसा की छठी सदी से लेकर ग्यारहवीं सदी तक ज्यों-ज्यों समय बीतता गया हिन्दू जाति की अवस्था भयानक होती गई। इस बीच में यदि कोई प्रयत्न गुण उलट फेर करने का भी हुआ तो वह केवल ईश्वर सम्बन्धी सिद्धान्तों और भक्ति के तरीकों में हेर फेर करने का हुआ। सामाजिक और नैतिक विकास को सहायता देने वाला कोई भी प्रयत्न नहीं हुआ।

इस नैतिक और ज्ञान द्वारा सामाजिक पतन से भारत देश को जो अपमान सहना पड़ा एवं जो हानि उठानी पड़ी, उसका भी थोड़ा सा जिक्र कर देना हम उचित समझते हैं।

भारतीय समाज के इस प्रकार हत-प्रभ हो जाने से विदेशी आक्रान्ताओं ने खूब लाभ उठाया। 'मर्दी में प्रयत्न करती है' की उक्ति के अनुसार स्वच्छन्दता और निर्भीकता के साथ उन्होंने भारत पर आक्रमण किये और इस देश की सम्पत्ति को लूटा। अकेले महमूद गजनवी ने ही १७ बार हमले किये और अनेक बार अनन्त सम्पत्ति यहां से ले गया। उससे पहले और बाद के सभी आक्रमणकारियों ने हिन्दुस्तान को इसी निर्दयता से लूटा था। उस लूट खसोट और नृशंसता का थोड़ा सा इतिहास देना हम जरूरी समझते हैं।

सन् ७१२ ई० में मुहम्मदबिन कासिम ने जो कि कुल २० वर्ष का एक अलहड़ नौजवान था केवल ७ हजार अरब सिपाहियों के साथ भारत पर चढ़ाई की। बिलोचिस्तान के रास्ते से सिन्ध में घुस गया। सिन्ध के दाहिर राजा ने दस हजार सवार और बीस हजार पैदलों से उसका मुकाबिला किया। किन्तु हार गया। इस हार के कई कारण थे और वे सभी कारण उस समय की सामाजिक स्थिति से सम्बन्ध रखते हैं। दाहिर एक अत्याचारी राजा था। सेना के लोगों को युद्ध शिक्षा का कोई प्रबन्ध न था। बौद्ध भिक्षुओं ने घूम-घूम कर भविष्यवाणी कर दी थी कि दाहिर हारेगा। लड़ाई के समय एक ब्राह्मण ज्योतिषी ने कासिम को बताया कि यदि अमुक मन्दिर का झंडा गिरा दिया जाय तो सारी सेना भाग जायेगी क्योंकि हिन्दू सेना समझेगी देवता कुपित हो गया है। कासिम ने ऐसा ही किया। दाहिर की सेना भाग गई और वह युद्ध में मारा गया। उस ब्राह्मण ने लालच वश गुप्त खजाने का पता भी दे दिया। इस खजाने की लूट से कासिम को १७००० मन सोने की मूर्तियाँ प्राप्त की इनमें एक मूर्ति तो ३० मन की थी। कई ऊँटों पर लादने लायक हीरा, पन्ना और मोती मानिक उसके हाथ लगे। यह सारा माल कासिम ने मय दाहिर की राजकुमारियों के अरब के खलीफा की सेवा मे भेज दिया। इसके बाद उसने नगरों और गांवों का लूटना शुरू किया और बराबर उस समय तक जुल्म करता रहा जब तक कि उसे अरब वापिस न बुला लिया गया। अपने समय में वह हजारों हिन्दुओं को मुसलमान बना गया और हजारों को मौत के घाट उतार गया। कासिम के बाद कोई बड़ा हमला लगभग २०० वर्ष तक नहीं हुआ किन्तु इसके यह माने नहीं हैं कि भारत की सभ्यता और जातियता को बाहरी लोगों से हानि नहीं पहुँच रही थी। दसवीं सदी मे मलाबार का एक हिन्दू राजा अन्धविश्वास के कारण मुसलमान हो गया। उसने रात्रि को स्वप्न देखा कि चन्द्रमा के दो टुकड़े हो गए हैं। एक मुसलमान सौदागर ने जो कि लंका से लौटा था इस स्वप्न का

अर्थ उसे बताया कि ईश्वर ने अरब में एक ऐसी विभूति पैदा की है जो संसार के लिए [illegible] साबित होगी। राजा मक्के मदीने की यात्रा को चला गया और मुसलमान हो गया। अरब से एक सरदार ने आकर उसके राज्य में अनेकों मस्जिद बनवाईं। [illegible] सौदागर और फकीर प्रचार कार्य के लिए आकर बस रहे थे और [illegible] स्त्रियों से अपने घर बसाते थे किन्तु हिन्दू समाज को [illegible]।

ग्यारहवीं सदी के आरम्भ में महमूद गजनवी ने [illegible] मण करता ही रहा। महमूद के इस प्रकार के धन लाभ से [illegible] बहुत प्रसन्न हुआ और उसने महमूद को 'अमीनुल मिल्लत' और '[illegible]' [illegible] किया। महमूद ने [illegible] भारत पर चढ़ाई करने और इस्लाम [illegible] करने [illegible] इस [illegible] को पूरा करने में उसने कोई कसर नहीं छोड़ी "आइने तारीखनुमा"[1] के [illegible] ने लिखा है कि महमूद ने लगभग दस हजार मन्दिर बर्बाद कर दिये।[2] तारीख फरिश्ता आदि के आधार पर कहा जाता है कि लाहौर के राजा जैपाल और आनन्द पाल ने आरम्भ के हमलों में महमूद से मुकाबिला किया था और अफगानिस्तान पर भी चढ़ाई की थी किन्तु वह भारी फौज रखते हुए भी हार गये। इसका कारण उनकी लड़ाई की बेतरतीबी और देश के कुछ लोगों की [illegible] है। देश में [illegible] और [illegible] थी ही नहीं, इसलिए लोग अपने निज के स्वार्थ [illegible] थे। महमूद से हार जाने के कारण राजा जयपाल अग्नि में जलकर प्रायश्चित करता है यह [illegible] विश्वास नहीं तो क्या है। आगे भी जयपाल के लड़के आनन्द पाल को भी [illegible] ने गलत ही सलाह दी। "फरिश्ते" से पता चलता है कि महमूद को भारत में किसी ने तंग किया था तो वे जाट थे उन्होंने उसे जबकि वह मथुरा का बहुत सा माल लूट कर ले जा रहा था सिन्ध के तट पर लूट लिया। महमूद बहुत बिगड़ा और उसने दुबारा पूरी तैयारी के साथ जाट और [illegible] को दंड देने के लिए चढ़ाई की।

भारत की लूट जो महमूद ने की उसके कुछ आंकड़े इतिहासकार इस प्रकार बयान करते हैं। नगर कोट के मन्दिर की लूट में उसे ७४० मन सोना ७०० मन चांदी [illegible] २००० मन चांदी और २० मन जवाहिरात प्राप्त हुए। मथुरा की लूट में १०० ऊंट चांदी की मूर्तियों और धातुओं के भरवाये गये ५ मूर्तियां निरे सोने की हाथ लगीं जिनमें से एक का वजन चार मन का था। ५३०० आदमियों को जिनमें मर्द औरत और बच्चे थे भेड बकरियों की भाँति अपने देश को हांक लेगया। "फरिश्ता" लिखता है कि थानेश्वर की अतुल लूट के साथ इतने आदमी वहां से गुलाम बनाकर गजनी लेजाये गये कि सारा गजनी हिन्दुओं से पट गया। "मुहमद अल-उदवी ने लिखा है कि महमूद मथुरा से इतने हिन्दू पकड़ कर ले गया कि फी आदमी २॥) २॥) देकर बेचा गया। यह सब गुलाम बना लिए गये। सबसे बड़ी लूट सोमनाथ के मन्दिर की बताई जाती है। इस मन्दिर में ५३ खंभे थे। जो बहुमूल्य रत्नों से जड़े हुए थे। ४० मन भारी सोने की जंजीर में घंटा लटकता रहता था। पांच गज ऊंची शिवजी की स्वर्ण मूर्ति थी। महमूद ने यह सब लूट लिया। गजनी जाकर मूर्ति का एक टुकड़ा मस्जिद की सीढ़ियों में और

१ मुख्तसिर तवारीख हिन्द सन १८८७ लाहौर सफा ४८

२ सफा ८ आइने तारीख नुमा १८८१

एक अपने महल की सीढ़ियों में लगवा दिया। मन्दिर में जो हजारों दासियाँ पुजारियों के ऐश व आराम के लिए थीं उन्हें पकड़कर अपने देश को ले गया।

सोमनाथ गजनी से बहुत दूर है। उस तक पहुँचने के लिये अनेकों पहाड़ और नदियों को पार करना पड़ता था। सबसे अधिक रेगिस्तान था जहाँ कम-कम कोस तक पानी का अभाव था। इतनी दूर तक धावे मारने के लिए महमूद के साहस पर आश्चर्य किया जा सकता है किन्तु उससे भी कहीं अधिक आश्चर्य हिन्दू जाति की दशा पर होता है कि चार छः छोटे मोटे राजाओं के सिवा किसी ने उसका मुकाबिला नहीं किया। मन्दिरों के तोड़ने पर स्त्रियों के अपहरण और धर्म भ्रष्ट करने पर पुंसत्व नहीं जागा, यह कम आश्चर्य और शर्म की बात नहीं है।

अलबरूनी ने हिन्दुओं की इस हीन दशा का वर्णन इस प्रकार किया है.—"भारत बहुत छोटे २ राज्यों में विभक्त है देश में कोई ऐसी बड़ी राजसत्ता नहीं है जिसके इशारे पर यह एक हो सके। यह आपस में लड़ते भिड़ते रहते हैं। ब्राह्मण अपने को ऊँचा बनाने और शेष समाज पर आतंक जमाए रखने की धुनि में व्यस्त हैं। जाति भेद का द्वेष इतने जोर पर है कि वैश्यों और शूद्रों को वेद पाठ करते देखकर ब्राह्मण आग बबूला हो जाते हैं और उनपर तलवार लेकर टूट पड़ते हैं। और उन्हें लेजाकर राज दरबार में पेश कर देते हैं। जहाँ उनकी जिव्हा काट ली जाती है। ब्राह्मण सब प्रकार के राज कर से मुक्त हैं। स्त्रियों को सती कर दिया जाता है। विदेश का आना जाना निषिद्ध माना जाता है। उनमें पारस्परिक सद्भावनाएं बहुत कम हैं।"

यह हालत थी भारत देश की फिर क्यों न महमूद गजनवी अपने उद्देश्य में सफल हो जाता। यहां उसने अथवा उसके पहले के आक्रान्ताओं ने जिन लोगों को मुसलमान बनाया था वे फिर कभी भी हिन्दू जाति में नहीं मिलाए गये। हालांकि उन लोगों ने अपने पुरोहितों और सजातियों से बहुतेरी प्रार्थनाएं हिन्दू होने के लिए कीं।

महमूद ने भारत के जिन हिस्सों को विजय किया था उनमें उसने अंतिम दिनों में अपने सूबेदार भी नियत कर दिये थे। लाहौर में उसने अपने बेटे सुल्तान मुहम्मद को छोड़ दिया था। 'यवनराज' वंशावली के लेखक ने उन गजनवी हाकिमों की जो कि लाहौर में बैठकर पंजाब की हकूमत करते थे इस इस प्रकार सूची दी है। १ सुल्तान महमूद २ सुल्तान मसऊद ३ अमीर मोदूद ४ मसऊद ५ अबुल अली ६ अब्दुल रसीद ७ फरुख जाद ८ इब्राहीम ६ मसऊद १० शेरजाद ११ आसलखां १२ बहराम शाह १३ खुशरोशाह १४ खुसरो। इसको सन् ११८८ में पकड़ कर शहाबुद्दी गोरी ने गजनी भेज दिया था। इस लंबे अर्से में पंजाब में इन गजनवी हाकिमों ने अपने धर्म प्रचार और लूट खसोट में कोई कसर न छोड़ी थी।

गजनवी के बाद भारत पर आक्रमण करने का नम्बर मुहम्मद गोरी का आता है। इस डेढ़ सौ वर्ष के अरसे में भारत की राजनैतिक दशा में कुछ थोड़ा सा अन्तर यह पड़ा था कि मध्यभारत में दो बड़ी सल्तनतें हिन्दुओं की—देहली और कन्नौज में बन चुकी थीं। दो सल्तनतें और भी जरा अच्छी शक्तिशाली थीं। एक गुजरात में सोलंकियों की दूसरी चित्तोड़ में शिशोदियों की। ये चारों ही आपस में नातेदार थे यदि मिलकर मुहम्मद गोरी का सामना करते तो उसके साथी चना चबैना की तरह इनके हिस्से में आते किन्तु इनमें तो आपस में कलह था। गुजरात के कुछ सोलंकी चौहानों के दरबार में रहते थे। एक दिन एक सोलंकी ने मूछों पर ताव दे दिया। पृथ्वीराज का चाचा कान्ह इसी पर आपे से बाहर हो

गया। उसने यह कहते हुए गोलाकी का सिर [illegible] नहीं दे सकता है। [illegible] घोर युद्ध हुआ और [illegible] गया। [illegible] संयोगिता के ऊपर होगई। संयोगिता [illegible] पृथ्वीराज के १०८ सरदारों में से ६४ सरदार [illegible] दिन तक हुआ था।

[illegible] कि अपने समय का पृथ्वीराज [illegible] पड़ा था। अजमेर को केवल एक फकीर [illegible] प्रकार बताई जाती है कि एक सुलतान फकीर अजमेर [illegible] उसे हटाने आया। उसने [illegible] दूंगा। बस तारागढ़ खाली कर दिया गया।

[illegible] और सोलह पृथ्वीराज [illegible] में कामान्धता के रोग [illegible]। [illegible] हजार पठान लेकर भारत पर चढ़ाई कर दी। [illegible] वड़ीके मैदान में पृथ्वीराज कैद कर लिया गया। [illegible] दिल्ली का अधिपति गौरी ने अपना एक गुलाम [illegible] गुलाम बनना पड़ा।

इसके दूसरे वर्ष मुहम्मद गौरी ने कन्नौज पर चढ़ाई की। [illegible] यह की थी कि अपनी सेना में लगभग पचास हजार मुसलमान [illegible] राठौरो से ही लडने लगे। जयचंद इस लडाई में मारा गया और भारत [illegible]। मुसलमान इतिहासकार कहते हैं कि यहां से लूट में [illegible] सोना और जवाहिरात गजनी को ले गया था। १००० मन्दिरों को उसने [illegible]। हजारों [illegible] और ब्राह्मण बालाओं को पठान अपनी लौंडी बनाने को यहां से ले गये।

महत्वाकांक्षी कुतुबुद्दीन ने हांसी, मेरठ, कोल, रणथम्भोर, ग्वालियर, कालिंजर और गुजरात की ईंट से ईंट बजादी। हजारों मन्दिरों को धूल में मिला कर उनके स्थानों पर मस्जिदें खड़ी करा दीं। लाखों नर नारियों को कत्ल कर दिया। अपने सरदारों ने भारत में चारों ओर मार काट और विनाश करने के लिए फैला दिया। जिनमें से बख्तियार ने बिहार और बंगाल को मटियामेट किया। रास्ते में काशी की भी खबर ली। बिहार में १२००० भिक्षुओं को कत्ल कराया और उनके पुस्तकालय को आग लगाकर भस्म करा दिया। इसके बाद अल्तमश ने उज्जैन पर चढ़ाई की और वहां के प्रसिद्ध मन्दिर महाकाल को मटियामेट किया।

कुतुबुद्दीन और उसके अन्य ७ उत्तराधिकारियों ने १०० वर्ष तक इसी प्रकार भारत माँ की छाती पर मूंग दली। फिर इन गुलामों के बाद खिलजी भारत के शासक हुए। इन लोगों ने भी दिल भर कर हिन्दू जाति को तंग किया और लूटा खसोटा। अलाउद्दीन खिलजी के भयानक और रोमांचकारी कारनामों को पढ़ कर आज भी मुट्ठियाँ बंध जाती हैं और शरीर गर्म हो जाता है। उसने दगा फरेब, मक्कारी

इस प्रकार के हिन्दुओं को बेबस लाचार करने की कोशिश की। उसके सम्बन्ध की चन्द घटनाएँ यहाँ दी जाती हैं—बर्नी 'तारीखे' का लेखक लिखता है कि एक दिन अलाउद्दीन ने काजी से पूछा कि काफिर हिन्दुओं के बारे में शरा के नियम का क्या सवाल है। काजी ने कहा हिन्दू तो मुसलमान के वास्ते खेती है। जिसके माँगने पर सोना मिलना चाहिए। इसको जितना भी अच्छी प्रकार से पेला जायेगा उतना ही ज्यादा रस देगा हिन्दू भी इसी प्रकृति के हैं। अगर मुसलमान थूके तो हिन्दू को तो खुशी से अपना मुँह खोल देना चाहिए। दीन में पैगम्बर साहब ने फर्माया है कि काफिरों को लूट गुलाम बनायें। हिन्दुओं का माल तो मुसलमानों के वास्ते वैसा ही है जैसा बच्चे के लिए माँ का दूध। जितना भी कोई मोमिन हिन्दुओं को कष्ट देगा उतना उसके लिए बहिश्त का रास्ता सरल होगा।" काजी के इस कथन पर अलाउद्दीन ने कहा, काजी जी शरह की बात पूरी होनी तो दूर है किन्तु मैंने अपने सैनिकों को हुक्म दे रक्खा है कि किसी हिन्दू के घर इस साल के गुजारे से ज्यादा कोई चीज मत रहने दो। दही, दूध, मूँग, चावल, घी आदि कोई भी अच्छा खाद्य पदार्थ हिन्दुओं के खाने को मत छोड़ो। सुन्दर स्त्रियाँ लड़कियों को भी उठा लाओ।' तारीख फरिश्ता ने लिखा है कि बादशाह की सख्तियों और लूट पाट ने लाखों हिन्दू इतने तबाह हो गए कि उनमें से हजारों को मुसलमानों के यहाँ मजदूरी करके अपना पेट पालना पड़ा।" एक दिन काजी ने बादशाह से कहा कि आपके राज्य में काफिर इतने तबाह हो गये हैं कि उनके स्त्री बच्चे मुसलमानों के द्वार पर आकर रोते और भीख मांगते हैं। मैं समझता हूँ। इस्लाम की इतनी बड़ी सेवा के बदले में आपको बहिश्त अवश्य ही मिलेगा।

इसी अलाउद्दीन खिलजी के कारण जैसलमेर की चौबीस सौ और चित्तौड़ की तेरह हजार राजपूतनियों को आत्मघात करके अपनी आबरू बचानी पड़ी थी। फिर भी सैकड़ों हजारों हिन्दू ललनाओं को अपने धर्म से इसके सिपाहियों द्वारा हाथ धोना पड़ा था। खुद इसने गुजरात के राना कर्ण की स्त्री को अपने घर में डाल लिया था और रानी की बेटी को अपने लड़के की स्त्री बना कर अपने दिल को शान्त किया।

३० वर्ष के अपने शासन में खिलजी लोगों ने हिन्दुओं के साथ यह सब कुछ किया। जिसके करने की उनके शैतान काजियों ने सलाह दी। एक मुसलमान लेखक मीर अब्दुल्ला ने लिखा है कि अपने दीन का प्रचार करने में अलाउद्दीन दूसरा (खलीफा) उमर साबित हुआ।

खिलजियों के बाद दिल्ली के तख्त पर तुगलक वंशी मुसलमानों की हकूमत हुई। इसके छ बादशाहों ने लगभग १०० वर्ष तक राज किया। उनमें मुहम्मद तुगलुक मिहरगुल हूण से भी भयानक नर राक्षस था। कहा जाता है कि मिहरगुल ने अपनी प्रसन्नता के लिए हाथियों को पहाड़ों से धकेलवाया था किन्तु मुहम्मद तुगलक ने तो मनुष्यों का शिकार खेला था एक दिन उसने हजारों स्त्री पुरुष और बच्चों को एक बाड़े में घिरवाकर विभिन्न हथियारों से शिकार खेली। नाक, कान कटवा लेने आँख निकलवा लेने और सिर में लोहे की कीलें ठोक देने में उसे आनन्द आता था।

फीरोजशाह तुगलक ने जब नगरकोट को ध्वंस किया तो वहा के हिन्दुओं के गले में गौ मांस के तोबड़े लटकवा दिए और फिर उन्हें बाजार घुमाकर वही मांस खिलाया। जिन्होंने नहीं खाया उनके सिर कटवाये। एक मूर्तिपूजक ब्राह्मण को जिन्दा जलवा दिया।

इस तुगलक खान्दान के समय में ही तैमूर ने भारत पर आक्रमण किया। १३९८ ई. में ९२ हजार तातारी भेड़ियों को लेकर वह भारत में घुस आया। नगरों को जलाता हुआ कत्लेआम करता हुआ

वह भटनेर पहुँचा। यहां उसने एक घंटे में दस हजार आदमियों का कत्ल कराया। यहां से दिल्ली की ओर बढ़ा। रास्ते में हजारों स्त्री पुरुषों को भेड़ बकरी की भांति पकड़ते [illegible] चला गया। दिल्ली पहुंचते पहुँचते एक लाख कैदी उसके साथ हो गये। इन सारे कैदी [illegible] प्रत्येक आदमी को कत्ल करा दिया। [illegible] तैमूर प्रसन्न था। दिल्ली मे घुस कर नगर में आग लगा देने का हुक्म दे दिया। [illegible] लूट पाट और कत्लेआम के बीच दिल्ली में [illegible] आदमियों की जानें इस तरह से ली गईं। इसके बाद तैमूर ने [illegible] जामा मस्जिद में नमाज पढी और फिर खुशी में भरा [illegible] सुन्दरियों का [illegible] किया। [illegible] और तैमूर ने कूच किया। यहां पर पचास हजार स्त्री पुरुषों का कत्ल किया [illegible] यहा से हरिद्वार जाकर [illegible] किया। [illegible] हरिद्वार में [illegible] भेड़ियों की भाति घुस कर कत्ल करने लगे।

इस तरह से महीनों हिन्दुस्तान में [illegible] तैमूर [illegible] और अनेक आक्रमणकारी रोग छोड़ कर [illegible] चला गया। [illegible] उसने अपने एक लाख से ऊपर सैनिकों का आठ साल की [illegible]। फिर भी [illegible] धन का अनुमान नहीं लगा सका।

तैमूर के जाने के बाद तुगलक खान्दान [illegible] और सैयद खान्दान भारत के रंग मंच पर आया। सैयदों का प्रभाव [illegible] था। [illegible] उनके समय में देश में अनेकों छोटे-छोटे राज्य बन गये और ३७ वर्ष के बाद इनके हाथ से भी दिल्ली निकल गई और [illegible] के हाथ में आई। इब्राहीम लोदी इस खान्दान का पहला बादशाह था। उसके शासन में भी [illegible] हिन्दुओं के साथ जारी रहे। मन्दिर और मूर्तियाँ तो तोड़े ही जाते थे किन्तु तीर्थ यात्रा करना भी हिन्दुओं का [illegible] था। "इसके समय में एक ब्राह्मण की जीभ केवल इतने से अपराध पर निकलवा ली गई थी कि उसने हिन्दु धर्म को ससार के किसी भी धर्म से घटिया न होने का उपदेश दिया था।

लोदियों के समय में तैमूर के वंशज बाबर ने भारत पर आक्रमण किया। [illegible] बाबर एक दयालु मुसलमान था किन्तु हिन्दुओं के लिये तो उसने भी [illegible] कराया। उसने अपने हाथ से लिखी हुई किताब तुजुक बाबरी में लिखा है—'लड़ाई में जो हिन्दू [illegible] लगने थे उन्हें मेरे तम्बू के सामने कत्ल किया जाता था एक दिन तो इतने कत्ल हुए कि खून और लाशों के मारे तीन बार जगह बदलनी पड़ी।"

वास्तव में बात तो यह थी कि आक्रान्ता मुसलमानों ने हिन्दुओं को गाजर मूली समझ रक्खा था। गुलबर्गा के छोटे से अमीर ने तैलंग के राजा की लड़की को उसकी जीभ कटवा कर जीता अग्नि में भून डाला था और पांच लाख हिन्दुओ के सिर गर्दन से जुदा कर दिये गए।

इन कत्लों और हत्याकांडों के बाद ये मुसलमान लुटेरे और शासक पश्चाताप नहीं करते थे किन्तु उत्सव मानते थे। जिस दिन भारी कत्ल होते थे उस दिन विशेष रूप से यह लोग शराब पीते और नाच रंग कराते।

यह सब कुछ हुआ और पूरे एक हजार वर्ष—उस समय तक हुआ जब तक कि पंजाब में गुरुओं के लाडले सिखों और दक्षिण में संत रामदास जी के शिष्य वीर शिवाजी ने तलवार न पकड़ ली। किन्तु

इस एक हजार वर्षों में प्रायः सारा भारत मुसलमानों की हुकूमत में पहुँच चुका था। हिमालय की तरैटी के और राजस्थान रेगीस्तान के कुछ एक राजपूतों को छोड़ कर कहीं भी हिन्दू शासक शेष न थे। और शेष रहने वाले भी इन मुसलमान शासकों के हाथ के हथियार ही साबित हो रहे थे।

आठवीं सदी में सिन्ध, ११ वीं सदी में पंजाब, १३ वीं सदी में दिल्ली, गवालियर और चौदहवीं सदी में कश्मीर और गुजरात हिन्दुओं के हाथ से निकल गये। बिहार, बंगाल और दक्षिण भारत बारहवीं और तेरहवीं सदी में ही मुसलमानों के हाथ पहुँच गये थे। उड़ीसा ने एक लम्बे अर्से तक अपने को बचाये रक्खा किन्तु मुगल हुकूमत उसे भी निगल गई। हां कहीं-कहीं, छोटे-छोटे राजा और जागीरदार प्रत्येक प्रांत में अपना जीवन निर्वाह कर रहे थे किन्तु उनकी स्थिति रखैल भट्टी से अधिक कहीं भी नहीं रही जान पड़ती जिसने अपनी लड़की देकर कुछ समय के लिए अपने प्राणों और राज्य की रक्षा कर ली थी। इन शेष राजों पर भी कोई अभिमान नहीं किया जा सकता।

यह हालत तो हो गई थी उस समय राजनैतिक और धार्मिक भारत की। अब थोड़ा सा प्रकाश उस समय के भारत की आर्थिक अवस्था पर और डालना चाहते हैं।

आर्थिक अवस्था

एक समय था कि भारत का व्यापार अरब, ईरान और चीन तक होता था। महाराजा कनिष्क के समय में कश्मीर की पशम अरब तक पहुँचती थी। और भी कच्चा माल विदेशों में यहां के व्यापारी ले जाते थे और दूसरे देशों की भी अनेकों चीजें यहां लाते थे। यह व्यापार जल, थल दोनों ही मार्गों से होता था। बड़ी-बड़ी नावें इस देश की नदियों और भारत अरब के बीच के सागर में चलती थीं। किन्तु बौद्ध धर्म के मटियामेट करने की धुनि में यहां के धर्माचार्यों ने विदेश गमन पर भी रोक लगा दी। समुद्र यात्रा और विदेश गमन करने वालों को जाति से बाहर निकाल देने का भयंकर दण्ड दिया जाने लगा। इस तरह से विदेशों के साथ व्यापार करने की प्रणाली तो कतई मिट गई। इस प्रतिबन्ध से कला और कारीगरी को भी धक्का लगा। विदेशगमन निषेध के साथ ही अन्तर-प्रान्तीय यातायात और व्यापार में भी शिथिलता आ गई क्योंकि खाने पीने और छूतछात के कड़े नियमों ने लोगों को इस बात के लिए बाध्य कर दिया कि वे अपने ही प्रांत और सजातियों से आगे कोई संबंध न रक्खें। व्यापार का तो इस तरह से चौपट हो गया।

खेती के काम को मुश्किल बना दिया। विदेशी आक्रान्ताओं और हाकिमों ने, किसानों की खड़ी हुई फसलों में होकर लश्कर जा रहे हैं। बर्बाद कर रहे हैं और आवश्यकता हुई तो किसानों को बेगार में पकड़ कर ले जा रहे हैं। इस तरह से खेती से भला क्या बचत हो सकती थी। किसान बेचारों को साथ में तलवार और गांव में एक ऊँचे मँच पर नगाड़ा रखना पड़ता था इस तरह से वे कुछ कमा पाते थे। इस कमाई में से भी लूट पाट होती रहती थी और जजिया देना पड़ता था वह अलग था।

देश का पुरातन संचित धन जो अशोक कनिष्क और गुप्त राजाओं के जमाने से पहिले का लोगों के पास था वह लुट कर गजनी काबुल और कन्धार पहुँच चुका था। या वह भारत के मुसलमान शासकों और उनके सिपाहियों के घरों में संचित हो रहा था। हिन्दुओं की तबाही का इससे और क्या बड़ा दृश्य उस समय का हो सकता है कि हजारों हिन्दू स्त्री और बच्चे मुसलमानों के घरों में जाकर या तो मजदूरी करते थे या उनके द्वारों पर भीख मांगने को विवश होते थे। इस भूख प्यास, लूट मार और कत्लों की

भरमार से देश की भारी आबादी घट गई थी। [illegible] भारत में कुल २० करोड़ की आबादी थी। जो [illegible] थी। जिसमें चार करोड़ के लगभग मुसलमान थे।[1]

यहाँ का वैदेशिक व्यापार तो प्रायः [illegible] किनारे बहुत सी मण्डियाँ बन गई थीं। "कम्बात" [illegible] कोलम से नलोर तक फैला हुआ है। [illegible] हैं, जिससे इराक, खुरासान और यूरोप के लिए [illegible] कारीगरी की चीजें आ जाती हैं।" [illegible] आते हैं जिनकी कीमत लगभग [illegible]।"

इस तरह से हमारा देश [illegible] होने के कारण दीनहीन अवस्था को प्राप्त हो गया था। [illegible] निराशा और हाय-हाय का वातावरण फैला हुआ था। [illegible] में बढ़ रहे थे जो समाज के [illegible] परमात्मा ने निरंकारी नानक को संसार में भेजा।

इस समय का चित्र [illegible] मानवता के स्थान पर पशुता, [illegible] प्रपंच, दया और दयालुता के स्थान पर [illegible]।"

उस समय न यहाँ राष्ट्रीयता थी और न [illegible] न किसी को यहाँ किसी के प्रति सहानुभूति थी और न [illegible]। सब को केवल अपनी-अपनी चिन्ता थी सो भी [illegible] और निराशा के साथ समाज अनेकों जाति, उपजाति, शाखा और [illegible]। [illegible] जाति और शाखा दूसरी जाति और शाखा को अपने से नीच [illegible] किसी में भी ऐक्य और सामंजस्य न था। इस तरह से हिन्दू [illegible]।"

स्वयं गुरु नानक देव जी ने हिन्दू जाति की इस हीन दशा को [illegible] था—"हे परमात्मा तुमने खुरासान पर तो कृपा की और भारत पर कोप किया। [illegible] यम रूपी यवनों को यहाँ अत्याचार करने के लिए भेज दिया, भगवान [illegible] हिन्दू काफी पीटे जा चुके हैं। स्वामी आप तो सभी के हैं।"[2]

स्त्रियों की दुर्दशा को देखकर गुरु जी ने हृदय-द्रावक शब्दों में कहा था—"जिन देवियों के सिर के केश पट्टियों के रूप में सँवारे हुए थे। जिनकी माँग सिन्दूर से शोभित होती थी। आज वह केश मूँड़े जा रहे हैं। और उनके मुँह में धूल झोंकी जाती है।

जो महलों में आनन्द करती थी आज उनके बैठने के लिए जगह नहीं है।

व्याह के समय जो पालकियों में सवार होकर आई थीं। जिनके खाने के लिए अनेक प्रकार के

१ तुजुक जहाँगीर के आधार पर।

२ खुरासान खसमाना किया हिन्दुस्तान डराया। आदि पद।

स्वादिष्ट भोजन, सोने के लिए सुन्दर पलंग, और पहनने के लिए उत्तम उत्तम वस्त्र और आभूषण मिले थे। आज वही धन और यौवन उनके वैरी हो रहे हैं। उनके पैरों में बेड़ियाँ पड़ी हुई हैं। सतीत्व नष्ट किए जा रहे हैं। मारे मारे जा रहे हैं। रोटी से भी मोहताज हैं।"¹

इसके साथ एक यह भी नियम बताया जाता है कि "जिन लोगों पर अत्याचार होता है वे परस्पर मिल जाते हैं, क्योंकि अत्याचार में मिलाने की अद्भुत शक्ति है। यही नहीं पीड़ित वर्ग या समाज पर दर्शक भी सहानुभूति प्रकट करने लगते हैं।" किन्तु उन एक हजार वर्षों के लंबे समय में भारी से भारी और हृदय विदारक अत्याचार हिन्दुओं पर हुए किन्तु उन्होंने एकता के लिए करवट तक नहीं बदली, मुसलमान पठान अपनी धर्मान्धता एवं नीति और आनन्द विलास के कारण आपस में ही लड़ भिड़ कर परिचिन्तित अवश्य हो रहे थे किन्तु हिन्दू बिल्कुल निश्चेष्ट थे। उनके लिए कई सुअवसर आए किन्तु उन्होंने उससे लाभ नहीं उठाया। इसका कारण यह था कि जो उपदेश मिलते थे उनमें इहलोक के लिए कोई महत्वाकांक्षा थी ही नहीं। स्वराज्य और पर राज्य के बीच जो अन्तर होता है उसके सम्बन्ध में वे कभी एक क्षण तक भी नहीं विचारते थे। इसीलिए न उनमें एक देशीयता थी और न एक जातीयता। उनके लिए उनके प्रान्त और जिले ही स्वदेश और अपने घर ही घर थे। समस्त भारत और भारतीयों के प्रति कोई भी कुछ जिम्मेदारी महसूस नहीं करता था। यही कारण था कि भारत की राज्यश्री को लावारिस समझकर दूसरे लोग भोग रहे थे और इनके स्त्री बच्चों को उनकी दया पर जीवित रहने और उनके क्रोध पर प्राण गँवाने का अधिकार मिला हुआ था। इस हालत को भी यहाँ के हिन्दू धर्मप्रिय लोगों की हालत समझते थे। अपने को अब भी एक दूसरे से ऊँचा नीचा समझते हुए अहंकार का जीवन बिताते थे।

गुरु नानक आये और उन्होंने दुःख भरे हृदय से उनकी दशा का अनुभव किया और परमपिता परमात्मा से उनके कल्याण के लिए प्रार्थना की। साथ ही उन गलत ख्यालातों को भी दूर किया जिनके कारण हिन्दू समाज भीतर ही भीतर घुना जा रहा था।

१. जिन सिर सोहें पट्टिया मांगी पायें सिंदूर। पद के अनुसार।

द्वितीय अध्याय

सिख सम्प्रदायान्तर्गत कुछ प्रमुख जातियाँ और उनका परिचय

ऐसी हीन थी उस समय हिन्दू भारत की अवस्था। जैसा कि पहिले अध्याय में बताया गया है। गुरु नानक देव जी तथा अन्य गुरु महानुभावों ने भी इसी हिन्दू भारत में जन्म लिया था कौन? जानता था कि गुरुओं के के प्रताप से उनके शिष्यों का कोई ऐसा गिरोह भी खड़ा हो जायगा जो भारत माता के सिर को ऊँचा करने में अपना सर्वस्व बलिदान करने को तयार होगा। वास्तव में सिखों ने पिछली सदियों में वे कारनामे करके दिखाए हैं जो गुरुओं से पिछले एक हजार के वर्ष के हिन्दू इतिहास में खोजने पर भी नहीं मिलते। तुर्क ईरानी और पठान जो भारत को भेड़ बकरियों का मुल्क समझते थे। गौरवशाली सिखों ने उनका भारत आगमन ही नहीं रोका किन्तु स्वदेश में भी वे इन रण-सिंहों के दर्प से भयभीत रहने लगे।

सिखों की वीरता और रणनैपुण्य भारत ही नहीं उससे बाहर के देशों में भी आज इतिहास के महत्व को बढ़ाता है। प्रत्येक व्यक्ति जो सिखों की बहादुराना लड़ाइयों और कभी न झुकने वाले स्वभाव की कहानियों को पढ़ता है तो अनायास ही उसके हृदय में सवाल होता है। "आखिर ये महावीर हैं कौन? एक शब्द में—और सबसे अच्छा—उत्तर तो यही है कि गुरुनानक से गुरु तेग बहादुर लों ने—एकेश्वरवाद की भक्ति में अनुप्राणित किये हुए और गुरु गोविन्दसिंह जी द्वारा कायाकल्प का अमृत पिलाये हुए शिष्यों का समूह ही सिख हैं। परन्तु इतिहास प्रेमी इससे भी कुछ ज्यादा जानना चाहते हैं। इसी हेतु से कनिंघम जैसे प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता को सिख-इतिहास में "पंजाब के अधिवासी गण और उनके सम्प्रदाय एवं मतों पर एक स्वतन्त्र अध्याय लिखना पड़ा। पृष्ठ पेषण के भय से हम केवल उन्हीं पजाबी—अधिवासियों का परिचय देना चाहते है जो गुरुओं के मतज्ञान और एकेश्वरवाद की भक्ति से प्रभावित होकर उनके शिष्य-समाज में दाखिल हुए और जिन्होंने दसवें पातशाह गुरु गोविंद सिंह की इस घोषणा को पूरा किया कि "जो मैं गुरु गोविन्द कहाऊँ, तो बाजों से चिड़ी लड़ाऊँ॥

खत्री, वेदी, सोढी आदि

दसों पातशाह जिस समूह में पैदा हुए थे वह खत्री के नाम से अभिहित होता है। नस्ल के लिहाज से खत्री आर्य्य हैं। संसार में रूपरंग चेहरे की बनावट और प्रकृति जन्य स्वभाव के अनुसार

पाच नस्लें मानी जाती हैं। आर्य, द्रवि[illegible], मंगोलि[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] प्राप्त करने और ऊँचा [illegible] आदर्श जीवन-बिताने के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आर्य [illegible] है। राम, कृष्ण, [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] महा-पुरुषों को जन्म देने का सौभाग्य आर्य नस्ल [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। वह उनके नाम पर [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सबसे पहला गौरव इस बात में प्राप्त होता है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जाति के लिए तो यह मुल्क [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की सभ्यता पंजाब में ही फूली फली थी। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] धिकारी पंजाब में ही मिलते हैं। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कि भगवान राम और कृष्ण [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] को भगवान राम या कृष्ण के वंशज बताते हैं। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] बात का है कि वे राम और कृष्ण आर्य [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अभिमान था। राम ने कहा था—

[illegible]

इसी प्रकार भगवान कृष्ण ने भी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] विषमे समुपस्थितम्। अनार्य जुष्टम् [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] स्थिति में तुझे यह क्या अनार्यों की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] 'विचित्रनाटक' में लिखा है कि हम [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] राम की संतान में से हैं। विचित्र नाटक [illegible] [illegible] [illegible] —

"ताते सूरज [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥
जो तिनके कहि नाम सुनाऊ। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥१६॥
तिनके वंश बिखे रघु भयो। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥
ताते पुत्र होत भये अज [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] ॥२०॥
जब तिन भेष जोग को लया। [illegible] [illegible] [illegible] दयो ॥
होत भयो यहि महा धनुर धर। तीन [illegible] [illegible] [illegible] ॥२१॥
प्रथम भयो तेहि राम कुमारा। भरत [illegible] [illegible] [illegible]।
बहुत काल तिन राज कमायो। काल पाय सुरपुरहि सिधायो ॥२२॥
सीअ सुत बहुरि भये दोउ राजा। राज पाट उन ही को छाजा ॥
मद्र देस स रजा बरी जब। भांति भांति के जग कीये तब ॥२३॥
तिही तिनै बाये दुइ पुत्रा। एक कसूर दुतीय लहूरा ॥
अधकपुरी ते दोऊ बिराजी। निरख लंक अमरावति लाजी ॥२४॥
बहुत काल तिन राज कमायो। जाण काल ते अंत फसाओ।
तिनते पुत्र पौत्र जो भये। राज करत इहि जग को गये ॥२५॥
कहाँ लगे ते बरन सुनाऊं। तिनके नाम न सख्या पाऊं ॥
होत चहुं जुग में जो आये। तिनके नाम न जान गनाए ॥२६॥

जो मम तो किरपा बल पाऊ । नाम जना मम भाग गुनाऊ ॥
शाह शेर भये बली बड़ारा । शाह राव जिन नगर निकारा ॥२७॥
भाज मरोड़ देश से गये । तहाँ भूप जा विपदग्रस्त भये ॥
तिहके पुत्र भयो जोह धामा । मोतीराम धरा तेहि नामा ॥२८॥
तज सनौढ़ ता दिन मे सोधा । परम पवित्र पुरुष जो शोधा ॥
ताते पुत्र पौत्र हुइ आए । ते सोढ़ी सम जगत कहाये ।२९॥

“विचित्र नाटक” के इस पद का भाव यही है जो हमने ऊपर लिख दिया है। कुछ विदेशी इतिहासकारों ने खत्रियों के आर्य नस्ल से होने में सन्देह किया था किन्तु जब सूरत शक्ल और चेहरे की बनावट को देखकर नस्लों की परीक्षा का विज्ञान सामने आया तो उन्हें स्पष्ट शब्दों में मानना पड़ा कि खत्री आर्य नस्ल से हैं। मिस्टर ई० सी० हेवल ने “हिस्ट्री आफ आर्यन रूल इन इंडिया” में लिखा है —“Enthonographic investigations show thet Indo Aryan type described in the Hindu epics tale, fair complexioned, long needed race, with narrow prominent noses broad shoulders, long arms, thin waists like a lion and thin legs like a deer is now (as it was in the earliest times) most confined to Kashmere the Punjab & Rajputana & represented by the khatris Jats & Rajputs

अर्थात्—“मानवतत्व विज्ञान की खोज बतलाती है कि भारतीय आर्य जाति जिसको कि हिन्दू ग्रन्थों में लंबे कद, सुन्दर चेहरा पतली लंबी नाक, चौड़े कन्धे लंबी भुजाएं, शेर की सी कमर और हिरन की सी पतली टांगों वाली जाति बतलाया है। जैसी कि वह प्राचीन समय में थी। आधुनिक समय में पंजाब, राजपूताना, और काश्मीर में, खत्री, जाट और राजपूत जातियों के नाम से पुकारी जाती है।” आगे यही महाशय फिर लिखते हैं—“The Indo Aryan type, occupying the Punjab, Rajputana & Kashmere & having its characteristic members the Rajput Khatris & Jats. This type approaches most closely to that ascribed to the traditional Aryan colonists of India. The statore is mostly tell, complexian fair, eyes dark, hair on face plentiful, head long, nose narrow and prominent, but not especially long.”

अर्थात्, भारतीय आर्य जाति जिसके कि वंशधर आज राजपूत, खत्री और जाट हैं, पंजाब, राजपूताना और काश्मीर में बसी हुई है। यह जाति उस प्राचीन आर्य जाति से बहुत मिलती जुलती है जो भारत में आकर बसी थी। इसकी शारीरिक बनावट अधिकतर लबी, सुन्दर चेहरा, चेहरे पर पर्याप्त बाल। लम्बा सिर और ऊंची पतली नाक जो अधिक लम्बी नहीं होती है।

भारतीय इतिहास की रूप रेखा के लेखक और इतिहास पर मंगलाप्रसाद पुरस्कार के विजेता जयचन्द्र विद्यालंकार ने लिखा है,—“आर्यवर्तीय आर्यों का सबसे अच्छा निर्विवाद नमूना पंजाब के अरोड़े, खत्री, ब्राह्मण, जाट, अराईं आदि हैं। औसत से अधिक डील, गोरा या गेहुँआ रङ्ग, काली आँखे दीर्घ कपाल ऊँचा माथा, लंबा नुकीला सम चेहरा, सीधी नुकीली और समुचित लंबी नाक उनके मुख्य लक्षण हैं।

नस्ल निर्णय के पश्चात हमें यह देखना है कि [illegible] से हैं। पौराणिक लोग उन्हें क्षत्रिय स्वीकार करने के लिए [illegible] कि पौराणिक वर्ण व्यवस्था जोकि जैन बौद्धों के पश्चात् भारत में [illegible] तक प्रचलित हुई है खत्री उनमें से किसी भी वर्ण में [illegible] भी यही बात कही जा सकती है। [illegible] प्राचीन वैदिक [illegible] ऐतिहासिक सदियों में भी उनके पास राज सत्ता थी। [illegible] उनका सामना किया था। ईसा की छठी सदी से अठारहवीं सदी तक [illegible] कि जातियाँ खुद अपने पूर्वजों के इतिहास [illegible] की अपने-पूर्व इतिहास के सम्बन्ध में कोई [illegible] कहा जाय कि जिन क्षत्रियों ने मिश्र, अरसीनिया तक जाकर [illegible] उन्हीं का वंशज लोग आप हैं तो उन्हें अनायास ही [illegible]।

हमारी अपनी मति से खत्री उन क्षत्रिय [illegible] भारत जाति में बनने वाले किसी भी जत्थे में शामिल नहीं [illegible] शासक पद्धतियों एवं अन्य राजनैतिक भेदों के कारण भारत में [illegible] होने के बाद एक समूह मजात तंत्र के उद्देश्यों के [illegible] बन जाता है। दूसरा दक्षिण पश्चिम भारत में, महाराष्ट्र ([illegible]) [illegible] महाराष्ट्री अथवा मराठों का बन जाता है। तीसरा समूह [illegible] ([illegible])—शासन में राजा के अस्तित्व को अस्वीकृत करने वाला—[illegible] और फिर [illegible] कहलाने लगता है। सबसे अन्तिम समूह बनता है राजपूतों का। [illegible] और भी समूह बने। अन्त में जो शेष रहे वे ही क्षत्रिय हैं। [illegible] करते हैं कि जब राजपूत, जाट, मराठा आदि भी क्षत्रिय हैं [illegible] वर्णन से इस प्रश्न का हल हो जाता है। [illegible] के कारण खत्रिय भी कहलाने लगे हैं किसी एक ही [illegible] शामिल न [illegible]। चन्द्रवंशी, सूर्यवंशी और नागवंशी तीनों ही वंशों के कुल शामिल हैं। उदाहरण के लिए [illegible] को लीजिए, "याद्वा. कुकुरा भोजा. सर्वे चान्धक कृष्णाय" के अनुसार चन्द्रवंशी खत्री [illegible]। सोढी और बेदी उन सूर्यवंशियों में से हैं। जो क्षुद्रक कहलाते थे और अन्तर्वेद एवं सनाढ्य देश में रहने के कारण उन नामों से प्रसिद्ध हुए। हमारे ऐसा कहने से सोढी और वेदियों की वंशावली रामचन्द्र जी से मिलने में भी अन्तर नहीं डालती है क्योंकि पुराणों में जो वंशावली सूर्यवंशियों की दी हुई है उनमें राजा क्षुद्रक का नाम रामचन्द्र जी से ५७ वीं पीढी पर आता है। क्षत्रिय से खत्री नाम क्यों पड़ गया? इस प्रश्न का हल भी लोगों ने अनेक अटकलों से किया है। किसी ने कहा है पंजाब में नागा (नाग लोगों की) भाषा का जब प्रचार था तब क्ष के स्थान पर ख होगया क्योंकि उनकी उच्चारण शैली इसी प्रकार की थी किन्तु यह खयाल हमें जँचता नहीं है। क्ष के स्थान पर नाग लोग स तो बोल सकते थे क्योंकि उनके पड़ोसी सत्रप कहते थे। और नागों की भाषा में क्षुद्रक का सुद्रक और सोढ या सोढी तो हो सकता है यूनानियों ने भी क्षुद्रकों को OXYDRAKA एवं OXYDRAKAI (ओक्सेडरा) लिखा है। ((ई 1) का प्रयोग करने की तो आदत जान पड़ती है क्यों शिवि को भी उन्होंने शिबोई लिखा है।) कुछ का कहना है कि स्वात नाम के

राजपूतों ने वनियानी से शादी करली थी। इसलिए ये खत्री कहलाए और तभी से व्यापार करने लग गये हैं। एक कल्पना यह थी कि बाबर के समय में और आगे के मुगल शासन में अनेक अच्छे ओहदों पर काम करने के कारण राज्य से सम्बद्ध होने पर रजिस्टरों में खत्री लिखे गये क्योंकि अरबी या फारसी वर्णमाला में क्ष नहीं होता। यह कल्पना कुछ जँचती भी है किन्तु हमारा अपना खयाल इस सम्बन्ध में यह है कि बौद्ध काल में पाली और प्राकृतिक सामग्री का प्रचार होने से ये क्षत्रिय की बजाय खत्रिय कहलाए और अतः क्षत्रिय शुद्ध बोलने वाले खत्री कहने लगे। बौद्ध साहित्य में महात्मा बुद्ध के लिए भी कई जगह खत्रिय पुत्र शब्द आता है जिसके कि माने क्षत्रिय पुत्र के होते हैं।

परशुराम की आतंककारी कथा का प्रयोग इतना भारी होने लगा है कि प्रत्येक ऐसी जात के लिए जो राजपूत नहीं है यही कल्पना फैलाई गई कि ये निःक्षत्री किये हुये लोगों में से हैं। खत्रियों की वकालत करने वाले लोग भी यही कहते हैं। यह तो एक वाहियात और आत्म सम्मान को ठेस पहुँचाने वाली कल्पना है और जब कि जो लोग अपने को रामचन्द्र या लवकुश का वंशज होने का खयाल करते हों तो इनके सम्बन्ध में तो यह कल्पना गलत है कारण कि रामचन्द्र के वंश के लोगों से परशुराम की कभी भी कोई लड़ाई नहीं हुई। उल्टा परशुराम ही रामचन्द्र को अपने से श्रेष्ठ मानकर मिथिलापुरी से चले गये थे। जहाँ कि वह शिव धनुष के ऊपर झगड़ा करने आये थे।

अरोड़े लोग खत्रियों से भिन्न नहीं हैं और पंजाब के बाहर के लोग भी भेद नहीं समझते। धन्धा अरोड़ों ने भी प्रायः व्यापारिक ही ले लिया है हालांकि उत्तरार्ध अरोड़े देहातों में खेती भी करते हैं। हमारी धारणा के अनुसार इनमें भी नाग, तक्षक चन्द्र और सूरजवंशी लोग शामिल हैं। विवाह संस्कार के समय जो परिचय इनके पुरोहित देते हैं उनके अनुसार यह कश्यप गोत्र के हैं। ऋषि कश्यप सूर्य के पिता थे अतः यह सूर्यवंशी सिद्ध होते हैं। अरोड़ों के जो अब तक के इतिहास निकले हैं उनके अनुसार इनका ख्याल है कि परशुराम से अभयदान पाये हुए उरट अथवा अरट नाम के राजा ने सिंध में अड़ोर (अलोर) नगर बसाया। उरट के वंशज एवं साथी ही अरोड़ा हैं। भविष्य पुराण के जिस श्लोक के अनुसार अरोड़ों ने अपने को उरट का वंशज होने की धारणा बनाई वह इस प्रकार है —"नाग वंशोद्भवा द्विव्या। क्षत्रियास्य सुताह्वता। अस्य वंशोद्भवास्त्वान्ये तथा उरट वंश सम्भवाः॥" किन्तु यह आश्चर्य की बात है कि उरट के वंशज आपस में ही शादी भी करते हैं। यदि ये एक ही पुरुष की सन्तान हैं तो मनु के विधान के विरुद्ध ऐसा क्यों करते हैं। वास्तव में बात यह है कि पंजाब और सिन्ध में ईस्वी सन् पूर्व की सदियों में अनेकों ऐसे खान्दान थे जो अरट अर्थात् बिना राजा की प्रजा कहलाते थे। सारा न्याय नीति और शासन का काम पंचायत द्वारा इन कुल राज्यों में सम्पन्न होता था। सिकन्दर को भी ऐसे लोगों से लड़ना पड़ा था। आगे की सदियों में इनमें से कुछ लोग सजात तन्त्री हो गये और वे जाटों में शामिल हो गए। जाटों में अरोड़ा एक गोत्र भी है। और भी अनेक गोत्र अरोड़ों के जाटों में मिलते हैं कुछ अराट (अराष्ट्र) अन्य जातियों में भी चले गये। सिकन्दर के साथी और यूनान के महान् इतिहास लेखक प्लिनी ने अरोड़ों को अपने इतिहास में अरोट्टूरी ओरेट्टरी लिखा है। यह केवल भाषान्तर है। प्लिनी के कथनानुसार इन लोगों से सिकन्दर का सामना रावी नदी के किनारे पड़ा था। कहा जाता है कि उस समय लड़ाई के मैदान में १० हाथी और सैंकड़ों घोड़े और रथों की सेना लेकर ये मैदान में उतरे थे।

अब से ४०-४५ वर्ष पहिले अरोड़ों में नाता (पुनर्विवाह) की रिवाज न थी किन्तु इनकी जातीय सभा के प्रयत्न से अब यह रिवाज चल निकली है। ऐसा ही खत्री लोगों में भी एक समय था। इस जाति

नस्ल निर्णय के पश्चात हमें यह देखना है कि खत्री प्रचलित वर्णों में से किस वर्ण के हैं। पौराणिक लोग उन्हें क्षत्रिय स्वीकार करने के लिए तय्यार नहीं हैं किन्तु यह भी सही है कि पौराणिक वर्ण व्यवस्था जोकि जैन बौद्धों के पश्चात् भारत में ईस्वी पूर्व ५०० वर्ष से हुई। सन १२०० तक कायम हुई है खत्री उनमें से किसी भी वर्ण में दीक्षित नहीं हुए हैं। जाट, मराठों और राजपूतों के लिए भी यही बात कही जा सकती है। हाँ वे प्राचीन वैदिक वर्ण व्यवस्था के अनुसार क्षत्रिय हैं। ईसा सन की प्रारम्भिक सदियों में भी उनके पास राज सत्ता थी। सिकन्दर के भारत में आने पर उन्हें कई स्थानों से उसका सामना किया था। ईसा की छठी सदी से अठारहवीं सदी तक भारत में इतने जोर का अशान्तिमय रहा कि जातियाँ खुद अपने पूर्वजों के इतिहास और पन से अनभिज्ञ होगई यही कारण है कि खत्री समाज भी अपने-पूर्व इतिहास के सम्बन्ध में कोई सही जानकारी नहीं रखते हैं। यदि उनसे कहा जाय कि जिन क्षत्रियों ने मिश्र, अरमीनिया तक जाकर अपने राज्य और उपनिवेश स्थापित किये थे उन्हीं का अवशेष भाग आप हैं तो उन्हें अनायास ही विश्वास न होगा।

हमारी अपनी मति में खत्री उन क्षत्रियों का एक अवशिष्ट समूह है जो अलग-अलग शासक जातियों में बनने वाले किसी भी जत्थे में शामिल नहीं हुए। महाभारत के समय से हम देखते हैं कि शासन पद्धतियों एवं अन्य राजनैतिक भेदों के कारण भारत में अनेक समुदाय क्षत्रियों के बने हैं। ऐसा जान पड़ता है कि अलग होने के बाद एक समूह सजात तन्त्र के उद्देश्यों के अपनाने के कारण जात अथवा जाटों का बन जाता है। दूसरा दक्षिण पश्चिम भारत में, महाराज्य (महाराष्ट्र) प्रणाली को स्वीकार करके महाराष्ट्री अथवा मराठों का बन जाता है। तीसरा समूह सिन्ध और पंजाब में अराष्ट्रों (यूनानी के शब्दों में अरट्टों)—शासन में राजा के अस्तित्व को अस्वीकृत करने वालों—का बन जाता है जो अरट, अरोड़ा और फिर अरोड़ा कहलाने लगता है। सबसे अंतिम समूह बनता है राजपूतों का। इसी प्रकार क्षत्रियों के और भी समूह बने। अन्त में जो शेष रहे वे ही क्षत्रिय हैं। यह बात हमने इसलिए भी कही है कि बहुतेरे लोग कहा करते हैं कि जब राजपूत, जाट, मराठा आदि भी क्षत्रिय हैं तो केवल वे ही खत्री क्यों कहलाते रहे। ऊपर के वर्णन से इस प्रश्न का हल हो जाता है। कहना न होगा कि इन अवशिष्ट क्षत्रियों में जो बाद में भाषा भेद के कारण खत्रिय भी कहलाने लगे हैं किसी एक ही वंश के लोग शामिल नहीं हैं इनमें। चन्द्रवंशी, सूर्य वंशी और नागवंशी तीनों ही वंशों के कुल शामिल हैं। उदाहरण के लिए कुक्करों को लीजिए, "यादवा कुकुरा भोजा सर्वे चान्धक कृष्णाय:" के अनुसार चन्द्रवंशी यादव हैं। सोढी और बेदी उन सूर्यवंशियों में से हैं। जो क्षुद्रक कहलाते थे और अन्तर्वेद एव सनाढ्य देश में रहने के कारण इन नामों से प्रसिद्ध हुए। हमारे ऐसा कहने से सोढी और बेदियों की वंशावली रामचन्द्र जी से मिलने में भी रुकावट नहीं डालती है क्योंकि पुराणों में जो वशावली सूर्यवंशियों की दी हुई है उनमें राजा क्षुद्रक का नाम रामचन्द्र जी से ४७ वीं पीढी पर आता है। क्षत्रिय से खत्री नाम क्यों पड़ गया? इस प्रश्न का हल भी लोगों ने अनेक अटकलों से किया है। किसी ने कहा है पंजाब में नागा (नाग लोगों की) भाषा का जब प्रचार था तब क्ष के स्थान पर ख होगया क्योंकि उनकी उच्चारण शैली इसी प्रकार की थी किन्तु यह खयाल हमे जँचता नहीं है। क्ष के स्थान पर नाग लोग स तो बोल सकते थे क्योंकि उनके पड़ोसी सत्रप कहते थे। और नागों की भाषा में क्षुद्रक का सुद्रक और सोद या सोदी तो हो सकता है यूनानियों ने भी क्षुद्रकों को OXYDRAKA एवं OXYDRAKAI (ओक्सेडरा) लिखा है। ((ई 1) का प्रयोग करने की तो आदत जान पडती है क्यों शिवि को भी उन्होंने शिबोई लिखा है।) कुछ का कहना है कि खात नाम के

राजपूतों ने बनियानी से शादी करली थी। इसलिए ये खत्री कहलाए और तभी से व्यापार करने लग गये हैं। एक कल्पना यह भी कि बाबर के समय में और आगे के मुगल शासन में अनेक अच्छे ओहदों पर काम करने से इनका राज्य से सम्पर्क होने पर रजिस्टरों में ख ही लिखे गये क्योंकि अरबी या फारसी वर्णमाला में क्ष नहीं होता। यह कल्पना कुछ जंचती भी है किन्तु हमारा अपना ख्याल इस सम्बन्ध में यह है कि बौद्ध काल में चारों ओर प्राकृत भाषा का प्रचार होने से ये क्षत्रिय की बजाय खत्तिय कहलाए और इसका अधिक शुद्ध बोलने वाले खत्री कहने लगे। बौद्ध साहित्य में महात्मा बुद्ध के लिए भी कई जगह खत्तिय-पुत्र शब्द आता है जिसके कि माने क्षत्रिय पुत्र के होते हैं।

परशुराम की आतंककारी कथा का प्रयोग इतना भारी होने लगा है कि प्रत्येक ऐसी जात के लिए जो राजपूत नहीं है यही कल्पना फैलाई गई कि ये भी क्षत्री छिपे हुये लोगों में से हैं। खत्रियों की वंशावली रखने वाले लोग भी यही कहते हैं। यह तो एक वाहियात और आत्म सम्मान को ठेस पहुंचाने वाली कल्पना है और जब कि जो लोग अपने को रामचन्द्र या लवकुश का वंशज होने का ख्याल करते हों तो उनके सम्बन्ध में तो यह सर्वथा गलत है कारण कि रामचन्द्र के वंश के लोगों से परशुराम की कभी भी कोई लड़ाई नहीं हुई। उल्टा परशुराम ही रामचन्द्र को अपने से श्रेष्ठ मानकर मिथिलापुरी से चले गये थे। जहाँ कि वह शिव धनुष के ऊपर झगड़ा करने आये थे।

अरोड़े लोग खत्रियों से भिन्न नहीं हैं और पंजाब के बाहर के लोग भी भेद नहीं समझते। धन्धा अरोड़ों ने भी प्रायः व्यापारिक ही ले लिया है हालांकि उत्तरार्ध अरोड़े देहातों में खेती भी करते हैं। हमारी धारणा के अनुसार उनमें भी नाग, तक्षक चन्द्र और सूरजवंशी लोग शामिल हैं। विवाह संस्कार के समय जो परिचय इनके पुरोहित देते हैं उसके अनुसार यह कश्यप गोत्र के हैं। ऋषि कश्यप सूर्य के पिता थे अतः यह सूर्यवंशी सिद्ध होते हैं। अरोड़ों के जो अब तक के इतिहास निकले हैं उनके अनुसार इनका ख्याल है कि परशुराम से अभयदान पाये हुए उरट अथवा अरट नाम के राजा ने सिंध में अडोर (अलोर) नगर बसाया। उरट के वंशज एवं साथी ही अरोड़ा हैं। भविष्य पुराण के जिस श्लोक के अनुसार अरोड़ों ने अपने को अरट का वंशज होने की धारणा बनाई वह इस प्रकार है:—"नाग वंशोद्भवा कन्या। क्षत्रियास्तु सुदाहृता। अत्र वंशोद्भवास्चान्ये तथा उरट वंश सम्भवाः॥" किन्तु यह आश्चर्य की बात है कि उरट के वंशज आपस में ही शादी भी करते हैं। यदि वे एक ही पुरुष की सन्तान हैं तो मनु के विधान के विरुद्ध ऐसा क्यों करते हैं। वास्तव में बात यह है कि पंजाब और सिन्ध में ईस्वी सन् पूर्व की सदियों में अनेकों ऐसे खान्दान थे जो अरट अर्थात् बिना राजा की प्रजा कहलाते थे। सारा न्याय नीति और शासन का काम पंचायत द्वारा इन कुल राज्यों में सम्पन्न होता था। सिकन्दर को भी ऐसे लोगों से लड़ना पड़ा था। आगे की सदियों में उनमें से कुछ लोग सजात तन्त्री हो गये और वे जाटों में शामिल हो गए। जाटों में अरोड़ा एक गोत्र भी है। और भी अनेक गोत्र अरोड़ों के जाटों में मिलते हैं कुछ अराट (अराष्ट्र) अन्य जातियों में भी चले गये। सिकन्दर के साथी और यूनान के महान् इतिहास लेखक प्लिनी ने अरोड़ों को अपने इतिहास में अरोटुरी ओरेट्टरी लिखा है। यह केवल भाषान्तर है। प्लिनी के कथनानुसार इन लोगों से सिकन्दर का वास्ता रावी नदी के किनारे पड़ा था। कहा जाता है कि उस समय लड़ाई के मैदान में १० हाथी और सैंकड़ों घोड़े और रथों की सेना लेकर ये मैदान में उतरे थे।

अब से ४०-४५ वर्ष पहिले अरोड़ों में नाता (पुनर्विवाह) की रिवाज न थी किन्तु इनकी जातीय सभा के प्रयत्न से अब यह रिवाज चल निकली है। ऐसा ही खत्री लोगों में भी एक समय था। इस जाति

के बनने के सम्बन्ध में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने एक पुराण का [illegible] लिखा है जिसमें लिखा था कि "लव के वंश में किसी राजा के दो स्त्रियां थीं। दोनों के पुत्र हुए। छोटी ने राजा पर [illegible] डाल कर बड़ी के पुत्र की बजाय अपने पुत्र को राज्य दिला दिया। राज्य का मालिक होने पर छोटे भाई ने बड़े को निकाल दिया जो अपने साथियों सहित राज्य छोड़ कर बाहर चला गया। मुल्तान की तरफ आकर उसने अपने साथियों तथा आस पास के अन्य लोगों को बुलाकर [illegible] उसका नाम अरुट होगा अर्थात क्रोध न करने वाला।' यह जाति बन गई।

कनिंघम ने अरोड़ों के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है — "[illegible] कहा जाता है कि उसने क्षत्रिय के औरस से चण्डालनी से जन्म लिया है। [illegible] क्षत्रियों से [illegible] होकर टाटा और सिन्ध देश के अन्यान्य [illegible] व मुल्तान में आ कर [illegible] जो उस समय [illegible] और उनके पड़ोसी थे। किसी युद्ध में अरोड़ा लोगों ने क्षत्रियों की [illegible] उनको बहिष्कृत कर दिया। एक लम्बे अर्से के बाद दीपालपुर के [illegible] और [illegible] लोगों ने [illegible] को उठा लिया। शिकारपुर के कोठी वाले और [illegible] और [illegible] अरोड़ा हैं।" सम्भव है जनरल कनिंघम के समय तक अरोड़े ऐसा ही मानते हों कि हम क्षत्रिय के औरस से चण्डालनी के पेट से पैदा हुए हैं किन्तु यह धारणा है गलत। [illegible] से यह [illegible] जान पड़ता है कि क्षत्रियों की आपत्ति में अरोड़ा शामिल नहीं हुए और उनका [illegible] किया कि जिन आक्रमणकारियों ने क्षत्रियों से दीपालपुर राज्य छीन लिया था उन्होंने ही पीछे [illegible] अरोड़ों से अरोड़ कोट (अलोर) छीन लिया। और इनको [illegible] कि फिर इन लोगों को [illegible] करके अपना जीवन निर्वाह करना पड़ा। सिक्खों में अरोड़ों की संख्या क्षत्रियों से कम नहीं है। और गुरु नानक के सिद्धान्तों में अरोड़ों का एक बड़ा हिस्सा भक्ति रखता है।

खत्री लोगों ने एक लम्बे अर्से से व्यापार, दस्तकारी करना आरम्भ कर दिया था। क्योंकि हम देखते हैं कि गुरु नानकदेव जी के पिता भी व्यापार में रुचि रखते थे। यह ठीक तौर से तो अभी तक पता नहीं चल रहा है कि खत्रियों के हाथ से क्षत्रिय तौर से—राज गया, तलवार गई और किन कारणों से, किन्तु यह अवश्य जान पड़ता है कि बौद्ध और जैन धर्मों के पतन के दिनों में ही—इनको अपना जीवन निर्वाहार्थ व्यापार करने के लिए बाध्य होना पड़ा हो। यह भी सम्भव है कि जैन धर्म के प्रभाव में आकर ही खत्री लोगों ने खेती और तलवार को नमस्कार कर दिया हो क्योंकि जैन लोग तलवार के साथ ही कृषि-कर्म में भी तो हिंसा मानते हैं। ऐसा अन्य क्षत्रिय-कुलों ने भी किया था। एक समय क्षत्रिय अग्रवाल भी जैनधर्म के प्रभाव से ही वैश्य बन गये थे।

कुछ भी हो खत्री जाति को एक बार फिर दसवें पातशाह गुरु गोविन्दसिंह, उनके पिता, साहिब-जादों और बन्दा ने संसार की महान क्षत्रिय जातियों की कतार में खड़ा कर दिया। भले ही खत्री आज वैश्य के पद आसीन हो गये हों किन्तु उनके एक बड़े भाग को शिष्य बनाकर गुरु लोग उसे बहुत ऊँचा दर्जा दिला गये हैं। हकीकतराय और हरीसिंह नलुआ ने संसार को क्रमश प्रण और शूरता के हिसाब से बता दिया कि हमने जिन खत्रानियों का दूध पिया है वे कितनी ऊँची सिंह-प्रसूता क्षत्राणी हैं। -

जाट लोग

इस बात से कोई भी व्यक्ति इनकार नहीं कर सकता है कि गुरु गोविन्दसिंहजी के मिशन को पंजाब में जाट लोगों ने बढ़कर किसी दूसरी जाति ने पूरा नहीं किया। प्रथम गुरु नानकदेव से लेकर दसवें गुरुदेव तक गुरुओं की सेवा करने, शिक्षा के पालन करने और अपने को सच्चा खालसा सिद्ध करने में ये किसी से पीछे नहीं रहे हैं। सिख समुदाय में संख्या भी इन्हीं की ज्यादा है। उनके धर्म प्रेम और शौर्य का पता इससे भी चल जाता है कि बारह मिसलों में सात मिसलें जाटों ने खड़ी की थीं। रणजीतसिंह के समय में तो इन्होंने बहुत बड़ा उरूज हासिल किया था। रियासत पटियाला, नाभा, जींद और फुलकिया इनके प्रबल प्रताप की साक्षी देती हैं जो इन्होंने पिछली सदियों में कर दिखाया था। भाई बालाजी का नाम गुरु नानकदेव जी के नाम के साथ इसी प्रकार अमर है जिस प्रकार कि भगवान राम के साथ उनके अनन्य भक्त हनुमान का। भाई मनीसिंह, तारूसिंह, शाहबेगसिंह और तारासिंह जी की शहादतें आज सिख-जाटों की नहीं हिन्दू जाटों के हृदयों को भी अभिमान से फुला देती हैं। विदेशी और विधर्मी शासकों के विरुद्ध सत्रहवीं और अठारहवीं सदी में सारे देश में जाटों ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया था। पंजाब में यदि वे केसरिया झंडे के नीचे खड़े होकर लड़े थे तो राजपूताना और युक्त प्रान्त में बसन्ती झंडे को इन्होंने फहराया था। वीर गोकुला राजाराम और महाराजा सूर्यमल जी की कुर्बानी ने इन्हें एक समय प्रबल वेग से अनुप्राणित किया था जिसके फलस्वरूप भरतपुर, धौलपुर, मुरसान और बल्लभगढ़ जैसे राज्यों की नींव पड़ी। जाटों के स्वभाव और धीरता-वीरता की देशी, विदेशी सभी लोगों ने प्रशंसा की है। महमूद जैसे लुटेरे को लूटकर और तैमूर पर हमला करके भारत के इन गये बीते दिनों भी आश्चर्यजनक वीरता का परिचय दिया। डाक्टर विरंगटन साहब ने उनके सम्बन्ध में कहा है—"ये साहसी होते हैं अपनी रीति रस्मों का दृढ़ता से पालन करते हैं। उनका शरीर स्फूर्तिवान और सुगठित होता है।" हिस्ट्री आफ जाट्स के लेखक प्रोफेसर कालिकारंजन जी कानूनगो ने उनके प्रकृत-स्वभाव का परिचय इन शब्दों में दिया है—"वे खेती करने और तलवार चलाने में एक बराबर दिलचस्पी रखते हैं। और इस ओर यहाँ तक उन्नति की है कि मेहनत और हिम्मत में हिन्दुस्तान की कोई अन्य कौम इनके बराबर नहीं है। डीलडौल में वे राजपूतों और खत्रियों से समानता रखते हैं और भारत के पुराने आर्यों से बहुत मिलते जुलते हैं। ...पंजाब की तमाम कौमों से यह कौम बहुत उतावल और व्यक्तिगत स्वतंत्रता चाहने वाली है। एक जाट करता वही है जिसे वह ठीक समझता है वह स्वतंत्र और खुद पसंद है।'

सुल्तान महमूद गजनवी या नादिरशाह या अहमदशाह अब्दाली किसी के साथ उनके किए गए सलूक की ओर नजर डालिये, हरेक में और हर जमाने में उनके जातीय चरित्र का पता चलता है बड़े से बड़े विजेता की दिल दहला देनेवाली तारीफ सुनकर उससे न डरना और बाद में हो जाने वाले नुकसान का खयाल न करके भागते हुए दुश्मन को खदेड़ते चले जाना लड़ाई में शत्रु से भिड़ जाने पर पूर्ण धैर्य धारण करना और अद्वितीय गम्भीर साहस का परिचय देना युद्ध क्षेत्र में तथा हार जाने पर आने वाली आपत्तियों का तनक भी खयाल न करना और अपने दुश्मन की निर्दय तलवार के सिखाये हुए सबकों को बहुत जल्दी भूल जाना आदि बातें जाटों के चरित्र का मुख्य अंग है।" 'मुगल साम्राज्य के क्षय और उसके कारण' नामक इतिहास में पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति ने जाटों के इसी जन्मजात स्वभाव का चित्रण इन शब्दों में किया है—"जाटों में आज भी एक अल्हड़पन से युक्त वीरता और भोलेपन से मिश्रित उद्दण्डता

विद्यमान है। उन्हें प्रेम से [illegible] है। धार्मिक तथा सामाजिक दृष्टि से [illegible] है। लड़ना उनका पेशा है। मनमाना करने के [illegible] जान को खतरे में डाल देना आदि भी [illegible] 'तारीख पंजाब' में भाई परमानन्द जी [illegible] सीमाप्रान्त की तमाम पठान जातियों को [illegible] देना जो कि हिन्दू जाति के इतिहास में [illegible] था। मैं यह कहना चाहता हूं कि इन [illegible] नहीं तो कम भी पालन नहीं किया है।"

हम यह कह सकते हैं कि इस प्रकार के [illegible] जाट जाति में सिक्ख धर्म के दीक्षित होकर अपने प्रकृत [illegible] पल उनके रस को पान करके [illegible] लेकिन यह कहना पड़ता है कि भारत की इस जाति के [illegible] और [illegible] प्राचीन कारनामों के सम्बन्ध में बहुत ही कम लोगों को जानकारी है। [illegible] जाट भी इस सम्बन्ध में [illegible] हैं। हमने इस ओर जो प्रयास किया है उसके आधार पर [illegible] कह सकते हैं कि जाट [illegible] नहीं किन्तु वंशों और कुलों का एक [illegible] है। [illegible] है। जैसे कि वर्तमान में सिक्खों की एक स्वतंत्र जाति बनना [illegible] जाट जाति के संगठन की भी नींव पड़ी थी। अन्तर केवल इतना है कि सिक्ख लोगों के संगठन [illegible] प्रारंभ में धार्मिकता थी और आगे चलकर वही राजनीति मय हो गया। जाट संगठन का [illegible] राजनैतिक कारणों से हुआ था। जिसे बौद्ध, जैन, और नवीन हिन्दू धर्म ने [illegible] किया। एक दूसरा अन्तर जाट संगठन और सिक्ख संगठन में यह भी रहा कि जाट संगठन में [illegible] क्षत्रिय समूहों का ही समावेश हो सका जो उन सिद्धान्तों के मानने को तैयार हुए [illegible] जाट संगठन खड़ा हुआ था और सिक्ख संगठन में क्षत्रियेतर जातियों को भी [illegible] स्थान मिला [illegible] संगठनों में होता है। गुरु गोविन्दसिंह जी द्वारा अनुशासित सिक्ख धर्म पुरातन, जाटों की रुचि के अनुकूल था। अत: इसमें दीक्षित होकर उन्होंने एक बार पुन: अपने को दुनिया के प्रकाश में ला दिया। और इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि गुरु गोविन्दसिंह यदि बीस वर्ष और भी संसार में रहते तो इन वीर खालसाओं का समस्त उत्तरी हिन्दुस्तान और अफगानिस्तान बिलोचिस्तान तक प्रभाव हो जाता। क्योंकि उनसे पहले लंबे अर्से तक धर्म-प्रचार और एक सूत्र में पिरोये जाने का कार्य बन्द रहा था। जिन खालसा मिसलों ने अलग-अलग कार्य किये थे गुरुजी के सामने सबको एक ही ना [illegible] और यह एक शक्ति उस समय सारे संसार को हिला देने के लिए काफी थी।

जाट शब्द के उद्भव और जाट जाति के निर्माण के सम्बन्ध में हमारी स्थापना यह है कि भगवान कृष्ण के समय में उस समय की स्थिति के अनुसार क्षत्रियों के दो दल होगये थे। एक दल चाहता था कि देश में जो छोटे २ कुल (कबीलों) के राज्य हैं। इन्हें खतम करके बड़े २ राज्य कायम किए जाय। जरासंध, शिशुपाल, गोनर्द और कंस इसी खयाल के थे। इस खयाल के अनुसार पूर्व में मगध और उसके निकटवर्ती प्रदेशों के छोटे २ राज्यों को जरासंध ने, व्रज में कंस ने और मध्यभारत में शिशुपाल ने

विरोध आरम्भ कर दिया। कंस ने अपने बहनोई वासुदेव को इसी कारण से जेल में डाल दिया चूंकि वे इसके इस काम का विरोध करते थे। कृष्ण जब बड़े हुए तो उन्होंने गोप, वृष्णि और अंधक लोगों की मदद से कंस को मार डाला और उन्होंने इन कुल गणों को जाति राज्यों के रूप में बदल डालने की बुनियाद डाली। अंधक वृष्णि जिनसे कि जाति-राष्ट्र बनना था इन जाति गणों का कोई एक ही राजा नहीं होता किन्तु वह मिलकर एक राज सभा बनाते थे। जिसमें प्रत्येक कुल के प्रतिनिधि शामिल होते थे। महाभारत के एक श्लोक में कृष्ण द्वारा ऐसा संघ राष्ट्र बनाने की चर्चा है।

"भेदाद् विनाशः संघानां संघ मुख्योऽसि केशव। यथा त्वां प्राप्य नोत्सीदेत् अयं संघस्तथा कुरु॥"

इस श्लोक में नारद ने कृष्ण से कहा है कि हे कृष्ण, संघ राज्य भेद नीति से नष्ट हो जाते हैं। कुल संघों के मुख्य नेता हो, इस संघ ने तुम्हें इस समय प्रधान के रूप में प्राप्त किया है अतः तुम इस प्रकार करो जिससे यह संघ नष्ट न हो सके। आगे के एक श्लोक से यह भी बात साफ जाहिर हो जाती है कि यह संघ राष्ट्र अनेकों कुलों के संघ से बना था जो जाति प्रधान था यथा —

"ज्ञातीनाम् विनाशः स्यादयथा त्वम् तथा कुरु।"

अर्थात् हे कृष्ण ऐसा करो (जिससे ज्ञाति जाति को) नुकसान न पहुंचे। कृष्ण का जाति-राज्य आरम्भ में "यादवा कुकुरा भोजा सर्वे चान्धक वृष्णयः।" कुलों के संगठन से बना था। आगे चलकर भारत में अनेकों ऐसे जाति राज्य अथवा संघात्मक तंत्र कायम हुए। पंजाब में वाहलीक और शिवि जाति के मद्र, सिन्धु, कर्ण आदि कबीले (कुल या वंश) थे इन सबने गण स्थापित कर लिए। इसी प्रकार मगध में वज्जियन जाति का एक जाति-राष्ट्र कायम होगया। सिन्ध राजपूताने में यौधेय, शाल्व आदि के जाति-राष्ट्र कायम होगए। सिक्खी को धारण करने पर जैसे सिख कहलाते हैं इसी प्रकार जाति-राष्ट्र के अनुयायी जात कहलाते थे। अरबी और फारसी ग्रन्थों में जाट को जात और जत ही लिखा गया है कि नागलोगों की भाषा से जिसमें हम उत्तरी पंजाबी या प्राकृति भाषा कह सकते हैं जात का ज्याट या जट मशहूर हुआ। भाषा विज्ञान के पंडित इस बात को जानते हैं कि संस्कृत त प्राकृत में ट हो जाता है उदाहरण के लिये संस्कृत भक्त प्राकृत में भट्ट है जो पश्चिमी हिन्दी में भात और सिन्धी में भट है। इसी प्रकार संस्कृति का जात प्राकृत में जट्ट पश्चिमी हिन्दी में जात और सिन्धी में जट्ठ उच्चारण होगा। पंडितों की संस्कृत में जाति को ज्ञाति बोलते हैं बंगाल में ज्ञातर अथवा जातर और मालवी (सी० आई०) में ज्यात बोलते हैं। इस प्रकार बंगाल के पड़ोसी सजाततंत्री ज्ञात (भगवान महावीर भी ज्ञात थे) बोलते थे। मालवा के जैन लोग महावीर के वंश को ज्यात (जात) वंशी केवल उच्चारण भेद से बोलते हैं। रोम की तरफ बढ़ने वाले यह ज्ञाति तंत्री ज्ञात अथवा जात की बजाय गाथ पुकारे गये। इन लोगों का भी खत्तियो की भांति एक बड़ा समूह कृष्ण काल के बाद विदेशों को चला गया था। कहा जाता है जटलेंड भारतीय जाटों का ही बसाया हुआ है। शब्द जात से जाट शब्द बनने की बात कई विद्वानों ने स्वीकार की है। रिसाला जगत के लेखक धर्मवीर पं० लेखराम जी ने लिखा है। "अन्य देशों और भारत की भाषाओं के अन्दर अदल बदल होता है और फारसी में भी संस्कृति की जाति का जाद, जात बन जाता है। बस आज सरहदी मुल्कों में जातों से जाटो (अर्थात् जात से जाट 'ले०') बन जाता है अरबी साहित्य जिसमें २७ मशहूर गजवाता (लडाइयों) होने का वर्णन है। उसमें से एक गजवा (लडाई) जात (जाट) लोगों से भी हुई थी जो गजवा जातुरिका के नाम से मशहूर है। यह वे जात थे जो अरब के पडोस में अपना प्रभाव जमा चुके थे।

जाटों का इतिहास तो बताता है कि ये भारत और ईरान में भी [illegible] भाग में थे। कर्नल टाड लिखता है कि :—"प्रात: की किरणें पर [illegible] स्नान करना और [illegible] की आदतें बतलाती हैं कि इनके पूर्वज भारत में थे और [illegible] है कि ये जाट थे।" अवेस्ता-विद्या की धर्म पुस्तक में लिखा है कि जाट [illegible] थे तथा वे अमीगढ़ के निवासी थे।"

ईस्वी सन से ३-४ सदी पूर्व भारत में भी जाटों ने [illegible] प्राप्त किया था। प्रसिद्ध [illegible] शासक कनिष्क भारत के इन जाटों का [illegible] था जो [illegible] के [illegible] अनुसार [illegible] को पार करके चीन में जा बसा था और [illegible] कहा जाता था। गुप्त लोगों का भी कारस्कर जाट होने के प्रमाण [illegible] से प्राप्त हुआ है।[1] [illegible] व्याकरण का यह शब्द मन्दसौर के राजा यशोधर्मा से जाट [illegible] है। यशोधर्मा [illegible] (जो कि जाटों में मिलता है) ने उनका प्रमाण [illegible] के [illegible] है। सिन्ध में [illegible] वाले जिन [illegible] लोगों का यूनानी लेखकों ने जिक्र किया है। उनके सम्बन्ध में कर्नल टाड ने टॉलेमी, टालेमी और [illegible] के हवालों से इस प्रकार वर्णन किया है। [illegible] भी शामिल थी।" [illegible] 'नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज एण्ड अवध' नामक पुस्तक में लिखा है [illegible] किया है :—

"दक्षिणी पूर्वी प्रान्तों के जाट अपने को दो भागों में विभक्त करते हैं। [illegible] के वंशज और कश्यप गोत्री।" मद्र लोगों का भी भारतीय इतिहास में [illegible] है ये पुराणों के अनुसार शिवियों की ही एक शाखा है। शिवि के दो पुत्र थे एक मद्र और दूसरे [illegible]। यह पुराणों का [illegible] है। बंगला विश्व कोष की सातवीं जिल्द में नगेन्द्रनाथ वसु ने लिखा है कि प्रोफेसर लासेन के मतानुसार जाट मद्रों के वंशज हैं। वे शब्द इस प्रकार हैं —"[illegible] मद्र उजाति गण उल्लेख अस्त्रिच जाट जाति ताहा [illegible] अन्तर्भुक्त।" हमारा इन शब्दों में केवल इतना मतभेद है कि जाट मद्रों के अन्तर्भुक्त नहीं किन्तु मद्र जाटों के अन्तर्भुक्त हैं। कारण कि मद्र तो कबीला (वंश, या कुल) है और जाट है जाति, जिसमें अनेकों कबीले (वंश) शामिल हैं।

इनके अलावा तक्षक, गांधार, नव, कृमि, यौधेय, वृष्णि, भोज, दशार्ण, कल्लल, सिन्धु, कुशान आदि अनेकों प्राचीन क्षत्रिय खान्दानों का जाटों में निशान मिलता है जाटों का कहना है कि एक समय सारे भाटी जाट थे किन्तु जब राजपूतों का एक नया संगठन खड़ा हुआ तो उनमें से बहुत सारे अपने पुराने स्टाक को छोड़कर राजपूत हो गए। जनरल कनिंघम ने भी लगभग ऐसा ही मत जाहिर किया है। उन्होंने भी सिख हिस्ट्री में लिखा है कि :—"एक समय की महान् पराक्रमी जाट जाति ही रणजीतसिंह के

१. गुप्त राजा कारस्कर जाट थे और उनका गोत्र धारण था। प्रभावती गुप्ता के पूना वाले ताम्र लेखों में धारण गोत का वर्णन है। धारणीय जाट बीकानेर राज्य की सर्दारशहर हनुमानगढ़ सूरतगढ़ और दूसरी तहसीलों में पंजाब के किनारे २ पाये जाते हैं। ये लोग कदाचित पंजाब के फीरोजपुर और भटिंडा जिलों में भी पाये जाते हैं। अन्य जाटों के समान वे भी गोरे ऊंचे और हृष्ट पुष्ट होते हैं। नागरी प्रचारणी पत्रिका, (भाग १६ अंक १—४ पृष्ठ २३१) बिहार उड़ीसा रिसर्च जनरल जून सन् १९३४।

समय में समस्त पंजाब की अधिकारिणी थी। ... यह जाति बहुत बड़ी संख्या में थी।......जाट लोग एक ओर राजपूतों के साथ और दूसरी ओर अफगानों के साथ मिल गए हैं किन्तु यह लोग ही जाट जाति की शाखा सम्प्रदाय पूर्व अंचल के 'राजपूत' और पश्चिम अंचल के 'अफगान और बलोची' के नाम से अभिहित हैं।" कनिंघम साहब के इस कथन का अर्थ है कि एक समय जाटों की संख्या ज्यादा थी किन्तु उनमें से कुछ तो राजपूत होगये और कुछ इस्लाम के कारण बिलोच और अफगान कहाने लग गए किन्तु पटियाला आदि रियासतों के जगा और भाटों ने उन्हें इस बात को इस प्रकार समझाया कि आप पहले राजपूत थे किन्तु आपके किसी बुजुर्ग ने जाटिनी से शादी करली तब से आप जाट होगए। एक समय था कि इस प्रकार की वाहियात बातों पर भी लोग विश्वास करते थे।

जाट और राजपूतों में जो अन्तर है उसका खुलासा मि० आर्जलिअम ने 'एथ्नोलोजी आफ इण्डिया' में इस प्रकार किया है —

"धर्म में जाट, परिवर्तन किए हुए राजपूत से न अधिक है और न कम, किन्तु अदल बदल है राजपूत अगर प्राचीन धर्म का पालन करें तो जाट हो सकता है।" इस कथन का सार है कि जाट प्राचीन धर्म (वैदिक) का पालक है और राजपूत अर्वाचीन (पौराणिक) धर्म का पालक। यही दोनों में अन्तर है वरना दोनों एक हैं। जस्टिस कैम्पबेल ने इसी बात को इस प्रकार कहा है —

"यह संभव हो सकता है कि राजपूत जाटों में से है जोकि भारत में आगे बढ़ गए हैं। और यहाँ हिन्दू जातियों से परस्पर मिल गए हैं तथा ऊंचे और कट्टर हिन्दू हो गये हैं। उन्होंने अपने प्राचीन बल वैभव को प्राप्त कर लिया है लेकिन यह सिद्धान्त कि जाट राजपूतों में से हैं और ऊंचे दर्जे से घट गए हैं। यह एक ऐसा सिद्धान्त है जिसके लिए बिल्कुल सबूत नहीं है और जो आज वर्तमान उन्नत-शील जाटों के बाहरी वर्तमान आचरण से स्पष्ट तौर से प्रकट होता है। जाट जाति के प्राचीनता और महत्व के ऊपर भारतीय जाति-शास्त्र के एक अद्वितीय ज्ञाता मि० नेस फील्ड ने लिखा है —

" जाट जदू के वर्तमान हिन्दी उच्चारण के सिवा कोई दूसरा शब्द नहीं है, यह वही जाति है जिसमें श्री कृष्ण पैदा हुए थे।"

किन्तु बौद्ध जैन काल के बाद जो नया हिन्दू धर्म भारत में फैला उसने सभी उन पुराने क्षत्रिय समुदायों के प्रति इसी प्रकार के भाव फैलाए जो शीघ्र ही उसके धर्म में दीक्षित नहीं हुए और राजपूत शब्द को ग्रहण नहीं किया। जाट, अहीर, गूजर, खत्री, अरोड़े और मराठा सभी के सम्बन्ध में इसी प्रकार की भ्रान्ति-मूलक बातें फैली हुई हैं। यही कारण था कि इन युद्ध-प्रिय जातियों को गिरा देने के बाद हिन्दुओं ने संकट भी बहुत झेले। मि० चिन्तामणि विनायक वैद्य ने 'हिस्ट्री आफ हिन्दू मिडिवल इन्डिया' में बड़े खेद के साथ लिखा है —

"जाट और लुहानों ने अपनी लडाकू प्रवृति को अब तक कायम रक्खा है हालांकि कट्टर हिन्दुत्व ने उन्हें गिराने की भरपूर कोशिश की।"

ऊपर के उदाहरणों से यह भली प्रकार सिद्ध हो चुका है कि जाट भी उसी प्रकार आर्य नस्ल से हैं जिस भांति खत्री अरोडी और राजपूत। फिर भी हम कुछ प्रमाण यहाँ और उद्धृत करते हैं। 'कार-नामा राजपूत' के लेखक की नजीमुलगनी रामपुरी ने लिखा है—"जाट कौम की रवायतों से उसका ममकन मराख दरियाये सिन्ध पाया जाता है और यादवों में से इनका निकास सावित होता है।"'इस

कौम को कृष्ण से पैदा होने का गुमान भी होता है।" इसी प्रकार [illegible] ने [illegible]
'भारत के [illegible] राज्य' नामक महाग्रन्थ में [illegible] लिखा है [illegible] भारत में
भारत से उनकी वर्ग्गी होने के ऐतिहासिक [illegible] हैं। [illegible] कि [illegible]
(अन्य) क्षत्रियों की भांति [illegible] [illegible]
कारण थे (पिछले जमाने के) [illegible] स्थिति में [illegible] बिगाड़ने
का प्रयत्न किया।" मिस्टर [illegible] ने [illegible]
जाटों का आर्य बताते हुए लिखा है कि [illegible] इतना है कि आज
कुछ मोटे और राजपूत पलते होते हैं।"

भाषा विज्ञान के ज्ञाता [illegible] ने [illegible]
आफ दी नार्थ वेस्टर्न [illegible] में लिखा है—

"बहुत समय [illegible] कि [illegible] लोग कुछ
खास परिस्थितियों के [illegible] नहीं है। भाषा से जो परिणाम
निकाला गया है वह जाटों के [illegible] यदि वे सिथियन [illegible]
थे तो उनकी सिथियन भाषा [illegible] भाषा जो
जो हिन्दी की एक शाखा है—बोलते हैं। [illegible] यह भाषा
हिन्द—की या जाट—की नाम से प्रसिद्ध है। [illegible] और
फेंक दिया जाय तो इसके विरुद्ध बहुत [illegible] नहीं दिये
गये। शारीरिक गठन और भाषा [illegible] एक
तरफ नहीं रक्खे जा सकते। [illegible] सामने
आते हैं तो जाट यूनानी या चीनियों से भिन्न पाये जाते हैं।" [illegible] भी
साफ हो जाता है कि जाटों के [illegible] में उनके [illegible] सिथियन होने [illegible] भी निर्मूल है।" इस
बात को मिस्टर नेस्फील्ड ने तो यहाँ तक जोर देकर [illegible] है—

"सूरत शक्ल कोई समझ जाने वाली चीज है तो जाट सिवा आर्यों के कुछ और हो नहीं
सकते।"

इन सब उद्धरणों के अलावा भी जाटों का रहन सहन रस्म और रिवाज सभी वैदिक आर्यों से
मिलती जुलती है। वे वास्तव में ही पुरातन आर्यों के उत्तराधिकारी हैं अतः इस प्रसंग को लंबा करना हम
अनावश्यक समझते हैं।

खत्री, अरोड़ों और जाटों की तरह पंजाब की अन्य जातियों ने भी अमृत पान कर अपने को
अमर समुदाय में शामिल किया था। सिखों को अमर समुदाय कहना उस समय तक तनिक भी अति-
शयोक्ति नहीं जब तक कि वे इसी भांति अपने सिद्धान्तों के पक्के रहेंगे जैसे कि इस समय हैं। कुछ
लोग कहने लगे हैं कि सिखों में अन्धविश्वास है तो हम कहेंगे यह सिख जाति के लिए शाप नहीं
प्रसाद है, पतन नहीं अभ्युदय है और त्याज्य हरगिज नहीं किन्तु श्रेय और ग्राह्य है। दशम गुरु के
पांच प्यारों में कई जातियों के रत्न थे। इसी तरह आज के सिख समाज में भी कलाल, दर्जी, मोची,
ब्राह्मण, खाती आदि अनेकों जातियाँ हैं।

आज भी सिख समाज का वह तेज और शौर्य है कि दलित जातियों में से भी लोग अमृत चखते

ही यह ख्याल करने लग जाते हैं कि मैं निम्नजात नहीं, कमजोर नहीं, और न दबने वाला हूं। फिर इन लोगों का तो कहना ही क्या? जिनकी पीढ़ी दर पीढ़ी अमृत पान करती आ रही है। वे धर्म की रक्षा के लिये हर समय सिर पर कफन बांधे रहते हैं। उनका उत्साह अदम्य है। साहस अपार है और धर्म का प्रेम स्वभाव में बहुत गहरा है। इतना गहरा जिसका कोई उदाहरण नहीं दिया जा सकता। इन्हीं सब बातों को देखकर लार्ड अमेज ने लिखा था कि उत्तर भारत को मुस्लिम इंडिया बनाने में मुसलमानों के लिए सिख एक मजबूत दीवार साबित हो रहे हैं। दूसरी ओर हिन्दू भी अब पूर्ण विश्वास के साथ समझने लग गये हैं कि भारत के स्वतन्त्र होने पर कोई भी उत्तरी शक्ति तब तक पंजाब को पार नहीं कर सकती है जब तक कि सिख समाज जिन्दा रहेगा।

लेकिन यह सब श्री नानक देव प्रभृति गुरुओं के तप का ही फल है।

तीसरा अध्याय

गुरु नानकदेव जी का जीवन और शिक्षाएं

जन्म और वंश

आज सारा पंजाब और पंजाब से बाहर के सभी पठित एवं इतिहास से जानकारी रखने वाले हिन्दू जिन महापुरुष का नाम आदर और श्रद्धा की दृष्टि से याद करते हैं उन गुरु श्री नानक देव जी महाराज का जन्म सम्वत् १५२६ विक्रमी में कार्तिक सुदी १५ को वेदी वंश के एक पटवारी कल्याणरायजी के घर माता तृप्ता देवी जी के उदर से हुआ था। कल्याण राय जी तलवंडी गांव में जो कि लाहौर से कोई ५० मील दक्षिण-पश्चिम है राय बुलार की जमींदारी में रहते थे। यह समय लोदियों की हुकूमत का था और दिल्ली के तख्त पर इस समय बहलोल खां लोदी आसीन था।

वेदी लोग खत्री जाति के अंग हैं और खत्रियों के अनेक गोतों (कुलों) में से वेदी एक मशहूर गोत है। वेदी और सोढ़ी गोतों की वजह तस्मीया भिन्न लेखकों ने इस प्रकार वर्णन की है – "राम के दोनों पुत्रों ने लाहौर और कसूर दो नगर बसाए। कई पीढ़ियां बाद लव के कालाराय और कुश के कालकेतु हुये। कालकेतु ने कालाराय को देश से निकाल दिया। उस ने सनोढ़ देश में पहुंच कर वहां के राजा की लड़की से शादी की। तब से उनकी संतान सोढ़ी कहलाने लगी। सनोढ देश को मथुरा आगरा से अमरकोट तक फैला हुआ माना गया है। जिस राजा ने अपनी लड़की की शादी कालराय के साथ की थी वह अमरकोट का राजा था।

सोढ़ी राय की पांचवीं पीढ़ी में विजय राय हुए। उन्होंने अपने पूर्वजों का बदला लेने और अपने राज्य को पुनः प्राप्त करने के लिए कसूर पर चढ़ाई करके कालकेतु के वंशज धीर राय को वहां से हटा दिया। धीरराय भाग कर अवध की ओर चला गया और वहां धीरे-धीरे अपनी एक जमींदारी बनाली। उनकी संतान इधर की ओर ठाकुर कहलाती है। इनके वंश में एक महात्मा अमृतराय हुए, उन्होंने काशी जाकर वेद पढ़े तब से यह लव वंशी क्षत्रिय वेदी कहलाने लगे। वेद पढ़ कर अमृतराय जो अब वेदीराय कहलाने लग गये थे। शास्त्रार्थ के लिये निकले। अनेकों पंडितों को हराते हुए पजाब में पहुचे यहां पर अब मुल्क राय राज्य करता था। यह विजय की चौदहवीं पीढी में था। इसने वेदीराय से वेदों का उपदेश सुना और ऐसा प्रभावित हुआ कि अपने राज्य को वेदीराय को देकर आप गंगा किनारे तप करने के लिये चला गया। वेदीराय की संतान में अभोज, नरोतम, सल्व, तीन पुत्र हुए। इनमें सल्व सब से बड़ा

था¹ समय के हेर फेर से सत्व के पास केवल २० गांव रह गये।

अभोज की संतान में नाथ जी, संभू जी, प्रजापति, नारायण और रामदास थे जिनमें नारायण पहिले से ही खेतीबारी और व्यापार करने लग गया था।

संवत १४७१ में पिंडी भट्टियां के भट्टी राजपूत मुसलमान हो गये। उनके इस अपराध में दस गांव मिले और साथ ही राय की पदवी भी। १४८६ विक्रम में उन्होंने तलवण्डी गांव बसाया। और थोड़े दिन से नारायण के बेटे शिवराम बेदी को भी तलवंडी में ही बुला लिया। इसी शिवराम बेदी के घर संवत १४६७ में कालू और संवत १४६१ विक्रमी में लालू का जन्म हुआ।

संवत् १५२८ विक्रम में राय भोये मर गया। उसका बेटा राय बुलार मालिक हुआ। उसने कालू अथवा कल्यानराय³ को अपनी जागीर का पटवारी बनाया। इन्हीं कालू के घर माता तृप्ता के उदर से महान् गुरु नानक देव जी ने जन्म लिया।

खत्रियों के सम्बन्ध में दूसरे अध्याय में हम बहुत कुछ लिख चुके हैं इसलिए उसे दुबारा दुहराना व्यर्थ होगा। यहां केवल इतना कहना है कि सिख इतिहासकार बेदियों की सूर्यवंश तक वंशावली की अभी तक खोज करने में सफल नहीं हुए हैं। यह काम है भी कठिन क्योंकि श्री रामचन्द्र जी से लेकर सुमित्र तक की वंशावली तो पुराणों ने भी दी है किन्तु आगे के लिए उन्होंने भी कोई पता नहीं दिया किन्तु उलटा यह और कह दिया है कि "इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति।" अर्थात् भविष्य में इक्ष्वाकु का वंश सुमित्र पर अंत हो जायगा। पुराणों के इस कथन के होते हुए भी लोगों ने आगे वंशावली तयार करने की कोशिश की है। उन्होंने रास्ते निकाले हैं कोई कहता है सुमित्र ने अमुक को गोद ले लिया था कोई कहता है सुमित्र के भाई का लड़का गद्दी का मालिक हुआ किन्तु ये सब गप्पें हैं। पुराणों का ऐसा कथन करने का अर्थ दूसरा है बात यह है कि सुमित्र की सन्तान के लोग एक दम से कट्टर बौद्ध अथवा जैन हो गए। पुराणों के कर्ताओं के लिए तो यह अन्त जैसा था। किन्तु यह नहीं कह सकते कि जिन लोगों ने सुमित्र से नीचे की वंशावली तयार की है वे सही भी हैं। बेदियों की पीढ़ियों की वंशावली तयार करना तो और भी कठिन है क्योंकि वे लव वंशी हैं और लव वंशियों की तो पुराणों ने भी कोई वंशावली तयार नहीं की है। फिर भी जितना भी इस सम्बन्ध में हम खोज कर सके हैं उसके आधार पर सूरज वंश का एक कुर्सीनामा आगे दे रहे हैं।

नानकदेव जी के जन्म से कल्यानराय के घर में नितान्त खुशी हुई क्योंकि आप उनके इकलौते और अंतिम पुत्र थे। पुत्र के लिए मातायें कितनी लालायित रहती हैं और यह भी देर से पैदा हों तो और भी खुशी का ठिकाना नहीं रहता है। कल्याणराय ने इस अवसर पर बड़ा उत्सव मनवाया, मंगलाचार हुए। बधाये गाये गये। कुल पुरोहित हरदयाल पंडित ने आकर जन्म पत्र बनाने की तैयारी की। पंडित के पूछने पर दौलता दाई ने

जन्मोत्सव

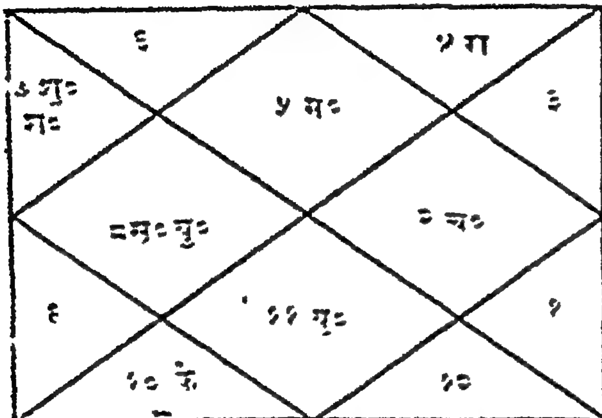
१ कुछ लेखकों ने एक बात बडे मजे की लिखी है कि यह सत्व पाण्डवों का समकालीन था। पाण्डव तो अब से पाच हजार वर्ष पहिले पैदा हुए थे जब कि यह सत्व अब से आठ सौ वर्ष से भी ज्यादा पहिले नहीं पैदा हुआ।

२. पंजाबी में गाव को पिंड कहते है।

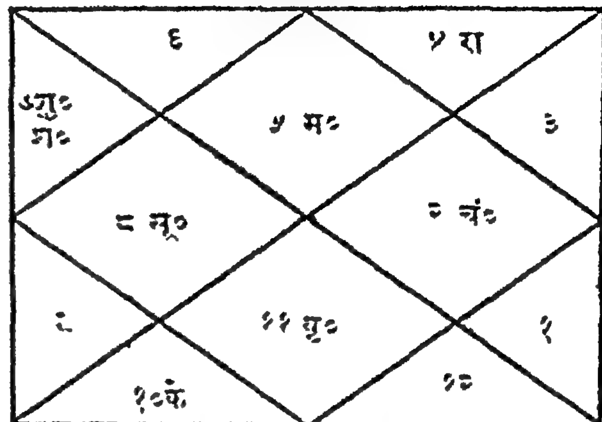
३. इनके कल्यानचन्द कल्यान और कालू कई नाम लिये जाते थे।

बताया लड़का बड़े शुभ मुहूर्त में हुआ। पैदा होते ही खिलता है। इसके पैदा होने के समय घर में दैवी प्रकाश और सुगन्धि फैल गये थे। दाई ने जाकर पुरोहित जी को भी बच्चा दिखा दिया। ठीक समय पर पंडित ने जन्मपत्र तैयार करके कल्यानराय को दिया और सुनाया कि लड़का बड़ा प्रतापी होगा। इसके

इतिहास गुरु खालसा से



प्राण संगली से



लक्षण तो चक्रवर्तियों जैसे हैं। तुम्हारे कुल को उजागर कर देगा। नाम इसका नानक होगा. कल्यानराय जी अपने पुत्र के ऐसे शुभ लक्षण और उज्वल भविष्य को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। पुरोहित जी को खूब दान दक्षिणा दी गई।

नाम पर बहस

नानक जी के नाम पर बहुत बहस होती है। कुछ लेखकों ने लिखा है कि शायद गुरु जी अपनी ननसाल में पैदा हुए थे—पंजाब में ऐसा रिवाज भी है कि प्राय. स्त्रियाँ प्रसव के समय मायके चली जाती हैं—अत. उनका नाम नानक रक्खा गया। कुछ इतिहासकारों ने लिखा है कि चूंकि उनकी बड़ी बहिन का नाम नानकी था। इसलिए नानक नाम रक्खा गया। कुछ लोग यह भी लिखते हैं कि पुरोहित ने नानक नाम इसलिए रक्खा कि यह बच्चा हिन्दू, मुसलमान दोनों के लिए प्रिय और हितकारी सिद्ध होगा। अपने-अपने दृष्टिकोण से यह सभी कथन सही हो सकते हैं किन्तु हमें जो ठीक कारण नानक नाम रखने का जान पड़ता है वह यह है। गुरु जी का जन्म जिस घड़ी और नक्षत्र में हुआ था उसके अनुसार उनके नाम का पहला अक्षर 'ना' होना चाहिये। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार बारह राशियाँ हैं सत्ताईस नक्षत्र हैं। यह बारहों राशियाँ बारह महीनों पर वर्तती हैं उदाहरणार्थ वृष राशि जेठ महीने और मकर राशि माघ महीने पर वरतती है। गुरुजी का जन्म कार्तिक की पूर्णिमा को हुआ था अत. उस समय वृश्चिक राशि थी। इसी प्रकार सत्ताईसों नक्षत्र बारी-बारी से इन बारहों राशियों पर वरतते हैं। उनका वरतने का क्रम यह है कि सालभर में उन्हे बारह राशियों पर घूम लेना होता है। गुरुजी के जन्म समय वृश्चिक राशि पर अनुराधानक्षत्र था नाम रखने की प्रणाली में—ज्योतिष ग्रन्थों में—कुछ अक्षर मुकर्रर हैं। अत: उसके अनुसार तो बच्चे के नाम में प्रथम अक्षर 'न' होना चाहिए था। इस अक्षर पर नारायण, नागपाल, नाथ, नानक आदि नाम रक्खे जा सकते हैं चूंकि नारायण और नाथ कालू जी के दादे पड़दादों के नाम थे। अत: पंडित ने नानक नाम ही उचित समझा। नानकी नाम पहिले से ही उनकी बहिन का था भी। इसलिए पंडित को और भी सहूलियत होगई। हम समझते हैं कि बहिन नानकी का नाम भी शायद घड़ी मुहूर्त और राशियों के

विचार से ही रक्खा गया होगा। इस धारणा मे कुछ सार भी दिखाई देता है। क्योंकि हम देखते हैं। दोनो वहिन भाइयों के स्वभाव मे वहुत कुछ समानता भी है घर के अन्य सभी कुटुम्बी नानकदेव जी के भक्ति भाव और मनोवृत्तिके विरोधी है किन्तु नानकी जी ने कभी एक शब्द भी अपने भाई के विचारों के खिलाफ नहीं कहा, धर्म परायणता, दयालुता, पवित्रता सभी गुण नानकी मे मिलते हैं। परिवार के लोगों मे नानकी ही पहिला व्यक्ति था। जिन्होंने नानकदेवजी की अलौकिक शक्ति को पहचाना।

"पूत के पॉव पालने मे ही दीख जाते है।" यह एक लोकोक्ति है जिसमे वच्चों के सम्बन्ध मे यह खयाल कर लिया जाता है कि वह वड़ा होने पर कैसा होगा। वचपन वास्तव में नींव है। गुरु नानक जी की यह नींव भी भक्ति और दयालुता पर ही खड़ी हुई थी। वच्चों में

वालकपन

खेलते समय वे उनके साथ प्रेम का व्यवहार करते उन्हे ईश्वर सम्वन्धी भजन सुनाते। घर की चीजों को उठाकर गरीव वालकों को देते-दते या पड़ौसी गरीव घरों में दे आते। मॉ वड़ा लाड करती थीं। वडे प्रेम से रखती थीं और उन प्यार के साथ इस कार्य के लिए डपटती भी कि वह घर की चीजों को वाहर क्यों दे आता है। मॉ ने एक दिन स्वप्न मे देखा एक सिंहासन पर वालक नानक वैठा है और ऋषि मुनि एवं देवता आकर उनकी स्तुति कर रहे है। उस दिन उनका प्यार और भी वढ़ गया।

एक दिन नानकदेव जी की मौसी अपनी वहिन से मिलने आई। उसने देखा वालक नानक अच्छी चीज का संग्रह अपने लिए नहीं करता किन्तु अडोस-पड़ोस के गरीव वालकों को दे देता है या फकीरों को बॉट देता है। उसने कहा वहिन तेरा नानक तो पागल लड़का है। नानकजी हॅसकर वोले किन्तु मौसी तेरे घर मे मेरा जैसा ही एक पागल होगा (आगे चलकर हुआ भी ऐसा-उनकी मौसी का लडका रामरत्न घर-वार छोडकर सत हो गया। जिसका कसूर में स्थान भी है) कहा जाता है उनके वैठने, खेलने, कूदने और हॅसने के सभी ढंग निराले और मोहक थे।

संवत १५३२ विक्रमी मे जव नानकदेव जी की अवस्था सात वर्ष की हुई तो कल्यानराय जी ने उन्हे लेजाकर गोपाल पंडित की पाठशाला मे हिन्दी पढने के लिए विठाया। जो आगे चलकर ससार को पढ़ावेगा और पढावेगा वह चीज जो मुरदा जगत को जीवन ज्योति प्रदान करेगी।

शिक्षा दीक्षा

प्रेमवश पिता ने उसी पुत्र को पडित के सुपुर्द किया।

आदि गुरु ग्रन्थ साहव महला १ मे एक श्रीराग इस प्रकार है—"जालि मोहु घसि मसु करि मति कागदु करि सारु। करि वितु लिखा री गुरु पुछि लिखु विचारु॥ लिखि नाम सालाह लिख, लिखि अन्तु न पारावार॥१॥ वावा इहु लेखा लिखि जाणु, जित्थै लेखा मागियै तिथै होइ सचा निसाणु॥ अर्थात्—हे चित्त रूपी लेखक मोह को जलाकर त्याग रूपी स्याही वना और वुद्धि रूपी कागज पर प्रेम रूपी कलम से सत्यासत्य का विचार लिख और लिख परमात्मा का नाम जिसका पार ही न आ सके। वावा अगर ऐसा लिखना जान गया तो जहॉ भी लेखा (हिसाव) मागा जायगा वहीं सचाई सिद्ध (निशान) होगा।" इसके लिये श्रद्धालु सिखों का कथन है कि गुरुदेव ने यह वाक्य गोपाल पंडित के प्रति कहे थे। गुरुजी का चित्त आठों पहर भक्ति मे डूवा रहता था, चलते-फिरते उठते वैठते ध्यान उनका परम पिता परमात्मा की ओर ही रहता था। पाधे के वार-वार यह कहने पर कि लिखो गुरु जी ने उसके हृदय कपाट को खोलने के लिये अवश्य ही ऐसा कह दिया होगा क्योंकि जिस लिखने की अत्यन्त आवश्यकता है वैसे लेखे की ओर तो ध्यान तक नहीं है और उस लेख के लिए इतनी सिर पच्ची करता है। गुरुदेवजी के

लिये पहला मौका था और यही। और तो अलिफ़ था और आगे गोपाल जी का प्रेम (मकरन्द) ही पढ़ना, पढ़ाना था। गुरुग्रन्थ के इस पद में यही उल्लेख है कि और तो इस प्रकार का लिखना नहीं किन्तु "लिखना साचा का है, लिखना कि अंत न पारावार। नानक कि (नाथा) 'एहु लेखा लिख जाणु' तो "जितु लेखा मांगिए तितै होइ सचा लिखाणु" परन्तु ऐसा लिखना उस समय तक नहीं आ सकता जब तक कि "जालि मोह घसि मसु करि मति कागदु करि सारु" जब न किया जायगा और "काट बिनु मिलागो गुरु बुधि लिखु बिचारु" की बुद्धि न बनाई जायगी।

इस तरह मानों गुरु का नामपाल पढ़े पर जो भी असर पड़ा हो किन्तु उसका यह मतलब नहीं है कि गुरु जी पढ़ने में कोरित रह गये हों। किन्तु यह कहा है कि पढ़ने के पीछे उन्होंने अपनी लौ को परम पिता परमात्मा की ओर से न हटने दिया।

उस जमाने में हिन्दुओं की शिक्षा ऐसी कोई लम्बी चौड़ी न होती थी आज की तरह भूगोल, ज्योमिति, इतिहास, नागरिक और बीज गणित के इतने नाम मालूम न थे। अक्षरज्ञान के अलावा बही खातों का हिसाब और उस हिन्दी का पढ़ाई लेखन। पढ़ने लिखने में उत्साहित न होते हुए भी गुरु नानक देव जी जैसे प्रतिभाशाली बालक के लिये उन बातों को सीख लेने में देर ही क्या थी। पण्डित तो गुरु जी की बुद्धि से चकित हो रहता था।

इसके बाद ३ वर्ष बाद पिता ने अपने प्यारे पुत्र को सम्वत १५३५ विक्रम में पं० ब्रजनाथ जी शर्मा के पास संस्कृत सीखने के लिये बिठाया। "ॐ नमः सिद्धम" पंडित ने लिख कर गुरु जी को दिया और कहा इसे याद करलो। भला गुरु जी को इसमें याद करने को क्या था। उन्होंने कहा पंडित जी इसका अर्थ भी समझा दीजिए किन्तु पंडित ने प्रचलित प्रणाली के अनुसार केवल रट लेने पर ही जोर दिया। संस्कृत के पुराने ढंग के शिक्षक अब भी रटाते ही हैं। अर्थ साथ ही साथ नहीं बताते हैं। गुरु जी के इसका अर्थ बताने के लिए जोर देने पर पंडित ने कहा अभी आपको इस प्रकार अनेकों ग्रन्थ कण्ठस्थ करने होंगे। गुरु जी ने उस पर उत्तर दिया भला उन ग्रन्थों को कण्ठ करने से क्या लाभ जिनका अर्थ ही मालूम न हो। पंडित ने ओंकार का अर्थ अपनी धारणा के अनुसार गुरु जी को बताया किन्तु गुरु जी उससे संतुष्ट नहीं हुए और उन्होंने स्वयम ही ओंकार का ऐसा विवेचना युक्त अर्थ किया कि पंडित विस्मित हो गया। पंडित पर गुरु जी की योग्यता की यह छाप लगी कि वह स्वयम गुरु जी की ओर आकर्षित होने लगा और उनकी मानव जीवन को ऊँचा उठाने वाली और कल्याण प्रद बातें बड़े चाव से सुनता।

सं० १५३७ विक्रमी में कल्याणराय जी ने नानक देव जी को मौलाना कुतुबुद्दीन के पास फारसी पढ़ने के लिये बिठाया। सिख तवारीखों मे लिखा है कि यहाँ भी नानक जी ने अपने चातुर्य से मौलवी साहिब को चकित कर दिया। अलिफ़ बे, पे आदि परमात्मा सम्बन्धी ऐसे सुन्दर अर्थ किये कि मौलवी कुतुब आनन्द विभोर हो गया और उसने गुरुजी को मन ही मन कोई वली अन्दाज कर लिया। और जब तक गुरु जी उसके मकतब मे गये वह उन्हे सम्मान की दृष्टि से देखता रहा।

इसी बीच नानक देव जी ग्यारह वर्ष के हो चुके थे हिन्दू धर्म शास्त्रों की मर्यादा के अनुसार क्षत्रिय के बालक का जनेऊ इस उम्र में हो जाना चाहिये। इसलिये कल्यानराय जी ने भी यज्ञोपवीत संस्कार कराने का आयोजन किया। घर में और बिरादरी मे बड़ी खुशी मनाई जा रही थी। साफ सुथरे और सजे हुए घर के बीच यज्ञ मंडप मे पंडित लोग स्वस्ति वाचन और मंगलाचरण पढ

रहे थे। स्त्रियाँ गीत गा रही थीं वेद मंत्रों की ध्वनि से वायुमंडल गूंज रहा था। पुरोहित हरिदयाल ने ठीक मुहुर्त मे कहा बच्चे को लाओ। नानक देव ने यज्ञस्थल मे पहुचकर पंडित से कहा--"मुझे ऐसा जनेऊ पहनाओ जो न तो कभी टूटे और न बदला जावे। जो ईश्वरीय हो। जिसमें दया का कपास हो, संतोष के सूत से जिसकी जत बनाई गई हो। ऐसे जनेऊ को पहन कर ही कोई सधन्य हो सकता है।

ग्रन्थ साहब मे इस भाव को इस प्रकार व्यक्त किया गया है :—

दया कपाह सतोष सूत जतु गढी सतु बहु।
ऐह जनेऊ जीय का हई त पाडे घतु॥
ना एहु तुट्टे न मल लगै न एहु जलै न जाइ।
धन्न सु माणस नानका जो गलि चल्ले पाइ॥ श्लोक महिला १

हिन्दू धर्म में जनेऊ केवल हिन्दुत्व और खास करके द्विजत्व का परिचायक है। स्वच्छता और स्वस्थता के लिये जनेऊ प्रेरक है किन्तु नानक देव जी के समय मे जनेऊ धारण करने के माने ही उलटे थे। लोग अशुद्ध भी रहते थे। झूठ भी बोलते थे पाप भी करते थे। मूर्ख और निरक्षर भी बने रहते थे किन्तु केवल जनेऊ धारण कर लेने ही के कारण वे अपने को द्विज, ब्राह्मण या श्रेष्ठ समझने लग जाते थे। एक तरह से उन दिनों जनेऊ ढोंग का आधार बना हुआ था। व्यर्थ की अहमन्यता जनेऊ धारण से पैदा हो रही थी। ऐसी हालत का गुरुदेव ने विरोध किया यह हिन्दूधर्म के भले ही की बात थी। यह विरोध जनेऊ का नहीं किन्तु नाशकारी और गलत भावना का था जो जनेऊ पहनते ही उस समय पैदा हो जाती थी।

यज्ञोपवीत संस्कार के इस उत्सव पर हुई बहस का यह नतीजा हुआ कि लोग गुरु जी के सम्बन्ध मे अनेक प्रकार की बातें कहने लग गये कोई कहता इसका दिमाग ठीक नहीं है, कोई कहता यह तो कुराह पर चलने लगा है। कुछ लोग सचाई के साथ भी उनकी बातों को विचारने लगे।

कहा जाता है कल्यान राय जी को पैसे से बडा मोह था वे अधिक से अधिक कमा लेने और सग्रह करने की रुचि के लोक व्यवहारी आदमी थे। यद्यपि नानक देव उनके एक ही पुत्र थे किन्तु वह यह नहीं बर्दास्त कर सकते थे कि यह एक लड़का भी बैठा ठाला रह सके इसलिये उन्होंने देखा कि जब इसका पढने लिखने मे चित नहीं लगता है तो उन्होंने अपने पुत्र को गायें चराने के लिए जंगल भेजना आरभ कर दिया। उस समय खत्रियों में आज की तरह लालापन नहीं आया था वे खेती और पशु पालन के काम को बुरा नहीं समझते थे। भगवान् कृष्ण ने बालक पन में गायें चराईं थीं। हजरत मुहम्मद भी बकरी चराते थे। काम और धधों को हेटा समझने की रवाज तो अब चली है। नानक जी भी गाये चराने जाने लगे। साथ के बालकों मे अपना प्रचार भी करने लगे। जगल मे संगति बैठती और हरि चर्चा आरंभ होती। नानक जी उपदेश करते और दूसरे बच्चे ध्यान से सुनते। गायों के लिये छुट्टी थी जहाँ तक भी तबीयत आये चरे। कुछ लोगों ने कल्यानराय जी को उलाहना दिया कि आपका पुत्र जब से गायों को चराने जाने लगा है। हमारा नुकसान होता है क्योंकि दूसरे लड़के भी उसकी हरि कथा सुना करते हैं। पशुओं की रखवाली नहीं करते। इस तरह का श्री नानक देव का ढंग देखकर कल्यानराम बड़े घबराये क्योंकि वह तो लोक व्यवहारी आदमी थे। सोचने लगे इस तरह से तो घर बरबाद हो जायगा और लड़का जब न तो पढ़ता है और न घर का काम करता है तब काम कैसे चलेगा। साथ ही घर के माल को फकीर फुकरों को बाँट

घर के धंधों मे

कर [illegible] और करता है। उन्हें तो भविष्य की आशायें भी थीं—उनके मनसूबे थे वे सोचते थे मैं लड़के को खास मेहनत से पढ़ाऊंगा अगर यह मेरे मन को माफिक पढ़ गया तो किसी बड़े नवाब के यहाँ दीवान बनवा दूंगा और अगर दुकानदारी का काम सीख गया तो एक बड़ा सौदागर बना दूंगा किन्तु जब इन [illegible] की ओर से कल्याण राय निराश हुए तो हरिदयाल पांडे¹ ने जाकर कहा महाराज खूब खुश हो जाइये।² तुम देखोगे कि यह लड़का बड़ा प्रतिभावान और वैभव सम्पन्न होगा। क्या [illegible] [illegible] वैभव सम्पन्नता है? पण्डित के पास से आकर घर अपनी गृहणी से कहा, लड़का तो किसी भी काम का नहीं।

इधर श्री नानक देव जी का भी यह हाल था कि वे बहुत उदास रहते थे। घर से जंगलों को निकल जाते, भूख प्यास की कोई चिन्ता नहीं करते। जब वे घर पर आते। तबीयत में आता तो कुछ खाते पीते। माता [illegible] अपने बच्चे की यह हालत देख कर घबरा गई कल्याणराय जी ने उन्होंने समझा कर कहा कि हो, न हो, बच्चे को कोई तकलीफ है। कल्याणराय जी नानक जी से वैसे खिन्न थे किन्तु आखिर थे तो पिता, घबरा गये और वैद्य को बुला कर लाये। वैद्य क्या इलाज करता और नानक देव जी क्या इलाज कराते उन्हें कोई शारीरिक रोग थोड़े ही था इसलिये जब वैद्य उनकी नाड़ी टटोलने लगा तो उन्होंने कहा.— "वैद बुलाइआ वैदगी पकड़ ढंढोले बांह। भोला वैद न जानई करक कलेजे माहि ॥१॥ वैदा वैद सु वैद तू पहिला रोग पछाणु। ऐसा दारू लोड़ि लहु जितु वंञै रोगा घाणि ॥२॥ जितु दारू रोग उठि गहि तनु सुख वसै आइ। रोग गवाइहि आपणा ता नानक वैद सदाय ॥३॥" (श्लोक महला १) इन शब्दों का वैद्य हरिदास पर ऐसा असर पड़ा कि उसने नानक देव को नमस्कार करके अपनी श्रद्धा अर्पित की और कल्याणराय जी से कहा कि आप कभी भी न घबराइये तुम्हारा पुत्र रोगी नहीं किन्तु यह इस दुखी देश के रोग को दूर करने के लिए ईश्वर का भेजा हुआ वैद्य है।

रायबुलार का आकर्षित होना

तलवंडी का जागीरदार रायबुलार एक बड़ा परन्तु भली प्रकृति का आदमी था। वह फकीर लोगों की पीरी और करामातों में खूब विश्वास रखता था। नानक देव जी का भी वह शनैः शनैः भक्त होता जा रहा था। उसके आकर्षित होने की शुरूआत एक किसान की शिकायत के झूठे होने वाले दिन से होती है। श्रद्धालु लिख इस घटना का वर्णन इस प्रकार करते हैं कि जब नानकजी अपनी गायों को चराया करते थे तो एक किसान का सारा खेत गायों ने उजाड़ दिया। किसान श्री नानक देव जी समेत सभी चरवाहों को राय बुलार के पास पकड़ कर ले गया और कहा कि इन लोगों ने अपने पशुओं से मेरे खेत को चरवा दिया है। राय बुलार के पूछने पर नानक जी ने कहा इसका खेत तो हरा भरा खड़ा है यह कैसे कहता है कि चरवा दिया। राय बुलार ने अपने आदमी को उस किसान के साथ खेतों की

१. पंजाब में पांडे को पाधे कहते हैं।

२. पं० हरिदयाल ने जन्म पत्र के अनुसार बताया था यह बालक लोक प्रसिद्ध होगा। इसके ग्रह बहुत ऊंचे हैं। दरअसल बात यह है कि जिस अनुराधा नक्षत्र में वे पैदा हुये थे वह नक्षत्र देवता वर्ग में है। और यह वृ[illegible] राशि ब्राह्मण वर्ण है। इस प्रकार के योग से नानकदेव जी के सम्बन्ध में पंडित ने जो कुछ कहा था वह [illegible] उस विश्वास के माफिक ठीक कहा था जो उसने ज्योतिष शास्त्र के पढ़ने से बनाया था।

जांच करने भेजा, किसान ने लौटकर कहा मैं नहीं जानता यह क्या जादू होगया है। अब तो खेत हरे खड़े हैं। बस इसी दिन से राय बुलार यह खयाल करने लगा कि कल्यानराय का लड़का "यों ही साधारण आदमी नहीं है।"

इसके बाद उसने एक दिन जबकि वह अपने आदमियों समेत शिकार खेलकर लौट रहा था देखा कि बालक नानक एक पेड़ के नीचे सो रहा है और एक नाग फन को फैलाकर उनके चेहरे की छाया कर कर रहा है क्योंकि ऊपर से पेड़ की पत्तियों मे छन छन कर धूप आ रही थी। बुलार ने मन ही मन में गुरुदेव की वन्दगी की तथा अपने साथियो को भी यह कौतुक दिखलाया। इन घटनाओं को देखने के बाद राय बुलार पूरी तरह से गुरुजी की ओर आकर्षित हो गया। उसने कल्यानराय जी से कहा कि कालू तेरे घर में जो लड़का पैदा हुआ है। वह कोई मामूली आदमी नहीं है। अवश्य ही वह कोई वली है।

जहाँ तक भी हमे संसार के धार्मिक महापुरुषों के इतिहास का पता है वहाँ तक हम कह सकते हैं कि उनके उन महान कार्यों के साथ जो उन्होंने लोक उद्धार के लिए किये थे करामातो का भी एक बड़ा सिलसिला है। भगवान कृष्ण ने गोवर्द्धन पहाड़ को अंगुली पर उठा लिया, हजरत मुहम्मद ने चाद के दो टुकड़े कर दिये। भगवान बुद्ध ने मुरदे को जिया दिया। हजरत मूसा ने दरियाव को फाट दिया। आदि आदि। ऐसा सिलसिला गुरु नानक देव जी के उन महान सुधार-कार्यो के साथ भी लगा दिया गया है जो उन्होंने हिन्दू जाति को अमर करने के लिये किये। इस तरह के कथन मे हमारा यह मतलब नहीं कि उपरोक्त महा पुरुष करामाते स्वत दिखाते थे या भक्तजन उनके सामर्थ्य पूर्ण कार्यों को ही अपनी सामर्थ्य से बाहर होने के कारण करामात समझ लेते थे। हमारा तो खयाल है महापुरुष संसार के लिए ईश्वरीय देन होते है और उनके अनेकों कार्य भी दैवोत्तर होते हैं। रायबुलार पर भी ऐसे ही दैवोत्तर कार्यों का प्रभाव पड़ा था और वह उतरोत्तर बढ़ता ही गया।

शेख फरीद

पाक पट्टन में शेख फरीद की समधि पर उन दिनों बड़े भारी मेले[1] लगते थे। कल्यान राय जीके मीरासी मरदाना ने नानक देव को मेला देखने के लिये उत्साहित किया। नानक तो स्वत ऐसी बातों के लिये तयार रहते थे। राजी हो गये और दोनों पाक पट्टन पहुँचे। क्या हिन्दू क्या मुसलमान हजारों ही आदमी बाबा शेख फरीद की समाधि पर श्रद्धा के फूल चढ़ा रहे थे। गुरु देव ने यह सब कुछ देखा किन्तु वह इस पाखंड को देखने थोड़े ही आये थे वे तो फकीरों से ज्ञान चर्चा करना चाहते थे। उन दिनों वहाँ का महत शेख इब्राहीम था। गुरुजी ने उसके साथ सत्सग का प्रस्ताव रक्खा पहिले तो इब्राहीम ने सोचा यह कमसिन बालक उनके साथ क्या ज्ञान चर्चा करेगा किन्तु जब बाते हुई तो इब्राहीम पर गुरुनानक का बड़ा असर पड़ा। यहाँ गुरुजी ने जो उपदेश दिया वह गुरु ग्रन्थ साहब में मारू राग की वार में लिखा हुआ है। यह घटना संवत १५४१ विक्रमी जेष्ट की पूर्णमासी की है। बराबर तीन दिन तक साधु सतों और फकीरों से सतसंग करके जब गुरुजी घर लौटे तो कल्यान राय जी ने उन्हे एकान्त मे बिठाकर सिर पर हाथ फेरते हुए समझाया कि बेटे इस तरह बिना काम काज के इधर उधर घूमने से हमारा काम कैसे चलेगा। कुछ तो तुम्हे करना ही चाहिए। रात को माँ ने भी बड़े प्यार से उन्हे समझाया। माँ तो दुखी भी हुई कि बेटे तुम मुझे इस तरह छोड़कर

१. इस घटना को डा० गडासिंह जी और दूसरे कई लेखक सुल्तानपुरा के बाद की मानते है।

पिता का कहे अपने पद से चलत रहे हो। किन्तु माँ पिताजी को क्या पता था कि मेरा पुत्र आगे चलकर करोड़ों मानवों के मनों को सन्मार्ग पर लाने का देवोपम कार्य करेगा।

कल्यानराय ने यही उचित समझा कि लड़के को व्यापार में लगा दें इससे इसका चित्त भी बंटा रहेगा और हाथों में होने की लत से फकीर, साधुओं और वैरागियों के झंझट से भी दूर रहेगा, अतः उन्होंने श्री नानक देव को रुपये देकर कहा कि ये रुपये लेकर शहर जाओ और वहां से कुछ ऐसा सौदा लाना जो सस्ता हो और साथ ही मुनाफे का हो। क्योंकि अभी तक इन्होंने अपने पुत्र को अकेला कहीं भेजा था नहीं। इसलिए भाई बाला जी को साथ कर दिया। भाई बाला सिन्धु गोत्र के जाट जमादार के लड़के थे। दोनों चूहड़काने की ओर चले। देखा साधुओं का एक दल पड़ा हुआ है। बस उधर को मुड़ पड़े। उन साधुओं का कोई कबीर पंथी बतलाते हैं कोई संन्यासी और कोई निर्वाणी। इनके महन्त सन्त रेन के साथ नानक जी ने ज्ञान चर्चा की। इसी बीच इन्हें मालूम हुआ कि ये साधु तीन दिन से भूखे हैं। इस बात को सुनकर नानक जी को बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने इसी समय भाई बाला जी को चूहड़काना गांव में भेज कर दाल चावल और आटा घृत मंगा दिया। कहा जाता है कि भाई बाला ने नानक जी को इस बात का भी ध्यान दिलाया था कि इन्हें तो आपके पिता जी ने सौदा खरीदने भेजा है किन्तु वह नानक की आज्ञा को टाल नहीं सका। अब आगे किसलिये जाना था। अतः लौट कर गांव आ गये किन्तु नानक ने पिता जी की नाराजगी को धीरे-धीरे शमन करने के उद्देश्य से घर जाना ठीक नहीं समझा वहीं एक पेड़ पर ठहर गए। यह स्थान आजकल तम्बू साहब के नाम से मशहूर है। भाई बाला भी सीधे कल्यानराय के पास न पहुंचे घोड़ों को तो कल्यानराय के यहां भिजवा दिया और खुद अपने घर को चले गए। कल्यानराय समझ गये – मेरे मन कछु और है कर्ता के मन कछु और।" किन्तु वे बिलकुल कर्ता के भरोसे पर रहने वाले आदमी न थे। और कोई भी संसारी आदमी ऐसा होता है। बाला जी से सारा हाल दर्यापत करके कल्यानराय जंगल में पहुंचे और श्री नानक देव जी को फटकारते हुए घर ले गए। तृप्ता देवी से कहा, ले देखले अपने बेटे की करतूत। माता ने बीच में पड़ कर मार पीट को रोक दिया। हम देखते हैं माता यशोदा ने भगवान कृष्ण को डांट करने के इरादे से ऊखल से बांध दिया था। वह बेचारी क्या जानती थी कि भविष्य में कृष्ण अवतारों में गिना जायगा। यही बात कल्यानराय के भी सम्बन्ध में है। नानक देव जिन सिद्धान्तों को लेकर संसार में हमदर्दी, प्रेम और भक्ति फैलाना चाहते हैं कल्यानराय जी के लिए वे ही बातें और कार्य नासमझी के लक्षण जान पड़ रही थीं।

सच्चा सौदा

रायबुलार ने जब यह समाचार सुना तो कल्यानराय को अपने पास बुलाया और कहा नानक देव ठीक कहते हैं कि पिता जी मैंने सच्चा ही सौदा किया है। इस सौदे में कोई घाटा नहीं है। बिलकुल खरा और धोरे धर्म से खाली है। आगे बुलार ने फिर कहा ऐसे पुत्र सब किसी के घर नहीं पैदा हुआ करते हैं। वली होकर भी वे तेरी डाट डपट सब स्वीकार करते हैं। एक दिन सारी दुनियाँ जिसकी पूजा करेगी उसे तुम इस बीस रुपये के लिये तंग करते हो यह लो बीस रुपये। उनके खर्च किया हुआ रुपया मुझसे लेते रहना। तुम उनसे कुछ भी न कहना। कल्यानराय शर्मिन्दा होकर घर को चले आये।

[1] रियासत कपूरथला में सुलतानपुर एक शहर है- उन दिनों यहां पर दौलतखान नाम का मुस्लिम सूबेदार था। एक प्रकार से वही मालिक था। गुरु जी की बहिन नानकी का विवाह दौलतखाँ के कारिन्दे

जेयराम के साथ हुआ था। जयराम बहुत ही नेक और सहृदय व्यक्ति थे। संवत् १५४१ वि: के फागुन मे वह तलवंडी गए। वहा उन्होंने नानकदेव के प्रति पिता द्वारा किये जानेवाले कठोर वर्ताव की बाते सुनी और सांकेतिक तौर पर राय-बुलार ने भी कहा अत वह नानकदेव जी को सुलतानपुर ले गये। कहा जाता है रायबुलार ने कल्यानराय जी को भी सलाह दी थी कि नानक देव को जयराम जी के साथ सुलतानपुर भेज दिया जाय।

सुलतानपुर जाना

बहिनोई के साथ सुलतानपुर को विदा होते समय नानक देव जी राय बुलार से मिलने के लिए गये थे। चलते समय कल्यान राय ने एकान्त मे श्री नानक देव जी को कारबारी आदमी बनने के लिये बहुत समझाया। माता तृप्ता की आँखों मे आँसू डबडबा आए, माँ का हृदय होता ही कोमल है। पुत्र विछोह उनके लिए मुश्किल से बर्दास्त करने को चीज होती है किन्तु नानक देव ने माता जी को धीरज दिया और वे सुलतानपुर चले गये।

गोकि नानकदेव जी के बहन बहनोइ बड़े ही उदार और ऊँचे खयाल के आदमी थे। कल्याण-राय को तरह जैराम को पैसे इकट्ठा करने की कोई भारी ख्वाहिश नहीं थी। वे दोनों ही नानकदेवजी को प्यार से रखते थे और चाहते थे कि यह मजे से नहाये धोये और आराम के साथ निश्चिन्त होकर हरि का भजन करे किन्तु नानकदेव ने यह उचित नहीं समझा कि वे बहन बहनोई के धान को इस तरह ठाली रहकर खावे। अत: उन्होंने जयरामजी से कुछ कारबार जुटा देने की इच्छा जाहिर की। आतरिक इच्छा जयराम की भी यह थी कि नाननजी किसी काम से लग जाय तो इनकी तबियत लगी रहे वरना किसी दिन मन मे आगई तो उठ निकलेंगे। किन्तु बीबी नानकी उन्हें किसी झंझट मे डालना नहीं चाहती थीं इसलिये उन्होंने बड़े प्रेम से कहा, भैया तुम आनन्द से ईश्वर का भजन करो, अपने यहाँ सब कुछ है तुम क्यों कर इस झंझट मे पड़ते हो।

मोदी खाना

आखिरकार वह धधे मे लग ही गये नवाब दौलतखाँ ने उन्हे अपना मोदी[१] बना दिया गुरु जी की भूखे लोगों और साधु सतों को खिलाने पिलाने की वही प्रथा जो तलवंडी मे थी यहाँ भी चलने लगी किन्तु कहना य चाहिये कि और भी तेजी से क्योंकि यहाँ कोई रोकटोक करने वाला तो था ही नहीं जो भी मागने जाता दिल खोलकर देते। 'तेरा ही है तेरा ही है।' देने मे यही उनका शब्द होता।

दुनियाँ मे भले बुरे सभी प्रकार के आदमी होते हैं कुछ लोगों को नानकजी का यह शुभ काम भी अखरा उन्होंने नवाब से शिकायत की अच्छा मोदी बनाया, सारे माल को वह तो भिखमंगों को चन्द दिन मे ही लुटा देगा।

इस समय तक भाई बाला जी भी सुल्तानपुर आ चुके थे जब उन्होंने देखा कि नानकजी तो दुकान के काम मे लग गये हैं तो उन्होंने भी अपने घर जाकर खेती क्यारी का काम सभालने की आज्ञा मागी, हँसते हुए गुरुजी ने कहा भाई यह काम तो थोडे दिन का है। हमे जो काम करना है वह तो अभी बाकी पडा है।

गुरदासपुर जिले मे रंधावे की पक्खो एक गाँव है। वहाँ के मूलचन्द नामक चीना खत्री की लडकी के साथ गुरुजी का टीका होगया। बहिन नानकी ने तलवेडी मे अपने माँ बाप के पास विवाह के

१. उस समय की शासन प्रथा में वेतन सम्बन्धी दो कायदे थे। नगद वेतन देने का और सामग्री देने का। सामग्री देने के लिए ही उस समय मोदी रक्खे जाते थे।

महान् गुरु



श्री नानक देव जी

उदासी सम्प्रदाय संस्थापक



वावा श्रीचन्द जी

दिन की बारात पहुँचनी थी। बरात पक्खो पहुँची ब्याह हुआ। उस समय जेठ की २४ वीं तिथि और संवत १५४४ विक्रम था। संवत १५५१ विक्रम में माई सुलक्खनी की कोख से एक पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम श्रीचन्द रक्खा गया।[1] इसके बाद संवत् १५५३ वि० १६ फाल्गुन में दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ जो लक्ष्मीचन्द के नाम से मशहूर हुआ।

[illegible]

यह सब कुछ हुआ किन्तु जैसे कमल जल में रहकर भी जल से अछूता ही रहता है वैसे ही गुरु जी भी गृहस्थ में रहकर भी गृहस्थ जाल के बन्धन से अलिप्त रहे। वे प्रातः चार बजे उठकर शौच स्नान से निवृत्त होते थे और फिर परमात्म-चिन्तन में लग जाते थे दिनभर मोदीखाने का काम करते कराते, भूखे नंगों को अन्न देते। शाम को साधु सन्तों का सत्संग करते। यही उनकी जीवनचर्या थी।

गुरु जी के दान पुण्य और परोपकारी स्वभाव की चर्चा चारों ओर बराबर फैलती जा रही थी और आस-पास के अनेकों लोग उनके दर्शन को आया करते थे एक दिन भैरोआनीको गाँव का भगीरथ नामक सज्जन भी आया वह काली का उपासक था। नानकदेव से काफी देर तक ज्ञानचर्चा की और अन्त में वह उनका शिष्य हो गया।

घर वालों की दुनियाँ गुरुजी ने मानली। मरदाना क्यों चुप रहे आखिर तो वह उनका मीरासी है। उसने भी ऐसा करना चाहा कि वह गुरुजी के पास सुल्तानपुर पहुँचा और कहा महाराज मेरी लड़की का ब्याह है यह आपको ही करना होगा। क्या-क्या चाहिए? यह सब मरदाना से पूछकर गुरुजी ने फहरिस्त तय्यार की और भागीरथ को लाहौर भेजा कि यह सब चीजें तय्यार तो वहीं मिल सकती हैं। भगीरथ ने ये सब चीजें मनसुख नाम के साहूकार के यहाँ से खरीदीं। मनसुख ने भागीरथ से गुरुजी की प्रशंसा सुनी, वह भी भागीरथ के साथ सुल्तानपुर आया और दर्शन एवं ज्ञानचर्चा से इतना प्रभावित हुआ कि गुरुजी का शिष्य बन गया। मरदाना अपनी लड़की के ब्याह का सामान लेकर अपने घर चला गया।

यह हम ऊपर कह चुके हैं कि गुरुजी की कीर्ति बराबर इधर-उधर फैलती जा रही थी और दूर-दूर से ज्ञानचर्चा के लिये लोग उनके पास आने भी लगे थे। इस तरह से अब मोदीखाने के काम की बजाय ज्ञानचर्चा और सतसंग का काम बराबर बढ़ता जा रहा था। उधर घर में माई सुलक्खनी भी अधिक असंतुष्ट रहने लगी थीं क्योंकि अब उन्हें धन सग्रह करने की ओर भी अधिक जरूरत महसूस होने लगी थी। कारण कि दो बालकों के पैदा होने से उनके भविष्य की चिन्ता भी उन्हे लगरही थी। इसलिये वे अधिक धन देने और सब झंझटों को छोड़कर केवल दुकान और ग्रहस्थ की ओर ध्यान देने के लिये बराबर गुरुजी के ऊपर जोर दे रही थीं। इस समय गुरुजी को अनुभव हुआ कि यहि घर और वहि घर दोनों में अब एक को ही चुनना पड़ेगा। अतः उन्होंने स्पष्ट सोचा —

"बाबा जे घरि करते कीरति होइ। सो घर राखि वडाई तोइ॥ (महला १)

गृहस्थ का त्याग

भगवान बुद्ध राजा के पुत्र थे। जन्म से ही वे आत्म-चिन्तन में लगे रहते थे वे एकान्त में बैठकर अकेले ही बड़ी चिन्ता के साथ कुछ सोचा करते थे। महाराज शुद्धोधन ने इस विचार से कि शायद ग्रहस्थ में फँसकर राज कुमार गौतम (बुद्ध) प्रसन्न रह सकें इसलिये उनका विवाह कर दिया। विवाह के बाद एक उनके पुत्र भी हुआ। राज-सुख, गृहणी सुख और पुत्र-लाभ सब कुछ होते हुए भी एक दिन अचानक भगवान् बुद्ध इन सबको छोड़कर

१ उदासीन सम्प्रदाय में यह एक अवतार माने जाते हैं।

फकीर होगये। बहिन नानकी ने वडे चाव से अपने भाई का व्याह किया था। वह भी समझती थी कि अब उनका भाई ग्रहस्थ मे बँधकर सदा के लिये हमारे बीच रह सकेगा। दो पुत्र भी हुए किन्तु नानकदेव जी को मां, वाप, स्त्री और पुत्र किसी का मोह न वाध सका एक दिन वहिन नानकी और सारी दुनियाँ ने सुना कि नानक तो सब झंझट को छोड़कर फकीर होगया है।

इस्लामिक धर्म ग्रन्थों मे यह वात वडे गौरव के साथ व्यक्त की गई है कि —"फरिस्ता जब्राइल हजरत मुहम्मद को सातवे आसमान पर खुदा के पास लेगया था और वहाँ पर्दे मे से खुदावन्द करीम ने हजरत मुहम्मद से कहा अय मुहम्मद मैंने तुझे ससार से कुफ्र को मिटाने के लिये दुनियाँ मे भेजा है।" उसी उत्साह के साथ हमे सिख-साहित्य मे भी यह पढ़ने को मिलता है कि वेईं नदी मे स्नान करते समय वरुण देवता गुरुदेव को सच खंड मे परमात्मा-देव के पास ले गया। वहाँ उन्होंने राम, कृष्ण, मूसा, मुहम्मद और जरदुस्त आदि सभी उन महापुरुषों को देखा जो उनसे पहले ससार मे ईश्वर का संदेश देने के लिये आये थे। आगे अनुपम प्रकाश मे से गुरुदेव के प्रति वाणी होती है ले तेरे नाम का प्याला है तू इसे पी और संसार के मनुष्यो को गलत रास्ते से हटाकर एकेश्वरवाद की ओर प्रेरित कर मनुष्य समाज के लिये अपने २ महापुरुषो के प्रति उत्कट सन्मान और भक्ति प्रदर्शित करने की यह सवसे वडी श्रद्धांजलि है कि वह दृढ़ता के साथ यह खयाल करे कि उनका आराध्य देव परम-पिता परमात्मा के प्यारों मे था। इसमे कोई सन्देह भी नहीं कि लोक के हित के लिए अपने को कुर्वान करने के लिए परमात्मा के प्यारे ही तय्यार होते हैं। साधारण जनो का यह काम नहीं होता।

इधर गुरुजी के तीन दिन तक लापता रहने के कारण चारोंओर भांति २ की अफवाहे उड़ने लगी थीं कुछ लोग कहते थे कि मोदीखाने में वड़ी हानि हुई है जयराम चिन्ता मे पड़े किन्तु वीवी नानकी को यह विश्वास था कि भैया अवश्य आवेगे वे कहीं किसी संत से मिलने जुलने गये होगे। तीन दिन के वाद नानकदेव जी जव शहर मे लोटे तो उन्होंने घोषणा की —

"हिन्दू मुसलमान सभी उस परमपिता परमात्मा के पुत्र है। यह भेद तो यहाँ खड़े करलिये हैं और इस समय दोनोंही धर्म गलती पर है वास्तव मे न तो कोई हिन्दू है और न मुसलमान। गुरुजी को दुवारा वुलाने के लिये नवाव ने आदमी भेजा। नवाव ने गुरुजी के पहुँचते ही पूछा, आप पहिलीवार के वुलानेसे क्यों नहीं आए थे। "चूंकि अब मैं आपका नौकर नहीं रहा खुदाकी नौकरी करली है।" गुरुजीने गभीरता के साथ उत्तर दिया। नवाब ने गुस्से को दवाते हुये फिर पूछा—"इस समय तुम कर क्या रहे हो?" गुरुजी ने जवाव दिया "चूंकि इस समय हिन्दू और मुसलमान दोनों सतपथ से हट गये है, इसलिये मैं दोनो को सत्य का रास्ता दिखाने की तय्यारी कर रहा हूं।" वैसे मै दोनों धर्मो को एक दृष्टि से देखता हूँ। काजी ने वीच ही मे कहा यदि आप दोनों धर्मो को एक निगाह से देखते हैं तो हमारे साथ नमाज पढने चले। नवाव भी इसी वात पर अड़ गया। यह वात विजली की भाति शहर मे फैल गई। हिन्दू वडे चिन्तित हुए। जयराम जी ने जव यह समाचार सुना तो वे वडे घबराये किन्तु बीबी नानकीने कहा—"आप चिन्ता न करे। भैयाजी को कोई भी ताकत मुसलमान नहीं वना सकती है।

पहली घोषणा

मस्जिद मे भीतर और वाहर भारी भीड होगई। मुल्ला और काजी नमाज पढ़ने के लिये सफ़ मे खड़े हुए। गुरुजी को भी खडा कर लिया गया। किन्तु गुरुजी खडे ही रहे। जव नमाज खतम हो गई तो नवाव वोला, तुमने नमाज क्यों नहीं पढ़ी, गुरुजी ने हँसकर उत्तर दिया भला, मैं किसके साथ

नमाज पढ़ता। आपको इन्साफ से नहीं, [illegible] और आपका काजी देख भाल कर रहा था अपने उस बछेड़े का [illegible] घोड़ी ने दिया है।" वास्तव में नमाज के समय नवाब का चित्त कंधार में और [illegible] बछड़े के पास था। नवाब शर्मिन्दा हुआ। अब तक के जीवन में गुरुजी का यह काम [illegible] था। क्योंकि आज धर्म पर संकट था इस संकट मे,सुल्तानपुर के मार्ग [illegible] हुए थे। [illegible] इस विजय को सुना तो बड़े प्रसन्न हुये।

[illegible] बीबी नानकी को खबर दी कि तुम्हारे भैया जी आरहे हैं। उनकी [illegible] पर आ [illegible] है। बीबी नानकी को बड़ा ही आनन्द हुआ। [illegible] स्वागत किया।

कहा जाता है कि [illegible] त्याग देने की खबर देर से पहुंची। खबर के पहुंचने पर भी उनके माता-पिता बहुत दुःखी हुये और अपने मीरासी मरदाना को भेजा कि वह जाकर नानकदेव जी की खबर लाए। मरदाना सीधा बीबी नानकी के घर पहुंचा और फिर वहां से खबर पाकर श्मशान में पहुंचा गुरुजी की वर्तमान दशा को देखकर उसे दुःख हुआ।

मरदाना [illegible]

मरदाना रबाब बजाना खूब जानता था। गुरुजी ने उसे बीबी नानकी से रुपये लेकर रबाब लाने को भेजा। जब मरदाना रबाब लेकर आया तो गुरुजी ने सर्व प्रथम उस पर अपने इस पद को सुना :—
"[illegible] नानक [illegible] ॥" यह पद उनकी मधुर ध्वनि में और स्वर के साथ मरदाना ने गाया कि गुरुजी लोकोत्तर आनन्द में विभोर होगये।" इसी तरह से गुरुजी अवसर के समय मरदाने के भजन सुनते और उनको सिखाते। कभी-कभी गुरुजी समाधि भी लंबी लगाते थे।

यात्रा पर

सम्वत् १५५६ विक्रमी में गुरुजी ने अपनी आरम्भ की। उस समय तक सुल्तानपुर में रहते हुये उन्हें १३—१४ वर्ष व्यतीत हो चुके थे और अब उनकी अवस्था ठीक ३० वर्ष की थी।

गुरु जी कई छोटे-मोटे गांवों और कस्बों को पार करते हुए लाहोर में पहुंचे जहाँ अपने भगत जवाहिरमलजी के घर ठहरे। वहां अनेकों मुसलमान फकीरों और हिन्दू सन्तों से सत्संग किया। एक दिन सैयद अहमदशाह जो सिकन्दर लोदी बादशाह का गुलाम था। अनेकों मुल्ला मौलवियों को लेकर गुरु जी के साथ धर्म चर्चा करने के लिए आया। मन्त्र मुग्ध की भांति गुरु जी की बातें सुनता रहा। वह उनके सामने कोई भी दलील पेश नहीं कर सका और गुरुजी का शुक्रिया अदा करके चला गया। इस बात का आम लोगों पर बड़ा असर पड़ा सैकड़ों लोग गुरुजी के पास आ आकर उनके शिष्य हो गए।[1]

लाहौर में

लाहौर से चलकर गुरु जी एमनाबाद पहुंचे। वहाँ लालू नाम का खाती रहता था उसी के घर जाकर ठहरे। वहाँ खाती के घर कच्चा भोजन कर लेने से लोगों में बड़ी सनसनी फैली, मूढ लोग कहने लगे यह कुराही तो अब शूद्रों के घर का भोजन भी खाने लग गया।

एमनाबाद में

यहाँ का दीवान था खत्री जाति का मलिक भागो। इसके अत्याचार से सारा एमनाबाद दु:खी

१. लाहौर में रहने की यादगार में उनके नाम का मकान बना हुआ है।

था। एक दिन मालिक भागो के यहाँ ब्रह्म भोज हुआ उसने गुरुजी को भी निमंत्रण आया किन्तु वे शामिल नहीं हुये। इससे मलिक भागो बड़ा बिगडा उसने गुरुजी को बुलवाकर पूछा तुम एक शूद्र के घर का तो भोजन किया करते हो किन्तु एक खत्री के घर पर तुम भोज मे शामिल नहीं हुए। उस पर गुरु जी ने कहा, भोजन का क्या शूद्र और क्या क्षत्री हम तो नेक कमाई वाला अन्न खाते हैं। गुरु जी ने शांति के साथ कहा, नाराज होने की कोई बात नहीं है। तुम अपने यहा का बना हुआ भोजन भी मँगालो और इधर लालों के घर का भोजन भी मगाए लेते हैं मलिक के यहाँ से एक आदमी जाकर—ले आया। इधर लालो बेचारे के घर सूखी रोटी का टुकडा पडा हुआ था वह उसे ही ले आया। गुरु जी ने दोनों को अलग-हाथो मे लेकर दबाते हुये कहा लालो की रोटी का टुकड़ा पसीने की कमाई मे पैदा किया हुआ है इसमें मे मुझे दूध और तुम्हारे पकवान में से उस खून की धार बहती नजर आती है जो कि गरीबों को चूस करके ब्रह्म भोज पर लगाया गया है।

कहते है कि मरदाना एक दिन एक मुसलमान रईस के यहाँ शादी मे खाना मागने के लिये चला गया। खाना तो उसे खिला दिया किन्तु उसकी पिटाई खूब की और कहा तू 'काफिर' के साथ रहकर कुफ्र का प्रचार करता है। इस पर मर्दाना रोता हुआ गुरुजी के पास आया। गुरुजी ने सब हाल सुनकर लालो को सम्बोधित करते हुए कहा कि हम तो वही कहते और करते हैं जो हमारा मालिक हम से कहाना और कराना चाहता है किन्तु होना यह है कि यहाँ के लोग अपने कुकर्मों का बहुत कडवा फल भोगेंगे।' आगे हुआ भी यही, बाबर और नादिरशाह के हमलो मे एमनाबाद को बहुत दुख उठाने पड़े।

जब गुरु जी स्यालकोट पहुँचे। शहर के बाहर एक बेर वृक्ष के नीचे अपना आसन जमाया। शहर से बहुत से लोग दर्शन और ज्ञान चर्चा के लिये आने लगे। लोगों ने "हमजा गौस" नाम के फकीर का हाल सुनाते हुए कहा बाबा वह इस नगर को नष्ट करने के लिए अनुष्ठान कर रहा है। गुरु जी ने उस फकीर को बुलाकर उसके ऐसा करने का कारण पूछा तो उसने बताया। इस शहर के लोग झूठे हैं मेरे से एक आदमी ने वायदा किया था कि मेरे अगर लडका होगा तो आपको दे दूंगा। मैंने खुदावन्द से दिन रात उसके घर लड़का होने की मिन्नतें कीं। अब वह उसे मुझे नहीं देना चाहता है। तब मैं सोचता हूँ ऐसे झूठे लोगो की बस्ती खुदा की खलकत मे न रहे तो अच्छा ही है गुरु जी ने कहा साईं जी, सभी आदमी एक से नहीं होते हैं और इस बात की सचाई जानने के लिए मैं अपना आदमी शहर मे भेजता हूँ। यह कहकर गुरुजी ने मरदाना को दो पैसे देकर—एक पैसे का सच और एक पैसे का झूठ खरीदलाने को—शहर भेजा। सैकडों दुकानों पर फिरने के बाद मूला खत्री दुकानदार ने एक कागज पर लिख दिया 'जीना झूठ और मरना सत्य' है। मरदाना का लाया हुआ वह कागज गुरुजी ने उस फकीर को दिखाया। फकीर ने कहा कि मैं कैसे जानूं यह आदमी जो लिखता है उसे मानता भी है। तब गुरु जी ने मरदाना को दुबारा भेजकर मूला को बुलवाया और उससे कहा, तुम सचमुच ही अपने लिखे उसूल को सही मानते हो तो फिर भी भी क्यो माया मे फँसे हुए हो, मूला ने उसी समय सबको त्याग दिया और गुरु जी का शिष्य हो गया। फकीर को भी यकीन हो गया कि किसी भी स्थान के सभी आदमी यकसा नहीं होते। यहा जिस स्थान पर गुरुजी ठहरे थे वहाँ पक्का मकान बन गया है और वह स्थान अब "बेर बाबा नानक' के नाम से मशहूर है।

स्यालकोट में

१ यह वेदान्त से मिलता-जुलता उसूल है।

भाई बाला के घर के लोगों ने और राय बुलार ने गुरुदेव को एक बार तलवंडी लाने के लिये भेजा राय ने कहलवाया था मेरा दिल उनके दर्शनों का बहुत इच्छुक है। यदि शरीर बुड्ढा न हो गया होता तो मैं खुद उनकी खिदमत में हाजिर होता। भाई बाला श्री गुरु जी का पता लगाते-

[illegible]

लगाते स्यालकोट पहुंच गये और उन्होंने रायबुलार का सन्देश दिया। गुरु जी भी राय बुलार के प्रति भारी स्नेह रखते थे इसलिए वे बुलार के संदेश को टाल न सके और भाई बाला और मरदाना के साथ तलवंडी की ओर चल पड़े।¹

तलवंडी में आकर गुरु जी [illegible] पर ठहरे। वहां पर माता, पिता और चाचा सब मिलने आये। उनको फ़कीरी भेस में देखकर वे बहुत ही दुःखी हुए और उनसे कहने लगे तुम घर चलो हमेशा परमात्मा का भजन करो किन्तु इस फ़कीरी भेस को उतार दो किन्तु गुरु जी अपने इरादा से कब डिगने वाले थे। राय बुलार के [illegible] निश्चित किया। गुरु जी जब राय बुलार के मकान पर पहुंचे तो राय बुलार ने आगे बढ़ कर उनका स्वागत किया और बड़ी श्रद्धा और प्रेम से ले जाकर उन्हें सुन्दर आसन पर बिठाया। कहा जाता है राय बुलार ने कई दिन गुरु जी को रक्खा। नित प्रति सत्संग होता और राय ज्ञानचर्चा सुनता। उसने गुरु जी से इच्छा प्रकट की कि आप सदा यहीं रहें, कोई स्थान बनवा लें। आपके खर्च के लिये मैं इतनी जमीन लगा दूंगा किन्तु गुरु जी ने अस्वीकार कर दिया। माता और पिता ने भी राय बुलार की मार्फत और खुद गुरुदेव से घर रहने को कहलवाया किन्तु सब व्यर्थ साबित हुआ। कहा जाता है जब वह चलने लगे तो राय बुलार ने कहा मेरे लायक कोई खिदमत फरमाइये। इसके जवाब में गुरु जी ने उससे तलवंडी में एक तालाब बनवा देने के लिए कहा, राय ने इस बात को स्वीकार कर लिया और तालाब बनवा दिया जो अब नानकसर के नाम से मशहूर है।

तलवंडी से चलकर आप छांगा, मांगा के जंगल में पहुंचे। वहाँ पर जिस स्थान पर रहे थे वह आजकल छोटा ननकाना कहलाता है। वहां पर जो संत साधू रहते थे उनमें से अनेकों ने गुरुजी के दर्शन और उपदेशों से लाभ उठाया। वहां से शहर चूनिया में आये, जहां शेख दाऊद सैयद,

दिल्ली की ओर

हामिद गजनवी आदि से सत्संग किया। कहा जाता है ये दोनों फकीर अपनी करामातों और योग्यता के लिये बड़े प्रसिद्ध थे किन्तु गुरु जी से मिलकर उन्होंने भी अपने को धन्य माना।

इस प्रकार मांझ की यात्रा पूरी करके सतलज पार की और मालवा² में उतरे मालवे के अनेक स्थानों को पवित्र करते हुए सरस्वती नदी के किनारे पहोये नामक स्थान पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने लोगों को पिंड भरते देखा तो ब्राह्मणों से कहा कि इस समय जैसे तुम पोल चलाकर मुफ्त का माल खा रहे हो यह मनुष्योचित नहीं। यहां से चलकर सूर्य ग्रहण के अवसर पर गुरु जी कुरुक्षेत्र पहुँचे। यहां स्नान के लिए मेला लगा हुआ था। समस्त हिन्दू अपनी भावना के अनुसार स्नान करके दान पुण्य कर रहे थे। गुरु जी ने मांस रांधना आरंभ किया। लोगों ने पूछा यह क्या करते हो तो आपने कहा—"मैं

१. कुछ इतिहासकारों का खयाल है कि तलवंडी सीधे एमनाबाद से ही गए थे। स्यालकोट तो तलवंडी के बाद गये हैं किन्तु कई स्थानों पर स्यालकोट से ही तलवंडी जाना लिखा है। और यदि यह सही है तो यह भी सही है कि मरदाना बीच में तलवंडी नहीं गया किन्तु भाई बाला ही उन्हें ढूंढता-ढूंढता स्यालकोट पहुंच गया।

२. यह मध्य भारत का मालवा नहीं किन्तु पंजाब का मालवा है।

समझता हूँ कि न तो आज के इस किंचितमात्र दान पुण्य से आपको स्वर्ग मिलेगा और न मेरे इस मांसाहार से मेरा स्वर्ग नष्ट होगा। अब तक जो भी भले बुरे कर्म किये हैं उनका तो फल भुगतना ही पडेगा। कुछ लोग तो इस माकूल जवाब को सुन कर चुप हो गए, किन्तु नानू नाम का पंडित विवाद करता रहा।

सम्वत् १५६२ विक्रमी की बैसाखी के दिन गुरु जी हरद्वार पहुँचे। जहाँ हरद्वार में ठहरे थे वहाँ आज नानक बाडा के नाम से एक स्थान मशहूर है। यहाँ गुरुजी के पास गढ़वाल का राजा विजय प्रकाश आया। उसने आते ही पूछा, तुम कौन हो? क्यों साधु बने हो? और किस सम्प्रदाय के साधु हो? गुरुजी ने "देवतिआं के दरसन ताई" वाला शब्द सुनाया जिसे सुनकर राजा निरुत्तर हो गया।

यहाँ से गुरुजी दिल्ली पहुंचे और मजनूं के टीले पर ठहरे। उन दिनों दिल्ली का बादशाह सिकन्दर लोदी था। वह साधु सन्तों या फकीरों का बड़ा विरोधी था। वास्तव में उन दिनों साधु बनने की धींगा गर्दी भी मची हुई थी जिसका जी चाहता वही साधु हो जाता। सिकन्दर लोदी ने खरे खोटे की पहचान के लिये साधु फकीरों को पकड-पकड कर जेल खाने में बन्द कर देना शुरू कर दिया। वहाँ उनसे चक्कियां पिसवाई जाती थीं। गुरु नानक जी का भी नम्बर आ गया उन्हें भी जेल में बन्द कर दिया गया। मरदाना ने कहा लीजिए गुरुजी फकीर बनने का कैसा मजा चखना पड़ रहा है। गुरुजी ने उसे धीरज दिया। अन्य लोगों को भी गुरुजी ने चक्कियाँ चलाने से मना कर दिया। और मरदाने से कहा लो भाई रबाब उठाओ। मरदाना स्वर और लय के साथ गाने लगा "फुलहु चर्खा चक्को चक। थल विरोले बहुत अनंत लाटो मधानिया अनगाह। पखी भौंदिया लैन न साह॥ सूये चाड़ भवाए जन्त। नानक भौंदिया गणत न अन्त।" कहते हैं चक्कियां अपने आप चलने लगीं। जेलर ने यह समाचार बादशाह को सुनाया। वह दौड़ा हुआ गुरुजी के पास आया और अपने अपराध की क्षमा मांगी तथा गुरुजी की आज्ञा के अनुसार सब कैदियों को छोड दिया बादशाह की विनती पर गुरुजी ने उसे उपदेश दिया—

यक अर्ज गफतम पेश तू दर गोश कुन कर्तार॥
हक्का कबीर करीम तू बे एब परवरदिगार॥१॥
दुनिया मकामे फानी तहकीक दिल दानी।
मम सर मूइ अजराइल गिरफतह दिल हेचि न दानी॥१॥
जन पिसर पिदर बिरादरां कस नेस दस्तगीर।
आखिर बयफतम कस न दारद चूं सवद तकबीर॥२॥
सब रोज गशतम दर हवा कर देम बदी खयाल।
गाहेन नेकी कार करदम मम ईं चिना अहवाल॥३॥
बदबखत हम चू बखील गाफिल बेनजर बेबाक।
नानक बगोयद जन तुरा तेरे चाकरा पाखाक॥४॥

देहली में एक मियां मारूफ थे। उनकी करामातों और औलियापने की दिल्ली में खूब चरचा थी। गुरुजी ने उससे भी बातचीत की और उसे ईश्वर जीव सम्बन्धी अनेकों बातें सुनाकर अपनी ओर आकर्षित किया।

१. संगीत साहित्य में दीपक राग की भी इसी प्रकार की महिमा बताई गई है।

दिल्ली में काफी दिनों ठहरकर गुरुजी अपने मर्दाना साथी समेत काशी देखने के इरादे से चल पड़े। रास्ते में अलीगढ़ में दो चार दिन विश्राम किया। अलीगढ़ से मथुरा वृन्दावन होते हुए और वहाँ साधु संतों से सत्संग करते हुए आगरा आये। आगरा में जिस धर्म- [illegible] शाला में आप ठहरे थे वह गुरुजी की धर्मशाला के नाम से पुकारी जाती है। यहाँ अनेकों लोगों को आपने अपने उपदेश सुनाये और फिर कानपुर, लखनऊ होते हुए सूर्यवंशियों की पुरानी राजधानी अयोध्या पहुँचे। कितने इतिहासकार मानते हैं कि गुरुजी का बेदी कुल भी भगवान रामचन्द्र जी के वंशजों का कुल है। अयोध्या से चलकर संवत १५६८ विक्रमी में गुरुजी काशी में जा पहुँचे। वह स्थान जहाँ पर गुरुजी ठहरे थे 'गुरु का बाग' नाम से प्रसिद्ध है।

थोड़े ही दिनों में सारे काशी शहर में यह चर्चा फैल गई कि नानकदेव नाम का एक पंजाबी साधु आया हुआ है और वह बड़ी मीठी भाषा में किन्तु तर्कयुक्त ढंग से हिन्दू और मुसलमानों की धार्मिक कमजोरियों की आलोचना करता है। फिर क्या था सैकड़ों मनुष्य नित्यप्रति गुरुजी के पास आकर तर्क-वितर्क के साथ ज्ञानचर्चा करने लगे। गुरुजी की आलोचनाओं से जहाँ हिन्दू और मुसलमान तिलमिलाते थे वहाँ सब कोई उन्हें यह भी समझते थे कि यह तो हमारे ही सम्प्रदाय का है। वैष्णव उन्हें वैष्णव और शैव उन्हें शैव समझते थे। इसी प्रकार कबीर पंथी नामदेव पंथी सभी उनके सम्बन्ध में यही ख्याल करते थे कि गुरुनानक जी हमारे पंथ के हैं। यहाँ तक कि मुसलमान भी उन्हें अपना उपदेष्टा ख्याल करते थे। वास्तव में गुरुजी के सिद्धान्त भारत के विभिन्न सम्प्रदायों के मौलिक सिद्धान्तों का समन्वय जान पड़ते थे। उनकी वाणियों के सार को वे लोग अपने २ पंथी संशोधित संस्करण समझते थे। ऐसा समझना उनका उचित भी था। गुरुजी भारतीय संस्कृति का परिमार्जन ही तो कर रहे थे। वह उसे अपने ज्ञान और तप की अग्नि में तपाकर खरा सोना ही तो बना रहे थे।

सभी धर्मों और सम्प्रदायों के विद्वान आकर उनसे शंका समाधान भी करते थे। काशी के उस समय के प्रसिद्ध पंडित वासुदेव शास्त्री ने भी आकर उनसे ज्ञानचर्चा की थी।

नामदेव और श्री रविदास (रैदास) जी काशी के उस समय के प्रसिद्ध महात्माओं में से थे। उनके साथ गुरुजी का बहुत मेल जोल रहा। आपस में ज्ञान गोष्ठी और हरिचर्चा भी खूब रही। कबीर जी जो उस समय बाहर गये थे। गुरुजी का आना सुनकर वे भी काशी जी गये। कहना यही होगा कि भारत के सन्तों में दार्शनिकता और बुद्धि प्रखरता की दृष्टि से कबीर जी का स्थान बहुत ऊंचा है। उनके बहुत सारे सिद्धान्त गुरु नानक जी से मिलते-जुलते हैं।[1]

काशी से चलकर जौनपुर, बक्सर छपरा आदि स्थानों में होते हुए गुरुजी पटना शहर में जो कि बहुत प्राचीन नगर है पहुंचे। उनकी स्मृति में पटना में एक धर्मशाला अब तक बनी हुई है। यहां भी गुरु।

१ कुछ इतिहासकार कबीर जी को भी नानकदेव जी का समकालीन नहीं मानते किन्तु कबीर जी के चेले धर्मदास जी ने कबीर संबंधी कुछ घटनाएं अपने ग्रंथ में इस प्रकार दी हैं।

जन्म-सवत् १४५५ विक्रमी। दीक्षा रामानन्द जी से—संतत् १४६२ वि०, विवाह सवत १४७१ वि०, यज्ञ अनुष्ठान सवत् १४६२ विक्रमी, सिकन्दर लोधी से बिगाड सवत्-१४६२ विक्रमी।

मृत्यु, संवत् १५७१ विक्रमी। इसी तरह से कबीर जी ११६ वर्ष जिन्दा रहे और जब नानक जी से मिले थे १०८ वर्ष के थे।

पटना और गया की ओर

जी के उपदेशों को सुनने के लिए हिन्दू मुसलमान सभी प्रकार के लोग आते थे कई दिन गुरु जी ने 'मानव जीवन' पर उपदेश दिया। पटना से चलकर गुरुजी गया पहुचे। वहाँ आपको पंडो ने घेर लिया और कहा कि अपने पितरों का पिंड दान कराइये। गुरुजी ने पंडो को दीपदान और पिंडदान के सम्बन्ध मे अपने ख्यालात इस प्रकार प्रकट किये :—

"दीवा मेरा एकु नामु दुख विच पाइया तेलु।
उनि चाननु ओहु सोखिया सोखिया चुका जम सिउ मेल॥
पिंड पतल मरे के सो किया सच्च नाम करतार।
इत्थे उत्थै आगे पीछे एह मेरा उद्धार॥

अर्थात्—मेरा दीप (दान) तो ईश्वर का नाम है। उसमे लोगों के दु खों का तेल पड़ा हुआ है। जिसके प्रकाश से मृत्यु का भय भी नष्ट हो गया है। मरे हुए को पिंड या पत्तल देना तो मूर्खता है वास्तविक कर्म तो ईश्वर का सत्य नाम है। जो हर जगह मेरा उद्धारक है। पडे लोगों ने अपने जीवन में इस प्रकार के श्राद्ध-कर्म के विरुद्ध पहली ही बार आलोचना सुनी थी इसलिये वे भौचक्के से होकर गुरु जी की तरफ देखते रहे।

यहाँ से चलकर गुरु जी बुद्ध गया पहुचे, जहा पर गोस्वामी देवगिरि एक प्रतिष्ठित जागीरदार रहता था। उसके साथ भी गुरु जी ने सत संग किया और अपने मौलिक विचारों को प्रकट किया। महत गुरु जी के दर्शनों और धार्मिक विवेचनों से बडा प्रसन्न हुआ। कहा जाता है कि देवगिरि का पोता शिष्य गुरु हरिराय जी का शिष्य हो गया था।

बुद्ध गया से चलकर वैद्यनाथ धाम की यात्रा करते हुए, मुंगेर, भागलपुर, राजमहल आदि स्थानों का भ्रमण करते हुए ७ वीं हाड़ सवत् १५६४ वि मे मालदा (मालदेव) मे पहुचे। यहाँ जिस स्थान पर बैठकर आपने उपदेश किया था वह गुरु के बाग के नाम से मशहूर है। यहाँ कई दिन विश्राम करके गुरु जी ने आसाम की ओर कूच किया। मुर्शिदाबाद, वर्दवान, हुगली आदि अनेकों स्थानों पर ठहरते हुए तथा उपदेश करते हुए संवत् १५६४ के ६ को ढाके मे पहुचे। यहा नारायणदास शामलनाथ, चन्द्रनाथ और शेख अहमद गुलामअली आदि कई साधु और फकीरों ने आपके पास आकर सतसग करके लाभ उठाया। इस देश मे जादू टोने का बडा प्रचार है। कई लोगों ने गुरुजी के सामने अपने २ जादू की विशेषता दिखानी चाही किन्तु सभी निष्फल हुए तब उन्होंने पूछा कि आपके आगे हमारा मत्र और देवता क्यों नहीं काम देता है। इसके उत्तर मे गुरु जी ने कहा तुम्हारे सब के देवताओं और मत्रों से हमारा देवता और मत्र बड़ा है इसीलिए वे हम पर असर नहीं करते हैं। उन लोगों ने बड़े कौतुहल से पूछा तो फिर महाराज उस मत्र और देवता का उपासक हमे भी बनाइये न। गुरुजी ने बताया हमारा देवता निरंकार अकाल पुरुष है और "१ ओं सतिनामु करता पुरख निरभउ अकाल मूरति अजुनी सै भ गुरु प्रसादि।" मूल मत्र है। अनेकों लोगों ने गुरु जी के मत्रों को अपनाया।

बगाल व आसाम में

ढाका से चलकर तीन कोस के फासले पर गुरुजी ने मुकाम किया। यहाँ एक कौतुहल वर्द्धक घटना यह बताई जाती है कि गुरुजी के सेवक मरदाना को यहाँ की जादूगर स्त्रिया पकड ले गई। इन स्त्रियो मे नूरशाह नामक स्त्री बडी चतुर और सब जादूगरनियों की सरदार थी।" घटना इस प्रकार

वर्णन की जाती है कि मरदाने ने इस नगर में जाकर घूमने और अपनी भूख शान्त करने की गुरुजी से आज्ञा मांगी। गुरु जी ने पहले तो मरदाने को मना किया किन्तु उसकी हठ देखकर इजाजत दे दी। मरदाना को स्त्रियों ने कैद कर लिया¹ काफी देर तक भी जब मरदाना नहीं आया तो गुरु जी उसे खोजने के लिये नगर में घुसे। और घूम फिर कर उसी घर के सामने पहुँचे तथा मरदाना को उस कैद से रिहाई दिलाई। गुरु जी ने स्त्रियों को उपदेश भी दिया कि केवल बोल चाल में ही अच्छे होने से काम नहीं चलता है आचरण भी अच्छे होने चाहिएं ता प्रभु के प्यारे लगो।

इस स्थान पर कहते हैं कि गुरु जी ठहरे थे बरछा साहिब के नाम से एक स्थान है। इस नाम के पड़ने की घटना सिक्ख लेखकों ने इस प्रकार वर्णन की है। इस देश में पानी प्रायः खारा ही निकलता था। लोगों ने गुरु जी के सामने अपने कष्ट का वर्णन किया। दयालु गुरु जी ने एक स्थान पर बरछा गाड़कर कहा यहाँ का पानी मीठा है। सचमुच ही वहां का पानी मीठा निकला, तभी से यह स्थान बरछा साहिब के नाम से मशहूर है।

यहां से गुरु जी कामाक्षा देवी के स्थान को देखने के लिए गये वहां उन दिनों वाममार्ग का प्रचार था। कामाक्षा देवी के मन्दिर में हर महीने लाल रंग डाल कर लोग उसे माथे पर लगाते थे मूर्ति के बजाय देवी के गुप्तांग की पूजा करते थे। गुरु जी ने लोगों के इस गर्हित खयाल के विरुद्ध मन्दिर के पास बैठकर लोगों को उपदेश दिया किन्तु वर्षों और सदियों के कुसंस्कार शीघ्र थोड़े ही नष्ट होते हैं। फिर भी कुछ लोगों पर असर पड़ा ही।

इसी वर्ष के फागुन की १३ वीं तिथि को गुरु जी गौरीपुर धौबिया बन्दर में पहुचे। यह यात्रा समुद्र के किनारे ही हुई थी। फल फूल और कन्द पर कई दिन तक गुजारा करना पड़ा था। यहाँ पर गुरुजी की यादगार में जो स्थान बना हुआ है वह मरदाना साहिब के नाम से मशहूर है। इस स्थान को गुरु तेगबहादुर जी ने जब कि वे राजा जयसिंह के शाही लश्कर के साथ राजा के आग्रह पर उधर की तरफ गये हुए थे। ऊँचा करा दिया था। जो बहुत दूर से दिखाई देता है। इस स्थान पर रहकर गुरु नानक देव जी ने अपने साथियों समेत कई दिन तक आराम किया था तथा लोगों को हरि चर्चा सुनाई थी। इस स्थान के पुजारी लोग उदासीन साधु कहलाते रहे हैं। यहा के राजा की रानी ने भी गुरु जी के पास आकर उपदेश सुने और उसने उसी समय से पत्थर पूजा को तिलांजलि दे दी। इसी रानी का प्रपौत्र नवे गुरु श्री तेग बहादुर जी का शिष्य हो गया था और उसके पुत्र रतनदेव ने पातशाह श्री गुरु गोविन्दसिंह की सेवा में आनन्दपुर हाजिर होकर प्रसादी नाम का हाथी और अनेक वस्तुएं भेंट की थीं।

कुछ दिन यहा रह कर गुरु जी सवत १५६५ विक्रमी में ब्रहमपुत्र को पार करके आसाम देश के करीमगज, अजमेरी गज और सिलहट आदि नगरों को देखते हुए सरिता नाम की नदी को पार करके कछार देश में पहुचे। यहां नाग लोगों की आबादी है। ये सब देवी के उपासक थे। गुरु जी ने इन लोगों में भी एकेश्वरवाद और प्रेम धर्म का प्रचार किया। इस देश में मनीपुर और रोसम फन आदि प्रसिद्ध शहर हैं पास ही में लोगाई नगर है उन दिनों यहा का राजा देवलोत था। वह परदेशियों को अपने राज्य में नहीं घुसने देता था। निषेध में दण्ड की सजा नियत कर रक्खी थी जब गुरु जी उसके देश में

१. मेंढा बना लिया।

पहुच गये तो उसने पूछा आप मेरी आज्ञा के विरुद्ध मेरे देश मे कैसे आ गये हैं तो गुरु जी ने जवाब दिया.—

जिस ही की सरकार है तिस ही का सभु कोई ।
गुरुमुखी कार कमावणी सचु घटि परगुट होई ।

अर्थात्—सर्वत्र उसी परम ब्रह्म परमात्मा का राज्य और सब कोई उसी के हैं किन्तु यह सत्य परमात्मा की ओर झुकाव होने पर ही हृदय मे प्रगट होता है । राजा गुरु जी के इस सत्योपदेश से बडा प्रभावित हुआ। इसी राजा के सीमा प्रदेश पर सगरसैन नाम का राजा राज करता था, राजधानी उसकी 'घरगाउ' थी । आजकल यह जगह शिवसागर जिले मे नाजरा नाम से मशहूर है । एक दिन गुरु नानक देव जी ने वहा जाकर भी लोगों को उपदेश दिया । कहा जाता है सैंकडों नर नारी यहां उनकी सेवा मे हाजिर हुए अ उनके उपदेशों को बड़े प्रेम से सुना । राजा स्वयम् भी अपने परिवार सहित उपदेश मे शामिल हुआ था । ऐकेश्वरवाद के विचार इस देश मे खूब पसन्द किये गये । लोशाई के पड़ोस मनीपुर के पहाड़ी प्रदेश में राजा सुधर सैन राज करता था । उसके शहर में झंडा नाम का एक हरिभक्त था । राजा के भानजे इन्द्रसैन से उसकी मैत्री थी । गुरुजी के यह दोनों ही भक्त हो गए । अब तक मरदाना का रबाब पुराना हो चुका था । इसीलिए इन्हीं दोनों महानुभावों ने नया रबाब भी लिवा दिया । कहा जाता है इस देश के लगभग १७ पहाड़ी राजाओं को जो कि अधिकांश मे नामवंश के थे गुरु जी ने अपना उपदेश सुनाया । और यहां से फिर सिंहल द्वीप की ओर प्रस्थान किया ।

सिंहल द्वीप की राजधानी ब्रहमपुर थी । गरुजी मरदाना समेत संवत् १६६२ के सावन की ५ वीं को ब्रह्मपुर पहुँच गए । एक बाग मे डेरे जमा दिये किन्तु यहां अधिक दिन न ठहरे आगे चल कर चांदपुर, स्वर्णपुर के राजा कमल सैन के बाग में पहुचे । मरदाना भूख से व्याकुल होकर शहर की ओर चला गया, जहां धर्मसिंह नाम के हरि भक्त ने उसको खूब मिठाई खिलाई और यह जान कर कि उसके एक साथी समेत गुरुजी राजा के बाग मे ठहरे हुए हैं । धर्म सिंह उनके लिए भी मिठाई लाया । उसके साथ गुरुजी ने धर्म चर्चा भी की । जिससे वह गुरुजी की ओर और भी आकर्षित हो गया और उसने जाकर अपने देश के राजा कमल सैन से भी गुरुजी के दर्शन करने और ज्ञान चर्चा अर्जन करने के लिए उत्साहित किया । राजा भी अच्छे साधु संतों की संगत करता था उसने भी धर्मसिंह के साथ आकर गुरु जी के उपदेश से लाभ उठाया । इस देश मे पद्मा नाम की नदी बहती है । शायद अब तक सिंहल द्वीप ही कहलाता है नदियों से घिरे रहने के कारण आसाम का यह हिस्सा इस समय इस नाम से मशहूर रहा है ।

इस देश से चल कर गुरुजी अनेक छोटे छोटे नगर और गाँवों को पार करते हुए । कालीघाट मे आये जो अब कलकत्ता कहलाता है । यहां के लोग इसी देवी को पूजा करते थे । इनमें गुरु जी ने केवल एक ईश्वर ही पूजने योग्य है अपने इस सत्य सिद्धान्त का प्रचार किया ।

आसामी बंगाली प्रदेशों की यात्रा करके गुरु जी लौट पडे । अनेकों ही स्थानों पर उपदेश करते हुए जिनमे कांचीपुरी और साखी गोपाल के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं जगन्नाथ पुरी मे पहुंचे।

जगन्नाथ में

संवत् १५६५ का इस समय चैत्र मास था । यहां गुरुजी जिस स्थान पर ठहरे वह मंगुमठ के नाम से मशहूर है । जगन्नाथ के मन्दिर मे जाकर भी साधु सतों से समागम करते रहे । एक दिन पडों ने कहा बाबा आप हमारी आरती मे क्यों शामिल नहीं होते

है। गुरु जी ने कहा हमारे देवता की जैसी आरती होती है वैसे आपके देवता की नहीं होती यह कह कर मरदाना की ओर इशारा किया जिसने रबाब पर गाया:—

'गगन में थाल रवि चन्द दीपक बने, तारका मण्डल जनक मोती ।
धूप मलयानलो पवन चंवरो करे, सगल बनराय फूलन्त जोती ॥
कैसी आरती होय भव खण्डना तेरी, आरती अनहता शब्द बाजन्त भेरी ।
सहस तव नैन नन नैन हहि तोहे को, सहस मूरत नैन एक तोही ।
सहस पद बिमल नन एक पद गंध बिनु, सहस तव गंध इव चलत मोही ।
सब महि जोति जोति है सोई, तिसदै चानन सब मह चानन होई ॥
गुर साखी जोति परगट है, जो तिसु भावै सु आरती होई ।
हरि चरन कोमल मकरन्द लोभित मनो अनदिनो मोही आही प्यासा ।
कृपा जल देह नानक सारंग कउ, होय जाते तेरे नाय वासा ॥

अर्थात्—सर्व व्यापक परमात्मा की आरती के लिये अनन्त दूर तक फैला हुआ आकाश मानो थाल है और सूर्य, चन्द्र दीपक हैं, सुन्दर तारागण मोती हैं। मलयागिर चन्दन धूप का काम दे रहा है। पवन देवता चँवर ढुल रहा है। समस्त वानस्पतिक जगत उस थाल के फूल पत्ती हैं। अनहद शब्द का घोर रव शंख, घड़ियाल का काम दे रहा है।

हे भव भयहारी परमात्म देव यह कितनी सुन्दर तुम्हारी आरती हो रही है। तुम एक भी नेत्र न रखते हुए भी सहस्र नेत्र हो। किसी भी प्रकार का रूप न रखते हुए भी महाकाय हो। तुम एक भी पैर न रखते हुए भी सहस्रों पद वालों से ज्यादा द्रुतिगामी हो। जिस ज्योति से सारा संसार प्रकाशित है वही ज्योति तो तुम हो। वह कौनसा स्थान है जहाँ आपका प्रकाश नहीं है। हे जगतपते मेरा मन तुम्हारे कमल चरणों में पहुँचने के लिए भँवर की तरह लालायित है भगवान अपने कृपा रूपी जल से मेरी प्यास को बुझाइये।

आरती के समय में इस राग का ऐसा समाँ बँधा कि पंडे पुजारी उसी प्रकार मुग्ध होकर सुनते रहे जिस प्रकार हिरनी वीणा की आवाज को मस्त होकर सुनती है। पंडे पुजारियों ने गुरु जी को भक्ति के साथ कई दिन तक वहाँ रक्खा। फिर यहाँ से कुछ थोडी दूर चलकर शोण नदी के किनारे डेरे जमाये। जहाँ यादगार में बनी हुई "बाबा साहिब की बावडी" अब तक मौजूद है। यह स्थान जगन्नाथपुरी से सटा हुआ ही है। पास की बस्ती में जो पुरी का एक मुहल्ला था कलियुग नाम का एक पंडा रहता था। उसने गुरु जी की बड़े प्रेम से सेवा की, इस सेवा के अन्तर में उसका दिल एक पुत्र की कामना से प्लावित था। परमात्मा की कृपा से उसके पुत्र हुआ।

यहा से प्रस्थान करके गुरु देव जी सुर्दहा दानापुर आदि नगरों में होते हुए सुनारत गढ़ के पास से महानदी पार हुए और सुहागपुर में आकर ठहरे। यहाँ शनिश्चर देव की पूजा आम रिवाज था। गुरु जी ने लोगों को अपने उपदेशों द्वारा समझाया कि परमात्मा ही सब देवों का देव है उसी की पूजा क्यों नहीं करते हो ?

विन्ध्याचल पर्वत की एक शाखा का नाम कंटक गिरि है। गुरु जी सुहागपुर से चलकर वहाँ पहुँचे और वहाँ पर साधु सन्तों को उपदेश दिया। यह लोग वरुण की भावना से पानी की पूजा करते थे।

विहार मे

विन्ध्याचल के आगे के हिस्से मे कोल किरात और गोंड लोग रहते हैं। उन दिनों वहाँ का राजा कोडा नाम का था यह लोग देवी पर नर वलि दिया करते थे। राजा

के आदमियों ने मरदाना को पकड़ लिया और उसे राजा के पास ले गए। गुरुजी ने राजा को उपदेश दिया कि परमात्मा तो सबका पालन कर्त्ता है उसने मनुष्यों को पालने के लिए ससार में कैसे कैसे उत्तम पदार्थ पैदा किए है। तुम कैसा उलटा काम करते हो कि ईश्वर के पुत्रों का वध करते हो। इसके सिवा ईश्वर सम्बन्धी और भी उपदेश गुरु जी ने राजा को दिया। जिससे राजा बड़ा संतुष्ट हुआ और उसने मरदाना को छोडने की इजाजत दे दी।

आगे चलने पर एक घोर जंगल दिखाई दिया जिसमे कोसों तक वांस, साल, शीशम, देवदारु आदि-आदि पहाडी वृक्ष खडे हैं। दूर-दूर तक वस्ती का नाम नहीं है। मरदाना ऐसे अवसर पर घवरा गया। उसने कहा गुरु जी कहाँ ले आये मैंने तो सोचा गुरु जी के साथ रह कर खूब मौज उडावेंगे जैसा कि वैरागी लोगों के सग पडकर लोग माल उडाते हैं किन्तु जान पडता है आपके साथ तो प्राण और देने पडेगे। गुरुजी ने मरदाना को धैर्य्य वधाया और काफी दूर चलने के वाद एक ऐसी जगह पहुँचे जहाँ पानी का भी सुपास था, अनेक स्वादिष्ट फलो से वृक्ष लदे हुये थे। पास ही मे अनेक सतों के आश्रम भी थे। यहां कई दिन विशान्ति पाकर और ज्ञान चर्चा करके आगे वढ़े और नर्मदा नदी को पार करके जवलपुर पहुंचे। यहाँ नदी किनारे पर फूल नाम का फकीर रहता था इसने आसपास के इलाके पर अपने करामाती होने का सिक्का विठा रक्खा था। गुरु जी ने इसके साथ ज्ञान चर्चा की और उसे बताया करामातें लोगों को वहकाने के काम मे आ सकती है किन्तु ईश्वर तो प्रेम से ही प्राप्त किया जा सकता है। इन सही वात का फकीर के दिल पर वड़ा असर पड़ा और उसने गुरु जी के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। यहा से चलकर गुरु जी ने चित्रकूट, महीरकी आदि स्थानों को देखा भाला और इस तरह फरीद-वाडा से पहुँचे।

विहार की यात्रा विंध्याचल के आरम्भिक सिरे पर ही खतम हो गई थी। अब तो मध्यप्रांत में आ पहुँच थे। फरीदवाडा मे प्रसिद्ध फकीर फरीद वावा का एक कूप है कहा जाता है वावा उसी मे लटके रहते थे। उनके मास को जब चील कौवे खाते तो वे कहते थे 'कागा सव तन खाइयो चुन-चुन खइयो मास। दो नैना मत खाइयो, पिया मिलन की आस।" वे ईश्वर का साक्षात्कार करना चाहते थे इसीलिये इस प्रकार का कठोर तप किया करते थे। फरीदवाडा से चलकर, भूपाल, सत्य महल, चन्देरी, झासी, गवालियर, आगरा, धौलपुर, भरतपुर, मथुरा, गुड़गांवा, रिवाडी से धर्मोपदेश किया और थोडे-थोडे समय विश्राम भी किया, रिवाड़ी से नारनौल आये जहाँ कि एक गुरु स्थान भी वना हुआ है।

मध्यप्रान्त राजपूताना

नारनौल पर राजपूताना खतम हो जाता है यहाँ से गुरु जी झझर और दुजाना आदि अनेक नगरों को पार करते हुये कर्नाल मे पहूँचे। यहां उन दिनों शेख शरफुद्दीन का शिष्य शेख शमसुद्दीन प्रसिद्ध फकीर समझा जाता था उसने गुरुजी की पहले से ही प्रशसा सुन रक्खी थी जब उसने सुना कि यहाँ गुरु नानकजी आये हुये हैं तो वह अनेक प्रतिष्ठित मुसलमानों के साथ गुरु जी से मिलने के लिये आया। वे सभी लोग गुरु जी की सूफीयाना वातचीत से प्रसन्न हुए। कर्नाल मे उनकी यादगार में एक गुरुद्वारा भी वना हुआ है। कर्नाल के पास थानेसर और कुरुक्षेत्र है।

पंजाब में

यहा से विदा होकर गुरु जी मालेरकोटला तथा जगराव के रास्ते हरि के पत्तन पर सतलज को

पार करके सुल्तानपुर अपनी बीबी नानकी के घर पहुँचे जहाँ उन्हें देखकर उनके बहिन बहनोई हर्षे हो गये। यह दिन संवत् १५६६ के पौष का ११ वां था।

इस तरह यह प्रथम यात्रा गुरु जी की पूरे इस साल में समाप्त हुई। इस यात्रा में हमें कामरू देश से परे समुद्र के किनारे चलकर गुरु जी के संगलाद्वीप में पहुँचने का वर्णन मिला है।[1] वहाँ के सम्बन्ध में इतिहासकारों ने इस प्रकार लिखा है कि वहाँ का राजा शिवनाभ वर्षों से गुरुजी के आगमन की बाट देख रहा था क्योंकि लाहौर के मनसुख सेठ ने इसी देश में जाकर व्यापार किया था और उसने गुरु जी के सम्बन्ध में राजा को बहुत कुछ सुनाया था।

गुरु जी के वहाँ पहुँचने पर जब राजा को खबर लगी तो उसने गुरु जी का बड़ा आदर सत्कार किया। किन्तु वह परीक्षा भी लेना चाहता था अतः गुरु जी को और उनके साथियों को अलग मकानों में ठहराया और रात्रि को परीक्षार्थ गुरुजी के पास एक सुन्दर स्त्री को भेजा। उसने और उसकी दासियों ने अपनी सब चेष्टाएं गुरुजी को डिगाने के लिए कीं किन्तु वे असफल रहीं और राजा से जाकर हाल कहा तो राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। इतिहासकारों का कथन है कि जो ज्ञान गुरु जी ने राजा शिवनाभ को दिया था वही प्राणसंगली नामक ग्रन्थ में है। इस प्रसंग को केवल सूचना के तौर पर हमने भी जोड़ दिया है क्योंकि यह उनकी प्रथम बार की महान धर्मयात्रा से सम्बन्ध रखता है।

दूसरी उदासी

सुल्तानपुर में केवल चार महीने रहकर गुरु जी पुनः यात्रा पर चल निकले किन्तु चूंकि मरदाना अपने घर जाने को उत्सुक था वह घर चला गया। वहाँ उसने गुरु जी के पिता से सब हाल जाकर कहा। इस खबर को सुनकर वे सुल्तानपुर आये और उन्हें तलवंडी लिवा ले गये क्योंकि रायबुलार का भी निमंत्रण था अतः गुरु जी तलवंडी पहुँचे, सभी लोग बड़े खुश हुए। वहाँ बहुत ही थोड़े दिन रहे फिर वहां से विदा होकर कसूर में कई मुसलमान फकीरों से मुलाकात की। और उनके साथ हरि चर्चा भी हुई। वहां से सतलज को पार करके धर्म कोट और भटिंडा होते हुये इसी सवत के आषाढ़ में सिरसा पहुंचे। यहाँ कुछ दिन रहकर बीकानेर पहुँचे। बीकानेर में जैन साधुओं के साथ धर्म चर्चा हुई। जैन साधुओं ने गुरु जी से पूछा "आपका धर्म क्या है?" गुरुजी ने कहा "भूले भटकों को रास्ते पर लाना", मेरा धर्म है। साधुओं ने कहा आप किस रास्ते पर डालते हैं?" "जो रास्ता परम पिता परमेश्वर से मिला देता है" गुरुजी ने उत्तर दिया। साधुओं ने फिर पूछा अगर ईश्वर के पचड़े में न पड़ा जाय तो क्या हर्ज है। "इससे बढ़कर फिर कौनसी कृतघ्नता होगी" जवाब में गुरु जी ने कहा। इसके अलावा गुरु जी ने ईश्वर के अस्तित्व और गुण स्वभाव एवं स्वरूप के सम्बन्ध में जैन साधुओं को बहुत उपदेश दिया किन्तु उन्होंने हठ वश एक भी बात को स्वीकार नहीं किया।

वहां से चलकर गुरुजी जैसलमेर पहुँचे। जोधपुर होते हुए अजमेर पहुँचे। वहाँ उन्होंने ढाई दिन के झोंपड़े को देखा। वहां उनके पास वहाँ के कई फकीर आकर मिले और कहने लगे आप तो हिन्दू और मुसलमान सभी को प्यार करते हैं। चलिए आज हमारे साथ चलकर नमाज पढ़िये। उनकी इस बात को सुनकर गुरु जी ने कहा—

अपने नजदीक तो शुभ कर्म काबा है सत्य भाषण कलमा है कर्तव्य की पूर्ति निवाज है" इसे हम

1. कई एक लेखकों के कथनानुसार यह संगलाद्वीप का सफर गुरुजी के करतारपुर स्थापन कर चुकने के बाद हुआ है।

नितही करते हैं आप लोगों मे से भी कोई इसी तरह वरता हो तो उसका और हमारा साथ है। इस सत्य उपदेशों को सुनकर वे लोग चुप हो रहे और गुरुजी के खयालात की प्रशंसा करने लगे। अजमेर से, सात मील के फासले पर पुष्कर तीर्थ है। यहाँ कार्तिक पूर्णमासी पर कई दिन तक भारी मेला रहता है। गुरु जी ने वहाँ पहुँचकर भी अपने सिद्धान्तो का प्रचार किया। वहाँ से नसीराबाद, देवगढ़, लोदीपुर होते हुए आबू पहाड पर पहुँचे। यहां भी जैनी साधुओ का वड़ा जमघट रहता है। जैन साधुओं से गुरु जी ने यहाँ भी काफी लोहा लिया और उन्हे अपने सत्यज्ञान की ओर आकर्षित करने की चेष्टा की। उनके दिलों पर तो गुरु जी के उपदेशों का असर पड़ा किन्तु सहज ही वे आनन्दों को छोडने वाले थोड़े ही थे। यहाँ से चलकर भालरा पाटन, ईडर, डूंगरपुर, वासवाडा आदि नगरों से होते हुए मही नदी को पार किया। जावरा के रास्ता से गुजरकर धारानगरी होते हुये चम्बल को पार करके उज्जैन पहुँचे। उज्जैन वही नगर है जिसमे राजा विक्रमाजीत और भर्तृहरि जैसे विद्वान आदमी हो चुके थे यहाँ गुसाईं लोगों और शैव मत के अनुयाइयों को गुरु जी ने उपदेश दिया। कई दिन तक यहाँ रहे भी। यह देश नदियों और वृक्षों करके वड़ा सुहावना मालूम देता है। पैदावार भी यहाँ अच्छी होती है।

उज्जैन से ओंकार पहुँचे यहाँ महादेव की मूर्ति पर गंगा जल की शीशियाँ चढ़ाई जाती हैं। आरती के समय सव अन्य साधु संत तो खड़े हो गए किन्तु गुरु जी वैठे ही रहे पुजारियों ने पूछा वावा ओंकार की प्रार्थना में क्यों शामिल नहीं हुए? गुरु जी ने फर्माया।

ओअकार ब्रह्मा उतपति। ओ अकार किया जिनि चिति।
ओ अकार सैल जुग भये। ओ अकार वेद निरमये।
ओअकार सवदि उधरे। ओ अकारि गुरमुखि तरे।
ओनम अखर सुणहु विचारु। ओनम अखर त्रिभवण सारु॥

गुरु जी वहां से चल कर, होशिगावाद, नरसिंहपुर वालाघाट इत्यादि गाडरदेशीय शहरों और जंगलो को पार करते हुए महादेव गिरि नाम की पहाडी को लाघ कर शहर सोनी के पास रामटेक पर पहुचे। कहा जाता है अति प्राचीन काल मे यहाँ पर राजा अम्वरीप ने यज्ञ किये थे। यहां पहाड़ी पर एक तालाव तथा प्राकृतिक किला यहाँ वना हुआ है। यहा से कामठी नागपुर होकर आवडा नामक स्थान में पहुचे। नाम देव भक्त भी यहीं पैदा हुए वताये जाते हैं। वे जाति के छीपे थे किन्तु परमात्मा के दरवार में तो "जाति पाति पूछं नहिं कोई। हरि भजे सो हरि का होइ।" का सिद्धान्त है। नामदेव जी के साथ में गुरु जी की खूव ज्ञान गोष्ठी रही। नामदेव जी भी गुरु जी के अनन्य प्यारों मे से थे क्योंकि इनकी भी साखिंया श्री ग्रन्थ साहव मे मिलती हैं। हमने दूसरे स्थानों पर भी नामदेव जी की जो वाणियाँ पढ़ी हैं उनसे भी हम इसी नतीजे पर पहुचे हैं कि नामदेव जी भी गुरु जी के सम-विचारक थे।

यहाँ से कड़खा होते हुए करहून नगर मे पहुँचे जहाँ प्रायः सभी लोग गणेश जी की मूर्ति की पूजा करते थे। इन लोगों को उपदेश देकर गुरु जी ने इतना तो करा दिया कि लोगों ने मूर्तियों को गले मे लटकाना वन्द कर दिया? यहाँ से आगे विदर देश मे पहुँचने पर गुरु जी ने देखा कि यहाँ का समाज कनफटे जोगियों के हाथ मे है जो सेली टोपी बांध कर फिरते हैं। यहाँ इनके इस पाखंड की भी पोल खोली। विदर के इलाके को पार करके वलदाना और मलकापुर से गुजरते हुए, गुरु जी ने गोदावरी नदी को पार कर हैदरावाद जिले मे प्रवेश किया और फतिहावाद में रहकर कुछ दिन प्रचार किया।

तिरुर और हैदराबाद के कई स्थानों पर अपने उपदेशों की वर्षा करके गुरुजी पागल प्रात में दाखिल हुए और जंगलों से घिरे हुए एक पहाड़ पर जा विराजे। यहां भी कनफटे जोगियों के डेरे थे। इन लोगों ने सुन रक्खा था कि गुरु नानक के पास लोग जो सौगात या भेंट ले जाते हैं वे उसे उसी समय बंटवा देते हैं। अतः ये जोगी केवल एक तिल लेकर गुरु जी की सेवा में हाजिर हुए। वे सोच रहे थे देखें इस छोटे से तिल को इतने आदमियों में कैसे बांटते हैं। गुरु जी ने तिल को लेकर मरदाना को आज्ञा दी कि इस तिल को पानी में घोल कर सब को आचमन करादो। जोगी लोग गुरु जी की इस अपरिग्रही बात से बड़े प्रसन्न हुए। इस स्थान पर तिलगंज नाम का एक गुरु स्थान है। यहाँ से गुरु जी केरल प्रांत में पहुँचे तारीख खालसा के लेखक सतसिंह ने यहां उस समय स्त्रियों का राज बताया है। शायद किसी समय रहा हो। अति प्राचीन समय में तो यह सूर्पनखा के अधिकार में था। इस देश के कदली वन को लांघते हुए और कृष्णा नदी को पार करके घूमते घामते पालम कोट पहुँचे। कहा जाता है इस यात्रा में मनसुख भी मिला था। पालम कोट में गुरु जी की स्मृति में एक मकान बना हुआ बताया जाता है। यहाँ से गुरु जी ने उन स्थानों को देखा जहाँ वानर लोग रहते थे। कंपकपी नगर को भी देखा। वह पहाड़ भी देखा जहां शिव पार्वती कुछ अनमन हो जाने के कारण अलग रहे थे। पालम कोट से कुछ ही दूर पर पाप नाशिनी गंगा नामक छोटी सी नदी है उसे पार करके आगे बढ़े। यहां लोग विष्णु की मूर्ति को तेल से स्नान करा कर अपनी भक्ति प्रकट करते थे। आगे वे अरकाट, पांडेचरी आदि को देखते हुए रामेश्वर पहुँचे। यहाँ पंडों के साथ ज्ञान चर्चा की किन्तु उन पर कोई स्थायी असर नहीं हुआ।

यहां से गुरु जी सीलोन अथवा लंका में पहुँचे। यहाँ के राजा रानी ने गुरु जी का खूब आदर सत्कार किया। तथा बड़ी श्रद्धा से नित प्रति उपदेश भी सुनते रहे। कहते हैं एक दिन रानी ने गुरु जी से कहा महाराज पति को वश में रखने का कोई मंत्र बताइये न। गुरु जी ने कहा :—

"प्रिय लगने वाले वचन बोलना, पति के क्रोध होने पर सहनशीलता से काम लेना, और पति से कोई कपट न करके प्रेमी स्वभाव रखना यही पति को वश में करने का मंत्र है। रानी इस बात को सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई और उसने गुरु जी के इस मंत्र को गाँठ बाध लिया।"

लंका से लौटकर गुरु जी दक्षिण भारत में मैसूर राज्य के राजा से मिले। वहाँ से शृंगेरीमठ आये। जो कि स्वामी शंकराचार्य जी के मठों में से है। यहाँ के महंत ने गुरु जी का अच्छा सत्कार किया तथा उपदेश भी सुने। यहाँ से अनेक नगरों को देखते हुए कालीकट से आगे मैसूर राज्य के बंगलोर आदि गावों व नगरों को देखते भालते बम्बई प्रांत से गुजरते हुए गोदावरी के तीर पर पंचवटी को देखा जहाँ भगवान वनवास के समय रहे थे। वहाँ से अम्बकेश्वर शिवजी का मंदिर देखते हुए और ताप्ती नदी को पार करके भड़ौच, बरोदा, अहमदाबाद के रास्ते से भावनगर और पालीताना को देखते हुए जूनागढ़ पहुँचे। यहां गुजरात के प्रसिद्ध संत नरसी भगत[1] से भेंट की। नरसी भगत ने कई दिन तक गुरुजी को वहीं रख लिया। नित ज्ञान चर्चा होती रही। यहाँ एक फकीर फैजबख्श भी बडा नेक आदमी था। वह भी गुरु जी का आना सुनकर उपस्थित हुआ और ज्ञान चर्चा में भाग लिया। वह गुरु जी की तरफ इतना आकर्षित हुआ कि जब गुरु जी वहां से चले तो उसने गुरु जी की खड़ाऊँ स्मृति के रूप में रख ली। यह खड़ाऊँ अब भी एक धर्मशाला में रक्खी हुई बताई जाती है।

१. कहा जाता है नरसी का शरीरांत माघ ५ सवत् १५८२ को हुआ था।

यहाँ से गुरु जी गिरनार पर्वत पर पहुँचे क्योंकि वहाँ पर अनेकों साधु महात्मा तप करते थे। कई दिन तक उनके साथ सतसंग करके सुदामापुरी का अवलोकन करते हुए द्वारिका पहुंचे। सुदामापुरी तक गिरनार से पहुँचने मे रास्ते में गुरु जी ने सोमनाथ के मन्दिर और यादवों की रण भूमि प्रभास क्षेत्र को भी देखा था। द्वारिका मे गुरु जी उस स्थान पर भी गये जहाँ के लिये कहा जाता है कि कृष्ण काल में यही द्वारिकापुरी थी अब समुद्र मे डूब गई है। यहाँ से गुरु जी मुड़कर कच्छ के मैदान मे जा पहुँचे। वहाँ के लोग वाम मार्गी थे और उसी ढंग से देवी की पूजा किया करते थे। गुरु जी ने वहाँ ठहर कर इस प्रकार के अनेकों लोगों को परमपिता परमेश्वर की शरण में आने के लिए उपदेश दिया।

यहा से लौटते हुए लखपत शहर और भुज को देखते हुए रास्ते मे आशापूर्णा देवी के मन्दिर पर ठहरे और फिर नारायण सरोवर मे जाकर लोगों को उपदेश दिया। यहाँ से धरनीधर की झाडी में होकर गुजरते हुए अमरकोट पहुँचे। यहाँ भी देवी पूजा का प्रचार था। आपने एकेश्वर पूजा के लिए लोगों को सलाह दी। यहाँ से अलदियार के टांडे से होकर फीरोजपुर मे आ गये और फिर अहमदपुर, खानपुर इलाका बहावलपुर, आदि अनेकों स्थानों पर होते हुए शहर उच्च मे जा पहुंचे। यह बस्ती निरी फकीरों की थी। आपने गाँव के बाहर डेरे डाल दिये। अनेक बार फकीरों से वार्तालाप हुई, फिर मुलतान मे पहुंचे। जब यहां के फकीरों को पता चला तो उन्होंने दूध से लबालब भरा हुआ एक कटोरा गुरु जी की सेवा में भेजा। जिसका अर्थ था कि यहा तो पीर फकीरों से यह शहर पहिले से ही पूरा भरा हुआ है अब आप कहाँ समावेंगे। गुरु जी ने उस दूध में दो बताशे डालकर और ऊपर से एक फूल रखकर उसे वापस कर दिया। यह फकीरो के लिए एक जवाब था अर्थात् हम तो आप लोगों के वैसे ही सहकारी हैं जैसा मीठा, दूध का सहकारी है और भरे कटोरे पर भी जैसे फूल रह सकता है साथ ही उसे सुगन्धित भी बना सकता है वैसे हमारे रहने से आप लोगों की हानि तो नहीं होगी अपितु आपके खयालात और अच्छे हो जायेंगे। पीर और फकीर इस सांकेतिक उत्तर से बडे प्रसन्न हुए और हकशाह, शरीफसानी, कोकलदीन और सदा सुहागन आदि जो जो माने हुए पीर थे गुरु जी की सेवा मे भेंट पूजा ले हाजिर हुए। यहाँ से विदा होकर तलम्बा नामक ग्राम में जाकर ठहरे। यहाँ सजन नामक ठग रहता था। उसने रास्तागीरों के ठहरने के लिये स्थान भी बनवा रक्खे थे पर मुसलमानों के लिये मस्जिद और हिन्दुओं को मंदिर। रात्रि को मुसाफिरों को सुलाने के लिए कहकर भीतर ले जाता और कुँए मे पटक देता। जब गुरु जी और मरदाना उनके यहाँ पहुचे और सोने का समय हुआ तो उसने इसी प्रकार इनसे भी कहा, चलिये बाबा सोइये क्योंकि गुरु जी के चमकते चेहरे को देखकर उसने इन्हें भी मालदार ही जाना था। गुरु जी ने उससे कहा "सज्जन परमात्मा की बंदगी करके सोवेंगे। उसने कहा हां, हां, बाबा करिए बंदगी करिए। मैंने तो सोने का समय जानकर अर्ज की थी। गुरु के संकेत पर मरदाना ने गाना आरम्भ किया :—

"उजलू कहिया चिलकना घोटम कालडी मसु।
धोतिया जूठि न उतरै जो सउ धोवा तिसु।
सजन सोई नालि मैं चलदिया नालि चलन्ति।
जित्थै लेखा मंगिए तित्थै खडे दिसन्ति। रहाउ।
कोठे मडप मांडिया पासहु चितवीं आहा।

ढठीया कमि न आवनी विचहु सखणीआहा ।
बगा बगे कपड़े तीरथ मंझि वसंनि ।
घुटि-घुटि जीआ खावणे बगे ना कहीअनि ।
सिंमल रुखु सरीरु मैं मैजन देखि भुलंनि ॥
से फल कामि न आवनी ते गुण मैं तनि हंनि ॥
अंधुलै भारु उठाइआ डूगर वाट बहुतु ।
अखी लोड़ी ना लहा हउ चड़ि लंघा कितु ।
चाकरीआ चंगिआईआ अवर सिआणप कितु ।
नानक नामु समालि तू बधा छुटहि जितु ॥

इन शब्दों को सुनते ही सज्जन के अंतर कपाट खुल गए और उसे प्रतीत हुआ मानो अपने ही ऊपर यह पद घटित होता है वह गुरु जी के चरणों में पड़ कर अपने अपराधों की माफी मांगने लगा। गुरु जी ने कहा जो पापों का माल इकट्ठा किया है उसको तो गरीबों में बांट दो और परमात्मा में चित्त लगाओ इसी में तुम्हारा कल्याण है।

सज्जना उसी समय से सुमार्गी हो गया। कहा जाता है गुरुजी ने पहली धर्मशाला इसी गाँव में बनवाई थी। यहां से गुरुजी अपनी जन्म भूमि तलवंडी में पहुँचे इस समय संवत १५७२ का भादवा महीना था। माता पिता सभी लोग आपके आने से बड़े प्रसन्न हुये। यहाँ आपने सुना कि रायबुलार बीमार है तो आप उसके घर पहुँचे। आपको देखकर बुलार बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने प्रार्थना की कि आप अब यहां से न जावें क्योंकि मैं थोड़े दिन का मेहमान हूँ। आपके रहने से मुझे आनन्द मिलेगा गुरुजी ने उसकी बात को मान लिया। इस तरह तेरह दिन उन्हें तलवंडी में ठहरना पड़ा।[1]

रायबुलार के देहान्त के बाद गुरुजी तलवंडी से प्रस्थान करके सुल्तानपुर में अपनी बहिन के घर आये। मरदाना गुरुजी से आज्ञा लेकर तलवंडी ही रह गया था। यहां नवाब दौलतखां ने गुरुजी को सदैव के लिये ठहरने को कहा किन्तु आपने उत्तर दिया कि भविष्य का क्या पता है?[2] क्या होना है? हम क्या निश्चय कर सकते हैं क्योंकि होना तो वही है जो ईश्वर के वश में है। नवाब चुप हो रहा. कुछ दिन यहां ठहरने के बाद फिर गुरुजी लाहौर पहुँचे। आपका इरादा यहां कुछ दिन स्थिर रूप से रहने का था किन्तु वहाँ के गौवध को देखकर आपको दुख हुआ और यह कहते हुये वहाँ से चल दिये "लाहौर शहर जहर कहर सवा पहर" और गुरुदासपुर जिले के कलानौर ग्राम में पहुँचे। यहाँ दोदह गोत्र के जाट रहते थे उन्होंने गुरुजी से यहीं स्थान बना लेने के लिये आग्रह किया। अत आपने परमात्मा के नाम पर करतारपुर[3] आबाद किया। करोड़ीमल खत्री ने वहाँ की कुल भूमि आपके स्थान से लगवा दी। मकान और धर्मशाला के बन जाने पर आप अपने बच्चों को भी यहाँ ले आये। इस तरह पन्द्रह वर्ष के बाद सुलखणी माई को पुनः अपने आराध्य देव की सेवा करने का मौका मिला।

१. पुरातन जन्म साखी के अनुसार गुरुजी अपनी बाकायदा यात्रा पर जाने से पहले ही इस स्थान पर आये थे।
२. कुछ लेखकों ने लिखा है करतारपुर की नींव १५६६ में रक्खी गई और तीसरी यात्रा १५७० में आरम्भ हुई।
३. यहां चार छोटे-कुण्ड भी हैं जो राम-कुण्ड, लक्ष्मण कुण्ड, सीता कुण्ड और हनुमान कुण्ड के नाम से मशहूर हैं।

तीसरी उदासी

सिख तवारीखों मे लिखा है कि करतारपुर की नींव संवत् १५७२ वि: के माघ की १३वीं को रक्खी गई थी। धर्मशाला मकान कुएँ बन जाने तथा काफी जमीन हो जाने पर गुरुजी ने खेती कराना भी आरम्भ कर दिया क्योंकि वे भेट चढ़ावे पर अपना जीवन निर्वाह का आधार नहीं बनाना चाहते थे इसीलिये यह रकम उसी समय लंगर मे डाल देते और अपने परिवार के खर्चे के लिये खेती करना उन्होंने जरूरी समझा।

तीन वर्ष के करीब वहाँ रह कर गुरुजी फिर यात्रा के लिये निकले। मरदाना भी आ पहुँचा था। यह यात्रा उन्होंने सवत् १५७५ के असू की २५ वीं को आरम्भ की। कलानोर, गुरदासपुर, दसूहे, त्रिलोकनाथ, पालमपुर, और कोट कांगड़े होते हुये ज्वालामुखी पहुँचे। यहाँ अरजुन नाग को उपदेश दिया। गुरुजी की यादगार मे यहाँ एक धर्मशाला भी है। वहाँ से मनीपुर होते हुए, रवालसर पहुँचे। यहाँ देखा कि पत्थर के छोटे-छोटे टीले तालाब मे तैर रहे है और उन पर हरे-हरे वृक्ष उगे हुए हैं। पंडा लोग इन्हे दिखा-दिखा कर अपना रोजगार चलाते है। मरदाने के पूछने पर गुरुजी ने बताया झावाँ नामक पत्थर परमात्मा ने पानी मे न डूबने वाला ही बनाया है यह सब उसी की कुदरत है। इस देश मे मनीकर्ण मे एक गर्म पानी का चश्मा है जिसमे चावल डालते-डालते पक जाते हैं। यहाँ से नादौन, सुकेत, मंडी को देखते हुए कुल्लू राज्य में पहुँचे। वहाँ पर गद्दी जाति के लोगों को उपदेश दिया। चम्पा राज्य में जाकर जहाँ कि एक शीतला का मंदिर था लोगों को ईश्वर पूजा की ओर खींचने के लिये उपदेश दिया। आगे कीर्तिपुर मे बुड्ढनशाह फकीर से भेट की। यह फकीर बकरियां भी पालता था उसने मटकी दूध गुरुजी के पास भेजा किन्तु गुरुजी ने यह कह कर लौटा दिया कि कभी फिर लेंगे हमारी अमानत जमा रहे। तत्पश्चात पंजोर गये वहाँ वैसाख सुदी ३ को प्रति वर्ष बड़ा मेला लगता है, यहाँ से आगे जोहड़ साहब मे पहुँचे वहाँ गुरुजी की यादगार मे एक बडा मकान भी बना हुआ है और प्रति वर्ष जेठ के महीने मे मेला लगता है। यहाँ से तीन कोस की दूरी पर एक बहुत ऊँची पर्वत की चोटी है उस पर भी गुरुजी पहुँचे और लोगों का पानी का दुख मिटाने के लिये पर्वत शिला को हटा दिया जहाँ पानी निकल आया। इससे लोग बड़े कृतज्ञ हुए। उस स्रोत के आस पास घेरा बांध कर अब उसे तालाब का रूप दे दिया गया है जो माहीसर कहलाता है। यह नाम पड़ने का कारण यह है कि माही नाम के व्यक्ति ने ही गुरुजी से सर्व प्रथम जल कष्ट की कहानी कही थी। चलते समय भी गुरुजी ने उसको ही यहाँ का प्रबन्धक बनाया था उसने गुरुजी के सिद्धान्तों का बड़ा प्रचार किया यहाँ तक कि अब भी इस पर्वत के वासी नानकशाही नाम से ही संबोधित होते हैं यहाँ से चलकर गढ़वाल, मंसूरी और चकराता होते हुये उत्तरकाशी मे पहुँचे, जहाँ अनेक अग्नि व जल के उपासकों को सन्मार्ग बताया। यहाँ से गगोतरी और जमनोतरी स्थानों को देखा जहाँ से कि गङ्गा, यमुना निकलती हैं। श्री नगर मे पहुँच कर वहाँ के राजा अमर शाह को उपदेश दिया और फिर अनेक स्थानों को देखते हुए बद्रीनारायण में पहुँचे। यहाँ का महत द्राविड़ ब्राह्मण था। उसके पंडों ने गुरुजी के पास आकर बद्रीनारायण जी का इतिहास इस प्रकार सुनाया कि यह नारायण की मूर्ति सतयुग की है। जैनी लोगो ने इसे गंगा मे फेंक दिया था पुन श्री शकराचार्य जी ने इसे स्थापित किया है "जल थल महीअल पूरिआ स्वामी सिरजन हार, अनिक भांति होइ पसरिआ नानक ओकार।" अर्थात् जल, थल सभी स्थानों पर फैले हुए, परमेश्वर ही का मैं तो उपासक हूँ। इससे पड़े समझ गये कि यह साधू मूर्ति पूजक नहीं है। यहां से

तदनन्तर गुरु जी यमुनोत्री होते हुए हिमालय को पार करके हेम कूट से आगे सप्त शृंग पहाड़ पर पहुँचे। वहां पर कौरनाथ नाम का एक तीर्थ था वहां अनेक साधु सन्तों के साथ सतसंग किया। यह स्थान बद्रीनाथ से आगे ४० मील के फासले पर धरातल से १७६६७ फीट की ऊंचाई पर बताया जाता है। यहां प्रातः सूर्योदय के समय सारा पर्वत शिखरें सुनहरी हो जाती हैं, इसलिये इसे हेम कूट व सुमेर पर्वत भी कहते हैं। कहा जाता है राजा पाण्डु भी यहां आकर रहे थे।
यहां से आगे चल और कई मंजिलें पार करके रानी खेत, अल्मोड़ा आदि से गुजरते हुए नैनीताल के इलाके में पहुँचे। इस जंगल में कनफटे जोगियों के कई डेरे थे। यह जोगी लोग अपने को सिद्ध माना करते थे इनके साथ गुरु जी का भारी विवाद हुआ और अन्त में जोगियों को हार खानी पड़ी। इसी समय से इस स्थान का नाम गोरख मते के बजाय नानक मता हो गया। यहां से तीन कोस के फासले पर गुरु जी ने कनफटे साधुओं को इनका बार बार ही इस जिद से कि कोई करामात दिखाओ रीठे को मीठा करके बताया। यहां से गोरख पुर पधारे। यहां भूत प्रेत की पूजा का भारी प्रचार था गुरु जी ने उपदेश करके बताया और कहा क्यों मनुष्य जन्म को व्यर्थ गमाते हो। परम पिता परमात्मा की शरण में आओ। यहाँ से सालन्दर कृष्ण ताल और भीलागढ़ के मार्ग से नैपाल देश की राजधानी काठमाण्डू में पशुपति नाथ के शिवालय के पास जाकर डेरा लगाया। यहां अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने के बाद ललता पट्टी और दोरुन्दु पहाड़ को देखते हुये सिक्कम की भूमि में पहुँचे और एक टीले पर जाकर डेरे लगाये। यहाँ स्थान पर जाकर लोगों को गुरु जी के शब्द मरदाना ने सुनाए। इसके आगे कंचनचंगा, और देश की राजधानी लाची सूदन में धर्मोपदेश किया। यहां से तिब्बत का देश भी मिला हुआ है गुरु जी ने तिब्बती लामाओं से भी सत संग किया। एक लामा ने तो गुरु जी की वाणियों का अपनी भाषा में संग्रह भी किया। यहां से गुरु जी भारत की ओर लौट पड़े और, लनीस, ब्रह्मकुंड डेरहगढ़, शिवपुर, रानीगंज होते हुये मिथिला प्रान्त के जनकपुर में आये। यहाँ भी कई लोगों को अपना शिष्य बनाया इसके बाद गन्डकी नदी को पार करके सीतामढी, गोरखपुर बलिरामपुर, काशीपुर, सीतापुर और बल्लभ शहरों से होते हुए लुधियाने से गुजर कर जालधर में आये और फिर शीघ्र ही सुल्तान पुर में अपनी बहिन नानकी के घर पहुँचे। कुछ दिन बहिन के घर रह कर फिर अपने बसाये हुए ग्राम करतार पुर में पधारे। वहाँ आपको आया सुनकर आस पास के इलाकों के लोग दर्शनों के लिये उमड़ पडे और दर्शन करके तथा विविध देश और नगरों का गुरु जी के मुंह से हाल सुनकर सबने आनन्द लाभ किया। इस तरह यह तीसरी उदासी समाप्त हुई।

चौथी उदासी

तीसरी उदासी लगभग दो वर्ष में समाप्त हुई थी। फिर भी गुरु जी ने करतार पुर में दस पांच वर्ष भी विश्राम नहीं किया। यात्रा पर चल पडे[1] यह चौथी यात्रा भाई मरदाना के आग्रह पर उन्होंने भारत से बाहर के पश्चिमी देशों को देखने के लिये आरंभ की। लालो को दर्शन देने की इच्छा से पहिले एमनाबाद पहुँचे। फिर वजीराबाद से आगे रोहितास पहाड़ के पास पहुँचे। यहाँ मरदाना की प्यास

१. यहा यह भी बता देना उचित होगा कि गुरु जी तलवंडी भी गये थे और अपने परिवार वालों को देश विदेश की चर्चा और सदुपदेशों से संतुष्ट किया था।

बुझाने के लिये एक पत्थर को हटाकर श्रोत खोला। कहा जाता है कि जब संवत १५६६ वि० मे बादशाह ने यहा किला बनवाया था तो उसने इस चश्मे को किले के भीतर लेने का निष्फल प्रयत्न किया था। आगे टिल्ले बाल गदाई के पास कनफटे जोगियो के साथ धर्म चर्चा की। फिर आगे चलकर पिंडदादन खां, डेरा इसमाइल खां और डेरा गाजी खां आदि शहरों मे अनेक मुस्लमान साधुओ के साथ विचार-विनमय और ज्ञान चर्चा करते हुये जमानपुर, राजनपुर और कोट मिट्ठन मे होकर, शहर सक्खर मे पहुँचे। तथा प्रचार किया, इसके अलावा सिन्ध प्रान्त के शिकारपुर, लरकाना और हैदराबाद तथा किराची आदि रास्ते के सभी बड़े और छोटे नगरों मे गुरु जी ने धर्म प्रचार किया। यहा के सभी लोग जल देवता, इन्द्र देवता आदि की मिट्टी की मूर्तियां बनाकर अपनी धार्मिक भावनाओं की पूर्ति करते थे किन्तु गुरु जी के उपदेशो से हजारो आदमी एक ओंकार के उपासक बन गये। और अब तक भी सिन्ध मे गुरु नानक के मतानुयाइयों की भारी संख्या पाई जाती है। यहा प्रत्येक नगर मे धर्मशालाये है जिनमे उदासी संत रहते है। और गुरु ग्रन्थ साहब का पाठ करते है।

शहर कराची के मार्ग से गुरु जी भारत से बाहर हो गए और बिलोचिस्तान में पहुँच गये। इसी देश मे हिंगलाज की देवी का मन्दिर है जिसे बहुत पहिले जाटो ने शक्ति की पूजा के लिये बनवाया। इस्लाम के प्रवाह से यहा के पुराने बाशिन्दे जिनमें अधिकाश जाट ही थे कुछ मुस्लमान हो गये कुछ भारत की ओर चले आये थे। गुरु जी ने कलात को देखते हुये इस तरह बिलोचिस्तान को भी पार किया और अनेको स्थान को देखते भालते मक्का पहुँचे।

बिलोचिस्तान में

मक्का पहुँच कर लोगो के वेश भूषा रहन सहन और चाल चलन को देखकर गुरु जी ने मरदाना से रबाब पर यह पद गवाया :—

अरब मे

"नौ सत चौदह तीन चार करि, महलति चारि बहाली।
चारे दीवे चहु हथि दीये एका एका वारी॥
मिहर मान मधु सूदन माधो ऐसी सकति तुमारी। १ रहाउ॥
घरि घरि लसकरु पावकु तेरा धरमु करे सिकदारी।
धरती देग मिलै इक वेरा भागु तेरा भडारी॥ २॥
ना साबरु होवै फिरि मगै नारदु करै खुआरी।
लब अधेरा बन्दीखाना औगुण पैरि लुहारी॥ ३॥
पू जी मार पवै नित मुदगर पाप करै कोटवारी।
भावै चगा भावै मदा जैसी नदरि तुम्हारी॥ ४॥
आदि पुरुष को अलहु कहीए सेखा आई वारी।
देवल देवतिया करु लागा ऐसी कीरति चाली॥ ५॥
कूजा बाग निवाज मुसला नील रूप बनवारी।
घर घर मीयां सभना जीआं बोली अवर तुम्हारी॥ ३॥
जे तू मीर मही पति साहिब कुदरति कौण हमारी।
चारे कू ट सलाम करिहिगे घरि घरि सिफत तुम्हारी॥ ७॥
तीरथ सिंमित पुनि दान किछु लाहा मिलै दिहाडी।
नानक नामु मिलै वडिआई मेका घडी सभाली॥ ८॥

इसका भावार्थ यह है कि हे परमात्मन् आपने सात द्वीप, नौ खंड, चौदह भुवन वाला जो संसार बनाया है। हे भगवन् यह आप ही की ताकत का काम है अर्थात् दूसरा कौन है जो ऐसी रचना कर सके। इस संसार में मुझे भोगने को सब चीजों के भण्डार दिये किन्तु तृष्णा पापिन ख्वार करती है। ख्वाहिश व इसरार के कसीखाने में लोग यम की मोगरी की मार खा रहे हैं। विचित्रताओं के इस संसार में (यहाँ दरस में) लोग जाहिर पुरुष को तो ख्लाहिक 'अप्राप्य' कहते हैं। हे बनवारी यहां तो कजा बाग वालों में आपका नाम (सदा) रूप माना जाता है। जिन्दा (जीवित लोगों) को मीत्रा (मुये हुये) कहते हैं। यहां आदमी मारा ही इसरों का गया है। यह सब तेरी ही कुदरत है इसलिये हमें चारों खूंट दुनियां मनाओ देनी होगी। चाहे मुझे राजा और चाहे महीपति। तीर्थ, दान पुण्य और स्मृति पाठ से यदि कुछ भी लाभ होता हो तो मुझे केवल आप अपने नाम की बड़ाई (गुणगान का प्रेम) ही दीजिये।

कई दिन के सफर के कारण रात्रि के समय गुरु जी और मर्दाना गहरी नींद में सो गये इससे प्रातः ही जल्दी न उठ सके। मुल्ला ने देखा कि गुरु नानक जी के पांव काबा की ओर है तब कहने लगे आप खुदा के घर (काबा) की ओर पैर करके सो रहे हैं। गुरु जी ने कहा भाई हमारे पैर उधर कर दो जिधर खुदा का घर न हो। इस यथोक्त बात को सुन कर मुल्लाओं के ज्ञान चक्षु खुल गये।¹ मुल्ला गुरु जी को काजी के पास ले गया और सब हाल सुनाया। काजी ने पूछा भाई जी आप कौन हैं? "मैं मनुष्य हूँ" गुरु जी ने जवाब दिया। मनुष्यों में भी हिन्दू और मुसलमान में से आप कौन हैं? काजी ने दूसरा प्रश्न किया। गुरु जी ने जवाब दिया "पंच तत्व का पुतला तो न हिन्दू है न मुसलमान" मनुष्य जाति में विभेद पैदा करने की पद्धति ईश्वरीय काम तो नहीं। काजी ने प्रश्न को बदल कर गुरुजी से पूछा आपकी बगल में जो पुस्तक है किस मतलब की है? इस पर गुरुजी ने कहा मतलब तो जो जैसी प्रकृति का होता है वैसा ही निकाल लेता है। तब फिर आपके किस काम आती है? काजी ने पूछा। मेरी यह खुराक है गुरु जी ने उत्तर दिया। काजी इस उत्तर पर बड़ा हैरान हुआ और पूछने लगा, भाई जी भला किताब में से कोई क्या खायेगा? गुरु जी ने कहा हां खाते हैं, सुनो जो लोग बहस मुबाहिसा करने के शौकीन होते हैं वे किताब के हाड़ भाग को खाते हैं और जो महान् लोगों की कृति समझ कर पुस्तकों का अध्ययन करते हैं वे इसके मांस भाग को खाते हैं। और जो पुस्तकों को पढ़कर अपने और परमात्मा के रूप का साक्षात्कार करता है, वह पुस्तक का प्राणभाग खाता है। इस तरह के विवेचन को सुनकर काजी का आत्मज्ञान जाग्रत हो उठा और उसने गुरु जी का हाथ पकड़ कर अपने से ऊँचे आसन पर बिठाया तथा कई दिन तक सत्संग का लाभ लिया।

मक्का से चल कर गुरु जी मदीना पहुँचे। वहां उनके साथ आरम्भ मे कुछ लोग इस कारण कटुता से पेश आये कि वे चाहते थे कि संगीत के द्वारा गुरु जी कोई प्रचार न करें। आखिर गुरुजी के न मानने पर बात इमाम तक पहुंची। इमाम ने भी मना किया और कहा शहर में संगीत वर्जित है। गुरु जी ने कहा कि मन को विचलित करने वाला, आचरणभ्रष्ट लोगों द्वारा गाया जाने वाला संगीत शराह में निषेध होगा। परमात्मा की भक्ति को पैदा करने वाला संगीत निषिद्ध नहीं हो सकता है। इमाम

१. साखियों में लिखा है कि जब गुरु जी के पैर पकड़ कर घुमाये गये तो जिधर को पैर घुमाये गये ऐसा प्रतीत हुआ कि जिधर उनके पांव घुमाये जाते हैं उधर ही काबा भी दिखाई देता है।

की समझ मे यह बात आ गई। उसने कुछ शब्द उसी समय मरदाना के रवाव पर सुने। जिनसे वह इतना प्रभावित हुआ कि उसने गुरु जी का बड़ा आदर सत्कार किया। यहां गुरु जी सब इमामों से मिले तथा उनके साथ ज्ञान चर्चा की। साखियों मे अरब देश मे गुरु जी के सतसंग और धर्म प्रचार सम्बन्धी बहुत बातें है और पढ़ने सुनने लायक हैं किन्तु हमने तो संक्षिप्त ही वर्णन किया है।

मदीने से चलकर अनेक ग्राम और शहरो को पार करते हुए बगदाद मे पहुँचे। यहां एक दिन आप शहर के बाहर खड़े होकर अल्ला हो अकबर का नारा लगाने लगे। इस बेवक्त के नारे को सुनकर हजारों आदमी उनके इर्द गिर्द इकट्ठे हो गये और उनसे अनेक प्रश्न करने लगे। गुरुजी ने

बगदाद

उनके साथ उस दिन जो बातचीत की उनसे उन लोगों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि नित ही लोग उनके स्थान पर आकर ज्ञान चर्चा करने लगे।

गुरु नानक जी जब बगदाद से चले तो खलीफा ने उनको एक जामा व चोला भेंट किया जिस पर कई भाषाओं मे कुरान की आयते लिखी हुई हैं। डेरा बाबा नानक मे मेले के अवसर पर यह चोला दिखाया जाता है। आगे चलकर गुरुजी रोम की राजधानी अलैपो में जो हल्ब नाम से

रोम

भी मशहूर थी पहुचे। गाने बजाने की यहाँ के अधिपति ने भी आरम्भ मे मनाही की किन्तु गुरु जी की तर्कों के आगे वह कायल हो गया और रबाव पर भजन सुनकर उसके दिल में भी गुरु जी के प्रति श्रद्धा के भाव पैदा हुए।

कुछ साखियों मे लिखा है कि बगदाद और हल्ब जाने से पहले गुरुजी मिश्र भी गये थे और जलाल नामी पीर और हमीद कारू बादशाह के सामने भी उन्होंने अपने ख्यालात का प्रकाशन किया था। यह भी सभव हो सकता है। अंत मे वे हल्ब से लौटकर दरियाये दजला और फरात को पार करके ईरान देश के तेहरान नगर मे पहुँचे वहा के बादशाह के साथ गुरु जी ने धर्मचर्चा की। ईरान के प्रदेश से गुरुजी अफ़गानिस्तान उतरे और हिरात मे आये। हिरात के खान ने गुरु जी की बाते सुनीं और बड़ा प्रसन्न हुआ।

ईरान, अफगानिस्तान, बलख बुखारे में

हिरात से रवाना होकर गुरुजी अफ़गानिस्तान के उत्तरी हिस्से की ओर बढ़ गये और बुखारा में पहुँचे। काबुल, कन्धार से गुजरते हुए जलालाबाद से पेशावर मे आ पहुँचे।

पेशावर से आगे बढ़कर हसन अब्दाल की पहाडी तले गुरुजी ने डेरा लगाया। यहां पहाड़ी पर वली कधारी नाम का एक फकीर रहता था। उसके पास पानी का एक स्रोत था जब मरदाना पानी लेने गया तो उसने मरदाना से यह जानकर कि वह नानक का शिष्य है कहा, तू काफिर का शिष्य हो गया, तुझे लाज नहीं। मरदाना ने कहा साईं जी आप क्या कहते हैं गुरु जी तो इस जमाने के महापुरुष हैं। इस पर उसने कहा तो फिर यहां पानी लेने तुझे क्यों भेजा। वह वहीं पानी क्यों नहीं निकाल लेते। मरदाना ने लौटकर यह बातें गुरुजी से कहीं। गुरूजी ने एक दो दफा फिर उसके पास भेजा किन्तु जब उस ने पानी नहीं ही लेने दिया तो पहाड़ी मे उसी स्थान पर एक स्रोत निकाल दिया। जब वली कंधारी को मालूम हुआ कि दूसरा स्रोत, निकाल लिया तो चिढ़कर ऊपर से एक चट्टान ढकेल दी। यह चट्टान पंजा साहिब के नाम से मशहूर है क्यों कि गुरुजी ने अपने ऊपर गिरने से हाथ लगाकर रोका था। इसे पजे से रोकने के कारण यह अब पंजा साहिब के नाम से मशहूर है। अब भी वहाँ पजे की निशान वाली शिला दर्शकों को दिखाई जाती है।

स्वदेश में

इस स्थान से चलकर गुरुजी कश्मीर प्रदेश में पहुँचे। जहा के अनेकों शहरों और गावों में

अपना संदेश सुनाया और फिर एमनाबाद की ओर लौट पड़े। रास्ते में स्यालकोट पड़ा, इसलिये इच्छा की कि मूला से मिलते चलें। किन्तु चूंकि मूला को घर वालों ने इस डर से कि वह साधू संतों के साथ न भाग जाय, छिपा लिया और गुरुजी से भी यही कहा कि यहाँ मूला नहीं है। दैवात हुआ भी यही कि मूला इस लोक में नहीं रहा। उसे छिपने वाले स्थानों में सर्प डस चुका था। इस बार स्यालकोट में जहाँ गुरुजी ठहरे थे उस स्थान का नाम बावली साहब के नाम से प्रसिद्ध है।

गुरुजी वहाँ एमनाबाद में ठहरे ही हुए थे कि बाबर बादशाह ने एमनाबाद की लूट कराली। यहां से लूट के माल को उठवाने के लिये जो अनेकों आदमी पकड़े गये उनमें गुरु नानक भी थे। किन्तु मालूम होने पर बादशाह ने उन्हें छोड़ दिया।

बादशाह के पास से आकर गुरुजी ने परमात्मा को संबोधित करते हुये कहा:—

खुरासान खसमाना कीता हिन्दुस्तान डराइआ।
आपै दोसु न देई करता जमु करि मुगलु चड़ाइआ॥
एती मार पई करलाणे तैं की दरदु न आइआ।
करता तू सभना का सोई।
जे सकता सकते कउ मारे ता मनि रोसु न होई। रहाउ
सकता सीहु मारे पै वगै खसमै सा पुरसाई।
रतन विगाड़ि विगोए कुती मुइआ सार न काई॥

यवनों द्वारा हिन्दू ललनाओं की जो बेइज्जती हो रही थी उस हालत का गुरुजी ने इन दर्द भरे शब्दों में स्मरण किया है:—

जिन सिरि सोहनि पटीआ मांगी पाइ सधूर।
सो सिर काती मुंनीअनि गल विचि आवै धूड़ि।
महला अंदरि होदीआ हुणि बहणि न मिलनि हदूरि॥१
आदेसु बाबा आदेसु।
आदि पुरख तेरा अंतु न पाइआ करि करि देखहि वेस। रहाउ
जदहु सी आवी आहीआ लाड़े सोहनि पासि।
हीडोली चढ़ि आइआ दंद खंड कीते रासि।
उपरहु पाणी वारिऐ झले झिमकनि पासि॥
इक लखु लहनि बहिठीआ लखु लहनि खड़ीआ।
गरी छुहारे खांदी आ माणनि सेजड़िआ॥
धनु जोबनु दुइ वैरी होए जिनी रखे रंगु लाइ।
दूतानों फुरमाइआ लै चले पति गवाइ।
जे तिस भावे दे वडिआई जे भावे देइ सजाइ॥
अगहु देजो चेतिऐता काइतु मिलै सजाइ।
साहां सुरति गवाइआ रंगति मासै चाइ।
बाबर वाणी फिरि गई कुइरु रोटी न खाय।

यहां से गुरुजी करतारपुर आ गये। और अपने प्यारे शिष्यों को उपदेश दिया।

कुछ इतिहासकारों का कहना है कि गुरुजी ने पांचवीं यात्रा फिर की और कन्धार से बलख बुखारा और ख्वारिज्म पहुँचे जहाँ मरदाना का शरीरांत हुआ। किन्तु कुछ लोग केवल चार ही यात्रा मानते हैं।

शेष जीवन

लगभग ३० वर्ष गुरु जी की आयु के देशाटन में व्यतीत हुये। इन्होंने भारत ही नहीं भारत से बाहर तिब्बत, अरब, ईरान और रूम तक यात्रा की और अपने सिद्धान्तों को फैलाया। इसके बाद स्थिर रूप से वे करतारपुर में रहने लगे। यहाँ उनके पास दूर-दूर से लोग दर्शन करने के लिये आते थे। शिष्यों की संख्या भी लगातार बढ़ती जा रही थी।

करतारपुर में रहते हुए वे सब काम नियम से करते थे। उनके समय का एक मिनट भी व्यर्थ नहीं जाता था। उन्होंने अपनी दिनचर्या भी इतनी सुन्दर बना रखी थी कि अन्य साधु संत जब गुरुजी के रहन, सहन और दिनचर्या को देखते तो उन्हें अपने जीवन में भी परिवर्तन का भाव आता जान पड़ता। गुरुजी सदैव तारागणों की छाया में उठते थे। सूर्योदय तक शौच और स्नान से निवृत्त हो जाते थे। पश्चात एक प्रहर दिन चढ़े तक एकान्त में ईश्वर प्रार्थना करते थे। ईश्वर प्रार्थना से निवृत्त होने पर आये हुये भक्त लोगों को दर्शन देते और उनका कुशल मंगल पूछते। इसके बाद लंगर में आकर भोजन की व्यवस्था देखते।

गुरुजी के आश्रम में सभी लोग बिना किसी भेद-भाव के एक पंक्ति में बैठकर भोजन पाते थे। सब के लिये एक सा भोजन दिया जाता था। दोपहर की समाप्ति तक यह कार्य हो जाता था। कभी-कभी स्वयं गुरु जी अतिथियों के भोजन के समय उपस्थित रहते। पंक्ति में बैठकर ही भोजन भी करते। सायं काल को सभा लगाते। मरदाना के पुत्रों शाहजादा और रजादा को रबाब पर भजन गवाते। पश्चात् आप उपदेश करते। इसके बाद शौच आदि से निवृत्त होकर फिर हरि कीर्तन होता। पुनः भोजन आदि से निवृत्त होकर एकान्त में ईश्वर के गुणानुवाद करते। यह थी गुरु जी की अष्ट पहर की चर्या।

गुरु जी की धर्मशाला पर आते ही दर्शकों का चित्त आनन्द से भर जाता था। शिष्य लोग और धर्मशाला पर आठ पहर रहने वाले कार्यकर्त्ता आगन्तुकों का बड़े ही प्रेम से सत्कार करते। गुरु जी के दर्शनों से किसी की तृप्ति न हो यह असम्भव बात थी। गोरा सुन्दर स्वर्ण जैसा चमकता हुआ चेहरा और उस पर चाँदी जैसे उजले केश। प्रथम झांकी में ही दर्शनार्थी के चित्त को मोह लेते थे। चेहरे पर सचाई और देवत्व का नूर बरसता था, और जिस समय गुरु जी उपदेश करते थे सचमुच अमृत बरसता था। यद्यपि गुरु जी पंजाब में पैदा हुये थे, किन्तु उनकी वाणी में ब्रज भाषा की जैसी मधुरता और गुजराती की जैसी कमनीयता थी। ऐसे बहुत ही कम उदाहरण मिलते हैं जब कोई गुरुजी के मधुर उपदेशों से प्रभावित न हुआ हो।

यहां हिन्दू मुसलमान, ब्राह्मण, शूद्र और क्षत्री, वैश्य का कोई भेद न था। सभी आकर समान रूप से आत्म-भोज प्राप्त करते थे। आत्मा और पेट दोनों की ज्वालाओं को यहा शांत किया जाता था। ऐसी थी गुरु जी की यह धर्मशाला, लोग करतारपुर का रास्ता पूछ कर यहा आते थे किन्तु यहा से ऐसा ज्ञान प्राप्त करके ले जाते कि फिर उन्हे किसी दूसरे से "करतारपुर" का रास्ता पूछने की आवश्यकता नहीं रहती थी।

अपने जीवन के अन्तिम १४, १५ वर्षों में इस धर्मशाला में बैठकर खुले दिल से लोगों को धर्म का ज्ञान दिया और करतार के नगर का सच्चा रास्ता बताया। इसी बीच में, लहना जैसे मूर्ति पूजकों और बुड्ढा, लालू ने साधारण जनों को ऐसे ऊंचे स्थान पर लाकर खड़ा कर दिया जिसे बिना गुरु कृपा के पाना एक दम असम्भव है।

इसी प्रकार सम्वत् १५९० विक्रमी में गुरु जी के माता पिता का स्वर्गवास हो गया था। अब सम्बंधी में केवल चाचा (लालू) अवशिष्ट रह गये थे।

एक दिन वह भी आया जब गुरु देव ने भी अपनी लीला समेट ली और सम्वत १५९६ वि० में आश्विन सुदी १० को परलोक सिधार गये।

गुरु नानकदेव जी के जीवन, कार्य और मन्तव्यों पर एक सरसरी नज़र

पीछे के पृष्ठों में गुरु जी के सम्बन्ध में जो प्रकाश डाला है, उससे केवल उनकी लम्बी यात्राओं और साथ सिद्ध करामातों का ही पता चलता है। आरंभिक पृष्ठों में उनके घर, गांव, जाति, कारबार, और उनके निज के बारे में हालात भी मालूम हो जाते हैं किन्तु गुरु नानक देव जितने महान थे उतना ज्ञातव्य भेद एक साधारण बुद्धि के आदमी के लिये बिना अधिक विवेचन के हाथ नहीं लग सकता है इसीलिये यहां हम उनके जीवन पर कुछ विवेचना करना जरूरी समझते हैं।

जिस घर में गुरु जी ने जन्म लिया था न तो वह बड़ा अमीर घर था और न गरीब। कालूराय मध्य श्रेणी का आदमी था। अतः हम यह नहीं कह सकते कि गरीबी की चपेटों ने गुरु जी के आत्मिक ज्ञान को जागृत किया। जैसा कि हजरत मुहम्मद और हजरत ईसा के लिये ख्याल किया जा सकता है। न यह कह सकते हैं कि माया के जंजाल ने उन्हें वीतराग बनाया था। जैसा कि भगवान बुद्ध के ऊपर मुर्दे को देखकर यह असर पड़ा कि ओह! एक दिन क्या राजा और क्या भिखारी सभी को मरना पड़ता है। अधिक गौर से देखें तो हमें ऐसा जान पड़ता है वे प्रकृत रूप से ही वैरागी थे। जन्म से ही उदासी थे। आरंभ से ही साधु स्वभाव थे। आगे के जीवन में हम उन्हें महात्मा बुद्ध की तरह घर छोड़ते देखते हैं। हज़रत ईसा की तरह प्रेम और ईश्वर-आस्था की शिक्षा देते देखते हैं। और देखते हैं स्वामी शंकराचार्य की तरह पर्यटक के रूप में।

प्रकृति

बालपन में उन्हें फारसी, संस्कृत और हिन्दी की प्रचलित सभी पाठशालाओं में बिठाया गया। यह नहीं सकते कि उन्होंने वहाँ क्या और कितना पढ़ा? किन्तु यह अवश्य कह सकते हैं कि आत्मा की तुष्टि और विकास के लिये मौलवी पंडित और पाधा से उन्हें कुछ भी नहीं पढ़ना पड़ा। हम 'दबिस्तान' के लेखक मोहन की इस धारणा से कतई सहमत नहीं हैं कि एक दरवेश (मुसलमान फकीर) से शिक्षा पाकर नानक का आत्मा प्रकाशवान हुआ था[1]। गोकि मैलकम साहब को भी कुछ मुसलमानों ने यही बताया था कि "भविष्यतवक्ता इलियास से नानक ने सब तरह का नैसर्गिक विज्ञान सीखा था"[2] अपितु वे जन्म से ही ऐसे लक्षणों को लेकर आये थे

शिक्षा

१. Dabisthan, II. 247
२. Siketeh. P. 14 By Melecome

जिन्हें ईश्वर-प्रदत्त-देन ही कह सकते हैं। यह संभव हो सकता है कि जिन लोगों का मुसलमान इतिहास-कर जिक्र करते हैं उनके खयालात भी गुरु नानक देव जी से मिलते जुलते हों जैसे कि कबीर, नामदेव और धन्ना जाट के मिलते थे। परन्तु "आदि गुरु ग्रन्थ साहब" को जब हम पढ़ते हैं तो हमें मालूम होता है कि मुस्लिम इतिहासकार जिन लोगों को गुरु नानक देव के आध्यात्मिक शिक्षक होने का नाम लेते हैं, उनसे या तो गुरु जी का कतई संसर्ग नहीं रहा या उनके खयालात भी गुरु जी से नहीं मिलते थे वरना अवश्य ही शेख फरीद और कबीर जी की तरह उनकी भी एक दो वाणियो का ग्रन्थ साहब में समावेश होता है। ना ही इन व्यक्तियों के होने का पता किसी इतिहास मे ही मिलता है।

लौकिक काम चलाऊ शिक्षा गुरु जी ने कितनी पाई थी इसके लिये हम इतना ही जानते हैं कि सुल्तानपुर की मोदीगिरी का वे हिसाब रखते ही थे। अरब के काजी मुल्लाओं को जो उपदेश दिया था वह अवश्य ही अरबी भाषा में रहा होगा। द्रविड़ देश मे संस्कृत भापा के सिवा वहाँ के लोग अन्य प्रांतिक भापाओं को नहीं समझ सकते थे। हां इतना और हमे भासता है कि न तो मौलवियों के ज्ञान को उन्होंने सीखा और न पंडितों के आडम्बरों को अपनाया। संसार को जो कुछ उपदेश उन्होंने दिया था वह उनका अपना निज का और अन्तरात्मा का था।

गुरु जी ने गृहस्थ में भी प्रवेश किया था। हमे तो इसमें गुरु जी की महानता के दर्शन होते हैं। संसार के सारे सुखों मे मुक्ति के बाद गृह जीवन ही प्रधान है। लोक कल्याण के लिये गुरुजी ने गृहजीवन को भी छोड़कर संसार के सामने एक आदर्श रख दिया।

गृहस्थ

गीता मे इस बात पर जोर दिया गया है कि "निष्काम कर्म करो" निष्काम के अर्थ हैं जैसे कमल पानी मे रहते हुए भी पानी से अलग रहता है वैसे ही निर्लिप्त रहो। भारत के सारे धार्मिक इतिहास मे राजा जनक के सिवा इतने लंबे समय में हम गुरु नानक देव को ही जल मे कमल की भांति संसार से निर्लिप्त देखते हैं।

अंतिम दिनों मे उनकी स्त्री और बच्चे भी उनके पास आ गये थे। जैसे अन्य शिष्य रहते थे पुत्र पास मे है। विद्वान भी हैं और सेवा भी करते हैं, गुरु जी भी उनसे प्रेम करते हैं किन्तु इसलिये नहीं कि वे उनके पुत्र है किन्तु इसलिए कि वे संसार को प्रेम करते थे। यदि ऐसा न होता, तो कैसे कहा जा सकता है कि गुरु जी ने कभी मोह को पास तक नहीं फटकने दिया। यदि जरा भी उनके हृदय मे मोह होता तो गुरु गद्दी अंगद जी के बजाय श्रीचंद जी या लक्ष्मीचन्द जी को देते क्योंकि हजारों शिष्य भी आग्रह करते थे। लेकिन जिस सत्य और न्याय से वे प्रेम करते थे उसके खिलाफ नहीं गये और न जा सकते थे। यही तो उनकी महानता थी। गृहस्थ में रह कर भी कोई ईश्वर को कैसे पा सकता है यह सिद्धान्त गुरु जी ने केवल कह कर नहीं किन्तु करके बताया था।

मोदीखाने (सुलतानपुर) मे ईश्वर की कृपा से खूब बरकत थी। दोनों हाथों से भूखों नंगों को देते थे किन्तु खुद क्या खाते थे "केवल सूखी रोटी।"

'नारि मरे घर सम्पत्ति नाश' पर तो हजारों साधु हो जाते हैं और वृद्धावस्था मे तो सभी उपदेश देते है कि स्त्रियों से दूर ही रहना चाहिये किन्तु एक गुरु नानक देव है जो स्त्री के होते हुए जवानी मे वैराग लेते हैं। इसलिए नहीं कि स्त्री जाति से इन्हें कोई घृणा थी, किन्तु संसार जिस बात को अनादि काल से कठिन कहता आ रहा है उसे ही उन्होंने सरल करके दिखा दिया। जब वह समय निकल गया जिसमें कि ऐसा त्याग कठिन समझा जाता है तब फिर उन्होंने गृहणी को पास रख लिया। यह था

भारत का कठोर तप, जो उनकी महानता को प्रकाशित करता है।

इस पुराण ने गुरु नानक जी के सम्बन्ध में इस प्रकार भविष्य वाणी की थी.—

"एवं धर्मे प्रनष्टे भविष्यति यदा कलौ।
तदा वै लोकरक्षार्थं म्लेच्छानां नाशहेतवे ॥
पश्चिमे वै शुभे देशे बेदिवंशे च नानक।
नाम्ना च भुवि राजर्षि ब्रह्मज्ञानैक मानस।
भविष्यति कलौ स्वयं तत्र चिन्त्यात्मा हरे।
स श्रीमन्नाज जातू मातृपदिशा च पुनः पुनः।
म्लेच्छान् हनिष्यति स्वयं धर्मं तत्त्वोपदेशकृत् ॥
तेनोपदिष्टं मार्गं वै ये चैव गमिष्यति भूमिपा।
ते वै राज्य करिष्यन्ति तस्य शिक्षानुसारत ॥ भविष्य पुराण

अर्थात्—कलियुग में जब धर्म के स्थान पर अधर्म बढ़ जायगा। तब जनता की रक्षा के लिए और म्लेच्छों के नाश के वास्ते अति उत्तम पश्चिम देश में बेदी कुल में नानक नाम का एक राजर्षि जिस का मन एक ब्रह्मज्ञान में ही लगा है और तत्त्वज्ञान से पूर्ण भी है अवतार लेगा। इसे कलियुग में हरि का (निष्कलंक) अवतार समझिये। जो यह नानक राज सिंहों (जाट, खत्री आदि खालसा लोगों) को अपने—पुन उपदेश से जगा देगा। ये ही सिंह म्लेच्छों का विनाश करेंगे।

इस नानकदेव के उपदेशों और नाम की महिमा वाली भक्ति के ऊपर चलकर वे ही (सिंह) अपना राज्य कायम करेंगे।[1]

गुरुजी ने भारत के लिए क्या किया और वे कितने महान थे ? पुराण के इस श्लोक से भली भाति मालूम हो जाता है। गुरु जी को जितना आज हम जानते हैं तथा उनके प्रति जितनी श्रद्धा रखते हैं उससे कई गुना जानकारी और श्रद्धा भविष्य पुराण की रचना के समय में गुरु जी के प्रति थी।

दया, क्षमा, शील, परोपकार, प्रेम और धैर्य आदि गुणों का महापुरुषों से बड़ा सम्बन्ध है। गुरु-नानकदेव जी दया क्षमा परोपकार और धैर्य की साक्षात मूर्ति थे यह कहने में कोई भी अतियुक्ति नहीं।

धैर्य

सुल्तानपुर में नवाब दौलतखां ने कहा आप मेरे प्रथम बार के बुलाने से क्यों नहीं आये थे। आपने बिना लाग लपेट के सीधा सा जवाब दिया "अब आपका नौकर थोड़े ही हूँ।" अब तो मैंने परमात्मा की सेवा अख्तियार कर ली है। सत्ताधारी मदांध होते हैं यह प्रकृति का नियम है। नवाब साहब गुस्से हो गया और उसने गुरुजी को मुसलमान बना लेने की ठान ली। आपको मस्जिद में ले जाया गया और कहा गया हमारे साथ नमाज पढ़ो। नवाब ने नमाज शुरू कर दी, आप शान्ति से बैठ गये। क्रोध के साथ नमाज के खात्मे पर नवाब ने कहा आपने मेरे साथ नमाज नहीं पढ़ी। गुरु जी ने बड़ी निर्भयता के साथ जवाब दिया। मैं तुम्हारे साथ नमाज क्या पढ़ता जब कि तुम और तुम्हारे काजी जैसे श्रद्धालु मोमिनों का चित्त ही नमाज में नहीं था।

दूसरा प्रसग और लीजिये। अभिमानी मलिक भागू जो बड़ा क्रोधी और निर्दयी था गुरु जी से धमकी के साथ पूछता है—तुम शूद्र के घर का भोजन कर लेते हो किन्तु मेरे ब्रह्मभोज में नहीं आये। मैं

१. 'भविष्य पुराण पूर्वार्द्ध त्वाष्ट कल्प अध्याय १२६। स्कध ब्रह्मा सवाद

इस अपमान को भला बर्दाश्त कर सकता हूँ। गुरुजी ने बिना किसी संकोच के तुरन्त कहा, तुम्हरा अन्न गरीबों के खून से सना हुआ है मैं उसी अन्न को खाता हूँ जो नेक कमाई का हो। इस खरे उत्तर ने भागू को लाल कर दिया किन्तु गुरु जी ने उसकी राई रत्ती भर भी परवाह नहीं की।

विंध्याचल के गहन वन मे प्यास और भूख से दम लबों पर आ रहा है। मरदाना घबरा कर कहता है गुरुजी यहां क्या मारने के लिये लाये है। रीछ, तेदुए, सिंह इधर-उधर दहाड़ रहे है किन्तु बिना किसी घबराहट और चिन्ता के आगे बढ़ रहे हैं। मक्के मे मुल्ला तड़के ही जगाकर लाल पीला होकर कहता है इतना बड़ा गुनाह ओहो काबे की ओर पैर करके सो रहे हैं। आप बड़ी निश्चिन्तता से कहते है। अच्छा तो लो मेरे पैरो को उधर कर जिधर खुदा का घर न हो।

परोपकार

परोपकार में तो उनका सारा जीवन ही व्यतीत हुआ। बालकपन से ही दूसरों के हित के लिए अग्रसर थे। घर की चीजों को गॉव के गरीबों के घर डाल आया करते थे। सच्चे सौदे के रुपये भूखे साधुओं को ही खिला दिये। यात्रा के दिनों मे जो भी मिलता उसे उसी समय बॉट देते थे। अपना शरीर भी देकर वे दूसरों का भला करने को सदैव तय्यार रहते थे वह कौनसी घड़ी और मिनट था जिसमे वे परोपकार न करते रहे हों। तन, मन से वाणी से कभी परोपकार बिना खाली नहीं रहे। अन्तिम दिनों मे यद्यपि उनके पास अतुल धन और वस्त्र भेट में आते थे किन्तु अपने लिये उन्होंने कुछ भी नहीं रखा, किन्तु अपने खाने-पीने के लिये खेती करते थे।

नम्रता

संसार मे अनेकों ऐसे महापुरुष हैं जिन्होंने शक्ति बढ़ जाने पर या तो अपने को ईश्वर का पुत्र कहा है या उसका पैग़म्बर, कुछ ऐसे भी हुए है जिन्होने उन लोगों को दुष्ट, नीच, मलेच्छ और काफिर आदि कह कर सताने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। जिन्होंने कि उनके उसूलों को मानने से इन्कार किया था। गुरु नानकदेव जी में यह बात कतई नहीं पाई जाती है। वे जहा भी गये वहा के विद्वानों, ज्ञानियों और पीर फकीरो को निरुत्तर किया। सभी जगह सत्कार पाया। लाखों ही मनुष्य उनके शिष्य हो गये थे किन्तु कभी भी उनके मुँह से ऐसी बात नहीं निकली जो किसी के प्रति कडवी हो या अभिमान भरी हो। बल्कि जब उनसे कहा गया कि आप नीच लोगों को पास बिठा लेते हो, उनसे कोई परहेज नहीं करते तो आपने कहाः—

नीचा अन्दरि नीच जो नीची हू अति नीच। नानक तिनके सग साथ विडिया सो क्या रीस ॥
बाबा मैं कर्महीन कुड़िया नामन पाया तेरा, अन्धकार भूला मन मेरा।

उपदेशों की गति भी आपकी कठोर नहीं होती थी। जिन सिद्धान्तों का आप खंडन करते थे उनके तरीकों मे भी मिठास होती थी। हरिद्वार मे जब आप हरि की पौड़ी पर गये तो वहा देखा लोग पूर्व को सूर्य की ओर जल फेंक रहे है। आप पच्छिम की ओर जल फेकने लग गये। लोगों ने पूछा आप यह क्या करते है ? आपने कहा करतारपुर में मेरे खेत हैं कहीं सूख न जाये इसलिये पानी दे रहा हूँ। लोग बोले भला करतारपुर तक यह पानी कैसे चला जायगा ? तो आपने कहा, सूर्य से करतारपुर कुछ न कुछ पास ही है। इसी तरह बगदाद के बादशाह को बिना ही कड़वे शब्दों का प्रयोग किये उसके दुर्गुण को जता दिया। कहा जाता है वह रुपया पैसा वसूल करने मे प्रजा को बहुत सताता था। गुरु जी से जब वह मिलने आया तो उसे कुछ ककड़िया अमानत मे रखने को दीं। बादशाह ने पूछा आप इन्हे लेने कब लौटेंगे। गुरु जी ने कहा कयामत के दिन तो मिलोगे ही वहीं लेंगे। बादशाह बोला गुरु जी वहां तो

कुछ भी नहीं जाता। आपने जब जहाँ आपका मन जायगा इतना एकत्रित किया हुआ उसके साथ ही मेरी एकत्रियों भी ले जाएगा। बादशाह की इस प्रकार के शीघ्र गजब से आँखें खुल गईं। यही कारण था कि हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्मों के हजारों लोग गुरु जी के चेले बने और दोनों ही यह खयाल करते थे कि गुरु नानक हमारे हैं। कहा जाता है उनके स्वर्गवास के दिन भी दोनों ही जातियों ने उनकी लाश को प्राप्त करने की कोशिश की।[1]

यह कहने में हमें कोई अत्युक्ति नहीं जान पड़ती कि इतिहास काल में गुरु जी जैसा कोई यात्री नहीं हुआ। महात्मा बुद्ध के लिए कहा जाता है कि उन्होंने समस्त भारत में घूम कर प्रचार किया था और तिब्बत तक भी पहुँचे थे किन्तु ईरान, अरब और रूम तक वे नहीं गये। इस तरह
महान् यात्री हम उन्हें भारत ही नहीं संसार का सबसे बड़ा अथवा महान धर्म प्रचारक या
महा यात्री कह सकते हैं वास्तव में उनकी यह धर्म यात्रा 'दिग्विजय' कही जानी चाहिए क्योंकि उन्होंने भारत के बाहर भी समस्त संसार में प्रत्येक मजहब और सम्प्रदाय के पंडितों, महन्तों और पीर पैगम्बरों को परास्त किया था।

उन जमाने में यात्रा आज की जैसी सरल न थी कहीं २ तो बारह-बारह कोस तक पानी का पता न मिलता था। अराजकता भी सारे देश में छाई हुई थी। उसके अलावा भी एक खतरा था उन धर्मान्धों से जो यात्रियों की बलि अपने देवताओं पर चढ़ाकर प्रसन्न होते थे गोंड लोगों ने बेचारे मरदाने को इस काम के लिये पकड़ भी लिया था। प्रत्येक प्रान्त की भिन्न भाषा और आचार-विचार भी यात्रा के लिये कम कठिनाई पहुँचाने वाले न थे। ऐसी हालत में भी एक नहीं गुरु जी ने चार यात्रायें कीं जिनमें भारत के कोने २ का छान डाला। यही नहीं लंका, अरब, ईरान और मिश्र तक धावा किया और भारत मां के गौरव को उन देशों में फैलाया। कहा जाता है आजभी ईराक और ईरान में गुरुनानक की नानक पीर के नाम से मान्यता होती है और मेला लगता है।

हम अपने देश में अरबी, चीनी और मिश्री यात्रियों के यात्रा वर्णनों का जब हवाला पढ़ते हैं तो उनके साहस और परिश्रम की सराहना करते नहीं थकते किन्तु गुरुनानक जी की यात्रायें उन यात्रा विवरणों से सैकड़ों गुणा आनन्द और कौतुहल बढ़ाने वाली हैं साथ ही गौरव से हमारे सिर को भी ऊंचा करती है कि जिन अरबों, तूरानी और ईरानियों ने तलवार के बल से हमारा देश में अपने धर्म का प्रचार किया था तथा हमारे देश को जीता था उन्हीं देशों के बड़े २ आलिम फाजिलों और पीर पिरानों को हमारे गुरु ने अपने अतुल ज्ञान से और महान उसूलों से अकेले ही जाकर परास्त किया था।

अंत में हम कहना चाहते हैं कि गुरुनानकदेव जी उससे कहीं बहुत ज्यादा महान् थे जितना कि हमलोग अब तक उन्हें समझ पाये हैं। अपने धर्म का सन्देश देने के लिये भूले भटको को राह पर लाने के लिये, संसार से ढोंग के ढकोसले को मिटाने के लिये और एक ओंकार परमात्मा की भक्ति का प्रचार करने के लिये अपने जीवन में संसार के शायद ही किसे दूसरे वली, अवतार या धर्माचार्य ने इतनी लंबी यात्रा की हो।

प्रत्येक सुधारक के कार्यों के दो ही अंग होते हैं एक विनाशात्मक दूसरा रचनात्मक। विनाशात्मक कार्य वे होते हैं जिन्हें हटाया, मिटाया और बदला जाता है और रचनात्मक कार्य वे होते हैं जिनके

१. सिख साखियों में लिखा है जब चादरा उठाकर देखा गया तो शव के स्थान पर चन्द फूल अवशेष थे।

उनके रचनात्मक कार्य

अनुसार खुद अपना जीवन ढाला जाता है और दूसरों को वैसा बनने और करने के लिये कहा जाता है। मूर्ति पूजा छोड़ो, तीरथ और क्षेत्रों मे मत भ्रमो। बहुदेव पूजा मत करो। आदि २ उपदेश गुरु जी के कार्य्यों का पहला अंग था। जिस पर कि हमने पिछले पृष्ठों मे काफी प्रकाश डाला है अब उनके कार्य के दूसरे अंग पर संक्षिप्त सा विचार करते है। जिसके संम्बन्ध मे पिछले पृष्ठो मे भी जिक्र आगया है फिर भी यह पंक्तियां भी काम की ही होंगीं।

सत्य

सत्य को वे मनुष्यता का अंग मानते थे और यह है भी सही जिसके हृदय मे जितना ही सत्य का अंश होगा उतना ही वह उदार, सहृदय दयालु और ईश्वर परस्त होगा। गुरुजी के समय मे तो सत्य के दर्शन और भी दुर्लभ हो रहे थे। उस समय तो झूठे देवता, झूठे शास्त्र और झूठे खयालातों का साम्राज्य था यह तो नहीं कहा जा सकता कि उस समय सत्य का एक दम अभाव था किन्तु यह बिल्कुल सही है कि सत्य की हत्या आज की अपेक्षा उस समय यह हिन्दू जाति अधिक कर रही थी। ऐसी हालत मे भक्ति के बाद गुरु जी ने सत्य पर ही अधिक से अधिक कहा है। उनकी सत्य सम्बन्धी सैकड़ो वाणियों से कुछ इस प्रकार हैं :—

"सच्चता पर जाणिये जे रवि सच्चा होय।
कूड की मल उतरं तन करं हिच्छा धोय।"

अर्थात्—सच्च पर चलने से हृदय स्वच्छ हो जाता है और आत्मा पर से झूठ का मैल धुल जाता है।

"मन झूठे तन झूठे जीवा झूठे होय।
मुख झूठे झूठ बोलना क्योकर सोचा होय॥"

(अर्थ) जिनका तन, मन, आत्मा और वाणी सभी झूठ में लिप्त है। वह कैसे शुद्ध (पवित्र) होवेगे। और :—

सच्च बिन दर सजै न कोई।" बिना सचाई के परमात्मा के द्वार तक नहीं पहुँचा जा सकता।

ऊँच नीच

हिन्दू समाज का सबसे बड़ा रोग आपस मे नीच ऊँच के भावों का होना भी है। दुर्भाग्य से रामानुज और वल्लभाचार्य्य के अनुयाइयो ने इसे और भी बढ़ाया। गुरु देव ने इस विष-वृक्ष को काट देने के लिये उपदेश ही नहीं किन्तु करके भी दिखाया हजारों हिन्दू तो उनसे केवल उसी लिये नाराज रहते थे कि वे ऊँच-नीच व जात-पांत का अन्तर नहीं मानते है। मलिक भागो इसी बात से काफी चिढ़ गया था। एमनाबाद लंका मे वे खाती लोगों के घर ही ठहरे थे। दक्षिण मे नामदेव (छीपा) लोगों के घर रहकर आराम किया था।

गुरु ग्रन्थ मे जिन नामदेव, रविदास और सहना भगत की वाणियाँ हैं' वे गुरुजी के प्यारे संतों में से थे। जब भी गुरुजी उनके देशों मे गये उन्हीं के घर ठहरे। अभागे हिन्दू इन महान संतों के सम्बन्ध मे अब तक यही खयाल रखते हैं कि रविदास और सहना ऊँच जातियों के नहीं थे। इस सम्बन्ध मे गुरु नानक देव की यह वाणी कितनी अच्छी है।

"ऊँचे तो ऊँचा बडा सभ सगि बरनेह।
दास दास को दासरा नानक करि लेह॥"

जब मनुष्य सचाई के मार्ग को छोड़ देता है तो उससे "माया ममता छोड़ी न जाय"। बल्कि और उसके दिल मे माया का मोह बढ़ता है, तब माया का मोह बढ़ जाने पर मनुष्य न्याय और अन्याय की

स्वार्थ परवाह करना छोड़ देता है और जब वह ख्याल नहीं रखता कि न्याय क्या है? तब वह दूसरे के हक और अधिकारों को नष्ट करने में कुछ भी झिझक नहीं करता। साधारण आदमी की तो बात क्या?

"काजी होके बने अन्याय । विढ्ढ लेके हक गवाय ।"

काजी भी अन्याय करने लगता है और रिश्वत लेकर हकों का हनन करता है। यही क्यों.—

"कलि काती राजे कसाई धर्म पंख उडारा।" अर्थात सतयुग के दुश्मन इस कलियुग में राजा भी प्रजा रूपी गाय के लिये कसाई हो गये हैं। धर्म को पंखहीन अथवा लुप्त बना रहे हैं। अतः अपने और दूसरों के हित की भावना से सभी को सदाचरण करना चाहिये क्योंकि—

"साचो कीरत साची बानी । होर न देखी वेद पुरानी"

अर्थात वेद और पुराणों ने भी सच की के सिवा कोई और उत्तम रास्ता नहीं बताया है।

संतोष सुखी और पवित्र जीवन बिताने के लिये यह भी आवश्यक है कि संतोष की वृति को धारण किया जाय। कारण —

नाम बीज सतोष सोहागा रख गरीबी वेस ।
भाव करम जे मधो घर भागठ देख ॥

अर्थात—यदि ईश्वर के नाम का बीज संतोष रूपी भूमि में शुद्ध भाव के साथ बोया जायगा तो ऐसी खेती हरी होगी कि घर और बाहर मालामाल हो जायगा।

सत्य के बाद इन्होंने संतोष पर भी जोर दिया है और ठीक भी है क्योंकि इच्छाओं और आवश्यकताओं को तो जितना भी बढ़ाया जाय उतनी ही वे बढ़ जाती हैं और फिर उनकी पूर्ति के लिये अन्याय पर ही मनुष्य को कमर बांधनी पड़ती है।

पंजाब में क्या सारे भारत में ही लंगर की प्रथा पहले पहल गुरु नानकदेव ने ही डाली थी। जो भ्रातृभाव को पैदा करने में लाखों लेक्चरों से अधिक फलदायक सिद्ध हुई। और जो आज भी सिख समाज के संगठन की कड़ी को मजबूत बनाने में काम दे रही है। संक्षेप में हम गुरु नानक देव जी के रचनात्मक कार्यों का इस प्रकार उल्लेख कर सकते हैं

(१) अनेकों शताब्दियों के बाद हिन्दू धर्म का इन्होंने परिमार्जन किया और भ्रान्तियों में जकड़े हुये हिन्दू समाज को सोचने, विचारने और मनन करने की स्फूर्ति प्रदान की।

(२) बहुदेव और कङ्कड़ पत्थर की पूजा से हटाकर एक परमेश्वर की मान्यता की ओर हिन्दू जाति को आकर्षित किया।

(३) परमात्मा जन्म मरण के बन्धन से परे है इस सचाई को जोरदार शब्दों में पेश किया।

(४) समस्त कर्म कांड, संस्कारों, तीर्थ व्रतों से बढ़कर परमात्मा की भक्ति है गुरु नानकदेव जी ने इस सचाई को भी हिन्दुओं के गले उतारा।

(५) परमात्मा की भक्ति सत्याचरण, हृदय की स्वच्छता और सतगुरु के ज्ञान से प्राप्त होती है उसके लिये ब्रह्म भोज, गोदान, और हज. तीर्थ की कोई जरूरत नहीं, गुरुजी ने इस बात को भी समझाया।

(६) उन्होंने बड़ी दृढ़ता के साथ कहा, पुजारी पंडे, काजी मुल्ले, सत्यमार्ग के प्रदर्शक नहीं हैं इन्होंने तो धर्म को अपनी जीविका का धन्धा बना रक्खा है।

(७) किसी के अनुयायी या मुरीद बनने के लिये यह डेरा या सद्‌गुरु है या यह सब ढोंग, ढागी है।

(८) हिन्दू और मुसलमान जन्म से कोई नहीं होता जन्म से सब मनुष्य और भाई-भाई हैं यह भेद तो यहाँ स्वार्थी लोगों का चलाया हुआ है।

(९) नशा तो सभी कुराह पर ले जाने वाले हैं। केवल सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा की भक्ति का रस ही सच्चा लाभकारी नशा है।

(१०) अपने लिये तो सभी जीते हैं जीना तो उसका सार्थक है जो दूसरों के उपकार के लिये सुख की परवाह न करे।

(११) यदि एक दिन संसार के सभी सुख और वैभवों को छोड़ना ही है तो उनमें लिप्त क्यों हुआ जाय। दुनिया में जल के बीच कमल की तरह क्या न रहा जाय।

(१२) जब यह निश्चय है कि एक दिन मरना होगा तो फिर मृत्यु से डरा क्यों जाय, परमात्म-भक्ति से उस पर विजय क्यों न प्राप्त की जाय।

(१३) केवल मौज से रहने और मुफ्त का खाने की इच्छा से लिये जो घर छोड़ बैठते हैं ऐसे लोगों की भी गुरुदेव ने निन्दा की है।

(१४) नेक कमाई की रूखी सूखी रोटी, पाप कर्म से पैदा किये हुए हलुवे मांडे से बेहतर है। हम समझते हैं इतनी सतर्कता उनसे पहले कई शताब्दियों तक किसी सुधारक द्वारा पेश नहीं की गई थी।

गुरु नानकदेव जी के उन महान कार्यों और उपकारों की यह तो एक छोटी सी सूची है जो उन्होंने भारत देश के निवासियों के लिये किये थे। वास्तव में तो जो जितना ही गुरु नानकदेव जी के जीवन पर गंभीरता से अध्ययन करेगा उसे उतने ही गुरुजी महान पुरुष और ईश्वरीय आज्ञाओं के प्रसारक नजर आयेंगे। वे सचमुच ही इतने महान थे जिसे आज संसारी आदमी सहज ही नहीं समझ सकते। एक विद्वान इतिहास लेखक ने गुरुजी के सम्बन्ध में लिखा है "उनके व्यक्तित्व की आकर्षण शक्ति इतनी बढ़ी हुई थी कि वे सहस्रों ही मनुष्य जो उनके साक्षात सम्पर्क में आये, उनके भक्त तथा अनुयायी बन गये।"[1] कर्नल कनिंघम ने अपने लिखे हुये 'सिख इतिहास' में श्री गुरु नानकदेव जी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि इन शब्दों में प्रकट की है—उनके सद्‌व्यवहार, एकाग्र ईश्वर निष्ठा और प्रवृत्ति एवं सद्‌वक्तृता सभी प्रशंसा की बातें हैं। उन्होंने बहुसंख्यक लोगों को अपने उपदेश से उत्साही, कर्मठ और दृढ विश्वासी शिष्य बनाया।"[2] आगे फिर इन्होंने लिखा है—"नानकदेव ने सर्ववादि सम्मत सत्य धर्म को ही अपने दौत्य कार्य का एक मात्र अस्त्र स्वरूप ग्रहण किया था। उनके ग्रन्थ विवेक और आत्मोत्सर्ग विषयक उपदेशों से भरे हैं।" उन्होंने कभी अपने धर्म के प्रचार करने में अलौकिक कार्य की सहायता नहीं ली और न यह कहा कि अलौकिक कार्यकलाप से ही उनके फैलाए धर्म की सत्यता बढेगी।"

कर्नल मैलकम साहब ने Sketch[3] मे गुरु नानकजी के सम्बन्ध में लिखा है —"वे कहते थे—

१ डा० गोकुलचन्द नारंग द्वारा लिखित सिखों का परिवर्तन नामक पुस्तक।

२ दूसरा अध्याय सिखों का परिवर्तन।

३ स्केच पृष्ठ २०, २१, १६५।

'एक ईश्वर के नाम के सिवा दूसरे किसी शब्द का प्रयोग (धर्म प्रचार में) मत करो धर्मनीति की पवित्रता के सिवा सिक्खगण धर्म गुरु जैसा कोई उपाय या शास्त्र नहीं है।" 'दबिस्तान' के प्रसिद्ध मुसलमान लेखक मोहसन फानी ने उनके सम्बन्ध में लिखा है—"वे आदम जाति को रास्ता दिखाने वालों में से थे उन्होंने कभी नशा नहीं किया और न ऐसी शिक्षा दी।" कनिंघम ने एक दूसरे स्थान पर गुरु नानक जी के महान कार्यों के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है "उन्होंने दीर्घकाल से चले आये एवं पुंजीभूत कुसंस्कार और कुरीतियों से मुक्त करके लोगों को अपना शिष्य बनाया, उन्होंने शिष्यों को स्वतन्त्रता से सोचने वाला और सच्चा स्वाभिमानी बनाया।"

इसी तरह से अनेकों देशी विदेशी विद्वानों ने गुरु नानकदेव जी के धर्म के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलियां अर्पित की हैं। सबने उन्हें एक ढंग से भारत का उद्धारक और महान पुरुष माना है।

वही गुरु नानकदेव जी जिन्होंने मृत हिन्दू समाज को जीवन प्रदान किया था लगभग ७० वर्ष की अवस्था में सम्वत् १५९६ के क्वार महीने की १० वीं को इस संसार से अपनी जीवन लीला समाप्त कर गये।

उनके परिवार में उस समय बाबा लालू और उनकी धर्मपत्नी और दो पुत्र थे। परिवार के तथा रिश्तेदारियों के सभी लोग यह चाहते थे कि वे अपनी गद्दी का अधिकारी अपने पुत्रों में से ही बनावें किन्तु उन्होंने इस बात को अपनी अन्तरात्मा की आवाज के विरुद्ध समझा और अपने एक शिष्य लहना को उनके ख्याल के अनुसार अपने संचालित मिशन को जारी रखने के लिये अपना उत्तराधिकारी बनाया।

गुरु नानकदेव जी की रचनाएँ

गुरु नानकदेव जी अपने उपदेशों को बहुधा पद्य भाषा में लोगों तक पहुँचाते थे। जो शब्द व वाणियों के नाम से अभिहित होते हैं। ऐसी सब रचनायें 'आदि गुरु ग्रन्थ साहब' में संग्रहीत है। ग्रन्थ साहब के सम्बन्ध में विस्तार से तो किसी अगले अध्याय में चर्चा करेंगे। क्योंकि उसमें छः गुरुओं की वाणियाँ हैं यहाँ केवल गुरु नानकदेव जी की रचनाओं का ही वर्णन करना है।

जहाँ तक हम समझते हैं गुरुजी ने जो कुछ रचा था वह भी आदि ग्रन्थ में सब का सब मौजूद है।

ग्रन्थ साहब में ३१ राग रागिनियाँ हैं और इनके सिवा दोहे, श्लोक, और चौवेले आदि अलग है। उनमें महला १ के अन्तर्गत जो कुछ है वह श्री गुरु नानकदेव जी की रचना है। दूसरे महलों में दूसरे गुरुओं की रचना है।

गुरु जी की कई रचनाओं के लिये कई अंग्रेज लेखकों तक ने पढ़ने के लिए जोर दिया है कनिंघम साहब ने 'आसाराग' का अंतिम भाग, सूही और रामकली अंश, श्रीराग माफ एवं माफवार के पढ़ने के लिये काफी जोर दिया है। हमारी समझ में तो संस्कृत में सामवेद का जैसे प्रत्येक हिस्सा सस्वर पढ़जाने से अमृत वर्षा करता है उसी प्रकार 'लौकिक भाषा में आदि ग्रन्थ के प्रत्येक राग और रागिनी अपने-अपने समय पर सस्वर पढ़े जाने पर आत्मा को आनंद से विभोर करने वाले हैं। साखियों में लिखा है कि जिस समय मरदाना रवाब पर रागिनी छेड़ता था जंगल के पशु चरना छोड़ देते थे। वास्तव में आदि ग्रन्थ की भाषा बहुत ही मीठी और प्रेम भरी है। और कहीं-कहीं तो उसमें इतना

विरह भरा पड़ा है कि आनन्द से आंसुओं की वर्षा होने लगती है। गुरुदेव नानक जी अपने प्रियतम से मिलने को कितने छटपटा उठते थे। उसके यहाँ कुछ नमूने देते हैं।

राग धनाश्री— गगन में थालु रविचन्दु दीपक बनेतारिका मंडल जनक मोती।
धूप मलियानलो पवरण चवरो मलग वनराइ फूलत जोती ॥१॥
कैसी आरती होई। भवन खंडना तेरी आरती ॥ अनहता सबद वाजंत भेरी।
सहस तव नैन नन नैन हहि तोहि कउ सहस मूरतिनना एक तोही।
सहस पद विमल नन एक पद गंध बिनु सहस तव गंध इव चलत मोही ॥
सभ महि जोति जोति है सोई। तिसदै चाणन सभमहि चानरण होइ।
गुर साखी जोति परगटु होई। जोति सुभावै सुआरती होई ॥३॥
हरि चरण कमल मकरंद लोभित मनो अनदिनो मोहि आही प्यासा।
कृपाजल देहि नानक सारिंग कउ होइ जाते तेरे नाइवासा ॥४॥

सिरीराग— तनु जलि बलि माटी भया, मन माया मोहिमनूरु।
अवगुण फिरि लागू भए कुरि वजावै तूरु ॥
बिनु सबदै भरमाइए दुविधा होवे पूरु।
मनरे सबदि तरहु चितलाइ। जिन गुरमुखि नामुन
बूझिआ मरि जनमै आवै जाहि ॥ रहाउ
तनु सूचासो आखिये जिसु महि साचानाउ।
भैस चिराली देहुरी जिह्वा सचु सुआउ ॥
सची नदरि निहालीये बहुडि पावै ताउ।
साचे ते पवना भया पवनैं ते जल होइ।
जलते त्रिभवणु साजिआ घटि घटि जोति समोइ।
निरमलु मैला नाथिए सबदिरते पति होइ।
इहि मनु साचि सतोखिया नदरि करै तिसुमाहि
पंच भूत सचि भैरते जोति सची मन माहि।
नानक अवगुण वीसरे गुरि राखे पति ताहि।

राग गुजरी— हरि की तुम सेवा करहु दूजो सेवा करहु न कोई जी।
हरि मेरी प्रीति रीति है हरि मेरी हरि मेरी कथा कहानी जी।
गुर परसादि मेरा मन भीजै एहा सेव बनी जीउ। रहाउ
हरि मेरा सिम्रिति हरि मेरा सासतर हरि मेरा बंधु हरि मेरा भाई
हरि की मैं भूख लागै हरिनामु मेरा मनु त्रिपतै हरि मेरा साकु अंति होइ सखाई।
हरि बिनु होर रासि कूडी हे चलदिया नालि न जाई।
हरि मेरा धनु मेरे साथ चालै जहा हउ जाउ तह जाई ॥
सो झूठा जो झूठे लागै झूठे करम कमाई।
कहै नानकुहरि का भाणा होआ कहणा कछू न जाई।

राग सोरठा— हउ पापी पतितु परम तू निरमलु निरकारी।

अम्रितु खानि परम रसि चाखी ठाकुर सरणि तुमारी ।
करता तू मैं माणु निमाणे । माणु महतु नामु धनु—
पलै साचै सबदि समाणे । रहाउ
तू पूरा हम ऊणे होछे तू गउरा हम हउरे ।
तुम ही के राते अहिनिसि परभाते हरि रसना जपि मनरे ।
तुम साचे हम तुम ही राते सबदि भेद पुनि साचे ।
अहिनिसि नाम रते से सूचे मरि जनमे से काचे ।
अवरु न दीसै किसु साला ही तिनहि सरीकु न कोई ।
प्रणवति नानकु दासनिदासा गुरमति जान्या सोई ।

राग तिलंग—

जिन कीया तिनि देखा कीआ कहा रे भाई ।
आपे जाणै करे आपि जिनि वाडी है लाई ।
रायसा प्यारे का रायसा जितु सदा सुख होई । रहाउ
जिनि रंगि कंतु न राविआ सा पछोरे ताणी ।
हाथ पछोड़ै सिर धुनै जब रैणि विहाणी ।
पछोतावा ना मिलै जब चूकैगी सारी ।
ता फिरि पिआ रावीऐ जब आवेगी वारी ।
कंतु लीया सुहागणी मैं ते वधवी एह ।
से गुण मुझै न आवनी कै जी दोसु धरेह ॥
जिनी सखी सहु राविया तिनि पूछउगी जाए ।
पाइ लगउ बिनती करउ लेउगी पंथ बताए ॥
हुकमु पछाणै नानका भउ चन्दनु लावै ।
गुण कामणी कामणि करै तो पिआरे कउ पावै ॥

राग सूही—

अंतरि वसै न बाहरि जाइ । अम्रितु छोडि काहे बिखु खाइ ॥
ऐसा गिआन जपहु मन मेरे । होवहु चाकर साचे केरे ॥ रहाउ
गिआनु धिआनु सभु कोई रवै । बांधनि बांधिआ सभु जगु भवै ।
सेवा करै सु चाकर होइ । जलि थलि महीअलि रवि रहिआ सोइ ।
हम नहीं चंगे बुरा नहीं कोइ । प्रणवति नानकु तारे सोइ ।

राग रामकली—

सरब जोति तेरि पसरि रही । जह जह देखा तह नर हरी ॥
जीवन तल बनि वारि सुआमी ॥ ॥ रहाउ ॥
जह भीतर घट भीतर बसिआ बाहिर काहे नाहीं ।
तिन की सार करे नितु साहिबु सदा चित मन साई ॥
आपे नेड़े आपे दूरि आपे सरब रहया भरपूरि ।
सत गुरु मिलै अंधेरा जाइ । जह देखा तह रहा समाइ ॥
अंतरि सहसा बाहरि माया नैणी लागि सिआणी ।
प्रणवति नानक दासनि दासा परतापहिगा प्राणी ॥

जब कि उपजी तब को तैसी रंगत भई मन भाई ।
सहज समाधि सदा लिव हरि सिउ जीवां हरि गुन गाई
गुर कै सबदि रता बैरागी निज घरि ताड़ी लाई ॥
सुध रस नामु महा रसु मीठा निज घरि ततु गुसाईं ॥
जह ही मनु तह ही तै राखिया ऐसी गुरमति पाई ।
सनक सनादि ब्रह्मादि इन्द्रादिक भगति रते बनि आई ॥
नानक हरि बिनु घरी न जीवां हरि का नामु वडाई ॥

राग मलार—

साचो सुरति नामि नहीं त्रिपतै हउ मैं करत गवाइआ ।
पर धन पर नारी रतु निंदा बिखु खाई दुखु पाइआ ॥
सबदु चीन भै कपट न छूटे मन मुखि माइआ माइआ ॥
जमकारि भार मरै अति भारी मरि जन्मै जनमु गवाइआ ।
मनि भावै सबदु सुहाइआ ॥ भ्रमि भ्रमि जोनि भेख बहु—
कीने गुरि राखे सचु पाइआ ॥ रहाउ ॥
तीरथि तेज निवारि न नाते हरि का नामु न भाइआ ।
रतन पदारथु परिहरि तिआगि आज तको तत ही आइआ ॥
बिसटा कीट भये उतहीते उतही माहि समाइआ ॥
अधिक सुआद रोग अधिकाई बिनु गुर सहज न पाइआ ॥
सेवा सुरति रहसि गुणगावा गुरि मुख गानु बीचारा ॥
खोजी उपजै बादी बिनसै हउ बलि बलि गुर करतारा ॥
हम नीच हुते हीण मति झूठे तू सबदि सवारण हारा ॥
आतम चीनि तहाँ तू तारण सचु तारे तारणहारा ॥
बैसि सुथान कहाँ गुण तेरे क्या क्या कथउ अपारा ॥
अलखु न लखिऐ अगमु अजोनी तू नाथा नाथण हारा ।
किसु पहि देखि कहउ तू कैसा सभि जाचक तू दाताए ॥
भगति हीण नानकु दरि देखहु इकु नामु मिलै उरिधारा ॥"

स्थानाभाव से इतने ही राग देकर इस प्रसंग को हम समाप्त करते हैं। जिन्हें अधिक आनन्द लेना हो वे श्री गुरु ग्रन्थ का अनुशीलन करें और भक्ति रस के छलछलाते सरोवर में गोते लगाकर जीवन को सफल बनावें।

चौथा अध्याय

गुरु अंगददेव जी की जीवन कथा

गुरु अंगददेव जी का जन्म जिला फीरोजपुर में इलाका मुक्तसर के मत्तेकीसराय नामक गांव में फेरूमल जी त्रिहुन गोत्री खत्री के घर संवत १५६१ विक्रमी की वैसाख सुदी १ को हुआ था। आपकी

प्रारम्भिक परिचय

माता का नाम सुभराई देवी था जो कि निहाल कौर नाम से भी प्रसिद्ध हुई। उस समय माता पिता ने आपका नाम लहणा रक्खा था। इस नाम से जहाँ तक हम समझते हैं आप अपने माँ, बाप की सम्पूर्ण आकांक्षाओं के बाद पैदा हुए अथवा इकलौते पुत्र थे, क्योंकि चालू भाषा में लहणा के अर्थ भाग्य का या लाभप्रद होते हैं। अंगद नाम तो आपको महान गुरु नानक देव जी द्वारा दिया गया था जिसका कि विस्तारपूर्वक वर्णन अगले पृष्ठों में किया गया है।

आपका स्वभाव बचपन से ही उदार, दयालु और धैर्य्यवान था। सब किसी के दुःख सुख में शामिल होना, सहानुभूति दिखाना और भरसक सेवा करना यह गुण आपको परमात्मा की ओर से धरोहर रूप में मिले थे। १५ वर्ष की अवस्था में संवत १५७६ वि० में खडूर के देवीचन्द्र खत्री की पुत्री बीबी खीवी से, जो कि बड़े अच्छे स्वभाव की थीं आपका विवाह हुआ। इनसे दो पुत्र और दो पुत्रियों ने जन्म लिया। बड़े पुत्र दासू जी संवत १५८१ विक्रमी की भादवा ६ को पैदा हुए थे और १५८६ वि० के पूष में बीबी अमर कौर तथा जेठ की २६ वीं संवत १५६१ में बीबी अनोखी पैदा हुई थीं। दातू अपने बहिन भाइयों में सबसे छोटे थे जो संवत १५६४ के वैसाख में पैदा हुए थे।

गुरु अंगद देव जी का जन्म मत्ते की सराय का अवश्य था किन्तु किसी कारण से वहां के चौधरी तख्तमल ने उनके पिता को बन्दीघर में डाल दिया। तख्तमल बड़ी कठोर तबियत का आदमी था और किसी की भी नहीं सुनता था, इसलिये लहना जो खंडूर पहुँचे ताकि उसकी लड़की के जरिये पिता की रिहाई के लिये यत्न करें। खंडूर पहुँच कर जब आप तख्तमल की लड़की बीबी सभराई से मिले तो वह उस समय गुरु नानक देवजी के दर्शन और उन्हें भोजन कराने के लिये गांव से बाहर, उनके ठहरने के स्थान पर जाने की तैयारी में थी। आप भी उसके साथ ही हो लिये। सभराई जी उन्हें कुछ पीछे छोड़कर गुरुजी के पास पहुँची। कहते हैं गुरुनानक देव जी ने बीबी सभराई से पूछा जिसे साथ लाई हो उसे पीछे क्यों छोड़ आई। इस पर जब लहना ने सेवा में उपस्थित होकर वन्दना की तो गुरुजी ने कुशल

क्षेम पूछने के बाद उनका नाम पूछा। जब उसने अपना नाम लहणा बतलाया तो आपने मुस्कराते हुये कहा "तुम्हारा लहणा(पावना) तो हमारे पास है। हमे तुम्हारा देना है। तदनन्तर लहनाजी बीबी सभराई को साथ लेकर मते की सराय मे गये और अपने पिता को जेल से छुडाया।

कुछ समय बाद लहणा जी अपना जन्म स्थान छोड़ कर खहरियां के खंडूर ही आ बसे।

गुरु नानकदेव जी से भेंट

यहां पर जोधा नामक एक जमीदार था वह गुरु नानकदेव जी का शिष्य भी हो चुका था उसका नित्यनेम था कि प्रातः तारों की छाया मे उठकर स्नान करना और आसा की वार को गा-गाकर ईश्वर वन्दना करना। उसके इस काम मे कुछ दूसरे लोग भी शामिल होते थे। लहणा जी का भी उससे प्रेम हो गया। वह उन्हे गुरु वाणियां सुनाया करता था। वैसे तो पहले ही ये बीबी सभराई जी के साथ गुरु जी के दर्शन कर चुके थे अत अब और भी उनकी उत्कंठा गुरु जी से पुन. मिलने की हुई। वैशनो देवी के वार्षिक मेले को दल बल सहित वे गए क्योंकि वे अब तक वैशनो देवी के पुजारी थे। अपने साथियों समेत कर्तारपुर पहुँचे और गुरु नानक देव की सेवा मे हाजिर हुये तो लहणाजी को इस बात से बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह महापुरुष तो वे ही हैं जो अभी थोड़ी दूर तक हमारे साथ पैदल चलकर आये थे। लहणा जी ने हाथ जोड़कर इस बात के लिये गुरु नानक देव जी से क्षमा मांगी कि महाराज आप मेरे साथ पैदल चले और मैं घोडी पर सवार रहा। हालांकि यह अपराध अनजान में हुआ था फिर भी लहणा जी ने क्षमा चाही यह बात उनके बड़प्पन और शिष्टता की द्योतक है। गुरु नानक देव ने बडे प्यार से कहा लहणा तुम्हारे अपराध तो परमात्मा की ओर से क्षमा हो चुके हैं। अब तुम्हे परमात्मा की ही शरण मे आ जाना चाहिए यह बीच के देवी देवते तो व्यर्थ की चीज हैं। यह उपदेश लहणा जी के हृदय को भा गया।

सिख साहित्य के पढने से पता चलता है कि लहणा जी ने जिस प्रकार गुरु जी की सेवाये की थीं वह सर्वसाधारण का काम नहीं। उस समयके गुरुजी के शिष्य बाला और बुड्ढा आदि भी लहणाजी की सेवाओं के मुकाबिले मे बहुत पीछे थे। बडे से बड़ा कष्ट सहकर और प्राणों की भी बाजी लगाकर वे गुरु जी की सेवा मे तत्पर रहते थे।

सेवाएं

(१) एक समय बडे जोर की वर्षा हुई। धर्मशाला के उस छप्पर वाले हिस्से का एक स्तंभ ढह गया जहां गुरु नानक देव जी सोते थे। लहना तुरन्त वहा गये और शहतीर को थामे रात भर खड़े रहे। किन्तु सोते से गुरु जी को जगाना उचित नहीं समझा।

(२) एक बार ठंडी रात्रि में गुरु जी ने पहले पुत्रों से फिर अन्य शिष्यों से कहा भाई मेरे कपडे धोकर लाओ मैं वस्त्र बदलूंगा। देखो दिन निकल आया है। सभी ने बहाने कर दिये किन्तु लहणा जी उसी वक्त गये और कपड़े धो लाए। किन्तु उन्होंने यहातक भी कहा महाराज सूरज तो जहां तक आपने चढ़ाया है वहीं तक चढ़ा हुआ है। हालाकि जिस समय वह कपड़े धोकर लाए थे आधी रात थी।[1]

(३) एक बार गुरु जी ने एक कीच के गड्ढे मे कटोरा फेक दिया। गुरु जी ने सबसे कहा

१ सिख साहित्य में लिखा मिलता है कि कपडे धोने के समय सूरज निकल आया था फिर रात हो गई थी।

किन्तु कोई भी उस गन्दी और नापाक कीच में घुसने को राजी नहीं हुआ। लहणा जी ने हुकम पाते ही कटोरा निकाल कर और साफ करके गुरु जी के हवाले किया और गन्दे कपड़े साफ करने को चले गये।

(५) एक बार गुरु नानक देव जी ने परीक्षा के लिये जंगल में जाकर अपना विचित्रों का जैसा भेष बनाया और हाथ में तलवार लेकर शिष्यों को सोटे लगाने लगे। बहुतसे इधर-उधर भाग गये। फिर गुरु जी जंगल की ओर चल दिये। कुछ शिष्य उनके साथ जंगलमें गये वहां एक जगह उन सबने देखा आग जल रही है। गुरु जी ने उसकी ओर देखकर कहा इस आग पर से होकर गुजरो सब चुप हो रहे लहणा जी चल पड़े किन्तु देखा तो आग नहीं किन्तु जंगली बूटी है, जो रात में प्रकाश दे रही है।

इसी तरह की और भी अनेक कथायें हैं जिनसे मालूम होता है कि कठिन से कठिन आज्ञा को पालन करने के लिये लहणा जी तैयार रहते थे। उन्होंने कभी भी किसी काम के करने में हिचकिचाहट और आलस्य नहीं दिखाया। वास्तव में गुरु जी के प्रति लहणा जी के हृदय में अगाध भक्ति थी। भक्ति की इसी सच्चाई और सेवा भाव की गहराई की परीक्षा के लिये ही गुरु जी ने उन्हें तथा अपने अन्य शिष्यों को परखा। इनमें लहणा अव्वल नम्बर रहे।

इन कठिन से कठिन सेवा सम्बन्धी प्यार प्रेम एवं श्रद्धापूर्ण परीक्षाओं के बाद ही गुरु जी ने घोषणा कर दी कि लहणा मेरा "अंग" है। उसी दिन से लहणा जी का नाम अंगद जी हो गया।

गुरुआई तिलक

अब चूंकि गुरु नानक देव जी की भी आयु ७० साल की हो चुकी थी। अतः उन्होंने एक दिन संगत के सामने यह एलान कर दिया कि आज मैं अंगद जी को गुरुआई देना चाहता हूँ। मुझे पूर्ण यकीन हो गया कि एक यही है जो मेरे बाद मेरे चलाये हुये धर्म-मिशन को जारी रख सकेगा। इतना कह कर उन्होंने अंगद जी के सामने एक नारियल और पांच पैसे रखकर मत्था नवाया और सभी को अपने स्थान पर अंगद जी को गुरु मान लेने की आज्ञा दी। यह शुभ दिन सम्वत १५९६ वि० के क्वार की ४ का था।

खडूर लौटना

इसके कुछ ही दिन बाद गुरु नानकदेव जी के देहावसान हो जाने और करतारपुर में गुरु पुत्रों द्वारा विरोध होने के कारण अंगददेव जी खडूर चले आये गुरु नानकदेव जी ने भी उन्हें अपने बाद खडूर चले जाने का आदेश दे दिया था। खडूर के लोग इस खबर को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और गुरु अंगददेव जी के लिये सब प्रकार का प्रबन्ध करने लगे, किन्तु गुरु अंगददेव जी ने कोई अधिक सुविधा नहीं चाही। वे कंकड बिछाकर एक कोठरी में तप करने रहे और इसी तरह बराबर आठ महीने तक ईश्वराधना और गुरु जी का स्मरण किया।

गुरु नानकदेव जी के परम धाम के बाद

कुछ समय से इधर लक्ष्मीचन्द जी ने कोशिश की कि सिख उन्हें ही अपना गुरु माने, किन्तु उनकी कोशिश सफल नहीं हुई। भाई बुड्ढा, बाला, माणक आदि सभी प्रसिद्ध सिख गुरु अंगददेव जी के पक्ष का समर्थन करने लगे और उन्होंने कह दिया कि गुरु नानकदेव जी ने जिसको अपना उत्तराधिकारी बनाया है वही सिखों का गुरु हो सकता है।

गुरु अंगददेव जी में प्रायः सभी बातें गुरु नानकदेव की जैसी थीं। उन्हीं जैसी हरिभक्ति, उन्हीं जैसा त्याग और तप। उन्हीं जैसा वैराग्य। उन्होंने अपने घर वालों से स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि अपने खाने पीने के लिये परिश्रम करो। चढ़ावे में जो आता है वह धर्म के लिये है। उसको हम अपने

लिए खर्च नहीं कर सकते। उनके दोनों पुत्र दुकान करके अपने घर का काम चलाते थे।

उपदेश और सत्संग का काम भी पहले ही की भांति अब चलने लगा था। गुरु अंगद देव जी ने अपने दिन भर के कामों का वैसा ही सिलसिला बना लिया जैसा गुरु नानकदेव जी का था।

लगर का काम इनके यहाँ और भी बढ गया था। खडूर ग्राम के जाट सिक्खों में इतनी श्रद्धा थी कि प्रत्येक घर से आठवे दिन इनके लगर के लिए द्रव्य आ जाता था। गुरुजी का उपदेश सुनने के लिये दूर दूर से लोग आते थे।

बादशाह हुमायूं की भेंट

शेरशाह सूरी से परास्त होकर बादशाह हुमायूं जब पंजाब में आया तो उसने गुरु अंगद देवजी की कीर्ति सुनी और वह दर्शनों के लिये खंडूर पहुंचा। उस समय गुरुजी समाधि पर थे। हुमायूं इस बात से बडा नाराज हुआ कि यह संत मेरे सम्मान के लिये उठा तक नहीं। अत तलवार निकाल कर उसने गुरु जी पर वार करना चाहा, दैवात उसी समय गुरुजी की समाधि समाप्त होने का भी समय आ गया। उन्होंने बादशाह को तलवार ताने देखकर हसंते हुए कहा, बादशाह यह तलवार शेरशाह के आगे भोथरी हो गई थी क्या ? सतो पर वार करना कहाँ की बहादुरी है। इस बात को सुनकर बादशाह हुमायूं बडा लज्जित हुआ और उसने कहा, सत जी मैं आप से अपने लिए शुभ आशीर्वाद चाहता हूँ।

कुछ चमत्कारिक प्रसंग

यहाँ कुछ ऐसी घटनाये दे देना भी उचित होगा जिन्हे चमत्कार के नाम से याद किया जाता है। वैसे "सूर्य प्रकाश" मे इस सम्बन्ध का काफी वर्णन है।

गुरुजी के लगर मे माणा नाम का एक शिष्य रहता था। कडाह प्रसाद खा खाकर वह खूब तगड़ा हो गया। काम धधे की तरफ से भी लापरवाह रहने लगा। गुरुजी ने उसे समझाया कि सेवा करने से कभी भी मुँह नहीं छिपाना चाहिए। उसने कहा हमे तो स्वर्ग जाने वाली बाते बताओ। गुरु जी ने सहज स्वभाव से कह दिया कि स्वर्ग चाहता है तो आग मे जल मर। उसने ऐसा ही करने की तैयारी कर दी। जगल मे जाकर लकड़ियों के ढेर मे आग लगा दी और उसमे कूदने को तैयार हुआ। इतने मे एक चोर ने आ कर उससे ऐसा करने का कारण पूछा। सारी बाते सुनकर चोर ने सोचा मैंने इतने पाप किए हैं मुझे स्वर्ग मिलना मुश्किल है फिर आज इस तरह ही क्यों न प्राप्त करलूं। उसने माणा को चोरी के माल का जवाहरात से भरा डिब्बा देकर उसे तो वापिस कर दिया और खुद उसमें जलने को तैयार हो गया। इतने मे एक राजा आ गया। उसने चोर से सब हाल सुना तो वह बड़ा खुश हुआ और उसे जलने से रोक लिया। कहा जाता है ये दोनों ही चोर और राजा गुरु जी के पास जाकर उनके शिष्य हो गये। उधर माणा बादशाही लश्कर द्वारा डिब्बा उसके पास मिलने के कारण—चोरी के अपराध में पकड लिया गया और एक लबे अर्से तक सजा भुगतता रहा। सजा से छूट कर आया तो उसने गुरु जी के सामने हाजिर होकर अपनी भूल के लिये क्षमा मांगी।

जीव नाम का गुरु जी का एक भक्त था। उसके यहां से गुरु जी के लिये खिचड़ी आया करती थी। कभी जीवा और कभी उनकी पुत्री लाते थे। पुत्री का नाम जीवाई था। इस तरह से लगभग १० साल गुजर गये। एक दिन आँधी चलने लग गई। जीवाई ने कहा कि अगर आँधी रुक

जाय तो मैं गुरु जी के पास खिचड़ी पहुँचा आऊँ। आँधी रुक गई और वह खिचड़ी लेकर गुरु जी के पास पहुँची किन्तु, गुरु जी ने खिचड़ी खाने से इन्कार कर दिया। इस पर जोगाई रोने लग पड़ी। तब गुरु जी ने कहा कि तेने केवल मेरी वजह से आँधी को क्यों बन्द कराया। इतनी देर में आँधी से जो लाभ संसार को व जानवरों को होता उससे वे वंचित रहे न। इस बात को सुनकर उपस्थित सिखों पर बड़ा प्रभाव पड़ा और जोगाई ने भी अपनी भूल स्वीकार करके भविष्य में ऐसा न करने का वायदा किया।

शहर में एक शिवनाथ नाम का जोगी रहता था। वह अपने लिये बड़ा चमत्कारी बताया करता था और इन्हीं चमत्कारों की माया से वह बहुत धन लूटता था। एक वर्ष उस इलाके में अकाल पड़ गया। भादों तक पानी नहीं बरसा। लोग त्राहि-त्राहि करने लगे। शिवनाथ ने मौका समझ कर लोगों से कहा अगर यहां से अंगद को हटा दिया जाय तो वर्षा हो सकती है। वह गुरु जी से भारी ईर्ष्या रखता था। लोग जब गिड़गिड़ाने लगे तो उसने कहा अगर तुम अंगद को करामाती और सिद्ध पुरुष समझते हो तो उसी से कहो। वह करामात रखता होगा तो मेह बरसा देगा। कुछ लोगों ने यही बात गुरु जी के सामने रक्खी। बुड्ढा जी तो इस बात को सुनकर नाराज हुए किन्तु गुरु जी ने कहा हमारे हट जाने से मेह बरसता हो, तो हमें यहां से हटने में क्या हर्ज है। हम तो परोपकार के लिए ही तो इस दुनियां में आये हैं। कहा जाता है गुरु जी अपनी संगति के साथ 'खान रजादा' नामक गाव में अपने शिष्य भाई जीवा के यहां जा विराजे। गुरुजी चले गये। रुपये शिवनाथ ने उनसे ऐंठ लिये वह अलग। पर पानी न बरसा दूसरे दिन लोग अमरदास जी के पास पहुँचे। उन्होंने हंसते हंसते लोगों से कहा मेह तो बरस सकता है किन्तु इस तरह नहीं। जिस तरह कि तपा ने कहा है। मेह बरस जायगा बल्कि इस तरह कि जिस-जिस खेत पर तपा को ले जाओगे वहीं-वहीं वर्षा हो जायगी। अमरदास जी ने यह बात यों ही सहज स्वभाव से कह दी थी किन्तु जाट लोग शिवनाथ को खेतों में ले जाने के लिए चिपट गये। कभी कोई और कभी कोई उसे अपने खेतों में ले जाता किसी का खेत बाकी न रह जाय इसलिये उसकी खिंचातानी भी शुरु हो गई। इसी खैंचातानी में शिवनाथ मर गया। दैव माया कि मेह भी खूब बरसा। इसके बाद जाट लोग गुरु जी के पास पहुँचे और उन्हें वहीं लिवा लाये। यहाँ आपने मलूका नाम के चौधरी को उपदेश करके शराब पीने की आदत से भी मुक्त किया।

एक समय गुरु जी अमरदास जी से मिलने जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने देखा कि बहुत से मनुष्य इकट्ठे हो रहे हैं और बकरे भेड़ों को पकड़े हुए हैं। पूछने पर सींहा नाम के खत्री ने बताया कि मेरे लड़के का मुण्डन संस्कार होने वाला है इस समय जो मेहमान इकट्ठे होंगे उनके वास्ते यह बकरे खरीदे हैं। गुरु जी ने कहा, इस हिंसा का ऐसा बदला तुम्हें भी चुकाना पड़ेगा। इस बात को सुनकर सींहा घबरा गया। बोला तब हमें क्या करना चाहिए जिससे हम इस हत्या से भी बच जायें और बिरादरी के लोगों की नाराजगी से भी बच जायें। गुरु जी ने कहा तुम्हें कड़ाह प्रसाद करना चाहिये। सींहा ने गुरु जी को भी रोक लिया और कड़ाह प्रसाद से आने वाले बिरादरी के लोगों का सत्कार किया। कहते हैं गुरु जी ने कहा था कि हमें इस केश मुण्डन की प्रथा को भी हटाना पडेगा। इस समय से सींहा पक्का सिख हो गया और प्यारे सींहा के नाम से वह आज तक याद किया जाता है।

एक बार देव गिरि गुसाईं गुरु जी के पास जमात समेत आया। वहां रहकर उसने गुरु जी के लंगर को देखा तो सोचने लगा यहां जिस प्रकार का बढ़िया प्रसाद बनता है। इसमें तो खर्च बहुत पड़ता होगा और गुरु जी के पास कोई स्थायी आमदनी है नहीं। इसलिये उसने गुरु जी से कहा महाराज मैं

एक बार भाई जीवा, नारायणदास और बूला ने पूछा, महाराज! जीव, जीवन-मरण के फन्दे से किस प्रकार छूट सकता है? गुरुदेव ने उत्तर दिया भक्ति से। वैसे ज्ञान, वैराग्य, जोग और भक्ति ये सभी ईश्वर से मिलाने वाले और आवागमन से मुक्त बनाने वाले साधन हैं किन्तु ज्ञान, वैराग्य और जोग को माया भरमा लेती है। बड़े-बड़े ज्ञानी, वेद और शास्त्रों की चर्चा करने वाले भी कभी-कभी माया के चक्कर में पड़ कर नरक में पड़ते देखे गये हैं। समाधियों के लगाने वाले जोगी भी माया के आगे डिगते हुए पाये गये हैं। वैरागियों को राग-द्वेष में फंसते देखा गया है किन्तु भक्ति डूबती हुई कभी नहीं देखी गई। भक्ति तो पक्की साध्वी पतिव्रता नारी स्वरूप है।

यात्रा

गुरु अंगददेव जी ने लम्बी यात्रायें नहीं की थीं। शायद वे पंजाब से बाहर कभी नहीं गये। गुरु नानकदेव का सिख समाज जो इतना विस्तृत रूप ले गया था उसे संभालना आसान न था, जिसके कारण गुरु अंगददेव जी लम्बी यात्रा नहीं कर सकते थे। गुरु नानकदेव जी के समय में तो उन्होंने अपना सारा समय गुरुसेवा में लगाया और उनके पीछे घोर तपस्या में। इस तरह उनका यात्राओं के लिये निकलना दुस्तर सा ही था। फिर उनके मालवे की ओर जाने वाली यात्रा के कुछ समाचार मिलते हैं। मालवे के अनेकों गावों में प्रचार करते हुए वे अपनी जन्म-भूमि मत्ते-की-सराय में भी पहुंचे थे।

इस यात्रा में गुरुजी के साथ ४० शिष्य और चार ऊंट सामान लादने के थे। रास्ते में सभी लोगों ने उनका आदर सत्कार किया और उपदेश सुने।

मत्ते-की-सराय के पास नरसिंह (गांव) में पहुंचे तो वहां कई दिन तक लोगों ने आपको रक्खा और बड़ा आदर सत्कार किया किन्तु एक दिन चौधरी बस्ता जो उस समय ७२ गांव का कारग्राहक (मालगुजार) था, मंजा पर गुरु जी के सिरहाने बैठ गया। उस पर शिष्य लोग नाराज होने लगे। गुरुजी ने शिष्यों को शान्त किया। उन्होंने कहा हमें किसी के प्रति कड़वे शब्द नहीं कहने हैं किन्तु बस्ता चौधरी ने कहा, क्या हो गया, जो आपके सिरहाने बैठ गया, यहां मेरी जाति में मेरे बराबर किस की इज्जत है। गुरुजी ने कहा ठीक है यहां तो जाति वाले आपकी इज्जत करते हैं किन्तु आगे (परमात्मा के यहां) तो कोई जाति पाति नहीं है वहां के लिए क्या सोचा है? इस वचन को सुनकर चौधरी की आंखें खुल गईं और उसने श्रद्धापूर्वक गुरु जी के चरणों में माथा टेक दिया।

यह यात्रा गुरुजी ने संवत १६०४ विक्रमी में आरम्भ की थी और शायद उसी वर्ष के चन्द महीनों में समाप्त की थी। भाई बुढ्ढा इस यात्रा में साथ था। मत्ते की सराय के पास एक दूसरे स्थान पर जहां गुरुजी ठहरे थे, वहां दीवान हुकमचन्द ने एक मन्दिर बनवा दिया था जहां कि पास ही में आगे चलकर नागे की सराय नाम की बस्ती बस गई थी।

हम लोग जिसको स्वर्ग, वैकुण्ठ और परम धाम कहते हैं सिख लोग उसे सचखण्ड अथवा जोत में समा जाना कहते हैं। गुरु अंगददेव जी ने जब यह जान लिया कि अब परमधाम पधारने का हमारा समय आ गया है तो उन्होंने अपने सभी प्यारे और मुख्य शिष्यों को

सचखण्ड प्रस्थान

यह खबर दे दी। दासू, दातू और बुढ्ढा, बाला दोनों उस समय गुरु जी की सेवा में हाजिर हो गये। दूर दूर से अनेकों संगत आ गई और जो भी जहां सुन लेता था वह इस अन्तिम

समय पर इनके दर्शन की लालसा से खण्डूर की ओर चल पड़ा । शब्द कीर्तनों का आनन्द दायक समारोह होने लगा ।

और एक दिन दरबार लगाकर अपने साथियों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा यद्यपि मेरे शिष्यों मे कई आदमी बड़े योग्य है । मेरे पुत्र भी नेक और आज्ञाकारी हैं किन्तु गुरुआई के योग्य मैं अमरदास ही को समझता हूं । इस सम्बन्ध में मैंने अपने गुरु जी से जो ग्रहण किया था । उसी के अनुसार मैं यह कहने को तैयार हूं । अमरदास जी को अपना उत्तराधिकारी बनाकर न्याय और अपने सही कर्तव्य का पालन कर रहा हूँ क्योंकि वही मेरे बाद इस कार्य को सभाल और चला सकता है । इतना कहकर गुरु अंगददेव जी उठे और पांच पैसे और नारियल आगे रखकर अमरदास जी के लिए माथा झुकाया । इसके बाद अपने पुत्रों और शिष्यों से भी माथा टिकाया । इस प्रकार अमरदासजी को गुरु अंगददेव जी ने गुरुआई समर्पण कर दी अब से वे सिखों के गुरु हो गए ।

निदान वह अन्तिम दिन आ गया और सं० १६०६ चैत की चतुर्थी को गुरुजी शरीर को छोड़ कर सचखण्ड को पधार गये ।

गुरु अंगददेव जी के जीवन और कार्यों पर दृष्टिपात

गुरुनानकदेव जी ने श्री अङ्गददेव जी को गुरुआई देते समय कहा था कि यह मेरे ही "अङ्गद" अर्थात् मेरे ही शरीर का अङ्ग है । मुझ में और उनमे कोई अन्तर न समझना । इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि गुरु अङ्गदजी स्वभाव प्रकृति, सरलता और दयालुता सब बातोंमे दूसरे नानकदेव ही सिद्ध हुए । यद्यपि उनके लंगर में कड़ाह प्रसाद भी बनता और इधर-उधर के आने जाने वाले तक उस प्रसाद को पाते थे किन्तु स्वयम् गुरुजी के पुत्रों को यह अधिकार न था वे उसे अपने पिता की चीज समझकर उपयोग करें । उन्होंने अपने परिवार वालों से स्पष्ट कह दिया था कि यह दान का धान तुम्हारे खाने और बरतने के लिये नहीं है । तुम अपने हाथ पैरों से कमाओ और उसे खाओ बरतो । स्वयम् गुरुजी के लिये कभी घर से और कभी भगतों के यहां से रोटी या खिचड़ी बन कर आती थी । खिचड़ी भी किस की, बाजरे और मूंग, मौठ की दाल की ।

व्यक्तित्व

आप भी अपने पूर्ववर्ती गुरुदेव की नाईं तारों की छाया मे ही उठकर स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर उसी भांति उपदेश और संकीर्तन कराते तथा दरबार लगाते थे । तप करने के आपके भी ढंग बड़े कठोर थे । खण्डूर मे लगातार आठ महीनों तक ककड़ो पर बैठकर आपने तप किया था । समाधि भी कई २ दिन के लिये लगा जाते थे ।

निरभिमान आप प्रथम श्रेणी के थे । करतारपुर मे आते ही घास खोदने, पशुओं को चराने और खेत बोने जोतने के काम मे लग गये । हालाकि बचपन मे उन्होंने यह काम नहीं किये थे, आपके पिता दुकान और लेनदेन से काफी रुपया कमाने वाले शख्सों मे से थे । आपके घर पर किसी भी प्रकार का घाटा न था ।

यह हम सुनते और पढ़ते हैं कि गुरु नानकदेव जी से आपको गुरुआई मिली थी, किन्तु उस गुरुआई के साथ क्या मिला था । कोई जागीर ? कोई जवाहरातों का खजाना ? कोई वैभव ? कुछ भी नहीं । यहाँ तक कि करतारपुर की वह धर्मशाला भी नहीं । सासारिक वस्तुओं में तो उन्हे एक पाई का भी गुरुआई में नहीं मिला था । यह हम इसलिये कह रहे हैं कि लोग इस गुरुआई को कहीं आजकल के या

इस संसार के महापुरुषों और महन्तों की ऐसी गुरुआई न समझले। हाँ, मिली थी एक चीज किन्तु वह सब किसी को मिल भी नहीं सकती है वह चीज थी आत्मज्योति। गुरु अङ्गद जी को यही चीज गुरु-नानकदेव जी से मिली थी और यही चीज थी जो उन्हें दूसरी जगह से नहीं मिल सकती थी। यही गुरुआई थी, गुरु नानकदेव जी की सांसारिक चीजें शायद दूसरों ने ले ली हों। उनके खेत, धर्मशाला, पशु, कुटुम्ब और वस्त्र चाहे दूसरों के हाथ लग गये हों किन्तु गुरुत्व जो था वह मिला था केवल गुरु-अङ्गददेव जी को ही। वह चीज ऐसी थी उसे कोई दूसरा ले ही नहीं सकता था। उसे अङ्गददेव जी ने प्राप्त किया था। और सच बात यह है कि गुरु नानकदेव जी में पंचभूतों के सिवा जो कुछ और था वह अङ्गददेवजी ने पूर्णरूपेण पा लिया था। इसलिये वास्तविक नानकदेव अङ्गददेव में समा गया था। इस प्रकार का गुरुत्व संसार में कितने लोगों ने पाया है। इस रहस्य को जानने भी बहुत ही कम लोग होंगे कि इस प्रकार नानकदेव अंगददेव में समा गये थे और अङ्गद ही अब नानकदेव थे।

यह समीकरण संसार के इतिहास में एकदम निराला और शायद ही कभी होने वाला समीकरण है। "आत्मा वै जायते पुत्रः" का सत्यकथन तो बहुत समय से सुनते आये हैं किन्तु "आत्मा वै मथीयते शिष्यः" का उदाहरण गुरु अङ्गददेव ही थे।

अब हम उनकी पातशाही के दिनों में हिन्दू समाज और भारत देश के हित के लिये होने वाले कार्यों का जिक्र करना चाहते हैं। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य के जीवन के—चाहे वह साधारण हो चाहे महापुरुष—दो हिस्से होते हैं एक व्यक्तिगत, दूसरा सार्वजनिक। जिसके जीवन के

कार्य

दोनों पहलू उन्नत होते हैं उसे संसार बहुत याद करता है। मध्यकालीन भारत में और गुरुओं के समय में भी ऐसे कई महापुरुष थे जिनका व्यक्तिगत जीवन और योग्यता बहुत ऊंची था, किन्तु संसार के प्रति उदासीन रहने वाली लोकसेवा के झंझट से दूर रहने के कारण ही वे लोगों की स्मृति पर चढ़े हुए नहीं है। गुरु अङ्गददेव के समय ही में और उनके ही प्रतिद्वन्द्वी महात्मा श्रीचन्द उस समय के गिने चुने विद्वानों और सन्तों में से थे। उनकी अपनी भावनाओं के अनुसार उनका तप भी बहुत ऊँचा था। संस्कृत के धाराप्रवाही विद्वान् थे किन्तु जनसम्पर्क से दूर रहने और सार्वजनिक क्षेत्र में उदासीन रहने के कारण अपने पिता के बहुसंख्यक शिष्य समाज को वह गुरु अङ्गददेव की शरण में जाने से न रोक सके। इस तरह हम कह सकते हैं कि गुरु अङ्गददेव जी का जहाँ व्यक्तिगत जीवन बहुत ऊँचाथा वहाँ सार्वजनिक जीवन भी अत्यन्त श्रेष्ठ था। अथवा जहाँ उनका व्यक्तित्व हिमालयकी उच्चतम शिखर की भांति जनता की दृष्टि में अगम अगोचर था वहाँ छोटे बड़े गरीब, अमीर, अंधे, लूले सबकी चिन्ता करने और अपने समाजको ऊँचा उठानेवाले अथक प्रयत्नोंका सिलसिला भी मामूली दर्जेका न था।

गुरु नानकदेव ने जिस ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाकर अंकुरित किया था उस भूमि के उपजाऊ पन को स्थिर बनाये रखने और उगे हुए अंकुर को विकसित करने के लिये जो कार्य और प्रयत्न गुरु अङ्गद देव जी ने किये थे व महान दर्जे के कार्य थे। उन अनेकों कार्यों में से यहाँ हम केवल तीन कार्यों का विवेचन करना चाहते हैं।

पहिला और सर्वोपरि कार्य था गुरुमुखी लिपि का प्रचार करना।[1] कहाजाता है संसार की

१. आज कल की की जाने वाली खोज में सिदध हुआ है कि गरुमुखी लिपि गुरु नानकदेव जी के समय में निर्माण हो चुकी थी।

लिपियों मे पहली लिपि देवनागरी है और देवनागरी ही पूर्ण लिपि है। पूर्णलिपि वह समझी जाती है जिसमे प्रत्येक ध्वनि को अंकित करने के लिये स्वतंत्र अक्षरों का प्रयोग हो सके। कोई दो अक्षर किसी भी ध्वनि के अंकित करने के लिये मिलाने न पड़े। गुरु अङ्गददेव जी के समय मे भारत मे और खास तौर से पजाब और सिन्ध मे चार लिपियाँ थीं। नागरी जिसे सस्कृत और शास्त्रीय भाषा भी कहते थे।[1] दूसरी फारसी जिसे प्रत्येक मुसलमान और वह हिन्दू सीखना था जो उस समय के मुसलमान हाकिमों के सम्पर्क में रहता था। तीसरी मुण्डा या महाजनी जिसमें वैश्य लोग अपना हिसाव रखते थे। चौथी, सिन्धी, यह महाजनी से मिलती जुलती थी। इनके भी कुछ आन्तरिक भेद थे। जिनमे एक जाटकी या पच्छिमी हिन्दकी नाम से अभिहित होती थी।

किसी भी जन समुदाय को समाज का रूप देने के लिये यह जरूरी होता है कि उसकी भाषा और लिपि एक हो। प्रचलित भाषाओं मे से फारसी और मुडा को तो पजाब वाले अपना नहीं सकते थे और खास कर उस सूरत मे जबकि धर्म ग्रन्थ और प्रार्थनाए भी लिखी जाने वाली हों। महाजनी तो एक निहायत भद्दी और अपूर्ण लिपि है उसमे "अजमेर गये" और "आज मर गये" मे कोई भी अन्तर नहीं होता। फिर एक देवनागरी ही ऐसी थी जिसे गुरुजी और उनका समस्त सिख समुदाय अपनाता किन्तु देवनागरी पढ़ाने का काम उस समय पूर्ण रूप से उन पौराणिक ब्राह्मणों के हाथ मे था जिन्होंने शूद्र और स्त्रियों को पढाना निषेध कर रक्खा था और उनकी पाठशाला मे वैठते ही सबसे पहले सिद्ध गणेशाय' का एक लंबा पाठ रटना होता था। गुरु नानकदेव के मत मे एक ओंकार को छोड़कर किसी भी दूसरे देवता को स्थान नहीं था। यही कारण था कि गुरु नानक जी ने एक नई लिपि का निर्माण किया जो आजकल गुरुमुखी के नाम से मशहूर है। गुरु अगद देव जी ने भी देवनागरी को नहीं अपनाया और गुरु नानक द्वारा निर्मित लिपि का प्रचार किया। इन गुरुमुखी अक्षरों मे गुरुनानक देव जी की वाणियों के अलावा जो भी कुछ लिखा गया, वह पजाब प्रात की बोली मे लिखा गया अत यह गुरुमुखी अक्षर पंजावी भाषा के नाम से मशहूर होगये।

गुरुमुखी लिपि देवनागरी की भाति ही पूर्ण लिपि है उसमें प्रत्येक ध्वनि को अंकित करने के स्वतन्त्र सकेत अथवा अक्षर है। देवनागरी से उसका घनिष्ट सामजस्य है। जो गुरुमुखी वर्णमाला जानता है वह तीन चार दिन मे ही देवनागरी और देवनागरी जानता है वह इतने ही समय मे गुरुमुखी वर्णमाला को सीख सकता है।

इस वर्णमाला का प्रचार करके समस्त शिष्य समाज को गुरु अगददेव ने एक सूत्र मे बांध दिया। इसे प्रत्येक शिष्य चाहे वह किसी भी जाति का हो पढ सकता था। इस तरह से समस्त शिष्य समाज के लिए शिक्षित बनने का रास्ता भी साफ होगया और कट्टर पथी ब्राह्मणों के संघर्ष मे न आना पड़ा। यदि उनकी देवनागरी को सभी लोगों को पढने की इजाजत दे दी जाती तो वे शोर मचाते कि अक्षर अपवित्र हो गये और इस कुराह को हम पसद नहीं करते। व्यर्थ का झगडा होता।

गुरुमुखी लिपि के अविष्कार से जहाँ प्रत्येक जाति को पढ़ने की स्वतन्त्रता हासिल होगई वहाँ एक बड़ा काम अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिये गुरुजी के लिये यह और होगया कि उनके शिष्यों का सम्पर्क ब्राह्मण पुरहितों और आचार्य्यो से कम होगया। और इस तरह उनके शिष्यों के विचारों को ढीला

१ पजाब के हजारो आदमी अब नागरी अक्षरो को शास्त्री जबान कहते है कारण कि हिन्दू शास्त्र इन्हीं अक्षरो में लिखे हुये हैं।

करने वाले ब्राह्मण निरन्तर सिख समाज से दूर होते गये।

गुरुमुखी लिपि में ही गुरु नानक देव जी की वाणियों के लिखे जाने से समस्त सिख सम्प्रदाय के लिये यह भी जरूरी होगया कि वे गुरुमुखी लिखना पढ़ना सीखें। प्रत्येक सिख इस बात में अपना गौरव समझता था कि अपने गुरुओं की वाणी और जीवन कथायें उसे अधिक से अधिक याद होनी चाहिये। इस तरह से पंजाब में अन्य हिन्दुओं की अपेक्षा सिख समुदाय में पढ़ों की संख्या अधिक होगई और भविष्य में भी यही क्रम जारी रहा और आज भी है।

गुरु अंगददेवजी ने जीवन वृतान्त और वाणियों को संग्रह करने के समय भाई बाला जो कि गुरुनानक देव जी का बालापन का साथी तथा उनके ही गांव में पैदा भी हुआ था और अंतिम समय तक गुरुजी के साथ भी रहा था। भाई बुड्ढा जो कि एक समझदार योग्य सिख था और गुरुजी के पिछले दिनों के जीवन में साथी भी था। किन्तु इसे गुरु जी की वाणियों के सिवा उनके समस्त जीवन चरित्र के सम्बन्ध में बहुत कम जानकारी थी अपने पास रखा। वह लोग तब तक अंगद जी के पास रहे जबतक कि जीवन वृतान्त और वाणियां संग्रह न हो गईं।

वाणियों के संग्रह और जीवन चरित्र के लिख जाने से सिख समूह को उन विशिष्ट खयालातों का पाबन्द बनाने में बड़ी मदद मिली जो गुरु नानक देव जी ने स्थिर किये थे। नये शिष्य भी इस ग्रन्थ की सहायता से बहुत बने। साथ ही गुरुनानक का सन्देश देने में अब ऐसे लोगों का सहयोग भी काम देने लगा जो पढ़े लिखे थे। अथवा अपने घर और गांव में उन वाणियों को जो संग्रह की जा चुकी थीं पढ़-कर सुनाने लगे। इस सम्बन्ध में आगे गुरु अमरदास जी ने जो २२ मञ्जियां स्थापित की थीं। उन मंजियों के प्रमुखों ने अवश्य ही जन्मसाखी की प्रतिलिपि ली होगी और गुरु नानक देवजी के धर्म का प्रचार किया होगा। मालूम होता है कि पीछे से इस जन्मसाखी में बहुत क्षेपक मिला दिये गये जो असंगत से भी हैं। जैसे गुरु नानक देव जी के पूर्व जन्मों की कथायें।

यह बात बिल्कुल सही जान पड़ती है कि पंजाब में गुरु नानकदेव ही ऐसे पहले कवि थे जिन्होंने लोकव्यवहृत भाषा में काव्य रचना की थी और अंगददेव ही पहले लेखक थे, जिन्होंने लोकभाषा में पद्य ग्रंथ लिखा था। हिन्दुओं के समस्त ग्रंथ संस्कृत में थे। तुलसीकृत रामायण अभी बनी नहीं थी बल्कि यों कहना चाहिए कि कवि तुलसीदास का अभी जन्म ही नहीं हुआ था। इससे हिन्दुओं के पास ऐसा कोई भी धर्म ग्रथ नहीं था। जिसे वे खुद पढ़ कर समझ सकते हों। संस्कृत के धर्मग्रंथों को चन्द पण्डित लोग ही पढ़ सकते थे। सो वे सुगम से और जातियों को पढ़कर सुनाते नहीं थे। चन्द श्रीमान ही उन धर्मग्रंथों के उपदेशों को सुन सकते थे, जिस के लिए कि उन्हें भारी दक्षिणा (कीमत) देनी पड़ती थी। गुरु अंगददेव जी का लिखा हुआ ग्रंथ ही ऐसा था जिसको सब कोई पढ़ सकता था और इसके मानने वाले स्वत: ही लोगों को सुनाते थे। जिसे समझने में कोई कठिनाई नहीं होती थी। इसका नतीजा यह हुआ कि एक समय सारा पंजाब और उससे सटा हुआ सिन्ध का हिन्दू समाज तो पूर्णत: गुरु नानकदेव जी का अनुयायी और भक्त हो गया। पंजाब और सिन्ध के सर्वसाधारण में आज भी नानकदेव जी की निष्ठा सभी देवी देवताओं से ज्यादा होने का सबसे बड़ा कारण गुरु अंगददेव जी द्वारा गुरु नानकदेव जी की जीवन लीला के वृत्तात और वाणियों का संग्रह हो जाना ही है।

इस सग्रह ग्रंथ के बन जने के बाद सिखों की संख्या निरन्तर बढ़ने लगी और कुछ मनुष्यों ने

इस ग्रंथ की सहायता से गुरु नानकदेव जी के मिशन को पूरा करने का अपना जीवन उद्देश्य ही बना लिया। वह जहा जाते, जहां किसी समारोह में शामिल होते गुरु जी के, जीवन चरित और वाणियों को को सुनाकर लोगों को आत्मशाति देते।

इस तरह जहा गुरुमुखी लिपि के प्रचार से शिष्यों मे शिक्षितों की संख्या बढने लगी थी वहां इस संग्रह के हो जाने से शिक्षित शिष्यों मे भी नानकदेव के सिद्धांतों के जानकार एवं पण्डितों की सख्या बढ़ने लगी। इस तरह से गुरु अंगददेव जो के इन दोनो महान कार्यों से शिक्षा और धर्म प्रचार दोनों मे वृद्धि हुई।

मनुष्य जन्म पाने का सब से बडा लाभ यही समझा जाता है कि अज्ञान, अन्धकार से निकल कर जीव ज्ञान के प्रकाश में आवे और यदि ज्ञान से धर्म की प्राप्ति भी हो जाय तो फिर कहना ही क्या। अत समझना चाहिए कि गुरु अगददेव जी के इन दोनों कार्यों से शिष्य लोगों को मानसिक और आत्मिक दोनों ही प्रकार का भोज्य मिला।

तीसरा कार्य जो गुरु अगददेव जी ने किया। उसका आरम्भ यद्यपि नानकदेव ही कर गये थे किन्तु उसे गुरु अगद्देव जी ने और भी उन्नत किया, वह कार्य था लंगर को जारी रखने का। साथ ही ऐसे लोगों को जो शीत और धूप से अपने शरीर की रक्षा वस्त्रा के अभाव से नहीं कर सकते थे उनको वस्त्र भी देना। गुरु अंगद्देव जी का लंगर बराबर चलता रहता था। इस लंगर मे राजा भी आकर उसी पगति मे बैठता था[1] जिसमे एक गरीब। पंगति मे ऊंच नीच का भी कोई भेद न होता था। लंगर की विशेषता थी कडाह प्रसाद। अब तक सर्व साधारण को पण्डित लोग यह उपदेश देते आ रहे थे कि मोटा झोटा खाकर जीवन निर्वाह करना चाहिए। इसका फल यह हो रहा था कि लोग जर्जर तन और तेजहीन होते जा रहे थे। लगर के इस कढाह प्रसाद के आयोजन ने शिष्यों के घरों मे भी जाकर अपना पैर जमाया। इस तरह से खाने पीने मे गुरु जी के इस कार्य ने लोगों के धरातल (स्टैन्डर्ड) को ऊचा किया। उसका फल आज भी हम प्रत्यक्ष देखते हैं। औसतन एक सिख शारीरिक बल और स्वास्थ्य मे चाहे वह देहाती हो या शहरातो, तगड़ा होता है। इस बात से गुरु का शिष्य समाज शारीरिक उन्नति भी करने लगा। शारीरिक, मानसिक और आत्मिक तीनों ही उन्नति गुरु जी के इन तीनों आयोजनों से सिख समाज मे दिखाई देने लगी। जितना भी गम्भीरता से गुरु अंगद्देव जी के इन कार्यों को ओर हम देखते है उतने ही हमे यह तीनों कार्य महान् तथा शिष्य समाज मे चेतना और शक्ति एवं संगठन पैदा करने वाले दिखाई देते हैं।

लंगर की प्रथा ने शिष्य समाज में और भी गुण पैदा किये। उनमे से एक बडा गुण था पैसे का सदुपयोग करना सीखना, दान देने की हिन्दुओं और प्राय सभी जातियों मे स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। अब तक जहा वे अपने पैसे को देवी. देवताओं के मेलों मे जाकर तथा शराब और भंग आदि नशों मे खर्च करते थे अब वे गुरुद्वारे मे देने और अच्छा खाने पर खर्च करने लग गये।

गुरुद्वारे मे दिया हुआ उनका दान उसी प्रकार उनके काम आता था जिस प्रकार कि सूर्य पृथ्वी के जल को अपनी किरणों द्वारा खींच कर उसे निर्मल करके फिर पृथ्वी पर ही वर्षा देता है। उस

१ गुरु अमरदास के समय में आने वाले राजा हरीपुर और बादशाह अकबर भी उस ही पंक्ति में बैठे थे जिसमें सर्वसाधारण।

दान से इन्हें इस प्रकार जो मिलता था उसे लंगर का लाभ और भ्रातृ भाव की जैसी अच्छी और प्यार भरी भावनायें भी मिलती थीं। दान की यह प्रणाली सिक्ख समाज की शारीरिक, आत्मिक, बौद्धिक और सामाजिक शक्ति के बढ़ाने में दिनों दिन अग्रसर हुई।

इन कार्यों के अलावा गुरु अंगद देव जी के अनेकों ही छोटे बड़े ऐसे कार्य हैं जिनसे सिक्ख समाज का विस्तार हुआ। उपदेश करने का ढंग भी आपका बहुत ही सरल था। कोई आकर आपसे अपने कल्याण की बात पूछता, सरल सा मार्ग बता देते। एक ज्ञानी ने आपसे आकर पूछा मैंने अनेकों धर्म ग्रन्थ पढ़े हैं मुझे शान्ति नहीं हुई, आपने कहा आपने आत्मा के सम्बन्ध में कभी कुछ सोचा है बिना आत्मा को पहचाने शान्ति कहां। एक बार आपने अनेकों शिष्यों के प्रश्न के उत्तर में बतलाया ज्ञान, योग और वैराग इन तीनों से भी परमात्मा की प्राप्ति होती है। आत्मानंद भी मिलता है किन्तु माया के आकर्षण में ज्ञानी, वैरागी और योगी भी गिर जाते हैं। हां, भक्ति को माया नहीं डिगा सकती भक्ति तो परमात्मा की पतिव्रता नारी है। ज्ञान बाहर से मिलने वाला और वैराग संसार से नफरत होने के बाद हृदय में आने वाली चीजें हैं। भक्ति पैदा होती है हृदय में और सिर्फ आत्मा की छटपटाहट से, अतः भक्ति ही इन सब में श्रेष्ठ है।

इसी तरह न जाने उन्होंने कितने प्रकार से और किन २ कार्यों द्वारा मनुष्य जाति का कल्याण किया। सभी कार्यों के सम्बन्ध में जानना तो मुश्किल है। परन्तु हां हम यह खूब जानते हैं कि उन्होंने मनुष्य जाति का कल्याण करने में उन सिद्धान्तों के द्वारा जो उनके गुरु नानक देव जी ने स्थिर किये थे कोई कसर नहीं उठा रक्खी।

आपके समय में जो मुख्य २ शिष्य थे उनमें से कई तो काफी योग्य और प्रभावशाली थे।

गुरु अंगददेव की कुछ वाणियां

(सलोकु)

सेही पूरे साहजिनी पूरा पाइया।
अठी वे परवाह रहनि इकतै रंगि।
दरसनु रूपि अथाह विरले पाईं आई।
करमि पूरै पूरा गुरु पूरा जाका बोलु।
नानक पूरा जे करे घटै नाही तोलु ॥२॥ पउड़ी
जा तू ताकिग्रा होरि सैस चुरणाईग्रं ॥
मुठी धंधै चोरि महलुन पाइग्रं ॥
एनै चित कठोरि से बगवाईग्रं।
जितु घटि सचुन पाइ सुभनि घडाइग्रं।
फिड़ करि पूरे वटि तोलि तुलाईग्रं ॥
सउदाइ फतु हटि पूरै गुरि पाइग्रं ॥

× × × ×

(श्लोक)

मत्री होइ अठूहिग्रा नागी लगं जाइ।
ग्रामण हथी ग्रापणं दे कूचा ग्रापे लाइ ॥
हुकम पाग्रा धुरि रासम का ग्रतीहू चका खाइ ॥

गुर मुख सिउ मन मुख अड़ै डूबैह किन आइ ।
दुहा गिरिआ आपे खसमु वेखै करि विउ पाइ ॥
नानक एवें जाणीऐ सभ किछु तिसहि रजाइ ॥
× × × ×
आपे साजि करे आपि जाईभि रखै आपि ।
तिसु विचि जतउ पाइकै देखै थापिउ थापि ॥
किसनो कहिऐ नानका सभु किछु आपे आपि ॥ पउड़ी
वडे कीआ वडिआईआ किछु कहणा कहणु न जाइ ।
सो करता कादर करीम दे जीआ रिजक सबाहि ॥
साई कार कमावणी धुरि छोडी तिनै पाइ ॥
नानक एकी बाहरी होर दूजी नाही जाइ ।
सो करे जिति सैर जाइ ॥[1]

१. इनमें गुरु नानकदेव का नाम आने से यह खयाल न करना चाहिए कि यह गुरु अंगद जी के नहीं है । महला दो की वाणियां दूसरे गुरु अंगद जी की ही है ।

पाँचवाँ अध्याय

गुरु अमरदास जी की पातशाही

जन्म और आरम्भिक जीवन

गुरु अमरदास जी साहिब का जन्म इलाका अमृतसर के बासर के गांव में तेजभान जी भल्ले खत्री के घर संवत् १५३६ वि० में वैसाख सुदी १४ को हुआ था।[1]

गुरु जी की शादी सन सनरे गाँव के देवीचन्द बहिल खत्री की लड़की के साथ हुई थी। जिनका आरम्भिक नाम रामकौर जी था किन्तु गुरु जी के घर आने पर मन्सा देवी जी रख लिया गया था।

गुरु अमरदास जी साहिब के चार सन्तानें थीं। जिनमें सबसे बड़ी बीबी भानी जी थीं। दूसरी बीबी दानी थीं। दो पुत्र मोहन जी और मोहरी जी थे।

सिख ग्रन्थों में लिखा है कि गुरु अमरदास जी बचपन से ही शीलवान, जितेन्द्रिय और संत सेवी थे। जप, तप और दान पुण्य में उनकी खूब ही रुचि थी। उनके यहां दूकान होती थी। आपने पैदल चलकर २१ बार गंगा स्नान किया था। अमृतसर जिले से हरिद्वार २१ बार पैदल जाना उनके उत्कट धर्म प्रेम को तो जाहिर करता ही है। साथही उनके शारीरिक बल और पौरुष की भी साक्षी देता है।

आपके जीवन की गति या धर्म का प्रवाह गुरु नानक देव जी के प्रचारित धर्म की ओर किस प्रकार गया? इसके सम्बन्ध में एक प्रभावकारी घटना का इस प्रकार वर्णन मिलता है। आप जब बीसवीं बार हरिद्वार से गंगा स्नान करके लौट रहे थे, तो मार्ग में थेहड़े नामक गांव के निकट एक सुन्दर उद्यान में विश्राम करने के लिये ठहर गये। वहीं पर एक विद्वान् ब्राह्मण ठहरा हुआ था। उसने इनके पांव में पद्म को देखकर कहा, महाराज आपके शारीरिक लक्षण तो इस बात की साक्षी देते हैं कि आप राजा या महाराज होने चाहिएं। अथवा आपको कोई महान् संत होना चाहिए। प्रचलित रिवाज के अनुसार पंडित के इस शुभ कथन पर गुरुजी उसे पुरस्कार में कुछ खाने पीने की चीजें देने लगे। पंडित जिसका कि नाम दुर्गादत्त बताया जाता है—ने कहा, यह तो बताइये आप किस गुरु के शिष्य हैं। अमर दास जी साहिब ने फरमाया। ऐसा कोई दिन नहीं जाता जब मैं साधु संतों और विद्वानों का सत्कार न

१. गुरु अमरदास जी की जन्म तिथियों के सम्वत् में अनेक मत हैं कोई उनका जन्म १५२६ कोई १५३६ और कोई १५६२ का बतलाता है इसी प्रकार उनकी संतानों की जन्म तिथियों में भी लेखकों का एक मत नहीं।

करता हूँ किन्तु पंडित जी मैंने अभी तक गुरु तो किसी को नहीं बनाया है। इस उत्तर को सुनकर पंडित ने कहा तब तो मैं आपके हाथ का अन्न जल तो क्या मोती मूंगे भी नहीं ले सकता हूँ। जो आदमी बिना गुरु का होता है उसके हाथ का दान लेना पाप माना गया है[1]। कहा जाता है श्री अमरदास जी साहिब के साथ एक छोहड़ा नाम का ब्रह्मचारी था पंडित की इस प्रकार की बात को सुनकर चीख उठा तब तो गजब हो गया। मेरे सभी तीरथ व्रत नष्ट हो गए मैंने तो इनके घर अनेकों बार खाया पिया है।

अमरदास जी महाराज के हृदय पर इन लोगों की इस बात का यह असर पड़ा कि उन्होंने उसी समय कोई सतगुरु बना लेने का दृढ़ निश्चय कर लिया अब वे सतगुरु की खोज में रहने लगे।

एक दिन प्रात काल तारों की छाया मे जब उठे तो उनके घर में से कोमल स्वर में अमृत वर्षा करने वाली रागनियों के गाने की मधुर ध्वनि सुनाई दी। जाकर देखा तो उनके भतीजे की बहू जो गुरु अंगददेव जी की पुत्री बीबी अमरकौर थीं गा रही हैं। अमरदास जी साहिब ने पूछा, बेटी यह सुन्दर और जीवन को पवित्र करने वाली रागिनी किस गुरु की है और तूने किससे सीखी है? बीबी अमरकौर ने कहा यह अमृत वाणी गुरु नानकदेव जी महाराज की है जिनकी गद्दी पर इस समय मेरे पिता गुरु अंगददेव जी महाराज विराजमान है। मेरी माँ ने यह वाणियाँ मुझे सिखाई हैं। हमारे पिता जी के पास नित सत्संग होता है। सैकड़ों आदमी जाकर अपनी आत्म-तुष्टि करते हैं।

अमरदासजी उसी दिन बीबी अमरकौर को साथ लेकर खंडूर पहुँचे। गुरु अंगददेव जी बड़े प्रेम से अमरदास जी से मिले और उन्हे अपना शिष्य बना लिया। सतगुरु पाकर अमरदास जी की आत्मा को संतोष हुआ। और वहीं रहकर गुरु अंगददेव जी की सेवा करने लगे।

आदर्श सेवा

गुरु अंगददेव जी की उन सेवाओं का वृत्तान्त पढ़ कर जो उन्होंने गुरु नानकदेव जी की की थीं। यह कहा जा सकता है कि सेवा की हद थी और मनुष्य शक्ति से बाहर की चीज थी किन्तु गुरु अमरदास जी ने गुरु अंगददेव जी की जो सेवाये की हैं उन्हे पढ़ कर तो और भी स्तब्ध रह जाना पड़ता है। वे नित आधी रात को ही उठ पड़ते थे और व्यास नदी के लिये चल पडते। वहाँ स्वयम स्नान करते और गुरु अंगददेव जी के स्नान करने के लिये जल का घडा भरकर लाते। और गुरुदेव को स्नान कराते। फिर लंगर का काम देखते। बर्तनों को साफ करते। झाड़ू देते। रात के समय गुरु अंगददेव जी के पैर के अंगूठे जिसमे कि लगातार टीस होती थी। चूसते रहते। इस तरह मुंह मे रखने से उसमे टीस चलना बन्द हो जाता था और अंगददेव जी सो लेते थे।

यह भी कहा जाता है कि अमरदास जी महाराज गुरु अंगददेव जी के पास से दूसरी जगह जाने के लिये काफी दूर तक उलटे पैरों चलते थे क्योंकि गुरुजी की ओर पीठ करके चलने में उन्हें दिल में कष्ट का अनुभव होता था। ऐसी थी अमरदास जी साहिब की उत्कट भक्ति अपने सतगुरु के प्रति।

व्यास नदी के किनारे गोइन्दा नाम के खत्री ने कुछ जमीन ठेके पर ली हुई थी। उसने वहाँ गाव भी बसाया किन्तु रात मे जाकर अदृश्य जीवों ने उस गांव के बाशिन्दों को तंग किया। इससे गांव उजड़ गया। गोइंदा खत्री गुरु अंगददेव साहब के पास खंडूर पहुँचा और उसने कहा

गोइन्दवाल में

महाराज मेरे बसाये हुये गांव को भूत प्रेतों ने उजाड़ दिया है। अगर आप उसे

[1] उस समय ऐसी ही अनेकों और भी प्रथायें थीं।

बसाएँ तो मैं आपका धन्य हूँगा। गुरु अंगददेव जी ने अमरदास जी को वहां रहने और गाँव के आबाद करने की आज्ञा दी। अमरदास जी साहिब बड़ी खुशी के साथ वहाँ चले गये और निर्भयता के साथ रहने लगे। उन्हें हुए लोगों को भी अभयदान दिया। इस तरह थोड़े दिनों में गोइन्दवाल आबाद हो गया। यह घटना संवत् १६०३ विक्रमी की है।[1]

पीछे गुरु अंगददेव जी की आज्ञा होने पर अमरदास जी साहब बासरके से अपने पुत्र-पुत्रियों घर वालों और संबन्धियों को भी गोइन्दवाल ही ले आये।

श्रद्धापूर्वक कठोर सेवा करते हुए लगभग बारह वर्ष हो चुके थे। अमरदास जी महाराज का शरीर भी अब बहुत बूढ़ा हो चुका था। या यों कहिए कि बुढ़ापे में ही तो उन्होंने शिष्यत्व ग्रहण किया था किन्तु बल और पौरुष उनका क्षीण नहीं हुआ था। नित प्रति *गुरुआई मिलना* ब्यासा से पानी लाकर गुरु अंगददेव जी को स्नान कराने की बात हम पहले लिख चुके हैं किन्तु यही सेवा उस समय को भी लाई। जाड़े के दिन थे और रात भर वर्षा होती रही। महावट बन्द न हुई किन्तु अमरदास जी वर्षा और शीत की कुछ भी परवाह न करके नित प्रति की तरह तीन कोस दूर ब्यासा नदी गये और वहां से गुरुजी के स्नान के लिये जल का घड़ा लाए। घोर अन्धकार और क्षीण होने के कारण ठोकर खाकर गिर पड़े थे। जिस घर के सामने गिरे वह जोलाहे का था। उसने धमकी सुनकर कहा कौन गिरा? जुलाहिन बोली इस भयंकर समय और कौन बाहर निकलने की हिम्मत कर सकता है यही निथावा अमरू होगा। गुरु अंगददेव जी ने पड़ौसी जुलाहिन की यह बात सुनली। देखा तो अमरदास साहब कीच में से उठकर आ रहे हैं किन्तु उन्होंने घड़े को नहीं गिरने दिया। उस समय गुरु अंगददेव जी ने कुछ नहीं कहा। इस तरह रहे मानों उन्हें कुछ भी मालूम नहीं है। किन्तु जब यथा समय नित की भांति दीवान लगा तो गुरु अंगददेव ने उस जोलाहिन को बुलाकर सबके सामने पूछा। "आज तड़के ही तुमने अमरदास जी के लिये जो शब्द कहे थे उन्हें दुहरा दो।" पहले तो जोलाहिन डरी किन्तु धीरज दिलाने पर उसने कहा गुरुदेव उस भयँकर समय में जबकि सन-सनाती ठंडी महावट पड़ रही थी और अंधियारी झुक रही थी धमाके की आवाज को सुनकर मैंने यही कहा था कि गिरने वाला निथामा अमरू ही हो सकता है वही गुरुजी के नहाने को इस भयंकर समय में भी ब्यासा से जल लाया होगा।" जुलाहिन की इस बात के पूरी होते ही अंगददेव जी ने झपटकर अमरदास जी को हृदय से लगा लिया और कहा यह निथामों का थाम है।

उसी दिन गुरु अंगददेव जी ने विधि पूर्वक समारोह के साथ अमरदास जी को गुरुआई की रस्म अदा कर दी। सभी लोगों ने अमरदास जी के सामने मत्था टेक कर उन्हें अपना गुरु स्वीकार किया यह पुण्य दिन संवत् १६०६ विक्रमी चैत्र की शुक्ल प्रतिपदा का था।

इसके बाद अमरदास जी गुरु अंगददेव जी की आज्ञा से कतई रूप से गोइंदवाल में जारहे और वहीं १ ओंकार और सतगुरु का ध्यान करते हुए तप करने लगे।

अब तक हमने उनके उस समय तक के जीवन पर प्रकाश डाला है, जिसे ग्राहस्थिक और शिष्य *गुरुगद्दी मिलने के बाद के कार्य* काल का जीवन कह सकते हैं। अब उनके गुरु हो जाने के बाद के कार्यों, उपदेशों और विशेष प्रसंगों का वर्णन करना चाहते हैं।

१. लिखा है कि एक देव को गुरुजी ने उसके नटखटपने के कारण मना कर दिया था जो भटिंडे जा पहुँचा। वहां से उसे गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज ने भगाया।

एक दिन शिष्य लोगों ने कहा गुरुदेव आपके दर्शनों को नितप्रति सैंकड़ों आदमी आते हैं किन्तु कोई अच्छा मकान न होने से बड़ी तकलीफ है। यह सुनकर गुरुजी ने अपने भतीजे सावनमल को एक रूमाल देकर हरीपुरा के जगलों से लकड़ी लाने के लिये भेजा। सावणमल अपने साथ कुछ शिष्यों को लेकर हरिपुरा पहुँचा तो उसी दिन वहाँ के राजा के आदमी सावणमल को गिरफ्तार करके ले गये। अपराध यह बताया गया कि आज एकादशी के दिन तुमने खुद अन्न पकाया और और दूसरे लोगों को खिलाया। हमारे यहाँ एकादशी के दिन अन्न नहीं पकाते है। सावणमल ने कहा है सब दिन ईश्वर ने एक से बनाये हैं। अन्न खाने को पैदा किया है। उसके संबन्ध में ऐसे नियम व्यर्थ हैं। जब राजा को मालूम हुआ कि यह गुरुजी के आदमी हैं तो उसने अच्छी से अच्छी लकड़ी काट लेने की आज्ञा देदी, सावणमल के उपदेश से राजा इतना प्रभावित हुआ कि वह भी सावणमल के लौटने के समय उसके साथ ही गुरु अमरदास जी साहिब के दर्शनों को गोइंदवाल पहुँचा। लगर मे एक ही पंक्ति में बैठकर सब लोगों के साथ प्रसाद पाया और गुरु जी के दर्शन किये तथा उपदेश सुनकर अपने को कृतार्थ किया।

द्वारिका से लौटते हुये सत माईदास ने सुना कि गुरु अमरदास जी ही इस समय के सब संतों में शिरोमणि हैं। निर्भिमान हो जाने पर उनके यहाँ कोई दर्शन का जाता है तो पहले गुरु लगर में सब जाति के लोगों के साथ एक पंक्ति मे बैठकर उसे भोजन करना पडता है, उसके बाद उसे दर्शन का अधिकारी समझा जाता है इस महिमा को सुनकर सन्त माईदास गोइंदवाल पहुँचा और वहाँ के नियमानुसार लगर में भोजन खा के गुरु जी की सेवा मे हाजिर हुआ। गुरुजी के दर्शनों और उपदेशो से प्रभावित होकर उनका शिष्य बन गया।

गुरु जी ने इसे भी एक मंजी बखशी और सिख धर्म-प्रचार का अधिकार प्रदान किया। इस प्रकार से गुरु अमरदास जी साहिब ने बाईस मजिया कायम कीं, जिनके द्वारा नानक-धर्म का प्रचार उत्तरोत्तर बढ़ने लगा।

गुरु अमरदास जी साहिब के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर दातू जोकि गुरु अंगददेव जी का पुत्र था। मन ही मन कुढने लगा। कहा जाता है एक दिन उसने क्रोधवश होकर ऐसी हरकत की कि गुरु अमरदास जी महाराज के जाकर लात जमा दी। गुरु जी ने सहज भाव से दातू जी के पैर को पकड कर कहा कहीं आपके लग तो नहीं गई। हमे यहाँ एक कथा याद आती है विष्णु भगवान के पास भृगुऋषि पहुँचे और उन्होंने सोते हुए विष्णु जी की छाती पर लात जमाई। विष्णु भगवान् ने हँसते हुए कहा मैं समझता हूं मेरे कठोर शरीर पर पदाघात करने से अवश्य ही आपके पैर मे चोट पहुँची होगी। लाओ दवा दूँ। इन दोनों कथाओं मे पूरा सामंजस्य है। इस घटना से हमें तो पता चलता है कि गुरु अंगददेव जी की तरह गुरु अमरदास जी को भी काफी विरोध और झगडों का सामना करना पड़ा किन्तु उनके तप और सहनशीलता ने सबको ठंडा कर दिया। फिर भी उन्हे एक बार गोइंदवाल छोड़ जाना पड़ा था।

आप एक दिन संगत को बिना सूचना दिये चुपचाप निकलकर बासरके पहुच गये और एक कोठी में बैठकर परमात्मा का जाप करने लगे। दरबार के समय भी जब गुरु जी के दर्शन नहीं हुए तो संगत बडी घबड़ाई। आखिर बाबा बुढ्ढे को लेकर सब लोग बासरके पहुचे। वहाँ कोठी के बाहर उन्होंने लिखा देखा "जो कोई इस दर्वाजे को खोलेगा उसके लोक परलोक दोनों बिगड़ जावेंगे"। अब क्या करें बड़ी देर तक सभी लोग यही बात सोचते रहे। सोचते सोचते बाबा ने कहा गुरु जी ने दरवाजा खोलने की मनाही की है न, यों तो नहीं कहा है कि कहीं होकर भीतर मत आओ। आओ संधि (छेद)

करके भीतर चलें। ऐसा ही किया गया जब भीतर बाबा बुड्ढा पहुँचे तो गुरु अमरदास जी अपने शिष्यों के इस प्रकार के प्रेम को देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उनके कहने से फिर गोइंदवाल आ गये।

गुरु जी सहनशील तो बहुत ही ज्यादा थे। उनके साथ कोई झगड़ा करो। कोई नुकसान पहुँचाओ। वे अपनी ओर से उनका कभी भी बुरा नहीं चीतते थे। उनकी सहनशीलता की एक कहानी गुरू के दरबार की लिख चुके हैं। एक दूसरी कथा इस प्रकार है। मरवाहे के खत्री और शेख गुरु जी के प्रताप से जलते थे और इस जलन को इस तरह शान्त करते थे कि जब सिख लोग पानी भरने जाते तो उनके घड़ों को फोड़ देते। सिख लोगों ने गुरु जी से शिकायत की, आप बोले भाई उनके साथ झगड़ा तो करना नहीं है? तुम मश्कों में पानी भर लाया करो। जब सिख मश्कों में पानी लाने जाने लगे तो उन्होंने तीर मार कर छेदने लगे। अंत में गुरु जी ने पीतल के बर्तन बनवा लेने की आज्ञा दी। तब उन्होंने गुलेलों से पीतल के घड़ों को भी तोड़ना शुरू कर दिया। इस पर भी गुरु जी ने उन लोगों के साथ झगड़ा करना नहीं चाहा। सिखों द्वारा इस बार शिकायत करने पर कहा, उन लोगों को शीघ्र ही ईश्वर दण्ड देगा। हुआ भी ऐसा ही उधर से गुजरने वाले सैनिक दल और एक शाही खजाने के रक्षकों ने इन लोगों को खूब ही मारा पीटा और इनके घरों को भी लूट ले गये।

सम्वत् १६२७ वि० में गोइन्दे के पुत्रों ने शाही अदालत में गुरु जी पर इस आशय का दावा कर दिया। चूंकि जमीन हमारे पिता के नाम थी, उन्होंने ही गोइन्दवाल को बसाया गुरु और इस के शिष्यों ने इस पर जबरदस्ती कब्जा कर रक्खा है। अदालत में जाकर बाबा बुड्ढे, भाई बुल्ला और केदारी आदि ने सब बातें रख दी कि किस प्रकार यह गाँव उजड़ा पड़ा था और किस प्रकार गोइन्दे ने गुरुजी से इसे बसाने के लिये सहायता प्राप्त की। हाकिम ने आकर जान की उसने गुरु जी के जीवन से प्रभावित होकर उनके मुकदमे को खारिज कर दिया। और कहा कि जो नित प्रति भेंट में आई हुई वस्तुओं को अपने काम में नहीं लेते, उनके लिये यह ख्याल करना गलती होगा कि वे किसी की जमीन पर बलात कब्जा कर लें।

गुरु जी ने इन्हीं दिनों एक यात्रा भी की थी। गोइन्दवाल से चलकर शहर नूरमहल होते हुए कुरुक्षेत्र में पहुँचे और वहाँ साधु सन्तों और पण्डितों के साथ ज्ञान चर्चा की। कई दिन वहाँ रह कर जब

यात्रा

जमुना किनारे इमली नामक गाँव में पहुँचे तो घाट पर आपको रोक लिया गया और १) प्रति आदमी के हिसाब से ठेकेदार ने टैक्स मांगा किन्तु आपने कहा हम सतों के पास देने को क्या धरा है। ठेकेदार ने सारी संगति को रोक लिया और बादशाह के यहाँ शिकायत भेजी। दीवान टोडरमल गुरुजी का भक्त था उसने बादशाह से कह कर लिखवा दिया कि गुरु अमरदास जी साहब और उनके साथियों से कोई टैक्स नहीं लिया जाय।

इस यात्रा से लौटने के कई वर्ष बाद आपने एक बावडी तैयार कराई जो अति पवित्र करार दी गई और सिखों का एक प्रकार का तीर्थ सा बन गई।

इस बावड़ी के बन जाने पर मरवाहे खत्रियों का पुरोहित जो कि शिवनाथ का शिष्य था कुछ लोगों को लेकर लाहौर के सूबेदार के पास पहुँचा और शिकायत की कि सिख लोग न तो गायत्री मन्त्र में विश्वास रखते हैं और न तीर्थों में जाते हैं, उन्होंने तो बावड़ी को एक नया तीर्थ बना लिया है। सूबेदार ने गुरु जी के पास खबर भेज कर सफाई देने के लिये कुछ सिखों को बुलाया। वहाँ बाबा बुड्ढे और एक दो अन्य शिष्यों ने बताया कि हम एक परमात्मा को मानते हैं? एक ओंकार उसका नाम है

परमात्मा के मिलने के लिये जो हमारे गुरु देवों ने हमें शिक्षा दी हैं उन पर चलते हैं। लंगर में बिना किसी पक्षपात के सब को प्रसाद मिलता है। हम कभी भी किसी के नुकसान करने की बात नहीं सोचते। यह अवश्य है कि ब्राह्मण और पुरोहितों ने जो पाखंड फैला रक्खा है उसमें हम विश्वास नहीं करते। सूबेदार गुरु जी से पहिले से ही परिचित था अत उसने मारवाहे, खत्री और ब्राह्मणों की पुकार अनुचित करार दे दी।

एक बार बादशाह अकबर गोइंदवाल में गुरु जी से मिलने आया। जब उसने और उसके साथियों ने कड़ाह प्रसाद पाया तो कहने लगा, शायद गुरु जी बुड्ढे आदमी हैं। इसीलिये हलुआ खाते हैं। बाबा बुड्ढा ने कहा यह सिख लोगों का प्रसाद है जो सभी आगुन्तकों को दिया जाता है। सवेरे जब बादशाह सेवा पर हाजिर हुआ तो कई गांव जागीर में देने लगा। गुरु जी ने कहा बादशाह हम फकीरों को बन्धन मे नहीं पड़ना है। बादशाह गुरु जी के दर्शनों से निहायत ही खुश हुआ।

गुरु अमरदास जी साहिब का जस दूर दूर तक फैल रहा था। राजा रईसों के अलावा साधू सन्त और पीर फकीर भी बड़ी संख्या मे उनके दर्शनों को आते थे। भाई फिराया और विदारा दोनों गोरख-नाथ के पंथ के थे, वे एक दिन गुरु जी के दर्शनों के लिये आये और बहुत कुछ ज्ञान चर्चा गुरु जी से की और उसी दिन से जंतर मंतरों के सारे पाखड छोड दिये और सच्चे परमेश्वर का ध्यान करने लगे।

एक कथा हमे ऐसी मिलती है कि तलवंडी मे एक लंगड़ा सिख था उसे एक दिन एक आदमी ने कहा तू गुरु अमरदास साहिब की सेवा में क्यों नहीं हाजिर होता। जब उन्होंने मुरदे जिला दिये हैं, तो तेरा पांव उनसे ठीक नहीं किया जायगा। वह सिख गोइन्दवाल में गुरु जी की सेवा में हाजिर हुआ और लंगड़ा से ठीक चलता फिरता पॉव वाला हो गया। भगवान कृष्ण ने कुबरी को बिल्कुल सुन्दर कटिवाली बना दिया था। यह कथा आम हिन्दुओं मे प्रचलित है। महापुरुषों के जीवन के सग सभी पथों और समाजों मे ऐसी चमत्कार पूर्ण गाथाओं की बाहुल्यता प्राय मिलती हैं। इसी प्रकार प्रेमा नामक खत्री का गुरु जी ने अपनी सत्कृपा से कोढ़ दूर करके उनका उद्धार किया। वास्तव में महान् परुष जग के कल्याण के लिये ही आते हैं और उनकी निगाह मे न कोई छोटा होता है और न बड़ा, इसलिये समान रूप से सब का कल्याण करने मे अपने को लगा देते हैं। उनकी यही उदारता तात्कालिक समाज को अखरती है इसलिये वह रूढ़ियो से बधा हुआ उन महापुरुषों की सराहना करने के बजाय निन्दा और सेवा करने के बजाय डाह करता है। गुरु अमरदास जी को भी आरंभ से लेकर रूढ़िवादी और अज्ञान लोगों के कोप का भाजन न बनाना पड़ा हो ऐसी बात नहीं है वास्तव में महापुरुषो को एक समय क्या अनेक समय विरोधों का सामना करना ही पड़ता है।

गुरु अमरदास जी के आशीर्वादों से जहॉ दुखी बीमार अच्छे होने की कथायें हमें पढ़ने को मिलती हैं, वहॉ लोगों ने उनकी सेवायें करके धनवान होने और अपने खोये हुए वैभव को प्राप्त करने के भी आशीर्वाद प्राप्त किये, गगूशाह नामक एक व्यक्ति ने बहुत दिनों इसी आशय से सेवा की। गुरुजी ने उसे दिल्ली में व्यापार करके धनी होने का आशीर्वाद दिया। गंगू का व्यापार रात दिन अबाध गति

से बढ़ा और एक दिन वह इतना बड़ा धनी हो गया कि एक एक लाख की हुंडियों का भुगतान करने लग गया।

मनुष्य कितना कृतघ्न हो सकता है यह बात गंगू के उस आचरण से ज्ञात हो जाती है जो उसने गुरु जी की चिट्ठी पर एक गरीब ब्राह्मण की लड़की के ब्याह के लिये ५०० रु० देने से इनकार करके प्रकट किया।

गुरु जी के आशीर्वादों और सहज उदारताओं की अनेक कथायें हैं जो सिख साहित्य में विस्तार के साथ पढ़ने को मिल सकती हैं। हमने तो केवल उनका आभास मात्र इन पृष्ठों में कराया है। हिन्दू कथा पुस्तकों में भगवान शिव की उदारता और दयालुता की बहुत चर्चा है। लोग उनकी जरा सी सेवा करके बड़े २ वरदान प्राप्त कर लेते थे। यही बात हमें गुरु अमरदास जी के स्वभाव में दिखाई देती है। जिसने जो मांगा और चाहा उसे वही दिया।

गुरु अमरदास जी के स्वभाव और कार्यों का सिंहावलोकन

गुरु अमरदास जी साहब का स्वभाव अत्यन्त ही कोमल और दयालु था। उनके स्वभाव में बदले की भावना तनिक भी न थी वे आततायी को भी ईश्वर के न्याय पर छोड़ने वाली प्रकृति रखते थे। स्वत: दंड देने की उन्होंने कभी भी नहीं सोची। सहनशीलता जिस पराकाष्ठा की उनमें थी उसका जिक्र हम पिछले पृष्ठों में कर आये हैं कि दातू जी के पदाघात के जवाब में उन्होंने उनके पैर पकड़ कर कहा था आपके कोमल चरण में चोट तो नहीं लग गई। उपस्थित सिखों को यह बात बहुत बुरी लगी और लगनी भी थी क्योंकि मनुष्य स्वाभाव ही ऐसा है किन्तु गुरु अमरदास जी तो बहुत ऊंचे थे। वह तो साधारण मनुष्य स्वभाव को पार करके बहुत आगे बढ़ गये थे। जहाँ क्रोध का नाम भी न था केवल शांति विराजती थी।

नम्र आचरण

उत्पाती शेख और खत्रियों की विरोधता को तो अंत तक उन्होंने बरदाश्त किया हालांकि जरा भी वे शिष्यों को आज्ञा दे दें तो वे उन उत्पातियों का मिजाज ठीक कर देते किन्तु आपने सदैव शिष्यों से यही कहा हमें किसी से लड़ना नहीं है। उनके कामों का फल अवश्य ही उन्हें मिलेगा।

आपने एक नियम बना रखा था कि जो मुझसे मिलने को आये पहिले वह पंगति में बैठकर प्रसाद पावे। इस नियम का पालन खूब कड़ाई के साथ होता था यहाँ तक कि बादशाह अकबर को भी पहले पंगति में बैठकर इस नियम का पालन करना पड़ा था। तब गुरु के दर्शन हुए। वास्तव में महापुरुषों और संन्यासियों के जीवन में नियमों के पालने की कड़ाई भी उनके महत्व की द्योतक होती है। स्वयम गुरुजी भी उन नियमों का जो उन्होंने अपने नित के लिए बना रक्खे थे पालन बड़ी तत्परता से करते थे। घोर बुढ़ापे में भी आप तारों की छाया में उठते, स्नान करते और जपुजी साहब का पाठ करते. लंगर को देखते, दरबार लगाते, सारांश यह कि एक क्षण भी व्यर्थ न गंवाते। आपके इस प्रकार के जीवन को देखकर एक बार बाहर से आये हुए साधुओं ने आपसे कहा भी था कि गुरु जी इस वृद्धावस्था में तो आप इतना परिश्रम नहीं किया करें, किन्तु उन्होंने जवाब दिया। किसी को खाक छानते हीरा मिला था उस हीरे से साहूकार बन जाने पर भी उसने खाक छानना केवल इसलिए नहीं छोड़ा कि उसकी यह ऊँची हालत खाक छानने ही से तो हुई है, फिर जब यह पद मुझे सेवा और कठोर तप करने से प्राप्त हुआ है, तब उस काम को मैं कैसे छोड़ दूँ।

गरीबी के दुखों को देखकर तो गुरु अमरदास जी साहब का दिल उमड़ आता था। वे उनका दुख दूर करने में अपनी ओर से कोई कसर नहीं छोडते थे। एक बार गोइन्दवाल में ताप तिजारी का बड़ा जोर हुआ लोग उससे बड़ा कष्ट पाने लगे। गुरु जी से लोगों का यह दुख न देखा गया और तिजारी ताप का स्थिर इलाज अपने हाथ मे ले लिया।[1]

यह ससार दुखियों और पीड़ितों से भरा पड़ा है, इसमे कोई सहानुभूति करने वाला चाहिये फिर उसके लिये फुरसत नहीं मिल सकती, लंगड़े, लूले, बहरे और गूगे भी उनकी सेवा में आने लगे और अपने दुखों को दूर कराने लगे। चारों तरफ शोहरत यह हो रही थी कि गुरु जी मुरदों को जिला देते हैं फिर उनके लिये साधारण बीमारियों और कष्टों को दूर कर देना क्या बड़ी बात है। इसी विश्वास से लोग भगे चले आते थे और गुरु जी भी बड़े प्रेम से उनके कष्टों का निवारण करते थे।

गुरु जी के लंगर में भारी खर्च था। धन संग्रह करने की उनकी प्रवृति न थी, फिर भी उनके पास ऐसे लोग भी पहुँच जाते जो केवल पैसे के ही स्वार्थी होते थे। गुरु जी बिना भेद भाव के उन्हें भी या तो युक्ति बताते या परम पिता परमात्मा की महान् कृपा से प्राप्त हुए अपने चमत्कार से उनको धन देकर सहायता करते। एक ब्राह्मण की कन्या के विवाह के लिये जब कहीं से कुछ नहीं मिला तो आपने ही ५००) दिये।

हमने गुरु अंगदेव जी महाराज के प्रसग मे यह बता दिया है कि उन्होंने गुरुमुखी वर्णमाला का प्रचार करके तथा गुरु नानक देव जी की वाणियों और उनके जीवन चरित को लेखबद्ध कराके शिष्य धर्म की एक सुन्दर संगठन प्रणाली खड़ी कर दी थी। गुरु अमरदास जी साहब ने भी प्रचलित गुरुओं के काम आगे बढ़ाने के लिये अपने समय मे तीन ऐसे महान् कार्य किये, जिससे संगठन की जंजीर और भी मजबूत हुई। साथ ही उन्होंने पिछले कार्यों को भी आगे बढ़ाया, एक बार उपदेश देते हुए उन्होंने कहा था, जो समझता है कि गुरुओं का बताया हुआ रास्ता मनुष्य जीवन के लिये कल्याणकारी है, उसका कर्त्तव्य है कि गुरुमुखी पढ़े और जो पढ़े हुए है वह दूसरों को पढ़ावें। गुरु वाणियों को स्वयम पाठ करे और दूसरों को करावें। उनके तीन कार्य्यों में पहिला कार्य्य था—मजियों की स्थापना। मंजी के अर्थ साधारणत छोटी खाट के होते हैं।[2] जिन्हे नानक धर्म में दृढ़ तथा बुद्धि चतुर देखते थे, गुरुजी उन्हीं को उपदेश का अधिकार दे देते थे। इस तरह उन्होंने बाईस श्रेष्ठ शिष्यों को उपदेश का अधिकार दिया। मजीधर अपने स्थान और क्षेत्र में सिखी का प्रचार करता था।

उनके कार्य

सिख साहित्य मे गुरुओं को पातशाह या सच्चे पातशाह के नाम से याद किया है भक्तों की अन्तरात्मा ने कहा सच्चे बादशाह तो यही हैं। यह प्रेम की, तप की और मानव जीवन के कल्याण की भावनाओं से ओत प्रोत है और वह बादशाही तो खून, खच्चर, दगा, फरेब और आतंक की बादशाही है तब इसमें राई रत्ती भर भी सन्देह नहीं कि गुरु सच्चे बादशाह हैं।

किन्तु अब तक गुरुओं के लिये प्रयोग होने वाली यह बादशाही केवल भावनाओं और शब्दों पर

१. लिखा है कि गुरुजी ने तिजारी ताप को पिंजडे में बन्द कर दिया था।

२ चूंकि प्रचार के समय इन लोगो को बैठने के लिये मजिया दी जाती थीं। अत. उन प्रचारकों का ही नाम मझी पड गया।

की निर्भर थी लेकिन गुरु अमरदास जी साहिब ने मंजियाँ कायम करके इस [illegible] को क्रियात्मक रूप दे दिया। इन मंजियों की स्थापना से गुरुमुखी शिक्षा और सिक्ख धर्म का खूब ही प्रचार हुआ। रात दिन सिक्खों की तादाद बढ़ने लगी।

एक बार के पहले गुरुजी ने कुरुक्षेत्र की ओर तीर्थ यात्रा की थी। वहाँ उन्होंने जो कुछ देखा उससे संतोष नहीं हुआ। धर्म के नाम पर [illegible] से पंडे किस प्रकार लूटते हैं और केवल स्नान से ही अपने को पवित्र हुआ मानने की भावना से लोग वहाँ आकर कितना कष्ट उठाते हैं। यह सब उनके ध्यान में आया। इस यात्रा में उन्होंने यह भी देखा था कि घाटों पर किस प्रकार भारी टैक्स गरीब लोगों को देना पड़ता है। संभवतः एक अर्से तक उन्होंने इस बात को दिमाग में रक्खा।

सम्वत् १६१७ वि० में उन्होंने एक सुविशाल बावड़ी जो अति पवित्र नीर से भरी रहती थी तैयार कराई। थोड़े दिन में ही यह बावड़ी गंगा जैसा तीर्थ हो गया। इसकी ८४ सीढ़ियों पर चौरासी बार जपुजी का पाठ करने से चौरासी लाख योनियों से छूटने का आभास सिक्ख लोगों को होने लगा। इस तरह से लाहौर और अमृतसर आदि प्रदेशों से सुदूर कुरुक्षेत्र अथवा हरिद्वार की ओर से मुड़कर उस बावड़ी की ओर ही लोगों का प्रवाह केन्द्रीभूत होने लगा। इसका अन्तरीय प्रभाव जो हुआ वह यही कि सिक्खों की भावनायें अतिरंजित पौराणिक धर्म की ओर से मुड़कर नानक धर्म की ओर सीमाबद्ध होने लगीं। और अपने धर्म में दृढ़ होने का सिक्ख लोगों के लिये यह एक और साधन हो गया। पुराणों में हम एक निराधार उपदेश पढ़ते हैं और वह यह कि यदि मस्त हाथी दौड़ता हुआ चला आ रहा हो तो बजाय इसके कि पास के जैन मंदिर में घुसने से प्राण बचते हों—हाथी के पैर के नीचे दब कर मर जाना लाख दर्जे अच्छा है। इसका नतीजा यह हो रहा है कि आज भी पुराने ख्याल के हजारों हिन्दू जैन मन्दिरों में नहीं जाते हैं। हम समझते हैं कि पुराणों में यह कड़ुवा उपदेश इसीलिये दिया गया होगा कि हिन्दू जैनियों के जाल से बचे रहें। हम कहते हैं कि पौराणिक जाल से सिक्खों को एक हद तक रोकने में और सिक्खत्व को अडोल बनाने में इस बावड़ी ने बड़ा काम किया। इस बावड़ी के प्रभाव को उस समय के पौराणिक लोग न समझे हों ऐसी बात नहीं है। मरवाहे क्षत्रियों के पुरोहित ने ब्राह्मणों का एक दल ले जाकर सूबेदार के यहाँ शिकायत भी की थी।

इस बावड़ी के बनने के समय के साथ जो इतिहास लगा हुआ है उसका वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं। स्वयं श्रद्धालु सिक्खों ने इस बावड़ी को बड़े चाव और उत्साह से तैयार किया था गुरु रामदास जी ने स्वयम इसमें काम किया था। इन सब बातों ने सिखों के हृदय में इस बावडी के प्रति स्वभावत प्रेम और श्रद्धा पैदा कर दी थी जो कि उनके वर्तमान में धारण किये धार्मिक ख्यालात को और भी पुष्ट करने में सहायक हुई। इस तरह मंजियों की तरह ही गुरु अमरदास जी का यह कार्य भी सिक्खों की वृद्धि करने और उन्हें सिक्ख धर्म में दृढ़ बनाने के लिये अत्यधिक उपयोगी साबित हुआ।

सिक्ख संगठन के लिए तीसरा काम जो गुरु अमरदास जी साहिब ने किया. वह था मेला भरने का। सिक्ख इतिहासों में लिखा है कि बाबा बुड्ढा, बाला आदि ने एक चित होकर गुरु जी से प्रार्थना की कि सच्चे पातशाह कोई ऐसा ढंग निकालिये जिस से एक दिन सब शिष्य आपस में मिलजुल लिया करें और सतसंग हो जाया करे। इससे हमारे दिमाग में दो बाते पैदा होती हैं. एक तो यह कि इस समय तक स्थिति इतनी हो चुकी थी कि शिष्य लोग गैर शिष्यों की अपेक्षा शिष्यों को परस्पर अधिक चाहने लग गये थे और दूसरी यह कि प्रत्येक समझदार शिष्य यह चाहने लग गया था कि हमारा समाज बढ़े और

उसमे भ्रातृ भाव की वृद्धि हो, इसीलिये बुड्ढा आदि ने गुरु जी के सामने शिष्यों के परस्पर मिलने जुलने के लिये साधन निकालने को कहा। गुरु जी स्वत: ही इस ओर विचार कर रहे थे। अतः उन्होंने एक मेले की नींव डाली। पहले पहल यह मेला संवत् १६२८ वि० में जुड़ा। इसे जोड़ने के लिये सभी मंजियों और संगतों के पास चिट्ठियाँ जारी कर दी गई थीं। बड़ी भारी संख्या मे शिष्य लोग इकट्ठे हुए जो लोग शिष्य नहीं थे, वे भी बड़ी संख्या में आये। बावली में स्नान के बाद लोगों ने जपु जी का पाठ किया। संगतों ने आपस मे ज्ञानचर्चा की, कीर्तन हुआ और दरबार लगा। इस तरह इस मेले का आरम्भ हो गया।

यह मेला वास्तव मे एक धार्मिक समारोह और वार्षिक अधिवेशन था। जिससे शिष्यों को प्रति वर्ष एक नई स्फूर्ति मिलती थी। किसी समय हिन्दू तीर्थों का भी यही उद्देश्य था। जैन और बौद्ध मतों को परास्त करके जो हिन्दू धर्म बनाया गया उसे जीवित और सचेतन बनाये रखने के लिये ही तीर्थों की स्थापना की गई थी और इसी उद्देश्य से पर्व नियत किए गये थे किन्तु आगे चलकर यह तीर्थ और पर्व चन्द लोगों की जीविका का साधन बन गये और मेलों मे जाने वाले भी सही उद्देश्य को भूल गये थे। वे भी जन्म भर के पापों को केवल एक दिन मे उतारने की भावना से इन मेलों मे जाते थे। उनके सामने संगठन और समाज स्वच्छता की रक्षा का कोई खयाल और सवाल न था।

वैसाखी के मेले से शिष्यों के अन्दर सौहार्द, जान पहचान और मेल बढ़ाने में काफी सहायता मिली। और इस तरह से दूर २ फैले हुए सिख एक सूत्र मे आबद्ध होने लगे।

मिलने जुलने का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से कुछ सीखता है और अपनी कमीबेशी का अनुभव करता है। साथ ही मेले जैसे मिलन मे से मनुष्य भविष्य के लिए कुछ इरादे बनाकर लाता है किन्तु उसके इरादे उस मेले की स्थिति और प्रभाव के अनुसार बनते हैं। वैसाखी के इस मेले से प्रत्येक सिख यह भावनाएँ लेकर लौटता था कि मुझे अगले साल तक इतनी बाणियाँ याद कर लेनी है। इतना पढ लेना है और शिष्य-शिष्य उसी प्रकार भाई हैं जिस प्रकार एक पिता की सताने। प्रत्येक शिष्य मेले से लौटकर अपने गाँव में, साथियों में गुरु की महानता और मेले मे होने वाली सत वार्ताओं की चर्चा करता। इससे सहज ही सिख धर्म का प्रचार वृद्धि को प्राप्त होने लगा। इस तरह गुरु अमरदास जी साहिब के तीनों काम शिष्यों की संख्या बढ़ाने और उनमें दृढ़ता पैदा करने मे खूब ही उपयोगी सिद्ध हो रहे थे।

गुरु अमरदास जी साहिब जैसे स्वभाव के सरल और मीठे थे वैसे ही उनके उपदेश भी सरल और मीठे होते थे। उदाहरण के तौर पर एक घटना पेश करते है —एक दिन कई शिष्यों ने पूछा, सच्चे पातशाह। सिक्खी के लक्षण बताने की कृपा कीजिये। गुरु जी ने कहा, "प्रातः उठकर स्नान करना, परम पिता परमात्मा का नाम लेना, यथा शक्ति सुपात्र को दान देना। मीठा बोलना, दंभ छोड़ना, परधन और परदारा से बचना, अपने सिद्धान्तों और कर्त्तव्यों पर दृढ़ रहना, नित प्रति सत्संग करना, गुरुवाणी में श्रद्धा रखना, किसी का दिल न दुखाना, किसी की निन्दा न करना, झूठ और फरेब से बचना, विश्वासघात न करना, आगत जनों का सत्कार करना, धर्म कीर्तन करना, संगत की टहल करना, किसी के साथ रागद्वेष न करना, गुरु महिमा को समझना, स्वयम विद्वान हो तो दूसरों को पढ़ाना, गुरुमुखी सीखना, किसी का बुरा न चितना, भूखे को भोजन कराना, नंगे को वस्त्र देना, परोपकार मे मन लगाना, किसी के दोषों को न देखना, भूत

उनके उपदेश

द्वेष, देवी देवता की पूजा से दूर रहना और गुरु के बताये मार्ग पर चलना यह सिक्खी के लक्षण हैं।”

इस सबके है सदाचार न कहना, यह एक बात और इस उपदेश में जोड़ दी जाती तो फिर क्या शेष रह जाता। जिसकी मनुष्य जीवन को सफल बनाने और इहि संसार में सम्मान पूर्वक जीने तथा परलोक प्राप्त करने के लिये अत्यन्त जरूरत होती है। हमारी समझमें तो कुछ भी शेष नहीं रह जाता। इस एक बात को इसके बाद गुरु गोविन्दजी ने सिक्ख धर्म में जोड़ दिया था। इस तरह से यह पूर्ण मानव धर्म बन गया। इससे अन्दाज लगाया जा सकता है कि गुरु अमरदास जी के उपदेश मनुष्य समाज की भलाई के लिए कितने ऊंचे होते थे और कितनी सरल और मीठी भाषा में। हम तो समझते हैं। महात्मा बुद्ध के बाद इतने लंबे अर्से से इस सिद्धान्तके साथ पहले पहल सिक्ख गुरुओं ने ही उपदेश देना शुरू किया था। इस प्रकार के सरल और मधुर उपदेशों से सहज ही हजारों मनुष्य सिक्ख धर्म से अनुप्राणित हुए थे। और इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि इन तीसरे पातशाह के उपायों द्वारा सिक्ख सम्प्रदाय की नींव भी बहुत कुछ पक्की होगई थी।

कहा जाता है गुरु अमरदास जी साहिब ६२ वर्ष की अवस्था में गुरु अंगद देव जी के शिष्य हुए थे और १२ वर्ष के कठोर तप से इन्होंने गुरु गद्दी प्राप्त की थी इसके बाद २२ वर्ष तक इन्होंने पातशाही की और सवत १६३१ विक्रमी में मंगल के दिन भाद्रपद शुक्ल पूर्णमासी के दिन दो घड़ी रात्रि शेष रहे परमधाम को सिधार गये।

गुरुधाम की यात्रा

इस दिन गोइंदवाल में हजारों ही शिष्य मौजूद थे। दिन भर शब्द कीर्तन और जपुजी का पाठ तथा सतसंग हुआ। लोगों ने इनके बार २ दर्शन किए। इस समय सभी सेवक, मञ्जियों के आचार्य और सगे सम्बन्धी उपस्थित थे। गुरु जी ने दरबार में सब को संबोधित करते हुए कहा कि आप लोग यह सुनकर प्रसन्न होंगे कि मैं गुरुआई रामदास जी को सौंपता हूँ। जो सब तरह से इसके योग्य हैं। यह कह कर इन्होंने रामदास जी की परिक्रमा की और गुरुआई की रस्म पूरी करके माथा टेका। सब लोगों ने मत्था टेका और गुरु रामदास जी को अपना गुरु स्वीकार किया[1] किन्तु गुरु अमरदास जी के पुत्र मोहन जी और इनके दूसरे भाई रामे ने मत्था नहीं टेका और इस कार्य का विरोध भी किया। गुरु जी के दूसरे लड़के मोहरी ने बड़ी श्रद्धा के साथ रामदास जी को गुरु मान लिया और कहा जिस तरह मेरी अब तक के तीन गुरुओं में श्रद्धा रही है उसी तरह इनमें भी रहेगी। कहा जाता है पीछे गुरु अमरदास जी के समझाने बुझाने से मोहन जी और रामे जी भी मान गये।

यहां यह बता देना भी जरूरी है कि गुरु रामदास जी गुरु अमरदास जी के जमाई थे और बीबी भानी जी की शादी इनके साथ हुई थी।

जब गुरु अमरदास जी ने इस संसार से विदा होने का समय जाना तो अपने पुत्र मोहरी को बुलाकर कहा कि हमारे पीछे कोई मनमत न करना गुरुबाणी का उच्चार और शब्द कीर्तन करना कराना। शोक नहीं मनाना, चूंकि परमात्मा की आज्ञा हो चुकी है इसलिये मुझे जाना है। मेरे बाद गरुड पुराण बचवाने की भी गलती न करना न पिंड दान भरना।

इस प्रकार का उपदेश करके गुरु जी विदा हो गये। उनकी आज्ञा के अनुसार कोई शोक नहीं मनाया गया और विधिवत जैसा भी इन्होंने कहा वैसा ही कर दिया गया।[2]

१. संवत १६२१ भादवा सुदी १३।

२. सवत १६३१ वि की भादों सुदी १५ को देहवसान हुआ।

आपे माइला मो लागै गुर मुखि सचु कमावणिआ ॥२॥
जिसु आपि भुलाए सु किथै हथु पाए ।
पूरब लिखिआ सो मेटणा न जाए ।
जिन सति गुरु मिलिआ से वड भागी पूरै करमि मिलावणिआ ॥३॥
पेईअड़ै धन धन दिनु सुती । कंति विसारी अवगणि मुती ॥
अनदिनु सदा फिरै बिल लादी बिनु पिर नीदन न पावणिआ ॥४॥

राग गउड़ी गुआरेरी—मनुमारे धातु मरि जाइ । बिनु मूए कैसे हरि पाइ ॥
मनु मरै दारू जाणै कोई । मनु सबदि मरै बूझै जनु सोइ ॥१॥
जिस नो बखसे दे वडिआई । गुरपरसादि वसै हरि मन आई ॥ रहाउ
गुर मुखि करणी कार कमावै । तादसु मनकी सोझीपावै ।
मनु मै मनु मैगल मिकदारा । गुरु अंकुस मारि जीवालणहारा ॥२॥
मनु असाधु साधै जनु कोइ । अचरु चरैता निरमलु होइ ॥
गुर मुखि इहु मनु लइआ सवारि । हउमै विचहु तजे विकार ॥३॥
जो धुरि राखि अनु मेलि मिलाइ । कदेन विछुड़हि सबदि समाइ ॥
आपणी कला आपही जाणै । नानक गुर मुखि नामु पछाणै ॥४॥

राग आसा— हरि दरसनु पावै वडभागि । गुर कै सबदि सचै बैरागि ।
खटु दरसन बरतै बरतारा । गुर का दरसनु अगम अपारा ॥
गुर कै दरसनि मुकति गति होइ । साचा आपि वसै मनि सोइ ॥ रहाउ
गुर दरसनि उधरै ससारा । जे को लाए भाउ पिआरा ॥
भाउ पिआरा लाए विरला कोइ । गुर कै दरसनि सदा सुखु होइ ।
गुर कै दरसनि मोख दुआर । सति गुरु सेवै परवार साधार ॥
निगुरे कउ गति काई नाही । अव गुणी मुठे चोटा खाई ।
गुर कै सबदि सुखु साति सरीर । गुर मुखि ताकउ लगै न पीर ॥
जम कालु तिसु नेड़िन आवै । नानक गुर मुखि साचि समावै ॥

राग बिलावलु— जग कऊआ मुख चु चि गिआनु । अतरि लोभु झूठु अभिमानु ।
बिनु नावै पाज लगुहनिदान सति गुर सेवि नामु वसै मनि चीति ।
गुरु भेटे हरि नामु चेतावै बिनु नावै होर झूठु परीति । रहाउ
गुरि कहि आसा कार कमावहु । सबद चीति सहज घरिआवहु ॥
साचे नाइ वडाई पावहु । आपनि बूझै लोक बुझावै ।
मन का अधा अधु कमावै । दरु घरु महलु ठौर कैसे पावै ।
हरिजीउ सेवीऐ अतरजामी । घट घट अंतरि जिसकी जोति समानी
तिसु नालि किआ चलै पहनामी । साचा नामु साचै सबदि जानै ।

छठा अध्याय

गुरु रामदास जी के जीवन की झाँकी

जन्म और प्रारम्भिक अवस्था

गुरु रामदास जी साहिब का जन्म कार्तिक वदी २ संवत १५८१ वि० में रविवार के दिन चार घड़ी दिन चढ़े हरिदास जी सोढी खत्री के घर माई दया कुँवरि जी के उदर से लाहौर की चूना मंडी में हुआ था। उन दिनों शेरशाह सूरी की अमलदारी थी और हुमायूँ मुगल बादशाह भागता फिर रहा था। कहा जाता है गुरु रामदास जी की माता बहुत ही छोटी उम्र का गुरु जी को छोड़ कर चल बसी थीं। पिता भी जब कि उनकी उम्र केवल सात वर्ष की थी, उन्हें छोड़ कर स्वर्ग सिधार गये। इसलिये उनकी नानी उन्हें बासरके में ले गई और वहीं आपका लालन पालन हुआ। जब आप बारह वर्ष के हुए तो अपने कुछ साथियों के साथ गुरु अमरदास के दर्शन करने के लिये गोइन्दवाल आये और तभी से वहीं रह गये धर्मशाला की सफाई रखना और गुरु जी की सेवा करना, आपने अपना उद्देश्य बना लिया। आप चेहरे मुहरे और रंग रूप की दृष्टि से बहुत ही खूबसूरत थे। जो भी आपको देख लेता आपकी ओर आकर्षित हो जाता। ऊँचा ललाट और चौड़े कंधे आपके पुष्ट शरीर की साक्षी देते थे।

गुरु अमरदास जी साहिब ने अपनी बड़ी पुत्री बीबी भानी के लिये जो बहुत ही योग्य और समझदार थीं, रामदासजी को सर्वथा योग्य समझा और संवत् १६१२ वि० में उनके ही साथ शादी कर दी।

बीबी भानी जी के तीन संतानें हुई (१) पृथ्वीचन्द (२) महादेव (३) अर्जुनदेव।

गुरुआई मिलने के बाद

गुरु रामदास जी साहिब के बचपन और उस समय में उनके द्वारा गुरु सेवा और जन सेवा सम्बन्धी किये गये कार्यों का वर्णन हम कर चुके हैं। अब गुरु होने के बाद उनके समय में जो कुछ हुआ उस पर प्रकाश डालते हैं। गुरु रामदास जी साहिब ने भी कुछ लोगों को उपदेश देने का अधिकार दिया था, भाई हंदाल उन उपदेशकों में से ही था। पहिले यह लंगर में काम करता था किन्तु गुरु जी ने जब इसकी सच्ची भक्ति का परिचय ले लिया तो इसे संगतों को उपदेश देने के लिये मुकर्रिर कर दिया। इसने जिंदगी भर बड़े प्रेम से अपने कर्त्तव्य को निभाया किन्तु इसकी संतान के लोगों ने गुरुओं की जो जन्म साखिया लिखीं उनमें सिद्धान्त विरोधी श्लोक रख दिये। अतः उन लोगों की सिख समाज के अन्दर से कदर उठ गई।

गुरु अमरदास जी की भाँति आप सच्चे भक्तों और दीन दुखियों को आशीर्वाद और धन देकर सुखी करने में भी पीछे नहीं रहते थे। हम भाई भगतू को एक प्रसिद्ध सिख सरदार के रूप में देखते हैं। कैथल राज घराने की नींव इन्हीं की सन्तान ने डलवाई थी और यह भी गौरव इस घराने को है कि सूरज प्रकाश जैसा महान् सिख ग्रंथ इन्हीं की सन्तान की दानवृत्ति और उदारता से उत्साहित होकर सिख कवियों ने बनाया था। इन भाई भगतू के पिता भाई उदयबिराड़ एक लम्बे अर्से तक गुरु रामदास जी की सेवा में रहे थे। बिराड़ जाटों का वह खानदान है जिनकी एक बड़ी रियासत पंजाब में फरीदकोट के नाम से मशहूर है। इसी तरह की अनेकों कथा हैं किन्तु स्थानाभाव से हम सब को नहीं दे रहे हैं।

परमधाम को जाने से पहले गुरु अमरदास जी ने रामदास जी साहिब के जिम्मे एक काम सौंपा था। और वह काम यह था कि तुंग, सुल्तान और गुमटाला गाँवों के बीच में जो जंगल है उसके बीच में एक सरोवर बनानी चाहिए।

इस सुन्दर जंगल की भूमि किसी एक की न थी आस पास के अनेकों जाट जमींदार उसके मालिक थे। किन्तु जब उन्होंने गुरुजी की इस इच्छा को सुना तो वह जंगल उन्होंने उनके लिये बता दिया। भूमि मिलते ही गुरु रामदास जी ने वहाँ अपने कुछ शिष्यों को लेकर एक छोटा सा गाँव बसाया। जो रामदास-पुर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस दिन संवत् १६२९ वि० के अषाढ़ महीने की ५ वीं थी।[1] यहाँ पर जो गुरु साहिब ने एक सरोवर बनवाया वह अमरसर व अमृतसर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अमृतसर का सिख लोगों में उतना ही सत्कार है जितना ईसाइयों का यरूसलम और मुसलमानों का मक्के-शरीफ में है। इस समय समस्त सिख तीर्थों में अमृतसर का दर्जा बहुत ऊँचा है।

इस सुन्दर और पवित्र सरोवर के बनने के आरम्भ में ही संवत् १६३३ में बादशाह अकबर ने यहीं आकर गुरु जी के दर्शन किये वह देहली से लाहौर को जा रहा था। रास्ते में उसने सुना कि गुरु अमरदास जी साहिब की गद्दी पर इस समय गुरु रामदास जी साहिब हैं उसे इस नये गुरु के दर्शनों की बड़ी उत्कंठा हुई और गुरुजी की सेवा में हाजिर हुआ। धर्म विषयक चर्चाओं के बाद अकबर ने माफी में कुछ गाँव गुरु जी को देने चाहे किन्तु किसी प्रकार की जागीर या माफी लेने से उन्होंने इन्कार कर दिया। फिर भी बादशाह ने कुछ भूमि आपकी सरोवर के लिये दे ही दी। अमृतसर के चारों ओर रामदासपुर थोड़े ही दिनों में बढ़कर एक अच्छा खासा नगर हो गया और उसमें प्राय सभी जातियों के लोग आकर बस गये।

अमृतसर के सम्बन्ध में कई चमत्कारिक कथाओं का वर्णन है। दुनीचंद नामी किसी विशिष्ट पुरुष की स्पष्टवक्ता एक पुत्री अपने पंगु पति को यहा लेकर आई थी। उसमें स्नान करते ही उसका शरीर बिल्कुल ठीक राजकुमारों जैसा हो गया। एक काक जो पानी पीने के लिये आया उसका शरीर भी श्वेत हो गया।

एक बार बाबा श्रीचन्द जी आपसे मिलने के लिए आये। आपने और सिखों के साथ आकर बाबा जी का सत्कार किया। श्रीचंद जी भी गुरु अमरदास जी की भक्ति और लोक सेवा के कामों से बहुत प्रसन्न हुए और कहा मुझे तो यकीन होता है कि आपका परिवार फूलेगा फलेगा।

इसी प्रकार उनका यश सुनकर एक बार सिद्ध लोगों की भी जमात उनके दर्शन करने और ज्ञान

१. कहीं कहीं संवत् १६२७ अषाढ़ १३ लिखा।



जन्म स्थान गुरु रामदास साहिब



देहरा गुरु अर्जुनदेव जी लाहौर

चर्चा करने के लिये आई। गुरुजी के लंगर को देखकर सिद्ध बड़े खुश हुए, उनमें से एक ने कहा, आपके यहाँ हमें एक ही कमी दिखाई देती है और वह यह कि आप अपने शिष्यों को योग नहीं सिखाते हैं। गुरु जी ने कहा आप लोग तो योग करते हैं न, बताइये परमात्मा को आप में से किसने पहचाना है? योग के नाम पर पाखंड फैला रक्खा है आप लोगों ने। हमारे सिखों को ऐसे योग की आवश्यकता नहीं है।

हथि कर तत बजावे जोगी थोथा बाजे बेन।
गुर मत हरि गुन बोलहु जोगी एहु मनुआ हरिरंग भेन॥
जोगी हरि देहु मती—उपदेस
जुग जुग हरि हरि हरि एको करतै तिसु आगे हम आदेस।

एक बार आप अपनी जन्मभूमि लाहौर भी गये। आपके खानदान के सोढ़ी लोग जब भी आपसे मिलने यहाँ आ कहा करते कि कभी तो सावकाश एक दिन आकर तो आप अपनी जन्मभूमि को पवित्र कीजिये। एक बार लाहौर से शिष्य लोगों की संगति आई उसने भी यही प्रार्थना की। शिष्य लोगों की प्रार्थना को गुरुजी ने मान लिया और लाहौर गये। वहाँ आपने अपनी जन्मभूमि के स्थान पर एक मकान बनवाया। कई दिन ठहर कर शिष्य लोगों को उपदेश दिया। लाहौर के हाकिम और अन्य रईस लोग भी गुरु के दर्शनों को आये और उपदेश ग्रहण किया। वहाँ से लौटकर आपने कोई यात्रा नहीं की। चक्र में ही रह कर लोगों को उपदेश देते रहे।

इस तरह लगभग ७ वर्ष तक आपने गुरुआई की और अपना समय समाप्त हुआ समझ कर अपने सबसे छोटे पुत्र अर्जुनदेव जी को गुरुआई सौंप दी। अर्जुनदेव जी से दो बड़े पुत्र और थे किन्तु बीच वाले महादेव जी तो निरे उन्मत्त थे। वे प्रायः उदास रहा करते थे। उनका किसी भी काम में जी नहीं लगता था। पृथ्वीचंद अवश्य गुरुआई चाहते थे किन्तु वे अनेक परीक्षाओं में जंचे नहीं अतः गुरु रामदास जी ने उनको गुरुआई नहीं दी।

एक बार गुरुजी ने पृथ्वीचन्द से कहा कि लाहौर के अपने कुनबे के लोगों के यहाँ विवाह है। वहाँ तुम चले जाओ। पृथ्वीचंद साफ इनकारी होगये। उन्होंने समझा कि इस तरह से मुझे यहाँ से हटा रहे हैं। और अर्जुनदेव को गद्दी देना चाहते हैं किन्तु अर्जुनदेव जी से जब कहा गया तो वे तुरन्त तैयार होगए। चलते समय गुरुजी ने उनसे कहा देखो जब तक हम बुलावें नहीं तब तक नहीं आना। इसे भी उन्होंने स्वीकार कर लिया। लाहौर में ही जहाँ वह गये थे, दिन बिताने लगे किन्तु पिता एवं गुरु के चरणों में बैठने में जिस आनन्द का अनुभव उन्हें होता था। उसके लिये रातदिन छटपटाने लगे। उन्होंने अंत में एक पत्र लिखा। एक लंबे अर्से तक भी उसका कोई जवाब न आने पर दूसरा लिखा। जब उसका भी जवाब नहीं आया तो एक पक्के विश्वासी आदमी को भेजा। उसने वह पत्र गुरु जी के ही हाथ में जाकर दिया। गुरु जी को जब यह मालूम हुआ कि उन्हें दो पत्र नहीं मिले हैं तो वे समझ गये कि यह सब कारस्तानी पृथ्वीचंद की है। पूछने पर पृथ्वीचन्द ने कह दिया मैं अर्जुनदेव के पत्रों के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता किन्तु वे दोनों पत्र पृथ्वीचंद के अंगरखे की जेब में से प्राप्त होगये। इससे पृथ्वीचंद लज्जित हुआ। गुरुजी ने बाबा बुड्ढा को भेजकर लाहौर से अर्जुनदेव जी को बुला लिया और घोषणा करदी कि अर्जुनदेव ही गद्दी का अधिकारी है। वे पत्र जो अर्जुनदेव जी ने लिखे थे श्रद्धा और प्रेम से लबालब थे। तीनों पत्रों के कुछ अंश यहाँ देते हैं।

"मेरा मन लोचे गुर दर्शन ताईं। बिलप करे चातक की नाईं।

तिरखा न उतरै सान्ति न आवे। विन दरसन सत पियारे जीउ ॥
हउ घोली जिउ घोलि घुमाई गुर दर्शन सत पिआरे जीउ।"

दूसरी चिट्ठी —

"तेरा मुखु सुहावा जीउ सहज धुनि बाणी।
चिर होआ देखे सारिंग पाणी ॥
धन्न सुदेस जहा तू बसिआ मेरे सजण मीत मुरारे जीउ।
हउ घोली हउ घोलि घुमाई गुरु सजण मीत मुरारे जीउ ॥"

तीसरी चिट्ठी के अश —

"इक घडी न मिलते ता कलिजुगु होता।
हुण कद मिलिअ प्रिय तुधु भगवन्ता ॥
मोहि रैण न विहावै नीद न आवै।
बिनु देखे गुरु दरसन जीउ ॥
हउ घोली जीउ घोलि घुमाई।
तिसु सचे गुरु दरवारे जीउ ॥"

गुरु अर्जुनदेव की उन दिलकश चिट्ठियों का यह कविता भाग है, जो उनकी गुरुभक्ति और ईश्वर भक्ति का प्रबल प्रमाण देता है।

गुरु रामदास साहब के जीवन कार्य्यों पर एक विहंगम दृष्टि

गुरु रामदास जी ने केवल ७ वर्ष गुरुआई की। यह समय बहुत थोड़ा है किन्तु इतने थोड़े समय मे भी पहले से काफी बढे हुये सिख समाज के लिये बहुत कुछ कर गये। दिनचर्य्या बिल्कुल उनकी भी अपने पूर्ववर्ती गुरुओं जैसी थी, उसी प्रकार तारों की छाया मे उठते, स्नान करते, एकान्त चिन्तन करते, दरबार लगाते और उपदेश देते। वैसा ही सीधा सरल और आकर्षक स्वभाव भी था। उदारता तो यहाँ तक थी कि एक कोसने वाले भिखमगे को आपने अपने कंकण तक दान में दे दिये। पूर्ववर्ती गुरुओं की प्रत्येक मर्यादा का ज्यों का त्यों पालन हो सके इस बात का आप बड़ा ध्यान रखते थे।

आपके समय मे सिख समाज को और भी अधिक मजबूत बनाने का जो काम हुआ वह था अमृतसर की स्थापना। यह पवित्र तडाग और नगर ऐसे स्थान पर बसाये गये जो पंजाब का मध्य था। मांझ और मालवे मे अधिकतर जाट वीरों की आबादी थी, जो उस स्थूल पर कृषि से जीवन निर्वाह करते थे और आज भी वे उत्तम खेतिहर समझे जाते हैं। वैसे ता अब तक जितने भी शिष्य बने थे उनमें भी जाट ही ज्यादा थे। उनमे से कई तो वालाजी, बुड्ढाजी और भगतू जैसे विद्वान और ऊचे दर्जे के गुरमुख थे किन्तु अमृतसर की स्थापना से जाटों के इस प्रान्त मे सिख-धर्म को बड़ी उन्नति मिली। यह कह देने में कोई भी अत्युक्ति नहीं होगी कि जाट लोगों के लिये सिख-धर्म कोई दूर की और भयावनी चीज नहीं थी। वह उस समय भी आजाद प्रकृति के और रूढ़िवाद से स्वतत्र थे। पौराणिक धर्म की छाया उन पर नाम-मात्र को ही पड़ी थी। वे उन वैदिक आर्यों के अब भी सच्चे उत्तराधिकारी थे जो केवल एक ईश्वर के उपासक और तत्वज्ञानी थे। सिख-धर्म ने उन्हे जो कुछ दिया वह उनकी रुचि के अनुसार था। ब्राह्मण धर्म की छूत-छात और सामाजिक असमानता की रिवाजों से वे पहले से ही घबराते थे। अतः वे अधिक

ने अधिक संख्या में सिक्ख-धर्म में दीक्षित हो गए। यह बताने में भी कोई हर्ज नहीं होगा कि करतारपुर और तरन तारन तथा गोइन्दवाल के लंगरों को चलाने में जाट-सिक्खों की उत्कट श्रद्धा भी शामिल थी।

अपनी प्रकृति के अनुकूल धर्म में वे बड़े उत्साह और श्रद्धा से शामिल हुए।

बावली साहब के निर्माण से जिस प्रकार सुदूर तीर्थों की ओर से सिक्ख लोगों की अनुरक्ति कम हुई थी, उसी प्रकार अमृतसर की स्थापना से और भी कम हुई। और अब उनके लिए बावली साहब और अमृतसर ही सच्चे तीर्थ होगये। इसीलिये हम गुरु रामदास जी के जीवन के सार्वजनिक कार्यों में सब से अधिक प्रमुखता अमृतसर की स्थापना को ही देते हैं।

गुरु 'सिक्ख तवारीखों' के पढ़ने से पता चलता है गुरु रामदास जी ने सामाजिक नियमों में भी तब्दीली की थी। एक बार सिक्खों का समूह उनकी सेवा में हाजिर हुआ और उसने पूछा कि हमें विवाह शादियों के सम्बन्ध में कोई उपदेश दीजिये तब उन्होंने नीचे लिखी वाणी कही —

"हरि पहलड़ी लाव परविरती करम द्रिड़ाइआ बलिराम जीउ।
बाणी ब्रहमा वेदु धरमु द्रिड़हु पाप तजाइआ बलिराम जीउ ॥
धरमु द्रिड़हु हरि नामु धिआवहु सिम्रिति नामु द्रिड़ाइआ।
सतिगुरु गुरु पूरा आराधहु सभि किलविख पाप गवाइआ ॥
सहज अनंदु होआ वडभागी मनि हरि हरि मीठा लाइआ।
जन कहै नानक लाव पहिली आरम्भ काज रचाइआ ॥ १ ॥
हरि दूसरी लाव सतिगुरु पुरखु मिलाइआ बलिराम जीउ।
निरभउ भै मनु होए हउमै मैलु गवाइआ बलिराम जीउ ॥
निरमलु भउ पाइआ हरि गुण गाइआ हरि वेखै राम हदूरे।
हरि आतम रामु पसारिआ सुआमी सरब रहिआ भरपूरे ॥
अंतरि बाहरि हरि प्रभु एको मिलि हरिजन मंगल गाये।
जन नानक दूजी लाव चलाई अनहद सबद वजाये ॥ २ ॥
हरि तीजड़ी लाव मनि चाउ भइआ बैरागीआ बलिराम जीउ।
संत जना हरि मेलु पाइआ वडभागीआ बलिराम जीउ ॥
निरमलु हरि पाइआ हरि गुण गाइआ मुखि बोली हरि बाणी।
संत जना वडभागी पाइआ हरि कथीऐ अकथ कहाणी।
हिरदै हरि हरि धुनि उपजी हरि जपीऐ मसतकि भागु जीउ।
जन नानक बोलै तीजी लावै हरि उपजै मनि बैरागु जीउ ॥ ३ ॥
हरि चउथड़ी लाव मनि सहजि भइआ हरि पाइआ बलिराम जीउ।
गुरमुखि मिलिआ सुभाइ हरि मनि तनि मीठा लाइआ बलिराम जीउ।
हरि मीठा लाइआ मेरे प्रभु भाइआ अनदिनु हरि लिव लाई।
मन चिंदिआ फलु पाइआ सुआमी हरि नामि वजी वधाई ॥
हरि प्रभि ठाकुर काजु रचाइआ धनि हिरदै नामु विगासी।
जनु नानक बोलै चउथी लावै हरि पाइआ प्रभु अविनासी ॥"

आज तक तभी से सिक्खों में इन लावां को पढ़कर शादी की रस्म पूरी की जाती है।

इस तरह शिष्य समूह का आम लोगों से पृथक समाज स्थापन करने में गुरु रामदास जी साहब ने भिन्न सामाजिक प्रथा डालने की ओर कदम उठाया। हम देखते हैं गुरु नानकदेव जी ने अपने खयालातों का जो बिरवा रोपा था। उसे उनका प्रत्येक अनुवर्ती गुरु अपने कर्तव्य और तप का जल देकर पुष्ट करता रहा। गुरु नानक जी के सिद्धान्तों को ज्यों-ज्यों अमल में लाया जा रहा था; त्यों ही त्यों शिष्य वर्ग एक समाज का रूप पकड़ता गया।[1] गुरु अंगददेव जी ने नामकरण संस्कार के समय कड़ाह प्रसाद की प्रथा डालकर उस विधि मे कुछ सशोधन किया था। गुरु रामदास जी ने वैवाहिक क्रिया में संशोधन कर दिया और तीर्थ स्थल स्वतन्त्र गुरु अमरदास जी महाराज ने बना ही दिये थे। धर्म ग्रन्थों का स्थान गुरु वाणियां ले रही थीं। कथा भागवत के स्थान पर गुरुओं की जन्म साखियाँ अवस्थिति हो रही थीं। इन सब बातों को जब हम बारीकी से पढ़ते हैं तो पता चलता है कि शिष्यों का समूह शनैः शनैः एक पृथक सम्प्रदाय के रूप मे परिणित होता जा रहा था और प्रत्येक गुरु उसे बराबर आगे बढ़ाने मे अपनी सामर्थ्य को प्रदर्शित कर रहे थे। सात वर्ष के छोटे से अर्से मे गुरु रामदासजी भी सिख समाज को काफी आगे बढ़ा गये और अपनी अनोखी प्रतिमा से एक नवीन बल और संगठन का अमृत घूंट इस समुदाय को पिला गये।

गुरु रामदास जी के अन्य कार्यों मे अपने शिष्यों पर गुरु नानकदेव जी द्वारा प्रचारित धर्म को शक्ति के साथ पालन करने की ओर बार-बार ध्यान दिलाना और तीर्थों की ओर से उनका ध्यान मोड कर अपनी वैयक्तिक उन्नति करने की ओर लगाना आदि अनेकों महत्वपूर्ण कार्य हैं।

उपदेश देते समय बहुधा समयों पर गुरु रामदास जी वाणियों मे अपने भावों को प्रकट किया करते थे। जो सहज ही श्रोता के दिल पर अपना असर डालती थीं। यहाँ हम उनकी अनेकों सुमधुर वाणियों में से कुछ नमूने के तौर पर पेश करते हैं :—

माझ— आवहु भैणे तुसी मिलहु पिआरी आ।
जो मेरा प्रीतमु दसे तिस कै हउवारिआ॥
मिलि सत सगति लधा हरि सजणु हउ सतगुरि विटहु घुमाइयाजीउ।
जह तह देखा तह तह स्वामी। तू घटि घटि रविआ अंतर जामी।
गुरि पूरै हरि नालि दिखालिआ हउ सतिगुर विटहु सदवारिआजीउ॥२॥
एको पवणु माटी सम एकाजोति सवाइआ।
सभ इका जोति वरतै भिन भिन नर लई किसै दी रलाइआ॥
गुर परसादी इकु न दरीआइआ हउ सति गुर विटहु वताइआ जीउ॥३॥
जनु नानकु बोलै अम्रितु वाणी।
गुर सिखां कै मनि पिआरी भाणी॥
उपदेसु करै गुरु सति गुरु पूरा गुरु सतिगुरु पर उपकारि आजीउ॥४॥

सलोक— गुर सतगुर का जो सिख अखाये सो भलके उठि हरि नामु धिआवै।
उदम करै भल के पर भाती इसनान करे अमृतसर नावै॥

१ गुरु के लंगर ने समाज में देर से चला आ रहा जाति भेद मिटाने और सिख समाज को संगठित करने में बड़ा काम किया था।

उपदेस गुरु हरि हरि जप जापै सभ किलविख पाप दोख लहि जावै ।
फिर चड़ै दिवस गुरबाणी गावै बहदिआं उठदिआ हरिनाम धिआवै ।
जो सास गिरास धिआए मेरा हरि हरि सो गुरसिख गुरु मन भावै ।
जन नानक धूड़ मंगै तिस गुरसिख की जो आप जपै अवरह नाम जपावै ॥

गौरी वैरागिन— कंचन नारी महि जीउ लुभतु है मोहु मीठा माइआ ॥
घर मंदर घोड़े खुसी मनु अन रसि लाइआ ॥
हरि प्रभु चितिन आवई किउ छूटा मेरे हरि राइआ ॥
मेरे राम इहि नीच करम हरि मेरे
गुणदाता हरि हरि दइआलु करि किरपा बखसि अवगण सभि मेरे ।
(रहाउ) किछु रूप नहीं किछु जाति नाहीं किछु ढगुन मेरा ।
किआ मुहु लै बोलह गुण बिहून नाम जपिआ तेरा ।
हम पापी संग गुर उबरे पुंनु सति गुर केरा ।
सभजीउ पिंड मुखु नकु दीआ वरतण कउ पाणी
अंनु खाणा कपड़ु पैनणु दीआ रस आने भोगाणी
जिन दीए सुचितन आव ही पसू हउ करि जाणी ।
सभु कीता तेरा वरतदा तूं अंतरजामी
हम जंत विचारे किआ करेह सभु खेलु तुम सुआमी ।
जन नानकु हाटि विहा झिआ हरि गुलम गुलामी ।"

गुरु रामदास जी साहब की इन वाणियों में यद्यपि पंजाबी भाषा का पुट है फिर भी कितनी मधुर और सरल हैं। इसी प्रकार इनकी अनेकों वाणिया हैं जिनका रसास्वादन आदि ग्रन्थ साहब के पाठ से प्राप्त हो सकता है।

अमृतसर के संस्थापक गुरु रामदास जी साहब अंतिम दिनों में गोविन्दवाल ही चले गये थे। और वहीं इस शरीर को छोड़कर मुक्तिधाम का मार्ग लिया। वह दिन संवत १६३८ विक्रमी के श्रावण महीने का ३ शुक्रवार था। उस समय वहाँ संगत आई हुई थी। आपने देह त्यागते समय कहा था कि मेरी समाधि पर कोई स्थान न बनाना किन्तु प्रेम और श्रद्धा के वशी भूत होकर शिष्यों ने गुरु अमरदास जी के देहरे से थोड़ी दूरी पर आपका भी देहरा बना दिया। जिसे व्यास नदी गुरु जी की इच्छापूर्ति करने के लिये वहां ले गई।

परमधाम

सातवाँ अध्याय

गुरु अर्जुनदेव जी की जीवन गाथा

गुरु अर्जुनदेव जी साहब का जन्म वैसाख शुक्ला सप्तमी मंगलवार संवत १६२० विक्रमी में हुआ था यहाँ यह बताने की तो आवश्यकता रही नहीं है कि उनके मां बाप का क्या नाम था, तथा वे किस हैसियत के आदमी थे। गुरु रामदास जी साहब जैसा महापुरुष जिसका पिता हो और बीबी भानी जैसी महत्वाकाक्षाणी जिस की मा हो वह बचपन से ही कितना सुयोग्य और महान हो सकता है इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। हां, कभी अपवाद भी हो जाता है जैसाकि हम पृथ्वीचन्द जी के लिये कह सकते हैं किन्तु अपवाद अपवाद ही है। आम उसूल तो यही है कि हंस के बच्चे हस और सिंह के सिंह ही होते है।

आरम्भिक परिचय

गुरु अर्जुनदेव जी के दो विवाह हुये थे। पहला संवत १६३२ वि. मे चन्दनदास खत्री की लडकी रामदेवी जी से और दूसरा इनके मरने पर १६४६ वि मे कृष्णचन्द्र की लड़की गंगा से कृष्णचन्द्र मिलौर के पास महू में रहते थे।

गुरु अर्जुनदेव जी ने अपने गुरु रामदास जी साहब की सेवा केवल पिता जानकर ही नहीं की थी किन्तु साक्षात नानकदेव जी का स्वरूप जानकर की थी। कोई भी शिष्य जितना प्यार और आदर अपने गुरु के प्रति प्रदर्शित कर सकता है उसमे आपने तनक भी कसर न रक्खी थी। सेवा के अलावा गुरु वाणियों के पढने और उनके रहस्य को पूर्ण रूप जान लेने मे आपने खूब मन लगाया था। गुरु गाद्दी मिलने से पहिले से ही आपकी विलक्षण बुद्धि थी। आपको जब आपके पिता जी ने लाहौर एक शादी में भेज दिया और एक लंबे अर्से तक नहीं बुलाया तब आपने जो पत्र अपने पिता जी को लिखा उस के साथही आपने जो वाणियां लिखी थीं, वह प्रेम मे सराबोर कर देने और मन को मोह लेनी वाली है।

आपके बालकपन की कई मनोहर कथाये हैं उनमें एक यहाँ देना उचित समझते है। अपने दादा गुरु अमरदास जी के समय में हँसते खेलते और किलकते हुये गुरुजी की गद्दी पर जाकर बैठ गये और उसी प्रकार पदमासन लगा लिया जैसे गुरु जी लगाते थे। गुरु अमरदास जी ने उस समय उनकी सूरत की ओर देखा तो चेहरे पर शांति और नूर की वर्षा सी होती देख पडी उन्होंने बड़े प्रेम और आह्लाद से कहा "बेटे यह स्थान तुम्हें तुम्हारे पिता के बाद प्राप्त होगा।"

संवत् १६३८ में आपको गुरुआई मिल गई थी किन्तु पिता जी के परमधाम के बाद पृथ्वीचन्द

शहीद गुरु



श्री अर्जुनदेव जी



श्री गुरु रामदास जी

आप से [illegible] नहीं कर सके। [illegible] ने तो कोई आन्दोलनात्मक विरोध किया नहीं था।

इतिहास से इस का पता नहीं चलता कि आपको शिक्षा दिलाने का क्या प्रबंध किया गया था? किन्तु इसमें संदेह नहीं कि आप अपने समय के एक उद्भट विद्वान् थे। होनहार तो आप बालकपन से ही थे। आपकी प्रतिभा को देखकर गुरु अमरदास जी ने कहा था—"दोहता बाणी का बोहथा।" अर्थात् मेरा यह दौहित्र [illegible] वाणी का प्रकाश करेगा। आगे चलकर हुआ भी यही। उन्होंने अत्यधिक वाणी की रचना की और साथ ही पिछले गुरुओं की वाणी का भी संग्रह किया। इस पर उन्होंने अपने नाना गुरु अमरदास जी के [illegible] पूरा करके दिखा दिया।

यों तो देश की हालत [illegible] से खराब होती चली आ रही थी किन्तु आपके समय तक और भी खराब हो चुकी थी। [illegible] का सबसे बड़ा शासक मुगलसम्राट् बादशाह जहांगीर था। वह [illegible] और आराम पसन्द आदमी था। हुकूमत का काम उसकी परम सुन्दरी ईरानी बीबी नूरजहाँ करती थी। [illegible] उन लोगों की तक लग रही थी जो शासकों के कान भरा करते हैं और दूसरों से अपने [illegible] का बदला लेने के लिये शासकों को उभारा करते हैं।

ऐसे विकट समय में भी आपने [illegible] किये जिससे सिख धर्म का पौधा पुष्ट होकर लहर-लहर लहराने लगा। श्री गुरु ग्रंथ साहब की रचना आपके महान कामों में से एक सर्वोपरि काम है।

[illegible] एक तो यह कि आपके पास देश के [illegible] रहता था। दूसरे यह कि आपने उस समय के भारत में प्रचलित अनेकों धर्मों का [illegible] किया था, अथवा उन धर्मों के प्रतिनिधियों का आपके पास काफी आना-जाना होता था।

आपने हिन्दू शास्त्र और पुराणों का भी पूरा अध्ययन किया था ऐसा आपकी वाणियों से जान पड़ता है क्योंकि आपके शब्दों में [illegible], वामन, हरिनाकुश, मान्धाता और ध्रुव, प्रह्लाद की कथाओं के अनेकों हवालों का प्रकाश [illegible]। हरिभजन की ओर लोगों को आकर्षित करने के लिये आपने अनेकों हरिभक्तों के उदाहरण [illegible] जब गज, गीध, अजामिल जैसे पापी हरिभजन से तर गये तब [illegible]। सारांश यह है कि भक्ति की ओर प्रवृत्ति करने के लिये आपने [illegible] किये थे। भक्ति सम्बन्धी आपकी रचनायें हैं भी बड़ी ही मनोहर। वाणी रचना की आपकी प्रवृत्ति बालपन से ही थी। 'बालपन का रचा' आपका यह पद सिखों में बड़ी श्रद्धा से पढ़ा जाता है।

"मेरा मन लोचे गुरु दरसन ताईं।"

विधि की गति को पुराने ऋषि-मुनियों ने बड़ा विचित्र बताया है। अपने कथन की साक्षी में उन्होंने कहा है। जिस जल में कमल पैदा होते हैं उसमें कीच भी होती है। अग्नि में से प्रकाश के साथ धुँआ भी होता है। समुद्र में जहाँ मोती हैं वहाँ शंख भी हैं। गुलाब में फूलों के साथ काँटे भी हैं। यही गति गुरु अर्जुनदेव जी के यहाँ भी चरितार्थ थी। गुरु रामदास जी ने जहाँ गुरु अर्जुनदेव जैसे विद्वान, महामना और निस्पृह पुत्र को जन्म दिया था वहाँ उन्हीं के घर में पृथ्वीचन्द जी जैसे मनमुख, स्वार्थ-प्रिय और गृह-कलह को पसंद करने वाले पुत्र को भी जन्म मिला था। इसे चाहे पूर्व संस्कारों का योग कहें चाहे परिस्थितियों का समावेश मानें।

पृथ्वीचन्द जी शांत नहीं रहे। उन्होंने इनका विरोध करना आरम्भ कर दिया। संपत्ति के नाम पर तो उसने इनके लिये कुछ भी न छोड़ा था। किन्तु फिर भी उसे संतोष नहीं हुआ। लंगर के समय बाहर से आये हुये और परसाद चखने वालों से भेंट भी वही वसूल करता रहा। इसके बाद उसने अलग अपने शिष्य बनाने आरम्भ किये और कुछ तालाब भी खुदवाये। यह सब होता रहा किन्तु गुरु अर्जुनदेव जी अपनी ओर से चुप रहे। उन्होंने कोई प्रतिशोध नहीं किया।

पातशाही मिलने पर

कुछ समय के बाद गुरु अमरदास जी साहब के भतीजे बाबा गुरदास जी गुरु अर्जुनदेव जी के दर्शनार्थ आगरा से वापिस आये। वे लंगर के प्रसाद को देखकर बड़े हैरान हुये। उन्होंने पूछा भी जिस लंगर में खीर, हलुआ और बढ़िया से बढ़िया पदार्थ बनते थे उसमें सूखी रोटी आज क्यों बनती है। गुरु अर्जुनदेव जी ने तो कोई जवाब नहीं दिया किन्तु भाई भानी जी ने बता दिया कि यह हालत पृथ्वीचन्द के विद्रोह से हो रही है। इस बात को सुनकर भाई गुरदास जी ने पहले गुरु अर्जुनदेव को ही इस बात के लिये तैयार करना चाहा कि वे पृथ्वीचन्द के इस विरोध का प्रबन्ध करें किन्तु उनके यह कहने पर कि गुरु नानकदेव जी का परम प्रताप आप ही कोई मार्ग निकाल देगा भाई गुरदास जी ने लंगर का चार्ज खुद सभाला और उन्होंने सिखों से भी कह दिया कि भेंट में आने वाला रुपया सदैव लंगर पर खर्च हुआ है। किसी के घर में जमा करने के लिये नहीं। इस तरह थोड़े ही समय में गुरदासजी ने बाबा बुड्ढा की सहायता से लंगर के काम को फिर वही उन्नति दे दी क्योंकि सिखों ने भी गुरदासजी की बात को गाँठ बाँध लिया था।

इस तरह एक ओर से थोड़ी सी फुरसत मिलने पर गुरु जी ने हरिमन्दिर बनाने का कार्य प्रारंभ किया। भाई गुरदास, बुल्ला, माणा, आदि सभी प्रसिद्ध शिष्यों ने खुद अपने हाथ से काम करना आरम्भ किया। जब हरि मन्दिर बनने की चर्चा फैली तो बाहर से आकर सिख उस कार्य में सहयोग देने लगे। इतिहास साक्षी है कि मन्दिर के बनाने में सिखों ने इतना उत्साह प्रकट किया कि काबुल, कंधार और सिंध तक से शिष्य लोग आये और मन्दिर बनाने में सहायता दी। मन्दिर की सुन्दर पौड़ियों का नाम भी हरि की पैड़ी रक्खा गया। अमृतसर का यह हरि मन्दिर सिखों ने उसी रूप में अपनाया—जिस रूप में उत्तर भारत के समस्त हिन्दू हरिद्वार को अपनाते हैं। श्री गंगा जी को महात्म्य हजारों वर्ष से दिया जा चुका था उसका स्थान अब अमृतसर (तड़ाग) ने और हरिद्वार का स्थान हरि मन्दिर ने तथा हरिद्वार के सुन्दर गङ्गा घाट के स्थान पर उसी नाम से अभिहित होने वाली यह हरि की पैड़ी थीं। यह कहना न होगा कि अमृतसर के तीर्थ ने उत्तर भारत में वही स्थान प्राप्त कर लिया जो हरिद्वार को प्राप्त था और यह महान् तीर्थ सिखों ही नहीं किन्तु पंजाब के समस्त हिन्दुओं की श्रद्धा का केन्द्र बन गया।

हरि मंदिर

सिख लेखकों ने लिखा है कि इस मन्दिर के बन जाने के बाद उद्घाटनोत्सव पर गुरुजी ने इस प्रकार अपने हृदयोद्गार प्रकट किये थे।

"अबिचलु नगरु गोविन्द गुरु[1] का नाम जपत सुख पाइआ राम।
मन इछे सई फल पाइ करतै आप वसाइआ राम॥
करतै आप बसाइया सरब सुख पाइआ पुतभाई सिख बिग

१. यहाँ गोविन्द गुरु से अभिप्राय परमात्मा से है।—लेखक

"गुरु गावहि पूरण परमेसुर कारजु आइया रासे ।
प्रभु आप सुआमी आपे राखा आपि पिता आप माइया ।
कहु नानक सतगुर बलिहारी जिनि सहि थाव सुहाइया ॥"

इसी प्रकार की और भी सुन्दर वाणियां हैं। जो श्री ग्रन्थ साहब में दर्ज हैं।

इस मन्दिर के सम्बन्ध में हम यह और कहना चाहते हैं कि सिख संगठन के लिये हरि मन्दिर की रचना का आयोजन गुरु अर्जुनदेव जी साहब के कामों में उतना ही ऊंचा स्थान रखता है। जितना गुरु अमरदास जी साहब द्वारा बावली साहब और गुरु रामदास जी साहब द्वारा अमृतसर (सरोवर) की स्थापना के कार्य। इस पवित्र मन्दिर की रक्षा के लिये आगे की सदियों में सिखों ने जो आत्मोत्सर्ग किया था उसका वर्णन आगे के पृष्ठों में प्रसंगानुसार किया जायगा।

इस समय गुरु अर्जुनदेव का यश चारों ओर फैल रहा था। सभी श्रेणियों के लोग उनके चरणों में आकर मत्था टेकते थे।

सिखों की संख्या इस समय बाढ़ के पानी की तरह बढ़ रही थी किन्तु गुरु अर्जुनदेव जी उन्हें पक्का सिख बनाने की ओर से भी लापरवाह नहीं थे। किसी को सच्चा सिख और प्रचारक बनाने से पहले उसकी परीक्षा भी कर लेते थे। इस प्रकार के परीक्षित सिखों में से भाई मंझा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। जब उसने गुरु जी से सिक्खी का सार्टीफिकेट (कोई कागज नहीं किन्तु आशीर्वाद) चाहा तो गुरु जी ने कहा सिक्खी प्राप्त करना कोई योंही खेल नहीं है। वह कुछ दिन रह करके अपने गांव चला गया। उधर लोगों में सिखधर्म की महिमा सुना कर गुरु सेवा के इरादे से फिर लौटा और कठिन से कठिन काम को खुद करने लगा। एक दिन मंझा जब लकड़ी लेकर आ रहा था तो आंधी आगई और वह एक अंधकूप में गिर पड़ा। किन्तु पानी कम होने की वजह से डूबा नहीं। सिर पर लकड़ी थीं बोझ से मंझा दबा जा रहा था किन्तु उसने गट्ठर को नहीं पटका और उस समय तक बोझ मरता रहा जब तक कि खबर मिलने पर गुरुजी और दूसरे सिखों ने उसे निकाल न लिया। निकलने से पहले उसने कहा, मेरे सिर पर लकड़ी है मैंने इन्हें इसलिये नहीं भीगने दिया है कि लंगर की चीज है। गुरु जी उसके इस प्रकार के प्रेम से बड़े खुश हुये और उसे सच्चा भक्त समझ कर सिक्खी बख्शी।

कनिंघम ने गुरु अर्जुनदेव जी के लिए लिखा है कि गुरु नानक के अभिमत को ज्यों का त्यों पालन करने-कराने पर उन्होंने बड़ा जोर दिया"। बात है भी ऐसी ही। एक दिन उनसे कुछ सिखों ने पूछा कि गुरु जी ग्रहों के सम्बन्ध में आप हमें क्या नसीहत देते हैं। इन्हें मानना चाहिये या नहीं। गुरु अर्जुनदेव जी ने बिल्कुल गुरु नानकदेव जी की भाँति जवाब दिया —

"सुख सहज आनन्द घणा हरि कीरतम गुण गाउ ।
ग्रह निवारे सति गुरु दे आपण नाउ ॥१॥
बलिहारी गुरु आपणे सदसद बलि जाउ ।
गुरु विटहुँ हउँ वारिआ जिस मिल सच सुआइ ॥२॥
सगुन अप सगुन तिस कउ लगहि जिस चीतन आवै ।
तिस जम नेड़ै न आवई जेहरि प्रभु भावै ॥३॥
पुन्न दान जप तप जिते सब ऊपर नाम ।
हरि हरि रसना जो जपै तिस पूरन काम ॥४॥"

कुछ दिन के बाद गुरु अर्जुनदेव जी ने एक दूसरा सरोवर बनवाया। जो सतोपसर के नाम स मशहूर है। सतोख नाम का एक अरोडा गुरुओं का भक्त था उसने सौ मुहरे इस सरवर के बनवाने के लिये दी थीं। इसलिये उसी के नाम पर इसका नाम रखा गया। इस सतोप्सर पर भी मेला लगना आरम्भ हो गया और उस इलाके की श्रद्धा को बढ़ाने में सहायक हुआ।

संतोपसर

सुयोग्य सिखो ने गुरु अर्जुनदेव जी की कीर्ति को दूर दूर और छोटे से छोटे आदमी से लेकर राजा और रईसों तक पहुँचाया। मडी के राजा हरिसैन ने भाइ कल्याण से ही प्रथम बार गुरुजी का प्रताप सुना था इसलिये गुरुजी के दर्शन करने की उसकी इन्छा हुई और वह गुरुजी के दर्शन करने के लिये अमृतसर हाजिर हुआ।

जिस समय मंडी नरेश हरिसैन गुरुजी के दर्शनों को पहुँचा उस समय वहाँ "ओंकार" का पाठ हो रहा था। पाठ समाप्त होने पर राजा गुरुजी से मिला। उसने भाग्य सम्बन्धी कुछ प्रश्न किये। जिनका गुरुजी ने संतोषजनक उत्तर दिया।

अमृतसर और सतोखसर के सरोवरों के बाद गुरुजी ने तरनतारन स्थान पर एक सरोवर और खुदाया तथा एक नगर भी बसाया। पहले उस स्थान पर कोई नगर न था। हाँ ग्राम पास थे। वहाँ पर जल कष्ट भी बहुत था। लोगो ने कई बार उनकी सेवा मे हाजिर होकर अर्ज की थी। अत सवत् १६४७ के वैसाख मे बस्ती आबाद की गई और सवन् १६४८ मे तालाब को पक्का करने के लिये इटे पकाई गई किन्तु उन्हे यहाँ का एक सरगना मुसलमान अमीरुद्दीन अपने मकानों के वास्ते उठवा ले गया। सिखों ने जब यह शिकायत गुरुजी से की तो उन्होंने कहा आप चिन्ता नहीं करे वह समय आरहा है जब आपके ही आदमियों से ऐसे लोगों के प्राण जायेंगे। वह दिन पजाब मे आया भी और तालाब की इटें भी वापिस हुईं। सवत् १८३७ मे सरदार बुधसिंह जाट फैजुलपुरिया ने उस महल को ढहवा दिया और सारी ईंटे तरनतारन के तालाब को पक्का करने के लिये भिजवा दी।

तरनतारन

इस पवित्र तीर्थ के लिये महाराज रणजीतसिंह और नौनिहालसिंह जी ने भी पूरी सहायता दी। यहाँ पर हर महीने बड़ा भारी मेला लगता है। यह तीर्थ एक प्रकार से सिखों का वृन्दावन है। जैसे वृन्दावन में यात्री और भक्त लोग बने ही रहते हैं तथा हर महीने की पूर्णमासी को परिक्रमा देते हैं। वैसे यहाँ भी सिखों का आवागमन बना ही रहता है।

जब से पृथ्वीचद के मोहन या मेहरबान नाम का लडका हुआ था। तब से पृथ्वीचंद इस आशा से चुप रहा कि मुझे न सही तो मेरे पुत्र को तो गुरुगद्दी मिल ही जायगी। संवत् १६४६ तक इस प्रकार गृह कलह बन्द सा रहा, सवत् १६४६ मे गुरु अर्जुनदेव जी की धर्मपत्नी रामदेवी जी का स्वर्गवास हो गया। वे नि सतान ही परलोक सिधारी थीं। अब पृथ्वीचंद को और भी संतोष हुआ किन्तु जब उन्होंने माता भानी जी के आग्रह से सवत् १६४७ में दूसरा ब्याह[1] कर लिया तो शनै शनै फिर गृह कलह बढ़ी। पृथ्वीचंद ने स्त्री को शात करने के लिये कहा कि अर्जुनदेव के सतान नहीं होगी और किसी दिन हमारे ही पुत्र को तो यह गुरुगद्दी मिल जायगी, किन्तु पृथ्वीचंद की यह आशा अधिक टिकाऊ न

१ गुरु अर्जुनदेव जी की शादी एक या दो हुई ? इस सम्बन्ध में इतिहासकारो में मतभेद है।

रही और कुछ ही दिन बाद उनकी स्त्री ने गुरुपत्नी गंगादेवी जी के गर्भवती होने के समाचार अपने पति को सुना दिये।[1] इसी घड़ी से गृह-कलह बढ़ने लगी और इसने यहाँ तक भयंकर रूप धारण किया कि गुरु अर्जुनदेव जी को अमृतसर छोड़ने के लिये उनकी माता भानी जी ने जोरदार सलाह दी। और इन्होंने अमृतसर को छोड़ कर कुछ दिन के लिये तरनतारन में आराम किया।

यहाँ संवत् १६५२ के आषाढ़ महीने में उनके घर एक पुत्र रत्न हुआ जिसका शुभ नाम हरिगोविंद रक्खा गया। इस खुशी के साथ ही दूसरा खुशी का समाचार यह मिला कि वजीरखां की अदालत में जायदाद बँटवारे का जो दावा पृथ्वीचन्द ने किया था वह खारिज हो गया है।

पृथ्वीचन्द अपने कुत्सित इरादों से अभी तक बाज नहीं आ रहा था। उसने शोभा दाई को तैयार किया कि वह गुरु के साहबजादे को विष दे दे। लोभ में आकर दाई ने स्तनों में विष लगा लिया और साहबजादे को पिलाने का मौका देखने लगी किन्तु सूक्ष्म छिद्रों में होकर विष दाई के शरीर में रम गया। उसके हाथ पैर लड़खड़ाने लगे और थोड़े समय में ही मर गई। किन्तु उसके मरते मरते पृथ्वीचन्द की इस करतूत का पता चल गया। यहां यह ध्यान रहे कि इन दिनों गुरु अर्जुनदेव जी अमृतसर ही रहते थे क्योंकि सिक्ख लोग उन्हें वापिस ले आये थे।

इस प्रकार के कृत्यों से शिष्य लोग बहुत बिगड़े और पृथ्वीचंद को बहुत बुरा भला कहने लगे। परिस्थिति को एकदम अपने विरुद्ध जानकर पृथ्वीचन्द अमृतसर को छोड़ गया और उसने अपनी ससुराल हेहर में जाकर अपने रहने के लिये मकान बना लिये। वहाँ उसने अमृतसर के ढंग का एक तालाब भी बनाने की कोशिश की और अपना पथ भी चलाना चाहा किन्तु सफलता नहीं मिली।

यात्रा

संवत १६५६ में गुरुजी ने लाहौर की यात्रा की। वहाँ के सतसंगी बहुत प्रार्थना कर रहे थे लाहौर पहुँचकर अपने उपदेशोंसे आपने हजारों आदमियों को संतुष्ट किया। उनके उपदेशसे पठान भी संतुष्ट हुए। यहाँ पर गुरुजी ने अपने एक शिष्य के रुपये से डब्बी बाजार में एक बावली बनवाई और एक धर्मस्थान भी। आठ महीने तक बराबर गुरुजी लाहौर में रहे, इन दिनों में अनेकों लोगों को अपना शिष्य बनाया।

लाहौर से चलकर गुरुजी गुरु नानकदेव की जन्मभूमि ननकाना साहब पहुँचे। वहाँ लोगों को उपदेश और दर्शन देकर रावी किनारे के मदर नामक गाँव में जा पहुँचे जहाँ भाई गुल्दारा नामक संत ने उनकी खूब सेवा की। यहां से चलकर भंबर गाँव में जाकर विराजे। यहाँ एक खत्री साहूकार कुष्ठी था उसकी प्रार्थना पर उसे आपने बताया कि लाल चन्दन शहद मिलाकर खाने से तेरा रोग चला जायगा। दो महीने में उसका रोग चला गया। यहां से चलकर गुरुजी चूनिया में चौधरी चूहड़मल के यहाँ जाकर ठहरे। यह जाट जमींदार उस समय कई गाँवों का मालगुजार था, गुरुजी की इसने खूब आवभगत की। यहां भी अनेकों लोगों को आपने रोग निवारक उपाय बतलाये और इसी प्रकार अनेक गाँवों में उपदेश देते हुये तथा दुखियों के कष्ट दूर करते हुये सवत् १६५५ वि० वैसाख महीने में अमृतसर वापस आ गये।

कभी-कभी गुरु के शिष्यों से अन्य सम्प्रदायों के लोगों की मुठभेड़ भी हो जाती थी। किन्तु वाद-

१ बाबा बुड्ढा का आशीर्वाद था कि गंगादेवी सतानवती होगी।

विवाद मे वे पूरे उतरते थे। ऐसीही एक घटना इस प्रकार है। "महेशनाथ नाम का योगी अमृतसर के इलाके मे आ निकला और गरुड़शकर नामक गॉव मे ढिंढोरा पिटवा दिया कि मुझे महादेवजी ने स्वप्न मे कहा है कि जो कोई तेरा भक्त बनेगा उसे एक वर्ष का कैलाशवास मिलेगा। सैकडों लोग उसके चरनों में सिर झुकाने और भेंट चढ़ाने लगे किन्तु भाई तिलका उसके पास तक नहीं गये। और उलटा यह किया कि जब जोगी खुद ही उनके घर पर आया तो भाई जी घर मे घुस गये और किवाड़ लगा लीं। जोगी ने पूछा तू हमारे दर्शन क्यों नहीं करता है तो तिलका ने जवाब दिया तुम्हारे दर्शन मे घाटा है, लाभ नहीं। मैं वह काम कर रहा हूँ, जिससे सीधा मुक्ति धाम को चला जाऊँ और मेरे गुरु ने जो मुझे रास्ता बताया है उस पर मुझे विश्वास है। मेरा मनोरथ पूरा होगा। तुम्हारे दर्शन करने से एक वर्ष मुझे व्यर्थ ही कैलाश मे भटकना पड़ेगा, जोगी तिलका की इस प्रकार की तर्क-युक्त वार्ता सुनकर बड़ा स्तम्भित हुआ। उसने कहा अच्छा चल तू अपने उस गुरु के पास मुझे ले चल, जिसका तू चेला है। कहा जाता है कि गुरु अर्जुनदेव जी के पास जाकर और उनकी शिक्षाओं को सुनकर —जो उन्होंने अहकार को छोड़ कर ईश-भक्ति मे लीन हो जाने के सम्बन्ध मे दी थीं—जोगी बड़ा प्रभावित हुआ और शिष्य बन गया।"

अमृतसर की महिमा बराबर फैलती जा रही थी और इसके यश ने बडे-बडे साधु महात्माओ तक को अपनी ओर आकर्षित किया था। बाबा श्रीचद जी भी जो उदासी वृत्ति के सत थे, संवत् १६५७ वि० में अमृतसर को देखने के लिये आये। गुरु साहब ने उनका खूब स्वागत सत्कार किया। महात्मा श्रीचद जी अमृतसर को और वहॉ की व्यवस्था को देख कर बडे प्रसन्न हुए।

श्रीचदजी का प्रसंग

सहस्र गॉव में सगतों का एक बड़ा जमघट हुआ गुरु अर्जुनदेव जी भी उसे देखते हुए बारठ गॉव में जहां कि श्री श्रीचद जी रहते थे पहुँचे। इन दिनों गुरु अर्जुनदेव जी ने एक बहुत सुन्दर और अद्भुत रचना की थी, जो सुखमनी साहब के नाम से मशहूर है। वह आपने श्रीचद जी को भी सुनाई जिसे सुनकर श्रीचद जी बहुत प्रसन्न हुए।

सुखमनी सा० की रचना

गुरुजी के इन प्रवास के दिनों मे पीछे पृथ्वीचंद ने एक और ऊधम किया और वह यह कि अपने दोस्त सुलाही खा मनसबदार को अमृतसर पर चढा लाया। माता गगाजी ने जब यह हाल देखा तो वे रथ पर सवार हो गुरु जी के पास रवाना हो गईं। इससे कोई झगड़ा नहीं हुआ।

गुरु जी के यात्रा से अमृतसर में वापस पहुँचने पर लाहौर का नायब वजीरखा उनकी सेवा में हाजिर हुआ। वह बड़ा धर्मप्रिय आदमी था, कहा जाता है कि लाहौर के दिल्ली दरवाजे के अन्दर जो मस्जिद है, वह इसी की बनवाई हुई है। यह गुरु रामदास जी साहब के समय से ही गुरु घराने का प्रेमी था। इस समय इसके जलोदर का रोग था। हजारो रुपये खर्च करने पर भी चगा न हो सका तो बड़ी आशाओं के साथ बेचारा गुरु जी की सेवा मे हाजिर हुआ। गुरु अर्जुनदेव जी उस समय दु ख भजनी नामक बेरी के पास थडे साहिब के ऊपर बैठे हुए थे। उन्होंने बजीरखा के प्रेम और दु ख से प्रभावित होकर बाबा बुड्ढे को बुलाया। कहा जाता है बाबा बुड्ढा ने उसकी पीठ पर गारे की भरी हुई टोकरी जोर से पटक दी। उसी से उसका मल छूट निकला और वह चंगा हो गया। मिट्टी से जलोदर के इलाज मे विश्वास रखने वाले लोग अवश्य ही बाबा बुड्ढा के इस चमत्कार को पढ़कर प्रसन्न होंगे। वजीरखॉ इस प्राणनाशक रोग से मुक्त होकर कई दिन अमृतसर

वजीरखॉ का प्रसग

रहा और गुरु जी के उपदेशों से लाभ उठाता रहा। 'सुखमनी' की प्रार्थना सुनते हुए वह आनन्द विभोर हो जाता था। अन्त जब विदा हुआ तो गुरु जी से प्रार्थना की कि महाराज मुझे ऐसा एक शिष्य दीजिये जो मेरे पास रह कर नित मुझे 'सुखमनी जी साहब' का पाठ सुनावे और कड़ाह प्रसाद बना लिया करे। गुरु जी ने उसकी इस प्रार्थना पर भागू नामक शिष्य को वजीरखां के साथ भेज दिया. कहा जाता है जीवन पर्यन्त वजीरखां सुखमनी साहब का नित प्रात पाठ सुनता रहा।

एक ओर जहां गुरुओं के प्रति इस प्रकार की गाढ़ी श्रद्धा लोगों में पैदा हो रही थी, दूसरी ओर कुछ लोग जलते भी थे। एक दिन एक ब्राह्मण ने कहा था देखो कलजुग में खत्री तो पूज्य बन गया है और ब्राह्मण जो सदा से वन्दनीय चले आये हैं, उनके सामने कोई सिर भी नहीं झुकाता है। इस पर गुरु जी ने हंसते हुए कहा था, तो क्या दम्भ के आगे भी सिर झुकाना चाहिये?

ग्रन्थ साहब की रचना

राज्य का आधार, कानून और धर्म का आधार, धर्म ग्रन्थ होता है। गुरु नानकदेव जी की वाणियां गुरु अंगददेव जी संग्रह करा गये थे किन्तु अन्य गुरुओं की वाणियां अभी तक संग्रह नहीं हुई थीं और गुरु नानक जी की भी जो वाणियां संग्रह थीं। वह उनकी जीवन घटनाओं के साथ साथ थीं। अतः सभी गुरुओं की वाणियों को एक ही स्थान पर संग्रह करने और ग्रन्थाकार बना देने की बड़ी जरूरत थी। गुरु अर्जुनदेव जी ने अपनी विलक्षण बुद्धि से इसी महान कार्य को जरा सा अवकाश झगड़ों से मिलते ही आरम्भ कर दिया।

इन्होंने देश देशान्तरों के परिचित और योग्य मित्रों के नाम आज्ञा पत्र जारी किये कि तुम लोगों के पास स्मृति में अथवा लेख रूप में जो भी गुरु शब्द हों वह या तो लिखकर भेज दो या यहाँ आकर लिखा जाओ। इस आज्ञा पत्र के जारी होने के बाद सैंकड़ों सिख गुरु जी की सेवा में हाजिर हुए कुछ लोग लिखी हुई वाणियाँ साथ भी लाये।

इस तरह से इस आरम्भिक कार्य्य को पूरा करके गुरु अर्जुनदेव जी ने ग्रन्थ बनाना आरम्भ किया। इस पवित्र काम के लिये इन्होंने अमृतसर तीर्थ से पूर्व दिशा में एक मील के फासले पर बेरियों के उद्यान में तम्बू तनाये।[1]

सिख समाज के लिये धार्मिक ग्रन्थ की आवश्यकता से प्रेरित होकर ही तो गुरु अर्जुनदेव जी ने ग्रन्थ साहब की रचना की थी किन्तु इसके भी सिवा एक दूसरा कारण ऐसा था कि गुरु वाणियों का संग्रह शीघ्र ही करना आवश्यक हो गया। बात यह थी कि पृथ्वीचन्द ने समानान्तर अपना समाज खड़ा कर लिया था और उसके पुत्र तथा अनुयाई अलग से वाणियों की रचना भी कर रहे थे। जिनमें नानक नाम का ही कर्त्ता लगाते थे। गुरु अर्जुनदेव जी के लिये यह आवश्यक हो गया कि वे अब तक के गुरुओं की वाणियों का एक ग्रन्थ में संग्रह करदें ताकि उनके सिद्धान्तों के विरुद्ध पृथ्वीचन्द जी या अन्य किसी की वाणियों से लोग सावधान हो जावें। (पृथ्वीचन्द जी की कुछ वाणियों का संग्रह सरदार गंडासिंह जी के पास मौजूद है।)

इस प्रकार ग्रन्थ साहब की रचना करके गुरु अर्जुनदेव जी ने न केवल एक कमी को पूरा किया बल्कि गुरु सिद्धान्तों में जो खिचड़ी पृथ्वीचन्द की रचनाओं से हो जाने की आशंका थी, उससे भी सदा के लिये दूर कर दिया।

१. श्री सुखमनी साहब जी की रचना भी यहीं हुई थी।

गुरु अर्जुनदेव ने इन दिनों एक काम यह और किया कि अपने शिष्यों पर नियमित रूप से भेट बांध दी। परमार्थ के काम ज्यों ज्यों बढ़ते है। त्यों त्यो धन की भी आवश्यकता होती है। अत. यह आवश्यक ही था कि शिष्यों पर उनकी सामर्थ्य के अनुसार कुछ भेट मुकर्रिर की जाय। भेंट की वसूली का काम मंजियों के अधिकारियों और मसन्दों के सुपुर्द किया यह भेट कोई कर न होकर सिखों द्वारा स्वतः निर्धारित की गई थी। और जिसे कि कोई भी मजीधर या मसन्द अपने लिये इस्तेमाल नहीं करके गुरु जी का माल समझ कर उनके पास पहुँचा देता था। इन दिनो गुरु जी का एक नया दुश्मन चन्दू और खड़ा हो गया जिसकी लडकी का सिक्का लेकर ब्राह्मण नाई लड़का ढूंढ़ते २ अमृतसर आ पहुँचे, उन्होंने गुरु जी के भी घर वार को देखा, जब दिल्ली लौट कर गये तो उन्होने सलाह दी कि गुरु अर्जुनदेव जी के शाहजादे श्री हरिगोविन्द सब प्रकार से आपकी लडकी के योग्य हैं। अभिमानी चन्दूशाह ने कहा "वैसे तो तुम मोरी की ईंट को चौवारे पर लगा रहे हो।" क्योकि कहाँ मैं दिल्लीश्वर का कृपापात्र चन्दूशाह और कहाँ भीख पर गुजर करने वाला अर्जुनदेव। किन्तु खैर जाओ उसके यहाँ ही कर आओ। यह खबर दिल्ली के शिष्यों ने गुरु जी के पास भी पहुँचा दी और लिख भेजा, ऐसे अभिमानी की लड़की की शादी को गुरु जी हरगिज स्वीकार न करें। स्वाभिमानी गुरु अर्जुनदेव जी साहब ने नाई ब्राह्मणों को वापिस कर दिया।

फिर कलह

एक समय जब कि ग्रन्थ साहब की रचना हो रही थी बादशाह अकबर के पास कुछ लोगों ने शिकायत की कि अर्जुनदेव एक ऐसा ग्रन्थ रच रहे हैं जिसमें इस्लाम और हिन्दू धर्म की तौहीन है। बादशाह ने इस बात की जॉच के लिये गुरु अर्जुनदेव जी के पास आदमी भेजा कि वे ग्रन्थ साहब समेत मेरे पास पधारे। गुरु जी स्वयम तो नहीं गये किन्तु बाबा बुड्ढा और भाई गुरुदास जी को ग्रन्थ साहब लेकर भेज दिया। बादशाह ने बड़ी इज्जत के साथ उन लागों को अपने पास बिठाया और कहा आप मुझे इसे पढ़कर सुनावें। बाबा बुड्ढे ने खोल कर पढ़ना शुरू किया —

ग्रन्थ साहब की शिकायत

"खाक नूर करदन आलम दुनियां।
आसमान जिमीं दस्त आब पैदायश खुदा॥
बन्दा चश्म दीद न फना।
दुनियां मुरदार खुरदनी गाफिल हुवा॥
गयवान हयवान हराम कशतनी मुरदार बखारोहि
दिल कबज कबजा कादरो दोजख सजाइ॥
दिली नियामत बिरादरा दरबार मिलक खानाइ।
जब अजराईल, बसतनी तब चिकारे विदाइ॥
हवाल मालूम करद पाक अलाह।
बग्गो नामक अरदासि पेसि दरवेश बन्दाह॥"

इस पर बादशाह ने ग्रन्थ साहब के कुछ पन्ने खुद पलट कर एक जगह उंगली रखकर कहा अच्छा यहाँ से पढ़िये। बाबा बुड्ढे ने फिर पढ़ा .—

"अलह अगम खुदाई बन्दे, छोड खयाल दुनिया के धधे।
होइपैं खाक फकीर मुसाफर, इहु दरवेसु कबूल दरा॥ १॥

"कहु निवाज़ फकीर मुगला, मन मा मारि निवारिहु आसा ।
देह मसीत मनु मौलाणा कलम खुदाई पाकु खरा ॥२॥"

मुगलों को इतने पर संतोष नहीं आया और कहा हम चाहते हैं किसी आदमी से पढ़वाया जाय जो सिक्ख न हो, हमारा तो अनुमान है कि इसमें इस्लाम और हिंदू धर्म की अवज्ञा के साथ ही बुत परस्ती भी है। बादशाह की आज्ञा से मुन्शी सर्वदयाल ने दो स्थलों पर पढ़ा। एक स्थल पर लिखा मिला —

"कोई बोलै राम राम कोई खुदाइ ।
कोई सेवै गुसाइआ कोई अलाहि ॥
कारन करन करीम, किरपा धारि रहीम ॥

दूसरे स्थल पर पढ़ा —

"घर में ठाकुर नजर न आवे, गल में पाहन लै लटकावे ।
भरमे भूला साकत फिरता, नीर बिरोलै खप खप मरता ॥
जिस पाहन को ठाकुर कहता, सो पाहन ले उसको डूबता ।
गुनहगार सो लून हरामी, पाहन नाव न पार गरामी ॥
गुर मिलि नानक ठाकुर जाता, जल थल पूरन पुरख बिधाता ॥

इन शब्दों को सुनकर बादशाह को दृढ़ निश्चय हो गया कि शिकायत करने वाले बिल्कुल झूठे हैं और यह ग्रंथ सद्ग्रन्थ है, अतः उसने ५१ अशर्फी ग्रन्थ साहब पर भेंट कीं। भाई बुड्ढे और गुरुदास को विदा किया। पंजाब से लौटते वक्त बादशाह गुरु साहब के दर्शनों को स्वयम गोइन्दवाल पहुँचा। और गुरुजी के स्वभाव और उपदेशों का उस पर ऐसा असर पड़ा कि उसने गुरुजी से साग्रह कहा कि महाराज मेरे लायक कोई खिदमत जरूर फरमाइये। इस पर गुरु जी ने कहा — हम अपने लिये तो कुछ नहीं चाहते किन्तु यहीं शाही फौजों के पड़ाव के समय वस्तुओं की अधिक खपत से लोगों की आमदनी अच्छी हो गई थी इसलिये उस पर टैक्स बढ़ा दिये गये थे। अब चूंकि शाही सेना यहाँ से जा चुकी है इसलिये उनकी आमदनी कम हो जाने के कारण बढ़ाये हुए टैक्सों को अदा कर सकने में असमर्थ हैं और जिसके कारण उन्हें दुखों का सामना करना पड़ रहा है। यदि उन बढ़े हुए टैक्सों को हटा दिया जाय तो लोगों का दुख दूर हो सकता है। बादशाह ने उनकी दयनीय आज्ञा को स्वीकार करके आमिलों को हुक्म कर दिया कि बढ़े हुए टैक्स हटा दिये जाँय।

राजद्रोह

बादशाह अकबर के बाद उसका लड़का सलीम जहाँगीर नाम धारण करके गद्दी पर बैठा। खुसरो कई अनिवार्य कारणों से अपने बाप जहाँगीर से नाराज़ हो कर विद्रोही हो गया।[1] बादशाह जहाँगीर को जब उसकी खबर लगी तो उसने एक ओर तो पंजाब के हाकिमों और जागीरदारों को उसके विद्रोह की सूचना दी दूसरी ओर खुद भी उसका पीछा करने की तैयारी की। "तुज़क जहाँगीरी" में खुद जहाँगीर ने बताया है कि मैंने अमुक तारीख को आगरा से कूच किया। अमुक तारीख को अमुक मुकाम पर पहुँचा। सन् १०१५ हिजरी की १७ वीं जीउल हज्जा को वह कर्नाल आ पहुँचा था। यह सन् जहाँगीर सन् का पहला वर्ष था। इसी सन् की २४ वीं

१. अपने लिए बादशाही का एलान किया।

फर्वरी को बादशाह के पास सूचना आई कि खुसरो लाहौर की ओर धावा करने की ग़र्ज से बढ़ रहा है। अत जहागीर ने अपने कुछ सरदार लाहौर भेज दिये । लाहौर में खुसरो ने हलकी सी लड़ाई की किन्तु उसे पता चला कि जहागीर भी यहीं आ रहा है। तब वह मय अपनी फौज के वहां से चल दिया किन्तु बाद में वह जहाँगीर के लश्कर द्वारा पकड लिया गया।

लाहौर में आकर जहाँगीर ने उसके साथियो को बुरी तरह से मरवा डाला।

जब वह लाहौर से चल रहा था उसके पास शिकायत हुई कि खुसरो को मदद देने वालों मे एक अर्जुनदेव भी है। जो गोइन्दवाल मे रहते हैं।[1]

गुरुजी गिरफ्तार किये गये और बादशाह ने यातनाये देकर मारने का हुक्म दिया। इसके बाद वह लाहौर से चला गया। गुरुजी को जो कष्ट दिये वे बड़े रोमाचकारी हैं उनके शरीर पर उबलते हुये पानी को डाला गया। गर्म तवों पर बिठाया गया। पर उन्होंने अपने धर्म की रक्षा के लिने सब कुछ बिना आह किये बर्दाश्त किया। उनके सारे शरीर में फफोले पड़ गये। यातनाये देने वाले इतने से ही संतुष्ट न हुए वे उन्हे और भी दुख देना चाहते थे अत रावी के किनारे ले जाकर उन्हे पानी मे डुबकियाँ दी गईं। जहाँ गुरु अर्जुन देव के प्राण इस शरीर को छोड़ गये।[2]

रावी के किनारे हजारों सिखों और हिन्दुओं ने गुरुजी की इस शहीदी को देखा। सबके हृदय दहल गये। गुरुजी का शव सिख लोगों ने लेकर किले के सामने सस्कार कर दिया। जहाँ उस स्मृति में आज एक विशाल गुरुद्वारा डेहरासाहब के नाम से बना हुआ है।

यह समाचार बिजली की भाँति सारे पंजाब में व्याप्त हो गया। सिख तिलमिला उठे।[3]

गुरु अर्जुनदेव जी के कार्यों पर प्रकाश

सिख समाज का निर्माण,बराबर होता जा रहा था और गुरु नानकदेव जी का प्रत्येक अनुवर्ती गुरु उसमें कुछ न कुछ ऐसे कार्य और साधन जोड देता था जो सिख समाज को पूर्णता का रूप देने में सहायक हो सके किन्तु अधिकाश इतिहासकारों का मत यही है कि सिख समाज का पहला निर्माता गुरु अर्जुनदेव ही था। कहने मे अशत सचाई है और वह यह कि गुरु अर्जुनदेव जी ने जो सविधान सिख समाज की रचना के लिये बनाया, उसमे कुछ कार्य तो बहुत ही विशिष्ट श्रेणी के हैं इन पृष्ठों में हम उन्हीं कार्यों का वर्णन करना चाहते हैं।

ग्रंथ-साहब की रचना

उनका एक अत्यन्त ही आवश्यक कार्य था ग्रंथ साहब की रचना का। भला जिस सम्प्रदाय के पास उसका धर्म ग्रन्थ न हो, वह कैसा धर्म और कैसी सम्प्रदाय। वैसे संसार मे ऐसे भी धर्म पंथ हैं जिनके पास कोई भी धर्म पुस्तक नहीं है किन्तु उनका कोई समान आचरण भी तो नहीं है।

१. कुछ सिख इतिहासकार लिखते हैं कि गोइदवाल के मुकाम से गुजरता हुआ खुसरो गुरु जी से मिला था, और हरि मन्दिर पर कुछ रुपये भी चढ़ाये थे।

२. सवत् १६६३ जेष्ठ सुदी ४।

३ मैकालिफ ने यद्यपि उसे महकमा रेवेन्यू का अफसर बताया है किन्तु निश्चित नही कहा जाता कि वह किस पद पर था।

अब तक सिख समाज गुरु नानकदेव जी महाराज की जन्म साखी पर अवलंबित था किन्तु उसके कथा भाग और उपदेश भाग दोनों सम्मिलित थे। जैसे संसार में ऐसे भी मजहब हैं जिनमें कथा भाग और उपदेश भाग दोनों ही होते हैं। बाइबिल, और कुरान ऐसे ही धर्म ग्रन्थों में से हैं। जिनमें उपदेश के साथ ही उन महापुरुषों के जीवन सम्बन्धी तथा अन्य ऐतिहासिक कथायें भी जुड़ी हुई हैं। अपने देश में पुराण भी इसी प्रकार के हैं। किन्तु भारत के प्राचीन धर्म पुस्तकों में प्रत्यक्ष रूप में कथा भाग कुछ भी नहीं है। और यदि है भी तब उदाहरण और प्रमाण स्वरूप है। वेद और उपनिषदें ऐसे ही धार्मिक ग्रन्थ हैं। गुरु अर्जुनदेव साहब भी जहां तक हम समझते हैं—सिख पंथ को केवल उपदेश भाग ही रहने देना चाहते थे—यही उनका निश्चित सा था। अतः उन्होंने "गुरु ग्रन्थ साहब" की रचना की। रचना का प्रकार यदि हम सम्पादन करना कहें तो और भी उपयुक्त होगा। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती समस्त गुरुओं की वाणियों[1] का संग्रह किया और अपनी रची हुई वाणियों को भी उसमें शामिल कर दिया।

उनके इस काम से सिक्ख समाज के सामने एक निश्चित रूप में उनका धार्मिक ग्रन्थ उपस्थित हो गया। इससे सब प्रचलित भाव, सभी पौराणिक ग्रन्थों से हटकर उनका दृष्टि बिन्दु इसी पवित्र ग्रंथ पर केन्द्रित होने लगा।

साथ ही समाज की पूर्णता के लिये गुरुद्वारों की जो आवश्यकता होती है। ग्रंथ साहब के बनने से वह 'मन्दिरों' के रूप में प्रकट होने लगे। और आगे चलकर कुछ काल बाद उन्होंने पुरोहितों का स्थान ले लिया। दूसरा काम था उनका अमृतसर (नगर) का निर्माण करना। यद्यपि इससे पहले बावली साहब का निर्माण हो चुका था किन्तु अमृतसर में कुछ और भी विशेषतायें थीं। यदि बावली साहब को हम कुरुक्षेत्र और अमृतसर जी को हरिद्वार का प्रतिनिधि कहें तो कोई भी हर्ज नहीं होगा।

अमृतसर के बाद तरनतारन और करतारपुर के सरोवर हैं। जिन्होंने सिख समुदाय में स्वधर्म भावना को पुष्ट करने में मदद पहुँचाई।

प्रत्येक धर्म के अनुयायी अपने २ धर्म को कई नींव या आधार शिला बनाया करते हैं। जो उसे बढ़ाने में भी सहायता देता है। इस्लाम धर्म को यदि इसके अरबों और पठानों की तलवार ने फैलने में मदद दी थी और बौद्ध व ईसाई धर्म को उनके आचार्यों की धैर्यशील सहनशीलता ने बढ़ाया था और ब्राह्मण धर्म की तरक्की उनकी विलक्षण बुद्धि के कारण हुई थी तो हम कहेंगे प्रारम्भिक काल में सिख-धर्म परोपकार की उत्कट भावना की भित्ति पर और उत्तर काल में महान बलिदानों के आधार पर फला फूला था। गुरु अर्जुनदेव जी के समय तक गुरुओं की परोपकार वृत्ति ने इसे उत्तेजन दिया। प्रायः जो कुछ उनके पास आता, उसे लंगर में गरीबों की सहायता में खर्च करना और खुद खेती कराके उससे गुजर करना तथा जगह-जगह धर्मशाला बावड़ी और सरोवर बनवाना, उनके महान कार्यों से लोग बलात उनकी ओर आकर्षित होते थे।

गुरु अर्जुनदेव जी ने एक तीसरा काम हरि मन्दिर और अमृतसर तथा तरनतारन आदि नगर बनवाकर किया। अब तक गुरु लोग जो स्थान बनवाते थे वह धर्मशाला कहलाते थे। जिनके एक भाग में गुरु और उनका परिवार, एक भाग में लंगर और एक भाग में प्रमुख शिष्यों का वासगृह होता था, जो एक हद तक पूर्ण सुविधाजनक स्थान नहीं कहा जा सकता था और जहाँ एक स्थान से उठकर गुरु लोग

१. कुछ लोगों का कहना है कि समस्त वाणियों का नहीं किन्तु खास-खास वाणियों का ही संग्रह किया गया।

दूसरे स्थान पर चले जाते थे। वहीं उनकी संगति भी चल निकलती थी। पहले स्थान का कोई विशेष महत्व न रहता था। हरि मंदिर के बनाने से गुरुओं का अमृतसर ही सबसे बड़ा गुरुद्वारा और स्थिर महास्थान बन गया। पूजा पाठ के लिये गुरुद्वारा ग्रहस्थ घर से अलग स्थान हो गया।

गुरु अर्जुनदेव जी का बनवाया हुआ यह हरि मंदिर अथवा स्वर्ण मंदिर आज भारत और भारत से बाहर देशों मे भी अद्भुत स्थानो मे गिना जाता है।

उस समय के रामदासपुर, अमृतसर और हरि मन्दिर के वृतान्तों को पढते हुए हमे प्रजातान्त्रिक लोगों की राजधानी वैशाली की याद आ जाती है। वहाँ के सात हजार, सात सौ, सात गृहपति राजा कहलाते थे। उस नगरी मे कोई भी भूखा नंगा और असमान हालत मे न था। उनका एक विशाल सभागार था। जिसमे वे इकट्ठे होकर अपने राज्य और समाज के लिये नियम बनाते थे। उनके हास्यप्रमोद और आमोद के लिये नगर के बाहर उपवन और उद्यान थे। उस नगर मे सभी लोग समृद्धिशाली सभी शिष्ट और सभी प्रसन्न चित्त वाले थे। यही सब कुछ, कुछ ही उलट फेर के बाद गुरु के चक अथवा रामदासपुरमे था। इससे सिखोंके बौद्धिक, आत्मिक और आर्थिक सभी प्रकारके विकासोंको प्रोत्साहन मिला।

इनके अलावा दो काम और भी थे जो गुरु अर्जुनदेव जी द्वारा ही प्रचारित हुये और जिन्होंने सिख समाज को पुष्ट और सगठित होने मे काफी मदद दी। शिष्य लोगों पर कोई नियमित लाग न थी। गुरु अर्जुनदेव जी ने आमदनी का कुछ अंश दान पुण्य मे देने के लिये सिखों को उत्साहित किया जिसे उन्होंने बड़े प्रेम से स्वीकार कर लिया। यह काम मसियों के प्रधानों एवं ममन्दों एवं विशिष्ट शिष्यों को सौंपा गया है।

इस प्रकार की सारी आमदनी उन्होंने परोपकार और दीन दुखियों की सेवा मे ही खर्च की। इस तरह इस साधन से भी सिख समाज की रचना मे कुछ कम सहायता नहीं मिली।

गुरु अर्जुनदेव जी ने शिष्यों को एक और प्रोत्साहन दिया, वह था घोड़ा आदि के व्यापार का। शिष्यों के गिरोह काबुल-कंधार तक जाकर घोड़े और दूसरी चीज खरीदते और उन्हे पंजाब दिल्ली और पटना तक बेचते। इस आयोजन से सिखों मे व्यापार करके सम्पन्न होने की तो प्रवृत्ति आई ही इसके अलावा अनेकों लाभ हुए, उनमे से कुछ प्रत्यक्ष लाभ तो हमे यह जान पड़ते हैं (१) इन लोगों ने जहाँ भी गये अपने धर्म और गुरुओ की कीर्ति को फैलाया (२) देश विदेश की यात्रा करने से राजनैतिक और सामाजिक स्थितियों से परिचित हुए (३) घोड़ों का व्यापार करने से अच्छे घोड़ों को परख आई और सवारी करना सीखे तथा घोड़े की सवारी का शौक पैदा हुआ। (४) रास्ते मे डाकू और लुटेरों के भय से बचने के लिये अच्छे २ हथियार साथ रखने के कारण हथियारो के प्रति रुचि बढी।

यद्यपि यह बातें गुरु अर्जुनदेव जी के समय मे काम न आ सकीं किन्तु बीज तो जम ही गया। जिसने एक शताब्दी मे वह रूप धारण किया कि अटक से कटक तक सिखों की बहादुरी से सारा देश पूरित होगया।

यह कार्य थे जिनके कारण इतिहासकार कहते हैं कि गुरु अर्जुनदेव ने सिख समाज के निर्माण की नींव डाली। हम कहेंगे गुरु अर्जुनदेवजी ने सिख समाज की नींव नहीं डाली किन्तु उसकी शनैः शनैः बनती आ रही इमारत को मजबूत करने के लिये सीमेंट का आविष्कार किया।

आठवाँ अध्याय

गुरु हरिगोविन्द जी की जीवन-चर्या

गुरु हरिगोविन्द साहब का जन्म अमृतसर के नजदीक पश्चिम की ओर वडाली गाँव में संवत १६५२ विक्रम असाढ़ सुदी ३ आदित्यवार को आधी रात के ढलने पर गुरु अर्जुनदेव जी के घर गंगा जी के उदर से हुआ था। बालकपन में ही उन्होंने अपने पिता श्री गुरु अर्जुनदेव जी की शहीदी देखी। घर पर चढ़ाई करते हुये राज्य के आदमियों को भी देखा। इसी बालकपन में उन्होंने अपने कानों से यह भी सुना कि उनके पिता और सिख सम्प्रदाय के महान गुरु अर्जुनदेव जी को नृशंसता पूर्वक मार डाला गया है। इसी उम्र में उन्होंने अनुभव किया यह जीवन संघर्षमय है। गुरुगद्दी के समय जब उन्हें सिख तिलक देने लगे तो वे कमर में दो तलवारें लटका कर आये दूसरी वस्तुएँ जब आपको अर्पण की गईं तो आपने उन्हें तोशाखाना में भेज देने की आज्ञा दी और तलवारें बांधे रहे सिखों ने पूछा गुरुदेव यह क्या ? आपने कहा मैं 'फकीरी और मीरी' एक साथ चलाना चाहता हूँ। इसलिये ये दोनों कृपाणें धारण की हैं।

बाल, किशोर और तरुणावस्था

वे प्रात शीघ्र ही उठकर स्नान ध्यान से निवृत्त होकर अखाड़े में व्यायाम करने लगे। मुग्दर फिराते और कुश्ती लड़ते दूध, मक्खन और दही खूब खाते। पांच छः वर्ष में ही वह बहुत तगड़े हो गये। छोटी आयु में गुरु अर्जुनदेव जी ने शिक्षा के लिये हरिगोविन्द जी को बाबा बुड्ढा जी के हवाले कर दिया था। जिन्होंने उन्हें कुश्ती लड़ना, सवारी करना, तीरन्दाजी और तलवार आदि चलाने में जल्दी ही निपुण कर दिया।

विवाह उन्होंने तीन किये, एक विवाह उनका गुरु अर्जुन देव जी के ही सामने कपूरथला इलाके के डला गांव के खत्री नारायणदास की सुपुत्री दामोदरी जी से संवत १६६१ वि० में हो चुका था। उसके बाद आपके दो विवाह हुये। यह विवाह उन्होंने स्वयम् किए।

श्री दामोदरी जी की कोख से ७ वैसाख संवत १६६८ वि० में बीबी वीरो जी अमृतसर में पैदा हुईं और इन्हीं से गुरदित्ता का जन्म संवत १६७० के कातिक की ८वीं को डरोली गांव में हुआ। संवत १६७७ के माघ की १९वीं को अणीराय जी भी इन्हीं से पैदा हुये। इस तरह से माता दामोदरी से गुरु जी के तीन संतानें हुईं।

संतानें

माता महादेवी जी से अकेले सूरजमल जी ही पैदा हुए जिनका जन्म संवत १६७४ के कार्तिक की २३ वीं को हुआ।

माता नानकी जी से दो पुत्र पैदा हुये। अटलराय जी कार्तिक सुदी पूर्णमासी संवत १६७६ वि मे और श्री तेगवहादुर जी माघ सुदी २ संवत १६७८ विक्रम में।

इन सतानों मे से अटलरायजी और अणीरायजी का वालकपन ही मे परमधाम प्रस्थान होगया। गुरदिता जी की औलाद करतारपुरिये और सूरजमल की सतान आनंदपुरिये सोढी के नाम से मशहूर हुई।

सवत १६६५ वि. मे गुरु जी ने अमृतसर दरवार के सामने एक वहुत ऊंचा चबूतरा वनवाया जिसका नाम तख्त श्री अकाल वुंगा रक्खा। इस पर बैठकर आप दोनों समय दरवार लगाते थे।

गुरु जी की इस योद्धापन की प्रकृति को देखकर मसन्दो को घबराहट हुई। उन्होंने माता श्री गगा जी के पास आकर विनती भी कि गुरु जी को केवल साधु वेश मे ही रहना चाहिए। मुगल वादशाह जहाँगीर जब सुनेगा कि गुरु हरिगोविन्द जी साहव पीरी की वजाय मीरी की ओर बढ़ रहे हैं तो अवश्य ही सिख समाज और गुरु जी पर आपति आयगी। माता जी ने मसन्दों को यह कह कर संतुष्ट कर दिया कि जिनके ऊपर गुरु नानक देव जी का वरद हस्त है, उनका कोई कुछ नहीं विगाड़ सकता।

शस्त्रों का अभ्यास और सग्रह करने के अलावा गुरु जी ने शिकार खेलना भी आरम्भ कर दिया। निशानेबाजी मे सिद्ध हस्त होने और शरीर को स्फूर्तिवान वनाये रखने के लिये शिकार प्रत्येक क्षत्रिय के लिये परमावश्यक है। जब गुरु हरिगोविन्द जी साहव तपेश्वर के साथ ही राजेश्वर होने की प्रतिज्ञा कर चुके थे तो उनके लिये वे सभी काम करने ही चाहियें थे जो एक राजेश्वर के लिये आवश्यक है अत शिकार खेलना उस उद्देश्य की पूर्ति के लिये किये जाने वाले प्रयत्नों मे से हीं एक प्रयत्न था किन्तु भोले भाले लोग इन बातों पर आश्चर्य प्रकट करते थे, एक दिन एक हिन्दू साधु ने उन्हे शिकार खेलते देखकर नाक भौं चढ़ाते हुए टोका भी और कहा आप सत होकर जीव हत्या करते है, गुरु जी ने अपनी ओर मे कुछ न कहते हुए गुरु नानक देव जी के इन शब्दों को पढ़ा .—

आखेट कर्म

"देही अन्दरि नामु निवासी। आपे करता है अविनासी॥
ना जीउ मरै न मारिआ जाई करि देखै सबदि रजाई है॥"

गुरु जी स्वयम तो भक्ति रस की भाति ही वीर रस मे ओत प्रोत हो ही चुके थे किन्तु वे प्रत्येक सिख के हृदय में भी वीर रस का प्रवाह जारी कर देना चाहते थे। इसलिये साय प्रात होने वाले हरि कीर्तन के वाद मीरासी लोगों से वीर राग भी गवाया करते थे। जिन्हे सुनकर सिखों के हृदय निर्भय, धैर्यवान और तेजपुंज होते जा रहे थे। इसके अलावा उन्होंने प्रत्येक सिख से कह दिया था कि वे अस्त्र शस्त्रों का सग्रह वरावर करते रहे।

वीर रस का प्रवाह

वैसे तो गुरु अर्जुन देव जी के समय से ही विरोधी काफी शिकायत करते चले आ रहे थे। इस समय गुरु हरिगोविन्द की वढ़ती हुई जीवन प्रणाली को देखकर जहागीर के कान भरे जाने लगे। उससे कहा गया गुरु वदला लेगा। वह रात दिन शक्ति वढा रहा है। हजारों शस्त्र वन्द आदमी उसने इकट्ठे कर लिये हैं। अपने लिये उसने सच्चा वादशाह घोषित कर दिया है और अव पलंग की वजाय तख्त पर राजसी ठाठ से वैठकर अपना दरवार लगाता है यदि उसके दमन मे देर हुई तो मुगल सल्तनत के लिये धक्का पहुँचाने वाले दल का एक सुदृढ़ संगठन हो जावेगा। इन शिकायतों को सुनकर वादशाह ने अचानक एक वड़ा दल भेज कर उन्हे गिरफ्तार करा लिया और—गवालियर के किले मे भेज दिया।

गुरु जी के बहुत दिनों तक पंजाब न पहुंचने से सिक्ख लोगों में बेचैनी फैलने लग गई। संगतें भी आ आकर उनके समाचार पूछने लगीं। माता गंगाजी भी घबरा उठीं, इसलिये बाबा बुड्ढा जी को उन्होंने गुरु जी के समाचार लेने के लिए देहली भेजा, जहाँ से वे आगरा होते हुए ग्वालियर पहुँचे। गुरु जी ने उनसे कहा कि महान कार्य्य की पूर्ति के लिये समय तप की आवश्यकता होती है। इस एकान्त स्थान में बड़े ध्यान के साथ परमात्मा का चिन्तन करता हूं। बाबा तुम वापिस लौट जाओ। वहाँ माता जी तथा सिक्ख लोगों से कहना कि मैं यहाँ बड़ी प्रसन्नता से रहता हूं। साथ ही गुरु जी ने संगतों और माता जी के पास बाबा के हाथ एक पत्र भी भेजा, जिसमें लिखा था, आप लोग कोई भी चिन्ता न करें। वह समय शीघ्र ही आने वाला है जब हम तुम्हारे पास आयेंगे।

[illegible]

इतिहास के लेखक ने संगतों का गुरु जी से प्रेम प्रकट करते हुये लिखा है कि बहुत से सिक्ख ग्वालियर जाते और जब गुरु जी से न मिल पाते तो भी वह बाहर से नमस्कार कर के देश को लौट आते। कुछ दिन बाद भाई जेठा जी भी दिल्ली पहुँचे। उन दिनों बादशाह जहाँगीर की तबियत कुछ खराब सी रहती थी। काफी समय के बाद वजीरखाँ ने बादशाह को समझाया कि आपने व्यर्थ ही एक ईश्वर के प्यारे को ग्वालियर में बन्द कर रखा है। इससे आपका कोई भला नहीं होना है। बादशाह ने कुछ सोच विचार के साथ गुरु जी का छोड़ना स्वीकार कर लिया और वजीरखाँ ग्वालियर पहुंचा, बादशाह की आज्ञा जब वजीरखाँ ने सुनाई तो गुरु जी ने कहा, जिस बन्दी घर में हमें तप करने के लिये बादशाह ने भेजा था। अब उस बन्दी घर में तो नहीं रहना चाहिये। हमारा यहाँ से छूटना तभी शुभ है जब यहाँ के इन बन्दी राजाओं को भी छोड़ दिया जावे। कहा जाता है कि जहाँगीर पहले तो चकराया किन्तु उन बन्दीजनों के हितैषियों द्वारा यह विश्वास दिलाये जाने पर कि वे अब कभी भी आपके प्रति बगावत नहीं करेंगे, बादशाह ने उनके छोड़ने का भी हुक्म दे दिया। गुरु जी पर अहसान यह कर लिया कि मैं तो आपके ही आश्वासन पर इन्हें छोड़ रहा हूँ।

छुटकारा

इस घटना के बाद से उधर के लोग गुरु जी को 'बन्दी छोड़ बाबा' नाम से पुकारने लग गये।

सिक्ख इतिहासकारों और साथ ही मि० मैकालिफ ने लिखा है कि "बादशाह ने चन्दू को उचित सजा देने के लिए उसे सब परिवार के गुरु जी के ही हवाले कर दिया था।" गुरु जी के साथ ही बादशाह भी पंजाब को आया। उसे काश्मीर में स्वास्थ्य सुधार के लिये जाना था। गुरु जी ने बादशाह को गोइन्दवाल का स्थान दिखाया। जिसे देख कर बादशाह बहुत खुश हुआ और उसकी इच्छा अमृतसर को देखने की भी हुई, इसलिये वह गुरु जी के साथ अमृतसर भी आया।

बादशाह का रुख परिवर्तन

बाबा जेठा ने अमृतसर पहुँच कर गुरु जी के आने का शुभ समाचार सुनाया। जिसे सुनकर सिक्खों में आनन्द की लहर दौड़ गई। बाबा बुड्ढा ने आगे बढ़ कर गुरु जी का स्वागत किया। बादशाह भी कड़ाह प्रसाद में शामिल हुआ। उसने हरि मन्दिर के बनवाने में सहायता देने की भी चर्चा की, किन्तु गुरु जी ने स्वीकार नहीं किया। दरबार के समय बादशाह ने पूछा आप जैसे सुन्दर नौजवान के लिये इस तरुणाई में काम पर विजय कैसे संभव है, इसको मुझे बताइये। गुरु जी ने एक प्राचीन कथा का हवाला देकर बताया था कि राजा

अमृतसर में

ने विषय वासना को केवल इस डर से छोड़ दिया था कि उसे एक महात्माने कहा था कि तेरी जिन्दगी के केवल आठ दिन और शेष हैं। भला जिसे आठ दिन तक ता जीने का आश्वासन है, वह डर कर कुकर्म को छोड़ देता है और जो यह मानते हों कि काल का पता नहीं कब मोत आ धमके, वे क्यों न सचेत रहेंगे।

सीस्तान मे सन् १५५० में मुहम्मदगीर नाम का एक मुसलमान बालक पैदा हुआ था। युवावस्था मे वह फकीर हो गया और मियां मीर के नाम से मशहूर हो गया। वह लाहौर के पास आकर एक जगल रहने लग गया। फकीर अच्छा और ईश्वर-भक्त था। उसकी प्रशंसा चारों ओर फैल गई। बादशाह जहाँगीर भी उनके दर्शन करके बहुत खुश हुआ और उसने अपनी डायरी में लिखा—"मियां साहब एक बहुत अच्छे फकीर हैं, लोभ उनके पास होकर भी नहीं निकला है। पूर्ण त्यागी और तपस्वी है।" गुरु हरिगोविन्द जी का भी उनसे प्रेम था। जब गुरुजी एक बार उनसे मिलने गये, मियांमीर ने उनका आगे बढ़कर स्वागत किया और उनके पधारने पर बहुत प्रसन्नता प्रकट की। देर तक धर्म-चर्चा भी की, यह खबर जहाँगीर के पास भी पहुँची एक दिन उसने पूछा "मियां साहब हम तो आपको सर्वोपरि फकीर मानते हैं किन्तु मैंने सुना है आपने गुरु हरिगोविन्द के प्रति श्रद्धा और भक्ति प्रकट की थी। मियां मीर ने कहा-बादशाह ! गुरु हरिगोविन्द वास्तव में श्रद्धा की चीज है। वे ईश्वर के प्यारे, सत्य धर्म पर चलने वाले हैं। बादशाह चुप हो गया। गुरु हरि गोविन्द जी ने अपने मसन्दों और शिष्यों को आज्ञा दे रखी थी कि भेंट के साथ-साथ यथा सभव लोग अस्त्र-शस्त्र और घोड़े भी लाया करें।

मियामीर

ननकाना यात्रा

गुरु जी ने इन दिनों ही नानकाना साहब की यात्रा की जहाँ बाबा श्री चन्द जी के दर्शन किये। इस यात्रा में माता गंगादेवी जी भी साथ थीं।

इसके बाद गुरु जी फिरोजपुर जिले के डरोली गांवमें लाला माईदास जी के पास पहुँचे। माईदास के घर गुरु जी की भार्य्या दामोदरी जी की बहिन रामो व्याही हुई थीं। साईदास गुरु जी का बड़ा भक्त था उसने पहले से ही उनके ठहरने के लिये एक भव्य मकान बनवा रखा था। वहाँ से गुरु जी पीलीभीत जिले के नानकमता स्थान को गये। वहाँ पर अलमस्त नाम का एक भक्त रहता था। इस तरह से इस यात्रा को पूरा करके लौटे।

जाते समय करतारपुर के पास उन्हे तीन पठान मिले जो नौकरी के लिये उनके पास हाजिर हुए थे। उनमे से उन्होंने पैदे खान नामक के एक गिलजई पठान युवक को नौकर रख लिया। नानकमता स्थान पर गुरु जी का कनफटे जोगियों के साथ वादविवाद भी हुआ किन्तु वे उनके सामने ठहर न सके।

उनके अमृतसर आ जाने पर लोग बडे प्रसन्न हुए और चारों ओर से लोग ज्ञान-चर्चा और कथा उपदेश सुनने के लिए आने लगे।

इससे पहले बादशाह के साथ काशमीर की की गई यात्रा का वर्णन इस प्रकार है कि श्री नगर में साईंदास नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह सिख हो गया, उसकी सगत और ज्ञान-चर्चा सुनकर उसकी माँ भागभरी भी गुरु जी की भक्त हो गई। उसने गुरुजी की भेंट के लिये एक सुन्दर चोला बनाया। उसके सौभाग्य से गुरु जी श्रीनगर पहुँचे और साईंदास के घर पर ही ठहरे। माई भागभरी ने भी अपने भाग्य को सराहा। वहाँ पर अनेकों काश्मीरी स्त्री पुरुषों ने गुरु जी के उपदेश सुने और सिख धर्म को ग्रहण किया। गुरु जी के श्रीनगर मे रहने के

कश्मीर यात्रा

[illegible] गुरुद्वारा बनवाया जिसका प्रबन्धक [illegible]

[illegible] में उपदेश करते हुए आये । गुजरात [illegible] हाफिजाबाद में आये । जहाँ पर [illegible] जी ने जपुजी साहब के अर्थ समझाये जिन्हे [illegible] ।

[illegible] लाहौर का रहने वाला था । गुरु जी के पास [illegible] जी ने लाहौर में एक गुरुद्वारा और कुछ पवित्र [illegible] करते है । उस स्थान पर लाहौर का [illegible] के दान भंग करता है किन्तु आपका मित्र [illegible] तुम अपने धर्म पर दृढ रहो, [illegible] गुरुद्वारे परमात्मा के स्थान है । उन्हे नष्ट [illegible] इन वचनो को सुनकर प्रसन्न होता हुआ [illegible] ।

[illegible] जन्मभूमि तलवण्डी-ननकाना साहब पहुँचे । वहा [illegible] की लीलाओं की स्मृति में बने हुए थे । वहा से [illegible] वापिस आ गए । इसके बाद बहुत दिनो [illegible] ।

माता गंगा का देहावसान

संवत [illegible] को माता गंगा जी ने गुरु लोक को प्रस्थान किया आपने [illegible] था । पुत्र अब हमारे चलने का समय आ गया । मेरी देह को [illegible] पिता की भांति [illegible] देना किसी तरह का और कोई क्रिया कर्म न करना ।

बाबा बुड्ढा ने गुरु जी से विनती की । अब मैं बहुत बुड्ढा हो गया हूँ । मैं चाहता हूँ कि [illegible] में जाकर हरि-भजन करूँ ।" गुरु जी ने उन्हे आज्ञा दे दी । आप जहा भी उचित समझे वहा [illegible] भजन करें ।

संवत [illegible] में बादशाह जहांगीर इस संसार से चल बसा । उसके स्थान पर शाहजादा शाहजहां बादशाह हुआ ।

एक समय बादशाह शाहजहां और गुरु हरिगोबिन्द जी साहब शिकार के लिये एक ही जंगल में पहुँच गये । बादशाह के पास ईरान की सौगात का एक सुन्दर बाज था । वह उड़ता हुआ सिख डेरो में आ गया और सिखों ने उसे पकड लिया । इतने में उस बाज को ढूंढने वाले शाही शिकारी भी आ गये । सिखो ने उनको बाज नहीं लौटाया और शिकारियों के यह कहने पर कि इसे तुम्हारे पीर भी नहीं रख सकते । यह बाज बादशाह का है । सिखों ने उन्हें पीट भी दिया । बादशाह इस समय लाहौर लौट चुका था अत शिकारी लाहौर पहुँचे और उन्होंने सब वृतान्त सुना दिया । सुनकर नौजवान बादशाह आग बबूला हो गया और उसने मुखलिस खान नाम के

लड़ाई का सूत्रपात

एक तुरक अफसर को जिसकी मातहती मे सात हजार फौज रहती थी। हुक्म दे दिया कि बाज के साथ ही सिखों के गुरु को भी पकड़ लाओ। बस लड़ाई का आयोजन हो गया।

लाहौर के सिखों को इस बात का पता चलते ही तुरन्त ही उन्होंने यह खबर अमृतसर मे गुरु जी के पास पहुँचा दी। अब इसके सिवा हो क्या सकता था कि सिख लड़ाई के लिये तैयार होते। लाहौर और अमृतसर के बीच में अमृतसर मे लोहगढ़ नाम का एक युद्ध लायक और बचाव का स्थान था। गुरु जी ने कुछ सिखों को वहाँ शाही सेना को रोकने के लिये भेज दिया। इधर बाल बच्चों को रामसर भेज दिया। भाई मानू को इस युद्ध का सेनापति बनाया गया। जिस समय गुरु जी अमृतसर से बाहर झुबाल जाने के लिये निकले तो पता चला कि बीबी वीरो भूल से घर मे ही रह गई हैं। उन्हे दुबारा जाकर बाबक बड़ी कठिनता से मुगल सिपाहियों के बीच से गुजर कर ले आये। रामसर से गुरु जी ने उन्हे झुबाल गाँव मे भेज दिया। वर पक्ष को भी खबर कर दी कि बरात अमृतसर न लाकर झुबाल मे लाओ। परिवार वालो से यह भी कह दिया। कि विवाह के बाद तुम सब गोविन्दवाल चले जाना।

लोह गढ़ के केवल पाच सिखों ने ही वह वीरता दिखाई कि मुगल सेना चकित हो गई। ऊपर से पत्थर और ईटों की वर्षा से उन्होंने सैकड़ों मुगलों को धराशायी कर दिया। अंत मे वे पांचों भी बलिदान हो गये।

मुगल सेना ने अमृतसर मे घुसकर सबसे पहले गुरुजी के घर को घेरा सिपाहियों ने वीरो जी के व्याह के लिये बनी हुई मिठाई पर हाथ साफ किया। फिर दिन भर शहर मे घूमते रहे।

सिखों ने रात को वार करने का मौका ठीक समझकर उन पर आक्रमण कर दिया। बन्दूकों से गोलियाँ दगने लगीं। मुगल सैनिक घबरा गये और भाग निकले। अनेकों गोलियों की बोछार से जमीन पर बिछने लगे। जो सवार थे वे अपने घोड़ों की सुधि भूल कर प्राण बचाने के लोभ से धर दौड़े। मुखलिस खा ने इस गड़बड़ को देखा तो ललकार कर कहा, चन्द सिखों के डर से तुम हजारों आदमियों को भागने मे शर्म नहीं आती है। उनके गुरु को या तो जिन्दा पकड़ लो या मार दो। एक दूसरे अफसर शमसखां ने भी इसी प्रकार मुगल सैनिको को धिक्कारा। जिससे भागने के बजाय वे मैदान मे डट गये और भाई मानू को ही गुरु हरिगोविन्द जी समझकर उन पर टूट पड़े। भाई मानू ने लड़ाई मे वह रौद्र रूप धारण किया कि अनवर और शमसखा नाम के दो मुगल सेनापतिओं के साथ ही सैकड़ों मुगलों को जमीन पर बिछा दिया। इसके बाद मुहम्मदअली सैयद ने लड़ाई की कमान संभाली। सिख लड़ते २ हैरान हो चुके थे मुगल सिपाहियों के इस धावे के सामने वह टिक न सके। भाई भानू लड़ते लड़ते शहीद हो गये। सिखों को हटते देखकर सिख योद्धा भाई सिघा ने धर्म पर शहीद हो जाने के लिये ललकारा सिख फिर अड़ गये निहालू, तोता, अनंता आदि सिख बड़ी वीरता से लड़े। वीर सिंधा मुहम्मद अली को मुल्क अदम पहुंचा कर खुद भी शहीद हो गया। तब गुरु जी ने पैंदेखा को युद्ध का सेनानी बनाकर भेजा। और गुरु जी स्वयम भी मैदान मे आकर सनासन तीरों की वर्षा करने लगे। यह देखकर मुखलिस खान ने तमाम फौज को हमला करने की आज्ञा देदी और कहा आज इस गुरु को मैदान से बाकी नहीं छोड़ना है। दोनों ओर से घमासान लड़ाई होने लगी। गुरु जी ने तीरों की वर्षा कालो बदलिया की सरसर और पड़पड़ बूंदों की भाति इस जोर से की कि धावे मारने वाले गिरोह बीच ही मे सनके पौनों की भांति गिरने लगे। पैदेखा ने भी तुरकों की फौज का दिल भर कर नाश किया। भाई जंदा, भीखा, विराना और भीमा घोड़ों पर चढ़कर घमासान मचाने लगे।

घमासान लड़ाई और अनेकों मुसलमान सरदारों के मारे जाने पर जब मुखलिस खां ने देखा कि हमारी जीत होना असम्भव है तो उसने गुरु जी के पास सुलह का पैगाम भेजा। गुरु जी यह भली भांति जानते थे कि सुलह करने से भी शांति नहीं है अतः उन्होंने कह दिया। बादशाह के डर से हम नहीं भूल सकते हमारा रक्षक तो वह गुरु है। वे शहनशाह के भी शहनशाह हैं। इस उत्तर को सुनकर मुखलिस खां ने फिर बड़े जोर से हमला कराया। किन्तु एक एक करके उसके सारे नायक खतम हो गये तब वह खुद मैदान में आया और गुरु जी से कहा, बस सारी लड़ाई बन्द करो, हमारी तुम्हारी होगी। उसने गुरु जी पर वार करना शुरू कर दिया किन्तु अन्त में गुरु जी की तलवार के एक ही वार में समाप्त हो गया। शेष सारे मुगल सैनिक भाग गये।

लड़ाई के अन्त में गुरु जी ने अपने प्यारे सिखों की लाशों को इकट्ठा कराया और अपने ही हाथों से उनका दाह कर्म किया। लड़ाई के स्थान पर स्मृतिस्वरूप एक गुरुद्वारा बना हुआ है। जहां प्रत्येक वैसाख की पूर्णिमा पर मेला लगता है।

लड़ाई से निवृत होकर कुरतान में जाकर गुरुदेव ने अपनी पुत्री बीबी वीरो का विवाह कराया। वहां से फिर गुरु जी गोविन्दवाल चले गये। जहां अपने सगे सम्बन्धियों को बुलाकर उनके साथ भेंट की।

कौला का देहान्त

गोविन्दवाल में ही गुरु जी को समाचार मिला कि कौला बीमार है। अतः वे अमृतसर चले आए, उस समय तक कौला की हालत ज्यादा खराब हो गई थी, वह बोल न सकती थी, गुरु जी को देखकर हर्ष से उसकी आंखों से आंसू टपक पड़े। गुरु जी ने उसे बताया तू धन्य है। तूने अकाल पुरुष की शरण ली है। इस समय तू वाहिगुरु का सुमरन कर। इसके बाद आठवें पहर में कौला का जीवात्मा इस संसार से चल बसा।[1]

शाहजहां की चुप्पी

इस युद्ध का जब यह समाचार शाहजहां को मिला कि मुखलिस खां अपने समस्त नायकों के साथ लड़ाई में मारा गया है, तो बादशाह को बड़ा क्रोध हुआ किन्तु वजीर खां ने बादशाह को समझाया कि इस प्रकार अगर दूसरी गलती की गई तो सारे पंजाब में सीधे सादे सिखों का एक लड़ाकू समूह बन जायगा। अभी तक गुरु जी के दिल में भी आपके प्रति बुरे भाव नहीं हैं। आप यदि उन्हें राजद्रोही या बागी करार दे देंगे तो सिखों में भी फिर आपके राज्य को नष्ट करने के लिये खामख्वाह तयार हो जावेंगे।

हम देखते हैं कि बादशाह को इस समय देश की राजनैतिक हालत संभालने की भी चिन्ता लगी हुई थी। इसलिये उसने इस अप्रिय घटना को कोई अधिक महत्व न देना ही ठीक समझा।

इस शान्ति के समय में

इस अवसर में सब से पहले उस क्षति को पूरा किया जो लड़ाई में हुई थी। जितने भी अच्छे २ योद्धा काम आये थे। वैसे ही और नये भर्ती किये सैनिकों की संख्या भी बढ़ाई। बाहर से धन, हथियार, घोड़े और बारूद भी अब अधिक मात्रा में आने लगी। सिख लोग नित प्रति हथियार चलाने और घोड़ों पर चढ़ने का अभ्यास करने लगे। वे स्वतः प्रायः जंगलों में जाकर शिकार खेलते और भयंकर से भयंकर जंगली जानवर का शिकार करते।

खैरड़ चौधरी के लड़के का नाम रतनचन्द था। वह जालंधर के सूबेदार अबदुल्ला खां से दोस्ती

१ कहा जाता है कौला लाहौर के एक काज़ी की लड़की थी और मियामीर की मार्फत सिख धर्म में दीक्षित होकर यहाँ रहती थी।

रखता था। चन्दू का पुत्र करमचंद भी उन दिनों जालंधर में ही था अतः रतनचंद जालन्धर को चल पड़ा। दूसरे दिन दोनों ने सूबेदार के कान भरे कि व्यासा के इस किनारे आकर वह एक किला बना रहे हैं, अगर बन गया तो अवश्य ही आपके इलाके पर कब्जा करने की कोशिश करेंगे। सूबेदार यह सुनकर आग बबूला होगया और उसने लड़ाई की तैयारी कर दी। पांच हजार सैनिकों को तीन टुकड़ियों में लेकर सूबेदार ने हरि गोविन्दपुर की ओर कूंच किया। उसके लड़के करीम बख्श और नबी बख्श और वह खुद इन टोलियों के नायक बने।

विरोधियों का दल

गुरु जी ने इस दल का मुकाबिला करने के लिये अपने वीरों को आदेश दिया, और अपने सैनिकों को भाई जट्टू, भाई कलियाणा, भाई माना, भाई पिराना आदि के नेतृत्व में कई जत्थों में बांट दिया।

हरि गोविन्दपुर के निकट पहुँच कर अबदुल्ला खॉ सूबेदार ने गुरुजी के पास सन्देश भेजा कि यदि आप इस नगर का बनाना बन्द करदें तो हमारी फौज लौट जायगी। गुरुजी ने इस बात को मानने से इन्कार कर दिया।

दोनो ओर के वीर अड़ गये। लड़ाई शुरु हो गई। तीरों की सनन-सनन और गोलियों की दनादन के साथ ही तलवारों की खचाखच और भालों की छप छप से दोनों ओर से लोथ पर लोथ गिरने लगी। भाई जट्टू ने मुहम्मदखाँ का मुकाबिला किया। मुहम्मदखाँ धराशायी हुआ। उसकी मदद को बैराम खॉ आया। इधर भाई जट्टू की मदद को भाई मथुरा आगया। सिख ललकार कर पड़े। भाई मथुरा ने एक ही वार में बैराम खॉ को गिरा दिया। बैराम के मरते ही बलवड खॉ सामने आया और अली बख्श उसकी मदद को आया। यह देखकर भाई कलियाना ने बलवड को एक तीर से धरती पर सुला दिया। यह देखकर पठानों के एक गोल ने भाई कल्याना पर हमला बोल दिया और वे शहीद गति को वाहि गुरुजी की फतह बोलते हुये प्राप्त हो गये।

इतने में अलीबख्श अपने जत्थे को लेकर गुरुजी की ओर झपटा, किन्तु भाई मानों ने बीच में अड़कर उसके हमले को बेकार कर दिया। इतने में और भी सिख आगये। अली बख्श ने क्रोध से भुनकर भाई मानों पर तलवार का वार किया। भाई मानो ने पेतरा बदल कर उस वार को चुका दिया और ऐसे जोर से तीर छोड़ा कि अलीबख्श मुल्के अदम को रवाना होगया। हमाम बख्स जो पास ही देख रहा था, अपने दल के साथ भाई मानो पर झपटा। भाई मानो ने तलवार निकाल कर उसके एक हाथ को काट डाला किन्तु उसने दूसरे हाथ से ऐसा वार किया कि भाई मानो शहीद होगया। मानो के बाद भाई प्रागा आगे बढ़ा। भाई जगना और कृष्णा आदि सरदार भाई प्रागा की सहायता के लिये उसके दाये बाये हुए, किन्तु मुगल सेनानियों के जोर के धावों के मुकाबिले में वे दोनों ही शहीद होगए। तब गुरुजी की आज्ञा लेकर भाई विधीचंद प्रागा की मदद को आगे बढ़ा और उसके नेतृत्व में जो सिख लोग आगे बढ़े उन्होंने ऐसे जोर का हमला किया कि मुगल सेना के पैर उखड़ गये। यह देखकर एक ओर तो अब्दुल्ला ने भागते हुए लगों को रोका, दूसरी ओर कर्मचंद और रतनचन्द से कहा कि अब तुम मोर्चे पर जाकर लड़ो। अपने पुत्र नबीबख्श को भी आगे किया।

इस समय गुरुजी ने भी हथियार सभाल लिये, उनका तेजस्वी घोड़ा हिनहिना उठा और बिजली की भांति नंगी तलवारें कौंध उठीं। उनके तीरों की बौछार को देखकर मुगल पठान घबरा उठे। इस बीच विधीचंद से कर्मचंद भिड़ा जिसे विधीचंद गुरुजी के सामने पकड़ लाया किन्तु गुरुजी ने उसे मारने न दिया और छुड़ा दिया। उसने छूटकर अब्दुल्ला को सलाह दी कि

बिना जोर का हमला किये सफलता मिलनी मुश्किल है। इस सलाह को मानकर अब्दुल्ला ने सभी सैनिकों को एक साथ हमला करने की आज्ञा दे दी जिससे घमासान युद्ध मच गया। उसमें थोड़ी ही देर में भाई भगतराम और जट्टू ने नबीबख्श को मार डाला और खुद भी शहीद होगये। नबीबख्श के मारे जाने से तुरक सेना में नया जोश पैदा हुआ क्योंकि नबीबख्श अब्दुल्ला का बेटा था, अतः उन्होंने सम्पूर्ण वेग के साथ हमला किया। करीमबख्श ने गुरुजी पर हमला किया, किन्तु गुरुजी ने बिधीचंद को उससे लड़ा दिया और आप तुरकों की भीड़ पर बाण वर्षा करने लगे। बिधीचन्द और करीम दोनों तलवारें लेकर एक दूसरे पर भूखे सिंह की तरह टूट पड़े किन्तु अनेक वारों को बचा कर भाई बिधीचंद ने करीमबख्श को मार डाला। अपने दूसरे पुत्र को भी लड़ाई में मरा देखकर अब्दुल्ला घबरा उठा और उसने रतनचन्द और कर्मचन्द को आगे करके फौजों को ललकारना शुरू किया। रतनचन्द कर्मचन्द दोनों ही गुरु जी पर टूट पड़े। कर्मचन्द के नेजे की मार से गुरुजी का वही काबुली घोड़ा मारा गया जिसे उन्होंने काज़ी से छीन लिया था। इससे उन्हें बड़ा दुख हुआ किन्तु उन्होंने पैदल ही उतर उन्होंने बाणों की वर्षा शुरू कर दी जिससे कर्मचन्द और रतनचन्द के भी घोड़े मारे गये वे भी पैदल लड़ने को विवश हुए। दोनों ही ने गुरुजी पर आक्रमण किया किन्तु गुरुजी ने दोनों ही को जमीन पर सुला दिया। यह देखकर अब्दुल्ला क्रोध में न रहा और गुरुजी पर झपटा। किन्तु वह भी मारा गया। इस तरह जालन्धर के सूबेदार का और गुरुजी के द्वेषियों का खात्मा होगया।

इसके बाद हरिगोबिन्दपुर की शान्ति और अमन के साथ रचना हुई। उसे सुन्दर से सुन्दर बनाया गया, चार दरवाजे रक्खे गये। संगतों को ठहरने के लिये धर्मशाला बनाई गई सिखों के लिये गुरुद्वारा और मुसलमानों के लिये मस्जिद बनवाई गई।

घोड़े, धन और आदमियों की जो हानि इस लड़ाई में हुई थी उसकी पूर्ति की जाने लगी। जिन सैनिकों के पास घोड़े नहीं रहे थे उन्हें खरीद कर घोड़े दिये गये।

हरि गोबिन्दपुर को देखने के लिये चारों ओर से लोग आते थे। भाई सुभागा के साथ भी एक संगत आई। उसको गुरु जी ने आज्ञा दी कि समस्त गुरु स्थानों के दर्शन करने के लिये जाओ तो अच्छा होगा। संगत गोबिन्दवाल खडूर आदि स्थानों के दर्शन करती हुई गुरु जी की बीड

दर्शनार्थियों की भीड़

में पहुँची जहाँ बाबा बुड्ढा और गुरुदास जी रहते थे। जब उन्होंने तुरकों के साथ गुरु जी की लड़ाई और हरिगोबिन्दपुर की रचना का हाल सुना तो दोनों ही अमृतसर होते हुए गुरु जी के पास पहुंचे और दर्शन किये। गुरु जी भी इन दोनों को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। बाबा बुड्ढा तो गुरु जी से आज्ञा लेकर शेष जीवन रामदासपुर में बिताने के लिये चले गये और गुरुदास जी वहीं रह गये।

सिख और हिन्दुओं के अलावा अनेकों मुसलमान भी गुरु जी के पास आकर आत्म ज्ञान की प्राप्ति करने लगे। जानी नाम का फकीर जो बहुत समय से सच्चे खुदापरस्त की तलाश में था, वह भी गुरु जी की शरण में आया और गुरु जी ने उसे उपदेश देने से पहले जिन-जिन कड़ी से कड़ी परीक्षाओं में कसा वह पास हुआ। उससे कहा गया जो तू गुरु जी में सच्ची भक्ति रखता है तो नदी में कूद पड़ वह सुनते ही नदी की ओर चल पड़ा, कहा जाता है कि जानी का अटूट प्रेम गुरुजी से ख्वाजा नाम के एक मुसलमान की सलाह से हुआ था—जिसे कि गुरु जी कश्मीर से अपना सेवक बना कर लाये थे और जो बड़ी श्रद्धा से गुरु जी की सेवा करता था।

एक दिन नित्यानन्द नाम का एक ब्राह्मण गुरु जी के पास ज्ञान-चर्चा करने आया और गरुड़-पुराण को पढ कर कहने लगा कि मृत्यु के बाद स्वर्ग तक पहुँचने में जीव को एक वर्ष लगता है। इस बात को सुनकर सिखो मे से कई बोल उठे किसीने कहा, मैं तो छ: ही महीने मे पहुँच सकता हूँ। किसी ने कहा चार और किसी ने तीन महीने मे ही पहुँचने की बात कही। ब्राह्मण ने यह देख कर कि यह सिख लोग उसकी बात की मजाक उडाते हैं, गुरु जी से कहा कि देखिए आपके यह शिष्य क्या कहते हैं। गुरु जी ने कहा ठीक ही तो कहते है, पापी लोगों के लिये ही तो इस प्रकार विकट और दुर्गम स्थानों मे जाना होता होगा। जो जितना ही धर्मात्मा होगा उसे ही उतना ही कम समय लगेगा और विशुद्ध आत्मा तो निमिष मात्र में स्वर्ग मे पहुँच सकती है। जो यहा सन्मार्ग पर चलना है उसके लिये वहा का मार्ग कुछ भी कठिन नहीं है। जो प्रकाश मे है वह ऊबड खाबड और भले रास्ते को पहचान सकता है और जो अन्धकार मे है उसे भटकना पड़ता है। प्रकाश मिलता है सत गुरु की शरण मे आने से। गुरुजी की इन बातो को सुनकर ब्राह्मण के हृदय-कपाट खुल गये और वह गुरु जी का भक्त हो गया। इसी तरह गुरु जी सत उपदेशो द्वारा लोगो को रास्ते पर लाते और उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करते।

बावा ने भी समझ लिया कि अब गुरु लोक चलना ही है अत: अपने एक मित्र के द्वारा गुरु हरिगोविन्द साहब के पास सन्देश भेजा कि अब मेरा अन्त समय है, मुझे आकर दर्शन देने की कृपा कीजिये। आपने वायदा भी किया था कि जब भी याद करोगे मैं तुम्हें दर्शन दूँगा। गुरु जी के पास सन्देश पहुँचा तो वे भाई गुरुदास जी आदि प्रसिद्ध सिखो को लेकर रामदासपुर पधारे। गुरु जी के दर्शन करके बावा बुड्ढा बडे प्रसन्न हुए। दूसरे दिन प्रात वाहि गुरु का जप करते हुए इस लोक से विदा हो गये। गुरु जीने अपने हाथो से बावा का अन्त्येष्टि संस्कार किया और उनके भाग्य की सराहना की।

भाई माना की प्रार्थना पर गुरु जी ने अपनी सेना रामदासपुर ही छोड दी। कुछ सिखो को साथ लेकर सिख-तीर्थो के दर्शन को प्रस्थान किया। पहिले करतारपुर पहुँचे जहाँ कि गुरु अगददेव जी को गुरिआई मिली थी। यहा से नदी को पार करके डेरा बाबा नानक के दर्शन किये। दूसरे दिन गुरु जी उस एकान्त वन मे गये जहाँ बाबा श्रीचन्द जी तप करते थे गुरु जी ने उनके दर्शन किये। बाबा श्रीचन्द जी ने गुरु जी की युद्ध सम्बन्धी वीरता पर उन्हे बधाई दी।

प्रस्थान

अब चूकि दीवाली नजदीक आ रही थी और दीवाली पर अमृतसर मे सिखो का मेला लगता है अत यहाँ से सिखों की प्रार्थना पर अमृतसर को विदा हुये। अमृतसर पहुँच कर गोइन्दवाल से अपने बाल बच्चों को बुला लिया और करतारपुर खबर भेज कर पेंदेखान को भी बुला लिया। उसने गुरु जी से अर्ज की कि महाराज इस युद्ध मे मुझे याद क्यों नहीं किया किन्तु अब उसका यह गर्व जाता रहा था कि मेरे बिना सिख किसी लडाई को जीत नहीं सकते हैं।

एक प्रसग के समय गुरु जी को ऐसा आभास हुआ कि भाई गुरुदास जितने विद्वान हैं, उतने ही नम्र नहीं हैं। अत. उन्होंने सोचा किसी प्रकार इनमे नम्रता भी आनी चाहिए। गुरुजी ने उन्हे काबुली घोडे खरीदने को मोहरों की थैली देकर भेज दिया। वहा से उन्होंने पाच-पाच हजार के घोडे खरीद कर गुरु जी के पास भेजे किन्तु जब तम्बू में थैलो टटोली तो उनमे ककड दिखाई दिये। भाई जी इस पर इतने घबराये कि जाच पडताल किये बगैर ही तम्बू को फाड कर दूसरे रास्ते से निकल गये। शर्म के मारे अमृतसर भी नहीं आये। काशी पहुँच गये। बाद मे सिखों ने उन्हीं थैलियों मे से रुपया चुका

किया। जिसने भाई गुरदास जी को रुकना सिखाई थी।

बनारस पहुँचने पर वहां के सिक्खों ने गुरदास जी की खूब आवभगत की। काशी के पंडितों और संन्यासियों से बराबर उनका विवाद चलना रहा। कुछ दिन के बाद भाई जैठा गुरु जी के हुक्म से भाई गुरदास जी को अमृतसर ले आया। तब भाई जी ने क्षमा मांगी और फिर गुरु सेवा में नम्रता से बराबर सेवा करने लगा।

जालंधर के सूबेदार के वारिसों में उसका एक पुत्र वलीखाँ और शेष रह गया था। वह रात दिन चिन्ता में रहता था कि अपने पिता का बदला किस प्रकार लिया जाय। जब उसने सुना कि बादशाह शाहजहां दिल्ली से लाहौर आ रहे हैं तो वह उनकी सेवा में हाजिर हुआ और घोड़े भी भेंट किये। बादशाह ने जब उसके बाप और भाइयों का हाल पूछा तो उसने बादशाह से गुरु हरिगोविन्द जी की बहुत शिकायतें कीं।

[illegible]

इन शिकायतों को सुनकर बादशाह को बड़ा क्रोध हुआ और उसने अपने सरदारों की ओर देखते हुए कहा, आप में से कौन उस गुरु को पकड़ने के लिये तय्यार होता है? वजीरखाँ ने खड़े होकर कहा, बादशाह सलामत जिसे भी आप हुक्म देंगे, वही तय्यार हो जायगा। किन्तु वलीखाँ की शिकायतें सही नहीं हैं। गुरु जी किसी भी मजहब से द्वेष नहीं रखते, उन्होंने उस नगर में मस्जिद भी बनवाई है। यह कोई बुरा काम नहीं किया है। वह राज्य को मिटाना चाहता तो इधर के इलाके में भ्रमण कर वसूल करता, टैक्स बांधता। वह तो कुछ नहीं कर रहा। सूबेदार ने जो भी कुछ किया नासमझी से किया उसने अभिमान में आकर आपसे आज्ञा लेना तक उचित नहीं समझा लड़ाई छेड़ दी। यह उसका कसूर नहीं है क्या? बादशाह को वजीरखां की बातें जच गईं, अतः उसने वली खाँ को बहुत डाँटा।

इसके बाद गुरु जी धर्मोपदेश के लिये निकले और डेयराना होते हुये डरोली पहुंचे। वहाँ बहुत दिन रहे एक दिन गुरु जी ने डरोली गाँव से चलकर भगत रूपचन्द के गाँव में पहुँचे। इसने गुरु जी के ठहरने के लिये पहले से ही एक सुन्दर मकान बनवा लिया था। वहाँ रहकर गुरु जी ने लोगों को उपदेश दिया और रूपचन्द को वर दिया कि तुम्हारी लोगों में मान्यता होगी। यहाँ भादों और क्वार दो महीने रहकर गुरु जी मय जमात के आगे बढे और रागड़ गाँव में जो रायजोधा का था पहुँचे। रायजोधा के घर में जो स्त्री थी। उसको अपने पिता के यहाँ सिक्ख धर्म की शिक्षा मिली थी। उसने अपने पति जोधा जी को गुरु जी के पास भेजा और पीछे से वह दर्शनोंको आगई। दोनों स्त्री पुरुषों ने गुरुजी से उपदेश सुने,रायजोधा तभीसे गुरुजीका शिष्य होगया।

धर्म प्रचार पर

रुहेले (श्री हरिगोविन्दपुर) के युद्ध में विधीचन्दने जो सफाई दिखाई थी,उससे सिख विधीचन्दको एक बहादुर शूरमा के रूप में देखते हैं किन्तु जब हम उसके उस कौशल का हाल पढ़ते हैं जो उसने लाहौरके किले में से दो घोड़ो को लाने में दिखाया था तो उसकी बुद्धि और चतुरता पर अचम्भित होना पड़ता है। वह घटना इस प्रकार है —

भाई विधीचंद का कौशल

बख्तमल और भागचन्द नामक दो मसन्द काबुल से अन्य सामान के साथ दो अमोलक घोड़े गुरु जी की भेंट के लिये लेकर चले। इनके साथ और भी कुछ श्रद्धालु सिख थे। चूंकि इन लोगों को यह भान था कि गुरु जी लाहौर मिलेंगे, अत यह लोग लाहौर की ही ओर चले। रास्ते में बादशाह शाहजहाँ के अफसरों ने इनसे दोनों घोड़े छीन लिये। ये लोग लाहौर पहुँचे जहाँ स्थानीय सिखो ने इनका खूब स्वागत सत्कार किया।

लाहौर से अमृतसर और वहाँ से रूपचन्द के पिंड उरोली आकर इन्होंने सारी दास्तान गुरुजी और गुरु जी के सामन्तों को सुनाई। एक बार नहीं अनेक बार और बड़ी करुणा के साथ उनके मुंह से इस बात को सुनकर विधीचन्द जी ने प्रण किया कि जैसे भी होगा उन घोड़ों को मैं लाहौर से लाकर गुरु जी को भेंट करूंगा।

काबुल के अन्य सिख तो अपने देश को लौट गये किन्तु वे दोनों मसन्द वहीं गुरु जी की सेवा में रह गये और जब भी मौका पाते अपने उन्हीं घोड़ों की चर्चा करते रहते जिनके नाम भी गुलबाग और दिलबाग थे।

विधीचन्द घोड़ों सबन्धी अपने कार्य को पूरा करने के लिये लाहौर पहुँचे। किन्तु किले में घुसकर द्वारपालों, सईसों और हजारों सैनिकों की मौजूदगी में घोड़े कैसे प्राप्त किये जाँय। इसी चिंता में घुलने लगे किन्तु 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' की लोकोक्ति के अनुसार उन्हें आखिर रास्ता मिल ही गया। लाहौर मे उनका पूर्व परिचित एक तिरखान सिख जीवन रहता था। उसके घर जाकर ठहरे और उससे कहा एक बढ़िया सा खुरपा घास छीलने के लिये लाओ, उसे यह भी बता दिया कि मैं यहाँ गुरु जी का काम करने को आया हुआ हूँ। दूसरे दिन प्रात जीवन ने खुरपे का प्रबन्ध कर दिया और भाई विधीचन्द ने रावी के किनारे जाकर बढ़िया से बढ़िया घास छीला। जिसका गट्ठा बाँधकर चोक बाजार होते हुये, तथा खरीददारो को अधिक कीमत बताकर टरकाते हुए किले के द्वार पर आगया। दैवयोग से वह समय घोड़ों के दरोगे का बाहर जाकर टहलने का समय था। उस ने वह घास खरीद ली और विधीचन्द को वहाँ ले गया, जहाँ वे दोनों काबुली तुरंग बंधे हुये थे। भाई विधीचन्द ने मन ही मन ईश्वर को धन्यवाद दिया क्योंकि उसे इतनी जल्दी घोड़ों तक पहुँचने की आशा न थी।

घास लेने का यह क्रम सात दिन बराबर चलता रहा। दरोगा भाई विधीचन्द जी की उमदा और स्वच्छ घास को देखकर बहुत खुश होता था और वे घोड़े भी बड़ी प्रसन्नता से खाते थे। अत. दरोगा ने भाई विधीचन्द जी से स्थिर नौकर हो जाने के लिये कहा, भाई जी ने बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया। धीरे २ विधीचन्द जी घास लाने वाले की बजाय उन घोड़ों की हिफाजत, सफाई और ढंग से रखने के इंचार्ज ही हो गए। वे उनपर खुरहरा करते उन्हें साफ रखते, हाथ फेरते, पुचकारते इस प्रकार बड़े अच्छे ढंग से रखने लगे। कहा जाता है बादशाह शाहजहाँ ने घोड़ों का मुआयने करते वक्त विधीचन्द की तुरंग-सेवा से खुश होकर उसे इनाम दिया।

विधीचन्द ने मीठी वाणी, हँस मुख मिजाज और अपनी नम्रता से अस्तबल और उसके अलावा अनेकों नौकरों को मोहित कर लिया था। बड़ी मीठी २ और हँसने हँसाने वाली बातें बनाकर उसने उन जीनों को भी देख लिया था,जो इन घोड़ों के लिये सवा सवा लाख रु० से बनवाये थे। स्टोरकी ताली कुंजी कहाँ रहती है, यह सब कुछ भी पता लगा लिया था। इस सबसे बढ़कर चतुराई का काम उसने यह किया रात के समय किले से लगी हुई रावी मे पत्थर फैंक कर लोगों को यह समझने का आदी बना दिया कि यह धमाके यों ही होते रहते हैं या तो मच्छ-कच्छ लार लेते हैं,या किले की दीवारसे पानीकी टक्कर होने से पत्थर गिरते है। इसका फल यह हुआ कि जिस दिन विधीचंद घोड़ो को रावी मे कुदा कर ले गया किसी ने बाहर निकल कर देखने की चेष्टा तक न की।

उसके इरादे को पूरा करने मे एक मदद यह भी मिली कि अस्तबल स्टोर और दरवाजे के सभी नौकर उससे दावत का तकाजा करने लगे थे। उसने एक दिन उन सबको दावत दी और सर्वोत्कृष्ट शराब

[illegible] उपयोगी हुई और स्टोर से जीन निकाल [illegible] । किले में रावी में घोड़े के कूदने का घोर [illegible] होने के कारण किसी ने देखने का कष्ट नहीं [illegible] पार करके गुप्त स्थान पर पहुँच गया। जहाँ उसे देखकर सभी- [illegible] । भाई विधीचंद ने लाहौर के किले में [illegible] उसी हालत में केसरीपन जता दिया था।

[illegible] पछाड़ खाकर गिर पड़ा। अन्य [illegible] भी यह खबर पहुँची। [illegible] वह भी गुस्से से आग बबूला [illegible] किन्तु [illegible] कहाँ रक्खा था।

[illegible] । पर आश्चर्य तो यह है कि उन्हें [illegible] क्योंकि वह अकेला घोड़ा अपने [illegible]

[illegible] दिमाग से दूसरी तरकीब सोची। उन्होंने [illegible] ढंग से ज्योतिषी बनकर बाजारों में गुजरने [illegible] । जहाँ उनके पास शहर के लोगों की काफी [illegible] कि एक प्रसिद्ध ज्योतिषी यहाँ [illegible] तीनों लोक की बाते बता सकता हूँ।

[illegible] भाई विधीचंद महीनों रहे। वह भी उन्हें [illegible] ही बादशाह के पास ले गया।

[illegible] और कमाल पूर्ण ढंग से बाते कीं, कहा मेरे [illegible] जो हाल बताता हूँ इससे वे सब [illegible] स्थान से इधर आया हुआ हूँ। यहाँ भी पूछने [illegible] जरूर बता दूँगा। चोर का नाम [illegible] किन्तु मुझे क्या दक्षिणा मिलेगी [illegible] अगर तुम बिलकुल सही बता दोगे तो बहुत [illegible] (जो कि उस समय गणक बने हुए थे) ने कहा, बादशाह [illegible] लाने की मेरी सामर्थ्य नहीं है। ला तो वही सकता है जो समर्थ हो। और [illegible] स्थान दिखाइये जहाँ से घोड़ा खुल कर गया है। दरोगा ने 'गणक' जी को [illegible] जहाँ गुलबाग खड़ा था। गणक ने कहा, बिना [illegible] जीन [illegible] ? और अगर जीन भी ले गया तो वह कैसा था? बादशाह के हुक्म से दरोगा ने [illegible] जीन भी लाकर गणक के सामने रख दिया। गणक ने [illegible] किन्तु चूंकि अब दिन छिप चुका है, इस घोड़े पर जीन तो कल [illegible] चोरी गया है। जीन कस दिया गया। कहा मुझे एकान्त कोठरी बना दीजिए जिसमें बैठकर दो चार घड़ी में सभी बातें सोच लाऊँ।

'गणक' जी एक कोठरी में घुस गये और दो चार घड़ी के बाद घोड़े के पास पहुँचे उस पर

सवारी की और फिर बादशाह के महल के पास आकर आवाज दी। बादशाह, जिसने तुम्हारा पहला घोडा चुराया था। वही तुम्हारे इस दूसरे घोडे को लिये जा रहा है। चोर का पता बता रहा हूँ। इसलिये इनामात तुम्हे देने होंगे। मेरा नाम विधीचन्द है और गुरु हरिगोबिन्द जी का सेवक हूँ। घोड़ों के लिये कोई रंज न करना आपके यहाँ भी तो ये कीमत देकर नहीं आये थे। हम तो अपनी ही चीज को ले जा रहे है। ये घोडे तो काबुल से गुरु जी के लिये आये थे। उनकी चीज उन्हीं के पास पहुँचाई जा रही है। इतना कह कर विधीचन्द जी ने घोडे को किले पर से कुदाया और नीचे घोडा हवा हो गया।

सभी सिख सैनिको ने भाई विधीचन्द जी की तारीफ की। वास्तव में यह काम ही तारीफ का था। प्राणों की जोखिम की कोई भी चिन्ता न करके भाई विधीचन्द जी ने इस काम को पूरा किया था। गुरु भक्ति और धार्मिक श्रद्धा इसे ही तो कहते हैं।

भाई विधीचन्द द्वारा इस प्रकार घोडों का अपहरण किये जाने से बादशाह विक्षुब्ध हो उठा, उसने दरबार करके लल्लाबेग पठान को घोड़ा वापिस लाने और गुरु जी को पकड़ लाने का काम सौंपा।

फिर युद्ध

लल्ला बेग के साथ उसका भाई कमर बेग तथा दोनों पुत्र कासम बेग और शम्स बेग और भतीजा काबूलीबेग भी लड़ाई के लिये तयार हो गये।

चूकि इधर गुरु जी को खबर लग चुकी थी कि शाही सेनायें इधर चढाई करने की तैयारी कर रही है, तो उन्होने रायजोध की सलाह से एक ऐसे घने जगल मे जहाँ बीसियों कोस तक कहीं पानी का ठिकाना नहीं था सिर्फ एक तालाब ही था। अपने डेरे जा जमाये।

शाही फौज पहिले तो रुपचन्द के पिंड पहुँची वहाँ जब गुरु जी न मिले तो पता लगा कर उनके नये स्थान को चली। लल्लाबेग ने गुरु जी के दल का सही पता लगाने के लिये हसनबेग पठान को भेजा। उसने सिखों के दल मे गुरु जी के दर्शनार्थी के बहाने से सब हाल जानना चाहा किन्तु सिख उसे ताड गये। चूंकि बातचीत के सिलसिले मे उसके मुँह से निकल गया 'हमारी सेना बहुत ज्यादा है।' इस पर सिखो ने उसे पीटना शुरू किया। गुरु जी ने उसे छुडा दिया और प्यार से अपने पास बिठाकर शाही लश्कर की सारी बाते पूछ लीं। जब लल्लाबेग को यह पता चला कि इससे गुरु जी ने इधर का भेद ले लिया है तो उसने क्रोध के मारे हसनखां को निकाल दिया।

जगल के निकट पहुँच कर लल्लाबेग की आज्ञा से कमरबेग सात हजार का गिरोह लेकर गुरु जी को पकडने के लिये आगे बढा। उसके मुकाबिले के लिये एक हजार सैनिको के साथ रायजोध मैदान मे आये। हसनखा ने कमरबेग और उसके साथियो के बलाबल का सब ब्यौरा गुरु जी और रायजोध को जता दिया। उस समय दिन छिप चुका था। तुरक सेना मसाले लेकर जगल मे घुस रही थी, रायजोध ने अपने साथियों से कहा तुम दूर दूर तक फैल जाओ और दाये बायें और सन्मुख तीनों ओर से गोलियों की वर्षा करो। पहले ही फायरों मे मसालची मारे गये अधेरा होते ही मुगल सिपाही इधर उधर भागने लगे किन्तु जिधर भी जाते उधर से ही गोलियों की वर्षा होती बिचारे दिन भर के थके हुए रास्ते से अजान और भूख प्यास से त्रस्त घबरा गये और यहाँ तक घबराये कि दुश्मन के धोखे मे आपस मे भी लड़ बैठे। ऐसे अवसर पर रायजोध ने लपक कर कमरबेग का सामना किया और नेजे से छेद कर मार डाला। इस तरह पहला खेत सिखों के हाथ रहा। गुरु जी ने रायजोध की भूरि २ प्रशसा की।

सवेरे जब लल्लाबेग ने अपने आदमियों की लोथ पर लोथ पडी देखी तो वह गुस्से से लाल

पीला हो गया और आज के मोरचे पर शम्सबेग को भेजा। गुरु जी ने विधीचन्द को आज्ञा दी। भाई-विधीचन्द डेढ़ हजार सैनिक लेकर शम्सबेग की सेना के मुकाबिले में आये। दोनों ओर की सेनायें दिल भर कर लड़ीं, अनेकों सिख सैनिक धाराशायी हुए किन्तु ज्यादा आदमी मुगलों के ही मारे गये। अंत में शम्सअली और विधीचन्द दोनों भिड़ गये, पहले तलवार और नेजों से और अंत में द्वन्द युद्ध करने लग पड़े। विधीचन्द जी ने शम्स बेग का पछाड़ दिया और उसे बीच से चीर कर दो बना दिये।

शम्सबेग को मैदान में काम आया देखकर लल्लाबेग क्रोध से कांपने लगा और उसने ललकार कर कहा क्या मेरी फौज में ऐसा कोई नहीं है जो इनका बदला लेने का दम रखता हो, कासिम आगे बढ़ा और उसने कहा आप चिन्ता न करें मैं सब देख लूंगा। इसके मुकाबिले के लिये गुरु जी की आज्ञा से भाई जेठा पांच सौ सवारों के साथ सामने आया। दोनों ओर से एक जोर की भिड़न्त हुई, जिसमें कासिम जेठा जी द्वारा मारा गया।

बस अब इसके सिवा कोई चारा न था कि खुद लल्लाबेग ही मैदान में आये। इसलिये उसने समस्त शेष सेना को साथ लेकर हमला किया। भाई जेठा जी का घेरा देकर चारों ओर से तीर बर्छे और गोलियों की वर्षा होने लगी। भाई जेठा बड़ी बहादुरी से वार बचाते हुए, शत्रुओं का नाश करने लगे, यह देखकर लल्लाबेग ने खुद आगे बढ़कर भाई जेठा पर वार किया और दूसरे वार में उन्हें धरती पर सुला दिया। जेठा जी को मारने के बाद लल्लाबेग का हौसला बढ़ गया, इसलिये छंटे हुए तीन हजार आदमियों के साथ उसने गुरु जी की ओर धावा करना चाहा किन्तु सिंघे के बेटे जीतमल ने बीच में ही आकर उनका रास्ता रोक लिया, पर जीतमल अधिक देर तक लल्लाबेग के आक्रमण को न सहार सका। अतः वह चोट खाकर बेहोश हो गया। यह देखकर गुरु जी आगे बढ़े और लल्लाबेग से कहा आओ, हम तुम दोनों ही निपट लें किन्तु लल्लाबेग दूर से ही तीर चलाता रहा, पास नहीं आया, अत में गुरु जी ने एक तीर छोड़कर उसके घोड़े को मार डाला और आप भी घोड़े से कूद कर उसके पास जा पहुंचे। दोनों ओर से तलवार चलने लगीं। लल्लाबेग के वार खाली गये। गुरु जी ने उसके सिर के दो टुकड़े कर दिये।

अब केवल काबुलीबेग बाकी था। वह बड़े गुस्से के साथ आगे बढ़ा। इधर जीतमल भी होश में आ गया था अतः वह भी तुरक सेना में घुस पड़ा। रायजोध और भाई विधीचन्द भी जौहर करने लगे। अपने आदमियों का इस तरह का विनाश होते देखकर काबुलीबेग ने ऐसी तीरों की वर्षा की। जिससे ये तीनों सिख शूरमा जख्मी हो गए। यह देखकर गुरु जी फिर आगे बढ़े। काबुली बेग ने गुरु जी पर भी तीरों की ऐसी बौछार की कि उनका दिलबाग घोडा जख्मी होकर गिर पडा। घोड़े के मरते ही गुरु जी ने तुरन्त काबुलीबेग के घोडे को जमीन पर पटक दिया। फिर दोनों ही तलवारें लेकर लडने लगे। बहुत देर तक गुरु जी बचाव करते रहे और काबुलीबेग वार। जब बहुत हो चुका तो गुरु जी ने एक ही हाथ ऐसा मारा कि काबुलीबेग का सिर धड़ से दूर जा गिरा।

समस्त सेना नायकों के मारे जाने पर मुगल सेना के रहे सहे सिपाही मैदान छोडकर भाग निकले, इधर गुरु जी ने अपने प्यारों को ढूंढा और उनका अग्नि संस्कार कराया।

रायजोध ने गुरु जी को सदैव अपने यहाँ रहने की प्रार्थना की किन्तु गुरु जी ने उससे कहा जब भी तुम चाहोगे तभी हम दर्शन दे जाया करेंगे।

अमृतसर के दो सिख एक दिन गुरु जी की सेवा में हाजिर हुए, वे दोनो पिता पुत्र थे। पिता ने

चित्र

कहा गुरु जी महाराज ! मेरे लडके ने चित्रकला सीखी है, हमारे लायक कोई सेवा बताइये। विधीचन्द ने इशारा किया कि गुरु जी का ही चित्र बनाओ, लडके ने हूबहू अथवा बहुत ही भव्य चित्र बनाया, जिसे गुरु जी ने विधीचंदजी को दे दिया किन्तु वह चित्र दुर्भाग्य से इस समय अप्राप्त है।

इसमे कोई सन्देह नहीं गुरु जी इस पठान को बहुत चाहते थे, छोटे से को अपने पास रक्खा था। दूध पीने के लिये इसको भैंस खरीद दी थी। खाने और पहरने की जो बढ़िया चीज आती, इसे देते।

पैंदे खॉ से बिगाड

ब्याह शादी भी इसके अपने ही खर्च से किये। इसके खाने पहरने पर सब सिखों से अपेक्षाकृत ज्यादा खर्च होता था। एक दिन चित्रसेन नाम का एक शिष्य एक घोड़ा एक बाज एक पोशाक और कुछ हथियार गुरु जी की भेंट के लिये लाया। उनमें से सिवा बाज के सब चीजे गुरुजी ने पैंदेखॉ को देदीं। और उसे आज्ञा दी हमारे दरबार मे इसी पोशाक मे तुम हाजिर हुआ करो, घोडे समेत पैंदे खॉ घर आया। उसके जमाई ने वस्त्र, शस्त्र और घोडे को देखकर सवाल किया कि ये चीजे मुझे दे दो। पैंदे खॉ ने पहले तो मना कर दिया किन्तु उसके यह धमकी देने पर कि अगर मुझे यह चीजे नहीं मिली तो मैं तुम्हारी लडकी को छोड़ दूँगा। पैंदे खॉ की स्त्री ने सब चीजें जमाई असमान खॉ को देदी। दूसरे दिन असमान शिकार खेलने गया, वहां उसे वह बाज भी मिल गया जो चित्रसेन ने गुरु जी को भेंट किया था और जिसे गुरुदित्ता उड़ाने के लिये ले गये थे। शाम को असमान खॉ बाज को घर लेकर आ गया। पैंदेखॉ ने उससे बहुत कहा कि इस बाज को लौटा देना है किन्तु असमानखॉ राजी नहीं हुआ।

गुरु जी को इन बातों का पता लग गया। उन्होंने पैंदेखॉ को दरबार मे बुलाया, गुरु जी चाहते थे कि पैंदेखॉ उनके सामने सही बात पेश करे किन्तु पैंदेखॉ ने सरासर झूठ बोला, उसने कहा आपकी दी हुई चीजें मैंने किसी को नही दीं। आपका बाज भी मेरे यहॉ नहीं है। गुरुजी के इशारे से विधीचंद जी पैंदे के घर जाकर सब चीजों को ले आये थे। गुरु जी ने विधीचंद जी से वह चीजे पेश कराई और कहा, इस झूठ की यही सजा है कि इसे यहॉ से निकाल दिया जाय।

पैंदेखॉ ने घर लौट कर असमानखॉ को सारा किस्सा सुनाया और दोनों ने बदला लेने की प्रतिज्ञा की। आसपास के मुसलमानों को भड़का कर उसने पॉच सौ आदमियों का गिरोह इकट्ठा कर लिया। फिर जलधर के हाकिम कुतुबुद्दीन के पास पहुँचा और उससे सहायता मागी। वह पहले ही जलाभुना बैठा था पैंदेखॉ की सहायता करना स्वीकार कर लिया।

कहते हैं पेशावर का हाकिम कालेखॉ भी गुरु जी से लड़ने को तैयार हो गया।[१] अनवरखॉ का दोस्त अब्दुल्लाखॉ भी दो हजार सिपाहियों के साथ कालेखॉ के साथ हो लिया। यह लश्कर करतारपुर की ओर बढ़ा।

गुरु जी से भाई जीतमल ने कहा, महाराज ! तुर्क दल टिड्डी की नाईं चला आ रहा है। हमें तत्परता से सामना करने के लिये तैयार होना चाहिये। गुरु जी ने कहा, चिन्ता करने की कोई बात नहीं है, तुम पॉच सौ सैनिक ले जा कर नाके को घेर लो। अमीचंद, मिहरचंद और भाई लब्बू जीतमल के साथ हुए। अँधेरी के फैलते ही तुर्कों का एक बीस हजार का दल करतारपुर पर हमला करने को आगे बढ़ा

१. सिख इतिहास मेकालफ कृत।

किन्तु सिख सिपाहियों ने झाड़ियों में से तीर और गोलियों की वर्षा आरम्भ कर दी। कुछ सिख सिपाही मुगलों के लश्कर में भी घुस गये। रात का समय कौन किसे पहचानता है? ऐसी गड़बड़ी हुई कि मुगल सैनिक आपस में भी लड़ने लगे और इस तरह यह दल अपना ही नुकसान करने लगा। कुतुबखाँ ने चारों ओर से अपना ही दल नष्ट होते देखकर कालेखाँ से कहा, रात में लड़ाई छेड़ कर हमने सब से बड़ी गलती की है। इस घोर अंधेरे में कौन किसे पहचानता है। आंधी की धूल ने और भी गोलमाल कर दिया है। फौज का पिछला हिस्सा आगे बढ़ने से घबरा रहा है, हमारे आदमियों की लोथ पर लोथ बिछ गई है। पैंदेखाँ ने कहा, आप सारी फौज को आज्ञा दीजिये कि करतारपुर पर चारों ओर से हमला करें, सिखों में हम लोगों के मुकाबले का है ही कौन? इस बात को सुन कर कालेखाँ कुढ़ गया और कहने लगा अगर सिख गाजर मूली ही हैं, वे लड़ना भिड़ना नहीं जानते और तुम्हारे मुकाबिले के नहीं हैं तो इतने दिन से लाहौर क्यों पड़े रहे और क्यों इतनी बड़ी फौज लाये हो और तुम खुद ही आगे क्यों नहीं बढ़ते हो। कालेखाँ के इस उलाहने से तिलमिला कर पैंदेखाँ और उनका जमाई मसाले हाथ में लेकर अगुआ बने। कुतुबखाँ, कालेखाँ, और अनवरखाँ भी अलग-अलग जत्थे लेकर तीर की भांति करतारपुर की ओर बढ़े। भाई बिधीचंद, जीतमल, रायजोध और लख्खू ने उनका रास्ता रोका। तीरों और गोलियों की इस कदर वर्षा की कि तुरक दल को आगे बढ़ना मुश्किल हो गया। जो भी आगे बढ़े वही जमीन पर पटक दिया जाय। अनवरखाँ गुरु जी से बदला लेने को बहुत उतावला हो रहा था उसके बिधीचंद ने ऐसे जोर का तीर मारा कि कलाबुण्डी खा गया।

पठान, मुगल और सैयद अल्लाहो अकबर के नारे लगा कर आगे को बढ़ते थे किन्तु सिखों के व्यूह को तोड़ना उनके लिये मुश्किल हो रहा था। लड़ते २ सूरज निकल आया। मुसलमान अफसरों ने देखा सेना आधे से भी कम रह गई है और सारा मैदान लोथों से भर गया तो वे बड़े चिढ़े और पैंदेखाँ से कहने लगे तू तो डींगें मारता था कि सिख लड़ना क्या जानते हैं। अब तक उनकी जीतें मेरे ही सबब हुई हैं और जाते ही गुरुजी को पकड़ लाऊँगा, इन छः घटों की लड़ाई में तो तू कुछ भी नहीं कर सका। पैंदेखाँ ने कहा, मैं आगे चलता हूँ और बराबर आगे ही बढ़ता जाऊँगा, तुम पीछे से तो मेरी मदद करो। यह कहकर दोनों ससुर जमाई चल पड़े। मुगल सेना भी द्रुत गति से आगे बढ़ी। दोनों ओर के वीर भिड़ गये। सिखों में क्या अब बालक और क्या बुड्ढा सभी शक्ति से अधिक जौहर दिखाने लगे। उस समय माता नानकी महल के ऊपर से युद्ध देख रही थीं। अपने अल्प वर्षीय पुत्र श्री तेग बहादुर जी के रण कौशल को देखकर चकित रह गईं। सब सिख इसी प्रकार जौहर दिखा रहे थे। कुतुबखाँ गुरु जी पर तीर छोड़ने लगा किन्तु वे उसके तीरों को काट काट कर बेकार करने लगे। गुरुजी भी इस समय तीरों की मेंह की भांति वर्षा कर रहे थे। कुतुबखाँ ने यह देखकर गुरुजी की ओर धावा किया किन्तु भाई लख्खू ने उसे बीच में ही अटका लिया और एक सनसनाता हुआ तीर मार कर जमीन पर लिटा दिया। यह देखकर मुसलमानों के एक गिरोह ने भाई लख्खू को घेर लिया। पौने घंटे तक भाई जी अकेले ही हजारों के गोल में लड़ते रहे और इस प्रकार दोनों हाथों से तलवारें घुमाने लगे कि किसी का वार उनके शरीर तक नहीं पहुँचे और जो उनकी चपेट में आ जाय उसके टुकड़े २ हो जावें। इतने में कुतुबखाँ को होश आ चुका था। उसने लेटे हुए ही भाई जी के पैरों में एक तीर मारा, जिससे वे गिर पड़े। फिर क्या था। कुतुबखाँ ने गिरे हुए भाई लख्खू का सिर काट लिया।

लख्खू के मारे जाने से मुसलमान अफसरों को साहस हुआ और कालेखाँ, कुतुबखाँ,

और असमानखाँ को साथ लेकर गुरुजी की ओर झपटा किन्तु बिधिचंद जी ने काले खाँ को और बाबा गुरदित्ता जी ने असमानखाँ को आगे बढ़ने से रोक दिया। पैंदेखाँ गुरुजी तक जा पहुँचा और कहने लगा, तुमने मेरा जो अपमान किया है आज उसका बदला ले लूंगा। गुरुजी ने कहा, पैंदेखाँ बहादुर लोग बहुत सी बातें नहीं बनाते, जब रणभूमि में आडटा है तो अपना वही काम कर जो इस समय करना चाहिये। यह सुनकर पैंदेखाँ भूखे बाघ की भांति गुरुजी पर टूटा किन्तु उसका वार खाली गया। फिर दूसरा वार किया। गुरु जी ने कहा पैंदेखाँ तू दिल भरकर वार कर ले। जिससे पीछे तू न कह सके कि मैं इस हथियार से और उस प्रकार वार न कर सका। पैंदेखाँ वार करता रहा और गुरुजी बचाते रहे। अंत में गुरुजी ने कहा पैंदेखा मुझे तेरे लिये मारना न पड़े और शायद तुझे सुबुद्धि आजावे इसलिये अब तक छोड़ा किन्तु अब सँभल जा। और देख वार ऐसे किया जाता है, यह कहते हुये खड्डे का ऐसा हाथ जमाया कि पैंदेखाँ जख्मी होकर जमीन पर गिर पड़ा। उसे जमीन पर गिरता देखकर गुरुजी को तरस आगया और उसके मुँह पर ढाल रख दी कि इसे धूप न लगे।[1]

बाबा गुरुदित्ता जी का एक तीर इधर पैंदे के जमाई अस्मान खा की आँखों में लगा। जिससे वह पैंदे का साथी ही होगया। सामने से कुतुबखां तीरों की वर्षा कर रहा था. इसलिये गुरु जी ने एक तीर मारकर उसके घोड़े को बेकार कर दिया। तब कुतुबखाँ तलवार लेकर गुरुजी से आ भिड़ा। लगभग एक घंटे तक लड़ता रहा अंत में गुरुजी ने उसका भी खात्मा कर दिया। अब मुसलमान सेनापतियों में अकेला कालेखाँ ही रह गया था। वह भी गुरुजी के सामने आया और वीरता के साथ कितनी देर तक लड़ता रहा। गुरुजी को जख्मी भी किया किन्तु उनसे बेचारा फतह क्या पा सकता था। दुधारे खण्डे की वह भी भेंट होगया। रहे सहे सैनिक भाग गये कुछ अपने घरों को चले गये और कुछ लाहौर जा पहुँचे।

कहते हैं उस युद्ध में मुसलमानों के तो हजारों ही आदमी मारे गये थे किन्तु सिख केवल सात सौ ही काम आये थे। यह घटना १६९१ विक्रमी के असाढ़ महीने की है।

बुड्ढनशाह पहुँचे हुए फकीर थे। उनकी उम्र सौ से ऊपर पहुँच चुकी थी। उनके पास गुरु नानकदेव जी की दूध की अमानत थी। पहली मुलाकात में उन्होंने वह गुरदित्ता जी को सौंप दी थी। इस समय उनका शरीर किनारे पर आ पहुँचा था, अत इस युद्ध से निवृत होते ही जल्दी ही गुरुजी मय लश्कर और परिवार के बाबा बुड्ढनशाह के पास पहुँचे उन्हें दर्शन से संतुष्ट करके कीरतपुर पधारे जहाँ अपने घावों की मरहमपट्टी की। उनका दिलबाग घोड़ा भी लड़ाई में काफी जख्मी होगया था अत. उसने अपने प्राण दे दिये। समस्त सिख बाबा बुड्ढनशाह के पास ही ठहरे हुए थे अतः उन्होंने अपने प्राण त्याग के लिये यह शुभ अवसर समझा, दूसरे दिन गुरु जी भी कीरतपुर से बुड्ढनशाहजी के पास आगये। बुड्ढनशाह ने उनके चरण पकड़ कर प्रार्थना की सच्चे बादशाह मैं तुम्हारा दास हूँ।

बुड्ढन शाह

सब लोग तो गुरुजी के साथ कीरतपुर गये थे किन्तु धीरमल जी अपनी माता जी समेत करतार पुर ही रह गये थे, वे चाहते थे कि भाई बिधीचंद जो उन दिनों ग्रन्थ साहब जी का उतारा कर रहे थे अपना काम पूरा करने के लिये ग्रन्थ साहब जी को साथ ले जाँय किन्तु धीरमल ने न मिलने का बहाना करके उन्हें टाल दिया।

धीरमल के अकृत्य

१ शत्रु पर भी इस प्रकार के उदारतापूर्ण व्यवहार करने की चर्चा सिख गुरुओं और उनके अनुयाइयो के इतिहास में काफी मिलती है।

बन्दी छोड़ गुरु



श्री हरिगोविन्द जी

बाल गुरु



श्री हरिकृष्ण जी

[illegible] इस संसार से प्रस्थान कर गये। उनके स्वर्गवास की [illegible] उन्होंने एक मृतक को उसके अभिभावकों [illegible] जिला दिया। जब गुरु जी को पता [illegible] और कहा, "करामात दिखाने के [illegible] कार्य किया है अतः तुम संसार में [illegible] गुरु के इस वचन को पूरा करने के लिये गुरुदित्ता जी [illegible] स्थान पर जाकर सदैव के लिये समाधि लगा गये। इधर [illegible] स्थान पर पहुँचे तो वहाँ केवल गुरुदित्ता जी का [illegible]।

[illegible] उन्होंने धीरमल जी को जोकि बाबा गुरदित्ता जी के जेठ पुत्र थे। [illegible] भेजा कि ग्रन्थ साहब जी का भी लेते आवें। [illegible] पहुँचा तो उन्होंने आने से साफ इन्कार कर दिया और [illegible] दिया पगड़ी मेरे छोटे भाई हरिराय को बंधा [illegible] नहीं छोड़ सकता। धीरमल ने सोचा था कि [illegible] हरिगोविन्द जी के बाद सिक्ख मुझे ही तो अपना गुरु मानेंगे।

भावी गुरु हरिराय जी

[illegible] ने ग्रन्थ साहब [illegible] लिया था उतने ही का पाठ किया गया। इस [illegible] भी बुला लिया था। पारिवारिक जन और सम्बन्धी सभी इकट्ठे होगये थे। संगत भी आगई थी। जब लोग रज करने लगे तो गुरुजी ने आध्यात्मिक उपदेश देकर सब को शान्त किया। अन्त में गुरुजी ने सबको सूचित किया कि धीरमल बुलाने पर नहीं आया है और न उसने ग्रन्थ साहब को भेजा है। वह माया में लिप्त होगया है, अतः पगड़ी उसके छोटे भाई हरिराय जी के बांधी जानी चाहिये।

अनूपशहर में दयाराम नाम का एक सिक्ख अपने परिवार समेत उधर की संगत के साथ गुरुजी के दर्शन के लिये आया था। उसने अपनी लड़की का विवाह हरिराय जी के साथ करने की प्रार्थना की। गुरुजी ने दयाराम के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और १० हाड संवत १६९७ में यह शुभ विवाह होगया।

इन दिनों गुरु जी उदास रहते थे। वह कभी अपने उद्यान में निकल जाते। कभी एकान्त में बैठ कर चिन्तन करते। उपदेश भी इन्हीं बातों पर करते कि जो इस संसार में आता है। उसे एक दिन जाना पड़ता है। इसलिये मनुष्य को जीवन भर सतर्क रहना चाहिये। कोई भी धब्बा अपने ऊपर नहीं लगने देना चाहिये।

एक दिन उनसे गुरु अमरदास जी के पड़पोते मनोहर जी के पुत्र अनंदराय जी गोविन्दवाल से चल कर मिलने आये तो आप उन्हें देख कर इतने प्रसन्न हुए कि उनकी पालकी के नीचे लग गये। उनका अपने महलों में ठहरने का प्रबन्ध किया।

धीरमल के लिये गुरु जी ने बुलाने को फिर भी आदमी भेजे किन्तु वह नहीं आया। कहते हैं उसने यह भी कहला भेजा था, हरिराय को गुरु बना कर आप मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं। जब उसकी माता जी ने उसे ऊँच, नीच और हिताहित की बातें कह कर बहुत समझाया तो वह गुरु जी के पास गया। गुरु जी ने उसे प्यार के साथ अपने पास बिठाया। वह वहाँ रहने लगा। एक दिन आप ही ने घोषणा करदी, मैं सिखों का गुरु हूँ। इससे गुरु जी उससे बहुत नाराज हुए, तो वह यह कहता हुआ वापिस लौट गया। मैं तो अपने बल पर गुरु बनूंगा।

सचखंड प्रस्थान

अपने अन्त समय को निकट जानकर उन्होंने सब संगतों के पास कीरतपुर आने के निमंत्रण पत्र भेज दिये। कीरतपुर में उन दिनों होली का उत्सव मनाया जा रहा था, गुरु जी सिखों को मादक चीजों के त्याग पर उपदेश दे रहे थे। बाहर से आने वाली सगतों ने भी इन उपदेशों का लाभ उठाया। इस होलकोत्सव के बाद नियत किए हुए दिन एक विशाल दीवान हुआ और उसी अवसर पर हरिराय जी को गुरुआई बख्शी गई। गुरु जी ने नये गुरु जी को पिछले गुरुओं का आदर्श निभाहने के लिये उपदेश भी दिया और फिर रबाबियों ने कीर्तन किया।

इसके बाद गुरु जी सतलज के किनारे चले गये। जहाँ पहले से ही पतालपुरी नाम की एक सुन्दर कुटी बना रक्खी थी। इस एकान्त स्थान में वाहिगुरु का स्मरण करने लगे।

एक दिन बीबी वीरों ने पतालपुरी पहुँच कर रोते हुए कहा मेरी माता मुझे छोड़ कर पहले चल बसी हैं। अब आप भी जाने की तयारी कर रहे हैं। पिता और माता जिसके कोई नहीं हो उसका जीवन कितने दुःख का होता है। मेरा तो इस बात की कल्पना से ही हृदय फटता है। गुरु जी ने बीबी को धीरज देते हुए कहा, बेटी यह तो संसार का खेल है, पैदा होता है वह विनष्ट भी होता है, मेरे लिये कोई शोक न करना, परमात्मा का स्मरण करना।

गुरुहरि गोविन्द जी के जीवन पर एक दृष्टिपात

गुरु हरिगोविन्द जी का जमाना मुस्लिम शासकों की बदहवासी का जमाना था। जिसमें न्याय और विचार को बहुत कम स्थान था। किसी को सताने के लिये मुस्लिम शासकों को कारण जानने और ढूंढ़ने की आवश्यकता शायद महसूस न थी। वे चाहे जिस पर अत्याचार करने में कुछ भी आगा पीछा नहीं सोचते थे। पंजाब तो ऐसे अत्याचारों का केन्द्र बना हुआ था। गुरु हरिगोविन्द जी ने यह दशा देखी तो इसके प्रतिकार के लिये उन्होंने तलवार धारण की अर्थात् भक्ति के साथ ही वीरता का उपदेश देने का भी उन्होंने काम अपने हाथ में लिया और फल यह हुआ, उनका समुदाय धर्मप्रिय के साथ ही अन्यायी और अत्याचारों का मुकाबिला करने वाला भी बन गया।

गुरु जी के सारे जीवन पर जब हम दृष्टि डालते हैं तो ऐसा मालूम होता है कि उनका सारा जीवन संघर्ष में बीता। उन्हें शांति से बैठने और आराम करने का कभी ही अवसर मिला हो किन्तु फिर भी वे इस बात से पूरी तरह सतर्क रहते थे कि सिखों में कोई त्रुटि तो पैदा नहीं हो रही। भाई गुरुदास जी जैसे पुराने सिख को भी उन्होंने नम्र बनने के लिये ताड़ना दी। नशेबाजी को बन्द करने के लिये कड़े शब्दों में उपदेश दिया। जरा सा भी समय मिलते ही भक्तों और शिष्यों के पास पहुँचते, पैंदे खाँ की लड़ाई के दूसरे ही दिन बुड्ढन शाह की खबर लेने पहुँचे।

उन्होंने अपने जीवन में अच्छी से अच्छी और प्यारी से प्यारी चीज से मोह नहीं किया।

नवॉ अध्याय

गुरु हरिराय जी की जीवन यात्रा

गुरु हरिराय जी साहब का जन्म बाबा गुरुदित्ता जी के घर माता निहालकौर जी के उदर से माघ सुदी २ संवत १६८६ वि० में हुआ था। उनके पिता जी का स्वर्गवास इनकी बाल्य-अवस्था में ही होगया। यह गुरु हरिगोविन्द जी महाराज के पौत्र थे।

आपका स्वभाव बड़ा दयालु था। अतः आप शिकार करने भी नहीं जाते थे। वैसे आपके यहाँ कई हजार सैनिक तैयार रहते थे किन्तु युद्ध का मौका ही नहीं आया।

सभी यात्री

संवत् १७०६ वि० में रूम के बादशाह का वकील भारत के मुगल सम्राट् के दरबार में आया। पंजाब में उसने सिख गुरुओं की प्रशंसा सुनी। इसलिये वह दर्शन के लिये गुरु हरिराय जी के दरबार में भी पधारा। वहाँ उसने दीवान, कड़ाह प्रसाद, सिखों की धार्मिकता, गुरु जी के स्वभाव और रहन सहन सबको देखा, इससे उसके दिल पर बड़ा असर पड़ा। उसने एक प्रश्न भी किया कि महाराज :—"सांसारिक कष्टों से छुड़ाने में कौनसा पैगम्बर (अवतार) मदद दे सकता है?" गुरु जी ने कहा संकटों से तो अपने शुभ कर्म ही छुड़ा सकते हैं। अवतार और पैगम्बर भी तो अपने कर्मों के ही फल से कोई बनते हैं। इस यथार्थ उत्तर को सुनकर राजदूत बहुत प्रसन्न हुआ और गुरु जी की भूरि २ प्रशंसा करने लगा।

दाराशिकोह का इलाज

बादशाह शाहजहाँ के चार पुत्र थे। चारों ही इस दाव पेच में थे कि बादशाह के मरने पर गद्दी हमें मिले। कहते हैं इसी उद्देश्य से औरंगजेब ने कोई जहरीली चीज दारा को खिलादी। अनेक लोगों ने उसका इलाज किया। किन्तु अच्छा ही न हो सका। वैद्य हकीमों ने आखिर में कहा यदि दस तोले वजन की हरड़ और एक मासे की लौंग आवें तो दारा चगा हो सकता है। इस पर पीरहसन अली ने बादशाह से कहा, संभवतया ये चीजे गुरु हरि-राय जी के औषधालय में प्राप्त हो सकती है। बादशाह ने अपने आदमी गुरु जी के पास भेजे गुरु जी ने यह चीजें दे दीं, जिनके खाने से दाराशिकोह अच्छा होगया। इस अहसान से प्रेरित होकर संवत् १७०७ में दारा गुरु जी के दर्शनों के लिये आया।

बिलासपुर का राजा गुरु जी के दर्शनों के लिये आया। उसने रास्ते में ही सोचा था कि यदि जाते ही कड़ाह प्रसाद मिल जाय तो मैं गुरु जी की महान् कृपा समझूंगा। उसे जाते ही कड़ाह प्रसाद

राजा विलासपुर

मिला। उसने समझ लिया गुरु जी अन्तर्यामी हैं। यहाँ पर उनके उपदेशों ने उसके दिल पर इतना असर डाला कि वह गुरु जी का प्रेमी वन गया।

इसी तरह कुठाह का राना भी गुरु जी के दर्शनों के लिये आया। वह वहुत दिन से वीमार था, सो थोड़े ही दिनों मे चंगा हो गया।

राजा वाजवहादुर ने गुरु जी के दर्शन और उपदेशो से संतुष्ट होकर उन्हे एक हाथी भेंट किया। इसी तरह अनेकों राजे रईस गुरु जी के दर्शनों को आने लगे।

राजे रईसों की तरह ही अनेकों गरीव भी गुरु जी के दर्शनों की प्यास से आते थे। वे भी आकर अपनी श्रद्धानुसार भेट देते थे और आत्म संतोप प्राप्त करते थे। एक दिन एक माई श्रद्धा से प्रेरित होकर रोटी घी और चीनी मे तर करके लाई और सभा मे वैठ गई। सभा के खतम होते ही गुरु जी ने आवाज लगाई, ला, माई रोटी मेरे लिये तो भूख लग रही है। माई श्रद्धा से गद्‌गद् हो गई उसने अपने जीवन को सफल समझा। राजा महाराजा भी जो उस समय आए थे गुरु जी की इस दयालुता को देखकर चकित रह गये।

गृहस्थियों की भांति ही साधुसंत भी उनके दर्शनों को आते थे और उनमे से अनेक तो सिख धर्म को भी धारण कर लेते थे। संवत् १७०७ में ऐसा ही एक गिरोह गिर गुसाईं का वोध गया से आया। उसने पंजाव मे ज्वालामुखी देवी के मेले मे गुरु जी के सम्वन्ध मे सुना था गुसाईं मय अपने साथियों के गुरु जी के पास हाजिर हुआ उसने दर्शनों और उपदेशों से भी लाभ उठाया।

कुछ दिन के वाद गुरु जी यात्रा पर निकले। यह यात्रा उन्होंने सवत् १७०८ मे आरम्भ की। सवसे पहले अमृतसर पहुँचे। रास्ते मे करतारपुर मे अपने भाई धीरमल से भी मिले। यहाँ दीवाली के मेले तक रहे। उस समय मे दूर २ से अनेकों संगतें दर्शन के लिये आईं जिन्हे आपने अपने मनोहर उपदेशों और दर्शनों से सतुष्ट किया। यहाँ से फिर करतारपुर आगये और लगातार १० महीने रहे। वैसाखी कर्तारपुर मे ही हुई। यहाँ पर भी दूर दूर से सिख लोग दर्शनों को आते रहे। करतापुर से नूरमहल आये जहाँ का दीवान गुरु जी के याद करने पर भी उनके पास नहीं गया। अपने नौकर द्वारा कहलवा दिया कि दीवान जी तो सो रहे हैं, दैवात उनका छत गिर पडा और सदा के लिये सोता ही रह गया। यहाँ नूरमहल मे भी वहुत सी संगतें गुरु जी से मिलने आईं। फतहशाह औलिया भी गुड़ की भेली और रुपयों की थैली लेकर हाजिर हुआ। गुरु जी ने उपदेश देकर उसे निहाल किया। यहां के चौधरी सूद के घर पुत्र नहीं पैदा होता था। गुरु जी के प्रसाद से जव उसका पुत्र पैदा हो गया तो वह वड़ा प्रसन्न हुआ। गुरु जी ने उससे इस खुशी मे वहा पर पानी का कुआँ वनवाने के लिये आज्ञा दी। उसने कुआँ वनवा दिया।

यात्रा

नूरमहल से चलकर गांवों मे प्रचार करते हुए गुरु जी डलोरी गांव मे पहुँचे जहाँ पर कि गुरु हरिगोविन्द जी के नाम का एक कुआं था। उसकी मरम्मत करवाई।

मालवे की सगते भी गुरु जी से उधर चलने के लिये आग्रह कर रही थीं। अत. गुरु जी सतलज को पार करके मालवे देश मे पहुचे। वहां पर धारीवाल, भूलर, कौड़े और गिल के जाट जमीदारों ने गुरुजी और उनके दल की खूब सेवा की।

भाई कालू ने एक दिन गुरु जी को प्रसन्न देख कर अपने भतीजों को उनकी सेवा में हाज़िर किया। वहा वच्चों ने पहुँच कर अपने पेट को वजाया गुरु जी के पूछने पर उसके चाचा ने कहा कि महा-

राज गढ़ अपनी भूख मिटाने के लिये आपकी सेवा में हाजिर हुये हैं, जिस पर गुरु जी ने वर दिया कि इनके घोड़े जमुना नदी में पानी पियेंगे। और इनके पास बहुत से हाथी होंगे।

जब कालू जी की चौधराइन ने यह बात सुनी तो उसने अपने बेटे को भी गुरु जी की सेवा में भेजा। उसे भी गुरु जी ने वर दिया कि तुम्हारे संतान के हाथ में जागीरें होंगी। जिससे आनन्द का जीवन बिताने में कोई कठिनाई नहीं होगी। पटियाला, नाभा, जीन्द तीनों राज्य उसी कुल के राज्य हैं और काल्‍ जी की संतान के हाथ में लोहगढ़ और गुमटी की जागीरें हैं।

मालवा देश का भाई भगतू गुरु अर्जुनदेव जी के समय में ममन्द था। जब उसका अन्तकाल हो गया तो उसकी जगह उसके पुत्र जीवन और गोरे को दे दी गई। गुरु हरिराय जिस समय मालवे में विचर रहे थे। उस समय भाई भगतू का पुत्र गोरा अपने बाहुबल से भटिंडे का अधिपति बन चुका था। उसने गुरु जी को एक सुन्दर घोड़ा और ५००) भेंट किये। गुरु जी जब वहां से करतारपुर के लिये रवाना हुए तो सरदार गोरा उन्हें पहुँचाने के लिये मय अपने बहादुर बैराड जाटों के करतारपुर तक गया। रास्ते में एक पठान हाकिम ने अपने दस हजार आदमियों के साथ हमला करके गुरु जी के माल असबाब और हाथी, घोड़ों को लूटना चाहा। किन्तु गोरा के बहादुर सैनिकों ने लड़ाई में वह हाथ दिखाये कि पठानों को भाग कर अपनी जान बचानी पड़ी। गुरु जी गोरा से बहुत प्रसन्न हुए और उसे आशीर्वाद दिया कि तेरी संतान राजपाट वाली हो। रियासत अरनौली, सिंधूवाल, कच्चा आदि की जागीरें उन्हीं के वंशजों की हैं।

करतारपुर में धीरमल के पुत्र का विवाह था। गुरु जी उसी में शामिल होने के लिये आये थे। यह घटना संवत १७११ की है। उस समय वहाँ बड़ी भीड हुई। यहाँ एक ब्राह्मण का एकलौता पुत्र मर गया। ब्राह्मण उसे गुरु जी के पास जिन्दा कराने के लिये लाया और कहने लगा कि अगर उसे जिन्दा नहीं किया गया तो मैं भी मर जाऊंगा। गुरु जी ने जवाब दिया यह तो जिन्दा हो जायगा किन्तु पहले किसी को मरना पड़ेगा जो ब्राह्मण अब तक प्राण देने को धमकी दे रहा था। वह चुप हो रहा, तब भाई भगतू के पुत्र जीवन ने अपने प्राण उस लड़के की जिन्दगी के लिये विसर्जित किये और लड़का जी उठा। जीवन की विधवा को जो कि रामरत्तो थी गुरु जी ने वर दिया कि तेरे पुत्र होगा और उसकी संतान इतनी वृद्धि को प्राप्त होगी कि उसके गांव बसेंगे।

करतारपुर से गुरु जी मांझे प्रदेश की यात्रा के लिये निकले और गाम-गाम में उपदेश देते हुये तथा भक्तजनों को संतुष्ट करते हुए गोइन्दवाल पहुँचे! वहां संवत १७१३ में दाराशिकोह गुरु जी की शरण में आया। वह अपने भाई औरंगजेब से लड़ाई हार चुका था। गुरु जी ने उसे वैराग्य का उपदेश दिया। इससे उस पर इतना असर पड़ा कि वह आया तो था सिख सैनिक मांगने और कहने लगा महाराज मैं तो एकान्त में जाकर ईश्वर भक्ति करना चाहता हूँ, इसलिये ऐसी कृपा कीजिये कि औरंगजेब का आया हुआ लश्कर जो मेरा पीछा कर रहा है, मुझे पकड़ न सके। दारा मुल्तान की ओर बढ़ गया और गुरु जी ने अपनी सेना को शाही सेना के आगे अड़ा दिया। इस तरह दारा को आगे निकल जाने का मौका मिल गया।

बादशाह औरंगजेब के बार २ आग्रह के कारण गुरु जी ने रामराय जी को जो कि उनके पुत्र थे देहली भेज दिया। रामराय ने देहली पहुँचकर अपने ज्ञान, बल और करामातों से बादशाह औरंगजेब को खुश कर लिया था किन्तु उनसे एक गलती भी हो गई जिसके कारण गुरु जी ने

रामराय से नाराजी रामराय जी को त्याग दिया और फिर कभी न अपनाया। बात यह थी कि एक दिन बादशाह औरंगजेब ने पूछा, गुरु नानक देव जी ने अपनी वाणियों में "मिट्टी मुसलमान की पेडे पई घुमिआर। घड भाडे इटा कीआ जलती करे पुकार।" शब्द भी लिखा है क्या? रामराय जी ने उत्तर दिया। गुरु नानकदेव जी ने तो वेईमान की लिखा है। 'मुसलमान' की नहीं। यों ही यह बात ज्यों की त्यों गुरु जी के पास पहुँची। इस गुरुवाणी भंग को एक भारी धार्मिक अपराध जाना और सिखो को रामराय से कोई सम्बन्ध न रखने की आज्ञा जारी कर दी। रामराय इनके बाद इस पर कुछ अर्सा देहली ही स्थित रहे और कुछ समय बाद अपना अलहदा डेरा स्थापित कर लिया जो अब देहरादून के नाम से मशहूर है।

दया और प्रेम का श्रोत बहाते हुए गुरु जी के लिये वह समय भी आ पहुँचा जब उन्होंने अपने पूर्व-वर्ती गुरुओं की नाईं सिख सगतो के पास यह परवाने भेजे कि अब हमारे विदा होने का समय आ गया है।

गरीब, अमीर, बालक, युवा और वृद्ध सभी तरह के हजारो सिख गुरु जी के स्थान पर इकट्ठे हो गये। गुरु जी ने सबसे पहले नये गुरु की नियुक्ति की रसम को पूरा किया। नये गुरु उन्होंने अपने छोटे पुत्र श्री हरिकिशन जी को बनाया और सिखों से कहा। आप इन्हे वैसे ही मानिये जिस तरह मुझे मानते आये हो।

संवत १७१८ वि: के कार्तिक बदि नौमी को आपने स्नान ध्यान से निवृत हो श्वेतवस्त्र धारण करके दीवान किया और जपुजी का पाठ करते हुए सब के सामने अंतरध्यान हो गये।

गुरु हरिराय जी के जीवन पर एक नजर

गुरु हरिराय जी बहुत दयालु और कोमल स्वभाव के महापुरुष थे। उनकी दयालुता की अनेकों कथायें हैं। उनका यह प्रेम किसी एक ही जाति और मजहब के लिये न होकर सभी लोगो के लिये था। यहां तक उन्होंने अपने बुजुर्गों के घातक और विरोधी की संतान दारा को भी उस हालत मे, जब कि उसके पीछे औरगजेब की सेनाये आ रही थीं सहायता की। उसे काफी दूर भाग जाने देने के लिये उन्होंने अपनी सेनाये औरगजेब की सेनाओं के आगे अडा दीं। इस प्रकार उसे काफी दूर निकल जाने का अवसर दिया। वे मनुष्यों पर ही दया करते हों। सोही बात नहीं है प्रत्येक जीव पर दया करते थे, यहा तक कि फूल पत्ते और वृक्षों के प्रति भी उनके कोमल हृदय मे दया मौजूद थी। एक दिन जब कि गुरु हरिगोविन्द साहब अपने बाग मे बैठे हुए प्रकृति की छटा देख रहे थे आप भी बाग मे पहुँच गये किन्तु आपके वस्त्रों से कुछ फूल टूट पड़े। इससे आपको बड़ा रंज हुआ।

दीन दुखियों के करुण क्रन्दन को तो आप बर्दास्त कर ही नहीं सकते थे। इसलिये आपने एक औषधालय भी स्थापित किया था। उसमे अलभ्य से अलभ्य औषधियों का संग्रह रहता था। दारा शिकोह के प्राण आपके ही औषधालय की हरड से बचे थे।

आपके समय मे धन बहुत इकट्ठा हुआ था। पहाड़ी प्रदेश के कई राजा, महाराजा और जागीरदार आपके शिष्य हो गये थे। इसलिये हाथी घोड़े और जवाहरात सभी प्रकार की बहुमूल्य चीजें भेंट में आती थीं।

देहाती जनता की भलाई का खयाल भी आप खूब ही रखते थे। जहाँ कहीं देखते पानी का कष्ट

है, तो वहाँ अपने शिष्य और मरीजों को संतुष्ट करके उनसे कहते यहाँ कूप बनवा दो।

आशीर्वाद आपके जीवन की विशेषता थी। जिसने जो मांगा उसे वही दिया। जिसने आपकी सेवा की उसे ही वर दे दिया। मालवे के जाट जमींदारों की सेवा से ऐसे प्रसन्न हुए कि उनमें से कई को उनकी संतान के राजा होने के आशीर्वाद दे दिये। गुरु वाणियों की महत्ता का आप कितना आदर करते थे। इसका पता इस बात से चल जाता है कि आपने अपने पुत्र तक को भी उसमें जरा सा परिवर्तन करने पर जन्म भर के लिये त्याग दिया। और गुरुआई से वंचित कर दिया।

दसवाँ अध्याय

गुरु हरिकिशन जी की जीवन-लीला

श्री गुरु हरिकिशन जी साहब गुरु हरिराय जी के द्वितीय पुत्र थे। जो माता किशनकौर जी से संवत १७१३ वि० की सावन वदी दशमी बुधवार को कीरतपुर में पैदा हुये थे। जिस समय आपको गुरुआई मिली थी। उस समय आपकी अवस्था लगभग ६ वर्ष की थी।

इनके स्वभाव के सम्बन्ध में एक सिख इतिहासकार ने इस प्रकार लिखा है—"यद्यपि यह गुरुजी अवस्था में छोटे थे किन्तु धैर्य्य, संतोष, दयालुता, उदारता और अन्तरज्ञान में परिपूर्ण थे। इनका प्रताप भी पहिले गुरुओं की तरह स्थिर रहा। इनके समय में भी राजे रईस दर्शनों को आते रहे और सिख धर्म का प्रचार होता रहा। आप प्रात काल उठकर स्नान करते थे। भेंट और चढ़ावे को अनाथों में बांट देते थे।"

दीन-दुखियों के दुख और बीमारी दूर करने का काम भी आपके समय में बराबर चलता रहा। एक बार जबकि आप पालकी में बैठे हुए जा रहे थे। एक कोढ़ी आपकी पालकी को पकड़ कर रोने लगा। आपने पालकी ठहरवाली और उससे उतर कर उसकी हालत देखी। उसको एक रूमाल देते हुए कहा, इसे कुष्ट के स्थानों पर लगाते रहो। लिखा है कि उस कोढ़ी का दुख शीघ्र ही दूर हो गया।

आपके दर्शनों के करने से ही अनेकों लोगों के मन को शांति मिलती थी। दूर दूर से लोग आपके दर्शनों को आते थे। और छोटी अवस्था में ही आप जो मनोहर उपदेश देते उन्हें सुनकर सभी आपकी प्रशंसा करते थे।

रामराय का विरोध

पिता द्वारा विताड़ित किये हुए रामराय जी ने जब देखा कि हरिकिशन जी का प्रभाव सिखों पर बराबर बढ़ रहा है और सिख उनके प्रति पूरी श्रद्धा रखते हैं, तो रामराय जी के हृदय का क्रोध जाग उठा और वे अपने ही छोटे भाई की कीर्ति एवं महानता को न सहार सके। और उन्होंने अपने को गुरु प्रसिद्ध करके सिखों को भी जाल में लेने की कोशिश की। दूर दूर की संगतों को चिट्ठियां लिखीं। धीरमल के साथ मिल कर देश देशान्तरों में अपने प्रचारक भी भेजे किन्तु सभी ओर से सिखों का जवाब आया कि हम तो उसे ही अपना गुरु मानेंगे, जिनको गुरु हरिराय जी ने गुरुआई बख्शकर नियत किया है। इन प्रयत्नों में जब रामराय पूरी तरह से विफल होगया तो उसने औरंगजेब के सामने अपना सब हाल कहा। उसने सब बातें गौर के साथ

सुनीं। पहले तो औरंगजेब ने यह भी कहा कि तुम बिना बात के झगड़े में क्यों पड़ते हो, तुम्हें धन दौलत चाहिये तो मैं दे सकता हूँ। किन्तु रामराय ने अधिक आग्रह किया तो बादशाह ने गुरु हरिकिशन को बुलाने के लिये अपने आदमी भेज दिये।

गुरु जी दिल्ली जाने के लिये तयार हो गये। उस समय वहाँ जितने भी सिख हाजिर थे। सबने गुरुजी के साथ चलने की इच्छा प्रकट की किन्तु उन्होंने सबको मना कर दिया। थोड़े से सेवकों को साथ ले जाना ही उचित समझा तो भी बहुत से आदमी उनके साथ हो लिये। वे अपने प्राणों से ज्यादा प्यारे गुरुजी को दिल्ली चले जाने देने में घबराते थे। उन्हें ऐसा मालूम होता था कि हम यहाँ अकेले कैसे जिन्दा रहेंगे। इसलिये गुरुजी के बार बार मना करने पर भी नहीं माने तो गुरुजी ने एक रेखा खींचदी और कड़े शब्दों में कहा, जो कोई इस रेखा को पार करेगा उसे हम सिखी से खारिज कर देंगे। जो तुम हमसे सच्चा प्रेम करते हो तो वापिस लौट जाओ। इस बात को सुनकर अनिच्छा रहते हुए भी सभी सिख लौट गये।

दिल्ली यात्रा

पंजाब को पार करके सबसे पहले गुरुजी कुरुक्षेत्र पहुँचे। यहाँ पर आपने डेरे लगाकर विश्राम किया। सिख इतिहासकारों यहाँ एक चमत्कारिक कथा का उल्लेख किया है वह इस प्रकार लिखी गई है —

"गुरुजी के राजसी ठाठबाट को देखकर लालजी नाम का एक पंडित कुढ कर कहने लगा, भगवान कृष्ण ने तो गीता बनाई थी। हम तो जब तुम्हारे गुरु को हरिकृष्ण समझे जब गीता के श्लोकों का अर्थ कर दे। गुरुजी ने जब यह बात सुनी तो उस पंडित को अपने पास बुलाया और कहा हम तो क्या। एक गँवार से अर्थ कराये देते हैं। चुनाचे आपने बल जी नाम के देहाती लड़के से गीता के श्लोकों का अर्थ करा दिया। इस करामात को देख कर लालजी उसी समय गुरुजी का भक्त हो गया।"

कुरुक्षेत्र में और लोगों ने भी आकर गुरुजी के दर्शन किये और अपने को कृत्य कृत्य किया।

कुरुक्षेत्र से चल कर दिल्ली पहुँचने पर गुरु राजा जयसिंह जैपुर वाले की हवेली में ठहरे। दिल्ली की संगतों ने जब यह समाचार सुना तो उत्साह और प्रेम का उनमें दरिया उमड़ पड़ा। दल के दल गुरु जी के दर्शनों को आने लगे। गुरु जी के साथियों और गुरु जी के खान पान और रहने का सारा प्रबन्ध बादशाह की ओर से कर दिया गया।

राजा जैसिंह की रानी ने राजा से कहा कि हम गुरु जी के दर्शन करना चाहती हैं अत: उन्हें भीतर लाइये। राजा ने रानियों की यह अभिलाषा गुरु जी के सामने अर्ज की। गुरु जी राजी हो गये। उधर बड़ी रानी ने छोटी रानियों को भी खबर देदी। वह भी सजधज कर आगई किन्तु पटरानी ने अपने कपड़े तो एक गोली (दासी) को पहना दिये और खुद दासी के कपड़े पहन लिये किन्तु जब गुरु जी महल में पहुँचे तो अपनी छड़ी से एक-एक को छूकर कहते, यह भी नहीं, यह भी नहीं, इस तरह सादा वेश वाली पटरानी की गोद में ही जा बैठे। रानी खुशी से प्रफुलित हो गई। और गुरु जी के चरण चूमने लगी। सब रानी और दासियाँ कहने लगी आखिर तो गुरु जी सर्वज्ञ हैं। कहते हैं राजा जैसिंह के कोई सतान नहीं होती थी गुरु जी की कृपा से पटरानी के सतान हुई और उसे सेवा करने का फल मिला।

राजा जैसिंह गुरु जी की सर्वज्ञता और विद्वता तथा सरल स्वभाव की बादशाह से खूब तारीफ

किया करता था। एक बार बादशाह ने अपने लड़के मुअज्जमशाह को कुछ मुसाहिबों के साथ गुरु जी के पास भेजा। शाहजादा बादशाह की दी हुई कुछ चीजें गुरु जी की भेंट को भी लाया। किन्तु गुरु जी ने उनमें से एक सेली के सिवाय किसी भी चीज से हाथ नहीं लगाया। औरंगजेब ने भी वह सेली गुरु जी की परीक्षा के लिये ही भेजी थी. फिर सब लोग बाग की सैर करने गये वहाँ गुरु जी ने कुछ मेवे शाहजादे को दिये। जिन्हें खाकर शाहजादा बड़ा प्रसन्न हुआ और आश्चर्य करने लगा कि उसने ऐसे मेवे तो अब तक नहीं खाये थे। बादशाह ने जब यह बातें सुनी तो उसे यकीन होगया कि गुरु जी करामाती हैं।

गुरु जी के दिल्ली में रहने से नगर वासी बड़े प्रसन्न थे. उनको गुरु जी के आशीर्वादों से लाभ भी होता था।

होली का त्योहार गुरु जी का दिल्ली में ही मना था। चैन और आनन्द से बीत रहा था कि शुक्ल पक्ष की नौमी को उन्हें अचानक बुखार चढ़ आया। बुखार सादा न था। चेचक का बुखार था। माता जी घबरा गई। गुरु जी ने कहा घबराने की आवश्यकता नहीं है। यह तो होकर ही रहेगा. जो होना है। डेरे तट जमुना किनारे ले चलने चाहियें।

दिल्ली के अच्छे से अच्छे वैद्य और हकीमों से गुरु जी का इलाज किया गया किन्तु सफलता कुछ नहीं मिली। इन्होंने सब से स्पष्ट कहा, आप कोई इलाज न करें और न करायें वाहि गुरु जी की यही मर्जी है. संसार का हमारा काम खतम हो गया है। अब हमें निश्चित रूप से सचखण्ड में जाना है।

त्रियोदशी के दिन गुरु जी ने पाँच पैसे और नारियल मंगा कर भाई बुड्ढे के पोते को सौंपते हुए कहा "बाबा बकाले" जिसमें आपका भाव स्पष्टतया यह था कि आपके बाद होने वाले गुरु आपके पिता के चचा अर्थात आपके बाबा (तेगबहादुर) बकाला नामी गाँव में हैं।

माता किशनकौर वगैरह बहुत अधीर हो रही थीं। इसलिये गुरु जी ने उन्हें समझाया—"एक दिन सभी को यहां जाना होता है किसी का आगे किसी का पीछे। यहां तो मनुष्य अपनी उस ड्यूटी को पूरा करने आता है, जो उसके जिम्मे ईश्वर सौंपता है। काम पूरा हो चुका है। तुम वाहि गुरु से अपना मन लगाओ। वही सबका सच्चा हितू है। सच्चा नाता तो उसमें ही है। ये नाते तो सांसारिक होने के कारण थोड़े दिन तक ही निभते हैं" इस तरह के मनोहर और आध्यात्मिक उपदेशों को सुनकर माता किशनकौर को कुछ सन्तोष हुआ। रात भर कीर्तन होता रहा। रात के पिछले पहर में गुरु जी ने 'वाहि गुरु का जप करते हुए, संसार छोड़ दिया।

दूसरे दिन संगतों ने बड़ी धूमधाम के साथ गुरु जी के पवित्र देह का संस्कार किया। माता जी जमात समेत कीरतपुर को चली आई।[1]

गुरु हरिकिशन जी ने २ वर्ष तक गुरुआई की और कुल ७ वर्ष ८ महीने १८ दिन इस संसार में रहे।[2]

दिल्ली में आपका डेहरा जमुना जी के किनारे बाला जी के नाम से मशहूर है।

संसार के महापुरुषों—अवतार और पैगम्बरों के इतिहास में हम कहीं भी ऐसा नहीं पढ़ते कि

१. राजा जयसिंह ने गुरु जी की समाधि भी बनवाई थी।

२. संवत् १७१८ के चैत महीने की १४ शुक्ला को संसार छोड़ गये।

इतनी अल्प आयु में किसी ने धार्मिक नेता के पद को ग्रहण किया हो। और अपने उपदेशों और चमत्कारों से लोगों को चकित किया हो।

सिख धर्म ऐसी ही अनेकों विचित्रताओ से परिपूर्ण है। अनुशासन और नियंत्रण की जो नींव आरम्भ से ही सिखों के लिये गुरुओ डाली थी वह निरन्तर मजबूत होती गई। गुरुओ ने जो भी कुछ कह दिया सिखों ने उसे निभाया। फिर ससार मे चाहे कोई भी उनके खिलाफ रहा हो। बकाले का बाबा बालक गुरु ने निश्चय कर दिया। अब भावी गुरु जी वही होंगे। यही बातसा रे सिख समाज ने मान ली। किसी ने कोई दलील न दी। सुनने और पढ़ने मे यह मामूली सी बाते हैं किन्तु जितना ही हम गौर से इन बातों पर विचार करेंगे उतना ही गुरुओ के महान प्रताप और उस तेज का पता चलेगा जो हर खास व आम को अपनी ओर आकर्षित कर लेता था।

केवल ७ वर्ष का गुरु देहली मे जाय और राजा जैसिंह जैसे सफल संसारी लोग उसकी पूजा करे। औरंगजेब जैसा तास्सुबी बादशाह उनके प्रति प्रभावित हो, यह कम आश्चर्य की और मामूली बात नहीं है। तभी तो सिख लेखको ने लिखा है :—

"वह अत्यन्त सुन्दर, उदार, शात स्वरूप और तेजस्वी थे और जो कोई भी उनसे मिलने जाता था वह प्रभावित हुये बिना नहीं रहता।"

एकादश अध्याय

गुरु तेगबहादुर जी और उनकी यश गाथा

गुरु हरिगोविन्दजी के पांच पुत्र हुये थे। गुरु दित्ता, अणीराय, अटलराय, सूरजमल और तेगबहादुर। तेगबहादुरजी का जन्म सम्वत् १६७८ वि० माघ सुदी २ को हुआ था। गुरु हरिकिशनजी के सचखड पयान के बाद यह समस्या खड़ी हुई कि गुरु कौन हो? सिक्ख धर्म मे जो रिवाज था उनके अनुसार भावी गुरु का चुनाव वर्तमान गुरु करता था। अमृतसर से दिल्ली आज अवश्य ही २५–२६ घंटे का रास्ता है। पर उस समय सहज ही १५–१६ दिन लगते थे। इसलिये भावी गुरु को दिल्ली बुलाना तो एकदम मुश्किल था। क्योंकि गुरु हरिकिशन जी कुल पांच दिन तो बीमार ही रहे थे। उन्होंने भावी गुरु की गैरहाजिरी मे ही घोषणा कर दी (गुरु तेगबहादुर जी रिस्ते मे गुरु हरिकिशन जी के पिता के चाचा होते थे) उन्होंने शिष्टाचार के अनुसार उनका नाम न लेकर 'बाबा बकाले' हैं। यह वाक्य कहे। बकाले मे उस समय गुरु वंश मे से सिवा श्री तेगबहादुर जी के दूसरा कोई रहता भी न था। अत उनके सिवा किसी दूसरे के लिये यह 'बकाले के बाबा' शब्द लागू भी नहीं होता था किन्तु लालच बुरी बला है। करतारपुर से उठकर धीरमल भी बकाले जा बैठे और घोषित कर दिया कि गुरु मै ही हूँ।'

जन्म और बालकाल

गुरु तेगबहादुर जी एकान्तवास को पसन्द करते थे। वह कोठरी मे बैठे जप मे लगे रहते। बहुत करते तो जगल मे निकल जाते, परमात्मा की भक्ति मे इतने तल्लीन रहते कि कभी २ तो प्रेम मग्न होकर रोने लग जाते और आंखों मे आंसुओं की झड़ी लग जाती। दान-पुण्य मे उनकी रुचि ऐसी थी कि दीन दुखिया को कीमती से कीमती चीज देने मे भी कोई सकोच नहीं करते थे।

बकाले में कई गुरुओ के पैदा होजाने से सिख बडे असमंजस मे पड़े।

किन्तु न तो काठ की हाडी सदा काम देती है और न लाल कथरी मे छिपाने से छिपते हैं। आखिर एक चतुर सिख ने सच्चे गुरु को पहचान ही लिया। कहा जाता है कि लुकमान को यह पता चल गया कि अब मौत आने ही वाली है। उसने अपने जैसे एक दर्जन लुकमान बनाकर खड़े कर दिये। मौत बड़े असमंजस मे पड़ी कि असली लुकमान इनमे कौनसा है। आखिर उसने भी बुद्धिमानी से काम लिया और बोली' जिस उस्ताद ने इन सबको बनाया है" उसकी जितनी भी प्रशसा कीजाय थोडी है किन्तु इनमे एक कसर रह ही गई। लुकमान बोल उठा वह क्या? झट मौत ने उसका हाथ पकड़ लिया। ठीक इसी

प्रकार सिख व्यापारी मक्खनशाह ने बकाले मे से असली गुरु को खोज निकाला। वह पांच सौ मुहरें लेकर अपने देश से गुरु भेंट के लिये चला था। जब बकाले में आया तो उसे बाईस गुरु दिखाई दिये। बड़ा चकराया। वह किसके प्रति अपना मत्था नवावे,किसको इतनी भारी भेंट दे और किससे मनोवांछित फल पावे। मोहरें उसे भेंट अवश्य करनी थीं क्योंकि कठिन संकट के समय-जबकि उसका जहाज उथले जल मे अड़ गया था उसने यह मानता की थी कि यदि मेरा जहाज यहां से निकल गया तो अपने नफे का चौथाई अंश गुरुजी को भेंट करूंगा। दैव योग से ऐसे जोर की हवा चली जिससे वह जहाज पानी की हिलौरों के वेग से चल निकला। उसे दो हजार का मुनाफा हुआ। उसमे से चौथाई पाच सौ मोहरें वह अपने घर नहीं रख सकता था। आखिर उसने अपनी बुद्धि का स्तेमाल किया। सिख गुरु अन्तर की जानने वाले और सर्वदर्शी होते हैं। यह उसका पक्का विश्वास था। इसलिये उसने उन गुरुओं मे से प्रत्येक को दो दो मुहरें देना शुरू किया क्योंकि वह समझता था कि इनमे जो असली गुरु होगा, वह मुझे पूछ ही बैठेगा कि जब वहाँ से तू पाच सौ देने के लिये लाया है। तो यहाँ दो क्यों देता है? किन्तु इन बाईस मे से किसी ने भी उससे यह बात नहीं कही,तब उसे पूर्ण रूप से निश्चय हो गया कि इनमें तो कोई सिखो का असली गुरु नहीं है। तब उसने बकाले के लोगों से पूछा कि क्या सोढ़वंश का यहाँ और आदमी रहता है। एक बुढ़िया ने जवाब दिया। गुरु हरगोविंद जी का पुत्र तेगबहादुर यहीं रहता है परन्तु वह किसी छल पपंच मे नहीं, एकान्त मे बैठकर हरि भजन करता है। मक्खनशाह तुरन्त गुरु तेगबहादुर जी के घर मे घुस गया। जहाँ देखा कि शांत स्वरूप गुरु जी हरिनाम का जप कर रहे हैं। समाधि खुली तो मक्खनशाह ने दो मुहरे निकाल कर उसके सामने रक्खीं। गुरु जी ने कहा, भाई वैसे हमें कोई लोभ नहीं है किन्तु तैंने सकल्प तो पाच सौ मुहरें भेंट करने का किया था। बाकी वापिस क्यों लेजाना चाहता है। इस बातको सुनते ही मक्खनशाह पैरो में गिर पड़ा। और कोठे पर चढ़कर ऊँची आवज से पुकारना शुरु कर दिया, 'गुरु लाधोरे' अर्थात् मैंने गुरु को ढ़ूंढ पाया है। श्रद्धालु सिख दर्शनों के लिये उमड पडे। इतने मे दिल्ली से माता किशनकौर भी आगयीं, जिन्होंने गुरुआई के पाच पैसे और नारियल तेगबहादुर को भेंट कर दिया।

अब बाईस गुरु किस बिरते पर ठहरते, सभी अपने बिस्तर बाध कर बकाले से टरक गये। किन्तु धीरमल के एक सलाहकार ने कहा, हमारे पास आदमी हैं और हम उस सब माल को गुरु तेगबहादुर से लूट लेना ठीक समझते है, जो इन्हे इन दिनों मे सिखों ने भेंट और चढावे मे दिया है। धीरमल भी राजी हो गया। अत उसके आदमियो ने गुरु जी के पास से सब माया लूट ली और गुरु जी पर बन्दूक का फायर भी किया किन्तु गोली गुरु जी के मस्तक से छूती हुई खाली गई। जब सिख लोगों ने सुना तो मक्खनशाह के नेतृत्व मे धीरमल के घर पर धावा कर दिया और लूटे हुए समस्त माल को वापिस ले आये। साथ ही ग्रन्थ साहब को भी ले आये। धीरमल ने ग्रथ साहब गुरु हरिगोविन्द जी के बार-बार मागने पर भी नहीं दिया था। जब यह सब चीजे गुरु तेगबहादुर जी के पास आईं तो उन्होंने सबकी सब फिर से धीरमल के ही पास यह कह कर पहुँचवा दीं कि हमे इनसे कोई मोह नहीं है।

सेठ मक्खनशाह ने एक दिन गुरु जी के सामने प्रार्थना की महाराज, मै अमृतसर जाने की सोच रहा हूँ। गुरु जी ने कहा एक अच्छे से घोड़े का प्रबन्ध हो जाय तो साथ ही साथ चले। मक्खनशाह को इससे ज्यादा क्या चाहिए था। गुरु जी के साथ यात्रा होगी। उसने एक घोड़े का प्रबन्ध करा दिया।

अमृतसर की यात्रा

जिस अमृतसर को गुरु अमरदासजी और रामदासजी से लेकर गुरु अर्जुनदेवजी ने इतना महत्व पूर्ण और बैकुण्ठपुरी जैसा स्थान बनाया था। जो हरि मन्दिर सभी लोगों के पूजा पाठ और दर्शनों के लिये स्थापित किया था। जहां गुरु हरिगोविन्द ने अकाल तख्त स्थापित किया था। यह कितने आश्चर्य की बात है कि उन्हीं गुरुओं के स्थानापन्न गुरु तेगबहादुर जी के लिये उसके द्वार बन्द कर दिये गये। मानो उनका कोई अधिकार नहीं है। पुजारी और मुल्ला थोड़े ही दिनों के अधिकार के बाद धर्म स्थानों को अपनी बपौती समझने लग जाते हैं। यही बात अमृतसर हरि मन्दिर के पुजारियों ने भी की। उन्होंने गुरु जी को आता देख मन्दिर के ताले लगा दिये वे समझते थे कि यदि गुरु जी को स्थान दिया गया तो हमारी स्वच्छन्दता और एकाधिकार में अवश्य बाधा पड़ेगी। गुरु जी इस बात को पी गये और अमृतसर को छोड़ कर बल्ला नामक गांव में चले गये। यहां उनकी स्मृति में गुरुद्वारा स्थापित है।

गुरु जी का जाना सुनकर पुजारी लोग मन्दिर में आ गये। स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर मक्खन शाह जब मन्दिर में प्रसाद चढ़ाने गया तो उसने पुजारियों को खूब डांटा और उनसे कहा मूर्खो, जिन गुरुओं के लिये दर्शनों के सिर झुकते हैं। जो संसार के परोपकार के लिये ईश्वर ने पैदा किये हैं। उन्हें देखकर तुम मन्दिर के ताले लगाते हो, उनके पास घाटा क्या है, जो वे तुम्हारे अधिकारों को छीनेंगे। हां अगर तुम्हारी यही गति रही तो एक दिन तुम लोगों को अपने किये का फल भुगतना पड़ेगा।

मक्खनशाह के गुरु जी के पास आ जाने पर रातभर तो गुरु जी वहीं रहे सवेरे दोनों साथ ही साथ बकाले लौट आये।

बकाले में कुछ दिन रहने के बाद मक्खनशाह ने गुरुजी से विदा होने की इजाजत मांगी। गुरुजी ने कहा अच्छा हमारी भी इच्छा है कि कुछ समय के लिये यात्रा को बाहर चलें।

दूसरी यात्रा

सिख इतिहास ग्रन्थ में इस स्थान पर गुरुजी के एक चमत्कार का वर्णन है और वह यह कि जब व्यास को पार हुए तो उन्होंने एक सिख के सिर पर ग्रंथ देखा, उन्होंने उससे पूछा यह क्या है। उस सिख ने बताया कि महाराज यह ग्रंथ साहब है। धीरमल के मकान की लूट के समय ग्रंथ साहब भी आगये थे। आपकी आज्ञा से बाकी चीजें तो लौटा दी गईं किन्तु ग्रंथ साहब अपने पास ही रख लिये। गुरुजी ने कहा धीरमल तो बड़ा दुखी होगा। उसने तो अपने पितामह के कहने से भी ग्रंथ साहब को नहीं दिया था। उसके संतोष और प्रसन्नता के लिए यह जरूरी है कि आप में से कोई जाकर ग्रंथ साहब को उसी को दे आओ किन्तु कोई भी सिख धीरमल के पास नहीं जाना चाहता था। अत: एक ऐसे आदमी के हाथ जो करतारपुर को जा रहा था गुरुजी ने धीरमल के पास यह संदेश भेजा कि हम ग्रंथ साहब को व्यास नदी के सुपुर्द किये जाते हैं। तुम आकर यहां से ले जाना। सुन्दर वस्त्रों में लपेट कर गुरुजी ग्रंथ साहब को व्यास के किनारे एक स्थान पर रख आगे बढ़ गये। सदेश वाहक ने जब यह सन्देश धीरमल को सुनाया तो वह दरिया पर आने को तैयार होने लगा किन्तु उसके एक मुंह लगे मसंद सीहाँ ने यह कह कर उसे रोक दिया। तेगबहादुर ने तुम्हारे साथ एक मजाक किया है और तुम उसे सच मानते हो धीरमल रुक गया और इसी तरह कई दिन इरादा करके रुकता रहा, एक दिन नदिया किनारे आ ही गया। और तलाश करने पर उसे गुरु जी के बताये स्थान से ग्रन्थ साहब मिल गये।

व्यासा को पार करके गुरुजी कीरतपुर पहुचे। जहां माता किशनकौर जी सूरजमल जी के पास रहती थीं। माता किशनकौर ने गुरुओं के वस्त्र और शस्त्र जो उनके पास थे गुरु जी की भेंट कर दिये। यहां कुछ दिन गुरु जी रहे तो सही किन्तु उनकी तबीयत नहीं लगी।

तो गुरु जी का कुछ भी नहीं बिगाड़ सका तो लोग उनसे प्रभावित हुये। दमदमे से एक दो गाँव में घूम फिर कर फिर गुरु जी उस गांव में पहुँचे जो सूलीसर कहलाता है। सिख इतिहासों में लिखा है कि एक चोर ने जो गुरु जी के घोड़े को चुरा कर चल दिया था और आधी दूर जाकर ही अंधा हो जाने के कारण पकड़ा गया था। यहां समीप वृक्ष पर से कूद कर मर गया उसने अपने अपराध का प्रायश्चित्त इसी में समझा था। तभी से इस गांव का नाम सूलीसर हो गया है।

चतुर्मास गुरु जी ने बड़े गांव में जाकर व्यतीत किया। यहां दूर-दूर से आकर सिख लोग आपके दर्शन करके लाभ उठाते रहे। यह गाव निचान जमीन में था जहां बरसात में पानी भर जाता था अत: उन लोगों को गुरु जी ने ऐसे स्थान पर मकान बनाने की आज्ञा दी जो ऊंचे पर हो। जहां से पानी बह जाया करे। लोगों ने उनकी आज्ञा को सिर माथे रक्खा। इससे पता चलता है कि गुरु जी लोगों के स्वास्थ्य और सफाई की ओर भी काफी अधिक ध्यान रखते थे।

कई छोटे मोटे गांवो में उपदेश करते हुए गुरुजी धमधान नगर में पहुचे। गुरुजी के साथ मीहा नाम का एक महंत लकड़ा था। लंगर का यही इंतजाम करता था। बड़ा परिश्रमी था। एक दफा उसका सिर गागर से छिल गया। जिससे जख्म हो गया। किन्तु वह बराबर पानी लाता रहा, अपने कष्ट की किसी से चर्चा तक नहीं की। एक दिन माता जी ने उसको इस कष्ट में देख लिया उन्हें मीहा पर बड़ी दया आई। और कहने लगी तुम्हें अवश्य ही इस कठिन सेवा का फल मिलेगा। माता जी ने गुरु को सब हाल सुनाया। मीहां की इस हालत में सेवा करने की लगन से गुरु जी बहुत खुश हुए और उसे अपने पास का दक्षिणी बैल एक नगाड़ा और एक झंडा देकर धर्म प्रचार का काम सौंप दिया। मीहां इस बात से बड़ा प्रसन्न हुआ और वह देश देशान्तर में सिख धर्म का प्रचार करने लगा।

धमधान से चलकर गुरु जी सरस्वती को पार करके कुरुक्षेत्र में पहुचे। यहां एक बढ़ई सिख था उसी के घर पर गुरुजी ठहरे। दूसरे दिन यहा से उस सिख को साथ लेकर कैथल में पहुचे। उसके रिश्तेदार सिख के घर पर ठहरे। वहा दो सिख और थे उन्होंने दर्शन करके अपने भाग्य को सराहा और जो रुपया धर्मादे में इकट्ठा कर रक्खा था गुरुजी की भेंट कर दिया। कैथल गुरुद्वारा उसी बढ़ई के स्थान पर है। जहाँ गुरु जी ठहरे थे। कैथल से चलकर बारने गाव में एक जाट सिख के घर ठहरे। चलते समय गुरु जी ने उस जाट को तमाकू पीना छोड़ने का भी उपदेश दिया।

इन्हीं दिनों सूर्य ग्रहण का मेला आ पड़ा, इसलिये गुरुजी फिर कुरुक्षेत्र में आये। यहा पर अनेकों साधु संतों से आपकी ज्ञान चर्चा हुई और मेले में आये हुए सैकड़ों सिखों ने आपके दर्शन किये। आपने भी गरीब लोगों को द्रव्य देकर संतुष्ट किया।

कुरुक्षेत्र से गुरु जी अपने दल बल समेत बदरपुर पहुँचे। यहां पर भी बहुत से श्रद्धालु लोग आपके दर्शनों के लिये आये और उन्होंने बहुत सा धन भेंट में दिया। गुरु जी ने यह सब वहां के एक जमींदार को बदरपुर में एक कुआँ और बाग लगवा देने के लिये दे दिया। आगे चलकर यहा गुरुद्वारा भी बन गया।

गुरु जी के साथ कुरुक्षेत्र से संत लोगो की भीड़ बढ़ गई थी। इसलिये अब वे शिष्यों के घरों पर ठहरने की बजाय गांव के बाहर ठहरते। बदरपुर से पानीपत करनाल के जिलों से गुजरते हुए और बीच में अनेकों गावों में प्रचार करते हुए मथुरा में पहुचे। आज जहां गुरुद्वारा बना हुआ है। उस स्थान पर ठहरे। यहाँ जमुना में स्नान किया और उन स्थानों को देखा जहां कृष्ण जी ने बाल-लीलायें की

थीं। मथुरा से पूर्व देश के लिये रास्ता आगरा होकर ही ठीक रहता है अतः गुरु जी आगरे में पहुचे और माईथान मे ठहरे जहां कि आज गुरुद्वारा बना हुआ है। किसी समय यहाँ गुरु नानक देव जी भी ठहरे थे। वहा से जमुना पार करके गुरु जी पूर्व देश की ओर मुड़ पड़े। पूर्व मे गुरु नानकदेव जी के बहुत से लोग भक्त थे किन्तु वे सुदूर पंजाब मे अपने गुरुओं के दर्शन के लिये नहीं जा सकते थे। अत गुरु जी को यहाँ गॉव २ मे लोग ठहराने लगे। उस देश मे गुरु जी के आगमन की चर्चा फैल जाने मे पहिले से ही लोग उनके स्वागत की तैयारी में लग पड़ते। नगरों को सजाते थे अपने मकानों को साफ सुथरे करते थे। इस तरह से सब को सतुष्ट करते हुए गुरु जी प्रयाग में पहुचे। वहाँ अपने ब्राह्मण भक्तों के प्रेम से उनके मुहल्ले अहियापुर मे जाकर ठहरे। अब आगे के लोगों ने उनके आगमन की चर्चा सुनी तो गरीब अमीर और राजा रईस सभी उनके दर्शनों को आये।

यहाँ के गुरुद्वारों मे निर्मले संत सेवा करते हैं। प्रयाग से गुरु जी मिरजापुर देखते हुए चुनार मे पहुचे जहाँ कि गुरु नानकदेव जी का एक स्थान बना हुआ है। अरोहा पहुच कर गुरु जी ने भेट और चढ़ावे आये हुए रुपयों से एक बाग लगवा दिया। यहा से चलकर काशी पहुँचे। वहाँ उस स्थान पर निवास किया जो कचौड़ी गली के नाम से मशहूर है। जहाँ पर कि गुरुद्वारा भी बना हुआ है यहाँ पर काशी के बड़े २ विद्वान पडित और सन्यासी गुरु जी से ज्ञान चर्चा करने के लिये आये। जिन सब को ही गुरु जी ने अपने मनोहर सभाषण और आध्यात्मिक अमृत चर्चा से संतुष्ट किया। भाई गुरुदास जी यहाँ काशी में रह रहे थे और उन्होने रामनगर के राजा को भी धर्म शिक्षा दी थी। वह गुरु जी के दर्शनों को आया और बहुत सा धन भेंट किया तथा अपनी आत्मा को गुरु उपदेश से लभान्वित किया। जौनपुर वालो को जब पता चला तो वहाँ से भी भाई गुरुबख्शजी के नेतृत्व में सिख संगत आई। गुरुजी ने गुरुबख्श को आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे घर मे एक भक्त पुत्र होगा।

काशी से प्रस्थान करके गुरु जी मुकाम करते हुए सहसराम मे पहुचे। यहां पर चाचा फग्गू नाम का अगहरी सिख निवास करता था। उसके दिल मे गुरु दर्शन की प्रबल इच्छा थी किन्तु स्थूल कार्य होने के कारण कहीं आ जा नहीं सकता था। वह गुरु दर्शन के लिये यहां तक उत्सुक था कि अपने छोटे से घर का ऊँचा दरवाजा केवल इस उद्देश्य से बनवाया था कि गुरु जी उसमे घोडे समेत घुस जावे। उन्हे बाहर उतरने का कष्ट न हो। गुरु जी फग्गू के घर राजसी वेश मे गये थे। अत उनको अस्त्र शस्त्र से सज्जित देखकर पहचान न सका। जब गुरु जी ने कहा कि फग्गू मैं वही तो हूँ जिसे अपने घर बुलाने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञा ली थी। गुरु जी का आना देखकर फग्गू हर्ष के मारे फूलने लगा। नगर मे जब यह समाचार फैला तो प्रेमी लोग दल के दल बाधकर गुरु जी के परम उपदेश सुनने के लिये आने लगे।

स्त्रियों के दल माता नानकी जी, गुरु पत्नी गूजरी के चरणो को छूकर और उनसे उपदेश ग्रहण करके अपने भाग्य को सराहने लगीं।

यहाँ से सब लोगों से विदा लेकर विहार की ओर चल दिये। विहार मे उन्हे सबसे पहिले गया का तीर्थ देखना था। अत उधर ही को प्रस्थान किया। जब गया मे पहुँचे तो वहाँ कई दिन उन्होंने सत्य-धर्म के उपदेश किये।

गया से चल कर गुरु जी पटने पहुँचे और भाई तेजा के घर ठहरे। यह हलवाई था और गुरु नानकदेव जी का अनुयायी था। इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह कभी भी गंगा पर स्नान करने नहीं जाता था। इससे लोग समझने लगे थे कि तेजा कभी स्नान करता ही नहीं है। एक दूसरे सिख ने

एक दिन जैता से पूछा, क्या तुम सचमुच ही स्नान नहीं करते हो? जैता ने उत्तर दिया मेरे घर पर ठहर कर देखो मैं क्या करता हूँ। उस सिख ने देखा जैता बहुत तड़के उठता है। शौच से निवृत होकर दातुन करता है और फिर स्नान करता है और गुरु नानकदेव जी की वाणियों का पाठ करता है। वह सिख जैता की इस प्रकार की धार्मिक निष्ठा को देखकर चकित रह गया।

जैता ने जब सुना कि इसको दर्शन देने के लिये गुरु तेगबहादुर जी आ रहे है तो दुकान के काम को छोड़कर उनकी अगवानी के लिये दौड़ा गया और पास पहुच कर पैरो से लिपट गया।

सत्संगियो की भीड़ वहा गुरु जी के दर्शनो को आने लगी इसलिये गुरु जी ने गायघाट के जैता के मकान मे डेरा लगाये किन्तु दिन पर दिन दर्शनार्थियो की संख्या बढती ही जाती थी अत उनके एक भक्त ने बेगमपुर का विशाल मकान रहने को दे दिया गुरु जी सब परिवार के उसी मे रहने लगे।

वहा से आगे बढने का ख्याल कर रहे थे कि जयपुर के राजा बिशनसिंह का आदमी गुरु जी की सेवा मे हाजिर होकर कहने लगा, हमारे महाराज कामरूप देश पर चढाई करने जा रहे हैं। किन्तु वे इधर ही से आपके दर्शन करते हुए जावेगे। उन्हें आपके दर्शनो की बड़ी ही लालसा है। गुरु जी ने अपना जाना राजा के आने तक के लिये स्थगित कर दिया।

ग्यारहवें दिन राजा बिशनसिंह पटना मे पहुंचा और अपने लश्कर के डेरे तम्बू शहर मे बाहर लगवा कर शाम को गुरु जी की सेवा मे हाजिर हुआ। दर्शन करके गुरु जी के चरणों मे पड गया। गुरु जी ने उसे हाथ पकड के उठाते हुए आशीर्वाद दिया कि वाहि गुरु तेरी कामना सिद्ध करेगे।

गुरु जी चू कि यात्रा पर जाने ही वाले थे अत. राजा के साथ हो लिये।

माता जी और अपनी धर्मपत्नी जी को अपने लौटने के समय तक के लिये वहीं रहने दिया।

गुरु जी शाही लश्कर के साथ अवश्य चल रहे थे—किन्तु रास्ते मे ठहरते थे सिख[1] लोगों के घर पर ही। रास्ते में मुँगेर के सिखो से मिले और उन्हे उपदेश दिया। राजमहल के सिख उनके दर्शनो से वचित रह गये क्योंकि वे भेट पूजा के लिये इकट्ठा करने मे ही लगे रहे, तब तक गुरु जी आगे निकल गये। मालदह पहुँचने पर वहा सिखों की बनाई हुई धर्मशाला मे ठहरे किन्तु उस दिन मालदह से दूर कहीं मेला था। सारे सिख भी वहीं गये थे। गुरु जी ने यह समाचार सुना तो उन्होंने कहा, वे लोग काहे के सिख है जो व्यर्थ के मेले तमाशों मे अपना समय बर्बाद करते हैं। एक हलवाई मेले जाने से रह गया था वह गुरु जी की सेवा मे हाजिर हुआ।

ब्रह्मपुत्र के तट पर पहुंचने पर गुरु जी ने राजा बिशनसिंह से कहा आपका लश्कर तो इसी किनारे पर चलेगा किन्तु हम उस पर जाकर अपने कुछ प्रेमियो को मिल आवे। ब्रह्मपुत्र को पार करके गुरु जी टाके में पहुँचे। यहा पर बुलाकीदास नाम का उनका एक ससन्द रहता था। उसकी बूढी मा भी बड़ी भगतिन थी। उसे यकीन था कि एक दिन गुरु जी अवश्य ही यहा आ कर मुझे दर्शन देंगे, इसलिये उसने स्वयम् कात कर बढ़िया पोशाक गुरु जी के लिये तैयार कर रक्खी थी। जब गुरु जी उसके घर पहुँचे तो वह बडी प्रसन्न हुई, बुलाकीदास कहीं बाहर था, जब उसे गुरु जी आने का समाचार मिला तो संगत इकट्ठी कर के वह गुरु जी की सेवा से हाजिर हुआ। गुरु जी ने सब लोगो को उपदेश देते हुए कहा, भाई हमारी इच्छा है कि यहा पर तुम एक धर्मशाला बनाओ और उसमे इकट्ठे होकर

१ उस समय सिख के मानी केवल गुरु नानक जी के उपदेशो में श्रद्धा रखने वाला ही के थे।

धर्म चर्चा करते रहा करो। गुरु-पर्वों पर खासतौर पर एकत्र होकर हरि-कीर्तन और धर्म-प्रचार किया करो।

ढाके मे नव्वा नाम का एक उदासी सत रहता था। वह बात बात मे सिखों को गाली देता था संगत ने गुरु जी से उसकी शिकायत की। गुरु जी ने नव्वा को बुलवाया। वह नमस्कार करके गुरु जी के पास बैठ गया, गुरु जी ने उससे पूछा भाई नव्वा तुम इन लोगो को गाली क्यों दिया करते हो। नव्वा ने कहा "महाराज ये लोग तो झूंठा हैं मैंने तो इन्हे कभी गाली नहीं दी। संगत ने कहा देखिये महाराज सरासर तो हमें झूठा कह रहा है फिर कहता है गाली नहीं दी। गुरु जी ने कहा भाई यह तुम्हे ईर्षा द्वेष से गाली नहीं देता। इसकी तो आदत ही ऐसी बन गई है तुम इसे प्रेम से जीतो और सहज-सहज आदत भी छुडादो। इस तरह से गुरु जी सब को उचित सलाह और उपदेश कर संतुष्ट करते रहे। कई दिन के बाद आगे को चल पडे। यहा जिस स्थान पर गुरु जी ठहरे थे वह स्थान संगत टीला के नाम से मशहूर है।

ढाके से चल कर गुरु जी नारायनगंज आये और वहां से जहाज पर सवार होकर चटगाव में पहुँचे जहा गुरु नानकदेव जी का स्थान बना हुआ था। वहा पर ठहरे। यहां सिख लोगो ने गुरु जी को श्रद्धानुसार भेंटे दी और कई दिन तक आदेश सुना। चटगांव जिले मे ही बडवा कुण्ड और सीता कुण्ड नाम के दो तीर्थ है। गुरु जी ने उनको भी देखा। और वहीं से जहाज मे सवार होकर कलकत्ते को रवाना हो गये।

कलकत्ता उस समय इतना बड़ा शहर न था एक मामूली गांव था और कालीकूट कहलाता था। यहां पर गुरु नानकदेव जी भी अपनी यात्रा के समय आये थे, यहां अब वह स्थान जहां पर गुरु लोग ठहरे थे हरिसनरोड के गुरुद्वारे के नाम से मशहूर है।

शाही सेना इस समय तक धोवड़ी मे आपहुची थी, इसलिये गुरु जी कलकत्ते से रवाना घाट होते हुये धोबडी मे पहुंचे। गुरु जी के प्रयत्न से जब राजा विशनसिंह को इस जंग मे काफी सफलता हुई और दोनो में संधि होगई। तो उसने गुरु जी से विनती की कि महाराज इस समय मुझे कोई सेवा फर्माइये। आपने और तो कुछ न कहा किन्तु गुरु नानक जी के पुरातन स्थान पर के थड़े को जरा ऊँचा कर देने की इच्छा प्रकट की। इसपर राजा के सिपाहियों ने मिट्टी की ढाले भर भर कर उस स्थान पर डालीं। जिससे वह थड़ा स्वत ही काफी ऊँचा होगया और अबतक गुरु जी की याद मे कायम है।

दोनो राजाओं मे सुलह हो जाने पर कामरूप के राजा ने गुरु जी को अपने महलों मे आमंत्रित किया। राजा ने गुरु जी को बहुमूल्य चीजे भेट कीं।

विदा करते समय कामरूप के राजा ने गुरु जी से प्रार्थना की, महाराज अपनी स्मृति के लिए हमें कोई चिह्न दे जाने की कृपा कीजिए। गुरु जी ने कमान पर चढ़ाकर एक तीर सामने के वृक्ष मे मारा जिसका एक सिरा उधर पार हो गया एक इधर रह गया। गुरु जी ने कहा यही हमारा चिह्न है।

आसाम मे गौरीपुर एक छोटी सी रियासत और थी। उस समय वहा पर राजाराम नाम का राजा राज करता था, जब उसने सुना कि इस देश मे गुरु नानकदेव जी के उतराधिकारी गुरु तेगबहादुर जी पधारे हुए है तो वह मय रानी के गुरु जी के दर्शनों के लिये आया। उस राजा के कोई पुत्र न था राजा को इच्छा तो थी कि गुरु जी से आशीर्वाद प्राप्त करे किन्तु वह कुछ कहने मे सकुचाता था। गुरु जी ने उसके हाव भाव से उसकी मनोइच्छा को जान लिया और उन्होंने कहा जो तुम लोगों के दिलों मे

गुरु नानकदेव जी के प्रति श्रद्धा है और जो तुम्हारी इच्छा है अवश्य ही पूर्ण होगी। राजा रानी इस आशीर्वाद से बहुत प्रसन्न हुए और इन्होंने गुरु जी से प्रार्थना की: आप हमारे भी घर को चलकर पवित्र करें किन्तु गुरु जी ने उनसे कहा, हमें इस समय पश्चिम की ओर जाना है।

गुरु जी पटना को वापिस होने की तैयारी कर रहे थे कि समाचार मिला आपके घर साहबजादे उत्पन्न हुए हैं। इस समाचार को सुनकर राजा भी बहुत प्रसन्न हुआ। बोधवडी से चलकर राजा और गुरु जी पटने में आये। रात को शहर के बाहर ही राजा बिशनसिंह के डेरों में ही गुरु जी ठहर रहे। दूसरे दिन गुरु जी मय राजा साहब के अपने घर पहुँचे। सिख लोग उन्हें देखते ही चरनों में लोट गये, गुरु जी ने सब को आशीर्वाद दिया। इसी समय साहबजादे गोविन्दराय (सिंह नाम पीछे पड़ा) का मामा उन्हें गोद में लेकर आ गया और गुरु जी के चरनों में सुला दिया। गुरु जी ने गोद में लेकर प्यार किया, राजा साहब ने भी गोद में लिया और सोने के कड़े उनकी भेंट किये।

आनन्द की लहर

इसके बाद राजा साहब ने गुरु जी से विदा मांगी क्योंकि दिल्ली से निकले हुए उसे भी बहुत दिन हो चुके थे। गुरु जी ने उचित उपदेश और सिरोपाव देकर राजा साहब को विदा किया और आप कुछ दिन पटना में ही रहकर शिष्य लोगों को उपदेशामृत पान कराते रहे।

देहातों में जब यह पता लगा कि गुरु जी लौट कर पटना आ गये हैं, तो देहातों की संगतें भी दर्शन और उपदेशों का आनन्द लेने के लिए उमड़ पड़ीं।

कितने ही महीने पटने में रह कर गुरु जी ने पंजाब आने का इरादा किया। और दस बीस सेवकों के साथ पंजाब को चल पड़े। रास्ते में काशी वगैरह जो भी शहर और गांव पड़े उनमें उपदेश देते हुए कीरतपुर पहुँचे। वहाँ सूरजमल जी ने आपका सत्कार किया और अनेक दिनों के बाद मिलने पर हर्ष प्रकट किया। अपने यहाँ गोविन्दराय जी के जन्म का संवाद भी सुनाया। जिसे सुनकर सूरजमल जी ने गुरु जी को बधाई दी।

वापिसी

कीरतपुर में थोड़ा ही वास करके आनन्दपुर पहुँचे। वहाँ आपको देखकर लोग प्रसन्नता से हरे हो गये। जिसे देखो वही श्रद्धा के साथ गुरु जी के चरणों में लोटने लगा।

आठ वर्ष की उम्र तक गुरु तेगबहादुर जी के साहबजादे पटने में ही रहे। वहाँ उन्होंने हिन्दी और संस्कृत विद्या का खूब अध्ययन इस छोटी सी उम्र में ही कर लिया था। गुरु तेगबहादुर जी पटना से चल कर धीरे २ ही पंजाब में आये थे। यहां भी उन्होंने बहुत दिनों तक वातावरण को देखा और तब गोविन्दराय जी और परिवार के लोगों को बुलाया। उस समय तक गोविन्दराय जी जो आगे चलकर गुरु गोविन्दसिंह जी के नाम से मशहूर हुए, आठ वर्ष के हो चुके थे। जब वे आनन्दपुर गये तो वहां गुरु जी ने उन्हें घोड़े पर चढ़ना शस्त्र चलाना आदि युद्ध विद्या की सब बातें सिखा दीं।

आरम्भ में तो औरंगजेब घरेलू झगड़ों में फँसा रहा अपने भाइयों का दमन किया। पिता को जेल में डाला। कुछ देशों को को फतह कराया। इन कामों से फुरसत पाते ही वह अपने इस्लाम को फैलाने की ओर अग्रसर हुआ। उसने अपने मुसलमान सूबेदारों को इस आशय की सूचना दी "मैं चाहता हूं कि सारा हिन्दुस्तान उसी मजहब के झंडे के नीचे आ जावे, जो अरब की पवित्र भूमि में पैदा हुआ है और जिसने अपने जाहोजलालसे संसारको चकाचौंध कर रक्खा है। हिन्दुओंको मुसलमान बनाने के लिये साम, दाम, भय और दंड जितने भी तरीके हैं काम में लाना चाहिए। मैं इसे महान पवित्र काम समझता हूँ।"

जब बादशाह ही ऐसा करने को तैयार था तो उसके सूबेदार, नाजिमों की तो बात ही क्या थी। सारे देश मे जोर जुलम का राज्य कायम हो गया। चारों ओर मजहब की विषम ज्वाला धधक उठी। हिन्दुओं मे हा हा-कार मच गया। चोटी और जनेऊ की रक्षा मे लाखों सिर धड़ से अलग होने लगे। स्त्री और बच्चे भी इस प्रचंड दावानल से न बचे। उन्हे भी मौत और इस्लाम का निमंत्रण दिया जाने लगा। कन्याकुमारी से कश्मीर और गुजरात से आसाम तक यही गति हो गई।

कश्मीरी ब्राह्मणों की पुकार

काश्मीर के हाकिम ने भी अपने प्रांत मे हिन्दुओं के साथ मुसलमान बनाने के लिये जोर जुलम जारी कर दिया। आरम्भ मे उसने छोटे २ देहातों मे हाथ साफ किया और फिर श्रीनगर मे वही अत्याचार शुरू किया, जो देहातों को मुसलमान बनाने मे अमल मे लाया गया था। श्रीनगर प्रायः ब्राह्मणो की बस्ती थी। वे सभी घबरा गये। जब आग घर मे लग जाती है, तब उससे बचना मुश्किल हो जाता है। उन्हे भी चाद तारे दिखाई देने लगे। बहुत कुछ सोचने पर उन्हें एक आशा की कोर आनंदपुर की ओर दिखाई दी। सारे उत्तरी भारत मे गुरु तेगबहादुर ही ऐसे धन्य पुरुष थे, जिनके प्रभाव मे ज्यादा से ज्यादा समूह था। ब्राह्मणों ने काश्मीर के हाकिम से तो छ महीने का अवकाश मागा और उनका एक प्रतिनिधि मडल आनदपुर की ओर चला।

आनंदपुर मे उस स्वर्ग तुल्य नगरी मे आज भी सुख शांति की वर्षा हो रही थी। आज जहा सारा भारत भय और आतक की लपट से झुलसा जा रहा था। वहा आनंदपुर मे निर्भयता और प्रेम का राज्य हो रहा था। दरबार लग रहा था, हजारों सिख शाति के साथ बैठें हुए थे और एक सुन्दर तख्त पर बैठे हुए तत्कालीन भारत के राजऋषि श्री तेगबहादुर जी प्रवचन कर रहे थे। "अपनी आत्माओं को बलवान बनाओ। पापों से बचो। निर्भय बनो। एक परमपिता मे विश्वास रक्खो। संसार मे रहते हुए ससार की वस्तुओं से इतना मोह मत करो कि उनके लिये स्वाभिमान की भी रक्षा न करो। आपस म कभी भी ईर्षा और द्वेष मत करो।" इसी समय काश्मीर के ब्राह्मणों का दल आया। सभा मे चुपचाप बैठ गये उन्हे अनुभव हुआ। हम उस जगह पर आ गए हैं, जहा भय और शोक को कोई स्थान नहीं है। उपदेश की समाप्ति पर ब्राह्मणो ने खड़े होकर कहा, हिन्दुओं के रक्षक और हम अनाथों के नाथ, हे सत-गुरु हम काश्मीर के उन पीड़ित ब्राह्मणों के प्रतिनिधि है, जिन्हे राज का सूबेदार "मौत या इस्लाम" का निमत्रण दे चुका है। हमने खूब आंख फाडकर भारत के प्रत्येक कोने की ओर देखा है, आज हमारा, हमारे धर्म का कोई भी रक्षक नहीं हैं। भगवन् हम आपकी शरण है, हमारी रक्षा कीजिये। हमें केवल छ महीने की मोहलत मिली है। सभा मे सन्नाटा हो गया। सब एक दूसरे के मुँह की ओर देखने लगे सब चुप थे। इतने मे बाहर से खेलते २ बालक श्री गोविन्दराय जी भी आ गये, उन्होंने गुरु जी को विचार मग्न देखकर पूछा, महाराज आप किस विचार मे है? बडी शाति और दृढता से गुरु जी ने कहा पुत्र! इस समय इन पीडित हिन्दुओं के धर्म को बचाने के लिए किसी महपुरुष के बलिदान की आवश्यकता है, जो अपने पवित्र खून से इस धधकती हुई आग को शांत कर सके। गुरु बालक ने झट से कहा तो महाराज आपसे बड़ा और कौनसा महापुरुष हैं? बालक गोविन्दराय जी की इस ओजपूर्ण बात को सुनकर सभा के सभी मनुष्य स्तब्ध रह गए। गुरु तेगबहादुर जी ने अपने प्यारे बच्चे को छाती से चिपटा लिया और बोले "ऐसा ही होगा अवश्य ही ऐसा होगा"। मैं ही अपने प्राणों की बलि इस हिन्दू जाति की रक्षा के लिए दू गा। ब्राह्मणो, जाओ बादशाह से कह दो, कि हमारे देश और प्रात के महापुरुष

निरंकारी नानकदेव ही आराध्य देव हैं यदि उनके उत्तराधिकारी गुरु तेगबहादुर इस्लाम को कबूल करले तो हम सब मुसलमान हो जावेंगे।"

चारों ओर से आवाज आई "गुरु नानकदेवजी की जय" और गुरु तेगबहादुर की कीर्ति अमर हो।

लाख वर्ष बीत चुके थे, सैकड़ों नहीं, हजार और अनेकों हजारों वर्ष पहले की बात है। दैत्यों ने भारत को जीत लिया था, देवता पराजित कर दिये गये थे। वे गिरि और कन्दराओं में छिप कर प्राण बचा रहे थे। इन्द्र को बताया गया, यदि राजर्षि दधीचि की जंघा की हड्डी का शस्त्र बनाकर युद्ध किया जाय तो दैत्यराज वृत्रासुर को मारा जा सकता है। देवता आशा और निराशा के भाव लेकर दधीचि की सेवा में हाजिर हुये और कहा हमारी रक्षा आपकी दया पर निर्भर है। आप हमें अपनी जंघा की हड्डी दीजिये। दधीचि ने अपनी जंघा को अपने ही हाथों से काट कर देवताओं को दे दिया।

वह समय तो दूर पड़ गया था, लोग कहने लग गये थे। ऐसा सतयुग में ही होना था, यह तो कलियुग है किन्तु विक्रम की अठारहवीं शताब्दी में इतिहास ने फिर उस घटना को दुहराया और सारे भारत देश ने सुना कि केवल परोपकार से प्रेरित होकर हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये, गुरु तेगबहादुर ने अपना बलिदान देने का वचन अपने लिये अर्पित कर दिया है। कवियों की भाषा में कहा जा सकता है कि "परमात्मा का आसन हिल गया और भारत माँ के बन्धन की एक कड़ी कड़ाक से खुल गई और उसका अभिमान से मस्तक ऊँचा हो गया।"

ब्राह्मण लोग दिल्ली पहुँचे और यही बात उन्होंने शाह के सामने पेश करदी। औरंगजेब ने भी स्वीकार कर लिया। वह स्वीकार भी क्यों न कर लेता उसका हर्ज ही क्या था। जिस शिकार को जाल में फांसने के लिये बड़े २ प्रयत्न करने पड़ते, दिमाग लड़ाने पड़ते और कुछ आगा पीछा भी सोचना पड़ता, जब वही शिकार खुद ही जाल में आजाना चाहता है तो वह स्वीकार क्यों नहीं करता।

वर्तमान की आंधी में भविष्य का स्वरूप किसी को भी दिखाई नहीं दिया करता है। औरंगजेब को भी नहीं दिखाई दिया। उसने गुरुजी को देहली बुलाया। उन्होंने औरंगजेब के उत्तर में कहलवा भेजा कि हम वर्षा के समाप्त होने पर आवेंगे।

आनन्दपुर से चल कर गुरु जी सैफाबाद[1] में वहा के मुसलमान रईस सैफुद्दीन के घर ठहरे थे। सैफुद्दीन बड़ा नेक और श्रद्धालु पठान था। वह गुरु घराने का बड़ा प्रेमी था। इसलिये गुरुजी को उसने सारी वर्षा विदा नहीं होने दिया। अपने बाग और मकान में गुरुजी के उपदेश कराता रहा, जहां २ उसके दूर के रिश्तेदार और दोस्त थे वह भी उपदेश सुनने आये।

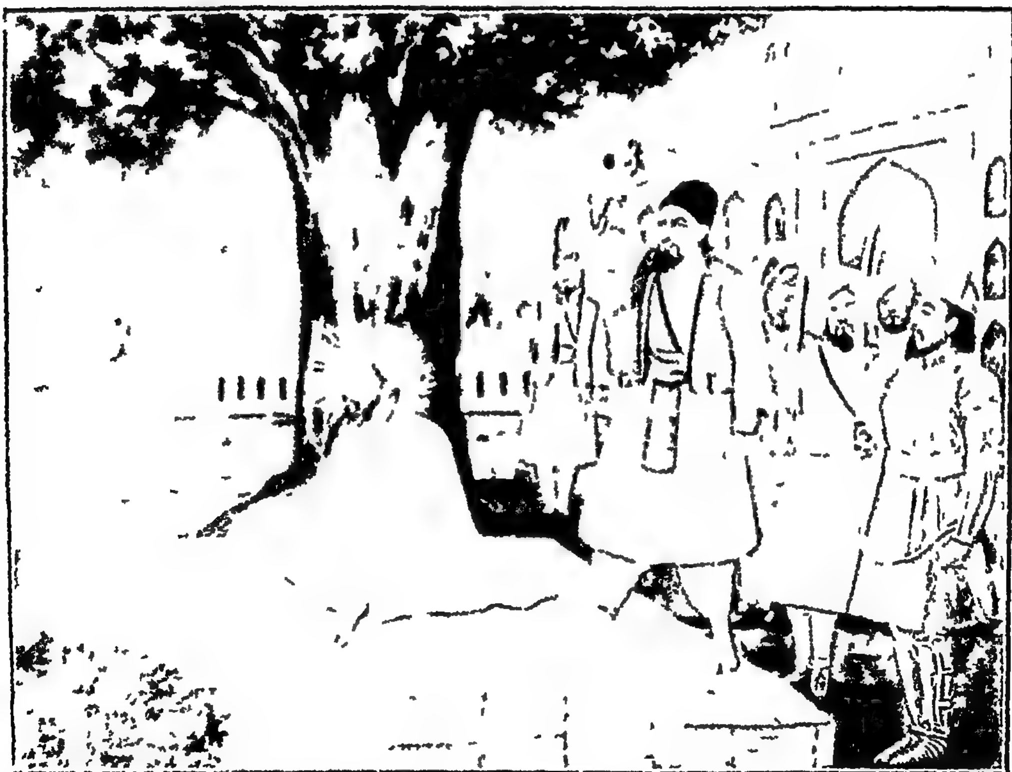
मार्ग में

वर्षा बीत जाने पर गुरुजी सैफाबाद से चल दिये। जब समाने के बराबर पहुँचे तो रास्ते में एक पठान मिला और उसने गुरुजी को अपने यहां ठहरने का आग्रह किया। क्योंकि वह पठान सैफाबाद में गुरुजी के उपदेश सुन चुका था। गुरुजी को अचानक इधर आया जानकर अपनी खुश किस्मती समझी। गांव के बाहर उसने उन्हें ठहरा दिया। जहां कुछ दिन रहकर गुरुजी दिल्ली चले गये।

जब बादशाह का दरबार भरा हुआ था। पठान मुगल और ईरानी मुसलमान दरबार में डटे हुए थे। भारत में क्षत्रियों का स्थान लेने वाले और अपने को सूर्य्यवंशी और चन्द्रवंशी कहलाने वाले राजपूत भी बैठे हुये थे। गुरु तेगबहादुर जी को दरबार में लाया गया। सब लोग एक दूसरे के मुंह की ओर

१. यह सैफाबाद आज के पटियाला के स्थान पर बताया जाता है।

परम सन्त शहीद



श्री गुरु तेगबहादुर जी



श्री गुरु गोविन्दसिंह जी

अधिकारी गुरु तेगबहादुर जी को संसारी बन्धनों को अपने ढंग से चालू रखने के इच्छुक औरंगजेब ने लोहे के पिंजरे में बन्द करा दिया। जिनका आत्मा जीवन्मुक्त हो चुका है, उनके शरीर को चाहे जितने बांधो चाहे जहां रक्खो। क्या उन्हें उसकी परवाह होती है? किन्तु माया और मोह तथा सत्ता के मद में चूर हुये प्राणी इस रहस्य को समझ भी कब सकते हैं। औरंगजेब भी क्यों समझता जो कि राज मद में अपने को भूले हुए था।

काफी दिन के बाद बादशाह औरंगजेब ने गुरु जी के सामने तीन प्रस्ताव पेश करने को अपने दो आदमियों को भेजा। यह प्रस्ताव इस प्रकार थे (१) चाहे किसी भी वायदे और महत्वकांक्षा पर मुसलमान बनना स्वीकार कर लो (२) या कोई करामात दिखाओ नहीं तो (३) कतल होना स्वीकार करो। गुरु जी ने जवाब दिया। बादशाह से कहो कि वे किसी भी अन्याय और जब्र के सामने झुकने को तैयार नहीं। इस पर बादशाह ने उनके वध करने का हुक्म दे दिया।

तीन प्रस्ताव

सारे दिल्ली शहर में खलबली मच गई थी। सबके मुंह पर एक ही बात थी। कल गुरु तेगबहादुर को धर्म के नाम पर कत्ल कर दिया जायेगा। समय आने पर चांदनीचौक वाला कत्ल का मैदान भर गया। हजारों आदमी इकट्ठे हो गये। आदमशाह गुरु जी को लेकर उपस्थित हुआ। हाथ में चम-चमाती हुई तलवार, यमराज जैसा वेश।

बलिदान

जिस समय गुरु जी का बलिदान होने को था दैवात से आंधी आ गई और जब जल्लाद की तलवार ने गुरु जी पर वार किया तो पहले से उपस्थित भाई जीवनसिंह उस अंधेरी में गुरु जी का शीश लेकर वहाँ से निकल गया। उनके धड़ की बाबत कहा जाता है कि दो सिख बड़ी सावधानी से उठा ले गये। जिसका वर्णन कई इतिहासकारों ने इस प्रकार किया है।

"दो बनजारे पिता और पुत्र रात्रि में घटनास्थल पर पहुंचे। बैलों पर रुई लदी हुई थी। उन्हें एक किनारे खड़ा कर दिया। पुत्र आगे बढ़ा। आंधी अब भी चल रही थी। और भी जोर का झोंका आया। पहरेदार आँखें मूंद कर बैठ गये। बंजारा बढ़ा और धड़ को उठा लाया और रुई में लपेट बैल पर लाद कर चलता बना। अपने घर पहुंचा। और शाही आदमियों के संदेह से बचने के लिये अपने घर में उस शरीर को रख कर समस्त घर को आग लगा दी। यही स्थान रकाबगंज का गुरुद्वारा है।

हमने गुरु महानुभावों की जीवनचर्या की समाप्ति पर अपनी दृष्टि से कुछ न कुछ विचार अवश्य प्रकट किये हैं। गुरु तेगबहादुर जी के सम्बन्ध में हम इससे ज्यादा कहने की शक्ति नहीं रखते हैं कि ईसाइयों के दिलों में प्रभु ईसा के लिये जितनी महान श्रद्धा है, वैसी ही श्रद्धा गुरु तेगबहादुर जी के लिये हमारे हृदय में है। संसार में वही धर्म ऊंचा स्थान पासकता है। जिसमें परोपकार के लिये बलिदान करने वाले महापुरुष पैदा हुए हों। गुरु तेगबहादुर जी ने सिख धर्म को बलिदानों का धर्म बनाने की ओर अग्रसर किया। और बलिदानों का ही फल हुआ कि मृत प्राय हिन्दू जाति में से ही पैदा होने वाले मनुष्यों का गुरु प्रताप से एक ऐसा दल तैयार हो गया, जिसने वास्तव में अनीत पर विजय प्राप्त कर ली थी।

श्रद्धा के फूल

गुरु तेगबहादुर जी की रचनायें

यहाँ हम गुरु तेगबहादुरजी द्वारा रचित कुछ रागनिओं और वाणियों के पढ़ने और पाठ करने से धर्म प्रिय जनो को अवश्य ही आनन्द प्राप्त होगा।

राग देव गांधारी— ये मन नैक न कह्यो करै।
सीख सिखाय रह्यो अपनी सी, दुर्मति से न टरै। रहाउ
मद माया कै भयो बावरो, हरिजस नहि उचरै॥
करि प्रपच जगत को डहकै, अपनो उदर भरै॥१॥
श्वान पूँछ ज्यो होइ न सूधो, कह्यौ न कान धरै।
कहु नानक भज राम नाम नित, जातै काज सरै।

राग धनाश्री— काहे रे बन खोजन जाई।
सर्व निवासी सदा अलेपा, तोही सग समाई॥१॥
पुहम मध्य ज्यो बासु बसत है, मुकर माहि जैसे
तैसे ही हरि बसै निरतरि, घट ही खोजहु भाई।
बाहर भीतर एको जानहु, इह गुरु ज्ञान बताई।
जन नानक बिनु आपा चीनै, मिट न भ्रम की
चेतना है तो चेतले, निशि दिन में प्राणी।

राग तिलंग (काफी)— छिण छिण अवधि बिहात है, फूटे घट ज्यो
हरि गुण काहे न गावही मूर्ख अज्ञाना।
झूठे लालच लाग कै, नहि मरन पछाना॥?
अजहूँ कछु बिगरयो नहीं जो प्रभु गुण गावे।
कहु नानक तिह भजनते निर्भय पद पावै।

राग सारंग— हरि बिनु तेरो कौन सहाई।
काको मातु पिता सुत बनिता, को काहू को भाई।
धन धरनी अरु सपति सगरी जो मान्यो अपनाई।
तन छूटै कछु सग न चालै कहां ताहि लपटाई।
दीनदयाल सदा दुख भजन ता स्यो रुचि न बढाई।
नानक कहत जगत सभ मिथ्या ज्यो सुपना रैनाई॥

बारहवाँ अध्याय

गुरु गोविन्दसिंह जी की जीवन गाथा

दशम पातशाह जी का जन्म २७ पोष सम्वत १७२३ वि० में शनि और रवि के मध्य की रात्रि में डेढ़ पहर (रात्रि) शेष में हुआ था। हम पिछले पृष्ठों में बता चुके हैं कि उस समय आपकी माता अपने भाई कृपालचन्द और मातु. माता नानकी के साथ पटना में रहती थीं। पिता आपके उस समय आसाम की ओर गये हुए थे।

जन्म और बालकाल

जब गुरु जी पाँच वर्ष के हुए तो इसी अवस्था में उनका भविष्य झलकने लग गया था। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' की तरह इनके खेल में, बातचीत और रङ्ग ढङ्ग सभी में संत-सिपाही का प्रकाश प्रकट दिखाई देने लग पड़ा था। बालकों को इकट्ठा करके चाँदमारी के उपक्रम, सेनाओं की इनक्रीड़ा और स्वयम सेना संचालक बनना भविष्य निर्माण की छटायें सहज ही मनोवैज्ञानिकों को आकृष्ट करने वाली थीं।

इनके अलावा बोलचाल,बर्ताव सभी ऐसी बातें थीं, जो सहज ही मन को आकर्षित कर लेती थीं। पं० शिवदत्त, शेख भीखनशाह आदि जैसे खुदापरस्तों को भी आपने बाल चमत्कार से मोहित कर लिया था। पटना के राजा फतहचन्द की रानी आपको देखकर जीती थी। उस बेचारी के कोई पुत्र न था। एक दिन अचानक उसकी गोद में बैठ गये और प्यार भरे स्वर में बोले 'ओ' रानी इस कर्ण मधुर शब्द को सुनकर प्रेम में विह्वल होगई और उस दिन से उन्हें बहुत प्यार करने लग पड़ी। उसके प्रेम के कारण वे 'बाला प्रीतम' की उपाधि से पटने में मशहूर हो गये थे।

बचपन में ही उन्होंने शस्त्र चलाने, घोड़े पर चढ़ने और नाव खेने जैसे भी कार्य अपनी युद्धप्रिय स्वभाव से सहज ही में सीख लिये थे।

पंजाब के बखेड़ों के कारण आपके पिता गुरु तेगबहादुर जी आपको परिवार के साथ ही पटना में ही छोड़ गये थे। इसलिये हिन्दी संस्कृत की शिक्षा आपने वहीं प्राप्त करली थी।

जिस समय पिता जी के बुलाने पर पंजाब को विदा हुये। बालक,वृद्ध,नरनारी सभी आपके वियोग में दुखी हुए। राजा फतहचन्द और रानी तो प्रेम में सिसकी भरकर रोने लग पड़े। जिनको याददास्त के लिये आपने अपनी एक कटार,तलवार और पोशाक देकर संतुष्ट किया। राजा ने आपके विदा होने पर अपने घर को ही गुरुद्वारा बना दिया, जहाँ पर कि आज तक आपकी दी हुई चीजें धरी हैं और वह स्थान मैणी सगत कहलाता है।

गुरु तेगबहादुर जी की रचनायें

यहाँ हम गुरु तेगबहादुरजी द्वारा रचित कुछ रागनिओं और वाणियों को उद्धृत करते हैं, जिनके पढने और पाठ करने से धर्म प्रिय जनों को अवश्य ही आनन्द प्राप्त होगा।

राग देव गांधारी— ये मन नैक न कह्यो करै।
सीख सिखाय रह्यो अपनी सी, दुर्मति ते न टरै। रहाउ
मद माया कै भयो बावरो, हरिजस नहि उचरै॥
करि प्रपंच जगत को डहकै, अपनो उदर भरै॥१॥
श्वान पूंछ ज्यो होइ न सूधो, कह्यो न कान धरै।
कहु नानक भज राम नाम नित, जाते काज सरै॥२॥

राग धनाश्री— काहे रे बन खोजन जाई।
सर्व निवासी सदा अलेपा, तोही संग समाई ॥१॥ रहाउ
पुहुप मध्य ज्यो बासु बसत है, मुकर माहि जैसे छाई।
तैसे ही हरि बसै निरंतरि, घट ही खोजहु भाई।
बाहर भीतर एको जानहु, इह गुरु ज्ञान बताई।
जन नानक बिनु आपा चीनै, मिटै न भ्रम की काई।

चेतना है तो चेतले, निशि दिन में प्राणी।
राग तिलंग (काफी)— छिण छिण अवधि बिहात है, फूटे घट ज्यो पाणी॥१॥रहाउ
हरि गुण काहे न गावही मूर्ख अज्ञाना।
झूठे लालच लाग कै, नहि मरन पछाना॥?
अजहूँ कछु बिगरयो नहीं जो प्रभु गुण गावे।
कहु नानक तिह भजनते निर्भय पद पावै।

राग सारंग— हरि बिनु तेरो कौन सहाई।
काकी मातु पिता सुत बनिता, को काहूँ को भाई॥रहाउ
धन धरनी अरु संपति सगरी जो मान्यो अपनाई।
तन छूटै कछु संग न चालै कहां ताहि लपटाई।
दीनदयाल सदा दुख भंजन ता स्यों रुचि न बढाई।
नानक कहत जगत सभ मिथ्या ज्यो सुपना रैनाई॥

ग्यारहवाँ अध्याय

गुरु गोविन्दसिंह जी की जीवन गाथा

दशम पातशाह जी का जन्म १७ पौष संवत १७२३ वि० में शनि और रवि के मध्य की रात्रि में डेढ़ पहर (रात्रि) शेष में हुआ था। यह पिछले पृष्ठों में बता चुके हैं कि उस समय आपकी माता अपने भाई कृपालचन्द और मातु. माता नानकी के साथ पटना में रहती थीं। पिता आपके उस समय आसाम की ओर गये हुए थे।

जन्म और बालकाल

जब गुरु जी पाँच वर्ष के हुए तो इसी अवस्था में उनका भविष्य झलकने लग गया था। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' की तरह इनके खेल में, बातचीत और रङ्ग ढङ्ग सभी में संत-सिपाही का प्रकाश प्रकट दिखाई देने लग पड़ा था। बालकों को इकट्ठा करके चाँदमारी के उपक्रम, सेनाओं की जलक्रीडा और स्वयम सेना संचालक बनना भविष्य निर्माण की छटाये सहज ही मनोवैज्ञानिकों को आकृष्ट करने वाली थीं।

इसके अलावा बोलचाल,बर्ताव सभी ऐसी बातें थीं. जो सहज ही मन को आकर्षित कर लेती थीं। पं० शिवदत्त. शेख भीखनशाह आदि जैसे खुदापरस्तों को भी आपने बाल चमत्कार से मोहित कर लिया था। पटना के राजा फतहचन्द की रानी आपको देखकर जीती थी। उस बेचारी के कोई पुत्र न था। एक दिन अचानक उसकी गोद में बैठ गये और प्यार भरे स्वर में बोले 'ओ' रानी इस कर्ण मधुर शब्द को सुनकर प्रेम में विह्वल होगई और उस दिन से उन्हें बहुत प्यार करने लग पड़ी। उसके प्रेम के कारण वे 'बाला प्रीतम' की उपाधि से पटने में मशहूर हो गये थे।

बचपन में ही उन्होंने शस्त्र चलाने, घोड़े पर चढ़ने और नाव खेने जैसे भी कार्य अपनी युद्धप्रिय स्वभाव से सहज ही में सीख लिये थे।

पंजाब के बखेड़ों के कारण आपके पिता गुरु तेगबहादुर जी आपको परिवार के साथ ही पटना में ही छोड़ गये थे। इसलिये हिन्दी संस्कृत की शिक्षा आपने वहीं प्राप्त करली थी।

जिस समय पिता जी के बुलाने पर पंजाब को विदा हुये। बालक,वृद्ध,नरनारी सभी आपके वियोग से दुखी हुए। राजा फतहचन्द और रानी तो प्रेम में सिसकी भरकर रोने लग पड़े। जिनको याददाश्त के लिये आपने अपनी एक कटार,तलवार और पोशाक देकर संतुष्ट किया। राजा ने आपके विदा होने पर अपने घर को ही गुरुद्वारा बना दिया, जहाँ पर कि आज तक आपकी दी हुई चीजे धरी हैं और वह स्थान मैणी सगत कहलाता है।

पटना से विदा होकर दानापुर, छपरा, मिर्जापुर, काशी, सहारनपुर, अम्बाला आदि स्थानों पर विश्राम करते हुये लखनौर में झंडू नाम मसंद के घर पर ठहरे। आपने जगल में जाकर शिकार का अभ्यास किया। यहाँ पर पीर आरफदीन ने आपके दर्शन किये और अपनी श्रद्धा प्रकट की।

जब गोविन्दराय जी आनन्दपुर आगये तो लोगों में बडा उत्साह फैला। उनके बाल कौतुकों को देखकर सभी सिख नरनारी प्रसन्न होते थे। एक बार लाहौर की सगत में 'हरियश' नामके क्षत्रिय ने जब उनको देखा तो वह बहुत ही प्रसन्न हुआ और गुरु तेगबहादुर जी के सामने अपनी सुपुत्री जीतो जी की शादी गोविन्दराय के साथ कर देने का प्रस्ताव पेश किया। जिसे गुरु तेगबहादुर जी ने मान लिया।

वैसे दिल्ली की ओर विदा होते समय ही श्री गुरु तेगबहादुर जी बालक गोविन्दराय को भावी गुरु बनाने की आज्ञा दे गये थे किन्तु जब वे देहली की जेल में बन्द कर दिये गये और उन्हे आनन्दपुर लौटने की आशा न रही तो विधि को पूरी करने के लिये पांच पैसे और नारियल भी भेज दिये थे। अत वे अपनी ९ वर्ष की अल्पावस्था में गुरु बन गये। कहते हैं कि गुरु तेगबहादुर जी ने भावी गुरु बालक गोविन्दराय जी की परीक्षा के लिये देहली की जेल से एक श्लोक लिखकर भेजा जो यह था।

बल छुटि गयो बन्धन परे कछू न होत उपाय।
कहु नानक अब ओट हरि गज ज्यो होय सहाय॥

इसके उत्तर में जो पद गोविन्दराय जी ने गुरु तेगबहादुर जी को देहली में भेजा वह इस प्रकार था,—

बल होआ बन्धन छुटे सब कछु होत उपाय।
नानक सब किछु तुम्हरे हाथ में तुम्ही होत सहाय॥

गुरु अर्जुनदेव जी के बलिदान ने गुरु बालक गुरु हरिगोविन्द जी के हृदय में एक तेज पैदा किया था और उसी से प्रेरित होकर उन्होंने पीरी के साथ ही मीरी अख्तियार की थी। वही स्थिति आज हमारे दशम पातशाह के सामने थी। बादशाह के नृशंस अत्याचारों और महामना पिता की उसके द्वारा की जाने वाली कुर्बानी ने उनके हृदय को अपने धार्मिक मिशन के लिये उत्तेजित कर दिया, आप ने अपने पिता की शहादत के बाद कुछ समय अध्ययन और अपने भावी महान् कार्य्य के लिये आत्मिक तैयारी में बिताया और फिर अपने शिष्यों में एक स्पिरिट पैदा करने के लिये एलान कर दिया कि आयन्दा से सिख भेट में उमदा उमदा हथियार और घोडे लाया करें। इसका कुछ कारण वह घटना भी थी, जब कि एक समय बाहर से आती हुई सगतें रास्ते में लूट ली गई थीं।

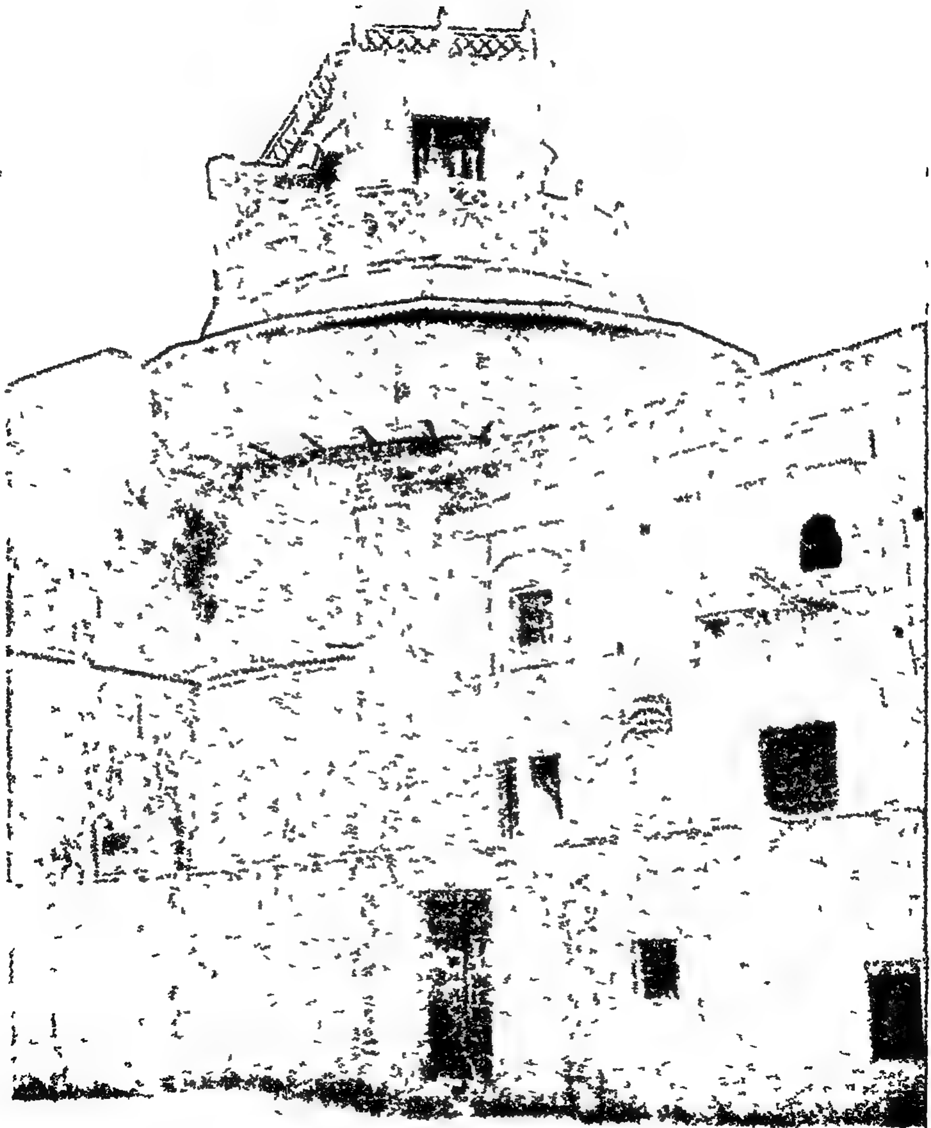
साथ ही दरबार में ओजस्वनी रचनाओं के पढने वाले कवि और बहादुराना गाथायें सुनाने वाले विद्वान् भी इकट्ठे किये, कुछ अपने आदमी भी काशी सस्कृत पढने को भेजे।

अब यह नियम सा हो गया था कि बरछी, कटार और तलवार के बिना कोई ही खाली नहीं आता था। व्यापार करने वाले तो सभी सिख घोड़े, बछेड़े और हथियार ही भेट करते थे। इस तरह से शास्त्रागार हथियारों और घुड़साल घोड़ों से भर गई।

दूसरी ओर १८ और ४० वर्ष की उमर के बीच का जो भी आदमी गुरु जी की सेवा में हाजिर होता उसे फौजी तालीम देने के लिये अपने पास रख लेते, आनन्दपुर के पास का जगल अब चादमारी के काम मे आरहा था और रात दिन सैनिकों की संख्या बढ़ रही थी।

जन्म-स्थान श्री गुरु गोविन्दसिंह जी





सरोपा साहिब नाभा

आसाम देश से राजकुमार रत्नराय जो कि राजाराम का पुत्र था। गुरु जी के दर्शनों के लिये आनन्दपुर में हाजिर हुआ। उसने गुरु जी को सामान भेंट में दिया। उसमें एक सफेद हाथी एक पंचकला शस्त्र, पांच बढ़िया बन्दूकें थीं। उनके अलावा एक कटोरी, एक चौकी, एक कलगी, एक हार और अनेकों ढाके की मलमल के बढ़िया वस्त्र थे। हाथी बड़ा चतुर और सिखाया हुआ था। वह हथियार उठा कर अपने सवार को दे सकता था। पानी से नहला सकता था। वस्त्र से शरीर पोंछ सकता था। रात्रि के समय सूंड में मसाले लेकर रास्ता दिखा सकता था। पंचकला हथियार भी विचित्र था वह भी पांच हथियारों का काम देने वाला था।

राजकुमार रत्नराय अपने मन्त्री और माता समेत आया था। पांच महीने गुरु जी की सेवा में रहा।

गुरु जी ने एक बढ़िया नगारा भी बनवाया। जिसकी आवाज बहुत दूर तक जाती थी और इसका नाम रणजीत नगारा रक्खा।

ऐसी ही एक बेशकीमती भेंट काबुल के सिख व्यापारी लाला दुनीचन्द जी ने भेजी थी। वह था एक तम्बू। कहा जाता है कि वह ढाई लाख रुपये की कीमत का था। उस सिख ने अपने गहरे मुनाफे में से धर्मांश निकाले हुये दस हजार रुपये भी भेंट किये।

इसी तरह सम्पत्ति, शस्त्र और घोड़ों की भेंट से आपके पास लाखों रुपये, सैकड़ों घोड़े और हजारों हथियार इकट्ठे हो गये। और उनका यह वैभव छोटे मोटे राजाओं के वैभव को मात देने वाला बन गया।

कहा जाता है कि जब घटायें उठती हैं तो वर्षा होना भी निश्चित सा हो जाता है और आसमान में गर्द छाने लगते ही आंधी की अगवाई जरूरी हो जाती है। जब गुरु जी के यहाँ यह युद्ध का सामान इकट्ठा हो रहा था और हजारों सिखों का युद्धकला सिखाई जारही थी तो यह तो निश्चित था कि एक दिन लड़ाई अवश्य होगी, हालांकि चाहे यह उपादान आत्मरक्षा के लिये ही हो रहे थे। तोभी लड़ाई अवश्य ही जान पड रही थी। किन्तु जो तयारियाँ भारत के शासकों के अत्याचारों के रोकने के लिये की जारही थीं, उनका सामना राजा विलासपुर कर बैठा।

युद्ध के उपक्रम

आनन्दपुर, विलासपुर रियासत में अवस्थित था। एक दिन जब रणजीत नगारा बजा तो राजा भीमचन्द ने समझा कि कोई शत्रु चढ़ आया है, किन्तु उसके मन्त्री ने बताया कि यह नगारा तो आनन्दपुर में बजा है। प्रतापी गुरु गोविन्दसिंह जी के आजकल बहुत ठाठ हो गये हैं।

गुरुओं का ऐसा वैभव देखने की अपनी उत्सुकता को राजा भीमचन्द संवरण न कर सका और वह आनन्दपुर आया। गुरु जी ने उसे इसी काबुली तम्बू में ठहराया और उसने प्रसादी हाथी तथा पंचकला शस्त्रादि सब को ही देखा। इस वैभव से जब अपनी तुलना करने लगा तो अपने को उसने बहुत हल्का पाया। अतः बिलासपुर पहुँचते ही उसने गुरु जी के पास एक आदमी भेजा, जिसे कहला भेजा, मेरे यहां शादी है, अतः शोभा बढ़ाने के लिये परसादी हाथी, रणजीत नगाड़ा, काबुली तम्बू और पंचकला शस्त्र को भेज दें।

गुरु जी भीमचन्द के इरादे को ताड़ गये। वह इस बहाने से इन चीजों को झँपना चाहता है। अतः नर्म शब्दों में कहला भेजा, सिखों की ओर से श्रद्धा-पूर्वक कीगई भेंट बाहर नहीं भेजी जा सकती। इसके बाद भीमचन्द ने अपने सम्बन्धी राजा केसरीचन्द जसवालिये और ब्राह्मण पुरोहित को पुनः इसी मतलब के लिये भेजा परन्तु इस बार भी वे अपने इस कार्य में सफल न हुये। इन्हीं दिनों नाहन

के राजा मेदिनी ने गुरु जी को अपनी रियासत में आने का निमंत्रण दिया। जिसके आकस्मिक कारण यह थे। एक तो वह श्रीनगर के राजा फतेहशाह से लड़ाई होने से डरता था। दूसरी यह बात कि राजा फतेहशाह के इलाके में रामराय ने डेरा बना लिया था। जिससे यह भय प्रतीत हो रहा था कि रामराय और फतेहशाह की मैत्री के कारण उसके पड़ोसी फतेहशाह की हरकत बहुत ज्यादा न बढ़ जाय। गुरु जी ने कुछ सिखों की सलाह से यह निमंत्रण स्वीकार कर लिया। और वह नाहन चले गये। वहां राजा फतेहशाह भी गुरु जी के पास आ गया। गुरु जी ने उन दोनों में मेल करा दिया। इस मेल के होने पर जीता हुआ नाहन का हिस्सा भी फतेहशाह ने वापिस कर दिया। इससे नाहन का राजा बड़ा खुश हुआ। उसने गुरुजी को राजी करके यमुना किनारे एक रमणीक स्थान पर एक गॉव नमना दिया और एक दुर्गाकार स्थान गुरु जी और उनके दल के लिये बनवा दिया। गुरु जी ने इस स्थान का नाम पाऊंटा रक्खा। और गुरु जी मय परिवार के यहीं रहने लगे। दूर २ से सिख संगतें भी यहां आकर दर्शन करने लगीं।

यहॉ गुरु जी जगलों में शिकार के लिये जाते तो दोनों राजाओं को साथ ले जाते थे। जिससे उन्हे गुरु जी के बल तप और स्फूर्ति का अनुभव पूरी तरह से हो गया।

यहॉ पर गुरु जी को सढोरे का प्रसिद्ध साईं सियॉ बुद्धूशाह भी मिला और ज्ञानचर्चा करके उसने अपनी आत्मा को शात किया।

गुरु जी पाऊंटे आ गये थे। उनका एक हल्का किला भी बन गया था, अपनी ताकत को भी बढ़ा रहे थे। किन्तु उधर राजा भीमचन्द संतुष्ट न था। उसने फतेहशाह की लड़की के साथ अपने पुत्र के विवाह के बाद ही गुरु जी से लड़ने की तैयारी कर दी। श्रीनगर पहुंचकर भीमचन्द ने राजा फतेहचन्द को मजबूर किया कि वह गुरु गोविन्दसिंह जी के विरुद्ध भीमचन्द की मदद करे। और गुरु गोविन्दसिंह जी द्वारा दीवान नन्दचंद की मार्फत आये हुए उपहारों को वापिस करदे। फतेहशाह मजबूर होगया और जब दीवान नन्दचद श्रीनगर से लौट रहा था भीमचन्द ने उसपर हमला बोल दिया।

दोनों ओर से युद्ध की तयारियॉ होगईं और पाउटा से ६ मील के फासले पर भंगाणी नाम के स्थान पर दोनों दल आ डटे। भीमचंद के साथ एक बड़ी भारी सेना थी जिसमें कटोच के राजा कृपाल, गुलेर के गोपाल, हडूर के हरिचन्द, श्रीनगर का फतेशाह और जसपाल के राजा शामिल थे इस पहाड़ी युद्ध का हाल स्वयम गुरु जी ने "विचित्र नाटक" में इस प्रकार लिखा है —

"हरीचद कोपे कमाण सँभार, प्रथम बाजिय ताण बाण प्रहार।
द्वितीय ताक कै तीर मोको चलायं, रख्यो दैव मे कान छवै कै सिघाय॥
तृतीय बाण मार्यो सु पेटी मझार, बिधि अ चिलति अ ढाल पार पधार।
चुभि चिंच चर्म कछू घाइन आय, कल केवल जान दासं बचाये॥
जबै बाण लागिओ, तबै रोस जागिओ।
कर लै कमाण, हन बाण ताण॥
सबै बीर धाए, सरोघ चलाए।
तबै ताकि बाण, हन्यो एक जुआण॥
हरीचद मारे, सुजोधा लतारे।
सुकारोड राय, वहै काल घाय॥
रण त्याग भागे, सबै त्रास पागे।

भई जीत मेरी, कृपा काल केरी ॥
रण जीत आये, जयं गीत गाये ।
धन धार बरसे, सबै सूर हरखे ॥

इस युद्ध के बाद गुरु जी के साथियों को पाउंटा रहना रुचा नहीं, अत: संवत १७४३ वि० जेठ मास में फिर आनन्दपुर आ गये और "जो जो नर तह न भिरे दीन्हे नगर निकाल । जो तिह थोढ भले भिरे तिन्हे करी प्रतिपाला ।" ऐसे कायरों के निष्कासन के बाद प्रतिदिन लोगों को धार्मिक उपदेशों के बाद सैनिक शिक्षा का काम और भी उग्र कर दिया गया । इसके अलावा लोहगढ, आनंदगढ़, होलगढ और फतहगढ आदि स्थानों में किले बनवाने भी प्रारम्भ कर दिये । थोड़े ही से दिनों में ऐसी शक्ति प्राप्त करली कि पहाड़ी राजाओं की हिम्मत उनसे लड़ने की जाती रही ।

युद्ध पुत्रोत्सव

इन्हीं दिनों माघ सुदी ४ संवत १७४३ वि० में सुन्दरी[1] जी के उदर से गुरु जी के घर एक साहबजादे उत्पन्न हुए जिनका शुभ नाम अजीतसिंह रक्खा गया और बहुत कुछ इस अवसर पर दान पुण्य हुआ ।

गुरु जी की शक्ति को बढ़ते हुए देखकर राजा घबराये लेकिन अब लड़ने की भी हिम्मत नहीं रखते थे अत. उन्होंने गुरु जी की सेवा में हाजिर होकर संधि कर ली । गुरु जी ने तलवार अत्याचारी मुगल शासन को ढीला करने के लिये ग्रहण की थी । राजपूत राजा तो मूर्खतावश मुगलों से भिड़ पड़े थे । इसलिये उनके सुलह करते ही गुरु जी उनके हितू हो गये । और इसी हित से प्रेरित होकर उन्होंने उनकी मदद भी की ।

राजाओं की सहायता

चूंकि औरंगजेब की शक्तियाँ दक्षिण में बीजापुर गोलकुंडा के पठान राज्यों और महाराष्ट्र के मराठों के दमन में लग रही थीं । अत. पंजाब के पहाडी राजाओं की ओर से लापरवाह सा हो गया । इधर इन विलासी राजाओं ने खिराज का रुपया भी न चुकाया । अत: उधर से निपटते ही औरंगजेब ने खिराज वसूल करने के लिये इन पहाड़ी राजाओं की खबर लेनी चाही । उसने अलिफखां को सेना देकर इन राजाओं से खिराज वसूल करने और दंड देने के लिये भेजा । नदोण के मैदान में जमकर लड़ाई हुई ये राजपूत राजा अवश्य ही हार जाते किन्तु गुरु जी ने सहायता देकर मुगल सेना को परास्त कर दिया । इस युद्ध का वर्णन गुरु जी ने विचित्र नाटक में भी किया है ।

युद्ध की समाप्ति पर गुरु जी फिर आलसीन ग्राम के पठानों को ढीला करते हुए आनन्दपुर आये ।

संवत १७४७ विक्रमी के चैत्र मास की सुदि सप्तमी को गुरु जी के घर में सुन्दरी जी से दूसरे पुत्र ने जन्म लिया । जिनका नाम साहबजादा जोरावरसिंह रक्खा गया । और बहुत कुछ दान पुण्य भी किया गया ।

अलिफखॉं की हार से झगडा मिट नहीं गया था । यह खबर जब लाहौर पहुँची तो वहाँ के सूबेदार ने दिलावरखॉं, रुस्तमखॉं को सेना देकर गुरु जी के दमन के लिये भेजा । क्योंकि वह समझ गया था कि यदि गुरु जी भीमचन्द की मदद नहीं करते तो अलिफखां हराया न जाता । सिख लोगों ने जब यह खबर सुनी तो गुरु जी के पास तुरन्त ही सूचना दी । गुरु जी ने रातों रात अपनी सेना सजा-

१. जीतो जी का ही नाम सुन्दरी रख लिया गया था ।

कर रुस्तमखां पर धावा बोल दिया। वह सिखों के पहले हमले को भी बर्दाश्त न कर सका और मैदान छोड़कर भाग गया।

रुस्तमखां के भाग आने पर लाहौर से हुसैनखां के नेतृत्व में सेना भेजी गई। हुसैनखां ने सीधी गुरु जी पर चढ़ाई न कर। राजाओं को तोड़ा फोड़ा और भयभीत किया और उनसे कहा कि यदि तुम सहज ही सीधे रास्ते पर न आओगे तो बादशाह औरंगजेब तुम्हारी रियासतों को जब्त कर लेगा। कई राजा लोग उसके वश में हो गये। जिनमें काहलगढ़ और मंडी के नाम मुख्य हैं। किन्तु गुलेर के राजा गोपालसिंह ने तुरन्त ही गुरु जी को अपनी मदद के लिये बुला लिया। यद्यपि कृपालु चन्द, हरिसिंह और हिम्मतसिंह पहाडी राजा मुगलों की ओर हो गये तो भी गुरु जी के प्यारे मित्र और गोपालसिंह के सैनिक ऐसी वीरता से लड़े कि हुसैन मारा गया। उसके मारे जाते ही रुस्तम खां की हिम्मत टूट गई और वह भी भाग गया। इस विजय पर राजा गोपालसिंह ने गुरु जी को धन्यवाद दिया।

लाहौर के सूबेदार ने रुस्तमखॉ को इस तरह भाग आने पर बहुत लज्जित किया और सफदर जंग की मातहती में एक बड़ी सेना गुरु जी से भिड़ने के लिये फिर भेजी। रुस्तमखां भी साथ गया। बहलान नामक स्थान पर दोनों ओर के लोग भिड़ गये। डट कर लड़ाई हुई। मैदान खून से रंग गया। किन्तु रुस्तमखा को फिर भागना पडा क्योंकि उसके कई बहादुर अफसर और जुझारसिंह और गजसिंह नाम के राजपूत राजे भी लड़ाई में मारे गए।

इसके बाद बादशाह औरंगजेब ने अपने लड़के मुअज्जम को भेजा किन्तु वह खुद तो काश्मीर की ओर चला गया और अपने एक मनसबदार को आनन्दपुर की ओर रवाना कर गया। मनसबदार ने बजाय लड़ाई करने के श्रद्धा के साथ गुरु जी के दर्शन किये।

इसके बाद ६—७ वर्ष तक गुरु जी अपने धर्म प्रचार और संगठन के काम में लगे रहे। और अनेक लोगों को उपदेश देकर सत पर खड़ा किया। तथा अनेकों को आत्म शांति दी।

सवत १७४३ वि० के माघ मास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को वाहि गुरु जी की कृपा से घर में तीसरे पुत्र रत्न का जन्म हुआ और उनका शुभ नाम जुझारसिंह रक्खा गया। इनके दो वर्ष बाद सवत १७४५ के फागुन की एकादशी को चौथे पुत्र श्री फतहसिंह जी हुए।

गुरु जी भारत की सामान्य जातियों की अधम दशा को देखकर मालूम होता है, दिल ही दिल में विचारते थे कि किस प्रकार वह अपने अनुयायी सिखों को एक ऐसी जमात में बांध दें जो कि अपने जीवन में जहॉ धर्म भावों से पूरित होते हुए सतों का जैसा जीवन व्यतीत करें, वहॉ वह देश और जाति की रक्षा के लिये अपने आपको निछावर करने के लिए भी तैयार रहें। अब तक जितने भी धर्म-प्रचारक देश में हो गुजरे थे। वह मनुष्य की केवल मानसिकोन्नति पर ही जोर देते थे और वह भी निज की। जिसका नतीजा यह हो रहा था कि धार्मिक लोग एकान्तवासी से हो गये थे और देश और जाति के कष्टों से न तो प्रभावित ही होते थे और न उन सवालों से सम्बन्ध ही रखते थे। चूंकि सर्वसाधारण में धार्मिक वृत्ति ज्यादा न होती थी, अत: वह दूसरों के दुख को अपना दुख समझने तथा उसमें हाथ बंटाने में कोई साहस न दिखाते थे। आहिस्ता-आहिस्ता देश की अधोगति यहा तक हो गई थी कि विदेशी आक्रान्ता यहां के लोगों को भेड़ और बकरी की तरह हाक ले जाते थे। परन्तु बहू बेटियों की इज्जत बचाने के लिये निस्साहय लोगों से कुछ न बन पड़ रहा था। जाति पाति के भिन्न भेदों ने लोगों को इतना दूर-दूर कर रक्खा था कि आम जनता को देश में हो रहे राज्यान्दोलनों के कारण व अत्याचारों को देखते हुए भी

एक दूसरे से कोई हमदर्दी न थी. और होती भी कैसे ? जबकि अपने आपको उच्च जातिय मानने वाले प्रचारकों और राजपूत राज्यों से धार्मिक और राज्य के कारणों से किये जा रहे दुखों से दिनोंदिन दलित किये जा रहे थे। किसी से हमदर्दी उस समय होती है जब कि वह एक दूसरे से अपने सम्बन्धों को अनुभव करें जब कि इनको एकत्र होकर एक ही उद्देश्य के लिए कार्य करने की शिक्षा दी गई हो।

जाति पांति और धर्म विवाद के कारण बिखरे हुए लोगों को एक जाति की शृंखला में तभी आबद्ध किया जा सकता था, जब कि एक ही धर्म एक ही जाति और एक ही गुरु के अनुयायी बनाकर एक बिरादरी न बना दी जाती। इस आशा को लेकर गुरु गोविन्दसिंह के अपने सिख अनुयाइयों की एक जीवित बिरादरी बनाना चाहते थे। जो कि संत सिपाही और सिपाही संतों की एक जमात हो, इस समय तक सिख पूर्व गुरुओं की शिक्षा द्वारा एक धर्म के अनुयायी हो चुके थे। उनके खयालात में एक परिवर्तन आ चुका था और हरिगोविन्द के समय से लेकर अब तक उनमें कुछ सैनिकता भी पैदा हो चुकी थी। अब उन्हें एक नये सांचे में ढालकर सर्व प्रकार से पूर्ण मनुष्य और मनुष्यों की एक पूर्ण जाति बनाने का काम गुरु गोविन्दसिंह ने किया।

संवत १७५६ के चैत्र मास में आपने तमाम सिख संगतों के नाम सूचनाएं जारी कर दीं कि वह चैत्र के अंत में आने वाली वैसाखी को मनाने के लिये आनन्द पुर में एकत्रित हों। चुनांचे सिख संगतें दूर और निकट के देशों से आनंदपुर में आ एकत्र हुईं। वैसाख की पहली तिथि को एक बड़ा भारी दीवान सजा। और प्रात: से ही आशा की वार का गायन होने लगा। दिन चढ़ते ही जब कि उपस्थित संगतों में गुरु दर्शन का इन्तजार हो रहा था और पलपल में उत्कंठा बढ़ रही थी तो क्या देखते हैं कि यकायक गुरु गोविन्दसिंह हाथ में नंगी तलवार लिए हुए आ उपस्थित हुए। चेहरा गजब से भरा हुआ था। और उनके मुख पर एक प्रकार की विभीषिका टपकती नजर आती थी। नंगी चमकती हुई कृपाण को हिलाते हुए आपने गर्जती हुई आवाज में ललकार कर कहा, जालिम के अत्याचार की भड़क रही अग्नि को बुझाने और धर्म रक्षा की वेदी पर बलिदान करने के लिए मुझे एक सिर की जरूरत है। है कोई शूरवीर, जिसे अपना सिर इस कृपाण की धार पर कुर्बान करना स्वीकार हो। गुरुजी के इस असाधारण प्रश्न को सुनकर दीवान में एक सन्नाटा छा गया। कोई उनकी इस बात की गहराई को न समझ सका। सब हैरान थे कि इस बात का अन्तरीय अभिप्राय क्या है? धीमे धीमे कानाफूसियां हो रही थीं परन्तु किसी को साहस न पडा कि वे गुरु जी के तेज के सामने उनसे इस सम्बन्ध में कुछ प्रश्न करें। जब किसी ओर से उत्तर मिलता प्रतीत न हुआ तो गुरु जी ने फिर से वैसी ही गर्ज से दुहराया। इतने में एक सिंह हृदय पूर्ण-सिख भाई दयाराम खत्री अपना सीस गुरु जी की चमकती हुई कृपाण के हवाले करने के लिये उठा और हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि सतगुरु इस दास का शीश आपके चरणों में हाजिर है। आप कृपा-पूर्वक इस भेट को स्वीकार करें। गुरुजी झुंझलाये हुए मनुष्य की तरह आगे बढ़े और दयाराम का हाथ पकड़ कर साथ के तम्बू में ले गये। भाई दयाराम जी का अन्दर जाना ही था कि धम से गिरती हुई तलवार की आवाज सुनाई दी और अन्दर से बहता हुआ खून एक धारा में प्रवाहित होने लगा। इससे बाहर बैठे हुए सिख और ज्यादा हैरान हो गये। इतने में टपकते हुए खून से सनी हुई तलवार हाथ में लिये गुरु जी फिर बाहर आ गये और फिर ललकार कहने लगे मुझे एक और सिर की जरूरत है। इस होरही घटना को देखकर लोग कुछ दहल से गये परन्तु जब गुरु जी ने दूसरी दफे फिर वही सवाल किया तो, सिक्खी सिदक के पुतले और धर्म के परवाने भाई धर्मा जाट हस्तिनापुर निवासी ने नम्र विनती

की कि सच्चे पादशाह दास हाजिर है। गुरु जी ने कहा क्या तुम्हें मृत्यु का भय नहीं तो भाई धर्मा ने उत्तर दिया। सतगुरु जब से हमने आपकी शरण में सिख धर्म धारण किया है। तब से ही यह शीश आपके चरणों में अर्पण हो चुका है। फिर आपकी ही वस्तु आपको भेंट करने में हमें क्या एतराज हो सकता है। मृत्यु को तो अवश्य एक दिन आना ही है उसमें फिर भय कैसा? यदि यह शीश धर्म की वेदी पर कुर्बान हो जाय तो इससे अच्छी और कौन सी बात हो सकती है।

अब की बार गुरु जी ज्यादा झुंझलाहट के साथ उनको पकड़ कर तंबू में ले गये। पहली बार की तरह ही अबके भी तलवार की झटक सुनाई दी और भी ज्यादा खून बहता हुआ निकला। जिससे बाहर के लोगों को यह निश्चय सा हो गया कि गुरु जी शिष्यों को तम्बू में लेजाकर कत्ल करते जा रहे है। गुरु जी रक्त से भीगी हुई तलवार लेकर फिर बाहर आगये और कहने लगे अब मुझे तीसरे सर की जरूरत है। यह सुनकर द्वारिका निवासी भाई मुहकम छीपा ने अपना शीश गुरु के चरणों पर जा रक्खा।

यह परीक्षा का एक ढग था और हरबार एक सिख को अन्दर लेजाना और फिर तलवार की झटक सुनाई देने के साथ ही तम्बू के बाहर रक्त की धारा का वह निकलना सिखों को भयभीत करके उनके सिदक को जांचना और ससार के सामने उनके इस आदर्श को रखना था कि सिख गुरु आज्ञा के ऊपर कहाँ तक कुर्बानी कर सकते हैं। आखिर वह भी गुरु नानक और गुरु गोविन्दसिंह के सिख थे। जिनके सामने गुरु अर्जुन व गुरु तेगबहादुर की कुर्बानियाँ पथ प्रदर्शक का काम दे रही थीं। इसी तरह गुरु जी ने दो बार और दीवान में सिर के लिये सवाल किया। जिसके उत्तर मे बिदर निवासी भाई साहबचंद नाई और जगन्नाथ निवासी भाई हिम्मत कहार ने गुरु के सामने अपने शीस भेंट किये।

कुछ समय के लिये खामोसी सी हो गई। गुरु जी ने उन पॉचों को स्नान कराया और नये वस्त्र पहनाये और शस्त्र धारण करवाकर पांचों सिदक वान शस्त्र धारी धर्मात्माओं को साथ लेकर तम्बू से बाहर निकले।

उन पांचो को जीवित देखकर दीवान मे उपस्थिति संगते हैरान हो गईं और गुरु जी के इस निराले कौतुक को देखकर सब ओर से धन्य गुरु गोविन्दसिंह की आवाजें आने लगीं। तत्पश्चात् गुरु जी ने सर्व लोह के बाटे (पात्र) मे जल मंगवाया और वीरासन लगाकर गुरु ग्रन्थ साहब के सामने बैठगये। और यह 'पांच पियारे' हाथ जोड़कर पास खडे थे। गुरु जी जप, जापु सवैये आदि वाणियों को पढ़ते और साथ जप से दो धारा खंड फेरते जाते। इसी समय गुरु पत्नी माता साहबकौर बतासे लेकर पहुँची। यह बतासे उस जल मे डाल दिये गये और गुरु जी गुरुवाणी पढ़ते और खंड हिलाते रहे। जब यह अमृत तैयार हो गया तो बिना किसी भेद के पाचों को एक ही बाटे मे पिलाया गया। और उसके नामों के आगे सिंह लगाकर उनके नाम भाई दयासिंह, धर्मसिंह, मुहकमसिंह, साहबसिंह हिम्मतसिंह रख दिये। इसके बाद गुरु जी ने उनको कहा कि अब से आप भाई भाई हो गये हैं। पिछली कुल जाति और कृत आपकी एक होगई है। अबसे आपका नया जन्म हुआ है और सब गुरुभाई एक समझे जायेंगे और संतान एक ही धार्मिक माता-पिता गुरु गोविन्दसिंह और साहबकौर की। अब आप सिंह बनगये हैं और वाहि गुरु जी का खालसा है, आपका अबसे सदैव पाच धार्मिक चिह्न धारण करने होंगे। (१) केश (२) कंघा (३) कपाण (४) कड़ा और (५) कच्छ। अबसे किसी अन्य धर्म के देवी देवताओं तथा पीरों व फकीरों की मान्यता न करनी होगी और केवल स्वायम्भुव निराकार और अयोनि परमात्मा को ही मानना होगा।

परन्तु सबसे आश्चर्यजनक बात उस समय हुई जब कि गुरु गोविन्दसिंह जी हाथ जोड़कर उन पांच प्यारों की ओर बढ़े और बड़ी अधीनता से प्रार्थना की खालसा जी, चूंकि अबसे हरेक सिख को खालसा बनने के लिये अमृतपान करके खालसा-व्रत धारण करना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिये मेरी विनती है कि आप मुझे इस पवित्र अमृत का दान बख्शें। पांचों प्यारे इस कौतुक को देख और गुरु गोविन्दसिंह की यह बातें सुनकर हैरान होगये। आजतक संसार के किसी भी धर्म-नेता ने अपने हाथों से बनाये हुये शिष्यों का अपने आपको शिष्य बनाने के लये पेश नहीं किया था। अत: यह प्यारे विचित्र दशा में यह सोच रहे थे कि यह महापुरुष गुरु गोविन्दसिंह जिनकी चरण धूलि को सर पर रखना हम अपना सौभाग्य समझते हैं, किस दीनता से हाथ बांधे हमारे सामने "अमृत" की याचना कर रहा है। किसी को उत्तर देने का साहस न पड़ता था आखिर भाई दयासिंह ने प्रार्थना की सच्चे पातशाह आप हमारे पूजनीय हैं। हमने तो आपके हाथों से अमृत लिया है और आपकी कृपा से खालसा पदवी पाई है फिर हम कैसे आपको 'अमृत' और उपदेश दे सकते है। यह सुनकर गुरु जी ने उत्तर में कहा "आप पांच प्यारे खालसा पंथ के शिरोमणी और पंथ का स्वरूप हैं। मैं पंथ को वाहिगुरु और गुरु का स्वरूप जानकर अपने आपको आपका दास समझता हूं।"

तत्पश्चात उन पांच प्यारों ने अमृत तैयार करके गुरु जी को चखाया और नियमानुसार खालसा बनाया। और उनके गोविन्दराय नाम को गोविन्दसिंह रक्खा। इसी घटना को सामने रखकर एक लेखक ने कहा है :—

तीसर पंथ चलायन 'बड़शूर' गहेला ।
वाह वाह गुरु गोविन्दसिंह आपे गुरु चेला ॥

इसके बाद गुरु गोविन्दसिंह ने पांच प्यारों को साथ लेकर उपस्थिति संगतों को अमृत चखाना आरम्भ किया और बाद में अमृत चखकर तैयार हुये सिखों के पांच पांच के जत्थे बनाकर बाहर देश में सिख संगतों को अमृत चखाने के लिये भेज दिया।

पंथ खालसा की स्थापना के बाद में दकियानूस हिन्दू समझ बैठे थे कि गुरु गोविन्दसिंह ने तो एक ऐसा पंथ खड़ा कर दिया है जो हिन्दू धर्म से भिन्न है। यह ठीक भी है खालसा पंथ उस हिन्दू धर्म से बिलकुल ही भिन्न है जो रूढ़ियों का गुलाम और भेद भावों से जर्जरित एवं ढकोसलों से भरा हुआ था किन्तु देश की रक्षा के लिये उनके दिल में कितना दर्द था। उनकी दुर्दशा से कितनी टीस थी, यह पता चलता है उनकी उस वार्तालाप से जो उन्होंने शिवालक पहाड़ी प्रदेश के राजाओं से की थी।

राजाओं को उपदेश

जब नव आदर्शों और नव उत्साह से मंडित खालसा दल बढ़ने लगा और उनकी चाल, चितवन और तेजस्विता से भारत मही सुरभित होने लगी तो पहाड़ी प्रान्त के बाईधार के राजा घबराये। उनको यह निश्चय होने लगा कि यह दल सब से पहले हमारे राज्यों को हड़प करेगा। इसलिये उनका एक डेपूटेशन राजा अजमेरचन्द जी अध्यक्षता में गुरु जी की सेवा में हाजिर हुआ।

जिस समय दरबार लगा और गुरु जी धार्मिक कृत्य से निवृत्त हो लिये, तो राजा अजमेरचन्द ने कहा—"महाराज आपने यह क्या खालसा, नाम का पंथ चलाया है। जिसमें न शिखा सूत्र है और न जाति पांति का विचार। खानदान का भी परहेज नहीं रहने दिया। सब एक ही रसोड़े का बना और चाहे जिसके हाथ का खा लेते हैं।" जब अजमेरचन्द कह चुका तो गुरु जी ने इस भाव का भाषण

किया—"हे राजा, जिसे तुम धर्म कहते हो, वह तो धर्म नहीं है। जिस धर्म में मनुष्य, मनुष्य को नीच ऊंच समझता हो, वह सब का धर्म नहीं हो सकता मैंने तो यह प्रयत्न किया है कि धर्म का ऐसा सस्कार हो जाय, जिसमें कोई किसी को ऊंच नीच न समझे, मिथ्या गौरव के अभिमान से कोई किसी के साथ अमानुषी व्यवहार न करे। तुम अपने सम्बन्ध में विचारो, किसी समय राजपूत जाति का भी तो संस्कार हुआ था। मै भी एक ऐसे पथ की स्थापना कर रहा हूँ, जिसमें मंजे हुए और भय, रागद्वेश से खालिस वीर इकट्ठे हो जांय जो धर्म की और देश की इस गाढ़े समय में रक्षा कर सकें।

राजा! तुम देखते नहीं हो, इस समय देश मे क्या हो रहा है? तुम्हारे धर्म भाइयों पर क्या गुजर रही है और स्वयम् तुम लोग ही अपनी शान को किस प्रकार गंवा बैठे हो। आज तुम्हारे धन, दौलत और बहू बेटी सब पर तुर्क अपना अबाध अधिकार समझते हैं। क्या तुम्हारे अन्दर क्षात्र शेष रह गया है? राजपूत आज अपनी बेटियों का डोला लेकर नवाब और बादशाहों की सेवा मे हाजिर होते है। इस तरह देश और धर्म पर घोर अन्याय और जुल्म हो रहा है परन्तु शोक की बात है कि देशवासी अपने मिथ्या धर्म भावों मे लम्पट हुये हुए है और किसी की रग मे देश प्रेम का खून दौड़ता नजर नहीं आता। क्या यही धर्म है।

इस भाषण का भी राजाओं पर कोई खास असर नहीं पड़ा। जब कि उनकी आत्मा मर चुकी थी और जात्याभिमान कूच कर चुका था।

इस डेपूटेशन के राजाओं ने बिलासपुर पहुँच कर अन्य राजाओं को बुलाया और सबने मिलकर एक कमेटी की। और गुरुजी को लिख भेजा कि—"मुसलमान बादशाह इस देश मे सैकड़ों वर्ष से राज्य कर रहे है। अत. हमे यह बात असभव दिखाई देती है कि हम उनकी सल्तनत को उखाड़ सकेंगे। बल-शाली मुगल हकूमत का विरोध करने से हम कोई भी लाभ नहीं देखते है।"

ऐसे उत्तर को पाकर गुरुजी ने यही कहा कि सदियों से गुलामी मे पड़े रहने से इनका पुरुसत्व नष्ट होगया है। हम तो चाहते थे कि इनमे एक नया जीवन पैदा हो जाय, परन्तु यह उसी अधम गढ़े में पड़ा रहना चाहते ज्ञात होते है।

इसके बाद उन्होंने सिखों को सम्बोधित करते हुये कहा "खालसाओ! आपकी आत्माये वाहि गुरु के ध्यान और गुरु नानकदेव जी के उपदेशों से शुद्ध हो चुकी है। मैंने आपको अपना परिवार मान लिया है। मेरे तुम सब ही पुत्र हो। तुम्हारे हाथ में तलवार देकर मैंने तुम्हारी कुछ जिम्मेदारियां भी बढा दी हैं। देश और धर्म की सेवा का भार तुम्हारे कंधों पर है।"

गुरुजी का प्रभाव तप और वीरता दोनों ही तरह का था। उनके पास आकर लोग दर्शन करने औ उपदेश सुनने मे अहोभाग्य ही समझते थे। अनेकों के तो दिल मे रोशनी उनके उपदेशो से ही हो जाती थी।

शाही अत्याचारों से दुखित हुए लोगो की निगाह गुरु जी पर ही पड़ती थी और वे अपने प्राण बचाने के लिये आनन्दपुर की ही शरण लेते थे। ऐसे शरणागतो मे राघोवा पेशवा की धर्म पत्नी त्र्यम्बका बाई और भाई नंदलाल मुख्य है।

भाई नन्दलाल जी अरबी फारसी के भारी विद्वान थे। उनकी विद्वता पर मोहित होकर औरंगजेब ने उन्हे मुसलमान बनाना चाहा था, इसलिये अपने मित्र गयासुद्दीन के साथ वे भाग कर गुरुजी की शरण मे आगये। उन्होंने गुरुजी की प्रशसा मे एक बन्दगी नामा फारसी मे बनाया था जिसका नाम गुरु

जी ने बदल कर जिन्दगी "नामा कर दिया। इनके सिवा नन्दलाल ने और बहुत सारी शायरी की थी।[1]

वास्तव में मसन्दों का काम सिखों की ओर से स्वतः प्रदत्त भेटों का गुरुजी तक पहुँचाना था इनको अपने इस्तेमाल में लाना अनुचित था। परन्तु शनै शनै इनमें से कुछ लोग कर्तव्य विमुख होगये। सिखों की गुरुओं के लिये दी हुई प्रेम भेंट को अपने लिये बर्तने लगे। एक दिन गुरुजी

मसंदों को दंड

की सभा में भाँड लोगों ने एक प्रहसन किया। जिसमें एक मसंद को धर्म कार्य के लिये उगाले हुये रुपये को दुष्कृत्य में खर्च करते दिखाया। अतः गुरुजी ने सब मसन्दों को बुलाया और उनमें से कई को तो कठोर दंड दिया। साथ ही इस पद को भी उड़ा दिया।

गुरुजी के सभी किले पहाड़ी राजाओं की रियासतों में ही थे। आनन्दपुर में अब उनका समाज भी बहुत बढ़ गया था। इस बढ़ते हुये समाज से राजा लोग उत्तरोत्तर चिढ़ते जा रहे थे। वे अपने आदमियों द्वारा सिखों को जंगल में से घास और लकड़ी लाने से भी रोकने।

पहाड़ी राजाओं से युद्ध

गर्ज सब प्रकार उन्हें तंग कराने। एक समय अजमेरचंद और बलियाचंद नाम के राजपूत जागीरदारों ने कुछ सिखों को उस समय घेर लिया जबकि वे खाने पीने का सामान एक शहर से लेकर आनंदपुर को आरहे थे। दोनों ओर से लड़ाई छिड़ गई। बन्दूकें और तलवारें भी चलीं, कई सिख जखमी हुए किन्तु बलियाचन्द जान से मारा गया।

अजमेरचन्द ने बलियाचन्द के मारे जाने के बाद बाईसों राजाओं को इकट्ठा किया और उनके सामने सब हालात बताते हुए कहा कि इस संत का बढ़ना हमारे लिये खतरा होगा, यदि हम सब मिलकर इसे अभी निकाल दें तो ठीक है वरना फिर निकालना भी कठिन हो जायगा। सर्व सम्मति से गुरुजी के पास उन लोगों ने एक नोटिस आनन्दपुर को राजी-राजी से छोड़ देने के लिये लिखा। गुरुजी ने उस नोटिस के जवाब में लिख भेजा कि भूमि तो परमात्मा की है। वह सभी लोगों को बर्तने के लिये है और आनन्दपुर तो हमारे पूर्व गुरु व मेरे पिता ने नक्द दाम देकर खरीदा था। इस उत्तर को पढ़कर राजाओं ने फिर नोटिस दिया कि या तो राजी से खाली कर जाओ वरना हम नगर को लूट लेंगे। गुरुजी ने फिर वैसा ही सीधा किन्तु नम्र उत्तर भिजवा दिया। इस उत्तर को सुनकर राजा लोग चिढ़ गये और उन्होंने अपनी सेनाओं को तैयार होने का हुक्म दिया. साथ ही सरहिंद के हाकिम को भी मदद के लिये लिखा। सरहिंद से दीनाबेग और पैंदेखां कई हजार सैनिकों के साथ राजपूतों की मदद के लिये आ गये।

उस समय गुरुजी के पास आठ हजार सिख थे। दोनों ओर से युद्ध छिड़ गया। दिन भर तो सिख लोग किले के भीतर से शत्रुओं पर वार करते और रात्रि को झाड़ियों की आड़ में से गोलियाँ बरसाते। पैंदेखां ने अपनी फौज का इस प्रकार विनाश होते देख कर गुरु जी के पास सन्देश भेजा कि सेनाओं के कटाने से क्या लाभ? आइये हम और आप अकेले २ लड़कर तय करलें। गुरुजी ने उसकी बात को मान लिया। उसने गुरुजी पर दो बार तीर चलाये किन्तु खाली गये। अपने वारों को खाली जाते देखकर उसने अपने घोड़े को भगा दिया किन्तु गुरुजी ने ऐसा तीर मारा कि धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ा। पैंदेखां को इस प्रकार गिरते देखकर मुगल सेना ने गुरुजी पर आक्रमण किया किन्तु सिख भी तो सावधान खड़े थे। उन्होंने भी ऐसी मारामार मचाई कि मुगलों का जमीन पर बिछा दिया। दीनाबेग भी घायल होगया। इस हालत में दीनाबेग और अजमेर चन्द भाग गये। जीत सिखों की रही।

१. उनकी रचनाओं में 'फारसी नज्म' दीवाने गोया' 'जोति विगास' 'तौसी फो सना' और गजनामा आदि हैं।

किन्तु कुछ ही दिन के वाद जगतुल्ला गूजर की मदद लेकर राजाओं ने फिर आनन्दपुर पर चढ़ाई करदी। राजपूत कसर नहीं रखना चाहते थे। किन्तु उनके दुर्भाग्य से जगतुल्ला गूजर भी तीर का निशाना वन गया और उसके साथी भाग निकले। यह देखकर राजपूत बहुत घबराये। राजा केसरीचद की सलाह से एक मस्त हाथी को दरवाजे पर हूलने का आयोजन किया। यह खवर जब गुरु जी को लगी तो उन्होंने विचित्रसिंह को और उदयसिंह हाथी को रोकने के लिये भेजा। विचित्रसिंह ने हाथी के मस्तक मे ऐसे जोर का भाला मारा कि हाथी पीछे को भाग निकला। उसके भागने से पहाडी फौज के सैकड़ों आदमी कुचल गये। हण्डूर का राजा भी इस चपेट मे आकर जख्मी होगया। उधर सिख लोगों ने हल्ला किया। इससे केसरीचन्द मैदान छोड़ कर भागने लगा किन्तु उदयसिंह ने दौड़कर केसरीचन्द का सिर काट लिया और वर्छे की नोंक पर टाग कर ले आया।

यह घटना सवत १७५८ वि: की है।

गुरु जी कवि लोगों की भी वड़ी कदर करते थे। उनके दरवार में अनेकों वड़े २ कवि थे। जिनकी वीर रस की कवितायें सुनकर सिखों की भुजायें फड़क उठती थीं। कविता का लोगों को यहाँ तक शौक हुआ कि उनके रिसाले में भी कई आदमी अच्छे कवि हो गये।

कवि लोगों की कथा

कहा जाता है कि चन्दननाथ जोगी धनुप विद्या में भी निपुण था, उसने गुरु जी के भारी भरकम धनुप को देखकर कहा, महाराज यह कभी काम भी आता है, या यों ही प्रदर्शन के लिये है। यह काम आता हो तो चला कर दिखाओ गुरुजी ने धनुप को संधान कर ऐसे जोर से चलाया कि उससे छूटा हुआ तीर तीन कोस के फासले पर जाकर गिरा। चन्दननाथ ने भी तीर छोड़े किन्तु उसके तीर कोस, सवा कोस से आगे नहीं गये। उस समय दरवार में कुछ राजपूत सरदार भी वैठे थे। उन्होंने भी अपने वल की परीक्षा दी किन्तु गुरुजी के वल और कौशल को भला वेचारे कहाँ पा सकते थे?

शस्त्र कौशल परीक्षा

हिन्दू धर्म और देश जाति की रक्षा के लिये तो उन्होंने अपना सव कुछ कुरवान कर ही रक्खा था। भला वे स्त्रियों की रक्षा के लिये कौनसा संकट अपने ऊपर नहीं ले सकते थे। एक दिन जवकि वे वैठे हुए थे उनके कानों में "दुहाई है। गुरुजी की दोहाई है।" शब्द पडे। जव जाच की गई तो पता चला कि एक ब्राह्मण जिसकी कि औरत को यवन छीन ले गये है। चिल्ला रहा है। उसकी मदद किसी ने भी नहीं की। गुरुजी ने उसी समय ब्राह्मण स्त्री की वापिसी के लिये अपने पुत्र अजीतसिंह को बुलाकर आज्ञा दे दी कि पुत्र अभी 'वसी' के पठान जावरखा पर चढ़ाई करो और उसके यहाँ से इस दीन की स्त्री को वापिस लाओ।

स्त्रियों की रक्षा

अजीतसिंह जी ने सौ सवासौ आदमियों को साथ ले जाकर सूर्योदय से पहले ही वसी पर धावा वोल दिया। नगर का फाटक तोड़कर सिख पठान के महलों मे घुस गये और उसे वाध कर तथा ब्राह्मणी को लेकर आनन्दपुर आये। कुछ पठान मारे भी गये। ब्राह्मणी उसके मालिक के हवाले करदी गई।

एक दिन भयंकर युद्ध मुगल वादशाह की सेनाओं से होना है। इस वात को गुरुजी खूव जानते थे और वह यह भी जानते थे कि घोर सकट भी आने वाला है। अत. समय समय अपने साथियों की परीक्षा अवश्य लेते थे। खालसा पंथ स्थापित होने के वाद इस ओर से वे खूव सतर्क रहे कि कोई ऐसा आदमी हमारे दल मे शामिल न हो जाय जो समय पडने पर कच्चा निकले या दगा दे जाय। धर्म के मामले मे भी वे उन्हीं लोगों को पंथ खालसा में

परीक्षा

शामिल करते थे। जो पूर्णतया सिख सिद्धान्तों के पालन के योग्य दिखाई देते थे। हँसा नाम के एक प्रसिद्ध कलाकार को जिसने कपड़े पर दूसरा सूर्य बनाने की योग्यता प्रदर्शित की थी उस समय सिख बनाया जिस समय कि उसे अपनी जैन मनोवृत्ति भूल के रूप में मालूम हो गई।

एक बार रवालसर के मेले में होते हुए गुरु जी मंडी आए। जहाँ राजा ने बहुत आवभगत की। गुरु जी ने भी उसको एक पुस्तक दी।[1]

मंडी से आनंदपुर की ओर आते हुए कलमोठ के राजा को भी उचित दंड दिया उसने सिख लोगों से वह भेंट लूट ली थी, जिसे सिख-जन गुरु जी के पास लेजा रहे थे। गुरु जी ने पहले साहबजादे अजीतसिंह जी को कलमोठ पर फौजें देकर भेजा किन्तु ज्वालामुखी का विजय भारती कलमोठ की मदद को ५०० नागा लेकर आ गया। गुरु जी इस समाचार को सुनकर स्वयम् भी कलमोठ पहुंचे। राजा तो लड़ाई में हार ही गया किन्तु लौटते हुए गुरु जी ने ज्वालामुखी के विजय भारती को भी सबक दिया।

भड़ैत भाट और कवियों ने राजपूतों को भले ही सिर पर चढ़ा दिया हो, इनकी प्रशंसा के पुल बांध दिये हों किन्तु हमें तो मुगल काल में एक उदयपुर के राणाओं को छोड़ कर उनके कारनामे भारत की आजादी विरुद्ध ही दिखाई देते हैं। अपनी रियासतें भी जो आज दिखाई देती हैं, इन्होंने कोई शूरता के साथ नहीं बचाई थीं। कुछ ने तो अपनी लड़कियाँ देकर अपने राज्यों को बचाया कुछ ने गुलामी बजाकर कुछ रियासतें प्राप्त कीं। पंजाब ही नहीं सारे भारत में ही इनकी ऐसी ही मनोवृत्ति रही। दक्षिण में मराठों के दबाने के लिये मुगलों ने इनका उपयोग किया। आसाम की स्वतंत्र रियासतों की स्वाधीनता अपहरण कराने ये गये। ब्रज के भरतपुरिये जाटों को जो मुगलराज्य की नींव खोद रहे थे कमजोर करने यही राजपूत पहुँचे थे। गुरु गोविन्दसिंह जी जैसे धर्म-रक्षक और देश सेवक के विरोध पर भी इन्हीं ने कमर बांधी। हालांकि गुरु जी सदैव इनके दुख में इनकी मदद करते थे और सहायता भी देते थे।

शाही सेना से युद्ध

शिवालक के राजपूतों से अपने ही देश में पैदा होने वाले और अपने ही धर्म के रक्षक गुरु गोविन्दसिंह का प्रताप नहीं देखा गया और अब उन्होंने अंतिम रूप से गुरु जी को मिटवाना तय कर लिया। इसलिए उन्होंने औरंगजेब के नाम एक पत्र इस आशय का लिखा :—

मांडलिकों की हैसियत से हमारा यह फर्ज है कि हम आपको उस खतरे से आगाह कर दें जो मुगल सल्तनत को बर्बाद करने के इरादे से गुरु तेगबहादुर के बागी लड़के गोविन्दसिंह ने पैदा किया है।

पंथ खालसा के नाम से उसने एक ऐसा दल तयार किया है। जो आचरणों और वेशभूषा में हिन्दू और मुसलमान दोनों से नहीं मिलता है। गुरु गोविन्दसिंह मुसलमानी हुकूमत के विरुद्ध जोरों से प्रचार करता है। यहाँ तक कि उसकी ओर से हम भी आपको विद्रोही बनाने का प्रयत्न किया गया है।”

कहा जाता है इस पत्र का जब कोई शीघ्र ही फल नहीं निकला तो अजमेरचन्द सब राजाओं का प्रतिनिधि होकर बादशाह औरंगजेब के पास पहुँचा और जितना भी उससे हो सका बादशाह के कान भरे। बादशाह ने उस समय कहा कि वह उस ओर से असावधान न था।

बादशाह ने अमीरखाँ, सैदखाँ और दीनाबेग आदि को आनंदपुर पर चढ़ाई करने और

१. मंडी में जहां ठहरे थे वहां एक सुन्दर स्थान यादगार में बना हुआ है।

गुरु जी को जिन्दा पकड़ लाने के लिये हुक्म दे दिया और साथ ही सरहिन्द के हाकिम को सहायता देने की सूचना दे दी।

राजाओं का यह षडयन्त्र गुरु जी से भी छिपा नहीं रहा और उन्हें यह भी मालूम हो गया कि औरंगजेब ने फोज रवाना कर दी है। अतः गुरु जी ने भी बड़े धैर्य्य के साथ सेना इकट्ठा करना शुरू किया गॉवों मे पत्र भेज दिये गये।

कहा जाता है जाट चौधरियो ने जो अब खालसा जी बन गये थे। अपने गॉवो के नौजवान लड़को को ही नहीं भेजा किन्तु युद्ध की सामिग्री भी भेजी। हजारों सिख शूरमा, आनंदपुर मे आ एकत्र हुये। उधर मुगल सेना भी सरहिन्द और राजपूतों की सेना समेत एक लाख के करीब हो चुकी थी।

आनंदपुर के ऊपर केसरिया और मुगल सेना मे नीला झंडा लहराने लगे। नगाड़ों पर चोट पड़ी। सिखों के रणजीत नगाडे की धुनि से कलरव मच गया। मुसलमान सेनाओं ने अल्लाहो अकबर के बुलंद नारों से रणघोष किया। इधर सिख वीरों ने "जो बोले सो निहाल, सत श्री अकाल" के गगन भेदी नारे से रिपु दल का जवाब दिया।[1]

वीर सिंहनियो ने किले के कंगूरों पर चढ़कर मुगलों के टिड्डी दल को देखा तो उन्हें मौत के मुँह पर आया जानकर खूब हँसी। पाच दिन तक घमासान युद्ध हुआ जो पहले के तमाम युद्धों से भयंकर था। दोनों ओर के हजारों आदमी धराशायी हो गये, किन्तु सिख मुगलों की अपेक्षा बहुत कम मारे गये इस घमासान को देखकर गुरु जी ने एक जत्थे के साथ मुगल सेना पर आक्रमण किया। शाही सेना के एक फौजदार अजीमखॉ ने गुरु जी का मुकाबिला किया किन्तु गुरु जी ने तलवार से उसके दो टुकडे कर दिये। अजीमखॉ को गिरता देखकर पेंदेखॉ नामी सेनानायक आगे बढ़ा, उसे भी गुरु जी ने मुल्के-अदम पहुँचा दिया।

गुरु जी की सेना मे सैयदबेग और मामूखॉ नामक दो मुसलमान सेनापति भी थे जो गुरु जी की ओर से मुगल सेना से प्राणपण से लड़ रहे थे। उनमे सैयदबेग ने जसवालिये हरीचद को मार गिराया। दीनाबेग शाही सेनापति को मामूखॉ ने पछाड़ दिया। किन्तु खुद भी मैदान मे काम आ गया।

इस दिन की लडाई मे अजमेरचंद का दीवान मारा गया और खुद अजमेरचंद जख्मी हो गया। इससे मुगल और पर्वती लोगों मे बड़ी बेचैनी फैली और दोनों सेनाये भाग खडी हुई। मैदान सिखों के हाथ रहा।

इस युद्ध के बीच मे कुछ विचित्र बाते हुई जिन्हे यहॉ देना जरूरी है। सिखों मे एक भाई कन्हैयाजी थे वह युद्धक्षेत्र मे पानी पिलाने का काम करता था। सिखों ने गुरु जी से उनकी शिकायत की कि महाराज कन्हैया जी तो तुरक लोगों को भी पानी पिलाते है हम उन्हे जमीन पर गिराते है और ये उन्हे पानी पिलाकर फिर हमारे मुकाबिले को सावधान कर देते हैं। कन्हैया जी ने कहा "मेरा काम तो पानी पिलाना है। मैं इसमे मित्र और शत्रु सब तुर्क और अतुर्क का भेद नहीं जानता। गुरु जी कन्हैया जी की इस बात से बडे प्रसन्न हुए और उन्होंने भाई जी को मरहम पट्टी का भी काम सौंप दिया।

मुगल सेना मे सैदखॉ एक प्रसिद्ध सेनानायक था। उसने गुरु जी की बहुत भारी प्रशंसा सुनी थी। खुद भी संत-प्रकृति का आदमी था। युद्ध मे भी उसने गुरु जी को देखा था। उसने वार भी किये

१. यह लडाई फागुन सवत १७५८ वि० में हुई।

थे किन्तु उसके वार खाली गये यह भी उसे आश्चर्य था। उसकी आत्मा बोल उठी, एक धर्म वीर के साथ लड़ाई ? और साथ ही उनके दर्शन के लिये उसकी आत्मा तड़प उठी।

एक दिन गुरु जी निर्भयता के साथ उसके डेरे में पहुँच गये। और कहा भाई जिसका तुम सिर काटना चाहते हो वह तो हाजिर है। सैदखाँ गुरु जी के पैरों में पड़ गया बहुत देर तक धार्मिक मसलों पर बात चीत हुई। गुरु जी जब लौटे तो मुगल सैनिकों ने उन्हें घेरना भी चाहा किन्तु वे सफल नहीं हुए। दूसरे दिन सैद खां लापता था और सदा के लिये गुरु जी की शिक्षा से प्रभावित होकर शत्रु के दल से अलग हो गया।

बादशाह औरङ्गजेब को लड़ाई के पीछे समाचार मिले तो उसने लाहौर और काश्मीर के सूबों को भी लिखा कि तुम लोग आनन्दपुर और गुरु को मटियामेट कर दो।

इस संयुक्त सेना ने आनंदपुर को फिर घेर लिया। सिक्ख शूरमाओं में से सरदार शेरसिंह और नाहरसिंह ने रात के समय इस अतुल सेना में जब कि वह निश्चित सो रही थी। घुसकर खलबली मचा दी और फिर साफ निकल कर अपने किले में आ गये। हड़बड़ाहट में पहाड़ी लोग और तुरक आपस में ही एक दूसरे को दुश्मन समझकर मारने लगे और इस मारकाट में मुगल सेनापति दिलगीरखाँ मारा गया।

रात्रि में होने वाले इस नुकसान को देखकर सरहिन्द के नवाब ने राजा अजमेरचंद और भूपचंद को बहुत डांटा। जिसका प्रभाव यह हुआ कि पर्वतीय और तुरकों ने आज पूरे जोरों से आनंदपुर पर धावा किया। गुरु जी बुर्ज पर से शाही सेनाओं के दलों को देख रहे थे। जब सेनायें काफी नजदीक आ गई तो गुरु जी ने तोपों में बत्ती लगवादी। तोपें एक साथ धुआँ उगलने लगीं। इससे शाही सेना की अपार चति हुई। लाचार मुगल सैनिकों को भी अपने तोपखाने के पीछे जाना पड़ा।

इस प्रकार का युद्ध कई दिन रहा। तोपों के धुओं से आकाश भर जाता था। चारों ओर अंधेरा छा जाता था। ऐसे समय साहबजादे अजीतसिंह जी ने अपने छटे हुए सिंहों को साथ लेकर मुगल सेना के पीछे से धावा मारा। तोपखाना पहले से ही मुगलों ने आगे कर लिया था। पीछे से आक्रमण हुआ। एक दम मुगल सेनायें घबरा गईं और मैदान छोड़कर भाग गईं। हजारों आदमी खेत रह गये।

कहा जाता है सरहिन्द और लाहौर के नवाबों ने बादशाह को लिख भेजा कि गुरु के साथी बड़े कट्टर और जान पर खेलने वाले हैं, हमारी सेनायें उन्हें पराष्त नहीं कर सकतीं। वे तो लड़ाई में मरने के ही उद्देश्य से शामिल हुए हैं। कोई वेतन भोगी तो है नहीं। "साधना या मौत" उनका यही उद्देश्य है। इसलिये उनका जैसा उत्साह हमारी सेना में नहीं है।

हाँ आप अपार सेना समूह भेजें तो मुमकिन है कि इन लोगों को परास्त किया जा सके। इनके परास्त करने के मानी भगाने के नहीं हैं। ये भागे तो कभी नहीं। हाँ, दम रहने तक लड़ते हैं।

औरंगजेब का कोई जवाब आ नहीं पाया था कि पंजाब के समस्त मुस्लिम हाकिम और पर्वतदेश के हिन्दू राजा संयुक्त बल के साथ संवत् १७६१ वि० के चैत मास में आनंदपुर पर फिर चढ़ आये। और आनंदपुर को उसी भांति घेर लिया। जिस भांति कि जल को काई घेर लेती है।

भीषण युद्ध

जिस समय संयुक्तदलने आनंदपुरको घेरा, लड़ाई शुरू होगई। दुश्मनों ने तोपोंके मुँह आनन्दपुर की ओर कर दिये। सिखों ने भी तोपों का मोरचा लगाया।[1] और बड़ी बुद्धिमानी से ऐसी गोलदाजी

१. उस समय तोपों का कोई अच्छा विकास नहीं हुआ था।

की जिससे शाही तोपखाने का काम निकम्मा साबित हो गया और उसे पीछे हटाना पड़ा।

तीरंदाजी मे गुरु जी और उनके साथी बहुत ही सिद्धहस्त थे। इसलिये मीलों तक वे किले पर से तीर फेकते थे। इस तरह हजारो ही मनुष्यों का नित खातमा करते किन्तु तुरक सेना लाखों की संख्या में थी। लड़ाई चलते २ दो सप्ताह हो गये। अब तुरक सेना ने भी लड़ने की अपेक्षा घेरा डाले रहना ही अधिक उपयोगी समझा और बाहर का प्रबन्ध इतना जबर्दस्त किया कि परिन्दा भी आनन्दपुर से न बाहर जा सके और न बाहर से भीतर ही आ सके। इसका फल यह हुआ कि सिख लोग किले में रसद के खतम हो जाने के कारण भूखो मरने लगे। इसलिये उन्होने गुरु जी से कहा कि हमें इजाजत दीजिये कि हम एक साथ हमला करे और वश चल जाय तो बाहर निकल जॉय और शक्ति संग्रह करके फिर धावा करे। किन्तु गुरु जी चाहते थे कि कुछ समय धीरज धरे। इस तरह की जल्दी ठीक नहीं। दूसरी ओर जब शाही फौजी अफसरों और राजाओं ने गुरु जी को युद्ध मे परास्त कर सकना मुमकिन न देखा तो उन्होंने चालाकी और धोखे से काम लेना चाहा, उन्हे बादशाह औरङ्गजेब का डर दिल ही दिल मे खा रहा था। और वे डरते थे कि यदि इस समय भी गुरु जी के विरुद्ध सफलता प्राप्त न कर सके तो बादशाह के कोप का मुकाबिला करना मुश्किल हो जायगा और विपत्ति का मुँह देखना पड़ेगा। इसलिये उन्होंने गुरु जी को कुरान और गौ की सौगन्ध खाकर यह यह सन्देश भेजा कि यदि गुरु जी आनन्दपुर को छोड़कर कुछ दिनों के लिये और स्थान पर चले जावें तो शाही सेना और पहाड़ी राजे अपनी २ सेनाये लेकर चुपके से लौट जावेगे और इस तरह वह बादशाह के सामने भी सुर्खरू हो सकेंगे। साथ ही उन्होंने यह भी विश्वास दिलाया कि गुरु जी के आनन्दपुर से निकलने पर वह किसी किस्म का उनको और उनकी सेना को कष्ट नहीं पहुँचायेगे।

सिखो ने गुरुजी से कहा यह मौका अच्छा है। किन्तु वे स्पष्ट देख रहे थे कि दुश्मनों के दिल मे दगा है। इसलिये उन्होंने अपने सिखों को धैर्य रखने के लिये कहा, परन्तु किसी ओरसे खाने पीनेका सामान न पहुँचने के कारण आनन्दपुर के अन्दर भूख से कष्ट बढ़ रहा था। जिससे एक प्रकार की घबराहट सी हो गई और कुछ कच्चे दिल वाले आदमियों ने गुरु जी से प्रार्थना की कि जब ये लोग कुरान और गौ की कसमे खा रहे हैं तो इन पर विश्वास कर ही लेना चाहिये। गुरु जी के धैर्य देने पर भी जब कई एक ने जिद की तो उन्होंने कहा, मैं इसको स्वीकार करने के विरुद्ध हूँ, परन्तु जो इस समय मेरी आज्ञा का उलंघन करके चला जाना चाहते हैं, वे मुझे एक पत्र पर यह लिख दे जॉय कि वे मेरे सिख नहीं। कहते हैं कि इस समय चालीस के करीब आदमियों ने इस प्रकार का बेदावा लिखा और आनन्दपुर को छोड़ गये।

कुछ समय घेरा और पड़ा रहा। सिखों ने कष्ट बढ़ता देखकर आपसे फिर कहा इस पर उन्होंने आनन्दपुर को छोड़ने का इरादा कर लिया।

आधी रात गुजर जाने के बाद गुरु जी अपने परिवार और साथियों सहित किले से निकले। बीच मे स्त्रियाँ थी, गुरु जी ने एक व्यूह बना लिया। जिसके आगे के रक्षक आप और पीछे के साहबजादे अजीतसिंह जी थे। दाये बांये भाई मनीसिंह और उदयसिंह जी थे। तुरक और राजपूत सेना ने गुरु जी के किले से निकलने की खबर सुनते ही अपनी तमाम कसमों और वायदों को तत्क्षण ही भुला दिया और धावा बोल दिया। साहब अजीतसिंह पीछे से बैरी दल को रोकते हुये शनैः शनैः पीछे की ओर अपने आदमियों को बढ़ाते रहे। इस प्रकार शत्रु का मुकाबिला करते हुये और पीछे को हटते हुये सरसा नदी तक अपने साथियों को ले पहुँचे। उस समय सरसा नदी बड़े जोरों पर थी। दूसरी ओर



तख़त केसगढ़ साहिब आनन्दपुर



दमदमा साहिब साबो की तलवंडी

शत्रुगण गुरु जी और उनके साथियों को पकड़ने के लिये हल्ले पर हल्ला बोल रहे थे, नदी के दूसरे किनारे पर रोपड़ आदि ग्रामों के मुसलमान राजपूत और रांघड़ गुरु जी को घेरने के लिये मौजूद थे। इस गड़बड़ की हालत में गुरु जी ने अपनी धर्म पत्नियों को भाई मनीसिंह जी के साथ देहली की ओर चले जाने की आज्ञा कर दी। और जब सरसा के पार उतरे तो दोनों ओर से हो रहे शत्रु के हल्लों के कारण सब एक स्थान पर इकट्ठे न रह सके। गुरु जी कुछ सिखों और दो बड़े साहबजादों के साथ एक ओर को पड गये और गुरु जी की माता और छोटे साहबजादे उनसे अलग हो गये। जिनके साथ क्या बीती यह हृदय द्रावक वर्णन आगे के पृष्ठों में दिया जायगा। यह घटना सम्वत १७६१ वि० की है। सब साथियों के गुरु जी उसी दिशा में चमकौर नाम के एक ग्राम में पहुँचे। जहां के एक जागीरदार ने आपको अपनी हेवली में रहने के लिये स्थान दिया।

चमकौर का युद्ध संसार के युद्धों में एक विचित्र युद्ध है। शाही सेना और इर्दगिर्द के ग्रामीण जिनका कोई पार नहीं और जो गुरु जी के पीछे पड़े आ रहे थे ने लाखों की तादाद में एक छोटे से गाँव को घेर लिया, और उधर गुरु जी के साथ केवल चालीस सिख थे। किन्तु कोई घबराहट नहीं, कोई चिन्ता नहीं। सभी हथेली पर सिर लिये तैयार खड़े हैं। गुरु जी ने ८ सिखों को हवेली के पार्श्व की रक्षा के लिये नियत किया जिससे कोई ऊपर न चढ़ आये। भाई कोठासिंह और मदनसिंह को दरवाजे और आत्मासिंह और मानसिंह को पहरे पर। गुरु जी स्वयम दोनों साहबजादों और भाई दयासिंह और मतसिंह समेत हवेली पर से तीर बरसाने लगे।

चमकौर युद्ध

मुगलों का एक दस्ता हवेली पर हल्ला करने के लिये बढ़ा, किन्तु हवेली पर से वह सनसनाते तीर आये कि बीच में ही मुगल सन के पौंने से बिछ गये। दूसरा आया, तीसरा आया, और फिर दिन भर यही हालत लाश पर लाश पड़ गई।

जब कि दोपहर ढलने को था, मुगल नायकों ने मीटिंग की और तय किया कि अब की बार चुने हुए शूरमाओं का दस्ता हवेली पर आक्रमण करे इसलिये खिजाखाँ, गुलेरखाँ और नाहरखाँ आदि वीर आगे बढे। नाहरखां जो पौड़ी लगाकर हवेली पर चढ जाना चाहता था। उसके माथे में गुरु जी ने हवेली पर से ऐसा तीर मारा कि वहीं छटपटा कर प्राण दे बैठा। यही गति उसके अनुयायी गैरतखाँ की हुई। ख्वाजा मरदूद दीवार की आड में छिप गया।

गो कि बाहर हजारों लाशें मुगलों की पड़ी थीं किन्तु सिख भी पूरे चालीस ही बचे रहे हों सो बात नहीं, अब तो उनमें से भी केवल बीस ही बाकी रह गये थे। सिख हवेली पर से ही वार करते थे। यह बात नहीं है वे चार चार और पाच पाच के दल बनाकर नीचे उतरते और शत्रुओं के गोल पर इस प्रकार झपटते, जिस प्रकार बाज चिड़ियों पर झपटता है। अकेले भाई मुहकमसिंह ने हजारों मुगलों को धराशायी कर दिया था, यही हालत प्रत्येक योद्धा करता था। जिस समय हवेली में से वाहि गुरु जी की फतह कहकर और चमचमाती तलवार लेकर सिख मुगल सेना में तैरता था। एक हड़बडी सी मच जाती थी। प्रत्येक सिख के ऊपर तीर बर्छे और तलवारों के वार होते थे, किन्तु वह वीर तब तक लड़ता था जब तक उसके शरीर की चिट्टी चिट्टी न उड़ जाती थी।

इस प्रकार की भयकर और अनुपम मार काट मचाकर जब गुरुजी के बीस सिख शहीद हो गये।[1]

१. इनमे भाई कोठासिंह, मदनसिंह पहले जत्थे को लेकर बाहर गये थे। इनके पीछे खजानसिंह, दानसिंह, ध्यानसिंह

तब बड़े साहबजादे अजीतसिंह जी ने अपने पिता से नीचे उतरने की आज्ञा मांगी। गुरु जी ने अपने पुत्र को अपने ही हाथों से अस्त्र शस्त्र से उसी प्रकार सज्जित किया जैसे कोई पिता ब्याह के अवसर पर अपने पुत्र को सजाता है। इस पर अजीतसिह जी ने कहा मेरा,नाम अजीतसिंह है। आपकी कृपा से किसी से जीता न जाऊँगा और यदि जीता गया तो फिर लौट जीता न आऊँगा।

पांच सिखो आलमसिंह, जवाहरसिंह, ध्यानसिंह, सुकपालसिंह, और वीरसिंह के साथ अजीतसिंह जी हवेली के बाहर आये। और वहीं से आते ही मेघो की घटा मे जैसे बिजली चमकती है, उसी प्रकार सनसनाते तीरों से शत्रुओं पर उन्होने वार किया। फिर तीरो के निपटने पर और शत्रु के निकट पहुँचने पर कराल काल की जिह्वा की तरह से लपलपाती हुई उनकी तलवार शत्रुओं का रक्त पीने लगी। शत्रु संभलने भी न पाता था कि उसका सिर गेंद की तरह जमीन पर दिखाई देता था। दोनों हाथों से दो तलवारे इस फुर्ती से चला रहे थे कि शत्रुओ को यह देखने का भी मौका नहीं लगता कि हम किस स्थान पर वार करे। नीले बादलों मे जिस प्रकार बिजली की चमक की लहर दिखाई देती है। वही हालत अजीतसिंह जी की तलवारे कर रही थीं। देखने वालों को ऐसा मालूम होता था मानो अनेकों तलवारे घूम रही है। जिधर-जिधर भी उनपर मुगल दल पिल कर पडता उधर ही मैदान साफ हो जाता था।

भारत के इतिहास मे जो जौहर अभिमन्यु ने कौरव दल मे दिखाये थे। वही जौहर तुर्क दल मे आज अजीतसिंह दिखा रहे थे। एक ही घंटे मे जब हजारो लाशे बिछ गईं तो मुगलों के चुने हुए सरदारों ने घोड़ों का व्यूह बना कर साहबजादे को घेर लिया। और एक ही साथ तीरों और बर्छों की इतनी वर्षा की जिससे अठारह वर्ष का वह बहादुर नौजवान ढँक गया। फिर भी उसने जोरों का एक अट्टहास करके नारा लगाया "वाहि गुरु जी का खालसा और वाहि गुरु जी की फतह।

हवेली के ऊपर अपने वीर भाई के जौहरों को देख कर साहबजादे जुझारसिंह जी का भी खून उबल रहा था और छाती फूल रही थी। भाई को शहीद होते देखकर वे भी तुरन्त ही बोले, गुरु मुझे भी आज्ञा दीजिए ताकि मैं भी भाई की भाति शहीद बनूं। गुरु जी ने अपने हाथों से उन्हे सजाकर सामने दिखाई देनेवाली साक्षात मृत्यु के मुकाबिले भेज दिया। बालक जुझार हवेली से खटखट उतर गया साथ मे केवल पांच सिख, अपार शत्रु समूह मे फूल सा साहबजादा। पीठ पर तरकश कमर मे तलवारे और हाथों मे धनुष। शत्रु उसे तमाशे के रूप मे देख ही रहे थे कि उनपर तीरों की वर्षा होने लगी। अनेक लोथे मिनटो मे ही बिछ गईं। मुगलों के कई दस्ते जुझारसिंह पर टूटे। झट-पट दोनों तलवारें निकाल लीं देखते ही देखते कितनों के धड़ सिर से अलग करता हुआ वह वीर सिंह-शावक की तरह झपट्टे मारता हुआ आगे बढ़ने लगा।

अकेला जुझार और हजारों मुगल आगे बढ़े। घेरा डालकर बीच में दे लिया और चारों ओर से पकड़ लो पकड़ लो की ललकार सुनाई देने लगी। शत्रु चाहते थे, किसी प्रकार यह बालक जिन्दा उनके हाथ पड़ जाय परन्तु शहादत के लिये मैदान मे आया जुझारसिंह हर तरफ लपक-लपक कर पडता था जिससे शत्रू का बहुत नुकसान होने लगा। यह देख चारो ओर से एक साथ बर्छे, तीर, तलवारों की उन पर

और मुहर्नसिह थे। दूसरे जत्थे मे जिसका कि नायकत्व हिम्मतसिंह करते थे। ईश्वरसिंह और देवसिंह आदि थे मुहरसिंह, करतारसिंह, आनन्दसिंह, लालसिंह, केसरसिंह और अमोलकसिंह के जत्थे ने मुगलो के उस हमले का सामना करते हुए शहीदी पाई थी। जो एक भारी वेग से हुआ था।

गड़ी लग गई। कंधे, मस्तक, जंघा और सीने पर खनाखन वार हुए। इधर पुत्र के तलवार और वर्छों के नीचे टुकड़े-टुकड़े हो रहे थे। उधर पिता गुरु गोविन्दसिंह हवेली पर से उसे धर्म के लिये शहीद होते देख कर वाहि गुरु का धन्यवाद कर रहे थे। पुत्रों ने रणभूमि में खिडे माथे जान दी। इतने में संध्या हो चुकी थी, अंधेरा होने से लड़ाई न चल सकी। मुगल नायक अगले दिन के लिये जागीला प्रोग्राम बनाने की फिक्र में फ़की रात तक जागते रहे किन्तु ठंडी-ठंडी हवा के झोंके लगने से सेना सारी सो गई। उधर सिख लोगों ने जो तादाद में केवल पाँच ही बचे थे। गुरुजी से कहा, हम अपने लिये नहीं और आपके लिये भी नहीं। किन्तु अपने देश और धर्म के नाम पर प्रार्थना करते हैं कि इसी रात में आप यहाँ से निकल जायें। आप जिन्दा रहे तो हमारा कुछ भी नहीं बिगडा है और यदि आप काम आ गये तो आपके कार्य को पूर्ण सफलता तक पहुंचाना मुश्किल हो जायेगा। भाई संतसिंह जी ने कहा महाराज मैं आपके कपडे पहन कर यहाँ रहता हूँ। आपसे बहुत कुछ मेरे चेहरे के मिलने की वजह से तुर्क सेनापति यह जान भी न सकेंगे कि गुरु चला गया।

चूँकि यह सर्व सम्मत प्रार्थना थी। इसलिये गुरु जी मान गये और भाई दयासिंह, धर्मसिंह और मानसिंह के साथ हवेली के पिछले भाग से उतर कर निकल गये। 'जाको राखे साइयां वाल न बाका होइ' के अनुसार किसी ने उन्हें टोका भी नहीं। किन्तु चूँकि गुरु जी इस प्रकार चुपके से निकल जाना मुनासिब नहीं समझते थे। अतः लश्कर के उस पार जाकर गुरु जी के साथियों ने ही आवाज लगाई कि सिखों का गुरु निकला जा रहा है। इस आवाज को सुनकर मुगल सेना में खलबली मच गई किंतु गुरु जी सहज ही वहाँ से निकल गये। इधर हवेली में जो भाई संगतसिंह और संतसिंह नाम के सिख बाकी रह गये थे। उन्होंने धौंसा बजा दिया, इससे मुगल सेना में हल्ला मच गया कि बाहर से सिख दल आ गये हैं। फौजों में जब हड़बड़ी मचती है तो रात में वह आपस में ही लड मरती है। कमबख्ती के मारे मुगल सैनिक भी आपस में ही लडने लगे। जरा प्रकाश होने पर पता चला कि अपने आदमी आपस ही में लड मरे हैं। कुछ ही दिन चढ़े, मुगलों ने हवेली पर फिर धावा किया। बाकी के दोनों खालसे कटारें लेकर बाहर निकल पड़े और मुगलों के छक्के छुडा कर शहीद हो गये। इनमें भाई संतसिंह को देखकर मुगलों को यह समझ कर बडी खुशी हुई कि हम अपने उद्योग में सफल हुए उनका सिर काटकर चाव से वे अपनी छावनी में भी ले गये किन्तु जब पहाड़ी राजाओं ने यह कहा कि यह तो कोई दूसरा सिख है तो बड़े निराश हुए और कुछ सैनिक इधर उधर दौड़ाये। लेकिन गुरु जी का कुछ भी पता नहीं चला कि कहां चले गये। निराश होकर मुगल अफसरों ने सेना को वहां से आगे बढ़ने की इजाजत दी।

कहते हैं चमकौर में एक बहादुर जाट की नौ जवान लड़की बीबी सरनकौर थी। उसने समस्त सिखों की लाशों को रात में इकट्ठा करके और उन्हें एक चिता में रख कर आग लगा दी। आग का प्रकाश देख कर मुगल सैनिकों ने वहाँ आकर देखा तो उस लड़की पर इतने क्रोधित हुए कि दुष्टों ने उसे भालों की नोकों पर उठा कर जलती आग में पटक दिया।

उधर चमकौर की हवेली से निकल कर जब गुरु जी फौजों को पार कर चुके थे और जब पीछे से कुछ मुगलों ने हल्ला किया था उस समय उनके तीनों साथी भी पिछड़ गये। चमकौर से निकलते समय जूते भी भूल आये थे। नंगे ही पैरों मीलों उन्हें चलना पड रहा था।

यह हम पहले लिख चुके हैं कि आनन्दपुर से निकलने के बाद गुरु जी का सारा परिवार तितर-बितर हो गया था। माता गूजरी को उनका ब्राह्मण रसोइया अपने गांव सहेड़ी में ले गया। गुरु जी

के दो छोटे पुत्र जोरावरसिंह और फतेहसिंह जी भी माता जी के ही साथ थे।

महान बलिदान

कभी कभी ऐसा होता है कि जिन लोगों के साथ हम काफी उपकार करते हैं स्वार्थवश वही हमारे प्राणों के गाहक हो जाते है। यही बात गंगाराम रसोइये ने भी की। उसने देखा माता जी के पास जवाहरात की एक पोटली है। झट रात के समय गायब कर दी और चोर चोर चिल्लाने लगा। चोर इस समय कहां से आये बताओ? पहिले कहीं रख कर भूल तो नहीं गये। परन्तु उसकी नीयत ही खराब थी इस पर नाराज होकर कहने लगा मैंने ही तो आपको अपने घर शरण दी और मुझी पर यह इल्जाम लगाती हो, माता जी उसके बदले हुए रुख को ताड़ गई, इसलिये उन्होंने कहा, भाई गगू मैंने तुम से यह सहज ही कहा था।

यह भी एक स्वतः सिद्ध नियम है कि मनुष्य को एक पाप को छिपाने के लिये अनेक पाप करने पडते है। दुष्ट गगू ने सोचा अब मेरी इन लोगों से बिगड़ तो गई है, इससे क्यों न ऐसा करूं कि सरहिन्द के नवाब के पास जाकर इनके अपने यहां ठहरने की इतला कर दूं ताकि एक तरफ तो यह कांटे मेरी राह से निकल जायगे दूसरी ओर इनके पकड़वाने की एवज मे इनाम भी मिलेगा।

हृदयहीन गगू ने अपने गाव के नजदीक मोरडा मे जाकर पठानों को इतला कर दी कि गोविन्द-सिंह की मां मय अपने दो पोतों के भाग कर मेरे यहाँ चली आई है।

मोरडा के हाकिम जानीखां और मानीखां दोनों साहबजादों को माता जी समेत पकड कर सरहिन्द ले गये और कड़ाकेदार शीत के दिनों मे ठंडे बुरज मे उन्हे कैद कर दिया।

माता गूजरी ने वीर सिंहनी का हृदय पाया था। उन्होंने अपनी उमर मे बड़े उतार चढाव देखे थे। अपने पति (श्री तेगबहादुर जी) के कत्ल का दुख उन्होंने सहा था। अपने पुत्र गुरु गोविन्द-सिंह के भी वैभव और पराभव के दिन देखे थे। वह आपतियों से कभी घबराती न थीं किन्तु उनसे अपने नन्हे और सुकुमार पौत्रों का ठण्ड मे सिसकना न सहा गया, आँखों से आंसू टपक पडे किन्तु कड़ा हृदय कर के दोनो बच्चों को चादर ओढ़ा कर अपने आगे बिठा लिया। और परम पिता परमात्मा से इस संकट को दूर कर देने की रात भर प्रार्थना करती रहीं।

सुबह होते ही एक पठान आया और उसने माता जी से कहा, माई इन बच्चो को मेरे साथ भेज दो दरबार मे नवाब साहब याद करते हैं। माता जी सब हाल समझ गईं। उनका दिल उमड़ आया किन्तु आंसुओं को रोकते हुए उन्होंने दोनों बच्चों को छाती से लगाया, चूमा और सिर पर हाथ फेर कर कहा, मेरे बेटे जाओ, वाहि गुरु की मरजी को पूरा करो, देखो कहीं धर्म को लाज न लग जाय।

दोनों भोले भाले बच्चे जिनकी उम्र केवल ६ और ६ वर्ष की थी। दरबार की ओर चल दिये। वजीरखां दरबार मे बैठा था। और भी अनेकों हिन्दू मुसलमान बैठे थे। बच्चों के अपूर्व कान्तिमान चेहरों को देखकर सब सहम गये। जिनके हृदय मे तनक भी इन्सानियत थी उनका हृदय भीतर ही भीतर रोने लगा। किन्तु वे बच्चे दोनो—राम लक्ष्मण की जोड़ी—शांत और चुप चाप खड़े थे। दीवान सुच्चानन्द ने जो एक खत्री ही था कहा, बच्चो ये सामने नवाब साहब बैठे हैं, इन्हे सलाम करो।

जोरावरसिंह ने कहा, गुरु घराना केवल अकाल पुरुष के सामने सिर झुकाता है। इस उत्तर से वजीरखा मन मे बड़ा नाराज हुआ, कहने लगा गुरु गोविन्दसिंह तो लडाई मे काम आ गये। तुम्हारा अब कोई वारिस नहीं है, अत तुम मुसलमान हो जाओ मुसलमान होने पर तुम्हे सब प्रकार के सुख मिलेंगे। नवाब कहता रहा किन्तु बच्चे कुछ न बोले। उसने फिर कहना आरम्भ किया, यदि तुम

मुसलमान बनना स्वीकार नहीं करोगे तो नाहक तुम्हारी जान जायगी। संसार में जो बहुत सारे सुख हैं, तुम कुछ भी न भोग सकोगे। बच्चे फिर भी चुप रहे। नवाब ने फिर पूछा बोलो तुम्हें मुसलमान बनना मंजूर है।

जोरावरसिंह ने जवाब दिया। हमें अपने धर्म से प्रेम करना जन्मघुट्टी के साथ पिलाया गया है। धर्म के ऊपर हमारे दादा ने सर कटाया। धर्म की खातिर हमारे पिता तमाम कष्ट झेल रहे हैं। जुल्म और अन्याय से डर कर हम अपने धर्म को हर्गिज नहीं छोड़ सकते हैं। सारा दरबार एक छोटे से बच्चे के मुंह से इस प्रकार की निर्भयता पूर्ण बातें सुनकर स्तंभित रह गया। वजीरखां ने उन्हें फिर ठण्डे बुर्ज भेज दिया क्योंकि उनका खयाल था। डराने धमकाने और कष्ट देने और फुसलाने मेरी बात को कबूल कर लेंगे किन्तु दूसरे दिन जब उन्हें पुन दरबारमें बुलाकर पूछा गया तो वही जवाब मिला।

शेर मुहम्मदखाँ मालेर कोटले के सरदार की ओर मुखातिब होकर नवाब ने कहा, खान साहब आपके पिता को इन लड़कों के पिता ने लड़ाई में मारा था और चमकौर में तुम्हारा भाई नाहरखाँ भी मार दिया है। अब इनसे सम्बन्धियोंका बदला लेना चाहो तो ले लो। मुहम्मदखाँ बोला, मेरे बाप और भाई गोविन्दसिंह के हाथ मरे हैं। मैं उनका बदला गुरु गोविन्दसिंह से लड़ाई मे लूंगा। बाप के कर्तव्यों का बदला उनके दुध मुँहे बच्चों से नहीं लेना चाहता यह बात इस्लाम धर्म के भी विरुद्ध है। अत मैं यह काम नहीं कर सकता। यह कह कर शेर मुहम्मदखाँ ने ठंडा साँस और एक गहरी आह भरी। साथ ही मासूम बच्चों पर होरहे इस अत्याचार को न देखता हुआ दरबार से उठ गया। यह देख सुनकर वजीरखाँ का दिल कुछ नर्म होने लगा। किन्तु इसी समय दीवान सुच्चानंद ने जो पास ही बैठा था कहा, "अफईरा कुश्तन वा बच्चाश रा निगाह दाश्तन् कारे खिरद् मन्दानीस्त।" चिरा के अकबत गुर्ग-जादा गुर्ग शवद् अर्थात—साँप को मारना और उसके बच्चो को पालना बुद्धिमानों का काम नहीं क्योंकि अन्त भेड़िये के बच्चे भेड़िये ही होते हैं। यह बात सुनकर वजीरखाँ गुस्से से लाल पीला हो गया और उसने आज्ञा दी कि इन बच्चों को जिन्दा चिनवा दिया जाय। उसी समय ईंट और गारा मंगवा लिया गया और सामने के सहन मे बच्चों को खड़ा करके उनके इर्दगिर्द मीनार चुनना आरम्भ करा दिया। ज्यों २ रद्दा रद्दा चढ़ाता उन्हें फिर २ कर इस्लाम कबूल करने को कहा जाता परन्तु उनकी तरफ से केवल एक ही उत्तर मिलता। हम किसी भी हालत में धर्म को त्याग नहीं सकते जब चढ़ता जा रहा यह मीनार गर्दनों तक पहुँचा तो साहब जादे जरा बेहोश से हो गये। और दैवात् तब ही वह मीनार धड़धड़ाता हुआ फट पड़ा और बेहोश साहबजादे जमीनपर गिर गये। उस समय तमाम उपस्थित आदमी काप उठे। वजीरखाँ की आज्ञा से बच्चों को उठाकर फिर ठंडे बुर्ज में भेज दिया गया। जहाँ उन्हें मिठाई और दूध आदि देकर होश मे लाया गया[1]।

वजीरखाँ ने दूसरे दिन उन पर कुछ आदमियो को इस खयाल से नियत किया कि शायद इस प्रकार के डराने धमकाने से वह उनकी बात मान जांय किन्तु वे अपने धर्म पर अटल थे और कोई भी दहशत और लालच उन्हें सिख धर्म से न डिगा सका। एक इतिहासकार ने लिखा है कि साहबजादों को कष्टों से डराकर इस्लाम कबूल करने के वास्ते मनाने के लिये उनकी अंगुलियों में पलीते रखकर आग लगादी गई।

१. यह मत डाक्टर गंडासिंह का है आम धारणा यह है कि बच्चे दीवारों में चुन दिये गये।

अन्त में १३ पौष का खूनी दिवस आगया इस दिन बच्चो को दरबार मे बुलाकर और बातों के साथ वजीरखाँ ने पूछा बच्चो तुम्हे छोड़ दिया जाय तो तुम क्या करोगे ? जोरावरसिंह ने जवाब दिया कि हम खालसा की फौजे एकत्रित करके तुम्हारे साथ लड़ेगे। तुम्हें मारेगे या खुद मर जायेगे। वजीरखाँ ने फिर पूछा भला यदि युद्ध हार जाओ तो फिर क्या करोगे साहबजादे ने फिर जवाब दिया। वही फौजे इकट्ठी करना, तुमसे लड़ना। यह बात सुनकर दीवान सुच्चानन्द बोल उठा हजूर मैंने तो पहले ही अर्ज की थी कि भेड़ियों के बच्चे आखिर भेड़िये ही होते है। अभी तो यह दूध पीते बच्चे हैं। इस तरह जवाब देते है। जब बड़े होंगे तो राज्य की ईंट से ईंट बजा देंगे। जल भुन तो वजीरखाँ जोरावर सिंह के उत्तरों से ही रहा था। परन्तु सुच्चानन्द के इन शब्दों ने जलती आग पर आहुति का काम किया। उसको रोष चढ़ गया और गुस्से मे पुकारा, है कोई जो इन की गर्दन उड़ादे। यह सुनकर सबकी गर्दने झुकगई और जब किसी ओर से कोई उत्तर न मिला तो नौकरी से हटाये हुये दो जल्लादों ने अर्ज की अगर हमारे अपराध क्षमा कर दिये जाय तो हम यह कार्य करने को तैयार हैं वजीरखाँ ने यह बात कबूल करली। बस फिर क्या देर थी। जल्लादो ने उन मासूम बच्चो को जमीन पर गिराकर घुटनों के नीचे दबा लिया और बड़ी बेरहमी से तलवार से जिबह कर डाला।

माता गूजरी को जब यह समाचार मिले तो बुर्ज से गिर कर प्राण त्याग दिये। देहात मे टोडा-मल नामक एक प्रेमी सिख था, उसने आकर तीनों की लाशे प्राप्त कीं और उनका विधि पूर्वक सत्कार करा दिया।

रात भर चलने के बाद जब गुरु जी माछीवाड़े के इलाके मे पहुँचे तो एक बाग में कुए पर पानी पिया और वहीं एक ईंट का सिरहाना लगाकर सो रहे। कई दिन के थके हुए थे, दिन भर सोये। शाम को नित्य नेम करके फिर सो गये। सवेरे देखा तो बिछुड़े हुए तीनों सिख भी आ रहे हैं। बाग का मालिक भी एक सिख ही था उसे पता चला तो वह सबको घर लेगया और वहाँ उसने उनका खूब सत्कार किया। यहाँ उन्हे गनीखाँ और नबीखाँ नामके दो पठान मिले जो गुरु जी से काफी परिचित थे और उन मे श्रद्धा भी रखते थे। उन्होंने खबर दी कि आपकी खोज चारों तरफ हो रही है। इसलिये अच्छा हो कि आप फकीरों का जैसा बाना पहर ले। हम आपको यहाँ से ऐसी सूरत मे अपना "उच्च का पीर" कह कर निकाल ले चलेंगे। गुरु जी ने इस बात को स्वीकार कर लिया। उस समय की प्रचलित प्रथा के अनु-सार वे पठान और गुरु जी के साथी सिख जिन्होंने कि फकीरी वेश ही बना लिया था। वहाँ से गुरु जी को पलंग पर बिठाकर निकाल ले गये। जहाँ भी कोई पूछता गनीखाँ और नबीखाँ कह देते, ये उच्च के पीर हैं। किन्तु लाल नानक गांव के दिलेरखाँ ने उन्हे रोक लिया और कहा कि मैं कैसे विश्वास करूँ कि ये उच्च के पीर हैं। हां, हमारे साथ खाना खाले तो यकीन कर सकते है। साथी सिखों ने कहा पीर जी तो एक ही बार जौ का दलिया खाते हैं। किन्तु हम तुम्हारे साथ जो कि उनके मुरीद हैं। खाना खालेंगे भला भाई भाई के साथ क्यों न खाना खायेगा ? इस पर दिलेरखाँ को भी यकीन हो गया और उन्हें चले जाने दिया। इस तरह चलते चलते जगराम नामक गांव मे पहुँचे। यहां का चौधरी राय कल्ला मुसलमान होते हुये भी गुरु जी मे बड़ी श्रद्धा रखता था। वह उनका आना जानकर बड़ा प्रसन्न हुआ और गुरु जी की बड़ी खातिरदारी की। दोनों खान भाई हेहर गाव से ही वापिस अपने गाव को चले गये। क्योंकि रास्ते मे गुरु जी हेहर मे उदासी संत कृपाल के यहा कई दिन तक ठहरे थे।

यहाँ जगराम में एक दिन गुरु जी बगीचे मे बैठे हुए मन बहलाव के लिये कृपाण की नोंक से

घास के एक बूटे की जड़ खोद रहे थे। जड़ खुद ही चुकी थी कि उनको सरहिन्द में साहबजादों की शहीदी का हाल सुनाया गया। राय कल्लाह सुनते ही रो पड़ा और लोगों की आंखें भी झड़ने लगीं। गुरु जी ने नेत्र बन्द करके एक घड़ी परमात्मा का चिन्तन किया और फिर—"उस समय वहां पर जो अनेकों जन उपस्थित थे, उन्हें सम्बोधित करते हुये कहा "ईश्वर की अमानत अदा हो गई मेरे लिये वही चार पुत्र न थे किन्तु यह सब मेरे ही पुत्र हैं।" "इन पुत्रन के शीश पर वारि दिये सुत चार चार गये तो क्या हुआ यह जीवत कई हजार।"

जगराम से विदा होकर गुरु जी दीनागांव में पहुंचे। यहाँ एक सिख ने उन्हें एक बढ़िया घोड़ा भेंट किया। यहां पर शमीरे, लखमीरे के घर गुरु जी ने अपने डेरे लगाये थे। यहीं पर इनके पास औरङ्गजेब का एक पत्र भी आया था, इसके उत्तर में गुरु जी ने जो पत्र लिखा था वह जफरनामे के नाम से मशहूर है। यह पत्र सिख साहित्य में बड़े महत्व की चीज समझा जाता है।

यह पत्र गुरु जी ने भाई दयासिंह और और धर्मसिंह के हाथ भेजा था। उस समय औरङ्गजेब दक्षिण में था। यह पत्र उसे अहमदनगर में मिला।

सरहिन्द के नवाब वजीरखाँ को किसी से पता लगा कि गुरु जी 'दीना' में शमीरे के घर ठहरे हुए हैं तो, उसने शमीरा को पत्र लिखा कि गुरु को गिरफ्तार करके हमारे पास भेज दो। उसके बदले में तुम्हारी भलाई का भी ख्याल किया जायगा किन्तु शमीरे ने लिखा हमने जिस महापुरुष को ठहरा रक्खा है वह हमारा हादी है किसी का कुछ बिगाड़ता नहीं है। हम और तुम उनकी सेवा के लिये हर प्रकार से तत्पर हैं। शमीरे ने तो ऐसा बहादुरी का जवाब दे दिया किन्तु गुरु जी ने इस गाँव को कोई हानि न पहुँच जाय इस इरादे से वहाँ से प्रस्थान कर दिया और एक दूसरे गांव 'ढिलवा', में पहुंचे जो जगलों में था। इतने समय में कुछ सिख भी गुरु जी के पास आ एकत्र हुए थे। जिनकी बढ़ती हुई तादाद की रिपोर्ट जिस समय वजीरखाँ को पहुँची तो उसने एक बड़ी भारी सेना गुरु जी के विरुद्ध भेज दी।

मुक्त सर की कथा

अब तक गुरु जी खिदराने पहुँच गये थे। और वहां पर अपना डेरा लगा दिया वह स्थान अब मुक्तसर के नाम से प्रसिद्ध है। जब शाही फौजें गुरु जी को ढूंढ़ती फिर रही थीं तो इनकी मुठभेड़ माझे से वापिस आये हुये उन सिखों से हो गई जो कि गुरु जी को आनन्दपुर में बेदावा लिखकर दे गये थे। यहां इस तरह हुआ कि जब यह लोग बेदावा लिखने के बाद आनंदपुर छोड़ कर अपने २ नगरों में पहुँचे तो वहां उनकी मां, बहिन और स्त्रियों ने उन्हें मुँह लगाने से इनकार कर दिया तथा गुरु जी को पीठ दे आने पर बहुत शर्मिन्दा किया। यहां तक कि चभाल नगर की एक वीर सिख स्त्री माई भागो ने गुरु जी के नाम का झंडा उठाकर स्वयम मैदान में जाने की तैयारी करली। जिस पर यह लोग फिर एकत्र होकर माई भागो के साथ गुरु जी की सेवा में पहुँचने के लिये तलाश में निकले कि खिदराने के निकट ही शाही सेना को देख कर उन्होंने इसे रोकने के लिए उस पर तीन ओर से गोलियों की वर्षा करनी शुरू कर दी। परन्तु शाही सेना का बहुत देर तक मुकाबिला करना थोड़े से आदमियों के लिये संभव न था। इससे तमाम के तमाम रणभूमि में घायल हो गिरे और अपने प्राण गुरु जी की सेवा में लगा दिये।

जंग खत्म हो जाने और शाही सेना के वहाँ से चले जाने पर जब गुरु जी घटनास्थल पर पहुँचे तो आपने सिसकते हुओं में महासिंह जी को देखा गुरु जी ने उसके जख्मों को धोया और जब उसे कुछ होश आया तो उससे कहा तुमने अपना मुख उज्ज्वल कर लिया है। क्या इस समय

तुम्हारी कोई इच्छा है ? भाई महासिह जी ने बडी नम्रता से विनती की कि सतगुरु मेरी केवल एक ही इच्छा है और वह यह कि आप हमारा लिखा हुआ वेदावा फाड़ दें। गुरुजी इस मांग पर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होने वह पत्र अपनी जेब से निकाल कर उसकी इच्छा को पूर्ण करने के लिये टुकडे २ कर दिया।

मुक्तसर से चलकर देहातों मे प्रचार व उपदेश करते हुये गुरु जी लक्खी जगल मे पहुँचे। जगल मे पहुचने से पहिले वैराडों के गाव छतियाना मे उन्हे उपदेश दिया। वे लोग गुरु जी को देखकर बड़े खुश हुए। गुरु जी के निवास करने से लक्खी जंगल मे मंगल होने लग गया। उनके पास शिष्यो और प्रेमियो के दल आने लगे। कथा कीर्तन होने लग गया। इस जगल मे सैयद इब्राहीम नाम का एक मुसलमान फकीर रहता था। जब उसने सुना कि इसी जगल मे गोविन्दसिह जी भी ठहर रहे है तो, वह गुरुजी की सेवा मे हाजिर हुआ और कई दिन तक ज्ञान चर्चा करता रहा। अत मे उसके दिल पर ऐसा असर पड़ा कि वह सिख धर्म मे दीक्षित हो गया, और सैयद इब्राहीम की जगह बाबा अजमेरासिह कहलाने लगा।

लक्खी जंगल मे

लक्खी जगल को पार करने के बाद गुरु जी ने सालों की तलवंडी मे जो कि एक गहन जगल से घिरा हुआ गॉव था डेरे डाले।[1] इस स्थान मे गुरु जी बडे प्रसन्न हुए और उसे आनंदपुर के दमदमे से मिसाल दी बस तभी से वह स्थान दमदमा के नाम से मशहूर हो गया।

तलवडी मे डल्ला नाम का जाट जमीदार था एक प्रकार से वह २०-२० कोस तक राजा था। उसके यहा भी हथियार बन्दों का बड़ा गिरोह रहता था। वह गुरु जी की सेवा मे बराबर आता रहता था। कभी २ वह यह भी कहता महाराज हमे जंग के समय याद करते तो मैं भी अपने आदमियों को लेकर कुछ सेवा करता। गुरु जी ने कहा अच्छा डल्ला, आगे समय आने पर देखा जायगा।

एक दिन की बात है कि गुरु जी के पास एक सिख बन्दूक लेकर आया। उन्होंने उस बन्दूक को भर कर कहा, डल्ला तुम अपने किसी आदमी को कहो कि वह मरने के लिये सामने खड़ा हो। जब उसका कोई भी आदमी तैयार होता नजर न आया तो आपने कहा सिखों के पास कोई आदमी भेजो जो उन्हे निशाना बनने को बुला लाये। नजदीक ही सामने दो सिख खड़े पगड़ियाँ बांध रहे थे। जब उन्होंने गुरु जी की इच्छा को सुना तो वह उसी तरह आधी पगड़ियां लटकाये गुरु जी की ओर भागे और हरेक यह कहने लगा कि पहले मैं मरूंगा। मुझ पर निशाना अजमाइये। यह देखकर डल्ला चकित रह गया।

यहॉ गुरु जी ने गुरु ग्रन्थ साहब मे गुरु तेगबहादुर जी की वाणियों को जोड़ देने के इरादे से धीरमल जी करतारपुर से ग्रन्थ साहब को लाने के लिये आदमी भेजा। किन्तु धीरमल नट गया और कहला भेजा, वह तो स्वय महान गुरु है। अपने आप ही बिना देखे-क्यों नहीं ग्रन्थ साहब तैयार कर लेते।

जिस प्रकार गुरु अर्जुन देव जी ने भाई गुरुदास जी को बोल २ कर ग्रन्थ साहब लिखाया था उसी प्रकार आपने एक सुन्दर खेमे के अन्दर बैठकर भाई मनीसिह जी को सम्पूर्ण ग्रन्थ साहब लिखा, दिये। यह ग्रन्थ साहब दमदमा वाली बीड़ कहलाते है।

चूंकि जफरनामा लेकर देहली गये अब तक भाई दयासिंह जी को बहुत लंबा समय बीत चुका था। न तो भाई दयासिंह ही वापिस आये थे और न औरङ्गजेब की ओर से उनके जफरनामे का कोई उत्तर आया था। यह भी पता न चल सका था कि आया भाई दयासिंह औरङ्गजेब तक पहुँच भी सके हैं

१ यह गाँव पटियाला राज्य में भटिंडा से पूर्वोत्तर ११ मील के फासले पर है।

या नहीं। उस समय औरङ्गजेब बीमारी में भी ग्रस्त था। इसलिये गुरु जी ने दक्षिण जाकर बादशाह से भेंट करने का इरादा किया और उधर की ओर चल पड़े। अभी आप राजपूताने में बघोर के स्थान पर ही पहुँचे थे कि आपको दक्षिण में बादशाह औरङ्गजेब के मरने के समाचार मिल गया। चूंकि दक्षिण जाने में और-तो कोई आपका मतलब था नहीं इसलिये आप वहाँ से पंजाब की ओर लौट पड़े। शाहजहानाबाद के नजदीक आये थे कि औरङ्गजेब के बड़े पुत्र शाहजादा मुअज्जम की ओर से भाई नन्दलाल जी पैगाम लेकर पहुँचे।

इस समय उनके छोटे भाई आजम ने दक्षिण में खुद बादशाह बनने की घोषणा कर दी थी। और वह बादशाही तख्त को सभालने के लिये राजधानी की ओर बढ़ रहा था। मुअज्जम उसके मुकाबिले की तैयारी कर रहा था और युद्ध में सहायता के लिये गुरु जी से, उसने याचना की थी। गुरु गोविन्दसिंह जाती दुश्मनियों से बहुत ऊँचे पहुंचे हुए थे। हालाकि औरङ्गजेब ही दादा गुरु अर्जुन देव के प्राणों का गाहक हुआ था। उसके शाहजहादे की फौजों ने गुरु हरिगोविन्द जी को कष्ट देने के काफी यत्न किये थे। स्वयम औरङ्गजेब ने गुरु गोविंदसिंह जी के पिता को शहीद किया था। उसके हुक्म से सरहिंद आदि सूबों और पहाड़ी राजाओं ने गुरु गोविंदसिंह पर आक्रमण किये थे। उसके एक सूबेदार ने गुरु गोविंद सिंह के बच्चों को जिबह करवा डाला था परन्तु अब जबकि उसका पुत्र अपने हक की रक्षा के लिये सहायता चाहता है तो गुरु गोविंदसिंह ने अपने पास कोई बड़ी सेना न होते हुये भी उसके पिता पितामह की पुरानी सब बातों को भुलाकर हकदार का हक दिलाने के लिये सहायता करना स्वीकार कर लिया और अपने कुछ आदमी जाजऊ की रण भूमि में उसकी सहायता के लिये भेज दिये। इस युद्ध में आजम मारा गया और मुअज्जम को विजय प्राप्त हुई।

इस युद्ध के बाद मुअज्जम बहादुरशाह के लकब से बादशाह बनकर आगरे को चला गया।

जौलाई सन १७०७ ई० के अंत में गुरु गोविन्दसिंह जबकि आगरे के नजदीक विचर रहे थे शाही खान्दान से भेंट हुई। बहादुरशाह ने गुरुजी को दर्शन देने के लिये आमंत्रित किया ४ जमादी-उल अव्वल ११११८ हिजरी २ अगस्त सन १७०७ को गुरु गोविन्दसिंह बादशाह से मिले उस समय उसने गुरुजी की सेवा में एक जडाऊ दुहट्टा एक धुक धुकी एक जिगा जिन का मूल्य साठ हजार रुपया था अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिये भेंट किये। प्रथम कातिक १७६४ विक्रमी को गुरु गोविन्दसिंह जी के धौलकी सिख संगत के नाम लिखे गये पत्र से प्रतीत होता है कि वह कार्य्य जो कि गुरुजी को पजाब से इस तरफ लाये थे। उनके पूरे होने के आसार दिखाई न दे रहे थे और गुरु जी शीघ्र ही पजाब को लौटने की आशा रखते थे। साथ ही इस पत्र में उन्होंने यह भी लिखा था कि जब वह कहलूर पहुँचे तो सर्वत्र खालसा हथियार बाध कर उनके पास पहुँचे।

इस पत्र के होते हुए उन इतिहासकारों की कल्पनायें स्वत- कट जाती हैं जिन्होंने यह लिखा है कि गुरुजी पंजाब के सिखों से निराश होकर दक्षिण की ओर आये थे ताकि यहाँ राजपूतों और मराठों को अपने साथ मिलाकर अपने मिशन की सफलता के लिये यत्न करें। हमने ऊपर देखा है कि जिस समय औरंगजेब की मृत्यु हुई तो उस समय आप राजपूताने के मध्य में मौजूद थे इस समय पुराना बादशाह मर चुका था। और नया बादशाह अभी तक बना नहीं था राजगद्दी के लिये भाइयों में लड़ाई की तैयारियां हो रही थीं अगर गुरु गोविन्दसिंह जी का मिशन राजपूतों व मराठों को अपने साथ मिलाकर कुछ करने का था तो इससे अच्छा मौका उन्हें और कौनसा मिलता परन्तु राजपूताने के देश में विचरते हुये

भी वे किसी राजपूत नरेश से मिलते दिखाई नहीं देते और ज्योंही बादशाह की मृत्यु की सूचना उनके पास पहुँचती है वे इस ओर अपना और कोई मन्तव्य न देखते हुए वापिस पंजाब की ओर लौट पडते हैं।

प्रतीत होता है कि वह कार्य्य जो कि देश में अमन कायम करने के यत्नों के सिवा—बादशाह के साथ—और कुछ नहीं हो सकता सिरे नहीं चढ़ा था और आपके पंजाब की ओर लौटने का समय नहीं बन सका था कि बहादुरशाह को जयपुर की ओर बढ़ना पड़ा। जिसका कारण यह था कि बादशाह का खजाना खाली हो चुकने के कारण वह अपने उन सहायकों को इनामे और जागीरें देकर प्रसन्न नहीं कर सकता था। जिन्होंने कि उसे राज्य प्राप्ति में सहायता दी थी। इस समय खानेखान ने तजवीज की की कि जयपुर पर धावा बोलकर कछवाहों के इलाके को जप्त कर लिया जाय। इस तरह से एक तो वह कछवाहों के कांटे को सदैव के लिये राज्य की कुर्सी से निकाल सकेगा और दूसरे अपने सहायकों को उस इलाके को जागीरो के तौर पर बाट कर संतुष्ट कर सकेगा। परन्तु बादशाह जयपुर में जाकर इस कार्य्य को अपनी इच्छानुसार पूर्ण न कर सका था कि दक्षिण से समाचार आने लगे कि वहाँ कामबख्श ने बगावत खडी कर दी है। इसलिये तत्क्षण बादशाह को वहां से दक्षिण की ओर चला जाना पडा।

गुरु जी अपनी बातचीत के सम्बन्ध में इस समय बादशाह के साथ २ ही आ रहे थे और इधर से दक्षिण की ओर साथ ही चल पड़े। रास्ते में वह हर समय बादशाही कैम्प के साथ नहीं रहते थे किन्तु कई २ दिन के लिये संगतों को उपदेश करने और शिकार आदि के लिये अलग हो जाते थे और कभी फिर कैम्प के साथ आ मिलते थे। इस समय उनकी बादशाह से बातचीत कोई खास फल न ला सकी। बुरहानपुर से आगे चलकर जब बादशाह हैदराबाद की ओर जाने के लिये नदेड़ की तरफ बढ़ा तो ऐसा प्रतीत होता है कि गुरुजी को बादशाह से होती चली आ रही बातचीत के मनोइच्छित फल लाती नजर न आई, इसलिये नदेड के मुकाम पर पहुँच कर गुरु जी ने अपने कैम्प को सदा के लिये बादशाही कैम्प से अलहदा कर लिया और अपने तरीके से अपने कार्य को पूर्ण करने के लिये साधन जुटाने का आयोजन करने लगे।

जिस समय गुरुजी जयपुर राज्य में से गुजर रहे थे तो आपको नारायन के नजदीक दादू-द्वारे में जाने का अवसर प्राप्त हुआ था। वहां के महंत जेतराम (चेतराम) ने आपका बहुत आदर सत्कार किया था और वहा से चलते समय आपको यह चेतावनी दी थी कि महाराज आप दक्षिण की ओर जा रहे हैं यदि कहीं आपको नदेड़ के स्थान पर जाना हो जाय तो आप वहां के वैरागी साधु के स्थान पर न जाय चूंकि वह नाटकी चेटकी साधु अपनी अदृष्ट शक्तियों से दूसरे साधु संतों का अपमान करके प्रसन्न होता है और इसमे अपनी बड़ाई समझता है।

अब जबकि गुरुजी नन्देड़ आ पहुँचे तो उन्हें माधवदास वैरागी का खयाल आया। वह किसी के नाटक चेटक से घबराने वाले तो थे ही नहीं। वे तो उन गुरु नानकदेव के धर्मावलंबी और उत्तराधिकारी थे जो सज्जन जैसे ठगों और कोड़ा जैसे राक्षसों और नूरशाजी जैसी जादूगरनी आदि को सीधे रास्ते पर लाने के लिये दूर से पहुँच पड़ते थे। गुरुजी दूसरे दिन प्रात. ही (दिसम्बर सन १७०८ के अंतिम सप्ताह में) माधव वैरागी के स्थान पर पहुँचे। वह उस समय वहा पर मौजूद न था। गुरुजी उसका इंतजार करने के लिये उसके स्थान पर (एक ही) पड़े पलग पर विराजमान हो गये और उनके सिख लगर

तैयार करने में लग पड़े। जिसमें कि उन्होंने मांस के देग भी चढ़ा दिये। वैरागी के निरामिष भोजी वैष्णव चेले घबरा उठे और अपने महंत को इस अजीब मेहमान के आने की सूचना देने के लिये उठ भागे। वैरागी चेलों की बातचीत सुनकर गुस्से से लाल-पीला होगया। शायद उसने उस अभ्यागत के हाथों अपनी महंती की महत्ता में हस्तक्षेप समझा हो या अपने वैष्णव स्थान में मांस पकाने का अधार्मिक कृत्य, उसने अपनी अदृष्ट शक्तियों अथवा तंत्र मंत्र की पूर्ण तान लगा दी, गुरुजी को पलंग से गिराने के व्यर्थ प्रयत्न में। किन्तु गुरुजी की मन शक्ति उससे कहीं अधिक थी इससे उसके तमाम प्रयत्न व्यर्थ रहे।

इस तरह सोचकर एवं स्तम्भित वैरागी अभ्यागत पर अपना गुस्सा निकालने और उससे बदला लेने के लिये अपने स्थान की ओर उठ दौड़ा। किन्तु जिसे वह जीतने आया था। उसके दर्शन करते ही स्वयं दुर्विनत हो गया। गुरु जी के सामने पहुँचा। उस समय का वार्तालाप अहमदशाह बटालिये की पुस्तक "जिकिर गुरुओं वा इब्तिदाये सिंहा व मजहबे ऐशां" में इस प्रकार दर्ज है:—

माधवदास—आप कौन हैं?

गुरु गोविन्दसिंह—वह जिसे तुम जानते हो।

माधवदास—मैं क्या जानता हूँ।

गुरु गोविन्दसिंह—अपने मन में जरा गौर से ध्यान करो।

माधवदास—(थोड़ा ठहर कर) तो आप गुरु गोविन्दसिंह हैं।

गुरु गोविन्दसिंह—हाँ

माधवदास—तो आप यहां किस आशा से आये हैं?

गुरु गोविन्दसिंह—मैं आया हूं तुम्हें अपने धर्म में दीक्षित करके अपना सिख बनाने के लिये।

माधव—महाराज मुझे स्वीकार है, मैं आपका बन्दा हूँ।

इस समय तक का बड़ा अभिमानी और अजित वैरागी माधवदास बड़ी नम्रता से गुरु जी के चरणों में गिर पड़ा और एक भी शब्द बहस किये बगैर गुरु जी के पंथ में दीक्षित होकर गुरु जी का सेवक बनना स्वीकार कर लिया।

वास्तव में तो वह गुरु जी के भव्य दर्शनों को करते ही वह उनका हो गया था परन्तु अब उनके चरण स्पर्श ने पारस का काम किया और वैरागी की कच्ची धातु से गुरु जी ने वैरागी के गर्म लोहे पर चोट लगा कर उस एक शस्त्र के काम में ढालने के लिये सिख धर्म की भट्टी में डाल दिया। उन्होंने उसे फौरन एक शस्त्र धारी सिख का वेश धारण करा दिया और खालसा धर्म का अमृत चखा कर उसे पूर्ण रीति से नियमानुसार सिख धर्म में प्रविष्ट कर लिया तथा उसके अपने लिये वर्ते हुए उसी के शब्द अनुसार उसका नाम बन्दासिंह रख दिया। मुसलमानी इतिहासों और उनके आधार पर लिखे गये अन्य इतिहासों से जिस प्रकार गुरु गोविन्दसिंह को गुरु गोविन्द या केवल गोविन्द करके लिखा है बन्दासिंह के नाम को भी प्रायः बन्दा करके लिखा है।

गुरु जी का देहावसान

बन्दासिंह के सिखधर्म में दीक्षित होने के दिनों में ही नदेड के मुकाम पर दो पठानों के कातिलाना वार से गुरु जी सख्त घायल हो गये। आगरा के स्थान पर गुरु गोविन्दसिंह जी की बादशाह बहादुरशाह से मुलाकात और बादशाह की ओर से उनको एक बड़ी कीमती भेंट दिये जाने के

समाचार सरहिन्द में पहुँचे तो वहां का हाकिम वजीरखॉ दिल ही दिल में डरा कि बादशाह और गुरु जी के बीच जारी हो रही बातचीत की सफलता पर उसे गुरु के बच्चों का कातिल होने की वजह से सब से ज्यादा नुकसान पहुँचेगा इसलिये उसने गुरु जी को किसी तरकीब से खतम कर देने की विधि सोची और उनको कत्ल कर देने के लिये दो पठानों को नियत करके उनके पीछे भेज दिया। 'चतुर्युगी' ग्रन्थ से पता चलता है कि यह पठान पहले दिल्ली में पहुँचे और वहां से गुरु पत्नी माता सुन्दरी से पता लगा कर दक्षिण को चल दिये। वह पहले से ही गुरुजी और उनके परिवार के जानकार प्रतीत होते है। इसीलिए ही उन पर न तो कोई शक माता सुन्दरी जी ने किया और नाहीं नदेड़ के स्थान पर गुरु जी के कैम्प मे पहुँचने पर वहॉ उन पर कोई शक हुआ। वह लगातार दो-चार दिन गुरु जी के पास आते जाते रहे परन्तु उनका दाव न लग सका। एक दिन शाम को जब कि गुरुजी के पास कोई ज्यादा सिख उपस्थित न थे और एक ही सेवादार जो वहा था ऊँघने लगा और स्वय गुरु जी की भी जरा झपकी लग गई तो, उनमे से एक पठान ने जमधर के वार से गुरु जी को घायल कर दिया। असल मे उसका निशाना गुरु जी का दिल था ताकि एक ही वार मे उनका काम तमाम हो जाय। परन्तु जमधर का निशाने पर न बैठने के कारण उसकी इच्छा तत्क्षण ही पूरी न हो सकी। इससे पेश्तर कि वह दूसरा वार करता गुरुजी ने पास ही पडी हुई कृपाण से उसको वहीं रख दिया। गुरु जी के आवाज देने पर जब सिख भागे हुए आये तो उसका दूसरा साथी भागता हुआ, सिखो की कृपाण का शिकार हुआ। जल्दी ही आपके घाव धोने और सीने का प्रवन्ध किया गया। दो ही चार दिन मे जख्म बाहर से पुरता हुआ सा प्रतीत होने लगा किन्तु इन दिनों बाहर से आई हुई एक मजबूत कमान किसी ने गुरु जी को दिखलाई और कहा कि इस पर चिल्ला मुश्किल से भी नहीं चढ़ाया जा सकता। जब गुरु जी ने कमान को जोर से खींच कर चिल्ला चढ़ाया तो जोर अधिक लग जाने के कारण उनके घाव के टांके खुल गये और अंतत. कातिक सुदी ५ की रात्रि को इस असार ससार से प्रस्थान कर गये।

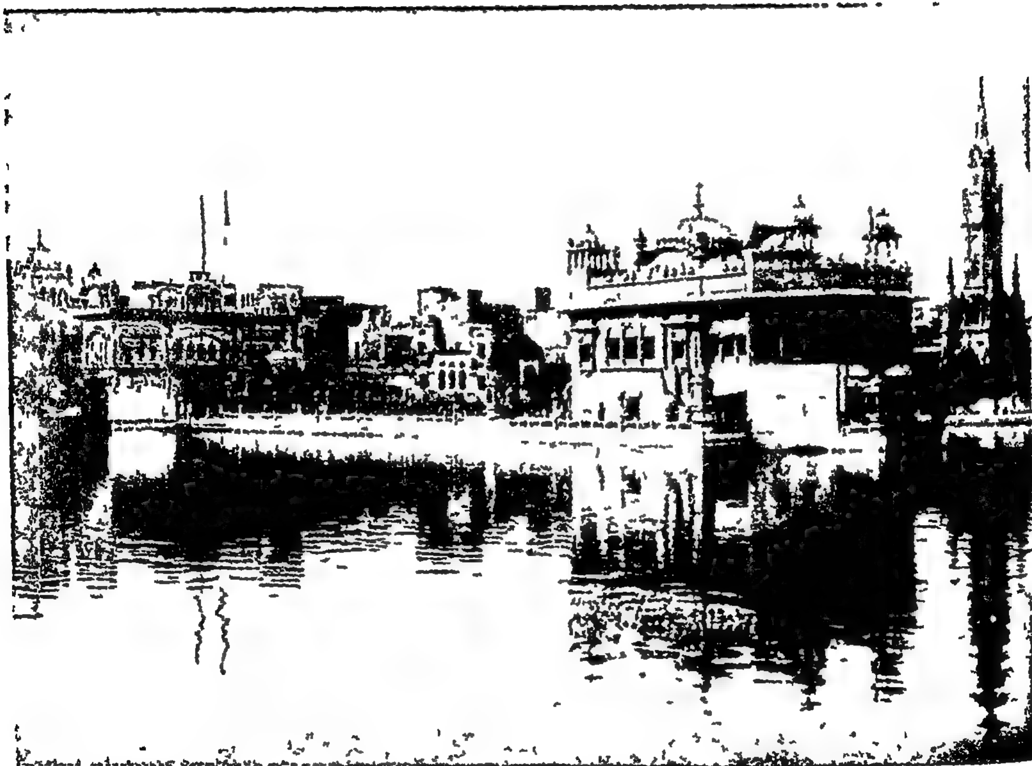
इन थोड़े से दिनों मे ही वन्दासिंह ने सिख गुरुओं की शहीदियो और सरहिन्द मे गुरु जी के मासूम बच्चों के कत्ल और मुगलों के अनर्थ और सिखो को मिले हुये कष्टो के हाल गुरुजी से सुन लिये थे इससे उसका खून खोलने लग गया था।

परन्तु अब सरहिन्द की ओर से आये हुये पठानों के हाथों जब गुरु जी पर कातिलाना वार होता हुआ उसने खुद अपनी आखों से देखा तो उससे खामोश रहा न गया। उसने गुरु जी से पंजाब में जाकर जालिम हाकिमों के अत्याचारों को जमीन के साथ मिला देने और उनको सजा देने के लिये आज्ञा चाही। यहॉ यह कह देना भी प्रसंग से बाहर न होगा कि अगर गुरुजी घाव लगने के कारण शारीरिक तौर पर अस्वस्थ न होते तो वे अवश्य ही स्वयम पंजाब को चल पड़ते। जैसा कि उन्होंने अपने प्रथम कार्तिक संवत १७६४ वि. के हुक्मनामे मे लोगों को लिखा था। बिलाशक अगर बहादुरशाह से हो रही बातचीत उनको दक्षिण की ओर न ले आती तो उन्हे आगरे से ही लौट पडना था। इसलिए अब मौजूदा हालत मे उन्होंने वन्दासिंह की विनती को स्वीकार कर लिया और सिखों की फौजी कमान भी उसके हवाले कर दी।

केवल संत और महात्मा ही नहीं हैं जिनसे कि मनुष्य को इस संसार मे वास्ता पडता है, यहा वे लोग भी हैं जो धार्मिक तौर पर खुश्क, खुद पसन्द और जालिम होते हैं। उनका मन जुल्म और अन्याय के कार्यों को अबाधगति से करते रहने के कारण मलिन हो जाता है। स्वार्थपरता और पक्षपात से उनके



तख्त श्री अबिचल नगर हज़ूर साहिब



श्री हरिमन्दिर अमृतसर

ज्ञानचक्षु मुंधले हो जाते हैं जिनके सामने किसी शिक्षा ज्ञान, और शांति के संदेशों का उन पर कोई असर नहीं होता केवल कृपाण ही इस तमाम मल को दूर कर सकती है यही हालत १७वीं और १८वीं सदी के हाकिमों की थी। यही कारण था जिससे मुगलों और सिक्खों के सम्बन्ध में गुरु जी की ओर से अख्तयार किए गये तमाम धार्मिक तरीके और अमन के लिये बात चीत के प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुए। अब केवल तलवार ही अन्तिम साधन शेष था जिससे बर्तने का काम बन्दासिंह के नायकत्व में खालसों को करना पड़ा।

गुरु गोविन्दसिंह जी के जीवन और सिद्धान्तों की झांकी

समय की किस आवश्यकता ने गुरु गोविन्द सिंह जी को भेजा था। स्वयम गुरु जी ने ही अपने शब्दों में और अपनी कृति विचित्र नाटक में इस पर इस प्रकार प्रकाश डाला है।

"मैं अपना सुत तोहि निवाजो, पंथ प्रचुर करबे को साजो॥
जहां तहां तुम धर्म बिथारो। दुष्ट दोखियन पकड़ पछाड़ो॥
याही काज धरा हम जनमं। समझ लेहु साधु सब मनमं॥
धर्म चलावन संत उबारन। दुष्ट सभन को मूल उपारन॥
मैं हों परम पुरुख को दासा। देखन आयो जगत तमाशा॥
जो मोको परमेसर उचर हैं। ते सब नरक कुण्ड में पर हैं॥
मोको दास तवन का जानो। या में भेद न रंच पछानो॥"

यह कहने में कोई अत्युक्ति नहीं कि राष्ट्रीयता की दृष्टि से सिक्ख गुरु नानकदेव और गोविन्दसिंह के पहले पिछले दो हजार वर्ष से तो समष्टि रूप से कोई भी प्रयत्न नहीं हुआ था। धार्मिक दृष्टि से ईस्वी सन से ३००-४०० वर्ष पहिले जैन, बौद्धों ने संघ बनाये थे किन्तु फिर अठारहवीं सदी तक समाज की काया पलटने के लिये कोई भी संघ नहीं बने। गुरु तेगबहादुरजी के बलिदान के बाद गुरु गोविन्दसिंहजी ने ही खालसासंघ की स्थापना की। आज हम ऐसे बहुत से संघ संसार में देखते हैं। जिनके सदस्य कम्यूनिस्ट, नाजी, फासिस्ट, खुदाई खिदमतगार आदि कहलाते हैं। हम देखते हैं कि इन सबके कोई चिन्ह (निशान) भी होते हैं। एक निश्चित वेश भूषा भी होती है। जैसे लाल पोशाक कम्यूनिस्टों की और सफेद टोपी कांग्रेसियों की है। यह बात इस युग में ही होती है सो नहीं। प्राचीन समय में भी ऐसा होता था। अनार्य्यों से अपने को पृथक रखने के लिये आर्य्यों ने जनेऊ का विधान रक्खा था। दक्षिण के राक्षस काली पोशाक पहनते थे। और वानर लोग कमर में एक लूम (रस्सा जैसा) बांधे रहते थे।

राष्ट्रीयता

गुरु जी ने भी जो भारतीय राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए सेना खड़ी की उसकी भी एक यूनीफार्म और डिसिप्लिन (वेशभूषा और रहन सहन) निश्चित की।

वेशभूषा का शरीर पर बड़ा असर पड़ता है। इससे कोई इनकार नहीं कर सकता। देश के ढीले ढाले पहनावे में सैनिकता की बू भी शेष नहीं रह गई थी। मुगल और पठानों की विदेशी हुकूमत में अनेकों वर्ष से रहने के कारण एक तो लोग वैसे ही निर्वीर्य हो रहे थे। दूसरे उन्होंने अपना पहनावा ऐसे ढंग का बना रक्खा था जिसमे रहने वाला आदमी युद्ध के तो किसी काम का हो ही नहीं सकता था। अत गुरु जी ने कच्छ धारण करने का हुक्म दिया।

पंजाब के आम लोग उस समय हाथों और पैरों में चादी के कडे पहनाते थे। पंजाब से लगे हुए राजपूताने की कई रियासतों मे अब भी लोग हाथ पैरों मे कडे पहनते हैं किन्तु इनकी रक्षा का कोई भी

साधन इनके पास न था अतः गुरु जी ने लोहे का कड़ा अपने खालसा लोगों के हाथ में डलवा दिया। जिससे वे सदैव यह याद रखें कि अन्याय और अत्याचारों से लोहा लेने में ही वीरियता है। प्रत्येक पराजित देश को शत्रुओं की ओर निरस्त्र किया जाता है। हारे हुए लोगों से सबसे पहिले हथियार रखवाये जाते हैं। अतः गुरु जी ने अपने खालसाओं को विजयीभाव बनाये रखने के लिए एक कृपाण सदैव पास रखने का आदेश दिया।

ये उपरोक्त तीन चीजें क्षात्र धर्म से सम्बन्ध रखने वाली हैं, किन्तु चूंकि इनका संघ धर्मप्रधान संघ था, अतः केश रखने की भी इजाजत दी। चूंकि आरम्भ से ही गुरु लोग अपने केशों को रखाते चले आ रहे थे। प्राचीन भारत के तो प्रायः सभी ऋषि मुनि केश रखाते थे, अतः केशोंको निर्मल रखने वाले कंघे को भी खालसा चिह्नों में शामिल कर दिया। केश, जहां धर्म प्रधान चिह्न था, वहां उससे राजनैतिक सफलता भी प्राप्त हुई। काबुल कंधार से जो पठान आते थे। वह लंबी डाढियों से कुछ तगड़े से मालूम देते थे। उनका सही जवाब दाढ़ी और सिर दोनों ही जटाधारी, अर्थात सेर का जवाब सवा सेर यह सिखों के केश साबित हुए। आज कच्छ सिलवार और पाजामे के नीचे, कृपाण कोट की जेब मे तथा कड़ा लंबी आस्तीन मे छुप जाता है किन्तु केश ही हैं जो साक्षी देते है कि यह सज्जन खालसा जी हैं।

यह तो हुई उनकी राष्ट्रीय वेशभूषा की बात। इसके सिवा उन्होंने इस सेना के हृदय में एक महान भाव पैदा करने की जो बात कही थी वह उनसे पहिले शायद ही किसी राष्ट्र-विधाता ने कही हो, उन्होंने कहा था, खालसाओ! अब तुम सब भाई भाई हो, तुम्हारे ऊपर मेरा सर्वाधिकार है। और मैं वह हूँ जिसे करतार ने अपने देश की सेवा करने, मर्यादायें स्थापित करने और दुष्टता को मार भगाने के लिए भेजा है।[1] अब तुम मेरी सन्तान हो और मैं तुम्हारा पिता हूँ। उनके इन शब्दों के ठीक माने यही हैं कि अब तुम राष्ट्र की सम्पति हो और समाज के हित के कामों में मैं तुम्हारा उपयोग उसी अधिकार के साथ कर सकता हूँ जिसके साथ कि पिता।

किसी राष्ट्र का पतन तभी होता है जब उसके व्यक्ति चरित्रभ्रष्ट, स्वार्थी और निर्वीर्य हो जाते हैं। और जब पतन हो जाता है तो वह राष्ट्र पराधीन और परामुखापेक्षी हो जाता है। गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज ने जिन दिनों जन्म धारण किया था। उस समय देश राजनैतिक और धार्मिक दोनों प्रकार की सत्ताओं द्वारा पीसा और चूसा जा रहा था। उन्होंने जहां राजनैतिक दासता से मुक्त करने के लिए खालसा संघ को कृपाण और कच्छ से सुसज्जित किया। वहां उन्होंने यह भी कोशिश की कि देश के निवासी धार्मिक अन्ध विश्वासों से भी मुक्त हो जावें। इसीलिए उन्होंने अपने शिष्यों पर कुछ पाबन्दियां भी लगाईं। हम यह कह रहे थे कि राष्ट्र व्यक्तियों के बिगड़ने से ही बिगड़ता है, और व्यक्तियों के ही बनने से बनता है। गुरु जी ने राष्ट्र निर्माण को दृष्टि में रखकर व्यक्ति निर्माण पर भी खूब जोर दिया। उन्होंने मनुष्य के आचरण को एक नये सांचे में ढालने की कोशिश की। उन्होंने बन्दासिंह से कहा था कि "लूट के माल को सब में बांट देना और लंगोट का पक्का रहना। राज खालसा का स्थापन करना" इसी प्रकार जब लड़ाई में सिख एक डोले को उठा लाए तो आपने पूछा आप लोगों ने इसमें बैठने वाली का पर्दा उठाकर तो नहीं देखा है। यदि ऐसा किसी ने किया होगा तो उसे खालसापन से

१ धर्म चलावन संत उबारन। दुष्ट सबन को मूल उपारन। (विचित्र नाटक)

खारिज कर दिया जायगा। सब ने विश्वास दिलाया हमें यह भी पता नहीं कि इसमें कौन है? गुरु जी ने इसी समय इस डोले को मुस्लिम सेना में भिजवा दिया।

उनकी शिक्षाओं का खालसा वीरों पर ऐसा असर पड़ा था और वे उतने ऊँचे आचरण के व्यक्ति हो गये थे कि उनके विरोधियों को भी उनके आचरण की प्रशंसा करनी पड़ती थी। मुसलमान इतिहासकार नासिरुद्दीन बिलोच ने लिखा है। "सिखों में पर-स्त्रिया गमन का दोष नहीं है, वे झूठ नहीं बोलते, गरीब, बुड्ढे और स्त्री पर शस्त्र नहीं चलाते।"

वे देश की काया बदलने की उत्कट इच्छा रखते थे। पहाड़ी राजाओं से उन्होंने कहा था। आप लोग यदि गौरवपूर्ण पद प्राप्त करना चाहते हैं तो नूतनता अपनानी ही पड़ेगी, उन विचारों और खयालातों को हटा ही देना पड़ेगा। जिनके कारण हमारे देश का ह्रास हुआ है। इस सम्पूर्ण देश पर तुम्हारे ही बापदादे राज्य करते थे। आज तुम दूसरों के सहारे जीते हो। यदि अब भी आप सभल जायं और खालसा पंथ में शामिल होजाय तो यहां से अन्याय और अत्याचार सहज ही में मिटाये जा सकते है।

यद्यपि वे एक धर्माचार्य्य थे और स्वभावतः धर्माचारी एक तन्त्र के समर्थक होते हैं किन्तु वे अपने देश में प्रजातन्त्रीय भावनाओं को जागृत करना चाहते थे। अपने पांच प्यारों को खालसा संघ में दाखिल करने के बाद आप स्वयम भी उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गए कि

प्रजातन्त्र अब आप मुझे भी इस पंथ (संघ) में शामिल करिये।

आनंदपुर में जिस समय मुगल सेनाओं ने आपको घेरे में ले लिया तो सिखों ने आप पर वहाँ से निकल चलने के लिये जोर डाला चूंकि आप समझते थे कि एक तो निरापद भाग चलना मुश्किल है दूसरे भागकर कोई लाभ नहीं होना है। फिर भी जब आपने देखा कि बहुमत निकलने के पक्ष में है और वह अनुशासन को भी मानने को तयार नहीं है तो आप वहाँ से चल दिये। अगरचे इसका फल यह हुआ कि उनके चारों पुत्रों और मां को भी इस संसार से सदा के लिए विदा होना पड़ा किन्तु इतने पर भी उन्होंने इसी बात पर जोर दिया कि खालसा पंथ जो करे वही मान्य है। बाबा बन्दासिंह को अन्य आदेशों के साथ एक यह भी आदेश आपने दिया था कि जो भी कार्य करें उसमें खालसाओं की राय अवश्य ले लेना। उनकी मर्जी के विरुद्ध कुछ भी कार्य्य न करना।

वे इस प्रजातान्त्रिक खालसा संघ (पंथ) में विश्वास भी अपूर्व रखते थे उन्होंने औरंगजेब को जो पत्र लिखा था उसमें लिखा है :—

"चिह मर्दी कि अखगर खामोश कुनी।
कि आतश दमीरा फिरोजा कुनी॥"

अर्थात "मेरे पुत्रों और अनेकों सिखों के मारे जाने से तू अपनी बहादुरी पर फूलता होगा किन्तु वे तो चिनगारियाँ थीं। बुझ गई तो क्या हुआ आग की भट्टी तो अभी धधक ही रही है।" कहने का साराश यह है कि खालसा (संघ) पंथ तो नहीं मिट गया। जिसमे अजीतसिंह, जुझारसिंह आदि जैसे खालसे ढाले गये हैं।

धार्मिक इतिहास में यह भी आश्चर्य की बात है कि गुरु जी ने इस संघ को ही गुरु का पद भी दे दिया। ऐसा किसी भी देश के इतिहास मे हमारे पढ़ने में नहीं आया किसी पीर पैगम्बर व धर्माचार्य्य ने अपने ही बनाये हुये शिष्यों के आधीन अपने को कर दिया हो और उनके संघ को गुरु पद भी बख्श दिया हो।

उनके भक्तों ने पूछा था, हे ! गुरु देव। जब आप किसी भी व्यक्ति को गुरु स्थापित नहीं कर रहे हैं तो हम गुरु-दर्शन कहाँ से कर सकेंगे। आपने कहा, "जो चाहे कि दर्शन करें तो वह जहाँ पर खालसा लोग इकट्ठे हो रहे हों अर्थात पंचायत जुड़ रही हो वहाँ जाकर अदब के साथ उनके दर्शन करें, उन्हीं मे गुरु को व्यापक माने।

"खालसा मेरो रूप हैं खास।
खालसे माँहि हौं करौं निवास।
खालसा मेरो मुख से अंग।
खालसे के हौं सदा सद् संग॥
खालसा मेरा इष्ट सुहृद।
खालसा मेरो कहियत विर्द॥
खालसा मेरी जात और पत।
खालसा सो मेरी उत्पत।
खालसा मेरो पिंड प्राण।
खालसा मेरी जान की जान॥
खालसा मेरा कई निर्वाह।
खालसा मेरो देह और साह॥
खालसा मेरो धर्म और कर्म।
खालसा मेरा भेद निज वर्म॥
खालसा मेरो सत् गुर तूरा।
खालसा मेरो सज्जन शूरा॥
खालसा मेरी बुद्धि अरु ज्ञान।
खालसा का हो धरौं ध्यान॥
उपमा खालसे जात न कही।
जिह्वा एक पार न लही॥

× × × ×

या में रच न मिथ्या भाखी।
पार ब्रह्म गुरु नानक साखी॥

(सर्वलोह)

इतना महत्व देते थे, वे अपने खालसा संघ को। इस खालसा में जिसकी वे इतनी इज्जत करते थे और जिसकी वजह से मुगल हुकूमत चकनाचूर हो गई थी। जिनके खालसा सदस्यों ने रणजीसिंह का जैसा बड़ा साम्राज्य स्थापित किया था, आखिर व कौन थे। स्वर्ग मे से बुलाये हुए देव, दानव नहीं किन्तु यहीं की भूमि मे से और उन्हीं लागों मे छाँटे हुये लोग थे। जिन्हे पुराणवादियों ने अधःपतन के गर्त में व्रात्य, शूद्र आदि कह कर गिरा दिया था। और जोकि खालसा बनने के पूर्व अपने घर घाट और स्त्री बच्चों को हिफाजत करने के काबिल भी न थे।

ऊपर के शीर्षकों में हमने जा कुछ लिखा है, उससे यह खयाल नहीं लगाया जा सकता कि वे

केवल राष्ट्र विधाता और राजनीतिज्ञ ही थे। वे समाज संशोधक और धर्माचार्य भी उतने ही थे, जितने कि पिछले गुरु साहिबान उन्होंने अमृतवेला मे उठकर नित्यकर्म करने, दरबार लगाने और कथा कीर्तन करने कराने के कार्य को महान से महान अपत्ति मे घिरे रहते हुए भी निभाया। आनन्दपुर से निकलकर सरसा नदी के किनारे पहुँचे और यह पता चल गया कि अब अमृत वेला का समय है तो वहीं नित्य नियम करने लग पड़े। हालांकि शत्रु हजारों की संख्या मे आपके पीछे चले आरहे थे।

धार्मिकता

इतनी लड़ाई हुई। झगड़े रहे फिर भी आपने 'अकाल स्तुति' 'शब्द हजारे' और 'जापु जी' जैसी मनोहर और आत्मतुष्टि करने वाली रचनायें करलीं। यह काम उनके उत्कट ईश्वर-प्रेम का परिचायक है।

गुरु जी ने लड़ाइयो मे अपने पैने वाणों खंगों से हजारों अन्याइयों को ही इस संसार से विदा किया। योद्धा लोग प्राय. सभी निठुर होते हैं किन्तु गुरु जी महान् योद्धा होते हुए भी अपूर्व दयालु भी थे। आनन्दपुर की लड़ाई में भाई कन्हैया जी अपनी सेना मे पानी पिलाने की ड्यूटी पर थे, किन्तु वे उन शत्रुओं के पास भी पानी पिलाने पहुँच जाते थे जिन्हें सिख परेशान करके अथवा जख्मी करके जमीन पर पटक देते थे। इस तरह स्वस्थ होते ही वे फिर सिखों से लड़ने लग जाते। इसकी शिकायत सिखों ने गुरु जी से की। कन्हैया जी ने जवाब दिया गुरुदेव सेवा धर्म में अपने पराये को स्थान नहीं है। गुरु जी बड़े प्रसन्न हुए और कन्हैया जी को हुक्म दिया कि घायल शत्रुओं की मरहम पट्टी भी कर दिया करो। दुनियाँ के इतिहास में बड़े २ योद्धाओं और धार्मिक नेताओं मे ऐसे कितने मिलेंगे, जिन्होंने अपने शत्रुओं के साथ इस प्रकार की उदारता की हो।

त्याग और कुर्बानी की कहानी तो गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज की लासानी कहानी है। दो पुत्रों को अपने हाथ से सजा २ कर रणभूमि मे विदा कर दिया और दो जल्लादों के छुरे से जिबह हो गये। जब माता सुन्दरी ने दमदमे में आकर रोते हुए पूछा नाथ! मेरे लाल कहाँ हैं तो आपने संगति के ओर इशारा करके कहा था।

"इन पुत्रनके शीश पर वारि दिये सुत चार।
चार गये तो क्या हुआ जीवत कई हजार॥"

किसी भी धर्म और समाज को कठिनाइयों से ऊपर उठा ले जाने मे सबसे जरूरी चीज जो होती है, वह अनुशासन है जहाँ अनुशासन नहीं। नियमों की पावन्दी सख्ती के साथ नहीं, वहा धर्म और समाज जीवित अवस्था में भी मरे के समान होते हैं। हमने ऐसे अनेकों धर्मों का इतिहास पढ़ा है जिसमे मुरीदों ने पीरों की आज्ञाओं को आंख मूंद कर माना है और पीर-पादरियों अथवा आचार्यों की आज्ञा से वे आग में जलकर, पहाड़ से कूद कर मर भी गये हैं। यह बात भी उन धर्मों के लिये कम गौरव की बात नहीं है किन्तु संसार के इतिहास मे यह कहीं भी नहीं दीख पड़ता, जिस भाँति चेलों और मुरीदों से नियमों का कठोरता के साथ पालन कराया जाता था वैसा ही पीर और पैगम्बरों ने भी किया। यह बात हमने सिख गुरु गोविन्दसिंह जी मे ही देखी। उन्होंने अपने शिष्यों को आदेश दे रक्खा था कि किसी भी पीर, पैगम्बर और देवता की समाधि व मूर्ति की पूजा मत करो। एक दिन गुरु जी ने केवल परीक्षा के लिये महात्मा दादू जी की समाधि के आगे तीर झुका दिया। सिखों ने फौरन जवाब तलब किया। कहा जाता है कि उन पर इसबात के लिये पथ की ओर से जो दंड लगाया गया वह उन्होंने खिड़े माथ स्वीकार करते हुये कहा कि "आपकी

अनुशासन

आतो मुझे परवान है। मैंने यह जो यत्न किया था केवल आपके पंथ की परीक्षा के लिये ही [illegible]।'

'संसार का इतिहास युद्धों की कहानियों से भरा पड़ा है। जिसमें अधिकांश युद्ध केवल जर, जोरू और जमीन के लिये किये गये हैं और युद्धों के नाम पर देशों के देश तबाह कर डाला गया और उनकी द्रव्य सम्पति लूटी गई तथा स्त्री बच्चों को तबाह कर दिया गया, कहीं कत्लेआम भी किया गया। परन्तु जब हम गुरु गोविन्दसिंह के युद्धों पर नजर डालते हैं तो हमें इनमें से कोई भी बात नजर नहीं आती। उनके तमाम के तमाम युद्ध धर्म और दुखियों की रक्षा और आत्मरक्षा के लिये किये गये हैं। यही नहीं किन्तु आज जिससे उन्हें किसी कारण से लड़ना पड़ा है कल को उसकी रक्षा के लिये अपनी जान तक कुर्बान करने को तैयार हो जाते हैं। जैसा कि हम पहाड़ी राजाओं के विरुद्ध और उनकी सहायता के लिये किये गये युद्धों में देखते हैं। यही नहीं बल्कि जब औरंगजेब के पुत्र बहादुरशाह के हक की रक्षा के लिये आगरा के मैदान में अपने सैनिक भेज देते हैं। जिसकी आज्ञा और कारण से स्वयं गुरु गोविन्दसिंह जी के पिता माता और चारों बच्चे और हजारों अनन्य सिक्ख शहीद हो चुके थे। आपने चौदह लड़ाइयाँ लड़ीं और बहुधा आप विजयी हुए परन्तु इन लड़ाइयों के अन्त पर कहीं ऐसा आभास नहीं कि आपने पहाड़ी राजाओं, मुगलशासकों और सूबेदारों को पराजित करने पर भी अपना राज्य जमाया हो अथवा किसी का घर घाट उजाड़ा हो। या किसी को कैद किया हो या गुलाम बनाया हो।

भारत के सम्राट उसके सूबेदारों की फौजें और पहाड़ी राजाओं की सेनायें और उनके सिपाही लाखों की संख्या में इन पर टूट पड़ते हैं और कई कई महीनों तक रसद आना जाना इनके पास पहुचना बन्द कर देते हैं और आपके अनगणित सिक्ख तथा चारों पुत्र और माता शहीद हो जाते हैं परिवार बिखर जाता है परन्तु आपका मन फिर भी अडोल तथा ईश्वर की इच्छा में प्रसन्न दिखाई देता है और किसी किस्म की उदासीनता आपके किसी कर्तव्य में शामिल नहीं होती। सैनिक दृष्टिकोण से भी यदि हम देखते हैं तो भी आप बहुत ऊँचे दिखाई देते हैं। भंगाणी, निर्मोह, नदौण, आनन्दपुर आदि की लड़ाइयां हम देखते हैं कि इनके विरोधियों की सेना एक प्रकार टिड्डीदल की भाँति असंख्य हुआ करती थी। परन्तु आप अल्प संख्यक सेना के साथ भी उनको परास्त कर मैदान छोड़ने को मजबूर कर देते थे। यद्यपि इतिहास में आपके युद्धसम्बन्धी ढंगों का कोई वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सविस्तार वर्णन नहीं मिलता फिर भी हम यह कह सकते हैं कि उनका युद्ध सम्बन्धी ढंग अपने समय में बड़ा निराला, अनूठा और वैज्ञानिक था। तभी तो आप मुगल सूबेदारों फौजदारों और बाईसधार के राजाओं तथा इर्दगिर्द से इकट्ठे हुये देशवासियों की सम्मिलित सेनाओं को समय समय पर नीचा दिखा सके।

जितनी रुचि उनकी शस्त्र विद्या सीखने सिखाने में थी उतनी ही विद्या पढ़ने और पढ़ाने में भी थी। स्वयम् तो संस्कृत, हिन्दी और फारसी के विद्वान थे ही किन्तु सिक्खों में विद्या का प्रचार करने के उद्देश्य से उन्होंने चार विद्यार्थी काशी में संस्कृत पढ़ने के लिये, कुछ विद्यार्थी ईरान में फारसी पढने के लिये भी भेजे थे। आप स्वयम् नित महाभारत, गीता और पुराणादि तथा फारसी साहित्य की कथायें सुना करते थे। उनमें जो त्रुटियां होती थीं उनका भी अनुभव करते थे।

विद्या प्रेम

किसी भी देश की समुन्नति में कला कौशल का बड़ा हाथ होता है, गुरुजी भी कला कौशल को उन्नत करने के हार्दिक इच्छुक थे। ऐसे लोगों को भी आपने अपने यहाँ रक्खा था जो चित्रकारी करने और सुन्दर वस्तुऐं निर्माण करने में होशियार थे। हुसैन नाम का चित्रकार तो उस समय

कला कौशल — का एक प्रसिद्ध कलाकार (आर्टिस्ट) था जिसने कपडे पर चमकते सूर्य्य की तस्वीर बनाकर अपनी कला का परिचय दिया था।

यद्यपि राष्ट्र के किसी हिस्से पर उन्हें शासन करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ। किन्तु आनन्दपुर और सिख समाज में उनके शासन की व्यवस्था बड़ी ही सुन्दर थी। आमदनी का हिसाब किताब ठीक रखने के लिये उन्होंने एक दीवान रख छोड़ा था। नगर और समाज के अस्वस्थ लोगों को बीमारी में सहायता पहुंचाने के लिये भी प्रबन्ध था। सिखों के आपसी झगडों को मिटाने के लिये यह नियम बना दिया था कि पांच खालसा इकट्ठे होकर निर्णय कर दिया करें।

अपराधियों को दंड देने की भी व्यवस्था थी। वह अपने समाज में कोई भी खराबी नहीं पैदा होने देना चाहते थे। एक बार जब एक मसंद की शिकायत सुनी तो उसे गदहे पर चढ़ाकर नगर में घुमाया। और फिर बाद में मसंद प्रथा को ही तोड़ दिया।

गुरु गोविंदसिंह जी कवि और साहित्यिक भी बहुत ऊँचे दर्जे के थे। उनके दरबार में अनेकों कवि और लेखक रहते थे। वे स्वयम् भी कविता करते थे और खूब करते थे। कहा जाता है कि राजा भोज के राज्य में गड़रिये भी संस्कृत जानते थे। यह बात हम गुरु जी के सम्बन्ध में इस प्रकार कह सकते हैं कि उनके घोडों के तबेले के लोग भी कविता करना जानते थे। उन्होंने अपने संघर्ष के जीवन में भी अनेकों किताब लिखी थीं। इतिहास में लिखा है कि आपने जिस समय आनन्दपुर छोड़ा तो वह साहित्य जिसे आपने स्वयम् या आपके दरबारी कवियों लेखकों ने तैयार किया था और जिसका कि वजन नौ मन के करीब था सरसा नदी में नष्ट होगया। उसमें से जो लूट खसोट और तितर बितर होने से बच रहा अपने साथ लाए। किन्तु वह आपकी निज की रचनायें ये हैं।

काव्य व साहित्य-प्रेम

१—'जापजी' इसमें ईश्वर के गुणात्मक नामों की महिमा वर्णन की गई है। सिख लोग प्रात उठकर इसका पाठ करते हैं।

२—"अकाल स्तुति" इसमें अकाल पुरुष की महानता और उसे ढूंढ़ने वाले की भूलों का वर्णन है।

३—'विचित्र नाटक' इस ग्रन्थ में गुरु जी ने अपना पूर्व जन्म का परिचय देते हुये अपने जीवन की प्रमुख घटनाओं का वर्णन किया है।

४-५—'चन्डी चरित्र' और 'चन्डी की वार' यह वीर रस की कविता में चंडी का कथानक है।

६—'ज्ञान प्रबोध' ईश्वरीय ज्ञान का भंडार है।

७—'अवतार' इसमें हिन्दुओं के २४ अवतारों का विवेचनात्मक वर्णन है।

८—'शब्द हजारे' सहस्रनामों की भांति का ग्रन्थ है।

९—'३३ सवैये'—इसमें वेद, पुराण और कुरान की शिक्षाओं की आलोचना है।

१०—'शस्त्रनाम माला' धनुर्वेद के ढंग की पुस्तक है।

११—'पख्याने त्रिया चरित्र' सहस्र रजनी चरित्र से भी बढ़कर और चित्ताकर्षक ४०५ स्त्रियों के चरित्रों की पुस्तक है।

१२—'जफर नामा' वह पत्र जो औरंगजेब को उसके विश्वासघाती की याद दिलाने के लिये लिखा गया था फारसी नज्म में है।

१३—'हिकायत नामा' यह भी फारसी नज्म मे है।

१४—'सर्व लोह प्रकाश' यह विशाल ग्रन्थ है किन्तु अभी तक छपा नहीं।

एक से १३ तक के ग्रन्थ एक स्थान पर संग्रह करके छाप दिये गये हैं जो गुरुमुखी लिपि मे है। और दशम पातशाही के रचे होने से वे 'दशम ग्रन्थ' के नाम से मशहूर है।

यह सग्रह गुरुज वालस वर्ष बाद भाई मनीसिंह जी आदि के उद्योग से संवत १८०४ वि' मे हुआ था।

अब हम यहाँ उनके प्रत्येक ग्रन्थ के काव्य की कुछ रचनाये देते है—

जापुसाहब

इसे चरपट आदि अनेको छंदों मे गुरु जी ने पूर्ण किया है और प्रत्येक छंद मे काव्य सौष्टव कूट-कूट कर भर दिया है यथाः—

भुजंगप्रयात छंद—

नमस्त अकाले। नमस्त कृपाले॥
नमस्त अरूपे। नमस्तं अनूपे॥

× × × × ×

नमो सर्व सोखं। नमो सर्व पोखं
नमो सर्व करता। नमो सर्व हरता।

चाचरी छंद—

अरूप हैं। अनूप है॥
अजू हैं। अभू हैं॥
अलेख हैं। अभेख है॥
अनाम हैं। अमान है॥

मधुमार छंद—

गुन गन उदार। महिमा अपार॥
आसन अभग। उपमा अनग॥
अनभउ प्रकाश। निस दिन अनास॥
आजानु बाहु। साहन साहु।

छप्पय छंद—

चक्र चिह्न अरु बरन जाति अरु पात नहिन जिह।
रूप रग अरु रेख भेख कोऊ कहि न सकति किह॥
अचल मूरति अनभउ प्रकाश अमितोज कहिज्जे।
कोटि इन्द्र इन्द्राणि साहि साहाणि गणिज्जै॥
त्रिभवण महीप सुर नर असुर नेत नेत बन त्रिण कहत।
त्व सर्व नाम कथै कवन करम नाम बरणत सुमत॥

अकाल स्तुति

इस ग्रन्थ मे भी चौपाई सवैये और कवित्त आदि अनेकों छन्द हैं। जो सबके सब मन मोहने और अन्तरात्मा को झंकृत करने वाले हैं। भक्तिरस इनमे से प्रस्फुटित होता है।

चौपई छन्द—

सभ को काल सभन को करता।
रोग सोग दोखन को हरता॥

एक चित्त जिह इक छिन ध्यायो ।
काल फास के बीच न आयो ॥

कवित्त— कहूँ जच्छ गन्धर्व उरग कहूँ विद्याधर
कहूँ भये किन्नर पिशाच कहूँ प्रेत हो ।
कहूँ ह्वइकं हिन्दुआ गायत्री को गुप्त जप्यो
कहूँ ह्वइकं तुरका पुकारे बाग देते हो ॥
कहूँ कोक काव के पुरान को पढत मत,
कतहूँ कुरान को निदान जान लेत हो ।
कहूँ वेद रीत कहूँ तासिउ विपरीत,
कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सुर गन समेत हो ।

तोमर छंद— हरि जन्म मरण विहीन । दस चार चार प्रवीन ॥
अकलंक रूप अपार । अन छिज्ज तेज उदार ॥

नाराच छन्द— जिमी जमान के विर्खे समस्त एक जोत है ।
न घाट है न बाढ है न घाट बाढ होत है ॥
न हान है न बान है समान रूप जानिऐ ।
मकीन औ मकान अप्रमान तेज मानिऐं ॥

चंडी चरित्र

मारकण्डेय पुराण की दुर्गा सप्तशती में शंभु निशंभु के साथ जिस युद्ध का वर्णन आया है गुरु गोविन्दसिंह जी ने चंडी चरित्र में उसी का भावानुवाद किया है । इस काव्य ग्रन्थ की प्रत्येक पंक्ति में भुजदंडों को फड़काने वाला वीर रस भरा हुआ है यथा —

कवित्त— दौर सभै इक वार ही दैत्य,
आये है चण्डिके सामुहे कारे ।
लै कर बान कमानन तान
घने अरि कोप सों सिह प्रहारे ।
चंडि सम्भार तबै कर वार,
पचार के शत्रु समूह निवारे ।
खाडव जारन को अगनि तिहि,
पारथ ने मनु मेघ बिडारे ॥
वीर बली सरदार दईत सु,
क्रोध के म्यान ते खग्ग निकार्यो ।
एक दयो तन चंडि प्रचंड कै,
दूसर केहर के सिर झार्यो ॥
चंडि सम्भार तबै बलधार,
लयो गहि नारि धरा पर मार्यो ।

ज्यो युविश्रा सरिता तट जाइकै,
ले पट को पट साथ पछार्‍यो।

× × × ×

दौर दई अरिके मुख में
कट ओठ दये जिम लोह की छैनी।
दांत गंगा, जमुना तन श्याम,
सु लोहू वह्यो तिंह माहि त्रिवेनी।
बाजत डंक परी धुनि कान,
सु सक्र पुरन्धर मूंदत पौरे।
सूर में नाहि रह्यो द्युति देखके,
युद्ध को दैत्य भये इक ठौरे।
कांप समुद्र उठे सिगरे
वहु वार भई धरनी गति औरे।
मेरू हल्यौ दहल्यो सुर लोक,
जबै दल सुम्भ निसुम्भ के दौरे॥
भूमि को भार उतारन को,
जगदीश विचार कै युद्ध ठटा।
गर्जे मद मत करी बदरा,
बग पन्ति लसै जनु दन्ति गटा॥
पहिरे तनत्रान फिरै तंहि वीर,
लिये कर बिज्जु छटा।
दल दैत्यन को अरि देवन पै,
उमड्यो मनु घोर घुमंड घटा॥
बान लगे लख सुम्भ दईत,
धसे रन ले करवारन को।
रण-भूमि में शत्रु गिराय दये,
वहु श्रोण वह्यो असुरानन को॥
प्रगटे गन जम्बुक गिद्ध पिशाच
सु यों रन भाति पुकारन को।
सु मनो भट सार सुती तट नात है,
पूरब पाप उतारन को॥
बार सिवार भये तंहि ठौर।
सु फेन ज्यों छत्र फिरे तरता।
कर अंगुल का सफरी तलफै।
भुज काट भुयंग करे करता।

इय नक ध्वजा द्रुम श्रोणत नीर में।
चक्र ज्यों चक्र फिरं गरता।
तब सुम्भ निसुम्भ दोऊ मिलि दानव,
मार फरी रण में सरता।

चंडी की वार

चंडी चरित्र की भांति ही चण्डी की वार है और यह सारी की सारी एक ही प्रकार के छंद में है यह छंद सिरखंडी छंद है और इसकी भाषा पंजाबी है। नमूना इस प्रकार है:—

"चोट पई दमामे दला मुकाबला।
देवी दसत नचाई सीहणि सार दी।
पेट मलंदे लाई महखे देत नूं।
गुर्दे आंदा खाई नाले रुकड़े।
जेही दिल विच आई कही सुणाय के,
चोटी जाण दिखाई तारे धूमकेत।

अर्थात्—लड़ाई के धौंसे बजे, दोनों दलों का मुकाबला हुआ, दुर्गे ने लोह-सिंहनी अर्थात तलवार हाथों में सम्भाली और महिषासुर दैत्य के पेट पर जमा दी, जिससे उसकी आते इस प्रकार निकल पड़ीं जिस प्रकार कि आकाश से धूम्रकेतु तारा टूटता है।

'दुहां कधारा मुंहि जुटे अणि धारां चोईआं।
चूह किरपाण तिखियां नाल लोहू धोईआ॥
हूरा सरणवत बीज नू घत घेर खलोइआ।
लाड़ा वेखण लाढ़ियां चो गिरदे होईआ॥

अर्थात्—दोनों दलों की भिड़न्त हुई तीरों की तीक्षण नोकों और म्यान से निकाली हुई तलवारों की धारों से योद्धाओं के शरीरों से रक्त बहने लगा, जिसे देख कर अपसरायें,उन्हें ऐसे घेर कर खड़ी हो गईं जिस प्रकार दूल्हे को नवयुवतियाँ घेर लेती हैं।

× × × × × ×

लै के बरछी दुर्गसाह बहु दानें मारे।
चढ़े रथ गज घोड़ई मार भुई ते डारे।
जाण हलवाई सीख नाल विन्ह वड़े उतारे॥

अर्थात्—दुर्गा ने बर्छी से अनेकों दैत्यों को जो हाथी घोड़े आदि पर सवार थे। छेद कर इस प्रकार भूमि पर पटक दिये। जिस प्रकार चतुर हलवाई लौह कील से कढ़ाही में से बड़े उतारता है।

ज्ञान प्रबोध

इसमें संस्कृत पुस्तकों के आधार पर कुछ मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक सामिग्री है। उसकी बानगी इस प्रकार है—

छत्र धारी छत्रीपति छैल रूप छित नाथ
छोणी कर छायावर छत्रीपति गाइये।

विसुनाथ विश्वम्भर वेदनाथ बाला कर,
बाजीगर बान धारी बधन बताइये।
न्योली कर्म दूधाधारी विद्याधर ब्रह्मचारी,
ध्यान को लगावें नेक ध्यान हू न पाइये।
राजन के राजा महाराजन के महाराजा,
ऐसो राज छोड़ और दूजो ,कौन ध्याइये ।।
युद्ध के जितैया रण भूमि के भवइया।
भार भूमि के मिटइया नाथ तीन लोक गाइए।
काहू के तनैय्या हूं न मैया जाके भैया कोऊ,
छोनीहू के छैय्या छोड़ कासो प्रीत लाइए।
साधना सिधइया धूमधानी के धुजइया,
धोम धार के धरैय्या ध्यान ताको सदा लाइए।
आउ के बढइया, एक नाम के जपइया।
और काम के करइया छोड़ और कौन ध्या ए ।।

चौबीस अवतार

गुरु जी महाराज ने अपनी मधुर कविता में चौबीस अवतारों का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है किन्तु इसके माने केवल चरित्र चित्रण मे है नकि यह कि गुरु जी अवतारवाद को मानने वाले थे।

रामावतार की कथा में से यहां हम लंका युद्ध की कुछ पंक्तियां देते हैं—जोकि, विजया छंद में हैं।

जुट्टे वीर। छुट्टे तीर ।। ढुक्की ढाल। कोहे कालं ।।
ढके ढोल। बके बोल ।। कच्छे शस्त्र। अच्छे अस्त्र ।।
क्रोधं गलित। बोध दलित ।। गज्जे वीरं। तज्जे तीरं ।।
रत्ते नैण। मत्ते वैण ।। लुज्झे सूर। सुज्झे हूरं ।।
लग्गें तीर। भग्गें वीर ।। रोस रुज्झे। अस्त्रं जुज्झे ।।
झुम्में सूर। घुम्मे हूर ।। चक्के चार। वक्कें मार ।।

लंका प्रवेश

अलका छन्द—

चटपट सैण खटपट भाजे, झटपट जुम्यो लख रण राजे।
सटपट भाजे अटपट सूर, झटपट विसरी घट पट हूरं ।।
चटपट पैठे खट पट लक, रण तज सूर सर धर बकं।
झलहल वार नरवर वैण, धकधक उचरे भकभक वेण ।।
नरवर राम वरनर मारो, झटपट बाहु कट कट डारो।
तब सभ भाजे रख रख प्राण, खटपट मारे झटपट बाण ।।
चटपट रानी सटपट धाई, रटपट रोवत अटपट आई।
चटपट लागी अटपट पाय, नरवर निरखे रघुवर राय ।।
चटपट लोटें अटपट धरनी, कसि कसि रोवें बरना बरणी।

पटपट डारें झटपट केस, बटहर सूकं बटहर वेम ॥
खटपट चोर झटपट पारें, धर कर धूर सरवर डारें।
सटपट लोटें रटपट भूम। झटपट झूरें घर हर घूम ॥"

'अवतार चरित्र' मे गुरु जी ने कृष्णावतार की रास लीला, युद्धों आदि का भागवत के दसम स्कंध के आधार पर वर्णन किया है उन्होंने कृष्ण की वासुरी के सम्बन्ध में वडी श्लेषपूर्ण कविता की है यथा.—

"बाजत बसत अरु भैरव हिंडोल राग,
बाजत है ललिता के साथ ह्वै धनासरी।
मालया कल्यान अरु मालकौस मारु राग,
बन में बजावैं कान्ह मंगल निवासरी ॥
सुरी अरु आसुरी अउ पन्नगी जे हुती तहाँ,
धुनि के सुनत पै न रही सुधिजासरी।
कहै इयों दासरी सु ऐसी बाजो बांसुरी,
सु मेरे जाने यामें सब राग को निवासरी ॥
करुणा निधान वेद कहत बखान याकी,
बीच तीन लोक फैल रही है सुवासरी।
देवन की कन्या ताकी सुनि धुनि स्रोनन में,
धाई धाई आवैं तजि के सुरगवासरी ॥
है करि प्रसन्न रुप राग को निहार कह्यो,
रच्यो है विधाता यामें रागन को वासरी।
रीझे सभगन उडगन भे मगन,
जब बन उपवन में बजाई कान्ह बासुरी ॥"

× × × ×

चन्द्रावलि के प्रति अधिक स्नेह को देख कर राधा जी कृष्ण से नाराज हो गई थीं और जब वे राधा के पास पहुँचे तो:—

"रासहि क्यों तज चन्द्र भगा, चलकं हमरे यह क्यों कह्यो आयो।
क्यो यह ग्वारिन की सिख मानिके, आपन हि उठि कै सजि धायो ॥
जानति थी कि वडो ठग है, इह बातन ते अब ही लखि पायो।
क्यो हमरे पाहि आयो कह्यो, हम तो तुमको नहि बोल पठायो ॥"

इसका उत्तर:—

"यों सुनि उत्तर देत भयो, नहिरी तुहि ग्वारिन बोलि पठायो।
नैनन के करि भाव घने, सरसो हमरो मनुआ मृग धायो ॥
ता विरहागनि सो सुनिए बलि, अग जर्‌यो सु गयो न बचायो।
तेरो बुलायो न आयो हौंरी, तिह ठौर कहु सेकन आयो ॥"

जब राधे मन गई तब.—

"दोऊ जो हँसि बातन मग टरे, तु हुलास विलास चढ़े मगरे।
हँसि कंठ लगाइ लई ललना, गहि गाढ़े अगन ते अंक भरे॥
तरकी हूँ तनी दरकी अंगिया, गर मालते टूटि के लाल परे।
पिय के मिलिए त्रिय के हिय के, अगरा बिरहागिन के निकरे॥"

दत्तात्रेयावतार के विषय में.—

"देश विदेश नरेसन जीत, अनेक बड़े अवनेस संहारे।
आठोई सिद्ध सबै नव निद्ध, समृद्धन सरब भरे ठह सारे॥
चन्द्रमुखी वनिता बहुतं घरि, माल भरे नहि जात सभारे।
नाम विहीन अधीन गये जम, अंत को नागेहि पाइ सिधारे॥
रावन के महि रावन के, मनु के मन के चलते न चली गउ।
भोज दिलीपत कौरवि कं, नहीं साथ दियो रघुनाथ बली कउं॥
सग चली अबलों नहि काहू कं, साचक हों अघ अउघ दली सउं।
चेतरे चेत अचेत महा पसु काउके सग चली न टली हूउं॥"

विचित्र नाटक

इस ग्रन्थ को हम गुरु जी का आत्म-चरित कह सकते हैं। इसमें उन्होंने अपने पूर्व जन्म से लेकर इस जन्म तक की मुख्य २ घटनाओं का काव्य-मय वर्णन किया है। उदाहरणार्थ —

"अब मैं अपनी कथा बखानों, तप साध तजिह विधि मुहि आनों।
हेम कूट परवत है जहां, सपत शृङ्ग सोभत है तहां॥१॥
सपत शृङ्ग तह नाम कहावा, पंडराज जिह जोग कमावा।
ताहि हम अधिक तपसि आ साधी। महां कालु कालका आराधी॥२॥
इह विधि करत तपसिआ भओ। द्वैते एक रूप होय गयो॥
तात मात सुर अलख अराधा। बहु विधि जोग साधना साधा॥३॥
नित जो करी अलख की सेवा। ताते भये प्रसन्न गुरुदेवा॥
तिन प्रभु जब आइस मुहि दीआ। तब हम जनम कलू महि लीआ॥४॥
चितन भयो हमरो आवन कहि। चुभी रही स्रति प्रभ चरनन महि॥
जिउ तिउ प्रभु हम कउ समझायो। इम कहिके इहलोक पठायो॥५॥

अकाल पुरुषवाच

"जब पहिले हम स्रिसट बनाई। दैत सुरचे दुसट दुख दाई॥
ते भुजबल बवरे ह्वै गये। पूज तप रम पुरख कहि गये॥६॥
तेह मत मकि तनक मो खापे। तिनकी ठवर देवता थापे॥
तेभी बल पूजा उरझाये। आपन ही परमेसर कहाये॥७॥
महादेव अच्चुत कहवायो। बिसन आप ही कउ ठहिरायो॥
ब्रह्म आप पारब्रह्म बखाना। प्रभ को प्रभू न किनहूँ जाना॥८॥"

तब साखी प्रभ असट बनाए। साख नमित देवेद ठहराए।
ते कहि करो हमारी पूजा। हम बिन ठाकुर अवर न दूजा ॥६॥
परम तत को जिन न पछाना। तिन ईसर तिनही कउ माना ॥
केते सूर चन्द कउ मानै। अगनहोत्र कई पवन प्रमानै ॥१०॥
किनहूँ प्रभ पाहन पहिचाना। नात किते जल करत विधाना ॥
केतक करम करत तरिपाना। धरम को धरम पछाना ॥११॥
जे प्रभ साख नमित ठहराये। तेहो आइ प्रभू कहिवाये ॥
ताकी बाति बिसरि जाती भी। अपुनी अपुनी परत सोभ भी ॥१२॥
जब प्रभ को न तिनै पहिचाना। तब हरि इन मनु छठ हिराना ॥
ते भी सभ ममता हुइ गए। परमेसर पाहन ठहराए ॥१३॥
तब हरि सिध साधनह राए। तिन भी परम पुरख नहिं पाए ॥
जे कोई होत भयो जग सिग्राना। तिन तिन अपनो पथ चलाना ॥१४॥
परम पुरख किनहू नहिं पायो। बैर वाद्ध अहंकार बढायो ॥
पेट पाद आपन तेज लै। प्रभ कै पथ न कोऊ चलै ॥१५॥
जिन जिन तनक सिधि को पायो, तिन तिन अपनो राह चलायो ॥
परमेसर नहिं किनहू पछाना, मम उचार ते भये दिवाना ॥१६॥
परम तत किनहू न पछाना। आप आप भीतर उरझाना ॥
तब जे जे रिखराज बनाये। तिन पुन आपन सिम्रित चलाये ॥१७॥
जे सिम्रित के भये अनुरागी। तिन तिन क्रिया ब्रह्म की त्यागी ॥
जिन मन हरि चरनन ठहिरायो। सो सिम्रित के राहन आयो ॥१८॥
ब्रह्मे चार ही वेद बनाये। सरब लोक तिह करम चलाये ॥
जिनकी लिव हरि चरनन लागी। ते वेदन ते भये त्यागी ॥१९॥
जिन मत वेद कतेब न त्यागी। पार ब्रह्म के भये अनुरागी ॥
जिनके गूढ मत जे चल ही। भाति अनेक दूखन सो दल ही ॥२०॥

× × × ×

इह कारण प्रभ मोहि पठायो। तब मैं जगत जनम धरि आयो ॥
जिम तिन कही इनै तिम कहिहौं, और किसू ते बैर न गहिहो ॥३१॥
मैं हो परम पुरख को दासा। देखन आयो जगत तमासा ॥
जो प्रभ जगत कहा सो कहिहौं म्रित लोक ते मौन गहिहो ॥३२॥

हजारे के शब्द

हजारे के शब्दों की रचना गुरु जी ने कई रागों मे की है। मसलन रामकली, राग सोरठ, राग कल्याण, राग तिलंग, राग काफी और राग बिलावल आदि। यहाँ हम उनके हजारे के शब्दों मे से राग सोरठ का नमूना पेश करते हैं—

"प्रभु जू तो कह लाज हमारी।
नील कंठ नरहरि नारायण नील बसन बनवारी ॥ रहाउ

परम पुरख परमेश्वर स्वामी पावन पउन अहारी ॥
माधव महा जोति मधु मरदन मान मुकन्द मुरारी ॥१॥
निर्विकार निरजुर निन्द्रा बिन निर्विख नरक निवारी ॥
कृपासिंधु काल त्रै दरसी कुकृत प्रनासन कारी ॥२॥
धनुर पान धृत मान धराधर अनिविकार असिधारी ॥
हौं मति मन्द चरन शरनागति कर गहि लेहु उवारी ॥३॥

३३ सवैये

उनके ३३ सवैयों मे से भी एक दो सवैया यहा इतिहास के रसिकों के लिये देना उचित समझते है-

"जागति जोति जपै निसबासर, एक बिना मन नैक न आनै ।
पूरन प्रेम प्रतीत सजै व्रत, गोर मढी मट भूल न मानै ।
तीरथ दान दया तप संजम, एक बिना नहि एक पछानै ॥
पूरन जोति जगै घट में तब खालस ताहि निखालस जानै ॥

× × × ×

आदि अभेख अछेद सदा प्रभु, वेद कतेबनि भेद न पायो ।
दीनदयालु कृपाल कृपानिधि, सत्त सदैव सबै घट छायो ।
सेस सुरेस गणेस महेसुर, गाहि फिरैं श्रुति थाह न पायो ॥
रे मन मूढ़ अगूढ इसो प्रभु, तै किहि काज कहो बिसरायो ।

× × × ×

काहू लै टीक धरे उर ठाकुर, काहू महेस को एस बखान्यो ।
काहू कह्यो हरि मन्दिर में, हरि काहू मसीत के बीच प्रमान्यो ।
काहू ने राम कह्यो कृष्णा काहु, काहू मनै अवतारन मान्यौ ।
फोकट धर्म बिसार सभै, करतार ही कउ करता जिय जान्यो ।

यह हम पिछले पृष्ठों में लिख चुके हैं कि गुरु गोविन्दसिंह जी दशम बादशाह के दरबार में अनेकों विद्वान रहते थे उनमें ५२ तो कवि ही थे । यह कवि सब ही रसों में और प्रत्येक विषय पर कविता किया करते थे इन सब कविताओं का संग्रह गुरु जी ने करा दिया था । उस ग्रन्थ का नाम "विद्याधर" रक्खा था । वह कितना बड़ा होगा, उसका अन्दाज इसी से लगाया जासकता है कि पुराने जमाने के कागज पर उसमें ६ मन बोझ था । आनन्दपुर युद्ध मे अन्य सामान के साथ यह भी लूट और सरसा नदी के डूबने से जो बचा कहा जाता है उसके ६२ पृष्ट कवि संतोषसिंह के हाथ लग गये थे उनमें से कुछ नमूने इस प्रकार हैं—

दरबारी कवि

"पूरन परख अवतार आन लीन आप,
जाके दरबार मन चित्तवै सो पाइयै ।
घटि घटि वासी अविनासी नाम जाको जग,
करता करनहार सोई दिखराइयै ॥
नौमे गुरु नन्द जग बन्द तेग त्याग पूरो,
'मंगल' सु कवि कहि मगल सुधाइयै ॥

आनन्द को दाता गुरु साहिब गोविन्दराइ,
चाहे जो आनन्द तो आनन्दपुर आइयें।

यह छन्द कवि मंगल जी का है वे जैसी कविता ब्रजभाषा में करते थे वैसी ही पंजाबी में भी ८ लेते थे। उन्होंने महाभारत के शल्य पर्व का भाषानुवाद भी किया था। जो संवत १७५३ वैसाख तेरसी मंगलवार को समाप्त हुआ।

कवि आलमशाह जी ने जो कि एक मुसलमान कवि थे। किन्तु कविता प्राय हिन्दी जबान में ही ते थे गुरु जी के सम्बन्ध में अपनी काव्य धारा को इस प्रकार बहाया है—

"शोभा हूं के सागर नवल नेह नागर हैं,
बल भीम सम सील कहालों गिनाइयें।
भूमि के बिभूखन जू दूखन के दूखन,
समूह सुख हूं के सुख देखे ते अघाइयें॥
हिम्मत निधान आन दान को बखाने ?
जाने 'आलम' तमाम जाम आठों गुन गाइयें।
प्रबल प्रतापी पातशाह गुरु गोविन्दसिंह जी,
भोज की सी मौज तेरे रोज रोज आइयें।

कवि हंसराम ने महाभारत के कर्ण पर्व को संस्कृत से भाषा में किया था। अनुवाद इतना सुन्दर ा। कि गुरुजी ने प्रसन्न होकर इस काम के उपहार में उसे साठ हजार टके इनाम में दिये थे। गुरुजी की शंसा में उसने लिखा था।

"चारों चक्क सेवे गुरु गोविन्द तिहारे पाह,
मेरे जाने आज तुही दूजो करतार है॥
प्रबल प्रचंड खंड खंड महि मंडल में।
साचो पातसाहु जाको साचो सिर भार है।
कामना के दान बान जाको हंसराम कहै,
परम धरम देखें विवध विचार है।
परम उदार पर पीर को हरनहार,
कौन जानें कौन भांति लीनों तवतार है।

कविवर सेनापति जी भी गुरु गोविन्दसिंह जी के दरबारी कवि थे। उन्होंने चाणक्य नीति का अनुवाद किया था। गुरु जी ने उसे इतना पसन्द किया कि प्रत्येक छंद पर पांच-पांच अशर्फी सेनापति जी को नाम में दीं। 'गुरु शोभा' नामक पुस्तक में सेनापति ने गुरुजी के सम्बन्ध में लिखा था—

काहू के मात पिता सुत है अरु
काहू के भ्रात महा बलकारी।
काहू के मीत सखा हित साजन,
काहू के गेह विराजत नारी॥
काहू के धाम माहि निधि राजत
आपस मों करि है हित भारी।

होहु दयाल दया करि कै प्रभु,
गोविन्द जी मोहि देहु तिहारी।

कवि 'हीर' ने गुरुजी के दरबार में स्थान पाने और कुछ तत्काल धन प्राप्त करने के लिये निम्न छंद कहा था'—

पास ठाढ़ी भगवत भुकति बरैं मोहि,
बातन करन पाऊं महा बसौं चोरसों।
ऐसो और विकट निकट बसें निसदिन,
निपट निडर मच रहै फेरि मोर सों।
दारिद कपूत तेरो मन्द बल्यो है आज।
करत सलाम सिर झुके कवि 'हीर' सों।
नातर गोविन्दसिंह चिथरा करैगो तोहि,
टूक टूक ह्वै है मारे दानन के तीर सों॥

कहा जाता है गुरुजी ने हीर के इस छंद को सुनकर उसके दरिद्र को दूर कर दिया और दरबार में भरती कर लिया।

एक और प्रसिद्ध कवि सुन्दर जी भी उनके दरबारी थे। उन्होंने गुरुजी के सम्बन्ध में इस प्रकार अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है।

"बदन महिं श्याम सुनो, सिन्धु मरजादा
मेरु मण्डल मही में गुरुआई गन गाये हो।
सरम के सागर सपूतन के सिरमौर,
'सुन्दर' सुधाधर से सुन्दर गनाये हो।
रतन में दान दानि दानी हरिचन्द सो सो।
विदत विनय बड़े बल सलि आये हो।
तेज को तरनि तरवार को परसराम,
गुरन महिं ऐसे गुरु गोविन्द कहाए हो।

इसी कवि की दूसरी चासनी:—

"चढ़त ही बाजी, चढ़यो गाढ़े गढ़ चाहिवे को,
दाहिने को द्रुग रीझै बर ज्यों भवानी को,
आवत ही दाढी, छाती दाढी छितपालन की,
रज्ज को करैया उन्हीं की रजधानी को।
महाबाहु गुरुजी गोविन्दसिंह पारथ ज्यों।
मारन को जीत लेत वसुधा विरानी को।
पागहू को बांधिवो कछुक दिन पाछै सीख्यो,
पहिले ही सुसीख्यो सिंह बांधवो कृपानी को॥

वे अपने कवियों का उत्साह बढ़ाने के लिये खूब ही दान देते थे, इसी से तो खुश होकर एक कवि ने कहा था'—

"जोलो धरन अकाश गिर, चन्द सूर सुर इन्द।
तौलों चिर जीवें जगत, साहिब गुरु गोविन्द॥

गुरुजी के दरबारी कवियों के नाम एक सिख लेखक ने इस प्रकार गिनाये हैं:—

१ अणीराय २ अमृतराय ३ अचलदास ४ अलीहुसेन ५ अल्लू ६ आलमशाह ७ आसासिंह ८ ईश्वरदास ९ उदयराय १० कलुआ ११ कुवरेश १२ खान चंद १३ गुणिया १४ गुरुदास १५ गोपाल १६ चन्द १७ चन्दन १८ जमाल १९ टहकन २० दयासिंह २१ धर्मचन्द २२ धर्मसिंह २३ धन्नासिंह २४ ध्यानसिंह २५ नन्दलाल २६ नन्दसिंह २७ नानू २८ निश्चलदास २९ निहालचंद ३० पिंडीमल ३१ वल्लभदास ३२ बल्लू ३३ बिरीचंद ३४ बुधा ३५ ब्रजलाल ३६ बुलंद ३७ मथुरादास ३८ मदनगिरि ३९ मदनसिंह ४० हीर ४१ हंसराज ४२ मानचंद ४३ मानदास ४४ मालासिंह ४५ मङ्गल ४६ रामचंद ४७ रावल ४८ रोशनसिंह ४९ लक्खासिंह ५० सुक्खासिंह ५१ सुन्दर और ५२ सेनापति।

एक प्रश्न होता है कि आखिर इतनी कुर्बानी और जाति की सेवा करने वाले गुरु गोविन्दसिंह जी को हिन्दुओं ने उतना ही ऊंचा स्थान क्यों नहीं दिया जितना कि सिख देते है। हम जहां तक इस सम्बन्ध मे जानते हैं। इसमे आम हिन्दुओं का कोई दोष नहीं, दोष है हिन्दुओं के पुरोहित समाज का और सिख विद्वानों का।

हिन्दुओं की बागडोर पिछली कई सदियों मे ब्राह्मण पुरोहितो के हाथो मे थी और इस वर्ग ने खुद अज्ञानान्धकार में लिप्त रहने के कारण अपने स्वार्थ साधन के निमित समस्त हिन्दू जाति को वाहियात रस्म रिवाज और धर्म ढकोसलो मे फँसा रक्खा था। गुरु गोविन्दसिंह जी ने राष्ट्र के हित की दृष्टि से और सत्य स्थापना की भावना से ब्राह्मणों के इन ढकोसलों का बहिष्कार कर दिया। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि ईश्वर न तो मूर्तियों मे है और न उसे तर्पण श्राद्ध करके पाया जा सकता है। अपने कर्मों को सुधारो। इस जाल से बचो। गुरु जी के इन उपदेशों से पुरोहित वर्ग को धक्का लगा। अतः उन्होंने गुरु जी और उनके संजीवन सिद्धान्तो का सदैव विरोध किया। जिससे आम हिन्दुओं मे गुरु गोविन्दसिंह जी के तप त्याग और बलिदानो की स्मृति बराबर धुंधली होती गई।

सिख विद्वानों का खोट इस ओर हम इसलिए मानते है कि उन्होने कभी भी उस भाषा मे जो हिन्दुओं की आम भाषा है और देवनागरी के नाम से मशहूर है। गुरु लोगो के पवित्र जीवनों और सिद्धान्तो को हिन्दू जनता के सामने पेश ही नहीं किया। जितना भी इस समय हिन्दू सिख-धर्म और गुरुओं के सम्बन्ध मे जानते है। वह उनके निज के प्रयत्नो का फल है। उन्होंने गुरुमुखी और अंग्रेजी ग्रन्थों की सहायता से अपनी मातृभाषा मे गुरुओं के जीवन उद्धृत किये हैं और ज्यों-ज्यों हिन्दी मे सिख धर्म और गुरुओं के जीवन की खूबियां छपती जाती है। हिन्दुओं में उनके प्रति प्रेम और श्रद्धा बढ़ती जा रही है।

अभी थोडे दिनो पहले (सन् १९२९ मे) महात्मा गाधी जी ने लिखा था :—

"जेल मे अवकाश मिलने पर मैंने अंग्रेजी मे अनुवादित गुरु ग्रन्थ साहब और गुरुओं के इतिहास का भली प्रकार अध्ययन किया। गुरुओं के देश और धर्म के हित किये गये बलिदानों को पढ़कर मैं मंत्र मुग्ध सा हो गया। अपने वर्तमान राजनैतिक आन्दोलन का कार्यक्रम मैंने अधिकतर गुरुओं के उस त्यागमय जीवन से सीखा है। और मेरा दृढ़ विश्वास है कि तलवार उठाने के बिना उस समय देश और धर्म की रक्षा हो ही नहीं सकती थी। (यंग इंडिया २८ दि० १९२९)

इससे बहुत पहिले आर्य समाज के प्रवर्तक ऋषि दयानंद ने भी अपने एक लेक्चर में कहा था—"आर्य समाज के प्रचार में जितनी सफलता मुझे पंजाब में हुई है उतनी अन्य किसी प्रांत में नहीं हुई। इसका कारण यह है कि इस देश में पहले से ही सिख गुरुओं की कृपा से अनेकों भ्रम जनता में से उठ चुके हैं।

एक अंग्रेज इतिहासकार जनरल कनिंघम ने अपने सिख इतिहास में उनकी महानता के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए यह शब्द कहे थे- "उन्होंने हिन्दू जाति में पुनर्जीवन का संचार करके उसे अभेद्य रक्षा का कवच पहनाया और उसके कुसंस्कार को दूर करके उसे परमार्जित करने में भी कोई कमी नहीं छोड़ी। वास्तव में वे उन महापुरुषों में से थे। जिन्हें पाकर किसी भी देश की जातियाँ गहरे गर्त से निकल कर समुन्नत हो जाती हैं।"

चूंकि गुरु जी का वंश सूर्यवंश से मिलता है और इस बात को गुरु जी ने विचित्र नाटक में लिखा भी है। इसलिये हम उस वंश का कुर्सीनामा जितना कि हमें प्राप्त हो सका है। यहां देना उचित समझते हैं।

१ मनु	२ इक्ष्वाकु	३ विकुक्षि
४ पुरंजय	५ अनयना	६ पृथु
७ विश्वगव	८ चन्द्र	९. युवनाश्व
१०. श्रावस्त	११. बृहदश्व	१२. कुवलयाश्व
१३ दृढाश्व	१४. हर्यश्व	१५. निकुम्भ
१६. संहिताश्व	१७. कृशाश्व	१८. प्रसेनजित
१९ युवनाश्व	२०. मान्धाता	२१. पुरुकुत्स
२२ त्रसदस्यु	२३ सभूति	२४. अनरण्य
२५ हर्यश्व	२६. वसुमना	२७. त्रिधन्वा
२८ त्रियारुण	२९. सत्यव्रत	३०. हरिश्चन्द्र
३१. रोहित	३२. हरिताश्व	३३. हरित
३४ चम्बु	३५. विजय	३६. रुरुक
३७ वृक	३८. वाहुक	३९. सगर
४०. असमंजस	४१ अंशुमान	४२. दिलीप
४३. भागीरथ	४४ सुश्रुत	४५. नाभाग
४६ अम्वरीष	४७ सिंधुद्वीप	४८. अयुताश्व
४९. ऋतुपर्ण	५० सर्वकाम	५१. सुदास
५२ मित्रसह	५३. अश्मक	५४. मूलक
५५. दशरथ (१)	५६. इल्विल	५७. विश्वसह
५८ खटवांग	५९. दीर्घवाहु	६० रघु
६१ अज	६२. दशरथ	६३. राम
६४ लव कुश	६५. अतिथि	६६. निषध
६७ नल	६८. नभ	६९. पुण्डरीक

७० क्षेमधन्वा	७१. देवानीक	७२. अहिनर
७३. रूरू	७४. पारियात्र	७५. दल
७६ शिन्छल	७७ उक्थ	
७८. वज्रनाभ	७९. शंखनाभ	८०. व्यत्थताश्व
८१. विश्वसह	८२. हिरण्यनाभ	८३. पुष्य
८४. ध्रुवसंधि	८५. सुदर्शन	८६. अग्निवर्मा
८७. शीघ्र	८८. मरु	८९. प्रसुश्रत
९०. सुगधि	९१. अमर्ष	९२. महस्वान
९३. विहतयान	९४. वहद्वल	९५. वृहत्त्तण
९६. गुरुक्षेप	९७. वत्स	९८. वत्सव्यूह
९९. प्रतिव्योम	१००. दिवाकर	१०१. सहदेव
१०२. वृहदश्व	१०३. भानुरथ	१०४. सुप्रतीक
१०५. मरुदेव	१०६. सुनक्षत्र	१०७. किन्नर
१०८. अंतरिक्ष	१०९. सुवर्ण	११०. अभिवर्जित
१११. वृहद्राज	११२. धर्मी	११३. कृतंजय
११४. रणंजय	११५. संजय	११६. शाक्य
११७. शुद्धोदन	११८. गौतम	११९. राहुल
१२०. प्रसेनजित	१२१. क्षुद्रक	१२२. कुण्डक
१२३. सुरथ	१२४. सुमित्र	

नोट—पुराणों में सुमित्र से आगे कुछ पता नहीं चलता किन्तु उदयपुर में एक प्रशस्ति में कुछ पीढ़ियों का और पता चल जाता है। वैसे राजपूताने के भाटों की बनाई हुई और भी वंशावलियाँ हैं किन्तु उन्हें हम प्रामाणिक नहीं मानते।

विचित्र नाटक में गुरु जी ने लव को लाहौर का राजा और कुश को कुशावती का राजा बताया है। इनका समर्थन पुराण भी करते हैं। गुरु गोविन्दसिंह जी ने जिस प्रकार अपने वंश का वर्णन किया है वह हम पिछले अध्याय२ में दे चुके हैं। न तो लवकुश से आगे क्रमबद्ध रूप से कालकेतु और कालराय जी की पीढ़ियों तक का पता चलता है और न सोढ़ीराय से आगे गुरु रामदासजीके पिता तक की पीढ़ियों का, गुरु रामदास जी से गुरु गोविन्दसिंह जी के साहबजादों तक का वर्णन इस ग्रंथ में है ही।

तेरहवाँ अध्याय

बलिदान-कथा

यह ठीक है कि संसार के अन्य बड़े २ धर्मों की अपेक्षा सिख धर्म को स्थापित हुये अभी लगभग साढ़े चार सौ वर्ष का ही समय हुआ है किन्तु इतने ही अल्प समय में भारत और भारत के बाहर भी इसने जो स्थान प्राप्त कर लिया है। उसे देखते हुये यह बात कम गौरव की नहीं है।

किन्तु सिख धर्म को यह गौरव और इतना ऊंचा स्थान कुछ यों ही नहीं मिल गया है, इसके पीछे एक इतिहास है और उस इतिहास का प्रत्येक पृष्ठ भरा पड़ा है उन हुतात्माओं की करुण और हृदय हिला देने वाली कथाओं से जिन्होंने अपने प्यारे धर्म का माथा ऊंचा करने के लिये हँसते २ अपने को बलिदान कर दिया था।

सिख धर्म में बलिदान का यह सिलसिला पाचवें पातशाह गुरु अर्जुनदेव जी से आरम्भ होता है।

अर्जुनदेव जी का बलिदान

इसी इतिहास के सातवें अध्याय में हम गुरु अर्जुनदेव जी के विशद जीवन और पवित्र बलिदान पर काफी प्रकाश डाल चुके हैं। इसलिये यहाँ अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं समझते।

बादशाह जहाँगीर आपसे बहुत चिढ़ता था उसने अपने आत्म-चरित (तुजक जहाँगीरी) में लिखा है कि बहुत दिनों से मेरे मन में प्रबल आकांक्षा थी कि या तो सिख गुरु के काम (धर्म प्रचार) को बन्द करदूं या उसे इस्लाम धर्म में दाखिल करूं।

पंजाब में पैदा हुये इस सिख धर्म के विरोधियों की कमी न थी। जिनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल थे। जिन्होंने एक से अधिक बार, गुरु जी के धर्म प्रचार के विरुद्ध शिकायतें की थीं। इनके साथ ही चन्दूशाह भी शामिल हो गया। जिसकी लड़की की सगाई गुरुजी ने अपने पुत्र से नहीं की थी। और वह बदला लेने का मौका देख रहा था।

खुशरो की बगावत के समय शिकायत का बहाना मिल जाने पर चन्दूशाह ने बादशाह को खूब ही भड़काया। जिससे चिढ़ कर बादशाह ने गुरुजी को लाहौर में बुलाकर बन्दीगृह में डाल दिया। जहां उन्हें असह्य यंत्रणायें दी गईं। जिनका कि विस्तार वर्णन पीछे के पृष्ठों में किया जा चुका है।

काफी कष्ट देने के बाद हाकिमों को सतोष नहीं हुआ तो तजवीज यह की कि "अब इस गुरु को रावी के पानी में डुबकी दी जाय, जिससे शायद जख्मों पर पानी लगने की पीड़ा से तड़फ कर अपने पन

से डिग जाय और इसके बाद भी अडिग रहे तो गाय की कच्ची खाल मे मढ़वा दिया जाय।"

रावी मे डुबकी देने पर उनका प्राण इस नश्वर शरीर को छोड़ गया।

उन दिनों रावी लाहौर के किले से टक्कर लेती थी। अब तो दूर चली गई है। सिखो ने रावी के किनारे पर गुरु जी की स्मृति मे एक देहरा बनवा दिया, जो देहरा साहब के नाम से मशहूर है। यह स्थान बड़ा सुन्दर है। प्रति वर्ष जेठ सुदी ४ को बड़ा भारी मेला लगता है। जिसमे लाखो सिख इकट्ठे होते हैं।

वहीं महाराजा रणजीतसिंह जी की समाधि भी बनी हुई है। इस पवित्र स्थान की मैंने भी यात्रा की है। खेद है कि अब यह स्थान पाकिस्तान मे चला गया है।

नवे पातशाह श्री गुरु तेगबहादुर जी के साथ पॉच सिख देहली गये थे और वे पॉचो भी गुरु जी के साथ ही जेल मे डाल दिये गये। दीवान मतिराम और भाई दयालदास उन्हीं पॉचो सिखों मे थे।

दीवान मतिराम

जेल मे भूख प्यास और अनेक यन्त्रणाओ के कारण सिख बहुत दुखी थे। किन्तु जब यह देखते कि गुरु तेगबहादुर जी भी तो उन्हीं की भॉति कष्ट पा रहे है। जो कल तक राजा महाराजाओ के जैसे आनन्द मे थे। यह सोचकर विचारे अपने कष्टो को भी भूल जाते थे, किन्तु प्रसुप्त ज्वालामुखी भी एक न एक दिन तो भड़क उठता ही है, सहनशीलता की भी हद होती है। आखिर एक दिन दीवान मतिराम ने गुरु जी से कहा, मुझे ऐसा आता है कि दिल्ली का पाट से पाट मिला दू। मुगल सल्तनत का नाम निशान तक न रहने दूं। सिख वीर का हृदय जो था। सदैव से स्वाभिमानी वायुमंडल मे रहा था। भावुकता मे जो भी मन मे आया मतिराम ने कहा।

जब यह बाते काजी तक पहुँची तो उसने फिर उनपर रंगत चढ़ाकर बादशाह औरंगजेब के पास जाकर कह दीं। बादशाह सुनते ही लाल-पीला होगया और उसने पॉचो बन्दियों को मय गुरु जी के, दरबार मे बुलाया।

दरबार में बादशाह ने मतिराम को संबोधित करते हुए कहा कि मैं तुम्हे मुसलमान बनाना चाहता हूँ और तुम मुसलमान नहीं बनते हो तो फिर देखता हूँ। तुम जो शेखी जेल मे मुगल सल्तनत को तहस-नहस करने और मुझे मजा चखाने की मार रहे थे, उसे पूरी करते हो या नहीं।

भाई मतिराम ने इस आशय का जवाब दिया, मैं मुसलमान प्राण रहते कभी भी नहीं बन सकता हूँ। जो दबाव और लोभ लालच से मुसलमान बनता है उसे क्या ईमानदार कहा जा सकेगा? यदि इस प्रकार का कोई मुसलमान है तो, मैं कहूँगा वह बेईमान है।

रही शेखी मारने की बात, वह शेखी नहीं है जिनके हृदय मे बल है और जो सचाई पर आरूढ है, वे एक मुगल सल्तनत क्या हजारों सल्तनत का उलटफेर कर सकते है। इस समय मुगल शासन अत्याचारी शासन है। इसे नष्ट करने के लिये सबको जिसके कि दिल मे दीन और दुखियों के प्रति प्रेम है। यही वाक्य कहने चाहिये।

वह बादशाह भाई मतिराम जी के इन शब्दों को भला कब बर्दास्त कर सकता था? जिसका राज्य केवल आतंक पर ही निर्भर था और चूंकि इन शब्दों मे आतंक को उडा देने की शक्ति थी। अत उसने तुरन्त दिया कि इसी समय जल्लादों को बुलाकर आरे से चीरकर इसके दो टुकड़े कर दिये जॉय। यह काम हुक्म अवाम के सामने हो और यहीं हो जिससे यहा बैठे हुये लोग देखले कि औरङ्गजेब के सामने जबान न सभालकर बोलने वाले की क्या दशा होती है।

मनुष्य वैसे राक्षस और शैतान हो सकता है किन्तु इतिहास साक्षी देता है कि यह मनुष्य ही शैतान और राक्षस है। भाई मतिराम के सिर पर आरा चलने लगा। वहाँ जो शैतान थे वह खुश हो रहे थे और जिनमें इन्सानियत थी वे मुँह फेर कर आँखों से आँसू बहा रहे थे।

आरा चलने लगा। लहू की धारा बहने लगी। किन्तु भाई मतिराम अचल और गंभीर किन्तु प्रसन्न मनसे जप रहे थे—हे अकाल पुरुष मैं तो क्या हूँ, सब कुछ तो तूही है।"

जिस समय शैतान मतिराम जी को आरे से चीरा जारहा था। भाई दयालदास जी से नहीं रहा गया और उन्होंने ओजस्वी शब्दों में बादशाह को संबोधित करते हुए कहा, "इस समय औरङ्गजेब तेरा यह आरा भाई मतिराम के सिर पर नहीं किन्तु तैमूरिया खान्दान की सल्तनत के सिर पर चल रहा है। तू इस तरह के जुल्म से अपना ही नहीं अपनी भावी सन्तान का अहित कर रहा है।

भाई दयालसिंह

अपने आतंक को इस प्रकार भंग होते देखकर औरङ्गजेब ने कहा, इसे तेल के गर्म कड़ाहे में पटक देने की इजाजत देता हूँ। जल्लादों ने दौड़ कर भाई दयालसिंह जी की भी मुश्कें कसलीं।

लाल भट्टी को जिस पर खौलते हुए कड़ाहे से उठने वाली लपटें दस दस कदम तक मनुष्यों के शरीर को झुलसाती थीं, देखकर भाई जी ने अकाल पुरुष की अस्तुति आरंभ की। इसके बीच में ही उन्हें जल्लादों ने कड़ाह में फेंक दिया।

गुरु तेगबहादुर जी के साथ जो अन्य सिख थे। वह अपने साथियों की नृशंस मृत्यु देखकर निहायत रन्जीदा हुये किन्तु फिर उन्होंने यह कहकर अपने को सभाला कि वाहि गुरु जी की मर्जी के सामने आनन्दित रहनेवालों के मन सदा अटल और अडोल रहते हैं।

गुरु तेगबहादुर

बन्दी दशा में भी गुरु तेगबहादुर जी जेल के लोगों को उपदेश दिया करते थे। उनका साराश इस प्रकार है —

(१) मनुष्यों का ईश्वर ही सबसे बडा हितू और सहायक है अत उसी के चरणों में हर समय मन लगाये रखना चाहिये।

(२) मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ पाप की ओर जाती हैं। अत महात्मा लोगों के सत्सग द्वारा इन्हें उस पथ से मोड़ने का प्रयत्न करना चाहिए।

(३) अपने विश्वास पर से विचलित होनेसे तो मरजाना कहीं अधिक अच्छा है। आपके बलिदान की पूरी कथा पिछले पृष्ठों (ग्यारहवें अध्याय) में दी हुई है।

इनका भी विस्तृत वर्णन पिछले अध्याय में कर चुके हैं। यहाँ तो केवल उनके उन वाक्यों के आशय को रख रहे हैं, जो पजाबी भाषा के एक लेखक ने लिखे हैं। जब वजीरखाँ ने उनके सामने मुसलमान होने का प्रस्ताव रक्खा तो बच्चों ने कहा —

जोरावरसिंह, फतहसिंह

"मौत तों उहु डरे जो सिरजनहार थो विहुडिया होय।
जिन्हन दे हिरदे विच परमेश्वर दा प्यार है॥
उन्हान लई मौत सच्चा जन्म है।"

अर्थात्—जिसने सिरजनहार परमात्मा को छोड़ दिया है मरने से उसे ही डरना चाहिए। जिसके हृदय में ईश्वर का प्रेम है। उसके लिये तो मरना नया जन्म है।

नवाब ने इन दोनों सुकुमारों को अमानुषी यत्रणायें देने के बाद जल्लादों से जिबह करा दिया था।

स बीबी को पठानों ने बर्छों पर टागकर जलती हुई अग्नि शिखा मे पटक दिया था। इनका कसूर केवल इतना था कि चमकौर मे जो सिख लड़ाई मे मारे गये थे। उन सबकी लाशों को इकट्ठा करके और उनपर अपने घर से काठ लगाकर संस्कारार्थ अग्नि लगा दी थी। अपने सहधर्मियों के साथ इतनी हमदर्दी तो हर किसी के दिल मे होनी ही चाहिए। किन्तु आततायी पठान इसे भी बर्दाश्त न कर सके और एक अबला पर बीसियों बर्छियां एक साथ भुक गई? और उन्हें बर्छी पर टागकर उसी जलती हुई चिता मे फेक दिया।

बीबी सरनकौर

यह बीबी सरनकौर वहीं के एक जमीदार की लडकी थी।

महावीर बन्दासिंह जी की वीरता तथा बलिदान

महावीर वन्दासिंह जी का जन्म काश्मीर के अन्तर्गत पूंछ रियासत के राजौड़ी नामक गॉव मे हुआ था। आप राजपूत थे। आपकी जन्म तिथि कार्तिक शुक्ला त्रियोदशी संवत १७२७ विक्रमी बताई जाती है। बालकपन का नाम आपका लक्ष्मणदेव था और पिता का नाम रामदेव था।

पिता ने आपको कुलाचार के अनुसार बाल अवस्था से ही शस्त्र सचालन, घोडे की सवारी और मृगया आदि क्षत्रियोचित गुणों मे पूरी तरह शिक्षित व दीक्षित कर दिया था।

ऐसा बहुत बार देखा गया है कि मनुष्य के जीवन मे आकस्मिक घटनाओं से एकदम ऐसा परिवर्तन हुआ है कि जिसकी पहले से कोई भी कल्पना नहीं की जा सकती थी। ऐसी ही एक घटना ने लक्ष्मणदेव को वैरागी बना दिया। उन्होने जब कि वे शिकार खेल रहे थे, एक हिरणी को जख्मी किया वह हिरनी गर्भवती थी, उसके पेट से बच्चे निकल पडे और लक्ष्मणदेव ने उन्हे तडप तडप कर मरते देखा तो बस उसी समय उनमे परिवर्तन होगया और ससार से घृणा हो गई। उन्होंने अपने हथियार खूंटी पर टाग दिये। जब कि वह रात दिन उसी दिन की घटना को लेकर चिन्ता किया करते थे। उन्हे जानकीप्रसाद नामी एक साधु मिला और उसके उपदेश से १६ वर्ष की उम्र मे वह घर छोडकर निकल पडे। राजौड़ी की बजाय कसूर के पास रामथम्मन गाव के एक डेरे[1] मे रहने लगे।

एक बार साधुओं की मडली ने नासिक की यात्रा करने का विचार किया। माधवदास भी उनके साथ गये। नासिक से जब वह मडली उस स्थान पर आई जो पंचवटी कहलाता है तो माधवदास ने उस सुन्दर वन मे ही रह कर तप करना निश्चय किया और वह अपनी मडली के साथ न लौट कर वहीं तप करने लगे। कहा जाता है कि यहॉ पर आपने १४-१५ वर्ष तक घोर तप किया। यहॉ एक औघड़नाथ जोगी था, बीमारी के समय मे माधवदास ने उनकी बहुत सेवा की। औघड अच्छा तो न होसका किन्तु अपनी जत्र मत्र और योग सम्बन्धी सारी विद्या और पुस्तके सत माधवदास को दे गया।

एक स्थान पर इतने दिनों रहने के कारण सत माधवदास जी के मन मे दूसरी जगह चलने की आई और वह गोदावरी के किनारे नदेड नामक स्थान के पास एक जंगल मे रहने लगे। यहॉ उनकी इतनी प्रसिद्ध हुई कि हजारो ही मनुष्य उनके शिष्य हो गये और उनसे ज्ञान चर्चा सुनने लगे। उनके जादू टोने के कारण लोग उन्हे जबर्दस्त चमत्कारी भी मानने लगे थे।

१ पजाब में सतलोगो के रहने के स्थान को प्राय डेरा कहते हैं। यहा रामदास नामी वैरागी के चेला होगये और अब नाम बजाय लक्ष्मणदेव के माधवदास होगया।

यह हम अध्याय बारह मे बता चुके हैं कि बादशाह बहादुरशाह का साथ छोड कर गुरु गोविन्द-सिंह जब नदेड़ मे पहुँचे तो वहा संत माधवदास जी से मिले थे, गुरुजी के उपदेश ने उनके जीवन प्रवाह को एक दम फेर दिया और वह गुरु जी से पाहिल लेकर बन्दासिंह बन गये।

श्री राधामोहन गोकुल जी ने उनका यही नाम लिखा है हालाकि दूसरे लेखक उन्हे बन्दा बहादुर और गुरुबख्शसिंह लिखते आ रहे है। हम भी उनका सिख बनने के बाद का नाम बन्दासिंह[1] ही ठीक मानते है। राधामोहन गोकुलजी ने "गुरु गोविन्दसिंह जी" नामक पुस्तक मे जो आज से पैंतीस वर्ष पहले सन् १९१८ ई० मे छपी है। बन्दा की जगह बन्दासिंह लिखा है।

बन्दासिंह जिस समय दक्षिण से रवाना हुआ तो गुरु जी ने उसे एक नगारा एक निशान और पाच तीर दिये। साथ मे उन्होंने अपने पांच प्यारे बाबा विनोदसिंह, काहनसिंह, बाजसिंह, दयासिंह और रामसिंह जी को भी कर दिया। इसके अलावा २० आदमी और दिये इस प्रकार वह खालसा के एक कमान्डर के रूप में पंजाब को रवाना हुआ। साथ उस हुक्मनामे के जो गुरु जी ने उसे सिखो के नाम लिखकर दिया था।

कुछ ही महीनों में बन्दासिंह अब अपने साथियों के साथ देहली प्रान्त की सीमा पर पहुँच गये। यहाँ उन्होंने अपनी कूच करने की रफ्तार को जरा ढीला कर दिया। क्योंकि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसे धन की आवश्यकता थी। अत वह कुछ समय के लिये सेहडी और खोंडा गावों के निकट ठहर गया जो कि परगना खरखोदा मे हैं। वहाँ बैठ कर उसने गुरु जी के दिये हुये पत्र की नकल आस पास के सिक्खों के पास भेजी। जिसके द्वारा उसने सिखों से अपील की थी कि वे मुगल हुकूमत और वजीर खाँ फौजदार सरहिन्द तथा सुच्चानन्द जैसे लोगों के अत्याचार को मिटाने में उसे सहयोग दे और आकर उसके पास सगठित हों। उसने उन पत्रों मे गुरुओं साहबजादों की नृशसता पूर्वक की गई कुर्बानी और हजारों सिखों पर किये जाने वाले अमानुषी जुल्मों की ओर भी सकेत किया था।

बन्दासिंह के इन पत्रों को पाकर हजारो ही सिख और अनेको सरदार उसके पास इकट्ठे हो गये। भगतू खान्दान के भाई फतहसिंह, भाई रूपा के वंशज कर्मसिंह और धर्मसिंह तथा निधासिंह और चूहड़सिंह सब से पहले प्रमुख सरदार थे, जो बन्दासिंह से आकर मिले, धन और जन दोनों चीजे जुटाई। इनके अलावा आलीसिंह और मालीसिंह आदि भी अनेकों वीर सिख आ शामिल हुए। यद्यपि स्वयम् न आ सके परन्तु फूल के वशज चौधरी रामसिंह और तिलोकसिंह ने खुले दिल से जन और धन की सहायता की।

इस प्रकार कुछ महीने तक बन्दासिंह अपनी शक्ति को बढाने मे लगा रहा। जब काफी शक्ति हो गई तो समाना पर चढ़ाई करने के लिये कूच कर दिया। यहाँ का हाकिम सैयद जलालुद्दीन था। उसने गुरु तेगबहादुर को कत्ल कराने मे खूब कोशिश की थी। और गुरु बालको के पीड़क खासलबेग और बासलबेग यहीं के थे।

सन् १७०६ ई० की २६ नौम्बर के प्रात. काल ही बन्दासिंह और उसके साथियो ने समाना पर धावा किया। और जाते ही कामयाबी हासिल की। इस मैदान मे दस हजार जाने गई और यहाँ

१. सुरेन्द्र शर्मा के 'गुरु गोविन्दसिंह' नामक पुस्तक में भी बन्दासिंह ही नाम लिखा है। पथ प्रकाश पाचवां सस्करण पृ० ८५, ८६

लग गये। सिख लोग जल्दी ही मामला साफ करने के इरादे से बड़े वेग के साथ लड़ रहे थे। इसलिये लड़ते-लड़ते उनके हाथ फूलने लगे। बाबा विनोदसिंह ने देखा कि सरहिन्द में आये हिन्दू सैनिकों के भागने से सिखों के पैर कच्चे पड़ जाने का डर है उन्होंने कहा, आप भागने के लिये नहीं आये। हमारे सामने गुरु गोविन्दसिंह के छोटे २ बच्चों की चितायें जलती दिखाई दे रही हैं। हमारे लिये यह धर्म है। इतने में पीछे के हिस्से में बन्दासिंह आगे आये और उन्होंने ललकार कर कहा आओ वीरो आगे बढ़ो। तुमने सिंहनियों का दूध पिया है, इन कायरों पर एक साथ हल्ला क्यों नहीं बोल देते? सिख एक हुंकारा भर कर पिल पड़े। बन्दासिंह जी ने भी उन पठान सेनापतियों पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी जो फौज का सञ्चालन कर रहे थे। एक दो तीन इस तरह सैकड़ों को जमीन पर बिछा दिया। अब क्या था पठान सेना भाग निकली। भाई फतहसिंह ने वजीरखां को अपनी तलवार के घाट उतार दिया। वजीरखां के गिरते ही सारी पठान सेना भाग गई। सत श्री अकाल के नारों से आसमान गूंज उठा और सिखों ने शहर में प्रवेश किया। यह घटना सन १७१० की २४ मई की है।

पठान सैनिक लड़ाई से तो भागे ही थे सरहिन्द नगर से भी भागने लगे। बन्दासिंह जी का आतंक ही ऐसा था।

सिख सेनाएँ सरहिन्द में घुसीं। लूट आरम्भ हो गई। बराबर तीन दिन तक लूट होती रही। जिन घरों के अडियल दरवाजे थे। उनमें सिखों ने आग लगा दी।

गुड़ानी के रामराय ससन्द को भी दंड दिया गया क्योंकि इसने गुरु गोविन्दसिंह जी के रागी बुलाकासिंह की तौहीन की थी।

सन १७०४ ई० में शेरमुहम्मद हाकिम मालेर कोटला बीबी अनूपकौर नाम की एक हिन्दू स्त्री को सिरसा नदी की गड़बड़ में अपहरण कर लाया था किन्तु उसने अपने सतीत्वकी रक्षा करने के लिये अपने जिगर में कटार घोंपली थी। शेर मुहम्मद ने उसे कब्र में दफनया दिया था। बन्दासिंह के बहादुर सिखों ने उस कब्र को खोद कर बीबी अनूपकौर का संस्कार कर दिया। उन्होंने मालेर कोटला के नवाब को तो इसलिये दंड देने से छोड़ दिया कि उसने सरहिन्द में गुरु बालकों के वध के समय इन्सानियत प्रकट करते हुये, उन्हें खुद मारने से इनकार कर दिया था और 'हाय' का नारा मारते हुये उस अत्याचारी दरबार से उठ आया था। इसी कृतज्ञता के प्रकाशन के लिये सिखों ने मालेर कोटला को छोड़ दिया।

यहाँ से एक मंजिल पर जगराँव नाम का नगर था। यहाँ कल्यानराय नाम का खत्री हाकिम था। वह डरके मारे अपने आप ही महावीर बन्दासिंह जी की सेवा में हाजिर हुआ और पांच हजार रुपये भेट में दिये।

रायकोट और दूसरे कई शहरों ने मुकाबिला कर सकने की ताकत न होने के कारण बन्दासिंह जी की अधीनता स्वीकार कर ली। इस तरह सरहिन्द का कुल इलाका बन्दासिंह के हाथ में आ गया।

चूंकि अब तक काफी मुल्क महावीर बन्दासिंह के कब्जे में आ चुका था। अत उसने उस विजित प्रदेश का मजबूत प्रबन्ध भी किया। बाजसिंह को जो कि नदेड़ से ही उसके साथ आया था। सरहिन्द का सूबेदार मुकर्रिर किया। अलीसिंह को उसका नायक बनाया। फतहसिंह को समाना में नियुक्त कर दिया। रामसिंह और विनोदसिंह को थानेश्वर और उससे सम्बन्धित इलाके का संयुक्त चार्ज दिया।

इन समस्त परगनों पर सिखों का एकाधिकार हो गया था। जो सिखों के पंथ द्वारा शासित समझा जाता था।

हस्तलिखित पुस्तकों के आधार पर विनायक अर्विन अपनी पुस्तक 'लेटर मुगल' में लिखता है—"सिखों के अधिकार में आये हुये परगनों में देर से चली आ रही, पुरानी रस्मों को बिल्कुल ही उलट दिया। एक नीच जाति के भंगी या चमार को जिसे कि हिन्दू लोग बहुत ही अधम समझते हैं। केवल घर छोड़कर गुरु की शरण में आकर सिख धर्म में दीक्षित ही होना होता था कि बन्दासिंह की ओर से उसे अपने ही इलाके का हाकिम बनाकर वापिस भेज दिया जाता था। जब वह अपने इलाके की हद में दाखिल होता तो बडे २ अमीर और अच्छे घरानों में उत्पन्न हुये कुलीन उसकी आवभगत करने के लिये और हाथ जोडकर उससे हुक्म चाहते थे। किसी को हौंसला न पड़ता था कि उसकी आज्ञा का उलंघन कर सके और वह लोग जो रणभूमि में शत्रु के मुकाविले पर डट जाने के लिये तैयार हो जाते थे। इतने साहसहीन हो गये कि वह जवान हिलाने से भी डरने लगे।

इस तरह अनेकों स्थानों की विजय और शासन व्यवस्था के साथ ही बन्दासिंह ने सिख समाज को बढ़ाने का कार्य्य भी जारी रक्खा। वह हिन्दू और मुसलमान दोनों को ही सिख बनाता था। हिन्दू तो धडा धड सिख बन रहे थे। किन्तु उसने अनेकों मुसलमानों को भी सिख धर्म की दीक्षा दी। सिख होने वाले लोगों के नामान्त में वह सिंह लगाता। दीनदारखां को सिख बनाकर उसका नाम दीनदारसिंह रक्खा इसी प्रकार सरहिन्द के खबरनवीस नासिरुद्दीन के सिख बनाने पर उसका नाम मीर नासिरसिंह रख दिया। उसके समय में अनेकों मुसलमानों ने सिख धर्म को स्वीकार किया। (दस्तार-उल इन्शा ६ठी और रुकात-ई अमीनुद्दौला ५वीं जिल्द)।

इस समय बन्दासिंह की शक्ति काफी बढ़ गई थी और इलाका भी बहुतेरा उसके हाथ आ चुका था जिससे अच्छा खासा राज्य बन गया था।

उसने मुखलिस के पुराने किले को जो कि साढोरा के पास है। नये सिरे से मरम्मत कराया और उसका नाम लोहगढ़ रक्खा और इसे अपनी राजधानी का रूप दिया। यहीं से समस्त प्रदेश का प्रबन्ध बन्दासिंह करने लगा। यहाँ पर एक बडी सेना और साथ ही युद्ध की सामग्री भी रक्खे जाने लगी।

इस प्रकार राजधानी के कायम हो जाने पर बन्दासिंह ने गुरु नानक और गोविन्दसिंह के नाम का सिक्का भी चलाया। जिस पर पारसी भाषा में "सिक्का जद बर हर दो आलम तेगे नानक वाहिब अस्त। फतह गोविन्द सिंह शाह शाहान फजल सच्चा साहब अस्त।"

इसमें तमाम धन सम्पति का दाता गुरु नानक। ईश्वर कृपा से और सर्व विजय का प्रदानकर्ता गुरु गोविन्दसिंह जी को बताया गया है।

इसी तरह उसने अपने हुक्मनामों या फर्मानों पर मुहर आदि लगाने के लिये एक मुहर भी जारी की थी। उस मुहर पर यह शब्द लिखे रहते थे।

"देग तेग व फतह व नसरत बेद रग।
याफ्त अज नानक गुरु गोविन्दसिंह।"

अर्थात—गरीब लोगों के लिये देग और निबलों की रक्षा के लिये तेग और सर्व प्रकार की विजय और कामयाबी सदैव चिरंजीव रहे। जोकि गुरु नानकदेव और गुरु गोविन्दसिंह से प्राप्त हुई है।

इसके सिवा बन्दासिंह ने मुगल साम्राज्य के उन क्षीण दिनों में एक संवत का प्रचलन किया जो कि सरहिन्द की विजय के दिन से आरम्भ होता था।

इन दिनों सिख बन्दासिंह से अटूट स्नेह करने लग गये थे। वे उसे गुरु गोविन्दसिंह की एक

बड़ी देन समझने लग गये थे। बन्दासिंह के जारी किये हुये सिक्के और मुहरें गुरु नानक और गुरु गोविन्दसिंह के लिये उसके दिल में भरी हुई अटल श्रद्धा की जीती जागती यादगारें हैं। जिनको कि वह देग तेग और बेखटक फतह का भंडार समझता था।

विजय और धर्म प्रचार के इरादे से महावीर बन्दासिंह और उसके साथियों ने जमुना पार करके सहारनपुर पर धावा किया था।

दल के साथ जब सहारनपुर में आए तो इधर के एक प्रतिष्ठित मुसलमान रईस पीरजादा मुहम्मद खां ने आसपास और सुदूर के मुसलमानों को इकट्ठाकर लिया। महावीर बन्दा के पास इस समय थोड़े आदमी बताए जाते हैं और मुसलमान इकट्ठे हो चुके थे कई हजार। इस पूरी सेना का सचालक था अमीनाबेग। वैसे मुसलमानों ने सहारनपुर के रईस को ही हाकिम बनाना चाहा था किन्तु वह परिवार समेत दिल्ली को खिसक गया था।

पहले गालिबखां ने एक बड़े जत्थे के साथ महावीर बन्दा के छटे हुए जवानों पर हमला किया, परन्तु महावीर बन्दासिंह जी के तीरों की मार से वह भाग खड़ा हुआ. इससे सिखों की और भी हिम्मत बढ़ गई और उन्होंने फौज के उस हिस्से पर हमला किया जो निश्चिंतता से खड़ा था। अचानक के हमले और बहादुर बन्दासिंह के तीरों की होश भुला देने वाली वर्षा से सारा ही कटक भाग खड़ा हुआ। सहारनपुर की विजय सन् १७१० ई. जौलाई में हुई।

इसके बाद इस दल ने नानौता की ओर कूच किया। यहाँ के नानक पंथी गूजरों ने सिखों की सेना में शामिल होकर शेखजादों से अपने पुराने बदले निकाले। कहते हैं कि मुहम्मद के आंगन में ३०० शेखजादे उनके हाथ से मारे गये। उस समय से इस स्थान का नाम ही फूटाशहर पड़ गया। जिसे आज भी फूटाशहर ही कहते हैं।

यहां से जलालाबाद पर हमला किया गया जहाँ कि जलालखा नाम का फौजदार था। जमाल खा और पीर खाँ उसके सहयोगी थे। परन्तु बन्दासिंह उत्तर की ओर बहुत जल्द लौट जाना था अत. वह यहाँ से सुल्तानपुर और जालंधर के परगनों का संशोधन करने चल पडा।

इन लड़ाइयों और विजयों के बाद बन्दासिंह का दल पंजाब की ओर मुड़ा।

चंद दिन के विराम के बाद ही बन्दासिंह के विजयी सैनिक माझा के रहे-सहे इलाकों की विजय के लिये निकले। अमृतसर जाकर उन्होंने अपने धार्मिक कृत्य किये और यहाँ गुरमता करके पंजाब के विभिन्न हिस्सों को जीतने के लिये तैयार हुए। कारण कि इस समय तक खालसा की शक्ति बहुत बढ़ गई थी अत. और भी अधिक प्रदेशों पर विजय करने के इरादे से उतरोत्तर बढ़ रहे थे। कलानौर और बटाला को लेने के बाद वह एक ओर लाहौर की दीवारों तक पहुँच गये। दूसरी ओर सियाला और बुलाने के एक जत्थे ने पठानकोट के परगना और शहर पर कब्जा कर लिया।

लाहौर में उस समय अस्लाम खाँ सूबेदार था। खुद तो उसमें सिखों से मुकाबिला करने की हिम्मत थी नहीं अत. उसने मुल्लाओं को इस बात के लिये तैयार किया कि वे मुसलमानों को हैदरी झंडे के नीचे एकत्र होकर सिखों से जिहाद करने के लिये अपील करें।

इस समय सिख किला भगवंत राय और कोटला बेगम से पीछे रिपाड़की की ओर हट गये। जहा उन्होंने भीलोंवाल के मुकाम पर जहादी गाजियों को ऐसी शिकस्त दी कि वह जान बचाकर भाग निकले और माझा और रिपाड़की का कुल इलाका सिखों के हाथ आगया।

सरहिन्द के इलाके के निकट ही जालंधर का दुआवा होने के कारण उस इलाके के लोगों मे आजादी की एक लहर दौड़ गई थी। दक्षिण मे अपने भाइयों की सफलता को देखकर इस इलाके के सिखों ने भी मुगल अफसरों को निकाल वाहर किया और उन स्थानों पर अपने थानेदार विठा दिये।

अपनी कामयावियो से अब उनका दिल वढ़ गया था। इसलिये उन्होंने फौजदार शम्सखां के नाम एक परवाना इस आशय का जारी किया कि वह अधीनता स्वीकार करे। किन्तु शम्स एक वडी भारी सेना जिसमे मुसलमान जहादियो के एक वडे दल के साथ अधिकतया जुलाहे शामिल हुये थे सिखों का मुकाविला करने के लिये निकला। सिख राहून के किले मे दाखिल हो गये। जिस पर उन्होंने पहले से कब्जा जमा लिया था। किले का कई दिनो तक जहादियों ने घेरा डाले रक्खा। चूंकि जहादियों की संख्या वहुत ज्यादा थी और सिखो के अन्दर से किये गये धावों से उन्हे भगाया नहीं जा सका था। इसलिये उन्होंने किले से वाहर निकल कर धावा करने का विचार किया और रात के अन्धेरे मे किले से निकल गये। दूसरे दिन प्रात' जवकि शम्स खान किले मे अपने आदमी छोड़कर राहून को जा रहा था एक हजार सिखों ने अचानक शम्सखा के आदमियों पर धावा आ वोला और उनको वाहर निकाल कर स्वयम् काविज होगये। यह वात १२ अक्तूवर सन १७१० ई० की है।

इन दिनों तक सिख दल की शक्ति इतनी वढ गई थी कि जमना के पूर्व और सतलज के ऊपर उनका अधिकार हो चुका था। सन १७१० के सितम्वर के मध्य मे माछीवाडा से करनाल तक सिख पता का फहरा चुकी थी। और इरादतखां की लिखत के अनुसार देहली मे कोई ऐसा अमीर न था जो कि सिखों के विरुद्ध आने का हौसला करे। मालकम ने लिखा है कि यदि कुछ दिन भी वादशाह वहादुरशाह दक्षिण मे और रह जाता तो उत्तरी हिन्द में सिखो की हकूमत होती।

वहादुरशाह ने पंजाव में सिखों की इस प्रकार की वढ़ती हुई शक्ति के समाचार सुनकर फौरन तैयारी की और देहली और अवध के सूवेदारों, मुरादावाद और इलाहावाद के फौजदारो और नाजिमों, वारहा के सैयदो को मय सेनाओं के पंजाव की ओर कूच करने के लिये वुलाया। ४ दिसम्वर सन् १७१० को वादशाह अपने वेटे और शाही और सूवी सेनाओं समेत साढोरे के मुकाम पर पहुँचा।

इस टिड्डी दल ने लोहगढ़ को इस प्रकार घेर लिया कि वाहर से खाने पीने की कोई भी सामग्री भीतर न जा सकती थी। जव तक भीतर खाद्य पदार्थ रहे। सिख डट कर लड़े किन्तु कई दिन जव भूखे हो गये तो उन्होंने मरना या विजय पाने का इरादा करके शाही सेना पर टूट पड़ना ही निश्चय किया।

गुलावसिंह नाम के एक हिन्दू सैनिक ने जो कि वन्दासिंह से सूरत शकल मे मिलता-जुलता था उसके कपडे खुद पहन लिये और वन्दासिंह को सुरक्षित निकल जाने की सलाह दी।

१०-११ दिसम्वर की मध्य की रात को वदासिंह मुगल सेना को चीरता अपने साथियों समेत नाहन की पहाड़ियों मे चला गया। गुलावसिंह और उसके कुछ साथी गिरफ्तार हुये।

किले मे से निकलने के वाद तीन जत्थे वनाये थे। एक वावा दीपसिंह जी के नेतृत्व मे। एक वाजसिंह के और एक भाई जोधसिंह के नेतृत्व थे। किले के किवाड़ खोल कर यह जत्थे 'वाहि गुरु' की फतह' कहकर मुसलमानी दल पर टूट पड़े और सारे दल को तीन धाराओं मे चीरते हुए साफ निकल गये। किन्तु इस साफ के मानी यह नहीं है कि सिखो का इसमे कोई नुकसान नहीं हुआ। आधे से अधिक आदमी मैदान मे काम आगये। वन्दासिंह जी का एक लड़का अजीतसिंह भी मारा गया और दूसरा जोरावरसिंह पकडा गया। वचे हुए लोग भागकर पहाडों मे चले गये।

बादशाही फौज लौट गई और प्रसिद्ध सिखो के सिरों को भी उठा ले गई। बादशाह बहादुर-शाह बड़ा प्रसन्न हुआ और इनाम भी बांटा। कहा जाता है कि मुसलमान सेनापतियों ने बादशाह को विश्वास दिलाया था कि बन्दासिंह भी इसी लड़ाई में काम आगया है किन्तु उसके सिर को मालूम होता है, भागे हुए सिख उड़ा ले गये हैं।

बन्दासिंह ने जब अपने पुत्रों की इस प्रकार की दुर्गति का समाचार सुना तो कहा, जो लड़ाई मे काम आगया है। उसने वाहि गुरु की मर्जी का पूरा कर दिया।

बादशाह बन्दासिंह को इस तरह अपने हाथ से निकला हुआ देखकर बहुत घबराया और लोहे के उस पिंजरे मे जाकि बन्दासिंह का बंद करने के लिये लाया गया था। उसमें नाहन के राजा भूपप्रकाश और बख्शी गुलाबसिंह को गिरफ्तार करके देहली भेज दिया और खुद लाहौर की ओर चल दिया। अफसोस कि वहीं पर दिसम्बर १७१२ ई० को मर गया।

बादशाह बहादुरशाह की मरने की वजह से राज्य के सम्बन्ध मे काफी गड़बड़ी मची हुई थी। इधर बन्दासिंह फिर अपने संगठन में लग पड़े और उनके बहादुर सिख फिर अपनी वही शक्ति बढ़ाने लगे। और इस गड़बड़ घोटाले के समय में उन्होंने फिर से अपनी पुरानी ताकत हासिल करली और कई एक दूसरे इलाकों पर भी अपना कब्जा जमा लिया।

बन्दासिंह ने गुरदासपुर से आगे बढ़कर पठानकोट के परगने मे रामपुर और बहरामपुर के नजदीक एक युद्ध मे शम्स खान को मार गिराया और उसके भतीजे बायजीदखां को घायल कर दिया।

इसी समय उन्होंने पहाड़ी राज्यों को अपना माडलिक बना लिया और अपना शासन अच्छी प्रकार जमा लिया। खंडौरा और लोहगढ़ फिर से उसके हाथ आगये परन्तु खेद है कि यह कुछ बहुत देर के लिये स्थायित्व न पा सके।

२२ फरवरी सन् १७१३ ई० को अब्दुल समदखॉ दिलेरजंग लाहौर का सूबेदार नियत हो चुका था। परन्तु वह अपने दो साल के शासन में सिखों की बढ़ती हुई ताकत को रोकने मे सफल न हो सका।

२० मार्च सन् १७१५ को बादशाह फर्रुखसियर ने उसको एक ताड़ना की चिट्ठी लिखी और कमरुद्दीनखां, बेटा मुहम्मद अमीनखॉ, अफरासियाबखां, मुनव्वरखां, राजा गोपालसिंह भदौरिया, उदितसिंह बुन्देला और कई एक हिन्दू और मुसलमान सरदारों और जमीदारों को उसकी सहायता के लिये भेजा।

देहली की शाही सेना पंजाब सूबे की अपनी सेना तथा जमीदारों और फौजदारों की सेना और अपनी सहायता के लिए इकट्ठे हुए सहायकों को लेकर दिलेरजग ने बन्दासिंह और उसके सिख साथियों को गुरदासपुर के नजदीक गुरदासनंगल गाव मे घेर लिया यहॉ कोई बड़ा अच्छा किला ता था नहीं। इसलिए गुरदासपुर के सिखों को भाई दुनीचन्द की हवेली के अहाते मे पनाह लेनी पड़ी। यह घेरा अप्रैल सन् १७१५ में शुरू हुआ और कई महीने तक जारी रहा। इस अर्से मे गाव के अन्दर तमाम खाना दाना खतम हो गया और सिखों को भारी मुश्किल का सामना करना पड़ा। सिख कई दफा हल्ला करके शाही सेना की पंक्तियों पर टूट पड़ते और उसके बाजार से सीरनी और दूसरी खाने पीने की चीजें लूट ले जाते सिखों की इस दिलेरी पर शाही सैनिक बहुत हैरान होते और उन्हे गिरफ्तार करने के तमाम प्रयत्न विफल होते। शाही सैनिकों को हर समय यह खतरा लगा रहता था कि सिख किसी भी समय इकट्ठे हमले करके यहां से निकल जायेंगे। साथ ही उनको यह भी भ्रम हो गया कि बन्दासिंह मे कोई जादू की शक्ति

है जिससे कि वह कुत्ते और बिल्लियो आदि की शक्ले धारण कर सकता है। इसलिए जब कभी भी वे किसी जानवर को अन्दर से बाहर आता देखते तो वह उसी पर टूट पड़ते और उसे मारे बिना दम न लेते।

आहिस्ता-आहिस्ता शाही सेना ने घेरा तंग करना आरम्भ कर दिया। यहां तक कि कोई परन्द-चरन्द भी बाहर न फटकने पाता था। और अभी तक बहादुर सिखों ने भी मुसलिम सैनिकों को अन्दर दाखिल होने के लिये किये जाने वाले प्रत्येक यत्न को बेकार किया हुआ था। किन्तु चूँ कि घेरा पड़े हुए आठ महीने गुजर चुके थे और अन्दर खाने पीने की वस्तुएं एकदम खतम हो चुकी थीं इस प्रकार सिख भूख और प्यास से तड़पने लगे।

इस समय बन्दासिंह और विनोदसिंह के दर्मियान थोड़ा सा मतभेद हो गया। बाबा विनोदसिंह चाहता था कि एक जोरदार हल्ला करके किले से निकल जाना चाहिए। दूसरी ओर बन्दासिंह का खयाल कुछ दिन और अन्दर बैठकर मुकाबिला करने का था, शायद इस खयाल से कि जाडे की वर्षा से शत्रु-दल निस्साहस सा हो जायेगा। बात ही बात मे दोनो मे विरोध बढ गया और उनके हाथ तलवारों तक पहुँच गये लेकिन विनोदसिंह के पुत्र कानसिंह ने बीच मे पड कर झगडा रोक दिया और यह फैसला हुआ कि यदि विनोदसिंह निकल जाना चाहे तो निकल जाय। इस पर विनोदसिंह अपने हाथ मे तलवार लेकर घोड़े पर सवार हो हवेली से बाहर निकला और शत्रु दल को चीरता हुआ निकल गया।

खाने पीने की दिक्कत ने सिखों को इस हद तक तंग कर दिया कि उन्हे हवेली के अन्दर के जानवर आदि खाने पर मजबूर होना पड़ा। बाद मे उन्होंने घास और दरख्तों की छाल और सूखी हुई टहनियों को कूट-कूट कर आटे की जगह फाकना शुरू किया। कुछ लेखक यह भी कहते हैं कि उन्होंने उनको अपनी-अपनी जाघों के गोस्त को काट कर भूनते और खाते देखा है।

कम्वरखाँ कहता है कि इन तमाम विपत्तियों के होते हुए भी वह सिख सरदार और उनके साथी आठ महीने के लम्बे अर्से तक उस तमाम फौजी ताकत का मुकाबिला करते रहे जो कि मुस्लिम शक्ति उनके विरुद्ध इकट्ठी कर सकी थी।' परन्तु यह कब तक हो सकता था। कभी न खतम होने वाली भूख के कारण अभक्ष्य वस्तुओं के खाने ने उनके शरीरों को जर्जर कर दिया। इस जोर से उनको पेचिश लगी कि खून के दस्त जारी हो गये जिससे वह सैंकड़ों और हजारों की गिनती मे मरने लगे इसके सिवा मुर्दों के सड़ रहे जिस्मों से पैदा हो रही बदबू ने उस स्थान को रहने के नाकबिल बना दिया। जो बच रहे थे वह नीम हड्डिया और इतने अशक्त हो गये कि बन्दूके भी न चला सकते थे। जिससे अधिक देर तक मुकाबिला कर सकना उनके लिये असंभव हो गया।

आखिर १७ दिसम्बर सन् १७१५ ई० को गुरदास नगल का अहाता जिसे कई इतिहासकारों ने गुरदास नगल का किला लिखा है खाली करने को सिखों को विवश होना पड़ा। हालांकि सिख जिस्मानी तौर पर हिलने तक के नाकाबिल थे परन्तु उनका शत्रु के दिल पर इतना डर बैठा हुआ था कि कोई भी अहाते के अन्दर दाखिल होने का हौसला न करता था। अब्दुलसमद खा ने इनके लिये बादशाह से माफी दिला देने का वायदा किया लेकिन जब दरवाजे खोले गये तो बन्दासिंह और उनके साथियों को पकड़ कर कैदी बना लिया गया और शाही सैनिक भूखे भेड़ियों की तरह नीम मुर्दा सिखों पर टूट पडे। अब्दुलसमद खॉ ने उनमें से दो तीन सौ को हाथ पाव बांध कर मुगल और पठान सिपाहियों के हवाले कर दिया। जिन्होंने उन्हे तलवार के घाट उतार दिया और एक बड़ा खुला मैदान एक तस्तरी की तरह खून



शहीद बन्दा बहादुर



गुरु-कालीन चित्र-कला का एक आकर्षक दृश्य

से भर गया। मुर्दा सिखों के पेट यह देखने के लिये फाड़ डाले गये कि शायद उन्होंने सोने की मुहरें निगल लीं हैं। और उनके सिर काट कर तथा भूसा भर कर नेजों पर टाग दिये गये। गुरदासनंगल गांव तोपों के गोलों से उड़ा कर मिट्टी में मिला दिया गया। जिसके कि निशान अबतक मौजूद नये बने गुरदास नगल गांव से एक मील पश्चिम की बन्देवालीथेह के नाम से मशहूर है।

यह खबर २९ दिसम्बर सन १७१५ ई० को उस समय देहली पहुँची जब कि बादशाह फर्रुखसियर जहां पर अपनी फतह का उत्सव मना रहा था।

गुरदासनंगल से बन्दासिंह और उनके साथियों को लाहौर ले जाया गया। अगर्चे उनको बांध कर कैदी बना लिया गया था फिर भी अदृष्ट शक्तियों से भागजाने का भय शत्रुओं पर इस कदर बैठा हुआ था कि हर समय उन्हें यह आशंका थी कि वह रास्ते में भाग न जाय। इसके लिये एक मुगल अफसर ने अपनी सेवा पेश करते हुए कहा कि मुझे इसके साथ बांध दिया जाय। यदि यह उड़ने की कोशिश करेगा तो मैं अपना खंजर इसके पेट में भोंक दूंगा। पांव में बेड़ियां गले में जजीर डालकर उन्हें लकड़ी की हतोडियों से कस रक्खा था। इस प्रकार बन्दासिंह को जकड़ कर एक लोहे के पिंजरे में चार स्थानों पर बांध कर डाला हुआ था। दो मुगल अफसर उनके एक-एक तरफ उसी हाथी पर साथ थे। जिससे कि वह भाग न जाय।

बंदा के अफसरों और खास-खास आदमियों को जंजीर से जकड़ कर लंगड़े लूले गधों और ऊँटों पर चढ़ाया हुआ था और उनके सिरों पर कागज की टोपियां डाली हुई थीं।

इस तरह उनका जुलूस बनाकर ढोल और बैंड बजाने वाले उनके आगे २ चल रहे थे और उनके साथ मुगल सिपाही सिखों के कटे हुए सिर नेजों पर उठाए जा रहे थे। कैदियों के पीछे शाही अफसर नवाब और राजा अपनी २ फौजें लिये हुये मार्च कर रहे थे। इस प्रकार का जुलूस बनाकर अबदुलसमदखां लाहौर में दाखिल हुआ।

वहाँ से इन सिखों को अपने बेटे जकरियाखान के साथ देहली भेज दिया। रास्ते में तरह २ की विपत्तियां सहता हुआ यह जुलूस २५ फर्वरी सन् १७१६ ई० को अगराबाद पहुँचा और २७ फर्वरी को उन्हें देहली शहर में दाखिल किया गया। इस समय सिख कैदियों को उसी तरीके से जुलूस बनाकर देहली शहर में से गुजारा गया। जिस तरह कि मराठा सरदार शंभाजी को। सबसे पहले बांसों पर टंगे हुये सिखों के कटे हुये और धूल से भरे हुये सिर थे जिनके कि लंबे केश हवा में झूल रहे थे। उनके साथ २ एक बांस पर एक मरी हुई बिल्ली टंगी हुई थी जिससे उनका यह जाहिर करने का अभिप्राय था कि गुरदास नगल में अब कुत्ते और बिल्ली भी जिन्दा नहीं रहने दिये हैं। इसके आगे हाथी पर बन्दासिंह का पिंजरा था। जिसमें वह कसूमे रंग की बनात का कपड़ा और सिर पर एक लालसुनहरी जड़ाऊ पगड़ी पहने हुये था। उसके पीछे हाथी पर नंगी तलवारें लिए हुए एक तूरानी मुगल अफसर खड़ा था। हाथी के पीछे ७४० सिख कैदी दो-दो करके बे पलान ऊंटों पर कसे हुए थे। उनके सिरों पर लंबी तिकोनी भेड़ों की खाल की टोपियां थीं जिन पर कि शीशे लटकाये हुये थे उनका एक हाथ दो लकड़ियों के दरम्यान उनके गले के साथ कसा हुआ था।

कुछ खास २ सिख बन्दासिंह के हाथी के साथ घोड़ों पर सवार चल रहे थे जिनको कि भेड़ों की खालें पहनाई हुई थीं। जिनकी कि बालों वाली तरफ बाहर होने के कारण वह दर्शकों को रीछों के मानिंद जान पड़ते थे। जुलूस के अंत में तीन शाही अमीर नवाब मुहम्मदखां चीन बहादुर, उसका बेटा

कमरुद्दीन खानबहादुर और उसका दामाद जकरिया खान बहादुर (बेटा अबुसमदखां) आ रहे थे।

अगराबाद से लोहारी दरवाजे तक सड़क पर मीलों दूर तक फौजें और असंख्य दर्शक खडे थे। जो कि बन्दासिंह और उनके सिखों की सूरतों को देखकर मजाक उड़ा रहे थे। मिर्जा मुहम्मद हारिसी जो इस समय सिखो का तमाशा देखने के लिए गया हुआ था। और नमक मंडी से लेकर बादशाही किले तक इस जुलूस के साथ २ था कहता है—"शायद ही शहर मे कोई होगा जो इस समय यह तमाशा देखने बाहर न गया हो। इतना बड़ा लोगों का जमघट शायद ही कभी देखने मे आया हो, मुसलमान खुशी से फूले न समाते थे परन्तु वह अभागे सिख जिनको कि इस दुर्दशा को पहुँचाया गया था बिल्कुल प्रसन्न मुख और अपनी किस्मत पर शाकिर थे। उनके चेहरों से घबराहट या निराशा के कोई निशान नजर नहीं आते थे। असल बात यह है कि जब वह ऊटो पर गुजर रहे थे तो वह प्रसन्न प्रतीत होते थे। क्योंकि वह आनन्द मे आये हुये अपनी धर्म मे पुस्तक के शब्द गा रहे थे। बाजार या कूचों में से जब किसी ने उनको इस दशा पर कुछ कहा तो वह फौरन उत्तर देते यह जो कुछ हो रहा है। वह सब ईश्वर की इच्छा से हो रहा है। मगर कोई कहता कि तुम्हे कत्ल कर दिया जायगा तो वे कहते हमे बेशक कत्ल कर दो। हम मरने से क्या डरते है। अगर हम डरते होते तो तुम्हारे साथ इतनी लड़ाइयां कैसे करते। पर केवल भूख के कारण से यह हुआ है कि हम तुम्हारे हाथों पड़ गये है। वरना तुम स्वयम् ही जानते हो कि हम क्या कुछ करके दिखा सकते हैं।

'तब्सिरुतुन्नाजरीन' का कर्ता सैयदमुहम्मद भी इस समय वहां उपस्थित था। वह कहता है कि मैंने उनमे से एक को इशारे से कहा कि यह तुम्हारी करतूतों का नतीजा है तो उसने अपना हाथ माथे पर रखते हुये जाहिर किया कि यह सब कुछ ईश्वरेच्छा से हो रहा है। वह तमाम अपमान और उपहास आदि की बातें गुरु गोविन्दसिंह के बहादुर सिखों को अपनी दृढ़ता से विचलित न कर सकीं वे बिना किसी तरह की घबराहट के शहीदी पाने के लिये आगे बढ़ते चले गये।

जब जुलूस किले के पास पहुँचा तो फरूख सियर के हुक्म से बन्दासिंह, बाजसिंह भाई फतहसिंह और दूसरे कुछ सरदार त्रिपोलिया जेल मे डाल देने के लिये इब्राहीम कोतवाल के हवाले कर दिये गये, बन्दासिंह की स्त्री और उसका चार वर्षीय पुत्र अजयसिंह तथा उसकी दाया को हरम के नाजिर दरबारखां के हवाले कर दिया और बाकी सिखों का सरबराखांन के हाथ कत्ल कर देने के लिये सौंप दिया।

बादशाह के हुक्म से ५ मार्च सन १७१६ को चांदनी चौक में चबूतरा कोतवाली के सामने सिखों का कत्ल आरम्भ हुआ। प्रतिदिन एक सौ सिखों को जेल से निकाल कर कत्लगाह मे कतारें लगाकर बिठा दिया जाता और सिकलीगर जल्लादों की तलवारो को तेज करने के लिये भी उनके पास खडे कर दिये जाते। वहाँ हरेक को यह कहा जाता कि यदि वह सिख धर्म को छोडकर इस्लाम कबूल करले तो छोड़ दिया जायगा। परन्तु स्टीफिन्सन की लिखत के अनुसार आखिर दम तक कोई भी ऐसा सिख न देखा गया था। जिसने कि अपने धर्म को त्यागना कबूल किया हो, वे खिड़े माथे मृत्यु को आ देते और वाहि गुरु-वाहि गुरु कहते हुये अपनी गर्दनें जल्लादों के सामने झुका देते। कई दफा वे एक दूसरे से पहले कत्ल होने के लिये आग्रह करते। पूरा सप्ताह यह कत्ल जारी रहा और इस तरह यह तमाम के तमाम सिख मार दिये गये। कत्ल के बाद उनके धड़ एक ढेर मे फैंक दिये जाते और रात को गाड़ियों पर लादकर सड़कों पर लेजाकर दरख्तों पर टाग दिये जाते। मिर्जा मुहम्मद हारिसी लिखता है कि "जब मैं कत्ल आरम्भ होने के दूसरे दिन यह तमाशा देखने गया तो क्या देखता हूँ कि उस दिन के

कटे हुये धड़ काफी दिन चढ़े तक खून और धून में लथपथ धूप में बाहर पड़े थे।"

खाफी खान कहता है—"कि इस समय सिखों के खुशी से कत्ल होने की बे शुमार कहानियां दिल्ली में सुनी जाती थीं परन्तु उसने अपनी आँखों देखी एक घटना का वर्णन इस प्रकार किया है। इन सिखों में एक छोटी उम्र का सिख नौजवान था, जो कि एक विधवा का एकलौता पुत्र था तथा जिसकी शादी हुये कुछ ही दिन हुये थे। दीवान रतनचंद के कथनानुसार उस माता ने बादशाह के हुजूर में अर्ज की कि उसका पुत्र सिख नहीं है। अतः उसे छोड़ दिया जाय। सैयद अब्दुल्ला खां आदि के कहने पर बादशाह ने उसकी रिहाई का हुक्म दे दिया उसकी मां परवाना लेकर कत्ल गाह में पहुँची। उस समय ऐन वक्त उसके बच्चे की गर्दन पर तलवार चलने वाली थी जब शाही परवाना कोतवाल को पहुँचा तो उसने उस युवक को बाहर निकालकर कहा तुम्हें छोड़ दिया गया है परन्तु उस बच्चे ने जाने से इन्कार कर दिया और जोर २ से रोना शुरू कर दिया और कहने लगा मेरी माँ झूठ बोलती है। मैं दिल और जान से अपने गुरु के श्रद्धालुओं और सेवकों में से हूँ। मुझे जल्दी ही वहाँ पहुँचाया जाय जहाँ मेरे गुरुभाई गये हैं। बूढी माँ के चीख और पुकार सरकारी अफसरों के समझाने बुझाने का उस सिख बच्चे पर कोई असर नहीं हुआ और वह अपने धर्म पर अटल रहा। दर्शकों की हैरानी उस समय और भी बढ़ गई। जबकि वह बहादुर बच्चा जल्लाद कत्लगाह की ओर बढ़ा और शहादत पाने के लिये बड़े धैर्य्य के साथ अपनी गर्दन जल्लाद के सामने झुकादी। एक ही क्षण में जल्लाद की तलवार उठी और उस बच्चे की पतली सी गर्दन पर गिरती हुई उसे सिख धर्म के पैदा किये हुये शहीदों में अमर कर गई।"

जिस समय यह कत्ल हो रहे थे। उस समय ईस्ट इंडिया कम्पनी का एक डेपूटेशन फरुखसियर की कचहरी में आया हुआ था। उसने यह खूनी नजारे अपनी आँखो देखे और अपनी १७ मार्च की चिट्ठी में फोर्ट विलयम के गवर्नर को इसका हाल लिखा था.—

इस पत्र के अंतिम फिकरे में उसने लिखा था "यह बात कोई कम ध्यान करने वाली नहीं है कि सिख किस सब्र और हिम्मत के साथ ईश्वर-इच्छा को कबूल करते है और आखिर तक यह नहीं देखा गया कि इन कत्ल होने वालों में से किसी एक ने भी अपने धर्म को त्यागा हो।"

इन कत्लों के बाद तीन महीने तक उन तमाम लोगो के पता निकालने की कोशिश की गई जिन्होंने बन्दासिंह को उसके युद्धों और अन्य कार्य्यों में सहायता दी थी। आखिर १६ जून १७१६ इतवार-जबकि आस्मान पर तीन नीजे सूर्य्य चढा था बन्दासिंह व उसके पुत्र अजयसिंह, सरदार बाजसिंह रामसिंह, भाई फतहसिंह, आलीसिंह, बख्शी गुलाबसिंह और दूसरे कुछ साथियों को जो कि देहली के किले में कैद थे किले से निकाला गया और जजीरों में जकड़े हुये उसे हाथी पर चढ़ा कर शहर के बाजारों में से फिराते हुये ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के मजार पर जो कि कुतुबमीनार के पास है, ले गये। यहाँ उसे बहादुरशाह की कब्र के इर्द गिर्द परिक्रमा कराई गई।

जब बन्दासिंह को हाथी से उतारा गया तो उसे इस्लाम कबूल करने के लिये कहा गया। परन्तु गुरु गोविन्दसिंह का यह अनन्य भक्त धर्म को छोड़ने को कैसे तयार हो सकता था? इस पर उसका चार साला मासूम बच्चा उसके सामने लाया गया और उसे कहा गया कि वह उस बच्चे को छुरी से कत्ल करे। परन्तु क्या कभी कोई पिता भी अपने बच्चे को कत्ल करने के लिये तैयार हो सकता है। जल्लाद ने एक लंबे छुरे से बच्चे के टुकड़े टुकडे कर दिये और उसका तड़पता हुआ दिल निकाल कर बन्दासिंह के

मुँह में ठूंस दिया परन्तु वह ईश्वरेच्छा में मग्न अडोल उसी तरह खड़ा रहा।

शीयरनुल-मुताखरीन में लिखा है कि इस समय एतमादुद्दौला मुहम्मद अमीनखाँ मौका पाकर आगे बढा और बन्दा के चेहरे से टपक रही महानता देखकर उसने कहा यह हैरानी की बात है कि वह आदमी जिसके चेहरे से इस तरहकी उच्चता और महानता प्रतीत होती है। उसने लोगों पर इस तरह की सख्ती की हो। बडे धैर्य के साथ बन्दासिंह ने उत्तर दिया मैं आपको बतलाता हूँ जब भी कभी मनुष्य शुभ कर्मों के रास्ते से हटकर शैतानी तरीके अख्तियार करने और तरह तरह के अत्याचार करने लग पडते है तो ईश्वर मेरे जैसों को इस किस्म के लोगों को सजा देने के लिये नियत करता है। परन्तु जब दंड का पैमाना पूरा हो जाता है तो वह तुम जैसों को खड़ा कर देता है ताकि उसकी सजा उसे मिल जाय।

इसके बाद उसकी अपनी बारी आई सबसे पहले उसकी दाईं आँख निकाली गई और फिर बाईं, उसके बाद उसका दायाँ पैर काटा गया और उसके दोनों हाथ शरीर से जुदा कर दिये। इसके बाद लाल २ गर्म लोहे की चिमटियों से उसकी बोटियाँ नोंची गईं और फिर उनका सिर काट कर उसके टुकड़े टुकड़े कर दिये गये। बन्दासिंह इन तमाम कष्टों में शांति रहा और भगवान से कहता रहा, प्रभु ऐसा न हो कि आपका यह दास इस कठिन परीक्षा में फेल हो जाय।

इसके बाद दूसरे सिखों को भी कत्ल कर दिया गया। बाजसिंह सम्बन्धी इस समय की एक घटना इस प्रकार वर्णन की गई है कहते हैं इस समय बादशाह के भाई खदियर ने शेष सिखों को अपने सामने बुलाकर कहा, मैंने सुना है कि एक सिख बाजसिंह नामी बहुत बड़ा बहादुर है और गुरु की उसपर बडी रहमत है। बाजसिंह ने इसपर आगे बढकर कहा मैं हूँ गुरु जी का सेवक बाजसिंह। बादशाह ने कहा, ओह तुमतो बड़े बहादुर आदमी थे। परन्तु अब कुछ नहीं कर सकते। बाजसिंह ने कहा, अगर तुम मेरी बेडियाँ उतार दो तो मैं अब भी तुम्हे कुछ तमाशा दिखा सकता हूँ। बादशाह ने उसकी बेडियाँ निकाल देने का हुक्म दे दिया और जब बाजसिंह जरा आजाद हुआ तो वह बाज की तरह बादशाह के आदमियों पर झपट पड़ा और दो तीन को अपने हाथों में पड़ी हुई हथकड़ियों से मार गिराया। इसके बाद वह एक अमीर की तरफ लपका परन्तु बादशाह के नौकरों ने उसे झपट कर पकड़ लिया और कत्ल कर दिया।

बन्दासिंह और उसके साथियों को देहली में कत्ल कर देने के बाद मुगलों ने उनकी राजसी ताकत को तोड़ने के लिये ही नहीं किन्तु तमाम की तमाम सिख कौम को मिटा देने के यत्न आरम्भ कर दिये। मुंशी ज्ञानेश्वर ने लिखा है कि "एक शाही हुक्म जारी किया गया कि सिख जाति के लोग जहाँ कहीं भी मिले उनको बिना पूछ ताछ के ही कत्ल कर दिया जाय।" मैलकम साहब कहते हैं–इस हुक्म को असली जामा पहनाने के लिये हरेक सिख के सिर की कीमत लगा दी गई।

डाक्टर फ्रेजर की लिखत से पता चलता है कि सिखों के लिये यह एक बड़ी कठिनाई का समय था। सिखों से दूसरे लोगों को पहचान सकने के लिये पंजाब के सब हिन्दुओं के नाम आदेश जारी किये गये कि वह अपनी दाढियाँ और बाल मुडवा डालें नहीं तो उन्हे मौत की सजा दी जायगी। जो कोई आदमी दाढ़ी और केश रखते हुये कहीं मिलता उसे फौरन कत्ल कर दिया जाता। इस समय अब्दुसमदखान ने शाही हुक्म की पालना में सिखों को मिटा देने के लिये फौजी दस्ते जिन्हे कि गश्ती फौज के नाम से पुकारा जाता था, सिखों को ढूंढ़ कर नेस्तनाबूद कर देने के लिये चारों ओर भेज दिये। जोकि सिखों का जंगली जानवरों की तरह शिकार करते। जले भुने बैठे मुसलमानों और निस्साहस

हिन्दुओं की ओर से उनको सहायता तो क्या मिलनी थी। उलटे वह उनकी जान के गाहक हो गये। इस तरह एक बड़ी भारी गिनती सिखों की पकड़ पकड़ कर कत्ल कर दी गई। कुछ सिख तो शिवालिक पहाड़ियों में जा घुसे और कुछ उत्तर पश्चिमी पहाड़ी देश पटोल और कल्लू की ओर, कुछ सुदूर जंगलों में जा छिपे।

सन १७१८ ई० में अब्दुलसमदखां का ध्यान दूसरे राजसी विद्रोहने खींच लिया और उसने शाहदाद खां खेसगी को ईसाखान मंझ की बगावत को दबाने के लिये भेजा। इस तरह ढील के समय कुछ सिख आहिस्ता-आहिस्ता जंगलों और पहाड़ों से निकल कर अपने घरों में आ, आबाद होने लगे। अब तक अब्दुलसमदखान का जोश भी कुछ ठंडा हो चुका था। और उसकी सख्ती केवल उन आदमियों तक ही रहने लगी। जिन पर कि बन्दासिंह के नेतृत्व में सिखों की सहायता करने का शक होता था। सिखों के घरों की ओर वापिस आ जाने पर कुदरती तौर पर गुरुद्वारों की आमदनी भी बढ़ने लगी और खास कर दरबार अमृतसर में संगतों की आवाजाई काफी हो गई, दिसम्बर सन १७०४ में लूटे खसोटे जाने के बाद आनन्दपुर कभी अपनी पुरानी महानता को हासिल नहीं कर सका। इसके तबाह हो जाने के साथ ही यह पंजाब में सिख आबादीवाले इलाकों से बहुत दूर था। दूसरी ओर दरबार साहब अमृतसर पंजाब में होने के कारण ज्यादा निकट था। इसलिये आनन्दपुर का स्थान भी इसी ने ले लिया। दरबार साहब की बढ़ रही पूजा के धन ने कुछ लालचियों की आंखों को चुंधियाना आरम्भ कर दिया और उन्होंने आमदनी को बांटने के लिये झगड़ा करना आरम्भ कर दिया। खालसा गुरु के नाम पर अर्पण की हुई संपत्ति को अपने निज के कामों में प्रयोग करने के पक्ष में न था वह इसे धर्म-विरोध समझता था। इस खींचातानी में दो पार्टियां सी बन गईं। इन पार्टियों में एक ओर बाबा विनोदसिंह थे जो कि गुरुदासनंगल के घेरे में से बन्दासिंह के साथ मतभेद के कारण निकल आये थे, इनके साथियों ने कुछ दूसरे आदमियों को बन्दई-बन्दई पुकारना आरम्भ कर दिया और स्वयम् को 'तत खालसा' दोनों या कहे जा रहे बन्दई भी चाहते थे कि उनको भी दरबार साहब की आमदनी में से आधा हिस्सा मिलना चाहिए। जिनको कि तत खालसा एक फूटी कौड़ी भी नहीं देना चाहते थे। गुरुओं के जीते जी यह आमदनी गुरु की सेवा में भेज दी जाती थी। परन्तु दशमेशजी के बाद माता सुन्दरी जी ने यह आज्ञा की थी कि यह सब वहीं गुरु के लंगर में खर्च कर दी जाय। और माता सुन्दरी ने संवत् १७७८ के आरम्भ में भाई मनीसिंह जी को देहली से अमृतसर दरबार साहब का प्रबंध करने के लिये भेज दिया। वैसाखी आने वाली थी उसको मनाने के लिये बड़े जोरों से तैयारियाँ हो रही थीं। दोनों पार्टियां जरूरत पड़ने पर अपनी ताकत को आजमाने के लिये बहुसंख्या में एकत्र होने लगीं ततखालसों ने अकाल बुंगा में अपने डेरे जमा लिये और बन्दई खालसों ने मौजूदा झंडा बुंगा के स्थान पर दर्शनी ड्योढी के नजदीक। मेला बड़े जोरों से भरा और चढ़ावा भी खूब आया। खतरा था कि चढ़ावे की बांट पर तलवार न चल जाय इसलिये भाई मनीसिंह ने पर्चियां डाल कर इसका फैसला कर लेने की सलाह दी और जब पर्चियां डाली गईं तो बन्दई खालसों की पर्ची डूब गई। जिससे कि फैसला ततखालसों के हक में हो गया। बहुत से बन्दई खालसों ने तो इस फैसले को मान लिया परन्तु उनके लीडर खेमकरन निवासी महन्तसिंह ने मानने से इनकार कर दिया। और बात ही बात में झगड़ा बढ़ जाने पर ततखालसे बन्दइयों पर टूट पड़े और उनको ज्यादा गिनती के सामने कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। महन्तसिंह सम्बंधी आगे कुछ पता नहीं चलता कि क्या हुआ। इसके बाद

ततखालसों का जोर बढ़ गया। और आहिस्ता-आहिस्ता बन्दई खालसों की गिनती कम होती गई। आजकल बन्दासिंह की स्मृति मे स्थापित हुआ एक गुरुद्वारा डेरे बन्दासिंह के नाम से रियासत जम्मू के परगना रियासी में भम्भर ग्राम के नजदीक दरियाये चित्रक के किनारे पर है।

इस बीच में दिल्ली के तख्त पर मुहम्मदशाह आ चुका था और जल्दी ही वहां उसे घरेलू झगडे की आशका न थी अत उसने पंजाब में इस आग को सुलगते देख कर तुरन्त ही उपाय करना चाहा।

फिर दमन

मुल्तान के हाकिम को लाहौर मे लाहौर के हाकिम को मुल्तान मे बदल कर लाहौर के नये हाकिम जकरियाखा को आज्ञा दी कि शीघ्र ही इन सिर उठाने वाले सिखों का इलाज करो।

बड़े मियां सो बडे मिया छोटे मिया सुभानअल्लाह के अनुसार जकरियाखा स्वभाव से ही पिचाच था उसने लाहौर का चार्ज लेते ही गांवों में फौज भेज दी और सिखों को नेस्तनाबूद करने का हुक्म दे दिया। यह फौज गाव-गाव घूमकर सिखों को दण्ड देने लगी। जहा भी जाती सिखों को लूटती और उन्हे कत्ल करती। इसका फल यह हुआ कि सिखों को एक स्थान पर बसना मुश्किल हो गया, वे जब सुनते कि फौज आरही है तो जगलों को भाग जाते किन्तु घरों मे जो बूढे बच्चे रह जाते। यह लश्कर उनकी भी खूब दुर्गति करता। इसके साथ ही गांवो के चौधरियों के नाम हुक्मनामे जारी किये गये कि जिस किसी भी गाव मे सिखों को शरण दी जायगी। उस गांव को दड दिया जायगा। इस तरह सिखों को विवश होकर खानाबदोश होना पड़ा। कैसा होगा वह विपम समय जब सिख परिवार जगलों मे, खादरों और पहाड़ों में भटकते फिरते होंगे और उनकी तलाश मे फिरते होंगे फौजी दस्ते। इस समय तो उस आपत्ति की कल्पना करते ही रोंगटे खडे हो जाते है। जो लोग पकडे जाते उनका नाजिम के हाथों वध होता और जो भाग जाते वह भूखे प्यासे भटकते।

राजपूताने के इतिहास मे हम राना प्रताप को और उसके बच्चों को घास की रोटी खाते पढ़कर रो उठते हैं किन्तु पंजाब में हजारों सिख परिवार घास और पत्तियों पर गुजर कर रहे थे। उन दिनों पंजाब मे आज का जैसा पानी का भी सुपास न था। कहीं कहीं तो दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह कोस तक पानी प्राप्त न होता था। नदियों के किनारे दबाये हुए थे, नहरें थी नहीं। किन्तु बेचारे इन सब कष्टों को बर्दाश्त कर रहे थे। केवल धर्म की रक्षा के लिये।

धर्म के लिये उनके दिलों मे कैसा प्रेम था। वह इस बात से प्रकाश मे आजाता है कि जो घर किसी प्रकार देहातों मे ही पडे थे। वह अपनी कमाई को कौम के काम मे लगाते थे। बहुत सारी रोटियॉ उनके घरों मे बनाई जातीं और अपने पास के जगलों में अपने सहधर्मियो के खाने के लिये भेजते किन्तु यह प्रयत्न थे, ऐसे ही जैसे आटे मे नमक। जगलो मे फैले हुए लोगों को प्राय भूखा और अधभूखा ही रहना पड़ता और वे जंगली फलों और पत्तियों पर कई २ दिन तक गुजर करते रहते।

इस प्रकार का प्रयत्न करने वालों मे एक भाई तारासिंह जी थे। जिनका लंगर हर समय चलता रहता था। अपनी कमाई तो वे उसमें लगाते ही थे किन्तु कई एक बार उनको दूसरे भाई भी इस काम में मदद दे देते थे। उनके इस काम से सिखों में उनके प्रति बड़ी श्रद्धा थी। यहॉ तक कि नुसहिरा गॉव के चौधरियों के घोड़ों को चुराकर बेचने से दो सिख डाकुओं को जो रकम मिली, वह उन्होंने भाई तारासिंह जी के लगर में ही भेज दी। बात यह थी कि नौराहरे का चौधरी साहिबराय वहॉ के सिखों के खेतों में नित अपने घोडे छोड दिया करता था। जब वह समझाने से भी न माना तो वहॉ के सिखों ने बघेल

सिंह और अमरसिंह नामी सिखों से अपनी कठिनाई कही। वे उस रात उस चौधरी के घोड़ों को चुरा ले गये और सरदार आलासिंह जी के हाथ बेच आये। जो मूल्य मिला वह सब भाई तारासिंह जी के लंगर को दे दिया।

अमृतसर जिले के वाहिग्राम में भाई तारासिंह जी रहते थे। उन्होंने रहने के लिये एक छोटी सी कच्ची गढ़ी बना रक्खी थी। वे एक शांत स्वभाव और धर्म प्रिय सिख थे। उनका लंगर हर समय चलता रहता था। अपनी कमाई का सारा हिस्सा दान पुण्य में ही खतम करते थे। घर की हालत भी चंगी थी। गायें भैंसें और घोड़े सभी कुछ उनके था किन्तु वे एक धर्मात्मा पुरुष की तरह अपना जीवन बिताते। नेक कमाई करते और हरि का नाम जपते। अपने भाइयों की अन्न, धन और रुपये-पैसे से मदद करते। यही उनका स्वभाव था।

भाई तारासिंह की शहीदी

एक दिन जब कि भाई तारासिंह के यहाँ धर्म चर्चा होरही थी। साहिबराय थानेदार को लेकर पहुंचा और भाई जी से कहा कि आपके यहाँ हमारी घोड़ियाँ आई हैं, तलाशी लेंगे। भाई जी ने सहज स्वभाव से उत्तर दिया। तलाशी चोरों की ली जाती है, मैं कहता हूँ तुम्हारे घोड़े यहां नहीं आये। इस पर साहिबराय ने कटु शब्द कहना शुरू कर दिया। बातों से बढ़कर मामला मार पीट पर आ गया। थानेदार मारा गया और साहिबराय की जूतों से पिटाई हुई।

साहिबराय ने जाकर पट्टी के हाकिम जफरबेग से शिकायत की और यह भी बता दिया कि थानेदार को उन लोगों ने मुल्केअदम पहुँचा दिया है। जफरबेग ने उसी समय ५०० आदमी तारासिंह जी की गिरफ्तारी के लिये तैयार किये और गढ़ी पर चढ़ाई करदी। उस समय वहां लगभग १०० सिख मौजूद थे। ५०० आदमियों को इन रण बाकुरों ने ऐसा परेशान किया कि वह अपने अनेकों साथियों की बलि देकर भाग निकले जफरबेग भी भाग गया। किन्तु उसका भाई मारा गया।

जफरबेग ने तारासिंह द्वारा सिखों की सेवा और पन्थ की सहायता आदि सब बातों पर प्रकाश डालते हुए सूबा लाहौर को बताया कि मैं उसे दंड देने के लिये ५०० आदमियों के साथ गया, किन्तु निष्फल रहा अतः एक भारी सेना तारासिंह को पकड़ने के लिये भेजी जानी चाहिये। इसलिये उसने एक बड़ी सेना तारासिंह जी की गिरफ्तारी के लिये रवाना करदी।

उस समय भी गढ़ी में जो सिख मौजूद थे। भाई जी ने उन्हें उत्साहित किया और वे अल्प संख्या में होते हुए भी इस भारी सेना से भिड़ गये। सिखों ने खूब हाथ दिखाये। सैकड़ों नहीं हजारों को जमीन पर बिछा दिया।

इतने बहुसंख्यक सैनिकों के साथ चन्द सिखों का भिड़जाना उनकी दिलेरी का ही द्योतक है। भाई तारासिंह जी यद्यपि वृद्ध थे, किन्तु जवानों की तरह लड़े और लड़ते हुए उन्होंने सिखों को शूरताई की बातें कहकर उत्साहित भी किया। लड़ते-लड़ते शत्रुओं के तीर और बर्छों से उनका शरीर छलनी हो गया था। किन्तु जब तक भी वह अपने शरीर को सभाल सके डटकर लड़े और अन्त में 'वाहि गुरु जी की फतह' का नारा लगाते हुए। अपने धर्म की आन पर शहीद हो गए।

बालक हकीकतसिंह की कुर्बानी भी एक खास स्थान सिख शहीदियों में रखती है। हकीकतराय का जन्म बाघमल खत्री के घर माता कौरा के उदर से स्यालकोट में हुआ था। ७ वर्ष की उम्र में वह पढ़ने बिठा दिया गया, दस वर्ष की उम्र में उसकी शादी बटाले के सिख खत्रियों में

हकीकतसिंह धर्मी हुई। तुलसिंह, मलासिंह और कृपालसिंह बटाले में तीन भाई थे। हकीकतराय की शादी इन्हीं के यहां हुई थी।

शादी के बाद भी हकीकत का पढ़ना जारी रहा। एक दिन जब कि मुल्ला मकतब में नहीं था। तुरक लड़के हकीकत से लड पड़े। गाली गलौज और ईंट पत्थर भी दोनो ओर से फेंके गये। जब मुल्ला वापिस आया तो मुसलमान लडकों ने उससे शिकायत की इस हकीकत ने पैगम्बर साहब की साहबजादी को गालियां बकी है। हकीकत से मुल्ला ने जब पूछा तो हकीकत ने सच सच बात कह दी। उसने कहा, इन्होंने मुझे चिढाने की गर्ज से उस देवी की निन्दा की जिसको सारे हिन्दू मानते हैं और पहाड़ो मे है तथा जिसने महिषासुर जैसे राक्षसो को मारा है। गाली गलौज और मारपीट की पहल इन लडकों ने ही की है। मैंने जो कुछ कहा है वह बाद मे कहा है। तास्सुब मे पले हुए मुल्ला ने हकीकत की इस सचाई को सहन नहीं किया और वह उसे पकड कर काजी के पास ले गया। काजियों ने शरह की रू से हकीकत का अपराध अक्षम्य बताया। मकतब के लड़के आ गये और वे उसे सोटों से पीटने लगे। कोई उसके कान मरोड़ने लगा, कोई लात घूंसे लगाने लगा। जब शोर मचा तो शहर के आदमी इकट्ठे होगये और किसी ने हकीकत के मा बाप के पास भी खबर भेजी।

मामला अमीनबेग के पास गया। वह न्याय पसंद आदमी था, किन्तु काजी और मुल्लाओं ने इस अपराध को अक्षम्य बताया। अत. उसने यह मामला किसी और तरह निबटता न देखकर लाहौर के सूबेदार के पास भेज देना उचित समझा क्योंकि वह इस बात पर राजी था कि बालक हकीकत को क्षमा किया जाय।

हकीकत के घर मे शोक के बादल छा गये। मां कौरा बाप बाघमल और उनकी नववधू सभी विलाप करने लगे। उन्होने काजी को बहुत कुछ द्रव्य देकर भी राजी करना चाहा किन्तु काजी न माना हकीकत को बहली मे डालकर काजी लाहौर को चल दिया। पुत्र बिछोह से दुखी हुये मात-पिता और पारवारिक आदमी भी उनके साथ चले। उस समय रूपचद चौधरी ऐमनाबाद व दीवान जसपतराय ने भी काजी से बहुत कुछ कहा किन्तु वह अपने शरह हुक्म की दुहाई देकर हकीकत को छोड़ने पर राजी नहीं हुआ। आखिर मंजिल हकीकत को लेकर काजी लाहौर मे पहुँचा।

लाहौर मे दीवान लखपतराय और जगतसिंह दोनों ने काजी को समझाया किन्तु उसने हकीकत को छोड़ना मजूर नहीं किया। पॉच दिन के बाद खान बहादुर (जकरियाखॉ) ने कचहरी मे हकीकत और काजी को बुलाया उस समय दरबार मे लखपतराय, सूरतसिंह और जगतसिंह भी बुला लिये गये थे। काजियो और मुल्लों ने सर्व सम्मत से हकीकत के कत्ल या मुसलमान होने का फैसला दिया। उस दिन नवाब ने कचहरी बर्खास्त करदी दूसरे दिन हकीकत से उसने कहा, बच्चे तू मुसलमान होजा मैं तुम्हें हाथी घोडे और जागीर दूगा। अपने बेटे का जैसा व्यवहार करूंगा। तैंने बीबी फातिमाका अपमान करके बडा भारी गुनाह किया है किन्तु मुसलमान होने पर तुझे क्षमा तो कर ही दिया जायगा, और समस्त सुख भी तुम्हें मिलेगे, लेकिन बालक हकीकत ने हर बार स्पष्ट शब्दों मे अपना धर्म छोड़ने से इन्कार कर दिया।

अत मे माता उसके गले से लिपटी और फूट फूटकर रोती हुई कहने लगी। मेरे बेटे तुम मुसलमान हो जाओ मैं तुम्हारा यह मुखडा तो देखती रहूँगी। हकीकत ने मा से भी कह दिया, चन्द दिन की जिन्दगी के लिये मा, मैं अपने प्यारे धर्म को नहीं छोड़ सकता हूँ।

जगतसिंह शाही दीवान ने एक बार फिर सिफारिस की किन्तु काजी की जिद के आगे एक न

चली। अन्त में माता कौरा ने हिम्मत बाँध कर कह दिया। अच्छा बेटे जाओ। हां जाओ धर्मपर बलिदान। नवाब के हुक्म से जल्लाद हकीकत को दरवाजे के बाहर पूर्व ओर नरवास बाजार की कत्लगाह में ले आये जो कि अब गुरुद्वारा शहीदगंज के नाम से मशहूर है। सारा शहर हकीकत के दर्शनों को उमड़ पड़ा। हजारों नरनारियों के आँखों से आंसू बह रहे थे। जल्लाद ने तलवार निकाली। हकीकत ने सत-गुरु, सतगुरु कहकर अपनी गर्दन झुकादी।

'अगर' नाम के एक कवि जिसने कि हकीकत से केवल ४६ वर्ष बाद उसका काव्य-मय जीवन लिखा है, लिखता है कि उस दिन सारे लाहौर में हड़ताल हुई और सब ने रावी के किनारे हकीकत के शव का संस्कार किया जिसमें जगतसिंह, सूरतसिंह और लखपतराय जैसे शाही दीवान भी थे।

मुसलमान हाकिमों ने जितना ही सिखों को दमन करना चाहा उतने ही वे भी प्राणों पर खेलने लगे, कहावत है कि अति रगड़ से चन्दन में भी अग्नि उत्पन्न हो जाती है। वे भी यत्रतत्र और सर्वत्र जहां भी मौका देखते जा धावा करते और फिर पहाड़ियों में निकल जाते, गश्ती सेना का भी अब प्रभाव धीरे धीरे कम होने लगा। कभी २ वह मैदान में सामने आकर भी मुकाबिला कर जाते वरना दुश्मन को हैरान करने के लिये छापा उनका एक अमोघ साधन था।

चन्दन में आग

जब पंजाब के मुसलमान हाकिमों ने देखा कि हम इस प्रकार भी सिखों को नहीं दबा सके हैं तो उन्होंने एक हृदय हिला देने वाली घोषणा की वह इस प्रकार थी—"जो कोई सिखों की प्रगतियों की मुखबिरी करेगा उसे १०) और जो किसी सिख को पकड़ेगा उसे २५) गिरफ्तार करके थाने में पहुँचाने वाले का ५०) और सिर काट कर लाने वाले को सौ रुपये दिये जावेंगे सिखों की बर्बादी में पूरी सहायता देने वालों को जागीरें दी जावेंगी।" यह एक सम्मिलित घोषणा थी जो जालंधर लाहौर और सरहिंद के मुसलमान हाकिमों ने की थी।

रोमांचकारी घोषणा

लोभ बहुत बुरी बला है, इस कुकृत्य में चंद हिन्दुओं ने भी कलंक कालिमा का टीका अपने माथे लगाया और मुसलमानों ने तो इसे रोजगार समझ लिया। नित सिखों की हत्यायें, गिरफ्तारियां और मुखबरी होने लगीं।

खजाने की लूट

यह छापे केवल मुसलमानी रईसों और परगना अफसर पर ही मारे जाते थे एक बार उन्होंने उस शाही खजाने को भी तरनतारन में लूट लिया। जिसे दो हजार आदमी लाहौर से दिल्ली ले जारहे थे।

इस संघर्ष के समय में जो कुछ लोग मुसलमान हो जाते थे उन्हें अमृत पिलाकर अपने धर्म और समुदाय में मिलाने से भी सिख नहीं चूकते थे। जब दिल्ली से ३८ हजार सैनिक सिखों को बर्बाद करने के लिये भेजे गये तो लड़ाकू और छापा मारने वाले सभी सिख पहाड़ों में चले गये किन्तु उन फौजियों ने गाँवों में रहे-सहे लोगों को बहुत तंग किया। तंगी यहां तक की गई कि सिर के लंबे बाल और दाढ़ी वाले हिन्दुओं तक को मारा पीटा और कत्ल किया गया। पहाड़ों में जब यह खबर पहुँची तो सिखों ने गुरमता किया और तय कर लिया कि उनमें से जो भी सिख बनना चाहे शुद्ध कर लिया जावे। इस प्रकार अनेकों लोगों को मुसलमानी धर्म में वापिस करके सिख बना लिया गया।

धर्म संस्कार

सिखो को बल से न दबते देखकर मुल्क मे अपनी हुकूमत को कामयाब बनाने के लिये उनको जागीरे आदि देकर शात करना चाहा। इस मतलब के लिये लाहौर के हाकिम ने भाई सुबेगसिंह को नवाबी खिल्लत देकर अमृतसर भेजा जहाँ कि सिख एकत्रित हुए थे। पहले तो सिखो ने नवाब से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध रखने से इन्कार कर दिया परन्तु जब सुबेगसिंह जी ने कहा कि इस प्रकार एक तरफ तो वह सूबेदार की तरफ से बेखटके हो जावेगे दूसरी ओर वह आहिस्ता २ अमन के समय मे अपनी ताकत बढ़ा सकेंगे और यह समय तो खिल्लत परवान करलेने का है,यह खयाल पास होगया परन्तु इसे लेने के लिये कोई भी सरदार तैयार न होता था जिस किसी को कहते वही इनकार कर देता अन्त मे सबने इसे भाई कपूरसिंह जी को जो कि उस समय संगत में पखा झलने की सेवा कर रहे थे देने का फैसला कर दिया। कपूरसिंह जी ने यह कहकर स्वीकार कर लिया कि मैं आपकी आज्ञा का पालन करता हूँ। इस शांति के समय मे सिखो ने आपस मे मेल मिलाप से रहने और सिख धर्म के प्रसार के लिये प्रयत्न करना शुरु कर दिया। आपसी झगड़ो को निपटाने के लिये, भाई मनीसिंह, सरदार कपूरसिंह, बाबा विनोद, हरीसिंह, जस्सासिह और रामसिंह जी आदि को नियत किया गया।

पंथ के प्रमुखों ने इस समय जत्थे बनाकर गाँवो मे प्रचार के लिये भी भेजे हुए थे जो सिख धर्म का प्रचार भी करते थे और भेट पूजा भी लाते थे।

लेकिन यह सिलसिला थोड़े ही दिन चालू रहा, मुस्लिम शासक समझ गये कि जागीरों और इनामो की आमदनी से तो सिख अपनी ताकत बढ़ाते है। इसलिये उन्होने जागीर व इनामों की जब्ती शुरु कर दी।

जागीर वाले सिख अपनी आमदनी का एक बड़ा हिस्सा पंथ को देते थे और अमृतसर मे चढावे और पूजा मे भी अच्छा धन आजाता था।

जागीरों के इस प्रकार जब्त किये जाने पर सिखों ने समझ लिया कि मुस्लिम शासकों ने अपने सुलहनामे को खुद ही तोड दिया है अत. वे भी अब स्वतन्त्रता से उसी रास्ते पर चल निकले जो महावीर वन्दासिंह ने प्रशस्त किया था और काटेदार होते हुए भी शक्ति बर्द्धक था और जो उत्थान की ओर लेजाने वाला था। जत्थे बनाने और छापे मारने का काम फिर से चालू होगया इस बीच मे जो भी मुसलमान इनामदार, जागीरदार और रईस सिर-चढे होगये थे उनकी अच्छी तरह से शोध की।

फिर वही बातें

अपने २ जत्थे लेकर सिख लोग समस्त पजाब मे फैल गये। नवाब कपूरसिंह जी भी मालवा देश को चले गए। वहा उन्होंने अपना अच्छा संगठन किया। उनके देश मे पहुँचते ही चारों ओर के सिख उनके पास हाजिर हुए और उन्हे सम्मान मे उन्हे काफी भेटें दीं। भारी संग्रह किया।

लोग कपूरसिंह जी से इतने प्रभावित थे कि उनके वहाँ पहुँचते ही हजारों जाट जमीदार सिख बन गये। यही क्यों पटियाला के राजा श्री आलासिंह जी ने भी मय अपने परिवार के सिखी धारण करली।

सिखों के इस प्रकार के ढर्रे पर उतर आने के कारण नवाब लाहौर ने अमृतसर पर कब्जा करने की सोची। कई हजार सैनिक अमृतसर की ओर रवाना किये और वहाँ पर जो सिख थे। उन्हे हटा दिया। सिखों का एक और जत्था अमृतसर के दर्शन के लिए आ रहा था। उसके साथ भी मुस्लिम सेना की भिडन्त हुई और उस सिख जत्थे को लौटना पड़ा।

अमृतसर पर कब्जा

मुसलमान अफसरों ने अमृतसर के सरोवर को देखकर विचार किया कि यथा सम्भव इस तालाब के पानी का पीकर ही सिखों में इतना जोश आ जाता है। अत. अच्छा हो इनका यहाँ आना जाना ही बन्द कर दिया जाय। बस ऐसा ही किया गया जो भी सिख वहाँ आ जाता उसके साथ बुरा सलूक किया जाता। अमृतसर में से सब सिखों को हटा दिया गया। सिर्फ एक भाई मनीसिंह जी ही ऐसे आदमी थे जिन्होंने अमृतसर को नहीं छोड़ा वास्तव में वे इस प्रकार के मीठे स्वभाव के थे कि उनसे हिन्दू मुसलमान सब ही खुश रहते थे।

भाई मनीसिंह की शहीदी

भाई मनीसिंह जी एक शांत पुरुष और देवता स्वभाव के आदमी थे। आपका जन्म मालवा प्रदेश के कियोवाल नामक गाँव में जाट जमींदार चौधरी भीकाजी के घर हुआ था। आप पांच भाई थे। जिनमें सबसे बड़े आप ही थे। एक बार चौधरी भीकाजी गुरु गोविन्दसिंह जी के दर्शनों के लिए गए। बालक मनीसिंह भी उनके साथ थे। कई दिन तक दोनों बाप बेटों ने उपदेश सुने। उस समय आपकी अवस्था केवल दस वर्ष की थी। गुरु जी मनीसिंह जी की चेष्टाओं और हाव भावों को देखकर खुश थे। अत. उन्होंने भीकाजी ने मनीसिंह को वहीं छोड़ जाने के लिये कहा।

पिता का खयाल था कि कुछ दिनों के बाद उनका पुत्र घर पहुँच जायगा किन्तु ऐसा हुआ नहीं वह तो गुरुचरणों में ही रम गये। अपनी प्रतिभाशाली बुद्धि से उन्होंने सिख धर्म को पूरी तरह से हृदयगम किया था। शिक्षा भी ऊंचे दर्जे की प्राप्त कर ली थी। गुरु जी उनसे प्रसन्न थे। अत उन्हें योग्य बनने में कोई कठिनाई नहीं पड़ी।

सबसे अधिक महत्व का काम आपका यह था कि आप जन्म भर ब्रह्मचारी रहे। शादी नहीं की। सिख लोगों पर आपका बड़ा असर था। हजारों ही लोगों ने उनसे सिख धर्म की दीक्षा ली थी।

आप जितने विद्वान थे। उतने ही धैर्यवान भी थे। आनन्दपुर से निकलने पर गुरु पत्नियों को सुरक्षा के साथ दिल्ली में आपने ही पहुँचाया था।

दमदमा में बैठकर जिस समय गुरु ग्रन्थसाहब की दशम पातशाह ने नई बीड़ तैयार की तो उनके लेखक आपही बने थे। हमारे सामने जो दशम ग्रन्थ है उसका संकलन भी आप ही ने अनेक सिख विद्वानों के साथ मिलकर किया था।

यह भी कहा जाता है कि 'श्री आदि गुरु ग्रन्थसाहब' जिस रूप में आज कल है। वह रूप आपने तैयार किया था। पहिले ग्रन्थ साहब का रचना क्रम गुरु क्रम से था किन्तु आपने राग क्रम से कर दिया। इस प्रकार यह कठिनाई अवश्य हो गई कि प्रत्येक गुरु की वाणियों को सहज ही नहीं ढूंढ़ा जा सकता किन्तु फिर भी आपने यह सहूलियत रक्खी कि रागनियों और वाणियों में पहचान करने के लिये कि यह अमुक गुरु जी की हैं महला नम्बर दे दिये हैं। उदाहरणार्थ जहाँ २ जिन जिन वाणियों के आदि में महला १ लिखा हो। वह सब प्रथम गुरु श्री नानकदेव जी महाराज की हैं। यह भी कहा जाता है कि सिख लोग आपके इस कार्य से असंतुष्ट हुये थे किन्तु आपने क्षमा मांगली।

पंथ के प्रमुख लोगों में आपकी गिनती होती थी। इसके सिवा अनेकों मुसलमान भी आपकी विद्वता और बोलचाल की मिठास और सद्व्यवहार पर मुग्ध थे। आपके चारों ओर धर्म जिज्ञासुओं की भीड़ लगी रहती थी। आप सबके प्रश्नों का उत्तर देते और सब ही का समाधान करते।

अमृतसर के दर्शन के लिये आने जाने वाले सिखों का तंग किया जाता था और वे निराश लौट

जाते थे। इससे भाई मनीसिंह जी के हृदय पर बडी चोट पहुचती। वे यह भी अनुभव करते थे कि ग् चन्द दिनो पहले हजारों सिख बने रहते थे। और साथ २ हरि मन्दिर में भजन पाठ करते थे। आ यह पवित्र स्थान सुनसान हो गया है।

इन्हीं सब बातों के ख्याल करके वे बहुत दुखी भी होते थे। अंत में उन्होंने अमृतसर में रहने वाले अफसर से प्रार्थना की कि कम से कम एक साल मे तो सभी सिखों को यहाँ दर्शन, कर लेने के लिये आने दिया जाया करे। अमृतसर के अफसर ने उनसे कहा हम तो ऐसी इजाजत नहीं दे सकते, हा आप लाहौर से इजाजत हासिल करले तो हमे कोई एतराज नही होगा।

भाई मनीसिंह जी ने आखिर लाहौर के हाकिम के पास ही दिवाली पर मेला भरने की इजाजत के लिये लिखा।

लाहौर के हाकिम ने अपने सलाहकारों से मंत्रणा करके भाई जी के पास उत्तर भेजा कि अमृतसर मे दिवाली पर पूर्ववत मेला भरने की इजाजत यो ही नहीं दी जा सकती। यदि पाच हजार रुपया महसूल के देना मजूर करो तो मेला भरने की इजाजत दी जा सकती है।

भाई मनीसिंह जी ने सोचा कि मेले मे बे शुमार सिख आयेगे। अत. पाच हजार रुपया दे देना कोई भी कठिन न होगा और इस मेले से जो लाभ होगे वे खालसा के लिये बहुत काम के साबित होंगे। क्योंकि वह मिलकर भविष्य का प्रोग्राम बना सकेंगे। इसलिये उन्होंने स्वीकार कर लिया और मेले का आयोजन करने लगे। प्रत्येक गाम और नगर मे खबर कर दी गई कि दिवाली पर सिख लोग आकर अपने पवित्र मेले को भरे और हरि मन्दिर जी के दर्शन करे।

इधर नवाब लाहौर ने सोचा कि यह मौका भी खूब हाथ आया है। इस समय अपनी फौजें भी अमृतसर भेज देनी चाहिए, जो मेले मे आये हुये सिखो का एक ही बार मे खातमा करदे।

फौजों के अमृतसर पहुँचते ही भाई मनीसिंह जी घबरा गये। वे समझ गये कि नवाब की नीयत मे फर्क है।

यह देखकर भाई मनीसिंह जी ने सिखो की ओर आदमी दौड़ा दिये। ताकि इस विछ रहे जाल से उन्हे सूचित कर दिया जावे। इससे सिख मेले की ओर आते हुये जहा भी थे वहीं रुक गये और जिससे नवाब की सिखो को तबाह करने की तजबीज सफल न हो सकी। इससे जकरियाखान बहुत झुनझुनाया और भाई मनीसिंह जी को गिरफ्तार कराके लाहौर बुला लिया।

रुपये का सवाल नवाब की तरफ से होने पर भाई मनीसिंह ने कहा, मेला लगता। चढावा आता। तो मै अवश्य रुपये देता। परन्तु आपकी फौजों के अमृतसर के निकट पहुच जाने के कारण मेला नहीं लग सका। इसलिये मेला न लग सकने का कारण आप है। इसलिये अपने ही कारण से मेला रुक जाने से और कुछ भी रकम न आने के कारण आपका रुपया मांगना उचित नहीं और ना ही मेरे पास रुपया है कि मैं दे सकूं।

परन्तु वहाँ सचाई और न्याय की तो बात ही नहीं थी। अपनी चाल न चल सकने के कारण गुस्से से नवाब ने भाई मनीसिंह के अग प्रत्यग जुदा कर देने का हुक्म दिया।

काजियों ने उनके सामने यह प्रस्ताव भी रखा कि यदि आप इस्लाम कबूल करले तो आपकी जान बख्शी जा सकती है।

भाई मनीसिंह जी ने जवाब दिया। मैं देखता हूँ कि मौत सबके लिये आती है। यदि आज मैं

मौत के डर से इस्लाम कबूल करलूं तब भी मौत तो आयेगी ही। इसलिये जब मौत रुक नहीं सकती तो मुझे अपने ही पवित्र धर्म में रहते हुए मरने में ही आनन्द मालूम होता है।

रहा यह सवाल कि मेरे शरीर का अंग प्रत्यंग काटा जायगा सो इसके लिये तो इतना ही कहना काफी है कि जो गर्दन कटाने को राजी हो जायगा। वह पैरों के टुकडे कटाने से ही क्यों हिचकेगा।

लाहौर शहर में यह खबर बिजली की भांति फैल गई। शहर में जो सिख रहते थे। वह तिलमिला गये और घरों के सामान, बर्तन, स्त्रियों के गहने पाते बेचकर भी उन्होंने पांच हजार रुपये इकट्ठे किये और भाई जी को छुडाने चले।

किन्तु भाई मनीसिंह जी को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने उन सिखों से कहा—मैं रुपया देकर अपने आपको छुड़ाना नहीं चाहता।

जल्लादों ने भाई जी को वध स्थल पर ले जाकर जो कि आज शहीदगंज के नाम से काफी मशहूर हो गया है। उनके अंग के प्रत्येक हिस्से को जुदा कर दिया। यह घटना माघ सुदी ५ संवत १७९४ की है।

भाई मनीसिहजी की शहीदी ने सिखों में आग सी लगा दी। जिसको बुझाने के लिए जकरियाखान ने फिर से अपनी गश्ती सेनायें इलाके में भेज दीं ताकि सिख किसी जगह एकत्र न हो सके।

इसी समय नादिरशाह दुर्रानी हिन्दुस्तान को लूट खसूट कर अपने देश को वापिस जा रहा था। अपने घर बार से निकाल दिये जाने के कारण सिख भूख प्यास से दिन गुजार रहे थे। शहरों में उनको बसेरा न था। ग्रामों में से गश्ती फौजें ने उन्हें जंगलों को निकल जाने के लिए मजबूर कर रखा था और जब वे जंगलों में पहुँचते तो वहां आग लगा दी जाती थी। ऐसी विपत्ति के समय में सिखों के लिये जीवन निर्वाह कर सकना अति कठिन हो रहा था। इसलिये उनके पास इसके सिवा कोई चारा ही न था कि जिन लोगों ने उन्हे बेघर बार का किया था। उन पर आक्रमण करके उनसे अपनी अपहृत वस्तुओं को वापिस कर ले या अत्याचारी शासकों पर छापा मार के अपने निर्वाह का वसीला बना सके। लौटता हुआ नादिरशाह जब शिवालक की पहाडियों में से गुजर रहा था। तो सिखों ने उस पर छापा मारने आरम्भ कर दिये और भारत की लूट से लदे हुए माल का बहुत सा बोझ हल्का कर दिया।

ईरान, अफगानिस्तान और हिन्दुस्तान का विजयी नादिर घर घाट से निर्वासित किये हुए अध नंगे सिखों की मार से घबरा उठा। और जब लाहौर का हाकिम जकरियाखान उससे मिलने आया, नादिरशाह ने पहला सवाल जो उससे किया था यह था यह कौन और किस प्रकार के लोग हैं कि जिन्होंने देहली की लूट से लदी हुई मेरी फौज के पीछे के हिस्से को लूट मारा है और जिनके भय से कूच के समय मेरी फौज की तरतीब टूटी जा रही है। इनका सरदार और मुल्क कहां है? इनका पता बताओ ताकि उसे खाक में मिला कर इनका नामो-निशान मिटा दूं। जकरियाखॉ ने उत्तर में कहा यह एक हिन्दू और मुसलमानों से निराले ही सक (सिख) धर्म के अनुयायी हैं। जंगल इनका देश है और घोडों की पीठ इनके घर। यह खड़े-खड़े ही सोते हैं। और चलते जा रहे ही खाते हैं। घी और नमक का स्वाद नहीं जानते। न असाढ़ मे पानी ढूंढते हैं और न सरदी में सेंकने को आग। हम इनको मार-मार कर थक गये हैं किन्तु वह उसमें ही सुख मानते हैं और बड़े फूले जा रहे हैं। पीसा हुआ अनाज नहीं खाते और भूखे-प्यासे मरते जाते हुए भी बड़ी सख्त लड़ाई करते हैं। अकेला-अकेला सैकड़ों से लड़ने को तैयार हो जाता है और मृत्यु से भय नहीं खाता। नादिरशाह ने यह बात सुनकर पूछा कि यह उम्मत किस पीर की है। जकरियाखान ने सिखों की उत्पति का हाल बताते हुए कहा कि इनका मुर्शिद बाबा नानक है जो कि एक

करामाती फकीर हुआ है। इनके पाचवे और नौवे गुरुओं को मुगल बादशाहों ने धार्मिक और राजसी शरारतों से मरवा दिया था। उनके दसवे पीर, गुरु गोविन्दसिंह के दो पुत्र तो लड़ाई में मारे गये और दोसूबा सरहिन्द ने जिबह करवा दिये थे। इनके एक बड़े सरदार को देहली में फर्रुखसियर ने मरवा दिया था और अनेकों को हमने मारा है। किन्तु यह बढ़ते ही चले जा रहे हैं। यह सुन कर नादिरशाह मुस्करा पड़ा और कहने लगा, "तो फिर इनसे डरना चाहिये वह समय नजदीक ही है कि जब यह सिर निकालेंगे और इस देश के वालिये बन जायेंगे।"

जकरियाखान मित्र तो सिखों का पहले से ही न था परन्तु नादिरशाह के कहने से उसे बहुत नाराजी आई और चिढ गया। अत उसने एक सिरे से ही सिखों का कत्ल आम करने का हुक्म दिया। यह दूसरा कत्लेआम था जो सवत १७९६ से १८०२ विक्रम तक रहा।

इस प्रकार के कत्लेआम के बाद हाकिमों ने यह रिपोर्ट कर दी कि अब कोई सिख शेष नहीं रहा और सब खत्म कर दिये गये है। इन्हीं दिनों मे भाई बोतासिंह और उनके एक और सिख साथी को जो तरनतारन के निकट जगल मे रहा करते थे। एक दिन दो जमींदारों ने उन्हें देखा। उनमें से एक ने अपने दूसरे साथी से पूछा क्या यह कोई सिंह जा रहा है, उत्तर मे दूसरे साथी ने कहा नहीं, सिंह कहा हो सकता है? यह कोई गीदड होगा जो छिप कर फिर रहा है। सिंह तो खतम कर दिये गये। यह बात भाई बोतासिंह को लग गई और उन्होंने दिल मे सोचा कि हमें अब जाहिर करना होगा कि सिंह अभी तक मौजूद हैं खतम नहीं हुए। इसलिये यह उसी वक्त वहां से निकल कर शाही सडक पर सराय नूरुद्दीन के निकट बैठ गया और आते-जाते मुसाफिरों से फी छकडा एक आना और फी गधा एक पैसा वसूल करना आरम्भ कर दिया कुछ समय ऐसे ही चलता रहा और किसी ने उससे पूछा ताछ न की। परन्तु केवल कर वसूल कर लेना तो भाई बोतासिह का लक्ष्य न था वह तो शाही शासकों को यह बात जता देना चाहता था कि सिख समाप्त नहीं हुए किन्तु जिन्दा हैं। इसलिये उसने जकरियाखान को इस प्रकार चिट्ठी लिखा था—

चिट्ठी लिखदी सिंह बोता। हथ्थ है सोटा।
आना लाया गड्डे नूं। ते पैसा लाया खोता॥
आखो भाभी खानों नूं। यों आखें सिंह बोता॥

बोतासिंह का इस प्रकार का पत्र जब लाहौर के सूबेदार जकरियाखान पर पहुँचा तो उसने जलाउद्दीन नामी एक फौजी अफसर को सेना देकर बोतासिंह को गिरफ्तार करने के लिये भेजा भाई बोतासिंह अपने साथी समेत लडने को तैयार हो गये। एक तरफ हाथों मे केवल सोटा लिये दो सिख, और दूसरी तरफ सूबेदार लाहौर का एक सौ सैनिकों का फौजी दस्ता। इन दोनों ने हथेली पर सर रक्खे हुए अपनी पीठें जोड लीं और घूम-घूम कर सैनिकों के वारों को रोकने लगे। जब तक उनमें जान रही किसी को अपने शरीर से हाथ लगाने का मौका नहीं दिया। आखिर दो आदमी सौ सैनिकों का कहां तक मुकाबला कर सकते थे। उनके बहुत से आदमियों को जख्मी कर के अन्ततः शहीद हो गये।

मस्साखान ने हरिमन्दिर मे अपनी चारपाई डाल ली थी और उस पर बैठा हुआ हुक्का गुड़-गुड़ाया करता था। और दरबार साहब को विविधि दुराचारो का स्थान बना दिया था।

बुलाकासिंह नामी एक सिख ने जब यह हाल अपनी आँखों से देखा तो वह अपने साथियों को सूचना देने के लिये निकल पड़ा। वह उसी समय बीकानेर की ओर चल पड़ा, क्योंकि सिख उधर ही

चले गये थे। एक तो उधर बालू के टीबे और दूसरे पानी का अभाव इसलिये मुसलमान सेनायें उधर बहुत ही कम पहुची थीं।

यह जिस समय सिखो के उस टोल मे पहुचा जो बीकानेर राज्य मे रहता था उस समय वहाँ पर उनका दीवान लग रहा था। इसने दरबार की बेइज्जती और मस्साखां के दुराचारों का किस्सा कह सुनाया, जिसे सुन कर क्रोध मे सिखों की मुट्ठियां बंध गई। उनमे से कई ने तो कहा बुलाकासिंह तू उस हालत को बर्दास्त कर मरा, हमे तो यही आश्चर्य है। अपने धर्म स्थान की रक्षा के लिये तेने अपना सीस क्यों नहीं दिया। बुलाकासिंह लज्जित हो गया।

उन सिखो मे बुड्ढासिंह जी नामी एक बूढे और उत्साही सिख ने उपस्थिति सिखो को संबोधित करते हुए कहा—"सिहो! आप मे है कोई ऐसा शेर नर जो अमृतसर जाकर मस्सेखाँ रंघड का सिर उतार लावे। इन जोशीले वाक्यो को सुन कर भाई महतावसिंह मंडीकंबो वाले और सुक्खासिंह जी मीराकोटये नाम के दो सिंह खड़े हुए और तलवार को उठाते हुए कहा, यह सेवा हमे बख्शी जानी चाहिए। चारों ओर से 'वाहि गुरु जी का खालसा' की ध्वनि हुई।

आप दोनों ही मीराकोट के जाट जमीदार थे और इनके बाप गुरु गोविन्दसिंह जी से पाहिल लेकर सिख धर्म में दीक्षित हुए थे।

जब यह दोनों वीर अमृतसर के निकट पहुँचे तो मुसलमानो का वेश धारण किया और एक थैले में पैसे भरे।

अमृतसर पहुंचकर पहरेदारों से कहा कि हम अपने इलाके का लगान अदा करने के लिये आये है और जल्दी ही लौट जाना है। घोड़ों को वृक्षों से बाध कर भीतर हरि मन्दिर मे घुस गये। दोपहरी का का समय और अंधड़ का चलना। ढाटा बॉधे हुये दो नौजवानों के प्रवेश से मस्से खॉ चौंका नहीं क्योंकि अंधड़ के समय में पंजाब में सभी लोग ढाटा बाध लेते हैं।[1] वह पूछना ही चाहता था कि आप लोग किसकी इजाजत से भीतर आये हैं कि उन्होंने पैसों का थैला उसके सामने रख दिया। ज्योंही वह नीचे गर्दन करके थैले को देखने लगा। भाई महतावसिंह ने तलवार के एक ही हाथ मे उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। भाई महतावसिंह जितनी देर मे मस्से खा के सिर को थैले मे रक्खे उतनी देर में सुखानसिंह ने अपनी तलवार से उन लोगों का सफाया कर दिया जो वहाँ नाच रंग के मजे में शामिल हो रहे थे। दोनों वीर तुरन्त ही बाहर आये और घोड़ों पर सवार होकर यह गये वह गये।

मस्से खां के साथियों को जब तक पता चले और वह पकड़ने के लिये तैयार हो, तबतक तो वे कई कोस निकल गये। और पीछा करने वाले शत्रुओं के काफी जोर लगा लेने पर भी हाथ नहीं आये। उत्साह से उनका दिल उमंगे ले रहा था और हवा से उनके घोड़े बात कर रहे थे।

हमारा अनुभव ऐसा है कि जिन कौमो का निर्माण शांति के समय मे होता है, उन मे तात्विक लोग भले ही पैदा हो ले किन्तु शूरमाओ की बेहद कमी होती है और जिन कौमों का निर्माण संघर्ष के समय में होता है। उनमे शूरमाओं का घाटा नहीं रहता। शाति के समय की बनी कौमे तूफान में मिट भी शीघ्र ही जाती हैं। बौद्ध लोगों का उदाहरण हमारे सामने शाति के समय की बनी कौमों मे से

१ मुँह को ढकते हुए जो कपडा ठोडी के नीचे होते हुये कानो के पास से सिर पर बाधा जाता है, उसे ढाटा कहते हैं।

हैं। अफगानिस्तान से लेकर बंगाल तक जहाँ एक दिन सारा ही देश बौद्ध था। आज इस या साँभी बौद्ध दिखाई नहीं देते। ज्योंही ब्राह्मणों ने उन्हें नष्ट कर देने के लिये राजपूतों को जन्म दिया। त्योंही उनका लोप हो गया। खालसा जाति का निर्माण हुआ था तलवारों की चमक में। अत. तलवार से मिटाना उन्हें एक दम ही असभव होगया। जहाँगीर के समय से उन्हें मिटाने का कार्य आरम्भ हुआ था और अब दिल्ली में छठी बादशाहत चल रही थी किन्तु वे नहीं मिट सके। मिटते भी कैसे जबकि वे सघर्ष के समय पैदा हुए थे और सघर्षशील जातियों में जो योग्यता और गुण होते हैं वे सब उनमें पूरी मात्रा में थे।

जिस समय गश्ती फोजें उनकी टोह में होती थीं। उस समय वे लापता होते थे। भूख और प्यास को बर्दास्त करते थे। उस समय उनकी स्त्रियाँ चर्खे कातकर और पशु पाल कर अपना और अपने बच्चों का गुजारा करती थीं किन्तु जगलो में भटकने वालों की सहायता के लिये भी रकम इकट्ठी करती थीं। और जरूरत होने पर वे तलवारें लेकर निकल पड़ती थीं।

और जो भाई देहातों में रह जाते थे वे भी अपनी कमाई को खुद ही खाकर सन्तुष्ट नहीं होते थे, लगर खोलकर, पथ में देकर अनेक प्रकार से वह अपने धन को अपने भाइयों की मदद में लगाते थे। इसके बदले में कभी-कभी एक नहीं ऐसे अनेकों ही भाइयों को प्राण दंड की वह भी नृशंसता के साथ दी गई सजा भी भुगतनी पड़ती थी।

माझा देश के पूला नामक गाँव में रहने वाले भाई तारूसिंह जी भी ऐसे ही सत पुरुषों में से थे। जिन्हें अपने भाइयों की सेवा के उपलक्ष में प्राणों से हाथ धोने पड़े और उन्होंने इस भयँकर दड को बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार किया। आप जाट सिख थे और अपनी विधवा माँ तथा फुफेरी बहिन के साथ खेती का काम करके अपना जीवन निर्वाह करते थे। जिन दिनों की हम बात कह रहे हैं। उन दिनों आपकी अवस्था कुल पच्चीस वर्ष की थी। यद्यपि वे मालदार आदमी नहीं थे किन्तु धार्मिक श्रद्धा और कौमी मुहब्बत उनके हृदय में कूट कूट कर भरी हुई थी। खेती और श्रम से जो भी, वह पैदा करते अपनी सिख बिरादरी के परोपकारी कामों में लगा देते थे।

भाई तारूसिंह

धार्मिक श्रद्धा उनके हृदय में इतनी थी कि चाहे वह खाये बगैर रह सकते थे किन्तु धार्मिक वाणियों का पाठ किये बगैर नहीं रह सकते थे। जिस दिन उनके घर पर कोई खालसा भाई नहीं आते थे उस दिन को वह मनहूस दिन समझते थे।

उनका हृदय पवित्र, स्वभाव सरल और चेहरा सौन्दर्य पूर्ण था। चरित्र के वह पूर्णिमा की चांदनी की भांति निर्मल थे। उनके ऐसे चरित्र और स्वभाव की सभी लोगों पर छाप थी और सिख भाई उन्हें प्रेम की निगाह से देखते थे।

ऐसे तरुण देवता को मुसलमानी हाकिमों की क्रूर आँखें भला कब बर्दास्त कर सकती थीं। ज्योंही सूबेदार के पास उनकी शिकायत पहुँची कि तारूसिंह पंथ की मदद करता है। त्योंही और तुरन्त ही बिना किसी हिचकिचाहट के हुक्म हुआ तारूसिंह को पकड़ लाओ और हमारे सामने पेश करो।

सूबेदार ने कुछ आदमियों का एक जत्था भाई तारूसिंह जी को गिरफ्तार करने के लिये रवाना कर दिया। जब यह लोग भाई तारूसिंह जी के घर पर पहुचे तो तारूसिंह जी ने बड़ी शाति के साथ अपने को गिरफ्तार करा दिया।

रास्ते में वे जब जा रहे थे तो कुछ सिख आ गये क्योंकि वह इस बात को बर्दास्त नहीं करना

चाहते थे कि उनके आगे तारूसिंह जैसे पवित्र आदमी को कोई गिरफ्तार करके ले जाय। भाई तारूसिंह जी उनका अभिप्राय समझ गये और उन्होंने उनसे कहा, आप ऐसा काम मुझे बचाने के लिये करना चाहते हैं। किन्तु आपने यह खयाल नहीं किया कि फिर मुझे कब अपने धर्म पर बलिदान होने का मौका मिलेगा।

दूसरे दिन शाम को लाहौर पहुंचे। रात भर हवालात में रखने के बाद सूबेदार के सामने भाई जी को पेश किया गया, उन पर सूबेदार ने चार्ज लगाया। "तुम भागे हुए सिखों की मदद करते हो, खाना खिलाकर रुपये पैसे देकर अपने घर ठहरा कर। तुम्हारा यह कार्य बादशाह के दुश्मनों को मदद पहुँचाने वाले जुर्म में शामिल होता है। और इस जुर्म की सजा भी निहायत कठोर होती है।" भाई तारूसिंह जी ने उत्तर दिया मैं जिन्हें खाना खिलाता हूं। या मदद देता हूं वे खालसा हैं। मैं भी खालसा हूँ। इस तरह वे मेरे भाई हैं। भाइयों को मदद देने में मैं अपना कोई अपराध नहीं समझता।

बादशाह के दुश्मन नहीं हैं वे तो उन अन्यायों और अत्याचारों के दुश्मन हैं। जो शाही आदमियों द्वारा निरपराधों पर किये जाते हैं।

सूबेदार भाई तारूसिंह जी की उस प्रकार की खरी और निर्भयता पूर्वक कही हुई बातों से खुश नहीं हुआ। उसने कहा तारूसिंह हमारी निगाह में यह कृत्य अपराध है। इसलिए मैं तुम्हें चर्खी पर चढ़ाकर हड्डियां तोड़ने की सजा देता हूँ। चुनाचे भाई तारूसिंह जी को तीन दफा चर्खी पर चढ़ाकर उनको तरह-तरह की तकलीफें दीं। परन्तु उनके मुंह से हर बार अकाल-अकाल ही निकलता रहा। तीसरी दफा चर्खी में उतरवा कर नवाब ने कहा कि तुम अपने केशों को कटवाकर इस्लाम स्वीकार करलो। भाई तारूसिंह जी ने कहा केश मेरे प्राणों के साथ जायेंगे और अपने धर्म को किसी भी जब्र और भय से नहीं त्याग सकता हूँ।

सूबेदार इस बात को सुनकर आग बबूला हो गया और उसने कहा अच्छा मैं देखता हूँ। तुम्हारे केश प्राणों के साथ कैसे जाते हैं। यह कहते हुए उसने जल्लादों को हुक्म दिया कि लोहे की रापी से इसकी खोपड़ी छील दो और इसके बाल उतार लो।

भाई तारूसिंह जी को जल्लादों ने पकड़ लिया और रापी से उनके सर को छील दिया। इस प्रकार दी हुई तकलीफों से शारीरिक तौर पर मुर्दा प्राय: हो गये थे। इस पर उनको उठाकर फेंक दिया गया। जहां से वे एक धर्मशाला में ले जाए गए और पहली श्रावण संवत १८०२ विक्रमी १ जौलाई सन् १७४५ को अपने धर्म पर जान कुर्बान कर गए। भाई तारूसिंह जी के पांच सात घंटे बाद ही नवाब जकरियाखान भी मर गया। इसके बाद उनका पुत्र याहियाखान हाकिम हुआ।

धर्म के लिए कुर्बानी का सिलसिला सिखों में भाई तारूसिंह जी पर ही समाप्त नहीं हो जाता। भला जिनकी शहीदी के कारण शहीदगंज बन गया हो। उस गंज में तो अनेकों भाईयों के सिरों के ढेर होंगे।

भाई सुबेगसिंह और शाहबाजसिंह

भाई सुबेगसिंह और शाहबाजसिंह जी भी उन शहीदों में अपना नाम अमर कर गए हैं। इतिहासकारों ने लिखा है कि भाई सुबेगसिंह जी लाहौर जिले के जम्बर गांव के जाट घराने में पैदा हुए थे। सिखधर्म उनके दादा ने ग्रहण किया था। आपका घराना ऐसा था, जिसमें पढने लिखने का शौक था। इससे कई पीढ़ियों से आपके यहाँ राज की नौकरी का भी रिवाज सा ही पड़ गया था। आप भी लाहौर के सूबे में मुलाजिम थे। शिक्षा आपने फारसी में पाई थी किन्तु धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन के लिए आपने गुरुमुखी

भी सीख ली थी। अपने धर्म के आप कट्टर थे किन्तु दूसरे धर्मों के प्रति भी आपके सहनशीलता के भाव थे। अपनी ड्यूटी पूरी करने मे आप कुशल थे।

भाई सुबेगसिंह जी के एक पुत्र था उसका नाम था शाहबाजसिंह। शाहबाजसिंह ने भी अरबी फारसी की ऊँची शिक्षा प्राप्त की थी। गुरुमुखी के अलावा इन भाषाओं का पढ़ना उनकी महत्वाकांक्षाओं का प्रतीक है। वह भी अपनी योग्यता से अपने बाप का जैसा ओहदा प्राप्त करना चाहता था। किन्तु "करता के मन कछु और है और मेरे मन कछु और" की कहावत उनके ऊपर चरितार्थ हो गई।

दुर्भाग्य से एक दिन शाहबाजसिंह की एक मौलवी से धार्मिक चर्चा चल पड़ी। जिसमें शाहबाज-सिंह ने कहा—"ईश्वरीय आज्ञाओं और नियमों के अधिक नजदीक सिख धर्म है। यह ऐसा धर्म है जिसका पालन सर्व साधारण कर सकता है।" मौलवी को यह बात चुभ गई और उसने काजियों को साथ ले जाकर नवाब से शाहबाजसिंह की इस गुस्ताखी की शिकायत की। वैसे काजी लोग तो इस नये नवाब के अभिषिक्त होने के समय से शाहबाजसिंह और उनके पिता सुबेगसिंह के खिलाफ कान भरा करते थे।

नवाब ने दोनों बाप बेटों को गिरफ्तार करने का हुक्म दे दिया। जिस समय दोनों पिता पुत्र बन्दी की हालत मे दरबार मे लाये गये तो काजी ने सूबेदार की ओर से कहा—"भाई सुबेगसिंह जी तुम्हारे पुत्र ने इस्लाम की तौहीन की है। तुम्हारी हरकतों को भी हम लोग बराबर देखते रहते हैं कि तुम सिखों को छिपे-छिपे मदद देते हो। इस्लाम की तौहीन का प्रायश्चित इसी प्रकार हो सकता है कि तुम दोनों बाप बेटे इस्लाम को कबूल करलो। वरना शरह के हुक्म के अनुसार तुम्हे चर्खी पर चढ़ाकर अजाब से मार दिया जावेगा।

इसके उत्तर मे भाई सुबेगसिंह ने कहा कि हम किसी भी हालत मे धर्म छोड़ने के लिए तैयार नही और यदि ईश्वरेच्छा यही है कि हमारा तुच्छ शरीर धर्म पर कुर्बान होना है तो उससे अधिक क्या सौभाग्य होगा। मृत्यु को तो एक दिन आना ही है तो आज क्या और दस दिन पीछे क्या ? अत आप जो भी चाहे करलें। हमें सब कुछ परवाण है।

चुनांचे बाप बेटे को अलहदा-अलहदा, चर्खियों पर चढ़ाकर अजाब देने शुरू किए परन्तु यह सब कुछ उन्होंने अपने ऊपर सहन किया। अंत मे बाप बेटे ने चर्खी पर समस्त तकलीफें झेलने के बाद अपने आपको कुर्बान कर दिया।

इस जागृति को दबाने मे कोई कसर की जा रही हो, ऐसी बात नहीं है। चारों ओर फौजी दस्ते गस्त लगाते थे और गांवों मे मुखबिर नियुक्त कर रक्खे थे। फौजियों से अधिक मुखबिर थे। क्योंकि

महताबसिंह जी की शहीदी

जिन भाई महताबसिंह जी को फौजी दस्ते ढूँढते ढूँढते हैरान हो रहे थे। उन्हें जंडियाले के एक खत्री मुखबिर ने ही पकड़ा दिया। भाई महताबसिंह जी की बहादुरी का थोड़ा सा हाल हम पिछले पृष्ठों मे लिख आये है। अमृतसर के हरि मन्दिर मे जाकर मस्से का सिर इन्होंने ही काटा था। पठानी सैनिकों के कई जत्थे आपकी तलास मे फिरते थे। आपकी गिरफ्तारी के लिये मोटे इनाम का एलान हो चुका था। अत में जंडियाले में आप पकड़े गये और गिरफ्तार करके लाहौर लाये गये। नवाब इनकी सूरत को देखते ही जल गया और उसने इनके वध का तुरन्त ही हुक्म दे दिया।

उसी चर्खी पर चढ़ाकर आपको जिबह कर दिया गया।

इन सिख शहीदों के लिये किसी ने सच ही कहा है—

"डरदे सी न तेग तीर तो न बरछीं हों सूरे।
करदे उहो जो मुहों कहिंदे जतो मत सन पूरे।
मारन बडन टुकन शत्रु करदे चूरा चूरे।
लूटन पुटन तुरों का ताईं हिम्मत कर कर मूरे।
सहिंदे कष्ट धरम दे कारन बली होन बलकारी।
होन शहीद उह नाल हौसले करदे जुध तिश्रारी।
जिंदरे कथा दे विच पंथन हठीऐं द्रिडो सुभारी।
उनां जही न फोकी हिम्मत दग रहित नरनारी।
पलविच धरनी सूही करदें नाल लहू दे प्यारे।
इक इक सिख सौ शत्रु ताईं पल विच जाने मारे।
जितकर जुध पलक विच मारन सनि अकाली नारे।
आज मर मर ताइब। सीते त्तरा जग उपकारे।

इन दिनों लाहौर का सूबेदार याहियाखाँ था। लखपतराय के उभाड़ने से वह सिखों का जानी दुश्मन बना हुआ था। इसके समय में कई हजार सिख लाहौर में लाकर कत्ल किये गये। तारीख'मखजन' के लेखक ने एक घटना का इस प्रकार वर्णन किया है :—

"संवत १८०३ में दीवान लखपतराय फौज लेकर सिखों के सिर पर पहुँच गया, किन्तु वे भागकर जम्मू की ओर निकल गये थे। वहाँ भी उनका पीछा किया गया। इस लड़ाई में से वह दो हजार सिखों को कैद करके लाया और उन सबको नखास चौक में कत्ल करा दिया।"

हमें अफसोस होता है कि दीवान लखपतराय जैसे हिन्दू भी सिखों के इस प्रकार के दुश्मन बने हुए थे। उसे सोचना तो यों चाहिये था कि खत्री कुल में पैदा होने के कारण मुझे गुरुओं के पंथ की मदद करनी चाहिए किन्तु जितने भी चाकर पन्थी खत्री अरोड़े और ब्राह्मणादि थे, उन्होंने कभी भी इन भारत सपूतों की ओर सहानुभूति के साथ नहीं देखा।

नवम्बर सन् १७४६ को जकरियाखान का दूसरा बेटा मिर्जा हयातउल्ला (किलोरीखान) जिसने नादिरशाह की ओर से शाहनवाजखां का खिताब हासिल किया था। अपने भाई याहियाखान से अपने पिता की जायदाद का हिस्सा मांगने के लिये लाहौर आ पहुँचा। बातचीत में ही झगड़ा बढ़ गया और लड़ाई तक की नौबत पहुँच गई, किन्तु याहियाखां ही लाहौर का हाकिम रहा। शाहनवाजके जमाने में ही अहमदशाह अब्दाली हिन्दुस्थान पर आक्रमण करने के लिये आ पहुँचा। शाहनवाजखां के भाग निकलने पर अहमदशाह ने लाहौर पर कब्जा कर लिया और देहली की ओर बढ़ा। लुधियाने जिले में सं० १८०३ में माणपुर के स्थान पर मुहम्मदशाह बादशाह के बेटे अहमदशाह मिर्जा से दुर्रानी की मुठभेड़ हो पड़ी परन्तु उसे परास्त होकर वापिस अपने देश को लौट जाना पड़ा। इस समय मिर्जा अहमद ने वजीर कमरुद्दीन के बेटे मुईनउल्मुक को जो मीरमन्नू के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध है लाहौर का हाकिम बना दिया।

सिखों के ऊपर होने वाले जुल्मों में मीरमन्नू के जुल्म एक खास स्थान रखते हैं। उसने उनके सिरों को इकट्ठा करने के लिये ही खास तौर से एक जगह मुकर्रिर करदी और हुक्म जारी कर दिये कि उनके जितने भी सिर लाये जासके। लाए जॉय। सैय्यद मुहम्मद लतीफ ने अपनी लिखी "तारीख पंजाब'

में इसके जुल्मों की कहानी इस प्रकार लिखी है :—

"मीरमन्नू ने सिखों की गोशमाली और सरकोबी के लिये हिम्मत से कमर बांधी। हजारों सिखों को कत्ल किया। अपना रौब व हैबत सिखों के सिर पर ऐसी बिठाई कि वे उसके नाम से घबराने लगे। मीरमन्नू ने हुक्म दिया कि जो सिख मिले उसके सिर और दाढ़ी के बाल मुड़वा दो। इससे सिख घबरा कर पहाड़ों मे जा छिपे। मीरमन्नू ने वहां भी उनका पीछा नहीं छोड़ा। सैकड़ों सिखों को पहाड़ों में से जंजीरों मे बंधवा कर मंगा लिया और नखास खान मे उनकी गर्दनें उतरवा दीं।"

तहकीकात चिश्ती के लेखक मौलवी नूरमुहम्मद ने मीरमन्नू के अत्याचारों को इस प्रकार लेखबद्ध किया है —

"नवाब मीरमन्नू की साहिबी में सिखों की मुसीबत बहुत बढ़ गई थी। इस शख्स ने हजारों सिखों को कत्ल कराया था। हुक्म था कि मुलाजिम सरकारी को जहां भी कोई सिख मिले उसका सिर उतार ले। चुनांचे जिस कदर, सिख आते थे, तुरन्त कत्ल किये जाते थे।"

इसी लेखक ने अपनी पुस्तक मे एक दूसरी जगह लिखा है। "शहीद गंज की समाधि के बनने का कारण यह है कि मीरमन्नू के समय में जोकि सिखों का कातिल था। एक ईंट पर ग्यारह सौ सिखों का कत्ल किया गया और सबके सब एक ही जगह इस मुकाम पर दफना दिये गये।"

हम समझते हैं कि सिखों की शहीदी की गाथा बहुत बड़ी है और बड़ी ही करुणाजनक भी है। किन्तु आश्चर्य यह है कि एक की शहीदी के बाद दूसरा घबराता नहीं किन्तु, उत्साहित होता है। यह बात पुरुषों ने ही की हो सो बात नहीं किन्तु सिखों की बहिन और गृहणियां भी जब परीक्षा का समय आया, पीछे नहीं रहीं। सरदार करतारसिंह जी ज्ञानी ने 'जौहर-खालसा' मे जो लिखा है, उसका सार यह है :—

सिख बहनों की शहीदी

"मीरमन्नू के समय मे जब सिखों पर जुल्म हो रहे थे तो वे घरों को छोड़कर जंगलों में निकल जाते थे। मीरमन्नू ने चिढ़कर यूसफखां की कमान में सिख स्त्रियों और बच्चों को पकड़ लाने के लिये फौज भेजी। उसने लगभग २०० स्त्री और बच्चों को गिरफ्तार करके लाहौर पहुँचा दिया। कड़ाके की गर्मी के दिन थे फिर भी उन बेचारियों को मय बाल बच्चों के बजार नखास की काल कोठरी में बन्द कर दिया और सवा सवा मन उन्हें पीसने को दिया गया। खाने के लिये आधी रोटी और पीने के लिये भरपेट पानी भी नहीं। दो ही दिन मे सुकुमार बच्चे कुम्हला गये, वे भूख प्यास से तड़पने लगे। उन्हें मीरमन्नू की ओर से मुसलमानी धर्म स्वीकार करने के लिये कहा गया किन्तु सभी सिंहनियों ने फटकार कर कह दिया कि हम भी उन्हीं धर्मवीरों की बहिन बेटी तो हैं जो हजारों की तादाद मे बिना 'सी सिकारा' किये धर्म पर कुर्बान हो गये हैं। इस पर जल्लादों ने उनकी गोदों से छोटे २ बच्चों को लेकर उन्हीं के आगे टुकड़े २ कर दिया। और फिर पूछा क्या अब भी तुम मुसलमान नहीं बनोगी। इसपर भी उन्होंने गर्जकर कहा कि अरे दुष्टो यह तो इतने सौभाग्य शाली निकले कि इतनी छोटी उम्र मे ही इन्हें धर्म पर कुर्बान होने का मौका मिल गया। दूसरे दिन फिर जल्लाद आये और उन्होंने उन सिंहिनियों के बच्चों की आंतें इकट्ठी करके माला की तरह उन बेचारियों के गले मे डाल दी किन्तु वे किसी भी कष्ट से डरकर धर्म छोड़ने पर राजी नहीं हुईं।

इन्हीं दिनों मे मन्नू को किसी ने खबर दी कि सिखों का एक दल मलापुर के ईख के खेतों में छिपा हुआ है। इस खबर को सुनते ही मीर अपना एक दल लेकर मलापुर पहुँच गया और उस खेत

सन्त-समागम



तपस्वी बाबा श्रीचन्द और विनय मूर्ति गुरु हरिगोविन्द जी

शहीद वीर



बाबा दीपसिंह जी

को चारों ओर से घेर लिया। जिसमें सिखों का एक समूह बैठा था। प्राणों पर बनती देख कर उन्होंने भी अपनी बन्दूकें संभाल लीं। दोनों ओर से गोलिया चलने लगीं दैवात मन्नू का घोडा बिदक गया और दो पैरों से सीधा खडा हो गया। मन्नू घोड़े की पीठ पर से खिसक पड़ा किन्तु उसका एक पांव रकाव मे उलझ गया। घोडा लाहौर की ओर भाग खड़ा हुआ। मीरमन्नू घिसटता हुआ मर गया। उसके साथी भी भाग खड़े हुये। उधर शहर में जाकर सेना ने मीरमन्नू की लाश कब्जे में करली। वह चाहती थी कि जब तक हमारा कई महीनों का वेतन न चुका दिया जायगा। हम मन्नू की लाश को दफनाने न देंगे। सिख जिन्हें कि इस गड़बड़ में मौका मिल गया नखास बाजार पहुँच कर कालकोठरी से समस्त सिखनियों को छुड़ा लाये।

एक लेखक ने उन तकलीफों की तालिका दी है। जो शहीदों को दी जाती थीं। वास्तव में वह तालिका ही रोमांच पैदा कर देने वाली है। धन्य और हजार बार धन्य उन वीरों को है जिन्होंने इन तकलीफों को बर्दाश्त किया किन्तु अपने धर्म को नहीं छोड़ा।

(१) चरखी पर चढ़ा कर हड्डियों को तोड़ना मरोड़ना।
(२) सूली जिसमें मलद्वार से लेकर सिर तक लंबी कील पार करदी जाती है।
(३) संगसार—पेड़ से बांध कर ईंटों से सर फोड़ना व हाथ पांव तोड़ना।
(४) तसमेकसी—चमडे में बांध कर रस्सी कस्सी की तरह इधर उधर से खींचकर हड्डी पसलियों को तोड़ देना।
(५) जम्बूरा से (चिमटा) के मास नोंचनी।
(६) मोंगरी से मूंज की तरह कूटना।
(७) जमीन में गाड़ कर चाँदमारी करना।
(८) खोपड़ी उतारना। (९) बन्ध खोलना।

अहमदशाह दुर्रानी के एक हमले के समय बालूहीजहान खां अमृतसर में सिखों के धर्म मन्दिर का अपमान करने की इच्छा से आ पहुंचा। जब इधर के यह समाचार मालवे और मामे में पहुचे तो शिष्यों को बड़ा क्रोध आया। तलवंडी (दमदमा) में बाबा दीपसिंह जी नामक एक प्रसिद्ध सिख थे। उनकी छोटी सी गढ़ी में हर समय सैकडों सिंह इकट्ठे रहते थे। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि मैं अपना यह सिर दरबार साहब के ही भेंट करता हूँ—भाई हीरासिंह, नत्थासिंह और गुरुबख्ससिंह जी आदि अनेकों सिख उनके साथ हो लिये।

अमृतसर से बाहर तुरक फौजों से उनका मुकाबिला हुआ। बड़ा घमासान युद्ध हुआ। सिखों ने इस जोर से तलवार चलाई कि जहानखां की सेना घबराहट में पड़ गई। बड़े जोरों के साथ पठानों ने हल्ला बोला—जिसमें बाबा दीपसिंह जी का सिर एक पठान की तलवार से कट गया। पास में खड़े हुए एक सिख ने कहा, बाबा आप तो यह प्रतिज्ञा करके आए थे कि यह सिर श्री दरबार साहब के चरणों में ही समर्पण करना है। इस बात को सुनते ही बाबा दीपसिंह जी ने सिर को उठाकर हथेली पर रख लिया और एक हाथ से तलवार चलाते हुए आगे बढ़े। जहानखां यह कौतुक देख रहा था। उसको भी बाबा को रोकना मुश्किल हो गया और हरि मन्दिर में पहुँच कर अपना शीस भेंट कर दिया।

जहाँ इन धर्मवीरों के सिर रक्खे गये थे वह स्थान भी शहीदगंज कहलाता है। और हरिमन्दिर के साथ गुरु के बाग में है।

चौदहवाँ अध्याय

मिसल राज्यों की स्थापना

गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज ने खालसा संघ की स्थापना से वास्तव में एक पंचायती राज्य की नींव डाल दी थी। सिखों का राज्य तो भारत में कायम हुआ। किन्तु वह पंचायती राज्य कायम नहीं हुआ। व्यक्तियों का हुआ। और यही कारण है कि रणजीतसिंह जी का जैसा विशाल राज्य भी व्यक्ति राज्य होने के कारण उनके मरने के बाद सहज ही नष्ट हो गया।

फिर भी गुरुजी ने जो मार्ग प्रशस्त किया था, उस पर चलकर सिखों ने एक दिन प्रभुता स्थापित कर ही ली। इस प्रभुता की नींव में कष्टों और कठिनाइयों की बड़ी दर्द भरी कहानी है। बीसियों हजारों सिखों की कुर्बानी हो चुकने पर यह प्रभुता हासिल हुई थी। उन्हीं हजारों बलिदानों में से कुछ एक का वर्णन हमने पिछले अध्याय में किया है। जो बहुत ही संक्षिप्त और सादी भाषा में है। वरना उन बलिदानों की कहानी तो बहुत बड़ी और हृदय हिला देने वाली है।

मुसलमान शासकों के अत्याचारों ने जहाँ उन्हें बर्बाद किया, वहां उनमें शक्ति और आत्मबल पैदा करने का माद्दा भी दिया। अत्याचारों ने ही उनके संगठन को मजबूत किया। इन संगठनों का नतीजा ही सिखों की बारह मिसल हैं।

उन भयानक दिनों में सौ-सौ, दो-दो सौ की टोलियों में जो वीर सिख जंगलों और पहाड़ियों में अपने बुरे दिनों का सामना करने के लिये फिरा करते थे। वे जत्थे कहलाते थे और जिस शख्श के अनुशासन में जत्था रहता था। वह जत्थेदार कहलाता था।

खान बहादुर जकरियाखान के समय में जबकि सिख शहरों और गांवों को छोड़कर जंगलों और पहाड़ों में निकले हुये थे। प्राय. कभी लक्खी जंगलों में, कभी शिवालक आदि पहाड़ियों में दिन काटते थे। उस समय एक बड़ी सख्या का एक ही स्थान पर रह सकना और उन सबके लिये जीविका का प्रबन्ध करना दुश्वार हो रहा था। इसलिये नवाब कपूरसिंह जी के विचारानुसार खालसा ने अपने आपको दो दलों में बांट लिया। कुछ पुराने और वृद्धसिंह तो नवाब कपूरसिंह जी के साथ रहे। वह 'बुड्ढा दल' के नाम से प्रसिद्ध हुये। दूसरे नवयुवक जो बड़ी तेजी से एक स्थान से दूसरे स्थान तक चल निकलते थे। उनके दल का नाम 'तरुण दल' पड़ गया। कुछ समय बाद इन दलों की वृद्धि के कारण इनके और भी विभाग होगये और आरंभ में पांच जत्थे बन गये।

मीरमन्नू की मृत्यु के बाद सिख फिर बाहर से आ-आकर (पंजाब में) अपने-अपने गाँवों मे आ बसे। किन्तु उन्होंने अपने शत्रुओं को शोधन करने के लिये फिर तैयारी की और जत्थेदारों ने अपने २ गाँवों के निकट अपना अपना इलाका बनाना शुरू कर दिया। इस समय जो सरदार ज्यादा रसूख रखने वाले थे, उन्होने अपने साथियों को मिलाकर अपने २ जत्थे मजबूत कर लिये और यह जत्थे बाद मे मिसलो के नाम से प्रसिद्ध हुये।

मिसल शब्द जैसे प्रयोग मे आया वह इस तरह है कि जब खालसा जत्थेदार दीवाली और वैसाखी के समय पर एकत्रित होते तो सब दलों के जत्थेदार सरदार जस्सासिंह अहलूवालिया के पास आकर अपने किये हुये कब्जे के इलाको का पता देते। वह अलहदा-अलहदा सरदारों के पतरे अर्थात मिसले बनाकर उन पर उनके कब्जे मे आये हुये इलाको के नाम दर्ज करते जाते, ताकि बाद में कोई झंझट न हो। परन्तु कई बार ऐसा भी हो जाता कि किसी गाँव को पहले एक अपनी मिसल में लिखवा गया है, उसी गाँव को बाद मे दूसरे सरदार ने अपने इलाके मे शामिल किया हुआ बताया है, उस समय सरदार जस्सासिंह अहलूवालिये जो कि अपनी आयु के लगभग १२ वर्ष अपनी माँ के साथ देहली मे माता सुन्दरी की सेवा मे रहने के कारण प्रायः उर्दू भाषा बोलते थे—कह देते यह गाँव तो पहले अमुक सरदार की मिसल मे दर्ज हो चुके हैं। इस तरह यह शब्द आरम्भ में सरदारों के जत्थों के लिये प्रयोग में आना आरम्भ हो गया और बाद में जत्थों और इलाकों दोनों के लिये वर्ता जाने लगा।

सिखों मे भगी मिसल एक प्रसिद्ध मिसल हुई है। चूंकि इसके सरदार भंग का प्रयोग अधिक करते थे। इसलिये यह मिसल भंगी मिसल के नाम से पुकारी जाती थी। वैसे यह जाट सिखो की मिसल थी किन्तु इससे यह भी न समझना चाहिए कि और दूसरे लोग इसमें शामिल न थे।

भंगी मिसल

चौधरी छज्जासिंह[1] और भीमासिंह ने इस मिसल को खड़ा किया। चौधरी भीमासिंहजी के बाद उसका पुत्र हरीसिंह इस मिसल का मालिक बना। जो होना गांव जोकि मालवे परगना बधनी मे है का रहने वाला था किन्तु मुसलमानी अत्याचारों का मुकाबिला करने के लायक उस स्थान को न समझ कर झग के जिले में नत्थू गाव मे आ बसा था।

सिख धर्म की दीक्षा तो चौधरी भीमासिंह जी ही गुरु गोविन्दसिह जी से ले चुके थे। अतः आप जन्म से ही सिख थे और अमृत आपने बाबा दीपसिंह के हाथ से चखा था।

सरदार हरीसिंह जी खुद जमामर्द और बहादुर आदमी थे इससे उनकी मिसल बहादुरी और दया के लिहाज से सब मिसलों मे अग्रणी समझी जाती थी। सख्या भी इस मिसल की पन्द्रह हजार थी।

आरम्भ मे यह जत्थे अथवा मिसलें केवल आत्म-रक्षा का काम करती थीं। जहां भी कहीं अपने भाइयों पर अत्याचार होता वहीं ये जत्थे पहुँच कर उनकी मदद करते। किन्तु चूंकि वे शहर और गाँवों से निकाले जाने के कारण कष्ट की जिन्दगी व्यतीत कर रहे थे। जहाँ कि खाने-पीने का गुजारा मुश्किल

१. अनेक इतिसहाकारों ने इस मिसल का सस्थापक अमृतसर के पास के पजवार गांव के चौधरी छज्जासिंह (जाट) को बताया है और लिखा है कि भीमासिंह या भीमासिंह भगई को जो कि उसका रिस्तेदार था, अपना उत्तराधिकारी बनाया। भीमसिंह को कसूर का रहने वाला बताया गया है। साथ ही यह भी लिखा है कि उसने नि सतान होने के कारण अपने भाई भूपसिंह जो कि बघनी के परगने में पटोह नामक गांव में रहता था के लड़के हरीसिंह को 'गोद ले लिया था।

था। अतः ये मुगल शासकों पर छापा मारते थे। ज्यों-ज्यों इनकी शक्ति बढ़ने लगी और मुसलमान हुकूमत की ताकत घटने लगी, इनकी भावनायें भी प्रवल हुईं और छोटे-मोटे नये बने मुसलमान हाकिमों को मार भगा कर उनके अधीनस्थ प्रदेशों को अपने कब्जे में करना शुरू कर दिया। यही उपक्रम राज्य कायम करने में भी आगे के दिनों में काम आया।

तंग आये हुए लोग इन जथेदारों के पास आकर शिकायतें करते और यह भी अर्ज करते कि हमारे इलाके की स्थायी तौर से रक्षा करने की आपका दल गारंटी ले ले। हम उस रकम को जो लगान और मालगुजारी के नाम पर मुसलमान हाकिमों को देते हैं आप ही को देने लगेंगे। सरदार हरीसिंह ने ऐसे मौकों से खूब लाभ उठाया। जहाँ भी और जब भी कोई आप से सहायता चाहता, आप तुरंत सहायता देते और अपना राज्य कायम करने के लिये भी कोशिश करते।

सरदार हरीसिंह के साथियों में जस्सासिंह, मीहांसिंह, नत्थासिंह, जगतसिंह, गुलाबसिंह, गुरु बख्शसिंह[1] अग्घड़सिंह, शामलसिंह, ठाकुरसिंह, गूजरसिंह और लहनासिंह आदि अनेक प्रसिद्ध लडाके वीर थे। इन लोगों के साथ हरीसिंह ने सारे पूर्वी पंजाब और राजपूताने के एक भाग को रौंद डाला था। शाही सैनिकों का मुकाबिला करने में यह लोग सब से आगे रहते थे।

जब खालसा (संघ) ने सारे पंजाब को बारह मिसलों में बाँट दिया तो सरदार हरीसिंह जी ने गुजरात, चानोर, झंग, अमृतसर और लाहौर के नजदीकी इलाके पर कब्जा कर लिया और अमृतसर को अपनी राजधानी बनाया।

सरदार हरीसिंह जहाँ उत्कट योद्धा था। वहां उदात्त अक्लमंद भी था। सवत १८०२ में इसने अमृतसर में अपने नाम पर एक कटड़ा भी आबाद किया था। जत्थे में आदमी भी प्राय जवान और सूरत शक्ल के अच्छे और स्फूर्तिवान रखता था। उन जवानों के बल पर सौ-सौ मील के धावे मारने की हिम्मत वह रखता था। घोडे भी जहां तक रखता, छटे हुए ही संग्रह करता था। लाहौर के हाकिमों के दिलों में यह सदा खटका। क्योंकि उनके अच्छे २ योद्धाओं के इसने छक्के छुड़ाये थे। अब्दुलसमदखां जैसे चुस्त चालाक सूबेदार से भी इस वीर ने मैगजीन छीन ली थी। जिस अब्दुलसमदखा ने महावीर बन्दासिंह जी जैसे योद्धा को अपनी कूटनीति से गिरफ्तार कर लिया था। वही समदखा और उसका बेटा जकरियाखा हरीसिंह का कुछ भी न विगाड़ सके।

मुल्तान में भी लाहौर की भांति एक सूबा रहता था। सरदार हरीसिंह ने मुल्तान पर चढ़ाई करके उसे अपने राज्य में मिला लिया। स्यालकोट बटियाला, मैंसेवाल और झंग आदि के मालिये से इसकी आमदनी काफी बढ़गई थी।

सरदार हीरासिंह जी ने कसूर को विजय कर लिया। यह पहला ही मौका था। जब एक बड़े अर्से के बाद कसूर फतह हुआ और सिखों की आधीनता में आया।

१. गुरुबख्शसिह ने लहनासिह को गोद ले लिया। लहनासिह का पितामह, सडावला का गरीब जाट था। इसलिये उसका लडका दरगाहसिह करतारपुर के पास मातीपुर में एक बढई के पास रहा। यहीं लहनासिह का जन्म हुआ। सयाना होने पर लहनासिह अटारी के पास रोरानवाला गांव में गुरुबख्शसिह के पास पहुँचा। गुरु बख्शसिह के धेवते का नाम गूजरसिह था। आगे चल कर गूजरसिह और लहनासिह ने भी एक अलग जत्था बना लिया। संवत १७६५ वि० में इन्होंने लाहौर पर भी कब्जा कर लिया था।

कहा जाता है शोध और लूट करने के लिये इन्होंने दिल्ली, सहारनपुर,च न्दौसी, खुरजा और उत्तर में डेराजात तक हमला किये थे।

वास्तव में राज्य कायम करने का श्रीगणेश इसी भंगी मिसल ने किया था और इसके सरदार हरीसिंह ने सदैव बुद्धिमानी से काम लिया। महाराजा जवाहरसिंह जी भरतपुर ने जब अपने पिता का बदला लेने के लिये दिल्ली पर चढ़ाई की थी तो यह पैंतीस हजार सिखों का दल लेकर उनकी सहायता को पहुँचा था।

सरदार हरीसिंह जी ने दो विवाह किये थे। पहली सरदारनी पंजवड की थीं। जिनसे गण्डासिंह और झंडासिंह नाम के दो पुत्र पैदा हुए थे और दूसरी सिंहनी से चरतसिंह, दीवानसिंह और देसूसिंह नामक लड़के पैदा हुये थे। इसमें झंडासिंह जी बड़े योग्य और होनहार थे। अपने पिता की मृत्यु के बाद यही मिसल के सरदार बने क्योंकि सभी लोग इन्हें चाहते थे।

जिस समय अहमदशाह अब्दाली के हमले के वक्त महाराजा आलासिंह जाकर उसके साथ मिल गये और उस की दी हुई राजगी की पदवी प्रदान करली तो सिख सरदार दल लेकर आलासिंह को एक मुसलमान शत्रु के सामने झुक जाने का दंड देने के लिये पहुँचे। इस समय 'लांग चलायले' ग्रामों के नजदीक दोनों फौजों की लडाई के आरम्भ में गोली लग जाने के कारण सरदार हरीसिंह चल बसे। इस लड़ाई को जस्सासिंह अहलूवालिये ने महाराज आलासिंह के क्षमा मांग लेने पर बन्द कर दिया।

नवयुवक झंडासिंह जी भी अपने पिता की भाति ही महत्वाकांक्षी था। उसने अपने व्यवहार और बुद्धिमानी से अपने दल के सभी लोगों को मोहित कर लिया था। आक्रमण करने और युद्ध में जौहर दिखाने में इसे भी खूब आनन्द आता था। इसी महत्वाकांक्षा के कारण झंडासिंह ने अनेकों बड़े शहरों पर चढ़ाई की तथा उन्हें लूटा।

मुल्तान पर सरदार हरीसिंह चढ़ाई कर चुके थे और काजी नूरमुहम्मद के जंगनामे के अनुसार भंगी सरदार सन् १७६४ में डेरा के इलाके तक सिंध को पार करके जा पहुँचे थे।

झंडासिंह ने भी अनेकों चुने हुए सिख योद्धाओं को लेकर मुल्तान पर चढ़ाई की। मुल्तान का सूबेदार डर गया और वह पचास हजार रुपया लेकर सुलह के लिये हाजिर हुआ किन्तु झंडासिंह तो मुल्तान को कतई रूप से अपने राज्य में मिलाने के इरादे से आया था। दूसरे वहां की प्रजा की भी हाकिम के खिलाफ काफी शिकायतें थीं। इसलिये झंडासिंह ने हाकिम को कैद करने का हुक्म दे दिया और मुल्तान के खजाने पर धावा बोल दिया। जब उस हाकिम ने बहुत ज्यादा मिन्नत की तो उसे उत्तर ओर के इलाके में कुछ हिस्सा देकर रिहा कर दिया और वहां का प्रबंध सरदार जमीअतसिंह और दीवानसिंह के सुपुर्द कर दिया।

कहा जाता है कि अहमदाबाद के नवाब अहमदखां ने भी सरदार झंडासिंह को बीस हजार रुपये भेंट दिये थे।

हिंदुओं को जब पता चला कि झंडासिंह भी अपने पिता हरीसिंह की तरह ही पीड़ितों की आवाज सुनता है और दुष्टों के दंड देने के लिये हर समय तैयार रहता है तो अनेकों मुसलमान हाकिमों की प्रजा के हिन्दू उसके पास आकर शिकायत करने लगे। डेराजात की ओर भी उसे इसी हेतु जाना पड़ा और भावलपुर के प्रजाजनों की शिकायत बहुत दिनों से आने के कारण झंडासिंह ने बीस हजार जवानों के साथ भावलपुर पर भी चढ़ाई की। नवाब झंडासिंह का आना सुनकर घबरा गया और उसने संधि क

प्रस्ताव आगे बढ़कर किया। नजराना लेकर उसकी प्रार्थना पर झंडासिंह ने नवाब से संधि करली।

इन मुहिमों को फतह करके जब झंडासिंह अमृतसर लौटा तो हरिमंदिर पर बहुत सा धन चढ़ाया और दीवाली मेले की शोभा को दुचंद किया।

अहमदशाह के उत्तराधिकारी अमीर तैमूरशाह ने जब सुना कि मुल्तान को सिखों ने अपने राज्य में मिला लिया है तो उसने मुल्तान पर चढ़ाई कर दी और सहज में ही उस पर कब्जा भी कर लिया, क्योंकि उस समय यहाँ सिखों की कोई तगड़ी सेना न थी। मुजफ्फरखा को वहां का हाकिम बनाकर तैमूरशाह अफगानिस्तान को लौट गया।

मुल्तान से फिरे हुए सिखों ने जब यह समाचार झंडासिंह को सुनाया तो वह तुरन्त मुल्तान पर चढ़ाई करने को तैयार होगया। मुल्तान फिर जीत लिया और गंडासिंह को जोकि झंडासिंह का छोटा भाई था, वहां का हाकिम मुकर्रिर करके यह विजयी दल रास्ते में छापा मारता हुआ, वापिस अमृतसर आगया।

लगभग एक साल झंडासिंह चुप रहा और फिर दल को लेकर काश्मीर की ओर प्रस्थान किया। उस समय जम्मू का राजा रंजीत था। उसने इन दोनों सिख सेनाओं का मुकाबिला किया। किन्तु उसे जीत के कोई लक्षण दिखाई नहीं दिये। इसलिये एक लाख रुपया सालाना नजराना देने के वायदे पर सन्धि कर ली और अपने प्राण बचाये।

हमीदखा की सराय में जहानखां नामी पठान हाकिम रहता था। जमजमा नाम की एक तोप और इसके अलावा बहुत कुछ शस्त्रास्त्र उसके पास थे। झंडासिंह ने उस पर भी हमला किया और कुल सामान उससे अपने कब्जे में कर लिया।

लगातार के आक्रमण और फतहयाबियों से झंडासिंह के पास काफी धन हो गया था। इसलिये उसने अमृतसर में एक गढ़ बनाने की नींव डाली। शस्त्र और खजाना अब इसी गढ में जमा होने लगा। अब तक कई लाख रुपये उसके पास जमा हो गये थे।

किले के बनजाने के बाद झंडासिंह ने सब सेना के कसूर पर पुनः चढ़ाई की और उसे विजय करके बहुत सा धन हासिल किया और फिर उस इलाके में जितने भी छोटे मोटे मुसलमान हाकिम थे। सभी को अधीन किया और उन पर टैक्स बाधा।

जम्मू के राजा रणजीतदेव और उसके पुत्र ब्रजराजदेव में जब झगड़ा हो गया। रणजीतदेव ने झंडासिंह को सहायता के लिये बुलाया और ब्रजराज ने सुकरचकिया मिसल से सहायता ली। खूब डटकर लड़ाई हुई। सुकरचकियों का सरदार चड़तसिंह मारा गया।

अपने जीवन भर युद्ध और आक्रमण में लगे रहने वाले इस वीर बहादुर झंडासिंह का समय भी एक दिन आ गया। जब कि वह जंगल में शिकार खेल रहा था किसी दुश्मन ने अचानक उस पर वार करके घायल कर दिया और वही वार उसकी मौत का कारण हुआ। लड़ाई अभी चालू थी, जम्मू राज्य के दोनों बाप बेटे लड़ रहे थे।

भंगियों ने झंडासिंह के बाद उसके भाई गंडासिंह को अपना सरदार चुना और वे फिर उसी उत्साह से अपने कर्त्तव्य में जुट पड़े।

इस लड़ाई में वास्तव में सिखों की शक्ति कम हो रही थी। इसलिये कुछ समझदार सिखों ने दोनों ओर सुलह की कोशिश की। किन्तु गंडासिंह भाई का बदला लेना चाहता था। उसका अनुमान था कि

कन्हैया ने झंडासिंह को मारा है। जस्सासिंह के साथ मिलकर उसने कन्हैया वालो पर चढ़ाई की और उसके इलाके के बहुत से भाग को दोनों ने अपने कब्जे में कर लिया।

पठानकोट के मैदान में कन्हैया और भगी दोनो भिड़ गये। लगभग १४ दिन तक लड़ाई होती रही। इसमे दोनो ओर से सिखों को ही नुकसान हुआ। गंडासिंह इस युद्ध मे मारा गया और इस समय से भगी मिसल की शक्ति क्षीण होने लग पड़ी।

इन्हीं दिनो सुकरचकिया मिसल के सरदार महासिंह और चड़तसिंह भगी में युद्ध होगया। महासिंह ने चड़तसिंह को लड़ाई मे खतम कर दिया और भंगियों के बहुत से इलाके को अपने कब्जे म कर लिया।

चड़तसिंह के बाद भंगियो की सरदारी देसूसिंह के हाथ मे आई। किन्तु यह उतना योग्य नहीं था जितने योग आदमी की रहनुमाई की इस समय भंगी मिसल वालों को आवश्यकता थी। इसके समय मे उस इलाकों मे से बहुत सा भाग निकल गया जो पिछले दिनों प्राप्त किया था।

केवल स्यालकोट और चैन्योट के इलाके रह गये। जिनसे पचास हजार के लगभग बडी मुश्किल से वसूल होता था और खर्च भी करीब २ इतना ही हर साल का था। सरदार महासिंह बराबर भगी मिसल के पीछे पडा हुआ था। हर वर्ष कोई न कोई झगड़ा हो जाता था। आखिर देसूसिंह भी मारा गया।

सरदार कर्मसिह भंगियों मे एक सर्वप्रिय आदमी था। उसे लोग प्यार से दूला सरदार कहते थे। देसूसिह के बाद भगियों का भाग्य उसी के हाथ मे आया। इसने अपने नाम से अमृतसर मे एक कटडा बसाया। इसकी बुद्धिमानी और अग्रसोची स्वभाव की प्रशंसा सभी सिख करते थे। किन्तु जितना यह बुद्धिमान था। उतना योग्य सैनिक न था और यही कारण था कि यह भी महासिंह सुकरचकिया के युद्ध मे मारा गया। दूला सरदार का लड़का जस्सासिंह इस समय चान्योट मे था। अत: पास में होने के कारण देसूसिंह का लड़का गुलाबसिंह इस मिसल की गद्दी पर बैठ गया। परन्तु यह योग्य आदमी न था इस समय तो एक अद्भुत वीर और बुद्धिमान आदमी की भंगी मिसल को जरूरत थी। वह गुलाबसिंह से पूरी नहीं हो सकी। इसलिये सियालकोट का इलाका भी हाथ से निकल गया और अमृतसर शहर और उसके पास के कस्बों व गांवों के सिवा कुछ भी शेष नहीं रहा। जहा जो सरदार मुकर्रिर था। इसकी कमजोरी से लाभ उठाकर वहाँ का वहीं मालिक बन बैठा।

अब महासिंह का लड़का रणजीत सिंह सुकरचकियो का मालिक हो चुका था। यह वह रणजीत सिंह थे। जो आगे पंजाब केसरी की उपाधि से प्रसिद्ध हुए।

रणजीतसिंह जी ने जब लाहौर पर कब्जा कर लिया तो गुलाबसिंह को यह बात अखरी इस लिये उसने संवत १८५६ विक्रमी मे महाराजा रणजीतसिंह पर चढ़ाई करदी। भसीन के मुकाम पर दोनों ओर से पड़ाव पड़ गये। गुलाबसिंह सदैव के लिये इस युद्ध मे सो गया। उसकी सेना भाग गई।

गुलाबसिंह ने एक दस वर्ष का लड़का गुरदित्तसिंह नाम का अपना वारिस छोडा था। उसे नाबालिग समझकर उसी के नौकरो ने कोहाती इलाके पर कब्जा कर लिया और कहला भेजा कि यह हमारी तनख्वाहों मे गया समझिये।

अब केवल शहर अमृतसर भंगी मिसल के उतराधिकारी के पास रह गया किन्तु गुरदित्तसिंह की माँ सुखा जरा होशियार थीं। इसलिये उसी की आमदनी से अपना कारबार चलाती रहीं।

महाराजा रणजीतसिंह ने सुखा के पास कहला भेजा कि जमजमा तोप तुम्हारे किस काम की है उसे मुझे दे दो किन्तु सुखां राजी नहीं हुई और लड़ने को तयार हो गई। महाराजा रणजीतसिंह के सामने वेचारी का क्या वश चलता। चार घंटे की लड़ाई के, बाद रणजीतसिंह ने अमृतसर के किले पर अधिकार कर लिया और सरदारनी जी अमृतसर से रामगढ़ के किले में जोकि रामगढ़िया के हाथों में था चली गई।

इस समय रामगढ़िया मिसल का सरदार जोधसिंह था। उसने सुखा और उसके लड़के गुरदित्त-सिंह को अपने यहाँ बड़े सनमान में रक्खा क्योंकि इन दोनों मिसलों में मुद्दत से मेल-मिलाप चला आता था। जब गुरदित्तसिंह सयाना होगया तो जोधसिंह और अन्य कई प्रमुख सिख सरदारों ने महाराजा रण-जीतसिंह जी से सिफारिश करके गुरदित्तसिंह को महीवाल का इलाका जागीर में दिला दिया। किन्तु गुरदित्तसिंह का मन जागीर के संभालने में न लगा। इसलिये उसकी कीमत लेकर अपनी ससुराल में आगया और वहीं चल बसा। इसके बाद इसके दोनों लड़के अजीतसिंह (अधा) और मूलसिंह अपने पुराने खेड़े पंजवड में आगये।

अजीतसिंह के दो पुत्र एक ठाकुरसिंह दूसरे हुक्मसिंह हुए। अंग्रेज सरकार का जब जमाना आया तो इन्हें थोड़ी सी माफी जमीन मिल गई। इस तरह यह दो हजार बीघे जमीन से अपना कारोबार चलाते रहे।

सरदार झंडासिंह जी के बनाये हुये इनके पास अति सुन्दर और मजबूत मकान हैं।

इस प्रकार भंगी मिसल का खातमा होगया और उसका प्रभुत्व सुकरचकिया में लीन होगया।

इसमें कोई सन्देह कि नहीं सरदार हीरासिंह और उसका बेटा झंडासिंह जैसे ही बहादुर शूरमे और बुद्धिमान नेता इस मिसल को मिलते रहते तो यह सहज ही सारे पंजाब की मालिक होजाती किन्तु सितारा तो महाराजा रणजीतसिंह का चमकना था।

रामगढ़िया मिसल इस मिस्ल के बानी सरदार नंदसिंह मौजा सागरिया के जाट जमींदार थे। एक समय जबकि सिख सेनायें बाहर जंग-युद्धों के लिये गई हुई थीं तो सरदार नंदसिंह अमृतसर में रामगढ़ नामी किले की रक्षा लिये के यहाँ छोड़े गये थे। तब से सरदार नंदसिंह रामगढ़ वाले अथवा रामगढ़िया नाम से प्रसिद्ध होगये। नंदसिंह की मृत्यु के बाद सरदार जस्सासिंह जो कि इनके अनुयायी थे। इस मेसल के सरदार हुये। इनके बुजुर्ग बढ़ई या तिरखाना का काम करते थे जिसके कारण कई एक इतिहासकारों ने इन्हें जस्सासिंह तिरखान या ठोकर के नाम से याद किया है। इनके पिता भगवानसिंह गुरदासपुर के जिले में ईचोगिल नामीग्राम में रहा करते थे जिस समय सिख सरदारों ने जत्थे बनाकर मुल्कगीरी आरम्भ की तो यह बहुत हद तक मशहूर हो चुके थे और सरदार नंदसिंह की मिसल में शामिल होकर उनके कृपापात्र बन चुके थे।

भगवानसिंह के चार लड़के थे। जस्सासिंह, मालीसिंह, खुशहालसिंह और तारासिंह।

जस्सासिंह एक चतुर आदमी था और उसने जालधर के सूबे के हाकिम अदीनाबेग की नौकरी में काफी इज्जत पैदा करली थी और जब १७४८ ई० के अंत में मीरमन्नू की आज्ञा पर अदीनाबेग ने अमृतसर में नव स्थापित रामरौनी नामी गढ़ी पर हमला किया तो जस्सासिंह अपने सिख साथियों के साथ उसकी सेना में उपस्थित था। रामरौनी का घेरा बहुत दिनों तक पड़ा रहने के कारण जब अन्दर के सिखों ने शहीदियाँ प्राप्त करने का अरदासा सोध कर बाहर निकलने की तैयारी के लिये अन्दर से सत

जब सरदार महासिंह की जयसिंह कन्हैया से कुछ अनबन हो गई तो उसने जस्सासिंह रामगढिया, को वापिस पंजाब में बुला लिया और एक लडाई के बाद उसका इलाका उसे वापिस दिला दिया।

आपने बडी आयु पाई और महाराजा रणजीतसिंह जी के जमाने तक जिन्दा रहे। आपके बाद आपका लडका जोधसिंह मिसल का सरदार बना।

जोधसिंह भी अपने बाप की तरह ही बुद्धिमान और शूरमा था। इसने राजा संसारचन्द से मित्रता निबाहने मे कोई कसर नहीं रक्खी। यह भी किसी से नहीं डरता था। इसलिए ऐसे कुल मनुष्यों को जगह देता था। जिन्हें कहीं से खतरनाक बताकर निकाल दिया जाता था।

मोहरसिंह, हजारासिंह और ठाकुरसिंह को फतहसिंह अहलूवालिये ने अपने यहाॅ से निकाल दिया और इसने उन्हें रख लिया। फगवाड़ा की रानी लक्ष्मी जो कि महाराजा रणजीतसिंह जी से लड़ाई से परास्त हो गई थी। उसे भी इसने शरण में रख लिया।

जब महाराजा रणजीतसिंह अमृतसर आये तो उन्होंने जोधसिंह को बुलाया। जोधसिंह ने अब के महाराजा से प्रतिज्ञा करली कि मैं अब सदैव आपकी मदद किया करूॅगा और कभी भी आपके दुश्मनों को शरण न दूॅगा।

आगे दोनों की यह मित्रता वफादारी के साथ निभी भी। जोधसिंह ने मुल्तान, कसूर और अन्य सभी स्थानों पर रणजीतसिंह जी का साथ दिया और बडी बहादुरी के साथ दुश्मनों से लडा। इन वफादारियों से खुश होकर रणजीतसिंह जी ने भी इसको लगभग चालीस हजार का इलाका दो बार मे पुरुस्कार स्वरूप दिया।

सवत १८७३ में जोधसिंह का भी इतकाल हो गया। किन्तु इसके मरने के बाद इसके भाइयो मे जागीर और जायदाद के लिये बखेडा खड़ा हो गया। महाराजा रणजीतसिंह ने इन्हें तलब किया और उन्होंने एक फैसला भी किया। जिसे इन लोगों ने नहीं माना, अतः तीनों भाई दीवानसिंह, वीरसिंह और महताबसिंह को बन्द कर दिया। अंत मे चन्दासिंह सरदार की सिफारिस पर महाराजा ने इन्हें छोड़ दिया और पेंतीस हजार की जागीर भी देनी चाही। किन्तु दीवानसिंह ने अस्वीकार कर दिया और सारा मामला खटाई मे पड़ गया। दीवानसिंह पटियाले जाकर रहने लगा। महाराजा रणजीतसिंह को यह बात बुरी लगी, अत उन्होंने देसासिंह मजीठिया के द्वारा दीवानसिंह को बुलवा लिया और अपनी फौज का एक बडा अफसर बना दिया। इससे दीवानसिंह खुश हो गया।

बारामूला (काशमीर) पर चढ़ाई करने के लिये जो सेना भेजी गई, उसका सेनापति भी दीवानसिंह बना था। जो बड़ी बहादुरी के साथ लड़ता हुआ सवत १८६१ वि० में स्वर्गवास कर गया। महाराज ने उसके लड़के मगलसिंह को जो कि फौज मे एक अफसरी का दर्जा पा चुका था और बड़ी उमदगी से काम करता था। उसको ६००० की जागीर बख्शी।

पेशावर कोहिस्तान आदि की अनेकों लड़ाइयों मे इसने महाराजा रणजीतसिंह की ओर से खूब बहादुरी दिखाई।

महाराजा रणजीतसिंह जी के स्वर्गवासी होने पर यह अंग्रेजों का मददगार हो गया और इसने अंग्रेजों की कई मोर्चो पर अच्छी मदद की। इससे अंग्रेजों ने भी इसे कुछ जागीर दी।

सवत १९३३ विक्रमी मे इसका देहात हो गया। इसी वर्ष अंग्रेज सरकार की ओर से इसे सितारे हिन्द का खिताब भी मिला था।

इसने अपने पीछे तीन लड़के छोड़े थे। एक गुरुदत्तसिंह जिसने अवध और दूसरे जिलो मे हवलदार तथा पुलिस इन्सपेक्टर के ओहदों पर काम करके अंग्रेज सरकार की सेवा की और वृद्धावस्था मे १२००) सालाना की पेन्शन मजूर कराकर शेप दिन आराम से गुजारे।

दूसरा सुचेतसिंह। यह भी अग्रेजी सरकार की सेवा में ही नियुक्त हुआ और मुनसिफी के ओहदे पर काम करता हुआ अल्पायु मे ही संवत १६३६ वि० मे चल बसा। इसके लड़के का नाम विशनसिंह था।

तीसरा लड़का शेरसिंह अंग्रेजी पुलिस मे नौकर हो गया था और संवत १६४५ में मर गया। इसके दो लड़के सतसिंह और सुन्दरसिंह हुए जिनमे संतसिंह ने बी० ए० तक की तालीम पाई थी। किंतु बाप के कुछ ही दिन बाद मर गया। दूसरा सुन्दरसिंह आनरेरी मजिस्ट्रेट बन गया।

अंग्रेज सरकार की ओर से तीन हजार सालाना की आमदनी की भूमि इन्हे माफी में मिली हुई थी जो बराबर इनके पास है।

इस मिसल का सस्थापक सरदार जयसिंह था, जोकि जिला लाहौर के कान्हगाव का रहने वाला सिख जाट जमींदार था। कान्ह के निवासी होने से यह कन्हैया नाम से मशहूर हुए और इसलिये मिसल का नाम भी कन्हैयामिसल हो गया। चौधरी खुशहालसिंहजी साधारण स्थिति के जमींदार थे वे दुनिया के झगडो को पसद भी बहुत कम करते थे। अपने काम से मतलब रखने मे ही उन्हे आनद आता था किन्तु उनका बेटा जयसिंह एक उद्दत प्रकृति का वीर आदमी था उसने सरदार कपूरसिंह जी के पास जाकर सिखी धारण की। और बहुत से अपने भाई बान्धवों को सिख बनवा कर अपना एक जत्था खड़ा किया। जिसमे हकीकतसिंह, महताबसिंह और तारासिंह के नाम उल्लेखनीय है। तुरको को दड देने और वीरता पूर्ण कार्य करने के कारण धीरे-धीरे इनके पास ४०० आदमी एक से एक बढ़ कर वीर स्वभाव के इकट्ठे हो गये थे।

कन्हैया मिसल

अमृतसर से नौ कोस के फासले पर सोहिया गाव मे इसका विवाह हुआ था। वहीं इसने अपना मुकाम भी बना लिया।

इसका भाई झडासिंह भी बडा बहादुर था। उसने कई लड़ाइयों मे नाम पाया था और कई गावों पर जिनके कि नाम नागमुकेटियॉ, हाजीपुर, दातारपुर आदि है। कब्जा कर लिया था। वह स्यालकोट की लडाई में निधानसिंह रंधावा के साथ लड़ता हुआ मारा गया। सरदार जयसिंह ने अपनी भाभी के साथ नाता कर लिया। जिससे उसके पास यह गाव भी आ गये। इससे भी इसकी शक्ति बढी। कुछ दिन बाद इसके एक लडका पैदा हुआ जिसका नाम गुरुबख्शसिंह रक्खा गया। सदाकौर इसी लडके के साथ ब्याही गई थी जो आगे चल कर पंजाब के शेर रणजीतसिंह की सासु बनी थीं।

जयसिंह ने धीरे-धीरे अपने बाहुबल से पठानकोट, हाजीपुर, सुजानपुर और दीनानगर आदि बहुत से इलाकों को अपने कब्जे मे कर लिया।

सरहिन्द की लडाइयों मे सदैव ही इसने अपनी कौम का ही साथ दिया।

एक समय इसने जम्मू के राजकुमार व्रजराजदेव की मदद की। उस लड़ाई मे कुछ सिख मिसलें रंजीतदेव के साथ थीं अत. यहाँ से इनका भी भंगी मिसल से मनमुटाव सा हो गया। रामगढिया मिसल वालों के साथ पहले तो मित्रता थी, किन्तु आनन्दपुर पर आक्रमण करने के कारण कसूर की लडाई में जस्सासिंह का शत्रुओं की मदद करने की बात इन्हे नहीं रुची और इसी पर गहरी शत्रुता हो गई। इन्होंने भी एक बार ता जस्सासिंह को पंजाब से निकाल कर ही दम लिया था।

जयसिंह के साथियों में हकीकतसिंह भी बडा मरद था। पहाड़ी राजाओं की निगरानी के लिये जयसिंह ने इसी को नियत कर रक्खा था। वह उनसे खिराज भी वसूल करता था।

जब जम्मू का राजा राणा व्रजराज गद्दी पर बैठा। व्रजराज ने चाहा कि मेरे राज्य का जो हिस्सा भंगी मिसल वालों ने पिछली लडाइयों के एवज में मेरे पिता से ले लिया है, वह वापिस मिल जाय। इसलिये उसने हकीकतसिंह से मदद चाही। हकीकतसिंह ने कोशिश करके चौतीस हजार रुपये में उसका इलाका वापिस करा दिया। किन्तु बाद में व्रजराज अपने वायदे से फिसल गया। इसलिये गूजरसिंह भंगी और भागसिंह अहलूवालिया को साथ लेकर हकीकतसिंह ने पहले तो उसके कड़ीआले वाले इलाके पर कब्जा किया और फिर जम्मू पर भी चढ़ाई कर दी। इस दल को देख कर व्रजराज ने हकीकतसिंह के सामने आकर सुलह कर ली और थोड़े ही दिनों में तीस हजार रुपया पहुंचा देने का वायदा किया किन्तु व्रजराज फिर भी वायदे का पक्का न निकला। अतः हकीकतसिंह ने अब की बार सुकरचकिया की मदद लेकर जम्मू पर चढाई कर दी। इस बार राजा ने जम्मू छोड़ देने की होशियारी की इसलिये सिखों को विवश होकर नगर में घुसना पड़ा और नगरवासियों के अशिष्ट व्यवहार पर उन्होंने नगर निवासियों को दंड भी दिया।

इसके थोड़े ही दिनों बाद हकीकतसिंह मर गया। जयसिंह ने उनके पुत्र जैमलसिंह को अपने पास बुला कर धैर्य दिया और उसे सब प्रकार की सहायता देने का भी आश्वासन दिया।

जयसिंह योद्धा था। समझदार भी था किन्तु वह कभी-कभी साथियों के कहने में आकर गलती भी कर बैठता था। राजा व्रजराज ने भी ऐसे ही उसे चग पर चढ़ाया और वह महासिंह सुकरचकिया का विरोधी होगया। बहुत सारी फौज लेकर महासिंह के इलाके में घुस गया और मंडियाला और रसूलपुरा आदि गांवों पर हाथ साफ करते हुए नकईसिंह के इलाके में जो कि महासिंह का ही एक रिस्तेदार और मिसलपति था, जा पहुँचा।

महासिंह ने इन बातों को जानकर भी धैर्य से काम लिया और उसने दीपावलि के मेले पर जयसिंह को बहुत समझाया कि हमें आपस में ही नहीं लड़ना चाहिये किन्तु जयसिंह की समझ में कुछ न आया।

इस पर महासिंह ने भी जयसिंह को पाठ पढ़ाना निश्चय कर लिया और जस्सासिंह रामगढ़िया को जो कि जैसिंह का पक्का विरोधी था। पंजाब में वापिस बुला भेजा। कटोच राजा संसारचंद भी महासिंह ने अपनी ओर मिला लिया और लडाई की तैयारी कर दी।

बटाले के पास लड़ाई हुई। जयसिंह का लड़का गुरुबक्शसिंह इस लड़ाई में मारा गया। जयसिंह को उसने सुलह का रास्ता निकाला। बड़ी सोच विचार के साथ अपनी पौत्री (गुरुबख्शसिंह की पुत्री) महताबकौर की शादी महासिंह के लड़के रणजीतसिंह के साथ करके इस विरोध को मिटाया।

यह विरोध अवश्य मिट गया किन्तु दिन प्रति दिन इस मिसल की अवनति ही होती गई।

इस विवाह को करा देने के थोड़े ही समय बाद संवत १८५७ विक्रमी में जयसिंह इस ससार से प्रस्थान कर गया। इसके निधानसिंह और भागसिंह दो पुत्र और थे। किन्तु मिसल का नेतृत्व गुरुबख्शसिंह की बेवा सदाकौर ने ही संभाला। उधर महासिंह जी के मर जाने के बाद रणजीतसिंह की गार्जियन शिप भी सदाकौर ने ही की। सरदारनी सदाकौर बड़ी ही हिम्मत की स्त्री थीं। बुद्धिमानी में बहुत बढी चढ़ी थीं। दोनों मिसलों की फौजों की संयुक्त शक्ति से उन्होंने बहुत लाभ उठाया। कई नये इलाके जीत कर अपने आधीन किये।

अपने पति का बदला लेने के लिये इस बहादुर सिंहनी ने दोनों मिसलों की फौज को लेकर जस्सासिंह रामगढ़िया पर चढ़ाई कर दी और उसे किले मे घेर लिया किन्तु वर्षा के दिन होने के कारण व्यास नदी में बाढ़ आ गई। इससे इसे वापिस लौटना पड़ा। लेकिन दूसरे ही साल फिर जस्सासिंह पर चढ़ाई कर दी। उसकी शक्ति को कम करके उसके राज्य के बटाला कलानौर और कादिआं आदि स्थानों को अपने आधीन कर लिया।

चूँकि अब महाराजा रणजीतसिंह अपनी सास से स्वतन्त्र हो चुके थे और उन्होंने दूसरी शादियाँ करना भी शुरू कर दिया था। इसलिये सदाकौर ने अपने दौहित्र शेरसिंह और तारासिंह को अटलगढ का किला और परगना अपनी रियासत मे से प्रदान कर दिये।

कुछ दिनों बाद यह बहादुर सिंहनी इस ससार से कूच कर गई।

अपनी सास सदाकौर के स्वर्गवास के बाद महाराजा रणजीतसिंह जी ने कन्हैया मिसल का कुल इलाका अपने राज्य मे शामिल कर लिया। हॉ, हेमसिंह को जो कि जयसिंह का भतीजा था। चालीस हजार का इलाका अवश्य दे दिया। इसके बाद जब महाराज ने कसूर को फतह किया तो हेमसिंह को दस हजार का इलाका और दे दिया।

हेमसिंह भी थोड़े ही वर्षों बाद चल बसा। अतः उसका लड़का अमरसिंह उस जागीर का मालिक हुआ था। महाराजा रणजीतसिंह जी की आज्ञा से यह मुलतान और काश्मीर की लड़ाइयों मे भी शामिल हुआ। अमरसिंह भी मर गया।

अमरसिंह के तीन लड़के थे। सरूपसिंह, अनूपसिंह और अतरसिंह। इनको अपने बाप के बाद तीस हजार की जागीर मिली।

सवत १८६१ मे सरूपसिंह मर गया। उसके मरने के बाद लाहौर की सरकार ने उसकी जागीर जब्त करली उसकी औलाद के पास केवल एक गॉव रूखांवाला रह गया।

अंग्रेजी राज्य के पंजाब मे आने पर यह सब लोग उसकी बड़ी २ नौकरियों में लगने की कोशिश करने लगे।

अतरसिंह के लड़के मेघसिंह ने अंग्रेजी फौज मे नौकरी करके जो वफादारी दिखाई उसके बदले मे उसकी ओलाद को दो गॉव ६००)सालाना आमदनी के माफी मे मिले।

इस खानदान मे पिछले दिनों जगतसिंह जी के पास ११२५ एकड़ जमीन का इलाका था। और वह बड़ी खुशहाली से अपना जीवन बिताते थे।

नकई मिसल

लाहौर सूबे के बहड़वाल गॉव परगना चूनिया मे जाट चौधरी हेमराज रहते थे। उन्हीं के लड़के हीरासिंह ने इस मिसल की स्थापना की थी। चूंकि इस इलाके को नका का इलाका कहते थे। इसलिये सरदार हीरासिंह नकई करके मशहूर हुये और इनके साथ ही उनके जत्थे तथा मिसल के लिये भी यही नाम मशहूर हो गया। सरदार हीरासिंह का जन्म संवत १७६३ विक्रमी मे हुआ था। युवा होने पर सिख धर्म ग्रहण करके कौम और देश की सेवा मे जुट गये। उस समय देश व जाति की सेवा का प्रमुख अर्थ सैनिक दल मे भर्ती होना था। आप भी एक जत्थे मे शामिल होकर धावे और अत्याचारियों को दंड देने के काम मे शामिल हो गए। सरहिंद और कसूर की लड़ाइयों के बीच आपने बड़ी बहादुरी दिखाई। इससे सैकड़ों जवान सिख रूपासिंह, नत्थासिंह, कमरसिंह, लालसिंह और सदासिंह आदि जो कि बड़े तगड़े जवान थे, आपकी ओर आ मिले।

आरम्भ में हीरासिंह नकई ने आस पास के छोटे मोटे मुसलमान रईसों को वश में किया तब फिर आगे को पैर फैलाए।

शनैः शनैः इतनी शक्ति बढ़ाली कि आठ हजार जवान हीरासिंह की सेना में भर्ती हो गये।

थोड़े ही समय में मागा, जमेरमंदर, फरीदाबाद, देवसाल, शेरगढ़, मुस्तफाबाद, खुडिआ, जेठपुरा, कंगनपुर, दीपालपुर और चूनियां, के इलाके कब्जे में कर लिये। जिनकी सालाना आमदनी दसियों लाख रुपये थी। किसी २ ने तो ४५ लाख तक लिखी है।

उन दिनों पाकपट्टन में शेख सुभानखां हुकूमत करता था। वह बड़ा तास्सुबी मुसलमान था। गौ-हत्या के लिये मुसलमानों को खासतौर से उकसाया करता था। वहां की हिन्दू प्रजा उससे बहुत दुखित थी। इसलिये कई बार सरदार हीरासिंह नकई के पास पुकार लेकर गई। हीरासिंह ने शेख को कई बार चेतावनी भी दी किन्तु उसने एक न सुनी।

जब उसने हीरासिंह की बात की कतई परवाह न की तो हीरासिंह को उस पर आखिर चढाई ही करनी पडी। उधर शेख ने भी बहुत सारे मुसलमान इकट्ठे कर लिये थे। हीरासिंह अपनी सेना की नाके बन्दी करा रहा था कि उधर किले की ओर से अचानक एक गोली हीरसिंह के माथे में लगी। जिससे वह चल बसा। फौज भी बिना सरदार के कब लडती है। इसलिये वह भी लौट आई।

हीरासिंह का लड़का दसूसिंह उन दिनों छोटा था। अतः उसका भाई नाहरसिंह गद्दी का मालिक बना। नाहरसिंह तपैदिक की बीमारी में ग्रस्त था। कुछ ही महीनों में मर गया। अतः उसका छोटा भाई रनसिंह मिसल का अधिपति बनाया गया। रनसिंह चतुर और मिलनसार आदमी था इसके समय में मिसल की काफी तरक्की हुई। इलाके के बड़े बडे स्वस्थ और सुन्दर नौजवान इसने भर्ती कर लिये और इस तरह सैनिकों की संख्या भी बढ़ाकर बीस हजार के लगभग करली। अच्छे-अच्छे शस्त्रों का संग्रह भी किया।

चन्द दिनों में ही कोटकमालिया, खरल, और कुछ भाग सरकपुर का भी इसने अपने अधीन कर लिया। इसके सिवा सैयदवाले के कपूरसिंह से भी उसका इलाका छीन लिया।

बहादुर रनसिंह वास्तव में रनसिंह निकला और लगभग बारह वर्ष अपनी बहादुरी के चमत्कार दिखाकर इस संसार से कूच कर गया।

इसके तीन लड़के भगवानसिंह, खजानसिंह और ज्ञानसिंह थे। भगवानसिंह अपने बाप का उत्तराधिकारी बना। किन्तु इतनी बड़ी जायदाद को सभालने की इसमें योग्यता न थी। अतः कंवरसिंह के भाई वजीरसिंह ने इसके बहुत से इलाके को अपने कब्जे में कर लिया। इस समय भगवानसिंह की बुद्धिमानी भी इसी में थी कि वह किसी जबर्दस्त सरदार की आड़ लेकर अपने इलाका की रक्षा करता। उसने किया भी यही अपनी बहिन की शादी महासिंह सुकरचकिया के लड़के रणजीतसिंह जी के साथ करदी। शादी के बाद महाराजा रणजीतसिंह ने उसका वह सारा इलाका वापिस दिलवा दिया जो वजीरसिंह ने दबा लिया था।

इन महासिंह पर भी एक आपत्ति आ रही थी। और वह यह कि जैसिंह कन्हैया विरोधी बन गया था और वह ब्रजराजदेव जम्मू के बहकावे में आकर महासिंह के इलाकों पर छापा मारने लग गया था। अतः महासिंह ने अमृतसर आकर भगवानसिंह और वजीरसिंह को समझा बुझाकर मित्र बना दिया और दोनों ही को जयसिंह कन्हैया के खिलाफ खड़ा कर दिया।

पांच छ. महीने तो वजीरसिंह और भगवानसिंह मे मेल रहा किन्तु फिर झगडा हो गया और आपसी लड़ाई मे भगवानसिंह मारा गया।

भगवानसिंह के बाद उसका छोटा भाई ज्ञानसिंह मिस्ल का सरदार बना।

इन्हीं दिनो वजीरसिह के नौकरों ने मिसल के संस्थापक हीरासिंह के लड़के दलसिंह को मार डाला। इस प्रकार हीरासिह का वंश कतई समाप्त हो गया।

ज्ञानसिंह भी मर गया। तब उसके लड़के काहनसिंह को महाराजा रणजीतसिंह ने १५ गॉवों का जिसमे भड़वाल भी शामिल था। जागीरदार बना दिया। शेष इलाका पहले ही रणजीतसिंह जी ने अपने राज्य मे मिला लिया था। ज्ञानसिंह के भाई खजानसिंह को नानकोट का इलाका मिला।

काहनसिंह के अतरसिंह नाम का एक लडका था। वह मुलतान की लड़ाई के समय दुश्मनों से जा मिला। अतः उसकी सब जागीर जब्त करली गई किन्तु काहनसिंह के बुढ़ापे का खयाल करके बारह हजार की जागीर इस शर्त पर रहने दी गई, कि उसके मरते ही यह जब्त करली जायगी।

चतरसिह जो कि काहनसिंह का दूसरा लड़का था। कुछ दिन बाद मर गया और बूढा काहन सिंह भी उससे कुछ वर्ष बाद मे मर गया। मॉंटगोमरी मे रहने वाले रणजोधसिह ने विरासत का अपने को हकदार घोषित किया किन्तु वाद मुकद्मे के तत्कालीन सरकार ने रणजोधसिंह को दो हजार की जायदाद और सरसिह को बारह सौ रुपये की। इसी तरह अतरसिंह, तथा बेवाओ को भी बाकी जायदाद बांट दी।

अतरसिंह के एक लड़के का नाम लाभसिंह था और अपने बाप के बाद अपने पास दो हजार बीघा जमीन उसने करली थी। सरकार ने भी उसे जेलदार बना दिया था।

इस खानदान के दो आदमी ईसरसिंह और लहणासिंह के बाबत लिखा गया है कि उन्होंने मुसलमानी धर्म ग्रहण कर लिया संभव है ऐसा हो गया हो किन्तु हमने इस ओर जाच पड़ताल नहीं की।

इस मिसल का संस्थापक गुलाबसिंह खत्री था। जो सुल्तानपुर के पास डल्लेवाली गॉव के सधा राम खत्री दूकानदार का लड़का था। गुलाबसिह ने बहुत पहले सिख धर्म ग्रहण किया था। लड़ाकू सिख जत्थों मे शामिल होकर गुलाबसिंह ने अपने को भी इस योग्य बना लिया कि वह भी एक स्वतन्त्र जत्थेदार बन गया।

डल्ले वाली मिसल

जबान मे मिठास और कार्य्य मे स्फूर्ति इसके ऐसे गुण थे। जिससे प्राय. सभी साथी इससे खुश रहते थे। हिम्मत वाला भी ऊंचे दर्जे का था। एक समय केवल डेढ़ सौ आदमियो को लेकर जालधर पर चढ़ दौड़ा और शहर मे घुसकर धावा करता हुआ करतारपुर की ओर निकला जहॉं कि और भी सिख जत्थे पड़े हुए थे।

इसकी वीरता और उन्नति के समाचार सुनकर इसके दूसरे विरादरी भाई जिनमे हरदयालसिंह, जैपालसिंह और गुरदयालसिंह के नाम विशेष उल्लेखनीय है, सिख धर्म मे दीक्षित होगए।

एमनाबाद पर जो छापा मारा गया और जिससे जसपतराय दीवान नाराज होगया था उस छापे का मारने वाला यही गुलाबसिंह था। रोड़ी साहब के मुकाम पर जब जसपतराय ने आकर सिखों को घेरा था तो उसे गोली से इसी गुलाबसिंह ने इस संसार से उठा दिया था।

सरदार करोड़ासिंह चक्के के साथ दोस्ती करके गुलाबसिंह ने अपनी शक्ति को और भी बढा लिया था। दोनों मे पूरा मेल था और उस मेल से अपनी मातृभूमि की सेवा करने का लाभ उठाते थे।

दोनों ने मिलकर हरद्वार की ओर कूच किया। वहां से आगे चलकर नजीबाबाद पर चढ़ाई करदी। नवाब नजीबखां लड़ा तो हिम्मत के साथ किन्तु, उसे आखीर में भागकर अपने प्राण बचाने पड़े। फिर मेरठ मुजफ्फरनगर, देवबन्द, मीरपुर के मुसलमान हाकिमों को शोधते हुए सहारनपुर पहुँचे और यहां से अपने देश पंजाब को लौट आये।

जबकि अहमदशाह युक्तप्रांत के धावे करके वापिस हो रहा था और हजारों हिन्दू स्त्रियों को भी दासी बनाने के लिये ले जा रहा था। तब चिनाब के किनारे सिखों ने उस पर जबर्दस्त हमला किया था। और उन सभी स्त्रियों को उनसे छिना लिया था। उस हमले में भी वे दोनों वीर शामिल थे। और बड़ी बहादुरी के अपने फर्ज को इन्होंने पूरा किया था।

इसी साल सिखों ने उस शाही खजाने पर भी हमला किया था। जो रावलपिन्डी और रोहतास के इलाके से वसूल होकर लाहौर आरहा था। उस हमले में इन दोनों ने बड़ी बहादुरी दिखाई थी। यह उस समय डेरा बाबा नानक में थे किन्तु इस खबर सुनते ही बिजली की तरह दौड़कर जेहलम के किनारे पहुँच गये और शाही खजाने पर धावा किया। यह खजाना सभी सिख जत्थों में बांट दिया जो कि उस समय मौजूद थे।

धीरे-धीरे इनके पास छ: हजार सैनिक इकट्ठे होगये और पंथ में इनकी अच्छी खासी इज्जत होने लग पड़ी।

जब कलानौर की लड़ाई चली यह बहादुर उसमें लड़ता हुआ, खतम होगया और चूंकि इसके दोनों लड़के जैपालसिंह और हरदयालसिंह पहले ही बमोली की लड़ाई में खत्म हो चुके थे अत: इसके एक अच्छे साथी हरदयालसिंह को मिसल का सरदार बनाया गया।

किन्तु हरदयालसिंह दूसरे ही वर्ष दुआबे की एक लड़ाई में काम आगया। इसलिये तारासिंह[1] को मिसलपति चुना गया।

तारासिंह आरम्भ में एक साधारण सिख था और तांडोंगाली में रहा करता था। लड़कपन में अपने पशुओं को चराता और मौज करता। जब जवान हुआ तो सिखों के दलों में शामिल होगया। और गुलाबसिंह का साथी बन गया। चूंकि इसने लड़ाइयों में बड़ी २ बहादुरी दिखाई थी और साथियों के साथ बड़े प्रेम का बर्ताव था। इन सब अच्छाइयों ने इसे डल्ले वाली मिसल का ही अधिपति बना दिया।[1]

मिसल पति होने के बाद इसने अपनी बुद्धिमानी और बहादुरी से अपने सैनिकों और इलाके सब की तरक्की करली। भंगी सरदार हरीसिंह को इसने कसूर के जीतने में भी मदद दी थी और वहाँ के रईस अदीनाबेग के दीवान विश्वम्भर को इसने अपने कब्जे में कर लिया।

इसने अपने दल को बढ़ाने के लिये अपनी बिरादरी के सैकड़ों लोगों को सिख बनाया।

इसकी कौमी सेवाओं और सच्ची धर्मप्रियता को देखकर गाँव के सारे ही चौधरी मय अपने मुखिया चौधरी गौहरदास के सिख बन गये थे। और उस गाँव के सभी तरुण इसके जत्थे में शामिल होगये थे। तारासिंह की इस प्रकार की सरगर्मियों का नतीजा यह हुआ कि उसके पास लगभग दस हजार सैनिक होगये।

सरहिन्द की लड़ाई से लौटकर इसने घुंगराला, बदोवाल, इखनी आदि स्थानों पर कब्जा कर

१. अधिकांश इतिहासकारों का मत यह है कि डल्लेवाली मिसल के संस्थापक तारासिंह गैवा ही थे।

लिया और कस्बा राहूं को अपना सदर मुकाम बनाया। इस तरह लगभग आठ लाख का इलाका इसके कब्जे मे होगया।

थानेसर, रोपड़ सिआलिवा खेड़ी और खमानों के रईसों ने इसकी अधीनता स्वीकार करली। इससे भी तारासिंह की ताकत खूब बढ़ने लगी। तारासिंह खुद इस स्वभाव का आदमी न था कि सिख आपस मे भी लड़े किन्तु एक बार इसे भी जोधसिंह रामगढ़िया के साथ लड़ना पड़ा। बात यह हुई कि राजा संसारचद ने जोधसिंह के कान तारासिंह के खिलाफ भर दिये और जोधसिंह ने दखनी किले पर हमला कर दिया। लगातार दोनों ओर से २० दिन तक लड़ाई हुई। दोनों ओर का काफी नुकसान हुआ। आखिर जोधसिंह को निराश होकर लौटना पडा। तारासिंह से विजय नहीं हुआ।

तारासिंह जैसा बहादुर था वैसा ही दानी और उदार भी था। अपनी रियासत के कई बडे २ गॉवों मे इसने लंगर भी जारी करा दिये थे। जिनसे गरीब लोग लाभ उठाते थे।

प्रजा से कभी भी तंग करके मालगुजारी नहीं ली। जितना भी राजी से लोग दे देते उतने ही पर सतोष कर लेता। इससे प्रजा के लोग भी इससे खुश थे और संकट पड़ने पर मदद भी कर देते थे।

एक बार तारासिंह ने अचानक ही थोड़े से आदमियो के साथ दारापुर पर हमला कर दिया। और वहॉ के हाकिमों को सदैव के लिये रणखेत मे सुला दिया।

तारासिंह के तीन लड़के थे। गूजरसिंह, दसौधासिंह और झंडासिंह। बाप ने मरने से पहिले ही तीनों ही को अलग २ किले और इलाके बाट दिये। गूजरसिंह ने घुगराला और धरमकोट पर कब्जा किया। दसौधासिंह के हाथ दखनी और बंदोवाल के इलाके आये और झंडासिंह को नकोदर, माम्रपुर और बल्लोकी मिले, जोकि जालंधर के इलाके मे हैं। यह तीनो इलाके तीस-तीस हजार की आमदनी के थे और बाकी रियासत अपने पास रक्खी। जिसे करीब पांच लाख की बताया जाता है।

सरदार तारासिंह इस संसार से प्रस्थान कर गया। उसका शोक मनाने के लिये महाराजा रणजीत-सिंह भी आये। बेवा सरदारनी ने उन्हें बहुत सारी कीमती चीजे भेट दीं जिसमे पांच बढ़िया घोडे हाथी की जजीर और छ लाख रुपये भी थे। कुछ दिन बाद महारजा रणजीतसिंह ने सरदारनी को दो गॉव गुजारे के लिये दिये और सात गॉव मालपुरा, निकोदर, आदि झंडासिंह को देकर बाकी इलाका अपने राज्य मे मिला लिया।

तारासिंह के पुत्रो के पास जो इलाके थे। वे भी महाराजा रणजीतसिंह जो ने उस दौरे में जब्त कर लिये जो कि मालवे की शोध के लिये किया था।

गूजरसिंह को महाराज ने उन गांवों मे से आधे दिला दिये जो उन्होंने गुरदत्तसिंह डल्लेवाले को दे दिये थे। और यह गॉव भी वह थे, जो तारासिंह ने उदासियों को बता रक्खे थे।

बाद मे महाराजा रणजीतसिंह जी ने रतनकौर को दो हजार रुपये सालाना की पेन्शन करदी जो उसे आजन्म मिली। उसके बाद मे २००) मासिक नारलसिंह को मिलते रहे। बिलोकी और सरक-पुर मे लगभग २६०) सालाना की माफी नारलसिंह और बख्तावरसिंह को दे दी गई थी।

अग्रेजी हकूमत आने पर नारलसिंह सेना में सूबेदार होगया और उसे ४९५) सालाना की पेन्शन भी मिल गई। नारलसिंह का पुत्र अपने बाप का वारिस हुआ।

कुछ भी हो मिसल तो तारासिंह के बाद ही टूट गई थी और वहीं तक उसका गौरव पूर्ण इति-हास है।

इस मिसल के वास्तविक जन्मदाता तो शामसिंह और करमसिंह पंजगढ़ वाले जाट चौधरी थे। पीछे किरोड़ासिंह वरकिआंवाले के नेतृत्व मे आने के कारण इसका नाम भी उसी के नाम पर मशहूर हो गया। क्योंकि यह आदमी था भी मशहूर होने लायक। उसने अपनी बहादुरी और चतुराई से लगभग दस लाख का तो इलाका इस मिसल के कब्जे मे कर लिया और बारह हजार वीर सदैव उसके पास तैयार रहते थे।

क्रोड़ियाँ मिसल

जिस समय नादिरशाह दुर्रानी लूट का माल लेकर पंजाब से गुजर रहा था। शामसिंह ने अपने साथियों को लेकर उस पर हमला कर दिया और उसी लड़ाई में मारा गया। करमसिंह ने भी अपने समय मे बड़ी बड़ी बहादुरी के काम किये। जिस समय जालधर के अदीनाबेग पर सिखों ने चढाई की तो उनके सेनापति खैरसाह का सिर इसी सरदार ने काटा था और इस प्रकार का घनघोर और बुद्धिमता पूर्ण रण कौशल दिखाया कि मुसलमानों के छक्के छूट गये। सबसे पहले किले में इसी का जत्था गया था।

करमसिंह के बाद ही किरोड़ासिंह इस मिसल का सरदार बना जो इतना भाग्यशाली था कि इसके समय मे मिसल की अपूर्व उन्नति हुई।

सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि भरतपुर के महाराजा सूरजमल जी के साथ इसने कितने ही युद्धों मे सहयोग दिया। फरूखाबाद तक के इलाके उनके साथ मिलकर इसने शोधे।

एक बार इसने समस्त हरियाने का दौरा किया और जहाँ जहाँ भी मुसलमान रईसों को देखा उनको बर्बाद कर दिया।

बटाले में जब कि बुलंदखाँ से सिखों का युद्ध हुआ उसमे भी किरोड़ासिंह शामिल हुआ और उन्हे इतना खदेड़ा कि वे बेचारे अपना खजाना तक न लेजा सके। सब इसी के हाथ आगया। साम चौरखी के सारे इलाके पर भी इसने कब्जा कर लिया था।

अंत मे नवाब गुलामकादिरखा से तरावड़ी के मैदान मे लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हो गया। इसके बाद सरदार बघेलसिंह जी धारीवाल जाट इस मिसल के अधिपति हुए। इन्होंने भी अपने समय में मिसल की काफी तरक्की की। बुरडीन, केबरी, छलोदी, जमीअतगढ़ आदि स्थानों पर कब्जा करके इन्होंने अपनी आमदनी में कई लाख की वृद्धि करली और छलोदी मे जोकि जिला कर्नाल मे है। अपना केन्द्र कायम किया।

दुआबा मे जालंधर और होशियारपुर के जिलों मे बहुतसा भूभाग अपने अधीन इन्होंने कर लिया हालांकि कुछ पहले भी हो चुका था।

एक बार इसने एक बड़ा सैन्यदल इकट्ठा करके पूर्व की ओर कूच कर दिया। पहले जलालाबाद पर धावा किया। यहाँ का हाकिम मुहम्मदहसन था। जिसने जबरन एक ब्राह्मणी को घर में डाल लिया था। जलालाबाद से खुरजा, चदौसी, अलीगढ़ और हाथरस पहुँच कर इन शहरों के मुसलमानों को परास्त किया। इसके बाद फरूखाबाद पहुँचे जहाँ का हाकिम ईसाखां बड़ी बहादुरी के साथ मैदान मे आया। तीन दिन तक डटकर लड़ाई हुई किन्तु अन्त मे ईसाखां भाग गया। उधर से मुड़कर, मुरादाबाद अनूपशहर बिजनौर, बुलन्दशहर आदि शहरों को लूटते हुए पजाब में वापिस लौटे। इस विजय यात्रा मे हजारों सिख मारे गये।

तलवन गांव जालंधर के इलाके में मियां मुहम्मदखां नामक एक मुसलमान रईस था। यह किरोड़ासिंह के समय मे ही मातहत होगया था, किन्तु इसने खिराज देना बन्द कर दिया था। अतः

पूर्व से वापिस आने पर इस पर चढ़ाई की और इलाके को जव्त करके यहा अपना एक छोटा सा किला बनवाया। इसी तरह नूरमहल के दीवानसिह का इलाका भी जव्त कर लिया।

एक बार सरदार बघेलसिह को पटियाला पर भी चढ़ाई करनी पड़ी क्योंकि महाराज अमरसिह जी पटियाला नरेश इस इलाके पर हाथ साफ करने लग पड़े थे।

घडाम के मुकाम पर दोनों ओर से सामना हुआ किन्तु विना ही रक्तपात किये दोनों ओर से सोच समझ कर आपस मे सुलह होगई। महाराज ने अपने राजकुमार साहवसिंह जी को वघेलसिह से अमृतपान कराकर सदैव के लिये पक्की मित्रता कायम करली। इससे वघेलसिह ने सदैव पटियाला नरेश को मदद दी।

दिल्ली के वजीर आजम नवाव अवदुलअहमदखां शाहजादा फरखंदावख्त के साथ अनगिनती सेना पंजाब मे इस आशय से लेकर आया कि सिख लोगों से उन इलाकों को वापिस लेले। जो उन्होंने अव तक की अराजकता के समय मे दवा लिये है।

यह सेना दल सब से पहले वघेलसिंह के ही इलाके से होकर गुजरा क्योंकि वही प्रथम रास्ते मे पड़ता था। वघेल बड़ा दूरन्देश आदमी था। उसने विना किसी उत्पात के इस दल को आगे वढ़ जाने दिया और जव यह दल पटियाला पहुचा तो पीछे अपना सारा दल लेकर कूच कर दिया। उधर महाराजा पटियाला के पास खवर भेज दी कि आप मजबूत रहे। और सिख मिसलों को भी बुलावा भेज दिया। प्राय सभी सिख मिसले भी अपनी-अपनी सेनाये लेकर उमड़ पड़ीं। फरखदावख्त चारों ओर से सेनाओं के वीच घिर गया। अब तो वह घवराने लगा। उसने सुलह की वातचीत भी वघेलसिंह द्वारा ही चलाई। वघेलसिंह ने कहा—इस समय लगभग पचास हजार सिख इकट्ठे हो रहे हैं। वह तो उसी हालत मे आपको सुरक्षित जाने दे सकते हैं। जव कि आप इनके हर्जे का रुपया दे सके। शाहजादा अपनी जान वचाना चाहता था। अतः उसने सिखों से सुलह की और फिर कभी भी सिखों के दमन का इरादा नहीं किया।

एक बार इसी प्रकार मराठों की फौज लूट मार करने के इरादे से पंजाव मे घुस आई। वघेलसिंह ने उसे भी अपने इलाके मे से मजे से गुजर जाने दिया किन्तु ज्योंही मराठे वीच पंजाव मे पहुच गये। उन्हे भी सिखो से घिरवा दिया। जिससे वह बड़े चक्कर मे पडे, आये थे लूटने किन्तु खुद लुट चले।

वघेलसिंह जहाँ बुद्धिमान दूरन्देश और वहादुर आदमी था। वहाँ महत्वाकांक्षी भी था। वह देख रहा था कि दिल्ली की मुगल हुकूमत रात दिन कमजोर होती जारही है। नाम मात्र की वादशाही रह गई है। दिल्ली से चारों ओर हर तीसवे कोस पर लोग वागी हो रहे हैं। अच्छा हो ऐसे समय में सिख लोग मिलकर दिल्ली पर धावा करे और अपना आधिपत्य कायम कर ले।

इसी ऊँचे उद्देश्य से उसने पजाव के तमाम मिसलपतियों अथवा जत्थादारो को पत्र लिखे और उन्हे वताया यह अवसर बहुत ही अनुकूल है।

सिखों की चालीस हजार सेना ने दिल्ली को घेर लिया। मजनू के टीले पर समस्त सिख मिसलपति इकट्ठे हो गए। अजमेरी दरवाजे से घुसकर मुगलपुरा तक के सारे हिस्से पर सिख शूरमाओं के पहरे लगा दिये और वढ़ते हुए किले तक पहुंच गये।

इस वीच मिरजा अलीगौहरशाह ने वजीर आजम से सलाह मशविरा करके मामले को वढ़ने

से और मुगल सल्तनत को नष्ट होने से बचा लिया। सिमरू बेगम को बीच मे डालकर सिखों के साथ निम्न शर्तों पर सुलह हो गई।

(१) खालसा सेनाओं को तीन लाख रुपया हर्जाने के दिये जावेगे।

(२) शहर की कोतवाली और चुंगी का अफसर सरदार बघेलसिंह को बनाया जायगा।

(३) जब तक सिखों द्वारा मनोनीत गुरुद्वारे न बन जावेगे। तब तक बघेलसिंह अपने साथ ४००० सिख सैनिक रख सकेंगे।

इस सुलह के बाद सिख सेनाये अपने मुल्क को लौट गईं।

सरदार बघेलसिंह जी ने गुरुद्वारों का निर्माण आरम्भ कर दिया। सब से पहले तेलीवाडे में जहां कि माता सुन्दरी जी और साहब देवजी रही थीं। उस स्थान पर एक गुरुद्वारा बनाया गया। इसके बाद जैपुरे महल्ले मे गुरुद्वारा बंगला साहब का निर्माण कराया गया। गुरु हरिकिशन जी साहब इसी स्थान पर ठहरे थे। जमना किनारे भी गुरु हरिकिशन और माता सुन्दरी जी व साहब देवे जी की स्मृति मे स्थान निर्माण कराया। जहा कि उनके अंतिम सस्कार हुये। रकाबगज मे जहा किसी गुरु तेग बहादुर जी के शरीर का भस्मात संस्कार लक्खो नाम के सिख ने किया था। वहा गुरुद्वारा रकाबगंज बनवाया गया।

इसके बाद उस स्थान पर जहा कि गुरु तेगबहादुर जी साहब का शीश उतारा गया था गुरुद्वारा शीसगज बनवाया किन्तु इस गुरुद्वारे के बनने के समय मुसलमान और सिखों मे तलवारें खिंच गईं कारण कि उस स्थान के पास मस्जिद बन चुकी थी। बघेलसिंह जी ने उसी मे सटा कर गुरुद्वारा बनवाना आरम्भ कर दिया।

इस प्रकार गुरुद्वारों का निर्माण करा कर सरदार बघेलसिंह अपने मुल्क को रवाना हो गये। रवानगी के समय वजीरआजम ने आपको पॉच घोडे, हाथी की जजीर और सिरोपाव भेंट किया। साथ ही सिखों की वीरता की प्रशंसा भी की। आजम ने हॅसते हुए यह भी पूछा सरदार जी, सिखों की वीरता तो मशहूर है। हिन्दुस्तान की सारी रियाया उनका जोहर मानती है। ये आपस मे जत्था बनाकर भी रहते हैं। पंथ की आज्ञाओं का पालन भी करते है किन्तु फिर यह कभी-कभी आपस मे भी क्यों लड पड़ते हैं? सरदार बघेलसिह ने जवाब दिया। इन्होंने अमृत पिया है। इसलिये यह अपमान को बर्दास्त नहीं कर सकते हैं। वह चाहे अपनों की ओर से हो और चाहे दूसरों की ओर से। बस स्वाभिमान की रक्षा के हेतु ही यह आपस में लड़ पडते हैं किन्तु यह याद रखनेकी बात है कि यह दूसरोंके लिये हमेशा एक हैं।

सिख इतिहासकारों ने लिखा है कि—"बादशाह ने बघेलसिंह को कडाह प्रसाद के लिये ५०००) नकद दिया और दिल्ली की चुंगी का चौथा हिस्सा उस समय तक बघेलसिंह के पास छालोदी भेजता रहा जब तक कि बघेलसिंह जिन्दा रहा।"

इसके बहुत दिन बाद बघेलसिंह ने अमृतसर की यात्रा की और सर में स्नान किया तथा हरि मन्दिर के दर्शन किये। वहीं सरदार गुलाबसिंह की मृत्यु का समाचार सुना और उसके ठिकाने मे जाकर उसकी जागीर का प्रबन्ध किया।

आखिर इस दूरदेश और बहादुर सिख का देहान्त हो गया। इसकी स्मृति मे हरियाना जिला होशियारपुर में एक समाधि बनी हुई है। इसके पीछे इसकी दो पत्नियॉ थीं। एक रामकौर दूसरी रतनकौर। दोनों ने दो इलाकों पर कब्जा कर लिया।

रामकौर ने जिला होशियारपुर मे दो लाख के इलाके पर कब्जा कर लिया। और रतनकौर ने छलोदी वाले इलाके पर अपना तहत जमा लिया।

चार पाँच वर्ष तक दोनों सरदारनिया अपने-अपने इलाके का काम भली प्रकार चलाती रहीं।

आगे महाराजा रणजीतसिंह जी ने दोनों के इलाके छीन कर अपने सहयोगियों को दे दिये। रतनकौर वाला इलाका—खुरदीन वाला हिस्सा—कलसिया के सरदार जोधसिंह को और—बहलेपुर वाला हिस्सा—वीरभान को दे दिया।

इस मिसल के सस्थापक प्रसिद्ध धर्मवीर बाबा दीपसिह जी थे। जिनका संक्षिप्त वर्णन हम बलिदान-कथा में कर चुके हैं। आपके प्रसिद्ध साथियो में भाई गुरु बख्शसिंह, सुधासिंह, बुद्धासिंह, प्रेमसिंह शेरसिंह और हीरासिंह आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है।

शहीदोंवाली मिसल गुरु गोविन्दसिंह जी के दक्षिण की ओर चले जाने के बाद बाबा दीपसिंह जी दम-दमा मे रहने लग गये थे। और वहीं पर अपना जत्था खड़ा किया था। दमदमे मे आपका बनाया हुआ कूप और बुद्धा (बुड्ढा) सिंह जी के लगाये हुये बेर वृक्ष अब तक मौजूद हैं।

१७६५ विक्रमी मे गुरु गोविन्दसिंह द्वारा भेजे हुए महावीर बन्दासिह जी का साथ बाबा दीपसिंह जी के जत्थे ने आदि से अंत तक दिया। युद्धो के समय यही दल अग्रणी रहता था और हर समय धर्म के लिये शहीदी तक प्राप्त करने की इच्छा से ओत-प्रोत रहने के कारण लोग इन्हे शहीद के नाम से पुकारते थे।

यह गौरव इसी मिसल को प्राप्त है कि इसके संस्थापक बाबा दीपसिंह जी ने श्री ग्रन्थ साहबजी के चार उतारे करवाये थे। और वे चारो तख्तो पर भेजे गये थे।

जालंधर के हाकिम अदीनाबेग के मरणोपरान्त बाबा दीपसिंह जी ने सिख जत्थों की सहायता से जालंधर को अपने कब्जे मे किया और फिर उसे अपने साथी दयालसिंह और नत्थासिंह जी शहीद को जागीर के रूप मे दे दिया। ये सरदार सालाना उस इलाके से भेट स्वरूप मिसल को दिया करते थे। किन्तु गुलाबसिंह ने जो कि इनके वंशजों का उत्तराधिकारी था। मिसल को भेट देना बन्द कर दिया इससे मिसल पति ने नाराज होकर गुलाबसिंह से यह जागीर छीन ली और 'दरबार बेर बाबा नानक साहब' से लगा दी।

बाबा दीपसिंह जी जहाँ उत्कट योद्धा थे। ये वहां ऊँचे दर्जे के विद्वान और धार्मिक पुरुष भी थे।

यह हम पहले लिख आये है कि जहानखां दुर्रानी ने अमृतसर मे बैठकर दरबार साहब का अपमान करना शुरू कर दिया था। इस खबर को सुनकर बाबा दीपसिंहजी ने पाच हजार शहीदी के इच्छुक सिखों को लेकर गिलजई पठानों पर अमृतसर मे चढ़ाई की थी। आपने प्रतिज्ञा की थी कि अपना सिर दरबार साहब की सेवा मे ही चढ़ेगा किन्तु मुस्लमानी सेना अमृतसर से ६ कोस के फासले पर आ गई। इस तरह बाबा और उनके साथियों को इतने जोर का युद्ध करना पड़ा जिससे अमृतसर तक लाश पर लाश पट गई। उनकी इस मार काट से गिलजई पठान तिलमिला उठे और शाह जमाल नाम के पंजहजारी सेनापति ने बाबा दीपसिह जी पर हमला किया। बाबा ने शाह जमाल को तो मार गिराया किन्तु सिर उनका भी कट गया। फिर भी वे सिर को हथेली पर रखकर बराबर उस समय तक लडे जब तक कि दरबार साहब के पास न पहुँच गये।

बाबा दीपसिंह के साथ लड़ाई मे सरदार रामसिंह, सज्जनसिंह, बहादुरसिंह, अक्खड़सिंह

और हीरासिंह भी थे, जो हजारों गिलजइयों को दोजख पहुँचा कर शहीद होगये। इन सब महावीरों के स्मृति स्थान अमृतसर में बने हुए हैं।

जिस समय बाबा दीपसिंह जी इस पवित्र शहीदी के लिये चले थे। सरदार नत्थासिंह जी को मिसल का अधिपति घोषित कर गये थे।

जिस समय बाबा दीपसिंह जी और उनके उपरोक्त साथी शहीद हुए थे। उस समय भाई गुरुबख्शसिंह और दुर्गासिंह आनन्दपुर में थे। इस खबर को सुनते ही मय दो हजार सिख सैनिकों के आ पहुंचे। उधर तैमूरशाह ने भी काबुल से कुछ सेना अमृतसर के गिलजइयों की मदद के वास्ते भेज दी थी। इन काबुली पठानों के साथ-साथ मुलतान और रोहतास आदि के भी पठान मिल गये। इस तरह मुसलमानों का दल बीस हजार सैनिकों से भी ज्यादा हो गया। इस दल के आने के पूर्व ही भाई गुरुबख्श-सिंह ने अपने सैनिकों को खालसा दलों के साथ मिलकर दुर्रानियों के मुकाबिले पर भेज दिया और खुद ३० आदमियों के साथ अकाल बुङ्गा में ठहर गये। जब यह पता लगा कि दुर्रानी दल अमृतसर की ओर बढ़ा चला आ रहा है तो आपने अपने धर्म स्थानों की रक्षा के लिये अपने आपको शहीद होने का अरदासा सोधा और तैयार हो बैठे। ज्योंही दुर्रानी दरबार साहब के नजदीक पहुँचे। भाई गुरुबख्श-सिंह और उनके तीस साथियों ने दुर्रानियों पर हल्ला कर दिया। काजी नूरमुहम्मद ने जो इस समय दुर्रानी दल के साथ था। अपनी पुस्तक "जंगनामा" में लिखा है कि, "यह तीस सिख गुरु पर कुर्बान होने के लिये बिना किसी खौफ और खतरे के दुर्रानियों पर आ टूटे और अपनी जानें कुरबान कर गये।"

भाई गुरुबख्शसिंह की यादगार में बना हुआ शहीदगंज अमृतसर में गुरुद्वारा अकाल बुंगा की पिछली ओर है।

शहीदों की मिसल के इन बहादुरों के बाद सुधसिंह, सूबासिंह और प्रेमसिंह ने क्रमशः बाबा दीपसिंह, गुरुबख्शसिंह और बसन्तसिंह के रिक्त स्थानों की पूर्ति की।

चूंकि सुधसिंह ने बाबा दीपसिंह जी का स्थान ग्रहण किया था। इसलिये यह बिल्कुल सम्भव था कि वे उनके पद चिह्नों का अनुकरण करते। हुआ भी यही वे भी पठानों से युद्ध करते हुए शहीद हो गए। इनकी जगह मर्दानागाँव जिला लाहौर के जाट चौधरी वीरसिंह के पुत्र करमसिंह ने ग्रहण की।

करमसिंह एक होनहार और योग्य सरदार था। वह समस्त शहीदी जत्थों का सरदार बन गया और प्राय मिसल पति भी वही बन गया। अपनी बहादुरी से उसने शाहजादपुर, माजरी और केसरी के इलाके अपने कब्जे में कर लिये। केसरी को अपना निवास स्थान बनाया और शाहजादपुर अपने भाई धर्मसिंह के सुपुर्द कर दिया। कुछ वर्ष के बाद जब धर्मसिंह गुजर गया तो कर्मसिंह शाहजादपुर में आ गया और अपने भाई की बेवा माई देसा को बड़ा गाँव रहने को बता दिया। चन्द दिन के बाद देसा भी चल बसी। इस तरह कुल इलाका कर्मसिंह के ही अधिकार में अविच्छिन्न रूप से आ गया और इस तरह से उसकी एक लाख प्रति वर्ष की आमदनी हो गई।

दमदमा साहब के पास रानिया में एक नौ मुस्लिम राजपूत जाबताखां नामी हाकिम था। सिखों के साथ सदैव ही उसकी खटपट रहती थी। सरदार कर्मसिंह के नेतृत्व में सिखों ने उस पर चढ़ाई कर दी। जाविता खां घबरा गया और उसने बारह गांव[1] दादू, धर्मपुरा, रामपुरा, तिलोकेवाला, केवल

१. यह गांव कालावाली स्टेशन के इर्दगिर्द थे।

तेहुना, पक्का आदि कंवर गुरुद्वारे के लिये इस शर्त पर दे दिये कि आपके सिख उसकी हुकूमत के गाँवों में कोई हमला न करेंगे। इन गॉवों में से सात गॉव अब तक गुरुद्वारे से माफी में लगे हुए हैं। जिनकी आमदनी, छत्तीस सौ रुपया सालाना के करीब थी।

जलालाबाद लुहारी का नवाब बड़ा दुष्ट आदमी था उसने एक ब्राह्मण स्त्री को जबरन अपने घर में डाल लिया था। सिखो के पास जब ब्राह्मण पुकारा तो उनके दल के दल जलालाबाद पर चढ़ दौड़े। इन आक्रांताओ ने सरदार कर्मसिंह को ही अपना नेता चुना। इस लडाई में कर्मसिंह ने अपनी वह योग्यता दिखाई कि जलालाबाद पर विजय प्राप्त हो गई।

इसने अपनी बहादुरी और चतुराई से रनखंडी और बड़वा जमई के इलाके पर भी जो कि सहारनपुर के जिले मे थे, कब्जा कर लिया था। इन इलाको से करीब एक लाख सालाना की आमदनी होती थी और यह इलाके लगभग ३० वर्ष तक इसके अधीन रहे।

जितने भी दिनों यह बहादुर सरदार जिया, योग्यता और बहादुरी से अपनी जाति की तरक्की की और धर्म स्थानों को उन्नत किया। उनमे जागीरे लगवाई इस प्रकार एक लंबे अर्से तक देश और धर्म की सेवा करके यह सरदार इस संसार से प्रस्थान कर गया।

सरदार कर्मसिंह के बाद उसका बेटा गुलाबसिंह मिसल का अधिपति बना किन्तु गुलाबसिंह स्वयं अयोग्य आदमी निकला। वह आलस पूर्ण जीवन बिताता रहा। इसका फल यह हुआ कि जब अंग्रेजों ने मालवे की ओर अपनी भूमि का बन्दोबस्त कराया तो बिना ही खून खराबी के इसके इलाके को भी अपने राज्य मे मिला लिया। और इसे चन्द गॉवो का जागीरदार मान लिया।

संवत १६०१ वि० मे गुलाबसिंह का देहांत हो गया और उसका लड़का शिवकृपालसिंह जागीर का मालिक बना। इसने पूरी वफादारी के साथ हर समय अंग्रेजों का साथ दिया। संवत १८३६ की सतलज की लड़ाई और संवत १८१४ के गदर सबमे अंग्रेजों का पक्ष लेकर इसने वफादारी का तगमा हासिल किया।

संवत् १६२८ में शिवकृपालसिंह मर गया और उसका लड़का जीवनसिंह वारिस बना। जीवन सिंह भाग्य का बली था। उसकी शादी पटियाले के महाराज महेन्द्रसिंह जी की लडकी बिचित्र कौर के साथ हो गई, जिससे उसे बीस लाख के करीब का माल मिला।

अंग्रेजी हुकूमत के आने पर भी इनके अधिकृत इलाके का एक बड़ा भाग इनके पास रहा जो जागीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

सिंहपुरिया मिसल

इस मिसल के संस्थापक सरदार कपूरसिंह जी जाट जमीदार थे जोकि फैजुल्लापुर के रहने वाले थे। जिस समय कपूरसिंह जी ने उन्नतावस्था प्राप्त की, उस समय आपने अपने नगर के नाम को बदल कर सिंहपुर रख दिया। इसी कारण से यह मिसल फैजुल्लापुरिया और सिंहपुरिया दोनों नामों से मशहूर है।

सरदार कपूरसिंह ने अपने भाई दीवानसिंह समेत अमृतसर जाकर सिख धर्म की दीक्षा ली थी। इस दीक्षा मे और भी अनेकों जाट जमीदार शामिल हुए थे।

आपने सिख धर्म मे दीक्षित होकर दीवान दरबारासिंह के साथ मिलकर एक मिसल की स्थापना की और फिर मुसलमानों का प्रतिशोध करने पर कमर कस ली। सरदार कपूरसिंह की बहादुरी के लिये कहा जाता है कि वह रणक्षेत्र में मस्त हाथी की तरह विचरते थे। तलवार और तीरों के जख्मों से

उनका सारा शरीर छलनी होगया था। उन्हें इस बात पर गौरव भी था। उनकी बराबर और किसी के शरीर पर इतने घाव नहीं आये थे। न तो उन्होंने कभी अपनी जान की परवाह ही की और न कभी रण से कदम ही हटाया।

धर्म-प्रेम और धर्म-प्रचार की भी उनके अन्दर भारी मात्रा और लगन थी। हजारों ही आदमियों को बिना किसी भेद भाव के उन्होंने अपने हाथ से अमृत चखा के सिख बनाया।

इस प्रकार की धर्म लगन और वीरता के कारण सिखों के हृदय पर उनकी गहरी छाप लगी थी। उनके जमाने के सभी सिख उन्हें इज्जत की निगाह से देखते थे। वे यह निस्संकोच स्वीकार करते थे कि बल, पौरुष और धर्मशीलता में कपूरसिंह सर्व सिखों के अग्रणी है। और यही कारण था कि लाहौर के नवाब ने सन्धि स्वरूप सिखों के सर्व सम्मत नेता को एक लाख की जागीर और नवाब का खिताब देना मंजूर किया तो सर्व सिखों ने कपूरसिंह को ही यह खिताब और जागीर दिलाई।

जागीर और खिताब के मिलने के बाद नवाब कपूरसिंह जी की इज्जत और भी बुलंद हुई। पटियाला के संस्थापक राजा आलासिंह जैसे प्रतिष्ठित लोगों ने भी कपूरसिंह से ही सिख धर्म की दीक्षा ली।

पिंड ठीकरी में जहां पर कि नवाब कपूरसिंह ने अपना निवास स्थान बनाया था। राजा आलासिंह जी ने कपूर-कूप की स्थापना की थी।

यद्यपि कपूरसिंह जी अपने पास केवल तीन ही हजार सवार सैनिक रखते थे और यह सैनिक कई सिख मिसलों के सैनिकों से बहुत कम थे किन्तु फिर भी बहादुरी और शूरता में कभी भी वे पीछे नहीं रहे।

सतलज के चढ़ाव के ओर से इतने इलाके पर कपूरसिंह जी ने कब्जा कर लिया था जिसकी आमदनी छः लाख प्रति वर्ष होती थी। उन्होंने दिल्ली और सतलज के बीच के अनेकों मुसलमान हाकिमों को उनके अत्याचारों के कारण दंड दिया था।

शूरवीर की अपेक्षा नवाब कपूरसिंह धार्मिक पुरुष अधिक थे। इसी कारण वे अपना अमूल्य समय यों ही न बिताकर अधिकतर सिख धर्म के प्रचार में खर्च करते थे। यह सही है कि इस प्रकार की वृत्ति रखने के कारण धन दौलत और रियासत कई बातों में आपकी मिसल कई मिसलों से छोटी थी किन्तु आपकी इज्जत फिर भी प्रत्येक मिसलपति से अधिक थी। यह बात नहीं कि केवल साधारण सिख आपको अपना अग्रणी समझते हों किन्तु जथेदार और मिसलों के अधिपति भी आपको बुजुर्ग समझते थे।

एक मुसलमान लेखक[1] ने नवाब कपूरसिंह के सम्बन्ध में अपने खयालात इस प्रकार जाहिर किये हैं—"नवाब कपूरसिंह ऊंचे कद, चौड़ी छाती वाला, स्वस्थ, सुन्दर और तेजस्वी सिख है। दानी भी प्रथम श्रेणी का है, उसका अखंड लंगर चलता है। जिसमें गरीबों को हर समय प्रसाद मिलता है। रण में सदैव ही उसे विजय प्राप्त हुई हैं।"

इस तरह से लगभग ३४ साल बहादुरी और धार्मिकता का जीवन व्यतीत करके नवाब कपूरसिंह संसार से प्रस्थान कर गये। उन्होंने अपनी मृत्यु से पहले अपनी सरदारनी और इलाके को अपने छोटे भाई खुशालसिंह को जिसे कि उन्होंने दत्तक पुत्र मान लिया था। सुपुर्द किया और धार्मिक नेतागिरी अपने शागिर्द सरदार जस्सासिंह अहलूवालिया को प्रदान की।

१. मौलवी बूड्ढनशाह।

कपूरथले के महाराजा रणजीतसिंह जी ने समयान्तर मे नवाव कपूरसिंह जी की एक समाधि भी वावा अटल के पास निर्माण करा दी थी। जो कि अकाली आन्दोलन मे वहाॅ से उठा दी गई।

नवाव कपूरसिंह के वाद उनके भाई खुशहालसिंह ने भी अपनी शक्ति भर गरीवों के हित, धर्म-प्रचार मे कोई वात उठा नहीं रक्खी। अत्याचारियो को सजा देने मे भी खुशहालसिंह कभी पीछे नहीं रहे। अनेकों लोगो को सिख धर्म की दीक्षा भी दी।

अपना इलाका वढ़ाने के मौकों से भी खुशहालसिंह ने वरावर लाभ उठाया। एक वार हमला कर सिखों ने सरहिन्द के हाकिम जैनखा को मार डाला और उसके ५२ लाख के इलाके पर कब्जा कर वैठे तो खुशहालसिह ने भी उसमे से कटोला, घनोली और भरतगढ आदि डेढ लाख के इलाकों पर कब्जा कर लिया।

इसी प्रकार सरदार खुशहालसिंह ने जालंधर के नवाव शेख निजामुद्दीन को हराकर जालंधर पर कब्जा कर लिया और उसी को अपनी राजधानी वनाया। वलंदगढ़, हैवतपुर, पट्टी और वहरामपुर आदि इलाके उस समय जालंधर से संवंधित थे। जिनकी सालाना आमदनी लगभग तीन लाख रुपये थी। इन सभी पर खुशहालसिंह का अधिकार होगया।

इसके वाद महाराजा पटियाला की मदद से भी वनूध और जसत आदि नगरो पर भी कब्जा कर लिया इन नगरो पर उस समय रायकोट का रईस काविज था।

सारांश यह है कि खुशहालसिंह ने अपने भाई से पाये हुये वैभव को कम नहीं होने दिया अपितु वढ़ाया ही। इस प्रकार राज्य और धन का सग्रह तथा धर्म का प्रचार करते हुये खुशहालसिंह इस ससार से प्रस्थान कर गये।

कहा जाता है उनका देहावासान किला लमड़े के भीतर हुआ था।

खुशहालसिंह के वाद उनका लडका वुधसिंह उनका उत्तराधिकारी हुआ।

गुरु अर्जुनदेव जी के जीवन चरित मे हम इस वात का जिक्र कर चुके हैं कि तरनतारन मे वनवाने के लिये गुरु जी ने जो ईंटे तैयार कराई थीं। वे नूरुद्दीन नाम के मुसलमान हाकिम ने उठवा कर अपनी हवेली मे लगवा ली थीं। सरदार वुधसिंह ने अपने हाथ मे शक्ति आते ही नूरुद्दीन के मकानों को गिरवा कर उसकी सभी ईंटे तरनतारन के निर्माण के लिये उठवा लीं।

उसने महाराजा रणजीतसिंह जी की उन सभी लड़ाइयों मे सहायता की जो उन्होंने मुल्तान और कसूर को अपने राज्य मे मिलाने के लिये लड़ी थीं। किन्तु खेद है कि कुछ वातों को लेकर महाराजा रणजीतसिंह और सरदार वुधसिंह मे मतभेद खड़ा होगया। जिसके कारण वह लाहौर को सदैव के लिये नमस्कार करके सतलज के इस पार आगये।

अपने पिता के वाद उन्ही के पद चिह्नो पर चलते हुये २१ वर्ष के पश्चात सरदार वुधसिंह जी भी इस संसार से विदा होगये।

सरदार वुधासिंह जी के सात वेटे थे, वे सभी आपस मे मुहव्वत रखनेवाले और समझदार थे, महाराजा रणजीतसिंह जी ने केवल डेढ़ लाख का इलाका उनके लिये रहने दिया था, वाकी का सव जब्त कर लिया था। उसे उन सवने प्रेम पूर्वक वाट लिया। ताकि परस्पर कोई झगड़ा न हो। भरतगढ का इलाका सव से वड़े लड़के अमरसिंह ने अपने पास रक्खा और घनोली भूपालसिंह को मनोली गोपालसिंह को वगा लालसिंह को वेला हरदयालसिंह को अटलगढ़ गुरदियालसिंह को कन्दोला दयालसिंह को

दे दिया। इस प्रकार परगनों के बट जाने से सब अपनी-अपनी जागीर में रहने लगे।

कुछ साल बाद अमरसिंह भी संवत १६०४ विक्रमी में मानेश्वर के पास इस दुनिया से विदा हो गये। अंतिम समय में अमरसिंह बहुत सुस्त रहने लग गये थे। उन्हें दुनिया बिल्कुल नीरस जान पड़ने लगी थी। कारण कि उनके एकलौते पुत्र कृपालसिंह का उनके ही आगे देहान्त हो गया था।

अमरसिंह के संतान हीन मरने के कारण इनकी जागीर पर आपस में झगड़ा हुआ। सरदारी मनोली के अधिपति जयसिंह जी को मिल गई और आगे के लिये तय हुआ कि यदि इस खान्दान का कोई रईस लावल्द मरे तो एक हजार सालाना तो उसकी बेवा को उस जागीर में से खर्च दिया जाय। बाकी में से आधा उत्तराधिकारी को, आधा शेष हिस्सेदारों को बांट दिया जावे।

आगे चल कर इनकी अटलगढ़, बगा और बेला की रियासतों का भी इसी नियम के अनुसार बटवारा हो गया।

संवत १६३४ वि० में मनोली के सरदार जयसिंह जी का भी स्वर्गवास हो गया। उनके बाद उनका अन्धपुत्र अवतारसिंह अपनी रियासत का मालिक बना और लगभग १६ वर्ष तक इस संसार में दिन गुजरान करके संवत् १६५२ में वह भी चलाना कर गया।

अवतारसिंह के लड़के के पास बाग-बगीचे जमीन और ब्याज आदि से लगभग अस्सी हजार सालाना की आमदनी थी।

धनोली में जो वारिस बनाया गया था। उसके उत्तराधिकारी सरदार उत्तमसिंह प्रतापसिंह के पास भी १७-१८ हजार की आमदनी की जागीर शेष रह गई थी। कदोले के सरदारों फूलासिंह, हरवंशसिंह और शमसेरसिंह के पास छ-छ हजार की जागीरें रह गईं थीं।

मनसूर नामक गाँव में चौधरी साहबराय जी रहते थे। इनके दसौंदासिंह और संगतसिंह[1] नाम के दो पुत्र थे। जब ये दोनों जवान हुए और उन्होंने देखा कि मुसलमान हाकिमों के अन्यायऔर अत्याचार से चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है और अन्याय का शोध सिखों के जत्थे कर रहे हैं तो दोनों भाइयों के हृदय में सिख जाति और सिख धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। और दोनों ही भाई दीवान दरबारासिंह से अमृतपान करके सिख बन गये। इनके साथ ही कैरों गाँव का जयसिंह और ढडकसेल (परगना तरनतारन) के कौरसिंह मानसिंह भी सिख धर्म में दीक्षित हो गये थे। यह सब सम्बन्धी तथा मित्र थे, और देशभक्ति की लगन हृदय में रखते थे।

निशानवाली मिसल

दसौंदासिंह और संगतसिंह ने आरम्भ में अपना एक छोटा-सा जत्था बनाया था किन्तु धीरे-धीरे इनकी शक्ति बढ़ती ही गई।

जहाँ कहीं सिख सेनायें आक्रमण करने जाती थीं। वहां इनका दल झंडा लेकर चलता था। उर्दू भाषा में झंडे को निशान कहते हैं, अत: पंजाब में निशान वाले के नाम से इनकी मिसल निशानवालिया के नाम से मशहूर हुई।

सैनिकों की संख्या बढ़ाने में इन्होंने सब से ज्यादा ध्यान दिया और यहाँ तक बढ़ाई कि इनके अंतिम दिनों में इस मिसल में बारह हजार के लगभग सैनिक हो गये थे।

जहाँ भी सिख मिसलें इन्हें मदद को बुलातीं, वहींप हुँचते। यहां तक सरहिन्द, मेरठ और कसूर

१. संगतसिंह का गांव जिला अम्बाले में है ऐसा नारंग ने लिखा है।

के मुहासरों मे भी इन्होंने भाग लिया और अपनी ताकत के जौहर दिखाये। इन्हे बुलाया भी प्रायः सभी मुहासरों मे जाता था। अपनी योग्यता और बहादुरी से इन्होंने अपनी एक अच्छी रियासत भी कायम करली थी। जिसमें सिंघावाला, साहनेवाल, सरायलश्करीखॉ, दोराहा, सौटी, अलमोह, जीरा, लिद्धड़, अम्वाला और शहाबाद आदि इलाके शामिल थे। इस रियासत की राजधानी इन्होंने अम्वाला मे रक्खी थी।

जावित्त खा से लड़ते हुए इस मिसल का अधिपति सरदार दसौंगसिंह मारा गया। इसलिये मिसल का अधिपति उसका छोटा भाई संगतसिंह हुआ।

सगतसिंह ने अपनी राजधानी अम्वाला शहर के चारों ओर कोट वनवाना शुरू किया क्योंकि सगतसिंह जानता था कि यदि मजवूत गढ़ वन गया तो राज भी मजबूत हो जायगा। किन्तु अम्वाला मे रहने से इसका स्वास्थ्य विगड गया। वहां की आवहवा अनुकूल न पड़ी। इसलिये संगतसिंह को अम्वाला छोड़ कर अपने लिये जीरे के पास सिन्घावाला मे जगह वनवानी पड़ी किन्तु राज के प्रवध के लिये भी आवश्यक था कि अम्वाले मे कुछ फौज और कोई विश्वस्त सरदार रहता इसलिये सगतसिंह ने अपने सम्वन्धी गुरुवख्शसिंह और लालसिंह को वुला कर अम्वाला का प्रवन्ध उनके सुपुर्द कर दिया।

संगतसिंह का स्वास्थ्य सिन्घावाले मे भी कुछ अधिक न सुधरा और इसका फल यह हुआ कि वह भी अपने भाई के केवल ६ वर्ष ही वाद इस ससार से विदा हो गया।

गोकि सगतसिह के तीन लड़के थे किन्तु तीनों ही नावालिग थे। इसलिये संगतसिंह के ससुर निधानसिह ने आकर रियासतका प्रवंध संभाला। निधानसिंह खुसरपुरा का रहनेवाला प्रतिष्ठित सिख था।

संगतसिंह के तीनों लड़कों के नाम कपूरसिंह, मेहरसिंह और अनूपसिंह थे। उनके नाना निधानसिह के आने से वे अपनी रियासत के छिन जाने के भय से भी मुक्त हो गये थे। निधानसिंह भी चतुर आदमी था। वह सिंघावाले की वजाय अम्वाले मे ही रह कर कुल रियासत का प्रवंध करने लगा। गुरुवख्शसिंह को ध्यानसिंह के हाथ मे रियासत रहने से कोई प्रसन्नता न थी। वह संगतसिंह के लडकों से भी प्रसन्न नहीं रहता था। सिंहावाले मे लड़को की देख रेख और माल जायदाद की निगरानी के लिये जयसिंह को मुकर्रर कर दिया गया था।

ध्यानसिंह ने मेहरसिंह को रियासत के कुल अधिकार सौंप दिये। क्योंकि इस समय वह वालिग हो चुका था। अधिकार प्राप्त होने पर मेहरसिंह भी अम्वाले मे रहने लगा और ध्यानसिंह सिंघावाले मे आ गया।

राज्य का लोभ वुरा होता है। सगे भाइयों मे इसके ऊपर तलवारे चल जाती हैं। फिर गुरुवख्शसिह तो केवल रिश्तेदार ही था। संगतसिंह ने उसे वढ़ाया था और निधानसिंह ने उसे घटाया। अव मेहरसिंह के अधिकारी हो जाने पर तो एक वड़े नौकर से ज्यादा उसकी हैसियत नहीं थी।

मेहरसिह मार डाला गया। जव यह समाचार निधानसिंह के पास पहुँचे तो वह आगवबूला हो गया और सिखों का एक वडा दल लेकर गुरुवख्शसिंह को दण्ड देने के लिये अम्वाले पर चढ़ाई कर दी। किन्तु चूकि उधर भी तो सिख ही थे और अम्वाला का परकोटा भी खड़ा था। इसलिये निधानसिंह गुरुवख्शसिंह को हरा नहीं सका और उसे निराश होकर सिंघावाले को लौटना पडा। गुरुवख्शसिंह अम्वाले के इर्द-गिर्द के इलाके का स्वतन्त्र मालिक वन वैठा।

संगतसिंह का दूसरा लड़का कपूरसिंह मय अपने लड़के फतेसिंह व ज्वालसिंह के साथ लड़ता हुआ मारा जा चुका था। तीसरा लडका सराय लश्करीखाँ के इलाके पर कब्जा किये बैठा था और वह उसे ही अपने लिये बहुत समझता था। इसलिये गुरुबख्शसिंह को उससे भी कोई खटका नहीं था।

अनूपसिंह के पास सराय लश्करवाली ग्यारह हजार सालाना आमदनी की रियासत थी। वह आगे उसकी स्त्री दयाकौर के हाथ में आ गई क्योंकि अनूपसिंह ने मरते समय कोई संतान नहीं छोड़ी थी। दयाकौर आठ नौ वर्ष तक अपने इलाके का प्रबन्ध भली प्रकार चलाती रही। किन्तु आगे महाराजा रणजीतसिंह जी ने उसके गुजारे का प्रबन्ध करके कुल इलाके को अपने राज्य में मिला लिया।

इस समय तक गुरुबख्शसिंह मर चुका था और दयाकौर ही उस के इलाके पर काबिज थी। इसलिये अम्बाले का इलाका भी महाराजा ने अपनी सल्तनत में मिला लिया और वहां का प्रबन्ध दीवान मुहकमचंद के द्वारा होने लगा।

यह वही भाग्यशाली मिसल है। जिसमें आगे चलकर पंजाब केसरी महाराजा रणजीतसिंह जी का जन्म हुआ था।

सुकरचकिया मिसल

इस मिसल का संस्थापक चौधरी भागू का लड़का बुद्रा (बुड्ढा) सिंह था। युवावस्था में गुरु गोविन्दसिंह से अमृतपान करके इसने सिख धर्म की दीक्षा ली थी। बुड्ढासिंह ने शस्त्र सचालन भी गुरु गोविन्दसिंह जी से ही सीखा था। जिन दिनों महावीर बन्दासिंह पंजाब में आये तो यह भी उनके दल में शामिल हो गया।

बुड्ढासिंह के पास बढ़िया घोड़ी थी। जिसका नाम देसी या देसू था। यह घोड़ी दिन में सौ सवा सौ कोस की मंजिल बड़ी आसानी से तय कर सकती थी। इस प्रकार के तुरंग के मालिक सरदार बुड्ढासिंह को भी लोग 'बुड्ढासिंह देसी वाला' कहने लग गये थे।

सरदार बुड्ढासिंह के दो पुत्र थे। नौधसिंह और चन्दासिंह। दोनो बहादुरी और अक्लमन्दी में अपने पिता से कम नहीं थे। ऐसा मालूम होता था कि एक ही सिंहनी ने दो शेर पैदा किये हैं।

वहाँ जाकर इन्होंने अपने पुराने गाँव को जो अब तक बरबाद हो चुका था। नये सिरे से बसाया और उसका नाम सुकरचक रक्खा कि आगे इसी कारण इनकी मिसल का नाम भी सुकरचकिया होगया।

धीरे धीरे इन लोगों ने सुकरचक के आसपास के इलाके पर अपना कब्जा कर लिया।

आगे सरदार बुद्रासिंह मजीठे गाँव के निकट पठानों से लड़ता हुआ मारा गया। साथ में बड़ा लड़का नौधसिंह भी इसी लड़ाई में शहीद होगया।

नौधसिंह के एक लड़का था। नौधसिंह के मरने के समय उसकी उम्र २३ साल की थी। नाम था उसका चड़तसिंह।

चड़तसिंह बचपन से ही योद्धा प्रकृति का पुरुष था। उसने सोलह वर्ष की उम्र से ही लड़ाइयों में अपने जौहर दिखाना शुरू कर दिया था।

जवानी में पिता के स्वर्गवास के बाद अपने चाचा के साथ मिलकर इसने अपना दल बढ़ाया और थोड़े ही समय में ३०० सैनिक अपने जत्थे में भरती कर लिये।

सरदार चड़तसिंह ने गुजरांवाला के मुसलमान हाकिम पर चढ़ाई कर दी और उसे निकालकर पर अपना अधिकार जमा लिया।

चड़तसिंह ने गुजरांवाला में एक किले का भी निर्माण कराया। क्योंकि अब वह सदैव के

लड़के दलेलचन्द को राज देना चाहता था। बड़ा लड़का ब्रजराजदेव इसे अपने प्रति अन्याय समझता था। इसीलिये सरदार चड़तसिंह और सरदार हकीकतसिंह, जयसिंह कन्हैया से मदद मागी। सरदार चड़तसिंह उनकी मदद के मय कन्हैया सरदारों के जम्मू पर चढ़ दौडे। रणजीतदेव ने अपने को इस प्रकार आफत मे फंसा देखकर भगी सरदार झंडासिंह को अपनी मदद के लिये बुला भेजा। जफरवाल के पास चक ऊरो के मैदान में घनघोर युद्ध हुआ। लड़ाई चल रही थी कि गर्म होजाने के कारण सरदार चड़तसिंह की बन्दूक फट गई। जिसमे वह सख्त घायल हुए और इस संसार से चल बसे।

सरदार चड़तसिंह के मारे जाने पर भी लड़ाई बराबर चालू रही। सरदार झंडासिंह भी किसी की गोली से मारा गया। राजा रंजीतदेव झंडासिंह के मारे जाने से घबरा गया और उसने बेटे ब्रजराज को राजी कर लिया। बापबेटे दोनों ने अपने २ सहायकों को हर्जाने का रुपया देना स्वीकार करके वापिस लौटा दिया।

सरदार चड़तसिंह के दो लड़के और एक लड़की थी। जिनके नाम महासिंह, सहजसिंह और राजकौर थे। राजकौर की शादी भगी सरदार गूजरसिंह के साथ और महासिंह की शादी जीन्द नरेश गजपतिसिंह की पुत्री के साथ हुई थी। पिता की मृत्यु के समय महासिंह की उम्र केवल १२ वर्ष की थी। इसलिये उनकी रियासत की सरपरस्ती सरदार जयसिंह कन्हैया ने की, जोकि चड़तसिंह का पक्का दोस्त था।

महासिंह अपने पिता की भाँति ही बहादुर आदमी था। उसने समर्थ होते ही भगी मिसल के साथ मुल्तान पर चढ़ाई की और वहाँ से लौटकर रास्ते मे अहमदाबाद के निकट धारापिंड मे अहमदखाँ से युद्ध किया। अहमदखाँ के पास एक बढ़िया तोप थी, जो अहमदशाह की तोप के नाम से मशहूर थी। उससे छीन लिया।

इसके बाद सरदार महासिंह ने भट्टियो की पिंडी, साहीवाल, ईसाखेल और मूसाखेल नामक स्थानों पर कब्जा कर लिया।

यह हम पहले लिख चुके हैं कि महासिंह की बहिन बीबी राजकौर का विवाह गूजरसिंह के साथ हुआ था। यह विवाह महासिंह ने अपने ही हाथों से किया था। इस विवाह के बाद महासिंह की शक्ति और बढ़ गई। गूजरसिंह के इलाके लाहौर के ऊचाई का तीसरा हिस्सा और गुजरात का पूरा इलाका था।

महासिंह की शक्ति से यथासंभव लाभ उठाया। रोहतास लोहारा की कोटली और रामदासपुर आदि के रईसों को जीतकर उनसे भेंट हासिल की। जिसने अधीनता स्वीकार नहीं की उसीके इलाके को अपने अधीन कर लिया। इस तरह कई महीने तक का धावा रहा।

रसूलनगर मे पीर मुहम्मद नाम का एक मुसलमान हाकिम था। वह दिखावटी तौर पर महासिंह से मेल रखता था किन्तु था मुसलमानों का पक्षपाती। महासिंह उस पर विश्वास रखता था। इसी विश्वास के आधार पर अहमदाबाद से जीती हुई तोप भी उसने पीर मुहम्मद के यहाँ अमानत के तौर पर रख दी थी किन्तु जब तोप की आवश्यकता हुई तो पीरमुहम्मद तोप देने से नट गया। महासिंह को उस पर बड़ा गुस्सा आया और उसने उस पर चढ़ाई करके तोप ही नहीं हासिल की किन्तु रसूलनगर को भी काबू मे कर लिया।

रसूलनगर की इस लड़ाई मे महासिंह को तीन महीने लग गये थे। यहीं पर उसे अपने घर पुत्र होने का समाचार मिला। यही पुत्र आगे रणजीतसिंह के नाम से जगद् विख्यात हुआ। रणजीतसिंह के जन्म की तिथि सवत १८३७ के माघ मास की बताई जाती है।

पीर मुहम्मद को उसकी रियासत से महासिंह ने कतई खारिज कर दिया और रसूलनगर का नाम भी बदल कर राम-नगर रख दिया। उसके दूसरे नगर अलीपुर का नाम अकालगढ़ रख कर इस कुल इलाके को अपने राज्य मे मिला लिया और यहाँ का प्रबन्धक दलसिंह को मुकर्रिर किया।

आगे के दिनों में सरदार महासिंह ने जम्मू को भी फतह कर लिया था। यह लडाई सरदार हकीकतसिंह कन्हैया के बुलाने पर महासिंह को लड़नी पड़ी थी। कारण यह था कि जब ब्रजराज जम्मू की गद्दी पर बैठा था तो उसने हकीकतसिंह से वायदा किया था कि मैं तीस हजार सलाना कर स्वरूप तुम्हे देता रहूँगा किन्तु उसने दो वर्ष तक एक पाई भी नहीं दी। मागने पर साफ इनकार कर दिया। हकीकतसिंह को ब्रजराज की इस वायदा खिलाफी पर गुस्सा आया और उसने महासिंह को लिख भेजा कि मैं जम्मू पर चढ़ाई कर रहा हूँ। तुम आकर मेरी मदद करो। जब ब्रजराज ने देखा कि महासिंह भी चढ़ कर आया है तो वह जम्मू से भाग गया। इधर शहर के लोगों ने महासिंह की फौज के साथ गुस्ताखी की। इससे बिगड कर महासिंह ने नगर पर हमला कर दिया। साथ ही उसे अपने कब्जे मे भी ले लिया और अपने एक सरदार को वहाँ छोड़ दिया।

महासिंह लौट कर गुजरांवाला आ गया किन्तु उसे इस बात पर रंज हुआ कि जयसिंह खुद जम्बू पर चढ़ाई करते समय नहीं गया।

इस रंज की माया यहाँ तक बनी कि एक बार दिवाली पर अमृतसर के मेले मे दोनों ओर से कहा सुनी हो गई और मजीठे गॉव के पास एक हल्की सी, झड़प भी हो गई।

महासिंह ने जस्सासिंह रामगढ़िया को पंजाब मे बुला लिया और बटाले के पास एक युद्ध में जब जयसिंह का पुत्र गुरुबख्शसिंह मारा गया तो उसने निराश होकर हथियार डाल दिये।

इन दिनों के बीच में ब्रजराज देव पुनः जम्मू आ गया था और वहाँ से सिख सवारों को निकाल कर शहर को रोनक दे रहा था। जब यह खबर महासिंह को मिली तो उसने फिर जम्बू पर चढ़ाई की। और बहुत सारा सामान राजा का अपने कब्जे में किया।

सरदार गूजरसिंह के मर जाने के बाद महासिंह ने उसके इलाके को अपने कब्जे मे करने के लिये उसके किले पर चढ़ाई कर दी। उस समय गूजरसिंह का लड़का साहबसिंह लाहौर गया हुआ था। किले के अन्दर की फौज काफी हिम्मत के साथ लड़ रही थी। अतः सहज ही फतह नहीं हुई। इसी बीच मे महासिंह बीमार हो गया और गुजरानवाले को लौट पड़ा किन्तु रणजीतसिंह और दलसिंह किले का घेरा डाले ही पडे रहे। इधर जस्सासिंह रामगढ़िया ने मौका पाकर रणजीतसिंह की फौज पर हमला करने की तैयारी कर दी। रणजीतसिंह बालकपन में भी कितना समझदार था। यह इस बात से पता चल जाता है कि इस खबर को सुनते ही उसने तुरन्त घेरा उठा लिया और रास्ते में पहुँच कर अचानक जस्सासिंह की फौज पर ऐसा हमला किया कि वह भाग खड़ी हुई।

इन्हीं दिनों रणजीतसिंह जी को खबर मिली कि तुम्हारे पिता का देहान्त हो गया है। इस खबर को सुनते ही वह वापिस गुजरांवाला आ गये और अपने पिता का संस्कार किया।

महासिंह के बाद रणजीतसिंह जी अपने पिता के उत्तराधिकारी हुए।

रणजीतसिंह जी ने अपने समय में जो भी कुछ किया, वह एक स्वतंत्र गाथा है। इसलिये अब उनका हाल आगे दूसरे अध्याय मे लिखेंगे। वे नराधिपति नहीं उत्तर भारत के राष्ट्रपति बन गये थे। इसलिये सुकरचकिया मिसल का हाल मिसल के रूप में यहीं समाप्त हो जाता है।

पिता की मृत्यु के समय रणजीतसिंह जी की अवस्था छोटी थी। इसलिये उनकी परिवारिश उनकी सासु सदाकौर को सरपरस्ती में हुई थी। जब तक कि वह बालिग होकर स्वतंत्र नहीं हो गये थे। तब तक सुकरचकिया मिसल का भी प्राय (एक प्रकार से) उनकी सासु के हाथ में ही नेतृत्व रहा था और उसने बड़ी बुद्धिमानी के साथ कन्हैया और सुकरचकिया दोनों मिसलों की संयुक्त शक्ति से अपने वैभव को बढ़ा लिया था।

यह वह मिसल है जिसके उत्तराधिकारियों के पास सन् १९४८ तक पटियाला, नाभा और जीन्द जैसे गौरवशाली राज्य मौजूद रहे हैं। इन रियासतों के अधीश्वर अपने को यादव के वंशज मानते हैं और यह भी कहते है कि एक समय जैसलमेर के भाटी और हमारे बुजुर्ग एक ही थे। इस विषय में तो पूरा प्रकाश आगे के अध्यायों में डालेंगे यहां तो केवल मिसल फूल का ही वर्णन करना चाहते हैं।

फूलकिया मिसल

इस मिसल के संस्थापकों के पूर्वज चौधरी फूल मोहन के बेटे रूपा के सुपुत्र थे। पंजाब के जाटों में सिद्ध एक प्रसिद्ध गोत्र है आप उसी गोत्र में संवत् १६८८ वि० मे पैदा हुए थे। आपकी माता जी का नाम शिवा था जो कि जटियाना गोत्र की थीं।

चौधरी फूल के पिता मेहराज नामक प्रसिद्ध वस्ती में रहते थे। पिता के मर जाने के बाद उनके चाचा कालू ने उनकी सरपरस्ती की। यह जमाना गुरु हरिराय जी का था। जब गुरु जी मालवा में पधारे थे तो जिस समय वे मेहराज में ठहरे हुए थे। गुरु जी ने फूल और उनके छोटे भाई को वरदान दिया था कि तुम्हारी संतान राजपाट वाली बनेगी।

फूल बचपन से ही सियाने और होनहार थे। वे साधु संतो मे अच्छी श्रद्धा रखते थे।

ऐसे होनहार बालक को उनका चाचा कालू भी खूब प्यार करता था। जब उसने एक वस्ती मेहराज से अलग आबाद की तो उसका नाम भी अपने भतीजे के ही नाम पर रक्खा। पिंड फूल आबादी का नाम था। इस समय तक फूल की अवस्था पन्द्रह वर्ष की हो चुकी थी। अब वे अपने घर के धंधों में खूब दिलचस्पी लेने लगे थे। अपने गांव के चौधरी और करवाहक वे खुद ही थे सूबेदार ने उन्हें अपना कार्य वाहक स्वीकार कर लिया था इससे चौधरी फूल की आर्थिक हालत खूब ही अच्छी हो गई।

चौधरी फूल ने दो शादियां की थीं। एक ढिलवां के गॉव के चौधरी जीते की लड़की बाली और दूसरी साधना जाटों की लड़की राजो थी। बाली के उदर से तिलोका, रामा, रघु, नाम के तीन लडके उत्पन्न हुए थे। राजो से केवल तीन पुत्र हुए जिनके नाम चेते, झंडा और तख्तमल थे।

राजो की संतान के लोग गुमटी में रहते हैं और लोड़घरिया नाम से याद किये जाते है।

बड़ी चौधराइन बाली के पुत्रों मे से तिलोका के वंशज रियासत नाभा और जीन्द के धनी है। रामा की सतान के हाथ में पटियाला का राज्य है और कुछ बडोर, मलोदा, रामपुर और कोटरुनी आदि में आबाद हैं। रघु की संतान जीवक मे वास करती है।

चौधरी फूल ने अपनी संपत्ति से पचासों घोड़े और सैंकड़ों हथियार खरीद कर सौ सवा सौ आदमियों की एक सैनिक टुकड़ी बना ली थी। उसी से उसने मुक्तसर के पास के फखरसर थोड़ी के रईस हयातखॉ नौमुस्लिम भट्टी राजपूत को शिकस्त दी, वह भटनेर की ओर भाग गया जो उसका सदर मुकाम था।

कोट ईसा के रईस, ईसाखॉ ने जब यह समाचार सुना तो वह चौधरी फूल के गॉव पर एक बड़े गिरोह के साथ चढ़ आया। चौधरी फूल को अपना गॉव छोड़ना पडा। गॉव के छूट जाने के कारण कई

महीने तक चौधरी फूल को इधर-उधर भटकना पड़ा किन्तु अन्त मे जाट लोगों का एक वड़ा गिरोह वना कर उसने अपने गॉव को पुन. अपने अधिकार मे कर लिया। और एक वर्ष तक चुप रह कर दूसरे वर्ष फिर फखरसर थोडी पर हमला किया। इस बार जम कर लडाई हुई। जिसमे हयातखॉ के दो लडके मुहव्वत खॉ और महवूब खॉ मारे गये। हयातखॉ भटनेर को भाग गया। ईसाखॉ भी चुप रहा।

इस विजय से चौधरी फूल की कीर्ति चारों ओर फैल गई और चौधरी ने भी उस सारे इलाके पर अपना अधिकार जमा लिया ओर साथ ही सैनिकों की सख्या भी वढ़ानी शुरू कर दी।

जव कुछ अच्छी शक्ति वढ़ गई तो मालगुजारी देने से भी उन्होने इनकार कर दिया। इन इलाकों का हाकिम जगराव का रईस था।

चौधरी फूल की इस प्रकार की उत्तरोत्तर शक्ति के वढ़ाव को मुसलमान हाकिम भला कैसे वर्दास्त कर सकते थे। जगराव के हाकिम ने पिंड फूल पर आक्रमण किया किन्तु वह इस आक्रमण मे विफल हुआ और चौधरी फूल ने उसे कैद कर लिया।

यह समाचार विद्युत वेग की तरह चारों ओर फैल गया। सरहिन्द के नवाव को चौधरी फूल का यह हौसला वर्दास्त नहीं हुआ उसने चलाकी से काम लिया और चौधरी फूल को धोखे से सरहिन्द बुला लिया और फिर कैद मे डाल दिया। उसने चौधरी फूल को धोखा देने के लिये खवर भेजी थी।

"उधर के परगनों का ताल्लुकेदार आपको बनाना चाहता हूँ। इसलिये यहॉ आकर सनद ले जाओ।"

नवाव सरहिन्द ने चौधरी फूल को अपने जेल मे डालकर उन्हे नहीं छोडा। हालांकि वे पिछला वकाया देने पर भी राजी हो गये थे। अत में जेल मे ही यह मर गये।

उनके शरीर त्याग के सम्बन्ध मे एक कौतुहल वर्द्धक यह गाथा प्रसिद्ध है कि वे मरे नहीं थे किन्तु चूंकि उन्होने वचपन मे एक योगी से प्राण विद्या सीख ली थी। इसलिये उन्होंने प्राणों को ब्रह्माड में चढा लिया। नवाव ने उन्हे मृतक समझ कर परिवार वालों के हाथ सौंप दिया। परिवार वालों ने उन्हें समाधिस्थ कर दिया।"

यह भी कहा जाता है कि उनकी वड़ी चौधराइन होती तो वह उन्हे समाधिस्थ नहीं करने देती क्योंकि वह तो उनके योग सम्बन्धी कौतुकों से परिचित थी। किन्तु वह उस समय अपने मायके मे थी और उसे उस समय पता चला, जब उनकी समाधि पर स्थान का निर्माण भी हो चुका था। जब छोटी को यह सारा भेद मालूम हुआ तो उसे वड़ी लज्जा आई और वह फूल गॉव को ही छोड़कर अपने एक रिस्तेदार सुक्खा वैराड़ के गॉव चली गई।

चौधरी फूल के वाद उनका वडा लड़का तिलोका अपने गॉवों का चौधरी और मालगुजार मुकर्रिर हुआ।

अपने दादा रूपा के गॉव को फिर से आवाद किया। यह गॉव गुरुगोविन्दसिंह साहव के समय मे और उन्हीं के आदेश के अनुसार वसाया गया था। किन्तु चौधरी फूल के पिंड फूल मे आजाने के कारण रूपे गॉव की आवादी भी इधर उधर हो गई थी। तिलोका और भाई रामा दोनों ही अपने पिता की तरह वहादुर आदमी थे। इनकी वहादुरी से गुरु गोविन्दसिंह जी भी वड़े प्रसन्न थे और इन्हें गुरु गोविन्दसिंह जी ने अजमेरचन्द के साथ होने वाली लडाई मे अपनी तरफ से लड़ने के लिये वुलाया भी था। उस निमन्त्रण पत्र की नकल इस प्रकार है—"सत गुरु सहाय। भाई तिलोका भाई रामा, सगत गुरु

रक्खेगा। तुसी असवार लैकर आउणा हजूर साडे जरूर जमीअत लैके आउणा तुसां ऊपर माडी खुशी महरबानगी है। इक जोड़ा भेजा है रखावना. तुमा आवना। २ भादवे संवत १७७३ वि०”

कहा जाता है आगे चल करके किसी कारण वश तिलोका और रामा दोनों भाइयों में अनबन हो गई। इसने रामा चन्द सवार अपने साथ लेकर पिंड स्था से दूसरी जगह चले गये।

अपने भाई से अलग होने के बाद सब से पहले इन्होंने हसनखां भाटी मुसलमान को दंड दिया। वह अपने गिरोह के साथ घूम कर हिन्दुओं को लूटा करता था। जब कि वह समाज के इलाके को लूटकर लौट रहा था, चौधरी रामा ने उसे झाडू गाँव के पास घेर लिया और इस प्रकार झपट हुई कि हसनखां और उसके साथी लूट के तमाम माल असबाब और पशुओं को छोड़कर भाग गये। भाई रामा ने पशु तो उन लोगों को वापिस कर दिये जिनके व थे और धन दौलत अपने पास रक्खी तथा साथियों को बाँट दी। इसके बाद और भी आदमी भर्ती किये और अच्छा खाना दल हो जाने पर ईसाकोट पर हमला किया। ईसा खां भी मुकाबिले पर आकर खूब लड़ा खूब ही हाथ दिखाये किन्तु ईसा खा की हार हुई और उसे कोट से बाहर भाग जाना पड़ा। चौधरी रामा ने कोट की लूट कराली और वहाँ भी जो पशु मवेशी डाके में लाये हुये थे। सब को खुलवाकर देहातों में भिजवा दिया।

चौधरी रामा की इन बहादुरियों और गरीब परस्ती से लोगों के दिलों में उसकी इज्जत बैठ गई और सैकड़ों नौजवान उसके हो गये।

इसके बाद चौधरी रामा ने अपनी ससुराल ढिआली को अपना निवास स्थान बनाया। उनका ससुर नानूसिंह भी एक प्रतिष्ठित और हिम्मत का आदमी था। वह पहले तो घनस नामक गाँव में रहता था। ढिआली पर तो उसने कब्जा किया था। उसकी एक लड़की साहबकौर थी। यही चौधरी रामा को ब्याही थी।

ससुराल में रहकर चौधरी रामा ने आरम्भिक दिनों में यही काम किया कि जो भी डाकू लोग कहीं से भी किसी का माल चुराकर लाते। रामा उन पर हमला करता और फिर उनसे लूटे हुये माल को असल मालिकों को वापिस कर देता। उसके इस काम से रात दिन उसकी कीर्ति और शक्ति दोनों बढ़ रही थी।

चौधरी रामा के छः लड़के थे। दुनासिंह, सम्भासिंह, आलासिंह, बख्तावरसिंह, लद्धासिंह और बुड्ढासिंह उनके नाम थे।

इनमें आलासिंह बड़े प्रतापी और ऐश्वर्य्यवान हुये। इनका जन्म संवत् १७४८ विक्रमी में हुआ था और २३ साल की अवस्था में इन्होंने अपने पिता के जत्थे का स्वामित्व ग्रहण कर लिया। भगतू खान्दान के सरदारों की मित्रता से आलासिंह जी ने खूब लाभ उठाया। उन्हें अनेकों लड़ाइयों में भी साथ रक्खा।

संवत् १७८६ में जब कि पंथ खालसा मालवे में दौरा कर रहा था तो नवाब कपूरसिंह से जो कि एक सजातीय प्रसिद्ध सिख थे आलासिंहजी ने सिख धर्म की दीक्षा ली और अमृत चखकर सिंह बन गये।

सरदार आलासिंह जी ने एक लंगर भी जारी कर दिया और उन समस्त गाँवों को फिर से आबाद करना शुरू कर दिया, जो मुसलमान भाटियों के जुल्म से बर्बाद हो गये थे।

सरदार आलासिंह ने अपने पिता का बदला भी चैनसिंह के लड़कों से लेने में ढिलाई नहीं की। गुमटी गाँव में जहाँ कि वे ब्याह में आये थे। हमला कर दिया इसमें चैनसिंह के दो लड़के वीरु और

कमला मारे गये। उग्रसैन पहाड़ों की ओर भाग गया। इनके गॉव को भी आलासिंह ने उजाड़ दिया।

इसके बाद सरदार आलासिंह ने सघेड़ा का अपने अधीन किया। यहॉ का हाकिम नया-नया मुसलमान था। वह चाहता था कि मेरे इलाके के सारे हिन्दू मुसलमान हो जावे। थोडे ही दिन मे उसने अपने इलाके मे त्राहि-त्राहि मचा दी। हिन्दू भागकर सरदार आलासिंह के पास आये। सरदार आलासिंह ने पचास सवारों को भेजकर उस हाकिम का तो निकाल दिया और निगाहीसिंह को वहॉ का थानेदार बना दिया। रायकोट के हाकिम राय कल्हा को यह बात बुरी लगी। उसने एक तगड़ा सैनिक दल लेकर आलासिंह द्वारा नियुक्त थाने पर हमला किया किन्तु इस बीच सरदार आलासिंह भी एक सैनिक जत्था लेकर आ पहुँचे। दोनों ओर से तीन चार घंटे डटकर लड़ाई हुई। इस लड़ाई मे राय कल्हा का सेनापति गोसमुहम्मद मारा गया और संघेडा आलासिंह के ही कब्जे मे रहा।

पधौड नाम का कस्बा भी जो कि एक पुरानी आबादी था। आलासिंह ने जीत लिया और अपने बड़े भाई दुनासिंह को सौंप दिया।

बरनाला पंजाब की एक पुरानी बस्ती है। वह आलासिंह के समय मे उजाड़ पडी थी। संवत् १७७५ मे आलासिंह ने उसे आबाद किया और अपनी राजधानी भी वहीं स्थापित करली। इसके पास के लोगोंवाल, उभयवाल और नमेल आदि गॉवों को भी अपनी रियासत मे मिला लिया। इस प्रकार आलासिंह के पास अब एक छोटी सी और स्वतन्त्र रियासत बन गई थी। जिसकी आमदनी लगभग एक लाख रुपये की थी।

इस प्रकार एक दिन वह आया। जिसमे उसे भारत विजेता अहमदशाह और मुगल सम्राट मुहम्मदशाह दोनो की ही ओर से किन्तु अलग २ इरादों से राजा का खिताब मिल गया और इसी भांति उधर जीन्द और नाभे की भूमि पर भी चौधरी फूल के दूसरे वंशज रियासते स्थापित करने मे समर्थ हो रहे थे। इस प्रकार फुलकियॉ अब मिसल से आगे रियासतों के रूप मे बदल रही थी। अत. यहीं पर इस मिसल का वर्णन समाप्त करते हैं और आगे के अध्यायों मे फुलकियन स्टेट्स पर प्रकाश डालेंगे।

इस खानदान का वह सरदार जो सिख उरूज के समय चमका सरदार जस्सासिंह अहलूवालिया था। आरम्भ मे सरदार जस्सासिंह ने सिंहपुरिया मिसल के जाट सिखों के साथ मिलकर अपने को विकसित किया था। नवाब कपूरसिंह की सेवा मे रहकर जस्सासिंह एक बुद्धिमान और योद्धा

अहलूवालिया

सरदार बन गया था। नवाब कपूरसिंह ने अंतिम समय मे पंथ की धार्मिक बागडोर जस्सासिंह को सौंपी। सरदार जस्सासिंह अपने मामा बागसिंह के उस गिरोह के भी अधिपति हो गये। जो उसने हल्लोवालिया सिखों का बना लिया था और अपने स्वतन्त्र जत्थे को भी उसमे मिला दिया। इस प्रकार यह मिसल अहलूवालिया कहलाने लगी।[1]

नवाब कपूरसिंह जस्सासिंह पर भर पूर स्नेह करते थे। उन्होने अस्त्र शस्त्र विद्या मे जस्सासिंह को खूब निपुण किया था। जस्सासिंह भी कपूरसिंह जी की बड़ी श्रद्धा से सेवा करता था। एक बार वर्षा की रात मे जब नवाब कपूरसिंह ने पूछा कि पहरे पर कौन है? यही उत्तर मिला "जस्सासिंह।" इस प्रकार

१ सरदार जस्सासिंह के पूर्वज आहलू गांव के रहने वाले थे। इसलिये आहलू-वाले या अहलूवालिये कहलाये और इनके बुजुर्ग पेशा से कलाल थे। किन्तु अब तमाम कलाल अहलूवालिया शब्द की प्रसिद्ध के कारण अपने आपको अहलूवालिया कहलाते हैं।

की कर्तव्यनिष्ठा देख कर नवाब कपूरसिंह जस्सासिंह से बड़े प्रसन्न हुए। नवाब कपूरसिंह ने जस्सासिंह को घोड़ों का दाना बाँटने पर नियत कर रक्खा था, चूंकि बचपन मे जस्सासिंह लगभग १२ वर्ष देहली मे माता सुन्दरी जी के पास रहे थे और वहीं पढे लिखे थे। अत उनकी बोली ही उर्दू हो गई थी। और इस कारण से आपको आदमी 'हमको' 'तुमको' को सुन कर बहुत चिढ़ाया करते थे। एक दिन इस तरह से तंग किये जाने पर आप नवाब कपूरसिंह के पास रोते-रोते आये और कहने लगे महाराज मुझसे इन लोगों के घोड़ों को दाना-बांट नहीं हो सकता। इस पर नवाब साहब ने मुस्करा कर कहा। गुरु गोविन्दसिंह के पंथ मे तो सेवा से ही मेवा मिलता है। मुझे तो इन्होंने पंखा झलने की सेवा करते-करते उठाकर नवाब बना दिया है। आपको शायद बादशाह ही बना दें।

मिसलपति बनने के बाद थोड़े ही समय मे जस्सासिंह ने अपनी बहादुरी, कौमी प्यार और भले स्वभाव के कारण समस्त प्रतिष्ठित सिखों मे ऊंचा दर्जा प्राप्त कर लिया। नवाब कपूरसिंह के बाद मे जस्सासिंह का पद गिना जाने लगा।

शरीर की लम्बाई चौड़ाई और खुराक मे जस्सासिंह शायद सब मे आगे थे। सिख इतिहासकारो ने लिखा है कि आधे बकरे के मांस को अकेला ही खा जाता था। जैसी उसकी खुराक थी। पौरुष भी वैसा ही था। लडाई के समय मे उसका घोड़ा दुश्मनों के गोल मे ही दिखाई देता था। जब नादिरशाह दिल्ली मथुरा और वृन्दावन आदि को लूट कर वापिस जा रहा था। इसी जस्सासिंह ने सिख दलों को आवाहन किया और उस पर हमला करके उसका बहुत सा बोझ हल्का कर दिया। इस प्रकार भारत की सपत्ति को भारत मे ही रखा।

रोड़ी साहब के मुकाम पर सिख दलो पर हमला करनेवाले जसपतराय के सिखों द्वारा मारे जाने के बाद नवाब अदीनावेग, दीवान लखपतराय और लाहौर के सूबेदार मीर मन्नू ने सिखों को बर्बाद करने पर कमर बाँध ली थी। उस समय भी सरदार जस्सासिंह ने बुद्धिमानी और बहादुरी के काम किये। अदीना-वेग से काफी टक्करें लेने के सिवा अमृतसर के सारे इलाके पर अधिकार कर लिया। उसने दीवान कोड़ामल को भी मदद दी।

सरदार जस्सासिंह ने फतिहाबाद मे अपनी दूसरी शादी की। फिर जीन्द और पटियाला के राजाओं की अनुमति लेकर झज्जर, रोहतक, बेरी, नारनौल को कब्जे मे कर लिया। कुछ इलाका मालेर कोटला के पठानो से भी छीन लिया।

इसके बाद जस्सासिंह ने फिर पूरब की ओर धावा के लिये मुंह फेरा और जलालाबाद, मेरठ, चंदौसी, अलीगढ़ आदि से बहुत सा धन लूटमार कर लाए।

कन्हैयालाल ने 'तारीख पंजाब' मे लिखा है कि जब मथुरा वृन्दावन के मन्दिरों को ढाने और कत्ले आम के बाद अहमदशाह अब्दाली वहाँ से २२ हजार स्त्री बच्चों को गुलाम बनाने के लिये काबुल की ओर ले जा रहा था और किसी को उससे मुकाबिला करके इन बन्दियों को छुड़ाने का साहस न हुआ और जब उनके वारिसों ने अमृतसर अकाल तख्त के सामने खालसा जी के एक दीवान मे पुकार की तो जस्सासिंह ने उनको छुड़ाने के लिये एक दल के साथ दुर्रानियों पर धावा बोला और उन स्त्री बच्चों को छुड़ा कर और अपने खर्च पर उनके घरों को भिजवा दिया।

करतारपुर के गुरुद्वारे को नासिरअलीखॉं नाम के मुसलमान अफसर ने ढाह दिया था। सरदार जस्सासिंह ने जब कि अदीनावेग हार, झक मार कर उनका दोस्त बन गया था। करतारपुर गुरुद्वारे की

सैनिकों ने इनकी रक्षा के लिये व्यूह बना लिया। परन्तु इन बीस बाईस हजार स्त्री, बच्चों और वृद्धों के इर्द गिर्द दो ढाई हजार सैनिक कोई दृढ़ घेरा न बना सके थे। इससे यह इनकी रक्षा न कर सके। शत्रुओं की तीस बत्तीस हजार से ज्यादा सेना व मुलखइयों ने जब इन पर हमला किया तो सिखों का यह नाम मात्र का व्यूह स्वतः ही टूट गया और शत्रुओं ने स्त्री बच्चों और वृद्धों का कत्ले आम शुरू कर दिया। जिसमें कि कोई बीस हजार से ज्यादा जानें गईं और सिखों की खून की नदियाँ बह निकलीं। सिख कौम के लिये यह इतना बड़ा भीषण घमासान था कि इतिहास में यह घलुघारे के नाम से प्रसिद्ध है।

सिख सैनिकों के अधिपति इस समय सरदार जस्सासिंह ही थे। लड़ते २ जब दोनों ओर से सैनिक थक गये गये दोनों ही एक जोहड़ पर पानी पीने के लिये ठहर गये। इस समय सरदार सुकरचकिया सरदार जस्सासिंह अहलूवालिया के पास पहुँचा और कहने लगा जिनकी रक्षा के लिये हम यत्न कर रहे थे। वह तो अब चल बसे, अब हमें पीछे हटने से क्या फायदा है। इस पर जस्सासिंह ने एकदम शत्रु पर हमला करने का आदेश दे दिया। झुंझलाये हुये सिखों ने शत्रुओं पर इस प्रकार हमला किया कि वे सिखों को मार न सके और उनके पाँव उखड़ गये। अहमदशाह ने अपने दल को पीछे हटा लिया और शीघ्र चेत होजाने के कारण अपने दल को बचा ले गया। बावजूद इसके कि इस घलुघारे में सिखों की बीस हजार से ज्यादा जानें गईं और कई खानदान तबाह होगये। परन्तु सिखों पर इसका निराशा जनक असर न पड़ा और उन्होंने जल्दी ही शक्ति संचय करके इसका प्रतिशोध करने के लिये सरहिन्द के हाकिम जैनखाँ पर धावा बोल दिया। क्योंकि घलुघार की बहुत कुछ जिम्मेदारी इसी के सिर पर थी। जिसने कि दुर्रानियों के साथ होकर सिखों पर हमला कराया था। जनखाँ इस लड़ाई में मारा गया। उनकी सेना मैदान छोड़कर भाग गईं। समस्त सूबा सिखों के हाथ लग गया। जिसे कि उन्होंने परस्पर बाँट लिया। कहते हैं कि जिस समय सिख सरहिन्द में दाखिल हुये तो किसी ने कह दिया कि सरहिन्द सम्बन्धी गुरु जी का यह भविष्य है कि यहाँ गधों के हल चलाये जायेंगे, चुनाचे सिख सरदारों और गुस्से से भरे हुये सैनिक सिखों ने गुरु गोविन्दसिंह के मासूम बच्चों के कत्ल भूमि सरहिन्द को उजाड़ दिया और सिख सरदारों ने हलों में गधे जोड़कर इस कथित भविष्यवाणी को पूरा किया।

सरदार बघेलसिंह आदि ने जिस समय देहली के कुछ हिस्सों पर कब्जा कर लिया था तो आप ही इनके लीडर थे।

इस समय तक जस्सासिंह की राजधानी कपूरथले में जा चुकी थी क्योंकि पिछले वर्षों में कपूरथला पठानों से छीन कर अपने राज्य में शामिल कर चुके थे। कपूरथला में राजधानी ले जाने से उसकी शक्ति में और भी वृद्धि हुई थी, क्योंकि कपूरथला पहले से ही मशहूर शहर और सुदृढ़ गढ़ था।

संवत् १८४० में पेट के दर्द से वह चल बसा। चल बसा जरूर किन्तु अपने पीछे वह अपनी उदारता, वीरता और दानशीलता की कहानी-भी छोड़ गया। जिसके कारण उसे आज तक याद किया जाता है और बराबर उस समय तक उसका नाम अमर रहेगा। जब तक कपूरथला जैसा प्रसिद्ध नगर मौजूद है।

सर्दार जस्सासिंह के कोई पुत्र न था। एक पुत्र संपत हुआ था किन्तु वह छः महीने का होकर ही मर गया था। दो लड़कियाँ थीं। जिनमें से एक तो फतहाबाद के मोहनसिंह के साथ व्याही गई थी। और दूसरी का तुंग के अमरसिंह के साथ विवाह हु[illegible] इस समय उसके सम्बन्धियों में सरदार

भागसिंह ही ऐसा योग्य आदमी था। जो रियासत के काम को संभाल सकता था। वैसे वह हक़दार भी था, क्योंकि रिश्ते मे जस्सासिंह का भतीजा होता था। इसलिये जस्सासिंह ने उसे अपने जीवन मे ही अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था।

भागसिंह ने भी उत्तराधिकार पाकर अपनी रियासत को तरक्की ही दी और सैन्य दल को भी बढ़ाया। राज्य के सुप्रबन्ध के लिये उसने दो दीवान भी मुकर्रिर किये। जिनमे एक हिन्दू—बुद्धामल—और दूसरा मुसलमान—करीमदीन—था।

भागसिंह ने आरम्भ मे कुछ गलतियाँ भी कीं। फगवाडा और नूरमहल के इलाकेदारों से भेंट लेकर उसने गुरुवख्शसिंह को वेदख़ल किया और उसके बाद निकाई मिसल के सरदारों से सरफ़पुर का इलाका दबा लिया। बाद मे डल्लेवाली मिस्ल के हाथ से चमकौर को निकलवा कर वेदी खत्रियों को दिला दिया। इसके बाद ही गुलावसिंह भंगी से केवल इस बहाने पर कि उसके आदमियो ने हमारे नौकर को मार डाला है। तरनतारन और जडियाले को हथिया लिया।

संवत् १८५६ और १८५७ मे एक बार भागसिंह ने मय अपने बेटे फतहसिंह के सतलज की दक्षिणी पूर्वी पार आकर रामकोट, सहेड, खानपुर, हसनपुर, मजहेली, अलीपुर रुड़की, रुरहाली और खोजापुरी आदि की विजय की। जिससे बहुत सा सामान और धन प्राप्त किया।

यद्यपि पहले दो बार रामगढियों से लड़ाई लड़ी जा चुकी थी। फिर भी सवत् १८५८ में उन पर चढ़ाई करदी। किन्तु कहा जाता है इस बार खोट रामगढियों का ही था। उन्होंने इसके दुआबे वाले इलाके पर लूट पाट मचा दी थी। भागसिंह ने फगवाड़ा के समीप रामगढियों को घेर लिया किन्तु दैव उसके विपरीत रहा। पैर मे एक ऐसी गोली लगी, जिससे उसे वापिस कपूरथले आना पडा और चन्द दिन मे ही उसका देहान्त हो गया। इसके पीछे उसका लड़का फतहसिंह गद्दी का मालिक हुआ।

अपने पिता भागसिंह की मृत्यु के समय फतहसिंह की आयु केवल १६ वर्ष की थी। इसलिये रामगढ़ियों ने यह सोचकर कि यह हमारा बिगाड़ ही क्या सकेगा। उसके राज्य के जमीदारो को भडका दिया। सठाला, वेताला के जमीदारो ने बगावत आरम्भ कर दी। किन्तु फतहसिंह कोई सुस्त लडका न था इसलिये उसने अपनी सेना लेकर पहले तो रामगढियों के ही एक थाने चकदिता पर कब्जा किया फिर उन बागी जमीदारों को दंड दिया।

इसके बाद तो फतहसिंह के भाग्य ने ऐसा जोर मारा कि वह हमेशा के लिये, दुश्मनों से सुरक्षित होगया। महाराजा रणजीतसिंह जी सरदार भागसिंह का शोक मनाने के लिये इसकी रियासत मे आये इसने उनके ठहरने का प्रबन्ध फतहाबाद मे कर दिया। इसकी आवभगत से महाराज बड़े प्रसन्न हुए और इसे पगड़ी पलटा दोस्त बना लिया।

महाराजा रणजीतसिंह का दोस्त बन जाने के बाद प्राय. उनके साथ प्रत्येक लड़ाई मे शामिल रहा। उनकी मदद से सरहाली और चीमा के जमीदारों को भी दबाया।

जब महाराजा रणजीतसिंह ने कसूर पर चढ़ाई की थी तो वहाँ भी फतहसिंह था।

कसूर के इलाके को फतह करके महाराजा ने अमरसिंह मजीठिया को वहाँ का थानेदार मुकर्रिर किया था। यहीं से फतहसिंह ने चलकर झग पर कब्जा किया और फगवाड़े के हाकिम से फगवाडे को छीन लिया।

इस प्रकार कुछ ही दिनों मे पंज लासा और नारायण गढ़ पर भी कब्जा कर लिया और अपना

इलाका बढ़ाया। इसी बीच रामगढ़ियों ने राजा संसारचंद के साथ मिलकर फतहसिंह पर हमला किया किन्तु वे हार खाकर भाग गये।

होलकर और लार्ड लेक के बीच महाराजा रणजीतसिंह जी ने जो सुलह कराई थी। उसमे भी आपने सहयोग दिया। जिससे प्रसन्न होकर लार्ड लेक ने इकरार किया था। कि हम आप के राज्य मे कोई दखल न देंगे।

संवत् १८७५ में आपके एक सुपुत्र पैदा हुये—जिनका नाम निहालसिंह रक्खा गया। यही कपूरथला के पहले सरदार थे। जिन्हें राजा का खिताब अंग्रेजो की ओर से मिला था। और तब से जत्थेदार और मिसल पति के बजाय यह खानदान राजवंश में परिणित हो गया।

चूंकि आगे के किसी स्वतन्त्र अध्याय में हमे रियासत कपूरथला का विस्तृत वर्णन करना है। अत. मिसल अहलूवालिया का वर्णन यहीं समाप्त करते हैं।

मिसलों के इतिहास का कुछ विवेचन

मिसलें वास्तव मे मुस्लिम शासकों के उन रोमांचकारी अत्याचारों की प्रतिक्रियाये थीं। जो उन्होंने बन्दासिंह के मारे जाने के बाद सिखो पर किये थे। बन्दासिंह के साथ देने मे हजारों सिख अपने धर्म पर बलिदान हो चुके थे। इस समय उनका सैनिक दल नष्ट हो चुका था। फिर भी उन पर इतने भयानक अत्याचार हुए, जिनके याद आने मात्र से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। मालूम ऐसा होता था कि मुसलमान हाकिमों ने उनका बीज-नाश करने की कसम खाली थी।[1] जैसा उन्हें गिरफ्तार करने, बर्बाद करने और सिर काट लेने के आम हुक्म जारी किये जा चुके थे। संसार के इतिहास मे एक भी मिसाल नहीं मिलती कि सिखों की तरह किसी तमाम कौम को कत्लेआम के हुक्म जारी हुये हों। और लगातार ४० साल से भी अधिक उसे इन मुसीबतों का सामना करना पडा हो। परन्तु यह आश्चर्यजनक बात है कि इतने लम्बे अर्से तलवारों के नीचे रहते हुये भी वह जीवित रहे। और तमाम सिख इतिहास मे एक भी ऐसा उदाहरण नहीं जब किसी एक सिख ने भी लालच और दबाव से अपनी जान बचाने के लिये धर्म त्यागना स्वीकार किया हो। हालांकि—आम लोगों को यह हुक्म दे दिया गया था कि उनका सिर काटने, उन्हें गिरफ्तार करने वाले से हकूमत प्रसन्न होगी और उसे इनाम भी देगी। इससे भी संतोष न होने पर फौजों के दस्ते उन्हें मिटा देने के लिये गाँवों में भेज दिये गये। इन परिस्थितियों ने उन्हें गाँव छोड़कर जगलों और पहाड़ों मे भागे फिरने और जान बचाने के लिये मजबूर कर दिया किन्तु जंगलो और पहाड़ों मे भी अकेले-अकेले छिपने से काम नहीं चलता था। वरना इस प्रकार हर कोई उनका सिर काट लेता। अत. छिपने के लिये उन्हें जत्थे बना कर रहना पड़ा। दूसरे जगलों और पहाड़ों में कोई खाने का तो प्रबन्ध था नहीं। खाने का सामान लेने के लिये भी उन्हें गाँवों मे ही आना पड़ता था। और उसे प्राप्त करने के लिये मजबूरन प्राय. छापे ही मारने पड़ते थे। इसलिये भी उन्हें जत्थे बनाने पड़े।

और प्राण तो उनके सुरक्षित रहे ही नहीं थे। इसलिये उन्हें यह भी निश्चय करना पड़ा कि जब प्राण तो एक दिन इन मुगल पठानों के हाथ जाने ही हैं। तब इनसे डरा भी क्यों जाय? जहाँ तक बने इनका शोध क्यों नहीं किया जाय। अत वे कई २ जत्थे मिलकर आरम्भ मे छोटे २ पुन. बड़े-बड़े भी मुसलमान रईसों और हाकिमों पर छापा मारने लगे और लूट के उस माल से अपने जत्थों को बढ़ाने लगे।

१. जैसा कि उन्होंने कई बार इस भाव की रिपोर्टें भी कर दी थीं कि पजाब से सब सिख खत्म कर दिये गये है।

बस मुसलमानी अत्याचारों का यह परिणाम हुआ कि सिखों मे जत्थे बन्दी की और साथ ही आक्रमण की स्प्रिट पैदा हो गई। और इसी स्प्रिट ने बलवती होने पर पंजाब से अत्याचारी-मुसलमान राज्य को उखाड़ कर फेंक दिया।

आरम्भ मे अनेकों छोटे २ जत्थे बने। किन्तु ज्यों २ वे संगठन के महत्व को समझते गये। त्यों ही त्यों कई-कई जत्थे मिलते गये और एक समय आया कि इनकी संख्या १२ रह गई।

सिखो पर होने वाले अत्याचारों ने जहाँ पंजाब के सिखों की आत्मा मे तिलमिलाहट पैदा की थी। वहाँ जत्थों की स्थापना और उनके द्वारा लिये जाने वाले प्रतिशोध ने पजाबी हिन्दू नौजवानों की आत्माओं मे एक जागृति और सिख धर्म के प्रति एक आकर्षक श्रद्धा पैदा कर दी, जिसका फल यह हुआ कि हजारों हिन्दू नौजवान खास तौर से जाट बड़े वेग से सिख धर्म मे दीक्षित होने लगे और थोड़े ही समय मे उतने से कई गुनी सख्या सिखों की हो गई। जितनी कि बन्दासिंह के पंजाब मे आने से पहले थी।

भय और अपमान सहन की जो आदत कई सदियों से हिन्दुओं में घर किये हुए थी। वह उन अत्याचारों की लपट मे स्वाहा हो गई और आत्मविश्वास और निर्भयता इस जत्थे बन्दी की प्रथा से आरोहण होने लग गई।

ज्यों ही अत्याचार दबने लगा और कार्य मे कुछ सफलता प्राप्त होने लगी, इन जत्थों के संचालकों और सदस्यों के हृदय मे स्व-सत्ता स्थापना की भावना प्रदीप्त होने लगी और जातीय स्वाधीनता पाने की उत्कट अभिलाषा से वह लोग उन्मत्त हो उठे। पहले जहाँ उनके मन में अनिश्चित भाव का डेरा था। इस समय वह दृढ़ निश्चय और अदम्य उत्साह मे बदल गया।

मुगल और पठान शासकों के जुल्मो से जहाँ यह प्रतिक्रिया हुई। वहाँ वह स्वयम भी जर्जर होने लग गये थे। इस समय संसार का सबसे बड़ा साम्राज्य मुगल साम्राज्य अन्त.कलह और अन्तर्विप्लव से अध.पतन की ओर बराबर जा रहा था। अविश्वासी मंत्री और धर्मान्ध काजी उसे और भी खोखला बना रहे थे। मुगल साम्राज्य का यह अन्तर्दाह उन भग्न प्राण सिखों के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ जिनकी शात आत्मा एक दम विद्रोही हो उठी थी।

इस जत्थे बन्दी की भावना ने उन्हे इतना दुस्साहसिक बना दिया था कि दिल्ली को धूल मे मिला देने वाले नादिरशाह और मराठा शक्ति को पानीपत मे भस्मसात करने वाले अहमदशाह को भी इन्होंने नाक चने चबा दिये थे। जो सीधे सादे और शांत जाट कल तक खेती करते थे। अब अपने से आगे बने हुये सिखों से अमृत पान करके और जत्थों में शामिल होकर चिड़ो द्वारा बाज को मरोड देने की गुरु गोविन्दसिंह जी की उक्ति को पूरा कर रहे थे। यह गुरु नानक आदि से गुरु गोविन्दसिंह द्वारा प्रचारित सिख धर्म का चमत्कार था।

अमृतसर मे बार-बार नया प्रबंध मुसलमान शासक करते थे किन्तु ये जत्थे बार-बार ही वहाँ आकर जग करते और प्रबधक को मार कर या भगा कर ही दम लेते। जब भी जी मे आता दस बीस और पचास के गिरोह मे आते और हरि मन्दिर मे पूजा करने लग जाते। तालाब में स्नान करते। इसके बदले में कुछ कैद होते, कुछ मारे जाते। किन्तु सबक क्या लेते यह नहीं कि वहाँ जाने पर जान का खतरा है बल्कि यह कि वहाँ मरने से शहादत प्राप्त होगी।

शहीदी तो एक बाजी की चीज बन गई थी। कौन आगे रहे शहीदी के लिये इन जत्थों मे यह होड़-सी रहती थी। बाबा दीपसिंह के तो दल का ही नाम शहीदों की मिसल पड़ गया था। कैसा

था यह अद्भुत धर्म-प्रेम ? और कैसा था विचित्र जौहर ? यदि गुरु के वाग और जैतो की घटनाये हमारे सामने नहीं होती तो शायद इस प्रकार की सीमा से वाहर की शहादत की अद्भुत गाथाओं पर लोग विश्वास भी नहीं करते किन्तु ऐसा होता है और भविष्य में हो सकेगा वशर्ते कि किसी कौम मे सिखों जैसा ही धर्म प्रेम और वैसा ही दुस्साहस हो। साथ ही वैसी ही जत्थे वन्दी।

जत्थे वन्दी और आक्रान्ता ढंग की जत्थे वन्दी ने उन्हे योग्य सैनिक और शौर्यवान योद्धा भी वना दिया। भाग कर दुश्मनों पर वाज की तरह टूटने और सिंह की तरह छलांग मार कर उनके दलों से पार होजाने के लिये उनके हृदयों मे अच्छे घुड़सवार वनने की धुनि पैदा हुई। एक समय आया कि एक-एक जत्थे मे दो हजार से लेकर दस हजार तक घोडे हो गये।

छापे मे धन हाथ आने और अच्छे घोड़ों के जमघट ने उन जत्थों के जत्थेदारों के हृदय मे जो कि आरम्भ मे केवल प्रतिशोध के लिये ही खडे हुये थे। राज्य स्थापन की भावनाये भी पैदा करदीं। यह स्वाभाविक वात है। मध्यकाल के ऐसे हजारों लुटेरे दल ही आज के भारत के अनेकों देशी राज्यों के अधिपतियों के पूर्वज थे।

वाद मे स्थापित हुए रणजीतसिंह जी के विशाल साम्राज्य और अन्य सिख राज्यों का आदि रूप यह मिसलें ही थीं।

सव से ज्यादा मजे की वात यह है कि यह मिसलें अंतिम समय मे राजनैतिक मामलों मे स्वतंत्र थीं, वहाँ धार्मिक मामलों मे पंथ के आधीन थीं। पंथ उनके आपसी झगडे मिटाने की भी कोशिश करता था।

वैसाखी के मेलों पर प्राय सभी मिसलें एकत्रित होती थीं और धार्मिक उन्नति के लिये मिसल पति पंथ के आदेशों को सुनते थे।

जत्थों मे प्राय: जत्थेदार की जाति के ही लोग अधिक होते थे। फिर भी कोई भी और किसी भी जाति का आदमी उनमे शामिल हो सकता था।

यद्यपि जमीन और सपंति के लिये अथवा मानपमान के मामलों मे कहीं वे आपस मे लड़ भी पड़ते थे किन्तु जिस समय दिवाली और वैसाखी के मौकों पर अकालतख्त के सामने गुरु ग्रन्थ साहव की हुजूरी में एकत्र होते, तो तमाम झगड़े उनके दिलों से निकल जाते और केवल धर्म-प्रेम मे रंगे हुए पंथ के सांझे काम के लिये सम्मिलित होकर अपना खून तक वहाने के लिये तैयार हो जाते। और एक जत्थेदार की जत्थेदारी की परवा न करके उसकी कमान मे हर प्रकार उसकी आज्ञाओं को शिरोधार्य करते।

महान अच्छाइयों के साथ मिसलों मे कई अन्दरूनी कमजोरियाँ भी थीं। और वे कमजोरियाँ ज्यों-ज्यों मिसलों की शक्ति वढ़ती गई त्यों ही त्यों वढ़ती गईं। आरम्भ मे मिसल के जत्थेदार के मरने पर किसी भी योग्य आदमी को जत्थेदार और मिसलपति वना लिया जाता था। किन्तु जव कुछ गॉव और धन दौलत मिसलों के अधिकार मे आने लगी तो जत्थेदार की गद्दी मौरूसी अथवा वंशानुगत हो गई। इसका नतीजा यह हुआ कि कोई-कोई मिसल तो केवल अयोग्य जत्थेदार मिलने के कारण ही नष्ट हो गई।

जत्थेदारों की राजनीति के वारे मे यह सहज ही कहा जा सकता है कि जितना उन्हें नये इलाके जीतने का शौक था। उतने जीते हुए इलाकों को स्थायी तौर से अपने कब्जे मे वनाये रखने की चिन्ता

बाल शहीद



जोरावरसिंह फतेहसिंह

पंजाब केसरी



महाराजा रणजीतसिंह जी

पन्द्रहवॉं अध्याय

महाराजा रणजीतसिंह और उनका साम्राज्य

अनेक इतिहासकारों ने महाराजा रणजीतसिंह का पूर्व पुरुष राजा शालिवाहन को माना है। परन्तु यह निश्चय कोई भी नहीं कर सका कि यह शालिवाहन कौन था ? पुराण, बृहद्कथा, कथा सरित सागर आदि सस्कृत ग्रन्थों और नवीन काल के अनेक अंग्रेजी हिन्दी इतिहासों और पुरातत्व अन्वेषी लेखकों के लेखों के आधार पर हम भारत में कम से कम चार सालवाहन पाते हैं। (१) आन्ध्र लोगों का शालिनाहन (२) शाके संवत् का प्रवर्तक शाका शालिवाहन (३) भट्टियों के पूर्वज गज का लडका शालिवाहन (४) पूरनमल और रसालू का पिता शालिवाहन।

पूर्वजों का परिचय

कनिंघम ने गज के लडके को ही रणजीतसिंह का पूर्वज माना है। किन्तु जब हम महाराजा रणजीतसिंह के पिता का विवाह सम्बन्ध फुलकियॉं घराने में होते देखते हैं तो इस बात पर विश्वास नहीं होता कि भट्टी माहनी दोनों का पूर्वज हजार बारह सौ अथवा पाच सौ छः सौ वर्ष पूर्व एक ही रहा होगा।

इस तरह हम यह मानने को तैयार नहीं हैं कि रणजीतसिंह का पूर्वज गज का पुत्र शालिवाहन था। दूसरे भाटियों की वंशावली में हम गज पुत्र शालिवाहन के पुत्रों मे जौनधर को भी नहीं पाते हैं जो रणजीतसिंह जी का पूर्वज था।

हॉं, यह सही हो सकता है कि गन्धर्व सेन के पुत्र विक्रमादित्य के बाद अपना सवत् चलाने वाला शालिवाहन और पूरन का पिता शालिवाहन एक ही थे और भट्टियों का पूर्वज शालिवाहन अलग था। जो सातवीं सदी में हुआ है। शाके संवत् का चलानेवाला शालिवान वही हो सकता है। जो हजरत ईसा का समकालीन था और हजरत ईसा विक्रम के आस पास ही हुए थे। दोनों के सम्वतों मे केवल ५७ वर्ष का ही तो अन्तर है। यह भी सम्भव हो सकता है कि विक्रमाजीत ईसा से भी पीछे तक जिन्दा रहे हों। क्योंकि किम्वदन्तियॉं विक्रमादित्य की जिसे कि वीर विक्रमाजीत के नाम से याद किया जाता हैं। ३०० वर्ष तक जिन्दा रहने की बात कहती हैं।

ईसा की आरम्भिक सदी मे कोई शालिवाहन था भी,या नही ? इसके लिये हम भविष्य पुराण का यह हवाला पेश करते हैं।

"एकदातु शकाधीशो हिम तु ग समाययो।

हूण देशस्य मध्ये वै गिरस्थ पुरुष शुभम् ।
ददर्श वलवान राजा गौरांग श्वेत वस्त्रकम् ॥२२॥
को भवानी तितं प्राहस हो वाच मदान्वित. ।
ईश पुत्रच मा विद्ध कुमारी गर्भ सँभवम् ॥२३॥

(भविष्य पुराण प्र० सर्ग ३ खंड ३)

अर्थात—एक वार शक पति शालिवाहन हिमालय के पार हूण देश के मध्य में पहुंचे। वहाँ उन्होंने श्वेत वस्त्राधारी सुन्दर पुरुष को देखा। पूछने पर उसने बताया मैं कुंवारी कन्या से ईश पुत्र हूँ। इस श्लोक से ईसा और शालिवाहन शाके समकालीन हो जाते हैं। साथ ही इससे यह भी सिद्ध हो जाता है। कि शाका संवत का चलानेवाला और उत्तर का विजेता एक ही पुरुष था।

विक्रम सवत से शाका संवत १३५ वर्ष पीछे चलता है।[1] इतिहास ऐसा कहते हैं। कि विक्रम ने शक लोगो को हराने के बाद अपना संवत चलाया था। उस समय अवश्य ही विक्रम की अवस्था लगभग २५ वर्ष की रही होगी और जिस समय शाका सवत विजय उत्सव मनाने ने की खुशी में शालिवाहन ने चलाया। उस समय वे (२५+१३५) एक सौ साठ वर्ष के रहे होंगे।

अब देखना यह है कि क्या सचमुच ही वे अपना (विक्रम) सवत चलाने के बाद इतनी लम्बी उम्र तक जिन्दा रहे। इसके लिये हमें एक प्रमाण फारसी तारीख पंज हजार रिसाला में मिलता है। जिस समय विक्रम संवत चला था। उस समय युधिष्ठिरी संवत ३०४४ था।[2] और देहली के राजा महानपाल को विक्रमादित्य ने युधिष्ठिरी सवत् ३१०५ में जीता था और फिर ६३ वर्ष तक दिल्ली पर उनका अधिकार रहा। इस प्रकार दिल्ली उन्होंने अपने संवत् चलाने के ६१ वर्ष बाद विजय की और विजय के बाद भी ६३ वर्ष और जिन्दा रहे।[3]

इन उदाहरणों से यह सिद्ध है कि विक्रमादित्य को के बाद अपने शाका संवत का प्रचारक शालिवाहन ही था और वह शाक कहलाता था।

संवत चलाने का उनका मौका क्यों पड़ा? और उससे पहले वे कहाँ रहते थे? पंजाब में ही या पैठन में? इसका उत्तर यह है। विक्रमादित्य ने जिस भांति शकों को मालवे से निकाल दिया था। उसी भांति शालिवाहन को भी किसी आक्रान्ता से लड़ना पड़ा होगा। दूसरे यह कि वे पंजाब के थे या पैठन के। तो हम कहेंगे वे पंजाब के ही थे हालांकि इन्हीं दिनों पैठन में भी एक शातवाहन या शालिवाहन अथवा शातिकर्ण नाम का राजा था। इन दोनों शालवाहनों में उनकी आगे की वंश परंपरा विभेद कर देती थी। आन्ध्रों के शालिवाहन के आगे के उत्तराधिकारियों के वही नाम नहीं हैं जो पंजाब शालिवाहन के उत्तराधिकारी हैं। विक्रमादित्य से भी युद्ध उज्जैन में नहीं किन्तु दिल्ली और पंजाब के बीच कहीं हुआ था और विक्रमादित्य ने भी जिस शक नृपति को हराया था। वह भी कुमायूं गढवाल के आस पास ही हराया था और संभवतय वह शुकवंत था। यह नहीं कह सकते कि शुकवन्त से शालिवाहन का क्या सम्बन्ध था।

१ अब विक्रम २०१० और शाका १८७५ है।
२ आजकल युधिष्ठिर सवत ५०३८ है और ई० १९५३ है।
३ देखो हरिश्चन्द्रिका और मोहन चन्द्रिका (नाथद्वारा मेवाड द्वारा प्रकाशित)

प्रश्न यह उठता है कि क्या संवत् प्रवर्तक शालिवाहन शक थे ? मनुस्मृति के अनुसार शक वे आर्य क्षत्रिय थे। जो ब्राह्मणों की शिक्षाओं से वंचित रह कर जनेऊ आदि से खाली रह गये थे। कुछ विदेशी इतिहासकारों ने शकों को ईरान का आदि निवासी मानकर उन्हे इंडोसिथियन के नाम से याद किया है। उनके खयाल से शकों की मातृभूमि ईरान थी। किन्तु बात यह नहीं ईरान तो उनका उपनिवेश (कौलोनी) था हिन्दुस्तानी इतिहास लेखकों ने भी अंग्रेज लेखकों की तरह गलती खाई है। महाराजा कनिष्क और महाराजा शालिवाहन जैसे लोगों को उन्होंने सिथियन माना है। वास्तव में वे नस्ल से आर्य थे। और एक समय महाभारत और प्रभास क्षेत्र के युद्धों के बाद उनके पूर्वज ईरान (सिढिया) तुर्किस्तान आदि सुदूर देशों मे फैल गये थे। महाराजा कनिष्क शिवि लोगों की उस शाखा में से थे। जो काश्मीर को पार करके तिब्बत मे पहुँच गई और शिवि की बजाय तिब्बती भाषा मे श्यूची पुकारे जाने लगी और उधर से मुड़कर ईरान में आने पर श्यूची या केवल यूची के नाम से मशहूर हुई। फारसी भाषा मे स का अभाव है। अत. श्यूची से यूची कहलाई। यूची लोगों का ईरान से भारत को मुड़ने मे काफी विस्तार हो गया था। राज्य भी उनका एक समय समस्त उत्तरी भारत जिसमे आज के यू० पी०, सी० पी० मध्य भारत, राजपूताना, पंजाब, सिंध और काश्मीर शामिल थे, हो गया था। इसके सिवा अफगानिस्तान और बिलोचिस्तान सभी उनके अधिकार मे थे। शिवि लोग जिनकी शाखा श्यूची व यूची थे कौन थे ? इसके लिये पुराणों ने उत्तर दिया है कि वैदिक ऋचाओं के द्रष्टा राजा उशीनर के पाच पुत्रों में शिवि एक थे। शिवि राजा के दान की बड़ी महिमा आज तक प्रचलित है। इन्हीं शिवियों की इस शाखा मे से जो तिब्बत ईरान आदि मे घूमती हुई कई पीढ़ियों के बाद श्यूची और यूची नाम लेकर लौटी महाराज कनिष्क थे। और कनिष्क के बाद उनका साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया।

राजा शालिवाहन के लिये हम कह सकते हैं कि वे भी महाराज कनिष्क के ही खानदान मे से रहे होंगे। प्रो० कालिकारंजन कानूनगो ने "हिस्ट्री आफ जाट्स" मे महाराजा कनिष्क को जाट ही लिखा है। क्योंकि स्यालकोट मे भी एक समय कनिष्क का आधिपत्य था। और कनिष्क और शालिवाहन मुश्किल से २००-२५० वर्ष का अंतर है। महाराज कनिष्क बौद्ध थे और राजा विक्रमादित्य शैव था। इसलिये बौद्ध विरोधी हिन्दू धर्माचार्यों ने उसे कनिष्क के उत्तराधिकारियों के नष्ट करने के लिये भड़काया होगा और केवल देहली मालवा से शकों को विताडित कर देने के कारण उसे शकारि भी कहा होगा शायद शालिवाहन ने इसका बदला ले लिया और अपना उत्तर मे संवत भी चला दिया।

हमने पिछले पृष्ठों में लिखा है कि भाटी लोगों से और इस राजा शालिवाहन से कोई सम्बन्ध नहीं है। भाटियों का शालिवाहन दूसरा है। इस बात की सचाई के प्रमाण मे हमे एक दूसरा उदाहरण भी मिलता है। वह यह कि शालिवाहन के लड़के साल की लडकी के साथ मे अटक के भट्टी राजा होड़ी का विवाह हुआ था।

इस तरह से यह तय हो गया कि सालवाहन जिसके वंश मे कई शताब्दियों बाद रणजीतसिंह जैसा प्रसिद्ध महाराजा हुआ। भट्टी सालिवाहन नहीं किन्तु शाके सालिवाहन थे और वे महाराजा कनिष्क के ही वंशजों मे से थे। और राजा कनिष्क शिवि थे। भागवत मे शिवि लोगों की वंशावली इस प्रकार दी गई हैं।

चन्द्र के पुरुरवा, पुरुरवा के आयु, आयु के नहुप, नहुप के ययाति, ययाति के पाच पुत्र यदु, पुरु, अनु, तुर्वसु और द्रुह्यु हुये। अनु के सभानर, सभानर के कालनर, कालनर के सृञ्जय, सृञ्जय के

जन्मेजय, जन्मेजय के महाशील, महाशील के महामना, महामना के दो पुत्र—तितक्ष और उशीनर हुए। उशीनर के राजा शिवि हुए।

स्यालकोट जिसमे कि राजा शालिवाहन ने अपनी राजधानी स्थापित की थी। बहुत प्राचीन नगर है। महाभारत मे इसे शाकल्य नगर के नाम से याद किया गया है। कुछ लोग इसे शल्य का बसाया हुआ भी मानते हैं। राजा शल्य मद्र थे और पाण्डु के साले थे किन्तु महाभारत के समय यहाँ पर जरत् लोग राज्य करते थे। बौद्धकाल मे इस प्रदेश पर अराट्ट लोगो का कब्जा हो गया था।

महाराज शालिवाहन के समय मे इसका नाम सालिवाहनपुर हो गया था। उनके वंश के बाद मे यह हूण लोगो के हाथ मे चला गया और इसके बाद स्याल लोगों के अधिकार मे चला गया और स्यालकोट के नाम से मशहूर हो गया।[1] इस प्रकार स्यालकोट भी पंजाब का एक ऐतिहासिक नगर है।

राजा शालिवाहन के कई लड़के बताये जाते हैं किन्तु पूरन, रसाल और युगन्धर बहुत प्रसिद्ध हुये है। इस के दो रानिया थी, एक इच्छुमती जिसके पेट से पूर्ण और दूसरी कुसम से रसाल और युगन्धर आदि पैदा हुए थे। युगन्धर जिसे कि सिख तारीखों मे जौनधर कहा गया है—के वंश मे ही महाराजा रणजीतसिंह हुए थे।

गद्दी पर तो रसालू बैठे थे किन्तु वे परोपकारी होने के कारण बहुत ही कम राजधानी मे रहते थे। अत. सारा काम युगन्धर को ही सभालना पड़ता था। यह भी कहा जाता है कि युगन्धर ने भातियाना पर भी कब्जा कर लिया था। यह समय ईसा की तीसरी सदी का था। इसके बाद दो सदियों के इतिहास का सिलसिला नहीं मिलता। सन् ५०० के आस पास तोरमान हूण ने पंजाब पर चढ़ाई की और उसके लडके मिहिरकुल ने स्यालकोट पर कब्जा कर लिया और सोहान्द को जोकि युगन्धर का वंशज था स्यालकोट से निकाल दिया। हूणो के सम्बन्ध मे कहा जाता है वे बड़े निर्दयी थे। मनुष्यो के साथ वह जानवरों का जैसा व्यवहार करते थे। सोहाद की रानी भी भाग निकलीं, और पंजाब से एक दम बाहर चली गई। कहा जाता है कि उन्होंने एक सॉसी की शरण ली और वहीं उनके एक बच्चा पैदा हुआ। सोहान्द भी मारे-मारे फिरते रहे।

सन् ५२८ ई० मे फिर इनका भाग्य फिरा और मन्दसौर के प्रसिद्ध जाट नरेश यशोधर्मा ने गुप्त राजाओं की मदद से कहरूर के मुकाम पर हूणों को परास्त कर दिया। इस तरह पंजाब मे फिर कुछ शॉति हो गई और सोहान्द ने भी अपनी रानी को लेकर रामसर (वर्तमान अमृतसर) के पास एक नगर बसाया। सांसी के घर पालित होने के कारण उन्होंने अपने लड़के का नाम भी सांसीराय रक्खा और गॉव का नाम राजा सासी रक्खा।

यह मत सिख इतिहासकारो का है किन्तु हम यह मानते हैं कि रानी भाग कर सिन्ध में पहुँची थी और वहॉ जो प्रथम साहसीराय मौर्य जाट राज्य करता था[2] उसके यहॉ लड़के का पालन पोषण हुआ और सोंहद भी वहीं पहुँच गया। पंजाब मे शांति होने पर यह लोग लौट आये और अपने पुत्र का नाम भी साहसीराय रक्खा। आगे कई पीढ़ियों तक यह साहसी के नाम से ही मशहूर रहे। वैसे अपने गॉव भी आबाद किये किन्तु कहा नहीं जा सकता कब और कौनसा गॉव आबाद किया ? समय

१. हीर जो राझे जाट की प्रेमिका थी इसी स्यालकोट की थी।
२ चच ने द्वितीय साहसीराय से राज्य छीना था।

अराजकता का आगया था। मुसलमान बराबर पंजाब में व
इतिहास इस वंश का अंधकार में पड़ गया और सत्रहवीं शता
ग्फ इतिहास में साहसीराय के बाद की पीढ़ियां इस
१. साहसी, २ लखनपाल, ३ धर, ४. उदयरथ,
६ वीरू, १०. बाघ, ११. भागमल, १२. कालू, १३. जोंधोम
१७. बारना. १८. द्यारा, १९. बूढासिंह, २०. चड़तसिंह, २१.

संवत् १०११ में कीर्तिसेन उर्फ किरतू ने अपने पूर्वज का पुनरुद्वार किया। किन्तु चूंकि पंजाब में मुसलमान व साहसी गाँव को छोड़ देना पड़ा और पेंडेन पेंडेन नाम के गाँ सैन उर्फ पेमू के नाम से आबाद किये। यहाँ पर यह लोग अ इन जंगलों और रेत के टीलों से परिवेष्टित भूमि की ओर अ

आगे भागमल ने शाहजहाँ बादशाह के पास जाकर गाँवों का पट्टा अपने नाम करा लिया और उन गाँवों पर वतौ

इन दिनों गुरु हरिगोविन्दसिंह जी के यश की सुगं गुरु जी की सेवा में कई बार जाकर उपदेश ग्रहण किये और

समयान्तर में इसी खानदान में बुड्ढासिंह नाम का बन्दासिंह के साथ रह कर उन बहादुरियों में भाग लिया। और उनके राज्य की जड़ को उखाड़ फेंकने के लिये, महावीर दिखाई थीं।

बन्दासिंह के वध किये जाने के बाद इसने एक स्वतन् आगे चलकर सुकरचकिया मिसल के नाम से मशहूर हुआ। गाँव में रहते थे।

संक्षेप रूप में महाराजा रणजीतसिंह जी से पूर्व का हम पीछे कर ही चुके हैं। इसलिये उसे दुहराना यहाँ व्यर्थ है

याददास्त के लिये इस बात को फिर दुहरा देना चाह की शिवि शाखा के उन क्षत्रियों में से थे। जो तिब्बत और ई के नाम से पुकारी जाने लगी थी और जिसमें कि कनिष्क, हुए थे।

कनिंघम ने सांकेतिक तौर पर हमारे ही कथन की सही भी है।

अब हम महाराजा रणजीतसिंह जी के जीवन पर चकिया मिसल का इतिहास दिया है। वहाँ पर उनके पिता त

महाराजा रणजीतसिंह

उन्हीं से आगे का वर्णन आरम्भ करते हुई थी। रणजीतसिंह की उम्र केवल पति राय को इनके सलाहकार के तौ

सदाकौर इन्हें
कन्हैया मिसल
ठीक किया। ज
जी प्रत्येक लड़ा
गये थे। किन्तु
जब दि
रणजीतसिंह ज
पर उन्होंने अप
इन दि
किये। सन् १७
प्रशंसा सुनी।
कारण काबुल
बड़े जोरों की व
तुम मेरी तोपें
इलाका तुम्हें दे
कर उसके पास
शहर की सनद
महारा
खां ने एक दिन
गया। जिससे
रणजीतसिंह ज
कब्जे में कर लि
उनके हाथ में छ
पट्टे के
तलवार से ही व
थे। यह वैसे सि
परले सिरे के ल
सिंह ने शहर के

१ आरम्भ में उ
ही दूसरी ओर
हिफाजत के
शिक्षा में न
सरदार महा
योग्यता हासि

ी शिकायत पर
के मुसलमानों ने
ब हम आपकी
भेजकर उन्होंने
भी चेतसिंह से
कब्जा हो गया।
ते ही महाराजा
होगा न किसी
योग दे हम भी
एक नये शासक
तसिंह जी ने
फ २० वर्ष की
हुई तकदीर ने
किन्तु लाहौर के
ी कूदने लगे।
हौर पर हमारा
गे। कुछ दिन
हबसिंह भगई
के आरम्भ में
अपनी सेनायें
ई। बराबर दो
गहा। रणजीत
जाय और हम
गये। फिर भी
सैनिक लेकर
नके सैनिक छा
रने की गर्ज से
शान्त हो गया।
ौर, रामगढ़ियों
एक झटके को
ार कर लिया।
ाल होते हुये
का राजा २०

कायम कराना चाहती है। महाराज ने फगवाडा पर हमला करके उसे भी जीत लिया और विधवा को हरिद्वार में भेज दिया जहाँ जनम भर उसे खर्च मिलता रहा। इस बीच में संसारचन्द ने हुशियारपुर और बैजवाड़े को अपने अधिकार में लेने के लिये चढ़ाई कर दी थी। अत: महाराज उसका मुकाबिले करने के लिये उधर पहुँचे किन्तु संसारचन्द कांगड़े की ओर भाग गया। अतः महाराज अपने इलाकों में लौट पड़े। दूसरे वर्ष जब कि संसारचन्द पूरी तैयारी के साथ महाराज का सामना करने के लिये इधर को आ रहा था। उसके राज्य पर गोरखों ने हमला कर दिया। अत उसे वापिस लौट जाना पड़ा।

सन १८०६ ई० में महाराज पटियाला और नाभा की ओर उनके आपसी झगडों को मिटाने के लिये गये। क्योंकि दोनों ने आपही को पंच मुकर्रिर किया था। कुछ मुठभेड़ के बाद उनमें सन्धि करा दी और जंडियाला रायकोट, जगरास और तलवडी पर अपना अधिकार करके वहाँ अपने विश्वस्त आदमियों को जागीरदार के रूप में मुकर्रिर कर दिया। लुधियाना इस समय रायकोट के मरहूम रईस इलियासखाँ की दो विधवाओं के अधिकार में था। महाराजा ने उन्हें बेदखल करके उस पर भी अपना अधिकार कर लिया। इसी समय राजा संसारचन्द की ओर से महाराज के पास खबर आई कि सारे मत-भेद भुलाकर गोरखों से मेरी रक्षा करो।

महाराज ने कांगड़ा पहुँचकर गोरखों के विरुद्ध राजा संसारचन्द की मदद की। गोरखों के सरदार अमरसिंह ने महाराज के पास यह खबर भिजवाई कि आप अगर चुप हो जांय तो हम आपको उससे दुगुनी रकम दे सकेंगे जितनी कि राजा संसारचन्द भेंट करेगा। महाराज ने गोरखों के इस सदेश को अस्वीकार कर दिया और संसारचन्द को मदद दी। चूंकि महाराज के साथ फतहसिंह अहलूवालिये भी थे। इसलिये इस लड़ाई का हम पूरा वर्णन फतहसिंह के हाल में दे चुके हैं।

कसूर को विजय करके जब महाराज वहाँ से विदा हो आये थे तो उसके कुछ ही समय बाद निजामुद्दीन के साले कुतुबुद्दीन ने उसे कत्ल कर दिया और कसूर पर अपना अधिकार जमा लिया। इसलिये महाराज को पुन: कसूर पर चढ़ाई करनी पड़ी किन्तु कुतुबुद्दीन ने भी तंग आकर उनकी अधीनता स्वीकार करली। बहुत सा नजराना भी पेश किया।

संसारचन्द की सहायता करने के बदले में कांगड़ा उन्हें मिल गया था। अत: महाराज ने सन् १८०२ ई० में कांगड़ा में देसासिंह मजीठिया को कमान्डर और सारी पहाड़ी रियासतों का नाजिम बनाकर मुकर्रिर कर दिया। ज्वालामुखी के दर्शन करके महाराज ने दान पुण्य भी किये और उससे भी अधिक उन्होंने सुकेत, कुल्लू आदि के राजाओं से नजराने वसूल किये। इसी समय रास्ते में उन्होंने सरदार बघेलसिंह की विधवाओं से उन्होंने हरियाने के इलाकों को भी जब्त कर लिया। इसी दौरे में वे फैजलपुरिया बूधसिंह को भी—उसके इलाके को जब्त करके गिरफ्तार कर लाये। यह याद रहे कांगड़े के किले पर पूर्णाधिकार राजा संसारचन्द की बेईमानी को देखकर ही किया गया था और यह घटना २४ अगस्त सन् १८०२ ई० की है जब कि वे कुतुबुद्दीन को दबा कर इधर लौटे थे।

कुतुबुद्दीन की आन्तरिक इच्छा थी कि वह महाराजा रणजीतसिंह जी के आधीन नहीं रहे। इसीलिये उसने उनके पीठ फेरते ही ताकत बढ़ाना आरम्भ कर दिया था। महाराज को जब उसकी करतूतों की खबर मिली तो वे पुन: कसूर पर चढ़कर आये और फिर उससे किसी भी शर्त पर समझौता नहीं किया। सिखों ने किले में घुसकर अपना झंडा उस पर गाड़ दिया।

महाराजा रणजीतसिंह जी की नीयत स्पष्ट थी। वे एक मजबूत और सुसंगठित राज्य कायम करना

चाहते थे और ये छोटे नवाब या सरदार उनके इस उद्देश्य में बाधक होते थे। अतः उन्होंने सन् १८०८ तक पंजाब के अनेकों छोटे २ मुसलमान रईसों और सिख सरदारों को अपने काबू में कर लिया। कुछ उनमें से भागकर सतलज के उस पार हो गये। जो सहज ही उनकी बात को मान लेता था। उसे वह गुजारे लायक जमीन, जायदाद या जागीर दे भी देते थे। वह अपने सच्चे दोस्तों को भी जागीर, जायदाद देते थे। सन् १८०८ में जब वे पटियाला और नाभा के झगडो को निबटा कर लौटे थे तो उन्होंने नारायण को जीत कर अपने दोस्त फतहसिंह अहलूवालिया को दे दिया था।

महराजा रणजीतसिंह जी ने अपनी सेना के अधिक मजबूत हो जाने पर कुछ अलग जत्थे बना दिये थे। जिसमें एक जत्थे को लेकर दीवान मुहकमचंद सतलज उतर कर लाहौर राज्य के लिये परगना को जीतने और सरदारों से नजराने वसूल करता फिरता था। वादनी इलाके को दीवान मुहकमचंद ने ही जीत कर लाहौर राज्य में मिलाया था।

सन् १८०८ ई० में महाराज के घर खुशी की यह बात हुई कि रानी महताबकौर जी से शेरसिंह और तारासिंह नाम के दो जुड़वाँ लड़के पैदा हुए।

सतलज पार की फूल और भगतू रियासतों के कुछ इलाके महाराज ने अपने अधीन कर लिये थे, तथा कुछ इलाके उनके अपने सरदारों को भी जागीर में दे दिये थे। नाभा-पटियाला झगड़ा, और पटियाला के राजा-रानी का झगड़ा इन दोनों को निपटाने के लिये उन्हें दो बार इन राज्यों में जाना पड़ा था। दोनों बार में उन्होंने सतलज पार की समस्त रियासतों से जबर्दस्ती और मन चाहा नजराना वसूल किया। इससे वे रियासतें डर गई और उनके रईसों ने समाना में इकट्ठे होकर यही तय किया कि यदि रणजीतसिंह जी से बचना चाहते हो तो अंग्रेजों की शरण लो। इस पर १८०८ में उन्होंने यही किया। वे दिल्ली में जाकर गवर्नर जनरल के सामने अपना कच्चा चिट्ठा पेश कर आये किन्तु चूंकि उस समय अंग्रेजों ने अपनी संकटापन्न हालत के कारण उनकी रक्षा सम्बन्धी कोई गारन्टी न दी थी। इसलिये ऊपरी तौर से महाराजा रणजीतसिंह की भी आवभगत करते रहे और यह बताते रहे कि हम तो आपके अपने ही आदमी हैं।

अंग्रेज़ों को इस समय नेपोलियन बोनापार्ट, रूस और अफगानिस्तान सभी का डर लगा हुआ था। वे परमात्मा से यही दुआ करते थे कि किसी भी प्रकार यह स्वर्णभूमि भारत हमारे ही लिये सुरक्षित रहे, इसलिये वे चाहते थे कि किसी भी प्रकार हमारी महाराजा रणजीतसिंह जी से सन्धि हो जाय। इसी हेतु से उन्होंने महाराज के पीछे कपूरथला और नाभा के रईसों को इस बात के लिये लगा रक्खा था कि वे अपनी दोस्ती और नातेदारी का प्रभाव काम में लाकर महाराजा रणजीतसिंह को अंग्रेजों से सन्धि करने के लिये तैयार करें। इनके अलावा कुछ और लोग भी इसी काम के लिये अंग्रेजों ने रणजीतसिंह के पीछे लगा रक्खे थे।

महाराजा रणजीतसिंह जी के कुछ साथी ऐसे भी थे। जो यह चाहते थे कि अंग्रेजों से कोई दोस्ती न हो किन्तु कुछ तो महाराज ने अंग्रेजी सेना के युद्ध कौशल की चर्चा सुनी थी कुछ ऐसे मौके आ गये जिससे उन्हें यह भान हो गया कि लड़ाई के हुनरों में अंग्रेजी सेनाये हमारी सेनाओं से बहुत ज्यादा तेज और होशियार है। मुहर्रम के दिनों की बात है मि० मेटकाफ अमृतसर में ठहरे हुए थे। उनके मुसलमान सिपाहियों ने ताजिया निकाला। जब वह अकालियों के मुहल्ले में होकर निकले तो फूलासिंह अकाली ने उन पर हमला कर दिया। उनसे अकालियों को मुठभेड़ लेने में कठिनाई पड़ी। महाराज उसी

समय गोविन्दगढ़ से वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने झगड़े को तो शांत कर दिया किन्तु असर उनके दिल पर यही पड़ा कि फूलासिंह जैसे बहादुर के आगे यह अंग्रेज सैनिक जम गये। यह अवश्य ही कवायद और परेट की हुशियारी से ऐसा हुआ है। उनके दिल पर इस घटना का ऐसा असर पडा कि उसी समय उन्होंने अंग्रेजों से और उन्हीं के प्रस्तावानुसार संधि करली। हालाकि इनकी आत्मा इस संधि से खुश न थी। क्योंकि इससे पहले उन्होंने बड़ी शीघ्रता के साथ इलाका बढ़ाना शुरू कर दिया था। इस घटना से पहले मेटकाफ पहुँचा था तो महाराज उसे वहीं छोड़ कर कसूर चले गये थे। इससे मेटकाफ के दिल पर यही असर पडा था कि महाराज की इच्छा अंग्रेजो से सन्धि करने की है नहीं। इससे पहले ही दीवान मुहकमचन्द ने महाराज से कहा था। इस सन्धि में यह तय कराना चाहते हैं कि इस समय तक जिसका जहाँ तक राज्य है। वह वहीं पर रुक जाय। और सन्धि करने से पहले २ आप बाहर रहकर सतलज पार के सारे पंजाब को जहाँ तक भी सभव हो अपने राज्य में मिलाले। अंगेज तो बडे चालाक होते हैं। मेटकाफ ने भी लाहौर में महाराज के वापिस आने की बाट नहीं देखी। वह भी लाहौर से कसूर को चल दिया वह अपने हाथ में महाराज को भेट करने के लिये घोड़ों की जोड़ी एक अंग्रेजी गाड़ी और तीन हाथी मय सुनहरी हौदे के लिये फिरता था। महाराज ने मेटकाफ के साथ अजीजुद्दीन को करके वापिस लाहौर भेज दिया और आपने मालेर कोटला पहुच कर एक लाख नजराना वसूल किया। उनके एक सरदार करमचंद ने फरीदकोट पर अपना कब्जा कर लिया। मेटकाफ ने महाराज को पत्र लिख कर इस कार्य को अन्यायपूर्ण कहा, इस पर महाराज ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा था जहाँ तक सिख आबाद हैं। वहाँ तक हमें अधिकार होना चाहिये। हम उनके साथ जाहे जैसा व्यवहार करें। इसके बाद मेटकाफ तो फतेहबाद ठहरा रहा और महाराज अम्बाला जा पहुँचे। गुरुबख्शसिंह की विधवा दयाकौर से उसका इलाका नामा, कैथल लेकर गडासिंह को अम्बाले में हाकिम मुकर्रिर किया। साहनीवा, चाँदपुर, भंदा, धारी और बहरामपुर आदि पर कब्जा करके वहाँ पर दीवान मुहकमचंद को नियुक्त किया। रहीमाबाद कानातरी कोट वगैरह में अपने दूसरे सरदारों को मुकर्रिर किया। शहाबाद और थानेसर के सरदारों से कर वसूल किया। पटियाला के राजा साहबसिंह को पगड़ी पलटा दोस्त बनाकर २ दिसम्बर को फतेहाबाद आ गये और मेटकाफ से वार्तालाप आरम्भ किया। मेटकाफ ने स्पष्ट तौर से कहा कि महाराज इस बीच में आपने जितने भी इलाके जीते हैं उन्हे वापिस करिये और अपने राज्य की सरहद सतलज नियत कीजिये। उधर के लोगों को इस बात पर छोड़िये कि वे मरजी चाहे लाहौर दरबार से सम्बन्ध रक्खे और चाहे अंग्रेज सरकार से। महाराज इस बात पर राजी नहीं हुए और अन्दर ही अन्दर मौके का मुकबिला करने की भी तैयारी करने लगे। किन्तु अमृतसर मे फूलासिंह अकाली जैसे प्रचड वीर को जब चद अङ्गरेजी सैनिकों के वारों से पीछे हटते सुना तो उनके दिल मे यह बात पूरी तोर से बैठ गई कि हमारी सेना अङ्गरेजों से भिड़ने मे शायद ही जीतेगी। दूसरे उन्हें यह खबर लगी कि अङ्गरेजी फौज के एक दस्ते ने अम्बाला से गडासिंह को हटा कर फिर से रानी दयाकौर का प्रबन्ध करा दिया है। और अन्दरुनी तौर से पटियाला, जीन्द, फरीदकोट और कपूरथला अङ्गरेजों की ओर झुकाव रखते है तो उन्होंने मेटकाफ की पेश की हुई शर्तों पर ही १८०६ ई० को २५ अप्रैल को दस्तखत कर दिये। जिसके अनुसार सतलज पार की सब रियासतों पर से उन्हे अपना अधिकार हटा लेना पड़ा। इसके बाद महाराज ने आजन्म इस शर्त को निभाया। ६ मई १८०६ को इस सन्धिपत्र पर अङ्गरेज सरकार के भारत-स्थित प्रतिनिधि (गवर्नर-जनरल) की भी सही हो गई। अङ्गरेज सेना ने इस सन्धि से पहले ही लुधियाने मे छावनी बना ली थी।

महाराज की ओर से बटाले के बख्शी नंदनसिंह को और अङ्गरेजों की ओर से खुशवन्तराय को एक दूसरे के कैम्पों में रखने के लिये मुकर्रिर किया। जोकि प्राय: वकील या एजन्ट का काम करते थे।

काबुल में जाकर मि० एल्फिंस्टन ने वहाँ के अमीर से इस प्रकार सन्धि कर ली कि हम और नेपोलियन के आक्रमण के समय एक दूसरे के दोस्त रहेंगे। यह सन्धि शाहशुजा से हुई थी किन्तु कुछ दिन बाद महमूदशाह ने जो कि शाहशुजा का भाई था कैद से भाग कर बरकजई पठानों की मदद से शाहशुजा को गद्दी से हटा दिया। इस प्रकार सन १८१० ई० में अफगान अङ्गरेज सन्धि का खात्मा हो गया। महमूदशाह जब काश्मीर के अपने सूबेदार को दंड देने के लिए भारत आया तो महाराज ने उससे दोस्ती कर ली।

सन् १८११ ई० में शाहशुजा भी महाराज के पास आया। उसको उम्मेद थी कि काबुल की गद्दी दिलाने में अंग्रेज मेरी मदद करेंगे किन्तु उसे निराशा रही। इसलिये वह महाराज के पास पहुँचा। महाराज ने उसे बड़ी इज्जत के साथ ठहराया। उसके खाने-पीने और खर्चे का कुल प्रबन्ध अपनी ओर से कर दिया। कुछ दिन के बाद महाराज शाहशुजा से कोहनूर मांग बैठे। शाहशुजा और उसकी स्त्री ने बहाने बना कर इस मांग को खटाई में डालना चाहा। महाराज इस बात से नाराज हो गये। अत: उन्होंने उसके साथ सख्ती करना आरम्भ कर दिया। जब उसने देखा कि कोहनूर दिये बगैर काम नहीं चलेगा तो उसने उसे महाराज को सौंप दिया। इसके बाद महाराज ने उसके गुजारे के लिये एक जागीर मुकर्रिर कर दी और विश्वास दिलाया कि हम काबुल वापिस दिलाने में उसकी भरपूर मदद करेंगे किन्तु वह ऐसा घबरा गया कि एक रात को चुपके से दोनों स्त्री पुरुष लाहौर से निकल गये। वर्षों इधर-उधर भटकने के बाद सन् १८१६ में उसने पुन: अपने को अंग्रेजों के हाथ सौंप दिया।

वजीराबाद के सरदार जोधसिंह के मरने पर उसके बेटे गंगासिंह ने सन् १८०६ में ही अधीनता स्वीकार कर ली थी और एक लाख रुपया भी नजराना में दे दिया था। सन् १८११ के आरम्भ में ही गुजरात पर उसके एक सेनापति अजीजनुद्दीन ने कब्जा कर लिया था। अतः महाराज ने खुश होकर वहाँ का सूबेदार उसके बेटे नूरुद्दीन को बना दिया था। वहां का असली मालिक साहबसिंह मारा-मारा फिर रहा था। इसी वर्ष यानी सन १८११ में महाराज ने दीनानगर पहुंच कर पहाड़ी राजाओं से कर वसूल किये। नूरपुर के राजा ने चालीस हजार महाराज की भेंट किये। मुकेत, मण्डी और कुल्लू से उनके सेनापति मुहकमचंद ने नजराने वसूल किये। नूरपुर को तो कुछ समय बाद महाराज ने अपने राज्य में ही मिला लिया। वहाँ का राजा वीरसिंह भागकर अंग्रेजों के पास जा पहुंचा किन्तु वे उसको कोई मदद न दे सके। इस अपराध में महाराज ने उसके ससुर ज्वालासिंह की जागीर भी जब्त कर ली। वास्तव में पहाड़ी राजा व्यर्थ की चीज थे। न तो वह धर्म के लिये कोई कुर्बानी कर सकते थे और न अपनी प्रजा की लुटेरों से रक्षा। इसलिये महाराज इन सबको ही जब्त करने की फिक्र में थे। ज्वालासिंह भी भाग कर अंग्रेजों के पास ही चला गया।

इस वर्ष महाराज ने माधौपुर आकर दशहरा मनाया। उस दशहरे की शान का सही वर्णन वही कर सकता है। जिसने किसी स्वतत्र राजा को धार्मिक उत्सव मनाते देखा होगा। इस दशहरे में महाराज ने अपनी ओर से सेनापतियों को इनाम और जागीरें भी दीं। दीवान मुहकमचंद को उसकी उन सेवाओं के बदले में जो उसने पिछले वर्ष यानी १८१० में माझे के इलाके को विजय करके लाहौर राज्य में मिलाने और इसके सिवा जालन्धर, हेतपुर, फुलोर पर भी महाराज का दखल बिठाने में की थी। महाराज ने

बड़ी खुशी के साथ मुहकमचन्द को दीवान का दर्जा और सुनहरी हौदे वाला एक हाथी और एक सुनहरी मूठ की तलवार पुरस्कार मे दिये। इस प्रकार अन्य सरदारों को भी उनकी सेवाओं के अनुपात से बहुत कुछ दिया।

उन्होंने अपनी सासु के सामने बटाला जाकर प्रस्ताव रक्खा था कि क्योंकि वह लावल्द है। इस लिये अपनी जागीर के मालिक अपने नवासों शेरसिंह तारासिंह को बनाये किन्तु वह राजी नहीं होती थी और छिपे-छिपे अंग्रेजों से भी पत्र व्यवहार रखती थी—इसलिये अपने दीवान को इजाजत देकर उसे तो नजरबन्द कराया और जागीर अपने दोनो लड़कों—शेरसिंह, तारासिंह—के नाम करदी।

जब से महाराजा रणजीतसिंह ने अमृतसर पर कब्जा कर लिया था। तब से अब तक उनकी ताकत बहुत बढ़ गई थी। हर समय उनकी इच्छा खजाने मे अतुल धन राशि सचय करने की रहती थी। जहा भी जिधर भी कोई खिराज भेजने मे ढिलाई करता। उसे ही जा दबाते थे। स्यालकोट के रईस अहमद खॉ को इसी अपराध में जा दबाया। बिचारे ने ६० हजार साल बक्त के वक्त पहुँचाने का वायदा किया। करता भी क्यो न जब कि उसकी फौज केवल दो ही दिन की लड़ाई मे तितरबितर हो गई। उनके सामान और सचित कोष को तो महाराज ने लूट ही लिया। इसके सिवा इसी चक्कर में ऊच, शाहीवाल और गढ़ के मुसलमान रईसों से भी तगड़े नजराने वसूल किये। शाहीवाल के रईस फतहखॉ को तो उन्होंने जजीरों से बधवा दिया था क्योंकि उसने अपने वायदे के अनुसार खिराज अदा नहीं किया था। मुल्तान का मुजफ्फरखॉ भी काबू से बाहर होता जारहा था। उसका भी दमन किया, और उसके दमन का फल यह हुआ कि टेमा और भक्खर के मुसलमान सरदारों ने उन्हे एक लाख बीस हजार रुपया नजराना देकर अपने प्राण बचाये। भावलपुर के रईस सदीक मुहम्मद से एक लाख से भी ऊपर वसूल किया।

यहॉ यह बताने मे कोई हर्ज नहीं होगा कि मुल्तान पर महाराज का कब्जा नहीं हो पाया था उधर दीवान मुहकमचन्द शुजाबाद में असफल रहा था। इन घटनाओं का महाराज के दिल पर ऐसा असर पड़ा कि उन्होंने लाहौर लौटते ही फौजों को यूरोपियन ढग से शिक्षा दिलाना शुरू किया। कई फ्रासीसी और जर्मनों को सैनिक शिक्षा के लिये भरती किया। इसका फल भी यह हुआ कि अगले, साल उन्हीं सैनिकों ने पहिले की अपेक्षा लड़ाई मे कहीं अधिक चमत्कार दिखलाये।

दूसरे वर्ष महाराज ने मुल्तान पर फिर चढ़ाई की। इस वक्त तक मुजफ्फरअहमद अग्रेजों के पास अपनी रक्षा के लिये फिर चुका था। जब वहॉ भी उसे कोई आश्वासन नहीं मिला, तो उसने बेगमों के दिल्ली मे जेवर बेचे और मुल्तान आकर महाराजा रणजीतसिंह जी को पचास हजार नजराना पेश करके अपने प्राण बचाए। दिलसिंह ने इन दिनों तक कोट कमालिया पर अधिकार कर लिया था। महाराज लाहोर लौट आये।

सन १८१४ ई० में राजकुमार खड्गसिंह जी की शादी कन्हैया सरदार जेहलसिंह की पुत्री चन्दकौर के साथ की। जिसमे नाभा, जीन्द आदि के सब रईस शामिल हुए। महाराज ने आक्टरलोनी को भी निमत्रण दिया था। हालाकि दीवान मुहकमचन्द इस बात के खिलाफ था। क्योंकि वह समझता था कि आखिर अग्रेज यहॉ आकर हमारी बहुत सी बातों का भेद ले ही जायगा।

सन १८१५ ई० मे महाराज ने फिर विजय यात्रा आरम्भ की। पाकपट्टन होते हुये भावलपुर के नवाब से ८० हजार नजराना वसूल किया और ४० हजार सालाना खिराज देना स्वीकार करा

लिया। वहाँ से महाराज हड़प्पा पहुँचे और मिश्र दीवानचन्द के तोपखाने की मदद से अहमदाबाद को फतह किया।

मुल्तान से महाराज को खिराज मिल रहा था किन्तु फिर भी वे इस बात से संतुष्ट होना चाहते थे कि मुल्तान कतई रूप से उनके राज्य मे मिल जाय। उधर मुजफ्फर अहमद भी जानता था कि एक न एक दिन घोर युद्ध होना है। इसलिये वह पूरी तरह से सावधान रहता था। महाराजा रणजीतसिंह ने सन् १८१७ ई० मे दीवान मोतीराम, भवानीदास, हरीसिंह नलुआ और दीवानचन्द को मुल्तान विजय के लिये भेजा। खूब डट कर लड़ाई हुई किन्तु सिख काफी जोर लगाकर भी किले में प्रवेश न पा सके। उधर रसद भी बीत चुकी थी। इसलिये वापिस लौट आये।

इस पराजय से महाराज बडे नाराज हुये और उन्होंने सभी सरदारों को बहुत ही लताडा। जब सबने ही भवानीदास पर कसूर थोप दिया,तो महाराज ने भवानीदास को कैद कर लिया। अगले साल २५ हजार सिखों की सेना मिश्र दीवानचन्द के नेतृत्व मे मुल्तान को जीतने के लिये भेजी। रसद बराबर पहुँचती रहे इसका इन्तजाम चुनाव के जलमार्ग से कर दिया। सेनाओं के चले जाने के बाद ख्याल आया कि कहीं धर्मयुद्ध के नामपर मुजफ्फरअहमद सारे मुसलमान सरदारों को न इकट्ठा करले। इसलिये महाराज ने अहमदखाँ स्याल को जेल से रिहा कर दिया और उसे एक जागीर भी देदी। ताकि मुसलमानो मे कुछ सतोष फैले। महाराज ने जो सोचा था वही हुआ। मुजफ्फर अहमद ने समस्त मुसलमान रईसो और जागीरदारों को दीन के नाम पर भड़काया। उसकी अपील को सुनकर बहुत से मुसलमान मुल्तान के किले मे इकट्ठे भी होगये। दीवान मोतीराम ने किले का चारों ओर से घेरा डलवा दिया और बाहर से जाने वालों को रोक दिया गया। किले की दीवारों को तोड़ने के लिये जमजमा तोप का भी प्रयोग किया। बराबर तोप के गोलों की बौछार से किले की दीवार मे छेद होगया। मुजफ्फर यद्यपि बड़े उत्साह और बहादुरी से लड़ रहा था किन्तु उसके साथियों का बराबर साहस छूटता जाता था। दो हजार आदमियों मे से जब केवल दो सौ ही रह गये तो कुछ लोग हथियार भी डालने लगे। इसी समय साधू सिंह नाम का एक सिख अफसर अपने साथियों समेत किले मे दाखिल होगया। दाखिल होते ही बिजली की तरह वह मुजफ्फरखाँ के आदमियों पर टूटे। मुजफ्फरअहमद और उसके बेटों ने भी हथेली पर प्राण रखकर मुकाबिला किया। खिजरी दरवाजे से मकबरे तक बराबर वह मुकाबिला किया और उस समय तक लड़े जब तक कि सिखों की लपलपाती तलवारो ने उनके सिर धड़ से अलग कर दिये। नबाव अपने पाँचो बेटों समेत मारा गया।

विजयोन्माद मे सिख सैनिकों ने किले के भीतर के लगभग पाँच सौ मकानों को ध्वस कर दिया। मुसलमान स्त्रियों पर ऐसी दहशत गालिब हुई कि कुछ तो पानी के हौजों मे कूद पड़ीं। नवाब का सारा सामान जिसमे जवाहिरात, हीरे, पन्ने और मोती भी शामिल थे। सिखों के हाथ आया। खजाना भी लूट लिया गया। सैनिकों ने शहर को भी लूटना चाहा किन्तु उन्हे रोक दिया गया। मुल्तान विजय के बाद सैनिकों ने लौटते हुये शुजाबाद को भी लूट लिया।

मुल्तान विजय के समाचार जब लाहौर पहुँचे तो महाराज बड़े खुश हुए और उन्होंने विजयोत्सव मनाने की आज्ञा देदी। अमृतसर और लाहौर दोनों जगह बराबर आठ दिन तक रोशनी की गई। लाहौर की गलियों में घूम-घूम कर महाराजा ने रुपये बाँटे। इस विजय से करीब पांच लाख का माल महाराज के हाथ लगा था और सिख, हिन्दू और मुसलमान सभी पर उनका रोब गालिब होगया। सुखदयाल के

महाराज ने मुल्तान का सूबेदार नियुक्त किया।

इन्हीं दिनों काबुल में एक गृह कलह फैल गया। बात यह हुई कि काबुल के अमीर ने वजीर फतहखॉ को उनकी ईरान विजय पर दावत दी। दावत के मौके पर ही अमीर (शाहमहमूद) के बेटे फतहखां को मारडाला। इससे फतहखां का कबीला बिगड़ गया और काबुल में आन्तरिक कलह बढ़ गया। महाराजा रणजीतसिंह जी ने पेशावर को जीतने का यह स्वर्ण अवसर समझा और उन्होंने लगातार १५ दिन तक अपनी फौज की कवायद परेट देखकर फूलासिंह अकाली और दूसरे सरदारों के साथ पेशावर विजय के लिये फौजे रवाना कर दीं. पीछे से आप भी चल दिये। इन फौजों ने रास्ते में खटक पठानों को परास्त करते हुए खैराबाद और नौशहरा पर भी कब्जा कर लिया। पेशावर में उन दिनों यार-मुहम्मदखां सूबेदार था। उसने मुल्तान की कहानी सुनी थी। इसलिये सिख दल को देखकर उसने भागना ही उचित समझा। जहाँदादखॉ महाराज की सेवा में हाजिर हुआ और उसने पच्चीस हजार नजराना और चौदह तोपे भेंट करके अधीनता स्वीकार करली। महाराज ने उसे सूबेदार नियुक्त कर दिया और लाहौर की ओर लौट पड़े। जब कि वे अटक के पास थे। दोस्तमुहम्मदखां के एजेन्ट दामोदरमल और हाफिज उल्ला महाराज के पास पहुँचे। उन्होंने महाराज के सामने एक लाख रुपया इसलिये पेश करने की बात कही कि पेशावर दोस्तमुहम्मद को दे दिया जाय। महाराज राजी होगये। एजेंट लोग रुपया लेने के लिये काबुल की ओर चले गये किन्तु इसी बीच बरकजई लोगों ने जहांदादखां को पेशावर से निकाल दिया। महाराज ने तुरन्त ही दिलसिंह की मातहती में बारह हजार सवार फिर पेशावर की ओर भेजे किन्तु इधर काबुल से पचास हजार नकद और कुछ बढ़िया घोडे आ जाने के कारण अपनी सेना को वापस बुला लिया। कटक का स्नान करते हुए महाराज लाहौर को लौट आए। उधर दिलसिंह को शाहशुजा से भी एक भिड़न्त लेनी पड़ी क्योंकि वह पेशावर पर अपना कब्जा करने जा रहा था। अन्त में वह निराश होकर खैबर की ओर भाग गया।

इसके बाद महाराज ने अपने राजकुमार शेरसिंह और तारासिंह को फौजे देकर देश जात और हजारे के इलाके को विजय करने के लिये भेजा। यहाँ के इलाकेदार मुहम्मदखान की अपील पर हजारों मुसलमान उसके इलाके की रक्षा के लिये इकट्ठे हो गये। किन्तु लड़ाई में मुहम्मदखां मारा गया। उसके बेटे ने निराश होकर पिचहत्तर हजार रुपया नजराने के देकर सन्धि कर ली और अपने को लाहौर दरबार का खिराज गुजार स्वीकार कर लिया। दोनों राजकुमार मय सेना के लाहौर लौट आये।

मुलतान की कर वसूली का ठेका महाराज ने श्यामसिंह पेशावरिया को साढे छः लाख सालाना पर दे रक्खा था। फौजी प्रबन्ध महाराज के सेनापति ही करते थे। पेशावरिया ने लोगों को एक ही बार की उगाही में इतना तंग किया कि वहाँ की प्रजा त्राहि-त्राहि कर उठी। सन् १८१७ में जब महाराज मुलतान पधारे हुये थे, तो उनके सामने शिकायतें आईं। महाराज ने पेशावरिया को तो कैद कर लिया और भाई बदनहजारी को वहाँ का सूबेदार नियुक्त करके खत्री सावनमल को माल अफसर बना दिया। इसी साल जमादार रामदयालसिंह ने डेरागाजीखां को भी जो कि अमीर काबुल की मातहती में था। विजय कर लिया।

मुलतान में ही महाराज को खबर मिली कि उनकी दो रानियों से दो बच्चे पैदा हुये हैं। उनके नाम मुलतानसिंह और काश्मीरासिंह रखे गये। क्योंकि मुलतान और काश्मीर की विजय के उन दिनों कार्य चल रहे थे। मुलतान विजय हो चुका था। काश्मीर करना था। यहाँ यह भी खबर मिली कि

हजारा, तिलखी, घतूडा और तिखला के मुसलमानों ने भाई मक्खनसिंह को विद्रोह करके कत्ल कर दिया है। महाराज ने इस विद्रोह को दबाने के लिये दीवान रामदयाल और श्यामसिंह अटारीवाले को राजकुमार शेरसिंह को साथ देकर भेजा। इनके सिवा अहलूवालिया सरदार फतेसिंह और रानी सदाकौर भी साथ थे। रानी सदाकौर ने उद्दंडता को देखकर कबीले वालों को एक दम तबाह करने का हुक्म सिख सैनिकों को दिया। इस हुक्म के मिलते ही कत्लेआम आरम्भ हुआ जिसमे हजारों मुसलमान काम आये। आखिर तिखला और यूसफजई आदि अनेकों कबीलेवाले इकट्ठे हो गये। दीवान रामदयाल ने उन्ह खदेड़ना चाहा। सारे दिन लड़ाई हुई जिसमे दोनों तरफ के काफी आदमी मारे गये। दीवान रामदयाल बड़ी बहादुरी से लडाई की शाम को लडाई स्थगित हो जाने पर फौजों के लौटते समय हजारों मुसलमान दीवान रामदयाल पर टूट पडे। जिन सबसे जूझता हुआ वह काम आ गया।

रामदयाल के मारे जाने से महाराज को बड़ा रन्ज हुआ और उसके पिता दीवान मोतीराम को तो इतना रन्ज हुआ कि वह काश्मीर की सूबेदारी को छोड़कर काशी को चला गया। उधर रामदियाल के मारे जाने पर सिख सेनाओं ने भी इतना कोप किया और इतने पठानों को जमींदोज किया जिसके भय से उन्होंने खिराज देना स्वीकार कर लिया।

सन् १८२० ई० मे महाराज ने झेलम पार करके रावलपिंडी को जा दबाया और वहाँ के सरदार नन्दसिंह को खारिज करके दफ्तरी नानकचन्द को वहा का अफसर नियुक्त किया।

सन् १८२१ ई० के फरवरी महीने मे महाराज के युवराज खडगसिह जी के पुत्र जन्म हुआ। जिनका नाम नौनिहालसिंह रक्खा गया। इससे बड़ी खुशियाँ मनाई गई। इसी वर्ष कस्तवाड़ और फतहकोट को विजय करके अपने राज्य मं मिलाया। सरदार हरीसिंह नलुआ, मिश्र दीवानचन्द को महाराज ने भक्खर विजय के लिये भेजा। सरदार दिलसिंह और जमादार खुशालसिंह डेराइस्माईलखां की ओर गये। वहाँ के अफसर नानकराय को गिरफ्तार करके खान गिरान, लैया, पजगढ़, पर कब्जा करते हुए मुनकेरा पर घेरा डाला। नवाब हाफिजरहमत २४ दिन तक लड़ा हालांकि उसके यहाँ पानी का बड़ा कष्ट था। ऊटों पर लादकर दूर से उसके यहाँ पानी लाया जाता था। इस लड़ाई मे महाराज भी पहुँच गये थे। नवाब ने हार मान कर सधि कर ली। इस लड़ाई से २४ तोप और दस लाख का इलाका महाराज के हाथ आया। डेराइस्माईलखाँ नवाब रहमत खां के ही हाथ रहा।

काबुल के मुहम्मद नजीम की कार्यवाहियों को महाराज बड़ी सतर्कता से देख रहे थे। इसलिये उन्होंने उसे दड देने के लिये यही निश्चय किया कि भारत मे उसका जितना हिस्सा है। उसे जीत लिया जाय। सन् १८२३ ई० मे रोहतास मे उन्होंने अपनी सारी फौजे इकट्ठी कीं। आपने तो रावलपिन्डी की ओर कूच किया और फकीर अजीजुद्दीन को पेशावर यारमुहम्मदखां से खिराज वसूल करने के लिये भेजा। मुहम्मदयारखा ने नजराना दे दिया। अजीम को यह बात बहुत बुरी लगी और उसने अपने भाई से पेशावर छीन लेने के लिये इधर को भारी सेना के साथ कदम बढ़ाया। महाराज भी उससे निपट लेना चाहते थे। इसलिये उन्होंने शेरसिंह, हरीसिंह नलुआ और दीवान कृपाराम की मातहती मे एक बड़ा लश्कर पेशावर की ओर भेजा। इस सेना दल ने रास्ते मे जहाँगीराबाद को सबसे पहले कब्जे मे किया। मुहम्मद अजीम ने पठानों को धर्म युद्ध के नाम पर भडकाया। सीमांत के सभी प्रसिद्ध कबीले लड़ाई के लिये मैदान मे आ गये और नौशहरा मे इकट्ठे हो गये। महाराज ने दूसरी फौज खडगसिंह और दीवान चन्द की मातहती मे पहली फौज की मदद के लिये रवाना की। फिर खुद भी चल पड़े। मुहम्मद अजीम

खां, दोस्तमुहम्मद, जबरखां भी नौशहरा में आ पहुँचे। १२ मार्च को १५ हजार सवारों के साथ महाराज ने दरियाये अटक को पार किया। उस समय अटक बड़े जोरों पर थी। आप यह कह कर अपने घोड़े को पानी में घुसा ले गये "सबै भूमि गोपाल की यामें अटक कहाँ" बस आपके साहस करते ही सारे सवार घुस पड़े और वह लश्कर पार हो गया। नदी में इतना जोर था कि कई आदमी बह भी गये। तोपें हाथियों पर रखकर पार की गईं। उधर पठान भी बीस हजार से ज्यादा इकट्ठे हो चुके थे। दोनों ओर से जमकर युद्ध हुआ।

युद्ध आरम्भ हुआ। पठानों ने सिख जनरल सतगुरसहाय और महासिंह को गोली का निशाना बना दिया। सिख पठानों की मार से पहाड़ी के नीचे उतरने लगे। इस पर फूलासिंह अकाली ने अपने साथियों को ललकारा और वह भूखे भेड़ियों की भांति पठानों के गोल में घुस गया। उसने अपने दोनों ही हाथों से काम लिया किन्तु गाजियों के दल में चारों ओर से घिर जाने के कारण वह मारा गया। फूलासिंह के मारे जाने के बाद महाराज ने खुद युद्ध का सचालन किया। मिश्र दीवानचन्द ने तोपखाने को सभाला शाम तक बराबर रक्तपात होता रहा। आधे से अधिक गाजी मारे गये किन्तु वे अपने स्थान से तिल भर भी न हटे। इसके बाद गोरखों की पलटन को महाराज ने आगे बढाया और उनके पीछे सिखों का एक रिसाला खड़ा कर दिया। ताकि वे पीछे न हटें। पठान इस प्रकार की मार को न सह सके और वे भाग निकले। मुहम्मद अजीम इससे पहले ही गायब हो गया था। महाराज ने सेनाओं को आगे बढ़ाकर हस्तनगर पर कब्जा कर लिया और १७ मार्च को पेशावर पर अधिकार जमा लिया। पठान इस युद्ध में बुरी तरह बर्बाद हो गये थे। इससे सिखों ने अलग २ सैनिक दल बनाकर पेशावर के चारों ओर लूट खसोट आरम्भ कर दी। वे मारते पीटते खैबर तक पहुँचे।

पेशावर को विजय करने के बाद महाराज ने नीतमता पूर्वक यारमुहम्मद और दोस्तमुहम्मद को ही सवा लाख सालाना के नजराने पर दे दिया। उन्होंने उस समय महाराज को दो जोड़ी बढ़िया घोड़े नजर किये। जिन्हें पाकर महाराज बड़े खुश हुए।

२६ अप्रैल को महाराज वापिस लाहौर आ गये और इस विजय की खुशियाँ मनाईं। लाहौर और अमृतसर में खूब रोशनी की गई। इन्हीं दिनों तैमूरशाह का लड़का इब्राहीम लाहौर आया। जिसे महाराज ने बड़े सत्कार के साथ रक्खा।

सदा की आदत के अनुसार इसी वर्ष में पिलखी और धमतूर के कबीले बिगड़ गये। हरीसिंह नलवा ने जाकर उनका दमन किया और दमन भी भयकर। उसने इनके गाँव के गाँव जला दिये। जिससे आज तक भी अफगान उसे नहीं भूले हैं। इसके दूसरे ही वर्ष सन् १८२४ में हजारा के जमीदार भी बागी हो गये और महाराज के किलेदार अब्बासखाँ खटक को उन्होंने कैद कर लिया। हरीसिंह ने उनके मिजाज को भी दुरुस्त किया और अब्बासखाँ को जेल से छुडा कर उसकी जगह पर बहाल किया। इसी वर्ष बहावलपुर और मुनकेरा के नवाब मर गये। इसलिये महाराज ने २५-२५ हजार के नजराने लेकर उनके लड़कों को वारिस बना दिया।

काश्मीर की विजय मुल्तान और पेशावर से भी कहीं अधिक महत्व रखती है। उसके लिये लगातार बारह वर्ष तक उद्योग होते रहे तब कहीं काश्मीर जीता गया। इसलिये हम उसका स्वतन्त्र रूप से और एक स्थान पर यहाँ वर्णन करते हैं। इसीलिये बीच में उसके लिये होने वाले प्रयत्नों और युद्धों का वर्णन नहीं किया है। जिस तरह से काश्मीर महाराज के हाथ में आया और उसे प्राप्त करने के लिये जितनी लड़ाइयाँ

लड़नी पड़ीं पाठकों की सुविधा के लिये उनका संग्रह हमने इस स्थल पर कर दिया है।

जिन दिनों काश्मीर कावुल के अधीन था। उस समय वहाँ अतामुहम्मद सूबेदार था। अतामुहम्मद ने सन् १८१० ई० में शुजा की मदद करके उसके विरोधी भाई मुहम्मदशाह को हराया था। उसी साल दीवान मुहकमचद ने भम्मर और राजौर पर हमला किया। भम्मर के सुल्तानखॉ ने हारने पर लाहौर दरवार की अधीनता स्वीकार कर ली और ४० हजार नजराना दे कर मुहकमचंद से पीछा छुड़ाया। दूसरी ओर महाराज ने कैटाल मे गंगा का किला जीत लिया। उधर चूँकि मुहम्मदशाह फौज लेकर काश्मीर की ओर आ रहा था। इसलिये महाराज ने काश्मीर से अपनी फौजे हटा लीं और मुहम्मदशाह से दोस्ती कर ली।

भम्मर मे मुहकमचद ने सुल्तानखॉ की बजाय इस्माईल को नियुक्त किया था। किन्तु मुहकमचंद के पीठ फेरते ही उसने इस्माईल को निकाल दिया। महाराज को जब यह समाचार प्राप्त हुए तो उन्होंने कुँवर खड़गसिंह और भाई रामसिंह के साथ एक सेना भम्मर की ओर भेजी। पीछे से मुहकमचंद को भी रवाना किया। सुल्तान खॉ ने सिखों के पहले दल से तो ऐसी टक्कर ली कि उसे पीछे लौटना पड़ा किन्तु मुहकमचद के आने का समाचार सुनकर उसकी हिम्मत टूट गई और उसने सन्धि का प्रस्ताव पेश किया। मुहकमचंद उसे लाहौर ले आया जहॉ उसे कैद करके भम्मर के इलाके को लाहौर दरवार के आधीन कर लिया गया।

सन् १८१२ ई० में इस्माईलखॉ ने राजौरी के हाकिम अजीजखॉ के साथ मिल कर बगावत खड़ी कर दी। जिसे दवाने के लिये महाराज को खुद वहॉ जाना पड़ा। महाराज का इरादा था कि इस चक्कर मे काश्मीर को विजय कर लें किन्तु उन्हे खबर मिली कि लाहौर मे शाहशुजा आया हुआ है। इसलिये वे लाहौर वापिस आ गये।

इसी वर्ष कावुल का वजीर फतहखॉ अतामुहम्मद और उसके भाई जहॉदाद को सजा देने के लिये काश्मीर जा रहा था। उसे यह खयाल आया कि शायद महाराजा रणजीतसिंह की फौज काश्मीर के पहाड़ी रास्ता से भली प्रकार परिचित होगी। इसलिये लाहौर पहुँच कर उसने महाराज से फौज मांगी महाराज उसके साथ फौज भेजने के लिये इस शर्त पर तैयार हो गये कि लूट का तीसरा हिस्सा वह सिखों को देगा। दीवान मुहकमचद के साथ बारह हजार सैनिक देकर उसके साथ मदद के लिए भेज दिया। दोनों फौजे पृथक-पृथक रास्तों से काश्मीर पहुॅची। अतामुहम्मद भाग गया वजीर फतहखॉ ने शाहमहमूद के नाम पर काश्मीर पर कब्जा कर लिया और सिखो को एक कौड़ी भी न दी। दीवान मुहकमचद खाली हाथ लौट गया।

महाराज फतहखॉ की इस धोखेबाजी से इतने नाराज हुये कि उन्होंने उसी समय अटक के हाकिम जहॉदाद को एक पत्र लिखा कि राजी से किला खाली कर जाओगे तो सुरक्षित बाल बच्चों और अपने सामान के साथ जा सकोगे। वरना बिना राजी के भी अटक पर तो कब्जा किया ही जायगा। फकीर अजीजुद्दीन और दीवान देवीदास अटक का चार्ज लेने के लिये गये। बेचारा जहॉदाद घबरा गया और उसने किला खाली कर दिया। इतने ही समय मे वजीर फतहखॉ काश्मीर का चार्ज अपने भाई अजीज खॉ के सुपुर्द करके अटक की ओर आ पहुॅचा। अटक के पास ही खुजूर के मुकाम पर दोनों ओर से लड़ाई हुई किन्तु तब तक मुहकमचन्द भी मदद के लिये आ पहुॅचा था। वजीर और उसका भाई दोस्तमुहमद दोनों बड़ी बहादुरी के साथ लड़े किन्तु मुहकमचन्द के आगे उनकी पेश न गई। पठान सेनायें भाग निकलीं। पठानों पर सिखों की यह प्रथम शानदार विजय थी। यह घटना सन् १८१३

के जौलाई मास की है। इस जीत का उत्सव लाहौर में मनाया गया। महीने भर बराबर प्रमोद जारी रहे।

इसी साल के अक्टूबर में महाराज ने फिर काश्मीर पर चढ़ाई की तैयारी की। पहाड़ी राजाओं से खिराज वसूल करते हुये गुजरात के रास्ते से उनकी सेनायें काश्मीर में घुसीं। जब सेनाये भम्मर और राजौरी से गुजरती हुई ठढा मे पहुँची तो पता चला बहरामगिला का पुल मुसलमानों ने तोड़ दिया है और वर्षा की वजह से बिना पुल के पार होना एक दम असंभव था। क्योंकि नदी की सतह समतल थोड़े ही थी। उन्होंने राजौरी के सरदार से पूछकर दूसरे रास्ते से बहराम के किले पर तो कब्जा कर लिया किन्तु वर्षा की अधिकता से आगे नहीं बढ़े और वापिस लाहौर चले आये।

सन् १८१४ ई० मे महाराज ने फिर काश्मीर पर विजय पाने की इच्छा से तैयारी की और स्यालकोट में सारी सेनाओं को इकट्ठा किया। दीवान मुहकमचन्द की राय यह थी कि पहले राजौरी में रसद का काफी सामान इकट्ठा कर लिया जाय। तब काश्मीर पर हमला किया जाय। किन्तु उसकी राय पर ध्यान नहीं दिया गया। वह उस समय बीमार था। इसलिये उसने अपने लड़के रामदयाल को भेज दिया। राजौरी के हाकिम अगरखाँ ने महाराज को पूंछ के गलत रास्ते पर डाल दिया। सेना का दूसरा भाग रामदयाल और दूसरे सरदारों के अधीन था। जिनमे हरीसिंह नलवा और श्यामसिंह अटारीवाले भी थे, आगे भी रवाना हुआ। पीरपंचाल को पार करते हुये यह दल महापुर जा पहुँचा। यहाँ अजीमखाँ ने सामना किया किन्तु वह हार कर लौट गया। और अगले मुकाम शोपाम में सिख फौज को आगे बढने से रोक दिया। रामदयाल ने श्रीनगर के पास हट कर एक गाँव मे महाराज के आने की प्रतीक्षा में डेरा डाल दिये। उधर महाराज की फौज श्रीनगर की बजाय पूंछ जा पहुँची। वर्षा भी आ चुकी थी और रास्ता भी न मिला, अतः महाराज फिर लाहौर लौट आये। लाहौर लौट कर कुछ फौज भाई रामसिंह को देकर रामदयाल की सहायता को भेजा किन्तु वह भी बहरामगिल मे चक्कर खाता रहा। उसे रास्ता मिला ही नहीं।

रामदयाल को जब यकीन हो गया कि बिना महाराज के आये ही अब तो लड़ना पड़ेगा तो वह और उसके साथी इस प्रकार बहादुरी के साथ लड़े कि दो हजार पठानों को ठिकाने लगा दिया। रहीमखाँ को लाचार होकर सुलह करनी पड़ी और उसने महाराज की भेंट के लिये बहुत सा सामान दिया, जिसे लेकर रामदयाल वापिस लाहौर लौट आया। अब महाराज को दीवान मुहकमचंद की बात को न मानने पर पछताना पड़ा। यदि राजौरी मे रसद का सामान इकट्ठा किया हुआ होता तो इसी वर्ष मे काश्मीर पर कब्जा हो जाता। इसके कुछ दिनों बाद खबर मिली कि राजौरी और भम्मर के इलाकेदार भी बगावत पर उतर आये हैं। महाराज ने खुद अपने साथियों के साथ उस ओर का कूच किया। दीवान रामदयाल और सरदार दिलसिंह ने तुरन्त ही उन इलाकों में पहुँच कर विद्रोह को दबा दिया और राजोरी और कोटली पर अपना कब्जा कर लिया। इसके पास लगने वाला रामगढ़ियों का सारा इलाका भी इन सरदारों ने अपने कब्जे में कर लिया। यह समाचार काबुल पहुँच चुका था कि महाराजा रणजीतसिंह काश्मीर को विजय करने के लिये चल पड़े हैं। अत. वजीर फतहखाँ अजीमखाँ की मदद के लिये एक भारी सेना लेकर हिन्दुस्तान में आ गया। महाराज ने उसे अटकाये रखने के लिये दीवान रामदयाल को आज्ञा दी कि वह सराय काला पर अपना डेरा जमा दे और फतहखाँ को इधर न बढ़ने दे। महाराज इस आशंका से लाहौर लौट आये कि कहीं पठान इधर विजित प्रदेशों मे उपद्रव न कर दे।

इधर महाराज लाहौर से पच्छिम के प्रदेशों को जीतने और जीते हुए लोगों से नजराना वसूल

करने में अपनी शक्ति लगाते रहे। खजाने में भी इन दिनों में बीसियों लाख रुपया इकट्ठा किया।

अंग्रेज महाराज के बढ़ते हुए प्रभाव को बड़ी सतर्कता से देख रहे थे किन्तु वे उनके मार्ग में रुकावट पैदा नहीं कर सकते थे। उन्हें भी अपनी स्थिति का आखिर खयाल था।

सन् १८१८ ई० में लाहौर के नये सूबेदार जबरखां और उसके हिन्दू वजीर बीरधर में झगड़ा हो गया। बीरधर उसी वर्ष लाहौर में महाराजा साहब के पास आगया और उसने महाराज को काश्मीर विजय के तमाम तरीके बता दिये। महाराज ने इस बार अपने सैन्य दल को तीन भागों में विभक्त किया। मिश्र दीवान, कुँवर खड़गसिंह और महाराज स्वयं एक-एक भाग के सेनापति बने। दीवानचन्द ने सब से पहले राजोरी किले को अपने हाथ में लेना उचित समझा। क्योंकि काश्मीर की राजधानी पर कब्जा करने से पहले वह राजधानी के पास की मजबूत स्थान को अपने वश में करना उचित समझता था। राजौरी का हाकिम अगरजीतखां तो भाग गया। उसके लड़के रहीमखां ने सन् १८१९ के मार्च में किले की चाबी दीवान चन्द के सुपुर्द कर दी।

राजौरी पर कब्जा करने के बाद दीवानचन्द ने पुंछ पर हमला किया। वहाँ के हाकिम जबरदस्तखां ने आधीनता स्वीकार करली। यहां से पीर पंजाल होते हुए दीवानचन्द ने श्रीनगर की ओर प्रस्थान किया। तारीख १६ जून को सरायअली में बारह हजार सिख इकट्ठे होगये। तारीख ५ जौलाई को शोपियाँ के मुकाम पर जबरखॉं ने आकर सिखों का मुकाबिला किया। डटकर लड़ाई हुई। इतने में कुँवर खड़गसिंह और महाराजा रणजीतसिंह दोनों के दल आगये। पठान इन्हें देखकर मैदान छोड़कर भाग गये। जबरखां भी बहुत जख्मी हुआ। सिख सेनाओं ने बढ़कर राजधानी पर कब्जा कर लिया। सिपाही चाहते थे कि शहर को लूट लें किन्तु सेनापतियों ने इजाजत नहीं दी।

काश्मीर विजय के उपलक्ष में लाहौर लौटकर महाराज ने विजयोत्सव मनाया। तीन दिन तक लाहौर और अमृतसर में खूब समारोह रहा। इसी अवसर पर काश्मीर प्रबन्ध के लिये महाराज ने दीवान मुहकमचन्द के लड़के मोतीराम को काश्मीर का सूबेदार नियुक्त किया और पं० बीरधर को ५३ लाख रुपये सालाना में लगान उगाही का ठेका दे दिया। जवाहरमल को दस लाख रुपये सालाना पर शाल बनाने का भी इसी समय ठेका दिया। मोतीराम ने काश्मीर की सूबेदारी अधिक समय तक नहीं की। वह काशी जी को चला गया। अतः महाराज ने सरदार हरीसिंह नलुआ को जिन्होंने कि पिछले ही वर्ष दुर्रानियों को फतह किया था। काश्मीर के प्रबन्ध के लिये मुकर्रिर किया। सरदार हरीसिंह जितने बहादुर थे। उतने योग्य शासक नहीं थे। दीवान मोतीराम भी काशी से लौट आया था। अतः महाराज ने फिर मोतीराम को ही काश्मीर भेजा जिसने कि सन् १८२६ तक वहाँ का इन्तजाम खूबसूरती के साथ किया।

दीवान मोतीराम का सारा ही परिवार खालसा राज में अच्छे ओहदों पर मुकर्रिर था। उसका बड़ा लड़का जालन्धर पर और छोटा गुजरात पर गवर्नरी करता था। ध्यानसिंह इनसे जलता था। इसलिये उसने इन तीनों ही के खिलाफ महाराज के कान भरे और इन्हें नुकसान भी पहुँचवाया।

काश्मीर में महाराजा रणजीतसिंह जी के स्वर्गवास तक नौ हाकिमों ने हाकिमी की। विजय के बाद ही मिश्र दीवानचन्द के हाथ ही प्रबन्ध रहा था। जो कुछ ही महीने बाद बदल दिया गया। दीवान मोतीराम ने दोनों बार मिलाकर तीन साल तक प्रबन्ध किया। हरीसिंह नलवा ने दो वर्ष, दीवान चुन्नीलाल ने तीन वर्ष दस माह, भीमासिंह ने एक साल, कुँवर शेरसिंह ने दो साल दो माह और कर्नल मिहांसिंह ने सात साल चार दिन काश्मीर की हाकिमी की। इस २७ साला सिखों की काश्मीरी हकूमत के लिये मुहम्मद

दीन फौक ने अनेक मुसलमान तारीख लेखकों के आधार इस प्रकार वर्णन किया है :—

"सिख सिपाहियों ने काश्मीर में ऊधम मचाना शुरू कर दिया था। दीवान देवीदास ने महाराज के पास शिकायत भेजी कि काश्मीर का इंतजाम निहायत खराब है। झगडे-फिसाद जारी हैं और सिख परेशान हैं। महाराजा रणजीतसिंह जी ने हुक्म दिया कि दीवानचन्द लाहौर आ जाय और दीवान मोतीराम काश्मीर जाकर प्रबन्ध करे। दीवानचन्द महाराज को खुश करने के लिये काश्मीर से पचास लाख रुपया नकद सैकड़ों घोड़े ले गया। जो उसने जमींदारों से लिये थे। महाराजा रणजीतसिंह समझते थे कि दीवानचन्द एक बहादुर आदमी है शासक नहीं" इसलिये उन्होंने इतनी भेंट के बाद भी दीवानचन्द को काश्मीर की हाकिमी तो न दी किन्तु उसे 'जफरजंग बहादुर' का खिताब अवश्य दिया।

दीवान मोतीराम ने काश्मीर का चार्ज संभाला। वह एक मिलनसार और मेल पसन्द आदमी था किन्तु वीरधर उनके किए कराए पर पानी फेरता रहता था। 'फौक' लिखता है। "वीरधर ने मुसलमानों को बहुत तंग किया। वह पठानों से भी कठोर साबित हुआ। उसने मस्जिदों के दरवाजे बन्द करा दिये। अजा देना और गौकशी करना उसने कतई बन्द कर दिया। बहुत सी मस्जिदें खालसा में शामिल होगईं। एक संग दिल सिख फौलादसिंह नाम खानकाह मुहल्ला के अनहदाम पर भी आमादा होगया। किन्तु वीरधर ने झगडे की आशंका से उसे रोक दिया। ......जामा मसजिद के दरवाजे भी वीरधर के हुक्म से बन्द करा दिये गये। इन्हीं हालात की मोजूदगी में दीवान देवदास कश्मीर से लाहौर आया और वहां की कैफियत बयान की।'''' ....महाराज ने मोतीराम को वहां से बुलवा लिया और सरदार हरीसिंह को प्रबन्ध के लिये काश्मीर भेजा।"

पं० वीरधर के सम्बन्ध की यह शिकायत कहां तक झूठी है इस पर तो हमें कुछ नहीं कहना किन्तु वह मालियाना वसूल करने में बड़ा होशियार था। यह हम अवश्य जानते हैं। इसीसे खुश होकर महाराज ने उसे सन् १८२२ ई० में दशहरा के अवसर पर एक खिलअत—चोगा, कलगी, माला, कमखाब का दुशाला और सोने का कड़ा देकर सम्मानित भी किया था।

सरदार हरीसिंह ने काश्मीर पहुँचकर सबसे पहले तो सिर फिरे लोगों को ठीक किया। इसके साथ इर्दगिर्द के इलाकों पर भी अधिकार जमाया। बारामूला के मुसलमान जमींदारों के साथ उसे लड़ाई भी लड़नी पड़ी। क्योंकि वे मालियाना देने से कतई बरी रहना चाहते थे। उसने खल्ला और बीमा के गुलामअली को भी काबू में कर लिया जोकि एक बड़ा उद्दंड मुसलमान जागीरदार था। इसके बाद हरीसिंह ने पखली और धमतोर के इलाके भी कब्जे में कर लिये पूंछ और राजौरी के हाकिम खिराज नहीं देते थे। उन्हें भी हरीसिंह ने खालसा राज्य में मिला लिया। इन खबरों को सुनकर महाराजा रणजीतसिंह बडे खुश हुये।

'वीरधर' की फिर भी शिकायतें जारी थीं। इसलिये महाराज ने उसे हिसाब दिखाने के लिये लाहौर बुलाया। उसका हिसाब निहायत साफ निकला। इससे महाराज बडे खुश हुये और वीरधर को उन्होंने एक हाथी मय जंजीर के और बहुत सा इनाम दिया। उसका ओहदा भी बढ़ाने का इरादा जाहिर किया किन्तु कुछ ही दिनों में उसके ऐसे पत्र पकडे गये जो वह पहाड़ी राजाओं को उभारने के लिये लिखा करता था। अत: महाराज ने उसे उस स्थान से अलग कर दिया। सरदार हरीसिंह से काश्मीर के मुसलमान एक दम से नाराज हो गये और उन्होंने कुछ हिन्दुओं को भी अपने साथ मिलाकर सरदार हरीसिंह की शिकायत कराई। इसलिये महाराज ने फिर उस जगह मोतीराम को ही भेज दिया और हरीसिंह को वापिस बुला

लिया। मोतीराम का कुछ ही समय बाद लडका मर गया। अतः वह काश्मीर से वापिस आगया।

मोतीराम की वापिसी पर महाराज ने कश्मीरी की सूबेदारी दीवान चुन्नीलाल को सौंपी और किलेदारी और तहसीलदारी सरदार गुरमुखसिंह को बख्शी। लेकिन थोडे ही दिनों बाद यह आपस में तनातनी मे लग पडे। इससे इतजाम और वसूली दोनों को हानि पहुंची। इनके दो वर्ष के प्रबन्ध में खराबी ही खराबी पैदा हुई। इसलिये महाराज ने इन दोनों को मौकूफ कर दिया और लाहौर बुला लिया।

दीवान चुन्नीलाल के बाद महाराज ने कृपाराम को जोकि मोतीराम का ही लडका था। काश्मीर मे प्रबंध के लिये मुकर्रिर किया। कृपाराम ने वहाँ के मुसलमानों को भी वना लिया। वसूलयाबी में गुलामउद्दीन नाम के एक शख्श से मदद लेता। इससे मुसलमान नाराज नहीं हुए। कृपाराम ने श्रीनगर को तरक्की देने के काम भी किये। भूकम्प के समय उसने मालगुजारी माफ कराई। गरीबों को मदद पहुँचाई। कई बाग और बगीचे लगवाये जिनमे रामबाग काफी मशहूर है।

राजा ध्यानसिंह की साजिशे कृपाराम के खिलाफ बराबर चल रही थीं। महाराज ध्यानसिंह की बातों पर ध्यान भी देते थे। कुछ कृपाराम से भी गलतियाँ हुई। इसलिये उन्होंने कृपाराम को काश्मीर से हटा लिया और भीमासिंह को मुकर्रिर किया।

सरदार भीमासिंह जिन दिनों काश्मीर पहुँचे। वहाँ काफी उपद्रव उठ खडे हुए थे। जबरदस्तखां ने कई जागीरदारों को भड़का रक्खा था। भीमासिंह ने महाराज को लिख कर सहायता मंगाई और पहले तो ऐसे लोगों को ठीक किया। फिर बाद में शांति स्थापना के कार्य किये किन्तु मुसलमान जमींदार उनसे राजी न रह सके। उन्होंने काफी शिकायतें भीमासिंह की महाराज के पास भेजीं। समय पर रुपया भी लाहौर नहीं पहुँचा। इसलिये महाराज ने भीमासिंह को विवश होकर काश्मीर से हटा लिया और कुंवर शेरसिंह को वहाँ भेजना पडा।

कुंवर शेरसिंह के लिये 'फौक' ने लिखा है। "कुंवर शेरसिंह चाहे कितने ही अच्छे और बहादुर हों पर आखिर राजकुमार थे और वह काश्मीर की मस्ती में भूल गये"। उन्होंने अपने अधिकार विशाखासिंह को सौंप दिये और आप रंगरेलियों मे डूब गये। विशाखासिंह ने मालगुजारी वसूल करने मे सख्ती से काम लिया। लोगों को लगान न देने की आदत तो काफी थी। विशाखासिंह की सख्तियों से वह एक दम उसके दुश्मन हो गये। वीरधर के भाई गनेश पडित ने भी मुसलमान जमीदारों की तरह सरदार विशाखासिंह की महाराज से बुराइयां की। इससे महाराज ने नाराज होकर विशाखासिंह को हटा दिया और जमादार खुशालसिंह को शेरसिंह का सहयोग देने के लिये मुकर्रिर कर दिया और आप भी कुछ दिन राजौरी आदि इलाकों का दौरा करते रहे।

अत मे काश्मीर का कुल प्रबन्ध मिंहासिंह कुमेदान को सौपा गया। जिसने बड़ी खूबी से लगातार सात साल तक प्रबन्ध किया। उसने बड़ी-बड़ी रकमे मालिकाने और खिराज की वसूल करके ठीक समय महाराज के पास भेजीं। मिंहासिंह जी के अच्छे शासन के सम्बन्ध मे वहाँ पर अनेकों कहावते और दन्त कथायें अब तक सुनी जाती है। उनमे से दिलचस्प होने के कारण दो कथाये हम यहाँ देते हैं। (१) वहां लोगों ने एक पेड़ का काटना शुरू किया। उस पर कौवे का घोंसला था। कौवा कांव-काव करता हुआ सरदार मिंहासिंह के महल के पास पहुँच गया। उसकी कांव-कांव की तरज से सरदार मिंहासिंह ने अनुमान किया कि इसको किसी ने सताया है। उन्होंने एक सरदार को हुक्म दिया कि जाओ इस कौवे के पीछे पीछे जाकर जंगल में देखो, इसे किसने सताया है। कौवा उड़ गया। सवार भी उसे देखता हुआ जगत में

हुँचा। वहां जाकर देखा कि कौवा एक पेड़ पर बैठ कर चिल्लाने लगा जिसे कि बढ़ई काट रहे थे। सवार पेड़ काटना बन्द कर दिया। (२) दो रईस थे पड़ौसी-पड़ौसी। दोनों एक-एक घोडी थी। एक की ोड़ी ने बछेडा दिया। वह दोनों घोडियों के नीचे जाकर उनके स्तन चूसता रहता। प्रकृति के नियमाुसार दूसरी घोडी के भी दूध उतरने लगा। बछेडा अच्छा था। अब तो उस रईस की नियत बिगड़ ई। यह कहने लगा बछेडा मेरी ही घोडी का है। मामला बढ़ते-बढ़ते सरदार मिहांसिंह के पास पहुँचा। ।नों ने कहा मेरी घोड़ी इसे पिलाती है और इसीलिये पिलाती है कि मेरी घोड़ी ने इसे जन्म दिया है। सरदार मैंहासिंह उन्हे नदी किनारे ले गये। घोडियों को तो किनारे पर खडा कर दिया और बछेडे को नाव मे चढ़ा देया। बछेडा नदी के बीच मे पहुँच कर घबराहट से हिनाहिनाया। किनारे पर खडी हुई घोडियों मे से क तो किनारे पर ही हिनहिनाती रह गई और एक पानी को चीरती हुई बछेड़े के पास पहुंच गई। फैसला हो गया। सभी लोगों ने सरदार मिहांसिंह के इन्साफ की प्रशसा की।

गर्ज यह कि जनरल मिहांसिंह जी का बहुत ही अच्छा प्रबन्ध रहा। जैसा पिछली कई सदियों से काश्मीर निवासियों को देखने में नहीं आया था।

काबुल का अमीर दोस्तमुहम्मद इस बात के लिये प्राणपण से चेष्टा कर रहा था कि शाहशुजा की हुकूमत फिर से काबुल मे न जमने पाये। एक ओर उसका यह प्रयत्न था। तो दूसरी ओर वह यह भी चाहता था कि पेशावर सिख साम्राज्य मे न रह कर काबुल के नीचे आ जाय। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह सरहद के मुसलमान रईसों मे सिखों के खिलाफ प्रचार भी करा रहा था। इसका फल यह हुआ कि सन् १८३४ ई० मे दिलासाखा ने बन्नू के इलाके मे उपद्रव खड़ा कर दिया। दिलासाखां को उम्मीद भी थी कि दोस्तमुहम्मद उसकी मदद करेगा और वह खड़ा भी दोस्तमुहम्मद के संकेत पर ही हुआ था। उसके विद्रोह को दबाने के लिये सरदार शामसिंह और बख्शी तारासिंह ने तैयारी की और गढ़ी नामक स्थान पर उसे जा दबाया। दिन के मुहासरे के बाद रात के समय जब कि सिख सेना सो रही थी। पठानों ने हमला कर दिया। जिसमे कई सौ आदमी मारे गये। इस नुकसान के कारण शामसिंह और तारासिंह ने हट जाने की तैयारी की किन्तु इसी समय मे राजा सुचेतसिंह सिख सेनाओं को लेकर पहुँच गये। दिलासाखा के हौसले पस्त होगये और उसने अपने अपराध की माफी माग ली।

पेशावर

अब तक पेशावर और उसके आस पास के इलाके महाराजा रणजीतसिंह जी के माडलिक थे। वहीं के पठान वहाँ के स्थानीय हाकिम थे किन्तु इस घटना के बाद महाराजा साहब ने पेशावर और उसके पास के उन समस्त इलाकों पर कब्जा कर लेना निश्चय कर लिया जो कि भारत के अन्दर और अफगानिस्तान की सीमा से इधर की ओर थे। ऐसा किये बिना इस बात का अन्देशा हर समय रहता था कि न जाने कब इन प्रदेशों के हाकिम काबुल से अपना सम्बन्ध जोड लें।

इन दिनों सरदार हरीसिंह नलवा यूसफजई इलाके मे थे। उन्हें महाराज ने आज्ञा पत्र भेजा कि कुँवर नौनिहालसिंह के साथ मिलकर पेशावर पर कतई कब्जा कर लो। अप्रैल के महीने मे यह सेनायें पेशावर पहुँच गई। इतने सिख दल को देखकर पेशावर का हाकिम घबरा गया। वह अब तक के बाकी खिराज का बहुत सा अंश और अनेक प्रकार के तोहफे लेकर कुंवर नौनिहालसिंह की सेवा मे हाजिर हुआ। कुंवर नौनिहालसिंह ने खिराज की रकम तो रख ली किन्तु भेट में आये हुये घोड़े और सारा सामान वापिस कर दिया। इस रवैये को देखकर सुलतान महमूद हाकिम पेशावर और अन्य पठान सरदार

घबरा गये। उन्होंने समझ लिया कि हमारा झुठावा अब अधिक काम नहीं दे सकता है। अतः उन्होंने अपने स्त्री बच्चों को मय जरूरी और कीमती सामानो के काबुल की ओर रवाना कर दिया।

सरदार हरीसिंह ने भी पठानो की तरह ही एक चाल चली उन्होंने महमूद के पास खबर भेजी कि कुंवर नौनिहालसिंह कल सवेरे भीतर घुस कर सैर करना चाहते है। हाकिम वास्तविक बात को पहले ही समझ गया था। अतः रात को ही अपने प्राण लेकर पहाडों मे भाग गया। प्रातः सिख सेनाओं ने किले पर अपना अधिकार कर लिया।

पेशावर पर सिखो का कब्जा हो गया किन्तु महाराजा रणजीतसिंह जी निश्चित नहीं हुये। वे बराबर पेशावर की ओर फौजे भेजते रहे क्योकि वे खूब जानते थे। जब भी और किसी भी तरह पठानों का मौका लगेगा, पेशावर पर आक्रमण करेंगे। पेशावर तब तक सुरक्षित नहीं है। जब तक कि पठानों की शक्ति क्षीण न हो जाय और उन्हें लड़ाई मे एक भारी जन-धन का घाटा न उठा लेना पडे। बहुत कुछ सैनिक दल भेजने के बाद उन्होंने कुछ ही दिनों बाद खुद भी पेशावर की ओर कूच कर दिया।

उधर दोस्तमुहम्मद रईस काबुल को जब यह खबर लगी तो बड़ा चिन्तित हुआ। उसने अंग्रेजों को लिखा कि आप अपना प्रभाव डालकर महाराजा रणजीतसिंह जी से पेशावर उसके हाकिम सुलतान महमूद को वापिस करा दीजिये। अंग्रेज दिल मे तो यह नहीं चाहते थे। कि महाराजा रणजीतसिंह जी का प्रभाव बढ़ जाय किन्तु उस समय इतनी शक्ति भी नहीं रखते थे कि उस संधि के वे खिलाफ कुछ कर सकें। जो महाराज को उत्तर पच्छिम में राज्य बढ़ाने की इजाजत देती थी। अंग्रेजों के यहाँ से सहायता देने मे असमर्थता के जवाब से दोस्तमुहम्मद को दुख अवश्य हुआ किन्तु वह निराश नहीं हुआ। उसने जबरखां को ईरान के बादशाह के पास भेजा कि वहॉ से एक बड़ी सेना लाओ। इधर उसने अपनी सेनाओ को तैयार किया और जलालाबाद आ पहुँचा। जलालाबाद से फौजे लेकर उसने पेशावर की ओर कूच किया। इस समय ईद आ चुकी थी। इसलिये 'अली बागान' मुकाम पर उसने ईद मनाई और घुटने टेक कर खुदा से दुआ की "ऐ परविरदगार मुझ मक्खी की इस सिख हाथी से रक्षा कर।" रास्ते में उसने मजहब के नाम पर पठानों को उभाड़ कर और भी लोग बढ़ा लिये। खैबर को पार करके उसने सिक्तान नामक स्थान पर डेरा डाले और अपनी सेनाओ का निरीक्षण किया तथा उचित हिदायते भी दीं।

उधर महाराजा रणजीतसिंह जी भी पेशावर आ पहुँचे थे किन्तु न तो वे अभी तक अपनी सेना के मोरचे बाध सके थे और न उचित हिदायते ही दे सके थे। इसलिये दोस्तमुहम्मद को दस पाच दिन अटकाये रखने के लिये उसके साथ महाराज ने सुलह के पैगाम भेजना और जवाबों पर विचार करना शुरू कर दिया।

दोस्तमुहम्मद चकमे मे आ गया और वह अपने बल पर अभिमान भी करने लगा। इस प्रकार वह असावधान रहा और जो लड़ाई के लिये उसे करना चाहिये था। उससे लापरवाह हो गया।

महाराज ने अपनी सेनाओ का अर्द्ध व्यूह बनाया। उन्हे पाच भागों में विभाजित करके इस प्रकार से लगाया कि सेनाओ का अर्द्ध चन्द्र बन गया। दोनों बाजुओं पर सामने रिसाला इनके पीछे पैदल और फिर रिसाला। बाजुओं से शत्रु पर सवार आक्रमण करे और उनके स्थान पर पैदल पहुँचकर तैयार रहे। सामने के सवार उसे आगे बढ़ने से रोकें। दाये बाये बाजुओं के सेनापति फकीर अजीजुद्दीन और मि० हारसैन को मुकर्रिर किया।

जब दोस्तमुहम्मद ने इस प्रकार अपने को घिरा देखा तो वह घबरा गया। उसे पूरा निश्चय

हो गया कि मेरी जीत असंभव है। अत उसने भी एक चाल चली। अपने भाई सुलतान महमूद के जरिये फकीर अजीजुद्दीन और हारमैन को सन्धि सम्बन्धी कुछ ऐसी बातें तय करने के बहाने से बुला लिया। जिनसे कि पेशावर पर बिना ही रक्तपात के सर्वतन्त्र महाराजा रणजीतसिंह जी का मान लिया जाता। ये दोनों ही सेनापति उसकी चाल में आकर उनके डेरे में चले गये जहाँ उन्हे कैद कर लिया। दोस्तमुहम्मद उन्हे अपने भाई सुलतान महमूद के हवाले करके खुद भाग गया। उसने चलते समय फकीर अजीजुद्दीन से कहा था काफिर के साथ दगा करना मैं धर्म समझता हूँ। तुम एक गैर मुस्लिम की मदद करते हो, इसलिये काफिर ही हो।

सिख सेना ने जब देखा कि यह दगा हुई तो वह बाज की तरह झपट कर अमीर के डेरो पर पडी। पठानों की लाश पर लाश बिछाकर सेनाओं ने अपने नायकों को छुड़ा लिया।

काबुल में जब यह खबर दोस्तमुहम्मद को लगी कि वे दोनों सेनापति उसके भाई से छुड़ा लिये गये हैं तो उसे बड़ा रन्ज हुआ और हाथ मल कर रह गया। किन्तु बेचारा अब कर क्या सकता था।

दोस्तमुहम्मद के भाग जाने पर महाराज ने पेशावर किले की मरम्मत कराई और वहाँ का प्रबंध सरदार हरीसिंह नलुआ के हाथ छोड़कर आप लाहौर चले आये।

कहा जाता है कि महाराजा रणजीतसिंह जी के एक सेनापति सरदार जोरावरसिंह ने सन् १८३४ के मध्य में लद्दाख और तिब्बत के प्रदेशों तक धावा किया था। जोरावरसिंह ने महाराजा साहब को यह भी कहा था कि यदि आप आज्ञा दें तो मैं चीन तक धावा मार सकता हूँ किन्तु महाराज ने उसे हँसकर ऐसा करने से रोक दिया।

पेशावर में रहते हुये सन् १८३७ ई० की सर्दियों में सरदार हरीसिंह जी ने जमरूद को भी जीत लिया और वहाँ पर अपने पोषक पुत्र महासिंह को मुकर्रिर कर दिया। जमरूद के सिखराज्य में मिल जाने से पठानों को बड़ा दुख हुआ। दोस्तमुहम्मदखाँ तो इतना दुखी हुआ कि उसने इश्तहार निकलवा दिया कि हमारा दीन सिखों की वजह से खतरे में है। हमे इनका सयुक्त मोर्चे से मुकाबला करना चाहिये। हाजी अब्दुलरजाक दस हजार मुलखे पठान लेकर जमरूद पर चढ़ आया। दोनों ओर से काफी लड़ाई हुई। जिसमें सिख भी काफी काम आये क्योंकि रात के समय उन पर पठानों ने अचानक छापा मारा। फिर भी वे लोग हरीसिंह के सामने ठहर न सके और भाग गये। सरदार हरीसिंह पेशावर लौट आये। जमरूद में उनके लड़के की कमान में ही एक सेना उसके प्रबन्ध के लिये छोड़ दी गई थी।

सरदार हरीसिंह तो लौट कर पेशावर चले गये किन्तु इतने ही समय में दोस्तमुहम्मद खैबर दर्रे को पार करके आगया और उसने जमरूद का घेरा दे लिया। महासिंह भी हिम्मत के साथ लड़ता रहा। उसने अपने पिता के पास पेशावर भी इस अमर की सूचना देदी। अमीर काबुल ने महासिंह से किला खाली करने को बहुत कहा किन्तु महासिंह ने किला हर्गिज खाली नहीं किया। हालाकि रसद का सामान किले में बीत चुका था। पानी का भी बड़ा घाटा था किन्तु वह घबराया नहीं। आखिर दोस्त मुहम्मद ने अपनी अपनी सारी शक्ति लगा कर किले की एक दीवार को तोड़ दिया। पठान फिर भी किले में घुसने से हिचकने लगे। महासिंह ने भी अपनी सारी ताकत उधर ही लगा दी। ज्योंही पठान उधर से आगे बढ़े। महासिंह के सैनिकों ने बन्दूकों और तोपों से उनके सीनों पर गोले गोलियों की ऐसी वर्षा की कि पठानों का दल वापिस लौट पडा। उन्हें भारी हानि उठानी पड़ी। दोस्तमुहम्मदखाँ इस बात से भी खुश था कि चलो किले की दीवार तोड़ तो दी गई है। प्रवेश आज न सही कल हो जायगा।

किन्तु इतने में ही सरदार हरीसिंह अपने दल बल सहित आ गया। अब दोनों ओर से जान हथेली पर रख कर युद्ध हुआ। आखिर पठानों के पॉव उखड़ गये। सरदार शेरसिंह ने उनका पीछा किया और अली मस्जिद तक उन्हें खदेड़ा। पठानो की १४ तोपे और बहुत सारा सामान उनके हाथ लगा। इस लड़ाई मे सरदार हरीसिंह सख्त जख्मी हुये। उनके साथी उन्हे हाथी पर बिठा कर जमरूद ले आये।

उनके बेटे महासिंह ने इस समय भी बड़ी चतुराई से कार्य लिया। उसने लाहौर तो खबर भिजवा दी कि सरदार हरीसिंह का अत्यधिक गहरे घावो के कारण देहान्त हो गया किन्तु अपने सैनिकों को इस बात का उस समय तक पता नहीं चलने दिया जब तक कि लाहौर से सेना और सेनापति न आ गये। क्योंकि वह समझता था सैनिकों का साहस टूट जायगा और इलाके में यह खबर फैल गई तो पठान टिड्डी दल की भॉति जमरूद को घेर लेंगे।

महाराजा रणजीतसिंह जी ने जब यह समाचार सुना तो वे स्तब्ध रह गये और एक दम उनकी ऑखों से ऑसू निकल पड़े। वास्तव में सरदार हरीसिंह एक अनुपम वीर थे और साथ ही स्वामि भक्त भी वे पूरे थे।

सरदार हरीसिह का बड़ा धूमधाम से अन्त्येष्टि संस्कार किया गया। जिसमे सिख दरबार के सभी सरदार शामिल हुए। इसके बाद महाराज के हुक्म से राजा दयालसिंह की देख रेख मे जमरूद के इलाके मे एक और किला बनाया गया। इस किले के बनाने में समस्त सिख सेना और सरदारों ने अपने हाथ से मिहनत की। इस किले का नाम फतहगढ़ रक्खा गया।

जमरूद का प्रबंध राजा गुलाबसिंह और जनरल उटेवल साहब को सौंपकर महाराज लाहौर वापिस आ गये। जहॉ उन्होंने नैपाल दरबार से आये हुये तोहफे स्वीकार किये।

इसी साल भादों के महीने मे खबर मिली कि मुल्तान मे पठान विद्रोह करने की तैयारी कर रहे है। रजियाला नाम के गॉव मे विद्रोही इकट्ठे हो रहे हैं। बैरामखां मजारी इनका नेता बना हुआ है। महाराज ने सावनमल को लिखा कि यह विद्रोह तुम्हारी ही लापरवाही से होगा। अत. इसे इसी समय न दबाया गया तो इसके जिम्मेवार तुम होगे। सावनमल इस हुक्म के पहुँचते ही सेनायें लेकर संदिग्ध इलाके में पहुचा। और विद्रोह को दबा दिया। इस उपलक्ष मे महाराज ने उसे बहादुर का खिताब दिया। सावनमल ने मजारियो के रोजान और कान नामक स्थानों पर भी कब्जा कर लिया। यह घटना सन् १८३६ ई० की है।

सन् १८३७ ई० मे ईरान का बादशाह मर गया। काबुल के अमीर दोस्तमुहम्मद को उससे हर समय मदद की आशा रहती थी। उसने देखा कि अब बिना रूस से दोस्ती किये काम नहीं चलेगा। आखिर कोई भी तो मददगार चाहिये ही। उसका ऐसा भी खयाल था कि रूस से दोस्ती जोड़ कर सिखों को दबाया भी जा सकेगा। अत. उसने रूस के साथ पत्र व्यवहार करना आरम्भ कर दिया। अंग्रेज इस बात को कतई पसंद नहीं करते थे कि हमारे सिवा अन्य किसी भी यूरोपियन शक्ति का प्रभाव भारत की ओर बढे। इसलिये वे यह भी पसद नहीं करते थे कि भारत का पड़ौसी अफगानिस्तान रूस से दोस्ती पैदा करे।

शाहशुजा को सहायता

पहले तो उन्होंने दोस्तमुहम्मद को समझाया किन्तु मामला बनता न देखकर उन्होंने दोस्तमुहम्मद को काबुल की गद्दी से हटा देना ही मुनासिब समझा किन्तु अकेले उन्हे यह काम कठिन दिखाई देता था अतः महाराजा रणजीतसिंह जी के पास मि० मैकनाटन बारनिस को इस सम्बन्ध मे बातचीत करने के

लिये भेजा। जिसने महाराजा के सामने काबुल की गद्दी से दोस्तमुहम्मद को हराकर शाहशुजा को बिठाने का प्रस्ताव रक्खा। राजा ध्यानसिंह इस पक्ष मे नहीं था कि काबुल पर चढ़ाई करने में हम लोग अंग्रेजों का साथ दे किन्तु महाराज राजी हो गये। सिख सरदारों ने महाराज के सामने यह बात रक्खी कि काबुल पर चढाई तो की जाय किन्तु अंग्रेजों की कोई मदद न ली जाय। लेकिन बात महाराज की रही।

इधर महाराज ने शाहशुजा के साथ बातचीत करना शुरू किया। उसने लिखा कि मैं दो लाख रुपया और पचास घोड़े[1] सालाना महाराज को इस एहसान के एवज में अपनी जिन्दगी भर देता रहूँगा। यह बात अंग्रेजों की मर्जी के विरुद्ध थी क्योंकि वे सिर्फ जलालाबाद महाराज को दिलाना चाहते थे। किन्तु अब इस तरह समझौता हो जाने पर वे कर भी क्या सकते थे। नवम्बर में अंग्रेजी सेनायें फीरोजपुर में इकट्ठी हुईं। महाराजा रणजीतसिंह और जनरल आकलेण्ड की यहीं मुलाकात हुई।

शाहशुजा, अंग्रेज और सिखों की लगभग अठारह हजार संयुक्त सेना ने अफगानिस्तान की भूमि पर ज्यों ही कदम रक्खा। दोस्तमुहम्मद काबुल को छोड़कर भाग गया। दुर्दान्त पठानो के मुल्क में इस प्रकार सिखों का सहज ही दबदबा बैठ गया। कहा जाता है शाहशुजा बराबर महाराज के पास निश्चित भेंट भेजता रहा।

सन् १८३६ ई० में महाराजा रणजीतसिंहजी का अंतिम समय आगया। लकवे से उनका शरीर सुन्न होगया। हालत यह हुई कि उन्हें बोलने चालने में भी कठिनाई होने लगी। इशारों से राज्य कार्य में सहायता देने लगे। बहुत इलाज कराया गया किन्तु जब आराम होने की कोई सूरत दिखाई नहीं दी तो उन्होंने अतिम समय जान कर बड़ा दान पुण्य करना आरम्भ कर दिया। हजारों रुपये प्रति दिन कंगालों को बांटे जाने लगे। पच्चीस लाख रुपये की सम्पति और बाईस लाख नकद साधु, फकीरों, धर्मशालाओं, गुरुद्वारों और अन्य धार्मिक संस्थाओं को दिये गये। कहा जाता है। इस प्रकार एक करोड़ रुपये का दान पुण्य हुआ। महाराज की इच्छा थी कि कोहनूर हीरे को भी अमृतसर के हरिमंदिर जी के लिये दान कर दे किन्तु तोशाखाने के अधिकारी बेलीराम ने अड़ंगा डाल कर इस इच्छा को पूरा नहीं होने दिया।

अंतिम समय

१८३६ ई० की २७ वीं जून को महाराज इस संसार मे प्रस्थान कर गये। उनके शव को पलंग से उतारने के लिये दस हजार रुपयों का एक चबूतरा बनाया और दस हजार के शाल उन रुपयों पर बिछाये गये। उन पर महाराज के शव को रख कर जनता को उनके अंतिम दर्शन कराये गये। सारा लाहौर उनके शव-दर्शन को उमड़ पड़ा। शोक और मातम की घटाये छा गईं।

किले के बाहर रावी के तट पर[2] उनका संस्कार किया गया। उनके साथ उनकी कई रानियां सती भी हुईं।

आज कल वह समाधि जो महाराजा साहब की भस्मी के फूल चुन कर बनाई गई थी महाराजा रणजीतसिंह जी की समाधि के नाम से मशहूर है। जो विशाल गुरुद्वारे की चहार दीवारी के भीतर है। जहाँ अनेकों दर्शनार्थी प्रति वर्ष पहुँच कर उस समाधि पर अपनी श्रद्धांजलि चढ़ाते हैं।

१. इसके अलावा सात फार्सी टट्टू, ग्यारह फारसी तलवार, पच्चीस अच्छे खच्चर, एक सौ एक फारसी कालीन फल, मेवा, साटन के थान आदि भी उसने प्रतिवर्ष देना स्वीकार किया था।

२ उन दिनों रावी वहीं तक हिलोरें लेती थी।

महाराजा रणजीतसिंह पर एक सरसरी दृष्टि

महाराजा रणजीतसिंह जी एक अनवरत योद्धा थे। बालकपन से ही उन्हें लड़ाइयों मे उतरना पड़ा और जीवन के अन्तिम वर्ष तक उन्हें लडना पड़ा। भारत मे उनका वही स्थान है जो यूरोप मे नैपोलियन और सिकन्दर महान का है। एक साधारण स्थिति के सरदार के घर मे जन्म लेकर वे राजा ही नहीं महाराजा बन गये। उनके प्रताप की धाक भारत से बाहर फ्रांस, रूस और इंगलेंड तक पहुँच चुकी थी। उनके नेतृत्व मे सिखों ने वह बात करके दिखाई थी, जो पिछले एक हजार वर्ष के बाद किसी ने नहीं दिखाई थी। काबुल तक दुर्दान्त पठानो को उनके ही समय मे खदेड़ने की भारत देश ने शक्ति प्राप्त की थी। एक दिन था कि काबुल का ताज उनके हाथ मे था जिसे वे चाहते, बादशाह बनाते। महाराजा कनिष्क के बाद भारत के इतने बड़े भू-भाग पर महाराजा रणजीतसिंह का ही प्रभुत्व रहा था।

बुद्धि उनकी विलक्षण थी। कब किसका किस प्रकार उपयोग करना है ? इस बात को वे खूब जानते थे। राज्य के बढ़ाने और अनेक सहायक पैदा करने के लिये उन्होने किसी मौके को नहीं चूका। उन्होंने अपने राज्य को बढ़ाने के लिये अनेकों छोटी-मोटी रियासतों को अपने अपने राज्यमे मिलाया और अनेकों से दोस्ती भी की। फतहसिंह अहलूवालिया को दोस्त बनाकर उस समय की स्थिति के अनुसार उन्होंने काफी लाभ उठाया था। रामगढ़िया और भंगी दोनों ही उनके विरुद्ध थे। कन्हैया लोगों के साथ उनका रिस्ता था अहलूवालियों से दोस्ती करली। इस प्रकार उन्होंने अपनी शक्ति बढ़ाकर अपने शत्रुओं का सहज ही मान मर्दन किया था। जो उनकी तीव्र बुद्धि का परिचायक है।

यद्यपि उनकी एक आँख चेचक मे जाती रही थी किन्तु उनके चेहरे पर अपूर्व तेज था। अंग्रेज लार्ड के यह पूछने पर कि महाराज किस आंख से काने हैं ? फकीर अजीजुद्दीन ने कहा था। "हम यह नहीं कह सकते। हमारी तो उनके प्रचंड तेजस्वी चेहरे की ओर देखने की भी हिम्मत नहीं होती है।' वास्तव मे उनका रौब ऐसा ही था। बड़े से बड़े खूंखार भी जब उनके सामने आते थे तो दहल जाते थे।

उनका ऐसा रौब था कि लोग उनसे थर-थर कांपते थे। राजा ध्यानसिंह, गुलाबसिंह आदि वजीर उनके सामने बैठने मे भी डरते थे, खड़े होकर बातें करते थे। किन्तु महाराजा रणजीतसिंह स्वयम पंथ के सामने अपने को बहुत ही छोटा आदमी समझते थे।

दान पुण्य करने मे भी महाराज उतने ही उदार थे जितने सम्पत्ति संग्रह करने मे उत्सुक। इतने दिन बीत जाने पर भी काशी, लाहौर, ज्वालामुखी और अमृतसर आदि में आज तक उनके दान की महिमा बखानी जाती है।

अपने समय मे भारत मे वे अद्वितीय बहादुर और तेजस्वी राजा थे। अंग्रेज उनसे डरते थे और अफगान उनके भय से थर-थर कांपते थे।

उनके समय खालसा राज्य की परिधि बहुत बढ़ गई थी। किन्तु कहना तो यह चाहिये कि उत्तरी भारत का प्राय' सारा ही उपजाऊ प्रदेश उनके और उनके सहधर्मी सिख सरदारों के हाथ मे था। उस विशाल राज्य की सीमायें जो महाराजा रणजीतसिंह जी के अधिकार मे था। उत्तर और ईशान कोण की ओर हिन्दुकुश और तिब्बत की पर्वत माला तक विस्तीर्ण होगई थी। नैऋत्य कोण मे उसमां खेल, खैबर और सुलेमान की पर्वत मालाओं को उनके राज्य की सीमा छूती थी। मिट्ठन कोट से अमरकोट तक सिन्धु नदी उनके राज्य की सीमा बनाती थी। अग्निकोण की ओर सतलज उसकी राज्य-रेखा थी। वैसे सतलज के पार भी उनके ४५ तालुके थे। उत्तर मे उनके राज्य की जहाँ तक सीमा बढ़ी थी। इससे पूर्व

कनिष्क और अशोक के राज्यों की सीमा भले ही रही हो।

मुगल पठान, गोरखा और राजपूत सभी ने उनके राज्य-वर्द्धन के कार्य में रुकावट डाली थी और सभी ने उनसे बल आजमाई की थी। किन्तु अखिर में सभी को उनका लोहा मानना पड़ा था।

यह बातें हम संकोच से कहते हैं। वरना जितना हम लिख रहे हैं। महाराजा रणजीतसिंह जी उससे कहीं बहुत अधिक महान थे। जिन अंग्रेजों ने उनके बाद उनका राज्य हड़पा वे आज भी उन्हें 'पंजाब का शेर' नाम से ही याद करते हैं। उनकी जिन्दगी के समय में तो उनकी

उनका सम्मान

दोस्ती के लिये भारत के भीतर और बाहर सभी स्थानों के शासक इच्छुक रहते थे। समय समय पर वे अनेक प्रकार की भेंट और तोहफे भी उनके वास्ते भेजते थे। भारत में निजाम हैदराबाद क्लात (बिलोचिस्तान) और सिन्ध के अमीरों ने जहाँ दोस्ती करने के लिये उनके पास अपने एजेन्ट भेजे। वहाँ उनके वास्ते विदेशोंने बहुमूल्य वस्तुयें भेजीं। भारत के बाहर इंगलेंड के बादशाह विलियम ने एक गाड़ी और पांच बढ़िया घोड़े मि० बरन्ज बरीनस के साथ मय दोस्ती के पैगाम भेजे थे। सन १८३५ में एलार्ड नामका फ्रेंच फ्रांस के बादशाह की ओर से तोहफा लेकर हाजिर हुआ और महाराज की प्रशंसा में अपने बादशाह की ओर से एक पत्र भी सुनाया। इसी वर्ष तिब्बत के राजा का भाई भीम काल भी अच्छी २ भेंट लेकर आया। देश में नैपाल, जयपुर आदि सभी राजाओं ने अपने वकील भेजकर यह जाहिर किया कि हम आपके बढ़ते हुये वैभव से प्रसन्न हैं और पारस्परिक सहयोग के इच्छुक हैं।'

इसके अलावा उनके समय में अनेकों विदेशी यात्रियों ने आकर उनके राज्य प्रबन्ध और शासन व्यवस्था को देखा,कारण कि उनकी कीर्ति सुदूर देशों तक फैल रही थी। ऐसे यात्रियों में फ्रांस के चित्रकार मि० 'पिकर जैकमो, जर्मनी के डाक्टर हानिग बरगर अमरीका के लेखक मि० मैक् गिरगर के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। जिनसे महाराज ने उनके देशों के सम्बन्ध में सेना, प्रबन्ध, सभ्यता और धर्म सम्बन्धी अनेकों प्रश्न करके अनेक प्रकार की जानकारी हासिल की थी। इन यात्रियों ने महाराजा के शासन और सेना के सम्बन्ध में काफी प्रकाश डाला है।

बहादुरी और प्राण देने में निर्भीक, इस दृष्टि से उनके सैनिक संसार भर में प्रथम श्रेणी के थे किन्तु नये ढंग से सैनिक शिक्षा भारत के बहुत कम रजवाड़ों में दी जाती थी। महाराजा रणजीतसिंह जी ने अपनी सेना को इस बात में भी सर्वश्रेष्ठ बनाने की कोशिश की उन्होंने फ्रांसीसी

सेना और सेनापति

युद्ध-विशारदों को अपने यहाँ रखकर सेना को आधुनिक ढंग से ट्रेनिङ्ग दिलाई। जनरल वेन्चरा और मि० एलार्ड के नाम इस प्रकार के युद्ध विद्या शिक्षकों में उल्लेखनीय हैं[1] घोड़े की सवारी में प्रत्येक सिख सवार दक्ष होता था। सिख सैनिकों की मजबूती तो इसी से जानी जा सकती है कि वह कन्धे पर दस सेर वजन की बन्दूक और पीठ पर आठ दिन तक रासन बाध कर बीस मील तक का धावा कर सकते थे।

महाराज खुद भी सैनिक जैसा ही परिश्रम करते थे। उन्होंने घोड़े की सवारी, निशानेबाजी और तलवार चलाने में पहले दर्जे की योग्यता हासिल की थी। ये सरपट दौड़ते हुए घोड़े पर से जमीन की

१ यूरोपियन अफसरों की संख्या ४० से ऊपर बताई जाती है। जिनमें से कई को तो तीन हजार से ऊपर तक वेतन मिलता था।

चीज को बर्छे की नोक से उठा सकते थे।

सन् १८३८ ई० मे जो उनकी सेना थी। उसकी संख्या इस प्रकार दी है। २६६१७ पैदल १०५ सवार १८८ तोप २८० जम्बूरे आदि। एलार्ड साहब कवायद परेड कराते थे। इसके सिवा मातहत जागी दारों के यहाँ हजारों पैदल और सवार किसी भी समय काम मे लेने को तैयार रहते हैं।

यह संख्या सन् १८३८ ई० की है। इसके बाद तो महाराज ने और भी सेना बढ़ा ली थी और वह बढ़ी हुई सेना समेत दुगने से ऊपर थी। जिसमे अपने राष्ट्र की रक्षा के लिये सदैव प्राणों की बा लगाने वाले खालसा वीर ही अधिक थे। इन सैनिको को नियत वेतन मिलता था। युद्ध के समय उन्हे राशन और इनाम अलग से मिलते थे। पद वृद्धि के साथ वेतन के अलावा कभी-कभी जमीन भी दी जाती थी। जागीरी सेनाओं के वेतन के लिये यह नियम था कि जागीरदार के पास जो जमीन होती थी उसमें से जागीरदार के खर्च और सैनिकों की खर्च की रकम पृथक २ मुकर्रिर की जाती थी। पिछले पृष्ठों मे कई स्थानों पर इस प्रकार हम वर्णन भी कर चुके हैं। महाराजा रणजीतसिंह जी ने खुद भी राज्य में से एक जागीर अपने निजी खर्चों के लिये मुकर्रिर कर ली थी। यही बात उन्होंने अपने परिवार के अन्य लोगों के लिये कर रक्खी थी। कुंवर शेरसिंह जी के लिये उन्होंने अपनी सास सदाकौर वाली जागीर दे दी थी।

सेनापतियों मे उनके यहाँ दो किस्म के लोग थे। एक तो वे जो किन्हीं भू-भागों पर अधिकार रखते थे। और उन भू-भागों की रक्षा के लिये उन्होंने महाराज की अधीनता राजी या युद्ध के बाद स्वीकार कर ली थी और वफादारी मे युद्ध मे जाते थे। इस प्रकार के लोगों का उनकी स्थिति और शक्ति के अनुसार सेना में पद भी निश्चित हो जाता था। दूसरे वे लोग थे, जो साधारण सिपाहियों में भरती होकर अपनी प्रतिभा से ऊचे उठ गये थे। सेनापतियों मे से कई तो इतने विश्वस्त थे कि वे मन्त्रिमंडल में भी स्थान पाते थे।

एक विशेष बात जो अंग्रेज सैनिकों से भी बाजी मार जाती है। वह थी आचरण की। अंग्रेज अपने गोरे सिपाहियों को इस हद के अन्दर रखते है कि वे विजित देशों की स्त्रियों के साथ अनैतिक दुर्व्यवहार न करें। किन्तु सिख सैनिक तो अन्त करण से पाक थे। वे कभी शत्रुओं की स्त्रियों से बे इज्जत करने का खयाल तक नहीं लाते थे। काश्मीर मे वे रहे। हजारा मे उनका दल रहा जहाँ कि स्त्रिया सौन्दर्य की प्रति मूर्ति होती हैं किन्तु कहीं भी उन्होंने अपने ऊंचे आचरण को न गिरने दिया। स्त्री और बच्चों के साथ सभी शत्रु देशों मे उनका भलमनसाहत का व्यवहार रहा।

यद्यपि उन दिनों प्रजा से अधिक छीन लेने की भावना किसी भी राजा की नहीं थी। फिर भी इतना बड़ा उनका राज्य था जितना भारत मे किसी भी एक राजा या नवाब के पास न था। उनके

राजस्व

राज्य मे कश्मीर का स्वर्ग था। पचनद की स्वर्ण भूमि थी फिर भी भला कहाँ तक कम आमदनी होती। भूमिर से १४८८१५००) नमक कर से ४४०००००) शाल के ठेके से ६७५०८००) के लगभग आमदनी होती थी। और १८६२८०००) आमदनी का इलाका उन्होंने जागीरदारों को दे रक्खा था।

उनके समय में भूमि कर दो प्रकार से वसूल होता था। कहीं तो पूरे गॉव पर गॉव के प्रमुखों की राय के अनुसार एक निश्चित रकम बॉध दी थी। जिसे गॉव के चौधरी वसूल करके दे आते थे।



रावी नदी के किनारे लाहौर किले के पार्श्व मे महाराजा रणजीतसिंह के दरबार का एक दृश्य

रणजीत सिंह राज्य
पूर्वी पंजाब
पश्चिमी पंजाब

गिलगत
सिंधु
जेहलम
मरी
श्रीनगर
लेह
पुंछ
इस्लामाबाद
रावलपिंडी
चिनाब
जम्मू
मियांवाली
रावी
सियालकोट
व्यास
मुल्तानपुर
लायलपुर
रावी
लाहौर
अमृतसर
झंग
चिनाब
सतलज
लुधियाना
मिंटगुमरी
फीरोज़पुर
सतलुज
भटिंडा
अम्बाला
बहावलपुर
सूरतगढ़
हिसार
देहली
मेरठ

महाराजा रणजीतसिंह के राज्य का नक्शा

दूसरी प्रणाली बटाई की थी।[1] बटाई मे उपज का छटे से दसवॉ हिस्सा तक लिया जाता था। फसल के समय पर यह बॉट गॉव के मोदी के यहॉ जिसे तौला भी कहा जाता है जमा होती थी। पंजाब में मोदियों की इस प्रकार एक जाति ही बन गई है। हमे ऐसे मौके याद नहीं आते जब लगान वसूली में कोई सख्ती-की गई हो।

अकाल के समय में यह लगान तो माफ कर ही दिये जाते थे। अपितु राज्य की ओर से सहायता भी दी जाती थी। काश्मीर के भयंकर अकाल मे दीवान मोतीराम ने महंगा गल्ला[2] मंगा कर सस्ते भाव पर काश्मीर निवासियों को दिया। इस का जिक्र हम पहले कर चुके हैं।

कुछ टैक्स व्यापारियों पर भी था। सिन्ध नदी मे नावों द्वारा व्यापार करने वाले विशेष अवसरों पर सौगातें भेजते थे।

आदि से अंत तक लड़ाइयों मे उलझे रहने के कारण महाराजा रणजीतसिंह जी कोई शासन-विधान तो तैयार नहीं करा सके। परन्तु इतने बड़े राज्य को सभालने के लिये उन्होंने जो भी प्रवन्ध किया वह तत्कालीन राजाओं से काफी अच्छा था। वे जिस प्रदेश को जीतते थे। उस पर दो हाकिम मुकर्रिर करते थे। एक फौजी अफसर और दूसरा रेवेन्यू अफसर। बगावत को दबाने और आक्रमणकारियों से प्रदेश की रक्षा करने का काम फौजी अफसर के जिम्मे होता था। और मालगुजारी वसूली रेवेन्यू अफसर करता था। काश्मीर, मुलतान और पेशावर मे ऐसे ही प्रवन्ध किये गये थे। सरदार हरीसिंह और मोतीराम जिन दिनों काश्मीर के सूबेदार थे। पं० वीरधर रेवेन्यू अफसर था।[3]

शासन-व्यवस्था

उस समय अपराधों की सूची भी बहुत लम्बी नहीं थी और हरेक आदमी की सीधे महाराज तक पहुँच भी थी अत न्याय विभाग कोई स्वतन्त्र महकमा नहीं था। ये दोनों अफसर ही न्यायाधीश का भी काम करते थे, जो अपराध माल सम्बन्धी होते थे। उनका फैसला माल अफसर के यहां और जो फौजदारी के मामले होते थे, उनका निर्णय सूबेदार कर देता था।[4]

उस समय ग्राम पंचायतों को वही अधिकार प्राप्त थे, जो प्राचीन काल से चले आते थे। ग्रामों के झगड़ों को निपटाने मे ग्राम पचायतें और विरादरिया पूर्णतया स्वतन्त्र थीं। हॉ, यदि कोई किसी के माल का जबरन अपहरण करता था, या स्त्रियों को उड़ा ले जाता था तो फरियाद करने पर सूबेदार उचित कार्यवाही करता था और वह कार्यवाही सीधा अपराधी को दण्ड देना, माल की वापिसी, आदि ही होता था। न्याय को व्यापार का रूप प्राप्त न था। इसीलिये वकील और कोर्ट फीस का कोई सिस्टम न था।

१ फौजी गजट मई सन् १८३०

२. लाहौर में महाराज अपने समस्त राज्य को अकाल के समय अपने सरकारी अन्न भडारो को प्रजाजन के लिये खोल देते थे।

३. फौक लिखित काश्मीर 'अहदे सिखान।

४. लाहौर में दरवाजों पर प्रजा की शिकायती दरख्वास्तों के लेने के लिये बक्स रखवा दिये थे। जिनकी चाबियां महाराज और कुंवर खडगसिंह जी के पास रहती थीं। एक यह भी रिवाज था कि जब महाराज बाहर निकलते थे तो लोग पल्ला हिला देते थे। जिसका अभिप्राय यह होता था कि वह कोई शिकायत करना चाहता है। महाराज रुक जाते थे और उसकी पुकार सुनते थे।

कारण था कि प्रजा ने उनके राज्य मे एक सतोष की मास ली थी। चूंकि अब किसी की हिम्मत उसे लूटने की तो पड़ ही नहीं सकती थी। अतः प्रजा बराबर खेती और व्यवसाय से सम्पन्न होती जा रही थी कि पेंतीस करोड़ रुपया खालसे के खजाने में था। इसके सिवा तीस लाख अशर्फियों की कीमत का कोहनूर हीरा था। इसके अलावा लाखों के हीरे मोती और जवाहरात थे।"

खजाने के बाहर उनके पास फीलखाना और अस्तबल था। फीलखाने में हजारों हाथी थे जिनमें एक सौ एक तो महाराज की ही सवारी के लिये नियत थे जिनमे 'इन्द्रराज' और 'सरदार जी' नाम के दो हाथी बहुत मशहूर थे। तबेले में एक हजार से ऊपर तो बढ़िया नस्लों के घोड़े थे। बाकी साधारण थे। इनमें लैली घोडी की कीमत तो पचास हजार कही जाती है।

लाहौर के क़िले में आज भी उनके समय के कुछ हथियारों को देखने के लिये रख छोड़ा गया है। जिनमे बन्दूक, बर्छे, तलवारें, जिरहबख्तर, टोप, कृपाण आदि सब प्रकार के हथियार हैं। उस समय महाराज के पास ३८४ बडी तोपें ४०० शुतरी गुब्बारे थे। उनके तोपखाने की प्रशंसा 'आजवर्नज्' आदि कई यूरोपियन लेखकों ने की है। प्रसिद्ध भगी तोप भी महाराज के ही तोपखाने में थी। उन्होंने भारत के सिवा ईरान और फ्रांस तक से हथियार इकट्ठे किये थे।

शस्त्रागार

लाहौर में बारूद का कारखाना बड़े पैमाने पर खोलने के लिये उन्होंने पक्का इरादा कर लिया था। वे अपने इस एक लाख पेंतीस हजार वर्ग मील के साम्राज्य को और भी अधिकाधिक बढ़ाने के इच्छुक थे। इसीलिये प्रतिवर्ष कुछ न कुछ हथियार इकट्ठे कर लेते थे और अच्छे से अच्छे सिपाही बढ़ा लेते थे और उनके सिपाही और वे खुद प्रत्येक प्रकार की युद्ध विद्या सीखने में दिलचस्पी रखते थे। यही कारण था कि उन्होंने अपने समय तक बनने वाले सभी प्रकार के हथियार इकट्ठे किये थे।

यह हम पहले ही लिख चुके हैं कि वे नमूने के योद्धा, विजेता और शासक थे। यह उन्हीं का पराक्रम था कि पिछली आठ सदियों से बराबर चली आ रही मुस्लिम हुकूमत को उन्होंने पंजाब में से जड़ से उखाड कर फेंक दिया। और जिन पठानों का राजपूतो को बार-बार परास्त करने के कारण सिर आसमान पर चढ़ गया था। उनसे भेंट और नजराने लिये, यही क्यों, उन्हीं के देश यूसफजई, जमरूद और खैबर में जाकर उन्हे परास्त किया था, अपनी हुकूमत कायम की। जो काबुल कई सौ वर्ष से भारत से खिराज लेता था। उसे अपना खिराजगुजार बनाया।

व्यक्तित्व और रहन सहन

उनमें बहादुरी के साथ ही तेज बुद्धि भी थी। काम से वे थकते न थे। रात के समय भी जब कोई उन्हें खास बात सूझती तो फौरन नोट करा देते थे।

जब वे बातें करते थे तो उनका एक हाथ दाढ़ी पर रहता था। कुर्सी पर पालथी मार कर बैठते थे। कहा जाता है उनका स्वभाव विनोदी था। वे सिख सरदारों के साथ मिलकर खूब मनोरंजन करते थे। उन्होंने दरबार में भी कुछ ऐसे लोग रख छोड़े थे जो उनकी तबियत को प्रसन्न करते थे।

श्री गुरु ग्रन्थ साहब को वे नियम पूर्वक नित्य प्रति सुनते थे।

वे दरबार में मोतियों से जड़ा हुआ सिर पेच सिर पर बांध कर बैठते थे। अंगरखे मखमली या रेशमी और छींट के ऋतुओं के अनुसार पहनते थे। लड़ाइयों में वे जिरहबख्तर आदि फौजी लिबास पहनते थे। और कठिन मौकों पर युद्ध का भी संचालन करते थे। काबुल के मेवे उन्हे बहुत पसन्द

थे। काश्मीरी फल भी काफी मंगाते थे।

उनका व्यवहार प्रेम-पूर्ण और सहृदयता का होता था।

रणजीतसिंह जी का दरबार कैसा था? इसका उत्तर तो लाहौर के किले के भीतर की बारहदरी ही देती है। मुगल सम्राट बादशाह अकबर के दरबार की जो शान-शौकत किसी समय रही होगी वही सिख सम्राट महाराजा रणजीतसिंह जी के दरबार की थी। जिन्होंने देहली किले की

दरवार और सरदार

बारहदरी और अकबर के आगरा, खास (दरबार) देखे हैं और जिसने लाहौर के किले की भी सैर की है। वह हमारे कथन का अवश्य समर्थन करेगा। यदि हिन्दू, मुसलमान और सिख के भेद को एक ओर हटा कर हम देखें तो महाराजा रणजीतसिंह, पृथ्वीराज चौहान जैसे योद्धा और बादशाह अकबर जैसे प्रतापी और भाग्यशील राजा थे। तीनों ही साधारण सरदारों के पुत्र थे। तीनों ही ने अपने बाहुबल और योग्यता से अपने को ऊंचा उठाया था। तीनों के दरबार में एक से एक वीर योद्धा और बुद्धिमान व्यक्ति थे। तीनों के घरों में अनेक रानियाँ थीं। तीनों को ही जिद्दी शत्रुओं से पाला पड़ा था। अन्तर इतना है कि पृथ्वीराज को उसके शत्रु मुहम्मद गोरी ने उसके जीवन में ही नष्ट कर दिया। अकबर राणा प्रताप को नष्ट तो न कर सका किन्तु उसका विजयी मस्तक नत अवश्य होगया। महाराजा रणजीतसिंह के सामने उनका दुश्मन ब्रिटिशसिंह सदैव किनारा काटता रहा। इस तरह हम कुछ अंशों में महाराजा रणजीतसिंह जी को अकबर और पृथ्वीराज दोनों से महान ही पाते हैं किन्तु सतर्कता और साहस में जो चीज हमें महाराजा रणजीतसिंह जी में दिखाई देती है। वह उन दो में नहीं।

महाराजा रणजीतसिंह अपने सिख अकीदे के अनुसार प्रातः ४ बजे जग कर नित्य कर्म करते और फिर फौजों की परेड देखने मैदान में जाते। थोड़ा सा जलपान करके ६ बजे दरबार में पधारते। जहाँ आये हुये पत्रों और समाचारों को सुनते। उनके उत्तर लिखवाते अपने हुक्म जारी करवाते। हिसाब किताब देखते। दोपहर में दरबार समाप्त हो जाता और वे महलों में आराम के लिये चले जाते। तीसरे पहर फिर दरबार में आते और उपस्थित विषयों पर विचार करते।

दरबार में उनके पीछे दाये बायें वजीरों की कुर्सियाँ होती थीं। जो आवश्यकतानुसार उनके सामने जाकर खड़े हो जाते और सब हुक्मों को सुनते। जिस किसी को अपनी ओर से कुछ अर्ज करनी होती वह भी सामने आ जाता।

उनके दरबारियों में से निम्नलिखित सरदारों के नाम उल्लेखनीय हैं:—

(१) राजा ध्यानसिंह—यह डोगरा राजपूत था और एक अवतर हालत में महाराज की सेवा में हाजिर हुआ था। आरम्भ में सेना में इसे स्थान दिया गया। फिर शनैः-शनैः अपनी सेवा और स्वभाव की भलाई से तरक्की पा गया और यहाँ तक महाराज को खुश कर लिया कि राजा का खिताब भी पा लिया। महाराज के जीवन भर उनका सच्चा वफादार भी रहा। बुद्धि का तेज, जाहिरा तौर पर मालिक के प्रति भक्ति ये उसके गुण थे। अपनी नम्रता से उसने समस्त सिखों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। इसके दो भाई और थे। गुलाबसिंह और सुचेतसिंह। काश्मीर में एक विद्रोह को दबाने में बहादुरी दिखाने के उपलक्ष में महाराज ने गुलाबसिंह को काश्मीर में एक जागीर प्रदान की थी। सुचेतसिंह सदैव दरबारी ही रहा।

ध्यानसिंह का एक लड़का था हीरासिंह बड़ा सुन्दर और चतुर। महाराज उसे अपने बेटों की ही

तरह प्यार करते थे। ध्यानसिंह की इच्छा के अनुसार महाराज ने राजा संसारचन्द की लड़की के साथ इसकी शादी की कोशिश भी की थी किन्तु हो न सकी। महाराज के मरने के बाद इन चारों ही ने अपने स्वार्थ के कारण अनेक खेल खेले जो सिख साम्राज्य के लिये घातक ही सिद्ध हुये।

(२) *दीवान मुहकमचन्द*—महाराज के मशहूर जनरलों में से था। शूरवीर होने के सिवा मुहकमचंद शासन प्रवन्ध में भी काफी निपुण था। यह महाराज के पिता सरदार महासिंह के समय से ही दीवान के पद पर मुकर्रिर था। निष्कपट स्वभाव और ईमानदारी के कारण यह विश्वासपात्र बन गया था। इसने महाराज का राज्य बढ़ाने के लिये अनेक स्थानों में लड़ाइयाँ लडी, बहुत सारे प्रदेश विजय किये। महाराज ने भी प्रसन्न होकर इसे फलोर का इलाका जागीर में और एक हाथी मय सुनहरी हौदे के इनाम में दिया था। सन् १८११ ई० में इसने राजौरी के हाकिम राजा सुलतानखा को गिरफ्तार करके महाराज के सामने पेश किया। सन् १८१३ ई० में हजारा के मुकाम पर अटक की विजय हेतु पठानों को परास्त किया। इस प्रकार इसकी अनेकों बहादुरियाँ हैं। सन् १८१५ ई० में इसका देहान्त हो गया।

(३) मोतीराम रामदयाल-महाराज ने सन् १८१५ में मोतीराम को अपना दीवान बनाया। दीवान रामदयाल भी एक अच्छा सेनापति था। वह महाराज के लिये लडता हुआ ही काम आया था। रामदयाल मोतीराम का लडका था। इन दोनों ही बाप बेटा ने युद्ध और प्रबन्ध द्वारा सिख दरबार की अच्छी सेवायें कीं। मोतीराम को तो काश्मीर की गवर्नरी भी प्रदान की गई। महाराज भी बराबर इनका मान बढ़ाते रहे। रामदयाल हजारा की लडाई में लड़ता हुआ मारा गया था। अपने पुत्र के शोक से दीवान मोतीराम इतने दुखी हुये कि वे विरक्त होकर काशी चले गये। महाराज ने मोतीराम के दूसरे लड़के कृपाराम को पहले जालंधर का हाकिम बनाया था। कृपाराम ने भी अपनी बहादुरियों और सेवाओं से नाराज हुये महाराज को प्रसन्न कर लिया और काश्मीर की सूबेदारी तक हासिल करली। इस प्रकार इस परिवार ने सिख दरबार की अच्छी ही सेवायें कीं।

(४) *मिश्र दीवानचन्द*—भी एक प्रसिद्ध सेनापति था। यह आरम्भ में तोपखाने में आकर भर्ती हुआ। जाति का ब्राह्मण होते हुये भी अद्वितीय योद्धाओं में से था। इसने प्रत्येक लड़ाई में बढ़कर काम किया। निशानेबाजी में इतनी योग्यता रखता था कि इसका निशाना कभी चूकता ही नहीं था। लंबे चौड़े और सुन्दर शरीर का नौजवान थोड़े ही समय में तरक्की कर गया। और तोपखाने का आला अफसर बन गया। महाराज ने इसे जफरजंग की पदवी दी थी। सन् १८१८ ई० में इसने मुलतान विजय में अपूर्व चतुराई और वीरता दिखाई। काश्मीर और नौशहरा की विजय करने में इसका साहस सबसे अधिक बताया जाता है। सन् १८२४ ई० में लकवा की बीमारी में इसका देहान्त हो गया। महाराज ने चन्दन चिता में इसका संस्कार कराया और बड़े रन्जीदा हुये।

(५) *फकीर बन्धु*—महाराज के यहां फकीर नूरुद्दीन और अजीजुद्दीन उसी प्रकार दो चतुर मुसलमान दरबारी थे। जिस प्रकार अकबर के दरबार में बीरबल और टोडरमल थे। ये दोनों ही वफादार आदमी थे। लाहौर पर अधिकार करते ही महाराज ने इन्हें अपने यहाँ रख लिया था। मरते समय तक यह महाराज के शुभचिंतक रहे। फकीर नूरुद्दीन एक चतुर हकीम था। महाराज का वही राजवैद्य था। सन् १८७५ ई० में महाराज ने उसे गुजरात का हाकिम बना दिया। अंग्रेज हाकिमों से मिलने जुलने के लिये महाराज फकीर अजीजुद्दीन को ही भेजते थे। वह भी वहाँ महाराज की मान मर्यादा को बढ़ाकर ही पेश करता था। ये दोनों भाई मजहबी पक्षपात से बिल्कुल बरी थे। अटक, मुलतान आदि की लड़ाइयों में

महाराज की ओर से मुसलमानों से खूब डट कर लड़े। पेशावर के युद्ध में जब कि काबुल के अमीर दोस्त मुहम्मद से मुकाबिला था। इन दोनों भाइयों ने बड़ी चतुरता दिखाई। महाराज भी इन्हें सिरों की तरह ही प्यार करते थे।

(६) *भवानीदास*—महाराजा रणजीतसिंह जी की सेवा में आने से पहले यह काबुल में शाहशुजा का दीवान था। सन् १८०८ ई० में लाहौर आया। महाराज ने भी इसे दीवान ही बना दिया। भवानीदास जहाँ माल अफसरी के काम में होशियार था। वहाँ लड़ाई के फन में भी शौक रखता था। [illegible] विजय में उसने खूब बहादुरी दिखाई थी।

(७) *गंगाराम*—महादाजी सिंधिया के साथ रहकर इसने राजनीति की शिक्षा पाई थी। [illegible] वाला दिल्ली का था। महाराज ने इसे अपने यहाँ बुला लिया और सरकारी मुहर उसके सुपुर्द कर दी। महकमा आबकारी का प्रबन्ध उसने बहुत ही अच्छा किया।

(८) *प० दीनानाथ*—गंगाराम के मर जाने पर यह उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसके कुल काम इसे सुपुर्द किये गये। सन् १८३४ ई० में भवानीदास के मर जाने पर महकमा माल भी इसके ही हाथ आ गया। मुलतान का हिसाब भी उसने ही दुरुस्त किया। तनख्वाह इसे ६००) माहवार मिलती थी। महाराज ने कई स्थानों पर जागीर में इसे जमीन भी दी थी।

(९) *सरदार हरीसिंह नलुआ*[1]—यह वीर गुजरानवाला में पैदा हुआ था। लड़कपन में महाराज के साथ खेला करता था। महाराज को उससे बचपन की ही मुहब्बत थी। जवान होने पर महाराज की सेना में ही भर्ती हो गया। अपनी बुद्धिमानी और बहादुरी से काफी तरक्की की। सन् १८०७ ई० में ८०० प्यादों का अफसर बना और फिर तो काश्मीर और पेशावर का सूबेदार भी। प्रबन्ध की बजाय सरदार हरीसिंह को लड़ने-भिड़ने में अधिक मजा आता था। यूसफजई के दुर्दान्त पठानों को काबू में करना और हजारा को विजय करना सरदार हरीसिंह का ही काम था। अटक, दुरबन्द, जहाँगीरा, खैबर और पेशावर जहाँ भी पठान उसके सामने आये, सभी जगह उसने उनके छक्के छुड़ाये। सन् १८३७ ई० में जमरूद की लड़ाई में सख्त घायल होने के कारण उसका देहान्त हो गया। उसका साहस अनुपम था। खैबर की घाटी के उस पार भी उसके नाम से पठान काँपते थे। आज भी पठान प्रदेशों में मातायें बच्चों को 'हरी आया' कह कर डराया करती हैं। चिड़ियों से बाज लड़ाने की गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज की उक्ति को सरदार हरीसिंह जी ने सोलह आना चरितार्थ कर दिया।

महाराज ने सरदार हरीसिंह नलुआ से प्रसन्न होकर बहुत सारा इलाका जागीर में दिया था। फौज में उनका भारी मान था। हरीसिंह फारसी और गुरुमुखी खूब अच्छी तरह जानते थे।

सरदार हरीसिंह जी की ताकत का पता इस बात से लग जाता है कि जमरूद में जब उन पर शेर ने हमला किया तो उन्होंने उसके जबड़े पकड़ कर उसे चीर डाला।

(१०) *सरदार लहनासिंह मजीठिया*—यह गोलन्दाजी के काम में बड़े हुशियार थे। अमृतसर में

१. हरीसिंह का जन्म १७९१ ई० में हुआ था। इनके बाप का नाम गुरुदयालसिंह और दादा का नाम हरदयालसिंह था। इनके बाप और दादा सुकरचकिया मिसल के स्वामी खोखर गोत के स्वामी के नौकर थे। नलवा की पदवी इसकी बहादुरियो से मिली थी। सरदार हरीसिंह ने एक शेर को बिना हथियार के मार डाला था। तभी उसे व्याघ्र अर्थात नलवा की पदवी मिली।

तोपें ढालने का काम भी इन्होंने किया था। यह काफी पढ़े लिखे और कई भाषाओं के जानकार बताये जाते हैं। ज्योतिष विद्या में भी इनका ज्ञान अच्छा था।[1] महाराज ने अमृतसर के इलाके का प्रबन्ध भी इन्हें सौंपा था। महाराज के देहान्त के बाद यह भी घरेलू झगड़ों में फंस गये। सिख अंग्रेज युद्ध के समय यह बनारस चले गये।

(११) तेजासिंह—यह जात का ब्राह्मण था। महाराज के समय इसने कई स्थानों पर अच्छी बहादुरी दिखाई किन्तु महाराज की मृत्यु के बाद इसने खालसा सेना को बुरी तरह हरवाया। यह अंग्रेजों के साथ मिल गया और सेना का सर्वनाश कराता रहा। यदि यह दगाबाजी न करता तो आज पंजाब दूसरा ही होता।

(१२) फूलासिंह जी अकाली—इनका मान सिख जगत में बहुत था। पंथ में इनका आदर था। पंथ में पेश होने वाले मामले प्रायः इनके ही सभापतित्व में निर्णय होते थे। महाराज की बात उलट सकती थी किन्तु फूलासिंह अकाली की बात को लौटाना मुश्किल था। एक बार महाराज के साथ उनकी अनबन भी हो गई थी किन्तु फिर भी महाराज को उनके बिना चैन नहीं पड़ा। सिख धर्म का प्रेम भी अटूट मात्रा में बाबा फूलासिंह जी में था। बहादुरी में, साहस में और निर्भयता में फूलासिंह अकाली सरदार हरीसिंह नलुआ दोनों ही लौह पुरुष थे। आपका जन्म जाट जमींदारों के घर हुआ था। जब तक आप सिख दरबार में नहीं आये थे। हमेशा निर्बलों की मदद करते थे। बाबा की खूब इच्छा थी कि अंग्रेजों के साथ युद्ध किया जाय किन्तु उनके जीवन में उनकी यह साध पूरी नहीं हुई।

(१३) सरदार शामसिंह अटारी वाला—सन् १८०३ ई० में यह सरदार महाराज के पास आकर सेना में भर्ती हुए। मुल्तान और काश्मीर के युद्धों में इन्होंने खूब वीरता दिखाई। महाराज के पोते कुँवर नौनिहालसिंह जी की शादी आपकी ही पुत्री से हुई थी। आपका खानदान पहले से ही सम्पन्न खान्दान था। उस शादी में आपने पन्द्रह लाख रुपया खर्च किया। महाराजा के बाद भी आपने बड़ी वफादारी के साथ सिख दरबार की सेवा की। अंग्रेजों से लड़ाई छिड़ने या महारानी जिन्दा की आज्ञानुसार आप मैदान में आये और सुबराव के मैदान में १० फरवरी १८४६ में बहादुरी के साथ लड़ते हुए शहीद हुए। आपकी सरदारनी ने जब यह समाचार सुना तो उन्होंने आपकी लाश मंगवाई और सती हो गई। अपने महाराज के प्रति इस खानदान ने आरम्भ से ही बलिदान किये थे। आपके बुजुर्ग सरदार निहालसिंह जी के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उन्होंने एक बार महाराजा रणजीतसिंह जी के बीमार पड़ने पर ईश्वर से प्रार्थना की थी कि महाराज चंगे हो जाय और परमात्मन् मुझे उठा लो। दैवात् ऐसा ही हुआ।

(१४) जनरल वेन्तूरा—इटली का रहने वाला था और किसी समय नेपोलियन की फौज में रह चुका था। महाराज ने इसे ढाई हजार रुपया माहवार की तनख्वाह पर रख लिया। इसने और इसके अन्य यूरोपियन साथियों ने नये ढंग से महाराज की फौज को कवायद परेड सिखाई। आरम्भ में महाराज के सिपाही नया लिबास पहनने और नये ढंग पर कदम उठाने में हिचकते थे। इसलिये महाराज ने आरम्भ में खुद नयी फौजी पोशाकें पहनी और परेड भी करने लगे। कहा जाता है महाराज ने इन यूरोपियन सरदारों से तीन प्रतिज्ञायें ली थीं। गाय का गोस्त नहीं खायेंगे। तम्बाकू नहीं पियेंगे। दाढ़ी, केश रखेंगे। वेन्तूरा की तरह एलार्ड, कोर्तलान्त अवीता सेल नाम के यूरोपियन अफसर भी फौजी मामलों में काफी होशियार थे।

१. अमृतसर में दरबार साहब के पास जो धूप घड़ी है इन्हीं की बनाई हुई है।

इन लोगों ने लगभग पचास हजार सैनिकों को पच्छिमी ढंग पर तैयार किया था। इस तरह महाराज की सेना का एक बड़ा हिस्सा ऐसा था जो किसी भी सभ्य देश की सेना से मुकाबिला कर सकता था।

राज्य के आतरिक मामलों मे सलाह के लिये राजा ध्यानसिंह, फकीर अजीजुद्दीन, सरदार निहालसिंह, दीवान मुहकमचद और राजकुमार खड्गसिंह जी से ही प्रायः सलाह ली जाती थी। सेना और युद्ध के सम्बन्ध मे उपरोक्त सभी दरबारी बुलाये जाते थे।

इन सरदारों के अलावा विशेष दरबारों मे राजा साहब जीन्द, फतहसिंह अहलूवालिया और समस्त जागीरदार भाग लेते थे।

अपने दरबार मे यथा समय महाराज ने उस समय के पंजाब के चुने हुये दिमाग इकट्ठे कर लिये थे। जिनमें से कई प्रथम श्रेणी के योद्धा और कई रेवेन्यू के काम में अच्छी योग्यता रखने वाले थे।

यही कारण था कि निरन्तर लड़ाइयां होने पर भी उनका खजाना शायद ही कभी खाली रहा हो।

यह तो कोई अविदित बात नहीं कि उस समय देश में शिक्षा का प्रचार बहुत कम था किन्तु महाराजा रणजीतसिंह जो ने संस्कृत और फारसी की लाहौर में जो पाठशालायें मकतब थे उन सब को सहायता दी। महकमा सदावर्त से इस काम से मदद दी जाती थी। पंजाब में जहां भी कहीं गुरुद्वारे थे वहां गुरुमुखी अक्षरों का बराबर ज्ञान कराया जाता था।[1] उनके समय मे सिंध और काश्मीर के बीच व्यापार होता था। कुछ माल रूस चीन और काबुल तक भी जाता था। पंजाब से सिंध के लिये नावों द्वारा माल लाते ले जाते थे। तुर्क और ईरानी लोग घोड़ों का व्यापार करते थे। सिख भी इस धंधे को करते थे। ये व्यापारी विशेष अवसरों पर अच्छी २ सौगाते महाराज को भेट करते रहते थे। काश्मीर के शालों का निर्यात सुदूर तक होता था।

शिक्षा और व्यवसाय और उद्योग धंधे

बाहरी लोग ईरान और दूसरे देशों से हथियार लाकर यहां से खूब रुपया कमाते थे। सिख लोग और रजवाड़ों से इस व्यापार मे खूब आमदनी होती थी। पठान लोग हींग और मेवा घोड़ों पर लाद कर मध्य पंजाब में उतरते थे और यहा से बढ़िया कपास और गेहूँ टूटा-फूटा लोहा, कांसा ले जाकर दूसरे देशों मे भेज देते थे।

महाराज की इच्छा लाहौर या अमृतसर मे बढ़िया कपड़ों के कारखाने खुलवाने की थी। इसके लिये उन्होंने विदेशी यात्रियों से बहुत-सी जानकारी हासिल की थी।

संक्षेप से इतना कह सकते है कि उनके राज्य मे प्रजा शनैः शनैः उन्नति की ओर ही अग्रसर थी।

१ महाराज की इच्छा लाहौर में अंग्रेजी का एक स्कूल खोलने की भी थी। उन्होने जे० सी० लौरी से जो लुधियाना में ईसाई मिशनरी हो कर आए थे। बुलाकर यह कहा था कि तुम लाहौर में अंग्रेजी शिक्षा का स्कूल खोल लो सारा खर्च हम देगे किन्तु शर्त यह है कि केवल अंग्रेजी पढ़ाओगे। किन्तु लौरी क्रिश्चिनटी की तालीम भी देने को बाध्य थे। इसलिये यह काम सफल न हो सका।

सोलहवाँ अध्याय

सिख साम्राज्य का अधःपतन

महाराजा खडगसिंह जी का जन्म माई नकैन के उदर से सन् १८०७ ई० में हुआ था। महाराजा रणजीतसिंह जी ने अपनी मृत्यु से पूर्व ही समस्त सिख सरदारों के सामने यह घोषित कर दिया था कि मेरे बाद गद्दी के हकदार खडगसिंह होंगे। नियमानुसार उन्हे युवराज का अभिषेक भी कर दिया गया था। कहा जाता है कि महाराज यह भी कह गये थे कि राजा ध्यानसिंह को मेरे बाद अपने नये महाराज का वजीर बनाना।

महाराज खड़गसिंह

महाराज खडगसिंह जी बालकपन मे बड़े लाड प्यार से पाले गये थे। क्योंकि रानी दातारकौर जी प्राय. सदैव ही महाराज के साथ रहती थीं। खडगसिंह जी की शादी भी बड़े धूम-धाम से की गई थी। इस विवाह मे पंजाब के राजा रईसों और अग्रेज अफसरों ने तबेल (न्यौते) मे जो रकम दी थी उसी से पता चल जाता है कि इनका विवाह कितनी धूम-धाम के साथ हुआ था। वह रकम इस प्रकार है। ५०००) अग्रेजों ने ११००८), झीन्द नरेश ने, ११०००) कैथल नरेश ने, ११०००) नाभा नरेश ने, ४०००) फकीर अजीजुद्दीन ने, १७०००) दीवान देवीदास ने, ६०००) दीवान भवानीदास ने, ६०००) सरदार हुक्मसिंह अटारी वाले, ६०००) निहालसिंह अटारी वाला, ६०००) दीवान हुक्मसिंह बघारी, ४०००) हुक्मसिंह चिमनी, ५०००) खानआदमसिंह, ५०००) सितसिंह भतानिया, ४०००) राजा नूरपुर, ६०००) चम्पा नरेश, ४०००) जसरोटा नरेश, २१०००) कपूर्थला नरेश, २१०००) दलसिंह रामगढ़िया, ७०००) राजा ससारचद, १००००) अहमदखां स्याल, ५०००) बसोली नरेश, ४०००) हरिपुरा नरेश, ४०००) सकटोई नरेश, १००००) कुतुबखा रईस कसूर, २००००) नवाब हुक्मदौला मुहम्मद सादिकखां, ११५००) नवाब सर बुलदखा, ५०००) नवाब मुल्तान ने दिये। इसके अलावा लाहौर के कई जौहरी और सराफों ने ५००–५०० सौ रुपये दिये।

महाराजा रणजीतसिंह जी ने भी दिल खोल कर इस शादी मे खर्च किया।

यह शादी फतहगढ़ जिला गुरदासपुर के कन्हैया सरदार जैमलसिंह की पुत्री चन्दकौर के साथ हुई थी। किन्तु शादी की रस्म लाहौर मे अदा हुई थी।

खडगसिंह जी प्राय सभी लड़ाइयों मे फौज के साथ रहते थे। जब सयाने हो गये। तब तो उन्होंने स्वतंत्र रूप से भी कई स्थानों पर चढ़ाइया कीं। भिम्बर, मुल्तान और पेशावर की लड़ाइयों मे वे बराबर साथ रहे।

अपने पिता के मरने पर जब वे गद्दी पर बैठे तो राजा ध्यानसिंह उनके मंत्री हुए। किन्तु महाराज खडगसिंह और ध्यानसिंह के बीच मे सद्भावनाओं की कमी थी। ऐसा जान पड़ता है कि महाराज रणजीतसिंह जी के समय मे राजा ध्यानसिंह ने खडगसिंह जी के साथ वैसा अच्छा आदर का व्यवहार नहीं किया था। जैसा कि युवराजों के साथ दरबारियों को करना चाहिये। हम देखते है। जहा तक भी राजकाज सीखने से सम्बन्ध है। खडगसिंह जी को दूर ही रक्खा गया और इस दूर रखने मे राजा ध्यानसिंह का हाथ जरूर था। जैसे वह अपने पुत्र हीरासिंह को बराबर बढ़ा रहा था और महाराज के सम्पर्क मे भी रखता था। वैसे खडगसिंह जी को भी तो मौका दे सकता था। अगर ध्यानसिंह का युवराज अवस्था मे महाराज खडगसिंह जी के साथ प्रेम और आदर का व्यवहार रहा होता। यदि कोई आशंका उन्हे राजा ध्यानसिंह की ओर से न होती तो वे कुछ ही दिन के बाद ध्यानसिंह की बजाय चेतसिंह को मंत्री न बना लेते।

महाराज खडगसिंह के लिये हम यह कह सकते है कि वे अपने पिता की तरह रौबवाले और बुद्धिमान नहीं थे। किन्तु यह नहीं कह सकते कि वे राज्य कार्य को उत्तमता से न चला सकते थे। किन्तु राजा ध्यानसिंह ने जब देखा कि उनकी वजीरी छिन गई है तो वह महाराजा खडगसिंह का दुश्मन हो गया। उसने सिखों मे फैलाया कि महाराज खड़गसिंह ने चेतसिंह को अग्रेजों की मर्जी से वजीर बनाया है। चेतसिंह ने अंग्रेजो से वायदा किया है कि मैं महाराज खडगसिंह को अग्रेज सरकार की अधीनता स्वीकार करा दूंगा और यह भी उड़ाया कि महाराज खडगसिंह भी रुपये मे छ आना खिराज देना अंग्रेजों से स्वीकार कर चुके हैं। बहादुर सिख सब कुछ बर्दाश्त कर सकते थे। किन्तु उन्हें उस समय गुलामी किसी भी तरह स्वीकार नहीं थी। वे भडक उठे और सिख सेनापतियों ने ध्यानसिंह से इस बात के प्रमाण मागे। ध्यानसिंह काफी चतुर आदमी था। उसने कुछ जाली चिट्ठियां खालसा के सामने पेश करदीं। जिनकी बाबत कहा गया कि यह शिमला भेजी जाने वाली थीं। कुछ ऐसे लोगों ने जो चेतसिंह के आदमी कहे जाते थे लोभ मे पड़कर कह दिया कि हां, हमें इन चिट्ठियों को शिमला ले जाने काम चेतसिंह ने सौपा था।

कई सिख सरदार किले मे घुस गये। चेतसिंह को जब पता चला तो वह दूसरे कमरे मे चले गये। किन्तु वे उसे वहां से भी पकड़ लाये और वहीं कत्ल कर दिया।

चेतसिंह को मरवाने के बाद ध्यानसिंह फिर वजारत का काम करने लगा। महाराज खड्गसिंह नाम मात्र के राजा थे इस समय सर्वेसर्वा ध्यानसिंह बना हुआ था। महाराज किले को छोडकर शहर के महल में चले गये और वहीं रहने लगे किन्तु वे या तो मानसिक कष्ट से या ध्यानसिंह की करामात से अधिक जिन्दा न रह सके उन्होंने सवा-डेढ़ ही वर्ष राज्य किया।

इसमे सन्देह नहीं कि नौनिहालसिंह बहुत योग्य थे और समय मिलता तो वह पंजाब के लिये दूसरे रणजीतसिंह सिद्ध होते। उन्होंने राज-काज अपने पिता की बीमारीके बाद से ही बड़ी कुशलता से सभाल लिया था। उनकी इस प्रकार की योग्यता को देखकर ध्यानसिंह और भी शंकित हुआ। उसने क्लार्क साहब के दिमाग में अपने सहायकों द्वारा यह बात बिठवा दी कि कुंवर नौनिहालसिंह ने ऐसे आदमी मुकर्रिर किये हैं जो अफगान-प्रजा को अग्रेजों के खिलाफ भड़कावेगे। अग्रेज अधिकारियों ने उनसे इस सम्बन्ध में पूछताछ भी की किन्तु भला निराधार बात सिद्ध कहां से होती।

जिन दिनों महाराजा खड्गसिंह जी निहायत बीमार थे उन्होंने कुंवर साहब को मिलने के लिये

बुलाया। ध्यानसिंह ने सन्देश लाने वालों को उल्टा पढ़ा दिया और उन्होंने कुँवर साहब के पास जाकर कहा 'आपके पिता हालांकि मरने वाले हैं किन्तु आपको बराबर कोसते हैं।' इस प्रकार दोनों पिता पुत्रों को अंतिम समय तक एक न होने दिया।

महाराज खड्गसिंह जब मर गये तब उन्हे खबर होने दी।

जिस दिन महाराज खड्गसिंह जी का देहान्त हुआ वह सन् १८४० ई० की ५ वीं नौवर थी। दो घण्टे बाद नौनिहालसिंह जी अपने पिता के पास पहुँचे। रावी के किनारे उनका अन्त्येष्टि सस्कार कराया। उनके साथ उनकी दो सुन्दर रानिया सती हो गई। स्मिथ साहब ने लिखा है कि रानी की अवस्था तो अभी कुल बाईस वर्ष की ही थी और सुन्दरता मे भी वह लाजवाब थी।

नौनिहालसिंह

नौनिहालसिंह जब अपते पिता की अन्त्येष्टि से लौट रहे थे तो उनके ऊपर दरवाजा गिर पडा। जिससे उन्हे चोट आई और बेहोश हो गये। उनके साथ ही गुलाबसिंह का लड़का ऊधमसिंह भी था वह उसी समय मर गया।

लतीफ की तारीख पजाब इस बात की कुछ इस प्रकार साची देती है कि कुंवर नौनिहालसिंह के ऊपर दरवाजा गिरने मे राजा ध्यानसिंह का षडयन्त्र था। यदि उसका मन साफ होता तो वह कुँवर साहब की माँ रानी चन्दकौर को उनके पास आने से क्यो रोकता और क्यो अन्य सिख सरदारों को उनके पास आने से वंचित रखता। बल्कि जब रानी चन्दकौर अपने पुत्र के पास पहुँची। तब उन्हे बताया कि कुँवर साहब मर चुके हैं। फिर भी उन पर दबाव डाला कि अगर वे चुप रहेंगी तो राज्य की मालिक उन्हें ही बना दिया जायगा।

ऐसा करने के कुछ कारण भी उपस्थित हो गये थे। कुंवर नौनिहालसिंह राजा ध्यानसिंह से सतुष्ट नहीं थे। वे कुल अधिकारों को अपने हाथ मे लेते जा रहे थे। राजा ध्यानसिह ने काश्मीर का प्रबंध गुलाबसिह को सौंपने की बात कही थी किन्तु कुवरसाहब ने उसे अस्वीकार कर दिया था।

सिखों के वर्तमान ख्यातनामा हिस्टोरियन सरदार गडासिह जी ने "डोगरा गरदी के गुझे भेद" शीर्षक से फुलवाड़ी की छठी जिल्द के अक २, ३ मे राजा ध्यानसिंह और उसके भाइयों के समस्त कारनामों पर प्रकाश डाला है।

विजयसिंह नामी डोगरा सरदार को जोकि राजा गुलाबसिंह का खास आदमी था। इस काम के लिये मुकर्रिर किया गया था कि जब कुंवरसाहब हजूरी बाग की डयोढी के दरवजे पर से गुजरे, उनके ऊपर दरवाजे के छज्जे गिरा दिये जावे।

उम्मेद ऐसी थी कि कुंवरसाहब बच जाते क्योंकि वे पत्थरों के पडनेसे एकबार जमीन पर गिर पड़ने पर भी उठ खड़े हुए थे किन्तु राजा ध्यानसिंह ने उन्हे अपने प्रबंध मे लेकर उनका तुरत ही डाक्टरी इलाज नहीं कराया। वह तो कराता भी क्यों? उसने कुवर साहब की रानियो सिंधान वाले सरदारों और खास मा तक को भी तो पास नहीं जाने दिया।

इस सब से बढ़कर षडयत्र उसने यह किया था कि समस्त परदेशी अफसरो चाहे वे सेनापति थे चाहे डाक्टर अपनी ओर मिला लिया था।

जब रानी चन्दकौर को अपने प्यारे पुत्र की मृत्यु का पता लग गया तो उनसे कहा, अब पुत्र तो तुम्हारे हाथ से गयाही राज्य को भी क्यों खोती हो। मैं आपको राज्य की शासक बनाने का प्रबध करता

हूँ। तब तक आप चुप रहें। यह भी जाहिर न करे कि कुंवर नौनिहालसिंह अब इस संसार में नहीं हैं। वरना विघ्न पड़ने की सभावना है।

हमारा तो ख्याल है और इस ख्याल की पुष्टी कर्नल गार्डनर, मुन्शी देवीप्रसाद और मुहम्मद लतीफ आदि के लेख भी करते हैं कि महाराज नौनिहालसिंह को भीतर ले जाकर मार डाला।

इसके लिये हम समस्त सिखों को भी दोष दिये विना नहीं रह सकते। जिन्हें यह मालूम हो चुका था कि महाराज के ऊपर दरवाजा गिर पड़ा है फिर भी वे समूह के समूह उन्हें देखने के लिये नहीं उमड़े। चंद डोगरों ने हजारों सिखों को धोखा दे दिया यह भी एक महान आश्चर्य है।

कुछ भी हो महाराजा खड्गसिंह और महाराज नौनिहालसिंह जी दोनों ही बाप बेटे डोगरा षडयंत्र के शिकार हो गये।[1]

तीसरे दिन बटाला से महाराज शेरसिंह अपने दल सहित आगये।

महाराजा रणजीतसिंह जी के दूसरे पुत्र महाराज शेरसिंह जी थे और अपनी नानी की रियासत के मालिक थे।

कुंवर नौनिहालसिंह जी के मारे जाने के बाद ध्यानसिंह ने शेरसिंह जी को लाहौर बुला भेजा किन्तु रानी चन्दकौर इस बात पर विगड़ पड़ीं। उनके साथ ही सिंधान वाले भी मिल गये। क्योंकि उन्होंने कहा कि जो गद्दी मेरे पति को मिल चुकी और उसके बाद उस पर मेरा पुत्र बैठने वाला था उसके दो ही हकदार हो सकते हैं। या तो मैं या मेरी पुत्र वधू जो कि गर्भवती है। अटारी वाले सरदार भी रानी साहिबा के ही समर्थक थे। अत ध्यानसिंह असमंजस मे पड गया।

ध्यानसिंह ने सिखों को समझाने की चेष्टा की किन्तु वे उस समय तैयार नहीं हुए। अत में तय यह हुआ कि महारानी अधीश्वर और शेरसिंह जी उनके प्रतिनिधि के तौर पर रहें। उन्हें प्रधान मन्त्री के भी अधिकार रहेंगे। ध्यानसिंह खुद महाराज शेरसिंह के सलाहकार व मत्री रहेंगे। किन्तु यह प्रवन्ध बहुत ही थोड़े दिनों चला। ध्यानसिंह जम्मू चला गया और शेरसिंह भी बटाले लौट गये। अब सिन्धान वाले महारानी चन्द कौर की ओर से मुखिया बनकर शासन करने लगे। एक कौंसिल भी बनाई गई। ध्यानसिंह का भाई गुलाबसिंह इस कौसिल का मेम्बर बन गया। देखने को यह मालूम होता था कि गुलाबसिंह रानी चन्द कौर के हितैपी हैं और ध्यानसिंह शेरसिंह के मित्र किन्तु वास्तव मे वे सिख शक्ति को नष्ट करके अपना एकाधिकार जमाने की चाले चल रहे थे।

महाराज शेरसिंह की ओर से ज्वालासिंह नाम का एक चतुर सिख सिख-सेना में अपना प्रचार कर रहा था। कुछ एजन्ट ध्यानसिंह के भी सिखो को फोड़ने मे लगे हुए थे। आखिर जब वायुमडल अनुकूल हो गया तो महाराज शेरसिंह कुछ आदमियों के साथ लाहौर पर चढ़ आये। अनेकों सिख नायकों ने शालीमार बाग मे जाकर उन्हें अपना राजा मान लिया। सुचेतसिंह और जनरल बेन्तूरा भी शेरसिंह जी से जा मिले। लगातार पॉच दिन की लड़ाई के बाद शेरसिंह जी का लाहौर पर प्रभुत्व हो गया। ध्यानसिंह और गुलाबसिंह ने बीच मे पड़कर महारानी चन्दकौर और शेरसिंह जी के बीच सन्धि करा दी। इसके अनुसार महारानी जी को जम्मू में नौ लाख रुपये की जागीर मिली। इस घरेलू युद्ध मे ४७८६ सैनिक ६१० घोड़े और पांच लाख रुपये खालसा राज्य के नष्ट हो गये। सिन्धान वाले सरदार अतरसिंह व अजीत

१. नौनिहालसिंह जी का जन्म ११ फवरी १८२० को हुआ और मृत्यु सन १८४० के ५ नवम्बर को हुई थी।



महाराजा शेरसिंह जी

अकाली वीर



बाबा फूला सिंह जी

सिंह भाग गये और लहनासिंह पकड़े गये। जिन्हें महाराज शेरसिंह ने अपना विरोधी समझकर जेल मे डाल दिया।

महाराज शेरसिंह जी को खालसा राज्य के अधिपति घोषित कर दिये गये और राजा ध्यानसिंह प्रधान मन्त्री।

महाराज शेरसिंह शरीर से स्वस्थ और सुन्दर सरदार थे। राजकाज मे भी दिलचस्पी लेते थे। किन्तु शराब की उन्हें काफी आदत थी। फिर भी वे ऐसे अयोग्य नहीं थे कि यदि शांति रहती तो वे राज-काज को न संभाल लेते।

उनकी यह भी इच्छा थी कि महारानी चन्दकौर के साथ उनका मेल हो जाय। उन्होंने कहा था कि यदि वे राजी हों तो मैं उनके साथ नाता कर सकता हूँ। पटरानी भी उन्हें ही बना दिया जायगा। आरम्भ में तो वे राजी न थी चूंकि उन्हें उम्मेद थी कि कुंवर नौनिहालसिंह जी की रानी नानकी जी के उदर से जो कि अटारीवालों की कन्या थी। अवश्य ही लड़का पैदा होगा किन्तु उनकी यह आशा पूरी नहीं हुई। बच्चा मरा हुआ पैदा हुआ। कुछ दिन के बाद वे राजी भी हो गई थीं। इसलिये अपनी जागीर से लाहौर आ गई। किन्तु गुलाबसिंह ने आकर बाधा डाल दी। उनकी टहल के लिये जो बांदियां रक्खी गई। उन्होंने महाराज शेरसिंह से जाकर कहा, रानी चन्दकौर तो आपको गाली देती हैं उधर रानी चन्दकौर से कहतीं कि महाराज तो तुम्हें ठगने की फिक्र मे हैं। नाता करने के बाद में तुम्हें बांदी बनाकर रखना चाहते हैं। दोनों ओर से तनाव पड़ गया। महाराज शेरसिंह जब कि जलालाबाद थे। बांदियों ने महारानी चन्दकौर का सिर ईंटों से फोड़कर उन्हें मार डाला। कहा जाता है महाराज शेरसिंह को खुश करने के इरादे से ही बांदियों ने ऐसा किया था। चालाक ध्यानसिंह ने बांदियों को कोतवाली पर मृत्यु का दंड देकर सिखों की सहानुभूति प्राप्त करली।

इस समय देश मे अराजकता फैलने लगी क्योंकि सैनिकों को समय पर तनख्वाह का प्रबन्ध न था। प्रबन्ध भी कहाँ से होता सूबों से कोई रकम आ नहीं रही थी। यत्र तत्र उपद्रव भी हो रहे थे। वे सिख भी महाराज शेरसिंह से नाराज हो रहे थे। जिन्हें कि महाराज ने आरम्भ के दिनों में बड़ी इनामे देने को कहा था। डोगरों ने इस मौके से भी लाभ उठाया; उन्होंने महाराज को उनके अनन्य भक्त ज्वाला-सिंह से भी नाराज कर दिया।

सिंधानवाले सरदार भाग कर शिमला और दिल्ली मे अंग्रेजों के साथ बातें करने लगे और अपने सम्बन्ध में शिफारसें भी कराईं। भाई रामसिंह जी ने कह सुन कर सरदार लहनासिंह जी सिंधान वाला को जेल से छुटकारा दिला दिया। लहनासिंह ने थोड़े दिनों मे महाराज को खुश कर लिया और अजीतसिंह और अतरसिंह भी महाराज ने वापिस बुला लिये। महाराज और सिन्धान वाले एक ही वृक्ष की शाखायें थे। उनके पूर्वज भी एक ही थे। सम्भव था कि वे आपस की पिछली कड़वी बातों को भूल जाते किन्तु राजा ध्यानसिंह इसे उचित न समझता था।[1] वह अब शेरसिंह की बजाय महाराजा रणजीत सिंह के छोटे राजकुमार दिलीपसिंह जी की ओर आकर्षित हुआ। सिंधान वाले ध्यानसिंह और शेरसिंह दोनों ही से प्रसन्न न थे वे चाहते थे। कि इन दोनों का खात्मा किया जाय।

१ और वह किसी न किसी तरह से इस खानदान को नष्ट कर देना चाहता था। खड्गसिंह और नौनिहालसिंह तो खत्म कर दिये थे। अब शेरसिंह को मिटाने की फिकर में था।

राजा ध्यानसिंह ने सिंधान वालों को उभाड़ा, उसने कहा जानते हो, महाराज आजकल तुम्हारे ऊपर इतने क्यों खुश हैं। उनकी ओर से आप लोग ज्योंही असावधान हुये तुम्हें वे मरवा डालेंगे। कहते हैं ध्यानसिंह ने उन्हें यह भी कहा कि मेरी तुम्हारे साथ सहानुभूति है और महाराज के खिलाफ जो भी तुम करोगे उसमें मैं सहायता दूंगा।[1] सिंधानवालों ने इस मौके पर लाभ उठा लेने की बात सोची। उन्होंने महाराज के पास जाकर कहा, ध्यानसिंह तो आपकी भी जान का दुश्मन बना हुआ है किन्तु वह हथियार हमें बनाना चाहता है। महाराज ने अपनी तलवार सिंधानवालों के हाथ में दे दी और कहा कि आप मुझे मार सकते हैं किन्तु वह छोड़ेगा आपको भी नहीं। सिंधानवालों ने कहा तब क्या यह उचित नहीं होगा कि इसका ही खात्मा कर दिया जाय आप इजाजत दें तो हम यह काम कर सकते हैं। महाराज ने अपने भोलेपन से उन्हें लिखित आज्ञा दे दी। कहा जाता है सिंधानवालों ने उस आज्ञा को ध्यानसिंह को दिखाकर उससे भी महाराज के मारने की आज्ञा लिखाली।

इस तरह के आज्ञापत्र पाकर प्रतिहिंसा से भरे हुये सिंधानवाले एक दिन पांच सौ सवारों के साथ लाहौर में आ गये। अपने आदमियों को इधर उधर लगा दिया। महाराज उस दिन लाहौर से शाह बिलावल के मकबरे के पास बाहर कुश्तियाँ देखकर इनाम बाट रहे थे। अजीतसिंह ने उनके सामने जाकर एक बन्दूक दिखाई और कहा, महाराज मैंने यह नई बन्दूक खरीदी है। आप देखिये तो, महाराज ने ज्यों ही बन्दूक लेने को हाथ बढाया कि उसने घोड़ा दबा दिया। गोलियाँ छाती में पार हो गईं। महाराज इतना ही कह पाये थे की 'दगा। लहनासिंह उधर प्रतापसिंह के पास जा पहुँचा था। उस बेचारे बालक को भी मार डाला।

सिख साम्राज्य का विनाशक आज तक जहाँ एक डोगरा परिवार ही था। वहाँ अब सिंधान वाला भी बन गया। ध्यानसिंह के दिमाग में यह बात घुस गई थी कि अपने पुत्र हीरासिंह को सिखराज का अधीश्वर बनाना चाहिए। इसके लिये रास्ता भी साफ कर रहा था।

दोनों बाप बेटों को मार कर सिंधानवाले राजा ध्यानसिंह के पास आये और उसे बड़ी खुशी के साथ सारा हाल सुना दिया। इसके बाद पूछा अब क्या करना है? ध्यानसिंह ने बिना ही परिस्थिति को देखे हुये कहा, करना यही है कि दिलीपसिंह जी को महाराज बनाया जाय और मुझे वजीर। अजीत सिंह ने भीषणता की हंसी हँसते हुये कहा, "ठीक है" दिलीप तो महाराज हो जायगे और आप बन जायेंगे मंत्री। बस इतना कह कर उसे (ध्यानसिंह) भी खत्म कर दिया। सरदार लहनासिंह की दृष्टि में अजीतसिंह का यह कार्य जल्दबाजी का रहा। क्योंकि वह चाहता था कि जब सारा ही डोगरा परिवार इकट्ठा हो तब यह काम किया जाय। यदि सचमुच ही ऐसा होता तो सिख साम्राज्य के लिये एक हद तक अच्छा ही रहता। ताकि इनके दुष्कृत्यों से सिख राज्य बचा रहता।

हीरासिंह ने जब अपने पिता के कत्ल का समाचार सुना तो वह बेहोश हो गया। किन्तु उसके परिवार के लोगों ने उसे उलाहना देकर बदला लेने पर उत्साहित किया। हीरासिंह के हृदय में प्रतिहिंसा की ज्वाला धधक उठी।

उधर सिखों ने जब सुना कि सिंधानवालों ने महाराजा शेरसिंह और उसके निःअपराध पुत्र को मारडाला है। तो वह भड़क उठे उधर हीरासिंह ने जाकर उभाड़ा। हालाकि सिंधान वालों ने हीरासिंह

१. सिखों का उत्थान पतन पृष्ठ १७६

के सामने यह सफाई पेश की कि उनके पिता को एक मुसलमान ने मारा है कि जिसे कि हमने मौके पर बदले में कत्ल कर दिया है। किन्तु उनकी इस बात पर विश्वास नहीं किया गया। सिखों का क्रोध शांत करने के लिये उन्होंने महाराजा दिलीपसिंह को लेकर गद्दी पर बैठा दिया और अजीतसिंह को मंत्री घोषित किया। फिर भी सिख शांत नहीं हुये। सिंधानवालों पर उन्हे यह भी शक होने लगा कि कहीं वे महाराजा दिलीप का भी खात्मा न कर दे और हीरासिंह भी यही कहकर उन्हे भड़काता था। सिंधानवालों की ओर से एक बात और फैलाई गई कि वे कहते है "हमने जो कुछ किया है अपनी भुजाओं के बल पर किया है।'

यह बात छावनी के सिखो को बरछी की तरह लगी, वे हीरासिंह की कमान मे चालीस हजार की तादाद मे इकट्ठे होगये। और मे वे अपने ही किले पर गोला बारी करने लगे। रात भर तोपे दगीं। नारे लगे। गोलियों की बौछार हुई। अजीतसिंह और उसके बहादुर सैनिक दीवार को पार करके-सेना को चीर कर निकल जाने के इरादे से—उतर रहे थे कि अजीतसिंह मार दिया गया। थोडी देर बाद लहनासिंह भी मारे गये। अमरसिंह उस समय बाहर होने की वजह से भागकर अंग्रेजों के इलाके मे चले गये। हीरासिंह की मुराद पूरी हुई।

उसने नये सिरे से महाराज दिलीपसिंह का राजतिलक किया। सिखों की आखो मे धूल झोंकने की चेष्टा से उसने महाराज के पैर चूमे। बहादुर किन्तु भोले सिखो ने हीरासिंह को ही महाराज का मंत्री बनाया।

उस समय महाराज दिलीपसिंह जी की अवस्था कुल पाच वर्ष की थी। कई अंग्रेज इतिहासकारों ने लिखा है कि वे छोटे थे। किन्तु बुद्धि उनकी बड़ी विलक्षण थी। यदि उन्हे राज्य करने का अवसर मिलता तो निश्चय ही वे बड़े पराक्रमी और चतुर शासक साबित होते। महारानी जिन्दाकौर जोकि माई जिन्दा के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनकी मां थीं। वेही अभिभावुक नियुक्त हुईं। वे राजकाज मे पूरा सहयोग देती थीं। अपने भाई सरदार जवाहरसिंह के साथ कभी फौजों मे महाराज को भेजतीं और कभी हाथी पर चढ़ाकर शहर में। ताकि सेना और प्रजा की उनमें भक्ति बढ़ती रहे।

महाराज दिलीपसिंह

हीरासिंह का सलाहकार जल्ला नामका एक तान्त्रिक ब्राह्मण था। वह बड़ा चलता पुर्जा था। उसकी सलाह से हीरासिंह शासन को चलाने मे कामयाब हो रहा था। किन्तु उन्हे महारानी के भाई सरदार जवाहरसिंह की तरफ से खटका था। इसलिये उन्होंने सेना में फैलाया कि जवाहरसिंह तो महाराज को अंग्रेजों के यहॉ ले जाना चाहता है। इधर जवाहरसिंह ने भी हीरासिंह के ताऊ सुचेतसिंह को मंत्री बनाने का प्रलोभन देकर फोड़ लिया। किन्तु जवाहरसिंह को यह पता न था कि खालसा मे उसके खिलाफ अंग्रेजों के साथ सम्बन्ध रखने की बात हीरासिंह की ओर से फैलाई जा चुकी है। इसलिये एक दिन जब कि वह महाराजा को मय सुचेतसिंह के खालसा के पास ले गया था। हीरासिंह की शिकायत करते हुये केवल धमकी के तौर पर यह बात कह डाली कि "हीरासिंह महाराज को बहुत तकलीफ देता है। अगर आप महाराज की रक्षा न करेंगे तो मे उन्हे लेकर अंग्रेजो के पास चला जाऊँगा"। जवाहरसिंह अपने ही तीर से विंध गया। खालसा ने उसे और सुचेतसिंह समेत गिरफ्तार कर लिया। महाराजा को भी रात भर सेना में ही रक्खा। दूसरे दिन प्रातः महाराज को तो हीरासिंह के हाथ सौंप दिया और जवाहरसिंर को जेल भिजवा दिया। हीरासिंह ने सुचेतसिंह के साथ भी कठोरता करनी चाही किन्तु उसे

गुलावसिंह जम्मू लेगया। हम तो समझते हैं। जवाहरसिंह को कैद करने मे डोगरों की चालाकी थी।

जल्ला पंडित ने महारानी जिन्दा के लिये भी बुरे भाव सिखों मे फैलाना शुरू किया। सिख इस बात से नाराज हुये। उधर जम्बू मे गुलावसिंह भी शांति से न बैठा रहा। उसने लाहौर दरबार के पास एक पत्र भिजवाया कि काश्मीरासिंह और पिशोरासिंह, अतरसिंह के साथ मिलकर सिख राज्य को हड़पने की कोशिश मे है। हीरासिंह ने उनके दमन के लिये गुलावसिंह के पास पत्र लिख दिया और एक सेना भी भेज दी। इस बात को सुनकर हजारों सिख सैनिक हीरासिंह से नाराज होगये और उन्होंने हीरासिंह और जल्ला पंडित को उसी की हवेली मे कैद कर लिया। हीरासिंह ने इस काम से अपनी अनभिज्ञता प्रकट करते हुए विश्वास दिलाया कि मैं राजकुमारों के साथ कोई दुर्व्यवहार न होने दूंगा और जल्ला पडित को अब राज काज से अलग कर दिया जायगा।

उधर गुलावसिंह की सेनाओं के हाथ जब दोनों राजकुमार जोकि अपनी जागीर को भी छोडकर भाग गये थे न आये तो गुलावसिंह ने उन्हे धोके से बुलाकर कैद कर लिया। यह थी डोगरों की वफादारी ?

इधर कुछ दिनों से वेतन रुका हुआ था। उधर काश्मीरासिंह और पिशोरासिंह गिरफ्तार कर लिये गये। इन कारणों से खालसा सेना एक बार फिर बिगडी उसने सुचेतसिंह को कहलवा भेजा कि तुम लाहौर आजाओ। मंत्री बना दिया जायगा। सुचेतसिंह लाहौर की ओर ४०० सैनिकों के साथ चला आया। किन्तु हीरासिंह ने अपनी चालाकी से पुनः सिख सेना को संतुष्ट कर लिया। आरजू, मिन्नत करने के अलावा उसने पुरुस्कार बांटने की भी घोषणा की और अपने ताऊ सुचेतसिंह की सेना पर हमला कर दिया। सुचेतसिंह इस लड़ाई मे मारा गया। कहा जाता है। सुचेतसिंह की मृत्यु से हीरासिंह को बहुत दुःख हुआ।

जवाहरसिंह जिसे कि नावालिग महाराज की इच्छा के अनुसार हीरासिंह ने मुक्त कर दिया था। सुचेतसिंह के मारे जाने के कारण लाहौर छोड़कर अमृतसर चला गया। वहाँ उसने भाई और बाबा सिंहों के सामने हीरासिंह की चालबाजियाँ पेश कीं, वे सब लोग जवाहरसिंह के पक्ष में होगये।

माझे मे में बाबा वीरसिंह रहते थे। जब उनके पास लाहौर के दिल दहला देने वाले षड्यन्त्रों के समाचार पहुचे तो वे बड़े दुखी हुये। उन्होंने घूम २ कर देहाती सिखों से कहा "लाहौर का राज्य गुरुओं के कृपा पर कायम हुआ राज्य है। इसकी रक्षा के लिये प्रत्येक सिख को कमर कसनी चाहिये। उनके प्रभाव से लगभग १५०० सिख उनके पास जमा होगये। अतरसिंह सिंधानवाला, कुँवर पिशोरासिंह और काश्मीरासिंह भी बाबा के पास पहुच गये।

जब हीरासिंह को यह खबर लगी तो उसने एक बड़ा दल इन्हें दमन के लिये भेजा। बाबा जी ने बहुत प्रयत्न किया कि रक्त पात न हो। किन्तु लडाई हो ही गई। इसमे बाबा वीरसिंह, सरदार अतरसिंह और काश्मीरासिंह अनेकों सिखों के साथ मारे गये। कुँवर पिशोरासिंह एक दिन पहले लाहौर चले आये थे वे बच रहे। उनके साथ हीरासिंह ने काफी बनावटी प्रेम दिखाया। उनकी आवभगत भी अच्छी की।

खालसा सेना बाबा वीरसिंह के प्राण तो ले आई। किन्तु उसे बड़ी ग्लानि हुई। उसका हृदय हीरासिंह से जल उठा। हीरासिंह ने बहुत कोशिष असंतोष को दबाने की की। किन्तु जब पाप का घडा भर जाता है तब फूट कर ही रहता है। इन्हीं दिनों अफवाह उडी कि हीरासिंह और जल्ला पंडित महारानी और महाराज के साथ कठोरता का बर्ताव करते है। फिर क्या था अग्नि पर घी की आहुति

पड़ गई। वीर सिख उन्मत्त हो उठे। चारों ओर मे किले को घेर लिया गया। अब हीरासिंह ने समझ लिया कि उसके प्राणों की रक्षा भाग कर ही हो सकती है। प्रात.काल के समय जल्ला पंडित के साथ वह भाग निकला। किन्तु सिखों ने उसे पकड लिया। दोनों के शिर काट लिये गये। जल्ला की लाश कुत्तों के सामने पटक दी गई। हीरासिंह और उसके चचेरे भाई सोहनसिंह के जोकि गुलाबसिंह का लड़का था सिर शहर के बाहर दरवाजों पर टाँग दिये गये।

जवाहरसिंह की इच्छायें पूरी हुईं और उसे खालसा ने मंत्री बनाया। जवाहरसिंह ने सेना मे पुरस्कार बाटा। इस प्रकार उसने सेना को खुश कर लिया। लालसिंह ने पिछले दिन सरदार जवाहरसिंह का साथ दिया था। वह जल्ला पडित और हीरासिंह से जलने लग गया था। जवाहरसिंह के मंत्री होने से उसकी पूछ और भी बढ गई।

किन्तु खजाना खाली था। मुल्तान और जम्मू तथा पेशावर के सूबेदार पैसा न भेज रहे थे। जम्मू के प्रबन्धक गुलाबसिंह की ओर तीस करोड रुपये निकलते थे। अत. जवाहरसिंहने पहले उसीपर चढ़ाई करने को सेना भेजी। गुलाबसिंह डर गया। उसने तीन लाख रुपया तो सेना को भेट किया और खुद लाहौर हाजिर हुआ। महारानी जिन्दा ने उसे क्षमा कर दिया। केवल ६ लाख ८० हजार जुर्माना उस पर किया और कुछ इलाके छीन लिये।

गुलाबसिंह ने जम्मू पहुचकर महारानी और उसके भाई जवाहरसिंह से बदला लेने की सोची। उसने पिशोरासिंह को भड़काया और उससे ऐलान करा दिया कि मेरे होते हुए दिलीपसिंह को गद्दी देकर मेरे साथ न्याय नहीं हुआ है। इधर गुलाबसिंह ने अपने सलाहकार जवाहरमल नाम के आदमी को लाहौर भेज दिया कि वह खालसा सेना को पिशोरासिंह का साथ देने को तैयार करे। खालसा सेना ने पिशोरासिंह के लाहौर आने पर उससे यह कहकर मदद देने से इन्कार कर दिया कि दिलीप और आप दोनो महाराज रणजीतसिंह के पुत्र हो हम किसी की कोई मदद नहीं करेंगे। तुम्हारे गिरफ्तार करने का हमें जवाहरसिंह की ओर से जब हुक्म मिला तो उसे भी हमने यही जवाब दे दिया है। पिशोरासिंह लाहौर से चला गया और अटक पहुंच गया। कहा जाता है कि वहाँ उसे फतहसिंह ने धोखे से मार दिया।

सिख सेना जवाहरसिंह से भी नाराज थी पेशावरासिंह के मारे जाने के बाद यह नाराजगी और भी बढ़ी। उन्होंने जबकि जवाहरसिंह सेना में कार्यवशात गया था। उसे मार डाला।

महारानी जिन्दा सेना से उसकी इस हरकत पर बहुत नाराज हुई। वह अपने भाई की लाश से लिपट गई और फिर फोड़ने लगीं। जिम्मेवार सिख सेनापतियों ने महारानी को विश्वास दिलाया कि हम लोगों से बिना ही पूछे यह काम जल्दी मे हुआ है। अपराधी जवाहरमल को जो कि गुलाबसिंह का आदमी था अन्य साथियों सहित महारानी जिन्दा के सुपुर्द कर दिया।

विवश होकर रानी ने संतोष किया। उन्होंने शासन करने के लिये एक कौंसिल कायम की। जिसमें दीवान दीनानाथ, भाई रामसिंह और मिश्र लालसिंह सदस्य थे। लालसिंह ने जवाहरसिंह का साथ दिया था इसलिये रानी अपना आदमी समझती थीं।[1]

१ तेजसिंह और गुलाबसिंह के नाम की पर्चियां मंत्री पद के लिये डाली गईं और दैवयोग से लालसिंह की पर्ची निकल आई और वह मंत्री हो गया।

इस प्रकार से गृह कलह और रात दिन की खून खराबियों मे छः वर्ष बीत चुके थे। अब सन १८४५ चल,रहा था। महाराज की आयु भी ६-७ साल की हो चुकी थी। अब उम्मेद भी थी कि आगे कोई फिसाद न उठेगा। किन्तु खजाने खाली थे और सेना का वेतन चढ़ा हुआ था। भूखी सेनाएं राजा की दुश्मन होती है। अत. सैनिकों मे असंतोष की लहर दौड़ रही थी। अब तो एक ही उपाय हो सक्ता था कि कोई चतुर और वफादार सेनापति इस विशाल सेना से विजय यात्रा करा देता। किन्तु इस सेना के जो इस समय अफसर बने हुए थे। वे सिख राज्य के ही नहीं किन्तु सिख धर्म के भी दुश्मन थे। हालाकि उन्होंने सिखों का जैसा वेश बना रखा था। किन्तु उन मे वह माद्दा न था जो गुरु के लाडले खालसाओं मे था।

जब खालसा राज्य मे इस प्रकार धांधली मची हुई थी। अंग्रेजों ने इस अवसर से लाभ उठाना आरंभ कर दिया। खालसा दरबार के विद्रोहियों को बड़ी प्रसन्नता से शरण देने लग ही गये थे। किन्तु शेरसिंह के पंजाब का महाराजा बनते ही अंग्रेजों ने उन्हे लिखा कि हम खालसा सेना की उद्दडता को दूर कर सकते है किन्तु बदले मे तुम्हारे सतलज के दक्षिण के प्रदेश और चालीस लाख रुपया देना होगा। किन्तु शेरसिंह ने इस सहायता के लिये इनकार कर दिया। इससे भी अंग्रेज निराश नहीं हुए। अफगान स्थित कर्नल एवट ने उन्हीं दिनों घोषणा की कि सिख दरबार से की हुई हमारी सन्धि भंग होगई है।

सन् १८०६ ई० की संधि के अनुसार सिख साम्राज्य के निकट वे छावनी नहीं बना सकते थे किन्तु उन्होंने इस प्रतिज्ञा को तोड़ दिया। लुधियाना और फीरोजपुर मे छावनियाँ कायम कर लीं। लुधियाने को रानी लक्ष्मनकौर से जब्त ही इसीलिये किया गया। फीरोजपुर एक प्रकार से लाहौर दरबार का एक रक्षित राज्य था। इसके सिवा अम्बाला और अन्य पड़ौसी पहाड़ी इलाकों में भी उन्होंने अपने सैनिक कैम्प खोल दिये। सीमाप्रान्त मे आरम्भ मे केवल ढाई हजार अंग्रेजी सेना के आदमी रहते थे किन्तु धीरे २ बतीस हजार इकट्ठे कर लिये। यह सब तैयारियाँ सिखों से लड़ने के लिये ही कही जा सकती हैं। चाहे उस समय अंग्रेज सरकार ने कारण कुछ भी बताये हों।

सिख साम्राज्य के तीन ओर अंग्रेजी सेनायें बढ़ाई जा चुकी थीं। जम्बू की ओर गुलाबसिंह को मिलाने की कोशिशे चल रही थीं। फिर भी सतलज नदी अंग्रेजों को अपने मार्ग में कांटा दिखाई देती थी उसे वह सिख राज्य की रक्षा मे खास चीज समझते थे। अत. उस पर मजबूत पुल बनवाने के लिये बम्बई मे सामान तैयार किया जाने लगा। सिखों को यह खबर लग गई।

लड़ाई के लिये अंग्रेज तैयार थे। वे कोई बहाना चाहते थे। बहाना सिखो के भड़कने से ही मिलता अत. जिस ब्राड़फुट के प्रति सिखों की शिकायतें थीं। उसे ही अंग्रेज अधिकारियों ने अपना राजदूत बना कर लाहौर दरबार मे भेजा। सिख अब भी चुपचाप थे। वे सब बातों को सह रहे थे। लेकिन ब्राडफुट यह तो नहीं चाहता था कि सिख बर्दास्त करते रहे। उसका तो मंशा ही यह था कि वे किसीतरह भडक उठें जिससे हमें लड़ने का बहाना मिले।

हालाकि सन् १८०६ ई० की सन्धि के अनुसार वे फीरोजपुर के पास से सतलज पार कर सकते थे। उलटा उन पर इल्जाम यह लगाया कि ब्रुटिश इलाके में सिख सैनिक बिना इजाजत लिये घुसे। उसने सतलज मे जहाज चलवाये और उन्हें सिखों की सीमा मे खूब घुमाया। ब्रुटिश सैनिकों का सतलज मे प्रदर्शन कराया। वह जो भी कुछ उभाड़ने के लिये कर सकता था सब किया। कनिंघम ने लिखा है कि मेजर ब्राडफुट के एजन्ट बनने के ही कारण सिख युद्ध शीघ्र संभावित हुआ।

बात यहीं तक रहती तब भी शायद सिख बर्दाश्त कर लेते। ब्राडफुट ने तो उस मूलराज का भी पक्ष लिया जिसने वर्षो से मुलतान सूबे की मालगुजारी लाहौर के खजाने में दाखिल नहीं कराई थी और अब अपने को स्वतन्त्र शासक समझने लगा था। ब्राडफुट ने सिन्ध विजेता नैपियर साहब को लिखा। मूलराज अंग्रेजों की सहायता चाहता है। सिख सेना उससे लड़ने गई है। अगर वह जीत गई तो उसका हौसला बढ़ जायगा और वह अंग्रेजों के लिये भी फिर जायगी। नैपियर खुद ही ब्राडफुट से सिखों से द्वेष रखने में आगे था। उसने सिन्ध में उन सिख सिपाहियों के ऊपर हमला करा दिया था जो (सन् १८४५) डाकुओं का पीछा करते हुये उसके कैम्प के ईर्द गिर्द तक पहुँच गये थे। हालाकि कानूनी रूप से उस समय तक सिन्ध में कोई सीमाये निश्चित नहीं हुई थी। नैपियर और ब्राडफुट दोनों ही चिल्लाते थे कि 'सिखों से युद्ध होना है।" अंग्रेजों का अखबार भी ऐसी ही खबरें छापता था। इसके अलावा ब्राडफुट ने लुधियाने में दो सिख जागीरें जब्त कर लीं जो कि सन्धि के नियमों से बिल्कुल बाहर की बात थी।

इन सब घटनाओं के कारण सिखों का खून उबल उठा। उबलता भी क्यों न जब कि न तो उनकी भुजाये निर्बल थीं और न उनके हथियारों में ही मोरचा लगा था। आम सिख सैनिकों और सिख सरदारों की भावना को देखकर वे लोग भी लड़ाई के लिये तैयार हो गये जो अन्तकरण से खालसा सेना से संतुष्ट न थे उन्होंने भी इस समय लड़ाई को उचित ही समझा वे खालसा की शक्ति के कमजोर होने में ही अपना हित समझते थे। उनका वश चलता तो इससे भी पहले खालसा सेना को लडाई में पटक देते किन्तु चूंकि गोला बारूद की कमी थी, इसलिए वे समय को टालते रहे।

सन् १८४५ ई० के नवम्बर से घरू शत्रु भी सेना को उत्तेजित करने लगे। कभी कहा जाता अंग्रेजी सेना सतलज पार कर रही है कभी अंग्रेजों को धमकी की जाली चिट्ठी दिखाई जाती। हम कहना चाहते हैं कि जहाँ अंग्रेजों ने सन्धि भंग करके सिखों को उभाड़ने के लिये आग जलाई वहाँ घरू दुश्मनों ने उसमे आहुतियाँ दीं।

लालसिंह ने खालसा सरदारों और समस्त सिख पंचायतों का एक संयुक्त अधिवेशन किया। शालामार बाग सिखों से खचाखच भरा हुआ था। दीवान दीनानाथ ने खड़े होकर कुछ पत्र सुनाये। जिनका सारांश था सतलज के इस पार के कुछ इलाके पर अंग्रेजों ने अपना दखल देना शुरू कर दिया है। वे सिख प्रजा से कर मांगते हैं। पेशावर पर शीघ्र ही अंग्रेज अफगानों का अधिकार करा देना चाहते हैं। काश्मीर और मुलतान के सूबे बिगड़ गये हैं। अंग्रेज शह देते हैं। खजाने में राजस्व के नाम पर कुछ नहीं आ रहा है। इन पत्रों को पढ़ने के बाद उसने महारानी जिन्दा की ओर से बोलते हुये कहा, "खालसा जी, जिस राज्य को स्वर्गवासी महाराज ने कायम किया था और जो समस्त सिखों की शान है आज उस पर विपत्ति के बादल मंडरा रहे हैं। दुश्मन उसे नष्ट कर देना चाहते हैं। बोलो इस समय आपका क्या कर्तव्य है। चारों ओर से हजारों कंठों से आवाज आई। "हम अपने हृदय का भी रक्त बहा कर अपने राज्य की रक्षा करेंगे।"

जब कि सिख सेना में ऐसी प्रबल युद्ध आकांक्षा जागृत हो रही थी। उस समय गवर्नर जनरल ने ब्रिटिश राज्य की सीमा पर जहाँ से कि सिख राज्य निकट ही था डेरे आ जमाये। फिर क्या था? सिखों ने समझ लिया कि अब देर करने में अपनी ही हानि होगी। इसलिये वे अंग्रेजों की ओर से तैयारियों को देखकर उनकी तरफ के खतरे से अपने देश को बचाने के लिये सतलज की दक्षिण में अपने इलाके में अपनी फौज को पहुँचा देने का फैसला कर दिया। लाहौर युद्ध की प्रति ध्वनि से गूंज उठा। सिख लोग

महाराजा रणजीतसिंह जी की समाधि पर इकट्ठे हुए। खालसा के समस्त सरदारों और पंचों ने गुरु ग्रन्थ साहब को स्पर्श करके प्रतिज्ञा की कि महाराज दिलीपसिंह जी के प्रति वफादार रहेंगे।

अंग्रेजों की ओर से हो रही ज्यादतियों और बेइन्साफियों को इन चार बातों में लाहौर दरबार की ओर से बताया गया।

(१) लड़ाई करने की पहल अंग्रेजों की ओर से हो चुकी है। उनकी कुछ सेनायें सतलज को पार कर आई हैं। (२) फीरोजपुर के खजाने में राजा सुचेतसिंह का जो अठारह लाख रुपया जमा है। उसे सिख दरबार के मांगने पर भी अंग्रेजों ने नहीं दिया है। (३) मृत राजा सुचेतसिंह की समस्त संपत्ति पर उनके बाद सिख दरबार का अधिकार है अंग्रेज कर्मचारी इसे स्वीकार नहीं करते (४) सतलज के दक्षिण लाहौर दरबार के जो इलाके हैं उनमें हमारे सैनिकों को आने जाने से अंग्रेजों ने रोक दिया है। अतः हम समझते हैं कि अंग्रेज न केवल सन्धियों को ही भंग कर रहे हैं किन्तु वे खालसा राज्य के मामलों में भी दखल डालते हैं।

दोनों ओर से लड़ाई की तैयारी होने लगी। फ्रांसीसी नैपोलियन को कैद कर लेने भारतीय मरहठों को मटियामेट कर देने और राजपूत राजाओं का बल निकाल देने के बाद से फौजी अंग्रेजों के दिमाग अभिमान से आसमान पर चढ़ गये थे। क्योंकि उनसे पठान कांपते थे बिलोच घबराते थे। अब बाकी थे तो केवल गुरु के लाडले, रणजीतसिंह के शूर, जननी के सपूत और खालसा के वीर सिपाही सिख। अंग्रेज सिख सैनिकों के बल को नापना चाहते थे। उनके दिलों में बहुत दिनों से लालसा थी। वे मौके की तलाश में थे। उन्होंने मौका भी पैदा कर लिया। इधर सिख वीरों के मन में गोरे सैनिकों से दो-दो हाथ कर लेने की लालसा हुई थी। क्योंकि उनकी भुजाओं में भी वह बल था जिसका लोहा मानकर राजपूत उनके महाराज पर चंवर करते थे। गोरखा गुफाओं से बाहर न निकलते थे और पठान अफगान मकबूल कर रहे थे। उन्हें अंग्रेजों से तनिक भी भय न था क्योंकि वे काबुल में उनके साथ रह कर देख चुके थे। भरतपुर में उनकी जो गति हुई थी उसकी चर्चा सुन चुके थे। जब दोनों ही ओर से लड़ने का चाव हो फिर चाहे वह प्रतिहिंसा से ही क्यों न हो तब भला युद्ध क्यों न होता।

अंग्रेजों के सैकड़ों भेदिये लाहौर में लगे हुए थे ज्योंही सिख सेनाओं ने कूच किया और उन्हें पता चला त्योंही अम्बाला, लुधियाना और फिरोजपुर से अंग्रेजी सेनायें सामना करने के लिये तैयार हो गईं।

युद्ध

सिखों की रणवाहिनी ११ दिसम्बर सन १८४५ को सतलुज पार उतर आई। १६ वीं दिसम्बर को सिख सेनापतियों ने अपने आगमन की सूचना दे दी। कहा जाता है इस समय अंग्रेजों ने भी युद्ध की घोषणा कर दी और उसमें युद्ध के लिये तैयार होने का सारा दोष अंग्रेजों ने सिखों के सिर मढ़ा। यह ठीक है कि घोषणा अंग्रेजो ने सिखों से पीछे की किन्तु तैयारी उन्होंने सिखो से भी पहले की थी। अम्बाले से सतलज तक ३२४७६ सैनिक पहले से ही उन्होंने जाल की भांति पूर रक्खे थे। फिर भी उन्होंने घोषणा में यही कहा कि सिखों ने अकारण ही हमारे इलाके पर हमला किया है। अत. अब हम सतलज के बाई ओर के लाहौर दरबार के इलाके पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित करते हैं।

अंग्रेज इतिहासकारों ने सिखों की २५, २६ हजार सेना बतलाई है और अंग्रेजों की केवल १७ हजार थी, किन्तु कनिंघम ने इस बारे में एक सच्ची बात कही है वह यह कि "शत्रु की सेना को अपने से अधिक बताने में लड़ने वाले अपनी प्रशंसा समझते हैं।"

हम लोग आजकल जापान या अमरिका के उन देशभक्तों की बडी प्रशंसा किया करते हैं जो किसी भी छोटे से छोटे काम को करने मे हिचकते नहीं किन्तु आज से पचास वर्ष पहले सिखों मे अपने देश और राज्य के लिये जो मुहब्बत थी वह ससार मे भारत का सिर ऊचा उठा देने वाली है। लड़ाई का बिगुल बजते ही कुलियों के अभाव मे उन्होंने गाड़ियों मे अपना सामान लादा। खिच्चर कम होने की हालत मे गाड़ियों को भी खींचा और नावों को सतलज मे अपने ही हाथों से धकेल कर पार लगाया वे इस युद्ध मे उसी प्रसन्नता से प्रत्येक कार्य को करते थे। जितनी प्रसन्नता से धनी लोग व्याह-शादियां करते हैं। अपने देश की आजादी को अटल बनाये रखने के लिये वे प्राण देने जा रहे थे। किन्तु किसी भी चेहरे पर न चिन्ता थी और न घबराहट। ऐसा शायद ही कहीं होता हो।

इस प्रकार के उत्साह और देश प्रेम से ओतप्रोत खालसा सेना को भी अंग्रेज उपेक्षा की दृष्टि से देख रहे थे उनका अनुमान था कि सिख जितना घमंडी है उतना वीर नहीं। वह हमारे ट्रेन्ड सिपाहियों के सामने कितनी देर ठहरेगा। जिस समय हमारी तोपें आकाश के हृदय को विदीर्ण करने वाली गर्जन से धुंआ उगलेंगी वह भाग खड़ा होगा। फिर उनका कोई योग्य सेनापति भी तो नहीं। हम युद्ध की कला जानते हैं। सिख तो केवल मजबूती पर बावले बने हुए है। ड्यूक आफ विलिंगटन का भी यही खयाल था उसने नेपोलियन को हराया था इसलिये लार्ड गफ ने जो कि अंग्रेजी सेना का जनरल था यही युद्ध संचालक नियुक्त हुआ।

युद्ध का वर्णन करने से पहले हमें सिख सेना के सेनापतियों के बारे में कुछ कह देना जरूरी है ताकि युद्ध मे सिखों की हार-जीत के मामले को समझने मे पाठकों को सुविधा हो।

सिख जिस उत्साह और " न पलायनम न, दैन्यम " की जिन प्रतिज्ञाओं को लेकर रण में उतरे थे, वह बातें उनके सेनापतियों मे न थीं। लालसिंह और तेजासिंह दोनों ही विजय की आकांक्षा से नहीं आये थे किन्तु खालसा की शक्ति को क्षीण कराने को आये थे। वे अंग्रेजों के हाथ मे खेल रहे थे पंजाब से उन्हें कोई प्यार नहीं था क्योंकि वे यहां से दूर के रहने वाले थे।

बहादुर सिखों का उद्देश्य अपना सर्वस्व गंवा कर भी अपने राज्य की रक्षा करना था और उनके सेनापतियों का उद्देश्य उनकी शक्ति को क्षीण कराना था। इस स्थिति मे सिख वीरों ने जो बहादुरी दिखाई वह तब तक अमर रहेगी जब तक कि संसार मे एक भी आदमी वीरता की कदर करने वाला मौजूद रहेगा।

सतलज के इस पार आते ही लालसिंह ने अंग्रेज ऐजेंट मि० निकलसन को एक पत्र लिखा—"आप जानते होंगे मैं अंग्रेजों का मित्र हूँ। मैं सिख सेना समेत सतलज पार उतर आया हूँ। अब कहिये मुझे क्या करना चाहिये।" निकलसन ने इसके उत्तर मे लाल सिंह को सलाह दी कि यदि आप सचमुच अंग्रेजों के हितैषी हैं तो सिख सेना को फीरोजपुर पर आक्रमण करने से रोकते रहिये। जितने दिन भी हो सके सेना को लड़ाई से रोके रहिये। और किसी भी तरह उसे गवरनर जनरल की सेना के सामने ले जाइये। लालसिंह ने खरीदे हुए गुलाम की भांति निकलसन को इस आज्ञा को माना। बार बार सिख सैनिकों के फीरोजपुर पर आक्रमण करने के इरादे को टालता रहा। यदि वह वह उस समय सैनिकों को इजाज़त दे देता तो फीरोजपुर सिखों के हाथ आ जाता और वहा से उन्हें इतना धन और हथियार हाथलगते कि अंग्रेजों को हराना उन्हें कुछ भी मुशकिल न होता। फीरोजपुर पर वे अवश्य ही कब्जा कर सकते थे। कारण कि उस समय वहां बहुत कम सैनिक थे। इसके बाद लुधियाने और अम्बाला पर एक ही साथ

व्यूह पर धावा करना था। किन्तु वार-वार के सर्व-ग्रासी धावों के वाद अंग्रेजी सेना सिखों के व्यूह को न तोड़ सकी। प्रत्येक हमले में अंग्रेजी सेना को हानि उठानी पड़ी। अग्रेजी सेना को इससे पहले किसी भी एशियाई लड़ाई में इतना लज्जित न होना पड़ा था।

इधर सिख गोलन्दाज भी अग्रेजों की इस प्रकार की अग्नि वर्षा से भभक उठे। उन्होंने अपनी तोपों का मुंह अंग्रेजो तोपखाने की ओर फेर दिया। जिसमें केवल तोपों को ही नष्ट नहीं किया किन्तु रसद की भरी हुई गाड़ियों को भी ध्वंस कर दिया। इससे बढ कर उन्होंने अंग्रेजों के वारूद खाने में गोला फेंक कर आग लगा दी। वारूदखाने में आग लगने से अग्रेजी सेना में हाहाकार मच गया किन्तु सेनापतियों की दृढ़ता के कारण सेना भागने से रुकी रही। सेना भागी नहीं सही किन्तु अंग्रेज सेनापतियों को यह अनुभव हो गया कि आज तक उन्हे ऐसे सकट का सामना किसी भी लड़ाई में नहीं करना पडा था। सेना भेडों की तरह इकट्ठी होने लगी।

उस समय एक विचित्र घवराहट अग्रेजी सेना में थी। सिपाही गोलिया चलाते थे किन्तु उन्हे यह होश न था कि लक्ष्य किसे वना रहे है। गोलन्दाजों को निशाने पर गोला मारने की शक्ति कुंठित हो रही थी। सेनापति हुक्म देना चाहता है किन्तु वह किसे हुक्म दे और कौन हुक्म की तामील करेगा यह यह निश्चय करना उन्हें मुश्किल हो रहा था। कारण कि उनका वनाया हुआ व्यूह छिन्न हो चुका था। इसी अरसे में रात्रि आगई किन्तु लड़ाई कैसे वन्द हो। मामला सारा अस्तव्यस्त था। सिखों के इस अधेरे में भी एक धावा मारा अंग्रेजी सेना का वाया भाग तोड़ दिया। मि० लिटलर उस भाग पर थे। वे फौज को वचाने की गर्ज से भाग निकले।[1] वालस साहव की अध्यक्षता में जो दो पलटनें लड़ रही थीं वे भाग कर गिलवर्ट की सेना के व्यूह के पीछे हो गईं। लार्ड हार्डिंग और लार्ड गफ ने देखा सिखों की एक तोप इतनी अग्नि वर्षा कर रही है कि उससे अंग्रेजी सेना भुनी जाती है उन्होंने भारी गोलावारी कराकर उस तोप को वन्द कर दिया।

सिखों ने इस समय लालसिंह से जो पीछे के भाग में खड़ा था कहा आप अपनी इस ताजी सेना को अग्रेजों पर हमला करने की इजाजत दीजिये। आज का मैदान हमारे हाथ रहेगा। किन्तु लालसिंह ने यह वहाना वना दिया कि अंग्रेजों की एक ताजी सेना इस पर हमला करने वाली है।

घना अन्धकार होने पर लड़ाई खतम हो गई। दोनों सेनाये अपने-अपने कैम्पों को चली गई।[2]

दूसरे दिन वड़े तड़के ही दोनों ओर से फिर मारकाट की ध्वनि व्याप्त हो गई। अग्रेजी सेना ने लालसिंह की सेना पर भी आक्रमण कर दिया जिसे कि वह पीछे लिये खडा था। क्योंकि उन्हे भय था कि यह सेना अगली सेना को मदद न दे वैठे। इस हमले से उस सेना की वड़ी दुर्गति हुई क्योंकि वह लड़ने के लिये तो व्यूह वना कर थोडे ही खडी थी। उस सेना की रक्षा तेजसिंह की अध्यक्षता में खड़ी सेना ने की। हालांकि तेजसिंह ने उसे उन समय तक आज्ञा नहीं दी जब तक कि दुवारा अग्रेजी सेना

१. लार्ड हार्डिङ्ग की उस सूचना का सार जो उन्होने इगलैंड भेजी थी।

२ रोवर्ट ने २२ दिसम्बर को अपने रोजानामचे में लिखा है कि २१ दिसम्बर को अग्रेजी धावा नाकामयाव रहा और हालात इतने खराव थे कि सरकारी कागजात जला देने का खयाल हो रहा था। इसके साथ ही हम सिखों के सामने विना शर्त हथियार डाल देने की तैयारियां कर रहे थे जो कि मुझे निहायत दुख की वात प्रतीत हो रही थी।

उन पर भी आक्रमण नहीं किया। दोनों सिख सेनायें जब लड़ाई में शामिल हो गईं तो अंग्रेजी सेना घबरा गई। अंग्रेजी सेना के कई दल भाग निकले। विजयलक्ष्मी सिखों को ही प्राप्त होने वाली थी कि विश्वासघाती तेजसिंह मैदान से निकल भागा और साथ ही अपने आदमियों को भी भागने का इशारा कर दिया। अंग्रेज सेना का हौसला बढ़ गया और सिख असमंजस में पड़ गये। इस प्रकार भागने की हालत तक पहुंची हुई अंग्रेजी सेना की विजय हो गई। मि० कनिंघम साहब ने इस युद्ध का हृदय द्रावक वर्णन इस प्रकार किया है "यह घटना ऐसी थी कि जिसमें सच्चे हृदय के मनुष्य को युद्ध करने का उत्साह बढ़ता पर विश्वासघाती सिख सेनापति तेजसिंह के ऊपर इसका उल्टा असर हुआ। उन्होंने तोपें बन्द करवा दीं। और अपने घोड़े को मोड़कर सतलज की ओर जितना ही जल्दी हो सका उतनी ही जल्दी भागे। यह उन्होंने ऐसे समय में किया जब उन्हें विजय होने वाली थी। क्योंकि उस समय बृटिश सेना का कुछ भाग फीरोजपुर से पीछे हट रहा था।[१]

इस युद्ध में अंग्रेजों की विजय तो हुई किन्तु उन्हें यह पड़ी बहुत महंगी। इनकी कीमत में उन्हें अपने ढाई हजार सैनिकों और अनेक योग्य अंग्रेज अफसरों को स्वाहा करना पड़ा। इस भारी नुकसान से अंग्रेज सेनापति तिलमिला उठे। वह बड़ी शीघ्रता से लड़ाई का सामान और सैनिक बढ़ाने लगे और उस समय तक के लिये उन्होंने लड़ाई स्थगित कर दी।

इस लड़ाई के सम्बन्ध में 'सिख और सिख युद्ध' के वे लेखक आर्थर डी इनस और चार्लस गफ ने लिखा है —

"भारत में आज तक जितने प्रकार के सैनिकों का सामना करना पड़ा है सिख उनमें सबसे अधिक बढ़कर दक्ष, भीषण और दुर्जय प्रतीत हुये।" इसमें सन्देह भी नहीं यदि सिखों के सेनापति योग्य और विश्वासपत्र होते तो इस युद्ध का फल ही कुछ और होता।

अंग्रेजों की शिथिलता को देखकर सिख पुनः सतलज के इस पार आगये और उन्होंने कई मोरचे बना लिए। तथा कुछ दल अंग्रेजी सेना की रसद के सामान को लूटने के लिये मुकर्रिर होगये। यह सब काम सिख सैनिक खुद ही उसी प्रकार कर रहे थे। जिस प्रकार स्वयं सेवक अपनी ड्यूटी खुद चुन लेता है।

फिरोजपुर की लड़ाई के बाद एक पासा और पलटा वह यह कि सतलज के आस पास के प्रदेश में जितने सिख जागीरदार और राजा रईस थे और जिन्हें कि अंग्रेजो ने उनके गृह-कलह से लाभ उठाकर कलम की एक रगड़ से अपने मातहत कर लिया था। सब हृदय से सिखों को ओर होरहे थे। अंग्रेजों को उनसे बड़ी २ उम्मीदें थीं। वे समझते थे रसद के तो यह लोग ढेर लगा देंगे। किन्तु वैसा न हो रहा था। कपूरथला की सेना ने कतई इनकार अंग्रेजों की ओर से लड़ने का कर दिया था। गढमुक्तेश्वर और धर्मकोट के जैसे छोटे २ किलेदार भी अब सिखों की ओर ही मिलने को उत्सुक हो रहे थे। सरदार रणजोधसिंह मजीठिया जिसे कि अंग्रेजों ने मार भगाया उनकी डावाडोल स्थिति समझकर मैदान में आगया और उसने बद्दोवाल पर कब्जा कर लिया। यही क्यों उसने लुधियाने की अंग्रेजी छावनी में आग भी लगा दी।

फीरोजपुर में जो सिख सरदार अंग्रेजों की रक्षा और मदद के लिये इकट्ठे हुये थे। अंग्रेज उनसे भी शंकित थे।

१ The Sikhs and the Sikh wars by आर्थर डी इन्स M. A.

वद्दोवाल पर रणजोधसिंह का कब्जा हो जाने से अब अंग्रेजों की दृष्टि में वही लड़ाई का मैदान बनना था। वे रसद की प्रतीक्षा कर रहे थे और रसद सही सलामत आ पहुचे, इसके लिये उन्होंने प्रबन्ध भी खूब किये। १७ जनवरी सन् १८४६ को हैरीस्मिथ ने कुछ सेना लेकर धर्मकोट को जा घेरा क्योंकि अंग्रेजों का खयाल था कि सिख धर्मकोट की रक्षा में लग जायेंगे और तब तक रसद फीरोजपुर पहुँच जायगी। किन्तु सिखों ने इससे उलटा किया। उन्होंने लुधियाने पर एक बडा दल भेज दिया। ताकि अंग्रेजों का ध्यान उधर आकर्षित हो जावे। हुआ भी वही। हैरीस्मिथ भी धर्मकोट से तुरन्त ही लुधियाने की ओर बढ़ा क्योंकि उसे विश्वास था कि समस्त सिख ताकत उधर ही है। उस समय वद्दोवाल में दस हजार सिख सैनिक थे। हैरीस्मिथ वद्दोवाल से ६ कोस लुधियाने की ओर डेरा डाले और रसद को अपने दाहिनी ओर करके लुधियाने को रवाना किया। सिखों ने भी इस समय बुद्धिमानी से काम लिया। उन्होंने रसद और हैरिस्मिथ के दल के बीच में पीठ पीछे तक तोपखाना लगा दिया और रसद के बाईं ओर से हमला कर दिया। इधर हैरी के साथ भी छेडछाड कर दी। हैरीस्मिथ को रसद तक पहुचने के लिये मुश्किल होगई। अगर वे रसद की ओर मुड़ते तो पीछे सिखों की तोपें थीं और रसद तक पहुँच भी जाते तो वे सिख सेना के बीच में दो ओर से घिर जाते। इस प्रकार की चतुराई से सिखवीरों ने अंग्रेजों की रसद और गोला-बारुद का सामान लूट लिया। अंग्रेज सेना रसद गोले और तोपों की रक्षा के मोह को छोडकर लुधियाने की ओर भाग निकली। किन्तु इस समय सिख नायक रणजोधसिंह ने एक गलती की और वह यह कि सिखों को भागती सेना का पीछा नहीं करने दिया। वरना और सामान हाथ लगता और उनकी एक अच्छी शक्ति नष्ट हो जाती। साथ ही कुछ सामान दिल्ली से तोप आदि जो आ रहा था। उसे भी लूटने को सिखों को न जाने दिया। इस प्रकार अंग्रेज एक बडी आफत से बच गये।

वद्दोवाल युद्ध के बाद सिख सेना २२ जनवरी १८४६ ई० को वहाँ से रातों रात चलकर लुधियाने ३५ मील सतलज की ओर हट गई। कुछ ने लिखा है कि अंग्रेजों की इस समय इतनी अधिक सेना इकट्ठी होगई थी कि वहाँ ठहरने में सिखों की हानि अधिक ही होती। स्मिथ ने इस मौके पर भी लाभ उठाया और सिखों के छोडे हुये स्थानों पर कब्जा कर लिया और ग्यारह हजार सेना लेकर सिखोंपर हमला करने की तैयारी कर दी। उधर सिख सेना ने भूदड़ी और अलीवाल नामक गाँवों पर कब्जा कर लिया।

चौथा मोर्चा अंग्रेज और सिखों का अलीवाल में जमा। इस समय रणजोधसिंह के पास काफी सेना न थी वह इधर उधर बटी हुई थी। फिर सिख लोग बड़ी बहादुरी के साथ मैदान में जम गये। किसी ने 'साधयाम या पातयाम' के सिद्धान्त के अनुसार एक भी आदमी के रहते मैदान से हटने का नाम नहीं लिया। ग्यारह हजार के सामने पचास सौ आदमी भला क्या कर सकते थे। फिर भी लड़ाई चली और उस समय तक चली जब तक एक आदमी भी रहा। वह बराबर अपनी तोप से आग उगल रहा था। जब उसे चारों ओर से घेर लिया। तो उसने कहा, "तुम मेरी तोप को लेजाने का इरादा दूर रख दो मैं प्राणों के रहते तुम्हे नहीं दूंगा।" यह कह कर वह तोप से चिपट गया। कहा जाता है अंग्रेज सैनिकों ने उसके टुकड़े २ कर दिये।

अलीवाल में सिखों की इस हार में भी एक रहस्य बताया जाता है। वह यह कि तोपों को लगाने वाले यूरोपियन अफसर मि० पीटर ने तोपों के मुँह कुछ ऊँचे कर दिये थे। जिससे उनके गोले आगे जाकर पड़ते थे।[1]

१. सिखयुद्ध पृष्ठ ६७ चक्रवर्ती द्वारा लिखित।

अलीवाल युद्ध की हार से सिख तिलमिला उठे। वे अपना सर्वस्व अर्पण करके भी अंग्रेजों को परास्त करना चाहते थे। उन्होंने राजा गुलाबसिंह से पंजाब का मंत्रित्व करने की अपील की वे समझते थे कि गुलाबसिंह की योग्यता से लाभ उठावे। किन्तु यह उनकी एक और गलती थी। गुलाबसिंह ने मंत्री होते हुये ही अंग्रेजो से एक गुप्त संधि कर ली। जिसके अनुसार सिखों को बर्बाद करके अंग्रेजों के मार्ग को साफ करना और अन्त मे अपना स्वार्थ साधना गुलाबसिंह का अभीष्ट था।

सर्दार श्यामासिंह जी अटारीवाले जो कुँवर नौनिहालसिंह जी के ससुर थे। इन सारी धोखेबाजियों से गर्म हो गये। उन्होंने सिखो की सेना मे खड़े होकर कहा। वीरो, गुरु के लाड़ले खालसा वीरो, आओ, मातृभूमि की रक्षा के लिये अपने गर्म-गर्म लहू की आहुति देकर स्वर्ग में बैठे अपने महाराजा रणजीतसिंह की आत्मा को तृप्त करें। गुरुओं के गौरव को ऊंचा करे। मैं अपनी पवित्र गुरुवाणियों को साक्षी करके कहता हूँ कि मैं रणक्षेत्र से टुकड़े २ होने पर भी पीछे कदम न हटाऊँगा। खालसा को श्यामसिंह जी की यह मार्मिक अपील काम कर गई। वे सिंहनाद से गर्जे और सबने भीम गर्जन के साथ 'वाहि गुरुजी की फतह' के नारे लगाये।

वीर सिखों ने सुबरॉव पर दखल करके अपना सेना व्यूह बनाया। ६७ तोपों के साथ १५ हजार सिख मरमिटने या शत्रुओं को मिटा देने के लिये अंग्रेज सेना के आने की प्रतीक्षा करने लगे। इधर तो सिख इस तरह की तैयारी कर रहे थे। उधर विश्वासघाती लालसिंह ने यहाँ के कुल समाचार अंग्रेजी कैम्प मे लिख भेजे। उसने जो कुछ लिखा उसका सार था :—

"इस युद्ध का जनरल तेजसिंह है। जो अंग्रेजों के हित की ही चेष्टा करेगा। मेरे संचालन में घुड़सवार सेना है जिसे मैंने तितर-बितर कर रक्खा है। सिख सेना व्यूह का दक्षिण पार्श्व कमजोर है।"[1]

आखिर अंग्रेजो ने ऐसा ही किया। सर राबर्ट डिक ने अपनी सेना को दक्षिण पार्श्व पर हमला करने को दौडाया। यह घटना ६ फर्वरी सन १८४६ ई० की रात की है।

इस आक्रमण से पहले अंग्रेजों ने बहुत सारा प्रबन्ध कर लिया था। दो हजार सैनिक फीरोजपुर की रक्षा के लिये छोड़ दिये थे और अपनी सेना का व्यूह भी सुदृढ़ बना लिया था। सोलह हजार राजपूत और गोरे सैनिकों के साथ अंग्रेजों ने यह हमला किया। एक सैनिक दल उन्होंने लालसिंह की निगरानी के लिये भी छोड़ दिया।

यकायक और रात मे हमला होने से सिख घबराये नहीं। रणभेरी बजाई गई और चारों ओर सिख छातियाँ तान कर खड़े हो गये। अंग्रेजों के १३० तोपों ने ज्योंही धुआँ उगलना शुरू किया। सूर्य भगवान भी निकलनेको उद्यत हो गये।

अंग्रेजों की तोपें सिखों के तोपखाने और बालू से बनी दीवारों पर गोले फेंक रही थीं। १२० तोपों से धांय धांय होते समय भी वे बड़ी बड़ी बहादुरी से लड़ रहे थे। उनकी ६५ तोपें भी बन्द न थीं। दोनों ओर से ताकत आजमाई हो रही थी। अंग्रेज सेनापति बड़ी बुद्धिमानी से अपनी फौजों को संभालते थे। किन्तु सिख उनके प्रत्येक आक्रमण का बड़ी फुर्ती से जवाब देते हुये प्रतिक्षण अंग्रेजी सेना में हाहाकार मचा देते थे।

ज्यों २ सूर्य भगवान ऊपर को चढ़ने लगे युद्ध की भयंकरता बढ़ने लगी। अंग्रेजों ने समझा था

१. सिख हिस्टो। लेखक मि० एडवर्ड।

कि गोलाबारी से हम सहज ही सिखों को भगा सकेंगे। किन्तु उनकी इच्छा पूरी नहीं हुई। तब उन्होंने गोलंदाजी को कुछ देर के लिये बन्द करके एक प्रबल शक्ति के साथ दक्षिण पार्श्व पर हमला किया। किन्तु सिखों ने प्राणों पर खेलकर उधर ऐसा छापा अंग्रेजी सेना पर मारा जिससे सैनिक पीछे लौट पडे और डिक साहब सख्त घायल हुए। यह देखकर पीछे से गिलबर्ट ने अपनी सेना को आगे बढाया। डिक की भागती सेना भी रुक गई। दोनों अंग्रेजी सेनाओं ने फिर हमला किया। किन्तु सिख गोलन्दाजों ने इतनी फुर्ती से गोले दागे कि दोनों सेनाओं को हटना पडा। तीसरी बार हेरी स्मिथ ने अपने दल को भी मिला दिया और एक जोर का हमला तीनों सेनाओं ने किया। सिख लाशों पर लाश बिछ जाने पर भी एक गज भी पीछे न हटे। उन्होंने तीनों ही बार आते और लौटते समय अंग्रेज सैनिकों को जमीन पर सुलाया।

यद्यपि अंग्रेज अभी तक पराजित हो रहे थे। किन्तु उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। अंग्रेज का यही गुण ऐसा है। जिसने उसे संसार का बादशाह बना दिया है। वह तो कर्म करना जानता है। निराश होना उसने सीखा ही नहीं। उन्होंने अपनी इस हार से भी सबक लिया। पुन: आक्रमण के लिये वे फिर बल संचय करने लगे। सेनापति लड़ाई का नक्शा तैयार कर रहे थे और सेना स्वास्थ्य प्राप्त कर रही थी। उधर सिख सेना की ओर देखिये। सैनिक ही टूटी हुई दीवारों को सभाल रहे थे और वही लाशों को उठाकर अलग कर रहे थे। न तो उनके लिये कोई रसद की चिन्ता करने वाला था और न उन्हे लड़ाई के दांव बताने वाला। उनके गैर सिख सेनापति कैम्पों मे पडे मौज कर रहे थे।

पुन. युद्ध छिड़ा। सिख सेना ने बायें और मध्य भाग को मजबूत बनाने मे दाहिने भाग को फिर कमजोर रहने दिया। डिक सेना ने फिर उसी भाग पर हमला किया गिलबर्ट और हैरी स्मिथ भी तैयार थे। कुछ सेनायें अंग्रेजों ने वाम भाग की ओर भी अड़ा दीं। इस समय सिख सेना [ने लालसिंह से अपनी घुड़सवार सेना को अंग्रेजों पर आक्रमण करने को कहा किन्तु वह बहाना कर गया। अंग्रेजी तोपों ने मध्य भाग पर और सेना ने दक्षिण भाग पर गोले गोलियाँ बरसाना आरम्भ कर दिया और तीनों सेनाओं ने बड़े वेग से दक्षिण पार्श्व से हमला कर दिया। सिखों ने बहुत संभाला। वे अड़ गये। किन्तु अड़कर होना तो यही था कि वे खतम होते उनकी लोथों पर होकर अंग्रेजी सेना उनके बीच में घुस गई। तोपखाना हाथ से निकल गया। सरदार श्यामसिंह ने अपने घोड़े को चारों ओर दौड़ाकर नेतृत्व करना शुरू किया। वे तो प्रतिज्ञा करके आये थे। युद्ध से पीछे पैर न रक्खूंगा। युद्ध मे ही समाप्त हो गये। सिखों ने गोली बारूद के अभाव मे तलवार और संगीनों से काम लेना शुरू किया। इस समय तक उनकी बनाई हुई दीवारें भी ध्वंश हो गई थीं। चारों ओर से अंग्रेजी सेना ने सिख सेना को बीच मे घेर लिया। नमकहराम तेजसिंह अपने एक दल के साथ भाग गया और उसने सतलज का पुल भी तुड़वा दिया। जिससे बचे हुये लोग पार न आ सकें। अब इसके सिवा सिखों के पास क्या चारा था कि जन्म भूमि के हित डट कर लड़ें और लड़ते-लड़ते ही प्राणों को उत्सर्ग करदे। किन्तु लड़ने के साधन भी तो उनके नष्ट किये जा चुके थे। वे आपस मे ही बिना सेना पति के एक दूसरे को आश्वासन देने लगे। सिंहिनियों के सपूतो अमृत छके की लाज रखना। गुरु के सिंहो गीदड़ों से घबरा न जाना। प्रत्येक सिख को हथियार चलाने के साथ ही एक पैंतरा बदलना पड़ता था। जिससे वे घिराव से निकल कर सामने आ जाय। सामने और बाँये दाँये वे हथियार चलाते थे और उलटे कदमों पीछे को हटते थे। उनके इस प्रकार के करते-करते सतलज आगई। पुल नदारद था। फिर भी वे सतलज में भी उलटे ही बढ़े, अंग्रेज

सवारों ने उन पर हमला किया। सतलज उनके खून से रंग गई। उसके इस तरह से लड़ने पर अंग्रेजों का दिल विस्मय से भर गया। इस तरह से जीवन से निराश होने पर भी उनमें से एक भी सिख ने अंग्रेजों के सामने हथियार नहीं डाला।

इस भीषण युद्ध मे उनके आठ हजार आदमी खेत रहे और अंग्रेजों के दो हजार तिरासी। यह भारी क्षति उनकी सोरॉव से सतलज पार करते समय तक हुई। अंग्रेजो की विजय हुई। किन्तु उनके दिल जानते थे, यह विजय उनको बहादुरी के साथ मिली या ब्राह्मण तेजसिंह की गद्दारी की बदौलत।

सुबरांओ का युद्ध सिख साम्राज्य के लिये वैसा ही साबित हुआ जैसा मराठों के लिये पानीपत। पानीपत के बाद मराठो का सूर्य अस्ताचल की ओर ढल गया था और सोरांव के बाद सिख साम्राज्य को हड़पना अंग्रेजो को सहज दिखाई देने लगा।

सुबरांओ युद्ध के बाद विश्वासघाती लोगो ने समझा चलो अच्छा हुआ। पन्द्रह सोलह हजार सिख इन लड़ाइयों में मारे गये। अब उनकी शक्ति कम हो गई। हम आनन्द से अपनी इच्छाओं के अनुसार राज्य का सचालन करेगे किन्तु उनकी आखें खुल गई जब उन्होंने १८४६ ई० की २० फर्वरी को अंग्रेजो की इस घोषणा को सुना —"अंग्रेजों का विचार खालसा राज्य को अपने राज्य मे मिलाने का तो नहीं है किन्तु सिखों ने जो सन्धि तोड़ी है उसकी सजा तो देनी ही होगी। युद्ध के खर्चा को वसूल किया ही जायगा। किन्तु भविष्य मे कोई शान्ति भग का कार्य न हो, इसलिये राज्य का प्रबधक मंडल भी अंग्रेज सरकार के द्वारा स्थित किया जायगा। यद्यपि अपराध तो लाहौर दरबार का संगीन है किन्तु लाट साहब लाहौर दरबार को और उसके सरदारों को अपने सुधार का मौका देना चाहते है। यदि फिर भी कोई उत्पात होगा तो अंग्रेज उस पर नए सिरे से विचार कर सकेगे।

सिख साम्राज्य छिन्न भिन्न

इस घोषणा के साथ ही अंग्रेज सेनाये सतलज के इस पार आ गई। लालसिंह, गुलाबसिंह और तेजसिंह सबकी अब आखे खुलीं। गुलाबसिंह महाराज को लेकर लाट साहब के पास पहुँचे। उन्होंने अपनी वफादारी की बात भी कही कि यदि मैं लड़ाई मे शामिल हो जाता तो अस्सी हजार सिख स्थिति ही दूसरी कर देते किन्तु लाट साहब अपने निश्चय से न डिगे।

इस समय तक अंग्रेजी सेना कसूर तक आ पहुँची थी। दूसरे दिन अंग्रेजों की कुछ चुनी हुई सेनाएं लार्ड हार्डिग और उसके प्रमुख सेनापतियों के साथ लाहौर जा पहुँचीं।

महाराज दिलीप का पुन. राज्याभिषेक किया गया। इसके माने ये थे कि अब यह राज्य अंग्रेजों का दिया हुआ है। पजाब अब कल का पजाब नहीं रहा है।

इसे लार्ड हार्डिग की उदारता नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने पंजाब को एकदम जब्त नहीं किया अभी सिख कतई निर्वीर्य नहीं हुए थे। उनकी बीस हजार सेना अब भी अमृतसर की ओर पडी बाट देख रही थी कि कोई उसका नेतृत्व करे किन्तु निज के स्वार्थों ने उनके सेनापतियों को सांप की तरह सूंघ लिया था।

लाट साहब ने घोषित किया—'लाहौर दरबार अब २० हजार पैदल और १२ हजार सवार से अधिक सेना न रख सकेगा। बाकी सेना को वेतन चुकाकर अलग कर देना होगा। ३० तोप लाहौर दरबार के पास रहेगी। व्यास और सतलज के दक्षिण के सम्पूर्ण देश अब अंग्रेजो के हाथ रहेंगे। युद्ध डेढ़ करोड़ रुपया तत्काल न देने के कारण काश्मीर और हजारा सहित व्यास और सिंध के बीच के प्रदेश

अंग्रेजों के प्रबंध में रहेंगे। शांति बनाए रखने के लिये लाहौर में एक साल तक अंग्रेज सेना रहेगी।"
इस सधि का नाम लुधियाना संधि था। चूंकि इसका मसविदा लुधियाना गाव में पूर्व ही बना लिया गया था। इसके अलावा लाहौर दरबार के आधीन सब राज्यों मे सहायता प्राप्त करके लाख रुपया और दिये क्योंकि उपरोता प्रदेश की कीमत अंग्रेजों ने एक करोड़ की लगाई थी।

जिस राज्य को महाराजा रणजीतसिंह ने इतनी ऊची इज्जत पर पहुचाया था, उसे देश-द्रोहियो ने अंग्रेजों का रक्षित राज्य तो बना दिया किन्तु संतोष इतने पर भी नहीं हुआ। बाद में यह भी प्रबंध कर लिया गया जब तक महाराज बालिग हों, अंग्रेजी सेना लाहौर में रहे और कुछ ऐसा भी प्रबंध किया जाय जिससे लाटसाहब के द्वारा किये गये प्रबंध को कोई भंग करने की हिम्मत न कर सके।

तारीख ११ मार्च की सन्धि—में कुछ और हेर-फेर हुआ क्योंकि इस समय तक उन्होंने लाहौर दरबार की प्रत्येक बात को जान लिया था। इसके अनुसार लालसिंह को प्रधान मंत्री बनाया गया और गुलाबसिंह को काश्मीर का सूबा ७५ लाख पर बेच कर उसे वहा का स्वतन्त्र राजा बना दिया। तेजसिंह को राजा का खिताब दिया। इस प्रकार प्रकार प्रत्येक विश्वासघाती को अंग्रेजों ने उनकी देश द्रोहिता का पुरस्कार दे दिया।

लालसिंह अब निश्चिन्त था। खालसा की शक्ति नष्ट हो चुकी थी। लाहौर में एक अंग्रेजी फौज उनकी इच्छा के अनुसार रहती ही थी। अब वह निडर होकर विलास मे फंस गया। मदिरा और मृगनयनी उसके जीवन के अंग हो गये। शहर के धनियों से रुपया वसूल करना और रास रंग मे उड़ाना उसकी आदत बन गये। उसने समझ लिया था कि बस अब तक जो हो चुका है वह हो गया। जब अंग्रेजों ने उसे प्रधान मन्त्री बनाया है तब अब कौन उसे इस पद से हटा सकता है।

काश्मीर के राजा गुलाबसिंह के खिलाफ इमामुद्दीन नाम के एक मुसलमान ने बहुत से आदमी इकट्ठे करके बगावत खड़ी कर दी। बगावत तो दबा दी गई किन्तु अंग्रेजों ने बगावत खड़ी करने का दोष थोपा लालसिंह के सिर और उसे पंजाब के प्रधान मन्त्रित्व की गद्दी से हटाकर दो हजार मासिक की पेन्शन देकर आगरा भेज दिया। जहा वह अपने अन्तिम दिनों को गुजारता हुआ पिछले कर्मों पर आंसू बहाता रहा।

लालसिंह को देश निकाला देने के बाद सन् १८४६ ई० की १६ वीं दिसम्बर को गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंग्ज ने भैरवाल नामक स्थान पर सिख दरबार से एक और सन्धि की जिसके अनुसार अंग्रेजी रेजीडेन्ट की मातहती में एक कौंसिल बनाना तय हुआ और उस रेजीडेन्ट को एडमिनिस्टेटर के कुल अधिकार दे दिये गये। जो सिख सेना में कमी वेशी करवा सकता है। वक्त पर किसी भी किले को अंग्रेजी सेना के लिये खाली करवा सकता है। चाहे जिसे हटा सकता है और चाहे जिसे रख सकता है किन्तु यह प्रबंध महाराज के बालिग होने (४ दिसम्बर १८५४) तक के लिये किया गया।

इस प्रबन्ध के अनुसार जो कौंसिल बनी, उसमें राजा तेजसिंह, सरदार शेरसिंह अटारीवाला, दीवान दीनानाथ, फकीर नूरुद्दीन भाई निधानसिंह, अतरसिंह और शमशेरसिंह को सदस्य नियुक्त किया गया। और सर हेनरी लारेंस रेजीडेन्ट मुकर्रिर हुए।

महारानी जिन्दा को शासन कार्य से कतई अलग कर दिया गया और उन्हे और उन की सहे-

१. इतिहास तिमिर-नाशक द्वितीय भाग।

'लियों के खर्च के लिये डेढ़ लाख रुपया सालाना की पेन्शन कर दी गई।

हेनरी लारेंस ने रेजीडेन्ट होते ही अंग्रेजी कायदे कानूनों का प्रचलन शुरू कर दिया। अदालतें कायम की गईं। शिक्षा, स्वास्थ्य के महकमे स्थापित किये। जिसमे एक ओर प्रजा का असंतोष कम हो।

इसके बाद लाट साहब ने समय-समय पर कौंसिल के नाम पत्र भेज कर बता दिया कि यह खयाल न किया जाय कि सिख राज स्वतन्त्र है और न कौंसिल के लोग ही ऐसा खयाल कि वे रेजीडेन्ट के मातहत नहीं है।

महारानी जिन्दा राज काज से अलग कर दी गईं थीं फिर भी सिख सरदार तो उन्हे अपना मालिक ही समझते थे। सैकड़ों आदमी उनके यहा नित्य प्रति मिलने जुलने जाते। उन्हे सान्त्वना देते

महारानी जिन्दा को निर्वासन

महारानी अपनी धार्मिक श्रद्धा के कारण नित्य प्रति सैकड़ों भूखे नंगों को दान पुण्य भी करतीं। रेजीडेन्ट सर हैनरी लारेंस ने इन बातों का यही अर्थ लिया कि महारानी को एक इस आशय का पत्र लिखा कि—"भैरोंवाल की सन्धि के अनुसार आप राज-काज के मामलों मे दखल देने से कतई वंचित कर दी गई हैं। आप अब अपने अन्तिम दिनो को डेढ़ लाख वार्षिक पेन्शन के आनन्द से व्यतीत करें। दान पुण्य के भी कोई खास दिन मुकर्रिर कर ले। कभी-कभी चार छः सरदारों से मुलाकात कर लिया करें। सो भी पर्दे के आड़ से। नैपाल और जोधपुर आदि की महारानी जिस प्रकार पर्दे मे रहती है उसी रिवाज को आप भी अपनाये।"

अब को महारानी ने भी इस पत्र का उत्तर दिया था जिसका सार यह है कि 'मैं अपने सरदारों से मिलती हूँ तो कोई भी बात उनसे ऐसी नहीं होती जो अंग्रेजों की मित्रता मे शका उत्पन्न करने वाली हो, दान पुण्य में भी मैं वही करती हू जो मेरा धर्म इजाजत देता है। मैं तो अब तक यही समझती थी कि महाराज की माता होने के कारण मैं अपने राज्य की मालिक हूँ। पर्दे में मैं नहीं रह सकती क्योंकि मैंने राज-काज मे भाग लिया है और न हमारे यहाँ उसका कोई रिवाज है।

सर हैनरी लारेन्स उनकी प्रत्येक गति विधि पर नजर रखने लगा। एक समय मुल्तान से उनकी सखी सफेद गन्ने लेकर आई थी। हैनरी ने इसका यह अर्थ लगया। महारानी मूलराज के साथ कोई षडयन्त्र कर रही हैं।

७ वीं अगस्त सन् १८४७ ई० को सर हेनरी ने एक दरबार किया। उस दिन तेजसिंह को राजा की उपाधि देनी थी। महाराज दिलीपसिंह से टीका करने को कहा गया। उन्होंने इनकार कर दिया। इसमें हेनरी ने यही समझा कि महारानी जिन्दा ने ही महाराज को बहकाया है।

अत मे अंग्रेज सरकार ने महारानी जिन्दा के सम्बन्ध में यह आखरी निश्चय कर लिया कि उन्हें लाहौर से हटा दिया जाय और महाराज को उनके प्रभाव से मुक्त कर लिया जाय।

महारानी जिन्दा लाहौर से गोरी सेना के पहरे मे निकाल दी गई और उन्हे शेखपूरा के क़िले में नजरबन्द कर दिया गया। पेन्शन भी केवल ४८ हजार सालाना की रहने दी। जिस समय महारानी को महलों से निकाला जा रहा था। उनके बालक बच्चे को मिलने भी नहीं दिया गया, किन्तु उन्हें शालामार बाग मे भेज दिया गया।

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि मुल्तान मे मूलराज (सावनमल का बेटा), दीवान था उसने सिखों के गृह कलह के समय अपने को स्वतन्त्र शासक होने की भी कोशिश की थी किन्तु फिर वह दब गया था। तेजसिंह ने सिख युद्ध के बाद मंत्री होते ही उस पर चढ़ाई कर दी किन्तु

मुल्तान-विद्रोह हनरी लारेन्स ने मध्यस्त बन कर समझौता करा दिया था। जिसके अनुसार उसके दीवानी फौजदारी के कुछ अधिकार और झंग का इलाका तो हाथ ने निकल गये किन्तु खिराज की रकम बढ़ गई। अत उसने लाहोर आकर अपना स्तीफा पेश कर दिया और पिछली सेवाओं के बदले में कुछ जागीर मागी। हेनरी लारेन्स ने उसे यों ही समझा-बुझा कर अटका रक्खा।

किन्तु थोड़े ही दिन बाद पजाब का रेजीडेन्ट और भारत का लार्ड दोनों ही बदल गये और मि० फेडरिक करी तो पजाब के रेजीडेन्ट हुए और डलहौजी भारत के गवर्नर जनरल होकर आये।

उधर उस समय इगलैंड मे इस प्रकार का आन्दोलन हो रहा था कि पंजाब को अबतक पूर्णत. अंग्रेजी राज्य मे क्यों नहीं मिलाया गया है। डलहोजो इसी नीति को लेकर आया था।

मूलराज को जागीर देने की बात तो अलग रही। करी साहब ने उससे पिछला दस वर्ष का हिसाब और चाहा। मूलराज अन्शत हिसाब देने का राजी हो गया। सरदार काहनसिंह को करी ने मुल्तान का सूबेदार बनाकर भेज दिया। उसकी मदद के लिये एक पलटन ६ तोपे और मि० वेन्ज अगन्यू और अन्डरसन को भी भेजा।

मूलराज ने इनके मुल्तान पहुँचने पर खूब स्वागत सत्कार किया। हिसाब के कागज पत्र भी दिखाये। कागज पत्रों को देखते समय दोनों ओर से कुछ कहा-सुनी भी हुई किन्तु मामला शान्त हो गया। तीसरे दिन जब ये दोनों साहब किले से अपने कैम्प को आ रहे थे तो मूलराज इन्हे विदा करने भी आया। किन्तु बाहर निकलते ही बारी २ से दोनों अंग्रेजो पर किन्हीं लोगों ने आक्रमण किया। यह संभव भी था क्योंकि मुल्तान के जिले मे अंग्रेजों ने गोरखा फौज घुमा दी थी। सिखों का यह घोर अपमान था पहले तो मूलराज का इरादा शायद ढिल मिल रहा हो किन्तु अब उसे विद्रोहियों मे शामिल हो जाना पड़ा क्योंकि विद्रोहियों ने उसके साले को भी इस अपराध में मारडाला कि वह मूलराज को अंग्रेजों की शरण में लेजाने के लिये तैयार कर रहा था।

इस प्रकार मुल्तान मे विद्रोह की चिन्गारी भभक उठी। अन्डरसन और अगन्यू के साथ की फौज के जो सिख सिपाही थे वे भी विद्रोहियों में मिल गये। मूलराज के नेता बनते ही उनमें और भी उत्साह बढ़ गया। उधर बन्नू से मेजर एडवर्ड बारह सौ पैदल ३५० घुड सवार और दो तोपें लेकर अडरसन वगैरह की मदद के लिये दौड़े किन्तु उन के आने से पहले इन अंग्रेजों का विद्रोही खात्मा कर चुके थे।

मेजर एडवर्ड ने मुलतान की ओर रवाना होने से पहले ही लाहौर मे रेजिडेंट कैरी को भी इस बात की सूचना दे दी थी कि मुलतान में विद्रोह हो रहा है मैं उधर जाता हूं। आप भी सेना भेजे। जब उस का यह पत्र करी के पास पहुंचा तो उसे कौंसिल के पेश किया गया। कौंसिल के सिख मेम्बरों ने कहा कि अंग्रेजी सेना की टुकड़ी भेज दें। सिख सेना के भेजने में खतरा है कि संभवतया वह विद्रोहियों में मिल जाय। अभी तक सिख सुवराओं के युद्ध को भूले नहीं हैं। कैरी ने अंग्रेजी सेना नहीं भेजी और गवर्नर जनरल का भी उसने मुलतान मे अंग्रेजा सेना न भेजने का ही परामर्श दिया। इसमे कैरी का स्पष्ट भाव विद्रोह को और भी भयंकर रुप देना था। वह चाहता था कि जितना यह अधिक बढ़ेगा उतना ही हम को सिख राज्य को अपने तहत में ले आना सरल हो जायगा। एक अंग्रेज लेखक ने "हिस्ट्री आफ इन्डिया" की प्रथम जिल्द के पृष्ठ १३५ पर लार्ड डलहोजी और कैरी फैड्रिक की इस भावना को निहायत गन्दी और कलंकित बताया है।

एडवर्ड और डेरागाजीखां का अंग्रेज सेनानायक कोर्टलान्त दोनों विद्रोह को दबाने की कोशिश

करते रहे और भावलपुर के नवाब से रुपये और सेना दोनों प्रकार की सहायता ली। विद्रोहियों के हाथ लगे छोटे २ किलों पर भी उन्होंने अधिकार कर लिया। कनेरी के घाट पर विद्रोहियों से उनकी एक कठिन लडाई भी हुई।

अब तक एडवर्ड ने १८ तोपे और २२ हजार आदमी इकटठे कर लिये थे। जिन में ८ तोपें तो सिखों से ही प्राप्त की थीं।

मुलतान के पास ही मूलराज और एडवर्ड की सेनाओं में मुकाविला हुआ। उस समय मूलराज के पास ११ हजार सेना और १० तोपें थीं। फिर भी इतनी वहादुरी से लड़ा कि अंग्रेज सेनायें भागने लगों किन्तु इसी समय उनके हाथी के ऊपर गोला गिरने से वह नीचे गिर पड़ा और उसकी फौज उसे मरा जानकर भाग गई। किन्तु वह घोड़े पर सवार हुआ और २५० आदमियो के संरक्षण मे मुलतान के किले मे घुस गया।

यह युद्ध सन् १८४८ की पहली जुलाई को हुआ था। अब मुलतान को जीतना एडवर्ड के बस की बात न थी पर वह इधर-उधर घूम कर विद्रोह को दवाने की चेष्टा करता रहा।

प्राय मुलतान का उपद्रव ठंडा हो रहा था किन्तु १४ जून सन् १८४८ ई० को अंग्रेजों ने महारानी जिन्दा को शेखूपुरा से भी बनारस भेज दिया और उन्हे कहा गया कि आप पंजाब में रहकर शांति भग करने के लिये सिखो को भड़काती हैं और वारवार मना करने पर भी अंग्रेज विरोधी प्रवृतियों को उभाड़वी हैं। उनके वकील गंगाराम को मुलतान विद्रोह मे भाग लेने के कारण फासी भी दे दी गई।

महारानी को बनारस पहुचा दिया गया और उनकी पेन्शन भी केवल एक हजार रुपये कर दी गई। इससे सिख सैनिकों में वड़ी उत्तेजना फैली। शेरसिंह ने जो कि हजारा के हाकिम सरदार चतुरसिंह के लड़के और लाहौर कौंसिल के मेम्वर थे रेजीडैंट केरी को लिखा कि सिखों मे महारानी जी के निर्वासन से वड़ा असंतोष फैला है। किन्तु अंग्रेजी रेजिडैंट और लार्ड डलहोजी ने इन वातों पर कोई ध्यान नहीं दिया।

हजारा का सिख परिवार अंग्रेजों का हमदरद ही था। मुलतान के विद्रोह को दवाने के लिये शेरसिंह सेना लेकर मेजर एडवर्ड के पास पहुच गया। दूसरा भाई गुलावसिंह भी नेकनीयती के साथ कौंसिल मे अंग्रेज पक्ष को ही रखता था। अपनी अंग्रेज भक्ति के आवेश में इन दोनों भाइयों ने महारानी जिंदा के पन्जाब से वाहर भेजने के कागजों पर भी मुहर कर दी थी।

हजारा विद्रोह

शेरसिंह की वहिन की सगाई महाराज दिलीप सिंह के साथ हो गई थी। इससे यह सोचते थे कि महाराज के स्याने होने तक और उनकी भलाई के लिये हमे अंग्रेजों की खुशामद भी करनी पडे तो तव भी हम कोई बुरा काम नहीं करेंगे। किन्तु अंग्रेजो ने इस परिवार के साथ भी मक्कारी की। कोई अच्छा सलूक नहीं किया।

सरदार चतुरसिंह बहुत बुड्ढे हो चले थे और वे चाहते थे कि उनकी पुत्री का विवाह उनके ही सामने हो जावे। उन्होंने अपने पुत्र शेरसिंह को लिखा कि रेजीडेन्ट साहव से पूछो वे इस शुभ काम के लिये कौन-सा समय उपयुक्त समझते हैं। शेरसिंह ने एडवर्ड के जरिये रेजीडेन्ट को पत्र भिजवाया। साहव ने भी अपनी सिफारिस लिख दी। साथ ही शेरसिंह की अंग्रेजभक्ति की भी प्रशंसा लिखी। किन्तु रेजीडेन्ट मि० करी ने ऐसा रूखा जवाब दिया जिससे यह स्पष्ट होता था कि विवाह करने मे महाराज

और सरदार चतुरसिंह स्वतंत्र नहीं हैं जब भी अंग्रेज सरकार उचित समझेगी तब विवाह कर दिया जायगा। इस प्रकार के जवाब से सरदार चतुरसिंह और शेरसिंह दोनों ही के दिल को चोट पहुँची।

इसके भी अलावा उनके इलाके में पठानों ने बगावत खड़ी कर दी और यह बगावत खडी कराई एबट नाम के अंग्रेजी ने जिसे कि रेजीडेन्ट ने प्रबन्ध में सहायता देने के लिये भेजा था। यह अंग्रेज बड़ा वहमी था। रेजीडेन्ट करी भी खूब जानता था उसने इसकी गवर्नर जनरल को एक दो बार शिकायत भी की थी किन्तु मजा यह है कि जब सरदार चतुरसिंह ने उसकी शिकायत की तो मि० करी ने कोई ध्यान नहीं दिया अपितु उन्हीं बातों को सही माना जो एबट के पृष्ठ पोषक निकलसन ने पेश की।

पठान-विद्रोह में कनोरा नाम के एक विलायती गोलन्दाज की मृत्यु हो गई थी। कनोरा ने सरदार चतुरसिंह की आज्ञा का उलंघन करके तोप पर अपना कब्जा कर लिया था और दो सिखों को भी जान से मार डाला। एक सिख ने कनोरा के प्राण लेकर अपने दल की रक्षा की थी। यही सरदार चतुरसिंह का अपराध था। कैरी ने पहले तो चतुरसिंह जी को निर्दोष ही माना किन्तु निकलसन की सलाह पर उनकी जागीर भी जब्त कर ली। बुड्ढा सरदार इस अपमान को बर्दाश्त न कर सका उसका खून उबल पडा। और वह स्वयं रेजीडेन्ट से बात करने के लिये लाहौर की ओर चल पडा। एबट ने इसे बगावत का नाम देकर उसका रास्ता रोकने की कोशिश की और उसे तंग किया। एक दो छोटी-मोटी झड़पें भी हुईं और सरदार चतुरसिंह हजारे से लाहौर की ओर को निकल पडे। सिख समुदाय महारानी जिन्दा के निर्वासन से क्रुद्ध हो ही रहा था। दल के दल सिख सरदार चतुरसिंह के पास इकट्ठे होने लगे। यही हजारा विद्रोह की भूमिका है।

मूलराज ने शेरसिंह को मुल्तान सूबे में पहुँचते ही समझाने की चेष्टा की किन्तु शेरसिंह ने मूलराज के एलचियों की बात सुनना तो दूर उनका अपमान तक किया। वह बराबर अंग्रेजों की ओर से लड़ता रहा। और उस समय तक लडा जब तक कि उसकी जागीर न छीन ली गई और उसकी बहिन की शादी का मामला खटाई में न पड़ गया।

अपनी जागीर छिन जाने के समाचार ने शेरसिंह के हृदय को बहुत चोट पहुँचाई और यह भी बागियों में शामिल हो गया।

शेरसिंह विद्रोहियों के दल में शामिल हो गया उसने मूलराज को पत्र लिखा कि मैं आपके साथ मिलकर अंग्रेजों से लडने को तैयार हूँ किन्तु मूलराज को विश्वास नहीं हुआ क्योंकि पहले शेरसिंह उसके प्रस्ताव को ठुकरा चुका था। शेरसिंह और मूलराज मिले भी किन्तु फिर सरदार शेरसिंह के भी मन में यही जंचा कि अपने पिता के पास चलना उचित होगा। उसके साथ चार हजार सिख हो लिये। अब अंग्रेजी सेना की हिम्मत सहज ही मुल्तान पर हमला करने की न रही। इतने समय में मूलराज ने और भी सेना बढ़ा ली उसने काबुल के दोस्तमुहम्मद से भी कुछ सहायता मंगा ली।

कहाँ तो विद्रोह के आरम्भिक दिनों में मि० करी अंग्रेजी सेनायें मुल्तान में भेजना नहीं चाहते वहाँ अब उन्होंने बम्बई, कलकत्ता सब ओर से फौजें बुलाना शुरू कर दिया। वास्तव में अब उनकी इच्छा पूर्ण हो चुकी थी। सिख साम्राज्य को कतई तड़पने लायक स्थिति बनाने का उन्हें मौका मिल चुका था।

बहादुर मूलराज अंग्रेजों से ४ नवम्बर (सन् १८४८) से लगाकर ३० दिसम्बर (सन् १८४८) तक लगातार लड़ा। यों तो उसे लड़ते हुए पूरा साल हो चुका था।

अंग्रेजों की ओर से तमाम सिख जागीरदार बहावलपुर के नवाब और पंजाब के कई रईसों के दल लड़ रहे थे किन्तु मूलराज सब से टक्कर ले रहा था उसकी सेना और किले पर गोले बरसाये गए सुरंगों से हमले किये गये किन्तु उसने हजार अंग्रेजी सेना के दांत खट्टे किये।

२३ दिसम्बर को बम्बई से अंग्रेजों की नयी सेनाएं भी आ गईं। २७ दिसम्बर को १७६९८ पैदल ३०१७ सवार और ६१ तोपों से अंग्रेजी सेना ने मूलराज के सैनिकों पर हमला किया। तीन दिन तक बराबर धुआँधार लड़ाई हुई। किले की दीवारें टूट जाने पर जब अंग्रेजी सेनायें किले में घुसीं तो 'वाहि गुरुजी की फतह' के साथ दो हजार सिखों ने अपने प्राण देकर अंग्रेजों के हौसले ढीले कर दिये।

ता० ३० दिसम्बर को भाग्य ने मूलराज के साथ दगा की। उसके बारूद खाने में जहाँ पचास मन बारूद भरी थी। गोला गिरा जिससे पांच सौ आदमी एक दम लापता होगये और भारी क्षति हुई।

सन १८४९ की २७ वीं जनवरी तक इस हालत में भी मूलराज ने लड़ाई जारी रक्खी। उसकी सेना ने कदम-कदम पर अपना खून बहाकर अंग्रेजी सेना को आगे बढ़ने दिया। आखिर मूलराज हजारों दुश्मनों के बीच में घिर गया और गिरफ्तार कर लिया गया। कुछ लोगों ने लिखा है कि मूलराज ने अपनी स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा की मेजर एडवर्ड्स से गारंटी मिलने पर खुद ही आत्म-समर्पण कर दिया था।

कुछ भी हो मूलराज ने अपने अंतिम जीवन को सार्थक कर दिया। अंग्रेजी कोर्ट ने उसे फांसी की सजा दी और फिर बदल कर उसे काले पानी में परिवर्तित कर दिया।

मूलराज जिस समय अपनी जन्मभूमि से दूर जहाज में बैठ कर काले पानी को जा रहा था। बीच ही से इस शरीर को छोड़ गया।

मुलतान से चलकर सरदार शेरसिंह अपने पिता से मिलने को उत्तर की ओर गुजरात पहुँचने के लिये बढ रहे थे कि अंग्रेजी सेना ने उनका पीछा करना शुरू कर दिया।

सन् १८४८ ई० की २२वीं नवम्बर को इस दूसरे सिख युद्ध का श्रीगणेश हुआ। रामनगर के पास कोलिन, केम्बल और क्योरटन नाम के अंग्रेजों की अध्यक्षता में अंग्रेजी सेना ने सिखों पर हमला किया।

रामनगर युद्ध

सिख यहाँ पूरी तैयारी से थे। अंग्रेजी तोपों ने गोले बर्षाये किन्तु सिख तोपों के ऊंचे स्थान पर लगे रहने के कारण उनका मुकाबिला न कर सकीं। सिख सिपाहियों ने भी वह जौहर दिखाया कि अंग्रेजी सेना को विवश होकर भागना पड़ा। इस प्रकार रामनगर में सिखों को एक छोटी सी विजय हुई और सिखों के हाथ अंग्रेजों की दो तोपें और कुछ रसद के छकड़े हाथ लगे।

रामनगर के मैदान से जब अंग्रेजी सेना भाग रही थी तो सिखोंने उसका पीछा किया और लड़ने के लिये ललकारा। इस ललकार को सुनकर जो सैनिक ठहरे वे सिखों द्वारा तलवार के घाट उतार दिये। उनमें विलियम हैवल और उसके कई साथी अंग्रेज भी काम आये। कुल मिलाकर २३० सैनिक और अफसर अंग्रेजों के इस लड़ाई में मारे गये। कुछ अंग्रेज कैद भी हुये जिन्हें सरदार शेरसिंह ने अपनी उदारतावश छोड़ दिया।

रामनगर युद्ध के बाद अंग्रेज सेनापति गफ एक सप्ताह तक चुप रहे। इस बीच में शक्ति चढ़ाकर उन्होंने रामनगर से ६६ मील की दूरी पर छावनी लगाई। दूसरी दिसम्बर को सरदार शेरसिंह पर आक्रमण करने को मेजर थैकवेल सात हजार सैनिक लेकर बाईं ओर से बढ़े और

सादुल्लापुर युद्ध
गफ साहब खुद सामने थे किन्तु सरदार शेरसिंह पहले ही सचेत होगये थे। इसलिये उन्होंने थैकवेल की ओर कूच कर दिया। जिससे वे अकेले थैकवेल को हराकर फिर गफ की ओर झपटे।

सादुल्लापुर के पास लड़ाई हुई। वैसे थैकवेल ने भागने की भी चेष्टा की। किन्तु सिख सेना जब छाती पर ही आगई तो वे एक ईख के खेत में छिप कर लड़ाई का संचालन करते रहे। पूरे दिन भर लड़ाई हुई। इस प्रकार थैकवेल की सेना को हानि पहुँचाकर सरदार शेरसिंह जेहलम के दक्षिण की ओर बढ़ गये। यद्यपि थैकवेल को सादुल्लापुर के युद्ध में से प्राण बचाकर भागना पड़ा था। किन्तु उन्होंने विजय अपनी ही घोषित की लेकिन सही बात मि० मार्शमेन के इस लेख से मालूम हो जाती है। "इस युद्ध में फायदा शेरसिंह को ही रहा। क्योंकि वह अंग्रेजों के इरादों पर पानी फेर कर सुभीते के स्थान पर पहुँच गया।"

एक महीने तक सेनापति गफ साहब का लड़ाई से दूर रहना भी इसी बात को साबित करता है कि विजय थैकवेल की नहीं हुई और इन दोनों हारों का उनके दिल पर असर पड़ा। १२ वीं जनवरी को लार्ड गफ ने डिंघा नामक स्थान पर एक सुदृढ़ छावनी तैयार कराई। वह शेरसिंह जी की सेना का कैम्प भी वहाँ से कुल ८ मील की दूरी पर था। सिख-छावनी के पीछे जेहलम की ओर आगे एक छोटा-सा जंगल था। वहाँ पर गये बाये भी सिखों ने अच्छा प्रबंध कर लिया था।

चेलियाँवाला युद्ध

१३ जनवरी को कूच करके अंग्रेजी सेना ने १४ जनवरी को बाईं ओर से हमला किया। कौलिन केम्बल आज के युद्ध के संचालक थे। उन्होंने सेना के दो भाग कर रक्खे थे। दो घंटे की गोलेबारी से कोई फायदा न निकलते देखकर अंग्रेज सेनापति ने सेना को जोर का हमला करने की आज्ञा दी। इस हमले में सैकड़ों अंग्रेजी सिपाही जमीन पर बिछ गये। किन्तु कुछ आदमी सिखों की तोपों तक पहुँच गये। उन्होंने कई तोपों के मुँह भी बन्द कर दिये। किन्तु सिख क्या कम थे। उन्होंने तोपों के मुँह बन्द करने वालों को काट कर टुकड़े कर दिया और मुँह खोल दिये। कैम्बल पर भी एक सिख सैनिक ने हमला किया और उसे जख्मी कर दिया।

एक हिस्से में जिधर केम्बल साहब थे। दूसरे हिस्से में मि० पैनीकुइक पाँच सौ आदमियों के साथ मारे गये और अंग्रेजी झंडा सिखों के हाथ आया। मध्य भाग में गिलबर्ट पर सिखों ने साघातिक हमला किया। किन्तु दूसरे दल के आजाने से वे घिर गये और ३ तोपें उनकी गिलबर्ट के हाथ लग गईं। किसी मोर्चे पर अंग्रेज जीत रहे तो किसी पर सिख। किन्तु रणभूमि लाशों से पट रही थी। खून से जमीन लाल हो रही है।

आज की लड़ाई में १६ अंग्रेज अफसर और उनके सौ सिपाही काम आये।

मेजर थैकवेल ने सिखों की घुड़सवार सेना के अध्यक्ष तारासिंह की सेना पर आक्रमण किया। यूनेट साहब इस आक्रमण का नेता बना। यूनेट ने सिख व्यूह को तोड़ना चाहा। किन्तु सिखों का मुकाबिला कम न था। यूनेट अपने उद्देश्य की पूर्ति में विफल रहा। उसके कितने ही सैनिक काम आये और वह खुद भी मारा गया। सिखों ने इस समय अद्वितीय पराक्रम दिखाया। शत्रु सेना का उन्होंने बदहवास कर दिया। थैकवेल साहब ने इस लड़ाई के हालात में खुद लिखा है। "मुझे मालूम हुआ कि मेरी सेना में एक भी मनुष्य जिन्दा नहीं।"

थैकवेल को इस प्रकार मुसीवत मे देखकर जनरल गफ ने लेफ्टीनेट कर्नल पोप को घुड़सवारों की ४ रजमेट देकर दाहिनी ओर से सिख घुड़सवारों के ऊपर हमला करने के लिये भेजा। अंग्रेजों के इन घुडसवारों मे भाला धारी सैनिक ही अधिक थे। सिखों की पैदल पल्टन ने उन्हें रोका। ढालों पर वर्छों की चोट वचाते हुये उन्होंने नीचे से ही लड़कर. अंग्रेजी घुड़सवारों के छक्के छुड़ा दिये। थैकवेल ने खुद लिखा है। "सिख पैदल अपनी जान पर खेल गये और उनमे से एक-एक ने तीन-तीन घुड़सवारों के प्राण लिये। लेफ्टीनेट कर्नल पोप पर भी उन्होंने दृढ़ता से हमला किया और उसके प्राण लेकर रहे। उन्मत्तता के साथ अंग्रेज और उनके सैनिकों को खतम किया। इस भयंकर युद्ध मे अंग्रेजी सेना के पॉव उखड गये। मेजर क्रिस्टी जो अपनी तोप को सुरक्षित ले जाने की फिक्र मे थे। मारे गये। कुछ गोरे सैनिक अपने गोलन्दाज की मदद को दौडे। सिखों ने उन पर भूखे भेड़ियो की तरह हमला किया और थोडी ही देर मे जमीन पर सुला दिया।

गफ को भी उनके साथियो ने सलाह दी कि इस समय भागना ही ठीक होगा। किन्तु वे एक अच्छे दल के वीच मे खड़े हो गये और पास की तोपों से घुआंधार गोले छुड़वा कर अपनी रक्षा कर ली। रात हो जाने के कारण सिख सेनाये जोभी उन्हे अंग्रेजो का सामान हाथ लगा लूट कर पीछे को लौट गई।

मजे की वात यह है कि इस चेलिआवाले युद्ध मे अंग्रेजों की भारी क्षति हुई। सेना भी उन्हीं की भागी। किन्तु फिर भी जनरल गफ ने विजय के नगाड़े वजवाये और तोपों की सलामी ली। यह सव कुछ केवल जनता पर आतंक जमाने के लिये उन्होने किया। वरना उनकी इस हार के समाचार से विलायत तक मे हैरानी छागई और गफ को लडाई से हटा कर दूसरे फौजी जनरल नेपियर को भारत भेजने तक की तैयारी होगई।

इस लडाई में सरदार अतरसिंह ने वड़ी वीरता का प्रदर्शन किया था। चालाक व्राइन्ड को भी उन्होंने भली प्रकार छकाया था।

इस चेलिआंवाले युद्ध के सम्वन्ध मे 'कलकत्ता रिव्यू' नामक अंग्रेजी अखवार ने लिखा था। "भारत मे अंग्रेजों ने जितने भी युद्ध किये है। उनमे चेलियां का युद्ध सवसे अधिक भयंकर हुआ।" सिपाही युद्ध का इतिहास नामक पुस्तक मे के (Ke) साहव ने लिखा है। "चेलिआंवाले मे बृटिश लोगों की तोपे सिखों ने छीन लीं। अंग्रेजी पताका को छीन कर अपने गौरव को वढ़ाया और अंग्रेजी फौज उनके सामने से बुरी तरह भाग निकली।" सरलेविल ग्रिफिन ने भी चेलिआवाला युद्ध के लिये वहुत खतरनाक वताया है।

चेलिआंवाला लड़ाई के वाद गफ ने २५ दिन तक लड़ाई वन्द रक्खी इस अवसर मे राजा चेतसिंह भी शेरसिंह के पास आगये। उन्होंने मेजर लारेन्स, लेफ्टीनेन्ट हर्वर्ट आदि कई अंग्रेज अफसरों को कैद कर लिया था। सरदार शेरसिंह ने इन्हे छोड़ दिया। इससे सिख सेना को नुकसान ही हुआ। क्योकि इन्होंने वहुत सारी इधर की वातें अंग्रेजों को वताई। इससे भी वड़ी गलती शेरसिंह ने यह की कि सन्धि वार्ता भी इन्हीं के द्वारा होने लगी। यह लोग वे रोक-टोक चाहे जव आजा सकते थे। इस प्रकार की छूट दे दी गई।

सन्धि के चक्कर मे पड़कर सरदार शेरसिंह ने पच्चीस दिन व्यर्थ ही गॅवाये और उधर इन दिनों मे अंग्रेजों ने अपनी सेना को और भी मजवूत कर लिया। उन्हे यह भी भेद लग चुका था कि सिख तोप का नाम सुनकर अवश्य कुछ भय मानते हैं वरना उन्हे हराना टेढ़ी खीर है।

जब 'सन्धि करना अभी मंजूर नहीं' इस प्रकार का उत्तर आया तो सरदार शेरसिंह बड़े घबराये। किन्तु उन्होंने इस समय एक ही उपाय सोचा और वह यह कि किसी प्रकार हमें लाहौर पर कब्जा करना चाहिये। इसी ख्याल से वे ६० तोपों और लगभग चार हजार सैनिकों के साथ लाहौर की ओर चल पड़े।

१८४६ ई० की ६ठी फरवरी को इधर अंग्रेजों ने रसूल पर धावा किया। क्योंकि उन्हें सिख फौजों के वहाँ होने का पता था। रसूल एक सुदृढ़ स्थान था। उसे सहज ही खाली पाकर अंग्रेज खुश हुये किन्तु जब उन्हें पता चला कि विद्रोहियों का लाहौर पर कब्जा करने जा रहा है। तो बहुत घबराये, और तुरन्त पीछा किया।

चूंकि अंग्रेजों को पता लग चुका था कि सिखों के पास बढ़िया तोपों की कमी है। अत गुजरात के मैदान में सिखों से मुठभेड़ होते ही उन्होंने तोपों का इस्तैमाल किया। सन् १८४६ ई० के १४ फरवरी का दिन बड़ा ही भयंकर थी। जोकि इस युद्ध में चतुरसिंह जी के पास ३६०० बढ़िया सैनिक थे, ५६ तोपें भी थी, इसके अलावा दोस्तमुहम्मद के १५०० पठान सैनिक भी थे। किन्तु चारों ओर से तोपों की गोलों की मार को ये आदमी कहाँ तक सहते।

गुजरात युद्ध

उधर मुल्तान का विद्रोह खतम होने के बाद तोपों और बारह हजार सैनिकों को लेकर एक दूसरे अफसर गफ की सहायता के लिये आ पहुँचे थे।

ता० २१ फरवरी तक लड़ाई चलती रही. किन्तु यही दिन था। जब कि अंग्रेजों की लगभग ३०० तोपें सिखों पर आग उगल रही थीं। आखिर सिखों की तोपों ने जवाब दे दिया। क्योंकि अंग्रेजी तोपों के गोले बराबर उन्हें नष्ट कर रहे थे। अब सिखों के लिये एक ही मार्ग था, याती वे भागे या तलवार खींच कर साथ ही आँख मूदकर, शत्रु पर टूट पड़े।

'सत श्री अकाल' और 'वाहि गुरु जी का फतह' का गगन भेदी नारा लगाकर वे ठीक बाज की तरह अंग्रेज सेना पर झपटे। कितने मरे इसकी कुछ भी उन्हें चिन्ता न थी। वे मारते थे और मरते थे। किन्तु बराबर बढ़ते जा रहे थे। उनका एक गिरोह जनरल गफ की ओर ही बढ़ा क्योंकि वह बड़े उत्साह से तोपों से आग उगलवा रहा था। वे बढ़े और खूब बढ़े कि जनरल गफ के पास पहुँचने में कुछ ही फासला था। इतने में मेजर थैकवेल ने दो पलटनें उनके मार्ग में अड़ा दी और एक साथ दस तोपें खिचवा कर उनके पीछे। आगे उनकी छाती पर संगीनें, पीठ पर गोले पड़ने लगे। पर वे बराबर आगे बढ़ते ही जाते थे। उनका इरादा था कि कोई अकेला रह जाय वह भी आगे बढे। इधर यह आत्म बलिदान हो रहा था। कि उधर तोपों की मार से घबरा कर दोस्तमुहम्मद के पठान भाग खड़े हुए। कुछ सिखों ने उनका अनुकरण किया कुछ सिख तोपों की मार से बचने के लिये पेडों पर चढ़कर कुछ उपाय सोचने लगे। किन्तु अंग्रेजी सवारों ने गोलियों से भून डाला।

कैसा था वह स्वतत्रता का युद्ध। उसका वर्णन भला कलम कर सकती है। एक दो नहीं किन्तु तीन हजार से ऊपर माई के लालों ने एक ही दिन में अपनी जननी-जन्मभूमि को फिरंगियों से मुक्त करने के लिये अपनी बलि देदी।

सिख नेताओं ने अब भागना उचित न समझा वे भागते भी किस के लिये। आज उनके पास बचा ही क्या था। वे सब बन्दी बना दिये गये। राजा चतुरसिंह, सरदार शेरसिंह और अतरसिंह आदि आज कैदी थे।

तलवार रखते हुये सरदार शेरसिंह ने मेजर गिलवर्ट की दाहिनी ओर खड़े होकर कहा "अंग्रेजों के अनेक अत्याचारों से ऊब कर हमने युद्ध किया था। अब हमारी यह दुर्दशा हो गई है और हमारी सेना के बॉके सिपाही सदैव के लिये हम से अलग हो गये है। हमारी तोपें, हमारे हथियार हाथ से निकल चुके हैं। इस समय हम बिल्कुल युद्ध के साधनों से हीन है। हमने जो कुछ भी किया है उसके लिये हमे कोई पश्चाताप नहीं। और जो आज किया है शक्ति होने पर उसे ही कल भी कर सकते हैं।"

गिरफ्तार लोगो से अग्रेज हथियार रखवा रहे थे। हथियार रखते समय अनेकों सिखों के हृदय फट पड़े और उनकी ऑखो से ऑसू वहने लगे। आज सिंहों के बच्चे इतने विवश हैं। यह वात उनके मन को मसोसने लगी। महाराजसिंह और रिछपालसिंह नाम के दो नौजवानों ने तो कह भी दियाकि हम राजी से हथियार नहीं रक्खेगे। वलात छिनाओ और हमारे आगे आओ कौन हथियार छिनाता है।

सरदार शेरसिंह जी ने वन्दी अग्रेजों को कई वार छोड़ने की शिष्टता दिखाई थी किन्तु नृशस अग्रेज फौजी अफसरो ने उन्हे छोडना तो दूर किन्तु पंजाव से भी वाहर कलकत्ते मे सजा पाने के लिये भेज दिया।

यह दूसरा सिख युद्ध समाप्त हो गया। विद्रोह दव गया। अग्रेजों ने कोने-कोने से विद्रोह को दवा दिया। किसी को सजा देकर और किसी को लोभ लालच देकर सारे पंजाव में शाति कर दी। भीतर असतोप की भट्टी चाहे भले ही धधकती रही थी किन्तु सन्नाटा सारे पंजाव में हो गया।

अब अंग्रेज निश्चिन्त थे। उन्हे पक्का विश्वास हो गया कि अब उनका मुकाविला करने लायक कोई भी संगठन सिखों का पजाव मे शेप नहीं है। सारे सूवों मे उनकी छावनियॉ पड़ी हुई है। कोई भी मजवूत किला ऐसा नहीं जहॉ उनका प्रवन्ध नहीं है। तव उन्होंने एक वड़ा काम हाथ में लिया जिसे पूरा करने की उनकी वीसियों वर्प से साध थी।

इस वात को सभी अंग्रेज इतिहास लेखकों ने भी स्वीकार किया है कि विद्रोह से लाहौर दरवार का कोई सम्वन्ध न था। सरदार शेरसिंह जो लाहौर दरवार की प्रतिनिधि सभा के सदस्य थे। निज की प्रतिहिंसा से विद्रोही हुए थे। सरदार रणजोधसिंह पर भी अंग्रेजों ने विद्रोहियों को सहायता देना वताया है। वह भी व्यक्तिगत ही रहा होगा। और सही बात तो यह है कि उस समय शासन के प्रवन्धक और शांति के लिये उत्तरदायी भी तो अग्रेज ही थे। महाराज तो नावालिग थे ही।[1] रानी जिन्दा परदेश मे पड़ी थीं। तव पंजाव को जब्त करने के लिये कोई भी कारण न था।

पंजाव हरण

जिस समय एलेथिक साहब ने तेजसिंह और दीवान दीनानाथ के सामने यह वात जाहिर की कि पंजाव तो अव अंग्रेजी राज्य मे मिलाया जायगा किन्तु क्या यह उचित नहीं होगा कि कौंसिल के लोगों की स्वीकृत भी इस पर ले ली जाय। थोड़ी देर तक दीनानाथ ने मूल प्रस्ताव का विरोध किया किन्तु जव उन्हे धमकी दी गई तो वह चुप हो गये।

२६ मार्च सन् १८४८ को प्रात.काल महाराजा रणजीतसिंह जी के राजभवन में दरवार लगा। वस यही आखिरी दरवार था जव कि सिख वादशाही खतम हो रही थी और यही दिन था जव कि

१. १६ दिसम्वर १८४६ की सन्धि के अनुसार पजाब में अमन-अमान कायम रखने का उत्तरदायित्व अंग्रेजो पर ही था। जिसके लिये कि सिख दरवार को उन्हें २२ लाख रुपया सालाना देना नियत था।

महाराजा दिलीपसिंह पंजाब के राजसिंहासन पर आखिरी बार बैठ रहे थे। आज दरबार था, किन्तु कहीं भी प्रसन्नता दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी। सभी के चेहरे मुरझाये हुये थे। सबके दिल क्षोभ और बेबसी से फटे जा रहे थे। ठीक समय पर मि० इलियट, सर हेनरी लारेन्स और रेजीडेन्सी अनेक यूरोपियन कर्मचारी दरबार में पहुँचे। जिनके साथ गोरे और काले लोगों के अनेक शस्त्रधारी बाडीगार्ड थे।

महाराजा दिलीप अभी नाबालिग थे किन्तु अपने अनिष्ट की आशंका से आज उनका भी चेहरा उतरा हुआ था। वह गंभीरता के साथ नीचा मुंह किये सिंहासन पर बैठे थे। उनके बाईं ओर उनके दरबारी और दाहिनी ओर अंग्रेज अधिकारी और उनके पीछे गोरे सैनिक, शहर के और भी हजारों आदमी आज की वज्र घोषणा को सुनने के लिये दुखी मन से मौजूद थे।

नियत समय पर इलियट साहब ने आज जो कुछ करना था उसकी घोषणा की जिसका अनुवाद प्रांतिक भाषा में एक द्विभाषिये ने इस प्रकार किया—

"अंग्रेज सरकार पंजाब के बाशिन्दों की बहतरी के लिये उचित समझती है कि अब पंजाब का शासन भार वह कतई रूप से अपने हाथ में ले ले। अत अब से महाराजा दिलीपसिंह पंजाब के महाराज नहीं रहेंगे किन्तु उनके आराम और सन्मान का खयाल सरकार सदैव रक्खेगी। इसका फैसला हो चुका है और लाहौर-दरबार के साथ सन्धि हो चुकी है जिसके अनुसार आपका दरबार महाराजा रणजीतसिंह जी के कुल राज्य को स्वेच्छा से अंग्रेजों को सौंपता है। उस सन्धि की शर्तें इस प्रकार है। (१) महाराजा दिलीपसिंह और उनके वारिसान पंजाब-राज्य-सम्बन्धी समस्त स्वत्व, दावा, और क्षमता परित्याग करते हैं। (२) लाहौर-दरबार की जो सम्पत्ति है उस पर ईस्ट इंडिया कम्पनी का अधिकार होगा। (३) महाराजा रणजीतसिंह जी ने शाहशुजा से जो कोहनूर हीरा प्राप्त किया था उसे अब महाराजा दिलीपसिंह महारानी विक्टोरिया को भेंट कर देंगे। (४) ईस्ट इंडिया कम्पनी महाराजा दिलीपसिंह और उनके परिवार तथा नौकरों के गुजारे के लिये ४-५ लाख रुपया वार्षिक की पेन्शन देगी। (५) महाराजा दिलीपसिंह जी के साथ सन्मान का व्यवहार किया जायगा। उनकी पदवी 'महाराजा दिलीपसिंह बहादुर' रहेगी। उनके रहने के लिये गवर्नर जनरल जहाँ उचित समझेंगे प्रबन्ध कर देंगे। महाराजा को यावज्जीवन ब्रिटिश गवर्नमेंट के अधीन रहने से ऊपर लिखी पेन्शन बराबर मिलती रहेगी।"

जब इस प्रकार की घोषणा पढ़कर सुनाई गई तो समस्त लोगों के मुँह स्याह पड़ गये। दीवान दीनानाथ ने आँखों से आंसू पोंछते हुये कहा, "मैं ईस्ट इंडिया कम्पनी से दरख्वास्त करता हूँ कि वह बालक महाराजा के साथ दया का व्यवहार करे।" कहा जाता है इलियट ने दीनानाथ को यह कहते हुये डाट देकर बिठा दिया कि "अगर चुप नहीं रहे तो काले पानी भेज दिये जाओगे।"

अंग्रेजों के इस कार्य की प्रत्येक हृदयवान व्यक्ति ने निन्दा की। लार्ड 'ले' ने लिखा था—"हम अंग्रेज चौड़े में दिलीपसिंह के रक्षक थे। दिलीपसिंह सन् १८५४ ई० में बालिग होते। हमने १८४८ की १६वीं नवम्बर को उनके राज्य की रक्षा की गारण्टी के लिये कदम बढ़ाया था। इसलिये विद्रोहियों को दंड देने और शासन सभा के प्रति होने वाले बखेड़े को दबाना हमारा फर्ज था। किन्तु पांच महीने में ही हम इतने बदल गये कि हमने दिलीपसिंह का राज्य जब्त कर लिया। यह हमने खूब विलक्षण रक्षा की।"

सर हेनरी लारेन्स ने कतई रूप से इस जब्ती का विरोध किया था, किन्तु उसकी कुछ चल न सकी। पंजाब का शासन सर हेनरी लारेन्स के भाई जौन लारेन्स को सौंपा गया।

महाराजा दिलीपसिंह जी के लिये एक अंग्रेज अभिभावुक नियत कर दिया जिसका नाम

डाक्टर लोगन था और जिसे कि १२००) महीना वेतन दिया जाता था। महाराज दिलीपसिंह जी फारसी तो कुछ जानते थे, डाक्टर लोगन से वे अंग्रेजी सीखने लगे। उनकी बुद्धि बड़ी तेज थी और इस बारह वर्ष की उम्र मे भी वे बड़ी समझदारी की बातें लोगन से किया करते थे। बाज रखने का, चित्रकारी सीखने का भी उन्हें शौक था। उनके पास ऐसे आदमियों का आना वर्जित था जो उन्हे कोई ऐसी बात कहे जिससे उन्हे यह पता चल जाय कि उन्हें अब कभी भी लाहौर का राज्य नहीं मिलेगा। डाक्टर लोगन भी उनसे ऐसी ही बातें कहते यदि आप अंग्रेजों के भक्त रहेंगे तो लाभ ही होगा। डाक्टर लोगन महाराज के परिवार के अन्य व्यक्तियों की देख-भाल भी करते थे। जिनमे महाराजा रणजीतसिंह, महाराजा खड्गसिंह, शेरसिंह, नौनिहालसिंह आदि की रानियाँ आदि और शेरसिंह के पुत्र सहदेवसिंह भी थे।

सरदार महासिंह से लेकर महाराजा रणजीतसिंह के समय तक जो भी अमूल्य वस्तुये उन्हें पंजाब के राज्य घरानों से भेंट और जीत मे मिली थीं। वे सब और कोहनूर हीरा थोड़े दिन के बाद खजाने से निकाल कर विलायत पहुँचा दिये गये। जिनमें स्वर्ण-सिंहासन और रत्नजटित काश्मीरी शाल बे-जोड़ वस्तुएं थीं।

सन् १८४९ ई० की चौथी सितम्बर को महाराजा दिलीपसिंह जी की वर्षगांठ थी। उसी समय डाक्टर लोगन ने उन्हें बहुमूल्य वस्त्र और मोती जवाहरातों की मालाये पहनाईं, बालक महाराज ने डाक्टर लोगन से कहा, "कोहनूर हीरा अब की मेरी बांह पर क्यों नहीं बाँधते।" पर अब वह हीरा था कहाँ ?

पंजाब विद्रोह

सन्-१८४९ ई० के सितम्बर महीने में लार्ड डलहौजी लाहौर आये। महाराज ने डाक्टर लोगन के सिखाये शब्दों मे उनका स्वागत किया। १५ दिन तक उन्होंने लाहौर की और सिखों की मनोदशा और शांति का अध्ययन किया। इसके बाद वे लौट गये।

११ वीं दिसम्बर को उन्होंने डाक्टर लोगिन को लिखा—"महाराज दिलीपसिंह और महाराज शेरसिंह के पुत्र सहदेवसिंह के लिये फतहगढ़ मे रहने का प्रवन्ध कर दिया गया है। आप उन्हे लेकर वहाँ चले जायँ। आपके वेतन का आधा भाग महाराज की पेन्शन मे से दिया जाया करेगा।"

२१ वीं दिसम्बर को प्रातः ६ बजे डाक्टर लोगन महाराज और सहदेवसिंह तथा सहदेवसिंह की माता को लेकर लाहौर से फतहगढ़ के लिये चल पड़े।

चलते समय महाराज की आँखों से अपनी जन्मभूमि को छोड़ने के दुःख मे आँसू झरने लगे किन्तु तब भी उन्हे ऐसा विश्वास न था कि वे फिर यहाँ लौटकर न आ सकेंगे। कई दिन के बाद सिख जनता को यह समाचार सुनाई पड़ा किन्तु अब किया क्या जा सकता था।

फतहगढ़ मे उनके रहने के लिये मकान बनवा दिये गये थे। जो शहर और छावनी के बीच में थे और सिपाहियों का जिन पर बराबर पहरा रहता था।

लोगन साहब यथा सम्भव महाराज को खुश रखने का उपाय करते थे किन्तु लाट साहब को यह बात मंजूर न थी। उन्होंने लोगन को लिखा भी था—"तुमने महाराज दिलिपसिंह के लिये बाग लगवाया है किन्तु यह तो याद रखना है कि उनका जीवन अब बादशाहों का नहीं गुजरना है। अतः कोई भी फिजूलखर्ची न की जाय।"

कहा जाता है महाराज दिलीपसिंह पढ़ने-लिखने मे दिलचस्पी लेते थे और वे अंग्रेजी का ज्ञान बराबर प्राप्त कर रहे थे, किन्तु अंग्रेजों को परिवार में रखकर और रात-दिन उनकी ही सभ्यता व संस्कृति

की बात सुनकर उन पर पश्चिमी सभ्यता का विष भी असर डालता जा रहा था। वे अब अंग्रेज लड़कों की जैसी वेश-भूषा को पसन्द करने लगे। किन्तु महाराज शेरसिंह की रानी को यह बातें पसन्द न थीं। वे जब भी जितना भी समझा सकतीं अपने सिख धर्म की बातें महाराज को समझातीं।

लार्ड डलहौजी ने न मालूम क्या सोचकर सहदेवसिंह की माँ (रानी शेरसिंह) को एक धमकी का पत्र लिखा—"आप अपने दिमाग से इस बात को निकाल दीजिये कि पंजाब अब सिखों का राज्य है और भविष्य में आपके पुत्र या और किसी को वहाँ का राजा बनाया जायगा।" बेचारी महारानी चुप हो रहीं और वे कुछ दिन के लिये अपने पिता के घर जाने के लिये विचार बाँधने लगीं।

सन् १८५२ ई० में महाराज ने भारत के विभिन्न स्थानों की सैर की। अंग्रेजों ने उनका इस सैर का इस प्रकार प्रबन्ध किया कि किसी को पता नहीं चल सका। हाँ, हरिद्वार में अवश्य हजारों सिखों ने उन्हें पहचान लिया, जो कि पर्व का स्नान करने आये थे। महाराज हाथी पर बैठे सैर कर रहे थे। सिख उनके इर्द गिर्द इकट्ठे हो गये और उनकी जय बोलने लगे। किन्तु महाराज केवल आँखों में आँसू भर लाने के सिवा उनसे कुछ भी न कह सके। इस वर्ष की वर्षा उनकी मंसूरीमें बिताई गई। जहाँ कि वे अंग्रेज बालक-बालिकाओं के साथ खेलते-कूदते और मनोरंजन करते रहे।

महाराज को बराबर कोशिश करके इस बात के लिये तैयार किया गया कि सन् १८५३ की ८ वीं मार्च को महाराज ने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया—जिसकी कि लार्ड डलहौजी ने भी स्वीकृति दे दी। भला डलहौजी क्यों न दे देता जब कि वह समझता था कि महाराज के ईसाई हो जाने पर सिखो के दिलों में जो उनके प्रति प्रेम है वह नष्ट हो जायगा।

५ अप्रैल को डलहौजी ने महाराज को जो पत्र लिखा था उसमें बायबिल भेजते हुये उनके ईसाई हो जाने पर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की थी।

ईसाई किये जाने के बाद महाराज को विलायत ले जाने की तैयारी की गई। लार्ड डलहौजी इस बात से भी प्रसन्न हुआ और उसने पुन बायबिल की एक प्रति उनके पास भेजी।

सहदेव की माँ ने इस बात का विरोध किया और कहा—"सहदेवसिंह को तो मैं विलायत हर्गिज भेजने को तैयार नहीं हूँ किन्तु मैं महाराज के विलायत जाने का भी विरोध करती हूँ। मैं तो इसे ठीक समझती हूँ कि हरिद्वार में उनके रहने का प्रबन्ध कर दिया जाय।"

लार्ड डलहौजी ने सहदेवसिंह को विलायत न भेजना तो मंजूर कर लिया किन्तु वह इस बात से राजी नहीं हुआ कि महाराज को भी विलायत जाने से रोका जाय। यह बातें सहज ही बतलाती हैं कि महाराज को ईसाई बनाने उन्हे और विलायत ले जाने मे उनकी अन्तर सहमति थी।

सन् १८५४ ई० की गर्मियों में महाराज काशी, लखनऊ आदि स्थानों को देखते हुये कलकत्ता पहुँच गये। रास्ते में अनेकों स्थानों को देखते हुये वे जून १८५४ ई० में लन्दन पहुँच गये। वहाँ उनके लिये कोर्ट आफ वार्ड्स के डायरेक्टरों ने रहने को मकान बनवा दिया था। वे लोग महाराज के सौजन्य-पूर्ण व्यवहार से बड़े प्रसन्न हुये थे। महारानी विक्टोरिया ने भी उन्हे अपने महल मे बुलाकर उनके साथ मुलाकात की।

कहा नहीं जा सकता महाराज को कितने दिन तो विलायती वेश भूपा से प्रेम रहा और कितने दिनों उन्हें बाइबिल की बातें भाईं किन्तु इतना तो हम जानते हैं कि ज्यों ज्यों महाराज का विलायत में अधिक रहते समय बीतने लगा त्यों-त्यों उनके दिल से विलायत की सभ्यता और रहन-सहन का रङ्ग रफू

होने लगा। उन्होंने हैट-कोट पहनना छोड़ दिया और ये शनैः-शनैः सिख पोशाक पर आ गये। उनके रहन-सहन और आचार-व्यवहार मे भी परिवर्तन हो गया।

इतना होने पर भी वे बराबर अपने मन के भावों को दबाये रखते और किसी भी प्रकार की टिप्पणी किसी विषय पर नहीं करते। डाक्टर लोगन और उनकी स्त्री के प्रति उन्होंने वही प्रेमपूर्ण व्यवहार निभाया।

आपके मनोभावों को जानने की बड़ी कोशिश की जाती थी। एक बार महारानी विक्टोरिया ने लेडी लोगन से पूछा—"महाराज दिलीप कोहनूर के सम्बन्ध मे तो कुछ चर्चा नहीं करते हैं।" जब लेडी लोगिन महाराज के पास आई तो उन्होंने कोहनूर की चर्चा छेड़ दी हालाँकि महाराज अब उस प्रसंग को भूल जाना चाहते थे जो उनके दिल को दुखी करता। न मालूम क्यों आज यकायक कोहनूर की चर्चा से उनका दिल भारी हो गया और उन्होंने कहा—"क्या आप मुझे एक बार कोहनूर हीरा दिखवा देंगी।" लेडी साहिबा ने पूछा—"लेकिन आप उसे देखकर क्या करेंगे।" महाराज ने अपने मन के भाव दबाते हुए कहा-"एक तो मैंने उसे बचपन मे देखा था इसलिये अब भले प्रकार देखना चाहता हूँ और दूसरे तब मेरी अजानकारी मे वह यहाँ लाया गया अब मैं अपने हाथ से साम्राज्ञी को भेट कर दूं।"

लेडी लोगन के कहने पर महारानी विक्टोरिया ने कोहनूर दिखाना मंजूर कर लिया। उन्होंने कोहनूर दिलीपसिंह के हाथ मे देते हुये पूछा—"अच्छा बताओ यह अब सुन्दर है या तब सुन्दर था जब लाहौर मे था।" इस समय महाराज ने अपने चेहरे के भावों को विगड़ने नहीं दिया। उन्होंने सहज भाव से कहा—"कटने छटने से कुछ सुन्दर तो अवश्य हो गया है किन्तु हल्का भी हो गया है।" यह कहते हुये उन्होंने हीरे को महारानी को लौटा दिया।

महारानी विक्टोरिया को महाराज दिलीपसिंह के सम्बन्ध मे काफी जानकारी हासिल करने की इच्छा थी। इसलिये उन्होंने लेडी लोगिन से महाराज के सम्बन्ध की एक तवारीख ही लिखने को कहा। प्रिन्स अलबर्ट (विक्टोरिया के पति महाशय) ने महाराज के मनोगत भावों को जानने की इच्छा से उन्हें कई बार अपने पास प्रेमपूर्वक बुलाया।

कहा जाता है महारानी विक्टोरिया उनके प्रति प्रेम का व्यवहार करती थीं। लार्ड हार्डिङ्ग ने उन्हें अपने यहाँ कई दिन निमंत्रित किया था। किन्तु हम जहाँ तक भी समझ सकते है महाराज को बहलाने और उनके अन्तर की बातें जानने के लिये वह सब किया जाता था। वरना उन्हे यूनिवर्सिटी की परीक्षा मे न बैठने देकर पेन्शन की रकम मे उत्तरोत्तर कमी करके जो मानसिक और आर्थिक कष्ट दिये जाते थे वह बृटिश राजनीतिज्ञो की सहृदयता के द्योतक नहीं थे।

भैरववाल की सन्धि के अनुसार उन्हें १८५४ ई० में बालिग मान लेना चाहिये था, किन्तु १६ वर्ष की उम्र मे उन्हे बालिग माना गया सो भी इतने के लिये भी महाराज को काफी लिखा-पढ़ी करनी पड़ी थी।

इस बीच में एक बार उन्होंने लेडी लोगन के साथ कई यूरोपियन देशों की सैर भी की।

उन्हे अखबार पढ़ने का बड़ा शौक था। वे अखबारों मे सबसे पहले हिन्दुस्तान की खबर पढ़ने की चेष्टा करते थे। एक बार उन्होंने पढ़ा, अवध जब्त हो गया और उसके नवाब की पच्चीस लाख की पेन्शन हो गई। महाराज को खयाल आया कि अवध के नवाब से हमारा दर्जा कुछ कम नहीं। फिर हमारे सारे परिवार को केवल चार लाख वार्षिक ही। महाराज ने लिखा-पढ़ी भी की किन्तु उन्हे इसके

लिये निराश ही होना पडा।

सन् १८५७ मे फ्रांस के बादशाह और उनकी रानी इंगलैंड गये। महाराज से मिलने की उन्होंने इच्छा प्रकट की। जब महाराज मिले तो दोनो राजा-रानी महाराज से बहुत खुश हुये, किन्तु कोई खुश हो या नाराज, महाराज के भाग्य पर इन बातों का क्या असर पडता। वे तो उनके शाही कैदी थे। शुक्र इतना था कि व्यवहार उनके साथ मेहमानदारी का होता था।

सन् १८५६ ई० मे उन पर एक इल्जाम भी लगाया गया और वह यह कि उन्होंने अपनी माँ जिन्दा महारानी के पास एक गुप्त-पत्र उन्हे यूरोप की ओर चले आने के लिये लिखा है। कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ने जाच कराई।

इसके बाद उन्होंने अपनी माता महारानी जिन्दा के पास नेमी गोरा के हाथ एक पत्र भेजा और उसमें लिखा कि आपको नैपाल मे ही रहकर शाति से शेप जीवन बिताना चाहिये।

कुंवर सहदेवसिह जी और उनकी माता की इधर भारत मे पेन्शन बन्द हो गई थी। इस समाचार को सुनकर महाराज को बडा दु.ख हुआ और उन्होंने कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स की मार्फत हिन्दुस्तान के वायसराय के साथ लिखा-पढ़ी की। तब बडी मुश्किल के बाद उन दोनों के लिये पॉच हजार वार्षिक की पेन्शन हुई।

सन् १८५६ ई० की २० मई को लार्ड स्टेनले ने महाराज को सूचना दी कि अब आप बालिग हो गये और आपको २५००० पौंड सालाना पेन्शन मिलेगी। महाराज को अंग्रेजों के वर्ताव से अब शनै.-शनै. खेद बढ़ता ही जाता था और सन्देह तो भारी मात्रा मे। इसलिए उन्होंने सरकार से पूछा "यह पेन्शन मेरे ही जीवन तक है या मेरे वारिसों को भी मिलेगी।" इसके उत्तर मे उन्हे बताया गया—आपको १५००० पौंड मिलेंगे, तीन हजार आपकी स्त्री को, शेप आपकी सतान को सुरक्षित रहेगा और सतान न होने की हालत मे मय व्याज के अंतिम दिनों में आपको ही दे दिया जायगा।"

अब दिनों दिन महाराज के हृदय मे अपने देश के प्रति प्रेम उमडता जाता था। ज्यों-ज्यो वे सयाने होते जाते थे। त्यों-त्यो ही उन्हे अपनी दशा पर क्षोभ होता था। उन्होंने सरकार को लिखा—"मेरी बची हुई संपत्ति पंजाब मे अगर शिक्षा पर खर्च की जाय तो मुझे बडा संतोप होगा।" किन्तु इन बातों पर भला ध्यान दिया जा सकता था।

गदर के समय में विद्रोहियों ने फतहगढ़ मे महाराज के मकान की भी लूट कर ली थी। उसमे उनका बडा नुकसान हुआ था। इसके लिये महाराज ने सरकार से हर्जाना मॉगा, क्योंकि उनका वह सामान सरकार के सरक्षण मे ही तो था। सरकार ने इस बात का भी कोई जवाब नहीं दिया। महाराज की इन बातों से अधीरता बढ़ने लगी। इधर उनकी पेन्शन का उन्हे पूरा रुपया नहीं मिलता था इससे वे खर्च से भी कुछ-कुछ तग रहने लगे। सर चार्लस वुड ने महाराज को मुलाकात के लिये बुलाया और उनकी सारी बाते सुनकर उसने महाराज से इस प्रकार का एक इकरारनामा लिखवाया—"मैं अपने खर्च के लिये पच्चीस हजार पौंड वार्षिक चाहता हूँ और मृत्यु के बाद अपने वारिसों के लिये बीस हजार पौंड की प्रार्थना करता हूँ। यदि मेरे कोई वारिस न हो तो यह मेरी संचित पूँजी हिन्दुस्तान की भलाई के कामों में खर्च कर दी जाय। इससे अधिक हिन्दुस्तान की अंग्रेजी सरकार पर उनका दावा नहीं है।" यह घटना २० जनवरी सन् १८६० ई० की है।

इसके दो महीने बाद ही महाराज को कार्ट आफ वार्डस ने एक पत्र के उत्तर मे लिखा कि

"सन् १८४६ ई० की सन्धि के अनुसार उनके परिवार के लिये जो पाँच लाख सालाना की पेन्शन मुकर्रर हुई थी उसमें से किसे कितना दिया गया यह मालूम करने का महाराज को अधिकार नहीं है। हाँ, हम इतना बता देना चाहते हैं कि डेढ़ दो हजार पौंड पिछली रकमों से जमा है।" महाराज ने इसका उत्तर कुछ गुस्से के साथ इस प्रकार दिया कि "जब तक मुझे यह बात नहीं बताई जायगी तब तक मैं उस इकरारनामे को भी बेकार ही समझता हूँ। जो चार्लस ने लिखाया है।"

महाराज को अपनी माँ से मिलने और अपनी मातृ-भूमि के दर्शनों की भारी उत्कंठा थी। इस लिये उन्होंने भारत जाने की इच्छा प्रकट की। गवर्नर जनरल ने उनको लिखा कि "महाराज पंजाब नहीं जा सकेंगे शेष भारत मे उनकी जहाँ इच्छा है जा सकेंगे। महारानी जिन्दा यद्यपि चुनार से भागकर नैपाल पहुँची हैं, किन्तु वे भारत मे वापिस लौटे तो उनके साथ अच्छा ही व्यवहार होगा।"

महाराज सन् १८६१ के जनवरी मास मे बड़े आह्लाद के साथ कलकत्ता आ गये। उधर महारानी भी रानीगंज (बंगाल) मे आ गई। जहाँ दोनों माँ बेटों का मिलाप हुआ। बहुत दिन के बिछुड़े माँ-बेटे जब मिले उस समय उनकी क्या दशा होती है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। पहले दोनों गले मिल कर रोये और फिर अपनी-अपनी विपत्तियों की कहानियाँ कहकर दिल हल्के किये।

अंग्रेज अधिकारियों का ऐसा खयाल था कि महाराज दिलीपसिंह के इसाई हो जाने के समाचारों से सिख उनके साथ कोई हमदर्दी नहीं रक्खेगे किन्तु जब यह समाचार मिला तो अनेकों सिख कलकत्ते म उनसे मिलने पहुँचे। जो सिख सैनिक चीन से वापस लौटे थे उन्होंने भी महाराज से मिलने की इच्छा प्रकट की। इस बात को देख कर लार्ड केनिंग चिन्तित हुए और उन्होंने महाराज को वापिस विलायत भेज दिया। कहा यह गया कि महाराज को यहाँ की आबहवा अनुकूल नहीं जँची इससे वह लौट गये हैं। महाराज शेर के शिकार का इरादा करके आये थे किन्तु इसके लिये भी उन्हे अवकाश नहीं मिला।

महारानी जिन्दा भी पुत्र-प्रेम से विलायत जाने को तैयार हो गईं। उन्हे उनके चुनार मे छोड़े हुए जेवर दे दिये गये, क्योंकि अंग्रेज अधिकारी उनके विलायत जाने से खुश थे।

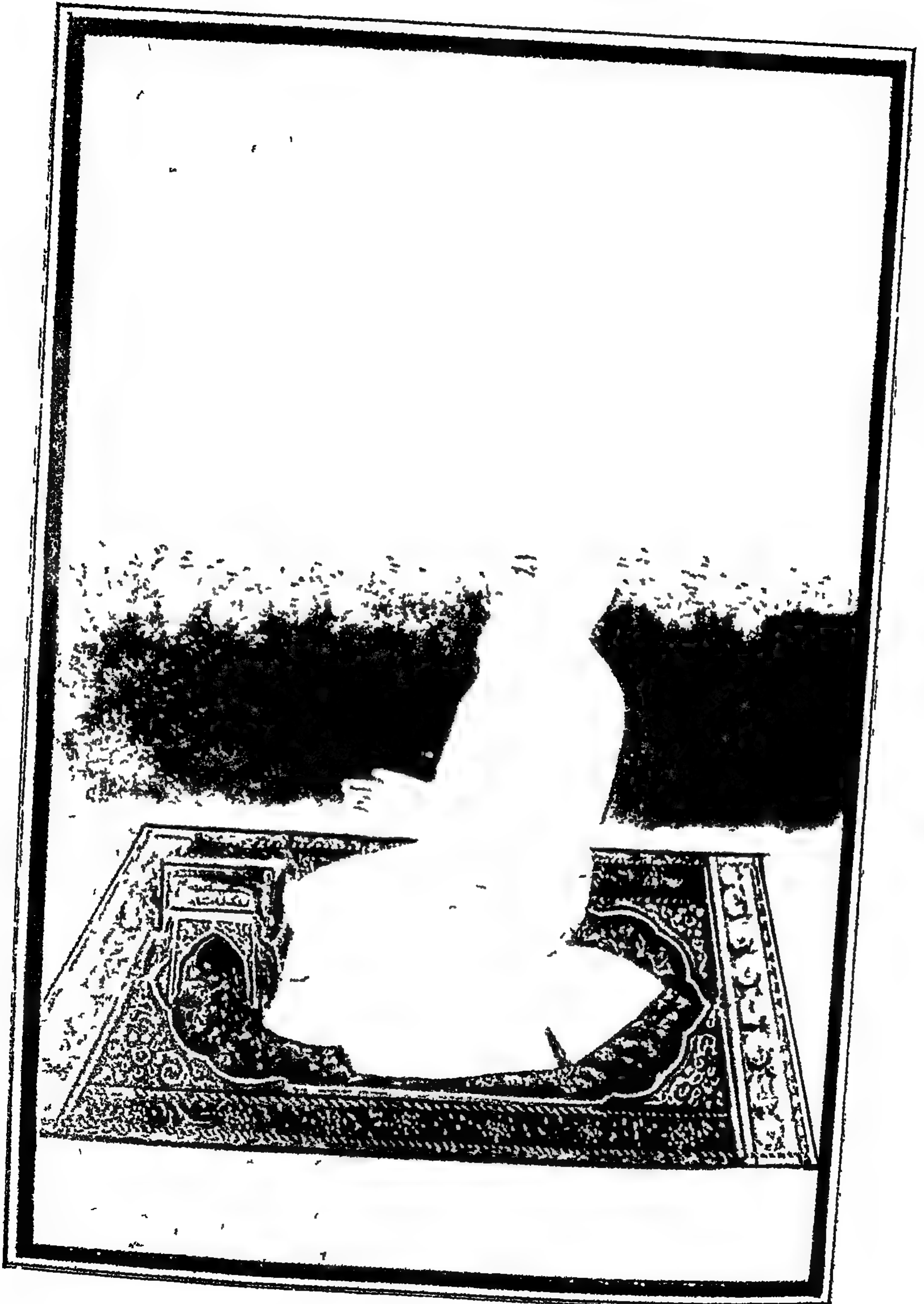
किन्तु खेद है कि महारानी जिन्दा को विलायत मे भी उनके प्यारे पुत्र से अलग कर दिया गया। उन पर यह इल्जाम लगाया गया कि वे महाराज को ईसाई-धर्म से विचलित करती हैं। जब से वे आई हैं, महाराज ने गिरिजों मे जाना भी बन्द कर दिया है। इस दु ख से और अब तक की विपत्तियों से उन प्राणों की शक्ति काफी क्षीण हो चुकी थी। अत केवल दो ही वर्ष के बाद सन् १८६३ के सितम्बर में उनका देहान्त हो गया।

भारत माँ की सुपुत्री, खालसा राज्य की अधिष्ठात्री और महाराजा रणजीतसिंह की महारानी की इस दु:खद मृत्यु से किस सहृदय का दिल न रो उठेगा। उसने सात समुन्दर पार उस श्वेत देश मे मरते समय एक ही याचना की और वह यह कि उसका अन्त्येष्टि संस्कार उसके अपने भारत देश में ही हो। कहा जाता है, उनका शव मसालो से सींचकर रख दिया गया और सन् १८६४ ई० मे महाराज दिलीपसिंह बम्बई के रास्ते आकर नर्मदा-तट पर उनका संस्कार करके वापिस चले गये। इन्हीं दिनो डाक्टर लोगिन का भी स्वर्गवास हो गया। अब वे दुखी रहने लगे। अँग्रेजो ने उनसे किसी कुलीन रमणी के साथ ब्याह कर लेने की बात कही। किन्तु उन्हे अपना भविष्य अंधकारपूर्ण दिखाई देता था। इसलिये वे एक गरीब कन्या से शादी करके दिल को बहलाने की चेष्टा करने लगे। यह महिला इजिप्ट की रहने वाली और बम्बा नाम की थी। महाराज ने इसे शिक्षा दिलाकर योग्य बनाया।



महाराजा दिलीप सिंह जी

फूल-वंश-संस्थापक



बावा फूल

सन् १८८३ ई० मे ब्रृटिश सरकार ने महाराज को 'सितारेहिन्द' की भी उपाधि दी। बलिहारी इस अंग्रेज जीव की। एक ओर तो उनके पत्रों का जवाब डेढ़-डेढ़ वर्ष तक नहीं दिया जाता है दूसरी ओर उन्हे उपाधि देकर प्रसन्न करने की कोशिश की जाती है।

जब महाराज-अंग्रेज शासकों से काफी लिखा पढ़ी करके निराश हो गये और उन्होंने अपने को अधिक से अधिक बेबसी मे अनुभव किया तो उन्होंने आखिर इंगलैंड की जनता के सामने अपना केस रक्खा। लंदन के प्रसिद्ध पत्र 'टाइम्स'मे उन्होने अपनी समस्त कठिनाइयों एवं उचित मागों और अंग्रेज अधिकारियों के रुख पर प्रकाश डालते हुये इगलैंड के सुसभ्य समाज मे अपील की कि वे इसमे उनका साथ दें।

वास्तव मे महाराज दिलीपसिंह का उन लोगों को साथ देना चाहिये था, क्योंकि उनकी नागरिकता भी स्वीकार की जा चुकी थी। किन्तु उनकी यह अपील भी बेकार हो गई। इसके तीन वर्ष बाद उन्हें जो जवाब मिला वह पिछले जवाबों से भी अधिक निराशाजनक था। इस जवाब के अनुसार उनकी सन्तान के लिये कुछ भी सहायता देने से अधिकारियों ने इन्कार कर दिया। अब फिर वे इंगलैंड रहते भी क्यों। इसलिये उन्होंने वहाँ की अपनी जमींदारी और जायदाद बेच डाली और भारत आने की तैयारी करने लगे। उनके इस इरादे से सरकार कुछ भयभीत हुई और उन्हे कहा गया कि यदि आप यहीं रहेंगे तो उनके दावे के लिये उन्हे पचास हजार पौंड दिया जायगा और भारत गये तो उन्हे पजाब में तो जाने ही नहीं दिया जायगा, किन्तु दूसरे स्थान मे भी प्राय वह सरकार के ही प्रबन्ध मे रहेंगे, स्वतन्त्र नहीं।

यह सब बाते सुनने पर भी महाराज ने भारत पहुँचने का ही अपना निश्चय पक्का रक्खा और उन्होंने अपने देशवासियों के नाम एक पत्र लिखा; जो कि १७ अप्रैल १८८६ शनिवार को 'ट्रिब्यून' अखबार मे प्रकाशित हुआ था, उनके शब्द यह हैं :—

"मेरे प्यारे देशवासियो!

मेरी हिन्दुस्तान लौटने की कभी कोई इच्छा नहीं थी। परन्तु सतगुरु ने, जो कि सबके भाग्यों का मालिक है और अपने गलती करने वाले (अपने कृत्य) से अधिक शक्तिवान है, ऐसे हालात पैदा कर दिये हैं कि मैं अपनी इच्छा के विरुद्ध इंगलैंड छोड़ने पर बाध्य होगया हूँ। ताकि भारतवर्ष में एक मामूली मनुष्य की जिन्दगी गुजारू। मैं यह समझता हुआ कि जो कुछ नियमति है वही होगा। ईश्वरेच्छा के सामने सिर नवाता हूँ।

अब मैं पवित्रात्मा खालसा जी! इसलिये आपसे क्षमा चाहता हूँ कि मैंने अपने बुजुर्गों के धर्म को एक विदेशी धर्म के लिये त्यागा किन्तु उस समय, जब कि मैंने ईसाई मत को धारण किया, मैं बच्चा था।

यह मेरी तीव्र इच्छा है कि बम्बई पहुंचने पर फिर पाहुल लूँ अर्थात् सिख धर्म की दीक्षा लूँ और आपसे हार्दिक उम्मीद है कि आप उस पवित्र अवसर पर सतगुरु के हुजूर अरदास करेंगे।

मैं आपको लिखने पर मजबूर हुआ हूं, क्योंकि मुझे पजाब मे आपसे में मिलने की आज्ञा नहीं है। जैसी कि मेरी बहुत इच्छा थी।

हिन्दुस्तान की मल्का के लिये अटल भक्ति का क्या ही अच्छा परिणाम है। परन्तु होगा वही जो वाहिगुरु को मजूर है।

वाहि गुरु जी की फतह बुलाता हुआ मैं हूँ

मेरे प्रिय देशवासियो आपका ही मांस और हाड़—दिलीपसिंह"

महाराज अदन तक आ पहुँचे थे। उन्हें वहीं रोक दिया गया और कहा गया कि 'भारत के गवर्नर जनरल आपका भारत पहुँचना शान्ति के लिये खतरनाक समझते हैं।' वास्तव में उनका हिन्दुस्तान

अंतिम दिन

आना अंग्रेज अधिकारियों के लिये खतरनाक ही साबित होता। क्योंकि सिखों के अन्दर से उनकी भक्ति कम नहीं हुई थी और सारा पंजाब बड़ी खुशी से उनकी बाट देख रहा था।

विलायत लौटने के लिये उन्हें विवश किया गया। किन्तु वहाँ पहुँचकर वे खिन्न रहने लगे और उनकी वह गम्भीरता भी नष्ट हो गई। घण्टों बैठे वे अपनी दशा पर विचार करते और कभी-कभी तो बक भी उठते। एक समय वे महारानी विक्टोरिया को कोहनूर को धारण किये हुये देखकर कह उठे—"यह मेरे बाप की चीज है। महारानी विक्टोरिया का इस पर कोई अधिकार नहीं है।" विक्टोरिया उनकी मनोदशा को समझकर चुप हो रहीं। किन्तु तब से उनका महलों में जाना बन्द ही हो गया। उनकी वेदना दिन पर दिन बढ़ने लगी और उन्होंने राज पेंशन लेना बन्द कर दिया। वह स्पष्ट कहने लगे—"सन् १८४९ की वह सन्धि जिसके अनुसार पंजाब जब्त कर लिया भला कोई सन्धि कही जा सकती है।"

अंत में उन्होंने फ्रान्स की यात्रा की और वहाँ के बादशाह से कहा कि मुझे पांडिचेरी भेज दो। वहाँ जाकर मैं अपने राज्य को लेने की कोशिश करूँगा। फ्रांस में उनकी बात तो ध्यान से सुनी गई किन्तु दूसरे की बला को अपने गले में कौन डालता है। इसके बाद वे जर्मनी पहुँचे। जर्मनी में रूस की तैयारी की। वहाँ वे सर्व प्रथम 'मास्को गजट' के सम्पादक मी० कैटकोफ के यहाँ ठहरे और बादशाह एलेगजेण्डर से बातचीत की।

सन् १८५८ के अक्तूबर महीने में उन्होंने अखबारों में प्रकाशित कर दिया कि मैं उस सन्धि को कतई नहीं मानता हूँ, जो मेरी नाबालिगी में हुई है।

इन्हीं दिनों उन्होंने महारानी चन्दा की मृत्यु का समाचार सुना जिससे वे बड़े दुखी हुये और रूस से लौटकर पेरिस में आकर बीमार हो गये। लन्दन से उनके बेटे विक्टर फिलीप ने आकर उनकी काफी सेवा की। किन्तु वे अच्छे न हो सके और अपने समस्त भावों को साथ लेकर सन् १८५३ में इस संसार से चल बसे।

भारत के सिखों का बादशाह इस प्रकार नि:सहाय और मानसिक यंत्रणाओं में अपनी जन्मभूमि से बहुत दूर प्राण-विसर्जन करेगा, पंजाब के शेर रणजीतसिंह के पुत्र की यह दयनीय दशा होगी, ऐसी सम्भावना किसे थी।

कहा जाता है महाराजा ने तीन पुत्र और तीन लड़कियाँ अपने पीछे छोड़े।

सत्रहवाँ अध्याय

कपूर्थला राज-वंश

कपूर्थला राज्य दो भागों में बटा हुआ है। एक भाग उसका पंजाब में है और दूसरा अवध में। पंजाब का राज्य सरदार जस्सासिंह और उनके वंशजों ने बाहुबल से अर्जित किया था और अवध का भाग महाराजा रणधीरसिंह जी को उनकी उन खिदमात के बदले में मिला था जो उन्होंने विदेश से आये भाग्यशाली अंग्रेज विजेताओं के लिये स्वदेश के किन्हीं हिस्सों को जीतते समय युद्धों में की थीं। 'तारीख कपूर्थला' के लेखक दीवान रामजस साहब ने लिखा है कि अवध-स्थित भू-भाग कपूर्थला को सन् १८५७ के गदर के बाद महाराज रणधीरसिंह जी की खैरख्वाही के एवज में दिया गया था।

पंजाब में जो भू-भाग राज्य कपूर्थला के नाम से मशहूर है वह ४८२ वर्ग मील में फैला हुआ है उसकी लंबाई ३० मील और चौड़ाई ७ से २० मील तक है। अधिकांश में वह व्यास के किनारे-किनारे आबाद है। इसके उत्तर में जिला होशियारपुर, दक्षिण में सतलज नदी, पूर्व में जिला जालन्धर और पश्चिम में व्यास नदी बहती है।

साढ़े तीन लाख के करीब इसकी जन-संख्या और पन्द्रह लाख के करीब सालाना आमदनी है। इसके ग्राम और नगरों की संख्या सात सौ से ऊपर है।

रियासत के प्रसिद्ध नगरों में कपूर्थला राज्य की राजधानी और मुख्य शहर है। इसे ग्यारहवीं सदी में कपूर नाम के अहलूवाल सरदार ने बसाया था। १७५० ई० में भट्टी मुस्लिम राजपूत इब्राहीम ने इस पर कब्जा किया और इसे तरक्की दी। सन् १७८० ई० या संवत् १८३७ वि० में सरदार जस्सासिंह ने मुसलमान हाकिम से छीनकर अपनी राजधानी बनाया। तब से बराबर उन्हीं के वंशजों के हाथ में चला आ रहा है। वेंई नदी के किनारे बसे होने की वजह से इसकी सुन्दरता में कोई कमी नहीं है। बाग-बगीचों की हरियाली में यह और भी अच्छा लगता है। यहाँ पर ठाकुरद्वारा, कला मन्दिर देखने लायक है। यहाँ का कचहरीघर भी बढ़िया है। शिक्षा के लिये एक कालेज 'रणधीर कालेज' के नाम से बना हुआ है। वर्तमान प्रणाली के ढंग का अस्पताल भी है।

कपूर्थला से ढाई मील दक्षिण में शेखूपुरा नाम का कसबा भी उम्दा है। यहाँ पर पुराने जमाने का एक किला बना हुआ है। इसके बाद सुलतानपुर का कस्बा भी अच्छा है। गुरू नानकदेव जी यहीं के नवाब के मोदी रहे थे। यह वेंई नदी के किनारे पर बसा हुआ है। आरंभ में इसका नाम श्रीमानपुर

था। १४ वीं सदी में नासिरुद्दीन के मामाजाद भाई सुल्तान खॉ ने इस पर कब्जा कर लिया। किसी समय इसमे ३२ बाजार और साढ़े पाच हजार दूकानें थीं। प्रत्येक पेशे के लोग वसते थे। कला और दस्तकारी में बहुत उन्नत था। इसमे वारह दरवाजे थे और चालीस हजार मनुष्य वसते थे। ८ मील के घेरे मे आवादी थी।

इसके पास ही मे दूसरी काली नदी वहती है इस पर उसी जमाने के दो पुल वन्धे हुए हैं। दो लाख रुपया इन पुलों पर खर्च हुआ था। यहॉ का किला भी वड़ा मजवूत है जिसे मुसलमान नवावों ने एक लाख रुपये से ऊपर खर्च करके वनवाया था।

महाराज फतहसिंह वरसात के समय मे कपूर्थला की वजाय सुलतानपुर मे ही रहते थे इसलिये उन्होंने यहा की वारहदरी की मरम्मत नये सिरे से करा दी थी।

इसके सिवा सुल्तानपुर के पुराने मकवरे अब्दुल लतीफ का हौज आदि भी देखने लायक हैं।

यहां पर गुरू नानकदेव जी की स्मृति मे भी कई उम्दा स्थान हैं। वेई नदी का संत घाट, वर साहव, कोठरी साहव आदि उनके नाम हैं।

फगवाड़ा कस्वा भी इस राज्य का एक पुराना कस्वा है। यहाँ पर अहलूवाल राजाओं ने एक किला भी बनवाया था। इसके अलावा और भी कई अच्छे कस्वे हैं।

अवध मे इस रियासत का जो भू-भाग था वह इस प्रकार है:—बहरा व वारावंकी के जिला में बौंडही। भटोली ये इलाके सरयू नदी के किनारे पर अवस्थित है। अकोना और दुरगापुर वहराइच के दक्षिण-पच्छिम मे है। खेरी जिले में देहर दरा का इलाका है।

इस भू-भाग के प्रवंध के लिये कुछ अधिकारी रियासत की ओर से मुकर्रिर है। वास्तव मे यह भू-भाग वतौर जागीर के हैं। और सारे इलाकों मे लगभग ६०० गॉव और तीस हजार के करीब आवादी है। ७०० मील के लगभग इस इलाके का क्षेत्रफल है। इन इलाकों मे शिक्षा और स्वास्थ्य का भी राज्य की ओर से प्रवन्ध है। करीव-करीव २०० सैनिक मय तोपों, हथियारो और दीगर रक्षा के सामान के शांति बनाये रखने के लिये इन इलाकों में रहते थे।

इस इलाके मे कई धर्म स्थान है। देरह दरा में तुलसीदास जी ने वैठकर रामायण लिखी थी और सीता धमार में भगवान् राम ने अपना अंतिम यज्ञ किया था। ऐसा वहॉ के लोगों का विश्वास है। इस इलाके की वार्षिक आमदनी १६ लाख से ऊपर है।

कपूर्थला के मौजूदा राज-वंश के प्रसिद्ध पुरुष जिनसे कि इस वंश को इतना उरूज मिला है। सरदार जस्सासिंह जी अहलू वालिया थे। यह राज-वश अपने लिये पटियाला, नाभा, जीन्द की भाँति ही जयसलमेर के भट्टियों से ही अपना निकास वतलाता रहा है और राजा सालिवाहन को उन्हीं की भॉति अपना बुजुर्ग मानता रहा है। यह हम महाराजा रणजीतसिंह जी के पूर्वजों के वर्णन मे लिख चुके हैं कि शाका सालिवाहन और गजवंशीय-सालिवाहन दो अलग-अलग व्यक्ति थे। कपूर्थला वाले इसी गजवंशीय सालिवाहन के वशज वनते है। उनका यह दावा अनुचित नहीं है। प्रत्येक बड़ा खान्दान अपने को वड़ों का ही वशज मानता है। जयपुर के कछवाहे और वीकानेर के राठौर जब अपनी वंशावली भगवान् राम से जोड़ने की व्यर्थ चेष्टा करते हैं तो यह हक सभी को है कि वह अपने कुल का सम्वन्ध भारत के प्राचीन किसी भी महापुरुष से स्थापित कर ले। इससे उस कुल की अनेक सामाजिक कठिनाइयॉ हल हो जाती हैं।

कपूर्थला के पूर्वज



म० जस्सा सिंह अहलुवालिया

शराब का बड़ा निषेध है अत. वैष्णव प्रवृत्ति के लोग उन हैहय अथवा आहलू लोगों को शुद्ध हीन समझने लगे। वास्तव मे वे रक्त से क्षत्रिय ही थे। मध्यप्रान्त में अब भी हजारों हैहय क्षत्रिय हैं।

जैसलमेर से ही सिजरा मिलाने का कारण यह है कि जैसलमेर के लोग भी अफगानिस्तान से ही लौटकर आये थे और सम्भव है कि वे भी हैहय वंशी ही हों और भारत मे लौट कर उन्होंने वातिगल प्रदेश में जिसे संस्कृत ग्रन्थों मे वाति भय के नाम से याद किया गया है और सिंध से मिला हुआ बताया गया है, शक्ति प्राप्त करली और वैष्णव धर्म को ग्रहण करके राजपूत कहलाने लग गये हों।

हम खूब जानते हैं कि महाराज श्रीकृष्ण की सन्तान के लोग गजनी नहीं गये थे और न उनके किसी लडके का नाम गज था ही। उनके पुत्र का नाम वज्र था जो वज्रपुर (साइबेरिया) और पुन जदूका डूंग मे बसा था। काबुल गजनी मे हैहय लोग ही पहुँचे थे और यह हैहय भी यदुओं की ही एक शाखा थे। इसलिये इन्हे या जैसलमेर वालो को यदुवंशी तो कहा जा सकता है और सालिवाहन का वंशज भी माना जा सकता है किन्तु कृष्ण से उनका सीधा सम्बन्ध कठिनता से जुड़ता है। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं वे क्षत्रिय है और चन्द्रवशी क्षत्रिय है। किन्तु है हैहयवंशी। हैहय से हैहयलू वाले और अहयलूवाले तथा अहलूवाले सहज ही बन जाते है।

भाटों ने जो वशावली और तर्ज इस खान्दान को बताई वह स्वाभिमान को गिराने वाली है। और उससे केवल इतना ही हो सकता है कि कपूर्थला का राजघर तो राजपूतों में मिल सकता है किन्तु अन्य सारी बिरादरी उनकी जहाँ की तहाँ ही रही जाती है जिसके बल पर सरदार जस्सासिंह ने उन्नति की थी और उन्नति का फल आज का कपूर्थला राजवश है। वास्तवमे उनकी सारी ही बिरादरी क्षत्रिय है आज से नहीं लाखों वर्ष से वह किसी भी कलारिन के साथ शादी करने से कलार नहीं कहलाई किन्तु आपत्ति काल मे शराब बेचने का धन्धा करने के कारण कलाल कहलाई और जब उसने तलवार पकड़ ली अमृत चख कर सिंह बन गई तब फिर वही उसका पुराना क्षात्र तेज चमक उठा और क्षत्रिय नाम से अभिहित होने के अधिकार को प्राप्त कर गई।

भाटों की पोथियों और सिजरों पर अविश्वास के कई कारण होते हैं उनमे एक यह भी है कि उन्होंने जो नामों की सूची दी है, वह इस बात को साबित नहीं करती कि जिस समय का वे उस नाम को बता रहे है। उस समय ऐसानाम रक्खा भी जाता था क्या?

उदाहरणार्थ शालिवाहन के लड़कों मे धर्म,जगपाल, अजल, चन्द्र, बीजलजी, कालनजी, चाचूजी आदि नामो को देखिये। जगपाल जैन पद्धित का नाम है और ऐसे नाम दसवीं सदी में बहुत रक्खे जाते थे। चन्द्र संस्कृत नाम है ऐसे नामों का रिवाज प्राचीनकाल मे बहुत था। बीजलजी कालनजी ये ठेठ मारवाड़ी नाम है। चाचू जी भी मारवाड़ी है किन्तु बिलकुल गँवार ढंग का। यह सहज ही बता देते हैं कि सब मनगढ़न्त नाम हैं। कहाँ शालिवाहन जैसा शुद्ध नाम और कहाँ उसके साथ चाचू जैसे गँवार नाम।

पटियाला, नाभा, जीन्द और फरीदकोट के पूर्वजों के सैकड़ों नामो की इसी प्रकार मनगढन्त की गई है। जयपुर, उदयपुर के पुरुषाओं के नामों मे भी यही तमाशा है। इसीलिये अब ऐतिहासिक विद्वान भाटों की वशावलियों पर बहुत ही कम विश्वास करते हैं और वे इतिहास को भी विज्ञान की कसौटी पर ही कस कर आगे बढ़ते हैं।

हमने जो स्थापना आहलूवालियों के लिये की है वह वैज्ञानिक है और सचाई के बहुत पास है।

खैर कुछ भी हो सरदार जस्सासिंह के इस वंश ने खूब उन्नति की और अपना एक स्थान बना लिया।

चूंकि इस मिस्ल के इतिहास मे सरदार जस्सासिंह जी का हम काफी वर्णन कर चुके है। इसलिये उनके इतिवृत को दुहराना अब उचित नहीं समझते। अत उनसे आगे का वर्णन यहाँ पर अंकित करते हैं।

सर लेपिलग्रिफिन ने पंजाबी रियासतों का इतिहास लिखा था। उनके बाद कुछ और अंग्रेज लेखकों ने भी लिखा। कपूर्थला राज्य के भी उन्होंने उस इतिहास का काफी वर्णन किया है जो प्राय. सारा उस इतिहास के आधार पर है जो कपूर्थला के दीवान श्री रामजसजी साहब ने लिखा था। हमारे सामने लेपिलग्रिफिन और रामजसजी दोनों के इतिहास है ही साथ ही सिख इतिहासकारों के लिखे विवरण भी मौजूद है। उन सब तथा अन्य इतिहासों के आधार पर ही हम यह इतिहास लिख रहे हैं।

सरदार भागसिंह जी का थोड़ा सा वर्णन तो हमने इस मिसल के इतिहास मे कर दिया है किंतु विस्तार से उनका परिचय देना चाहते हैं॥ जस्सासिंह जी के बाद आप उनके

सरदार भाग सिंह

उत्तराधिकारी हुए। आपने इस अवसर पर सिख संस्थाओं को बहुत कुछ दान दिया।

भागसिंह जी के आरम्भिक समय मे उनका बहुत सा इलाका उनके हाथ से निकल गया क्योंकि सरदार जस्सासिंह जी की बहादुरी से जो लोग डरते थे। अब वह निडर हो गये। नकई सरदारों ने भी कुछ इलाके पर कब्जा कर लिया। भागसिंह लगभग एक वर्ष तक चुप रहे क्योंकि शोक के दिनो मे वे कोई बखेड़ा नहीं उठाना चाहते थे।

कहा जाता है भागसिंह जी बड़े दयावान और उदार थे। वे किसी को भी तकलीफ नही देना चाहते थे। कीड़े-मकोडो पर भी दया करते थे। दुश्मनों ने उनके इस स्वभाव से भी लाभ उठाया। अनेकों मातहत मालगुजारों और माडलिकों ने मालगुजारी व खिराज देना बन्द कर दिया। लाचार भागसिंह जी को कमर कसनी पड़ी पहले तो उन्होंने नकई सरदारों से अपने दबाये हुये इलाके को वापिस किया फिर गुरुबख्शसिंह को जीता तथा उनका इलाका जब्त कर लिया किन्तु उससे सुलह होगई और उसका इलाका वापिस कर दिया।

इसके बाद मलूवाल और बाजीदपुरा पहुँचे। और वहां से कसूर पर जयसिंह कन्हैया के साथ चढ़ाई की और कसूर को जीतने में जयसिंह की मदद की। इसी साल मुल्तान पर चढ़ाई की जिसमें मुल्तान के नवाब मुजफ्फरखाँ का चाचा मारा गया। नवाब ने अधीनता स्वीकार करली और प्रतिवर्ष नजराना देने का भी इकरार किया। मुल्तान से वापिस होकर रास्ते के बागियो को ठीक करते हुये लहनासिंह भंगई से मिले। फतिहाबाद आकर उन्होंने बुद्धामल दीवान की शिकायतो पर ध्यान दिया और उनको निकाल कर नया दीवान रखने का विचार किया।

सम्वत् १८४२ मे सुकरचक सरदार महासिंह और भंगई लोगों मे लड़ाई हुई। आपने मौके पर पहुँच कर महासिंह की मदद की और भगैयों को हराया। इसी साल राजा ससारचन्द्र को अपने मित्र कन्हैया जैसिंह के उस इलाके से निकाला, जिस पर कि वह पिछली लडाई मे काबिज हो गया था। किन्तु भगी सरदार गुलाबसिंह ने इस मौके पर भागसिंहजी के कुछ इलाके को दबा लिया। इसलिये गुलाबसिंह से भी लड़ना पड़ा, जिसमें जीत इन्हें ही मिली।

संवत् १८४६ मे कांगड़े के राजा ससारचन्द और कन्हैया लोगों में लड़ाई हुई। इस लड़ाई मे

रामगढ़िया लोग संसारचन्द के साथ मिल गये। भागसिंह जी को यह बात बुरी लगी और उन्होंने कं मिसल की मदद की। संसारचन्द का भाई मानचन्द लड़ाई में भाग गया और इस प्रकार मैदान सिक्ख लोगों के हाथ में रहा। यहाँ से मालेरकोटला, नाभा, जींद, पटियाला होते हुए आप आनन्दपुर पहुँचे जहाँ वेदियों ने उनसे चमकौर नगर के उन इलाकों को वापिस दिला देने की प्रार्थना की जो इन्होंने मिसल के बहादुर लोगों ने अपने कब्जे में कर लिये थे। इन दिनों दीवान बुधसिंह भी बहुत बिगड़ गया था उसने एक जमात इकट्ठी करली थी। भागसिंहजी ने उसे निकाल दिया और सरदार हीरासिंह को उसकी जगह पर मुकर्रर किया।

सम्वत १८४८ में भागसिंहजी के सुपुत्र फतहसिंह जी के चेचक निकली और इस जोर से निकली कि उनकी जान मुश्किल से बची। इसलिये इस साल कहीं भी नहीं गये।

सम्वत १८४९ वि० में ज्वालादेवी के दर्शनों के लिये पधारे और वहां पर राजा संसारचन्द से भेंट की। राजा संसारचन्द बड़ा चलता पुर्जा शख्स था। इसलिये उसने इन्हें अपना पगड़ीबदल दोस्त बना लिया। कांगड़ा में कुछ दिन रहकर अन्य पहाड़ी राजाओं से मुलाकात की। यहीं पर जसवान के राजा ने मुलाकात में आपको बढ़िया-बढ़िया घोड़े भेंट किये थे। सरदार तारासिंह और लालसिंह जिनमें आपस में वैमनस्य था—यहाँ आपसे मिलने आये। आपने सबसे पहले उनका यह काम किया कि उन दोनों में सुलह करा दी।

सम्वत १८५० में भागसिंहजी ने माझा प्रदेश का दौरा किया जंडियाल में उन्हें दीवान अमरदास विश्वम्भरदास ने घोड़े भेंट किये।

तरनतारन में पहुँच कर गुलाबसिंह भंगई से उन आदमियों को अपने कब्जे में लिया जिन्होंने बघेलसिंह के मुख्तार को मौजा चबाल में मार डाला था। कहा जाता है बघेलसिंह ने आपसे पुकार की थी और इसीलिये आपको तरनतारन पर चढ़ाई करनी पड़ी थी।

खोलर के किले पर जो कि रामसिंह हिन्डोरिया का था बुधसिंह सिंहपुरिया ने आकर कब्जा कर लिया था। राजा संसारचन्द ने अवसर पाकर बुधसिंह पर उसी वर्ष चढ़ाई करदी। भागसिंहजी ने बुधसिंह की मदद की। एक गहरी लड़ाई के बाद राजपूत सरदारों ने आपसे सुलह की प्रार्थना की। आप भी सुलह चाहते थे इसलिये इस वायदे पर कि आधा-आधा इलाका दोनों पक्षों को दे दिया जावे और सिंहपुरिया अपना दूसरा किला बना ले। सुलह हो गई। उस लड़ाई से बुधसिंह को बहुत नुकसान हुआ था। उसके दो लड़के धर्मसिंह और अमृतसिंह मारे गये किन्तु ज्यादती भी उन्हीं की थी क्योंकि उन्होंने हिन्डोरिया के इलाके पर कब्जा कर लिया था।

संवत् १८५१ में जब कि सरदार भागसिंह जी अमृतसर में ठहरे हुए थे शाहजमान अमीर काबुल ने भारत पर आक्रमण किया। उस समय जो भी सिख अमृतसर में थे वे छिपने के लिये चल गये किन्तु भागसिंह डटे रहे। परन्तु शाहजमान हसन अब्दाल से ही लौट गया। इस वर्ष अमृतसर के आस-पास के इलाके में बड़ा अकाल पड़ा। मवेशी और आदमी सभी पानी के लिये तरसने लगे। आपने सर्वसाधारण के लाभ के लिये देवी द्वारे के पास एक तालाब बनवा दिया। दूसरे वर्ष आप आनन्दपुर गये और वहाँ से लौटकर अपने लड़के फतहसिंह को साधुसिंह अकालबुंगा से पाहुल दिलाई।

आपके हृदय में अपने धर्म के प्रति बड़ी श्रद्धा थी। अमृतसर की रक्षा के लिये आप सदैव तैयार रहते थे यही कारण है कि संवत् १८५३ में भी आप शाहजमान का मुकाबिला करने और अमृतसर

की रक्षा करने के लिये मय फौज तैयार रहे। शाहजमान के लाहौर से ही लौट जाने के बाद आपने बड़ी धूम-धाम से इसी वर्ष अपने लड़के की शादी की।

मियानी जिसे कि सरदार जस्सासिंह ने विजय किया था। अब उस पर पठान काबिज हो गये थे सवन् १८५४ मे भागसिंहजी ने उस पर चढ़ाई की किन्तु मौसम अनुकूल न होने से विजय प्राप्त नहीं हुई। इसी बीच रामगढ़ियों से लड़ना पड़ा। वर्षा के बीतने पर मियानी पर चढाई की और पठानों को मार भगाया।

इस साल दीवान लाहौरीमल से भी झगड़ा हो गया। दीवान तबेले से एक घोडा लेगया था। उसे टिक्का फतहसिंह भी चाहते थे। मांगने पर लाहौरीमल ने यह कह कर देने से इनकार कर दिया कि वह मैंने लड़के के लिये लिया है।

फतहसिंह जी को लाहौरीमल की यह बात बहुत अखरी और दूसरे दिन जबकि लाहौरीमल दरबार मे आया उसे गिरफ्तार करा के उसकी बड़ी बेइज्जती कराई और उसकी जागीर के गॉव भी छीन लिये तथा उसे मंसूरवाले के किले मे कैद कर दिया। कोई दुश्मन उसे उड़ा न ले जाय इसलिये फतहसिंह ने अपना कैम्प भी मसूरवाला ही मे लगा लिया।

टिक्का फतहसिंह वास्तव मे बडे कड़े मिजाज के थे। वे किसी के अभिमान को भी बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। बल्कि यह कह सकते हैं कि वे खुद अभिमानी थे। सवन् १८५५ मे जब कि वे अपने इलाके मे दौरा पर गये और फतिहाबाद में ठहरे हुए थे। मिलने के लिये आने वाले जमीदार और इलाकेदार आपके बराबर और उसी चारपाई पर बैठते रहे जिस पर कि फतहसिंह बैठे थे। इससे वे चिढ़ गये और दूसरे दिन उन्हे खेमे मे बुलाकर गिरफ्तार करा लिया। और उन्हे बांधकर कपूर्थला ले आये।

यह गिरफ्तारी भी बड़ी धोखे से कराई थी बडी इज्जत से सबको बुलाया और फिर नाच कराया। जबकि सब लोग देखने में मस्त थे। आपने बाहर निकाल कर खेमे की रस्सिया काट दीं।

यह गिरफ्तारी केवल इन्होंने अपना रौब डाटने के लिये कराई थी। और हुआ भी ऐसा ही लाहौरीमल की बेइज्जती और इलाकेदारों की गिरफ्तारी से उनका रौब समस्त रियासत मे बैठ गया।

सम्वत १८५६ वि० मे युवराज फतहसिंहजी समेत महाराज ने सतलज पार रायकोट की तरफ जाकर वहॉ के रईस और जागीरदारों से कर वसूल किया जिन्होंने कि कई वर्ष से कर देने के नाम पर चुप्पी साध ली थी। इसी साल नागोके गॉव को भी वहॉ के रईस गुलाबसिंह से छीनकर खालसे मे मिला लिया। यह नागोके रामगढ़िया के इशारे पर यहॉ के नायकों के शरारत करने पर खेड़ा के गुलाबसिंह के सुपुर्द कर दिया गया था, किन्तु गुलाबसिंह ने भी काबुल की ओर से शाहजमान अमीर की आमद का हाल सुनकर कर चुकाने मे ढिलाई की थी। इसीसे गुलाबसिंह से यह गॉव छीना गया और इस इलाके को काबू मे रखने के लिये यहॉ एक गढ़ भी बनवाया।

वह जमाना ही शरारत और अराजकता का था। एक दो गॉव नहीं किन्तु अनेकों गॉव विद्रोही हो जाते थे सतलज के पार के इलाके मे ऐसे अनेकों गॉवों को काबू में करना था इसलिये दूसरे वर्ष संवत् १८५७ मे युवराज फतहसिंह को महाराज ने सहोड़, खानपुर, हसनपुर, मझोली, सरसोहाग, रुडकी और सकरल्लापुर आदि के लोगों को दबाने के लिये भेजा। सरदार रणसिंह के साथ फतहसिंह जी ने इन सभी इलाकों के लोगों को काबू मे करके मालगुजारी वसूल की। थोड़े दिनों बाद उन्होंने तलवंडी के चौधरी कादिर, बख्श को मुलाजिम रख लिया जो मालगुजारी वसूल करने के मामलों मे काफी चतुर था। कादिरबख्श के साथ

कराकर अभयदान दिला दिया। इसके बाद अमृतसर की होली मनाते हुए कपूर्थला लौटे और यहाँ आकर खड्डगाँव, लखनपुर और कटोटा पर दखल किया जोकि गुलाबसिंह गन्दे, संसारचन्द कागड़िये और बुधसिंह नकरिये के कब्जे मे पहुँच चुके थे। इसके बाद जमालपुर, चम्पा और मुजानपुर पर भी अधिकार जमाया।

सम्वत् १८६० वि० मे कसूर को विजय कराने मे महाराजा रणजीतसिंह जी की सहायता के लिये फतहसिंह जी कसूर पहुँचे। यहाँ से कोट ईसाखां पर चढ़ाई की जहां पर कि भंगासिंह और सरदार रामसिंह का कब्जा हो चुका था। किन्तु फतहसिंह जी का आना सुनकर उनके अनेक साथी उनका साथ छोड़कर फतहसिंह जी से आ मिले। इस हालत को देखकर भगासिंह ने खुद हाजिर होकर अधीनता स्वीकार कर ली और कुछ रकम भी भेट की।

भंगी सरदार सदैव ही महाराजा रणजीतसिंह की मुखालिफित किया करते थे। अत फतहसिंह ने यह उचित समझा कि अपने पड़ोस के भंगी इलाके कब्जे में कर लिये जावें। इसलिये सम्वत् १८६१ वि० मे उन्होंने लखनपुर, मंगतपुर, फाखड़याना आदि इलाके रामगढियों से अपने कब्जे मे करते हुए उनके कई किलों पर कब्जा कर लिया। जिनमे किला गूजरसिंह और खुसरो भी थे। यह किले उन्होंने रणजीतसिंह जी को दे दिये। इसी वर्ष झंग की लड़ाई मे महाराजा रणजीतसिंह जी का साथ दिया और यहाँ की फतह मे से एक तोप आपने पसंद की। इधर संसारचन्द ने जोधसिंह रामगढ़ियों को साथ लेकर फिर ऊधम मचाना शुरू कर दिया था। इसलिये डरोली के मुकाम पर उसके भी होश ठीक किये किन्तु राजा ससार-चन्द सहज ही मानने वाला आदमी थोड़े ही था। चन्द दिन मे ही फिर चढ़ आया। महाराज ने चौधरी कादिरबख्श को भेजकर रणजीतसिंह जी को बुलावा लिया। बिजवाड़े के मुकाम पर लड़ाई हुई। खूब जोरों की हुई, इसमें महाराज फतहसिंह जी एक गोली से बाल-बाल बचे। दो दिन तक लड़ाई चलती रही। ससारचन्द की फौज रात्रि के समय भाग गई और उसका बचा सामान फतहसिंह जी ने अपने अधिकार में ले लिया। कहा जाता है इस लड़ाई में कई सिख जत्थेदार ससारचन्द के साथ थे किन्तु जहाँ रणजीतसिंह और फतहसिंह दोनों साथ हों। वहां कौनसी शक्ति थी जो हार खाकर न जाती।

फतहसिंह जी शिकारी भी अव्वल दर्जे के थे। इसी साल महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ जब बिजवाड़ा की दुबारा मुहीम से आनन्दपुर लौट रहे थे तो रास्ते मे किसी ने खबर दी कि इस जंगल मे दो खौफनाक शेर रहते हैं। आप चन्द सवार लेकर शेरों की खोज मे जंगल मे घुस गये। एक शेर मिल गया जो झपटकर आपके ऊपर आया। बीच ही मे उसके गोली लग गई। जिससे उसने गुस्से के मारे हाथी मे ऐसे जोर का थप्पड़ मारा कि हाथी बैठ गया। आप हाथी पर से कूद पड़े और तलवार लेकर शेर पर टूट पड़े और जमीन पर मारकर गिरा दिया। फिर घोड़े पर चढ़ कर दूसरे शेर की तलाश मे चले हालांकि दिन छिप चुका था और साथ के सरदार भी मना करते थे। पर आप न माने। आगे जाकर देखा कि शेर एक सवार को मार कर गुर्राता हुआ जा रहा है। आपने उस पर गोली छोड़ी। गोली के लगते ही वह चिंघाड़ कर पीछे को लौटा। उसकी चिंघाड़ को सुनकर घोड़ा भाग निकला उसे आपने मुश्किल से रोका और फिर एक निशान लगाया। इस तरह उस शेर को भी मार डाला। आपकी इस प्रकार की बहादुरी से महाराजा रणजीतसिंह जी बड़े प्रसन्न हुए।

दूसरे वर्ष आपने ज्वाला जी के पास के जगलों मे शेर का शिकार किया। इस वर्ष भी महाराज रणजीतसिंह जी साथ थे। क्योंकि दोनों ही पटियाला आदि रियासतों को देखने के इरादे से निकले थे और

फिर वहाँ से ज्वाला जी के दर्शनार्थ इधर आ निकले थे। रास्ते में विलासपुर हुशियारपुर आदि स्थानों के भी देखा-भाला था। यहाँ से लौटकर दोनों राजाओं ने झग पर चढ़ाई की और फिर चूहड़चक और कमाल गढ़ वगैरह को कब्जे में किया।

इसी साल जसवन्तराय होलकर महाराजा रणजीतसिंह से मिलने और अंग्रेजों के विरुद्ध मदद मांगने आया, जिसमे फतहसिंह जी ने यही सलाह दी कि अभी हम लोगों की तो ताक़त ही बढी है और आन्तरिक शांति ही अपने यहाँ है। ऐसी हालत मे किसी वखेडे मे पड़ना कतई ठीक नहीं होगा।

लार्ड लेक होलकर का पीछा करता हुआ व्याम के किनारे पड़ा था। आप उसके पास भी पहुँचे और सब प्रकार की रसद आदि की उसे सुविधायें भी कर दीं। लार्ड लेक फतहसिंह जी पर वहुत खुश हुआ और उसने इच्छा प्रकट की कि वे रणजीतसिंह जी के साथ भी हमारी मुलाकात और दोस्ती करादें।

फतहसिंह ने अमृतसर के मुकाम पर दोनों दलों का परिचय करा दिया और वहीं पर एक चाणिक सन्धि भी रणजीतसिंह और कम्पनी सरकार के बीच करा दी। यह घटना संवत् १८६२ वि० तदनुसार सन् १८०५ ई० २४ दिसम्बर की है। अहदनामे का सार इस प्रकार था :—

"होलकर के साथ हमारा दोनों का कोई सम्बन्ध न होगा और उसे अपने राज्यों मे भी अंग्रेजों के विरुद्ध शरण न देंगे। कम्पनी की ओर से विश्वास दिलाया गया था कि यह भी उनके इलाकों की ओर न वढ़ेगी और न होलकर को आने देगी। इस सुलह के बाद दोनों ओर से कुछ तोहफे एक दूसरे को दिये गये और अग्रेज अफसरों ने महाराज फतहसिंह जी का वहुत अहसान माना।

कहा जाता है महाराजा रणजीतसिंह जी भी फतहसिंह जी की चालाकी पूर्ण चतुराई से बहुत खुश हुए। इसके बाद दोनों अपनी २ राजधानियों को वापिस लौट आये। कपूर्थला आकर आपने कुछ व्यवस्था-सम्बन्धी कार्य्यों का निरीक्षण किया।

सवत १८०६ में चाहली का प्रवन्ध किया। वहाँ पर दसौंधासिंह को थानेदार नियुक्त किया। इसके बाद महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ कसूर की लूट में शामिल हुए। जोधसिंह रामगढ़िया के इलाके को भी लूटा। वह वेचारा गोविन्दपुर की ओर भाग गया। इस वर्ष के हमले मे कसूर के कुतुबुद्दीन ने अधीनता स्वीकार करली और कसूर को महाराजा रणजीतसिंह जी के सुपुर्द कर दिया। उसे गुजारे के लिये ममदोट का इलाका मिल गया। कसूर की विजय के बाद आप रणजीतसिंह जी से अलग होकर अपने इलाके के उन स्थानों का दौरा करने लगे जहाँ से कर वसूल नहीं हो रहा था। इसी सिलसिले मे जगरांव को मुख्तारराय से छीन कर अपने कब्जे मे कर लिया। उसकी रानी को गुजारे के लिये कस्बा कोटराय दिया। इन्हीं दिनों रणजीतसिंह जी के साथ झंग पर लड़ाई मे जाना पड़ा। वहाँ से लौट कर तलवडी को सोढ़ियों के सुपुर्द किया जो कि २०-२५ वर्ष से भंग के सिखों ने अपने कब्जे मे कर लिया था। यहाँ से आकर मासूमपुरा को वेदियों से छीन कर डलासिंह को वापिस किया। वहाँ से फिल्लौर लुधियाना होते हुए पायल में पहुँचे जहाँ कर्मसिंह निर्मले और महताबसिंह भगई के झगड़े को तय किया और कर्मसिंह का इलाका सरायदोराहा उसे वापिस दिलाया। अनन्तर मालवा के जमीदारों से कर वसूल करते हुए और उन सभों के मिजाजों को ठीक करते हुए जो सिर फिरे हो गये थे वापिस कपूर्थला आये।

सवत् १८६४ वि० में महाराज रणजीतसिंह जी के साथ आप पटियाला गये। वहाँ से नारायनगढ़ को जोकि इस समय सिरमौर के कब्जे मे चला गया था बाद लड़ाई के वापिस लिया। डकआ पजलासा में चौकियाँ कायम कीं। यहाँ से मय रणजीतसिंह जी के कपूर्थला में आये जहाँ महाराज

रणजीतसिंह जी का स्वागत सत्कार किया। तथा राज्य के बड़े-बड़े स्थान दिखाये। इनमे लुधियाना जगरात्र के नाम उल्लेखनीय है। अपने राज्य की सैर कराने के बाद नाभा, पटियाला और नाहन राज्यों मे रणजीतसिंह जी को सैर कराई और फिर नारायनगढ़ पर चढ़ाई की। क्योंकि इस अर्से मे वह हाथ से फिर निकल चुका था। अब की बार उसका गढ़ विसमार कर दिया। वहाँ से दौलतमड़हाया पर चढ़ाई की जहाँ धर्मसिंह अमृतसरिया इलाकेदार था किन्तु वह खिदमत मे हाजिर नहीं हुआ। वहाँ से हुशियारपुर अन्तवोटा होते हुए वापिस राज्य मे आगये। रास्ते मे ज्वालामुखी के भी दर्शन किये, जहाँ रणजीतसिंह जी ने सोने का कलस चढाया।

सवत् १८६५ वि० में सर मेटकाफ साहब अमृतसर होते हुए कपूर्थला पधारे। जिनका राज्य की ओर से खूब स्वागत सत्कार हुआ। मेटकाफ साहब ने दूसरे दिन महाराज को अपने डेरे पर वुलाकर सत्कार किया तथा भेट भी दी। यह खुशियाँ उस खुशी के उपलक्ष मे मनाई गई जो फतहसिंह जी ने महाराजा रणजीतसिंह जी से एक अहदनामा करा कर अंग्रेजों के लिये पेश की थीं। इस सन्धि के होने से पहले चार्लस, मेटकाफ आदि सारे ऊँचे दर्जे के अंग्रेज वड़े चिन्तित थे। उन्होंने कसूर के मुकाम पर फतहसिंह जी को वुला कर इस वात की कोशिश की थी कि किसी भी तरह रणजीतसिंह जी के साथ एक प्रमाणिक सन्धि हो जावे क्योंकि उस समय उन्हे नैपोलियन, रूस और कावुल सभी का खतरा था। फतहसिंह जी ने जब सधि करादी तो अंग्रेज वड़े खुश हुए और उसी की वजह से मेटकाफ कपूर्थला पधारे थे। कपूर्थला से वापिस दिल्ली जाकर भी उन्होंने कृतज्ञता-ज्ञापन के लिये एक पत्र लिखा जिसका सार यही है कि—आपने इस महत्वपूर्ण कार्य में हमारी जो मदद की उसके लिये हम सदैव कृतज्ञ रहेंगे। रणजीतसिंह के अयोग्य दोस्त उन्हें वहकाकर जो गलती कर रहे थे उसे आपने सुधार लिया।"

यद्यपि राजा संसारचन्द कांगड़े वाला सदैव ही कपूर्थला राज्य को नुकसान पहुँचाने की चेष्टा मे रहा किन्तु महाराज फतहसिंह जी ने उसकी मदद करने से इन्कार नहीं किया। संवत् १८६६ वि० में जबकि उसके देश पर गोरखे चढ़ आये और काँगड़ा शहर पर कब्जा कर लिया। सिर्फ किला ही लेना बाकी था, फतहसिंह जी महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ काँगडा की रक्षा के लिये पहुँच गये और उसकी सहायता की अपील को स्वीकार किया। ज्वाला जी के मन्दिर मे बैठकर तय हुआ कि ससारचन्द के राज्य से गोरखों को निकाल देने के उपलक्ष्य मे काँगड़ा का किला रणजीतसिंह जी को सौंप दिया जायगा। संसारचन्द ने स्वीकार कर लिया। उन दिनों मानगंगा चढ़ी हुई थी। फतहसिंह जी अपनी सेना को हाथियों का पुल वना कर पार उतार ले गये। दूसरे दिन महाराजा रणजीतसिंह जी भी पहुँच गये। तीसरे दिन गोरखों से लड़ाई हुई। इस लड़ाई का नेतृत्व फतहसिंह जी ही ने किया पहाड़ी सेनायें गोरखों के नाम से ही घवराती थीं किन्तु सिखों के सामने वे ठहर न सकीं और कर्मसिंह थापा की सारी वहादुरी मिट्टी मे मिल गई। उसको विवश होकर पीछे हटना पड़ा। आध मील के फासले पर मारगढ़ के किले मे जाकर गोरखों ने पनाह ली। मारगढ़ पर हमला किया गया। गोरखे घवरा गये और उन्होंने प्राण-रक्षा का वचन लेकर किला खाली कर दिया। इसके वाद सव ज्वाला जी पर चले गये। यहाँ से पास ही रेहाना का किला था उसे भी फतहसिंहजी ने जाकर जीत लिया। महाराजा रणजीतसिंह जी ने वहुत चाहा कि इस किले पर फतहसिंह जी ही अपना अधिकार रक्खें किन्तु उन्होंने कह दिया यह समस्त विजय आपके नाम पर हो रही है। अत. यह सव आप ही का है।

सवत् १८६८ वि० में वुधसिंह फैजलपुरिया का इलाका महाराजा रणजीतसिंह जी ने अपने राज्य

में मिला लिया। जिसमे से जालन्धर रणजीतसिंह जी ने अपने राज्य मे रक्खा और तेहाड़ा व मल्हियाँ कपूर्थला को दे दिये। महाराज फतहसिह जी चाहते थे यह कि बुधसिंह का सारा ही इलाका कपूर्थला के पास रहे किन्तु वे अपने मित्र को नाराज किसी भी बात पर न करना चाहते थे। इसी वर्ष आपके एक पुत्र रत्न भी हुआ जिसका नाम तेजसिंह रक्खा गया।

संवत् १८६६ वि० मे कोटलहर को पूर्णतया राजा ससार चन्द को आपने छोड़ दिया और महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ बेर साहब के दर्शन किये। तथा चढ़ावा चढ़ाया। यहाँ से उन्हे अपने साथ कपूर्थला भी ले आये और आदर सत्कार से उन्हे कई दिन बतौर महमान के रक्खा। इन दिनों के बीच मे आपको राजौरी के इलाकेदार को काबू करने के लिये भी जाना पड़ा क्योंकि उसने बगावत मचाना शुरू कर दिया था। इतने दिनों रणजीतसिंह भी कपूर्थला मे ही ठहरे।

सम्वत् १८७० वि० मे जब कि कुंवर खड़गसिंह और दीवान मुहकमचन्द अटक की रक्षा के लिये गये, आप भी उनके साथ गये। फतहखान नाम के एक मुसलमान सरदार ने अटक पर उसे रणजीतसिंह जी के अधिकार से निकाल लेने के इरादे से चढ़ाई की थी। फतहखान को फतहसिंह जी ने भगा दिया। वह उनके सामने न ठहर सका वहाँ से लौट कर आपने जंडियाला का नया प्रवन्ध किया। विश्वम्भरदास को हटाकर कादिरबख्श के भाई गुलामगोस को इलाकेदार मुकर्रिर किया। विश्वम्भरदास जमींदारों को सताता था इसीलिये उसे हटाया गया। लेकिन इसी वर्ष फतहखा दुवारा भारी तैयारी के साथ फिर अटक पर चढ़ आया तो आपको पुन' उससे लड़ने के लिये जाना पड़ा। हसन अब्दाल से आगे बुरहानपुर मे खान से भिड़न्त हो गई। उसके कुछ सिपाही गार मे छिपे बैठे थे महाराज फतहसिंह ने उन गारों के मुँह पर तोपे लगा दीं जिनकी धुआधार मार से घबरा कर पठान भाग निकले। यह लड़ाई पांच रोज तक रही और इसमे सैंकड़ों आदमी फतहसिंह जी के भी काम आये किन्तु मैदान सिखों के ही हाथ रहा। इस जीत के उपलक्ष मे आपने सैनिकों को दिल भर कर इनाम बांटा और लूट मे जो जिसके हाथ लगा उसके ही पास रहने दिया।

सवत् १८७० और १८७१ के दोनों वर्ष फतहसिंह जी ने अपने राज्य की आन्तरिक दशा के सुधार मे लगाये क्योंकि अभी तक लोग मालगुजारी और लगान देने मे आखमिचौनी खेल जाते थे। भम्भर और राजोरी के राजाओं को भी वस मे किया और उन पर खिराज की रकम निश्चित कर दी।

अगले साल संवत् १८७३ वि० मे बहावलपुर के इलाके मे मय लश्कर के गये। अब तक का जो मुआमला रुका हुआ था उसे वसूल किया। इस समय तक जोधसिंह फैजलपुरिया मर चुका था। उसका रहा-सहा इलाका जिसमे ओड मडतान्डह और विजैपुर वगैरह के इलाके थे अपने राज्य मे मिला लिये। धोट के इलाकेदार महासिंह की बहुत शिकायते थीं। अम्बाला से अक्टरलोनी ने भी उसकी शिकायत भेजी। अत एक लड़ाई के बाद धोट को भी कब्जे मे किया गया। इसके सिवा सलोदी, बडाला, जलूमाजरिया के इलाकेदारों से भी लड़ाई हुई किन्तु सब को वस मे कर लिया गया। अन्त मे फडोग को भी कब्जे में कर लिया। इस प्रकार राज्य के एक बड़े भाग की अशांति को काबू मे किया गया। इसी वर्ष टिक्का निहालसिंह जी का जन्म हुआ जिसकी खुशी मे रणजीतसिंह जी भी कपूर्थला पधारे। सवत् १८७४ मे फतहसिह ने मुल्तान की लड़ाई में भाग लिया और तिलवा मे अपना थाना कायम किया।

सवत् १८७६ मे भूचरियों से दाइयान और भवानीपुर जब्त कर लिये। ये गांव उन्हे नौकरी देने के एवज में दिये हुए थे। उनको अब नकद नौकरी तय कर दी। इस साल एक पुत्र का जन्म और

हुआ। नाम खुशालसिंह रखा गया किन्तु वह ६ माह का ही होकर चल वसा। इस वर्ष के अन्त में गन्द गढ़ पर चढ़ाई की। गन्दगढ़ काबू में तो आ गया किन्तु दीवान रामदयाल इस लड़ाई में मारा गया। मंगेरा के नवाब को भी ठीक किया और उससे खिराज वसूल किया।

संवत् १८७८ में एक पुत्र रत्न का और लाभ हुआ उसका नाम अमरसिंह रक्खा गया। इस वर्ष आप किसी लड़ाई में शामिल नहीं हुए बल्कि महाराजा रणजीतसिंह जी के अटक की ओर अजीम खान से लड़ने के लिये चले जाने के कारण आपने लाहौर हुकूमत की देखभाल की। अगले वर्ष भी शान्ति से रहे।

संवत् १८८३ वि० में किन्हीं खास बातों को लेकर आपके बीच और महाराजा रणजीतसिंह जी के बीच मन-मुटाव हो गया। फतहसिंह जी नाराज होकर जगरॉव आगये। लुधियाने और अम्बाला में जो अंग्रेज अफसर थे। उन्होंने फतहसिंहजी को धैर्य तो बहुत दिलाया किन्तु वे कोई क्रियात्मक सहायता न कर सके। इधर रणजीतसिंहजी ने सारे राज्य को हड़प करने का इरादा कर लिया किन्तु कुछ सोच समझ-कर उन्होंने फतहसिंहजी को राजी करना ही उचित समझा और अमृतसर बुलाकर उनका राज्य उन्हें लौटा दिया और शपथ खाकर आगे उचित सम्मान करने का वायदा किया किन्तु कहा जाता है कि लगभग एक तिहाई इलाका तो फिर भी रणजीतसिंह जी ने कपूर्थले का दबा ही लिया। तवारीख कपूर्थला के लेखक ने बताया है कि ८८ इलाकों में से ३६ इलाके रणजीतसिंह जी ने दबा लिये और ७०० सवारों की नौकरी दिलाना फतहसिंह जी से मंजूर करा लिया। इस तरह से कपूर्थला को रणजीतसिंह जी ने अब एक मित्र-राज्य के बजाय मांडलिक-राज्य बना लिया। यह घटनाये सम्वत् १८८४ और १८८५ विक्रम की हैं।

हमें ऐसा जान पड़ता है फतहसिंह जी महाराजा रणजीतसिंह जी के इस न्याय से भी राजी ही हुए थे क्योंकि इसी वर्ष उन्होंने टिक्का निहालसिंह जी की शादी की जिसमें कि महाराजा रणजीतसिंह जी की ओर से उनके कुँवर नौनिहालसिंह और सरदार राजा ध्यानसिंह जी शामिल हुए थे। और इसी वर्ष दोनों महाराज पहाड़ों में शिकार खेलने के लिये भी गये थे। दूसरे वर्ष संवत् १८८६ में उन्होंने महाराजा रणजीतसिंह जी को भेंट में एक बहुत ही कीमती घोड़ा भेजा था जिसे पाकर महाराजा रणजीतसिंह उतने ही खुश हुए थे जितने कि मुल्तान की विजय से हुए थे। इससे अगले वर्ष महाराजा रणजीतसिंह को कपूर्थला बुलाकर फतहसिंह जी ने उनका शाही स्वागत किया जिसे देखकर लार्ड हार्डिङ्ग भी हैरान हो गया क्योंकि वह भी कपूर्थला आया हुआ था इन सब बातों से यही सिद्ध होता है कि महाराजा रणजीत-सिंह और फतहसिंह में उस घटना के बाद भी वही प्रेम रहा। असल में तो फतहसिंह जी ने जीवन भर कभी भी यह खयाल ही नहीं किया था कि रणजीतसिंह उनके बड़े भाई के सिवा कोई गैर हैं क्या?

संवत् १८८८ में टिक्का निहालसिंह को अमृतसर ले गये जहाँ महाराजा रणजीतसिंह से भी उनकी मुलाकात कराई।

संवत् १८६० वि० में पटियाला के साथ कुछ चख-चख हुई इसमें दोष पटियाले के ही अहलकारों का साबित हुआ। अम्बाला में जो स्कूल अंग्रेजों ने स्थापित किया था उसमें भी फतहसिंहजी ने पांच हजार रुपया सहायता स्वरूप दिया। इसी वर्ष कपूर्थला की चहारदीवारी की मरम्मत कराई तथा जहाँ-जहाँ मुनासिब समझा वहाँ किले बनवाये और जहाँ के किलों को अनावश्यक समझा मिसमार करा दिया। इसलिये टिक्का निहालसिंह ही महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ लड़ाइयों में जाने लग गये थे। महाराजा

रणजीतसिंह जी ने उन्हे काश्मीर मे एक जागीर भी दे दी थी। सम्वत् १८७३ की पेशावर की लड़ाई मे भी निहालसिंह जी शामिल हुए। इस समय फतहसिंह जी ने रियासत के आन्तरिक प्रवन्ध में बहुत सुधार किया। रियासत की हदबन्दी भी करालो। हदबन्दी के सिलसिले में रियासत नाभा से खटकने के आसार पैदा हुए थे किन्तु परमात्मा को कृपा से सब काम हदबन्दी का बिना किसी झगड़े के समाप्त हो गया।

हम यह कह सकते है कि महाराज फतहसिंह जी निहायत बुद्धिमान और बहादुर आदमी थे। उनके पिता के समय उनके राज्य को दशा निहायत डॉवाडोल होगई थो। सभी इलाके सिरफिरे हो गये थे। फतहसिंहजी ने उन सभी को धीरे २ अपने काबू मे किया और राज्य की हालत को सुधारा उनके समय राज्य बढ़ा ही, घटा नहीं। महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ दोस्तो करने मे भी उन्हें लाभ ही रहा। वरना उनकी रियासत मे जो विद्रोही खड़े हो रहे थे उन्हे रणजोतसिंह जी से मदद लेने का मौका मिल जाता। सम्भव था कि दो शेरों की लड़ाई में राज्य की दशा और भी खराब हो जाती। उनकी बुद्धिमानी और साहस की और भी अनेको कहानियॉ हैं। उन्होंने अपने समय मे कोई गलती की थी तो यह कि मल्हार-राव होलकर की रणजीतसिंह जी को मदद नहीं करने दी वरना सम्भव था कि हिन्दुस्तान का नकशा आज दूसरा ही होता।

इस तरह के योग्य और शूरमा राजा फतहसिंह जी का संवत् १८६३ वि० के क्वार महीने मे शुक्ल पक्ष की एकादशी को स्वर्गवास हो गया।

उनके समय मे कपूर्थला शहर मे काफी तरक्की हुई। कई अच्छे २ राजभवन बने। बाग-बगीचे भी लगवाये गये। पुराने स्थानों की मरम्मत हुई।

अपने राज्य के कई कस्बों को उन्नतिशील बनाया। कपूर्थला मे आपके समय से अमन अमान और आपकी सर्व-मिलनसारी से तिजारत का काम भी खूब चेता था।

आपके बाद मे आपके सुपुत्र कुँवर निहालसिंह जी गद्दी नशीन हुए। महाराजा रणजीतसिंह जी ने चार लाख रु० भेंट लेकर उन्हे कपूर्थला का राजा स्वीकार कर लिया किन्तु नौकरी सात सौ सवार की बजाय बारह सौ सवार की मंजूर करालो। एक राजा की अनेक सन्तानों मे जो झगड़ा-फसाद होता है वह आपके साथ भो हुआ। सवत् १८६४ में जबकि आप बरसात करतारपुर और अमृतसर में बिता कर कपूर्थला आये। आपके भाई अमरसिंह के साथियों ने आपको हवेली मे घेर लिया और कातिलाना हमला कर दिया।

महाराजा निहालसिंह

आपकी रक्षा करते हुए आपके दो साथी जान से मारे गये। आपसे लिखा लिया गया कि इलाका ठट्ठा, विट्ठा और सुल्तानपुर कुवर अमरसिंह जी को जागीर मे दिया गया और अमरसिंह जी सुल्तानपुर में रहे। निहालसिंह जी ने इस घटना की महाराजा रणजीतसिंह जी के पास शिकायत की किन्तु उन्होंने यह कह कर सतोष कर लिया। एक ही बाप की संतान है। मैं किसका पक्ष लूं। आपस मे ही सुलझ ले और अब जो हो गया है सो ठीक ही है।

महाराज निहालसिंह जी ने अवसर मिलते ही उन सब लोगों को दंड दिया जिन्होंने उनके साथ गुस्ताखी की थी। अमरसिंह ने महाराज रणजीतसिंह के पूछने पर बताया था कि निहालसिंह जी का बर्ताव मेरे साथ भाई-जैसा नहीं है। मेरे गुजारे का उन्होंने कोई प्रवन्ध नहीं किया है। महाराजा रणजीतसिंह जी ने दोनों भाईयों मे मुहब्बत करा दी और अमरसिंह के गुजारे का भी प्रवन्ध करा दिया।

जिस प्रकार फतहसिंह जी महाराज रणजीतसिंह के साथ हर समय और हर लड़ाई में रहते थे।

इसी प्रकार निहालसिंह जी भी रहने लगे। सम्वत् १८९५ मे जब लार्ड आकलेंड से महाराजा रणजीतसिंह जी ने फीरोजपुर जिले में वाडे के मुकाम पर मुलाकात की तो आप भी उसमें शामिल हुए। इसके अलावा आपने मक्खो गॉव में भी लाट से भेंट की।

सवत् १८९६ में इन भेंटों का महाराज निहालसिंह को फल भी मिल गया। इस वर्ष महाराजा रणजीतसिंह जी का स्वर्गवास हो गया। महाराज खड्गसिंह गद्दी पर बैठे। उनके सूबेदार मिश्र रूपलाल ने जोकि द्वाबा जालंधर मे मुकर्रिर था। कपूर्थला के कुछ हिस्सों को दबाना शुरू किया। दोनो ओर से लड़ाई भी हुई जिसमे रूपलाल हार गया। इस अमर की शिकायत महाराज निहालसिंह जी ने अम्बाला के अंग्रेज अधिकारी क्लारक साहब से की। उन्होंने विश्वास दिलाया कि उनके राज्य पर अगर रणजीत-सिंह के उत्तराधिकारियों ने हाथ डाला तो हम पूरी मदद तुम्हारी करेंगे।

रणजीतसिंह जी के बाद निहालसिंह जी के लाहौर दरबार के प्रति पहले जैसे भाव नहीं रहे और रहते भी किसके साथ। वहॉ तो घर-घर के ही चिराग से जल रहा था। सवत १८९७ मे महाराज खड्गसिंह और कुॅवर नौनिहालसिंह दोनों ही मर गये। निहालसिंह जी ने यह सूचना क्लारक साहब को दी। वहॉ से परामर्श आया कि ध्यानसिंह शेरसिंह को राजा बनाना चाहता है आप उसे मदद दें। इस परामर्श का पालन करने के लिये महाराज निहालसिंह जी लाहौर को रवाना हुये किन्तु वहॉ गद्दी पर रानी चन्द-कौर ने कब्जा कर लिया था इसलिये आप वापिस कपूर्थला आ गये। उधर थोड़े ही दिन बाद रानी चन्द-कौर गिरफ्तार कर ली गई और शेरसिंह राजा बन गये।

इसी साल कुॅवर अमरसिंह का भी इंतकाल हो गया वह राजा शेरसिंह जी के साथ रावी नदी में नाव पर बैठा हुआ सैर कर रहा था कि नाव डूब गई। शेरसिंह जी वगैरह तो बच गये किन्तु अमरसिंह न बच सके इस तरह निहालसिंह जी के रास्ते का एक कांटा आप ही नष्ट हो गया। इन दिनों क्लारक साहब भी कपूर्थला तशरीफ लाये और सिखों के सारे हाल-चाल महाराज निहालसिंह जी से दरियाफ्त किये।

सवत् १८९८ मे महाराज निहालसिंह जी ने अमरसिंह जी को दिये हुए इलाके पर भी कब्जा कर लिया और उनके स्त्री बच्चों को कपूर्थला लाकर उनके गुजारे के लिये माकूल इंतजाम कर दिया। अमरसिंह के लड़के का नाम केसरसिंह था। उसके ऊपर महाराज की निगाह-महरबानी बराबर बनी रहती थी।

अंग्रेजों ने अपनी दोस्ती का लाभ उठाना महाराजा निहालसिंह जी से उसी प्रकार शुरू कर दिया जिस प्रकार कि रणजीतसिंह किया करते थे। काबुल मे जनरल पोलक अफगानों से भिड़ रहे थे उनकी मदद के लिये कपूर्थला की एक फौज माग ली। जिसे महाराज ने खुशी के साथ हैदरअलीखां की मातहती में काबुल भेज दिया।

अपनी कठिनाइयों के कारण महाराज निहालसिंह दिन-ब-दिन अंग्रेजों के सहायक और आश्रित होते जा रहे थे। अंग्रेज लाहौर दरबार की भीतरी और सही जानकारी भी उन्हीं से प्राप्त करने लग गये थे। लाहौर में तो एक प्रकार की अराजकता फैली हुई थी। महाराजा शेरसिंह भी मार डाले गये और उनकी जगह कुॅवर दलीपसिंह गद्दी के मालिक बने उधर खालसा सेनायें भड़क उठीं। अंग्रेजों ने यह मौका अपने अनुकूल देखा और पंजाब के सिख-साम्राज्य को खतम कर देने की तैयारी कर दी। उन्होंने महाराज निहालसिंह जी कपूर्थला नरेश को भी लिखा कि आप पांच दिन के अन्दर ही अन्दर अपनी फौजें लेकर आजाइये।

निहालसिंह जी की फौज मे भी तो सिख ही थे उन्हे यह बात बहुत बुरी लगी और सारी सेना बिगड़ गई उसने पहले तो वजीर साहब मौलवी गुलाममुहम्मदजान का सफाया किया और फिर महाराज को घेर लिया। और रनजोधसिंह को अपना नायक मुकर्रिर करके फौजे लाहौर दरबार की सहायता को चल पड़ीं। महाराज ने अपना पीछा छुड़ाकर अपने विश्वस्त आदमियों द्वारा अंग्रेज अफ़सरो को इस अमर की सूचना दी और अपनी वफादारी जगरॉव का किला अंग्रेजी फौजो को रहने को देकर तथा रसद आदि की मदद देकर प्रकट की। इतने पर भी राज्य कपूर्थला को बहुत नुकसान उठाना पडा। खैरियत यही हुई कि कपूर्थला राज्य अंग्रेजों ने जब्त नहीं किया किन्तु उसके कुछ इलाके तथा समुचित खिराज बॉध कर ही उसे बख्श दिया।

लड़ाई के बाद अंग्रेज हाकिमो ने महाराजा निहालसिंह पर बड़े सख्त इल्जाम लगाये। जिनमें कहा गया कि न तो तुमने हमे लाहौर की पूरी-पूरी और सही खबरें दी। और न हमारे लश्कर के लिये रसद दी। केवल ५४८ मन गल्ला दिया। हॉ, लडाई के खतम होने पर सब कुछ किया। लड़ाई मे तुम्हारी फौजें हमारी फौजों से डटकर लड़ीं और उन्होने हमारा कुछ सामान भी लूट लिया। तुम और तुम्हारे लड़के अपनी फौजों के साथ रहे अगर फौजे बिगड़ गई थीं तो तुम अकेले ही हमारे साथ आ सकते थे। तुम्हारे राज्य की रक्षा तो हमारी ही बदौलत हुई थी। हमने तुम्हारे राज्य की गारंटी भी दी थी।" इन अपराधों मे तुम्हारा गुजरात का इलाका जब्त किया जाता है। और अमुक-अमुक इलाका भी लिया जाता है। महाराज निहालसिंहजी ने काफी सफाई दी किन्तु अंग्रेज तो जब जिस बात पर तुल जाते है उसे करके ही छोड़ते हैं। हालांकि वे सिखो के स्वभाव से परिचित थे। वे जिस बात को अनुचित समझते है किसी के समझाने पर काबू नहीं हो सकते। लाहौर की खालसा सेना का उदाहरण उनके सामने था। महाराज निहालसिंह यदि अपनी फौज के सामने जरा भी अकड़ते तो न मालूम वह क्या कर बैठती। अंग्रेजों ने कपूर्थला से लगभग १३ इलाके जिनमे करीब ५२० गॉव थे हड़प लिये। बाकी जितने बचे उनमें महाराज निहालसिंह जी ने बड़ी योग्यता से प्रबन्ध किया। संवत् १९०५ मे उन्होंने फौजदारी और दीवानी की अदालते भी अॅग्रेजी ढग की कायम करलीं। इसी वर्ष कुॅवर रनधीरसिंह और विक्रमसिंह की शादी कालागॉव मे हुई। अॅग्रेजी सरकार ने एक परगना नूरमहल का और ले लिया जिसके बदले मे सात हजार रुपया सालाना का खिराज कम कर दिया अर्थात् एक लाख अडतीस हजार की बजाय एक लाख एकतीस हजार सालाना का खिराज रह गया।

इसी अर्से मे मूलराज और सरदार चरनसिंह ने पजाब मे अंग्रेज सरकार के विरुद्ध बगावत का झडा खडा कर दिया। महाराज ने इस समय स्त्री-बच्चों को तो गंगा के किनारे भेज दिया और आप तैयार मौके के लिये हो गये। इस बार वे किसी भी हालत मे अंग्रेजों का साथ नहीं छोड़ते। उन्होंने अपना इरादा चिट्ठी-पत्री से जान लारेंस पर प्रकट भी कर दिया और लडाई के समय रसद की पूरी मदद दी जिससे मुल्तान-विजय के बाद अॅग्रेज सरकार ने उन्हे राजा की सनद दे दी। अभी तक अॅग्रेज उन्हे एक सरदार समझते थे और चिट्ठी-पत्री में भी उन्हे सरदार ही लिखते थे।

राजा की सनद के साथ ही वह इलाका जो जालंधर की छावनी के नीचे आ गया था महाराज निहालसिंह को वापिस कर दिया। इस इलाके का नाम ऊंचा था और इसमे ढोकोहा और सूरजपुर अगई नगर शामिल थे।

इस समय महाराज निहालसिंहजी को यकीन हो गया कि अब उनकी रियासत सुरक्षित है और

कम्पनी के भारतीय अंग्रेज अफसर उससे प्रसन्न हैं।

दूसरे वर्ष लार्ड डलहौजी कपूर्थला मे पधारे जिनका महाराज निहालसिंह जी ने धूमधाम से स्वागत सत्कार किया। इसी वर्ष टिक्का साहब रनधीरसिंह के पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम खड्गसिंह रक्खा गया। दूसरे वर्ष दूसरे पुत्र विक्रमासिंह जी के भी पुत्र हुआ। इसी वर्ष महाराज साहब के घर पुत्री का जन्म हुआ।

महाराज ने अजायबुलनिहाल और गुराइबुलनिहाल नाम की किताबे लन्दन के अजायबघर के वास्ते अपने दीवान द्वारा लिखाकर कर्नल लारेन्स को भेट कीं।

सवत् १६०८ वि० मे महाराज ने निश्चिन्त होकर ज्वाला जी के दर्शन किये और जहाँ दान-पुण्य किया। वहाँ से कुछ पहाड़ी राजाओं के यहाँ जाकर आतिथ्य स्वीकार किया। राजा नादून ने आपका जोरदार स्वागत किया। इस वर्ष टिक्का रनधीरसिंह जी के एक पुत्र और हुआ। उसका नाम हरनाम-सिंह रक्खा गया और महाराज के द्वितीय पुत्र विक्रमासिंह का देहान्त हो गया।

अपने समय में महाराज निहालसिंह जी ने भी कपूर्थला शहर को रौनक दी। कचहरियों की नई इमारते बनीं। नये बाजार भी बने।

संवत् १६०६ वि० के भाद्रपद मास की अमावस को आपका स्वर्गवास होगया। आपका जीवन प्राय कठिनाइयों का सामना करने मे ही गुजरा। अपने पिता के स्वर्गवास के बाद महाराजा रणजीतसिंह जी को खुश रखना और उनके इरादों को पूरा करने की दिक्कतें आपको बर्दाश्त करनी ही पड़ीं। बाद में अंग्रेज अफसरों को अपनी नेकनीयती और वफादारी का परिचय देने के लिये बहुत सारा समय खर्च करना पड़ा। बात दरअसल यह थी कि आपका राज्य दो खतरों के बीच में था। एक तरफ सिखो का साम्राज्य लगा हुआ था और दूसरी तरफ अंग्रेजों की हकूमत थी। इसलिये आपको प्रत्येक कदम बड़ी होशियारी से रखना पड़ता था।

महाराज निहालसिंह जी के दो रानियाँ थीं उनसे तीन लड़के जन्मे थे। रनधीरसिंह, विक्रमसिंह और सुचेतसिंह। उन्होंने मरते समय एक वसीयत लिखी थी। जिसे बोर्ड आफ मिनस्ट्रेशन के पास भेज दिया था। उसका सार यह था कि "मेरे बाद मेरे तीनों लड़कों मे झगड़ा न हो इसलिये विक्रमसिंह और सुचेतसिंह को एक-एक लाख रुपये की जागीर बिना किसी रकम के मुकर्रिर किये दे दी जावे और रनधीर-सिंह शेष रियासत का मालिक रहे। दोनों जागीरों के फौजदारी दीवानी के अधिकार भी रनधीरसिंह के हाथ ही रहे।"

जिस समय निहालसिंह जी की मृत्यु हुई थी। रियासत की कुल आमदनी पाँच लाख सत्तर हजार सात सौ तिरेसठ रुपया सालना की थी। दो लाख की जागीर निकाल देने के बाद जो रियासत रह जाती थी उसमे से भी अंग्रेज सरकार का खिराज, फौज पुलिस और अदालतों का खर्चा निकाल देने के बाद राजा के खर्च के लिये केवल बीस बाईस हजार साल की बचत रहती किन्तु रनधीरसिंह जी बड़े चतुर थे। उन्होंने अपने दोनों भाईयों से निहालसिंह जी की मृत्यु के बाद दरख्वास्त दिलादी कि हम रियासत का बँटवारा नहीं चाहते हैं और अपने बड़े भाई के साथ हिलमिल कर ही रहना ठीक समझते हैं। अतः गवर्नमेंट ने उस समय कोई दखल नहीं दिया।

सम्वत् १८१० वि० में जालधर के कमिश्नर ने आकर टिक्का रनधीरसिंह जी को गद्दीनशीन बनाया और उन्हें खिलअत दी। महाराज रनधीरसिंह जी ने बुद्धिमानी पूर्वक अपने भाईयों को अपनी

राजा रनधीरसिंह

ओर मिलाकर राज्य को एक खतरे से बचा लिया था। वरना बहुत सभव था। राज्य के तीनों भाग जागीरदार करार दे दिये जाते और राजगी के अधिकार छीन लिये जाते। क्योंकि बोर्ड के कुछ मेम्बरो की यही राय थी। फगवाडे के इलाके ले लेने की सलाह थी। किन्तु हिलमिल कर रहने की व्यवस्था अधिक दिन तक नहीं चली। कुँवर सुचेतसिंह ने थोडे ही दिनो बाद सुप्रीम गवर्नमेंट के पास अपने हिस्से के बॅटवारे के लिये दरख्वास्त भेजी। जालधर के कमिश्नर को सरकार ने इस कार्य के निवाहने का काम सौपा। संवत् १६११ मे कमिश्नर साहब ने जॉच-पड़ताल के बाद वसीअत की मंशा को लगभग पूरा करने के इरादे से भोंगा का इलाका सुचेतसिंह को दिला दिया। किन्तु थोड़े ही दिनों बाद कुँवर सुचेतसिंह ने सरकार के पास दरख्वास्त भेजी कि मैं एक लाख के बजाय पचास हजार का ही इलाका चाहता हूँ। जिससे मेरे भाई के साथ स्नेह का सम्बन्ध बना रहे। कर्नल लेक उस समय जालधर के कमिश्नर थे उन्होंने भी इस दरख्वास्त पर सिफारिश लिख दी। इस बीच गदर हो गया था और उसमे राजा रनधीरसिंह जी ने सरकार को काफी मदद दी थी। इसलिये सरकार ने भी सुचेतसिंह जी की बात को मान लिया और सम्वत् १६१७ मे मजूरी दे दी।

ख्याल था कि अब कोई झगड़ा भाइयों मे नहीं होगा। किन्तु सम्वत् १६२३ मे विक्रमासिंह खडे होगये और उन्होंने भी गवर्नमेंट को लिखा कि नौबत यहाँ तक आ गई है कि हम भाई २ शामिल नहीं रह सकते। वसीयत के अनुसार हमारा हक दिला दिया जाय। इस समय तक गवर्नमेंट की इनके बाहमी झगड़ों से वह दिलचस्पी नहीं रही थी जो आरम्भ मे थी। इसलिये विक्रमासिंह को सरकार की ओर से कोरा जवाब मिला कि हम तुम्हारे आपस के झगड़े मे ज्यादा समय खर्च करना ठीक नहीं समझते जब हमने पहले बार-बार तुम्हे लिखा था तब बॅटवारा क्यों नहीं कराया। विक्रमासिंह इस जवाब से चुप नही हुआ उसने सुचेतसिंह को अपनी ओर मिलाया और फिर दरख्वास्त दी। इस पर पजाब सरकार ने इनका मामला भारत सरकार के पास भेज दिया। जहाँ से विक्रमासिंह के पक्ष मे फैसला हुआ। महाराज रणधीरसिंह जी ने फैसले के विरुद्ध लिखा पढ़ी की किन्तु बॅटवारा कर ही दिया गया और लिखा गया कि अगर हिस्सेदारों मे से कोई लावल्द मरेगा तो उसका हिस्सा महाराज रनधीरसिंह को ही मिल जायगा।

महाराज रनधीरसिंह जी ने इस फैसले की अपील विलायत मे की। वहाँ से फैसला महाराज साहब के पक्ष मे हुआ। जिसमे कहा गया कि गदर की सेवाओं के उपलक्ष मे जो विश्वास महाराज रनधीरसिंह जी को उनकी रियासत की स्थिरता और सरक्षा का दिलाया गया है। उसके अनुसार रियासत के टुकडे नहीं हो सकते।

इस मुकदमे को जीतने के उपलक्ष मे महाराज ने अपने वकील मथुरादास को उनके साथ जाने वाले आदमियों को बहुत-कुछ इनाम इकराम दिये।

अंत मे भारत सरकार के परामर्श के अनुसार और प्रिवी कौंसिल के फैसले की नीयत को पूरा करने के लिये दोनों भाइयों से इलाके वापिस ले लिये और उनको साठ-साठ हजार रुपया सालाना का वजीफा कर दिया गया। जो छ -छ महीने के बाद किस्तो मे उन्हे मिलता रहा। कहा जाता है कि यह मुकदमा लगभग १६ वर्ष चला था और इसने महाराजा साहब को बहुत परेशान रक्खा था। महाराज ने मथुरादास को भी दो हजार रुपये सालाना की जागीर सुल्तानपुर जिले मे रामपुरा और शाहजहानपुर गाँवों मे दी। इस प्रकार का इनाम देने के लिये उन्होने एक दरबार किया था। जिसमे आस-पास के जिलों के प्रतिष्ठित जन और यूरोपियन अफसर भी पधारे थे।

गवर्नमेंट ने भी राजा साहब की गदर सम्बन्धी सहायता का धन्यवाद करते हुए उन्हें पन्द्रह हजार की खिलअत दी और खिराज में से पच्चीस हजार सालाना कम कर दिया। साथ ही एक साल का खिराज कतई माफ कर दिया। ग्यारह तोपों की सलामी भी बख्शी। 'फरजन्दे दिल बन्दरा सख उल-एतकाद" का खिताब भी महाराज को अंग्रेज सरकार ने दिया। उनके भाई विक्रमासिंह जी को दस हजार का खिलअत और बहादुर का खिताब मिला।

इसके बाद सवत् १९१५ में अंग्रेज सरकार ने अवध को कब्जे में करने के लिये लड़ाई छेड दी। महाराज रनधीरसिंह मय अपनी फोज और भाई विक्रमासिंह के अंग्रेजों की मदद के लिये अवध पहुँचे। वहाँ जी जान लडा कर आपने बड़ा परिश्रम किया। हर मोरचे पर बहादुरी दिखाई। लडाई मे दुश्मन की ६ तोपें भी छीन लीं। अंग्रेजों की जीत हुई और सारा अवध उनके अधिकार मे आगया। इस लडाई मे सहयोग देने के बदले में अंग्रेज सरकार ने अवध में महाराज रनधीरसिंह को बोंडी और भटोली के ताल्लुके जागीर में उन सारे अख्तियारों के साथ दिये जो वहाँ के तालुक्केदारों को थे। इन इलाकों की सालाना आमदनी चार लाख बत्तीस हजार रुपया थी। इसके सिवा दो लाख रुपया फौज खर्च के और ५०००) की खिलअत और महाराज का मिली।

सरदार विक्रमासिंह जी को भी सरकार ने इकतर, मलका, इकोना के परगने जिनकी कि आमदनी सालाना २५०००) रुपया थी जागीर मे दिये। यह इलाका जिला बहराइच में है। इसके सिवा महाराज साहब के कुछ अन्य फौजी सरदारों को भी इस जिले की जागीरों की खिलअत अंग्रेज सरकार ने दीं।

सम्वत् १९१९ वि० मे महाराज रनधीरसिंह ने सरदार विक्रमासिंह जी से अकोना का इलाका और खरीद लिया और सरदार साहब ने साढे पाँच लाख का इलाका जिला लखीमपुर में खरीद लिया। कहा जाता है उस इलाके से उन्हें साढ़े तीन लाख के करीब आमदनी होती थी जिसमे से एक लाख ३२ हजार वे सरकार को देते थे।

अम्बाला जिला के नारायनगढ़ में कपूर्थला राज्य का जो बाग था उसे अंग्रेज सरकार ने जब्त कर लिया था वह भी गदर के बाद महाराज रनधीरसिंह को मिल गया।

सवत् १९२० विक्रमी मे अंग्रेज सरकार ने अन्य राज्यों की भांति ही कपूर्थला नरेशों को भी पुत्रहीन न होने की हालत में बिरादरी के रिवाज के अनुसार गोद लेने के अधिकार की सनद दे दी। इस प्रकार की सनदें महारानी विक्टोरिया के उस हुक्मनामे की सार्थकता को कायम रखने के लिये बाँटी गई थीं जो उन्होंने भविष्य मे भारत के वर्तमान सभी रजवाड़ों को सुरक्षित बनाये रखने के विश्वास दिलाने के लिये की थी।

महाराज रनधीरसिंह जी ने अवसर पाकर इलाका आहलू को भी जो कि सिखों की पहली लड़ाई के बाद सरकार ने जब्त कर लिया था पुन. वापिस दिये जाने की दरख्वास्त सरकार से की। सरकार ने यह दरख्वास्त भी मंजूर कर ली और वह इलाका बतौर जागीर के महाराज को वापिस कर दिया। दीवानी फौजदारी के कुल अख्तियारात उस इलाके पर अंग्रेज सरकार के ही रहे। इस इलाके के १८ गाँव जिला लाहौर में, २१ गाँव जिला अमृतसर मे और एक बाग मुल्तान में था। सवत् १९०६ वि० मे इस इलाके की आमदनी लारेंस साहब ने ६६३००) सालाना की अन्दाजी थी।

सम्वत् १९२१ वि० मे वायसराय ने महाराजा रनधीरसिंह जी को लाहौर के दरबार मे सितारे

हिन्द का खिताब दिया और उनकी उन समस्त सेवाओं की चर्चा की जो उन्होंने अंग्रेज सरकार की गदर और अवध की लड़ाइयों में की थी। महाराज ने भी वायसराय महोदय की रहनुमाई और महरबानियों के लिये धन्यवाद दिया। इस दरबार में पंजाब के सभी राजा रईस शामिल हुए थे।

संवत् १६२७ वि० मे महाराज रनधीरसिंह जी का स्वर्गवास अदन बन्दरगाह पर हो गया। आप विलायत सैर करने जा रहे थे कि बम्बई में आपकी तबीयत खराब हुई। कुछ मित्रों ने समझाया भी किन्तु आप चल ही पड़े अदन मे तो यह हालत हो गई कि, डाक्टरों ने साफ कह दिया इन्हे वापिस ले जाओ। जहाज के बदलते समय ही आप स्वर्ग सिधार गये। आपका शव बम्बई लाया गया जहाँ कि उनके युवराज खड्गसिंह और रियासत के अनेक गण्यमान्य सरदार पहुँच गये थे। नासिक में ले जाकर दाह-संस्कार किया गया।

युवराज खड्गसिंह जी वायसराय की आज्ञा प्राप्त करके अपने बाप की गद्दी के हकदार हुए। वायसराय ने खड्गसिंह जी को उनके पिता की मृत्यु पर समवेदना सूचक एक पत्र भी लिखा था जिसमें महाराज रनधीरसिंह के स्वर्गवास पर खेद और उनकी अंग्रेज सरकार के प्रति की जाने वाली वफादारियों का ज़िक्र था।

विलायत से महारानी विक्टोरिया और वजीर आलम ने भी महाराजा रनधीरसिंह जी की मृत्यु पर शोक समवेदनायें महाराज खड्गसिंह जी के पास भेजी थीं। कहा जाता है इससे पहले अन्य किसी भी राजा की मृत्यु पर महारानी विक्टोरिया अथवा प्रधान मंत्री ने शोक-सूचक पत्र उसके उत्तराधिकारी के पास नहीं भेजे थे।

महाराज खड्गसिंह जी की गद्दीनशीनी का उत्सव खूब समारोह के साथ हुआ। उसमें उच्च अंग्रेज अधिकारियों के सिवा पंजाब के प्रायः सभी राजा रईस शामिल हुये। अंग्रेज प्रतिनिधि मि० बास्त ने महाराज को खिलअत दी और ली। राजा लोगों की ओर से रस्म अदा हुई। एक लाख बीस हजार रुपया महाराज को अन्य रईसों की ओर से स्वर्गीय महाराज की यादगार बनाने के लिये भेंट किया गया। महाराज खड्गसिंह ने एक लाख रुपया अपनी ओर से इसमें मिला दिया और रनधीर कालेज तथा रनधीर शफाखाना की नींव डाली। पच्चीस हजार रुपये मे तो दोनों की इमारतें बनवा दीं बाकी दो लाख के प्रोमेसरी नोट खरीद लिये जिनके ब्याज से १००००) सालाना की जो आमदनी होती है वह इन दोनों संस्थाओं के चलाने के ही काम में खर्च होती है। २५०००) रुपया महाराज ने पंजाब के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर डोनलफ मेकलैण्ड की यादगार ताजा बनाये रखने के लिये देना चाहा किन्तु गवर्नर महोदय ने इस बात को स्वीकार न करके यह तजवीज पेश की कि इस धन के ब्याज से उन लेखकों का उत्साह बढ़ाया जाय जो पदार्थ विद्या पर अच्छी पुस्तकें लिखे।

दस वर्ष तक महाराज खड्गसिंह जी ने बड़े अच्छे ढंग से राज्य किया। प्रजा के सुख और शांति के उपायों को सोचा। आगे और कुछ अच्छा ही करते किन्तु सम्वत् १६३१ वि० में उनका दिमाग खराब हो गया। साथियों ने अच्छे-अच्छे वैद्य डाक्टरों से इलाज कराया किन्तु कोई इलाज लाभ न पहुँचा सका।

राज्य प्रबन्ध खराब न हो जाय इस विचार से अंग्रेज सरकार ने राज्य प्रबन्ध एक कौंसिल के सुपुर्द कर दिया। जिसके मेम्बर दीवान रामजस जी, दीवान बैजनाथ जी और गुलाम जीलानी बनाये गये। तीन साल तक कौंसिल ने सारा राज्य प्रबन्ध किया। संवत् १६३४ वि० में अंग्रेज सरकार ने राज्य का नया प्रबन्ध किया और सर लेपिलग्रिफिन को राज्य का सुपरिन्टेन्डेन्ट मुकर्रिर किया।

इसी वर्ष ३ साल के लगातार कष्ट के बाद महाराज खड्गसिंह जी का भागसू के मुकाम पर स्वर्गवास हो गया और उनके पुत्र युवराज जगजीतसिंह जी को जिनकी उम्र इस समय केवल पाँच वर्ष की थी गद्दी पर विठाया गया।

जगजीतसिंह की गद्दीनशीनी की यह रस्म सवत् १६३४ वि० के मघर महीने मे हुई थी जिसमे पंजाव के तत्कालीन लेफ्टीनेन्ट गवर्नर अजर्टन खुद पधारे थे। पंजाव के अन्य अनेकों राजा रईस भी शामिल हुये थे पहले गवर्नर की ओर से खिलअत पेश हुई और फिर अन्य रईसों की ओर से। कहा जाता है कि गद्दी नशीनी की रस्म पूरी हो जाने पर आपने कहा था। "मैं अंग्रेज सरकार और उसके गवर्नर साहव को मुझे गद्दी पर विठाने के लिये धन्यवाद देता हूँ। आपके वाल-मुँह से यह वात सुनकर गवर्नर वड़ा प्रसन्न हुआ। उसने विदा होते समय दीवान जसमतराय से उनकी सावधानी के साथ शिक्षा-दीक्षा करने-कराने के लिये चेतावनी दी थी।

जगजीतसिंह

नावालिगी के समय मे अंग्रेज सरकार द्वारा नियुक्त विभिन्न सुपरिएटेन्डेन्टों ने कपूर्थला का शासन-प्रवन्ध संभाला था जिनमे सर लेपिलग्रिफन, मि० रीवार, मि० कनेहम, मि० आरे, मि० सेमी आदि सभी अंग्रेज थे। १८ वर्ष की अवस्था होने पर संवत् १६४७ में महाराज जगजीतसिंह जी को अधिकार वख्शे गये और यह अधिकार-प्रदान की रस्म सर जेम्स लायल तत्कालीन गवर्नर पंजाव ने खुद कपूर्थला जाकर अदा की थी।

महाराज जगजीतसिंह जी ने राज्याधिकारी होते ही शासन का कुल प्रवन्ध अपने हाथ मे ले लिया। योग्य नौकरों की तनख्वाहों मे वृद्धि की और राज्य के मुख्य शहरों मे घूम कर वहाँ की हालत जानी और उसी के अनुसार सुधार किये।

सिखों की तरक्की के कामों मे आपने हमेशा दिल खोल कर मदद की। खालसा कालेज के लिये भी एक लाख रुपये का दान आपने दिया।

इसके दो ही वर्ष वाद सवत् १६४६ के ज्येष्ट मास मे आपके एक पुत्र रत्न हुआ और दूसरे दिन महाराज पटियाला कपूर्थला पधारे। इससे दुगुनी खुशी का कपूर्थला मे उत्सव मनाया गया।

महाराज जगजीतसिंह जी ने अपने समय मे राज्य मे अनेक सुन्दर मकान वनवाये हैं। दरवार हाल, महल, कचहरी और गुरुद्वारे आदि जो आपके समय मे वने हैं, वे निहायत सुन्दर हैं।

महाराज पंजावी, अंग्रेजी हिन्दी और फ्रेंच भाषा के अच्छे विद्वान हैं। स्वयम विद्वान् होने के कारण राज्य के महकमों मे भी आपने योग्य आदमियों को ही नियुक्त किया है।

आपने विदेशों की सैर वहुत अधिक की है और इस वात में भारत के कुछ ही राजा महाराजा आपकी वरावरी कर सकते हैं।

प्राणदंड के अधिकार सरकार द्वारा आपके प्रवन्ध की योग्यता को देख कर आपको दे दिये गये हैं। एक लाख इकत्तीस हजार सालाना राज्य को जो खिराज गवर्नमेन्ट को देना पड़ता था वह भी आपने लिखा-पढ़ी कराके माफ करा लिया है।

महाराज के राजकुमारों के नाम इस प्रकार हैं —(१) युवराज परमजीतसिंह जी जिनका कि जन्म सन् १८६२ ई० की १६ वीं मई को हुआ था। (२) महीजीतसिंह जी (३) अमरजीतसिंहजी (४) कर्मजीतसिंह जी और (५) जीतसिंह जी हैं।

सन् १६३८ ई० मे आपने अपनी प्रजा को शासन मे भाग लेने के लिये कुछ अधिकार

भी बख्शे थे।

आपने खेती की उन्नति के लिये अपने राज्य मे नहरें भी निकाली।

आपको अंग्रेज सरकार की ओर से जो खिताब मिले थे। उनकी सूची इस प्रकार है—

जी. सी. एस. आई., जी. सी. आई. ई., जी.वी. ई।

फौज मे आपको कर्नल का मान है। सन् १६४८ मे यह राज्य पेप्सू सघ मे शामिल कर दिया गया है।

अठारहवाँ अध्याय

नाभा राज्य का इतिहास

यह राज्य भी फुलकिया स्टेटों में गिना जाता है बल्कि खानदान भी वही है। जो पटियाला का है। सन् १७६३ तक पटियाला और नाभा का इतिहास एक ही है। सरहिन्द की विजय के बाद फुलकियाँ राज्य अलग-अलग बँट गया। नाभा राज्य का विस्तार प्राय: ९६६ वर्ग मील में है। इस राज्य का एक भाग राजपूताने में भी है जिसका बावुल सदर मुकाम है और जो निजामत कहलाता है। इस राज्य में ४ बड़े नगर और लगभग ५०० ग्राम हैं। आबादी तीन लाख के करीब है। इनमें ज्यादातर हिन्दू हैं। जाट सिख उनसे कम हैं और उनसे कम मुसलमान हैं। बावुल निजामत में राजपूत और अहीर ज्यादा हैं। इस समय आमदनी लगभग १७ लाख रुपये सालाना है। महाराज रिपुदमनसिंह जी (अब निर्वासित) एक कौंसिल की सहायता से राज्य करते थे जो 'इजलासे आलिया' कहलाती थी। शासन के चार भाग किये हुए थे जिनके प्रधान मीर मुंशी, बख्शी, हाकिम अदालत सदर, और दीवानेमाल सदर कहलाते थे। वैदेशिक मामलात मीरमुंशी के सुपुर्द थे और सेना, पुलिस बख्शी की अध्यक्षता में, हाकिम-अदालत-सदर न्याय विभाग के और दीवानेमाल-सदर माल विभाग के प्रधान थे। महाराज इजलास आलिया में खुद बैठकर भी न्याय करते थे।

नाभा जोकि इस राज्य की राजधानी है। भटिंडा राजपुरा रेलवे लाइन पर राजपुरा से ३२ मील के फासले पर है। शहर एक कच्चे परकोटे से घिरा हुआ है। शहर में ६ दरवाजे हैं। परकोटा के चारों ओर भरतपुर की जैसी पक्की सड़क है। शहर के पास बागों के होने से वह अच्छा लगता है। रुई कपास के कुछ पेच (कारखाने) हैं। अम्लोह, गोविन्द गढ़, फूल, धनोला, जैतों और बावल राज्य के बड़े नगर हैं। जिनमें कुछ निजामत का सदर मुकाम होने और कुछ मंडी होने के कारण रौनक पर हैं।

फुलकिया मिस्ल में इस वंश का पूर्व का बहुत-कुछ इतिहास आ चुका है। यहां हम चौधरी फूल के बड़े बेटे त्रिलोकसिंह से आरम्भ करते हैं जो नाभा राज-खान्दान का वह पुरखा था जिसपर पटियाला से अलग शाख छूट जाती है। चौधरी त्रिलोकसिंह जी को दिल्ली की ओर से भी चौधरी का खिताब मिल चुका था। इनका जन्म संवत् १७१६ वि० में हुआ था। चौधरी त्रिलोकसिंह जी ने गुरु गोविन्दसिंह जी का भी कई लड़ाइयों में साथ दिया था। सम्वत १७७३ वि० में गुरु गोविन्दसिंह जी ने अपनी कुछ वस्तुएं इनके यहाँ सुरक्षित रखने के लिये भी भेजी थीं जो अब तक नाभे में मौजूद हैं। कहा जाता है कि सर-

हिन्द में से गुरू जी के साहबजादों के मृत शरीरो को लाकर इन्हीं के भाई रामा ने उनका सस्कार किया था। जिससे सरहिन्द का सूबेदार चौधरी त्रिलोकसिंह जी से बहुत बिगड़ गया किन्तु उन्होंने उसकी कुछ भी परवाह नहीं की।

चौधरी त्रिलोकसिंह जी का विवाह रोड़ी गांव मे चौधरी सैदासिंह की पुत्री वखता से हुआ था। जिसके उदर से गुरुदित्त और सुखचैन नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए। जीन्द राज्य के संस्थापक सुखचैन ही थे।

संवत् १७८६ वि० मे चौधरी त्रिलोकसिंह जी का स्वर्गवास हो गया। अत उनकी रियासत के मालिक उनके बड़े पुत्र गुरुदित्तसिंह जी हुए। गुरुदित्तसिंह जी का विवाह मौडके गाव मे चौधरी शदूॅल की पुत्री राजकौर के साथ हुआ। जिससे एक पुत्र सूरतसिंह संवत् १७६६ वि० मे पैदा हुआ। कहा जाता है सम्वत १८०६ वि० में गुरुदित्तसिंह को धनोले के पास खंडहरों मे एक खजाना मिला। जिससे उन्होंने एक गांव वहीं पर आबाद किया। अगले वर्ष संगरूर नामक स्थान आवाद किया। जो अब जीन्द के कब्जे में है। मुगल शासन की डांवाडोल की हालत मे गुरुदित्तसिंह ने आस-पास के अनेकों गांवों पर अपना कब्जा कर लिया था किन्तु दोनों भाइयों मे सदैव ही खटपट वनी रहती थी। संवत् १८०६ वि० मे उनका बडा लड़का सूरतसिंह भी मर गया। कुछ दिनों बाद सुखचैनसिंह भी मर गया। उसकी विधवा पत्नी अपने मायके चली गई। अत गुरुदित्तसिंह ने कस्वा फूल भी जो कि सुखचैनसिंह के कब्जे मे था अपने अधीन कर लिया।

गुरुदित्तसिंह

सूरतसिंह ने अपने पीछे दो पुत्र छोड़े थे (१) हमीरसिंह और (२) कपूरसिंह। संवत् १८१२ वि० में गुरुदित्तसिंह जी का भी स्वर्गवास हो गया। इसलिये उनका उत्तराधिकारी उनका बड़ा पोता हमीरसिंह हुआ। इन दोनों भाइयों ने सरदार आलासिंह जी के साथ रहकर खूब तरक्की की। उनके साथ हमलों मे रहने से लड़ाई के हर दांव-पेच से दोनों भाई जानकार होगये। उन्होंने सरदार आलासिंह की मदद से लाहोवाल गॉव को भी अपने कब्जे में कर लिया। संवत् १८१६ वि० में भानीअन और भसदी के बीच के स्थान पर एक किले की नींव डाली और उसका नाम नाभा रक्खा।

कपूरसिंह की शादी सुजानकुॅवर मानसिंहिया की लड़की के साथ हुई थी। यह भी अपने पति के मरने के बाद हमीरसिंह जी की घर वाली हो गई थी। इससे हमीरसिंह के पास कपूरगढ़ पक्खू और बुड़ियाला भी आ गये थे। इस सरदारनी से ही कुंवर जसवंतसिंह जी का जन्म हुआ था। इसके अलावा भी हमीरसिंह जी ने तीन शादियां और की थीं। एक तो नत्थासिंह वनगरिया की लड़की के साथ दूसरी लखनसिंह रोडीवाला की लड़की के साथ, जिससे कि सदाकुंवरि और शोभाकुंवरि दो लड़कियां पैदा हुई थीं। तीसरी शादी धन्नासिंह कुरतान वाला की लड़की के साथ हुई थी। इससे कोई सतान नहीं हुई। सरदार हमीरसिंह बड़े बुद्धिमान और शक्तिशाली व्यक्ति थे। नाभा राज्य का विस्तार इनके बाहुबल पर हुआ था। नाभा शहर के आवाद हो जाने पर उन्होंने भादसौं पर अधिकार कर लिया।

संवत् १८२६ वि० में हमीरसिंह जी ने रोड़ी पर हमला कर दिया। हांसी का हाकिम रहीमदाद मुकाबिले के लिये आया किन्तु हार कर भाग गया। इससे रोड़ी का इलाका हमीरसिंह जी के कब्जे में आ गया जो कि सिरसा से लगा हुआ है।

कहा जाता है संवत् १८३२ मे जीन्द मे गजपतसिंह ने हमीरसिंह को बुलाकर कैद कर लिया।

क्योंकि एक तो उनके फूल गॉव पर उन्होंने कब्जा कर लिया था। दूसरे लड़की की शादी के समय घास के मामले पर कुछ झगड़ा हो गया था। बाद में पटियाला के बीच में पड़ने से और संगरूर का इलाका व जीन्द को दे देने के वायदे पर हमीरसिंहजी को छोड़ दिया गया। कहा जाता है, इस बीच सारे इलाके का प्रबन्ध और रक्षा हमीरसिंहजी की रानियों ने बड़ी बहादुरी के साथ की थी। संगरूर पर गजपतिसिंह के हमला करने पर अपने पति की गैरहाजिरी में भी उन्होंने बड़ी बहादुरी से उसकी रक्षा कर ली थी। पटियाला को भी बीच में रानियों ने ही डाला था।

जीन्द से वापिस आकर हमीरसिंह जी ने अपने दामाद साहबसिंह जी (इसके साथ शोभाकुंवरि ब्याही थी) की मदद से भादसू और अमलोह के इलाकों को जोकि इस बीच हाथ से निकल गये थे पुन. प्राप्त किया। हमीरसिंह जी की इच्छा थी कि सगरूर को भी वापिस ले लें किन्तु "मेरे मन कछु और है साईं के कछु और" के अनुसार संवत् १८४० में उनका देहान्त हो गया। इससे सगरूर फिर कभी भी नाभा के हाथ में नहीं आया। आपकी मृत्यु के बाद आपका पुत्र जसवंतसिंह गद्दी पर बैठा जिसका कि जन्म संवत् १८३३ में हुआ था और जोकि इस समय ७ वर्ष का ही बच्चा था किन्तु जसवन्तसिंह जी की विमाता रानी देसू ने उनकी सरपरस्ती का काम किया।

रानी ने सात साल तक बड़ी योग्यता से राज्य-कार्य को चलाया। फौज का संचालन उसके दोनों जॅवाई साहबसिंह गुजरात और जैसिंह कन्हैया करते थे किसी की भी मजाल न थी जो इन दो सरदारों के मुकाबिले पर नाभा राज्य को नुकसान पहुँचाने आता। सवत् १८४६ वि० में रानी देसू का भी स्वर्गवास हो गया। राज-खालसा के लेखक ज्ञानी ज्ञानसिंह ने लिखा है कि "राजा जसवन्तसिंह ने ही उनको रत्नसिंह और खड्गसिंह की सलाह से मरवाया था। कुछ भी हो रानी साहिबा मर गई और उनके पीछे राजा जसवंतसिंह जी ने राज्य की बागडोर पूर्णतया अपने हाथ में ले ली। अपने मुसाहिबों की सलाह से राज्य-कार्य करने लगे। उन्होंने अपने सरदारों के कहने में आकर एक और भी गलती की वह यह कि पटियाला राज्य के बहालू और करमना गावों पर हमला कर दिया। जिसमे उन्हें नुकसान ही उठाना पड़ा।

जवान होने पर महाराजा जसवंतसिंहजी ने प्रत्येक कार्य को बुद्धिमानी के साथ निभाया। महाराज रणजीतसिंह जी के साथ सदैव ही अच्छे खयाल रखे। इन्हीं दिनों होलकर पंजाब में घूम रहा था और उसके पीछे-पीछे लार्ड लेक फिर रहा था। टमकलोटा स्थान पर पंजाब के सभी रईसों ने अंग्रेज अफसरों से वायदा किया था कि वे मराठों का साथ न देंगे। उस समय आपने भी अपना प्रतिनिधि वहाँ भेज दिया। दीवान जसवंतराव होलकर सबसे पहले आपके ही पास मदद के लिये आया जिसे आपने साफ जवाब दे दिया कि हमारी अंग्रेजों से मित्रता हो चुकी है। इन रियासतों के सस्थापकों के वंशज ऐसी बातों पर अभिमान कर सकते हैं कि उन्होंने भारत भूमि को विदेशियों से मुक्त करने की इच्छा रखने वाले वीर होलकर को मदद न देकर अंग्रेजों के प्रति वफादारी जाहिर की किन्तु हमें तो यह लज्जा की ही बात जान पड़ती है।

लार्ड लेक भी होलकर के बाद नाभा आया और उसने महाराज को धन्यवाद दिया तथा विश्वास दिलाया कि उनकी रियासत सुरक्षित रहेगी। साथ ही किसी भी प्रकार का उनसे खिराज भी न लिया जायगा।

संवत् १८६३ वि० में दुलकी के झगड़े की वजह से महाराज रणजीतसिंहजी को पचास हजार रुपये देना करके पटियाले पर चढ़ाई करने के लिये बुलाया। महाराजा रणजीतसिंह जी इस प्रकार के मौकों को

ताका ही करते थे। वे रायकोट और रायपुर के परगनों को जीतते हुये आये। जसवंतसिंहजी ने पहले तो उन्हें चौदह हजार रुपया देकर पक्खो का इलाका लिया। संवत् १८६४ वि० में जैतों पर चढ़ाई करके अपने कब्जे में किया जो फरीदकोट के कब्जे में था। महाराज रणजीतसिंहजी ने कुछ और भी इलाके दूसरे रईसों से छीनकर इन्हें दिये। जिनकी आमदनी लगभग २६ हजार सालाना की इतिहासकारों ने लिखी है।

यह हम पहले लिख चुके हैं कि ये महाराज काफी चतुर थे। जो भूभाग कब्जे में आ जाता था उसे कभी भी कब्जे से न निकलने देने का पूरा प्रवन्ध कर देते थे। धनोली में किला इसी हेतु से वनवाया। नाभे को सुदृढ़ दुर्ग वनाने के कार्य किये। इन सवसे ज्यादा सियानप यह किया कि एक ओर महाराजा रणजीतसिंह से भी दोस्ती रखी। दूसरी ओर अंग्रेजों को भी गाठ लिया। अपने राज्य की भी इन्होंने खूब तरक्की की थी। इनके वारे मे अक्टरलोनी ने गवर्नमेंट को लिखा था—"जसवंतसिंह उन प्रमुख सरदारों मे से एक हैं जो हमारी तरफदारी करते हैं। मैं अव तक पजाव के जितने भी रईसों से मिला हूँ उन सवमें इनकी चाल ढाल और वुद्धिमानी अग्रिम दिखाई दी। मैंने नाभे राज्य को घूम फिरकर भी देखा है। आन्तरिक शाति है और लोग आनन्द से अपनी खेती को तरक्की देते हैं। पटियाला की अपेक्षा भी इनकी प्रजा खुशहाल जान पड़ती है। वे प्रजा के साथ नर्मी का व्यवहार करते है। यह गुण इधर के अन्य रईसों में नहीं पाया जाता।"

सवत् १८६७ वि० मे महाराज जसवंतसिंह जी को अंग्रेज सरकार ने वराडवंश सिरमोर और मालवेन्द्र का खिताव दिया। सिकन्दर आजम से जिन मलोई लोगों ने युद्ध किया था यह राज उन्हीं की भूमि पर कायम हुआ था। समय की गति से वे सारे मलोई अव जट-सिख वन गये थे। इस देश का नाम उन्हीं के नाम पर मालवा कहलाता था इसलिए जसवतसिंह जी को मालवेन्द्र का खिताव दिया गया।

फूल की वड़ी सतान के होने के कारण जसवंतसिंह जी को यह महत्वाकाक्षा सदैव रही कि राज्य भी उन्हीं का वड़ा रहे किन्तु पटियाला उनके राज्य से वड़ा वन रहा था। यह वात उन्हें सदैव खटकी और सरहद-वन्दी मे उन्होंने पटियाला के साथ वहुत काल तक झगड़ा भी रक्खा किन्तु कहा जाता है कि राजा नरेन्द्रसिंह जी ने अपनी गभीरता और समझदारी से मामला वढ़ने नहीं दिया और दोनों राज्यों मे मित्रता कायम हो गई।

पटियाला और नाभा मे जो झगड़ा चल रहा था। उसमे कुछ दूसरे कारण भी थे। रियासतों की हदें वांधने मे भी दोनों रियासते एक मत पर नहीं पहुँचती थीं। कई स्थान ऐसे थे जिन पर दोनों रियासतें अपना अधिकार वताती थीं। इन हक-हकूक के झगड़ों मे कई ऐसे दावे थे जिनमे राजा नाभा का दावा न्याय सगत था। मौजा कोसलहेड़ी इलाका पटियाला और मौजा फूलाशेरी इलाका नाभा के फैसले के जो पच मुकर्रिर किये गये थे उन्होंने भी फैसला नाभा के ही पक्ष मे दिया था। एक दूसरा झगडा कसवा भदोड़ और कागड़ गांव की सरहद का था। भदोड़ सरदार दलीपसिंह और वीरसिंह के अधिकार मे था। जो पटियाला के रिश्तेदार थे और कांगड़ नाभा के इलाके में था। इस मामले मे भी नाभा का पक्ष सही वताया जाता है। लेकिन सरलेपिलग्रिफिन ने राजा जसवतसिंह जी के खिलाफ जो रिपोर्ट दी थी वह दोनों रियासतों के कड़वे रुख को जाहिर करती है। उसने लिखा था कि जसवंतसिंह की यह दिली इच्छा है कि पटियाला राज्य नष्ट हो जाये।

महाराज जसवतसिंह जी मे जहाँ प्रजा-प्रियता और चतुराई आदि कई गुण थे वहाँ उनमे कुछ

कमजोरिया भी थीं। उन्होंने अपने चार विवाह किये थे। पहिली रानी सरदार जयसिंह की पुत्री दयाकौर थी दूसरी। चन्द्रकौर ढिलों के सरदार रामसिंह की पुत्री थी। तीसरी रलावाला के सरदार वाघसिंह की पुत्री प्रेमकौर थी। चौथी रणसिंह जोधपुरिये की लड़की हरकौर थी। इनमे रानी दयाकौर के उदर से कुँवर रणजीतसिंह जी और हरकौर के पेट से देवेन्द्रसिंह जी पैदा हुए थे। रणजीतसिंह बडे होने के कारण गद्दी के हक़दार थे किन्तु जसवंतसिंह जी का ज्यादा प्यार रानी हरकौर पर था इसलिये कि राज्य देवेन्द्रसिंह को ही देना चाहते थे। रणजीतसिंह वड़े होनहार और समझदार थे वे जिस किसी से भी मिलते उसे अपनी ओर आकर्षित कर लेते किन्तु उनमें फिजूलखर्ची का वड़ा अवगुण था। इसी को आधार वनाकर महाराज जसवतसिंह जी ने उनको खर्च देना वन्द कर दिया। रानी दयाकौर का मायका मालदार था। अतः कुछ समय तक खर्च आता रहा लेकिन रणजीतसिंह को यह वात सह्य नहीं हुई। कुछ सलाहकार भी उसे भड़काने वाले ही मिल गये इसलिये वह संवत् १८६७ मे खुल्लमखुल्ला वागी हो गया। अव तक जो नाम मात्र के लिये उसके खाने खर्चे के लिये जागीर वता रक्खी थी। वह भी जव्त कर ली गई। और महाराज ने पोलीटिकल एजन्ट को शिकायत कर दी। पोलीटिकल एजन्ट ने रणजीतसिंह को धमकाया भी।

सवत् १८७१ वि० मे महाराज जसवन्तसिंह ने स्पष्ट घोषणा करदी कि मेरा वड़ा लड़का रणजीतसिंह मेरी विरासत का अधिकारी नहीं है और अंग्रेजी सरकार के पास यह दावा दायर कर दिया कि वह मुझे कत्ल कर देना चाहता है। षड्यन्त्र सावित करने के लिये कई सवूत भी दिये किन्तु गवर्नर जनरल ने उन सवूतों को नाकाफी समझा और महाराज जसवन्तसिंह जी को सलाह दी कि वे रणजीतसिंह जी को वन्धन-मुक्त कर दें क्योंकि इस बीच में रणजीतसिंह गिरफ्तार कर लिये गये थे। राजा साहव को इस आज्ञा से सतोष नहीं हुआ। उन्होंने दुवारा भी लिखा पढ़ी की किन्तु गवर्नर जनरल ने फिर भी वही फैसला कायम रक्खा। रणजीतसिंह वन्धन-मुक्त होकर लाहौर चला गया। वहाँ महाराजा रणजीतसिंह ने उसे लगभग ७०हजार के इलाके लोई और ढेहरिया, जालन्धर के जिले मे देकर वसा दिया।

जिस प्रकार जसवतसिंह जी ने रणजीतसिंह पर झूठा आरोप लगाया। वैसा ही आरोप रणजीतसिंह ने भी अपने एकलौते वेटे संतोषसिंह के मर जाने पर लगाया कि उसे उनके दादा जसवंतसिंह ने ही मरवाया है किन्तु खास सवूतों की कमी से यह मुकदमा भी डिसमिस हो गया।

रणजीतसिंह ने अपने वाप की तरह एक ही स्त्री से संतोष न करके तीन शादियाँ की थीं जिनमे से एक शहीद गुलावसिंह की साली थी।

संवत १८६६ वि० में जव कि रणजीतसिंह अपने इलाके मे कर वसूल करने के लिये गया हुआ था। कोपतरेडी नामक गाँव मे जहाँ कि इसका साढ़ू रहता था, मर गया। उसकी लाश नाभे की ओर ले जा रहे थे किन्तु पटियाले के महाराज कर्मसिंह ने उसका वहादुरगढ़ मे संस्कार करा दिया। जहाँ पर कि उसकी समाधि वनी हुई है।

रणजीतसिंह की मृत्यु भी रहस्य से भरी हुई समझी गई। इसलिये उसकी रानियों ने अपने ससुर राजा जसवंतसिंह पर ही उनकी मौत का आरोप लगाया किन्तु फल कुछ न निकला।

रियासत नाभा मे लाधडां और सोनटी के दो अच्छे ठिकाने थे महाराज इन दोनों से क्रमश ५० और ७० सवारों की नौकरी लेते थे। इन दोनों ने भी स्वतंत्र होने की इच्छा से अंग्रेज सरकार मे दावा कर दिया कि हम तो स्वतन्त्र हैं। हमने अपना इलाका खुद विजय किया था। हमें नाभे से थोड़ा ही मिला है जो राजा नाभा हमसे नौकरी लेते हैं और मातहतों-जैसा व्यवहार हमारे साथ करते हैं। जार्ज लोनी

को सरकार ने उनके दावे की जॉच के लिये मुकर्रिर किया। जॉच में मालूम हुआ कि "लाधडां, अमलोह, सोनटी, दुहाड़ा, शाहबाद आदि इलाके निशानवालिआ मिसल के प्रमुख सरदार संगतसिंह, दसौंदासिंह, जयसिंह और मोहरसिंह ने सरहिन्द विनाश के बाद अपने अधिकार में किये थे। तब से इन पर उन्हीं के वंशजों का अधिकार चला आता है किन्तु महाराजा रणजीतसिंह जी पंजाबकेशरी के भय से अपनी २ भूमि की रक्षा करने के लिये किसी न किसी बडे रईस की इन इलाकेदारों को शरण लेनी पडी थी। लाधडा के रईसों ने नाभा की शरण ली थी और उसी के एवज में उन्होंने नौकरी देना स्वीकार किया था। सोनटी के इलाके नाभा के रईस ने उस समय कब्जा कर लिया जबकि उसके रईस एक मुहीम पर जमानशाह से लडने गये थे। पीछे बहुत समय के बाद ही सोनटी का इलाका उन्हें अधीनता स्वीकार करने पर ही मिला था।"

पोलिटीकल एजन्ट अम्बाला ने इस मामले में सलाह दी थी कि "यह बात आवश्यक और न्यायपूर्ण है कि यह सरदार राजा नाभा की खिदमत करने के वास्ते बदस्तूर सवार देते रहे किन्तु यदि राजा साहब उन पर सख्ती करे तो इसकी शिकायत सरकार के पास करनी चाहिये" किन्तु रेजीडेन्ट देहली ने इस बात को स्वीकार नहीं किया और इस प्रकार निर्णय दिया। "लधरा और सोनटी के सिख सरदार नाभा के अधीन समझे जॉय। अंग्रेज सरकार इस मामले मे हस्तक्षेप न करे। इससे राजा साहब नाभा के प्रबन्ध और रौब मे अंतर आता है।" परन्तु अंतिम फैसला संवत् १८६३ वि० में इस प्रकार हुआ। "जब राजा साहब नाभा के यहॉ कुँवर उत्पन्न हो, या किसी लड़के लड़की का विवाह हो या किसी रईस की मृत्यु का अवसर हो या इत्तिफाक से कोई लड़ाई पेश आये। केवल उस वक्त इन सरदारों से सेवायें ली जावे। हर समय नहीं।"

महाराज की उम्र इस समय काफी हो चुकी थी और वे बीमार भी रहने लगे थे। साथ ही उनका सारा जीवन क्लेशों मे ही समाप्त हुआ था। आखिर उनका रोग बढ़ गया और संवत् १८६७ में जब कि उनकी उम्र ६६ वर्ष की हो चुकी थी देहावसान हो गया। उनके पुत्र देवेन्द्रसिंह ने बडी धूम-धाम से उनका अन्त्येष्टि सस्कार किया। यह ठीक है कि उनका जीवन झगड़ों मे ही बीता किन्तु प्रजा के लिये सुख पहुँचाने मे उन्होंने शक्ति भर प्रयत्न किया।

इस समय कुँवर देवेन्द्रसिंह जी १८ वर्ष के थे अत. वे ही गद्दी पर बिठाये गये और कुल अधिकार राज्य-संचालन के उनके हाथ सौंप दिये गये। सिख इतिहासकारों की राजा जसवंतसिंह जी के विरुद्ध एक शिकायत है और वह यह कि इस राजा ने कई मन्दिर बनवाये और उनसे जागीरें भी लगवाई। किन्तु सिख धर्म का कोई गुरुद्वारा नहीं बनवाया और न जागीर ही दी। वास्तव मे यदि उन्होंने ऐसा किया तो गलती ही की थी। उस समय तो जो भी तरक्की उनकी हुई थी। सिख-संस्कारों के ही बल पर हुई थी। राजा जसवन्तसिंह जी मे हिन्दू संस्कार अधिक थे। उन्होंने गया मे जाकर पिंड भरवाये थे। और सवा लाख का दान-पुण्य भी किया था। राज्य मे ठाकुरद्वारों पर जो जागीरे है वह बीस हजार के लगभग की है। कहा जाता है। गया जी जाते हुए पटना मे वहॉ सिख गुरुद्वारे (पटना साहब) को केवल १२५) दिये और सदैव के लिये कोई रकम मुकर्रिर नहीं की।

राजा जसवतसिंह जी की रानियों मे ढिलवा वाली रानी चन्द्रकौर बड़ी समझदार थीं। फूल देपालपुरा की जागीर मुद्दत तक उनके पास रही और उन्होंने उसका काम भी बड़ी अच्छी तरह चलाया।

राजा देवेन्द्रसिंह जी की गद्दी व अधिकार प्रदान का उत्सव धूम-धाम से मनाया गया। जिसमे

अम्बाले के एजेन्ट गवर्नर जनरल भी उपस्थित थे। सतलज पार के अन्य राजागण भी मौजूद थे। एजेन्ट महोदय ने एक हाथी जरदोजी की झूलवाला, एक घोड़ा चाँदी की जीन वाला, १५१ कपडे और एक तलवार खिलअत में दिये।

राजा देवेन्द्रसिंह

राजा देवेन्द्रसिंह जी लाड़ प्यार में पाले जाने के कारण राजकीय दॉव-पेचों और मुसाहिबों की चालबाजियों से नातजुर्बेकार रह गये। इसका फल यह हुआ कि वे उन लोगों द्वारा घिर गये जो अच्छी से अच्छी खुशामदाना बातें बनाकर आपको प्रसन्न रखते थे। कहा जाता है कुछ ब्राह्मण मुसाहिब आप की तारीफ में अतिशयोक्ति पूर्ण श्लोक सुनाकर खूब बनाते रहते थे। दरबार में प्रणाम का ढंग पहले से आदाब करना जारी था आपने दण्डवत करने की प्रथा चला दी और संस्कृत पढ़ने के लिये एक स्कूल भी खोला। यह सब काम ब्राह्मण मुसाहिबों की मर्जी से होते थे। जो बुरे नहीं थे। हॉ, सिख सरदारों की सलाह की उपेक्षा की जाती यही बुराई थी। आपने सगरूर पर भी चढ़ाई कर दी और वहॉ के राजा को भगा दिया किन्तु आपके सलाहकार आपको सगरूर से वापिस नाभा ले आये और अंग्रेज सरकार से संगरूर पर अपना अधिकार स्वीकार किये जाने की लिखा-पढ़ी शुरू करादी।

कहा जाता है राजा स्वरूपसिंह जी ने जीन्द नरेश गजपतिसिंह के मरने पर आपसे यह वायदा कर दिया था कि संगरूर आपको ही वापिस दे दूंगा। बशर्ते कि मैं जीन्द का अधिकारी स्वीकार कर लिया जाऊं। अंग्रेज सरकार ने पटियाला की सिफारिश पर सरूपसिंह को जीन्द का राजा स्वीकार कर लिया। राजा गजपतिसिंह नि:संतान मरे थे। इसीलिये यह बखेड़ा खड़ा हुआ था। संगरूर पहले नाभे का ही था। राजा गजपतिसिंह ने ही उसे अपने अधिकार में कर लिया था। देवेन्द्रसिंह का उसे वापिस मांगना इसीलिये न्याय था।

राज खालसा के सिख लेखक ने लिखा है कि महाराज देवेन्द्रसिंह बुरी तरह से साधुओं के फन्दे में फँस गये थे। कंठी तिलक सब धारण करने लगे थे और उन्होंने उन लोगों के बहकावे में आकर संवत् १९०५ वि० में एक अश्वमेध यज्ञ भी पटियाला दरवाजे के बाहर किया था, कारण कि उन्हें समझाया गया था। अश्वमेघ यज्ञ करने से तुम चक्रवर्ती हो जाओगे। बराबर तीन महीने तक यज्ञ हुआ। इस यज्ञ में बहुत खर्च हुआ। पचास हजार के तो यज्ञ पात्र ही बनवाये थे। जिन सबको यज्ञ कराने वाले ले गये। इसके अलावा एक हाथी भी दान दिया। और भी बहुत खर्च हुआ।" आगे फिर लिखा है '—"नाभे के गिरद कोट को नये सिरे से बनवाते समय उसके बीचमें आने वाले पीपलों को कटवाने के लिये प्रति पीपल एक सोने की कुल्हाड़ी बनवाई जो ब्राह्मणों को दान दे दी गई। इस प्रकार सारा सचित धन ब्राह्मण चाट गये।

महाराज देवेन्द्रसिंह जी के हृदय में भी अपने पिता की तरह पटियाला से कोई प्रेम-भाव नहीं रहा। आप सदैव अपने लिये बड़ा मानते रहे। अंग्रेज सरकार ने पटियाला को महाराज का खिताब दिया था। आपने अपने मुसाहिबों को इतला दे दी थी कि हमारे यहॉ उसे सब राजा ही कहे। राजा सरूपसिंह को केवल सरूपसिंह कहा जावे।

पटियाला जीन्द से तो झगड़ा था ही। महाराजा देवेन्द्रसिंह का झगड़ा लाहौर के सिख सरदार से भी हो गया। बात यह हुई महाराज जसवन्तसिंह जी के समय मोडा गॉव का एक सिख मलसिंह का लड़का धनसिंह महाराजा रणजीतसिंह की सेना में जाकर भर्ती हो गया। वह महाराजा रणजीतसिंह की निगाह में चढ़ गया और उसे खुश होकर जागीर देने का वचन दिया। धनसिंह ने अर्ज की कि मेरा

गॉव मोडां ही जागीर में दिला दिया जाय। महाराज रणजीतसिंह जी ने महाराजा जसवंतसिंह को सूचना दे दी। मोडा गॉव हमने धनसिंह को जागीर मे दे दिया है। राजा जसवन्तसिंह जी भला महाराजा रणजीतसिंह का विरोध कैसे कर सकते थे और जब कि महाराजा रणजीतसिंह जी ने महाराज जसवंतसिंह जी की बहिन सभाकौर के विवाह मे अपना एक गॉव मनोखा दहेज मे दे दिया तो जसवंतसिंह जी संतुष्ट हो गये। किन्तु रणजीतसिंह जी के बाद खड्गसिंह जी ने वह गॉव जब्त कर लिया। इस पर देवेन्द्र सिंह जी को गुस्सा आया और उन्होंने भी धनसिंह के लडके हुक्मसिंह को कहला भेजा कि मोडां गॉव को खाली कर दो। उसके न मानने पर आपने अपनी सेना भेजकर उस पर कब्जा कर लिया। उस समय लाहौर मे महाराज शेरसिंह जी की हुकूमत हो चुकी थी। उन्होंने अंग्रेज सरकार से इस बात की शिकायत की।

सरकार अग्रेजी ने इसकी तहकीकात की और 'बन्दर बांट' न्याय से मोडां को न तो लाहौर दरबार को दिया और न नाभा के पास रहने दिया जब्त करके अपने अधीन कर लिया। इस न्याय का दोनों ओर बुरा असर पड़ा। यद्यपि इस समय लाहौर में नाबालिग महाराज दलीपसिंह का राज्य था फिर भी सिखों ने यह तो अनुभव किया ही कि सन्धि के प्रतिकूल अंग्रेज हमारे राज्य पर हाथ डालने लग गये और उधर नाभा महाराज देवेन्द्रसिंह जी भी नाराज हो गये।

इन्हीं दिनों परिस्थितियां ऐसी पैदा हो गईं कि लाहौर दरबार और अग्रेज सरकार मे जंग छिड़ गई। अग्रेजों ने देवेन्द्रसिंह को लिखा कि हमे ज्यादा से ज्यादा रसद दीजिये। राजा साहब कुछ नाराज तो थे ही लापरवाही कर गये। इससे अंग्रेजों का दिमाग बिगड़ा, इन्हीं दिनों एक और घटना हुई सरदार रामसिंह जोकि लाहौर दरबार की सेना मे एक उच्च अफसर थे नाभा पधारे। वहॉ एक दो दिन ठहरे भी। महाराज की इच्छा तो यह थी कि दोनों ओर से तटस्थ रहें किन्तु अंग्रेज भला इस बात को कब बर्दाश्त करते, मेजर ब्राडफूट ने लिखा आप लुधियाना पहुँच कर अपनी मैत्री का सबूत दें और ज्यादा से ज्यादा रसद भेजे। आपने लिख भेजा रसद का प्रबन्ध हो रहा है किन्तु प्रबन्ध कुछ भी नहीं हो रहा था।

लड़ाई खतम हो गई अंग्रेज जीत गये। तब उन्होंने महाराज देवेन्द्रसिंह जी पर कोप किया। पहले तो जो जीत की खुशी में लुधियाने मे दरबार किया। उसमे उनको बुलाया नहीं। दूसरे उनको स्पष्ट शब्दों में लाहौर दरबार का सहायक साबित कर दिया और उन्हे गद्दी छोड़ देने के लिये हुक्म दे दिया। तीसरे राज्य का चौथा हिस्सा जब्त कर लिया। उनके बड़े बेटे को जिसकी कि अवस्था अभी केवल आठ वर्ष की थी गद्दी पर बैठाया और उसकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध राज्य के तीन अधिकारी सरदार गुरुबख्श-सिंह, सरदार फतहसिंह और ला० बहालोमल के सुपुर्द किया। इन्हीं की एक कौंसिल नाबालिगी में राज्य का प्रबन्ध सौतेली दादी चन्द्रकौर के परामर्श से करने के लिये बना दी गई।

महाराज देवेन्द्रसिंह जी के लिये पचास हजार रुपया सालाना की पेंशन मुकर्रर कर दी और उनके लिये तय किया गया कि देहली मेरठ के बीच कहीं भी रह सकते है। राज्य का यह सारा प्रबन्ध मिस्टर मैक्सन ने संवत् १६०४ वि० मे खुद नाभा जाकर किया था। कुंवर भरपूरसिंह जी की गद्दी-नशीनी की रसम भी उस समय मामूली ढंग से ही हुई थी।

यह बात नहीं कि महाराज देवेन्द्रसिंह जी ने अपने निर्दोष होने के लिये कोई सफाई नहीं दी थी। उन्होंने सभी इल्जामों का जवाब दिया था। उन्होंने सरदार रामसिंह जी के सम्बन्ध में कहा था कि वे मुझे भड़काने नही आये किन्तु इसलिये आये थे कि अगर लाहौर दरबार से उनकी अनबन हो जावे तो नाभा

आकर उन्हें रहने को जगह मिल जाय। मुलाकात केवल शिष्टाचार के लिये हुई थी। महाराजा साहब ने यह भी कहा था कि हमारा कोई भी गुप्त पत्र-व्यवहार लाहौर दरबार से न था।

राज्य से निर्वासित होने पर देवेन्द्रसिंह जी ने मथुरा में रहना पसन्द किया किन्तु दान और उदारतापूर्वक किये जाने वाले खर्चों के लिये उनका काम पचास हजार सालाना में चलना मुश्किल था। इसलिये वे कर्जा लेकर काम चलाने लगे। इस खबर को पाकर गवर्नमेंट ने उन्हें लाहौर भेज दिया जहाँ वे राजा खड्गसिंह की हवेली में रख दिये गये। वे मथुरा में लगभग आठ साल तक रहे थे और वहाँ उन्होंने अपना अधिकांश धन ब्राह्मण और साधुओं को खिलाने में खर्च किया था। यहां यह बता देना भी उचित होगा कि महाराज देवेन्द्रसिंह जी ने भी चार शादियां की थीं, जिनमें रानी मानकौर से दो पुत्र जन्मे थे एक भरपूरसिंह दूसरे भगवानसिंह।

महाराज के निर्वासित हो जाने के बाद शासन-कार्य के लिये एक कौंसिल बनाई गई थी। यह तो हम पहले ही लिख चुके हैं। इस कौंसिल के प्रेसीडेन्ट सरदार गुरुबख्शसिंह जी बनाये गये थे। इस कौंसिल का काम तीन वर्ष तक तो अमन से चला किन्तु फिर बखेड़ा खड़ा हो गया। बखेड़ा खड़ा करने वाला मुंशी साहबसिंह था। मि० मैक्सन ने तो इसे भी निर्वासित कर दिया था। इस पर इल्जाम यह लगाया गया कि इसने महाराज को कभी नेक सलाह नहीं दी। उन्हें सदा गुमराह ही किया। किन्तु दादी चन्द्रकौर इस पर मेहरबान थी। इससे यह नाभा में आ गया और इसने सरदार गुरुबख्शसिंह की पोल गवर्नमेंट के पास लिख भेजी कि राज्य की तमाम नौकरियों में गुरुबख्शसिंह ने अपने आदमी भर लिये हैं और साथ ही राज्य का धन भी खूब लूटा है। अंग्रेज सरकार की ओर से जांच हुई तो मामला सही निकला। गुरुबख्शसिंह कौंसिल से अलग कर दिये गये। उनके सारे रिश्तेदार भी नौकरियों से हटा दिये गये। मुंशी साहबसिंह ने इधर यह भी हिम्मत का काम किया कि कौंसिल का प्रेसीडेन्ट भी खुद ही बिना गवर्नमेंट की मंजूरी लिये बन गया।

अपने पिता के निर्वासित होने के कारण गद्दी पर जब बैठे थे कुल उम्र ८ साल थी। इसलिये इनकी दादी चन्द्रकौर ने इनकी देखरेख की ? रानी चन्द्रकौर बड़ी हुशियार थीं। वे शासन कार्यों की देखरेख भी रखती थीं। गुरुबख्शसिंह लुब्धक को उन्होंने ही हटवाया था और साहिबसिंह को दीवान मुकर्रिर किया था। हालांकि यह काम गवर्नमेंटकी मंजूरी से होना चाहिये था किन्तु चूंकि आप अपने को राज्य शासन की जिम्मेदार समझती थीं। अत. साहिबसिंह को रखने में कोई हिचक नहीं की।

राजा भरपूरसिंह

इन दिनों तक महाराज भरपूर सिंह भी सयाने हो चुके थे कि संवत् १६१४ वि० में भारत व्यापी विद्रोह अंग्रेजों को उखाड़ फेंकने के लिये उठ खड़ा हुआ। इस विद्रोह में महाराजा भरपूरसिंह जी ने अंग्रेज सरकार की भरपूर मदद की। रसद पहुँचाने व आदमी देने की किसी बात में कमी नहीं की। आपको लुधियाने की छावनी पर मुकर्रिर किया गया जहाँ छ महीने तक रहकर आपने विद्रोहियों का आक्रमणों के समय मुकाबिल किया। उस समय आपके पास दो तोपखाने ३५० सवार और ४५० पैदल सिपाही थे। नाभे की फौज ने हर मौके पर अंग्रेजों की मदद की। दिल्ली और फलोर सब नाकों पर जहाँ भी उन्हें भेजा गया, पहुँचे। और बड़ी बहादुरी से लड़े। राजा भरपूरसिंह जी मय अपने भाई राजा भगवानसिंह के लुधियाने में सतर्कता के साथ रहे। उन्होंने सरकार से यह भी इच्छा प्रकट की कि दिल्ली के मुहासिरे पर हमें भेजा जाय किन्तु चूंकि आप नाबालिग थे अत सरकार ने आपको पंजाब में ही रक्खा। इस संकट

समय मे राजा भरपूरसिंह ने २॥ लाख रुपया भी सरकार को दिया क्योंकि रुपये की भी सख्त जरूरत आ पड़ी थी। नाभे का प्रबन्ध उस समय मुन्शी साहिबसिंह और सरदार निहालसिंह के हाथ था। उन्होंने भी नाभे से निकलने वाले विद्रोहियों को महाराज की आज्ञा के अनुसार पकड़ कर कैद कर लिया।

इन सब सेवाओं के बदले में युद्ध की समाप्ति पर अंग्रेज सरकार ने राजा भरपूरसिंह को भी अन्य राजाओं की भाति इनामात दिये। जिला झज्झर में से परगना बाबुल एवं कांटी के परगने जिनकी कि आमदनी एक लाख छ. हजार से ऊपर सालाना था—दिये। और जब्त किये हुए इलाके भी वापिस कर दिये। खिलअत ७ की जगह १५ कपड़ों की और सलामी ११ तोपों की स्वीकार की गई। "फरजन्दे आरजमंद अकीदत पैवन्द दौलत इगलिशिया बैराड़ वंश सरमौर मालवेन्द्र बहादुर" का खिताब मिला। आगे कुछ समय बाद सितारेहिन्द का भी खिताब सरकार ने दिया।

संवत १९१७ में लार्ड कैनिंग ने अम्बाला में जो दरबार किया। उसमें राजा भरपूरसिंह जी को भी बुलाया गया। उसमें वायसराय ने राजा नाभा की सेनाओं को बहादुरी की खूब प्रशंसा की और कहा कि आपको सरकार ने जो भी इलाका दिया है। उस पर आपकी संतान का पीढ़ी दर पीढ़ी अधिकार रहेगा। आपको भी अन्य राजाओं की तरह निःसंतान होने पर गोद लेने का अधिकार है। पटियाला, जींद की तरह फॉंसी तक के अधिकार की आपको भी सनद प्राप्त होगई।

आपको सरकार की ओर से जो सनद हासिल हुई उसकी कुछ धारायें इस आशय की थीं।

(१) नये दिये हुये इलाकों पर भी महाराजगान नाभा को वही अधिकार होंगे जो उनके पुराने राज्य में है।

(२) राज्य के आन्तरिक शासन में वे स्वतंत्र होंगे सरकार कोई दस्तंदाजी न करेगी।

(३) नाभा राज्य को अपने राज्य से सती प्रथा और कन्या वध की बुरी रस्में उठा देनी होंगी।

(४) नाभा दरबार ब्रिटिश दोस्ती का सदैव नेकनीयती से पालन करेंगे।

(५) अंग्रेजों के दुश्मनों को अपना दुश्मन समझेंगे और रसद व सेना आदि से हर ऐसे मौके पर अंग्रेजों की मदद करेंगे।

(६) अंग्रेज सरकार नाभा राज्य के जागीरदार और माफीदारों की शिकायतों पर ध्यान न देगी। उन्हे रियासत ही निबटायेंगी।

(७) रेल और सड़कों के लिये जो जमीन सरकार लेगी उसका उचित मुआविजा देगी।

(८) नाभा दरबार की इज्जत और मान रक्षा को बनाये रखने में सरकार सदैव साथ देगी। आदि आदि।

संवत् १९२२ मे लाहौर में निर्वासन के दिन बिताते हुए महाराज देवेन्द्रसिंह जी की मृत्यु होगई। इधर राजा साहब भरपूरसिंह जी को राज्य शासन के कुल अधिकार मिल गये थे। वे राज्य के काम को सुचारु रूप से चलाने लगे। उन्होंने २॥ लाख रुपया तो सरकार को गदर के समय ही दिया था। इसके सिवा सात लाख पहिले दिये जा चुके थे। महाराज भरपूरसिंह जी ने यह मालूम होने पर कि सरकार कानोड़ और बुड़वाने के परगने नहीं रखना चाहती है। उन्होने अपने कर्जे मे २० वर्ष के लिये कानोड़ का पट्टा करा लिया। इससे उन्हे वह रुपये भी वसूल होगये और भी कोई कठिनाई न पड़ी।

नाबालगी के समय में राज्य में कई अहलकार ऐसे घुस गये थे जो राजा प्रजा किसी के भी शुभ चिन्तक न थे। उनकी भी अम्बाला के एजेन्ट ने जॉच की और ऐसे लोगों को निकाल दिया। महाराजा

भरपूरसिंह जी की यह आदत थी कि राज्य के प्रत्येक संगीन मामले मे अम्बाला के कमिश्नर और पटियाला के महाराज की सलाह ले लेते थे। उन्होंने अपने पिता और दादा की भांति पटियाला से द्वेष नहीं रक्खा। किन्तु मेल मिलाप बढ़ा लिया था। हालांकि कुछ लोगों ने उन्हें भडकाना भी चाहा किन्तु वे सावधान रहे।

महाराज भरपूरसिंह चालचलन के अच्छे थे। उनके अन्दर कोई भी ऐसा ऐब नहीं था। जो राजे रईसों मे होता है सर लेपिलग्रिफिन ने भी लिखा था कि "देशी रियासतों के रईसो मे छोटी उम्र मे जो खराबियाँ होती हैं.... उनसे महाराज भरपूरसिंह बचे हुए हैं।" महाराज हिन्दी, गुरुमुखी और फारसी मे अच्छी योग्यता रखते थे। कविता करने का भी आपको शौक था। आप समझते थे कि अंग्रेजो के शासन मे अंग्रेजी सीखना भी जरूरी है इसलिये समय निकाल कर अंग्रेजी सीखते थे। रियासत मे माल, दिवानी और फोजदारी के कानून भी आपने ही कायम कराये। आप सारा समय राज काज मे ही विताते थे। दफ्तरों मे जाकर अहलकारों के काम की देखभाल भी करते और जिलेदार तथा जागीरदारो से मुलाकातें भी करते।

सम्वत् १६१६ वि० मे आपने अम्बाला कमिश्नर की मार्फत गवर्नर जनरल से मिलने का अपना नम्बर भी निश्चित कराया क्योंकि पहले आपका ही पहला नम्बर था किन्तु जीन्द वालों ने कोशिश करके अपना नम्बर आगे रखा लिया था कमिश्नर ने आपकी बात पर ध्यान दिया। जीन्द को और आपको एक ही नम्बर में रख दिया।

राजा भरपूरसिंह जी अपने प्रतिदिन के कार्य को यथा संभव नोट कर लेते थे। इस काम के लिये वे डायरी रखते थे। गरज यह कि उन्हे इस बात की पूरी चिन्ता रहती थी कि उनके द्वारा जितना भी हो सके, राज्य का भला हो और राज्य उन तमाम संकटो से बचता रहे, जिनमें होकर उसे अब तक गुजरना पडा है। आप हिन्दू और सिख सभी प्रकार के विद्वानों की कदर करते थे किन्तु सिख धर्म मे आपकी आस्था थी।

राजा भरपूरसिंह का घर के लोगों से भी प्रेम का ही व्यवहार रहता था वे अपने भाई को तो पुत्र के तुल्य ही प्यार करते थे। सौतेली माताओं और दादियों से भी उनका सलूक श्रद्धा का था। यही वजह थी कि रानी चन्द्रकौर ने जिसके पास फूल और दयालपुरा की जागीर थी। इनको राजी से ही छोड़ दी। क्योंकि उन्हें विश्वास था कि वे जब तक जिन्दा रहेंगी भरपूरसिंह उनका अच्छे से अच्छा खाने ठहरने और अन्य खर्चों का प्रबन्ध करेगा। कहा जाता है रानी चन्द्रकौर ने सरदार उत्तमसिंह का लालन पालन किया था। जमड़ वाले को विश्वेदारी बख्शी थी। जो उनके पास बराबर रही।

सवत् १६२० वि० मे लार्ड एलगन ने आपको सूचित किया कि सरकार ने आपको अपनी कानून बनाने वाली कौंसिल का मेंबर बना लिया है। आप इसे स्वीकार करेगे। यह बात उस समय काफी इज्जत की समझी जाती थी। उन्हें प्रसन्नता हुई। वे इस बात के बहुत इच्छुक थे कि उस कौंसिल मे भाग लेने के लिये कलकत्ता जावें किन्तु दैवात इसी वर्ष गर्मियों मे वे बीमार हो गये। मियादी बुखार ने धर दबाया। दो महीने तक काफी उपचार हुआ किन्तु बीमारी बढ़ती गई और वह दिन आ पहुँचा जब कि वे इस संसार को छोड कर परलोक के लिये विदा हो गये।

विमान निकाल कर उनके शव का बड़ी धूमधाम से उनके भाई भगवानसिंह ने अन्त्येष्टि संस्कार किया और सारे राज्य ने उनके परलोक गमन पर शोक मनाया।

महाराजा भरपूरसिंह जी के बाद उनके छोटे भाई भगवानसिंहजी रियासत नाभा के मालिक

हुए, कारण कि भरपूरसिंह जी ने कोई सन्तान न छोड़ी थी। और किसी दूसरे का इतना नजदीकी रिश्ता न था। सरकार ने महाराजा पटियाला और जीन्द से सलाह ली तो उन्होंने भी भगवानसिंह जी का ही हक साबित किया। अतः राजा भगवानसिंह ही राज्य के मालिक बने।

राजा भगवानसिंह

संवत् १६२१ विक्रमी के जेष्ठ महीने में आपकी गद्दी नशीनी की रस्म अदा हुई। जिसमें अम्बाले का एजन्ट गवर्नर एवर्ट, जीन्द पटियाले के महाराज तथा अन्य अंग्रेज अफसर और सतलज पार के रईस शामिल हुए। सरकार की ओर से खिलअत में १५ कपड़े ३ जवाहरात १ हाथी और १ घोड़ा मिले। रस्म के अनुसार राजा रईसों ने भी तोहफे दिये।

महाराज भगवानसिंह जी खुद नेक आदमी थे फिर भी उनका राज्यकाल संकट का ही रहा। गद्दी पर बैठते ही उन्हें आपत्तियों का सामना करना पड़ा। राज्य के अधिकारी और कर्मचारियों में वड़ा-बन्दी हो जाने के कारण यह अफवाह फैल गई कि महाराज भरपूरसिंह जी को जहर देकर मरवाया गया है। यदि यह बात सही भी हो तो भी राजा भगवानसिंह जी का उसमें कोई हाथ न था। यह गुल खिला-रघड़ वाले की सरदारनी महताबकौर के कत्ल पर। राज खालसा के लेखक ज्ञानी ज्ञानसिंह जी ने महताब कौर के कत्ल का हाल इस प्रकार लिखा है—"राजा भरपूरसिंह जी बड़े सुन्दर, सजीले और आकर्षक जवान थे। उनमें जहां अनेकों गुण थे। वहां सुन्दरियों के देखने का एक व्यसन भी था। अच्छी २ स्त्रियों के चित्र भी खींचा करते थे। राजा साहब के लाजवाब सौन्दर्य को देख कर स्त्रियां भी उनके पास खिंची चली आती थीं। महताबकौर जो इनकी रिश्ते में भाभी होती थी। वह भी इन पर रीझ गई और राजा साहब भी उसके भरे हुये गुलाबी चेहरे पर अपने को निछावर कर बैठे। स्त्री का स्वभाव है कि वह एकाधिकार चाहती है। महताबकौर ने देखा कि राजा साहब का किशनकौर नाम की एक युवती से भी प्रगाढ प्रेम है तो वह इनसे नाराज हो गई। नाराजी भी यहाँ तक बढ़ी कि जानी दुश्मन बन गई। महाराज को उसके बेटे के विवाह में अपनी माता के आग्रह से शामिल होना पड़ा। वहीं से वे बीमार होकर आये। और अंत में मर गये। सरदार गुरुबख्शसिंह जो कि महाराज भरपूरसिंह का दोस्त था। उसे राजा भरपूरसिंह के कहने से यही शक हो गया कि महताबकौर ने राजा साहब को जहर दिया। गुरुबख्श सिंह ने बड़ी कोशिशें करके भगवानसिंह जी को राजा बनवाया और फिर भगवानसिंह जी की लिखित अनुमति लेकर महताबकौर को कत्ल करा दिया। कत्ल करने वालों ने शराब के नशे में सारा किस्सा जैतों के थानेदार के सामने ब्यान कर दिया फिर क्या था मुकदमा चल निकला। सरकारी कमीशन बैठा। राजा जीन्द और पटियाला के सामने कमीशन ने जांच की। जिसमें राजा भगवानसिंह जी निर्दोष साबित हुए गुरुबख्शसिंहजी को दो महीने की सजा और कत्ल करने वालों को आजन्म काला पानी हुआ।

इस केस के समाप्त होने पर भी महाराज भगवानसिंह जी के लिये शांति के दिन नहीं आये। प्रजा में तो कानाफूसी चलती ही रही। लधड़ा और सोनटी के जागीरदार भी अपने केसों को लेकर उठ खड़े हुए। यद्यपि संवत् १६६५ वि० में उनके झगड़ों का फैसला हो चुका था किन्तु सोनटी वाले उससे रजामन्द नहीं थे। अतः पुनः उन्होंने नये सिरे से अपने मामले को चला दिया। लार्ड कैनिंग की आज्ञा से अम्बाला के तत्कालीन कमिश्नर ने जांच की और महाराजा जींद और पटियाला की राय लेकर यह तय किया कि सोनटी के सरदारों को बिना किसी तरह की सेवा किये पांच हजार सालाना राज्य से पेन्शन स्वरूप मिला करे। सोनटी के सरदार इस फैसले से राजी नहीं हुए। उन्होंने प्रिवी कौंसिल में अपील करदी।

वहा से फिर नये सिरे से जांच करने का हुक्म हुआ और मि० टेलर के सुपुर्द यह काम हुआ। उन्होंने काफ़ी जांच पड़ताल के बाद तय किया कि सोनटी कुल चौतीस हजार पांच सौ के लगभग आमदनी की है। इसमें से निम्न प्रकार नाभा को मिलना चाहिये—

८३६८॥=) बावत जब्ती लावारिस सवारों का हिस्सा

५०७१॥) बावत ६० सवारों की नौकरी व हाजिरी सात रुपया मासिक प्रति सवार के हिसाब से

८०६१॥) बावत जब्ती इलाका नाभा चौथे की वा हिसाब छटे हिस्से।

अर्थात् कुल २१५०१॥=) रियासत नाभा को मिले और १२६६७।=) सोनटी के सरदारों के पास रहे

इस फैसले को सब लोगों ने स्वीकार कर लिया। इस प्रकार इस झगड़े मे भी छुटकारा हुआ यह याद रहे लाधरा वाले इस फैसले से मुक्त थे।

इसके बाद भी रियासत मे शांति नहीं रही। नाभे का जो वकील अब्दुल रहीम खां नाम का अम्बाले मे रहता था उसने कमिश्नर टेलर को हत्थे पर चढ़ा लिया और उससे महाराजा भगवानसिंह जी पर दबाव डलवाया कि अब्दुल रहीम के बाप नूरखा के नाभा के प्राय. सभी प्रतिष्ठित सरदार इस बात के खिलाफ़ थे जिनमे सरदार लालसिंह, हजूरासिंह, शेरसिंह और दयालसिंह के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। रहीमखां ने सबको अम्बाले बुलाकर कैद करा दिया। इल्जाम यह लगाया कि यह लोग महाराज को बहका कर राज्य को बर्बाद करना चाहते हैं। मि० टेलर ने महाराजा साहिब की इच्छा के विरुद्ध एक कौंसिल बनवा दी। जिसमे नूरखां को प्रेसीडेन्ट और बख्तावर सिंह और हाकिम राय को मेम्बर बनाया गया। रहीम खां को इससे भी सन्तोष नहीं हुआ वह तो अपने बाप को रियासत का सर्वेसर्वा बनाना चाहता था उसने हाकिमराय, प्रभुदयाल, मीरमुन्शी और फरीउद्दीन को अम्बाला बुलाकर कैद में डलवा दिया। और महाराज को एक हजार मासिक का खर्च मुकर्रिर करा दिया। हम नहीं समझते मि० टेलर किस स्वार्थ से रहीम बटलर के इशारे पर नाचते थे। राजा साहब कहां तक बर्दाश्त करते। उन्होंने भारत सरकार को साफ़ २ लिख दिया कि हमारी रियासत का सम्बन्ध सीधा लाहौर से हो नकि अम्बाला के कमिश्नर से। इस बात को मनवाने के लिये उन्हे लगभग एक लाख रुपया खर्च करना पड़ा। उनका सम्बन्ध लाहौर से तय हो गया। इसके बाद उन्होंने कौंसिल तोड़ दी और अपनी इच्छा के अनुसार नया प्रबन्ध किया। ऐसे सभी लोगों को निकाल दिया जो राज्य के कार्य्यों में विघ्न डालते थे। साहिबसिंह भी बनारस की ओर भाग गया और वहीं मर गया।

महाराज भगवानसिंह जी हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी सभी जानते थे और स्वभाव के भी अच्छे थे वे राज्य में सुधार भी करते किन्तु काल ने उन्हें अधिक दिन दुनिया मे नहीं रहने दिया। उन्हे तपेदिक हो गया और उसी में बीमार रहकर संवत् १७२७ वि० के जेष्ठ बदी १२ को इस संसार से प्रस्थान कर गये।

उन्होंने अपने सामने ही अपनी भाभियों के खर्च के लिये रकम मंजूर करदी थी जो उनके पीछे भी उसी हिसाब से मिलती रही। उनके खुद के तीन रानियाँ थीं। इनमें से किसी के भी सतान नहीं हुई। दीवान हाकिमराय ने मुन्शी प्रभूदयाल के लिखे "नाभा राज्य वंश" के कुर्सी नामे के अनुसार बड़रुखां के रईस सरदार हीरासिंह जी को राज्य का हकदार समझा और उन्हीं के लिये सरकार मे लिखा पढ़ी शुरु की। सर लेपिलग्रिफन इस जॉच के लिये मुकर्रिर हुए। उन्होंने पटियाला, जींद के महाराजों की राय लेकर हीरासिंह का ही हकदार होना गवर्नमेंट को लिख भेजा। जिसे गवर्नमेंट ने भी स्वीकार कर लिया।

नाभा राज्य के अनेकों सरदार और अहलकार भी इस चुनाव के पक्ष में थे।

संवत् १६२८ वि० के भादों महीने की वदी अष्टमी को महाराजा हीरासिंह जी को गद्दी पर बैठाया गया। और बड़ी धूम धाम के साथ उनका राजतिलक हुआ। जिसमे पूर्व प्रथा के अनुसार राजा रईस और कई अंग्रेज अधिकारी भी शामिल हुए। राजा हीरासिंह जी गुरुमुखी और हिन्दी मे अच्छी योग्यता रखते थे। अंग्रेजी नहीं जानते थे। फिर राजनीति और शासन प्रबंध की योग्यता में वे अनेकों अंग्रेजी जानने वाले रईसों से आगे थे। आपने सरदार सेवासिंह जी को अपना मंत्री बनाया जोकि राजा प्रजा का सच्चा शुभचिंतक सरदार था।

राजा हीरासिंह

कूका आन्दोलन इन्हीं के समय में हुआ था। जिसे दबाने मे आप को भी गवर्नमेंट की मदद करनी पड़ी। कूका सिखों को नामधारी भी कहते है। धार्मिक भावावेश में कसाइयों को नेस्तो नाबूद करने के लिये कुछ नामधारी सिख बिखर पड़े थे। फौजी सहायता भी भेजी।

सवत् १६३५ वि० मे काबुल के अमीर और अंग्रेजों के बीच लड़ाई छिड़ गई। महाराज हीरासिंह जी ने अंग्रेजी सरकार की सहायता के लिये अपने ७०० सैनिक काबुल भेज दिये। जिन्होंने वहाँ बहादुरी दिखाई। कई अंग्रेज अधिकारियों द्वारा महाराज हीरासिंह की फौज की बहादुरी का जिक्र किया। इसी समय अंग्रेजों ने कुछ कर्जा लिया। उसमे भी महाराज ने चार लाख रुपया कर्ज अंग्रेजों को दिया। जिसका व्याज नाभा राज्य को बराबर मिलता रहा। अन्य स्थानों पर भी जहाँ कहीं अंग्रेजों को दुश्मनों से लड़ना पड़ा। महाराज ने खैरख्वाही दिखाने के लिये अपनी ओर से सहायता देने की इच्छा प्रगट की।

संवत् १६४१ वि० में जब अमीर काबुल भारत मे आये। उनके स्वागत के समय रावलपिंडी में आपकी फौज के प्रदर्शन की बड़ी प्रशंसा हुई।

महाराजा हीरासिंह जी ने रियासत मे कई तरक्की के काम किये। सबसे पहले तो लुटेरों का दमन किया। राज्य में सड़के, धर्मशाला, अन्न क्षेत्र, छात्रालय, स्कूल और औषधालय स्थापित करके प्रजा सुधार की नींव डाली। चार लाख रुपये से आपने सैनिकों के रहने के लिये एक पक्की छावनी बनवाई। नाभा शहर मे इन्टरमीजियेट कालेज की स्थापना की। अंग्रेजी ढंग के डाकखानों का प्रबन्ध किया। पन्द्रह लाख रुपये खर्च करके सिंचाई के लिये नहर निकलवाई। राज्य मे रेल निकलवाने मे स्टेशनों का खर्च आपने बर्दाश्त किया। एक हस्पताल बनवाया। बाग मे पचास हजार की एक कोठी प्रतिष्ठित महमानों के लिये बनवाई। दूसरे बाग में एक कोठी दो लाख रुपये की लागत से अपने लिये बनवाई। शहर की सारी नालियो को पक्का करा दिया। भावसू के मुकाम पर नदी का पुल बनवाकर वर्षा में होने वाले प्रजा के कष्ट को दूर किया। नाभे से मालेरकोटला, और पटियाला तक लगभग ४० मील लंबी पक्की सड़के बनवाई। बावल मे एक गढ़ बनवाया। अमलोह मे एक पक्की सराय और बाजार बनवाया। फूल मे बाग और मंडी जैतो मे बाजार और धनोला मे सराय बनवाई। इसके सिवा जेल, छावनी, बोर्डिङ्ग हाऊस, तालाब, महल और कई धर्मशालाये भी बनवाई। कहने का मतलब यह कि प्रजा को आपसे काफी लाभ पहुँचा और रियासत का प्रबन्ध कानूनी तरीका पर होने लगा। पंजाब मे आपका शासन नमूने का रहा। जिसकी तारीफ कई अंग्रेज अफसरों ने भी की।

राज्य का कार्य भली प्रकार करने वाले अफसरो और अहलकारों का महाराज सदैव ध्यान रखते थे और तरक्की देकर उनका हौसला भी बढ़ाते थे। सरदार सेवासिंह जी ने जो आपके वजीर थे। राज्य को उन्नत बनाने मे आपकी बड़ी मदद की। उन्हे इन सेवाओं के बदले मे राज्य की ओर से १२ हजार की

जागीर और तीन गाँवों की बिस्वेदारी बख्शी गई। एक लंबे अर्से तक सरदार सेवासिंह जी ने राज्य की सेवा की। जब उनका स्वर्गवास होगया तो महाराज ने उनके योग्य पुत्र सरदार प्रतापसिंह जी को अपना वजीर नियुक्त किया। जिन्होंने राज्य का काम सभालने में अपने पिता का पूरा अनुकरण किया।

महाराजा हीरासिंह जी ने चार विवाह किये थे। (१) सरदार अनोखासिंह जी लोंगेवाले की सुपुत्री मीरकौर के साथ। (२) सरदार प्रेमसिंह जी रल्लेवाला की सुपुत्री प्रेमकौर के साथ। (३) कर्मगढ़ के सरदार बसावासिंह जी की सुकन्या हरनामकौर के साथ। (४) सरदार संतोषसिंह की सुपुत्री ईसरकौर के साथ। जिनमें से बड़ी महारानी मीरकौर जी के उदर से कुँवर रिपुदमनसिंह जी का संवत् १६३६ में जन्म हुआ और प्रेमकौर से एक बीबी जी उत्पन्न हुई।

महाराज हीरासिंह जी को अपने युवराज साहब की शिक्षा-दीक्षा का बड़ा खयाल था। इसलिये उन्होंने उनकी संरक्षा और शिक्षा के लिये स्वनाम धन्य भाई काहनसिंह जी और किशनदास जी को—गुरुमुखी, संस्कृत और अंग्रेजी के लिये--शिक्षक नियुक्त किया। महाराज हीरासिंह जी चाहते थे कि उनका उत्तराधिकारी पंजाबी राजाओं में शिक्षा और बुद्धिमानी में सबसे श्रेष्ठ हो।

महाराजा हीरासिंह जी ने लगभग ४० वर्ष राज्य किया। इस अर्से में सरकार की ओर से आपको जी० सी० एस० आई, जी० सी० आई० ई० की उपाधियाँ मिली थीं। संवत् १६६८ की शरद ऋतु में आपका देहान्त होगया। उस समय आपके राजकुमार की अवस्था २६ वर्ष की हो चुकी थी। संवत १६६६ वि० के आरम्भ में पिता के स्वर्गवास से लगभग एक माह बाद आपको सिंहासनारूढ़ कराके सरकार अंग्रेज के प्रतिनिधि ने नाभा जाकर अधिकार प्रदान की रस्म अदा की। आप पिता की मृत्यु के समय यूरोप में थे। इसलिये एक महीना गद्दी नशीनी होने में लग गया। आपने अपने समय में राज्य का प्रबन्ध शान के साथ किया। राजसी ठाठ भी खूब बढ़ाये। आपने अपने १२ साल के शासन काल में क्षत्रियोचित ढंग से राज्य किया। संवत् १७८० में पटियाला में और आपमें जो झगड़ा चल रहा था। उनका लाभ उठाकर अंग्रेज सरकार ने आपको गद्दी से अलग कर दिया।

महाराज रिपुदमनसिंह

अलग करने के सरकार अंग्रेज ने चाहे जो भी कारण बताये हों किन्तु भारतीय लोकमत ने उनमें स्वाभिमान और कौम परस्ती के कारण भी समझे थे। वास्तव में महाराज रिपुदमनसिंह जी स्वाभिमानी थे ही। पंजाब में राजतिलक के समय ताज पहनाने की प्रथा यह चल पड़ी थी कि अंग्रेजी एजेन्ट सिर पर ताज रखा करते थे। किन्तु आपने एजेन्ट महोदय से यह कह कर कि आप कष्ट न करें। यह तो मेरे घर की चीज है मैं खुद ही पहन लूंगा। अपने हाथों ही पहन लिया। इसके अर्थ यह समझे जा सकते थे कि महाराज किसी के बनाये हुये राजा अपने को अनुभव नहीं करते थे। प्रजा की सुविधा के लिये उन्होंने तहसीलें बढ़ाई। क्योंकि मालगुजारी वसूल करने के लिये जमींदारों को बीसियों मील हैरान होना पड़ता था। इन्साफ पाने के लिये हाईकोर्ट की स्थापना की। राज्य में आपसे पहले पढ़े लिखों की कुल संख्या आठ हजार के करीब थी। आपने विद्या प्रचार के लिये प्राइमरी तक की शिक्षा मुफ्त कर दी और अनेकों स्थानों पर स्कूल खुलवाये। पंडित मदनमोहन मालवीय जी को उनके नाभा पधारने पर हिन्दू यूनीवर्सिटी के लिये एक लाख रुपये प्रदान किये।

राज्य की प्रजा में स्वायत शासन उपयोग की योग्यता और लालसा बढ़े इस दृष्टिकोण से आपने डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और एडवाइजरी कमेटियों की स्थापना की। डिस्ट्रिक्ट कमेटियों का निर्माण चुनाव-पद्धति

से होता था। जो राज्य के मामलों में एडवाइजरी कमेटी को सलाह देती थी। वे बहुत ही सादे लिबास में रहते थे। कभी-कभी तो प्रजा के अनेकों मनुष्य उन्हें राज्य का कोई सरदार मात्र ही—इस सादगी के कारण—समझ लेते थे। सादा वेश में ही राज्य के गाँवों में भी निकल जाते और प्रजा जनों से उनकी दिक्कतों और तकलीफों की जानकारी प्राप्त करते।

एक पंजाबी लेखक ने महाराज की देश भक्ति के सम्बन्ध में लिखा था उनकी मि० गोखले और पंडित मदनमोहन मालवीय से दोस्ती थी। उन्होंने तिलक फंड में भी रुपया दिया था। वे राज्य की नौकरियों में भी प्रायः सभी स्थानों पर देशियों को ही रखते थे योरोपियन लोगों को उन्होंने राज्य के ऊँचे ओहदों पर नहीं भरा। जग योरोप के समय भी उन्होंने अपनी प्रजा से कोई चन्दा नहीं माँगा। न अपनी ओर से सेना देने की इच्छा ही प्रकट की। प्रजा को कोई कष्ट सरकारी आदमियों या उनकी बदौलत न पहुँचे इस बात की वे पूरी चिन्ता रखते थे। पंजाब के गवर्नर लॉर्ड डैन जब वापिस विलायत जा रहे थे तो उन्होंने पंजाब की रियासतों में दौरा किया। महाराजा रिपुदमनसिंह जी ने उन्हें लिख भेजा खेद है कि मैं स्वयम इस समय दौरे पर हूँ, आपका सत्कार किसी उचित समय पर करूँगा।"

ननकाने के काण्ड को सारी दुनिया जानती है। महाराज की सहानुभूति अपनी कौम की ओर इस मामले में रही। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के आदेशानुसार आपने भी अपने राज्य में शहीद दिवस मनाया। उस दिन राज्यकीय विभागों की छुट्टी करदी। जो सिख अकाली पोशाक पहन कर ननकाना साहब जाते थे। उनके लिये महाराज नाभा ने कोई रोक टोक नहीं की। यह उनकी कौमपरस्ती की छोटी छोटी घटनाये हैं। जो अंग्रेज सरकार की नौकरशाही को कब बर्दाश्त हो सकती थी।

नाभे पटियाले का कई पीढ़ियों से मन मुटाव चला आरहा था। यह बात हम पूर्व लिख चुके हैं। महाराज रिपुदमनसिंह अपनी ओर से तो चाहते भी न थे कि यह झगड़ा सदैव रहे। इसीलिये भाई साहब भाई अरजनसिंह जी बागड़िया के बीच में पड़ने से उन्होंने महाराजा पटियाला से शिमला में मुलाकात भी की किन्तु सन् १९२१ ई० तदनुसार संवत् १९७८ मे फिर गड़बड़ होनी शुरू हो गई। एक चोरी का अपराधी भाग कर पटियाला पहुँच गया। महाराजा नाभा ने पटियाला से उसे मांगा किन्तु पोलीटिकल एजेन्ट ने पटियाला को मना कर दिया कि मुलजिम को नाभे के हवाले मत करो। पता नहीं उन्होंने किस कानूनी पाइंट से ऐसी सलाह महाराजा पटियाला को दी थी। नाभे को मुलजिम नहीं सौंपा गया। इसके कुछ ही अरसे बाद पटियाला का एक सब इन्सपेक्टर अब्दुल अजीज व्यभिचार के मामले में और एक कानिस्टेबिल मुहम्मद याकूब डाके के अपराध में राज्य नाभा में पकड़े गये और उन्हें सजा भी दी गई। पटियाला ने इसमें अपनी तौहीन समझी उसने पोलीटिकल डिपार्टमेन्ट को नाभे की शिकायत की। पोलीटिकल डिपार्टमेन्ट तो मौके की तलाश में था ही उसने तो बीच में ही कई बार महाराज रिपुदमनसिंह को गद्दी से हटाने के इरादे किये थे किंतु अवसर अनुकूल न समझ कर चुप्पी साध ली गई।

पटियाले के लगाये गये इलजामों की जांच के लिये सरकार ने इलाहाबाद हाईकोर्ट के जज स्टूअर्ट को मुकर्रिर किया। निर्णय के लिये आठ मुकदमे जज महोदय के सामने पेश हुये।

पहला यह कि नाभे की ईसरी नाम की जनानी कुछ गहने और टूम नाभे के जमाई के साथ लेकर लाहौर भाग गई और फिर पटियाला चली गई। नाभे के पुलिस अफसरों ने उसे पटियाला जा पकड़ा किंतु पटियाला राज्य ने उन्हें नाभे के सुपुर्द नहीं किया। दूसरा यह कि सबइन्सपेक्टर अब्दुल अजीज ने एक स्त्री का सत भंग किया और मौके पर पकड़ा गया। पटियाला ने कहा वह एक डाकू की

तलाश में नाभा गया था। तीसरा यह कि याक़ूब ने डकैती की और उसने खुद स्वीकार किया कि इन्सपेक्टर जनरल पटियाला के हुक्म से ही मैंने ऐसा किया था। पटियाला ने इसका जवाब दिया कि नाभा अकालियों का मददगार है और यह सिपाही पटियाले ने अकालियों की देखभाल के लिये मुकर्रिर किया था। अकालियों से मिलकर इस पर झूठा मामला चलाया गया है।

चौथा यह कि, जब याक़ूब को पकड़ कर नाभा पुलिस हमारे राज्य में जो कि उसके रास्ते में पड़ता था लेजा रही थी तो रास्ते में हमारी पुलिस पर गोली चलाई। नाभा का कहना था यह बिलकुल बनावटी बात है। पांचवां यह कि—जब नाभा पुलिस मुलजिम को पकड ला रही थी पटियाला ने उसमें हस्तक्षेप किया—पटियाला ने इससे इन्कार किया। छटा यह कि नाभे जनानी को उड़ाने के षडयंत्र रचे जिसे कि पुलिस कब्जे में रख रही थी। उसमें पटियाला ने नाभा के एक मुसलमान डाक्टर को अपने पक्ष में कर लिया था जिसकी कि बहुत सी जायदाद पटियाला में थी। सातवा मुक़दमा नं० ३-४ से ही सबंध रखता था। यह पैंधनी गॉव की स्थिति बताकर दायर हुआ था। आठवां यह कि रियासत पटियाले के एक भागे हुए घोड़े को नाभे ने नीलाम कर दिया।

कहना न होगा कि पटियाला ने अपनी चतुराई से अपने पक्ष को पूरी चालाकी से पेश किया और उसकी मदद पर पोलीटिकल एजेन्ट भी था। नाभे के अनेकों नौकरों को मिला लिया गया और उन्होंने नाभे के विरुद्ध गवाहियां दीं। मुकदमे में दोनों ओर से रुपया बहाया गया। मदरास तक के नामी-नामी कानून दा अपने पक्ष के साबित करने के लिये दोनों ओर से बुलाये गये।

मुकदमे के दौरान में नाभे के अनेकों कर्मचारियों ने पूरी नमक हरामी दिखाई। नित-प्रति कोई नाभा छोड़ कर भागता तो कोई पटियाले के अफसरों से जा मिलता। कोई कागज उड़ा ले जाता तो कोई छिप जाता। जिन अफसरों की रक्षा के लिये महाराज ने मुक़दमा अपने ऊपर लिया था वे ही उन्हें दगा देने लगे।

अंत में यह हालत पैदा हो गई कि महाराज बेचैनी में पड़ गये और वजीर, सैक्रेटरी सबने उन पर जोर डाल कर इस आशय की चिट्ठी वायसराय के नाम लिखवादी कि मैं गद्दी छोड़ने को तयार हूँ। तीन लाख सालाना पर देहरादून या मसूरी रह कर गुजर कर लूँगा। पटियाला के हरजाने को भी रियासत नाभा पूरा कर देगी।

पंजाब के सारे पत्रों में यह खबरें प्रकाशित हो गई थीं कि महाराज नाभा गद्दी से उतारे जा रहे हैं। इसलिये संत तेजासिंह और भाई दीदारसिंह उनसे मिलने नाभा गये। जहाँ उन्हें मुश्किल से मिलने दिया गया। उन्होंने जो ब्यान लौट कर दिया उसका सार है कि महाराजा नाभा और पटियाला के बीच इस प्रकार का वैमनस्य कुछ स्वार्थी अफसरों ने फैलाया था और उन्होंने अन्त समय तक दोनों ओर राजी-नामा भी नहीं होने दिया। राजी से गद्दी त्याग की चिट्ठी भी उनकी बेचैनी से लाभ उठाकर पोलीटिकल एजेन्ट के दबाव में आकर उनके सलाहकारों ने ही लिखा ली थी। और जब महाराज ने चाहा कि मेरी चिट्ठी वापिस मंगा दी जाय। लोगों ने टालमटोल ही कर दी और वह समय ला दिया जब कि महाराज को राज्य छोड़ने का सरकार की ओर से हुक्म आ गया।

महाराज रिपुदमनसिंह को गद्दी से हटाये जाने का समाचार सारे भारत के सिखों के लिये वज्रपात सा लगा। बम्बई कलकत्ता से लेकर सारे पंजाब में सरकार के इस कार्य पर रोष प्रकट किया गया। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी ने इस मामले को हाथ में ले लिया और जैतो पर सत्याग्रह रोप दिया।

तमाम हिन्दुस्तानी अखबारो ने भी सरकार के इस कार्य की निन्दा की किन्तु सरकार टस-से-मस नहीं हुई। और महाराज साहब को गद्दी छोड़ देनी पड़ी वे देहरादून भेज दिये गये। जहाँ से दक्षिण भारत मद्रास के किसी जिले मे नजरबन्द कर दिये गये। उनका खर्च भी काफी कम कर दिया गया। कहा गया कि वह अपने खर्चे में से बहुत कुछ अपने पक्ष के आन्दोलन पर खर्च करते हैं।

महाराज ने निर्वासन से इस बात की काफी कोशिश की कि एक बार उन्हे फिर से रियासत का प्रबन्ध सौंप दिया जाय किन्तु उनकी यह बात कतई नहीं सुनी गई।

उनके सम्बन्ध में कई बार ऐसेम्बली में भी प्रश्न किये गये किन्तु सरकार ने कोई सतोषजनक उत्तर नहीं दिये।

उनके राजकुमार साहब की शिक्षा का सरकार ने उचित प्रबन्ध किया उन्हें विलायत में भी शिक्षा दिलाई। अगले वर्ष उनको शासनाधिकार दे दिये गये। उनका शुभ नाम श्री प्रतापसिंह जी है।

प्रतापसिंह

महाराजा रिपुदमनसिंह जी ने तीन चार वर्ष बाद अपना नाम गुरुशरणसिंह जी रख लिया था।

उनके समय के बाद राज्य में शासन-सम्बन्धी कई हेर-फेर हुए हैं कुछ उन्नतशील कार्य भी हुए है। महाराज प्रतापसिह जी ने शासनाधिकार हाथ में आने पर राज्य में कई सुधार किये। उनका विवाह नरेन्द्र मडल के वायसचांसलर महाराजा धौलपुर की सुपुत्री के साथ हुआ है।

सन् १९४८ में अन्य राज्यों की भांति यह राज्य भी पेप्सू यूनियन में शामिल हो गया है।

उन्नीसवाँ अध्याय

कैथल का भाई खान्दान

कैथल भी जाट सिखों की एक रियासत थी। उस समय उसकी भी अच्छी इज्जत थी। समय पाकर सरकार अंग्रेज ने उसे जब्त कर लिया। 'सैरे पंजाब' के लेखक ने कैथल का वर्णन इस प्रकार दिया है —"गुरु अमरदास जी ने गुरु रामदास जी को गद्दी देते समय कहा था कि तुम्हे एक कार्य करना है और वह कार्य एक पवित्र कार्य है। तुंग, सुल्ताना और गुमराला गाँवों के बीच में कई कोस का एक जंगल था उस जंगल में एक बहुत पुराना तालाब था किन्तु वह मिट्टी में भरा हुआ था। गुरु अमरदास जी उसे खुदवा कर फिर से जलाशय बनवाना चाहते थे। बस यही वह कार्य था जिसे पूरा करने के लिये गुरु अमरदास जी ने अपने परम आज्ञाकारी शिष्य रामदास जी से कहा था गुरुजी ने अपने योग्य शिष्य को एक बार वह स्थान दिखा भी दिया था। उस जंगल की वह भूमि आस-पास के गाँवों के जाट जमींदारों की सम्मिलित भूमि थी। इसलिये गुरुजी ने उस इलाके के प्रमुख-प्रमुख चौधरियों को बुलाकर उस स्थान पर जलाशय खुदवाने का अपना पवित्र संकल्प प्रकट किया। जाट इस बात को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने वह भूमि बड़ी खुशी के साथ गुरुजी को सौंप दी। जगह मिलने पर सम्वत् १८२६ वि० में आषाढ़ के महीने में गुरु रामदास जी ने उस स्थान पर एक नगर और सरोवर की नींव डाली।

उस समय गुरु लोगों के पास साम्पतिक शक्ति बहुत ज्यादा न थी। वे अपनी आध्यात्मिक शक्ति से उपदेशों द्वारा लोगों पर प्रभाव पैदा किया करते थे। गुरु रामदासजी के उस इलाके में अनेकों हिन्दू, उनमें भी विशेषतया जाट शिष्य हो गये। इन्हीं जाट शिष्यों में एक भाई भगतू जी थे।

भगतू जी भी नाभा और फरीदकोट की तरह विराड़ वंशी जाट थे। इनके पिता का नाम ओमजी था। भगतू जी इतने ईश्वर-भक्त और गुरु-भक्त थे कि लोग उनके असली नाम को भूल गये और वे भगतू के नाम से ही मशहूर हो गये। गुरु रामदास जी इस चिन्ता में थे कि तालाब किस भांति से खुदे। उनके पास कोई साधन न था। इधर ओमजी भी कोई सम्पन्न व्यक्ति न थे किन्तु उनके अन्दर श्रद्धा थी इसलिये वह खुद तालाब खोदने में लग गये। आस-पास के गाँवों के अन्य आदमियों ने भी अवैतनिक रूप में तालाब में खुदाई करना आरम्भ कर दिया। गुरु रामदास जी ओमजी से बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे एक प्रतापी पुत्र होगा। दैवयोग से यही हुआ। ओमजी के सुपुत्र भगतू जी के नाम से आज सारा पंजाब परिचित है।

गुरु रामदास जी के देहावसान के पश्चात् गुरु अर्जुन देव जी गद्दी पर विराजे। भगतू जी ने सिख लोगों की और गुरु जी की बहुत सेवायें कीं। अतः सिख भी उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे। भगतू जी करामाती भी पूरे होगये थे। उनके सम्बन्ध में अनेकों विचित्र बातें कही जाती हैं। जिनमें से एक गुरु हरिरायजी के समय की है। गुरु हरिराय जी ने उनसे कहा, भगतू मैं चाहता हूँ कि तुम अपना शरीर मेरे ही आगे छोड़ दो। भाई भगतू ने गुरुजी की यह बात मान ली और जालंधर जिले के

करतारपुर में जाकर पृथ्वी में समा गये। कुछ समय बाद गुरु हरिराय जी जब उधर से गुजरे तो उन्होंने भगतू की समाधि के पास जाकर कहा, ऐ सिख धर्म के सच्चे अनुयायी प्रकट होकर हमें दीक्षा भगतू गुरु जी की इस बात को सुनकर समाधि में से जिन्दा निकल आये। योगियों के लिये असम्भव नहीं। गुरुजी से कुछ देर बातें करके फिर समाधि में समा गये। गुरुजी ने आशीर्वाद दिया कि तुम वशजों के घर में राज्यश्री विराजेगी।

यह भी कहा जाता है कि गुरु अर्जुनदेव जी ने उन्हें प्रेम से भाई की उपाधी दी थी। इस कारण उनका खान्दान भाई के नाम से भी प्रसिद्ध है। भाई भगतू जी के दो बेटे हुए। जीवनसिंह और गोरासिंह उनके नाम रखे गये किन्तु जीवनसिंह सत लोगों की बड़े प्रेम से सेवा करते थे इसलिये लोग उन्हें संतदास के नाम से भी पुकारने लगे। जीवनसिंह जी की औलाद के लोग भटिंडा की ओर चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने एक इलाके को अपने कब्जे में कर लिया। गोरासिंह की सतान के लोगों ने कैथल और पूनार्ल पर अपना आधिपत्य जमाया। अवसर पाकर उन्होंने अपने लिये राजा की उपाधि से विभूषित किया। गोरासिंह के महासिंह, किशनसिंह, माईदास और दयालसिंह नाम के चार पुत्र उत्पन्न हुए। जिनमें महासिंह और किशनसिंह की सतान के लोग भी भटिंडा की ओर चले गये। माईदास निरसंतान मर गये। भाई दयालसिंह के छ पुत्र उत्पन्न हुए। सुक्खासिंह, धनसिंह, गुरुदाससिंह, देसूसिंह, बुद्धासिंह और बख्तसिंह नाम रक्खे गये। सुक्खासिंह के दो पुत्र हुए विसावासिंह और गुरुदत्तसिंह। धनसिंह के कर्मसिंह और चढ़तसिंह नाम के पुत्र हुए। देसूसिंह के लालसिंह, सुजानसिंह और बख्तसिंह के दालसिंह नाम का पुत्र हुआ, बुद्धासिंह जी नि.सतान रहे।

कैथल पर अधिकार देसूसिंह की संतान का था। लालसिंह उनका बड़ा पुत्र कैथल का राजा बन गया था। कैथल राज्य की आमदनी चार लाख सालाना की थी। सुक्खासिंह के पुत्र विसावासिंह के पास भी बीस गाम थे। राजा लालसिंह जी के दो पुत्र हुए, उदयसिंह और प्रतापसिंह ये दोनों ही निःसंतान मर गये। सवत् १८०३ वि० में राजा लालसिंह जी का स्वर्गवास हो गया। इस समय तक भारत के नेपोलियन महाराजा रणजीतसिंह जी का स्वर्गवास हो चुका था और लाहौर के राज्य सिंहासन पर एक आज तो दूसरा कल आ जा रहे थे। रानी महतावकौर जो कि उदैसिंह की रानी थी, उदैसिंह के बाद गद्दी की मालिक हुई। रानी महताव कौर स्वाभिमानिनी और वीर प्रकृति की थी, अंग्रेजों से लड़ बैठीं। अंग्रेजों की शक्ति के मुकाबले वेचारी क्या कर सकती थीं। हार निश्चित थी। सेना तितर-बितर हो गई। फिर भी आपके दिल मे आशा थी। अत. आप मैदान भागीं और सेना संचय करने में लग पडीं। अग्रेजी सेना ने आपको गिरफ्तार कर लिया और आपका राज्य जब्त कर लिया गया। राजा उदैसिंह ने अपने चचेरे भाई विसावासिंह जी को दत्तक बना लिया था। सरकार ने उसको चौबीस हजार सालाना का इलाका छोड़ दिया और रानी साहिबा को बीस हजार सालाना की पेंशन कर दी। इसी बीस हजार में से उन्हें अपने भानजे चूहड़सिंह को भी खर्च देना पड़ता था। पोदा नाम के गाव में उदैसिंह जी ने अपने प्रवास के लिए एक कोठी बनवाई थी। सरकार ने महारानी महतावकौर को उसी कोठी में रहने के लिए आज्ञा दी। बाद के समय मे यह स्थान भी इलाका अंग्रेजी मे ले लिया गया। विसावासिंह और उसके पुत्र अरनौली मे रहने लगे। सगतसिंह और उनकी संतान के लोग इलाका सिहूवाल के अधिकारी रहे। कैथल एक अच्छा राज्य था और उसकी निज की टकसाल भी थी। सरकार ने कैथली रुपये की कीमत ।॥−) स्थिर की थी।

बीसवाँ अध्याय

रियासत जीन्द

पटियाला नाभा और जीन्द सब एक ही फुलकियाँ वंश की रियासते है। चौधरी फूल के पुत्र तिलोकसिंह के दो पुत्र थे। गुरदित्तसिंह और सुखचैनसिंह। गुरदित्तसिंह के वंशज नाभा के और सुखचैन सिंह के वंशज जीन्द राज्य के संस्थापक व अधिकारी हुए। इन्हीं की एक शाख वडरूखा व वाजेदपुर की मालिक हुईं।

संवत् १८०८ वि. से चौधरी सुखचैनसिंह का स्वर्गवास हो गया। उसने अपनी जिंदगी मे ही अपने इलाके को अपने तीनों पुत्रों मे बाँट दिया था। आलमसिंह को पिंड वाली बुलाकीसिंह को पिंड सुखचैन और गजपतिसिंह को फूल दिया। खुद गजपतिसिंह के साथ ही रहता था। लगभग ६० गाँवों का मालगुजार वह बादशाह की ओर से स्वीकृत हो चुका था।

चौधरी सुखचैनसिंह का बड़ा लडका आजमसिंह बड़ा जवाँमर्द आदमी था दहशत उसको छू तक नहीं गई थी वह लड़ाइयों मे शाही सेनाओं में टक्कर लेने लग गया था। सरहिंद की विजय के बाद इसने बहुत सारे खाली पड़े हुए इलाकों पर कब्जा कर लिया था। जिन दिनों यह सरहिंद की लडाइयों मे था इसके छोटे भाई के स्थान फूल गाँव पर महाराजा नाभा ने अधिकार कर लिया क्योंकि इसकी माँ अकेले होने के कारण गजपतिसिंह को लेकर अपने मायके चली गई थीं। संवत् १८२१ वि० मे अचानक घोड़े से गिर पड़ने के कारण आलमसिंह की मृत्यु हो गई। आलमसिंह ने अपने पीछे कोई संतान नहीं छोड़ी थी। इससे इनकी सरदारनी ने अपने देवर गजपतिसिंह के साथ अपना नाता (सम्बन्ध) कर लिया। इस तरह गजपतिसिंह को राज और रानी दोनों ही मिल गये। और बालीयावाली से जितना भी इलाका आलमसिंह जी का लगता था। सब के मालिक हो गये।

गजपतिसिंह भी अपने भाई के समान बहादुर थे उन्होंने भी रोहतक पानीपत तक धावा किया और बहुत सारा धन लूट कर लाये।

गजपतिसिंह जी ने कब्जे मे किये हुए इलाके का खिराज दिल्ली के बादशाह को देना बराबर जारी रक्खा किन्तु संवत् १८२४ मे किन्हीं कारणों से खिराज न जा सका। कुछ पहला भी बाकी था। इस अपराध में वजीर नजीबखाँ ने इनपर चढ़ाई कर दी और गिरफ्तार करके देहली ले गया किन्तु बादशाह मुहम्मद शाह इनकी बुद्धिमानी और निर्भीक बातों से बड़ा प्रभावित हुआ। उसने इनके पठन-

पाठन का भी प्रबन्ध कर दिया। बादशाह ने इन्हें वापिस इलाके में भेज दिया। कहा जाता है खिराज के एवज में चुकने तक के समय तक के लिए ये अपने लड़के भूपसिंह को दिल्ली छोड़ आये थे। कुछ ही दिनों बाद खिराज का रुपया भेज दिया और भूपसिंह को वापस बुला लिया।

संवत् १८२७ वि० में दिल्ली के नये बादशाह शाह आलम ने उन्हें राजा का खिताब और मरातिब भेजा।

संवत् १८३२ वि० में गजपतिसिंह ने संगरूर पर भी जोकि नाभे के अधिकार में था—कब्जा कर लिया। इस कस्बे पर देर से इनका मन था क्योंकि वह बड़रूखा के पास ही था। गजपतिसिंह ने अपने नाम का सिक्का भी चला दिया।

इन्होंने अपनी भाभी से नाता किया था उससे एक लड़की पैदा हुई। पजाब के रईसों की तरह और भी एक विवाह कर लिया। जिससे तीन लड़के और एक लड़की पैदा हुए। लड़कों का नाम मेहरसिंह, बाघ सिंह और भूपसिंह थे। लड़की का नाम राजकौर था। यह वही राजकौर थी जो सुकरचकिया मिसल के बहादुर सरदार महासिंह जी से ब्याही गई थीं और जिनसे कि महाराजा 'शेरे पंजाब' रणजीतसिंह पैदा हुए थे।

खिराज की टालमटूल देखकर बादशाहकी आज्ञा से रहीमखाँ हाँसी के हाकिम ने संवत् १८२६वि० मे राजा गजपतिसिंह जी पर चढ़ाई कर दी। राजा गजपतिसिंह बड़े चतुर थे। उन्होंने पटियाला और कैथल सभी से मेल बना रखा था। अतः सभी ने उन्हे सहायता दी। इस लड़ाई में रहीमखाँ की हार ही नहीं हुई अपितु खुद भी लड़ाई में मारा गया। इसके कुछ समय बाद राजा गजपतिसिंह जी ने पटियाला और अपनी संयुक्त सेना लेकर रोहतक पर चढ़ाई कर दी। नजीबुद्दौला का लड़का जाब्ताखाँ और गुलाम कादिर ने आकर मुकाबिला किया। दोनों ओर से डट कर लड़ाई हुई अंत में सुलह हो गई। फिर भी इस लड़ाई से पटियाला और जीन्द दोनों को लाभ रहा। जीन्द को गुहाने का कुछ इलाका मिल गया। पटियाला को रोहतक, हिसार में कुछ गाँव मिल गये।

समय की आवश्यकता के अनुसार राजा गजपतिसिंह ने जीन्द में पक्का गढ़ बनवाने और अच्छे २ महल तिवारे बनवाने का भी आयोजन किया और वे अपने इस काम में सफल हुए।

राजा गजपतिसिंह जी में एक गुण यह भी था। वे अपने पड़ोसी और शक्तिशाली पटियाला राज्य से सदैव मेल रखते थे। उन्होंने पटियाला के साथ लड़ाइयों मे भाग लिया। उसके आन्तरिक झगड़ों को सुलझाने और दबाने में भी सहयोग दिया। पटियाला के लिये वे सदैव उसी भांति शुभचिन्तक रहे जिस भांति कि महाराजा रणजीतसिंह जी के लिये कपूर्थला के राजा साहिब फतहसिंह शुभचिन्तक रहे थे और हर काम मे मदद और सलाह मशविरा भी देते रहते थे।

महाराज गजपतिसिंह ने अपने बड़े लड़के मोहरसिंह को सफेदूँ का इलाक दे रखा था। वह वहीं पर संवत् १८३७ में स्वर्गवास कर गया। उसके पीछे उसका एक मात्र लड़का हरीसिंह भी अपने बाप से दो वर्ष बाद ही कोठे से गिर कर मर गया। हरीसिंह की एक लड़की चन्द्रकौर थी। जिसका विवाह थानेसर के सरदार बहगासिंह के पुत्र फतहसिंह के साथ हुआ था। वह भी बेचारी विधवा हो गई। और विधवा होने पर बड़ी बुद्धिमानी के साथ अपने राज्य को संभालती रही। पजाब राज्य हरण के बाद अंग्रेजों ने लावारसी मे इस इलाके को अपने कब्जे मे कर लिया। इसी प्रकार हरीसिंहजी की सिंहनी दयाकौर जोकि अपने बाप दयासिंहजी के इलाके बलेवाल की स्वामिनी थीं उनका भी इलाका सरकार ने जब्त कर लिया।

राजा गजपतिसिंह जी ने जहाँ पटियाला के साथ मेल निभाया वहाँ नाभा के साथ शत्रुता भी पूरी निवाही थी। नाभे के राजा हमीरसिंह जी को जिसके नौकरों ने राजकौर की शादी के समय घास काटने पर मिहमानों का अपमान किया था। बदला लेने के लिये अपने बीमार होने का बहाना करके अपने यहाँ बुलाकर कैद कर लिया था। यह काम इनका ऐसा था। जिसकी किसी ने भी प्रशंसा नहीं की। हमीर-सिंह को कैद करने के बाद आपने उसके इलाके पर चढ़ाई भी की। किन्तु उसकी रानी ने बराबर चार महीने तक सामना किया। संगर भी उसी समय कब्जे मे किया गया था।

मेरठ की ओर जब महाराजा पटियाला ने चढ़ाई की तो आपने उसमे पटियाला की सहायता की। मिर्जा सफीबेग के साथ लड़ाई हुई। विजय सिखों के साथ न रही। राजा गजपतिसिंह को गिरफ्तार भी होना पड़ा। किन्तु बाद मे समझौता हो जाने पर छोड़ दिये गये।

आपने अपने समय मे दर्जनों लड़ाइयाँ लड़ीं और बड़ी बहादुरी के साथ जीवन बिताया। अत मे जीवन लीला भी लड़ाई के समय ही बुखार आजाने से समाप्त हुई। संवत १८४६मे आपका स्वर्गवास हो गया। चारों ओर आपका शोक मनाया गया।

आपकी साहसिकता और बुद्धिमानी का ही प्रभाव था। कि आपके समय मे जीन्द जैसे राज्य की स्थापना और वृद्धि काफी तौर मे हुई।

राजा गजपतिसिंह जी के बाद उनकी रियासत दो हिस्सो मे बट गई। भूपसिंह जी को बडरूखाँ का इलाका मिला और भागसिह को इलाका जीन्द व सफेदूं का। चूंकि भागसिह भूपसिंह से बड़े थे। अत. राज्य का अधिक भाग और राजा का खिताब उन्हे ही मिला। उनकी उम्र इस समय २१ वर्ष की थी।

राजा भागसिह

राजा भागसिंह जी का इतिहास पटियाले से बहुत ताल्लुक रखता है। क्योंकि वे अधिकांश लड़ाइयों में पटियाला के मददगार रहे थे। संवत १८४३ मे गोहाना और खरदोदा उन्होंने बादशाह शाह-आलम से बतौर जागीर के हासिल किये थे। सवत् १८५१ वि० मे जो फौज बीबी साहिबकौर के अधिपत्य मे अम्बाराव व लच्मनराव मरहट्टों से लड़ने के लिये राजगढ़ पर गई थी। उसमे राजा भागसिंह शामिल थे। उस समय सारी सिख सेना का नायकत्व राजा गुलाबसिंह जी कर रहे थे। इसमे भागसिंह जी ने बड़ी बहादुरी दिखाई और विजय सिखों की ही हुई। दूसरे साल कर्नाल राजा के हाथ से निकल गया। जिसे मरहट्टों ने विजय करके टामसन साहब को सौप दिया। कारण कि सिखों को पीछे हटाने में टामसन ने मरहटों को खूब मदद दी थी। जार्ज टामसन ने अगले वर्ष जीन्द और सफेदूं पर भी हमला किया। किन्तु यहाँ भागसिंह ने बड़ी बहादुरी के साथ मरहटों को भगा दिया। टामसन पर जिस समय सिखों ने संयुक्त धावा किया था। उसमे भी राजा भागसिंह जी मौजूद थे और इस लड़ाई मे सिखों ने टामसन के ऐसे लत्ते लिये कि उसे हाँसी से भी भागकर अंग्रेजी इलाके में दम लेने की फुरसत मिली।

संवत् १८६२ मे राजा भागसिंह ने कैथल के राजा लालसिंह को साथ लेकर लार्डलेक की मदद मरहटों को पजाब से भगाने के लिये की। सहारनपुर के इलाके की मरहटों से रक्षा भी की। लगभग ४ महीने इन्होंने लार्डलेक का साथ दिया। फिर लार्डलेक के आदेशानुसार राजा भागसिंह जी को जोकि इनके भानजे होते थे इस बात के लिये तयार किया कि मराठों की अपेक्षा अंग्रेज और महाराजा रणजीतसिंह जी मे सन्धि कराने के उपलक्ष मे अंग्रेजों ने भागसिंहजी को इलाका बुवाना जो जिला पानीपत की तरफ है मिला।

राजा भागसिंह जी अपनी बुद्धिमानी से दोनों तरफ से हाथ साफ कर रहे थे। पटियाला और नाभा के तथा राजा रानी पटियाला के झगड़ों को सुलझाने के लिये जब महाराज रणजीतसिंहजी पटियाला आये तो भागसिंह जी भी शामिल हुये और अपने भानजे से उन्होंने लुधियाना में २४ गाँव प्राप्त किये जिनकी आमदनी १४३८०) सालना थी। जंडियाले २४ गॉव ४३७०) रुपये सालाना की आमदनी के और जगरांव के २ गॉव २०००) सालना आमद के तथा कोट के २ गॉव २३७०) वार्षिक आय वाले भी प्राप्त किये। दूसरे वर्ष महाराजा रणजीतसिंह ने जो गॉव रामपुर वाले गूजरसिंह से छीने थे और २७ गाँव धर्मसिंह के बेटे से लिये थे वे भी भागसिंह जी को दे दिये। जिनकी आमदनी १६२५५) सालाना की थी। इस प्रकार लगभग पचास हजार सालाना का इलाका बढ़ा लिया।

संवत् १८६४ वि० में जब राज्य की पैमायश लेफ्टिनेंट एफ़ व्हायफ ने की तो उनमें आपने सब प्रकार मदद दी कोई विघ्न नहीं डाला।

अगले वर्ष आपने हरिद्वार जाने की तयारी की और अपने सरदार महॉसिंह लाम्बा और बिशनसिंह को देहली में इस बात की इजाजत लेने के लिये भेजा। महाराज के लिये हरिद्वार में निहायत उमदा प्रबन्ध किया गया था। ३०० आदमी उनकी खिद्मत के ही लिये नियुक्त किये गये थे। इसी अवसर पर महाराज को किसी ने इस आशय का समाचार दिया कि महासिंह बाघसिंह उनको धोखा दे रहे हैं। और अपने समस्त रुपयों को देहली में हुण्डियों और अंग्रेजी नोटों में बदलवा रहे हैं। इनकी यह सूचना भी विश्वीसनीय नहीं थी कि हरिद्वार जाने में महाराज को कोई खटका नहीं है।

महाराजा साहिब को यह भी राय दी गई कि इतनी सारी सेना के साथ यात्रा न की जाय। यद्यपि यह खबर भ्रम ही पैदा करने वाली थी। किन्तु अंशतः सचाई भी रखती थी। दो वर्ष के बाद ही महासिंह का बिना आज्ञा लिये जीन्द से बनारस चला जाना भेद से खाली नहीं था।

राजा भागसिंह जी हरिद्वार का मेला देखने गये और फिर वहीं से सीधे लाहौर को चले गये। जहॉ वह अपने भानजे महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ ही ठहरे। संवत् १८६५ वि० में महाराजा रणजीतसिंह जी सतलज के पार आये उस समय भी आप उनके साथ ही रहे। इसी वर्ष के आरम्भ में लालसिंह और पटियाला की फौजों ने घोघराना पर हमला किया। एक अर्से तक लड़ाई होती रही। महाराजा रणजीतसिंह जी ने बीच में पड़कर लड़ाई को खतम कर दिया। किन्तु इस तरह भी किले के मालिक गूजरसिंह को तो हानि ही उठानी पड़ी उसके लिये तो सांपराज और नागराज में कोई फर्क नहीं रहा। महाराजा रणजीतसिंह ने किले को खाली कर लिया और अपने एक प्रेमी सरदार कर्मसिंह के सुपुर्द कर दिया।

कर्मसिंह ने अपने मामा राजा भागसिंह को दिये गये इलाके भी मांगे कहा, वह भी उसेही दे दिये जॉय किन्तु महाराजा रणजीतसिंह दिये हुए इलाकों को वापिस करना उचित नहीं समझते थे। इस तरह निराश होने पर कर्मसिंह ने भागसिंह जी के साथ कई बार खटपट भी की। लड़ाई और खून खराबी हुई।

महाराजा रणजीतसिंह जी पंजाब के रहे सहे रईसों से मनोइच्छित भेंट चाहे जब तलब करने की शक्ति रखते थे। उन्होंने सवत् १८६५ वि० में मालेरकोटला से एक लाख रुपया तलब किये। उसने २७०००) तो दे दिये। बाकी के लिये नाभा, जीन्द, कैथल आदि को जामिन बना दिया। आगे इन सब की प्रार्थना पर शेष रकम माफ कर दी।

महाराजा रणजीतसिंह जी-की इस सख्ती से ये सभी सिख राजे लौट गये और इन्होंने भीतर ही

मदद अपनी रक्षा के लिये अंग्रेजों से लिखा-पढ़ी आरम्भ कर दी। अंत में स्पष्टतः अंग्रेजों ने यह इच्छा जाहिर की कि जमुना तरफ में हमारे अस्तित्व को बनाये रखें। भागसिंह जी इस मामले में अगुआ रहे. उन्होंने सरकार पर इस बात को भी प्रकट कर दिया कि हम लोग नीति के तौर पर रणजीत-सिंह से मिलते-जुलते हैं वरना हमारा सच्चा सम्बन्ध तो सरकार ही के साथ है।

भागसिंह अपनी मित्रता की गांठ को और भी मजबूत करने के लिये देहली को भी रवाना हुये किन्तु मार्ग में ही अक्टरलोनी की फौजें जमना की ओर आती हुईं मिल गईं जिनके साथ भागसिंह जी. को लौटना आवश्यक सा हो गया। इसी वर्ष की १८ वीं फरवरी को फौजें लुधियाना पहुंच गईं। यहाँ पर दो वर्ष से जींद का अधिकार था। सतलज सिंध के राज्य में छावनी कायम करने में अंग्रेजों को हिचक भी क्यों होती। भागसिंह भी मित्रता को मजबूत करने के लिये तैयार हो रहे किन्तु छावनी पड़ जाने के बाद और लुधियाना के अंग्रेज राज्य में शामिल किये जाने के बाद भागसिंह जी ने इसके बदले में पानीपत करनाल के इलाके मांगे। अक्टरलोनी ने भी इसका समर्थन कर दिया किन्तु गवर्नर जनरल ने यह दरख्वास्त ना मंजूर कर दी। दरख्वास्त नामंजूर करते समय कहा गया था कि आवश्यकता के न रहने पर छावनी लुधियाने से हटा ली जायगी। इस प्रकार एक परगना इनके के हाथ से निकल जाने के कारण भाग-सिंह को भारी मानसिक कष्ट हुआ।

राजा भागसिंह के तीन स्त्रियाँ थीं। बड़ी से फतहसिंह जी पैदा हुए थे और छोटियों से क्रमशः प्रताप-सिंह और महताबसिंह। बीच की रानी पर अधिक प्यार होने के कारण राजा भागसिंह जी चाहते थे कि राज प्रतापसिंह को ही मिले। संवत् १८७० वि० में राजा भागसिंह पर लकवे का आघात हुआ। आधा शरीर करीब बेकार हो गया। कहा जाता है कि आपको शराब पीने की भारी आदत थी। उससे अपना पिंड कई बार इरादा करने पर भी नहीं छुड़ा सके। जब जिन्दगी की उन्हें कोई आशा नहीं रही तो पोलिटिकल एजेन्ट के पास सरकार से मंजूर करा देने के लिये एक वसीयत भेजी। जिसमें राजगद्दी बीच के लड़के प्रतापसिंह को देने का जिक्र था और फतहसिंह को संगरूर और बसियान की जागीर देने की बात लिखी गई थी। गवर्नर जनरल ने इस वसीयत को भारतीय रस्म रिवाज के खिलाफ बताकर ना मंजूर कर दिया और सम्बन्धित अफसरों को सूचना दे दी कि ठीक समय पर जाकर फतहसिंह को गद्दी पर बिठा दिया जाय। भागसिंह जी को इससे भी बड़ी मानसिक वेदना हुई।

किन्तु इस समय राज्य का कोई उचित प्रबन्ध नहीं था। राजा साहब किसी काम को नहीं सम्भाल सकते थे। फतहसिंह से वे और भी चिढ़ गये। प्रतापसिंह को प्रबन्ध सौंपने में वे अंग्रेजों के डर से डरते थे। फतहसिंह की माताजी से भी उन्हें कोई प्रेम न था। आखिरकार वजीर और दूसरे लोगों की यह सलाह हुई कि महताबसिंह की माँ रानी सोभराई को राज्य का प्रबन्ध सौंप दिया जाय। सर्व सम्मति से उन्हें राज्य की बागडोर सौंप दी गई। उन्होंने भी वचन दिया कि मैं जो भी कुछ करूँगी इंसाफ के साथ और निष्पक्ष होकर करूँगी।

रानी महताबकौर के हाथ प्रबन्ध आते ही प्रतापसिंह जी को अब पूरा निश्चय हो गया कि अब मेरे हाथ राज्य नहीं पड़ने का अतः उन्होंने षड्यंत्र रचना शुरू किया। रानी सोभराई ने सरकार को लिखकर भेजा कि प्रतापसिंह की वजह से हमारी जान खतरे में है वह खुल्लम-खुल्ला बगावत करना चाहता है। सरकार की ओर से प्रतापसिंह को चेतावनी भी दी गई कि इस प्रकार उसके हाथ से वह सौभाग्य भी निकल जायगा जो उसके लिये उचित प्रबन्ध करके सरकार बख्शना चाहती है।

सरकार की इस चेतावनी का प्रतापसिंह पर कोई असर नहीं पड़ा और उन्होंने संवत १८७१ वि के आषाढ़ महीने मे हमला करके रानी समराई और उनके मुंशी जैशिव तथा और भी कितने ही व्यक्तियों को मार कर जींद पर कब्जा कर लिया। रेजीडेण्ट को ज्योंही यह समाचार मिला। उन्हे उसने दिल्ली को खबर दी तथा करनाल और हाँसी के फौजी अफसरों को हुक्म की प्रतीक्षा मे फौरन तय्यार रहने की आज्ञा दी। सरकार ने प्रतापसिंह को गिरफ्तार करके दिल्ली भेजने और राज्य का प्रबन्ध फतहसिंह जी के हाथ सौंप देने के फर्मान जारी किये। अंग्रेजी फौजे जींद राज्य में घुस पड़ीं। जब प्रतापसिंह को यह खबर लगी तो उसका दिमाग ठंडा हो गया और वह जींद को छोड़ कर किला कालानवाली जो भटिंडे की ओर था भाग गया किन्तु जब वहाँ भी अंग्रेजी फौज के जत्थे जा पहुँचे तो सारा माल मता लेकर और अपने चालीस साथियो समेत भागता फिरता फूलासिंह अकाली के साथ जा मिला। फूलासिंह वह व्यक्ति था जो महाराजा रणजीतसिंह जी से झगड़ा करके लाहौर छोड़ कर चला गया था और नन्दपुर माखूवाल पर कब्जा करके इधर-उधर की लूट पर अपना गुजर कर रहा था। उसके पास ६०० सवार और दो तोपें थीं। प्रताप सिंह इसके पास दो महीने तक रहा। फूलासिंह बड़ा निर्भीक जवान था उसके जोड़ के पंजाब में बहुत ही थोडे आदमी थे। वह प्रतापसिंह की मदद भी करना चाहता था। यह समाचार पा पंजाब के रेजीडेंट ने नाभा और मालेरकोटला के रईसों को फूलासिंह पर हमला करने की इजाजत दी प्रतापसिंह किले मे अकेला घेर लिया गया। वह वहाँ से भी भागकर लाहौर पहुंचा। इस प्रकार के हत्या कारी काम करने के कारण महाराजा रणजीतसिंह ने भी उसे शरण नहीं दी और वह बेचारा पकडा जाकर दिल्ली भेजा गया। जहाँ नजर बंदी मे ही संवत् १८७३ मे उसकी मृत्यु हो गई। उधर फूलासिंह भी निहालसिंह अटारी वालों के हाथ पराजित किया जा चुका था।

इधर कुछ ही महीने पहले महताबसिंह का भी देहान्त हो चुका था। प्रतापसिंह के दो स्त्रियां थीं किन्तु सन्तान किसी के भी न थी। राज्य का प्रबन्ध अपने बाप के नाम पर कुँवर फतहसिंह ही चला रहे थे।

सवत् १८७६ वि० मे राजा भगतसिंह जी की भी मृत्यु हो गई। कहना न होगा कि अंतिम समय मे उन्हे एक से एक बढ़कर मानसिक कष्ट उठाने पडे थे। दो बेटों की मृत्यु से और राज्य मे होने वाले रक्तपात से उन्हे निश्चय ही बड़ा दुख हुआ था।

राजा भागसिंह जी के अपने परिवार एव युवराज फतहसिंह जी के सिवा नीचे लिखे व्यक्ति थे उनकी तीन रानियाँ जिनमे एक बड़ी पिण्डी के सरदार बख्शासिंह की पुत्री दयाकौर। फतहसिंह जी इन्हीं से पैदा हुये थे दूसरी पाखरसिंह जोधपुर वालों की पुत्री सदाकौर। प्रतापसिंह जी की आपही माँ थीं किन्तु राजा साहब से पहले ही मर गई थीं। तीसरी समराई महताबसिंह जी की मां थीं। राजा साहब के प्यारे पुत्र प्रतापसिंह ने दो विवाह किये थे (१) कृपालसिंह शामगढ़ वाले की पुत्री भागभरी के साथ (२) सुन्दरसिंह काकड़ फलोर वालों की लड़की रतनकौर के साथ। तीसरे लड़के महताबसिंह के भी दो स्त्रिया थीं। (१) जलकौर राजा बल्लभगढ़ की राजकुमारी (२) मुदकी वाले सरदार की लड़की रामकौर। युवराज फतहसिंह के भी दो रानियाँ थीं (१) रानी खेमकौर सरदार दीदारसिंह की लड़की (२) बहमणा के सरदार खुशाल सिंह की लड़की रानी साहबकौर से एक लड़का उत्पन्न हुआ। जिसका नाम सगतसिंह रक्खा गया। बड़ी रानी के कोई सतान न थी। प्रतापसिंह और महताबसिंह की रानियों से भी कोई सन्तान नहीं हुई थी।

इस प्रकार का अपना कुटुम्ब छोड़कर राजा भागसिंह जी शोक और चिन्ताओं से तप्त हृदय के

लेकर सवत् १८७६ में इस संसार को छोड गये।

राजा फतेसिंह जी ने वडी बुद्धिमानी से अपनी रियासत का काम संभाला किन्तु खेद है कि वह अपने पिता के वाद अधिक दिनों तक जिन्दा न रह सके। इन्होंने अपनी जिन्दगी में दो वार लाहौर की यात्रा भी की। महाराजा रणजीतसिंह जी ने स्वागत सत्कार भी काफी किया था।

राजा फतहसिंह जी मुदकी वाले सरदारों ने सात हजार की आमदनी के सानावाल, तलवंडी और इलवारा नाम के गॉव आपको दिये थे। जिनकी सनद नाभे में रक्खी वताई जाती है। आपके पिता के तीन वर्ष पीछे सम्वत् १८८९ में ३२ वर्ष की अवस्था में आपका स्वर्गवास हो गया इस समय आपने अपने पीछे एक राजकुमार संगतसिंह राज्य के उत्तराधिकारी छोड़े जिनका कि संवत् १८६७ में जन्म हुआ था।

अपने पिता के देहावसान के वाद आप उनके उत्तराधिकारी वने। कुलरीति के अनुसार गद्दी नशीनी की रस्म जीन्द में अदा हुई। संवत् १८८७ वि० में आपका विवाह शाहावाद के रईस सरदार रणजीतसिंह जी को पुत्री शोभाकौर के साथ वड़ी धूम से हुआ।

राजा संगतसिंह जी महाराज संगतसिंह जी तो नावालिग थे ही किन्तु अंग्रेज सरकार ने भी राज्य प्रवन्ध की कोई उचित व्यवस्था नहीं की किसी के प्रति खास जिम्मेवारी न होने के कारण सभी अधिकारी और कर्मचारी मन मौज हो जाते हैं। जींद में भी यही हाल हुआ। दिन पर दिन प्रवन्ध सम्वन्धी ढिलाई से प्रजा में असन्तोष वढने लगा।

संवत् १८८३ वि० में राजा संगतसिंह जी महाराजा रणजीतसिंह जी की मुलाकात के लिये लाहौर गये और होली का त्यौहार वहीं मनाया। महाराजा रणजीतसिंह जी ने अपने सरदारों और अफसरों से उन्हे भेटें भी दिलाईं। इसके वाद महाराजा रणजीतसिंह जी ज्वालामुखी की यात्रा के लिये गये और राजा साहव को भी ले गये जो उनके साथ दीनानगर तक गये और फिर वहाँ से महाराज के साथ ही लौट आये।

संवत् १८८४ वि० में राजा साहव संगतसिंह ने फिर महाराजा रणजीतसिंह जी से मुलाकात करने के लिये लाहौर की ओर कूच किया। वास्तव में वात यह थी कि राजा साहव महाराजा से विशेष प्रेम करते थे। महाराज भी उन्हे कुछ न कुछ देते ही रहते थे। इस समय भी उन्होंने मौजा अनयाना को सरदार रामसिंह से छीनकर उन्हे दे दिया। राजा साहव ने अपना फौजी जत्था लेजाकर उस पर अपना दखल जमा दिया। सरदार रामसिंह ने एजेन्ट गवर्नर से लिखा पढ़ी की। सरकार ने जोकि राजा संगतसिंह से इस वात पर चिढ़ती भी थी कि वे महाराजा रणजीतसिंह से इतना घनिष्ट सम्वन्ध रखते हैं। राजा साहव से जवाव तलव किया कि उन्होंने रामसिंह के गॉव पर कब्जा क्यों कर लिया है। राजा साहव ने साफ उत्तर दिया कि यह गॉव और इसके अलावा दो गॉव और भी मुझे महाराजा रणजीतसिंह जी ने वतौर जागीर के दिये हैं जिनकी मेरे पास सनद मौजूद है। इस जवाव के वाद चाहिये तो यह था कि अग्रेज सरकार महाराजा रणजीतसिंह जी से पूछती कि उन्होंने यह अनाधिकार चेष्टा क्यों की है? किन्तु भला उनसे पूछने की हिम्मत थी। राजा साहव से ही कहा "चूँकि अनियाना गाँव पर उनका अधिकार न था अत. वह गॉव आप नहीं रख सकेंगे। राजा साहव ने गॉव अनियाना रामसिंह को लौटा दिया। गवर्नमेंट इतने से भी चुप न हुई उसने एक एलान जारी किया कि विना सरकार की इजाजत के वे किसी भी राजा या सरकार के साथ साधारण रस्म रिवाज की अदायगी के वह कोई गहरा सम्वन्ध

स्थापित न करे। राजा साहब मे चाहे अन्य कई अवगुण थे किन्तु उनके अन्दर यह गुण अवश्य था कि वे सहज ही डर नहीं जाते थे। इसलिये उन्होंने महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ जो दोस्ताना किया था उसे तोड़ा नहीं। वे बराबर उनके साथ चिट्ठी पत्री करते रहते थे। उनके कुछ गावों का ठेका लेने का भी विचार कर रहे थे ताकि सबन्ध शिथिल न हो किन्तु अंग्रेजों को यह भी न भाया।

राजा साहिब राजधानी से दूर गॉव बसिया मे रहते थे। कुछ चालचलन भी उन्होंने बिगाड़ लिया था। असल मे स्वतन्त्र किन्तु छोटी उम्र के राजाओं को उनके सरदार और मुसाहिब अपने स्वार्थ के कारण कुमार्ग पर डाल ही देते हैं। जब राजा रईस ऐश आराम में गर्क हो जाते हैं तब वे अपना उल्लू सीधा करते है। जीन्द मे यही बात हो रही थी। एक ओर राज कर्मचारी प्रजा को तबाह कर रहे थे दूसरी ओर डाकुओ के दल उठ खड़े हुए थे। विवश होकर प्रजा को भी एजन्ट के पास कुप्रबंध की शिकायतें करनी पड़ीं। इससे सरकार को और भी कई एक हथियार हाथ लग गये। संवत् १८६० वि० म लेफ्टीनेण्ट एलबर्ट को सरकार ने डाकुओं का दमन करने के लिये जींद के इलाके मे भेजा। डाकू इतने उद्दड हो चुके थे कि उन्होंने एलबर्ट के सैनिको पर हमला कर दिया। जिससे कई सिपाही घायल हुए और पलटन को काफी नुकसान उठाना पड़ा। राजा साहिब ने माली नुकसान को तो पूरा कर दिया फिर भी डाकुओं को दबाने मे कामयाबी हासिल न हो सकी।

सवत् १८७१ मे महाराजा रणजीतसिंह ने राजा साहिब को लाहौर मे एक जरूरी काम से बुलाया। सरकार को यह पता चला तो उन्हे मौखिक धमकी दी गई कि वे यदि लाहौर गये तो उनके हक मे अच्छा न होगा। इससे राजा साहिब के दिल पर बडी चोट लगी। राजा साहब चलने की तयारी करने लगे, हालाकि पहले से ही गवर्नमेंट उन पर इल्जाम लगा रही थी कि वे महाराजा रणजीतसिंह के साथ मिलकर अंग्रेजों के खिलाफ कोई षडयन्त्र रच रहे हैं।

जब कि लाहौर जाने की राजा साहब तयारी कर रहे थे अचानक बीमार हो गये। हालां कि रात्रि के समय वे मजे मे शराब पीकर सोये थे किन्तु प्रात' ही उनकी तबीयत खराब होगई। बराबर दशा गिरती ही गई। उनके साथियों ने उन्हे सगरूर ले जाने की तयारी की पालकी मे बिठाकर थोडी ही दूर चले थे कि उनके प्राण पखेरू उड गये। इस प्रकार वह दैवात् ही और सदा के लिये महाराजा रणजीतसिंह जी के मिलने से रुक गये।

सर लेपिलग्रिफिन ने अपनी पुस्तक ‘ पजाब राजाज’ मे महाराजा सगतसिंह जी का वर्णन करते हुए लिखा है कि उनके बाप ने खजाने मे बहुत सारा रुपया छोड़ा था किंतु संगतसिंह ने सबको पानी की तरह बहा दिया और उस खर्च का बहुत सारा भाग लाहौर की ओर को जाने वाली यात्राओं मे हुआ। लाहौर मे वे केवल राजनैतिक कारणों से जाते थे और वह कारण अंग्रेजों के विरुद्ध ही हो सकते हैं।” हम समझते हैं ग्रिफिन का यह केवल इल्जाम है। इसमें सचाई बहुत कम है। फिजूलखर्ची कितनी उन्होंने की और उन्हे राज सभालते समय कितना खजाने मे मिला था इसके ग्रिफिन साहब ने कोई आकड़े तो दिये ही नहीं हैं। खैर यह मानते है कि उन्होंने फिजूल खर्ची की लेकिन लाहौर की यात्राओ से नुकसान हुआ यह तो सही नहीं है। लाहौर के जाने से तो उन्हें हर बार लाभ ही हुआ। महाराजा रणजीतसिंह जी ने उन्हे काफी जागीरें दीं। अपने सरदारों से भेटें भी दिलाई।

मृत्यु के समय राजा साहब की औरत केवल २३ वर्ष की थी अभी तक उसके कोई संतान भी नहीं थी। हाला कि शादी उन्होंने तीन जगह की थी। बड़ी रानी शोभा कुंवरि शाहाबाद के रईस की

लड़की थी दूसरी सरदार जीवनसिंह धारीवाल की लड़की और तीसरी सरदार दूलासिंह टिव्वा वाले की लड़की थी। राज खालसा के लेखक ज्ञानी ज्ञानसिंह ने एक चुटकी ली है कि "इन वेचारियों ने महाराज का मुँह भी न देखा था फिर संतान कहां से होती" दरअसल बात तो यह है कि अभी तो उनकी उम्र ही व्याह लायक हुई थी किन्तु स्वार्थी लोगों ने उन्हें बचपन में ही शराब और बुरी आदतों की ओर डाल दिया था। यदि राजा संगतसिंह में शराब पीने और अच्छी अच्छी स्त्रियों के साथ मुहब्बत करने की कुटेव न होती तो वे अपना नाम अपनी हिम्मत और दृढ़ता की बदौलत जरूर कर जाते।

राजा संगतसिंह जी की मृत्यु के बाद सरकार ने जीन्द का प्रबन्ध उस समय तक के लिये जब तक कि राज्य का कोई वारिस साबित न हो जाय। कोर्ट आफ वार्डस के अधीन कर दिया। भला राज्य के लिये वारिसों की क्या कमी रह सकती थी। अव्वल तो महाराजा फतहसिंह की विधवाओं ने दावा पेश किया। किन्तु उनके खिलाफ संगतसिंह की रानियों ने अपने हकदार होने का दावा पेश कर दिया। बडरूखाँ और बाजेदपुर के सरदारों ने भी जोकि राजा गजपतिसिंह के छोटे लड़के भूपसिंह के वंशजों में से थे। अपने हकदार होने के दावा किये। नाभे के तत्कालीन महाराज ने भी मौके को न चूका। नाभे का दावा तो यह कहकर नामंजूर कर दिया कि चौधरी सुखचैन के बाद ही वह तो काफी दूर अलग हो चुका है। उससे अधिक नजदीकी भी मौजूद हैं। संगतसिंह की नवयुवती स्त्रियाँ इतने बड़े राज्य का नहीं संभाल सकतीं इस आधार पर अधिकार से वंचित कर दिया गया। मुख्यत दावे सरदार सरूपसिंह जी बाजेदपुर और सरदार सुखसिंह बडरूखाँ के थे। इसलिये इनके इतिहास पर थोड़ा सा प्रकाश डालना उचित ही होगा। राजा गजपतिसिंह जी के तीसरे लड़के का नाम भूपसिंह था। राजा गजपतिसिंह के बाद भूपसिंह को बडरूखाँ और बाजेदपुर के परगने जागीर में मिले थे। उसने बड़े संतोष और बहादुरी के साथ अपने परगनों की तरक्की की। भूपसिंह जी के दो पुत्र थे कर्मसिंह और बसावासिंह। कर्मसिंह ने अपने पिता से झगड़ा करके बडरूखाँ को अपने कब्जे में कर लिया। इस पर भूपसिंह ने दूसरे फूल सरदारों की मदद लेकर बेटे को दंड दिया और उसे केवल मटमूदपुर गाँव दिया। कर्मसिंह फिर भी काबू में न रहा और उसने बाजेदपुर पर कब्जा कर लिया। किन्तु जब उसे बाजेदपुर छिनता दिखाई दिया तो वह भागकर लाहौर महाराजा रणजीतसिंह जी के पास चला गया। जब भूपसिंह जी की मृत्यु हो गई तब फूल सरदारों ने उसकी कुल जागीर दोनों बेटों कर्मसिंह और बिसावासिंह में बाँट दी। बटवारे में कर्मसिंह को बड़ा होने पर भी छोटा हिस्सा दिया। क्योंकि वह संतोष से न रहा था। पिता से भी बगावत की थी। बडरूखाँ का इलाका बसावासिंह को और बाजेदपुर कर्मसिंह को मिला। कर्मसिंह के ही लड़के का नाम सरूपसिंह था और बसावासिंह के लड़के का नाम सुखासिंह। चूँकि भूपसिंह के बड़े लड़के की औलाद होने के कारण सरूपसिंह ही जीन्द के लिये अपना दावा पेश कर सकता था। किन्तु सुखासिंह ने इस दलील पर दावा पेश किया कि कर्मसिंह को उसके बागी होने के कारण उसके पिता (भूपसिंह) ने अधिकार-च्युत कर दिया था। अत. चूंकि मेरा पिता उनकी जागीर का उचित अधिकारी था अत मैं ही जीन्द की गद्दी का अधिकारी हो सकता हूँ। सरकार अंग्रेज ने सुखासिंह का दावा खारिज कर दिया और सरूपसिंह को जीन्द का राजा बनाया।

चूंकि सरूपसिंह इस आधार पर जीन्द का राजा बना था कि मैं जीन्द के राजा गजपतिसिंह के पुत्र का पोता हूँ। अत. सरकार अंग्रेज ने भी इस आधार से लाभ उठा लिया वह यह कि राजा गजपतिसिंह के समय में जो इलाका उनके पास था। उसी पर सरूपसिंह को मालिकी मिली। बाकी का जो महाराजा

रणजीतसिंह जी की ओर से जागीरो के बतौर दिया गया था। वह उन्हे वापिस कर दिया गया और इलाका लुधियाना अपने कब्जे मे कर लिया। संवत १८६६ के अहदनामे के बाद से प्राप्त हुए सारे इलाके जीन्द के हाथ से निकल गये। सरूपसिंह जी ने इसी पर संतोष किया। अनेकों दावेदारों को हटाकर उन्हे राजा बनाया जा रहा था। यह तो उनके लिये बहुत था।

सवत् १८९४ मे गवर्नर जनरल ने राजा स्वरूपसिंह के अधिकारी होने की घोषणा जारी कर दी। और वह लिस्ट भी प्रकाशित कर दी। जिसके अनुसार उन्हे इलाका मिलने थे।

सर लेपिलग्रिफिन ने उन इलाको की तालिका जो राजा सरूपसिंह जी को मिलने मंजूर हुए थे। 'तारीख राजगान पंजाब' मे इस प्रकार दी है।

नाम परगना	ग्रामों की सख्या	मामले की रकम
जीन्द खास	१४०	१३००००)
सफेदूं	२५	४२००)
आसदा	२६	४२००)
सालोन	८	४२००)
वालांवाली	१०८	२०००)
जच्चेवाला	१	४००)
भोके	१	४००)
लहू	१	४००)
मामला	१	४००)
	३११	२६२०००)

ग्रिफिन साहब ने रकमों का ब्यौरा क्लार्क साहब की संवत् १८९२ और ९१ की रिपोर्टों के आधार पर दिया है। सालोंन के परगने के आठ गॉवों की रकम ४२००) बहुत ज्यादा मालूम होती है। वालांवाली के १०८ गॉवों की आमदनी केवल बीस हजार कुछ कम जान पड़ती है। पर भूलें रकमों मे अवश्य है। किन्तु कुल इलाका लगभग सवा दो लाख का था। यह अन्दाज सही है।

कोर्ट आफ डाईरेक्टर्स के डाइरेक्टर ने एक और सलाह दी थी वह यह कि जो इलाका न तो रणजीत सिंह जी ने दिया है और न सरकार अंग्रेज ने ही और वह चला आता है महाराज गजपतिसिंह के समय से ही उस इलाके को भी सरूपसिंह जी को दे देने मे कोई हर्ज नहीं है। किन्तु डाइरेक्टर की इस बात का कोई असर फैसले पर नहीं हुआ। और सन् १८०८ के अहदनामे से पहिले के गजपतिसिंह जी के अधिकार मे रहे इलाकों के अनुसार फहरिस्त पर चढ़ाये हुये इलाके ही सरूपसिंह के जीन्द राज्य का क्षेत्र फल रहे।

इस फैसले को सुनकर फतहसिंह की माताओ और रानियों मे सख्त नाराजगी फैली। उन्होंने कई दलीलों के साथ सरकार के फैसले को अपने साथ अन्याय बताया। किन्तु उनकी कुछ भी सुनवाई नहीं हुई।

सवत् १८९४ के वसंत में फूल खानदान के तमाम रईसों और सरकार अंग्रेज के प्रतिनिधि की उपस्थिति मे राजा स्वरूपसिंह जी का गद्दीनशीनी उत्सव हुआ और वे जीन्द राजा के अधीश्वर बन गये।

राजा स्वरूपसिह

प्रतापसिंह की रानी भी एक बहादुर औरत थी। उसने देखा कि सरकार अंग्रेज दरख्वास्त परकोई ध्यान नहीं देती है। उसने परगना, बालावाली के बहादुर लोगों को भड़का

दिया और उनकी सरदार खुद बन गई। हालांकि यह रानी का भोलापन था। वह बेचारी कर क्या सकती थी। अंग्रेजों की शक्ति के आगे उस समय उसका यह साहस धृष्टता ही कहा जा सकता था। वालानवाली का सरदार गुलाबसिंह जीन्द की फौज मे रिसालदार था अनेकों सिपाहियों को लेकर बागियों में मिल गया। बालानवाली के किले और थाने पर बागियों ने कब्जा कर लिया। किन्तु उनके पास कोई भारी शक्ति नहीं थी। फौजों ने आकर बालानवाली को घेर लिया। बागियों की हार हुई। इसमे दिलसिंह लक्खासिंह और प्रतापसिंह की विधवा रानी कैद कर लिये गये। गुलाबसिंह बहादुरी के साथ लड़ता हुआ मारा गया। देवासिंह को फौज पकड़ना ही चाहती थी कि उसने खुद गोली मार ली। गिरफ्तार किये हुए लोगों को अम्बाला भेज दिया गया और फौज का एक दस्ता बालानवाली मे ही मुकर्रिर कर दिया गया ताकि फिर कोई बगावत उठ खड़ी न हो। बालानवाली के इलाके से राज्य को वैसे भी भय था। ये लोग निडर और उद्दण्ड प्रकृति के थे। इनके ही बल पर प्रतापसिंह बागी बना था। हालाकि उस बगावत में भी उन्हें काफी नुकसान उठाना पड़ा था। किन्तु प्रतापसिंह की रानी के साथ इस बार भी खड़े हो गये। अत. फौज का बालानवाली मे रखना उचित ही जचा था। सफेदूं रियासत जीन्द का एक खास परगना था। सफेदूं मे ही स्वर्गीय राजाओं की समाधें बनाई जाती थीं। संवत् १६०० मे सफेदूं इलाके को राजा सरूपसिंह जी से अंग्रेज सरकार ने माग लिया और उसके बदले में उन्हें कैथल राज्य को परगना माहलान और धावदान दिये। चू कि संवत् १६०० मे कैथल का राज्य सरकार ने लावारसी मे जब्त कर लिया था। इलाके सफेदूं मे ३८ गॉव थे और इन नये परगनों मे २३ गॉव। किन्तु कसबा सफेदूं को सरकार ने जीन्द के ही पास छोड दिया। क्योंकि उसके अन्दर स्वर्गीय महाराजाओं की समाधे थी।

संवत् १६०२ मे सरकार अंग्रेज ने महाराजा रणजीतसिंह के उत्तराधिकारियों के साथ विगाड़ कर लिया। अंग्रेज बहुत दिन से उसे लेना चाहते थे उनके दिल मे रणजीतसिंह का राज खटकता था किन्तु उस समय उनकी हिम्मत न पडती थी। अब रणजीतसिंह के बाद पड़ गई। इस समय अंग्रेजों ने महाराजा जीन्द से अपनी सहायता के लिए १५० ऊंट अम्बाला छावनी के लिए मागे। राजा साहब यह सहायता समय पर न पहुँचा सके। इस बात से नाराज हो कर मेजर ब्राडफुट साहब रेजीडेन्ट ने दस हजार रुपया जुर्माना यह अपराध लगा कर कर दिया कि समय पर ऊॅट न मिलने से सरकारी फौजों को बड़ी तकलीफ उठानी पडी है। इसके बाद ही राजा साहब का इकट्ठा किया हुआ रसद का सामान और फौजी दस्ते भी अम्बाले पहुँच गये। जीन्द की फौज ने बड़ी बहादुरी से लड़ाई मे अंग्रेजों का हाथ बटाया। इसके बाद ही एक दस्ता फौज का काश्मीर मे गुलाबसिंह की मदद करने के लिए सरकार की आज्ञानुसार भेजा उसने भी वहाँ अपनी ड्यूटी को बड़ी सफलता से निभाया। इस प्रकार सरूपसिंह द्वारा दी हुई सहायता से गवर्नर जनरल बहुत प्रसन्न हुये और उन्होंने जुर्माने की रकम माफ कर दी। साथही तीन हजार रुपये की एक जागीर भी दी। काश्मीर जाने वाली फौज को उतने दिनों का दुगना वेतन दिया।

लाहौर के सिख राज्य को जीत लेने के बाद सरकार ने राज्य जीन्द से उस महसूल की प्रथा को मिटा दिया जो बाहर से आने वाले माल पर लिया जाता था। और खिराज माफ कर दिया। इसके अलावा एक हजार रुपये सालाना की जागीर और दी। दूसरे पूना के राजाओं की तरह एक सनद भी इस बात की अदा की कि उनकी रियासत सदैव सुरक्षित रहेगी। इसके बदले मे जीन्द के अधिकारियों को सरकार का खैरख्वाह रहना पड़ेगा।

पंजाब की जब्ती के बाद सरकार ने राजा जीन्द को भी दूसरे राजाओं की तरह फांसी देने तक के अधिकार दिये।

महाराजा स्वरूपसिंह जी ने अवकाश मिलते ही अपने राज्य के प्रबन्ध को यथा संभव अंग्रेजी तौर तरीके पर सुधारने की कोशिश की किन्तु उनके इस ख्याल से दकियानूसी खयाल के अहलकारों ने सहमति प्रकट नहीं की किन्तु कुछ लोग तो नाराज भी हुए। अहलकारों के सिवा देहाती लोगों को भी अधिक बन्धन पसन्द नहीं आये। जब एक तहसीलदार जब्बे वाला गांव की ओर पैमायश करने गया तो वहा के जमीदारों ने उसे पैमायश करने से रोका। जब वह नहीं माना तो जान से मार डाला। पैमायश प्रथा का विरोध करने के लिये वे वागी होगये उनका कहना था जमीन हमारी है। हमारे गॉव पर जो रकम राज्य को हम अमन अमान बनाए रखने के लिये देते हैं। वह उसे सदैव देंगे किन्तु जमीन नपवाने से राजा को क्या मतलब। उधर के कई गाव इस बगावत से सहमति रखते थे। महाराज स्वरूप सिंह जी ने अपनी कुल फौज लेकर उन गावों को दबाने के लिये चढ़ाई की किन्तु मारकाट शुरु करने से पहले उन्होंने एक इश्तहार जारी किया कि जो लोग घरों को छोड़ कर बाहर निकल गये हैं अगर वे वापिस घरों पर आ जाय और वागीपने को छोड़ दे तो सरकार सब को माफ कर देगी। साथही यह भी समझाया गया कि जमीन को नाप कर भी सरकार उस पर अधिकार तुम्हारा ही रक्खेगी बल्कि फायदा तुम्हें यह होगा कि इस समय जिसके पास जितनी जमीन है वह उतनी का मालिक मान लिया जायगा। इस प्रकार जमीन का बटवारा भी हो जायगा। अब जहां सारी जमीन का मालिक गॉव है वहा अलग २ व्यक्तियों की मालिकी भी हो जायगी। लोग वापिस लौट आये और बगावत खतम हो गई।

गदर के समय मे हिन्दुस्तान के सभी राजाओं ने भारत को गुलाम बनाने वाले अंग्रेजों की मदद दी थी। महाराजा सरूपसिंह जी उस काम मे पीछे नहीं रहे उन्होंने भी अंग्रेजों की खूब मदद की। गदर की खबर सुनते ही संगरूर से मय सेना के कबीले जा पहुँचे। वहॉ पहुँच कर शहर और छावनी की रक्षा का भार उन्होंने अपने ऊपर ले लिया। यदि उनकी निज की सेना मे कुल आठ सौ आदमी थे। परन्तु चूंकि उन्होंने उसे भी कवायद आदि अंग्रेजी ढग से सिखाई थी। अतः उसने बड़ी मुस्तैदी से कर्नाल की रक्षा की। एक दस्ता फौज का उन्होंने बागपत की रक्षा के लिये भी भेजा। बागपत के पास एक दल था विद्रोही उसे तोड देना चाहते थे ताकि इधर की अंग्रेजी सेनायें मेरठ मे न पहुँचने पायें। सरूपसिंह जी के सैनिकों ने उसकी रक्षा कर ली जिससे बर्नार्ड साहब की पल्टन की सहायता के लिये मेरठ की कुछ फौज पानीपत पहुँच गई और पानीपत को विद्रोहियों की लूट से बचा लिया था। जीन्द की फौज ने सबसे अधिक बहादुरी का काम यह किया कि अंग्रेजी फौज के आगे आगे चलकर सम्हाल का और रार को काबू मे करके सडकों पर कब्जा कर लिया। और अंग्रेजी फौज के लिये रसद जमा की। राजा स्वरूपसिंह स्वय एक दस्ते के साथ थे और वे सातवीं जून को अलीपुर में पहुँच कर अंग्रेजी फौज के सहायक हो गये। कमान्डर इन-चीफ राजा साहब से बहुत खुश हुआ और उसने जीती हुई तोपा में एक राजा साहब को भेट दी। १९ वीं जून को जीन्द के एक दस्ते ने नसीराबाद मे बागियों का मुकाबला किया और २१वीं जून को दूसरे दस्ते ने बागपत के पुल को जो कि इस बीच मे बागियों ने तोड दिया था तीन ही दिन मे तैयार करा दिया। याद रहे यह पुल नावों से बनाया हुआ था। इधर विद्रोहियों ने उस बने हुए पुल से फायदा उठाने के लिये उसे इस्तेमाल करना चाहा वे राजा स्वरूपसिंह की इस दौड धूप का बदला देना चाहते थे। इसलिये बना हुआ पुल भी तोड़ देना पड़ा। राजा साहब तो उधर

विद्रोहियों को नष्ट करने और अंग्रेजों की मदद करने मे लगे हुये थे इधर रियासत के लोग हांसी, हिसार और रोहतक के आस पास के इलाके के विद्रोहियों को मदद दे रहे थे जब राजा साहब को यह समाचार मिला तो राजा साहिब को राज मे वापिस आना पडा। और उस तूफान को दवाया जो राज्य मे ही खड़ा हो जाने वाला था। बड़ी बडी रकमों पर रियासत में से घोडे खरीद लिये और बडी बडी तनख्वाहों पर लोगों को भर्ती किया और ये भरती किये हुए सैनिक तथा खरीदे हुए घोडे अंग्रेजो के सुपर्द कर दिये। इसके बाद दिल्ली के मुहासिरे के समय राजा साहब खुद भी उसमे शामिल हुए। इस समय अंग्रेजों ने एक होशियारी की और वह यह कि राजा सरूपसिंह को रोहतक में बिठा दिया और देहात के मुखियाओं और जमींदारों को इत्तला दे दी कि वह अपनी मालगुजारी व लगान की रकम राजा सरूपसिंह जी के पास जमा करावे। इससे रोहतक के जाट जो पूरी तरह से विद्रोह मे भाग लेना चाहते थे। दब गये। देहली के हाथ मे आ जाने और कुछ शान्ति हो जाने के बाद सरकार ने राजा साहिब को इजाजत दी कि वे अब कुछ दिन सफेदूं मे रहे और उनकी फौज के ७५ आदमी हरनौली मे तथा कुछ देहली मे विद्रोहियों के मुकाबिले के लिये अंग्रेजी सैनिकों के साथ मुकर्रिर किये। ५०० आदमी जनरल वानकोर्ट के साथ हांसी को भेजे और ११० आदमी सरदार कान्हासिंह जी की अध्यक्षता मे झज्झर को रवाना किये। इसी प्रकार २५० रोहतक मे और ५० गुनाहा मे मुकर्रिर किये। इन विवरणों के पढ़ने से सहज ही पता चल जाता है कि रोहतक, हिसार, हांसी, कर्नाल, पानीपत और बागपत सब स्थानो पर विद्रोह को दबाने में जीन्द राज्य की सेना और राजा साहिब सरूपसिंह जी ने जी तोड़ कर और सम्पूर्ण श्रद्धा विश्वास के साथ सरकार अंग्रेज का साथ दिया। कहा जाता है कि पटियाला, नाभा, कपूर्थला और दूसरी सभी सिख और गैर सिख हिन्दू रियासतों ने इसी प्रकार की सहायता सरकार अंग्रेज की अथवा कम्पनी राज्य की की थी। इन सहायताओं और सेवाओं से अंग्रेजों की जान ही नहीं बचीं अपितु भारत के इस सिरे से उस सिरे तक लगी हुई आग को बुझाने में भी बडी अच्छी तरह से सफल हुए।

विद्रोह के समाप्त हो जाने पर राजा सरूपसिंह जी की इन सेवाओं के बदले मे जनरल विल्सन साहब ने सरकार को राजा साहब की बड़ी तारीफ लिखी रावर्टसन ने तो लिखा था। "अगर ठीक समय पर राजा सरूपसिंह जी की मदद न मिलती तो हमें बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता। यही नहीं कि राजा साहब ने केवल रसद और फौज से ही हमारी मदद की हो किन्तु देहली के हमले मे तो वे खुद भी शामिल हुए।" सम्वत् १६१४ वि० की ५ नवम्बर को गवर्नर जनरल ने राजा साहब सरूपसिंह जी की सहायताओं के सम्बन्ध मे खुद लिखा था। "राजा साहब द्वारा इस नाजुक मौके पर की गई सेवाओं के लिये गवर्नमेंट उनकी हृदय से कृतज्ञ है।"

इस प्रकार प्रशंसा और बधाइयाँ देकर ही सरकार चुप न रह गई उसने राजा साहब को जागीरे भी दीं। दादरी का एक लाख का इलाका जो कि वहाँ के नवाब से जब्त किया गया था। राजा साहब जीन्द को दिया गया। परगना कुलाडा के १३ गाँव जो कि सगरूर से मिले हुये थे और जिनकी वार्षिक आय १३८१३) थी जिनके कि नाम मथापुर, आलमपुर, बल्लबगढ़, कलाड़ा, रोड बड़ा, टोटली, रोग लोई, धर्मगढ़, बजुरगा, धीमोद, मोदी, ककराला और शाहपुर थे दिये। इन जागीरों के अलावा देहली मे ६०००) की कीमत की एक हवेली शाहजादा मिर्जा अबूबकर वाली महाराज सरूपसिंह जी के लिये और दी। तोपों की सलामी की सख्या ग्यारह कर दी गई। खिलअत की सख्या भी ग्यारह से १५ मुकर्रिर की गई। इन सब के अलावा राजा साहब को फरजन्द दिल बन्द रास उलएतकाद का खिताब मिला।

धन्यवाद, बधाई, जागीर और खितावों को उदारता पूर्वक देने मे निश्चय ही अंग्रेज सरकार ने राजा साहब को और भी अपनी ओर आकर्षित कर लिया।

महाराज सरूपसिंह जी की ख्वाहिश थी कि बडरुखां और भीमबदी आदि इलाके सरकार की मातहती मे है। वह फिर से हमारी मातहती मे आने चाहिये। इस समय उन्होंने अपनी इच्छा को पूरा कराने के लिये उपयुक्त मौका समझा। अतः सरकार के पास इन इलाकों को लेने की दरख्वास्त भेजी। सरकार ने १२८७०) रुपया लेकर यह इलाके इन्हे दे दिये। और बडरुखॉ के सरदार जीन्द के मातहत बना दिये गये।

इसके बाद प्रबन्ध की सहूलियत के लिये सरकार ने राजा सरूपसिंह जी से कुछ गांव भी बदल लिये जो कि जग, बावल, बगला, नौरंगाबाद, भंड, रगोली, ऊन, बाग, रनीला, सोफल, बरानी, चग, रोला, बजना और चावाह नाम से मशहूर थे। इनके बदले मे सरकार ने चटकली, नंग, तगाली, धवाला, पचोचा खुर्द और कला दोनो और टोडी जिनकी कि आमदनी सालाना १०८५०) थी राजा साहब को दिये। इसी प्रकार सम्वत् १६१८ मे भोरी, खेड़ा, बधाना खेड़ा, पनहारी, ढाड, मरसाना, सोधना, चडलाना, खड़क, योनिया, जियान कपट्ट, खट खोरी जीन्द राज्य के गॉव जो कि जिला हिसार मे थे लेकर नगरी, चपकी मंडावाला धनोरा, असमानपुर, सपर होडी, मरोडी, मरढा जहेडी, मडलांवाली, कनहरा, बदले मे जीन्द को दे दिये। इन गॉवों की बदला बदली से जमीन के बन्दोबस्त और अपने अपने इलाके के प्रबन्ध मे काफी सहूलियतें हुई। जीन्द के वे गॉव जो सरकार ने लिये थे अंग्रेजी इलाके मे फैले हुये थे उनके बदले मे जीन्द के समीप ही महाराज सरूपसिंह को गॉव मिल गये। जिन्हें कि उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

राजा सरूपसिंह जी को उनके राज्य के आन्तरिक मामलों मे पूर्ण स्वतन्त्रता देने और गवर्नमेंट के साथ सम्बन्ध जाहिर करने वाली एक सनद भी दी गई जिसका सार इस प्रकार है—

(१) राजा साहिब और उनके उत्तराधिकारी अपने राज्य के इलाकों पर जिनकी कि सूची साथ है शासक के अधिकार रक्खेंगे। प्रजा का कर्त्तव्य होगा कि इनके हुक्म की पाबन्दी करे। नवीन मिले हुये इलाकों पर इन्हे वही अधिकार होंगे जो पुरानों पर।

(२) राज्य से किसी प्रकार का खिराज सरकार न लेगी।

(३) जीन्द के राजाओं को गोद लेने का उसी प्रकार अधिकार होगा जिस प्रकार कि अन्य फुलकियन स्टेट्स को।

(४) राज्य से सती प्रथा, कन्या बध, और गुलामों का क्रय-विक्रय कानूनन बन्द करेंगें।

(५) किसी शत्रु का सामना करते समय रियासत जीन्द सरकार अंग्रेजी की इस इलाके में रसद और सेना से मदद करने के लिये हर समय तैयार रहेगी।

(६) बृटिश राज्य की रियासत शुभचिन्तक रहेगी।

(७) गवर्नमेंट रियासत की प्रजा की शिकायतों पर कोई ध्यान न देगी। उनका निपटारा रियासत ही करेगी।

(८) राजा साहिब तथा अन्य राज पुरुषों को अंग्रेज लोग इज्जत की निगाह से देखेंगे और घर मामलात में कोई हस्तक्षेप न करेंगे।

(९) रेलवे लाईन और सड़कों के वास्ते राजा साहब खास तौर से सामान और सहायता देंगे।

(१०) जब तक राजा साहिब और उनके उत्तराधिकारी अंग्रेज सरकार के वफादार रहेंगे गवर्नमेंट उनके अस्तित्व को कायम रक्खेगी।

(१) परगना जीन्द (२) परगना सफेद्रं (३) परगना लजवाना (४) वालांवाल (५) परगना संगरूर (६) परगना वाजीदपुर (७) पिंड भाई भूपा की फहरिस्त इस सनद के साथ शामिल थी जिस पर कि राजा साहब का अधिकार घोषित करके उन्हे उपरोक्त अख्तयारात प्रदान किये गये थे।

इस सनद के बाद भी कुछ परगने राजा सरूपसिंहजी को मिले थे। जिनका ब्योरा इस प्रकार है.— पिंड ढोलमवाला (जो रानी जीन्द के इलाके मे शामिल था) पिंड वसीना, पिंड वटाला, परगना दादरी १४ गॉव परगना कलारा मे।

महाराजा सरूपसिंह की कुछ दिनों बाद सुखॉ और दयालपुर की जागीरे जब्त करलीं। जिनकी अपीलें भी सरकार में हुई। किन्तु सरकार ने संवत् १६१७ की दी हुई सनद के अनुसार हस्तक्षेप करना उचित न समझा।

संवत् १६१८ मे गवर्नर जनरल ने झज्झर के उस हिस्से के जो जीन्द राज्य को छूता था १६ गॉव ३७००००) मे कुल अख्तयारात के साथ और सदैव के लिए जीन्द को दे दिये। इनकी सालाना आमदनी १८५२०) थी। सरकार मे जीन्द को तीसरी कुर्सी नियत की गई थी। पहली पटियाला और दूसरी नाभा को राजा सरूपसिंह जी ने इसके लिये भी लिखा पढ़ी की। सरकार ने उनका दर्जा दूसरा कर दिया। इस प्रकार राजा सरूपसिंह जी ने जहॉ अपने समय मे अंग्रेज सरकार को लाभ पहुँचाया वहॉ खुद भी उससे लाभ उठाने मे कसर बाकी नहीं रखी।

संवत् १६२१ मे महाराज साहब को रोग ने घेर लिया उन्हे पेचिश हो गई। उस समय वे वाजीद-पुर में रह रहे थे। उन्होंने अंग्रेज डाक्टरों से भी इलाज कराया। कहा जाता है कि उन्होंने एक फकीर से तांबे का जोस दिया पानी पीलिया। जिससे उनकी शीघ्र ही मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय उनकी ५१ वर्ष की अवस्था थी।

राजा सरूपसिंह जी अवसरवादी थे उन्होंने अवसर के अनुसार ही अंग्रेजों को सहायता दी। उनकी सुन्दरता और तन्दुरस्ती का पता सर लेपिलग्रिफिन की इन लाइनों से लगता है :—"जिस समय वह जिरह बख्तर पहन कर सैनिक वेश मे फौज के आगे खड़े होते थे तो उनकी सानी का कोई दूसरा रईस नहीं दिखाई देता था।" सरकार की ओर से उन्हे "सितारे हिन्द' का तमगा भी मिलना निश्चय हो गया था। किन्तु अम्बाला पहुँच कर उसे हासिल करने के सौभाग्य से—बीमारी के कारण वंचित रह गये।

राजा सरूपसिंह जी ने अपने समय मे काफी दान पुण्य किये थे। धर्म पूजा के लिये स्थापित होने वाले निरमली अखाड़े के लिये आपने बीस हजार नकद और दो गॉव मंडलावाला तथा वल्लभगढ़ जिनकी कि आमदनी १३००) सालाना थी, दिये।

राजा साहब ने भी दो शादियॉ की थीं। (१) किशनकौर जी से जो कि सरदार तारासिंह जी मानशाहिये की लड़की थीं। (२) हॉसी के सरदार काहनसिंह की बहिन सदाकौर से। बड़ी रानी साहिबा से कुॅवर रघुवीरसिंह जी का (सवत् १८६६ के कार्तिक मे) जन्म हुआ था। छोटी रानी से १८६७ में कुॅवर रनधीरसिंह जी का जन्म हुआ था।

वह १८ साल की उम्र मे ही सवत् १६०५ मे स्वर्ग पधार गये थे। राजा सरूपसिंह जी के बाद कुॅवर रघुवीरसिंह जी राज्य के मालिक हुये। संवत् १६२१ वि० की शरद ऋतु में उनका गद्दीनशीनी का

समारोह हुआ जिसमें अंग्रेज प्रतिनिधि और फूल सरदारों ने भाग लेकर पूर्वानुसार खिलअतें बख्शीं।

राजा रघुवीरसिंह

राजा रघुवीरसिंह जी ने अभी राज प्रबन्ध संभाला ही था बहुत दिन नहीं हुये थे कि इलाका दादरी में बगावत हो गई क्या कारण था? उस पर प्रकाश डालने की लेखकों ने शायद आवश्यकता अनुभव नहीं की। किन्तु बात यही थी कि राजा सरूपसिंह के समय में जमीदारों पर मालगुजारी अदा करने की पाबन्दी सी होगई थी। इससे पहले तो योंही धींगागर्दी चलती थी। राजा सरूपसिंह के मर जाने के बाद उधर के जमीदारों ने देखा कि यह नौजवान राजा उन्हें दबाने में शायद ही सफल होगा। इसलिए उन्होंने खरीफ का मालियाना अदा नहीं किया और जो अफसर उगाही करने गये उन्हें पीटकर निकाल दिया। साथ ही वह सामूहिक बगावत के लिये आमादा हो गये। लगभग दो हजार आदमी चर्खी के मुकाम पर इकट्ठे हो गये। राजा साहब ने इस खबर को पाते ही तोप खाने के समेत चढ़ाई कर दी। मोजा भूफ, और मानिकवास पर बागियों ने अपना झंडा खड़ा कर दिया, लड़ाई हुई, लड़ाई में तोपों का प्रयोग भी हुआ। दोनों ओर से आदमी मारे गये। कुछ बागी राजपूताने की ओर भाग गये। किन्तु शांति हो जाने पर राजा रघुवीरसिंह जी ने लोगों के साथ बदले की भावना से कोई सख्ती नहीं की। जिससे आगे उनके जीवन में फिर कोई झगड़ा नहीं उठा।

राजा साहब रघुवीरसिंह ने तीन शादियाँ की थी। पहिली दादरी के चौधरी जवाहरसिंह जी की सुपुत्री प्रतापकौर से। दूसरी ध्यानसिंह जी गलमाजरियाँ की पुत्री इन्द्रकौर से और तीसरी रायपुर के सरदार लहनासिंह जी की लड़की अमीरकौर से। बड़ी रानी से टिक्का बलवीरसिंह और एक लड़की उत्पन्न हुए।

राजा रघुवीरसिंह जी ने संगरूर को अपनी राजधानी बनाया। फिर भी सारी रियासत पर सावधानी से ध्यान रक्खा। शिकार और फौजीपन के शौक के अलावा राज्य का व्यापार बढाने की ओर भी आपकी काफी रुचि थी। संवत १९२२ में संगरूर के बाजारों को चौडे और साफ सुथरे बनाने का आयोजन किया। संगरूर में, बारहदरी, दीवानखाना और तालाब भी बनवाये। सफेदू में लालक्षेत्र नाम का एक सुन्दर मकान बनवाया। अमृतसर में जो ढाई परिक्रमा बिना बने पडी थी। उसे भी काफी धन खर्च के पूरा करा दिया। उसमें आपने संगमरमर और संगमूसा लगवाये जो संवत् १९३९ से संवत १९४४ तक पाँच वर्ष में बन पाई।

राजा रघुवीरसिंह जी अपनी उम्र में एक ऐसा काम कर गये हैं जो उन्हें सदैव अमर रक्खेगा। वह काम है दिल्ली में गुरुद्वारा शीसगंज का निर्माण कराना। दिल्ली में गदर दबाने में सहायता करने के उपलक्ष में जो मकान राजा सरूपसिंह जी को मिला था वह वही मकान था जहाँ गुरु श्री तेगबहादुर जी ने धर्म हेत अपना शीस दिया था। उस स्थान पर मस्जिद भी बनी हुई थी राजा साहब ने वह भी मांगली और वहाँ गुरुद्वारा बना दिया। गदर के कई वर्ष बाद मुसलमानों ने सरकार से दरख्वास्त की कि मस्जिद की जगह जहा कि गुरुद्वारा बना लिया है हमे मिलनी चाहिये, सरकार ने दे दी। राजा रघुवीरसिंह ने इसके विरुद्ध स्टेट सेक्रेटरी को विलायत में लिखा पढ़ी की वहाँ से फैसला राजा रघुवीरसिंह जी के पक्ष हुआ। उन्होंने मसजिद को जो कि मुसलमानों ने गुरुद्वारे के स्थान पर बनाली थी तुड़वा दिया और गुरुद्वारा बनवा दिया। साथ ही खर्चे के लिये एक गाँव भी गुरुद्वारा शीसगंज से लगा दिया।

सम्वत् १९५२ मे राजा साहब को सरकार ने जी० सी० ऐस० आई० का खिताब दिया। इसके

दो वर्ष बाद राजा साहब ने ज्वालामुखी की यात्रा की। इससे अगले वर्ष काबुल और अंग्रेजों मे लड़ाई छिड गई उसमें आपने ५०० पैदल २०० सवार और दो तोपें सहायता के लिये दीं। इसके बदले मे सरकार ने राजा साहब को राजाये राजगान का खिताब दिया।

संगरूर मे बराबर रौनक पैदा करने की ओर आपका ध्यान था। सम्वत् १६३४ मे एक वर्कशाप भी बनवाने का डौल डाल दिया। जिसमे आटे पीसने, वर्फ बनाने और पानी निकालने आदि की मशीनें लगवाईं।

प्रबन्ध करने मे राजा साहब का स्वभाव कुछ लेखकों ने सख्त बताया है। आरम्भ मे राज्य की आमदनी ६ लाख रुपये थी उसे भी आपने अपने समय में तेरह लाख कर लिया। इंसाफ करने मे सदा ही उनका यह ध्यान रहा कि किसी के साथ रियायत और अन्याय न हो जाय। इस प्रकार उनका प्रजा और अहलकार सबों पर रोब भी गालिब था। उन्होंने भी तीन विवाह किये (१) बरेली के राजा शिवदेवसिंह की लड़की के साथ जो छोटी ही आयु में गुजर गईं। (२) शहजादपुर के रईस कृपालसिंह जी की लड़की से (३) राजीयाना के सरदार दीदारसिंह की लड़की से। इनमें मझली रानी से टिक्का बलवीरसिंह जी और दो लड़कियां पैदा हुईं। जिनमे से एक छिछरोली ब्याही गईं और दूसरी वृन्दावन के लोक विख्यात राजा महेन्द्रप्रतापसिंह जी के साथ ब्याही गई। टिका बलवीरसिंह जी का जन्म संवत् १६१३ में हुआ जो कि भरी जवानी मे इस संसार से कूच कर गये। इस दुखदाई मृत्यु का राजा रघुवीरसिंह जी पर घातक असर जरूर पडा। वे उसी समय से खिन्न रहने लगे जिसका नतीजा यह हुआ कि वे भी सम्वत् १६४४ मे स्वर्ग सिधार गये।

सर जेम्स लायल साहब ने राज्य के प्रबन्ध के लिये जीन्द जाकर एक कौंसिल उस समय तक के लिये बनाई, जब तक कि युवराज रणवीरसिंह बालिग न हो जाय। उसके प्रधान सरदार रतनसिंह बनाये गये और मुन्शी हरस्वरूप और रहीमबख्श मेंबर नियुक्त किये गये।

राजा रणवीरसिंह को राजा रघुवीरसिंह की मृत्यु के कुछ दिन बाद ही सिंहासनारूढ कर दिये गये। अभी उनकी उम्र सिर्फ नौ साल की ही थी। गद्दीनशीनी के समय सर जेम्स लायल अंग्रेज प्रतिनिधि और महाराजा पटियाला और नाभा भी पधारे थे।

राजा रणवीरसिंह

राजा रणवीरसिंह ने दो विवाह किये। उनमें से एक सरदार जीवनसिंह की पुत्री के साथ संवत् १६५१ वि० दूसरा जनरल हीरासिंह की लड़की के साथ सम्वत् १६५२ वि० मे। राजा साहब को फारसी, गुरुमुखी और अंग्रेजी की शिक्षा दिलाने को सरकार के आदेशानुसार अच्छा प्रबन्ध किया गया था।

बारह वर्ष तक कौंसिल ने राज्य कार्य्य को संभाला इस समय मे उसने खालसा कालेज को ७५०००) रुपया भी दान दिया। संवत् १६५६ वि० मे महाराज रणवीरसिंह जी को राज्य के कुल अधिकार प्राप्त हो गये। जब से आपके हाथ में शासन की बागडोर आई थी आपने यथा सम्भव प्रजा के हित पर ध्यान दिया। स्वास्थ्य और तालीम के लिये भी आपने प्रबन्ध किया। सरकार की ओर से आपको जी० सी० आई० ई० और के० सी० एस० आई० की उपाधियां भी मिलीं। आपके दो राजकुमार हैं जिनमें से टिक्काराज वीरसिंह जी का संवत् १६७५ मे और कुंवर जगतवीरसिंह जी का संवत् १६८२ मे जन्म हुआ है। महाराज ने प्रजा की दशा देखने के लिये राज्य के कई दौरे भी किये हैं। आप भी संगरूर ही मे रहते हैं। लेकिन नियम यह बना रक्खा है कि चार मास संगरूर में चार मास जीन्द मे और चार

मास चरखी दादरी में रहे। आपको सरकार द्वारा १५ तोपों की सलामी दी हुई थी।

राज्य का रकबा इस समय १३३२ वर्ग मील, जन संख्या ३२४००० और सालाना आमदनी बीस लाख के लगभग थी, ५० स्कूल हैं। सेना में इम्पीरियल सर्विस और राज्य दोनों प्रकार के लगभग १५०० पैदल २५० सवार और ४० गोलन्दाज हैं।

महाराज ने अपने समय में अनेक सुधार करने का प्रयत्न किया। किन्तु सफलता नहीं मिली।

सन् १६४८ में जब पेप्सू यूनियन बना। उसमें यह राज्य भी शामिल हो गया।

इक्कीसवाँ अध्याय

फरीदकोट राज्य का इतिहास

विराडवंश—वर्णन

फरीदकोट राज्य का विस्तार ६४३ वर्ग मील जनसंख्या १५०६४१ वार्षिक आमदनी १५ लाख के लगभग थी।

इस राज्य के संस्थापदक वराडवशी सिद्धू गोत्र के जाट थे जिन्होंने कि आगे चलकर सिख धर्म ग्रहण कर लिया था। पटियाला और नाभा की तरह इनका भी यही विश्वास भाटों की दन्त कथाओं के आधार पर बन गया था कि राव खेवा ने सबसे पहले अपने को भाटी-राजपूतों से अलग किया था और अलग होने का कारण बतलाते हैं राव खेवा का किसी जाट कन्या के साथ शादी कर लेना। यह एक बेहूदी बात जातियों के क्रान्तकारी परिवर्तनों से अजान रहने वाले भाटों और फिर उन्हीं के आधार पर चलने वाले इतिहासकारों की फैलाई हुई हैं। जहाँ तक भी इतिहास साक्षी देता है उससे यह तो साबित होता है कि अनेक जाट घरानों ने अपने को राजपूतों मे शामिल कर दिया कारण कि जाट शब्द और जाति का पृथक अस्तित्व राजपूत शब्द और जाति से कई सदी पहले का है। कुछ सामाजिक रस्म-रिवाज और राजनैतिक कारणों से जाट, गूजर, अहीर कुछ राजवंशी ब्राह्मण प्रभृति राजघराने और समूह ही एक दिन राजपूत शब्द से अभिहित हुए थे सम्भव है रावखेवा के अन्य साथी भाटियों ने सभी अपने पुराने रस्म-रिवाज और राजनैतिक उसूलों को छोड़ कर राजपूत शब्द धारण कर लिया हो। या इससे पहले। जिस प्रकार चन्द धार्मिक उसूलों और रस्म-रिवाज के भेद से आज सिखों का एक समूह शेष हिन्दुओं के बराबर अलग बनता जा रहा है उसी भाँति बुद्ध काल के बाद पुराने साथियों जाट, गूजर, अहीर, मराठा आदि में से चन्द नये उसूलों और रस्म रिवाजों को लेकर राजपूत समाज बना था।

भाटियों मे से राव खेवा और उनके ही जैसे खयालात के लोगों ने अपने पुराने सामाजिक रीति रिवाजों और उसूलों का उसी भाँति पालन किया जिस प्रकार कि कई शताब्दियों से उनके पुरुखे करते आ रहे थे। जो लोग उन उसूलों और रस्म रिवाजों मे हेर-फेर करके राजपूत-समाज मे मिल गए वे राजपूत कहलाने लग गये। यही राजपूत भट्टी और जाट भट्टी के अलग होने का संक्षेपत कारण है। यहाँ यह बता देने मे कोई हर्ज नहीं होगा कि सिन्ध मालवा और यौधयों के बीच का देश भातियाना व बतियाना कहलाता था। शब्द भातियाना बातियाना का अपभ्रंश था और बातियाना भी पुराणों

के भाति-भय का रूपान्तर था। इसी देश के लोग भतियाने या भटियाने अथवा भाटी क़ लाते थे। भाटिया और भाटी मे कोई अन्तर है तो केवल यही कि भाटिया वैश्य है और भाटी क्षत्रिय है। सिंध की भाषा (जिसे पश्चिमी हिन्दी कहा जा सकता है) मे त के स्थान पर बहुधा ट प्रयोग होता है अत भाती से भाटी पुकारा गया और पंजाबी मे भट्टी। जो लोग भातियाना में रहे वही भट्टी या भाटी थे। भाट ग्रंथो मे कहा गया है कि यदुवंश के एक राजकुमार ने देवी की अपने शिर की बलि दी थी इससे देवी ने उसे भट्टीराव का खिताब दिया। आज इस प्रकार की बेहूदा पर विश्वास नहीं किया जा सकता। अस्तु,

फरीदकोट राज्य को सुव्यवस्थिति रूप मे लाने वाले कपूरसिंह जी थे जिनकी राजधानी कपूरा थी। इस राज्य को भट्टी राजपूतो और भट्टी मुसलमानो से बड़ी हानि पहुँची उन्होंने बड़ी मुश्कि से इस राज्य को पनपने दिया।

हम चाहते है कि इस राज्य के संस्थापको के पूर्वजों के इतिहास पर भी यहाँ प्रकाश डाले जिससे प्रेमी पाठको को कुछ सामग्री मिल जाय। जिस समय मध्य भारत मे बहमनी मुसलमानों का राज्य था उस समय पंजाब में राव सिद्धू नाम के साधारण से रईस थे जो अपनी ईश्वर भक्ति के लिये अधिक प्रसिद्ध थे शमशुद्दीन बहमनी के इस वाक्य—चनी गुपत सिद्धू व फीरोज खाने। दरेग अज तू माले व जान। वकूशम कि औरंग के खुश खी। बफर्र कलाह तू गिरद व कवी। अर्थात् नियत समय मे सिद्धू ने बहमनी फीरोज खाँ की मदद की—से मालूम होता है सिद्धू व उसके बुजुर्ग मध्य भारत मे चले गये थे क्योंकि 'बहमनी' मे सिद्धू को सागर का शासक लिखा है। सिद्धू के छः लड़के बताये जाते हैं। (१) रावभूर (२) डाहड (३) सूरा के नाम उल्लेखनीय है। शेष के नाम रूपा, महां, वाप्या थे। पंजाब मे सिद्धू गोत के जाटों की बडी भारी तादाद है।

राव सिद्धू

इनका अस्तित्व पंजाब मे ही पाया जाता है। इन्होंने भट्टियों से कई बार लडाई लडी। लूट मार करके कुछ इलाके भी हथियाये किन्तु उनके पास ज्यादा इलाके ठहर नहीं सके। इनके लडके का नाम भय्यासिंह था। जो बड़ा साहसी था। उसने अपनी बहादुरियों से थोडे ही दिनों मे वीर का पद पा लिया था वीर के दो पुत्र हुए (१) तिलक राव और (२) संतराव। तिलक राव साधु संगति मे पड़कर बैरागी हो गया। संतराव ने जंगली लोगों का संगठन करके भट्टियो से बदला लेना शुरू किया। किन्तु वह एक लड़ाई मे मारा गया। इसके बाद भट्टियों ने सिद्धू जाटों को तग करने पर कमर बाधी, उन्होंने संत राव को भी कत्ल कर दिया, जिसकी समाधि फरीदकोट के महमा गॉव मे बनी हुई है—और वहाँ साल भर में एक बार मेला लगता है। संतराव के लड़के का नाम गोलसिंह व चड़हटा था। उसने भी तलवार सम्भाली और जिंदगी भर भट्टियो से लडता रहा। गोलसिंह के लड़के का नाम महाचे था। महाचे के लड़कों में बड़े का नाम हमीरसिंह था। राव बराड़ इन्हीं हमीरसिंह के बडे लड़के थे जिनके नाम पर सिद्धुओं का यह समूह बराड़ के नाम से मशहूर हुआ है। राव बराड़ ने अनेक लडाइयाँ लड़ीं उन्होंने फक्करसर, लहडी और कोट लद्धू को भी अपने कब्जे मे कर लिया था।

राव भूर और भय्या सिंह

राव बराड़ के दो पुत्र थे (१) राव दुल (२) राव पौड़। फरीदकोट के राजाओं का वश राव दुल मे और पटियाला, नाभा, जींद, का राव पौड से चला बताया जाता है। पिता के राज्य पर दोनों भाइयों

राव दुल

में झगड़ा हुआ किन्तु फतह रावदुल की हुई और राव पौड़ दक्षिण पश्चिम की ओर चले गये और कई पीढ़ी तक उनकी संतान की आर्थिक हालत भी शोचनीय रही। मगर सोलहवीं सदी मे चौधरी सघर और डेरम ने कुछ शक्ति पकड़ी और नका फल पटियाला नाभा और जींद जैसे राज्य हैं।

राव दुलसिंह को भटियो से कई बार लडना पड़ा किंतु उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। उनके चार त्र हुये। विनयपाल (२) सहनपाल (३) लखनपाल (४) रतनपाल। विनयपाल अपने बाप के इलाके के ालिक हुए। एक बार हिम्मत करके इन्होंने भटिंडा पर कब्जा कर लिया किन्तु भट्टियो ने फिर छीन तया। विनयपाल के लडके अजीतसिंह थे जिन्हे अपनी सारी जिन्दगी भट्टियों मे लडने मे ही बितानी पड़ी। रजीतसिंह के चार पुत्र हुए (१) बड़े पुत्र मानिकसिंह को अपने बाप से अच्छा इलाका मिला था जो ातलज घग्घर के बीच में था किन्तु यह उसकी रक्षा नहीं कर सके। इनके सात लड़के थे। (१) टेडासिंह ◌) खूचर (३) खखी (४) पक्खू (५) सील् (६) बाहिना और (७) कन्हैया। अपने बाप के बाद जायदाद ; मालिक टेडासिह हुये जिनके कि पॉच लडके थे (१) आसीसिंह (२) वासीसिह (३) इन्दा (४)मुद (५) ;पाल। आसीसिंह ने अपने समय में लड़ाई झगडो में काफी ताकत दिखाई किन्तु हालत यह हो गई कि हीं बैठने को भी जगह नहीं रही। इनके लड़के धीरसेन थे जिनके कि फत्तू, काला, मुल्क तीन पुत्र हुए। न्तू ने अपने समय में भाटियों के मुकाबिले मे पठानों का पक्ष लिया। जिससे उसने पुन अपने कुछ ़लाके पर अधिकार कर लिया।

फत्तू के संगर, लंघर, सहनू और लहनू चार लडके हुए। सगर ने जब उत्तराधिकार तंभाला था उस समय हिन्दुस्तान में बाबर बादशाह आ चुका था। संगर का इलाका चक्कर (कोटकपूरा) के आस-पास था। जिसमे सगर अपने लिये हजारों मवेशी रखता था। एक समय बादशाह बाबर भूख-प्यास से भटका हुआ इसी जंगल मे आ निकला। संगर ने उसका खूब सत्कार किया। बादशाह बड़ा खुश हुआ। हुमायूँ और शेरशाह की लड़ाई के समय संगर ने अपने समस्त साथियों को लेकर हुमायूँ की मदद की थी जिससे यह अपने इलाके के बेखटके मालिक बने रहे। इनके दो स्त्रियॉ थीं जिनके चौदह लड़के हुए। जिनमे से कई लडाइयों मे मारे गये। सगर के बाद भुल्लनसिंह अपने इलाके का मालिक हुआ। इस समय बादशाह अकबर का जमाना आ चुका था। एक भट्टी राजपूत ने अपनी लड़की अकबर को भेंट कर दी और खुद मुसलमान हो गया। इसका नाम मन्सूर खॉ था। इस प्रकार इनके इलाके पर अब फिर आपत्ति आ गई। भुल्लन और मन्सूर दोनों ही अकबर के पास फैसला कराने गये। अकबर ने कहा किसी समय तुम्हारे इलाकों की हदबन्दी करा दी जावेगी। बादशाह ने उनके लिये पगड़ी दी जिसे दोनो-दोनों सिरों की तरफ से बॉधने लगे। बादशाह ने कहा बस जिसने जितनी पगड़ी बांधली है। वह उतने ही इलाके का मालिक रहे। कहा जाता है कि इसके बाद ये दोनो अपने देश मे लौट आये किन्तु शांति नहीं हुई। फिर लड़ाइयां हुईं। जिनमे बराड़ जीत गये और मन्सूर खॉ जिसके कि दोनों लडके लड़ाई मे काम आ गये थे रानियॉ की ओर भाग गया। इसके बाद बराडों ने मन्सूर के साले बाजा पर आक्रमण किया और टामक, घोडे, सांग और ऊँटो पर कब्जा कर लिया। कुछ दिनों के बाद जबकि मन्सूर खॉ ने बराडों पर शक्ति-संग्रह करके हमला किया मारा गया।

बराडों ने खूब ताकत बढ़ाली थी। उनके पास हजार बारह सौ आदमियों का दल रहने लग गया था, मुहीम, धनोरा और प्लूगन तक धावे मारकर वह लूट मार कर ले जाते थे। इन बराडों मे एक राव

दुल के लड़के रतनपाल थे। उन पर एक राठौर राजपूतनी राज्य बीकानेर की जोकि विधवा थी आसक्त हो गई। रतनपालसिंह जी ने उससे शादी करली। जिससे हरीसिंह नाम का लड़का पैदा हुआ। बड़ी बहादुरी के साथ बराड़ों की लड़ाइयां में जाता था। भुल्लनसिंह ने इन सभी प्रदेशों पर कब्जा लिया था जो आज इलाका कोटकपूरा, इलाका फरीदकोट, इलाका मुरकी और इलाका साडी के नाम से मशहूर है। भुल्लनसिंह ने लंबी उम्र पाई थी और बादशाह अकबर से लगाकर बादशाह शाहजहां के समय तक को उन्होंने देखा था। वे अपने इलाके की आमदनी का कुछ हिस्सा बादशाहों के पास भेंट स्वरूप पहुँचाते रहते थे। बुन्देलखंड में बादशाह शाहजहां की सहायता करते हुये अपने भाई लालसिंह समेत निःसंतान मारे गये। उनके छोटे भाई के पुत्र कपूरसिंह जायदाद के मालिक हुए। जिनकी कि उम्र उस समय ७ वर्ष की थी। इलाका कई भागों में बँट गया। परिवार और पड़ौसी किसी ने भी उनके साथ सहायता का सम्बन्ध न रक्खा। फिर माता और ताई ने कुछ धन माल की रक्षा की और इन्हें भी बड़े जतन से पाल पोस कर बड़ा किया।

माता और ताई ने मवेशी काफी पाल रक्खे थे कपूरसिंह जी ने सयाना होते ही शिकार खेलने और शस्त्र विद्या सीखने में समय बिताया। गुरु हरिराय जी जब पजराई पधारे तो वे इनके ही घर पर ठहरे। इनकी नाबालिगी का सारा शाही टैक्स रुका हुआ था। इन्होंने सबसे पहले

कपूरसिंह

तो चौधरायत प्राप्त की और फिर शाही आदमियों की मदद लेकर पिछला सब टैक्स चुका दिया और वापिस गये सभी इलाकों पर अधिकार कर लिया। कोट ईसा खां के सूबेदार ने भी इनकी मदद की। चौधरी कपूरसिंह जी को गहवर लोगों की एक बड़ी सम्पत्ति हाथ लग गई जो उन्होंने भट्टियों से लड़ते समय कपूरसिंह जी को सौंप दी थी। इनसे भी कपूरसिंह के उत्थान में बड़ी सहायता मिली। उन्होंने कई गढ़ियां भी बनवाईं।

इधर उधर के झंझटों से मुक्त होने पर उन्होंने भाई भगतू की सलाह से कोटकपूरा नाम का एक नगर आबाद किया और अपने महल और कोट भी तैयार कराया। इस सम्पन्न अवस्था के समय गुरु गोविंदसिंह जी भी कोटकपूरा पधारे थे। कहा जाता है कि कपूरसिंह ने गुरुजी के लिये जब कि वे मुसलमानों से लड रहे थे यह सुदृढ कोट देने से इंकार कर दिया। थोड़े ही दिनों बाद कोट ईसा खां के मुसलमान सूबेदार से अनबन हो गई किन्तु आप उसके धोखे में आगये और उसकी दावत का निमंत्रण स्वीकार करके उसके यहा चले गये। जहां उन्हे जान से मार डाला गया।

कपूरसिंह जी के तीन लड़के थे। शेखासिंह, मेखासिंह और सेनासिंह। इन तीनो ही भाइयों ने शपथ ली कि जब तक हम ईसा खां से बदला न ले लेंगे सुख से न सोयेंगे। आये वर्ष फौज इकट्ठी करते और ईसा खां पर हमला करते। पूरे बारह वर्ष तक लड़ते रहे अंत मे हिसार और लाहौर के सूबेदारों को ईसा खां के खिलाफ भड़काया और इस मिशन में वे सफल हुये। ईसा खां हाथी पर चढ़कर मैदान में आया। सेनासिंह ने अपना घोड़ा कुदा कर उसके होदे में अड़ा दिया और उसका सिर काट लिया। इस लड़ाई मे बराड़ इस उत्साह से लड़े थे कि मुकलावा की हुई औरतों से सुहाग रात मनाना भी छोड कर मैदान मे चले गये थे।

ईसा खा से बदला लेकर शेखासिंह गद्दी पर बैठा उसने भी आबादी बसाना शुरू किया। और सेखा के नाम से एक नगर भी बसाया।

सेखासिंह के दो रानियां थीं। बड़ी से जोधासिंह और छोटी से हमीरसिंह और वीरसिंह का

न्म हुआ। नियमानुसार अपने बाप के बाद कोटकपूरा की गद्दी जोधसिंह को मिली। तीनों भाई प्रेम से रहते थे किन्तु दरबारियों ने उनमें फूट डाल दी। और फल हुआ कि वीरसिंह को जोधसिंह ने अपने प्राणों की रक्षा के लिये कैद में डाल दिया और हमीरसिंह को दिन भर दरबार में हाजिर रहने और रात को मौजा हरी में चले जाने का आर्डर दिया।

जोधसिंह

जोधसिंह ने भाइयों को दबा दिया। शायद इसी से उन्हें कुछ अभिमान सा हो गया। वे अपने आगे पटियाला के राजा आलासिंह को भी हेय समझने लगे। उन्होंने अपने घोड़ा घोड़ियों के नाम आला और फत्तो भी रख लिये। इस अभिमान के साथ ही जोधसिंह प्रजा की ओर से भी लापरवाह हो गये। उनके सरदार भी आपस में लड़ने झगड़ने लगे। इन सब बातों का फल यह हुआ है कि कुछ सरदार और प्रजा के प्रमुख लोगों ने हमीरसिंह को राजा बनाने का षडयंत्र रच डाला। और बृहस्पति के दिन जब कि फरीदकोट का इंचार्ज मेले में आकर चौसर खेल रहा था। हमीरसिंह को उनके साथियों ने फरीदकोट का किला सुपुर्द कर दिया। इधर जोधसिंह को पता चला तो कुल फौज किला खाली कराने को भेजी किन्तु वह नाकामयाब रही। इस पर जोधसिंह चुप हो रहा। कहा कोई हर्ज नहीं अपना ही भाई तो है। जब खर्च से तंग आ जायगा तो उसका मिजाज ठीक हो जायगा किन्तु ऐसा हुआ नहीं। हमीरसिंह अपनी ताकत बढ़ाने में लग गया और सूबा सरहिंद से फरीदकोट के मालिक होने की सनद भी प्राप्त कर ली। इस पर कोटकपूरा और फरीदकोट दो राज्य घर की फूट से बन गये।

हमीरसिंह के सम्बन्ध में यह यकीन हो जाने पर भी कि वह अब सहज ही ठीक नहीं होगा। जोधसिंह ने खुद फरीदकोट पर चढ़ाई की। किन्तु इधर पटियाले वाले इलाके में लूटमार करने लगे इसलिये जोधसिंह को शीघ्र ही लौटना पड़ा। कोटकपूरा लौटकर जोधसिंह ने उन सब लोगों को कैद कर लिया। जिनके कि वारिस हमीरसिंह के साथ मिलकर फरीदकोट चले गये थे। हमीरसिंह के भाई और बच्चे भी कैद कर लिये गये। इससे हमीरसिंह के साथी घबराये किन्तु उपाय यह सोचा गया कि जेलर को अपनी ओर मिला कर कैदियों को छुड़ा दिया जाय। जेलर मिट्ठा हमीरसिंह से मिल गया और उसने बहुत सारे कैदियों को जिनको कि हमीरसिंह को जरूरत थी निकाल दिया। लेकिन कुछ दुर्भाग्य से रह ही गये जिन्हें फांसी और कठोर सजा दी गई।

इसके बाद हमीरसिंह निशानवालिया और फैजलपुरिया मिसल से सहायता लेकर कोटकपूरा पर चढ़ गया। सिंधवा गांव पर दोनों ओर से लड़ाई हुई। जिसमें दोनों भाइयों के आदमियों का खूब खून-खच्चर हुआ। दिन भर की लड़ाई के बाद जब जोधसिंह की सेनायें शाम को किले में घुस गईं तो हमीरसिंह के साथियों ने सिन्धुआ को जो एक सम्पन्न गाँव था लूट लिया।

जोधसिंह फिर किले से बाहर निकल कर लड़ने को न आया। हमीरसिंह भी वापिस लौट गया। मिसलवालों की फौजें अपना भरपूर किराया लेकर अपने देश को चली गईं। इसके बाद हमीरसिंह ने नये गढ़ बनवाने और कुछ पुरानों को मिसमार कराने का काम शुरू कर दिया। कोट करोड़ को तुड़वाने में उसे ३५ तोप और कुछ खजाना भी हाथ लगा। बहुत से इलाके अपने कब्जे में कर लिये। जिनमें झोक, मर और धर्मकोट के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। कब्जा किये हुये इलाकों में आबादी बढ़ाना भी जारी रक्खा। इधर वीरसिंह जेल से छूट कर माड़ी में जमकर रहने लगे थे वहाँ उन्हें लोगों ने भड़का दिया कि माडी के आस पास के इलाकों पर वह अपना कब्जा करले। निदान वह भी ऐसा ही करने लगा। अब

जोधसिंह तीन दुश्मनों के बीच में अकेले फँस गये। दो तरफ उसके भाई थे एक तरफ पटियाला का राजा। यह तीनों हीं जोधसिंह को तबाह कर देना चाहते थे किन्तु जोधसिंह ने भी घबराने की बजाय सबका मुकाबिला करते रहना ही ठीक समझा।

कुछ ही दिनों मे जोधसिंह की शक्ति इतनी घट गई कि उसके पास कोटकपूरा के अलावा केवल पाच गॉव और रह गये। लेपिलग्रिफिन ने लिखा है कि मिसलवाले आकर राज्य को तीन हिस्सों म बाट गये थे उन्होंने तीनों को सिखधर्म की दीक्षा भी दी थी। हमीरसिंह निरन्तर की कोशिशों से सबसे बड़े इलाके को दबा बैठा था।

मौजा सेखा मे फिर लड़ाई हुई किन्तु जोधसिंह को हार कर ही लौटना पड़ा। इसके कुछ ही दिन बाद जोधसिंह के साथी जोन्दा को हमीरसिंह के आदमी पकड़ लेगये और सिर काट कर फरीदकोट के बाजारों मे घुमाया गया।

भाइयों की आपस की लड़ाई से लाभ उठाने और जोधसिंह को इस बात की सजा देने के लिये कि उसने अपने घोड़े का नाम आला रख लिया था आलासिंह के उत्तराधिकारी अमरसिंह हमीरसिह और वीरसिंह दोनों भाइयों को साथ लेकर कोटकपूरा पर चढ़ाई करदी। दुर्भाग्य से उस समय जोधसिंह अपने लड़के रणजीतसिंह के साथ हवाखोरी के लिये निकला हुआ था। दुश्मनो ने उन्हें घेर लिया और मार डाला। हमीरसिंह उसका संस्कार करके वापिस लौट आये। जोधसिंह के दो और भी लड़के थे (१) टेकसिंह और (२) अमरीकसिंह। बाप के बाद टेकसिंह कोटकपूरा का राजा बना। उसके दिल मे अपने पिता का बदला लेने की आग जल रही थी किन्तु इतनी बडी ताकतो से सुलझता कैसे। अत. उसने अपने चाचाओं से तो मेल किया किन्तु पटियाला के उन नौ मुस्लिम राजपूतों को दण्ड देने का पक्का इरादा कर लिया जिन्होंने जोधसिंह को घेर कर मार डाला था। चचा हमीरसिंह को फुसलाकर वह उन नौ मुस्लिमों के गाव जलालकियां पर चढ़ाकर ले गया और उन्हे भारी नुकसान पहुँचाया। इसके बाद चचा भतीजे खूब मेल से रहने लगे। टेकसिंह प्राय: फरीदकोट ही बना रहता। हमीरसिंह के मुसाहियों को यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने हमीरसिंह से कहा जिसके पिता को तुमने मरवाया है उससे इतना प्रेम, एक दिन दगा भी दे सकता है। हमीरसिंह बातों में आगया और उसने टेकसिंह को गिरफ्तार करा लिया जब यह समाचार कोटकपूरा पहुँचा तो अमरीकसिंह लडाई की तयारी करने लगा। हमीरसिंह ने उसे भी दंड देने के लिये कोटकपूरा पर चढ़ाई की किन्तु सफलता नहीं मिली और वापिस लौटना पडा। अन्त में कुछ फूल सरदारों के बीच मे पड़ने से उसने टेकसिंह को छोड दिया। इधर प्रजा में काफी बदअमनी फैल चुकी थी। दुश्मन उसके गॉवों को लूट कर बर्बाद कर रहे थे। सबसे दुखदायी घटना यह हुई कि टेकसिंह के ही बेटे ने एक दिन उसके मकान में आग लगा दी जिसमे वह जल कर मर गया। यह घटना १८०६ ई० की है।

पिता की हत्या करने के बाद जगतसिंह कोटकपूरा का मालिक बना किन्तु उसी का हकीकी भाई कर्मसिंह उसके इस कृत्य से नाराज होकर रणजीतसिंह की फौज चढ़ा लाया जिसने कोटकपूरा जब्त कर लिया और जलालकियां नाभा को दे दिया। जगतसिंह ने एक बार फिर कोटकपूरा पर कब्जा कर लिया किन्तु अधिक देर तक संभाल न सका। अत: उसने हार कर महाराज रणजीतसिंह के लड़के शेरसिंह को अपनी लडकी का रिस्ता देकर सुलह करली। लेकिन जगतसिंह अधिक दिन जिन्दा न रहे सन् १८२५ ई० मे उनकी मृत्यु होगई। नि.संतान होने के कारण महाराज रणजीतसिंह ने उसके राज्य को जब्त कर लिया

उधर वीरसिंह भी निःसन्तान ही मरा। इसलिये उसके राज्य को अंग्रेजों ने जब्त कर लिया और फीरोजपुर में मिला दिया।

हमीरसिंह के दो लड़के थे (१) मुहरसिंह और दिलसिंह इनमें दिलसिंह चुस्त चालाक और चलते पुर्जा था। निशाने बाजी में इतना होशियार था कि अपने बाप की चारपाई के पाये में निशाना लगा दिया था। जब मुहरसिंह से कहा गया तो उसने कहा निशाना दुश्मन पर लगाया जाता है मां बाप पर नहीं। हमीरसिंह ने दिलसिंह की ओर से सशंकित होकर उसे ढोढ़ी में रहने की इजाजत दे दी। बाप के मरने पर मुहरसिंह राज्य का मालिक हुआ। मुहरसिंह ने दो विवाह किये। पहली रानी से एक बच्चा था जिसका कि नाम चड़हतसिंह था। पहली मर गई तब दूसरी शादी जानी गोत के जाटों में की, किन्तु उससे कोई सन्तान पैदा नहीं हुई।

दिलसिंह मुहरसिंह का पहिले से ही दुश्मन बना हुआ था वह मुहरसिंह के राजा हो जाने से बड़ा चिढ़ा किन्तु पेश न जाने के कारण चुप रहा और मिसलवालों को धीरे-धीरे मुहरसिंह के खिलाफ लड़ने को तैयार करने लगा। यह देखकर मुहरसिंह ने उसके गाव ढोढ़ी पर चढाई की किन्तु वहाँ मिसलवालों की फौज इकट्ठी हो रही थी इसलिये उसे वापिस लौटना पड़ा।

कई इतिहासकारों ने लिखा है मुहरसिंह ऐश पसन्द आदमी था। प्रजा की भलाई और राज की भलाई तथा राज की देखभाल की ओर से वह कतई लापरवाह था। अबोहरा, कडमा, भक और बोद उसकी लापरवाही से फरीदकोट के नीचे से निकल गये। उसने अपने ऐश के लिये रावल राजपूतों की एक सुन्दर स्त्री पंजी को छीनकर अपने महल में रख लिया। इस औरत ने मुहरसिंह को उसी भाति अपने वश कर लिया जिस भाति संयुक्ता ने पृथ्वीराज को कर लिया था। यह औरत राज काज के मामलों में भी दखल देती थी और इसके उदर से पैदा होने वाला लड़का भूपसिंह भी इस बात का इच्छुक था कि राज उसी के हाथ रहे। राज के असली वारिस चड़हतसिंह की रीझ बूझ न थी। पंजी दरबार में बैठती, इंसाफ करती और राज काज की प्रत्येक बात की देख भाल करती। उसका रौब ऐसा था कि अहलकार बिना कान पूँछ हिलाये चुपचाप अपने काम में लगे रहते थे। पंजी ने अपने भाई बन्धुओं को भी राज्य में भर लिया। उसने अपने लड़के भूपसिंह की शादी तीन जगह जाटों में ही कराई। पंजी उन लोगों को तनक भी पसन्द नहीं करती थी जो सर उठाना चाहते थे। वह खुद फौज लेकर चढ़ जाती थी। अपने कठोर स्वभाव से उसने प्रजा और राज के कर्मचारी सबका ध्यान चड़हतसिंह की ओर कर दिया। यह प्राय. अपनी ननसाल रहता था। एक समय मुहरसिंह महिला और मलोद गॉव के झगड़े निपटाने को कई दिन के लिये बाहर चला गया। राज कर्मचारियों को मौका मिल गया उन्होंने तुरन्त चड़हतसिंह को ननसाल से बुलाकर गद्दी पर बिठा दिया। पंजी को मार डाला और उसके भाई, बन्धुओं को भगा दिया। भूपसिंह भी भाग गया। जब मुहरसिंह ने यह खबर सुनी तो फरीदकोट पर चढ़ाई की किन्तु उसमें सफल न हुए। इसके बाद भी हमले किये फिर भी सफलता न मिली तब एक रात में मोरी दरवाजे में होकर किले में भीतर घुस गये। भारी खून खराबी हुई। फिर भी उनकी मंशा पूरी न हुई और लौटकर पक्खा नायक गॉव में रहने लगे।

तंग आकर चड़हतसिंह ने बहुत सारी सेना इकट्ठी करके और कुछ नाभा से किराये पर मंगाकर बाप के ऊपर आक्रमण किया। पम्पा गाँव में दोनों ओर से लड़ाई हुई। इस लड़ाई से प्राण बचाकर मुहरसिंह राज्य के बाहर मुदकी की ओर भाग गया। वहाँ से कुछ दिन बाद मुदकी के रईस की मदद

गुलाबसिंह थीं क्योंकि फैजूसिंह उनका सगा भाई ही तो था। गुलाबसिंह ने गुरुमुखी पढ़ने और अस्त्र शस्त्र चलाने में योग्यता हासिल करली थी।

फैजूसिंह ने सबसे पहले राज की सीमा बॉधने का काम किया। उसने सीमा पर अपनी चौकियॉ और गढ़ियॉ स्थापित करना शुरू किया। इस काम के करने मे इन्हे फीरोजपुर की रानी लक्ष्मनकौर और खुडिया के पठानों ले लड़ना पड़ा। कहने का मतलब यह है कि फैजूसिंह बडी योग्यता और वफादारी के के माथ राज्य का काम चला रहा था।

उधर महाराज रणजीतसिंह जी का दीवान मुहकमचन्द धीरे-धीरे बराड राज्यों के कुछ हिस्से हड़प कर रहा था। उसने जोरा, चूडा, मुदको, कोटकपूरा और माड़ी को अबतक जीत कर रणजीतसिंह के साम्राज्य मे मिला दिया था। सन् १८०६ मे मुहकमचन्द ने फरीदकोट पर भी चढ़ाई कर दी किन्तु पानी की कमी से उसे घेरा उठा लेना पड़ा। फैजूसिंह ने एक घोड़ा और कुछ नकद देकर उसे वापिस कर दिया किन्तु महाराज रणजीतसिंह जी तो यह चाहते थे कि अधिक से अधिक देश उनके हाथ आ जाय इसलिये कुछ समय के बाद कर्मसिंह के नायकत्व मे फिर सेना भेजी। फैजूसिंह ने विवश होकर किले की चाबियॉ कर्मसिंह के हाथ सौंप दीं। उस समय महाराजा रणजीतसिह फीरोजपुर मे थे। उन्होंने फरीदकोट पहुॅच कर खजाने को अपने कब्जे मे कर लिया और गुलाबसिंह तथा उसके परिवार को गुजारे के लिये कुछ गॉव देकर राज्य से बेदखल कर दिया किन्तु सन् १८०७ मे उन्होंने फरीदकोट को गुलाबसिंह को ही वापिस दे दिया। कारण कि अंग्रेजों से जो मैत्री हुई थी उसके अनुसार सतलज इस पार के इलाकों को वह अपने पास नहीं रख सकते थे। इस पार के सारे राजा रईस मिल कर अंग्रेजो की शरण मे अपनी रक्षा की खातिर रणजीतसिंह जी के विरुद्ध आ चुके थे। यह भी महाराज रणजीतसिंह को पता चल गया था।

रियासत के वापिस आते ही फैजूसिंह ने पूर्ववत कार्य आरम्भ कर दिया चूकि रियासत का सम्बन्ध अंग्रेजों से हो गया था अत बाहरी आक्रमण का तो डर था ही नहीं। फैजूसिंह ने हदबन्दी का अधूरा काम फिर शुरू किया जहाँ जहॉ झगड़े खडे हुये पोलिटिकल एजेन्ट ने बीच में पड कर फैसला करा दिया। इसलिये खून खराबी की भी नौबत नहीं आई। फरीदकोट की ओर से फैजूसिह ने मुहकमसिंह को वकील बनाकर अम्बाले मे एजेन्ट के पास भेज दिया। फैजूसिंह ने राज्य की आमदनी बढ़ाने का भी कार्य किया।

गुलाबसिंह ज्यों-ज्यों सयाने होते जाते थे राज काज में भी भाग लेते थे। जवान होने पर तो वे पूरा दखल देने लगे। अब तक राज्य का मजा फैजू ने अकेले लिया था अब उसे चिन्ता हुई कि गुलाबसिंह को अधिकार मिलने ही वाले हैं। तब मेरी कदर घट जायगी। इसलिये उसने साहबसिंह के साथ मिलकर षडयन्त्र किया और एक दिन जब कि गुलाबसिंह सैर सपाटे से लौट कर आ रहे थे फैजू और साहबसिंह के आदमियों ने उन्हे मार डाला। गुलाबसिह एक छोटा लड़का—अतरसिंह नाम का पीछे छोड़गया।

अम्बाले मे जब पोलीटिकल एजेन्ट को यह खबर लगी तो वे जॉच करने के लिये फरीदकोट आये। गुलाबसिंह की रानी ने साफ कहा कि उनको साहबसिह और फौजू ने मारा है किन्तु फैजू ने अपनी पुरानी सेवाओं को याद दिलाकर एजेन्ट के दिल से इस ख्याल को दूर कर दिया। एजेन्ट साहब साहबसिंह को नजरबन्द बना कर अम्बाला ले गये किन्तु सबूतों के अभाव मे उन्होंने साहबसिंह को

सन् १८३८ मे अफगानिस्तान अंग्रेज युद्ध के समय राजा साहब पहाड़सिंह जी ने ऊँट घोड़े, बैलगाड़ी, खलासी जो कुछ भी अंग्रेजों ने मागा दिया। उन्होंने अपनी ओर से किसी भी किस्म की कमी सहायता देने में न रहने दी।

इसके सात साल बाद जब अंग्रेजों और खालसा वीरों की लड़ाई हुई तो आपने अंग्रेजो का पक्ष लिया और फीरोजपुर में घिरे हुये मि० लिटलर को बचाने में आपने अपनी बुद्धि का परिचय दिया। रसद आदमी और रुपये पैसे से सब प्रकार अंग्रेजों की मदद की। यही नहीं वे खुद भी लड़ाई मे काम आये। उनके बड़े लड़के वजीरसिंह भी इस लड़ाई में अंग्रेजो के साथ रहे। इन सेवाओं से खुश होकर लड़ाई की समाप्ति पर अंग्रेज सरकार ने महाराज वजीरसिंह को एक सनद दी जिसके अनुसार फरीदकोट के सरदारों को राजा का खिताब और खिलअतें भी बख्शी गई थीं। यह सनद २४ मार्च सन् १८४६ को दी गई थीं। इसके सिवा इलाका मुकसर भी मिला।

राजा पहाड़सिंह जी के चार रानियां थीं। बड़ी से वजीरसिंह पैदा हुए थे और दूसरी रानी से दीपसिंह और अनोखासिंह। शेष दो के कोई सतान न थी। राजा साहब ने अपने यहा से कन्या वध और सती की प्रथा कानूनन बंद करा दी थी। अवसर मिलने पर कुछ आबादी भी की थी।

अपने पिता के मरने के बाद वजीरसिंह जी गद्दी पर बैठे। उन्होंने आरम्भ से प्रजा की भलाई के कामों मे अपना समय खर्च किया। बस्तियां आबाद कराईं। खेती को उजाड़ने वाले पशुओं का दमन कराया। घमण्डीसिंह को जिसने कि युद्ध मे अंग्रेजों के पक्ष में बड़ी बहादुरी दिखाई थी फरीदकोट का बख्शी बना दिया किन्तु यह आदमी लुटेरों से मेल रखता था। जब महाराज वजीरसिंह को मालूम हुआ तो उसे हिरासत मे ले लिया। कुछ दिन बाद उसे छोड़ दिया गया और वह फिर राज्य से भाग गया। महाराज और उनके सच्चे साथी लोग राज्य की आबादी और आमदनी बढ़ाने तथा बेकार भूमि को खेती योग्य बनवाने मे लग गये।

वजीरसिंह

इधर सन् १८५७ आ गया और सारे देश में मारो-मारो और निकालो-निकालो की ध्वनि छा गई। उस समय महाराज वजीरसिंह जी ने अंग्रेजों की खूब मदद की। नाभा राज्य का एक सामदास नाम का आदमी विद्रोहियों मे मिल गया था और उसने हजारों सिखों को साथ मिला लिया था। वजीरसिंह ने उनका दमन करके पजाब की आग को बहुत कुछ ठंडा कर दिया राज्य से गल्ला देकर अंग्रेज सिपाहियों के प्राण भी बचाये। इस तरह पूरे एक साल तक गदर को दबाने में महाराज वजीरसिंह जी ने अंग्रेजों का साथ दिया।

गदर के शांति हो जाने पर जब अंग्रेजों की जान मे जान आई तो अन्य सहायकों की तरह महाराज फरीदकोट को भी उन्होंने याद किया। उनके जिम्मे की सवारों की सेना माफ की गई। खिलअत भी बढ़ाई गई। अलकाब 'बराड वंश बहादुर राजा साहब' का कर दिया गया। यह बात १२ जौलाई सन् १८५८ की है इसके दो वर्ष बाद गवर्नर जनरल के हुक्म से सेक्रेटरी गवर्नमेंट पजाब ने ११ मई सन १८६० को ग्यारह तोप की सलामी का अधिकार सदैव के लिये दिया।

झंझटों से निवृत्त होने पर महाराज ने सन् १८६१ में फरीदकोट राज्य की जमीन का बन्दोबस्त कराया। महकमा पुलिस की स्थापना की। अपराधों के नियम बनाये। मालगुजारी की शरह मुकर्रिर की। तहसीलें कायम कीं। इसके ६ वर्ष बाद सन् १८६५ मे कोर्ट स्टाम्प का परिचलन किया और धीरे-धीरे अंग्रेजी ढंग पर महकमों का निर्माण करना आरम्भ कर दिया।

यह बता देना उचित होगा कि सन् १८४३ की सनद के अनुसार कोटकपूरा व मौजे सुल्तान खानवाला भी उन्हें मिल चुके थे। इस सनद के द्वारा इस समस्त राज्य पर उनका हक मौरूसी कबूल कर लिया गया था। उनके आन्तरिक प्रबन्ध मे हस्तक्षेप न करने की बात भी कबूल करली गई थी। गद्दीनशीनी का हक भी दे दिया गया था।

महाराज वजीरसिंह ने खजाना रखने का पुराना ढंग बदल दिया। पहले महाजन के यहां रुपया जमा होता था। अब वह किले मे रखने लगे और हिसाब के बाकायदा कागज रक्खे जाने लगे।

सन् १८७४ मे आपने थानेश्वर-कुरुक्षेत्र की यात्रा की किन्तु यह यात्रा आपके लिये दुखदाई साबित हुई और उधर से लौटते ही आप इस संसार से चल बसे।

महाराज वजीरसिंह जी के बाद उनके सुयोग्य पुत्र विक्रमसिंह अपने राज्य के मालिक हुए। उनकी गद्दीनशीनी की रस्म बड़ी धूमधाम के साथ सम्पन्न हुई। उस समय आपकी अवस्था बीस साल की थी। इस उत्सव मे कई बडे बड़े अंग्रेज अफसरों के अलावा पटियाला के महाराज महेन्द्रसिंह जी पधारे थे। आपने उर्दू अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त किया था।

विक्रमसिंह

राज्य की बागडोर हाथ मे आते ही आपने सबसे पहले खजाने का हिसाब देखा क्योंकि बख्शी वीरसिंह पर आपका विश्वास कम था। इसके बाद दीवानी और फौजदारी की अलग अलग अदालतें कायम कीं। मालगुजारी वसूल करने के कायदे बनाये। इन महकमों में उन लोगों को नौकर रक्खा जो इस किस्म का काम अंग्रेजी इलाके में कर चुके थे। खुद भी शासन के मामलों मे खूब दिलचस्पी लेते थे और इतने होशियार हो गये थे कि पंजाब का लेफ्टीनेंट सर हेनरी डेविस भी चन्द मामलात मे आपकी सलाह लेता था क्योंकि वह भारतीय रिवाजों से अनभिज्ञ था।

पजाब को जब अहाता बनाने के लिये सरकार को रुपये की जरूरत हुई थी तो महाराज विक्रमसिंह जी ने विना ही ब्याज के सरकार को छः लाख रुपया उधार दिया था।

सन् १८७८ ई० मे अंग्रेज सरकार ने जब अफगानिस्तान के साथ युद्ध किया तो महाराज विक्रमसिंह ने अपना तोपों का रिसाला मदद को भेजा। वहां आपकी सेना ने खूब नामवरी हासिल की। सन् १८७९ की पहली जनवरी को सरकार ने इस सहायता के बदले मे महाराज को "फरजन्द शहादत निशात हजरत कैसरे हिन्द" का खिताब दिया जिसे महाराज ने दरबार करके स्वीकार किया।

महाराज विक्रमसिंह ने राज्य और प्रजा की उन्नति करने के अलावा अपने धर्म की उन्नति में भी खूब दिलचस्पी ली। आपने अपने ही खर्चे से गुरु-ग्रन्थ साहब की सरल टीका कराई। इस काम को सम्पन्न करने के लिये २० वर्ष तक ज्ञानी लोग लगे रहे और इस काम पर एक लाख रुपया खर्च हुआ। इसके सिवा अमृतसर के गुरुद्वारे पर आपने बिजली का प्रबन्ध कराया। प्रजा में किसी प्रकार का झगड़ा फिसाद न हो। इस बात का वे खूब ध्यान रखते थे। खजाने मे रुपया हो जाने और राज्य में पूरी तरह अमन कायम हो जाने पर आपने फरीदकोट को नये सिरे से बसाना शुरू किया। नये ही ढंग के बाजार, हाट, गली और कूचे बने। बाग, बगीचे, कोठी, मन्दिर धर्मशाला, स्कूल और सफाखानों के बन जाने से फरीदकोट की काया ही बदल गई। पहले से उसकी शोभा कई गुनी हो गई। राज्य मे कई सडके बनाकर प्रजा के लिये आराम पैदा कर दिया।

महाराज विक्रमसिंह के समय मे एक नहर भी निकाली गई जिससे राज्य के एक भू-भाग की सिंचाई होने से प्रजा को बड़ा लाभ हुआ।

आपके तीन औलाद हुईं। दो राजकुमार और एक राजकुमारी (१) राजकुमार बलवीरसिंह और (२) कुँ० राजेन्द्रसिंह दो पुत्र थे। इनमें युवराज बलवीरसिंह का सन् १८६६ ई० में जन्म हुआ था। आपके छोटे भाई आप से दस वर्ष छोटे थे। और बहिन सात वर्ष छोटी जो कि मुरसान के राजा साहब को ब्याही गई। युवराज बलवीरसिंह जी का विवाह रियासत मनी (जिला अम्बाला) के रईस भगवान-सिंहजी की पुत्री के साथ हुआ।

महाराज विक्रमसिंह जी ने फरीदकोट और थानेसर में सदावर्त भी जारी किये जहाँ गरीबों को भोजन वस्त्र दिया जाता था।

कहा जाता है किन्हीं कारणों को लेकर महाराज और राजकुमार बलवीरसिंह जी में गहरी अनबन हो गई थी और अन्त समय तक रही। सन् १८६८ के अगस्त महीने में महाराज का स्वर्गवास हो गया। राजकुमार बलवीरसिंह जी उस समय शिमला में थे। वहाँ से उन्हें तार देकर बुलाया गया।

जालन्धर के कमिश्नर मि० सिलकाक की उपस्थिति में बलवीरसिंह जी को राजतिलक किया गया। इसके बाद अच्छे मुहूर्त में महाराज ने राजतिलक के उपलक्ष्य में लोगों को भोज दिया। जिसमें पटियाला के महाराज सर राजेन्द्रसिंह और धौलपुर के महाराज राणा श्री निहालसिंह जी भी

महाराज बलवीरसिंह पधारे थे। इस समय महाराज बलवीरसिंह जी की अवस्था इक्कीस साल की थी। कमिश्नर जालंधर ने प्रसन्नता के साथ आपकी कमर में किरच बाँधी थी और सभी राजाओं ने तोहफे भेंट किये थे। सरकार की ओर से खिलअत प्राप्त हुई।

आपने गुरुमुखी, उर्दू और अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त की थी। चार साल अजमेर के मेयो कालेज में भी आप रहे थे। छोटे भाई राजेन्द्रसिंह जी की शिक्षा के लिये आपने एक अंग्रेज ट्यूटर रख छोड़ा था। जिसे छः हजार सालाना वेतन देते थे। किन्तु शोक है कि राजेन्द्रसिंह जी की बीस साल की अवस्था में ही मृत्यु होगई। इससे महाराज बलवीरसिंह जी को बड़ा दुःख हुआ।

महाराज ने राज्य के ओहदों पर परखे हुए लोगों को ही नियुक्त किया। क्योंकि राज्य फरीदकोट में ओहदेदार और अहलकारों ने भी काफी खून-खराबियाँ करवाई थीं। जो लोग पिछले समय में आपसी झगड़ों या कुशासन के भय से राज्य छोड़कर भाग गये थे। उन सबको बुलाकर आपने राज्य में बसाया और जो नौकरी करना चाहते थे। उन्हें नौकरियाँ दीं। सन् १८६६ ई० में अफ्रीका के युद्ध में कुछ घोड़े देकर भी महाराज ने सरकार की सहायता की। जिसके बदले में उन्हें धन्यवाद मिला।

महाराज बलवीरसिंह जी को प्रजा की उन्नति की बड़ी चिन्ता रहती थी। उन्होंने कई तालाब और बावड़ी भी बनवाये थे और जब राज्य में लगातार पाँच वर्ष का अकाल पड़ा तो मालगुजारी तो आपने माफ की ही किन्तु राज्य के खर्चों से नाज भी बाँटा। बिना ब्याज के कर्ज बाँटा।

सन् १६०० की ३० अक्टूबर को आपने एक दरबार में निम्न घोषणायें कीं।

(१) स्कूल मिडिल को बढ़ाकर मैट्रिक तक कर दिया जावेगा।

(२) मेला मवेशी फरीदकोट की तरह कोटकपूरा में भी लगा करेगा।

(३) अदालतों के कायदे कानूनों में सुधार किये जावेंगे और अदालतों के लिये मकान भी बनवाये जावेंगे।

(४) मुसाफिरों के लाभ के लिये रेलवे स्टेशन के सामने एक वेटिंग रूम बनवाया जावेगा।

इस दरबार में प्रजाजनों ने महाराज से राज्य का दौरा करने की प्रार्थना की, जिसे महाराज ने

स्वीकार करके राज्य का दौरा किया और देखा कि प्रजाजनों को क्या २ असुविधायें हैं।

महाराज को चित्रकारी से बड़ा शौक था। मकानात के नक्शे भी अक्सर वे ही तैयार करके कारीगरो को देते थे।

सन् १६०८ ई० मे ऐसे योग्य महाराज का स्वर्गवास हो गया। आपने कोई राजकुमार न छोड़ा था। इसलिये उनके छोटे भाई राजेन्द्रसिंह जी के लड़के ब्रजेन्द्रसिंह जी गद्दी पर बिठाये गये।

गद्दी पर बैठने के समय महाराज ब्रजेन्द्रसिंह नाबालिग थे। अत. राज्य का प्रबन्ध करने के लिए रेजेंसी कौंसिल की स्थापना की गई। महाराज को चीफ्स् कालेज में शिक्षा पाने के लिये भेज दिया गया।

महाराज ब्रजेन्द्रसिंह

शिक्षा प्राप्त करने के बाद से वह फरीदकोट मे ही रहने लगे। २० वर्ष की अवस्था होने पर सरकार ने सन् १६१६ के २४ नवम्बर को आपको राज्य के कुल अधिकार सौंप दिये। उन दिनों अंग्रेजों और जर्मनों मे युद्ध हो रहा था। महाराज ने अंग्रेजों को इस युद्ध मे धन-जन से पूर्ण सहायता दी। इसलिये सरकार ने उनको मेजर की उपाधि से विभूषित किया। आपने अपने समय शिक्षा की उन्नति के लिये ब्रजेन्द्र हाईस्कूल की स्थापना की और स्त्रियों के स्वास्थ्य की हित दृष्टि से जनाना अस्पताल बनवाया। आपही के समय मे राज्य में वाटरवर्क्स, टेलीफून और बिजलीघर की स्थापना हुई। जिससे फरीदकोट की रौनक दुचन्द होगई।

महाराज ब्रजेन्द्रसिंह की इच्छा थी कि राज्य को अंग्रेजी इलाके की तरह सुसम्पन्न और उन्नतशील बनांवे। किन्तु उनकी जिन्दगी ने उनका साथ नहीं दिया और केवल दो ही वर्ष राज्य करके २३ दिसम्बर सन् १६१८ ई० को केवल २२ वर्ष की अवस्था मे इस संसार से प्रस्थान कर गये। प्रजा को आपके वियोग से बड़ा कष्ट हुआ। चूंकि आपकी बहिन श्रीमती राजेन्द्रकौर जी भरतपुर के यशस्वी महाराज श्री कृष्णसिंह जी के साथ ब्याही गई थीं। जब यह समाचार भरतपुर पहुँचा तो वहाँ भी सारे राज्य मे शोक मनाया गया।

महाराज ब्रजेन्द्रसिंह जी के स्वर्गवास के बाद उनके सुपुत्र श्री हीरेन्द्रसिंह जी गद्दी पर बिठाये गये। उस समय उनकी अवस्था कुल तीन वर्ष की थी। अत राज्य का प्रबन्ध कौंसिल के सुपुर्द हुआ।

महाराज हीरेन्द्रसिंह

आपका जन्म २८ जनवरी सन् १६१५ ई० मे हुआ था। आप अपने पिता के दो पुत्र है। छोटे राजकुंवर का नाम मनजितेन्द्रसिंह है। सन् १६२५ ई० मे दोनों भाई चीफस् कालेज मे भर्ती हुये। महाराज श्री हीरेन्द्रसिंह जी पढ़ने लिखने में बडे तीव्र थे। सन् १६३२ ई० मे डिप्लोमा की परीक्षा आपने बड़ी सफलता के साथ पास की। अंग्रेजी के मजमून मे सर्वश्रेष्ट रहने के कारण आपको गाडले मैडिल मिला। इतिहास और भूगोल के निबन्ध मे भी आप प्रथम रहे थे।

सन् १६३७ के आरम्भ मे आपको राज्याधिकार प्राप्त हो गये। राज्याधिकार समारोह मे धौलपुर और पजाबी राज्यो के कई महाराजगण पधारे थे। आपने प्रजा-सुधार के कार्य गद्दी पर बैठते ही आरम्भ कर दिये थे। रिश्वत को मिटाने के लिये भी आपने घोषणा की थी। प्रजा को आपसे बडी आशाये थीं। आप नरेन्द्र मण्डल के भी सदस्य थे। सन् १६४८ मे फरीदकोट पेप्सू में मिला दिया गया।

बाईसवाँ अध्याय

पटियाला राज्य का इतिहास

काश्मीर को छोड़कर पटियाला पंजाब की सबसे बड़ी रियासत है और जहां तक हम समझते हैं। राजा का खिताब भी पंजाब की सिख रियासतों में सबसे पहिले इसी रियासत के संस्थापक आलासिंह जी को मिला था। पटियाला राज्य का क्षेत्रफल ५९३२ वर्ग मील और जनसंख्या १४९९७३९ थी। सालाना आमदनी (१६३०००००) बताई जाती थी। यह राज्य तीन भागों में विभक्त है जिनमें सबसे बड़ा हिस्सा दक्षिणी किनारे पर है। दूसरा शिमला के पर्वतीय प्रदेश में और तीसरा नारनौल का परगना है। जो राजधानी से १८० मील दूर है। इस राज्य की स्थापना १८ वीं शताब्दी में सरदार आलासिंह जी द्वारा हुई थी।

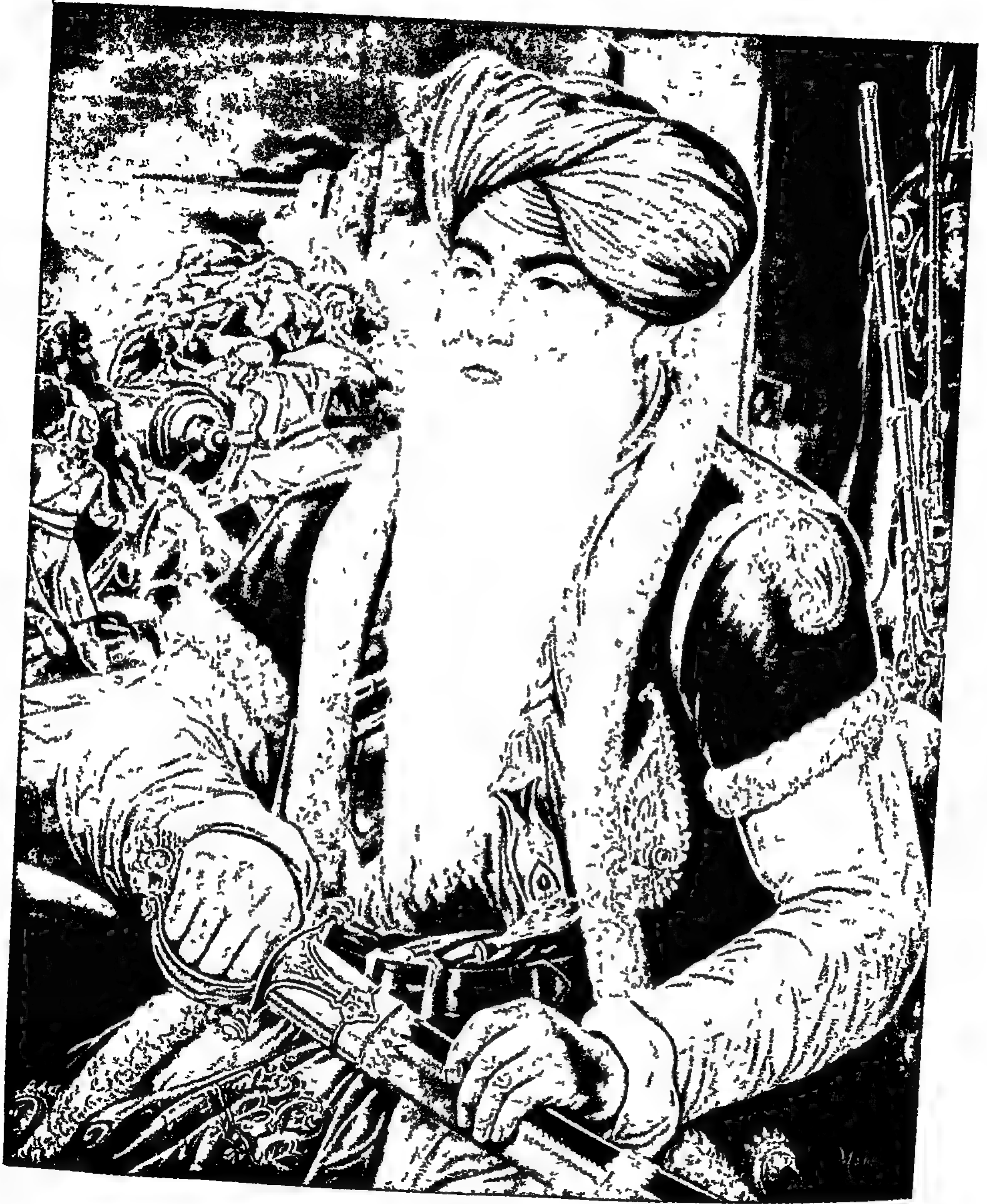
पटियाला का खान्दान फुलकियां मलोई कहलाता है। फुलकिया चौधरी फूल के नाम पर और मलोई मालवा (पंजाब-स्थित) में रहने के कारण नाम पड़ा।

प्रभास क्षेत्र में यादवों के सर्व-सहारकारी युद्ध के बाद यादवों के अनेक कबीले काठियावाड़ (द्वारिका) को छोड़कर इधर उधर फैल गये। उनमें से कुछ गजनी की ओर, कुछ जदू का डूंग (पंजाब) में और कुछ गुजरात, सिन्ध, पंजाब और राजपूताने में फैल गये। सिंध और जैसलमेर के मध्य का और पंजाब के पश्चिम दक्षिण का भाग जिसका कि केन्द्र वर्तमान भटिंडा है। भतियाना कहलाता था जिसकी एक नोक सिन्ध की प्राचीन राजधानी अलोर तक चली गई थी। इसके पड़ोसी इलाके चोलिस्तान, माझ, और मालवा के नाम से प्रसिद्ध हुए थे। गजनी से लौटने के बाद यहा इस भाटी समुदाय ने एक नई लहर देखी और वह लहर थी बौद्ध धर्म के विरुद्ध हिन्दू धर्म की। हिन्दू धर्म ने पुराने क्षत्रियों के लिये घोषणा कर दी थी कि कलियुग में क्षत्रिय वर्ण ही नहीं है। इसका अर्थ यही था कि पुराने क्षत्रिय प्राय. बौद्ध हो गये हैं और वे लड़ने-भिड़ने से उदासीन हो गये हैं। अत. उनका क्षत्रियत्व नष्ट हो गया है। ब्राह्मणों का ऐसा कहने का एक दूसरा कारण भी था। वह यह कि बौद्ध धर्म वर्ण प्रथा को महत्त्व नहीं देता था हालांकि वर्ण प्रथा को उसने नष्ट भी नहीं किया था। जैन लोगों ने खुल्लमखुल्ला घोषणा कर दी कि वर्ण तीन ही हैं। क्षत्रिय वैश्य और शूद्र। बौद्ध और जैन दोनों ही धर्म क्षत्रिय राजकुमारों द्वारा चलाये गये थे, अत. क्षत्रियों का उस ओर झुकाव भी खूब हुआ था। इस हेतु भी ब्राह्मण धर्म को जो कि बौद्धों-जैनों के विरोध में खड़ा हुआ था यह घोषणा करनी पड़ी कि कलियुग में क्षत्रिय वर्ण नहीं।



वावा आला सिंह

महान् सेनापति



सरदार हरिसिंह नलुवा

हायाले, इनायतखॉ विलायतखॉ बूलाडावाले और वाकिरखॉ हरियाऊवाले सब पर चढाई की। जो गातार मौका ब मौका १२ वर्ष तक चली। सन् १७४१ ई० मे अलीमुहम्मदखॉ सरहिंद का हाकिम कर आया कुछ दिनों तक आलासिंह जी ने मिलकर उसके साथ काम किया। कोट और जगरवॉ की डाइयों मे भी दोनों साथ-साथ रहे। आगे चलकर आलासिह को मालूम हुआ कि अलीमुहम्मद उन्हे ाडलिक समझता है। अत वे उसमे स्वतत्र होने की तैयारी करने लगे। अलीमुहम्मद को भी इस तैयारी ा पता चल गया। इसलिये उसने सरदार आलासिंह जी को कैद कर लिया। सरदार आलासिंह जी का रमा नाम का एक नौकर बड़ा होशियार था। उसने सरदार आलासिंह को सुनाम के क़िले[1] से ठीक उसी कार निकाल दिया। जिस प्रकार कि महाराज शिवाजी को उनके राजभक्त सरदार हीरा जी ने नेकाल दिया था। वह उनकी जगह सो गया और सरदार आलासिह उसके कपडे पहन कर निकल गये। बाहर उनके अनेको साथी तैयार ही थे। इस प्रकार रिहा होकर सरदार आलासिंह जी बरनाला आ गये और कर्मा को सीमा नाम का गॉव जागीर मे दिया तथा उसके ओहदे में भी तरक्की करदी। इसके कुछ ही दिन बाद अलीमुहम्मद को बादशाह ने हटा दिया और अबुलसमदखॉ को सरहिन्द का हाकिम बनाकर भेजा। अलीमुहम्मद यू० पी० मे चला गया और उसकी संतान आजकल रामपुर के नवाब कहलाते हैं।

अलीमुहम्मद अगर बदल न जाता तो सरदार आलासिंह अवश्य ही उससे बदला लेते। अब वे अपना राज्य बढ़ाने मे लग पड़े। भटिंडा के सरदार जोधसिंह को उसके हित के लिये सदैव मदद देते रहे।

सन् १७४७ ई० मे मौजा ढहूदान मे एक किला बनाने की उन्होंने तैयारी की। इस मुकाम के पास काकड़े मे फरीदखॉ नाम का एक मुस्लिम राजपूत थोड़े से इलाके को दबाये बैठा था। फरीदखाँ ने आलासिंह को अपना कांटा समझ कर समाना के हाकिम से सहायता की याचना की। उसके पास सहायता आये इससे पहिले आलासिंह जी के कुछ आदमियों ने अमरसिंह के नेतृत्व मे फरीदखॉ के इलाके पर कब्जा कर लिया। फरीदखॉ इस मुठभेड़ में काम आगया।

सरदार आलासिंह के इस प्रकार के बढ़ते हुए शौर्य और प्रताप को देखकर परगना सनौर के जमीदार जिनके कि ८४ गॉव थे। स्वेच्छा से आलासिंह जी की मातहती मे आ गये। इस परगने की हिफाजत के लिये सरदार आलासिंह ने अपने साले गुरुबख्शसिंह को मुकर्रिर किया और एक मजबूत किला बनाया। यही किला और नगर आज पटियाला जिसके कि माने आलाका पट होते हैं—कहलाता है।

भटिंडा के सरदार से आलासिंह का मेल था। किन्तु वह मेल इस बात पर टूट गया कि भटिंडा के सरदार जोधसिंह ने आलासिंह के साले गुरुबख्शसिंह की मगनी को अपने लिये स्वीकार कर लिया। शादी भी करली। सरदार आलासिंह ने कुछ मिसल-पतियों को अपनी सहायता के लिये बुलाकर भटिंडा पर चढ़ाई कर दी। जोधसिंह हार गया और भटिंडा आलासिंह जी के अधिकार मे आगया। इसके बाद भोलेडा और बूहा के मुस्लिम राजपूतों को परास्त करके उनके भी इलाके अपने राज्य मे मिला लिये। भोलेड़ा अपने साले को दे दिया।

सन् १७५७ तक उन्होंने नौ-मुस्लिम भट्टियों से मूनक, टोहाना, जमालपुर, धार सूल और सिकरपुरा को अपने कब्जे में कर लिया। पड़ौस मे मालेरकोटला पर हाथ साफ किया और उसके इलाके के शेरपुर और पहोड़ नामक कस्बों पर अपना अधिकार जमा लिया। मालेरकोटला के नवाब जमालखॉ के बेटे

१ अली मुहम्मद ने लाकर यहीं उन्हें बन्द कर रक्खा था।

भीखम के पास एक बढ़िया तलवार थी उसे भी आलासिंह जी के पौत्र हिम्मतसिंह ने छीन लिया। लड़ाइयो मे उनके पुत्र लालसिंह और पौत्र हिम्मतसिंह भी बराबर शामिल होते थे।

इन दिनों भारत पर अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण होने आरंभ हो गये थे। वह अपने जीते हुए प्रदेशो पर अपने हाकिम मुकर्रिर करके देश के जनमत को अपने कब्जे में करने की कोशिश कर रहा था। नवाव मालेरकोटला ने अहमदशाह के पास सरदार आलासिंह जी की शिकायत भेजी।

जिस समय वरनाला पर अहमदशाह ने चढ़ाई की उस समय किले मे रानी साहिवा फतेहकुंवरि थीं। रानी फतहकुंवरि बड़ी बुद्धिमान थीं उन्होंने अपने चार सरदारों को अहमदशाह के कैम्प मे इसलिये भेजा कि वे उसके साथ सुलह की बातचीत करे और आप अपने पौत्र अमरसिंह के साथ मूनक की ओर निकल गई। सरदार आलासिंह जी के पास जब यह समाचार पहुँचा तो उन्होने बड़ी बुद्धिमानी के साथ अहमदशाह को खुश कर लिया कुछ धन दौलत भी भेट किया। अहमदशाह उनसे खुश हो गया और उन्हे अपना मांडलिक बनाकर सरहिन्द के हाकिम के नाम इस आशय का पत्र लिख गया कि "आलासिंह के अधिकृत इलाके को अपने से अलग समझो।" उस समय ७२६ गॉव और कस्बे आलासिंह जी के कब्जे मे थे सिख लोग जो मिसल वाले थे, वे सरदार आलासिंह से इस बात पर नाराज भी हुए कि उस लुटेरे से क्या सन्धि करनी थी। किन्तु आलासिंह जी ने अपनी स्थित समझा कर सब को संतुष्ट कर दिया और फिर उनके साथ सरहिन्द पर चढ़ाई भी की जिसमे अहमदशाह का नियुक्त हाकिम जीन खॉं मारा गया। सिखों ने सरहिन्द की ईंट से ईंट बजादी, उसे लूट लिया और उसके अधीनस्थ इलाके को मिसल पतियों ने आपस मे बॉट लिया। आलासिंह ने तोपो और अपने नजदीक के इलाके पर कब्जा किया। कहा जाता है सरहिन्द की लूट के धन से पटियाला का मजबूत गढ़ वनाया गया और शहर को रौनक दी गई। सरहिन्द विजय की घटना सन् १७६२ ई० की है।

जीनखॉ के मारे जाने व सरहिंद बर्बाद किये जाने का समाचार जब अहमदशाह को मिला तो वह बड़ा नाराज हुआ और एक बड़ा लश्कर लेकर पंजाब मे घुस पड़ा। सिख जत्थे पहाड़ों और झाड़ियों मे चले गये और उसे रास्ते मे कई बार छापे मारकर तग किया। सरदार आलासिंह उसके पास पहुँचे और उसके दिमाग मे यह बात भली प्रकार बिठा दी कि आज सिखों की ताकत इतनी प्रबल है कि उनके विरुद्ध सग्राम जारी रखके अपनी हुकूमत को पजाब मे कोई भी स्थिर नहीं रख सकता है। प्रत्येक हाकिम की वही दशा होगी जो जीनखॉ की हुई है। अहमदशाह ने आखिरकार समझ सोच कर साढ़े तीन लाख सालाना के खिराज पर सरहिन्द का सारा बचा हुआ इलाका आलासिंह को दे दिया और साथ ही उन्हे राजा का खिताब भी बख्शा।

राजा आलासिंह जी के तीन पुत्र थे (१) कुंवर शार्दूलसिंह (२) भूमियानसिंह (३) लालसिंह। एक लड़की प्रधान नाम की थी। ये तीनों ही भाई प्रत्येक लड़ाई मे अपने वहादुर पिता के साथ रहते थे। यह वडे होनहार और वहादुर थे किन्तु वे अपने पिता से भी पहले वीरों की भॉति युद्ध भूमियो में इस ससार से चल वसे। इनमें कुंवर शार्दूलसिंह ने अपने पीछे अमरसिंह और हिम्मतसिंह नाम के दो राजकुमार छोड़े। शार्दूलसिंह जी के दो रानियां थीं। एक तो हुक्मकौर थीं जो विवाहित थीं। दूसरी रेसां या रेशमकौर उनके चेचरे भाई जोधसिंह की वेवा थीं। जिससे कि उन्होंने आनन्द पढा लिया था।

सन् १७६५ ई० की २७वीं अगस्त को बुखार मे प्रतापी राजा आलासिंह जी का स्वर्गवास होगया।

महाराज आलासिंह जी ईश्वर भक्त और धर्मप्रिय सरदार थे। सिख धर्म की दीक्षा लेने के लिये

आप नवाब कपूरसिंह को अपने यहाँ लेगये थे और बड़ी धूमधाम के साथ आपने सिख धर्म की दीक्षा ली थी। उनके एक ही रानी थी वे भी बड़े पवित्र थे एकबार अचानक ही भूल से उनकी निगाह एक नंगी नौजवान—लड़की पर गई। इसके लिये उन्होंने प्रायश्चित किया और बड़े दुःखी हुए। अहमदशाह ने जिन लोगों को कैद कर लिया था। आपने उससे कह सुन कर उनमें अधिकांश को छुड़ा दिया था। इसलिये लोग आपको बन्दीछोड़ भी कहने लग पड़े थे। उनकी रानी फतहकौर भी एक बुद्धिमान और बहादुर महिला थीं। विपत्ति के प्रत्येक अवसर पर वह धैर्य से काम लेती थीं। वह सलिक्यान जाट रईसों की लड़की थीं।

महाराज आलासिंह ने जहाँ अपने समय में अनेकों बस्तियाँ आबाद कीं, लड़ाइयाँ लड़ीं, इलाके जीते। वहाँ गरीबों के लिये उन्होंने एक लंगर भी जारी कराया। जिससे गरीब उन्हें दिल भर कर दुआयें देते थे। गर्ज कि वह सब प्रकार से एक अच्छे राजा थे।

राजा आलासिंह जी के बाद उनके पौत्र अमरसिंह जी पटियाला की गद्दी पर बैठे। आपने गद्दी पर बैठते ही राज्य को बनाये रखने तथा भीतरी और बाहरी आक्रमणों की ओट के लिये सबसे पहले सरहदी इन्तजाम की ओर ध्यान दिया। अपने विश्वस्त सरदारों को सरहदों पर मुकर्रिर कर दिया। इसके बाद दूसरे वर्ष मालेरकोटला के पठानों से पायल नामक नगर को छीन लिया।

राजा अमरसिंह

इन दिनों सरदार जस्सासिंह अहलूवालिया एक जबर्दस्त सरदार था अमरसिंह जी ने उससे भी लाभ उठाया उसे बुलाकर मालेरकोटला के इलाकों पर धावा कर दिया और इसरडू को छीनकर अपने राज्य में मिला लिया।

सन् १७६७ में अहमदशाह ने हिन्दुस्तान की ओर फिर कदम बढ़ाया आपने कड़ा और बाना के मुकाम पर उसका स्वागत किया और उसके खिराज का बहुत कुछ हिस्सा अदा किया। जिससे खुश होकर अहमदशाह ने आपको "राजा राजगान" का खिताब और सिक्का प्रचलित करने की भी इजाजत देदी। अहमदशाह के लौटते ही आपने मालेरकोटला के पठानों पर फिर चढ़ाई की। रईस अताउल्लाशाह ने बार-बार की लड़ाईयों को खतम करने के लिये अधीनता स्वीकार कर ली। इसके बाद ही आपने सजोर और मतीम जुरुये के रईस और अधिकारी गरीबदास के इलाके बख्शी लखना के द्वारा जितवाकर अपने राज्य में मिला लिये। सिरमौर का राजा कीर्ति प्रकाश इस बात से बड़ा खुश हुआ। क्योंकि गरीबदास उसे बहुत तंग करता था। इस खुशी में आकर उसने महाराज अमरसिंह जी से पगड़ी-बदल दोस्ती करली। इससे उसे यह भी डर जाता रहा कि उसके राज्य पर भी आंच न पहुँचे।

इन बाहरी झगड़ों से अवकाश पाते ही अमरसिंह जी ने अपने भाई हिम्मतसिंह पर जोकि ढूँढान में रहते थे चढ़ाई कर दी। 'सैरे पंजाब' के लेखक ने लिखा है कि "ढहोढा समेत हिम्मतसिंह के पास २०० गाँव थे। अमरसिंह जी ने सारे जब्त कर लिये किन्तु रानी फतहकुँवरि को यह बात अच्छी नहीं लगी वे अपने पोतों को इस प्रकार लड़ते देख कर दुखी हुईं और उन्होंने दोनों में मेल करा कर हिम्मतसिंह के गाँव वापिस करा दिये।" कहा जाता है हिम्मतसिंह अमरसिंह जी के विरुद्ध बगावत की तैयारी कर रहा था। सर लेपिल ग्रिफिन ने इसका कारण बताया है कि राज्य का अधिकारी बड़ा होने कारण हिम्मतसिंह ही था परन्तु तारीख पटियाला के लेखक ने इस बात को गलत बताया है। बात कुछ भी हो एक बार तो फतो या फतहकौर ने इस झगड़े को शांत कर ही दिया।

भट्टी लोगों के हालांकि पटियाला, नाभा, जींद और फरीदकोट ने अब तक काफी प्रदेश दबा लिए थे किन्तु उनका लूटमार और आक्रमण करना अभी तक भी बराबर जारी था, इसलिये महाराज कर्मसिंह जी ने सन् १८६६ ई० में भटियाना को विजय करने के लिये चढ़ाई कर दी। भगीडान नामक स्थान पर भट्टियों ने भी पूरी तादाद में इकट्ठे होकर मुकाबिला किया। कई दिन की घमासान लड़ाई के बाद भट्टी भाग गये। इस लड़ाई में उनके १४०० आदमी काम आये। पटियाला को भी बहुत हानि उठानी पड़ी। कई सौ आदमी पटियाला के भी मारे गये। सरसा और फतेहाबाद पर इस भारी दल से महाराज ने कब्जा कर लिया। भट्टियों का एक सरदार मुहम्मद अमीनखा भाग कर 'रानियाँ' के किले में जा छिपा था। विजित प्रदेशों पर दखल जमाते हुए महाराज ने 'रानियां' पर भी चढ़ाई कर दी। बीकानेर में उस समय गजसिंह नाम का राठौर राजा राज करता था। उसने भयभीत होकर कर्मसिंह जी से पगड़ी-पलट दोस्ती करली। रानिया पर अभी युद्ध जारी था कि इधर जींद के राजा गजपतिसिंह की खबर आई कि उसके राज्य पर हाँसी के हाकिम मुल्ला रहीमदादखा ने चढ़ाई कर दी है। अत महाराज कर्मसिंह 'रानिया' का घेरा सुखदामसिंह को सुपुर्द करके वापिस लौट पडे और फतेहाबाद पहुँच कर अपने दीवान नानूमल को ५००० सवार देकर जीन्द के राजा साहब की सहायता के लिये रवाना किया। जींद और पटियाले की संयुक्त सेनाओं के सामने रहीमदादखाँ की सेनाये ठहर न सकीं और रहीमदादखाँ लड़ाई मे खेत रहा। दीवान नानमल ने महाराज जींद की रजामन्दी से उसके अधिकृत प्रदेश हांसी,हिसार,रोहतक, तोसाम और मुहिम पर कब्जा करके पटियाले के राज्य में मिला लिया। रोहतक और गोहाना के कुछ भाग राजा साहब जींद को दे दिये। इस लड़ाई मे रहीमदादखां के कई हाथी, घोड़े और लड़ाई का दूसरा सामान भी हाथ लगा। यह घटना १७७८ ई० की ही है। इसके चार महीने बाद ही खबर मिली की रानियाँ का किला भी जीत लिया गया है। भाटियों ने सुलह करली जिसके अनुसार वे भटनेर के किले में चले गये और सरसा का कुल इलाका उन्होंने पटियाला के लिये छोड़ दिया।

रहीमदादखाँ के मारे जाने और उसका इलाका पटियाला द्वारा दबाये जाने की यह खबर जब देहली पहुँची तो वजीर नजफखां ने अलीखां की मातहती मे एक बड़ी सेना इस बात का पता लेने के लिये पंजाब को रवाना की। किन्तु फुलकिया सरदारों ने लड़ाई की बजाय सुलह करली। जिसके अनुसार हांसी, हिसार, रोहतक और मुहिम के कुल इलाके बादशाह देहली को वापिस कर दिये और गुहाना आदि सात गांव जींद के लिए रख लिये और भाटियों के विजित प्रदेश पर पटियाला का अधिकार स्वीकार कर लिया।

जिस समय कि अमरसिंह जी नये-नये देश जीतने में लग रहे थे पजोर के इलाके पर गरीबदास और हरीसिंह ने पुनः कब्जा कर लिया। महाराज कर्मसिंहजी ने महासिंह और पाखरसिंह नाम के सेनापतियों की अध्यक्षता मे गरीबदास को दण्ड देने के लिये भेजा। गरीबदास तो थोड़ी सी लड़ाई के बाद ही हिम्मत हार कर अमरसिंह जी की शरण मे आ गया। किन्तु हरीसिंह ने जस्सासिंह रामगढिया, कर्मसिंह शहजादपुरिया और गुरुबख्शसिंह अम्बाला वालों को अपनी सहायता के लिये बुला लिया। इस प्रकार की भयंकर लड़ाई हुई जिसमें बख्शी लखना मारा गया। नानूमल दीवान जख्मी हुआ और ३००० सैनिक खेत रहे। फत्तूसिंह और महासिंह दुश्मनों ने गिरफ्तार कर लिये। महाराज अमरसिंह इस समाचार मे बडे चिन्तित हुए किन्तु हिम्मत करके वह पुनः सेना इकट्ठी करने लगे। उन्होंने जींद के राजा गजपतिसिंह, नाभा के रईस हमीरसिंह, कैथल के सरदार भाई बन्नासिंह, भदौड़ के मालिक सरदार चोडहट-

सिंह, मलोद के सरदार दलेलसिंह और फगवाड़े से बहिन राजेन्द्रकौर तथा राहून से सरदार तारासिंह जी आदि को मय फौज रिसाले के अपनी सहायता को बुला लिया। यह सयुक्त सेना लगभग चालीस हजार थी। मांझ के सिख जो कि हरीसिंह के मददगार थे छोटी २ लड़ाइयों द्वारा इस दल को छकाते रहे अन्त मे महाराज अमरसिंह के साथियों ने उनको कुछ ले दे कर हरीसिंह से अलग कर दिया। हरीसिंह इस कौतुक को देखकर एक दम हक्का-बक्का हो गया और लाचार होकर एक घोडा भेट में लेकर अमरसिंह जी की सेवा मे हाजिर हुआ। महाराज ने उस समय तो उसे माफ कर दिया किन्तु कुछ ही दिनो बाद उसके इलाके स्यालवा को अपने राज्य मे मिला लिया। कारण यह बताया कि हरीसिंह से जो युद्ध हुआ था उसमे हमारा दस लाख रुपया बर्बाद हुआ है। और जो आदमी मारे गए वह अलग रहे।

हरीसिंह को दवाने मे पटियाला के दस लाख खर्च हो गये होंगे पर फिर भी उनके खजाने मे अतुल धन राशि थी। उनके पास जितना इलाका था, उससे काफी आमदनी होती थी। हरेक लड़ाई मे काफी लूट होती थी। राजा आलासिंह के समय से बराबर खजाना बढ़ ही रहा था। उनकी अपार धनराशि का पता तो इससे चलता है कि उन्होंने अपनी बहिन चद्रकौर और साहबकौर की शादियों मे बारह लाख रुपये खर्च किये थे। कई लाख रुपये मॉझ के सिखों को इस बात के लिये दिये थे कि वे पटियाला के इलाकों को न लूटे।

राज्य बढ़ाने, धन-सग्रह करने और पड़ोसी मित्र राजाओं की मदद करने आदि के जहाँ उनमें अनेकों गुण थे—वहाँ शराब पीने का एक दुर्गुण भी था जो बहुत ज्यादा मात्रा मे था। अन्तिम दिनों मे आप इतनी शराब पीने लगे कि उसके ही कारण केवल ३४ वर्ष की अवस्था मे आपका देहावसान हो गया।

अपने पिता के स्वर्गवास पर साहबसिंह गद्दी के मालिक हुए, उस समय (सन् १७८१ ई० मे) आपकी अवस्था केवल ७ वर्ष की थी। अत. राज-काज दीवान नानूमल की देख-रेख मे चलने लगा।

महाराज साहबसिंह

नाबालिगी से फायदा उठाने की हर किसी को इच्छा रहती है सभी यह चाहते है कि मेरा ही हुक्म चले। इसी प्रकार के कारणों को लेकर कुछ सिख सरदार दीवान नानूमल से नाराज रहने लगे। सरदार महासिंह जो कि रानी देसू के भाई और भवानीगढ़ के रईस थे बागी होगये। उन्होंने भवानीगढ को स्वतन्त्र होने की घोषणा कर दी। नानूमल ने महासिंह को दवाने के लिये भवानीगढ़ पर चढ़ाई की। लगभग चार महीने के युद्ध के बाद महासिंह काबू मे आया। उससे दीवान नानूमल ने चार लाख रुपया जुर्माने का वसूल किया। यह विद्रोह अभी भली प्रकार दबा भी न था कि कोटसमेर के रईस बख्शसिंह सालू की विधवा राजकौर जो कि भटिंडा के रईस सरदार सुखचैनसिंह जी की पुत्री थी विद्रोही हो गई। दीवान नानूमल ने जैसे तैसे इस सरदारनी को भी दबाया। इसके बाद भिक्खी के विद्रोह को दवाने के लिये नानूमल ने भिक्खी पर चढ़ाई की। यहाॅ पर राजा अमरसिंह की रानी खेमकौर के भाई पाखरियासिंह और आसासिंह ने यहाॅ के हाकिम भम्मासिंह बहालीवाला को निकाल कर कब्जा कर लिया था। इस चढाई में रानी हुक्मा ने सेनापतित्व सभाला। आसासिंह भिक्खी को छोड़कर तलवंडी की ओर भाग गया जहाँ उसे रानी की फौज ने गिरफ्तार कर लिया। अन्त में तीन लाख का जुर्माना वसूल किया। लेकिन उनके गुजारे के लिये कुछ गॉव राज्य की ओर से उसे दे दिये गये। रानी हुक्मा राजा साहबसिंह जी की माँ थीं सन् १७८३ ई० मे पटियाला राज्य मे बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा उसमें लोगों के खाने-दाने को कुछ भी पैदा

नहीं हुआ जिसका फल यह हुआ कि राज्य मे हर जगह लूटमार होने लगी और कुछ लोग राज्य को छोड़कर भागने लगे। ऐसे समय मे भी रानी साहिबा ने बड़े धैर्य के साथ राज्य का प्रवन्ध किया।

रानी खेमकौर का एक सम्बन्धी मूलेपुरवाला शार्दूलसिंह भी था वह भी बागी हो गया। इसलिये नानूमल ने उसपर भी चढ़ाई की। २१ दिन तक उसके साथ लडाई रही। इस लड़ाई में शार्दूलसिंह के नौकर खुर्रमवेग की तलवार से नानूमल को बहुत गहरी चोट आई। खुर्रमवेग को तो मार डाला गया किन्तु दीवान नानूमल को लड़ाई से हटना ही पड़ा। रानी हुक्मा भी इस लडाई मे मौजूद थीं। जब उन्होंने दीवान के इस प्रकार जख्मी होने की खबर सुनी तो पटियाले के भविष्य को अन्धकार-मय समझ कर वे बेहोश हो गईं और उसी बेहोशी में उनके प्राण पखेरू उड़ गये। इस मौके से बीबी प्रधान और रानी खेमकौर के सम्बन्धियों ने दीवान नानूमल को कैद कर लिया और राज्य मे काफी गडवड़ मचाने लगे किन्तु ज्योंही यह खबर फगवाड़े में बीबी राजेन्द्रकौर को लगी वे अपनी फौज लेकर पटियाला आ पहुँचीं[1] और सबसे पहले उन्होंने दीवान नानूमल को कैद से छुटाया। राज काज मे सहायता देने के लिये भी पटियाला ही रहने लगीं। दीवान नानूमल राज्य का शुभचिंतक था किन्तु दुर्गुण उसमे भी था वह दरबार मे भी हुक्का पीता रहता था और सिखों की सलाम का जवाब हुक्के की नय से देने लग पड़ा था। भला सिख उसकी इस गुस्ताखी को कब बर्दाश्त कर सकते थे किन्तु नाबालिग महाराज के समझाने से वे चुप रहे। नानूमल की तरह उसके लड़के भी अभिमान मे आ रहे थे।

नानूमल ने बगावतें दबाने मे कोई कसर नहीं रखी। बनेड के बागी खुशहालसिंह को भी जा दबाया और धन्मनसिंह को जिसकी ओर से अन्देशा था जेल मे डालकर राज्य का दौरा शुरू किया। मोलूपुरे जाकर शार्दूलसिंह के घातक हमीरसिंह से किला कब्जे मे किया और वहाँ जितना भी रुपया खजाने मे था पटियाला रवाना कर दिया। यहाँ से कोटकपूरा जाकर वहाँ के रईस से २० हजार नजराना वसूल किया और बराड़ लोगों से अपने राज्य की सरहद अलग करने के उद्देश्य से कोटकपूरा के पास ही एक किला बनवाया। भट्टियों के गाँव जो विद्रोही हो गये थे कोटकपूरा से लौट कर उन्हें भी ठीक किया।

इसके बाद पटियाला मे आकर महाराज साहबसिंह का विवाह भंगई मिसल के सरदार गंडासिंह की लड़की रतनकौर के साथ बड़ी धूम-धाम के साथ किया।

सियालवा के हरीसिंह को भी जिसके पास कुछ ही गाँव राजा अमरसिंह ने रहने दिये थे। मदद दी और उसको कुछ इलाके भी जितवा दिये। यह इलाके सिंहपुरियावालों के कब्जे से निकलवाये थे। इस लड़ाई मे कई सौ आदमी पटियाला के मारे गये।

अब तक प्राय सभी सिख दरबारी दीवान नानूमल से नाराज हो चुके थे। एक बीबी राजेन्द्रकौर ही थीं जो उससे बिगाड़ना न चाहती थीं। किन्तु उसकी एक बात ने बीबी साहिबा को भी नाराज कर दिया। वह बात यह थी :—

"मरहठे सरदारों का एक दल रानी खाँ की मातहती मे पंजाब आ निकला। नानूमल ने बीबी साहिबा से कहा कि आप भटिंडा चली जायें। वरना मरहठों को नजराना देने की फिकर करनी पड़ेगी। बीबी जी इस बात से नाराज होगई। मरहठों के पंजाब में आने पर जब नानूमल उनसे मिलने गया तो बीबी साहिबा ने उसके लड़के दत्तामल को इसलिये गिरफ्तार कर लिया कि शायद नानूमल मरहठों के साथ

१ बीबी राजेन्द्रकौर राजा अमरसिंह के चाचा की बहिन थीं।

मिलकर कोई षड्यंत्र न रच बैठें। इससे सनातनी और भी चढ़ गई। नानूमल मरहठों को आखिर पटियाला ले ही आया। निकट के एक गांव में उनके डेरे डाल दिये। मरहठों के कहने से बीबी जी ने नानूमल के लड़के को तो रिहा कर दिया। किन्तु नजराने की रकम पर वे बराबर झगड़ती रहीं। वे युद्ध करने को भी तैयार हो गई। मरहठों ने भी जबरदस्ती नजराना लेने की तैयारी की। किन्तु किसी कारणवश तुरन्त ही उन्हें मथुरा की ओर जाना पड़ा। नानूमल के बेटे दयाल और बीबी साहिबा को भी उनके साथ मथुरा की ओर जाना पड़ा। इधर महाराज साहबसिंह ने नानूमल का कुल सामान जब्त कर लिया और उनका एक लड़का जो बरनाला में तहसीलदार था। नजरबन्द कर लिया तथा उसका भी सारा माल छीन लिया। नानूमल को जब यह पता लगा तो उसने उन लोगों का संगठन करना आरम्भ किया जो विद्रोही भावना रखते थे। कुछ ही दिनों बाद बीबी राजेन्द्रकौर लौट आई। नानूमल ने अपने परिवार की कुल दुर्दशा का हाल उनसे कहा। वे पसीज गई और नानू को धीरज दिलाया कि तुम्हारे साथ इंसाफ होगा। किन्तु उधर चुगलों ने राजा साहबसिंह जी के कान भर दिये कि बीबी जी भी अपना प्रभुत्व बनाये रखने की फिक्र में हैं। साहबसिंह जी चुगलखोरों के हाथ पर ऐसे चढ़े कि लाख कहने पर भी वे बीबी राजेन्द्रकौर से नहीं मिले। अपने भतीजे की कटुता से बीबीजी के दिल पर इतना धक्का लगा कि वे कुछ समय बाद इस संसार से चल बसीं। वास्तव में देखा जाय तो पटियाला की वे महान रक्षक साबित हुई थीं।

नानूमल भी इधर-उधर भटक कर तथा एक दो लड़ाइयाँ पटियाले के साथ लड़कर सन् १७७? में संसार से चल बसा।

दीवान नानूमल के बाद समाने के रहने वाले अलाहीबख्श नामक मुसलमान ने महाराज साहबसिंह को अपने हाथों रख लिया। वे उसकी प्रत्येक बात को मानने लगे थे। उसकी इस प्रकार की हरकतों को देख कर सरदार दयालसिंह अरोड़ा और सरदार सूबासिंह ढिल्लों ने एक दिन भरे दरबार में अलाहीबख्श को कत्ल कर दिया। इसके बाद सन् १७९३ ई० में सरदार अलबेलसिंह राज्य के वजीर नियुक्त हुए। राजा दयालसिंह दीवान बनाये गये।

दीवान अलाहीबख्श के इस प्रकार खुले आम कत्ल के बाद से राजा साहबसिंह खुद भी दरबारियों से सशंकित रहने लगे। वे सोचते कभी यह मुझे भी मार सकते हैं। इस चिन्ता से मुक्ति पाने के लिए उन्होंने फतहगढ से अपनी बहिन साहबकौर को बुलाया। क्योंकि राजेन्द्रकौर की भांति ही वे भी बहादुर और होशियार थीं। जब वे पटियाला आ गईं तो राज प्रबन्ध की देखभाल का समस्त भार उनको सौंप दिया। बीबी साहबकोर ने राज्य का प्रबन्ध अपने हाथ में लेते ही नया प्रबन्ध आरम्भ किया। उन्होंने सरदार तारासिंह की सहायता से नानूमल के भतीजे दीवानसिंह को दीवान बनाया। किन्तु उसके काम में ढिलाई देखकर गुरुदयाल को दीवान नियुक्त किया। जोकि इस काम में ठीक उतरा। बीबी साहबकौर के पटियाला आने के कुछ ही दिनों बाद उन्हें समाचार मिला कि उनके पति जयमलसिंह को उनके चचेरे भाई फतहसिंह ने कैद कर लिया है। इसलिये उन्हें वापिस सुसराल जाना पड़ा। जहाँ उन्होंने अपने पति को जेल से छुडाया और अपने इलाके का सुप्रबन्ध किया। इसके बाद वे पटियाला लौट आईं।

सन् १७९४ के आरम्भ मे मरहठों ने पंजाब की ओर मुँह फेरा। लक्ष्मनराव और अताराव नाम के मरहठा सरदारों की अध्यक्षता मे मरहठों का यह दल नाभा, जीन्द, कैथल आदि सबसे नजराने लेता हुआ पटियाला की ओर रवाना हुआ। बीबी साहबकोर ने नजराना देने में अपनी हतक समझी और

लड़ाई के लिये तैयार हो गई । राजगढ़ के पास दोनों ओर से लड़ाई हुई । पटियाला के सैनिकों ने मरहठों जैसी सैनिक योग्यता प्राप्त न की थी । अत. वे मरहठों के सामने से भागने लगे। यह देखकर बीबी साहब-कौर रथ से नीचे उतर आई । और सैनिकों तथा सामन्तों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा "यदि आप लोग कायर हैं और आपको अपने प्राण प्यारे हैं तथा मान और मर्यादा का कुछ भी खयाल नहीं है तो आप भाग जा सकते हैं। किन्तु मैं प्राण रखते युद्ध भूमि से हटने वाली नहीं हूॅ । क्षत्रिय क्षत्राणियों के दूध का सबूत युद्ध मे ही परखा जाता है । आप चाहे तो अपनी माताओं के दूध को कुत्ती और गधी के दूध सिद्ध कर सकते हैं । किन्तु मैं समझती हूॅ । अपमान की जिन्दगी से तो मान सहित मरना ही श्रेयष्कर है । है । एक स्त्री को—जो कि राजघराने और साथ ही आपके परिवार की है—शत्रुओ के बीच मे छोड़कर संसार को अपना मुॅह दिखाने की हिम्मत कर सकते हों तो आप लोग अविलंब मैदान छोड़कर भाग जॉय ।"

बीबी साहिबा के उपरोक्त भाषण ने सेना मे और सेनापतियों मे मर मिटने की भावना पैदा करदी । "न दैन्य और न पलायनम्" सिद्धान्त के अनुसार उन्होंने मरहठो की सेना पर धावा कर दिया । मरहठों के पैर उखड़ गये और बीबी साहिबा की जीत हुई ।

बीबी साहिबा जहॉ बुद्धिमान और ऊॅचे दर्जे की बहादुर थीं वहॉ उनमे शासन योग्यता भी काफी थी । नाहन के राजा धर्मप्रकाश के मरने पर जब उसका छोटा भाई करमप्रकाश राज्य का अधिकारी हुआ तो उसके दरबारियों ने बगावत खड़ी कर दी । कर्मप्रकाश ने पटियाला से बीबी साहिबा को अपनी मदद के लिये बुलाया । वे थोड़ी सी फौज के साथ पटियाला पहुॅचीं और जाते २ बागियों को ठीक कर दिया । इसके बाद दो चार ही दिन मे वहॉ के शासन का भी प्रबन्ध ऐसे नये सिरे से कर दिया । जिससे सहसा बगावत पैदा होने की गुञ्जायश नहीं छोड़ी । राजा कर्मप्रकाश ने कृतज्ञता स्वरूप बीबी जी को बहुत से कीमती उपहार भेंट किये ।

रोहतक जिले में झज्झर के पास एक किला जहाजगढ है । वास्तव मे उसका नाम जार्जगढ़ है इसे जार्ज टामसन ने बनवाया था । जोकि माधवराय सिंधिया के सूबेदार (नारनौल) का एक नायक था । खांडेराव ने जार्ज टामसन की बहादुरियों से खुश होकर झज्झर का इलाका उसे जागीर मे दे दिया था । यह जार्जटामसन किसी समय यूरोप से जहाज का खलासी होकर आया था। यहॉ उसने समरू फ्रासीसी की नौकरी करली । समरू ने किसी बात से नाराज होकर जार्ज टामसन को निकाल दिया । इसके बाद वह खांडेराव के पास जोकि उस समय नारनौल के मरहठा सूबेदार थे,नौकर हो गया । उन्होंने उसे झज्झर का जागीरदार बना दिया । खाडेराव के मरने के बाद जार्ज टामसन स्वतन्त्र हो गया और उसने हासी और हिसार पर भी अपना कब्जा कर लिया । बीबी साहबकौर को इससे भी लड़ना पड़ा ।इसके पास युद्ध-विद्या मे प्रशिक्षित आठ सौ सैनिक और पचास तोपे थीं । फूल राज्यों के पारस्परिक झगड़ों को देखकर इसने जीन्द पर हाथ डाला । किन्तु इसके दुर्भाग्य से जीन्द की रक्षा करने के लिये कैथल, फरीदकोट और पटियाला सभी राज्यों से सेनायें इकट्ठी हो गई । बीबी साहबकौर के हाथ मे सेना सचालन सुपुर्द हुआ । विजय सिखों की हुई और जार्जटामसन हार कर दिल्ली की ओर चला गया ।

बीबी साहबकौर की वजह से जहॉ पटियाला के आतरिक झगडे बन्द रहे और रियासत टुकड़े-बन्दी से बची वहॉ कुछ इलाके जीते जाकर राज्य को बढाया भी गया । इन सब बातों को देखते हुये चाहिये तो यह था कि राजा साहब उनके अहसानों से उऋण होने की कोशिश करते और आजीवन उन्हें स्नेह की निगाह से देखते । किन्तु वे अपने स्वार्थी कर्मचारियों के बहकावे मे आ गये । यह भी कहा जाता

है। कि राजा साहव की रानी आसकौर भी यह चाहती थी कि वीवी साहिवा के पद पर वह काम करें। इन वातों का यह नतीजा हुआ कि राजा साहवसिंह जी ने अपनी वहन पर तीन इलजाम लगा कर उन्हें हटाने की कोशिश की।

(१) राजा नाहन ने जो हथिनी वीवी साहिवा को भेंट दी थी वह उन्होंने निज के लिये रख ली है।

(२) विना सलाह मशविरा किये ही उन्होने अपनी जागीर में सन् १७६६ में एक किला वनवा लिया है।

(३) भोरियॉ गॉव का नाम वदल कर उभयवाल रख लिया है।

वीवी साहिवा उन दिनों जींद में ठहरी हुई थीं। जव उन्हे पता चला कि उनका भाई उनके अहसानों को भूल कर दुष्टों के कावू में फॅस कर उनके विरुद्ध हो गया तो उनके दिल को वड़ी चोट लगी और वे वरनाला न जाकर उभयवाल चली गईं। स्वार्थी लोगों ने वीवी साहिवा की इस वात से भी लाभ उठाया। उन्होने महाराज को भड़काया कि वीवी साहिवा आपकी जरा भी परवाह नहीं करती हैं। राजा साहव भी उन लोगों के ऐसे हाथो चढ़े कि उन्होने वीवी साहिवा को लिख भेजा आप उभयवाल के किले को खाली करके अपनी ससुराल फतहगढ़ चली जावे। वीवी साहिवा ने नाराज होकर किला खाली करने से इन्कार कर दिया। फिर क्या था सन् १७६६ की भरी गर्मी मे राजा साहवसिंह ने उभयवाल किले पर हमला कर दिया। तीन दिन तक दोनो ओर से लड़ाई हुई। अत मे सरदार लालसिंह और जोधसिंह कलसियावालों ने दोनों भाई वहिनों मे समझौता करा दिया और दोनों को पटियाला वापिस कर दिया किन्तु रास्ते में महाराज को उनके मुसाहिवों ने फिर भड़का दिया। महाराज ने भवानीगढ़ मे लाकर वीवी जी को नजरवन्द कर दिया। वीवी जी वड़ी साहस वाली थीं। अपनी बुद्धिमानी से नजरवन्दी में से निकल गईं और अपने किले उभयवाल मे जा पहुंची। राजा साहवसिंह को जव यह समाचार मिला तो वे खिसियाये तो सही किन्तु फिर उन्होंने चुप्पी साध ली और वीवी जी के साथ कोई छेड़खानी नहीं की क्योंकि वे देख चुके थे कि इसमे उन्हीं को लोग बुराई देते थे किन्तु वीवी जी के हृदय पर भाई के इस रुख के कारण ऐसी ठेस लगी कि वह एक ही साल के अन्दर चल वसीं। राजा साहव को भी उनके मरजाने के वाद वड़ा रंज हुआ क्योंकि आखिर तो दोनों भाई वहिन थे।

जार्ज टामसन ने पुन पजावी रियासतों को लूटना शुरू कर दिया, असल मे वात यह थी कि फौज तो उसने ज्यादा इकट्ठी करली थी और इलाका उसके पास थोड़ा था। उसने नामा, जीन्द की भाँति ही पटियाले के कुछ हल्को को लूटा और नरवाना तथा खूनरी आदि हल्कों को उसने अपने राज्य मे भी मिला लिया। टामसन से तंग आकर इन समस्त फुलकियन राज्यों ने टामसन के दुश्मन पैरन साहव को अपनी मदद के लिये चार लाख रुपये के भाड़े पर बुलाया। उसने कुछ ही दिनों की लड़ाई मे टामसन को भगा दिया और ;इन लोंगों के इलाके जो उसने जीते थे वापिस कर दिये। किन्तु पैरन को रुपया देने के लिये इन राजाओं-ने उसे पंजाव मे इधर-उधर घुमाया। अधीनस्थ लोगों से नजराने वसूल किये। पैरन को भी चोट लग गई उसने भी फिर दुवारा नजराने लेने के लिये पजाव की ओर हमला किया और नजराने वसूल किये। उसकी भी अन्धा-धुन्धी उस समय तक चली जव तक कि लार्ड लेक ने पैरन को खदेड़ न दिया।

रानी आसकौर इस समय पटियाला की मुख्य शासक थीं, राजा साहव तो नाम मात्र के राजा थे। वे वहादुर और अक्लमद भी थीं। दुलदी गाव के लिये उन्हे नाभा से लड़ना भी पड़ा था, लड़ाई के समय

वे खुद मैदान में रहती थीं। रानी आसकौर के दबदबे के आगे दरबारी भी कुछ ऐसा काम न कर सकते थे जिससे राज्य और प्रजा को कुछ नुकसान पहुँच जाय। उनकी मन मानी कतई रुकी हुई थी। इसलिये दरबारी लोग रानी साहिबा से नाराज भी थे और उन्होंने महाराज साहबसिंह जी को भड़काना शुरू किया। महाराज से कहा गया कि बीबियों की तरह अब महारानी ही आम मुख्तार हो गई हैं आप को तो कोई भी आगे नहीं लाना चाहतीं। नतीजा यह हुआ कि राजा रानी मे मन-मुटाव हो गया और नौबत यहाँ तक पहुँची कि राजा साहब पटियाला गढ़ मे बाहर रहने लगे और रानी साहिबा भीतर। बीच २ मे रानी साहिबा राजा साहब को मनाती भी रहीं किन्तु चुगलखोरों की बदौलत नौबत यहाँ तक पहुँची कि राजा साहबसिंह ने सन् १८०७ मे महाराजा रणजीतसिंह को बुला भेजा। वे इससे एक-डेढ़ वर्ष पहले भी राजा साहब नाभा के बुलाने मे इन दोनों रियासतों का झगड़ा निपटाने आ चुके थे और पटियाला से पचास हजार रुपया नजराना लेकर चले गये। अबकी बार राजा साहबसिंह ने उन्हें एक बहुमूल्य कठा और एक तोप देने का वायदा करके बुलाया था। रानी आसकौर घबरा गई और उन्होंने अपने विश्वासपात्र आदमी द्वारा अपने पति को समझाया कि आखिर इसमे नुकसान किसका होगा। राज्य आपका मेरा अलग-अलग नहीं है। आप मेरे साथ जो भी इन्साफ-गैरइन्साफ करना चाहते हैं करें उसे मैं मानूंगी इसमें लोक हँसी भी तो है किन्तु अब क्या होना था। महाराजा रणजीतसिंह जी तो आ ही धमके। वायदे के अनुसार भेट वसूल की और फिर रियासत मे होकर नाभा, जीन्द, कैथल मे नजराने वसूल करते हुये लाहौर को चले गये। इन दोही वर्षों मे इन रियासतों को महाराजा रणजीतसिंह जी ने ऐसा दुहा कि इन्होंने उनसे पीछा छुड़ाना ही तय कर लिया और सन् १८०८ मे सब मिलकर देहली मे अंग्रेजों की शरण में पहुँचे और स्पष्ट शब्दों मे अपनी रक्षा के लिये प्रार्थना की। उस समय अंग्रेजों को भी महाराजा रणजीतसिंह से भय लगता था, इसलिये वे कोई खुला आश्वासन तो न दे सके पर कुछ धीरज अवश्य बँधा दिया।

इधर इन राजा लोगों ने महाराजा रणजीत सिंह जी से भी बनाये रखने की कोशिश जारी रखी किन्तु दिल से यह सब उनके दुश्मन बन गये थे। अंग्रेज भी कोई ऐसा समझौता रणजीतसिंह से करने के लिये कोशिश करने लगे जिसमे इन लोगों की रक्षा हो जाय। आखिरकार ऐसा समझौता हो ही गया।

अंग्रेज सरकार ने रियासतों की सरहद की पैमायश के वास्ते आयोजन किया था। पटियाला की सरहद की पैमायश वायट नाम का एक अंग्रेज करने आया। फूलासिंह अकाली जो कि उन दिनों बागी हुआ फिर रहा था। उसने वायट को मार दिया। पटियाला सरहद की जनता ने इसे बहादुरी का काम समझा, इसलिये लगभग एक हजार आदमी उसके साथ हो गये और पैमायश वालों को मार पीट कर भगा दिया। राजा साहबसिंह के पास यह खबर भेजी तो उन्होंने फूलासिंह अकाली को पकड़ने के लिये फौज भेजी। उस फौज के हाथ फूलासिंह तो क्या आना था किन्तु अंग्रेज अवश्य राजासाहब से इस बात के लिये खुश हुये और उन्होंने "अधिराज राजेश्वर" की उपाधि इनके खिताब मे और बढ़ा दी।

इस समय राज्य-प्रबंध पूर्ण रूप मे साहबसिंह के ही हाथ मे था। रानी साहिबा को एक जागीर दे दी गई थी जिसमें वह अपने पुत्र युवराज कर्मसिंह के साथ रहती थीं। रानी साहिबा को भी राज-काज करने का ऐसा चस्का लगा था कि वे भी कुछ दुखी-सी रहती थीं। वे सोचती थीं राजा साहब में ऐसी योग्यता शासन चलाने की कहाँ जैसी मेरे अन्दर है और उनकी मुख्तारी मे राज्य को हानि ही हो रही है लाभ कुछ भी नहीं और वास्तव में बात ऐसी थी भी। राजा साहबसिंह बराबर राज्य को बर्बाद कर रहे

वखेडा नहीं हुआ। सब कार्य ढंग से ही चलते रहे। गोरखों से अंग्रेजों की लड़ाई होने पर महाराज कर्मसिंह जी ने यथाशक्ति अंग्रेजों को सहायता दी।

सन् १८१५ के मई के आरम्भ में एक जागीरदार चड़तसिंह ने कुछ विरोधी आन्दोलन का सूत्रपात किया। इस समय अंग्रेजों ने उसकी जागीर जब्त करने मे महाराज को मदद दी। मिश्र नोधाराम और महारानी आसकौर इस समय भी उसी प्रकार प्रबन्ध कर रहे थे।

राज्याधिकारों का कुछ मद ही ऐसा होता है जिसमे न तो भाई-भाई का सम्बन्ध रहता है और न बाप बेटे तथा माँ बेटे का। महाराज कर्मसिंह के सयाने होने पर पटियाला मे यह घटना भी सुनने को मिली कि माँ बेटों मे मनमुटाव हो रहा है। माँ, चाहती है कि अभी और कुछ दिन मैं ही शासन करूँ और पुत्र अब अपने हाथ मे शासन सूत्र लेना चाहता है। मिश्र नौधाराम इस हालत को देखकर बडा घबराया और बेचारा ज्वाला जी के दर्शनों के लिए चल दिया किन्तु चूँकि उसने भी हकूमत का मजा लिया था। उसकी ज्वाला के दर्शनों से भी वह तृष्णा न छूटी। पटियाला की हवा देखने को लौट ही पड़ा। इधर उसकी सेवाओं की अब कोई जरूरत नहीं समझी जा रही थी। अत रास्ते मे ही उसे मुल्के अदम रवाना कर दिया गया। यह उसे पुरानी सेवाओं का पुरस्कार मिला। किन्तु उसने हकूमत की थी या सेवा यह तो कैसे कहा जा सकता है।

अब रह गई माँ, उसके लिये भी महाराज कर्मसिंह जी ने प्रबन्ध कर दिया उन्होंने कप्तान जार्ज ब्रज असिस्टेण्ट एजेन्ट को पटियाला बुलाकर घोषणा करा दी। "अब राज्य का प्रबन्ध सोलह आने महाराज कर्मसिंह के अधिकार मे है। सब लोग इन्हीं की आज्ञा माने। जो कोई इनके कार्यों मे हस्तक्षेप करेगा उसे सख्त सजा दी जायगी। राजमाता आसकौर को सनोर की जागीर मौजूद है। वे पटियाला को छोड़ जाय और वहीं रहे।"

राजमाता आसकौर जार्ज ब्रज के आदेशानुसार सनोर चली गईं किन्तु अन्तिम दिन ईश्वराधना मे व्यतीत करने की अभी उनकी भी इच्छा नहीं हुई। पचास लाख के जवाहिरात भी अपने साथ सनोर ले गईं। माया को भला कैसे छोड़तीं। उधर महाराज भी माया को 'माँ' से अधिक ही समझते थे। अतः वे क्यों बर्दास्त करते कि उनकी बजाय उनकी माँ के पास इतनी अतुल माया रहे। उन्होंने भी सवाल उठा दिया भला इतनी बड़ी जागीर की 'माँ' को क्या जरूरत और वे जवाहरात का भी क्या करेंगीं। वे तो राजकुमारों और राज महिषियों के पहनने की चीजें हैं। और जागीर लेने की उन्हे जरूरत ही क्या है। यहाँ रहे और जितना खर्च उनके खाने पीने पर पडे, लेती रहे। सरकार ने उनकी बात को सुना और कप्तान मरे साहब को जोकि एजेन्ट साहब थे। पटियाला मे माँ बेटे के झगड़े को निपटाने के लिए भेजा कप्तान साहब ने रानी आसकौर से कहा आप पटियाला ही रहे और अपने खर्च के लिये पचास हजार साल लेती रहे। रानी साहब ने कहा—मैं क्या नौकर हूँ जो पचास हजार या पच्चीस हजार लूँ। यहाँ रहूँगी तो मालिक बनकर रहूँगी वरना गंगा किनारे जाकर भजन करूँगी। यह एक धार्मिक धमकी थी। जैसे तैसे वे पचास हजार सालाना की जागीर लेकर सनोर रहने पर ही राजी हुई। जवाहरात उन्होंने लौटा दिये। कहा जाता है अपने बेटे के घर जब एक लड़का पैदा हुआ तो वे पटियाला आ गई।

एक बाप के दो बेटे थे। दूसरे थे अजीतसिंह महाराज के छोटे भाई, उन्हे भी लोगो ने चगुल पर चढ़ा दिया। उन्होंने दावा किया कि मेरी अपने भाई से नहीं निभती है, अत' राज्य का बँटवारा कर दिया जाय। बेचारे बहुत भटके बहुत कोशिश कीं। आखिर अक्ल आई और फिर भाई से ही समझौता

किया। महाराज ने भी सोचा "घर का भेदी लंका दाह" अतः उन्हें १५०००) की जागीर और ३०००) नकद सालाना मुकर्रिर कर दिया और व्याह भी बड़ी धूम से करके अपने भ्रातृत्व का फर्ज अदा किया।

अब तक पुराने प्रवन्ध में काफी खराबियाँ आ गई थीं इसलिये घरेलू झगडों से निपटने पर महाराज ने राज्य प्रवन्ध की ओर ध्यान दिया। उस समय की हालत में जो प्रवन्ध हो सका था वह अब सुधार चाहता था। उस समय तहसीलदारों को दीवानी और फौजदारी दोनों ही तरह के अख्तियारात हासिल थे। इसी तरह छोटे-छोटे थानेदारो को भी बहुतेरे अधिकार थे इस प्रकार ये सब ही प्रजा को मनमाने तौर पर सताने में अपनी-अपनी जगह के छोटे-मोटे राजा ही बने हुये थे। नौकरो को नौकरी के बदले में प्राय. जागीरे मिली हुई थीं। सिपाहियो को किसी किस्म की कवायद परेट भी नहीं सिखाई जाती थी। नीचे से ऊपर तक रिश्वत और बेईमानी का बाजार गर्म था। इन तमाम कमियो को दूर करने के लिए महाराज कर्मसिंह जी ने भरपूर ध्यान दिया। नये प्रवन्ध में उन्होंने चार पदाधिकारी अलग २ महकमों की देखभाल और अपीलें सुनने के लिए मुकर्रिर किये। खास २ सरदारों को छोडकर नोकरो को जागीर की वजाय टके मुकर्रिर कर दिये। सैनिकों की श्रेणियां कायम कीं। कुछ फ्रांसीसी लोगो को कवायद सिखाने के लिये नौकर रक्खा। मालगुजारी मे रुपया महाजन के यहाँ जाने का रिवाज वन्द करके सीधा खजाने मे आने और रसीदें काट कर जमा कराने का कायदा नियत किया। जमीन पर उसकी किस्म को देख कर मालगुजारी बाँधी गई। इस सबके अलावा पुराने किलों और इमारतों की मरम्मत करवाई। अन्य कई नई इमारतें भी बनवाई। इस प्रकार उन्होंने राज्य शासन गृह-प्रवन्ध सभी में काफी सुधार किया जिससे प्रजा में भी संतोप फैला।

सन १८२६ मे भरतपुर पर जब अंग्रेजों ने दूसरी वार हमला किया तो उस समय अंग्रेजों को उनकी माँग के अनुसार २० लाख रुपया उधार दिया। इस वात से जाना जा सकता है कि आपने खजाने को भरने मे कोई कसर वाकी नहीं रक्खी थी।

पञ्जाब की चारों सिख रियासते प्रायः आपस मे ही झगडा करती थीं। राजा कर्मसिंह जी ने यह कोशिश की कि किसी प्रकार यह लडाई झगड़े मिटे। अंत मे सन् १८३३ ई० में इन सभी रियासतों ने ढूंढान के मुकाम पर इकट्ठे होकर आपस मे सुलह करली उस सुलह का सार इस प्रकार है—

नाभा, जीन्द, कैथल और पटियाला की सन्धि

(१) हम चारों मे से कोई किसी के नौकर और अपराधी को शरण न देगा।

(२) जब दो रईसों में झगड़ा हो जाय तो बाकी दो फैसला करेंगे।

(३) सरहदी मामलात मे संवत् १८२० तक जिन्होंने जहाँ तक कब्जा कर लिया था। वहाँ तक का माना जायगा।

(४) यदि कोई कर्जदार भागकर दूसरी रियासत मे चला जाय तो पहली रियासत उससे कर्जा वसूल वहाँ भी कर सकेगी।

(५) प्रत्येक राज्य अपनी प्रजा की पुकार पर यदि वह दूसरी रियासत की प्रजा के कानूनन खिलाफ होगी तो उचित इन्साफ मुदई के लिये करावेगा।

(६) चोरी का माल लेकर यदि कोई प्रजाजन दूसरी रियासत मे जायगा तो तब तक चोर वही समझा जावेगा जब तक कि उस गाँव के लोग उसके माल को अपने यहाँ रख न लेंगे।

(७) भगाई हुई स्त्रियों का पता यदि पाँच साल के भीतर लग जाया करे तो वह असली मालिकों को वापिस करा दी जावें। पांच साल बाद दो सौ रुपये नाते के दिला दिये जाया करे।

(८) यही नियम लड़कियों का व्याह दूसरी जगह करने पर लागू होगा।

(९) कत्ल के मामलों मे कातिल से मकतूल के वारिसों को दो सौ रुपया नकद दिलाया जायगा और कातिल को सख्त सजा दी जायगी।

सन् १८४१ मे अंग्रेजों ने पटियाला महाराज के सामने यह प्रस्ताव रक्खा कि जनरल पैरन की सहायता से जो इलाके सिरसा, हिसार आदि मे जीते हैं। वह हमे वापिस करदो क्योंकि मरहठों के वारिस हम ही हैं। दोनों ओर से अपनी २ दलीलें दी जाती रही अंत मे महाराज ने अंग्रेजों की बाते मान लीं। २६६ गावों मे से उन्हे ४१ गाँव हिसार जिले के और २५ सिरसा के इलाके के मिले।

यद्यपि अंग्रेजों के इस व्यवहार से महाराज कर्मसिंह कुछ नाराज हो गये थे फिर भी जब अंग्रेजों की खालसा सेना से लड़ाई हुई तो रसद, सेना आदि देकर आपने अंग्रेजों की खूब मदद की। इससे पहले उन्होंने अफ़गान युद्ध मे अंग्रेजों को पच्चीस लाख कर्ज में दिये ही थे। सिखों की लड़ाई मे तो उन्होंने दो हजार सवार और दो हजार पैदल दिये थे वास्तव में मुदकी मे खालसा सेना को इसी दल से हारना पड़ा था वरना अंग्रेजी सेना के पाँव उखाड़ दिये जा चुके थे।

इस युद्ध में सहायता देने के उपलक्ष मे सरकार ने उन्हे शिमले के पास सोलह परगने दिये थे।

राज खालसा के लेखक ने लिखा है कि "खालसा सेनाओं के विरुद्ध सहायता देने के कारण महाराज कर्मसिंह बहुत शर्मिन्दा हुए थे और उसी शर्मिन्दगी मे (२३ दिसम्बर सन् १८४५) स्वर्ग सिधार गये।"

इसमें कोई शक नहीं कि राजा कर्मसिंह जी अपने पिता और पितामह दोनों से अच्छे शासक साबित हुए और प्रजा की भलाई के भी अनेकों कार्य कर गये। उन में धार्मिक पक्षपात की मात्रा नहीं थी। हिन्दू, मुसलमान और दूसरे सभी लोगों के साथ आप एक-सा व्यवहार करते थे।

महाराज नरेन्द्रसिंह

अपने योग्य पिता के बाद आप ही राज्य के मालिक हुए। आपका जन्म सन् १८२३ ई० में हुआ था और सन् १८४६ मे २३ वर्ष की अवस्था में आप राज्य के मालिक हुए। जिस समय पटियाला का शासन सूत्र आपके हाथ में आया उस समय अंग्रेजो और खालसा सेनाओं की डट कर लड़ाई हो रही थी। इन्होंने भी अंग्रेजों की पूरी सहायता की। आपकी फौज के तो कुछ आदमियों को यह बात बुरी लगी। सिपाही बागी हो गये। किन्तु वे तुरन्त ही दबा दिये गये। अंग्रेजों को छोटे-छोटे जागीरदारों पर सन्देह हुआ कि शायद वे लोग हमारे पक्ष में नहीं। इसलिये उन लोगों के सबके अधिकार छीन लिये गये। लड़ाई के बाद कई की जागीरे भी जब्त कर ली गईं। कैथल का राज्य भी इसी कारण से जब्त हुआ था। इसके अलावा अंग्रेजों ने प्रत्येक राज्य मे से जकात का रिवाज उठा दिया। पटियाला को इस साधन से नौ हजार रुपया सालाना की आमदनी होती थी। महाराज नरेन्द्रसिंह जी ने गवर्नर जनरल को लिख भेजा कि हमे मालूम हुआ है सरकार प्रजा के फायदे के लिये रियासतों मे से जकात उठवा रही है। हमने इसी हेतु से अपने यहाँ से जकात उठा दी है। इसके बदले में गवर्नर जनरल ने धन्यवाद के साथ दस हजार के इलाके पटियाले को दे दिये।

कहा जाता है कि महाराज नरेन्द्रसिंह बड़े भारी दानी थे। उन्होंने सन् १८५० ई० मे जब ज्वाला-मुखी की यात्रा की तो पचास लाख का चढ़ावा चढ़ाया। इसके अलावा और भी बड़े-बड़े दान किये।

जिनका जिक्र आगे करेंगे।

पंजाब के छोटे-छोटे सरदारों को बेदखल करने मे एक लाभ सरकार ने पटियाला राज्य से भी उठा लिया। रियासत के चहारमी लोगों ने जब यह आन्दोलन उठाया कि रियासत हमारी आमदनी का चौथा हिस्सा ले। अब तक वह जो चौथा हिसा हमें देती है यह अनुचित है। चहारमी लोगों और पटियाला दरबार दोनों ने ही सरकार के पास अपने-अपने पक्ष को रक्खा। स्थिति से लाभ उठाने के लिये तुरन्त ही सरकार ने कर्नल मेकन कमिश्नर अम्बाला को जॉच करने के लिये नियुक्त किया। जिस पर उन्होंने लिख दिया कि चहारमी लोग चाहे तो पटियाला से अलग हो सकते हैं। ऐसा ही हुआ भी पटियाला राज्य का चहारमियों वाला सारा इलाका अंग्रेज सरकार के कब्जे मे चला गया।

अप्रैल सन् १८५२ ई० मे महाराज नरेन्द्रसिंह जी ने अपनी बडी लड़की की शादी धौलपुर के राजकुमार भगवंतसिंह जी के साथ बडी धूमधाम से की जिसमें चौदह लाख रुपया खर्च किया गया। ५०००) का दहेज अंग्रेज सरकार ने भी दिया। इस शादी के बाद महाराज नरेन्द्रसिंह जी ने गंगा-स्नान और तीर्थ यात्रा के लिये तैयारी की। हरिद्वार मे गंगा-स्नान करके और बहुत कुछ दान पुण्य करके ऋषीकेश और बद्रीनारायण के दर्शनों को गये। इन तीर्थों पर लगभग चौंसठ हजार रुपये का दान किया और बद्रीनारायण मे एक हजार रुपये सालना का सदावर्त खोलकर आपने धर्म-प्रेम का परिचय दिया।

सन् १८५२ ई० मे ही सितम्बर की १६ वीं तारीख को राजकुमार महेन्द्रसिंह जी का जन्म हुआ। किन्तु चूंकि आपके पुत्र पैदा हो-होकर मर जाते थे। इसलिये इस समाचार को गुप्त रक्खा गया और सन् १८५३ ई० की १४ जनवरी को प्रकट करके खूब धूमधाम से पुत्र जन्मोत्सव मनाया गया।

सन् १८५४ के जीन्द राज्य मे पैमायश पर उठे हुए विद्रोह को दबाने के लिये राजा साहब जीन्द की मॉग पर आपने दो हजार सैनिक और चार तोपों के साथ चौधरी इमामबख्श को भेजा। इस लडाई में बागियों के १७ आदमी जान से मारे गये और ८० जख्मी हुए।

जब हिन्दुस्तान में अंग्रेजों का बोलबाला था। सारे राजा रईस उनका लोहा मान चुके थे तो कौन ऐसा सम्पन्न आदमी होगा जो उनके देश की सैर करने की इच्छा न रखेगा। महाराज नरेन्द्रसिंह ने भी २८ अगस्त सन १८५४ को विलायत की यात्रा की तैयारी करदी। उन दिनों कलकत्ते से ही आवागमन विलायत के लिये होता था। रास्ते में आपने काशी दर्शन किये। राजा ईश्वरप्रसाद नारायणसिंह काशी नरेश के घर पर ठहरे। स्थानीय अंग्रेज हाकिमों ने भी आपका काफी स्वागत सत्कार किया। वहॉ विश्वनाथ के दर्शनों के बाद अन्य धार्मिक स्थानो का भी देखा। काशी के गुरुद्वारे में एक सदावर्त जारी कर दिया। यहॉ से अग्निबोट के जरिये पटना और गया को देखते हुए कलकत्ते पहुँचे। कलकत्ता ही अंग्रेजों की राजधानी थी। वहॉ पर सरकार की ओर से आपका खूब स्वागत सत्कार हुआ। बहुत सी मेवा मिठाई और १३००) रुपया नकद सरकार की ओर से आये।

गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी ने गवर्नमेंट हाउस में दरबार लगाकर आपका स्वागत सत्कार किया। तोहफे भी भेंट किये और १७ तोपों की सलामी। नियमानुसार महाराज ने भी दूसरे दिन गवर्नर को अपने स्थान पर बुलाकर स्वागत सत्कार और भेंट की रस्म अदा की। इसके बाद कुछ आवश्यक कारण पैदा हो जाने से विलायत यात्रा स्थगित करके महाराज वापिस पटियाला लौट आये।

सन् १८५७ के गदर मे राजा नरेन्द्रसिंह जी ने सरकार का हुक्म प्राप्त होते ही अम्बाला और थाना के मुकामों पर अंग्रेजों की जान बचाने और विद्रोहियो को दबाने में भरसक मदद दी। आपकी

ओर से २१५६ सवार २८४६ पैदल १५६ अफसर और ८ तोपें देहली, पानीपत, करनाल, अम्बाला, जगाधरी आदि अनेकों स्थानों पर विद्रोहियों का सामना करने के लिये पहुँचे। पटियाला में भागे हुए अंग्रेज स्त्री बच्चों को बड़ी खातिर से रक्खा गया। पाँच लाख रुपया नकद सरकार को उधार दिया गया और दस लाख और भी देने का वायदा किया। रसद तो दिल्ली तक भेजी गई।

महाराज नरेन्द्रसिंह जी ने गदर में जो सहायता की उसके बदले में सरकार ने आपको नारनौल का इलाका सदैव के लिये दे दिया। इसके अलावा भदोड का इलाका और जीनत महल आदि कई स्थान दिये। साथ ही "महाराजाधिराज" की उपाधि भी दी।

इस विजय की खुशी में जब अम्बाला में अंग्रेजों ने दरबार किया तो उसमें महाराज नरेन्द्रसिंह के गले में माला डालते हुए गवर्नर जनरल ने कहा था कि महाराज ने इस समय अंग्रेज सरकार की जो सेवायें की है वे भूली नहीं जा सकतीं।

सचमुच ही अगर पंजाब के ये फुलकियन रजवाड़े अंग्रेजों के साथ न होते तो पंजाब के सारे सिख चाहे वह अंग्रेजों की ही फौज में क्यों न रहे हों। भड़क जाते और फिर अंग्रेजी राज्य का रहना मुश्किल हो जाता।

गदर के बाद जिस समय इलाका नारनौल पटियाला को सरकार ने दिया तो उसकी वार्षिक आय दो लाख दस हजार बताई थी। किन्तु जब देखा तो एक लाख सत्तर हजार ही आमदनी का टोटल बैठा। पटियाला की ओर से सरकार को इस बात की याद दिलाई गई। सरकार ने बाद जाँच के कनोड़ का इलाका और दे दिया। किन्तु उसकी बीस वर्ष की आमदनी उस कर्जे की रकम में से काटली जो पटियाला की ओर से दिया गया था। बाकी जो कर्ज पटियाला का सरकार पर था। उसके एवज में कुछ ही दिन बाद सरकार ने इलाका खमानोन और कुछ नकद देकर कुल कर्जे को चुकता कर दिया।

महाराज ने कुछ दिन बाद शिमला जाकर वायसराय के दस्तखतों से उन इलाकों की सनद हासिल कर ली जो सरकार ने उन्हें दिये थे। जिसके अनुसार समस्त पटियाला राज्य पर पीढ़ी दर पीढ़ी महाराज के वंशजों का अधिकार स्वीकार किया गया था। इसके सिवा गोद लेने का अधिकार भी उन्हे प्राप्त होगया।

महाराज ने सरकार के परामर्शानुसार राज्य से सती-प्रथा कन्या-वध जैसे रिवाजों को भी नष्ट कर दिया।

इलाका झज्झर से जो परगने पटियाला को मिले थे। उनमें मुआफीदार भी थे और नवाब झज्झर के अहद में वे एक प्रकार से स्वतंत्र से रईस थे। उनका इलाका जब पटियाला को मिला तो उन्होंने आन्दोलन उठाया और कहा अपनी स्थिति स्वतंत्र ही रखना चाहते हैं। जैसे नवाब हम से भीड़ पड़ने पर जन, धन की मदद लेता था वैसे ही हम अब पटियाला को भी देते रहेंगे। किन्तु महाराज नरेन्द्रसिंह ने यह बात पसंद नहीं की। मामला दोनों ओर से सरकार तक गया। वहाँ से फैसला हुआ कि माफीदार स्वतंत्र नहीं रह सकते, उन पर पटियाला का अधिकार है।

जिस समय सन् १८५८ में सरकार ने अंग्रेजी ढंग की उपाधियां बाटने का सूत्रपात किया तो उस समय महाराज नरेन्द्रसिंह जी को सितारे हिन्द की उपाधि मिली।

इधर-उधर के झगड़ों से शांत होने पर अंग्रेज सरकार ने कानून बनाने वाली एक कौंसिल का निर्माण किया। उसमें अंग्रेज सरकार ने महाराज नरेन्द्रसिंह जी को भी एक मेम्बर बनाया। उसमें महाराज के साथ बंगाल के लाट साहब की बराबरी का व्यवहार होता था। जिस प्रकार की कुर्सी बंगाल

गवर्नर की होती थी वैसी ही आपकी और उसी प्रकार एक अर्दली आपको दिया जाता था। भारत में उस समय यह कौंसिल अपने ढंग की नई-नई थी अतः महाराज इसमें सन् १८६२ ई० की १८ जनवरी की मीटिंग मे बड़ी खुशी के साथ शामिल हुए थे। इस कौंसिल में जाने से उन्होंने शासन सम्वन्धी वहुत-सी बातों की जानकारी हासिल की थी। उसके अनुसार आप अपने राज्य मे भी कुछ कानून लागू करने मे अग्रसर हुये।

महाराज ने अपने राज्य के खजाने मे अटूट धन राशि सग्रह कर ली थी। यही कारण था कि आपने अपनी लड़कियो की शादी मे खूब खर्च किया। बीबी वसंतकौर की शादी में १४ लाख खर्च किये थे यह तो पहले ही बता चुके हैं। दूसरी लड़की बख्तावर कुँवरि की शादी में भी जो कि महाराजा जसवन्तसिंह जी भरतपुर के साथ व्याही गई थी। दस लाख रुपया खर्च किया था और विशेष अवसरों पर अलग देते थे।

कौंसिल के अधिवेशन के बाद वे कुछ दिन तक कलकत्ता ही ठहरे रहे क्योंकि लार्ड कैनिंग विलायत जा रहे थे और उनके स्थान पर एलगिन आ रहे थे। मार्च में नए वायसराय के आने पर वे कलकत्ते से पटियाला लौट आये और अपने युवराज महेन्द्रसिंह जी की शादी की तैयारी करने लगे।

किन्तु उनकी यह मुराद पूरी न हो सकी और सन् १८६२ मे १३ नवम्बर को उनका देहावसान हो गया। उनके स्वर्गवास का रियासत और रियासत के बाहर काफी शोक मनाया गया। कई राजा महाराजाओं और गवर्नर पजाब ने शोक सूचक तार भेजे। महाराज नरेन्द्रसिंह जी बुद्धिमान और योग्य शासक थे उनके जमाने मे राज्य की काफी तरक्की हुई। नारनौल का ११० गॉव का इलाका और दूसरे कई इलाके जिनका जिक्र पिछले पृष्ठों मे कर चुके है उन्हीं के समय मे पटियाला को प्राप्त हुए। उन्होंने अपने पड़ोसी नाभा, जीन्द और फरीदकोट के साथ भी अच्छा ही व्यवहार किया। उनसे आपसी मेल बढ़ाने के लिए भी कई सन्धियां कीं। आपको बाग लगवाने और इमारतें बनवाने का भी वडा शौक था। राज्य मे आपने एक वडा बाग लगवाया। दीवानखाना और महल भी बनवाये। सन् १८६०-६१ के भारी अकाल मे राज्य के कोठों से किसानों को अन्न बांटा। राज्य के जिन हिस्सों में डाकू प्रकृति के लोग रहते थे वहॉ-वहॉ दौरा करके उन्हे ठीक किया। डाक के प्रबन्ध मे सुधार किया। भूमि-कर में अन्न की बजाय नकद लेने और नौकरो को वेतन देने के नियम भी आपने ही चालू किये।

पटियाला मे उन्होंने एक लाख रुपये की लागत से एक गुरुद्वारा भी बनवाया था और सवा लाख रुपया उसके खर्चे के लिये दिये।

सरकार की ओर से उन्हे "फरजन्दे खास दौलत इगलिशिया मनसूर-उल-जमान अमीर-उल-उमरा" का भी खिताब मिला था।

वास्तव मे उन्होंने बड़ी ही बुद्धिमानी से अपने सारे काम चलाये थे। अंग्रेजों से उन्होंने काफी लाभ भी उठाया और काफी मदद भी दी। राष्ट्रीय दृष्टिकोण से उनकी अंग्रेज परस्ती चाहे जैसी रही हो किन्तु इसमे सन्देह नहीं उन्होंने पटियाला जैसे बड़े राज्य को खालसा की भांति नष्ट होने से बचा लिया।

महाराज महेन्द्रसिंह

अपने पिता नरेन्द्र सिंह जी के देहावसान के बाद महेन्द्रसिंह सन् १८६३ ई० की २६ जनवरी को गद्दी पर बैठे। उस समय आपकी उम्र १० वर्ष चार माह १२ दिन की थी। आपका सिंहासनोत्सव बड़ी धूमधाम के साथ और अभूतपूर्व ढग से मनाया गया अनेकों अंग्रेज आफीसरान के अलावा कपूर्थला, जीन्द, नाभा, बनारस, अलवर और दर्

मान जैसे राज्यों के अधीश्वर और प्रतिनिधि भी इस महोत्सव मे पधारे थे। चूंकि महाराज नाबालिग थे इसलिये सरकार की ओर से नाबालिगी के समय तक के लिये एक कौंसिल बना देने की सलाह दी गई किन्तु राज्य की वर्तमान बागडोर जिन लोगों के हाथ में थी उन्होंने महाराज की ओर से एतराज किया कि आन्तरिक प्रबन्ध मे सरकार हाथ नहीं डाल सकती है। किन्तु सरकार ने सन्धियों के विस्तृत अर्थ के अनुसार तीन आदमियों की कौंसिल बनाई ही दी। जिसमे सरदार जगदीशसिंह जी नाजिम नारनौल, मियां रहीम बख्श नाजिम कर्मगढ़ और सरदार उदयसिंह जी को मेम्बर बनाया गया। ये लोग राज-काज में काफी होशियार और ईमानदार थे अत. काम भली प्रकार चलने लगा किन्तु कुछ ही महीनों बाद सरदार उदय-सिंह जी का (सितम्बर १८६३ ई०) में शरीरांत हो गया। उनकी जगह पर बख्शी बसावासिंह जी को मुकर्रर किया गया। बख्शी बसावासिंह के लिये कहा जाता है कि वे बड़े होशियार और प्रभावशाली आदमी थे किन्तु "ईश्वरेच्छा बलीयसी" सन् १८६६ ई० मे उनका भी देहान्त हो गया और उनकी खाली जगह पर सरदार फतहसिंह जी नियुक्त हुये। इसके कुछ दिन बाद मिया रहीमबख्श भी मर गये और सैयद मुहम्मद हसनखॉ को लेकर उनकी जगह भरी गई।

अब तक कौंसिल का काम अच्छा ही रहा था किन्तु सैयद मुहम्मद हसन के कौंसिलर बनने के समय से उत्पात खड़े हो गये। अच्छे २ और योग्य आदमियों को नौकरियों से अलग करके अपना दल बढ़ाया जाने लगा। कुछ को राज्य से बाहर भी कर दिया गया। इस पार्टीबदी के समय में ही दीवान निहालचंद को अपने प्राण खोने पड़े। आखिर इस धड़ेबदी का भी वही कटुफल निकला, जो निकला करता है। सरकारी खजाने मे से भी गड़बड़ होने लगी।

इसी बीच सन् १८६४ ई० मे लाहौर में जो दरबार हुआ। उसमे प्राय: सभी पंजाबी राजा रईस पधारे थे। महाराज महेन्द्रसिंह जी भी शामिल हुए। महाराज काश्मीर जिनका कि नाम रणबीर-सिंह था। उन्होंने महाराज महेन्द्र सिंह जी को अपने तम्बू में बुलाकर खूब आवभगत की। दोनों ओर से भेट और उपहार भी दिये गये।

सन् १८६८ ई० की पाचवीं मार्च को महाराज महेन्द्रसिंह जी की शादी हुई।[1] महाराज ने इस अवसर पर बखेर के काम को कतई रुकवा दिया। राजाओं में उस समय यह कुप्रथा थी किन्तु आपने इसे अपने यहां से उठा दिया। इससे आपकी बुद्धिमानी का पता बखूबी चल जाता है।[2]

सन् १८७० ई० मे जब राजकुमार अल्फ्रेड अलबर्ट का उनके भारत पधारने के उपलक्ष मे लाहौर मे दरबार हुआ तो उसमें भी महाराज ने भाग लिया और पंजाब यूनिवर्सिटी को बीस हजार रुपया इसलिये दिया कि वह इस रकम के वजीफे प्रिन्स महोदय के नाम पर छात्रों को दे। यहा पर आपने भावल-पुर के नवाब सादिक मुहम्मदखॉं से भी मुलाकात की। उस समय वह दस ग्यारह साल के ही थे।

यहां पर आपको समाचार मिला कि उनकी बहिन (महारानी भरतपुर) का देहान्त हो गया है, अतः वे पटियाला लौट आये। चूंकि उनकी वह बहिन भी पटियाला ही में आकर स्वर्गवासिनी हुई थीं। लाहौर दरबार के बाद महाराज को सरकार की ओर से "नाइट ग्रेन्ड कमांड तव का ए आली सितारे हिन्द" के खिताब भी मिले थे।

[1] राम नारायनसिंह फैजलपुरिये की लड़की के साथ।

[2] फिर भी शादी में ७० लाख रुपया खर्च हुआ था।

सन् १८७० ई० मे २२ नवम्बर को महाराज महेन्द्रसिंह जी ने भी पटियाला में एक भारी दरवार किया। उनमे महाराज ने अपने कर्मचारियों को ७० हजार की खिल्लतें वख्शीं।

अगले साल की २०वीं जनवरी को महाराज ने कलकत्ता जाने की तैयारी शुरू की। कलकत्ते में खितावो की सनदे देने के लिये सरकार की ओर से दरवार किया गया था। इसीलिये आप वहाँ गये। वहाँ से लौट कर गया, पटना और वनारस की यात्रा करते हुए पटियाला आ गये। इसी वर्ष नाभा के राजा भगवानसिंह जी के मरने पर आपने वडरूखां के रईस हीरासिंह जी को नाभा का उत्तराधिकारी बनाने के लिये राजा साहव जीन्द के साथ मिलकर कोशिश की, जिसमे आप सफल हुये। इसके वाद शिमले मे लाट साहव से मुलाकात करने गये। वहां आपने अनाथालय के लिये वारह हजार का दान दिया। शिमला से लौट कर आपने पटियाला मे उच्च शिक्षा के लिये एक कालेज की नींव डाली। जिसका नाम महेन्द्र कालेज रक्खा गया। ६० हजार रुपया सालाना खर्च के लिये मन्जूर किया। पटियाला मे तार वर्की का प्रवन्ध हो जाने के वाद आपने अंग्रेज सरकार से सरहिन्द के इलाके मे नहर लाने देने की मजूरी को लिखा पढ़ी की जो काफी कोशिशों के वाद मजूर हो गई। कहा जाता है इस नहर के लाने मे आपको तीन करोड के लगभग रुपया खर्च करना पड़ा था।

यह कहना हम भूल गये है कि कौंसिल के मेवरों की पार्टीवन्दी और स्वार्थपूर्ण नीति से तंग आकर महाराज ने कौंसिल को उस दरवार मे ही तोड़ दिया था जिसमे कि खिल्लतें वांटी गई थीं। उस समय उन्होंने एक स्वतन्त्र प्रवन्ध अपनी देखरेख में रक्खा था। सन् १८७० ई० के नवम्बर में महाराज महेन्द्रसिंह ने जव कि नारनौल में भयंकर अकाल पड रहा था। अनेकों गॉवों मे घूमकर जमींदारों की हालत का निरीक्षण किया। वहाँ के नाजिम की सलाह के अनुसार साठ हजार रुपया की तकावी वाट ाई। एक लाख इकसठ हजार का वकाया मुल्तवी किया। इसके अलावा सोलह हजार की पुरानी रकमे भी माफ कर दीं। लगभग एक महीने का दौरा करके वापिस पटियाला आये। जहां आकर आपने परगनों के प्रवन्ध और मालगुजारी की वसूलयावी के लिये कई सुधार किये।

बंगाल के अकाल मे भी महाराज ने वहा के प्रजाजनों की सहायता के लिये सरकार को दस लाख रुपये दिये थे।

सन् १८७४ ई० मे महाराज जब अमृतसर स्नान के लिये गये तो आपने १८ हजार रुपये चढ़ावा चढ़ाया और ५१ हजार रुपया दरबार साहव की भेट के लिये इसलिये दिया गया कि इससे सर्व साधारण के लिये लगर जारी किया जाय। इसी वर्ष आपने मुल्तान की भी सैर की।

सन् १८७५ ई० मे जब प्रिंस आफ वेल्स भारत मे पधारे तो आप उनसे मुलाकात करने के लिये गये और उन्हे राज्य मे आने का निमन्त्रण भी दिया। निमन्त्रण के अनुसार प्रिन्स महोदय पटियाला राज्य के राजपुरा मे राज्य के महमान हुये, जहा महाराज ने उनकी यादगार ताजा बनाये रखने के लिये अल्वर्ट-महेन्द्रगंज बनाया।

महाराज की अवस्था इस समय कुछ अधिक नहीं केवल पच्चीस साल की थी। राज्य प्रवन्ध संभाले भी अभी व मुश्किल सात ही साल हुये थे कि अचानक देहान्त हो गया। हालाकि दो तीन महीने से आपकी तवियत खराव रहती थी किन्तु इस वात का किसी को स्वप्न मे भी खयाल न था कि महाराज महेन्द्रसिंह जी इतनी जल्दी संसार से कूच कर जायगे। इसीलिये इस अचानक मृत्यु से राज्य में कुछ सन्देह भी फैला। अंग्रेज सरकार की तरफ से भी जाच हुई किन्तु कोई प्रकरण सन्देह के लायक मिला

नहीं। हां, यह बात अवश्य है कि उन्हें शराब की आदत कुछ स्वार्थी लोगों ने बहुत ज्यादा लगादी थी वे बीमारी के दिनों में भी शराब पीते थे और शराब ही उनकी जान की गाहक साबित हुई।

इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने इस थोड़े से समय मे भी राज्य के सुधार के लिये काफी प्रयत्न किये थे। तार, डाक, स्कूल और शफ़ाखाना जोकि जमाने की खास जरूरत की चीजें समझी जाती हैं। अपने राज्य मे जारी कीं। इसके सिवा नहर लाकर तो प्रजा का भारी उपकार किया। समय-समय पर सार्वजनिक संस्थाओं को भी मुक्तहस्त से दान दिये। कूका आन्दोलन को दबाने का जो उपक्रम सरकार की ओर से था उसमें भी आपने सरकार का साथ दिया। इसे उनका उपकार तो नहीं कह सकते। आपको सरकार की ओर से १६ तोपों की सलामी बजाय १७ के इन्हीं कारणों से होगई थी। जयपुर से आकर मीने आपके राज्य में लूट खसोट करके भाग जाते थे। इसके लिये आपने जयपुर महाराज से कुछ शर्तें तय कीं। जिसके अनुसार मीनों को छापे मारने की सुविधायें नहीं रहीं।

सरकारी क्षेत्रों मे उनकी पूछ होनी ही चाहिये क्योंकि वे अंग्रेजों के प्रत्येक काम को बड़ी उत्सुकता से पूर्ण कर देते थे। इसके बदले मे सरकारी अधिकारी भी उनकी इज्जत करते थे। सतलज के पुल का उद्घाटन आपसे ही अंग्रेज अधिकारियों ने कराया था। देशी राजा रईसो से भी उनका काफी मेल जोल था और प्रजा तो उनके समय मे कभी तंग ही नहीं की गई। अत: प्रजा में भी आपके लिये काफी प्रेम था।

केवल चार वर्ष की अवस्था मे युवराज राजेन्द्रसिंह जी अपने पिता की गद्दी पर बैठे। उस समय कोई भारी उत्सव तो नहीं हो सका क्योंकि महाराज महेन्द्रसिंह जी की असामयिक मृत्यु से राज परिवार और सभी हितैषियों में गम की घटायें छाई हुई थीं। राज्य प्रबन्ध एक कौंसिल के सुपुर्द ही किया गया। जिसमे सरदार देवसिंह के० पी० एस० ई० को प्रेसीडेंट बनाया गया। कौंसिल बनाने पंजाब गवर्नर के सेक्रेटरी मि० ग्रिफिन साहब खुद पधारे थे। इससे पूर्व कौंसिल बनने तक का प्रबन्ध भी सरकार की इच्छा के अनुसार ही हुआ था इसके अलावा सरकार ने पटियाला में अपना एक रिपोर्टर भी इसलिये मुकर्रिर कर दिया कि वह राज्य प्रबन्ध और कौंसिल की कार्यवाहियों से सरकार को सूचित करता रहे।

महाराज राजेन्द्रसिंह

कहा जाता है सरदार देवासिंह एक योग्य और राजभक्त व्यक्ति थे। अपनी तनख्वाह के १८००) रुपयों मे से भी २००) राज खानदान के खर्च के लिये छोड़ देते थे। वह अपने अन्य साथी मेंबरों की बराबर ही १६००) माहवार ही लेते थे।

शोक समाप्ति के बाद गवर्नर खुद भी पटियाले आये और गद्दीनशीनी का उत्सव मनाया। इसी वर्ष सरकार ने पटियाला के सिक्के का भी अन्य राज्यों की तरह से ही प्रचलन बन्द कर दिया।

कौंसिल अपने समय में बन्दोबस्त कराकर लगान सिक्कों में लेने की प्रणाली भी चला रही थी। जिससे खजाने मे काफी रुपया बढ़ता जा रहा था।

सन् १८८६ में महाराज की बहिन का विवाह शहजादपुर के रईस जीवनसिंह जी के साथ हुआ। जिसमें लगभग २० लाख रुपया खर्च हुआ। इसके दो ही वर्ष बाद महाराज का भी विवाह सरदार किशनसिंह मानशाहीए चौकेरियावाले की लड़की के साथ बड़ी धूमधाम के साथ हुआ। महाराज भूपेन्द्रसिंह जी इन्हीं की कोख से पैदा हुए थे।

सन् १८८७ ई० में उत्तर-पश्चिम मे जो युद्ध हुआ, उसमे महाराज ने अपनी सेना अंग्रेजों की मदद को भेजी। चीन के युद्ध में भी महाराज ने सैनिक सहायता सरकार को पहुँचाई। दक्षिण अफ्रीका

के युद्ध के समय मे महाराज राजेन्द्रसिंहजी ने कुछ घोड़े सरकार को दिये थे। इस प्रकार सरकार-परस्ती मे उन्होंने कोई कमी नहीं रहने दी।

सन् १८६० ई० के ३ अक्टूबर को महाराज को राज्य के कुल अधिकार प्राप्त हो गये क्योंकि इस समय तक आप वालिग हो चुके थे। कौसिल खतम कर दी गई। उन लोगों को आपने पुरस्कार देकर उनकी वापिसी की। जिन्होंने कि नावालिगी मे राज्य की अच्छी सेवा की थी। आपने खलीफा मुहम्मद हसन को अपना वजीर वनाया। सन् १८६५ में खलीफा साहब के मरने पर आपने सरदार गुरदत्तसिंह को वजीर वनाया।

महाराज राजेन्द्रसिंह जी को शिकार और पोलो खेलने का बड़ा शौक था। सूअर और शेर तक का शिकार आप वर्छे से करते थे। आपको शिकार करते देखकर अंग्रेज अफसर हैरान हो जाते थे। पोलो और क्रिकेट मे तो नामी-नामी अंग्रेज खिलाड़ियों को आपने हराया था। लखनऊ, कलकत्ता, वम्बई और पूना तक आप पोलो खेलने के लिये गये थे। और प्रायः सभी जगह जीत आप ही की रहती थी।

आपके एक राजकुमार सन् १८७१ ई० के दशहरा के दूसरे दिन पैदा हुये थे। जब आपको तार द्वारा यह खबर शिमला मे मिली तो पटियाला पहुँच कर खुशी मनाई और कर्मचारियों को खुशी में वख्शीशें दीं। बहुत-कुछ दान पुण्य किया। यही राजकुमार युवराज भूपेन्द्रसिंह थे। जो कि अपने पिता के वाद राज्य के मालिक बने थे।

भटिंडा राजपुरा रेलवे लाइन भी महाराजा राजेन्द्रसिंह जी के ही समय में वन गई थी।

सरकार ने सीमांत युद्ध में सहायता देने के उपलक्ष में आपको 'दी पोस्ट् अगजाल्टर आफ दी स्टार आफ इंडिया" का खिताव और २१ तोपों की सलामी वजाय १६ के मंजूर की थी और काश्मीर के वाद दूसरी कुर्सी सरकारी दरवार मे आप ही को मुकर्रिर थी। इस प्रकार आपने काफी इज्जत वढ़ा ली थी।

आपके समय मे राज्य में आठ हजार सेना थी जिसे आपने अंग्रेजी तरीके पर सैनिक शिक्षा दिलाई थी।

आपने अपने समय मे पंजाव विश्व विद्यालय को ५५०००), अमृतसर खालसा कालेज को १६२०००), इम्पीरियल इन्स्टीट्यूट लन्दन को ३००००) रुपये दान दिये थे।

आपके संवन्ध मे कहा जाता है कि आप एक दयावान नरेश थे। जब आपके सामने किसी मुलाजिम को अलग करने के कागजात पेश होते तो आप बड़े पशोपेश मे पड़ते और उस समय तक किसी को नहीं निकालते जब तक कि उसके सम्बन्ध में खास शिकायतें नहीं होतीं।

आपने अपने समय में खेती की ओर भी यथा संभव ध्यान दिया। रियासत के प्रवन्ध में भी सुधार किये। राज्य मे अंग्रेजी ढंग के कायदे कानून प्रचलित किये। अपील के लिये व्यवस्थित अदालतें कायम कीं। इन सब बातों को मिलाकर देखते हैं तो अपने समय के अनेकों राजा महाराजाओं से आप योग्य और अच्छे शासक थे।

सन् १६०७ ई० मे केवल १७ वर्ष राज्य करके और ठीक भरी जवानी में कुल सत्ताईस वर्ष की आयु मे आपका स्वर्गवास हो गया। आपके देहावसान का शोक समस्त राज्य और सिख-समाज में मनाया गया। उस समय आपके उत्तराधिकारी युवराज भूपेन्द्रसिंह भी नावालिग ही थे।

महाराजा राजेन्द्रसिंहजी के स्वर्गवास के वाद उनके राजकुमार भूपेन्द्रसिंह जी गद्दी पर वैठे।

महाराजा भूपेन्द्रसिंह जी की अवस्था उस समय केवल १६ साल की थी। इसलिये राजकार्य फिर कौंसिल द्वारा ही संचालित होने लगा। जो कि ढाई वर्ष तक चला।

महाराज भूपेन्द्रसिंह महाराज भूपेन्द्रसिंह जो ने एटकिन्सन चीफ कालेज लाहौर में शिक्षा पाई थी। सन् १६०२ ई० में जब कि कोरोनेशन दरबार हुआ। ग्रेण्ड रिव्यू दिखलाने के लिये अपनी फौज को ले गये। उसी समय तत्कालीन गवर्नर जनरल कर्जन के साथ आपकी मुलाकात हुई। युवराज जार्ज पंचम से भी जब कि वे लाहौर पधारे थे आपने भेंट की थी।

सन् १६०५ ई० में आपने खालसा कालेज लाहौर के वास्ते एक लाख इसलिये दिया था कि इस रुपये से विदेशों में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को कालेज सहायता दे।

सन् १६०८ ई० मे जीन्द के एच० के० सेनापति की सुपुत्री के साथ आपका विवाह हुआ। और ३० सितम्बर सन् १६०६ ई० में जब कि आप अठारह वर्ष के हो चुके थे सरकार ने आपको शासनाधिकार प्रदान किये। क्रिकेट के आप बड़े प्रसिद्ध खिलाड़ी थे सन् १६११ ई० मे भारतीय क्रिकेट टीम के आप कप्तान होकर विलायत गये थे। दुबारा आप विलायत बादशाह जार्ज पचम के अभिषेक मे पधारे थे। दिल्ली मे जब बादशाह के तिलकोत्सव का दरबार जुड़ा था तो आप उसमे भी शामिल हुये थे इसी दरबार में आपको सम्राट की ओर से जी० सी० एस० जार्ज का खिताब मिला था। इस यात्रा में आपके साथ महारानी साहिबा भी थीं जिन्होंने कि भारतीय राजरानियों की हैसियत से सम्राज्ञी मेरी को मानपत्र भेंट किया था।

सन् १६१४ ई० में जिस समय जर्मन युद्ध आरम्भ हुआ उस समय आप भारत की ओर से इम्पीरियल-वार कन्ट्रोलस में शामिल हुये थे और फिर युद्ध मे आपने अपनी समस्त सेना अंग्रेजों के हवाले कर दी थी। साथ ही उन दिनों आपने पुर्तगाल, इटली, फ्रांस, जहां भी युद्ध क्षेत्र था वहाँ भ्रमण किया। इन सेवाओं के बदले मे सम्राट् की ओर से आपको सी० ओ० वी० ई० की उच्च उपाधि से विभूषित किया गया। शाही दरबारों में अब तक पटियाला नरेशों की ओर से नजर देने का रिवाज था। इस समय से सरकार ने उसे भी बन्द कर दिया। मेजर जनरल की रैंक का सम्मान भी आपको प्राप्त हुआ था। नियमित रूप से पटियाला के नरेशों के लिये १७ तोप की सलामी थी किन्तु इस समय से १६ तोप की कर दी गई।

आपने शहर पटियाला में गर्ल्स स्कूल, लेडी हार्डिङ्ग, नर्स पाठशाला, विक्टोरिया मेमोरियल और पूअरहाउस की स्थापना भी की थी। शहर की सफाई के लिये महकमा सफाई की भी स्थापना की थी।

राजकीय महकमों मे आपके समय में उचित परिवर्तन हुआ जिनमें अंग्रेजी ढंग का काफी समावेश किया।

सन् १६२७ ई० में आपने घोषित किया कि हम जाट नहीं हैं राजपूत हैं। और इस राजपूत बनने की धुनि में जामनगर में जाकर हाथी भाई नामक के पंडित से आपने संस्कार कराया। हम तो समझते हैं महाराजा साहब ने अपने जीवन में यह सबसे बड़ी भूल की थी। कारण कि अमृत छकते ही कोई भी आदमी हो वह 'सिंह' और 'खालसा' बन जाता है। खालसा के अर्थ होते हैं विशुद्ध, पवित्र और गंदगी रहित। आग में तपाने के बाद लोहा जिस प्रकार विकार रहित हो जाता है उसी प्रकार अमृत चखने के बाद कोई भी मनुष्य चाहे वह किसी भी जाति और धर्म का हो 'खालसा' हो जाता है। खालसा को फिर क्या आवश्यकता रहती है कि वह अपना कोई दूसरा सस्कार करावे। वैसे जाट भी तो क्षत्रिय ही

हैं। राजपूत और जाटों मे इसके सिवा क्या अंतर है कि जाट विधवा विवाह करते हैं और वे खान-पान और ऊंच नीच के भेद भाव को बहुत कम मानते हैं। यह रिवाज पुराने समस्त क्षत्रिय वंशों में थे। सिखों की लड़कियाँ गैर सिखों मे यथा सभव नहीं जानी चाहिये और जानी भी चाहिये तो उन्हीं लोगों में जो सिखो से सामाजिक रीति-रिवाज और रहन-सहन में बहुत पास हों और ऐसे जाट ही हैं फिर भी महाराज ने उन लोगो से लड़कियों के व्यवहार करने की भी चेष्टा की जो सिख धर्म और सिख रस्म रिवाज से बहुत दूर थे। लोगों का कहना है कि राजनैतिक महत्वाकाक्षाओ ने उन्हे राजपूत बनने के लिये वाध्य किया था खैर कुछ भी हो।

इसमें संदेह नहीं वे हिंदुस्तान के राजाओं मे एक ऊँचे दर्जे के राजनीतिज्ञ थे। गोलमेज कांफ्रेंस में भी पधारे थे और भारत की स्वराज्य की मांग का समर्थन करते हुए राजाओं का भी एक दृष्टिकोण पेश किया था। किन्तु उन्होने अपने आचरण से प्रजा मे और वाहर भी एक गहरा असन्तोष पैदा कर दिया था। उन्होंने शादियाँ भी कई कीं।

इससे पहले उनके समय मे महाराजा नाभा के केस को लेकर कुछ अप्रिय घटनाये हुईं जिनमे स्वार्थी लोगों ने आप में और महाराज रिपुदमनसिंह जी मे मेल नहीं होने नहीं दिया।

नरेंद्र मंडल के वायस चांसलर आप कई वर्ष तक रहे। फेडरेशन मे न शामिल होने का राजाओं की ओर का जो आंदोलन था। उसे आपही की नीति से बल प्राप्त हुआ था।

आपके समय मे आपके राज्य में भी राजनैतिक जागृति प्रजा के लोगों मे हुई जिसे दबाने में आपने सफलता प्राप्त की। सरदार सेवासिंह की जेल मे होने वाली मौत से आपके प्रति जनता के हृदय में कटुभाव उत्पन्न हुए थे किंतु समस्त सिख समाज आप से एक दम नाराज हुआ हो ऐसा दिखाई नहीं दिया। कारण कि सिख संस्थाओं को दान देने मे आप सदैव अग्रणी रहते थे।

सन् १९२६ ई० मे अखिल भारतीय जाट महासभा ने आपको सभापति बनाना चाहा था। इसके बाद सन् १९३६ ई० मे रैवाड़ी के राजपूत महासभा के आप प्रधान चुने गये थे किंतु वहाँ के लोगों की पार्टी बंदी और अपने स्वास्थ्य की खराबी के कारण आप उसमे शामिल न हो सके थे।

इतिहास की खोज के लिये आपने एक इतिहास विभाग भी राज्य की ओर से स्थापित किया था। जिसमे अन्य कई कार्यकर्ताओं के अलावा ठाकुर किशोरसिंह जी वारठ को भी रक्खा था किंतु पीछे राजपूतों के आन्दोलन पर महाराज ने उन्हे अलग कर दिया। राजपूत वारठजी से इसलिये नाराज हो गए थे उन्होंने राजपूतों के सम्बध मे कलकत्ते के किसी समाचार पत्र मे कुछ खरी-खरी बातें लिखी थीं।

महाराज भूपेन्द्रसिंह जी के समय मे राज्य कोष की वृद्धि तो नहीं हुई क्योंकि वह खर्चीले राजाओं मे से थे। उनसे स्वार्थी और चलते लोगों ने लाभ भी काफी उठाया।

उन्होंने अपने समय बहुत सा रुपया दान दिया था जिसके कुछ आंकड़े इस प्रकार हैं—

मिन्टो मेमोरियल फंड ५०००), कांगड़ा रिलीफ फड १००००), किंग मेमोरियल फड २०००००), खालसा कालेज अमृतसर एण्डोमेंट फंड ६०००००), लेडी हार्डिङ्ग मेमोरियल १२५०००), लेडी हार्डिङ्ग मेडिकल कालेज २०००००), सिख कन्या महाविद्यालय फीरोजपुर १००००), सिख धर्मशाला लदन १२००००), तिब्बिया कालेज देहली २५०००), हिंदू यूनिवर्सिटी बनारस ५०००००) एकमुस्त और २००००) प्रति वर्ष, युद्ध सम्बधी सहायता १५००००००) और प्रजा से संग्रह करके फड ऋण मे ३५००००) । यह तो सन् १९३३ के आंकड़े हैं इसके बाद भी उन्होंने क्षयनिवारक फंड, बाढ़ फंड, न जाने किन-किन मदों में

लाखों रुपये दान व सहायता मे दिये।

आपको जो-जो उपाधियाँ सरकार की ओर से दी गई थीं उनकी सूची काफी लम्बी है। जी० सी० आई० ई०, जी० सी० एम० आई० जी० सी० वी० ओ० आदि हैं।

अंतिम समय मे आपने एक महत्वपूर्ण घोषणा की थी वह आपको सदैव अमर रक्खेगी वह थी प्रजा को अधिकारों की देन के लिये एक दायित्वपूर्ण संस्था के निर्माण की। जिसके लिये आपने एक कमीशन भी मुकर्रिर कर दिया था।

सन् १६३८ ई० मार्च के महीने की २३ वीं तारीख को महाराजा भूपेन्द्रसिंह जी के स्वर्गवास के बाद उनके बड़े राजकुमार यादवेन्द्रसिंह जी पटियाला के महाराजा घोषित हुये। महाराजा यादवेन्द्रसिह का राज्याभिषेक-उत्सव बड़े ही समारोह के साथ हुआ। जिसमे प्रतिष्ठित राजा रईस और अंग्रेज अधिकारियों ने शामिल होकर शोभा को दुगुणित किया। महाराज यादवेन्द्रसिंह जी ने इस उत्सव के समय जो घोषणा की वह लोकमत को आकर्षित करने वाली थी। आपने रिश्वत और राजकीय कामों मे पक्षपात को दूर करने और प्रजा के हितों पर ध्यान रखने की घोषणा से प्रजा की वृत्तियों को एक दम अपनी ओर आकर्षित कर लिया।

महाराज यादवेन्द्रसिह

संक्षेप मे आपका अब तक का जीवन विवरण इस प्रकार है। सन् १६१३ ई० की १७ वीं जनवरी को आपका जन्म हुआ। जब कि आप बालक ही थे। महाराज भूपेन्द्रसिंह जी ने अपनी खुद की निगरानी मे आपकी शिक्षा के लिये एक हिन्दुस्तानी ट्यूटर नियुक्त किया। महाराज भूपेन्द्रसिंह जी की आपके लिये प्रबल इच्छा थी। एक योग्य नेता और शासक बने। जब आप सयाने हुये तो आपको एचसन कालेज लाहौर में दाखिल कराया। जहाँ आपने मि० ए० सी० सोलज की गार्डियन-शिप मे बड़ी लगन से शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद आपने चीफ्स कालेज का डिप्लोमा प्राप्त किया। आपके स्वभाव और बुद्धिमानी की प्रोफेसर प्रिंसपल और साथी सभी सराहना करते हैं। पढाई के साथ ही आप क्रिकेट के खेलों मे भी अग्रसर थे।

सन १६३० ई० की पहली गोलमेज सभा में आप अपने पिता के साथ लन्दन पधारे थे। उधर आपने अन्य यूरोपीय देशों की भी सैर की।

वहाँ से वापिस आकर आप फिलौर के पुलिस ट्रेनिंग स्कूल मे दाखिल हुये। जहाँ आपने पुलिस सम्बन्धी कानून और कायदों का अध्ययन किया।

पुलिस ट्रेनिङ्ग पाने के बाद आपने सुपरिटेन्डेन्ड और इन्सपेक्टर जनरल पुलिस के पदों पर रहकर अपनी क्रियाशीलता का परिचय दिया। डाकुओं का भी दमन इस ड्यूटी के समय में आपने बडी दिलचस्पी के साथ किया।

सन् १६३५ ई० मे आप फौजी शिक्षा मे निपुण होने के लिये कोयटा गये। जहाँ कि भूचाल आगया था। आपके साथ एक सिख रेजिमेंट भी थी। आपने वहाँ बड़ी मुस्तैदी और हिम्मत के साथ निजी तौर पर भूचाल सम्बन्धी सहायता के सरकारी कामों मे भाग लिया। जब वहाँ हैजा फैला तो महाराज भूपेन्द्रसिंह जी ने आपको वापिस पटियाला बुला लिया।

सन् १६३६ ई० में आपको महकमा जंगल के सेक्रेटरी का चार्ज मिला, जिसे आपने बड़ी रुचि के साथ पूरा किया। पहाड़ी इलाके से मंगवा कर आपने अनेक किस्म के फल फूलदार वृक्ष पटियाला के सरकारी बगीचों मे लगवाये।

इसके वाद आपके पास महकमा सदावर्त भी आया। बाढ़ सहायक समिति, कोटा भूचाल सहायक समिति आदि में आपने प्रमुख की हैसियत से काम करके पहिले ही यह सावित कर दिया कि सार्वजनिक कार्य्यों की ओर आपकी रुचि है।

गरीबों के लिये आपके हृदय मे बरावर ख्याल रहता रहा है। एक वार अस्पताल में अचानक पहुँच कर आपने देखा कि गरीब लोगों की चिकित्सा पर डाक्टर लोग कोई ध्यान देते हैं या नहीं।

क्रिकेट के आप जन्मजात खिलाड़ी हैं। आस्ट्रेलियन टीम जोकि एक प्रसिद्ध टीम है उसके साथ आपने खेल में सफलता प्राप्त करके प्रसिद्धि प्राप्त की है। इस समय आपने पटियाला में एक खेल घर वनाने का आयोजन भी किया हुआ है।

आप सार्वजनिक जीवन से दूर भागने वाले रईसों मे से नहीं हैं। उसका अध्ययन करते हैं और जो रुचि के अनुकूल होते है। उसमें भाग भी लेते हैं। जातीय संस्थाओं की ओर आपका ध्यान रहता है।

मार्च सन् १९३८ आपके पिता महाराजा भूपेन्द्रसिंह जी के देहावसान के वाद आपको जब अधिकार मिल गये। तब से तो आप बड़ी संलग्नता से कार्य करते रहे हैं। प्रजा को विना किसी मजहवी और कौमी भेद भाव के इन्साफ और नौकरियां मिलें इस वात पर तो आप पूरा जोर देते रहे हैं।

सन् १९५८ के अगस्त महीने की १५ तारीख को आपने अपनी दूसरी शादी प्रसिद्ध सिख नेता सरदार हरजानसिंह जी जेजीवालों की सुपुत्री के साथ की थी। वह महारानी सुशिक्षित और उदार खयालों की हैं। इस शादी से सिखों के अंदर बड़ी प्रसन्नता पैदा हुई। सरदार हरजानसिंह जी मान गोत के जाट सिख थे। और सार्वजनिक कामों मे वरावर भाग लेते थे।

उसी वर्ष दशहरा (३-१०-१९३८) के दरबार मे जिसमे कि पंजाब सरकार के प्रधान मन्त्री सर सिकन्दरहयातखां कृषिमंत्री सर सुन्दरसिंह मजीठिया और सिखों के प्रमुख लीडर मास्टर तारासिंह जी एवं सरदार निरंजनसिंह जी और ज्ञानी करतारसिंह जी आदि अनेकों सज्जन और जागीरदार एवं रईस इकट्ठे हुये थे। महाराज ने एक लोकोपयोगी घोषणा करके लोक का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। जिस किसी भी विवेकशील आदमी ने इस घोषणा को पढ़ा है उसी के मुंह से निकला कि पटियाले के वर्तमान महाराज नवयुवक भारतीय राजाओं में अपना एक विशेष स्थान कायम करने वालों में सावित होंगे।

इस दशहरे में दो लाख जन-समूह इकट्ठा हुआ था और शहर को प्रजाजनों ने वडे ही उत्साह से सजाया गया था। जुलूस को देखने वालों का कहना है कि यह समारोह अभूतपूर्व था। महाराज के वजीर सर लियाकतहयातखां जोकि सर सिकन्दरहयातखां के भाई थे—ने प्रबन्ध करने और आगन्तुक जनों का स्वागत-सत्कार कराने में बड़ी दिलचस्पी से भाग लिया था।

इस प्रसिद्ध दरबार में महाराजा यादवेन्द्रसिंह जी द्वारा जो घोषणा हुई उसका सार इस प्रकार था —

(१) प्रजा की बहतरी और खुशहाली के कामों में मैं पूरी तरह से दिलचस्पी लूंगा। यह प्रजा विश्वास रक्खे।

(२) मैं अपनी समस्त प्रजा को बिना किसी मजहवी भेद-भाव के एकसा देखता हूँ और सब ही प्रजाजनों के लिये मुलाजमतें और इंसाफ मेरी सरकार द्वारा एकसा मिलेंगे।

(३) प्रजा की भलाई की मुझे हर समय फिकर है। इस समय भी मेरे सामने प्रजा-रंजन की

पटियालाधीश श्री यादवेन्द्र सिंह जी



(श्री मथरादास सेक्रटरी राजप्रमुख के सौजन्य से प्राप्त)

कई योजनायें हैं।

(४) हमें अनुभव हुआ है कि प्रजा के स्वास्थ्य की ओर और भी कदम वढ़ाया जाय। अत. कुछ अधिक डिस्पेन्सरियां राज्य मे खोली जांयगी और चलते-फिरते अस्पताल का भी प्रवन्ध राज्य की ओर से किया जायगा।

(५) प्रजा की आर्थिक उन्नति और उद्योग-धन्धों की वृद्धि के लिये भी हमारे सामने योजनायें हैं। यह वताने मे हमें खुशी है कि राज्य में सीमेंट का कारखाना भी खोला जायगा। जिससे हजारों लोगों को रोजगार मिल सकेगा। सीमेंट के कारवार को चलाने के लिये एक कम्पनी कायम की जायेगी। सम्पन्न लोग उसके हिस्से खरीद कर लाभ उठा सकेंगे।

(६) कर्जे की समस्या भी हमारे सामने है। राज्य मे ६६ फीसदी खेतिहर हैं वे लोग वुरी तरह कर्जे से दवे हुये हैं उनके उद्धार के लिये भी कोई तदवीर निकाली जायगी।

(७) इलाका नारनौल मे इस वर्ष चारे की भारी कमी है। इसलिये रेलवे से चारा लाने की सहूलियत के लिये रेलवे का चारा लाने सम्वन्धी भाड़ा कम करा दिया गया है। रेलवे को जो घाटा इस प्रकार होगा उसे राज्य पूरा कर देगा।

(८) हमारे सामने नौली, भवानीगढ़, पटियाला और धनोर के इलाकों की शिकायत थी कि मालगुजारी उवर के जमीदारों पर ज्यादा है। हमने नजरसानी करके भवानीगढ़ और नौली के चक में मालगुजारी की रकम मे २६ फीसदी कमी करदी है। और पटियाला और धनोरा मे इस समय तो पुराने वकाया के ३०६१८) माफ करते हैं और मालगुजारी में किस प्रकार कमी की जाय यह प्रश्न विचारार्थ है।

(९) प्रजा की भलाई के कामों सम्वन्धी जानकारी हासिल करने के लिये हम इसी शरद ऋतु में राज्य का दौरा करेंगे।

(१०) स्वर्गवासी महाराज ने जो कानूनी सुधारों के लिये कमेटी कायम की थी वह तत्सम्वन्धी जानकारी प्राप्त कर रही है। हम अवश्य ही राज्य में राजनैतिक सुधार देखना चाहते हैं।

(११) इस अवसर पर १०१ कैदियों को रिहा किया जारहा है साथ ही समस्त राजनैतिक कैदियों को भी छोड़ा जारहा है जो लोग वाहर भागे हुये हैं उन्हे भी मुक्त किया जाता है।

(१२) जिन लोगों ने राज्य की भलाई मे दिलचस्पी से भाग लिया है उन समस्त सरकारी कर्मचारियों का हम धन्यवाद करते हैं और उनमे से अनेकों को इनाम इकराम भी दिये जाते हैं।

अपने शासन-काल में महाराज यादवेन्द्रसिंह काफी प्रगतिशील सावित हो रहे थे। यही कारण है कि जव सरदार पटेल ने रियासतें समाप्त कीं तो आपको पेप्सू राज्य का राज-प्रमुख नियुक्त किया। और आपका पटियाला राज्य भी पेप्सू में शामिल कर दिया गया।

चौबीसवाँ अध्याय

कलसिया राज्य का इतिहास

कलसिया जिला अम्बाला मे एक छोटा सा सिख-राज्य है। पहले तो यह राज्य भी बहुत बड़ा हो गया था, किन्तु उस समय की परिवर्तनकारी हलचलोंमे इसका बहुत बड़ा भाग निकल गया। इस समय इसका क्षेत्रफल लगभग १७० वर्गमील है सालाना आमदनी १६६७२५) बताई जाती है। राज्य की कुछ भूमि जिला फीरोजपुर में भी है। इस राज्य के ककरौली और बसी मुख्य नगर हैं। आबादी ६७१८१, सैनानी १२५ के करीब है।

जिस जाति के महान वीरों ने इस राज्य की स्थापना की वे सिन्धू जाट थे। सिन्धू भारत का अति प्राचीन राजघराना है। महाभारत काल मे सिन्धू लोगों का राजा कौरवों की ओर से लड़ा था। सिकन्दर के समय में भी सिन्धुओं का सिन्ध मे स्वतन्त्र राज्य था। यह चन्द्रवंशी क्षत्रिय हैं। अधिक खोज करने से इनकी वंशावली का सिलसिला उन राजाओं तक पहुँच सकता है जिन्होंने भारत मे एक समय अच्छी ख्याति प्राप्त की थी और जो पच्छिमी भारत के एक लम्बे समय तक शासक रहे थे।

कलसिया राज्य के संस्थापक सरदार गुरुबख्शसिंह जी ने किरोड़ा मिसल के साथ पुन उत्थान किया था। पंजाब के बरकियां गॉव का बहादुर सरदार करोड़ासिंह जिस सिख जत्थे के साथ रहता था। उसके प्रमुख शामसिंह और कर्मसिंह थे। इनके दल मे बारह हजार जवान रहते थे। और इन्होंने लगभग दस लाख के इलाके को अपने कब्जे मे कर लिया था। सन् १७४० ई० मे नादिरशाह से मुठभेड़ करते हुये सरदार शामसिंह तो काम आगये। कर्मसिंह ने ६ वर्ष के अर्से में जालंधर मे इतनी उन्नति की कि जालन्धर को अपनी राजधानी बनाने में समर्थ हुआ। सन् १७४६ में दुर्रानियों से लड़ता हुआ यह भी खतम हुआ। तब इस मिसल की बागडोर करोड़ासिंह के हाथ आई और उसी के नाम पर इस मिसल का नाम किरोड़ा मिसल पड़ गया। सरदार गुरुबख्शसिंह ने किरोड़ा मिसल मे शामिल होकर उन सब लड़ाइयो मे भाग लिया जो क्रिरोड़ासिंह के बाद सरदार बघेलसिंह ने लड़ी थीं। बघेलसिंह को इस मिसल की सरदारी सन् १७६१ ई० मे प्राप्त हुई थी। बघेलसिंह धारीवाल गोत का जाट सिख था।

सरदार गुरुबख्शसिंह

माझा के सिखों ने इससे एक वर्ष पहले होशियारपुर के मुसलमान गवर्नर से बम्बोली को छीना था। उस लड़ाई में सरदार बघेलसिंह और गुरुबख्शसिंह दोनों ही शामिल थे।

आगे चलकर हमे यह दिखाई देता है कि इस मिसल के ये दोनों सरदार अपने-अपने लिये अलग-अलग इलाके कायम करने मे लग गये थे। होशियारपुर जिले मे सरदार बघेलसिंह और अम्वाला मे सरदार गुरुबख्शसिंह अपनी-अपनी रियासते बनाने लगे। यह भी मालूम होता है कि सरदार गुरुबख्शसिंह जी का देहावसान सरदार बघेलसिंह से पहले ही हो गया था। बघेलसिंह सन् १८०२ ई० मे मृत्यु को प्राप्त हुआ। बघेलसिंह का राज उसकी दोनों विधवाओं ने आपस मे बांट लिया। रामकौर ने जिला होशियारपुर मे दो लाख के इलाके पर कब्जा कर लिया। और रतनकौर ने छलोढीवाले तीन लाख के इलाके पर अधिकार जमा लिया।

सरदार गुरुबख्शसिंह जी के सुपुत्र जोधसिंह ने अपने बाहुबल से अम्वाला के उत्तरी भाग मे कुछ भू-भाग अपने कब्जे मे कर लिया था। यह वही भू-भाग थे जो आजकल कलसिया इलाके मे शामिल हैं।

सरदार जोधासिंह

सरदार बघेलसिंह के मरने के बाद सरदार जोधासिंह ने महाराजा रणजीतसिंह के पास यह सवाल पेश किया कि बघेलसिंह जी का सारा इलाका मेरे और उनके उत्तराधिकारियों के बीच बंटना चाहिये। महाराजा रणजीतसिंह जी ने सन् १८०६ ई० में रतनकौर के पास पहुँच कर उसके इलाके मे से एक लाख का 'खुरदीन' वाला इलाका सरदार जोधासिंह जी को दिला दिया। इस तरह यह निपटारा हुआ। बसी, छिछरौली और चिराकू के इलाके के सिवाय भी बहुत सारे इलाके सरदार जोधासिंह ने अपने कब्जे मे कर लिये थे जो पीछे निकल गये। एक समय था कि जोधासिंह के अधीनस्थ इलाकों की आमदनी लगभग पांच लाख सालाना थी और उनका दरजा महाराजा पटियाला की बराबरी का समझा जाता था। नाभा पटियाला के झगड़ों मे उन्हे पंच बनाया जाता था। सभी फुलकियन सरदार उनसे सलाह लेते थे।

सन् १८०७ ई० मे जब नारायणगढ़ पर महाराजा रणजीतसिंह जी ने हमला किया था, उस समय सरदार जोधासिंह जी उनके साथ थे। इसके अलावा कई मुहासिरों मे उन्होंने महाराजा रणजीतसिंह जी का साथ दिया था। महाराजा रणजीतसिंह जी ने भी इनको बदालाखेरी और शामचपल के इलाके दिये थे।

इनके रुतवा और बहादुरी का पता इसी से चलता है कि तत्कालीन महाराजा पटियाला ने इनके साथ दोस्ती करने के हेतु इनके द्वितीय पुत्र सरदार हरीसिंह के साथ अपनी सुपुत्री की शादी की थी।

सन् १८१८ ई० में जब महाराजा रणजीतसिंह जी ने मुल्तान विजय के लिये सेनाये भेजीं तो सरदार जोधासिंह जी को उनका सेनापति बनाया गया। वे बड़ी बहादुरी के साथ मुलतान के पठानों से लड़ते हुए काम आये। इस युद्ध में अनेकों मुसलमान रईस इकट्ठे हो गये थे और उन्होंने संयुक्त मोरचा लिया था।

अपने पिता के बाद सरदार शोभासिंह जी अपनी रियासत के मालिक हुए। इन्होने पटियाला के राजा कर्मसिंह की देखरेख में कुछ समय बिताया था और उनसे इनका मेल-जोल भी काफी था।

सरदार शोभासिंह

सरदार शोभासिंह जी को सन् १८२१ ई० में सतलज के उत्तर के कुछ इलाके अंग्रेजों को दे देने पड़े। चूंकि अंग्रेजों की अधीनता तो सन् १८०६ मे सरदार जोधासिंह ही फुलकियन स्टेटों की भांति स्वीकार कर चुके थे। खिराज का बोझ हल्का करने के लिये इन इलाकों को सरदार शोभासिंह जी ने लाहौर दरबार को देकर अपना पिंड छुड़ाया। और अपने राज्य को एक प्रकार से लाहौर दरबार से स्वतन्त्र ही कर लिया।

मादक द्रव्यों का ठेका सरकार को ६०००) रुपया सालाना पर दे दिया। टैक्सों और लूट-खसोटों से कलसिया राज्य की प्रजा की काफी दुरावस्था हो गई थी। उसे भी सुधारने का आयोजन कौंसिल ने किया।

सन् १६०६ ई० में राजा रनजीतसिंह जी को राज्य के कुल अधिकार मिल गये। किन्तु खेद है वे केवल दो ही वर्ष शासन करके सन् १६०८ ई० में इस संसार से चल बसे। आपकी एक पुत्री का विवाह मुरसान-बल्देवगढ़ के राजा के साथ हुआ था।

राजा रविशेरसिंह अपने पिता के देहावसान के समय राजा रविशेरसिंह जी की अवस्था भी कुल ६ वर्ष थी इसलिये कमिश्नर देहली की देख रेख में एक कौंसिल की स्थापना की गई। जो आपके बालिग होने तक बराबर राज्य का प्रबन्ध करती रही। जब रियासतें समाप्त हुईं और पंजाब की रियासतों का संघ बना तो कलसिया राज्य, पेप्सू संघ में मिला दिया गया।

पच्चीसवाँ अध्याय

सिख-जागीरों का इतिहास

वर्तमान समय मे सिखों में सैकडो छोटे-मोटे जागीरदार है। जिनमें से कुछ तो पेप्सू रियासत के अन्तर्गत है और कुछ पंजाब के अन्दर। किन्तु प्राय' सभी सिख जागीरदार पंजाब में ही हैं। कुछ यू० पी० मे भी है किन्तु यू० पी० मे जितने भी जागीरदार है महाराज रणजीतसिंह जी के रिश्तेदारों, दोस्तों और सरदारों में से हैं जिन्हे महाराजा रणजीतसिह के बाद अपना दखल जमाने के लिये पंजाब से बाहर निकाल देना उचित समझा था और जिनके गुजारे के लिये कुछ जमीन वहाँ बता दी थी अथवा फिर उन्होंने गदर के समय अंग्रेजों की मदद की थी।

सिख जागीरदारों का सबका एक-सा ही इतिहास हो, ऐसी बात नहीं है। इनमे से कुछ तो उन बहादुरों के उत्तराधिकारी हैं जिन्होंने मिसलों के समय में अपना खून बहा कर कुछ जमीन (इलाकों) पर कब्जा कर लिया था और महाराजा रणजीतसिंह, फूलवंश और अंग्रेजों की चपेटें खाते-खाते किसी भी रूप मे बच रहे। कुछ ऐसे है जिन्होंने महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ मुस्लिम सत्ता को नष्ट करने मे अपना सर्वस्व बलिदान किया था उसके बदले में महाराज ने उन्हे कुछ इलाके दे दिये थे और फिर अंग्रेजों की सेवा-शुश्रूषा से अपने को बचाने मे भी समर्थ हो सके थे। कुछ वे है जो वर्तमान सिख राज्यों के ही छुट भइये हैं। जिन्हे या तो वहां के नरेशों ने ही या अंग्रेजों ने राज्य के कुछ भू-भाग पर स्वत्व दे-दिला दिये थे। एक वे भी हैं जो अंग्रेज सरकार की ही कृपा से बने हैं। इन सब के अलावा गुरुओं के खानदान के भी कुछ लोग जागीरदार है जिन्हे सिख राजो, मुस्लिम हाकिमो और अंग्रेज सरकार सभी से कुछ न कुछ मदद जागीरदार बनने और बने रहने मे मिली है।

सक्षिप्त तौर से हम कुछ जागीरदारों का इतिहास यहाँ जिनके कि सम्बन्ध मे जिक्र करना अत्यावश्यक समझते है—दे रहे हैं।

यह खानदान कहिलान कहलाता है जो कि इसी नाम के एक प्रसिद्ध जमींदार के नाम पर मशहूर हुआ है। कहिलान की ग्यारहवीं पीढ़ी मे भागसिंह या भगो पैदा हुये। वह पंजाब के गुरुदासपुर जिले मे बटाला के पास अपना एक नया गाँव बसा कर रहने लगे। वही गाँव भगो वाला के नाम से मशहूर हुआ। जागीर भी उसी नाम पर प्रसिद्ध हुई। भगो की सन्तान मे ध्यानसिंह के पुत्र रामसिंह सरदार बाघसिंह जी बाघ के साथी बन गये।

भगो वाला

और लड़ाई झगड़ों में बराबर भाग लेते रहे। बाघसिंह ने सन् १७६५ ई० भूगाथ और खातब नाम के दो और गॉव अपने विजित इलाके में से रामसिंह को दे दिये। रामसिंह बहादुर आदमी थे। उन्होंने कुछ इलाका अपने बाहुबल से भी बढ़ाया और एक अच्छे इलाके के मालिक बन गये। सन् १८०६ ई० में महाराजा रणजीतसिंह जी का इधर दौरा हुआ। उन्होंने भगोवालों के अधिकांश भाग को छीनकर देसासिंह मजीठिया को दे दिया। इस समय रणजीतसिंह का चढ़ता सितारा था इसलिये रामसिंह जी इतने पर भी कांगडा के युद्ध मे महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ गये और वहां पर लडाई मे काम आये। यह घटना भी १८०६ ई० की ही हैं।

देसासिंह मजीठिया ने सरदार रामसिंह जी के नाबालिग पुत्र मिहांसिंह का खयाल रक्खा और उसे अपने लड़के लहनासिंह के साथ सैनिक शिक्षा दिलाई। सरदार देसासिंह जी जब महाराज की ओर से पहाड़ी इलाकों के सूबेदार बनाये गये तो देसासिंह जी उधर के पहाड़ी इलाकों की आय मे से २२००) सालाना सरदार मिहांसिंह जी को देते रहे। मिहांसिंह एक प्रकार से इस समय देसासिंह के अधीनस्थ और उनकी सेना के एक जत्थेदार थे। वे बराबर लडाइयों में भाग लेते। सन १८२५ ई० में उन्होंने कोटलहेड़ की लडाई में बिना रक्तपात के ही वहा के राजा से चाबियां दिलवा दी थीं। इस तरह जहाँ रणजीतसिंह का वह राज्य माडलिक बन गया, वहा राज्य के साथ भी इतनी भलाई हुई कि वह एक दम नष्ट होने से बच गया।

सन १८३२ ई० मे सरदार देसासिंह जी के मरने पर उनके पुत्र लहनासिंह का भी वर्ताव मिहांसिंह के साथ अच्छा ही रहा। उसने इन्हें १५५०) की अपनी रियासत मे जागीर देदी और १२००) साल की पेन्शन कर दी। लहनासिंह को इनका इतना विश्वास था कि जब वह पेशावर की लड़ाई में गया तो मिहांसिंह को अमृतसर का थानेदार मुकर्रिर कर गया।

मिहांसिंह के पुत्र गुलाबसिंह को लहनासिंह मजीठिया ने अपने तोपखाने का अफसर बना दिया। गुलाबसिंह की कमान में ग्यारह तोपें दी गई। गुलाबसिंह भी वफादार और बहादुर आदमी थे। इसलिये उनको भी २११६) सालाना की जागीर लहनासिंह ने ब इजाजत महाराजा रणजीतसिंह बख्शी। गुलाबसिंह ने यहा तक तरक्की की कि जिन दिनों हीरासिंह सिख-साम्राज्य के मन्त्री बने। उस समय गुलाबसिंह सेना मे जनरल के पद पर पहुँच गये। उन्हे इस पद के वेतन में एक हजार सालाना नकद मिलते थे और २४५८) की सालाना आमदनी के खाराबाद और लुहेका लाहौर दरबार की ओर से आपको जागीर मे मिले हुये थे। जब हीरासिंह की बजाय जवाहरसिंह सिख साम्राज्य के मन्त्री हुये तो आपका सम्मान इतना और बढ़ा दिया गया कि पहले जहां आपकी कमान मे ग्यारह तोपें थीं अब बारह रहने लगीं। वेतन उतना ही रहा।

दूसरे सिख-युद्ध के समय उन्हे विवश होकर अंग्रेज सरकार के पक्ष मे होना पड़ा।

सन् १८५३ ई० मे गुलाबसिंह ने सरदार लहनासिंह मजीठिया के साथ काशी की तीर्थ यात्रा की। दूसरे ही साल लहनासिंह की मृत्यु हो गई। अतः आप वापिस अपने देश मे आ गये। सन् १८६३ ई० मे आप लहनासिंह जी मजीठिया के पुत्र दयालसिंह के संरक्षक नियत हुए। इससे पहले वे नौशहरा के रईस जस्सासिंह के लड़के सुरसिंह के भी सरक्षक रह चुके थे। इसके बाद कुछ दिनों के लिए राजा सांसी के सरदार शमशेरसिंह सिन्धानवालिये के पुत्र बख्शीसिंह के भी संरक्षक रहे। आपकी लोकप्रियता इससे प्रकट होती है कि आपको अमृतसर गुरुद्वारा का मैनेजर भी चुना गया था। उन्होंने अपने समय मे एक,

गलती भी की थी। वह यह कि अपनी जागीर मजीठियों के हाथ सन् १८७० में तीन हजार रुपये में वेच दी। किन्तु मजीठियों ने आधी उन्हे उनकी उन सेवाओं के उपलक्ष मे वापिस करदी, जो आपने इस खान्दान की की थीं।

सन् १८८२ ई० में सरदार मिहांसिंह का देहात हो गया और उनका पुत्र रिछपालसिंह उनकी जायदाद का मालिक हुआ। रिछपाल एक योग्य व्यक्ति थे। उन्हे सन् १८७५ मे मुन्सिफी मिल चुकी थी किन्तु अपने पिता की मृत्यु के वाद उसे उन्होंने छोड़ दिया और अपने गॉव मे ही रहकर जागीर की देखभाल करते रहे। सरदार वदनसिंह के साथ जो प्रांतीय सरकार के दरवारी थे इनका रिश्ता था।

रिछपालसिंह का सन् १६०८ ई० में देहावसान हो गया। गोपालसिंह जो कि उनके ज्येष्ठ पुत्र थे पिता के वारिस हुए। उनके दूसरे पुत्र पृथ्वीपालसिंह और विशनसिंह सरकारी ओहदों पर काम करते थे। गोपालसिंह ने अपने भतीजे के ज्येष्ठ पुत्र गुरुवख्शसिंह को गोद ले लिया था। विशनसिंह का सन् १६०४ मे ही देहांत हो गया था। विशनसिंह के हिस्से मे तीन सौ एकड़ जागीर थी। जिस पर उनके तीन पुत्र काविज हुए।

सरदार गोपालसिंह को सरकार ने दस मुरव्वे जमीन जिला लायलपुर में दी थी। उन्होंने पटियाला राज्य मे खेरीमनिया नाम का गॉव भी खरीदा था। इस खान्दान के पास जिला गुरुदासपुर मे पाँच गॉवों मे ८५० एकड़ जमीन और कांगड़ा के गाजीया नामक स्थान मे एक चाय का वाग है। जिला गुरदासपुर के भगोवाला मे २०० एकड़ मुआफी और है। माफी और जागीरों से लगभग ३६७६) रुपये सालाना की आमदनी होती थी। यह पुराने समय का एक पूरे इलाके का मालिक कालांतर में पंजाव का कुल चार हजार का चीफ्स रह गया।

रांगर नांगल का वह स्थान है जो वटाला के पास वीकानेर से आये हुए जाट लोगों ने कई सौ वर्ष पूर्व आवाद किया था और फिर मिसलों के समय मे इनमें से रनदेव और उसके बेटे नत्थासिंह ने सिख धर्म की दीक्षा लेकर कन्हैया मिसल के सरदार जयसिंह की कमान मे रहकर रागर नांगल के इर्द-गिर्द के इलाके पर कव्जा कर लिया था। इस स्थान पर नत्थासिंह ने एक छोटा सा किला भी वना लिया था।

रागर

नत्थासिंह के वाद कर्मसिंह ने अच्छा नाम पैदा किया। उन्होंने किले को अधिक मजवूत वनवाया और अमृतसर में एक कटरा आवाद किया जो कर्मसिंह रांगर नांगल का कटरा कहलाता है। जव महाराजा रणजीतसिंह जी का प्रभुत्व वढ़ा तो इन्होंने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली और उनकी फौज मे कप्तान का पद लेकर युद्धों मे उनकी सहायता करते रहे। एक वार वेतन न मिलने पर आपने फौज का पक्ष लिया और महाराजा रणजीतसिंह जी पर दवाव डाल कर वेतन चुकवाया। इससे महाराज नाराज हो गये और उन्होंने इनका अमृतसर का मकान लुटवा लिया किन्तु फिर दोनों मे मेल हो गया और पेशावर की लड़ाई में सख्त घायल होने के कारण दुआवा मे महाराजा ने इन्हे एक जागीर भी दी। एक समय उनके पास कई लाख रुपये की जागीर हो गई थी जो कि जिला गुरदासपुर ही मे अवस्थिति थी।

कर्मसिंह के लड़के जमीअतसिह भी महाराजा रणजीतसिंह की सेना मे ही थे। उनकी वहादुरी के कारण महाराज उन्हे प्यार करते थे। जमीयतसिंह के छोटे भाई वजीरसिह को तीन वार मे महाराज ने एक जागीर दी थी। यह घटना सन् १८२१ ई० की है क्योंकि इससे एक ही वर्ष पहले जमीअतसिंह और वजीरसिंह का चचेरा भाई रामसिंह दरवन्द युद्ध के समय हजारा मे शहीद हो चुके थे। यह जागीर इसी युद्ध

के उपलक्ष में मिली थी।

जमीअतसिंह के लड़के अर्जुनसिंह भी एक बहादुर सरदार थे किन्तु महाराज शेरसिंह के समय में कुछ आपसी ईर्षाद्वेप से इनकी जागीर काफी कम करदी गई। कुल २८०००) की आमदनी ही रह गई। इसमें से भी १३०००) के सवार लाहौर दरबार की मदद को देने पड़ते थे। अर्जुनसिंह की माँ राजा खड्गसिंह की रानी चादकौर की चाची थी। अर्थात् खड्गसिंह की रानी अर्जुनसिंह की चचेरी वहिन थी। शेरसिंह और खड्गसिंह में भाई-भाई होते हुए भी झगड़ा था। इसी कारण खड्गसिंह और नौनिहालसिंह के मरने के बाद अर्जुनसिंह की जागीर जब्त करली गई।

सतलज के धावे से पहले सन् १८४५ ई० में राजा लालसिंह ने आपको चार रेजिमेंटों का अफसर नियुक्त किया था। सौराव के युद्ध में आप इन्हीं पल्टनों के नायक थे। क्योंकि राजा लालसिंह अंग्रेजों से मिल गया था और यह लालसिंह के इशारे पर ही चले थे। इसलिये सन् १८४७ में मेजर लारेन्स की शिफारिस पर अंग्रेज सरकार ने इन्हें खिताव भी दिया था।

जब अकारण ही अंग्रेजों ने अटारी के राजा शेरसिंह को छेड़ा तो ये उनके साथ वगावत में शामिल हो गये। यही क्यों आपके परिवार के सारे ही व्यक्ति राजा शेरसिंह के तरफदार हो गये। जब अंग्रेजी सेनाये रांगर नांगल पर पहुंची तो उनको हटाने में भी इनके पारिवारिक जन सफल हुए। किन्तु १८४८ के १५ अक्तूबर को ब्रिगेडियर हीलरने रांगर नांगलको फतह कर लिया और रांगर नागलकी सारी जागीर सरदार मगलसिंह रामगढ़िया को दे दी। अर्जुनसिंह को केवल १५००) रुपये सालाना की पेंशन उनके जीवन भर के लिये सरकार ने दी। अर्जुनसिंह जी के बाद राजा नाभा की शिफारिस पर उनकी दोनों विधवाओं को केवल २४०) रुपया सालाना की पेंशन सरकार की ओर से की गई। सन् १८५६ ई० में आपका देहान्त हो गया।

अर्जुनसिंह जी के दो बेटे थे। जिनमें बड़े लड़के बलवंतसिंह ने जैसे-तैसे प्रांतीय दरबारियों में स्थान ग्रहण किया। बलवंतसिंह के दूसरे भाई अतरसिंह थे। दोनों भाइयों के पास गुरदासपुर और अमृतसर में केवल १५०० एकड़ भूमि रह गई थी। नाभा के राजा भरपूरसिंह जी ने इन्हे रोहीं और बूराकलां जागीर में दे रक्खे थे किन्तु उनके उत्तराधिकारी ने उन्हें जब्त कर लिया। अतरसिंह को वे रोही की आमदनी देते रहे। सन् १६०३ ई० में अतरसिंह का भी देहान्त हो गया। उनके दो नाबालिग पोते गुरदत्तसिंह और गुरुबचनसिंह नाभा में ही परिवरिश पाकर बड़े हुए। इनके पिता प्रतापसिंह अपने बाप के आगे ही सन् १६०१ ई० में मर चुके थे।

फरवरी सन् १६०८ ई० में सरदार बलवंतसिंह जी का भी स्वर्गवास हो गया। उन्होंने भी दो नाबालिग पुत्र हरीसिंह और नारायणसिंह छोड़े। सरकार ने बच्चों के बालिग होने के समय तक के लिए आपकी जागीर को कोर्ट-आफ-वार्डस के प्रबन्ध में कर दिया था। इस खान्दान को अंग्रेज सरकार से कोई जागीर नहीं मिली। जो भी कुछ शेप रही वह महाराजा रणजीतसिंह जी के समय की ही थी।

जयसिंह कन्हैया के गांव कान्ह के पास ही जुलका नाम का गांव है उसमें बघेलसिंह नाम के एक सिन्धू-गोत्रीय जाट जमीदार रहते थे। हकीकतसिंह उनके लड़के का नाम था। जयसिंह के साथ ही हकीकतसिंह भी सरदार कपूरसिंह सिंहपुरिया के दल में शामिल हो गया। सरदार कपूरसिंह की मृत्यु के बाद दोनों सरदार स्वतन्त्र हो गये। हकीकतसिंह ने कालानौर, बूर, दुलबू, काहनगढ़, अदालतगढ़ और पठानकोट, मतू वगैरह पर अपना अधि-

फतहगढ़

कार जमा लिया। इनकी कमान में संगतपुर के सरदार साहबसिंह, दादूपुरे के दयालसिंह और संतसिंह, बनोद के चेतसिंह, तारागढ के साहबसिंह और देसासिंह मोहल जैसे प्रसिद्ध २ शूरवीर रहते थे। सन् १७६० ई० मे हकीकतसिंह ने चुरियानवाला को मिस्मार कर दिया और उसकी जगह पर संगतपुर गांव और फतहगढ़ किले का निर्माण कराया। हकीकतसिंह के दूसरे भाई महतावसिंह ने चित्तोड़गढ़ नाम से एक दूसरा किला बनवाया। इस प्रकार इनके अधिकृत इलाके मे दो किले हो गये।

सन् १७८२ ई० मे हकीकतसिंह का देहान्त हो गया और उनका ग्यारह साल का लड़का जयमलसिंह उनका वारिस हुआ उसके समय में कोई भी उल्लेखनीय बात नहीं हुई। सन् १८१२ ई०मे ३० वर्ष की अवस्था मे जयमलसिंह का देहान्त हो गया। महाराजा रणजीतसिंह ने मौका पाकर फतहगढ़ पर कब्जा कर लिया और जब कि जयमलसिंह की विधवा सरदारनी के तीन महीने बाद एक लड़का जिसका कि नाम चांदसिंह रक्खा गया था—हुआ तो महाराजा रणजीतसिंहजी ने पन्द्रह हजार रुपये सालाना की आमदनी का एक हिस्सा उसके लिये जयमलसिंह के कुल इलाके मे से छोड दिया। यह याद रखने की बात है कि महाराजा रणजीतसिंह के पुत्र कुँवर खडगसिंह के साथ जयमलसिंह की पुत्री चाँदकौर का विवाह हुआ था जो कि जयमल सिंह ने अपनी मृत्यु से कुछ ही समय पूर्व किया था। यह विवाह बड़ी ही धूमधाम के साथ हुआ था इसमें गवर्नर जनरल अक्टरलोनी और नाभा, जींद, कैथल के राजा भी पधारे थे। इससे जयमलसिंह के गौरव और वैभव का पता चलता है।

सन् १८३९ ई० में महाराजा रणजीतसिंह जी के देहावसान के बाद लाहौर में जो-जो नाटक ध्यानसिंह वगैरह गद्दारों की नमकहरामी के कारण हुये उनका यहाँ हम विस्तृत वर्णन करना नहीं चाहते। इतना बता देना चाहते हैं कि महाराज खड्गसिंह और उनके कुँवर नौनिहालसिंह की मृत्यु के बाद जो हकदार खालसा राज्य के खड़े हुये थे। उनमें एक महाराज शेरसिंह थे और दूसरी महाराजा खड्गसिंह की विधवा महारानी चांदकौर थीं जो कि फतहगढ़ अपनी मां और भाई चांदसिंह के पास रहती थीं। रानी चांदकौर के सामने दो प्रस्ताव रक्खे गये एक तो यह कि वे महाराज शेरसिंह के साथ अपना नाता करलें इससे दोनों ही अधिकारी रह सकें। दूसरे यह कि वे राजा ध्यानसिंह के पुत्र हीरासिंह को गोद ले लें। महारानी जी ने दोनों प्रस्ताव ठुकरा दिये और उन्होंने दो बातें रक्खीं। एक तो यह कि उन्हें अतरसिंह सिन्धानवालिया को गोद लेने का अधिकार दिया जाय। दूसरे यह कि कुँवर नौनिहालसिंह की बेवा के बच्चा होने वाला है उसे राज्य दिया जाय। बहुत सारे झमेले और झगड़ों तथा फिसाद के बाद लाहौर का राज्य महाराज शेरसिंह के हाथों मे चला गया। रानी चांदकौर अपने भाई की जागीर में ही वापिस आगई।

महाराज शेरसिंह को पता था कि फतहगढ़ मे बहुतसा धन नौनिहालसिंह ने भेजा था। अत उसने फतहगढ़ सेना भेजकर वह धन वापिस मंगा लिया। चांदसिंह के लिये केवल ६० हजार रुपये की जागीर रहने दी। इनके दुर्भाग्य का अन्त यहीं नहीं हुआ। ध्यानसिंह का लड़का हीरासिंह जब खालसा राज्य का मन्त्री हुआ तो उसने चांदसिंह का सारा इलाका जब्त कर लिया और दोष यह लगाया कि चांदसिंह ने मेरे पिता राजा ध्यानसिंह के मरने पर रोशनी की थी किन्तु लाहौर मे फिर परिवर्तन हुआ और सरदार जवाहरसिंह मन्त्री बने। उन्होंने ३०६०) सालाना आमदनी की जागीर चांदसिंह के लड़के केसरसिंह को बख्शी। जिस पर वे जिन्दगी भर काबिज रहे। सन् १८७० ई० में सरदार केसरसिंह की मृत्यु हो गई।

फतहगढ़ मे जहां कि किले के खंडहर अवशेष हैं। इस खान्दान के पास बहुत ही थोड़ी जमीन रह गई। अजनाला तहसील के कुछ गावों मे थोड़ी-सी माफी की है। सगलपुर में इस खान्दान के रईस सरूपसिंह जी के वंशज रहते हैं। वहां केवल ३०० बीघा जमीन के मालिक हैं ६२२) रु० सालाना की नकद जागीर सरूपसिंह के पास थी।

यह खान्दान पहले बहुत धनी और शक्तिशाली था। इस खान्दान का संस्थापक अमरसिंह माल गोत का जाट था और अमृतसर जिले के भागा नामक गॉव मे रहता था। सिख धर्म की दीक्षा लेकर यह कन्हैया मिसल के साथ मिलकर यवनों का शोधन और स्व-शक्ति का वर्द्धन करने लगे। सुकलगढ़, सुजानपुर, धर्मकोट और बहरामपुर पर कब्जा करके उन्होंने अपने रहने के लिये सुकलगढ़ मे एक किला बनवाया। सन् १८०५ ई० मे अमरसिंह के स्वर्ग सिधारने पर उनका बड़ा लड़का भागसिंह अपने इलाकों का मालिक हुआ। भागसिंह योद्धा प्रवृत्ति के आदमी न थे इन्होंने इलाका बढ़ाने की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया, फारसी और सस्कृत के अच्छे विद्वान् होने के कारण अपना अधिकाश समय ज्ञान चर्चा मे बिताते थे। चित्रकारी में भी उनको विशेष प्रेम था। इन सबसे ज्यादा काम वह बन्दूक ढालने का जानते थे। अपने पिता के बाद केवल तीन वर्ष तक आप जीवित रहे। देसासिंह मजीठिया इनका फुफेरा भाई था। इसलिये इनकी उसके साथ दोस्ती भी गहरी थी। इनके मरने पर देसासिंह ने यही कोशिश की कि इनका उत्तराधिकारी इनका लड़का हरीसिंह ही बने किन्तु ऐसा हो नहीं सका और भागसिंह का भाई बुधसिंह इलाके का मालिक बना किन्तु बुधसिंह अपने अधिकार को अक्षुण नहीं बना सका। सन् १८०६ ई० मे कांगड़ा पर चढ़ाई करते समय महाराजा रणजीतसिंह ने बुधसिंह से सहायता मांगी थी किन्तु यह खयाल करके कि हम रणजीतसिंह के मातहत थोड़े ही हैं एक आदमी की सहायता नहीं दी। इससे चिढ़कर महाराजा रणजीतसिंह जी ने इसके इलाके पर कब्जा कर लिया और केवल धर्मकोट भागा की २२ हजार सालाना की आमदनी की जागीर बुधसिंह के पास रहने दी बाकी देसासिंह मजीठिया को उसकी सेवाओं के उपलक्ष्य मे दे दी। सन् १८४६ ई० मे बुधसिंह की मृत्यु के बाद राजा लालसिंह ने उस पर भी कब्जा कर लिया किन्तु देसासिंह के पुत्र लहनासिंह मजीठिया की शिफारिस पर बुधसिंह की तीन विधवाओं और लड़के प्रतापसिंह के वास्ते ५०००) सालाना आमदनी की जागीर उनके गुजारे के लिये महाराजा रणजीतसिंह द्वारा दी गई। इसी मे भागसिंह के पुत्र हरीसिंह का भी हक—लाहौर दरबार की ओर से रक्खा गया। सन् १८५२ ई० मे हरीसिंह की भी मृत्यु हो गई। इनके दो पुत्र थे ईश्वरसिंह और जीवनसिंह। क्रमश. सन् १६०१ ई० और सन् १६०५ ई० में इनका भी देहान्त हो गया। दोनों ने अपने पीछे सात वारिस छोड़े। जिनमे दो पुत्र ईश्वरसिंह के और पांच जीवनसिंह के थे। इनमें हरनामसिंह सबसे बड़े थे अत. वे ही सारी जागीर के मालिक बन गये। बटाला के पास बुर्ज आर्यथान मे ६१६) सालाना की इनकी जागीर है। इनके दो भाई मुसलमान हो गये। इकबाल और फजलहक उनके नाम रक्खे गये और धर्मकोट मे दोनों के पास जागीर थी। शेष भाई सरकारी फौजों और दूसरे महकमों मे घुस गये।

भागा

रनधावा खान्दान का संस्थापक बीकानेर राज्य से पजाब की ओर आया था। लगभग ७०० वर्ष पहले उसने पंजाब मे सात खान्दानों की नींव डाली। धर्मकोट, घनियानली, इमिचारी, दोहा, दोरगा या तलवन्डी, काटू नागल और खन्दा उनके प्रसिद्ध भू-भाग थे। रनधावा की पाचवीं पीढ़ी में कजल हुआ। इसने बटाला के पास उपनिवेश कायम किया। नौशहरा, जफर-

खन्दा

वाल, शाहपुर और खन्दा इनके अधिकार मे आ गये। रनधावा खान्दान की दूसरी शाखाएँ भी काफी उन्नतिशील बन गईं। इन्होंने आरम्भ मे कन्हैया मिसल के साथ पड़ कर तरक्की हासिल की थी। सन् १७६३ ई० मे जयसिंह कन्हैया की मृत्यु के समय इनके अधिकार मे लगभग दो लाख सालाना की आमदनी का भू-भाग था किन्तु रानी सदाकौर बिधवा जयसिह ने इनके नौशहरा और हयातनगर के इलाके अपने कब्जे में कर लिये। इससे आगे सरदार प्रेमसिह के समय मे महाराजा रणजीत-सिह जी ने सारे ही इलाके को अपने राज्य मे मिला लिया। केवल १० गाँव इस खान्दान के गुजारे के लिये छोड़े।

प्रेमसिंह के पिता सरदार पंजाबसिंह ने जोधसिंह मजीठिया की पुत्री के साथ विवाह किया था। जोधसिंह के पुत्र देसासिंह मजीठिया का महाराजा रणजीतसिंह जी पर बड़ा प्रभाव था। इसलिये प्रेमसिंह को महाराज ने अपनी सेना में घुड़सवारों का नायक मुकर्रिर किया। प्रेमसिंह ने प्रायः कई युद्धो मे भाग लिया किन्तु सन् १८२४ ई० को अटक नदी को जब महाराजा रणजीतसिंह पेशावर पर चढ़ाई करने के लिये पार कर रहे थे अनेकों सवारों के साथ सरदार प्रेमसिह भी बह गये। उनके चार पुत्र थे जिनमे बराबर-बराबर उनकी जागीर बँट गई।

प्रेमसिंह के बाद उनके दो लड़के सरदार जयमलसिंह और जवाहरसिंह महाराजा रणजीतसिंह की सेवा मे आ गये। जहाँ उन्हे सन् १८३६ ई० मे रामगढ़िया ब्रिगेड के कमांडर सरदार लहनासिंह चाहल की जगह पर जो कि इनके श्वसुर होते थे और मर चुके थे। नियुक्त कर दिया। इन्होंने जमरुद और पहाड़ी प्रदेशों की सभी लड़ाइयों मे भाग लिया। यह चार भाई थे। जवाहरसिंह और हीरासिंह एक मा से और जयमलसिंह और जसवतसिंह दूसरी मां से। किन्तु प्रेम सबमें एक सा था। इनमें से जसवन्तसिंह का सन् १८४४ ई० मे स्वर्गवास हो गया।

जमीन जायदाद पर सदैव से भाई-भाई भी लड़ते आये है। अत. जब अलग-अलग होने का सवाल चला तो तीनों भाई आपस मे झगड़ा करने लगे। सरदार लहनासिंह ने एक बार तीनो में उनकी जायदाद का बटवारा भी कर दिया। किन्तु तुरन्त ही उनके काशी चले जाने के कारण मामला सुलझा नहीं। एक पचायत बैठाई गई जिसने खन्दा, शाहपुर, जयमल और उनके भाई को और नौशहरा और झुटपुट जवाहरसिंह को। फिर भी फैसला न हो सका। सन् १८५४ ई० मे सैटिलमेंट के समय इनके भाग्य का निर्णय अंग्रेज अधिकारियों द्वारा हुआ।

इससे पहले यह बता देना होगा कि जयमलसिंह ने सिखों के दूसरे युद्ध और गदर दोनों समय अंग्रेज सरकार की काफी मदद की थी। किन्तु जवाहरसिंह ने इस ओर से उदासीनता ही दिखाई। इसके बदले मे सरकार ने भी इन्हे तहसील उगाहने और इन्साफ करने आदि के सरकारी पद बख्शे थे। स्पेशल कमिश्नर भी बनाये गये। १०००) की सरकार ने खिलअत भी दी थी। सन् १८७० मे उनका स्वर्गवास हो गया। २२००) सालाना की जागीर इसके पुत्र कृपालसिंह के हाथ में इनके बाद रही।

कृपालसिंह को भी सरकार ने बटाला मे मजिस्ट्रेट का पद दिया था। दो वर्ष तक अपने उत्तरा-धिकार को पूरा करके सन् १८७२ ई० मे कृपालसिंह का भी स्वर्गवास हो गया। सरकार ने उनकी जागीर जब्त कर ली। कृपालसिंह की सरदारनी मनोकी वाले सरदार गोपालसिंह की पुत्री थीं। कृपालसिंह ने अमरीकसिंह को गोद लिया था। वही उनका वारिस हुआ। सरकार की ओर से न तो उनके पास जागीर ही रही और न दरबार में उनका स्थान ही रिजर्व रहा।

इस खानदान के पुरखा हरसैन नाम के सिन्धू जाट थे। सन् १५०० के लगभग उन्होंने गुजरानवाला जिले में हरसैनवाल नाम की नींव डाली जो पीछे से हॅसनवाल नाम से मशहूर हुआ। इसके बाद इन्होंने स्यालकोट जिले में पसरूर तहसील के मध्य करियाचंश को हटाकर एक गाँव

सिरानवाली

बसाया। जिसका नाम सिरानवाली प्रसिद्ध हुआ। कारण कि उसमें हजारों आदमियों के सिर काटे गये थे। एक समय इस खान्दान के हाथ से सिहानवाली गाँव निकल गया और इस खानदान का दुरगा नामक एक शख्श स्यालकोट जिले को छोड़कर गुरदासपुर जिले में चला आया और सिख धर्म की दीक्षा लेकर जयमलसिंह फतहगढ़िया की फौज में भर्ती हो गया। इसके पुत्र लालसिंह ने सैनिक पने में अच्छी तरक्की की और वह १०० सवारों का अफसर बनाया।

लालसिंह की पुत्री बहुत सुन्दर थी। जब महाराजा रणजीतसिंह स्यालकोट का दौरा कर रहे थे तो लालसिंह ने उसे महाराजा रणजीतसिंह को यह कह कर भेंट कर दिया कि आप ही जहाँ उचित समझें इसका सम्बन्ध कर दें। महाराज ने उसे अपने पुत्र खडगसिंह के ही घर में रख दिया। खड़गसिंह ने उससे पुनर्विवाह कर लिया।[1]

लालसिंह की मृत्यु के बाद उसके पुत्र मंगलसिंह ने इस सम्बन्ध से लाभ उठाया। मंगलसिंह आरम्भ में निरे देहाती थे। पजामा पहनना इन्होंने लाहौर में ही आकर सीखा था। कुँवर खड़गसिंह ने थालूर और खीटा की जागीर मंगलसिंह को बख्शी। जिनकी आमदनी लगभग ५०००) सालाना थी। मंगलसिंह उत्तरोत्तर तरक्की करते गये। जब उन्हें चुनियान का इलाकेदार बनाया गया तो उस कार्य को बड़ी योग्यता से पूरा करते रहे। इससे खुश होकर खड़गसिंह जी ने महाराजा रणजीतसिंह की मंजूरी से दीवानी फौजदारी मामलात का मैनेजर और १६०००) सालाना की आमदनी का जागीरदार बना दिया। मंगलसिंह ने अपने पुरखों के प्राचीन गाँव सिरानवाली को भी अपने अधिकार में कर लिया। जो अब तक अटारीवालों के कब्जे में था। सन् १८२० ई० से सन् १८३४ तक मंगलसिंह उक्त पदों पर रहे। इसके बाद उन पदों का चार्ज तो सरदार चेतसिंह बजुआ को मिल गया और वे अपनी जागीर को सभालते रहे। इस समय तक मंगलसिंह के पास २६१२५०) सालाना आमदनी की जागीर थी। इसके बदले में वे दरबार लाहौर के लिये ७८० सवार ३० जम्बूरा और २ तोप सदैव रखते थे।

जब लाहौर की राज्यशक्ति महाराज शेरसिंह के हाथ में आई तो उन्होंने मगलसिंह के पास केवल ३७०००) सालाना आमदनी के इलाके रहने दिये। बाकी सब वापिस ले लिये। किंतु कुछ सोच समझ कर सहीवाला और बेकलचिमी में राजा शेरसिंह ने मगलसिंह को १२४५००) के इलाके और दे दिये। सन् १८४६ तक मंगलसिंह जी का इन पर अधिकार रहा। इसके बाद जब राजा लालसिंह अंग्रेजों की मेहरबानी से आगे बढ़ रहा था उसने केवल ८६०००) की पुरानी जागीर इनके पास इस शर्त पर कि वह १२० सवार दरबार की सहायता के लिये हर समय तैयार रक्खेंगे, रहने दी। सिखों की तकदीर के हेर-फेर हुए। उन्होंने हालाकि अंग्रेजों की ही मदद की किन्तु सिख-विद्रोह की समाप्ति के बाद अंग्रेज सरकार ने उनके समस्त इलाके जब्त कर लिये और केवल ७००) सालाना की पेन्शन मुकर्रिर की। इनके एक पुत्र रिछपालसिंह नाम के थे सरकार ने उन्हें सरदार की उपाधि देकर प्रान्तीय दरबार में स्थान दिया। मगलसिंह जी का देहान्त सन् १८६४ ई० में हो गया। सन् १८७० ई० में रिछपालसिंह ने काश्मीरी-

१. शायद विधवा थी तभी तो खडगसिंह ने चादर डालकर पत्नी बनाया था।

सिंह की विधवा रानी की भतीजी से विवाह किया। सन् १८८४ मे सरकार ने आपको जिला बोर्ड का चेयरमैन और आनरेरी मजिस्ट्रेट बना कर सम्मानित किया। लगातार १८ साल तक रिछपाल-सिंह जी ने आनरेरी मजिस्ट्रेटी करके १६०२ ई० मे स्तैफा दे दिया। सरकार ने आपके खाली स्थान पर आप ही के पुत्र सरदार शिवदेवसिंह जी को मुकर्रिर किया। सन् १६०७ ई० मे सरकार द्वारा शिवदेवसिंह को सरदार का खिताब और प्रातीय दरबारियों मे स्थान प्रदान किये।

यहाँ यह बता देना उपयुक्त होगा कि सरदार लालसिंह ने अपनी जिस रूपवती पुत्री को महाराजा रणजीतसिंह जी की भेट किया था और जिसके कि साथ महाराजा रणजीतसिंह के उत्तराधिकारी कुँवर खड्गसिंह जी ने चादर डाल कर शादी करली थी और जिसके सम्बन्ध के ही कारण इस खान्दान ने एक दिन अच्छी स्थिति प्राप्त करली थी। वह अपने पति महाराजा खड्गसिंह की मृत्यु होने पर उनके साथ ही सती होगई थी। उसका नाम रानी ईश्वरकौर था।

सिन्धू गोत के जाट चौधरी गजू ने जिला स्यालकोट में मुगल जमाने में मोचल के पास एक गाँव बसाया जिसका नाम बडाला मशहूर हुआ क्योंकि गजू अपने भाइयों मे बड़ा था। इसीलिये उस गाँव

बडाला

का नाम बडाला पड़ गया। इस वंश मे गुरदित्ता नाम का एक व्यक्ति मुगल बाद-शाहों की ओर से आस-पास के इलाकों का कर-वाहक (चौधरी) नियुक्त हुआ। यह पद कई पीढ़ियों तक इनके यहाँ मौरूसी रहा। इसके बाद इसके उत्तराधिकारी दीवान-सिंह ने सिख धर्म स्वीकार कर लिया। वह अंतिम समय तक तीन गाँवों का मुगल शासकों की ओर से प्रधान था।

दीवानसिंह का पुत्र महताबसिंह बड़ा योग्य और महात्वाकांक्षी था, उसने ५२ गाँवों का ठेका कर वाहकी का ले लिया। वह इन गांवों पर अपना पूर्ण अधिकार करने को उत्सुक था। इसलिये उसने अपने अनेकों साथियों—भगी मिसल के सरदार गंडासिंह और झडासिंह से सम्बन्ध स्थापित कर लिया। भंगी सरदारों ने महताबसिंह को इन ५२ गाँवों का अधिपति स्वीकार कर लिया। इसके बदले मे वे एक निश्चित सख्या मे आदमियों की मदद हिम्मतसिंह से लेते थे। इसके बाद उस समय इनकी स्थति और भी मजबूत हो गई जब इनके तीसरे पुत्र सुल्तानसिंह ने भागसिंह मलोद के रिस्तेदार की एक लड़की से शादी करली। इस शक्ति का उपयोग करके उन्होंने इलाके और धन दोनों ही बढ़ाये। उनकी इस प्रकार की बढोतरी को देखकर सुकरचकिया महासिंह ने उन्हे एक पंचायत के बहाने बुलाकर कैद कर लिया और फिर बडाला पर कब्जा करने के लिये फौज भेजी किन्तु उनके चारों पुत्रों ने बड़ी बहादुरी से सामना किया जिसके कारण महासिंह ने उनसे सुलह करली और एक बड़ी रकम नजराने की लेकर सरदार महताबसिंहजी को छोड दिया। यह रकम बसूल होने तक सुकरचकिया लोगों ने सुल्तानसिंह को जमानत के तौर पर अपने साथ रक्खा।

महताबसिंह के चार लडके थे। श्यामसिंह, निधनसिंह सुलतानसिंह और गुलाबसिंह। अपने पिता की मृत्यु के बाद श्यामसिह और निधनसिंह मे झगड़ा रहने लगा। इससे अहलूवालिया और दूसरे लोगों ने इनके राज्य को दबाना शुरू कर दिया। घर की फूट से दुश्मन सहज ही लाभ उठाते ही हैं। सन् १८०६ ई० में महाराजा रणजीतसिंह जी ने इधर दौरा किया तो मोचल और बडाला दोनों ही इलाकों को अपने अधिकार मे करके कुंवर खड्गसिंह को जागीर मे दे दिया। इस समय इन स्थानों पर निधनसिंह का अधिकार था। वह अपने भतीजे के साथ काश्मीर की ओर भाग गया। जहाँ चचा भतीजे काश्मीर के हाकिम अतामुहम्मद के यहाँ नौकर हो गये।

सन् १८१३ ई० में जब महाराजा रणजीतसिंह का दल अतामुहम्मद के विरुद्ध लड़ने गया तो निधनसिंह का भतीजा टेकसिंह महाराजा रणजीतसिंह के सेनापति मुहकमचन्द के साथ मिल गया। इस उपलक्ष में महाराज ने टेकसिंह को होशियारपुर जिले में तीन गॉवों का प्रधानत्व बख्शा। टेकसिंह ने इन गॉवों का प्रबन्ध तो अपने छोटे भाई के सुपुर्द कर दिया, खुद अटक की तरफ वहां के मुहासिरों में चला गया। टेकसिंह ने बराबर लाहौर दरबार की सेवायें कीं। जिनके बदले में उनके चाचाओं को बडाला के अधिकृत प्रदेश के कुछ भू-भाग वापिस मिल गये।

टेकसिंह चार भाई थे। फतेहसिंह, किशनसिंह और साहबसिंह शेष तीन के नाम थे। फतहसिंह जिनके अधिकार में होशियारपुर जिले की तीन गॉवों की जागीर थी। सन् १८३० में लावल्द मर गये। अत: वहा का प्रबन्ध उनके छोटे भाई किशनसिंह को सौंपा गया। सन् १८४४ ई० में टेकसिंह का भी देहान्त हो गया। उनके सबसे छोटे भाई साहबसिंह भी महाराज की फौज में ही थे किन्तु उन्होंने कोई खास तरक्की नहीं की।

सरदार टेकसिंह के ज्वालासिंह और मोहनसिंह नाम के दो लड़के थे। वे काश्मीर ही रहे आये जिनमें से मोहनसिंह का तो वहीं देहान्त हो गया।

सरदार किशनसिंह की भी सन् १८६२ ई० में मृत्यु हो गई। सरकार ने उनके गाव अपने कब्जे मे कर लिये। हॉ, कुछ एकड़ भूमि अवश्य उनके वशजों के हाथ रह गई।

सन् १८८१ मे साहबसिंह मर गये और सन् १८८३ मे ज्वालासिंह। उनकी जायदाद तो सरकार ने इस कसूर में जब्त करली कि द्वितीय सिख युद्ध मे उन्होंने अंग्रेजो के विरुद्ध युद्ध मे भाग लिया था। हॉ, मोहनसिंह को गदर मे सरकार की काफी सेवा करने के उपलक्ष मे सरकार ने मोचल मे कुछ जमीन जागीर मे बख्शी। १२८) की पेन्शन भी मुकर्रिर की थी। साहबसिंह के मरने पर सरकार ने उनके पुत्रों के पास उनकी जायदाद का कुल चौथाई भाग रहने दिया था। साहबसिंह ने तीन लड़के अपने पीछे छोड़े थे मंगलसिंह, बघेलसिंह और हीरासिंह। सरदार मगलसिंह ने खुद तो मान की रक्षा के लिये सरकारी नौकरी की नहीं किन्तु अपने पुत्रों को जरूर फौज में भर्ती करा दिया। जहॉ वे शीघ्र ही ऊँचे ओहदों पर पहुँच गये। बघेलसिंह ने काफी तरक्की की। उसने गदर में २०० आदमी लेकर अंग्रेजों की मदद की। अपनी बुद्धिमानी से उसने अन्डमान की असिस्टेंट सुपरिन्टेन्डेण्टी भी की। सरकार ने उनकी सारी सेवाओं से खुश होकर रायबहादुरी का खिताब, २८० एकड़ जमीन लाहौर जिले के रखपैमार मे और ५०० एकड़ गुजरावाला मे दी। १२००) पेन्शन मुकर्रिर करदी। इसके अलावा प्रांतीय दरबारों में उनका स्थान रिजर्व किया गया। रायबहादुर सरदार बघेलसिंह जिन्होंने कि समय के अनुकूल अपने को इतना ऊंचा बनाया। सन् १९०८ में इस संसार से कूच कर गये।

सन् १८७४ ई० मे सरदार का बड़ा पुत्र ठाकुरसिंह अंडमान मे अंग्रेज सरकार की ओर से उसके बाप की वापिसी पर इंसपेक्टर बनाकर भेजा गया। उसके छः ही वर्ष बाद १८८० ई० मे ठाकुरसिंह का घोड़े से गिरने के कारण देहान्त हो गया। ठाकुरसिंह के दो बेटे थे। उनमें से सोहनसिंह पांचवीं पंजाब केवेलरी मे रिसालदार होगया। उसने यहा तक तरक्की की कि असिस्टेण्ट कमिश्नर और फिर पजाब सरकार का मीर मुन्शी बन गया। सन् १९०८ ई० मे इसका छोटा भाई तीस लाइन्सर्स में रिसालदार हो गया और रायबहादुर सरदार बघेलसिंह का लड़का हाकिमसिंह १८वीं बंगाल कैवेलरी मे ओहदेदार बनाया गया जो अफगान युद्ध तक उसी मे काम करता रहा। बाद मे वह ब्रह्मा में पुलिस बटालियन

का सूबेदार बना और फिर वहां से पेन्शन लेकर घर आगया। यहां सरकार ने उसे सिविल जज और आनरेरी मजिस्ट्रेट बना दिया। यही अपने खान्दान के प्रधान माने गये।

इस स्थान को बसाने वाले का नाम कलास था और बजवा उसका गोत था। इसलिये यह गाम कलास बजवा के नाम से मशहूर हुआ। कलास के बाप का नाम मंजा था जिसकी कि समाधि पसरूर मे 'मंजा कामाडी' नाम से प्रसिद्ध है। इस समाधि की पूजा हिन्दू और मुसलमान दोनों ही जातियों के लोग करते हैं। बजवा गोत के जाट तो जिनके कि गॉव इससे अधिक दूर नहीं होते अपने लड़के-लड़कियों की शादी भी यहीं पर आकर करते हैं।

कलास बजवा

मालूम ऐसा होता है कि मंजा की मृत्यु के बाद उसका लड़का पसरूर को छोड़ कर दूसरी जगह चला गया और वहां उसने कलास बजवा को आबाद किया।

कलास से कई पीढ़ी बाद उसके वंश के दीवानसिंह नामक लड़के को भंगी सरदार हरीसिंह ने गोद ले लिया, क्योंकि हरीसिंह के कोई संतान नहीं थी। सन् १७६० ई० मे जब हरीसिंह का देहान्त हो गया तो दीवानसिंह उसके इलाकों का मालिक हुआ किन्तु वह उस सारे प्रदेश की रक्षा नहीं कर सका और लगभग आधा प्रदेश उसके हाथ से निकल गया। जब वह मर गया तो इसी वंश के सरदार धनासिंह को खालसा ने उसका उत्तराधिकारी घोषित किया। धनासिंह पहले से ही युद्धों में भाग लेता था। उसका छोटा भाई मानसिंह तो हरीसिंह की सेवा ही मे खतम हुआ था। धनासिंह योद्धा प्रकृति का आदमी था। जब भंगी मिसल के अधिकृत प्रदेशों का बटवारा हुआ था उस समय कलाम बजवा, पनवाना और चूहरा धनासिंह के हिस्से मे आये थे। सन् १७६३ ई० में धनासिंह के मरने पर महाराजा रणजीतसिंह जी ने उसके पुत्र जोधासिंह को उसका उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया। जोधासिंह तीन भाई थे किन्तु योद्धा-वृति अकेले जोधासिंह मे ही थी। इसके तीन वर्ष बाद महाराज रणजीतसिंह किसी कारण से जोधासिंह से नाराज हो गये और उन्होंने उस पर चढ़ाई करने को सेना की एक टुकड़ी भेज दी। जोधासिंह तीन वर्ष तक इन सेना समूहों से नहीं दबाया जा सका। किन्तु अंत में उसने अपने को महाराज की कृपा पर छोड़ दिया। महाराजा रणजीतसिंह जी उसके पास ६००००) सालाना की जागीर छोड़ दी। जोधासिंह को खालसा दरबार मे दरबारियों मे भी ले लिया गया। आगे चलकर इसने अपनी लड़की खेमकौर की शादी युवराज खड्गसिंह जी के साथ करदी। सन् १८१६ ई० में जोधासिंह का देहान्त हो गया। उसकी विधवा ने अपने प्रभाव से सिख दरबार से यह मंजूर करा लिया कि जोधासिंह का उत्तराधिकारी चादसिंह जो कि सरदारनी का रिश्तेदार है बनाया जा सकता है। चांदसिंह बजवा खान्दान का ही नवयुवक था।

खालसा सेनाओं के परास्त होने पर रानी खेमकौर को बड़ा रंज हुआ। अत. उन्होंने अपने पिता के उत्तराधिकारी चांदसिंह को अंग्रेजों के खिलाफ खड़ा किया। चांदसिंह और उसका बड़ा भाई गुरुदत्ता-सिंह भीतर ही भीतर बगावत की तैयारी करने लगे। किन्तु अंग्रेजों को पता लग गया अत. अंग्रेजी सेना ने उनके किले पर धावा करके उनके इलाके को अपने कब्जे मे कर लिया और उनके गॉव को भस्म कर दिया। रानी खेमकौर को तो सरकार ने २४००) की पेन्शन देकर अपना गुस्सा हल्का किया। चादसिंह और गुरुदत्तसिंह को रियासत से खारिज करके सन्तोष की सास ली। गुरुदत्त तो इस घटना के कुछ ही वर्ष बाद मर गया। चादसिंह मामूली-सी बची खुची जमीन का प्रबन्ध करने में लगा रहा। सन् १८६७ ई० मे जब चांदसिंह का भी देहान्त हो गया तो उसका लड़का भगवानसिंह अपने वंश

का प्रधान मुकर्रिर हुआ। भगवानसिंह की बहिन महताबकौर अटारी के सरदार तेजासिंह के साथ ब्याही गई थी उस बेचारी को भी अपने पति के साथ पंजाब से निर्वासित होकर बरेली जिले में जाना पड़ा। भगवानसिंह को अन्तिम दिनों में सरकार ने आनरेरी मजिस्ट्रेट भी बनाया था। उसने अपने लड़के रघुवीरसिंह को एटचिसन कालेज मे शिक्षा दिलाई थी। यही लड़का भगवानसिंह के बाद अपने बाप का उत्तराधिकारी बना। रघुवीरसिंह सन् १८६८ ई० में स्वर्गस्थ होगये। तब उनके लड़के रनवीरसिंह इस वंश के प्रधान मुकर्रिर हुये। इस खान्दान के लोगों में केवल सतसिंह ही सरकारी फौज मे गये। जिन्होंने केवल तीन साल 'मध्यभारत घुड़सवार पल्टन' मे काम किया। इनकी मृत्यु सरदार रघुवीरसिंह से भी एक साल पहले सन् १८६७ में होगई थी।

चौधरी तेजसिंह का आबाद किया हुआ यह गॉव जिला गुजरानवाला में है। तेजसिंह के वंशज इस गॉव में बहुत दिनों से रहते थे। उन्होंने कई गॉव की चौधरात भी मुस्लिम शासकों से ली थी। इस खान्दान में रजवन्तसिंह एक प्रसिद्ध पुरुष हुआ था। सन् १७५६ ई० में इस

रूरियाला

खान्दान मे चौधरी भगतसिंह ने सिख धर्म की दीक्षा ली और गूजरसिंह जो कि एक शक्तिशाली जाट सिख और भंगी मिसल का प्रमुख था—के साथ अपनी लड़की का विवाह करके रूरियाला गॉव पर अपना स्वतन्त्र अधिकार घोषित कर दिया। सरदार गूजरसिंह ने अपने दोनों सालों देवासिंह और सेवासिंह को अपने दल मे रख लिया और उन्हें गुजरात जिले में नौशहरा की जागीर भी दे दी। इन दोनों भाइयों का इस जागीर पर सम्मिलित प्रभुत्व रहा। सेवासिंह लड़ाई में मारा गया। कुछ दिन बाद गूजर भंगी सरदार भी लड़ाई में काम आया। उसके लड़के साहबसिंह ने देवासिंह से कुल जागीर अपने कब्जे में ले ली और उसे केवल रूरियाला और अन्य दो गाव जागीर में रहने दिये।

देवासिंह के लड़के जोधसिंह ने रूरियानवाला सरदार के साथ जिसका कि नाम भी जोधासिंह था सवारों मे नौकरी कर ली और सन् १८२६ तक बराबर युद्धों मे भाग लिया। सन् १८२५ के बाद जोधासिंह कुँवर शेरसिंह जी की फौज में शामिल हो गये। सैयद अहमदखॉ के युद्ध में कुंवर शेरसिंह के साथ जोधासिंह ने अच्छी बहादुरी दिखाई जिसके उपलक्ष्य मे दो सवार की नौकरी की शर्त पर रूरियाला की जागीर १२०४३) रुपयों के साथ हमेशा उनके ही अधिकार में रही। हॉ, बीच मे १८३५ ई० में खालसा दरबार ने किसी कारण से उसे जब्त कर लिया था किन्तु दूसरे ही साल दे दिया।

सन् १८४८ में अंग्रेज सरकार का पक्ष लेने के कारण गुजरानवाला के कोटली गॉव मे भी इन्हें सरकार ने जागीर बख्शी थी।

सतलज के धावे के बाद सरकार ने उन्हें अमृतसर में ३०००) पर मय उनकी जागीर के अदालती मुकर्रिर किया। सन् १८४० मे स्पेशल कमिश्नर बनाया। जिस पर यह सन् १८६२ ई० तक रहे, अमृतसर दरबार के भी यह प्रबन्धक मुकर्रिर किये गये थे।

इनके छोटे भाई मानसिंह ने भी अच्छी तरक्की पाई। पहले तो वह राजा सुचेतसिंह की फौज मे भरती हुआ था। सिख युद्ध की समाप्ति पर अंग्रेजों ने उसे लाहौर में ५० सवारों पर अफसर बनाया। १८५२ में वह पुलिस में भर्ती हो गया और १८५७ के गदर में उसने अंग्रेजों की भरपूर रक्षा की। नवाबगंज के घेरे के समय उसकी खिदमतें अच्छी रहीं लेफ्टीनेंट बुलर की भी उसने रक्षा की। बुलर की मदद करते समय वह बहुत घायल हुआ। इसके उपलक्ष मे सरकार ने उसे आर्डर आफ मेरिट की उपाधि दी। इसके बाद यह अमृतसर में धार्मिक जीवन व्यतीत करता रहा। उसे प्रान्तीय दरबारी भी बनाया गया

मारा गया। इसलिये गजपतसिंह अपने पिता के उत्तराधिकारी हुये। राजा गजपतिसिंह के तीन पुत्र हुये। मेहरसिंह, मागसिंह और भूपसिंह। वड़रूखां का इलाका इन्हीं भूपसिंह जी के अधिकार में आया। इनके दो लड़के हुये करमसिंह और बिसावासिंह। कर्मसिंह राजद्रोही होने के कारण अपने हकों से वंचित होगये। विसावासिंह वड़रूखां के मालिक रहे। सरदार विसावासिंह जी ने दो शादियाँ कीं किन्तु संतान पहली ही पत्नी से हुई। सुखासिंह और भगवानसिंह नाम के दो पुत्र हुये। सवत् १८८८ ई० मे विसावासिंह मर गये।

सुखासिंह का जन्म सन् १६७० ई० में चन्द्रकौर के पेट से हुआ था। वोडावाल गॉव के सरदार बुधसिंह की लड़की राजकौर के साथ इसका विवाह हो गया। उसके उदर से हरनामसिंह और हीरासिंह नाम के दो पुत्र पैदा हुए। पिता की मृत्यु के वाद सरदार सुखासिंह ने अपने भाई भगवानसिंह के साथ अधिकृत इलाकों का वरावर का वटवारा कर लिया था। किन्तु कुछ विना वटवारे के भी अपने पास बतौर सरदारी के रख लिया था। सन १८५२ ई० में सरदार सुखासिंह की मृत्यु हो गई। उस समय इनकी काफी इज्जत थी। गवर्नर जनरल के यहाँ इन्हे कुर्सी दी जाती थी।

सुखासिंह के वाद उसका पुत्र हरनामसिंह अपनी जागीर का मालिक हुआ। जिसका कि जन्म १८४० ई० मे हुआ था और इस समय जिसकी उम्र १२ साल थी। किन्तु तीन वर्ष के वाद ही हरनामसिंह मर गया। पीछे उसने एक भी पुत्र नहीं छोड़ा।

सुखासिंह के दूसरे पुत्र हीरासिंहजी सन् १८४३ ई० मे पैदा हुये थे। भाई के मरने पर इनकी उम्र केवल १२ साल थी। नाभा के महाराजा भगवानसिंह जी के लावल्द मरने के कारण आप नाभा राज्य के वारिस बनाये गए। वर्तमान महाराज प्रतापसिंह जी आप ही के पौत्र हैं। जो कि महाराजा रिपुदमनसिंह जी के सुपुत्र और उत्तराधिकारी हैं।

यह हम पहले लिख चुके हैं कि विसावासिंह जी के दूसरे पुत्र भगवानसिंह जी थे। जिनका कि जन्म सन् १८१५ ई० में हुआ था। इनके दीवानसिंह और चतरसिंह नाम के दो पुत्र पहली रानी से जो श्यामगढ़ की थीं हुये और शेरसिंह नामक पुत्र पिंड रुड़कीवाली रानी से हुआ। अपनी रियासत का वटवारा तो सरदार भगवानसिंह ने अपने भाई सुखासिंह से कर ही लिया था। सन् १८५२ मे इनका देहांत हो गया।

भगवानसिंह जी के वड़े पुत्र दीवानसिंह का जन्म सन् १८४१ मे हुआ था। दीवानसिंह की शादी वाजीदपुरे में हुई थी। एक पुत्र तो उनका दस साल की उम्र मे ही गुजर गया। दूसरा पुत्र हरनामसिंह सन् १८६० ई० में पैदा हुआ। तीसरा शमशेरसिंह हुआ। ये दोनों भाई अपनी जागीर पर अपने पिता दीवानसिंह के मर जाने के वाद तक शांति-पूर्वक काविज रहे। हरनामसिंह लावल्द मरे और शमसेर सिंह ने तीन लड़के छोड़े। फतहसिह, चेतसिंह और तेजासिंह इनमें फतहसिंह सन् १८६२ मे चेतसिंह १८६६ में और तेजासिंह जी १६०० में पैदा हुए थे।

भगवानसिंह जी के शेष दो पुत्र शेरसिंह और चतरसिंह क्रमश: १८८२ और १८६१ ई० मे मर गये। सरदार चतरसिंह ने कोई संतान नहीं छोड़ी थी और सरदार शेरसिंह की भी किसी सन्तान का सर लेपिलग्रिफिन ने जिक्र नहीं किया है।

इन सरदारों की राज्य और सरकार में वड़ी इज्जत थी और रियासती जागीरदारों में इनका ऊँचा दर्जा भी था।

यह जागीर पटियाला राज्य में वरनाले के पास है। भदौड़ को वावा आलासिंह ने वसाया था।

जिसे आगे चलकर अपने भाई दूना के लिये छोड़ दिया। दूना की संतान के लोग ही इस जागीर के मालिक हैं। इस प्रकार भदौड़िये भी फूलवशी हैं। अंग्रेजों ने १८५४ में जिस समय इस जागीर को जब्त किया था। उस समय इसमें ५८ गॉव थे। इस खान्दान का सक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—

भदौड़िये

चौधरी दूना के चार पुत्र उत्पन्न हुए। बिघासिंह, दाऊसिंह, संगूसिंह और सुखसिंह। चौधरी दूना ने अपने भाई बुधासिंह की विधवा के साथ भी चादर डालकर नाता कर लिया था। उससे भी एक पुत्र शोभासिंह नाम का हुआ था। चौधरी दूना ने बादशाही हाकिमों से मित्रता करके जमीन और धन दोनों बढ़ाये। जितने इलाके का पट्टा अपने नाम करा लिया था। उसकी रकम वक्त पर शाही खजाने में पहुँचाई। १७७८ विक्रमी संवत मे उसने बरनाला, धनौला, कोटदूना को आबाद किया। भाइयों के एवज माल न चुकाने के अपराध मे चौधरी दूना और उसके लड़के दाऊ को लाहौर के हाकिम ने कैद कर लिया। जिसमें दाऊ तो वहीं मर गया और चौधरी दूना छूटने के बाद खवास गॉव मे संवत् १७७३ में मर गया। कुटुम्बी लोगो ने इसकी समाधि गोइन्दवाल मे गुरु अमरदास जी की समाधि के पास ही बनादी।

चौधरी दूना के पुत्र बिघासिंह जिसका कि जन्म संवत्१७६० वि०मे हुआ था की शादी संवत् १७७० वि० में डिघ के मान गोती जाट भोमे चौधरी की लड़की आगाँ के साथ हुई। जिसके उदर से संवत् १७६२ मे गुरदास नाम का पुत्र हुआ। चौधरी बिघासिंह को मालियाना टूट जाने के अपराध मे हाकिम सूबा ने गिरफ्तार कर लिया। इस बीच संवत १७६५ मे गुरदास की अचानक मृत्यु हो जाने के कारण उसकी मां आगां भी जहर खाकर मर गई। इससे बिघा भी संसार से उदासीन होगया। जमीन जायदाद आपने छोटे भाई सुखू को सुपुर्द कर दी।

बिरादरी के लोगों ने बिघासिंह को वैरागी होते देखकर पंचायत की और फिर उस पर दबाव डालकर मोगा तहसील के बिलासपुर गॉव मे धारीवाल जाटों में उसकी दूसरी शादी सवत् १८०६ में देसो के साथ करादी। जिससे चूहड़सिंह और मोहरसिंह नामक दो लड़के पैदा हुये। कुछ दिन बाद सुखसिंह के मर जाने पर बिघासिंह ने उसकी स्त्री पर भी चादर डालकर शादी कर ली। उससे दूलसिंह पैदा हुये जिसे कोटदूना को देकर अलग कर दिया। संवत् १८३० मे बिघासिंह मर गये।

उसके बाद उसका पुत्र चूहड़सिंह जिसका कि जन्म १५ कातिक संवत् १८०६ मे हुआ था उत्तराधिकारी हुआ। संवत् १८२३ वि० के फाल्गुन मे पिंड काले के चौधरी मलसिंह की लड़की राजकौर के साथ उसकी शादी हुई। चूहड़सिंह ने गुरुदास की बेवा के साथ भी नाता कर लिया। यह बड़ा बहादुर शूरमा हुआ है। इसकी बहादुरी के पंजाब के उस इलाके मे आजतक गीत गाये जाते हैं। इसने भदौड़ के आस पास ६० गाँवों पर कब्जा कर लिया। कोटले के पठानों से इसने बलपूर्वक कंगण के ताल्लुके को भी छीन लिया। इसने नाभा और पटियाला दोनों रईसों के इलाकों पर हाथ मारे और लूट मार भी की। इसे डर छू भी नहीं गया था।

सवत् १८५० ई० मे खन्ने गॉव के सज्जनसिंह ने इन्हे दुश्मनी के कारण शराब पिलाकर और सोने के स्थान पर आग लगाकर जिन्दा जला दिया। साथ में दलसिंह कोटदूना वाला भी जल गया। जब यह खबर इसके पुत्र और संबन्धियों पर पहुँची तो उन्होंने खन्ने गॉव पर हमला करके सज्जनसिंह वराड को मार डाला। ग्यारह गॉवों पर कब्जा कर लिया।

चूहड़सिंह के बाद उसका पुत्र वीरसिंह जिसका कि जन्म पौष बदी १५ संवत् १८२५ मे हुआ था।

उत्तराधिकारी हुआ। इसकी शादी रामपुर के गरेवाल चौधरी वेगा की पुत्री महाकौर के साथ हुई थी। इसके पेट से पैदा होने वाले दोनों लड़के मर गये। सवत् १८४८ मे गाजियाना गॉव तहसील मोगा से महतावकौर से दूसरी शादी की। जिससे जवाहरसिंह, जयमलसिंह और जगतसिंह तीन पुत्र पैदा हुये। वीरसिंह चतुर और शूरवीर आदमी था। इसने महाराजा रणजीतसिंह को एक वहुत वढ़िया घोड़ा जिसकी कीमत २१००) थी, भेट किया था। सवत् १८८० के क्वार महीने मे इसका देहान्त होगया। इसने अपने जीवन में ही अपने भाई दीपसिंह को हिस्सा जागीर का वांट दिया था। कहा जाता है कि सरदार वीरसिंह को लाट साहव के दरवार मे कुर्सी मिलती थी।

अपने भाई के स्वस्थ होने और जायदाद का वटवारा हो जाने के वाद दीपसिंह ने अपनी जायदाद के प्रवन्ध का काम सभाला। उसका जन्म संवत् १८३४ के क्वार मे हुआ था। और चनारथल सतलज के निकट (रायटोहाना) मे साहवकौर के साथ शादी हुई थी। जिससे कोई औलाद न होने की उम्मीद में दाना गॉव के सरदार हरीसिंह गिल की लड़की मानकौर के साथ दूसरी शादी की। इससे भी एक लड़की ही पैदा होने के कारण तीसरी शादी और की। इससे एक लड़का पैदा हुआ। जिसका नाम खड्गसिंह रक्खा गया। जो सीधा-साधा और वहादुर सरदार था। दीपसिंह जी में अपनापन खूब था। उन्होंने महाराज पटियाला के विरुद्ध रणजीतसिंह जी को सहायता देने से साफ मना कर दिया था। १८५४ मे इसने फ्रांसीसी जार्ज टामसन के विरुद्ध जीन्द की सहायता की। संवत् १८७० में दीपसिंह ने अपनी जायदाद कतई तौर से वड़े भाई के साझे से अलग कर ली। क्योंकि अव तक कुछ भाग साझे मे ही चला आता था। इसके कुछ ही दिन वाद दीपसिंह का स्वर्गवास हो गया।

दीपसिंह की मृत्यु के वाद खडगसिंह ने जोकि उसका एक मात्र पुत्र था। अपने हिस्से की जागीर का काम संभाला। खड्गसिंह का संवत् १८७६मे जन्म और संवत् १८८६ मे पिंडरले के सरदार विसावासिंह चाहल की पुत्री के साथ विवाह हुआ था। फिर दूसरा विवाह भी इसी गॉव मे खजानसिंह की लड़की के साथ हुआ।

शरीर से सरदार खड्गसिंह जी लंवे-चौड़े और पुष्ट थे। कहा जाता है कि उनका वजन दस मन पक्का था। इन्होंने पजाव के रईसों में प्रसिद्धि प्राप्त की। अपनी रियासत में अनेक इमारते वनवाई। सिख-युद्ध मे आपने अंग्रेजों को ही मदद दी। गदर के समय फीरोजपुर पहुँचकर अंग्रेजों की रक्षा मे अपनी शक्ति खर्च की। गदर के एक साल वाद संवत् १६१५ वि० मे खड्गसिंह जी का देहान्त होगया।

खड्गसिंह जी के पुत्र का नाम अतरसिंह था जो संवत् १८६० वि० मे कार्तिक सुदी १२ सोमवार को पैदा हुये थे। ग्यारह वर्ष की आयु में अतरसिंह जी का पहला विवाह विसनपुर के जैजी सरदार वीर-सिंह की पुत्री के साथ हुआ। इसके वाद इस सरदारनी के नि.सतान मर जाने के कारण सवत् १६०६ वि० मे रायपुरे के सरदार चढ़तसिंह की लड़कीके साथ दूसरी शादी हुई। जिससे दो लड़के भगवन्तसिह,वलवंत-सिंह नाम के पैदा हुये। सरदार अतरसिंह जी वड़े विद्या-प्रेमी थे। गदर के समय आप भी अपने पिता के साथ फीरोजपुर मे फ्रेड्रिक मार्सडन के पास मौजूद थे और अंग्रेजों की रक्षा और भलाई मे आपने भरपूर सहयोग दिया। जैतो के फकीर सामासाह के उपद्रव को दवाने के लिये आप भी पचास सवार लेकर उस इलाके मे पहुँचे थे। आपने अपनी रियासत में भी सुधार किये। पव्लिक के वच्चों की शिक्षा के लिये एक स्कूल भी खोला। सरकार की ओर से उन्हे खिताव भी मिला। दरवार मे उनकी कुर्सी अपने खानदान के लोगों मे आगे रहती थी। लुधियाने मे उन्होंने एक पुस्तकालय भी खुलवाया था। सवत्

१८५३ मे उनका स्वर्गवास हो गया।

सरदार अतरसिंह जी के दो पुत्र हुये। उनके नाम यह हैं। सरदार भगवन्तसिंह और सरदार वलवंतसिंह। सरदार भगवन्तसिंह जी का जन्म संवत् १९०९ कार्तिक सुदी ६ को और सरदार वलवतसिंह जी का जन्म संवत् १९१२ भादों सुदी ३ को हुआ था।

दोनों भाईयों ने भली प्रकार मौजूदा जमाने के देखते हुये शिक्षा प्राप्त की।

उपरोक्त वर्णन तो दीपसिंह जी के वंशजों का है। उनके वड़े भाई वीरसिंह जी ने जवाहर-सिंह, जयमलसिंह और जगतसिंह तीन पुत्र छोडे थे। अब उनका वर्णन करते है :—

जवाहरसिंह का जन्म संवत १८८४ के चैत सुदी १२ को शुक्रवार के दिन मानकौर से हुआ था। इसने दो शादियाँ की। पहली संवत् १८५६ में जव्वेमाजारिये के सरदारों के घर और दूसरी संवत् १८७५ पिंड खयाला के चाहलों की लड़की के साथ। इस दूसरी सरदारनी से अतरकौर नाम की लड़की हुई थी। जिसकी शादी कुँवर नौनिहाल लाहौर के साथ की गई। अतरकौर अपने पति के साथ सती भी होगई थी। जवाहरसिंह बड़ा शूरमा था। वह प्रायः लाहौर ही महाराजा रणजीतसिह की सेवा मे रहा करता था। पिता के मरने पर इसने मालिकी का दावा किया और संवत १८८३ मे वह अपने पिता का उत्तराधिकारी बना। इसके वाद संवत् १८८७ मे जवाहरसिंह का देहान्त हो गया। दो वर्ष वाद इसकी पहली स्त्री मर गई। दूसरी के साथ इसके छोटे भाई जगतसिंह ने चादर डालकर शादी करली।

वीरसिंह के दूसरे पुत्र जयमलसिह का जन्म संवत् १८४५ के कातिक वदी ११ को हुआ था। संवत् १८५८ के फागुन मे जयमलसिंह का विवाह कूटसी के सरदार वहादुरसिंह की लड़की के साथ हुआ। जिससे खजानसिंह औह निधानसिंह नाम दो लड़के और भागभरी नाम की कन्या पैदा हुई। संवत १८६५ पौष सुदी १५ को जयमलसिंह का देहान्त हो गया।

सरदार वीरसिंह के तीसरा पुत्र जगतसिह संवत् १८४८ के पौष वदी ८ को पैदा हुआ था। इसकी पाँच शादियाँ हुईं। एक संवत् १८५६ में पक्के पथराले के सरावाँ जाटों मे और दूसरी—इस स्त्री के मरने पर संवत् १८६७ ढिलवाँ के सरदार हीरासिंह की पुत्री दयाकौर के साथ। इससे एक पुत्र हुआ।

फिर भी १८८५ मे जगतसिह ने तीसरी शादी मानसा के शार्दूलसिह की लड़की सेखाँ के साथ कर ली। इससे दो लड़के हुये जो १०-१२ साल की उम्र में ही मर गये। इतने से भी संतोष न होने पर अपने भाई की विधवा से नाता कर लिया। पाँचवीं शादी और भी कराई रतनकौरके साथ जो हमीरवाला कुरज के धारीवालों की पुत्री थी। इससे अजैपाल का जन्म हुआ जो बड़ा फिसादी और खतरनाक आदमी था। कई तो इसने खून किये। लाहौर पटियाला वगैरह भागता फिरा। अंत में संवत् १९२२ में भदौड़ आकर मर गया।

जयमलसिह ने अपना एक उत्तराधिकारी छोड़ा था खजानसिंह। यह सम्वत् १८६१ ई० में जसकौर के पेट से पैदा हुआ था। सम्वत् १८७० मे मौड़ गाँव के सरदार धन्नासिंह की पुत्री साहवदेवां के साथ उसका विवाह हुआ। खजानसिंह अपने ताऊ जवाहरसिंह के शामिल रहा। उससे पीछे सरदारी पर भी वही कायम हुआ। सम्वत् १८८८ में वह मर गया। उसके पीछे उसकी गर्भवती विधवा के महांसिंह का जन्म हुआ।

महांसिंह का जन्म आषाढ़ सुदी १० सम्वत् १८८९ में हुआ था। चार वर्ष की उम्र में ही वजीरसिंह वगेहरिये की पुत्री अतरकौर के साथ इसका विवाह हुआ। जिससे एक लड़का सम्वत् १९१२ में पैदा हुआ।

उसका नाम ईश्वरसिंह रक्खा गया। महांसिंह शिकार का बड़ा शौकीन था। सरकार से उसे खिलअत और खिताब मिले। दरबार मे दूसरे नम्बर की उसकी कुर्सी थी। सम्वत् १६१५ के पौष महीने मे उसका देहान्त हो गया। सरदारनी अमरकौर ने केहरसिंह के साथ पुनर्विवाह कर लिया।

ईश्वरसिंह की शादी धारीवालो के लोहार गाँव में माघ सम्वत १८२० मे हुई। शादी के तीन वर्ष ही बाद सम्वत् १८२३ के क्वार की पूर्णिमा को तपैदिक मे चल बसा। लावल्द मरने के कारण इसका इलाका उसके नजदीकी चाचा केहरसिंह को मिल गया। जिसके साथ कि इसकी मा ने नाता कर लिया था।

केहरसिह निधानसिह का लडका और खजानसिह का भतीजा था। यानी जयमलसिह के दूसरे लड़के निधानसिंह का पुत्र था। निधानसिंह संवत १८६४ वि० के पौष सुदी १२ को पैदा हुआ। सवत् १८६० में उसकी शादी जोगे गाव के फैजूसिह चाहल की लड़की चन्दकौर से हुई थी। इसी के पेट से वैसाख वदी १२ संवत १८६२ मे केहरसिंह पैदा हुआ था। केहरसिंह लंगड़ा होते हुए भी बड़ा बहादुर था। कहारी मे उसने पटियाला की सेनाओं से भी मुकाबला किया था। अपनी भाभी के अलावा उसके एक विवाहित स्त्री आसकौर थी। उससे प्रतापसिंह और औतारसिह नाम के दो लड़के पैदा हुए थे। केहर-सिंह संवत १६१४ के गदर में फिरोजपुर मे अग्रेजों की ओर से लड़ता हुआ घायल हुआ था। गवर्नर के दरबार मे उसे भदौड़िये सरदारो से चौथे नम्बर की कुर्सी थी। इसे अपने चचेरे भाई के लड़के ईश्वर-सिंह की जायदाद उसके लावल्द मरने के कारण मिल गई थी। प्रतापसिह और औतारसिंह जिनके कि जन्म क्रमश सम्वत १८१० और १८२० विक्रमी मे हुये थे अपने बाप के उत्तराधिकारी हुये।

सरदार जगतसिह जी के पांच पुत्र थे, गुलाबसिंह, बसावासिह, खेमसिंह, नारायणसिह और अजपालसिंह। गुलाबसिंह का जन्म अषाढ़ सुदी ६ संवत १८७४ मे दयाकौर से हुआ था, कौलगढ़ के दीवान सोढ़ासिह की लड़की के साथ सम्वत १८८५ मे शादी हुई। इसके बाद और भी कई शादियाँ कीं किन्तु संतान किसी से नहीं हुई। संवत १६१२ में यह निःसंतान मर गया। अन्तिम दिनों मे यह टिल्लेवाल में रहने लगा था। बसावासिह का जन्म फागुन सुदी १४ सम्वत १८८७ वि० में रतनकौर से हुआ था। सम्वत १८६६ मे दीनों के सरदार हरीसिंह की लड़की के साथ शादी हुई। अपने बाप से नाराज होकर पटियाला रहने लग गया था। आषाढ़ सुदी ८ सम्वत १६०२ मे इसका देहान्त हो गया। खेमासिंह का जन्म सन् १८६५ में सुखां के पेट से हुआ था। सात साल की उम्र में ही यह मर गया।

नारायणसिह सम्वत् १८६५ मे सुखा के उदर से पैदा हुआ और जल्दी ही मर गया, इसके बाद पैदा होने वाले लड़के का भी नाम सुखां ने नारायणसिंह ही रक्खा। वह भी सम्वत् १८२२ में ननिहाल में रहते हुये मर गया।

अजपालसिंह भादों वदी २ सम्वत् १६१५ में रतनकौर से पैदा हुआ और चार वर्ष ही बाद मर गया। इस प्रकार जगतसिंह का वंश समाप्त हो गया।

यह हम पहले लिख चुके हैं कि आलासिंह के भाई दूना के पाँच पुत्र थे (१) बिघासिंह (२) दाऊ-सिंह (३) संगूसिंह (४) सुखसिंह और शोभासिंह। इनमे दाऊसिंह तो लाहौर के जेल में नि.संतान ही मर गया था। संगूसिंह भी २३ वर्ष की उम्र में अपने पीछे अपनी बेवा को छोड़कर मर गया

रामपुरिये,

सम्वत् १७८० में पैदा हुआ था। इसके दो विवाह हुये। सम्वत् १८०१ में भागां के साथ दूसरा १८१६ वि० में हरिकौर के साथ। कहा जाता है यह अपने समय का अद्वितीय बहादुर शूरमा था। सम्वत् १८२२ मे यह मर गया। बड़ी औरत ने अपने देवर बिघासिंह

से नाता कर लिया। इसके वंशज दनकोटिये कहलाते हैं। शोभासिंह जेठ सुदी ६ सम्वत १७७५ में पै हुआ था। उसने तीन शादियाँ कीं। उसके पास रामपुरा और कोट बख्तू की जागीर थी। सम्वत १८ में इसका देहान्त हो गया। उसके वंशज उसकी जागीर पर काबिज रहे।[1]

विघासिंह की सन्तान में से मोहरसिंह और दलसिंह के वंशजों का वर्णन शेष है जो इस प्रकार है दलसिंह सम्वत १८२४ में भागा के पेट में पैदा हुआ था सम्वत् १८३७ में काले गाव की केसरकौर साथ उसका विवाह हुआ। उनके वंशज कोटदूने पर मालिक हैं, दलसिंह के पुत्र जीतसिंह थे जो सम्वत १८४५ चैत सुदी १२ को पैदा हुये थे। सम्वत् १८७० मेरवी गोती जाटों की पुत्री खेमकौर के साथ शादी हुई। अपने पीछे दो पुत्र महताबसिंह और जोधसिंह को छोड़कर सम्वत १८७५ में जीतसिंह चल बसे।

कोटदूनिये

महताबसिंह का जन्म संवत् १८८६ के आषाढ में सुदी २ को खेमकौर के उदर से हुआ था इनकी शादी रामपुर के गरेवाला गोती जाटों में हुई। दूसरी स्त्री से एक लड़की और एक लडका पैदा हुए। लडके का नाम उसकी बहन के नाम की तरह अतरसिंह रक्खा गया। अतरसिंह का जन्म सम्वत १८८८ में साहबकौर से हुआ था। अतरसिंह के जन्म के तीन वर्ष बाद ही सरदार महताबसिंह का संवत १८६१ में देहान्त हो गया। अतरसिंह ने तीन शादियाँ कीं, जिनमें एक लड़की और एक लडका पैदा हुये। लडकी का नाम किशनकौर और लड़के नाम किशनसिंह रक्खा, जिनका कि जन्म सवत् १९१६ के भादों में शामकौर के पेट से हुआ था। यही आपकी मिलकियत के अधिकारी हुये। इनके पिता अतरसिंह का सम्वत् १७२० में जब कि यह कुल चार वर्ष के थे देहान्त हो गया था।

जोधसिंह जो कि महताबसिंह के भाई थे। संवत् १८७३ के क्वार में खेमकौर के पेट से पैदा हुए थे। इन्होंने धारीवाल गोत के जाटों में शादी की थी। जिससे लालसिंह और पंजाबसिंह नाम के दो पुत्र और पजाबकौर नाम की एक लड़की पैदा हुई। इसके बाद इन्होंने दो शादिया और भी करलीं।

लालसिंह का जन्म संवत् १८७० की भादों वदी ४ को सरदारनी धनकौर के पेट से हुआ और इन्हीं के पेट से सवत् १८६३ की माघ सुदी ११ को पंजाबसिंह का जन्म हुआ। लालसिंह की दो शादियां हुईं। पंजाबसिंह की शादी गिल गोत में हुई। जिससे दो पुत्र सम्पूरनसिंह और भागसिंह सवत् १७८५ तक ही हो गये थे।

चौधरी विघासिंह के पुत्रों में मुहरसिंह के वंशजों का वर्णन अब तक नहीं कर सके। अत यहाँ देते हैं।

मोहरसिंह का जन्म सावन वदी २ संवत १८२४वि० को देसो के पेट से हुआ था। सवत् १८३१ई० में गांव फेरूराई में टेकसिंह धारीवाल की लड़की राजकौर के साथ शादी हुई। इसके उदर से (१) अमरीकसिंह (२) समुद्रीसिंह और (३) सुजानसिंह नाम के तीन लड़के और महताबकौर नाम की लड़की पैदा हुई। इसके बाद दो शादियां और कीं किन्तु उन दोनों सरदारनियों से कोई संतान नहीं हुई। मोहरसिंह

१. रामपुरिये सरदार कहलाते है। शोभासिह के (१) जस्सासिह (२) मस्सासिह (३) टेकसिह (४) बख्त सिह और बुधसिह पाच पुत्र पैदा हुए। जिनमें से जस्सासिह नाबालिग ही मर गया। बाकी चारों की औलाद रामपुर पर आबाद है। रामपुरे को सरदार रामसिह ने बसाया था। और बख्तू नामक गाव को शोभासिह की चादर डाली हुई (भाभी) सरदारनी बख्तो ने बसाया था यह जागीर ६०००) सालाना की थी।

झगड़ालू प्रकृति का आदमी नहीं था। इसलिये उसने असमाल नाम का एक गॉव तो अपने गुजारे के लिये ले लिया। बच्चों को अपने भाई चूहड़सिंह के साथ ही रहने दिया। जब चूहड़सिंह ने अपने दिन निकट समझे तो मोहरसिंह के लड़कों मे उसने जद्दी इलाके के दो तिहाई बाट दिये। संवत् १६०३ मे सरदार मोहरसिंह का स्वर्गवास हो गया।

अमरीकसिंह का जन्म सम्वत् १८४२ मे वैसाख वदी ५ को हुआ था सवत् १८५४ मे पहली शादी हुई। जिससे चन्दकौर नाम की लड़की पैदा हुई। दूसरी शादी संवत् १८६० मे की उससे भी एक लड़की रतनकौर पैदा हुई। सम्वत् १८६७ के क्वार वदी ८ को धर्मकौर के पेट से इस अमरीकसिंह के एक पुत्र देवासिंह पैदा हुआ।

अमरीकसिंह के दूसरे भाई समुद्रसिंह का जन्म सम्वत् १८४६ वैसाख वदी ४ को हुआ था। समुद्रसिंह की चार शादियां हुईं। चौथी सरदारनी प्रतापकौर के पेट से इनके अचलसिंह नाम का पुत्र पैदा हुआ। समुद्रसिंह बाप से नाराज होकर पटियाला महाराज कर्मसिंह के पास जाकर नौकर होगया। सम्वत् १८८१ ई० मे भाई माना ने जब भदौड़ पर कब्जा करने के इरादे से हमला किया तो अचलसिंह ने पटियाला की फौजों की मदद से उसे शात किया। महाराज मोहरसिंह की मौत के बाद महाराजा पटियाला की सिफारिश के कारण और उस बलवे को नष्ट करने की वजह से इलाके की सरदारी बजाय अमरीकसिंह के इसे ही मिली। इसे प्रान्तीय दरबार में कुर्सी मिलती थी। सम्वत् १८६३ मे इसका देहान्त हो गया। इसका लड़का अचलसिंह जिसका कि जन्म १८८६ सम्वत् के माघ वदी पंचमी को हुआ था। इसका उत्तराधिकारी हुआ। अचलसिंह ने भी तीन शादिया कीं। अमरीकसिंह के पुत्र देवासिंह ने इस बात का दावा कर दिया कि असल हकदार जागीर का मैं हूँ इसलिये सरदारी मुझे मिलनी चाहिये थी। सरकार ने सरदारी इन दोनों के बजाय मोहरसिंह के तीसरे पुत्र को दे दी। क्योंकि ये दोनों तो मोहरसिंह के पोते थे और पोतों का हक नहीं होता। अचलसिंह ने गदर के समय फीरोजपुर रहकर सरकार की सेवाये कीं।

मोहरसिंह के तीसरे पुत्र शोभासिंह का जन्म सम्वत् १८५१ मे आषाढ़ सुदी ४ को हुआ था। सम्वत् १८६० में भागणकौर के साथ इसकी शादी हुई। जिससे सम्वत् १८६६ के पौष वदी ८ को उत्तमसिंह नाम का एक लड़का पैदा हुआ। जो अपने बाप की जिन्दगी में ही बटवारा कराकर अलग हो गया। सम्वत् १८८५ मे शोभासिंह का अधिक शराब पीने के कारण देहान्त हो गया।

उत्तमसिंह के अतरसिंह नाम का लड़का भादों सुदी ८ सवत् १८६४ मे हुआ था। जिसने अपने पूर्वजों की तरह एक स्त्री से सन्तोष न करके बहुविवाह की रस्म को उसी भांति पूरा किया था।

अमरीकसिंह के पुत्र देवासिंह का जन्म सम्वत् क्वार वदी ८ सम्वत् १८६७ वि० में धर्मकौर के पेट से हुआ था। इसने भी चार शादियां कीं। आखिर यही कम क्यों रहता। जिनसे कई लड़के पैदा हो-होकर बचपन में ही मर जाते रहे। सम्वत् १८६२ मे पिंड उगोकी के धारीवालों की लड़की महताबकौर के साथ शादी की। उससे रामदेवी और नारायणकौर नामक लड़की पैदा हुईं। इसी से सम्वत् १६०६ के फागुन मे नारायणसिंह नामक पुत्र का जन्म हुआ। अपनी दोनों बहिनों की शादी सयाने होने पर नारायणसिंह को ही करनी पड़ी क्योंकि देवासिंह तो उस समय तक चलाणा कर चुका था। सम्वत् १६२३ में लधड्डां वाले सरदारों के यहा अपनी भी शादी की।

सरदार आलासिंह के एक भाई दूनासिंह के वंशजों का हम वर्णन कर चुके हैं अब दूसरे भाई

बख्ता के वंशजों का वर्णन शेष है। जो कि मलौदिये रईस कहलाते हैं। मलौद इस समय जिला लुधियाना में शामिल है। सन् १७११ ई० मे बख्तमल जी ने सहना गाँव मे कोट बख्तमल आबाद किया था जो कि उन्हीं के नाम पर प्रसिद्ध हुआ था। सन् १७५७ में बख्तमल का देहान्त हो गया[1]। उसके बाद उसके लड़के मानसिंह को अपने पिता के समस्त इलाके पर अधिकार हुआ। मानसिंह ने भी अपने समय मे अनेक गाँवों को अपने अधिकार मे करने का प्रयत्न किया। मानसिंह बड़ा दानी था।

मलौद

मानसिंह[2] के दो लड़के थे दलेलसिंह और बाघसिंह। इन दोनों भाइयों में काफी झगडा रहा। दलेलसिंह ने राजा साहब पटियाला के पास बाघसिंह की शिकायत की कि मेरे छोटे भाई बाघसिंह ने कोट बख्ता पर जबर्दस्ती कब्जा कर लिया है। दीवानसिंह ने बाघसिंह पर चढ़ाई की। बाघसिंह किले मे बैठकर बड़ी बहादुरी से लड़ा किन्तु आखिर मे हार गया। आठ दिन के युद्ध के बाद कोट बख्ता को दीवान ने बाघसिंह से छिना कर दलेलसिंह को दे दिया। इसके बदले में दलेलसिंह ने दीवानसिंह को बीस हजार रुपया नकद और एक तोप भेट की। बाघसिंह सन् १८२० में और दलेलसिंह सन् १८२४ ई० में स्वर्ग रवाना हो गये।

महाराजा दलेलसिंह ने दो लड़के अपने पीछे फतहसिंह और मितसिंह नाम के छोड़े। दलेलसिंह का देहान्त सन् १८२४ ई० मे हुआ था। फतहसिंह अपने बाप की जागीर का सरदार हुआ और अपने बाप के २६ वर्ष बाद मर गया।

फतहसिंह के भी दो लड़के थे। हजूरासिंह और उत्तमसिंह। हजूरासिंह अपने बाप के चार वर्ष ही बाद मर गया। इसलिये उसका छोटा भाई उत्तमसिंह कुल जायदाद का मालिक हुआ और सरकारी कार्यो मे भाग लेने के कारण इसे सरकार की ओर से कुर्सीनशीन किया गया। मलौदियों में इसकी इज्जत सर्वोपरि थी। सन् १८६५ मे इसका स्वर्गवास होगया।

सरदार उत्तमसिंह के पास मौजा सहना और रामगढ़ आदि थे जिनकी आमदनी ३३४५५) सालाना थी।

सरदार दलेलसिंह के छोटे पुत्र सरदार मितसिंह और उसकी सन्तान के पास मलोद और पक्खो वगैरह की जागीरे हिस्से में थीं। जिनकी आमदनी २०४१) रुपया सालाना की थी। सरदार मितसिंह[3]

१. किन्तु सरदार अतरसिंह रईस भदौड़ ने संवत १८११ यानी सन् १७५४ में लिया था।

२. मलोद को मानसिंह ने ही मालेरकोटला से जीता था।

३. सरदार मितसिंह के लडके राजा बदनसिंह के छोटे भाई का नाम सरदार सुन्दरसिंह था। जो अपने भाई से पहले ही सन् १९१७ में स्वर्गवास हो गए थे। उनके तीन लड़के थे (१) राजेन्द्रसिंह (२) किशनसिंह (३) गुरुदत्तसिंह। इनमें से राजेन्द्रसिंह जी ने सेना में लेफटीनेंट का पद लिया और सरकार की अच्छी सेवायें करने के कारण सरदार बहादुर का खिताब पाया। सन् १९२६ में अपने पीछे चार पुत्र छोड कर स्वर्गस्थ हो गये। इन चारो के नाम योगेन्द्रसिंह (जन्म १९१०) महेन्द्रसिंह (जन्म १९१३) वीरेन्द्रसिंह (जन्म १९१८) धीरेन्द्रसिंह (जन्म १९२०) है।

किशनसिंह लावल्द मरे और गुरुदत्तसिंह जी के दो पुत्र हुए। राजेन्द्रसिंह और रामेश्वरसिंह। जिनके कि क्रमश. सन् १९१४ और १९१७ में जन्म हुये है।

का संवत् १८७८ ई० में देहान्त हो गया था। उसके दो लड़के थे (१) वदनसिंह (२) सुन्दरसिंह। वदनसिंह ने अपनी योग्यता और सेवाओं से सरकार को खुश कर लिया था। जिससे सरकार की ओर से राजा का खिताव पाने में सफल हुआ था। उसके छोटे भाई का उसके आगे ही देहान्त होगया। सन् १६२२ में राजा वदनसिंह भी चल बसा। राजा वदनसिंह के तीन पुत्र हुए थे। (१) हरनामसिंह (२) महतावसिंह और (३) सरदार दलसिंह। इनमें पहले दो का देहान्त राजा साहब के जीवन में ही और लावल्द हो गया था। तीसरे सरदार दलसिंह जी ने अपने जीवन को अपने पिता की तरह ही ऊँचा उठाया और अच्छी तरह से अपनी रियासत का प्रवन्ध किया। सरकार के प्रति सद्भाव रखने के कारण सरकार ने वहादुर और आर० वी० ई० की पदवी से विभूषित किया। आपका जन्म सन् १८६८ का वताया जाता है। आपके सन् १८८५ में सन्तसिंह नाम का सुपुत्र का जन्म हुआ। और फिर सन् १६१७ में अमरजीतसिंह पोता हुआ। इस प्रकार सरदार दलसिंह जी अपने समय के खुशवख्त लोगों में समझे जाते हैं।

जमीदारी के कामों में भी आपने रुचि रक्खी। जिससे जागीर के प्रवन्ध में सहूलियत रही। सन्तान को जमाने की रफ्तार के मुआफिक योग्य वनाने की ओर से आप सतर्क रहे हैं।

वख्तमल के दूसरे पुत्र वाघसिंह थे। ऊपर जो इतिहास है। वह उनके वड़े पुत्र दलेलसिंह के वंशजों का है।

वाघसिंह के दो पुत्र हुये थे एक रनजीतसिंह दूसरे हकीकतसिंह। वाघसिंह ने अपने ही समय में अपने भाई से जागीर का वटवारा करा लिया था। इसलिये उसके मरने पर अपनी स्वतन्त्र जायदाद के दोनों पुत्र मालिक हुये। वाघसिंह का सन् १८२० ही में देहान्त हो गया। कुछ दिन के वाद दोनों भाइयों ने भी अलग २ होने की कोशिश की किन्तु सन् १८५४ ई० में रनजीतसिंह के मर जाने के वाद हकीकतसिंह के हाथ ही में अपने आप की सारी जागीर आगई क्योंकि उसका भाई रनजीतसिंह लावल्द ही मर गया था।

सन् १८६६ ई० में हकीकतसिंह के एक लड़का पैदा हुआ जिसका नाम वलवंतसिंह रक्खा गया। जव कि कुँवर वलवंतसिंह की उम्र केवल ६ वर्ष की थी। सरदार हकीकतसिंह जी का देहान्त हो गया। उनके नावालिग होने तक सरदार वलवतसिंह की मां ने जागीर की देखभाल की। सरकार की ओर से भी ख्याल रक्खा गया।

सरदार वलवंतसिंह जी के दो पुत्र हुये। भगवन्तसिंह और नारायणसिंह। खेद है कि इन दोनों का क्रमशः सन् १६२१ और सन् १६२७ई० में देहान्त हो गया। उन दोनों ही ने तीन पुत्र अपने पीछे छोड़े।

सरदार भगवन्तसिंह के वलवंतराजसिंह हैं जिनका जन्म १६२१ में अपने पिता की मृत्यु वाले वर्ष में ही हुआ है और सरदार नारायणसिंह के (१) पुरुषेन्द्रसिंह (२) नरेन्द्रसिंह हैं। जिनमें पुरुषेन्द्र सिंह जी का जन्म १६१६ में और नरेन्द्रसिंह जी का जन्म १६२६ ई० में हुआ है।

खान्दान फूल की वड़ी जागीरों का वर्णन हम पिछले पृष्ठों में कर चुके हैं अव छोटी २ जागीरों का जिक्र करते हैं। फूल खान्दान की पाँच छोटी २ जागीरें हैं जो (१) गुमटी वाले, लोहरगढ़िये, (२) मिरजे की दयालपुरिये, (३) जिउन्दा वाले, (४) रामपुरिये और (५) कोट दूनेवालों का भी वर्णन पीछे आ गया है। इन पाँचों जागीरों की लगभग इकत्तीस हजार सालाना की आमदनी है।

फूलवंशीय छोटी जागीरें

इस खान्दान का संस्थापक फूल का पुत्र चौधरी रघु था। जिउन्दे गाँव में उन्होंने अपना प्रभुत्व

स्थापित किया था। चौधरी रघु बहादुर आदमी थे। उन्होंने अपने बाहुबल से इस मिल्कियत को कायम किया था। चौधरी रघु के चार पुत्र हुये। तीन पुत्र निःसंतान मर गये। चौथे हरदाससिंह की औलाद आजकल इस जागीर की मालिक है। इन्हीं की एक पत्ती भगरौल है इनके यहां बटाई की प्रणाली है। जागीर की कुल आमदनी ४२००) रुपए सालाना है। लगभग १०० आदमियों का इसी पर दारमदार है।

जीऊन्दे वाले

चौधरी फूल की चौथी स्त्री रज्जो के उदर से तीन लड़के पैदा हुये। जिनमें से एक निसन्तान मर गया दो के सन्तान हुई। जिसने गुमटी गॉव को आबाद किया। इनकी सात पत्नी हैं। इस जागीर को स्थापित करने में इन्हें सुखानन्द बैराड़ से अच्छी सहायता मिली थी। कुल जागीर ८०००) सालाना की है और लगभग ६०० आदमियों का दारमदार इसी के ऊपर है। लगान में बटाई लेते हैं। यह जागीर राज्य नाभा के मातहत है। जागीर की आमदनी कम होने के कारण खुद भी काश्त करते है।

लोहड्गढ़िये गुमटीवाले

सुखचैनसिंह के एक पुत्र बुलाखी माई भागो के उदर में पैदा हुआ था। सुखचैनने बुढालीकी ढान की जमीन में गढी सुखचैनसिंह आबाद की थी। बुलाकी सीधा चौधरी था। कोटकपूरे के पास इसकी शादी हुई। जिससे पैदा होने वाले लड़के का नाम मिरजा रक्खा। मिरजेके छोटे भाई का नाम आलमसिंह था। जब वह मर गया तो मिरजा ने उसकी स्त्री के ऊपर चादर डालकर अपना घर बसा लिया। इनसे जैतू नाम का लड़का पैदा हुआ। दयाल सिंह पहली स्त्री से पैदा हुआ था। इस प्रकार एक गॉव का ही नाम मिरजे का दयालपुर हो गया। इनके वंशज उसी गॉव में रहते हैं। छलाल और जलालपुर भी इन्हीं के पास है। कुल जागीर ७०००) सालाना की है। लगभग ६० आदमियों का इसी पर निर्वाह है। लगान में बटाई का रिवाज है। यह जागीर राज्य जींद में है।

मिरजेकी दयालपुरिये

रामपुरिये और कोटदुनिये वालों का जिक्र पीछे कर ही आये हैं।

इन जागीरों का दौरा भटौड़ के सुयोग सरदार अतरसिंह जी ने किया था। उस समय के हालात में उन्होंने लिखा है कि ये इनमें राजवंश का खून अब तक तासीर रखता है। किन्तु पढने लिखने की ओर न तो ध्यान देते हैं और न उसे महत्वपूर्ण समझते हैं।

पिछले वर्षों में शिक्षा सुधार तथा नौकरियों की ओर इनका ध्यान गया है।

जिस प्रकार मलोद लुधियाने में है। उसी प्रकार पक्खो,बेर और रामपुर की बहुत छोटी २ जागीरें जिला लुधियाना में फूल वंश की और हैं। जिनमें से प्रांतीय दरबार में मलौद को ही स्थान मिलता है।

यह जागीर जिला करनाल में है। पहले इसपर निशानवालिया मिसल का अधिकार था। यहां का अधिपति सरदार हिम्मतसिंह था। उसके मरने पर सरदार कर्मसिंह ने अपना दखल जमा लिया, आरंभ में उसे केवल पॉच गॉव हिम्मतसिंह की सरदारनी से मिले थे। अपनी बुद्धिमानी और बहादुरी से उसने लगभग तीस हजार सालाना आमदनी के इलाके पर कब्जा कर लिया। निशानवाली मिसल में काफी फूट फैल चुकी थी। सब सरदार आपस की लड़ाई-भिड़ाई में लगे हुए थे। उनकी कमजोरी से सरदार कर्मसिंह और महाराजा रणजीतसिंह दोनों ने लाभ उठाया। कहा जाता है सरदार कर्मसिंह सन् १७५६ ई० में इलाका माझ से इधर आया था और उसने इस मिसल के साथ मिलकर काम किया था। सन् १७७५ में हिम्मतसिंह के मरने पर उसकी

पक्खो, बेरा रामपुर शाहाबाद

चेवा ने सरदार कर्मसिंह को केवल पॉच गॉव दिये थे। सन् १८०८ ई० में जब सरदार कर्मसिंह की मृत्यु हुई वह इतना वड़ा वैभव छोड गया कि उसके लड़के खड्गसिंह के साथ पटियाला महाराज कर्मसिंह ने अपनी वहिन प्रेमकौर की शादी की। यह घटना सन् १८०९ ई० की है।

सरदार कर्मसिंह ने चार वेटे अपने पीछे छोड़े। (१) रनजीतसिंह (२) शेरसिंह (३) काहनसिंह और खड्गसिंह। इन्होंने अपने पिता के मरने के वाद लड-झगड़ कर इलाका आपस मे वाट लिया। सरदार खड्गसिंह जिसकी कि शादी पटियाला मे हुई थी सन् १८३१ ई० मे निःसन्तान मर गये। इसलिये उनका इलाका सरदार शेरसिंह को दिया गया। तीस वर्ष तक इस इलाके का उपयोग करके सन् १८६१ में शेरसिंह भी मर गये। उनके पीछे उनका लड़का केसरसिंह भी मर गया। केसरसिंह के नि सतान मरने के कारण अंग्रेज सरकार ने हड़प लिया। यह घटना सन् १८६३ की है। केसरसिंह का इलाका ग्यारह हजार सालाना से ऊपर की आमदनी का था।

जिस सरदार कर्मसिंह ने अपने वाहुवल से इतना वडा इलाका पैदा किया था और जिसने पटियाला के दीवान नानूमल को नाक चने चववा दिये थे। और जो हमेशा अपनी मान मर्यादा के लिये मरने-मिटने को तैयार रहता था तथा जिसने पटियाला की कुछ भी परवाह न करके खुशालसिंह बन्दूरवाले को मदद दी थी। उसका ग्यारह हजार का इलाका इस प्रकार लावारिसी मे अंग्रेज सरकार ने हड़प लिया। हालांकि सरदार कर्मसिंह के दो पुत्र और भी शेष थे।

सरदार रनजीतसिंह के धर्मसिंह और किशनसिंह नाम के दो पुत्र हुये। जो अपने इलाके की बड़ी सतर्कता से रक्षा करते रहे। हालाकि उनको भी यह भय वरावर लगा रहता था कि कहीं उनकी जागीर पर भी हाथ साफ न हो। इसलिये वे अंग्रेज हाकिमों को वरावर प्रसन्न करते रहते थे।

सरदार धर्मसिंह के शिवनाथसिंह नाम के पुत्र पैदा हुये। जो अपने पिता के स्वर्गवास (सन् १८७९ ई०) के ४६ वर्ष वाद सन् १९१५ ई० मे अपने पीछे एक मात्र पुत्र सरदार जस्मीरसिंह को छोड़कर स्वर्गवासी हो गये। सरदार जस्मीरसिंह जी का जन्म १९११ ई० में हुआ था। इस समय आप ही शाहावाद जागीर के प्रधान हैं।

सरदार किशनसिंह जी जो कि सरदार धर्मसिंह जी के भाई थे सन् १८८० मे स्वर्गवासी हो गये। उन्होंने भी अपने पीछे एक ही पुत्र विचित्रसिंह छोड़े थे। सन् १८९८ में विचित्रसिंह जी भी प्रस्थान कर गये। उन्होंने अपने पीछे दो लड़के छोड़े थे। राजेन्द्रसिंह और हरेन्द्रसिंह जिनमें से राजेन्द्रसिंह का सन् १९२६ मे देहान्त हो गया। हरेन्द्रसिंह अपने हिस्से पर काविज हैं जिनका कि जन्म सन् १८९८ में हुआ था। सरदार जयवीरसिंह और हरेन्द्रसिंह दोनों की लगभग ८०००) सालाना की आमदनी की जागीर है। काहनसिंह जो कि सरदार रनजीतसिंह जी के भाई थे वह सन् १८३६ मे चलाना कर गये। उनके वाद उनके पुत्र प्रतापसिंह के हाथ जागीर आई जोकि साढ़े तीन हजार सालाना आमदनी की समझी जाती थी।

सन् १८७८ ई० में प्रतापसिंह भी अपने पीछे रामनारायणसिंह नाम का पुत्र छोड कर चल वसे। संवत १८९२ में रामनारायणसिंह का भी स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार सरदार कर्मसिंह के चार पुत्रों में से केवल एक का वश ही फल फूल रहा है।

यह जागीर (वागरियान) जिला लुधियाना में है। यहां के रईस भाई के नाम से याद किये जाते हैं। क्योंकि वह भाई रूपा की सतान में से हैं।

बागरियान

इलाका तरनतारन में वड़ाघर नामक गांव में आकल नाम का एक सिख रहता था। अनजान में उसने अपनी लड़की की शादी तुकलानी के सादे मुलतानिये के साथ कर दी। लड़की बड़ी गुरु-भक्त थी। वह अपने पति सादे को लेकर श्री गुरु हरि-गोविन्द जी के पास डरोली मे पहुँची। जहां उसे सिख धर्म की दीक्षा दिलाई। सम्वत १७६१ वि० में उसके एक लड़का पैदा हुआ। गुरु जी ने उसका नाम रूपचन्द रक्खा। रूपचन्द ने गुरुजी की अपूर्व सेवा की। उसके अगाध प्रेम और श्रद्धा के वशीभूत होकर गुरुजी ने उसे भाई रूपा के नाम से पुकारा। उसी समय से रूपा का कुल खान्दान भाई के नाम से प्रसिद्ध है। उसी के नाम पर आगे एक गॉव आबाद कराया गया जिसका नाम पिंड भाई रूपा पड़ा। यह पिंड राज्य नाभा मे है। गुरुजी ने प्रसन्न होकर एक खड्ग और कच्छा भाई रूपा को दिये थे। जिन्हे आज भी बागरिया सरदार बड़ी हिफाजत से रखते हैं।

भाई रूपचन्द जी के सात लड़के हुये जिनमे से परमचन्द और धरमचन्द इन दोनों ने गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज से दीक्षा ली थी। और उन्हीं की सेवा मे रहे।

संवत् १७६६ मे भाई रूपचद जी का देहान्त हो चुका था।[1] उसके पॉच वर्ष ही बाद उनके बड़े पुत्र परमसिंह का संवत् १७७१ मे देहान्त होगया। भाई धरमसिंह दशमेश जी की आज्ञा लेकर वापिस अपने गॉव आ गये।

विदा करते समय दशमेश जी ने भाई धर्मसिंह को पाठ करने की एक पुस्तक, एक तलवार एक छोटी करद और एक छोटा खंडा दिया। इनमे से इस समय तलवार तो जीन्द नरेश के यहॉ है। बाकी सभी चीजें बागरिया सरदारों के पास हैं।

भाई रूपचन्द जी के सातों पुत्रों की औलाद भाई रूपा, भाई की समाधि, नेहियॉवाला और नट्टी आदि गॉवों मे वसी हुई है। किन्तु मुख्य ठिकाने भाई रूपा और बागरिया ही हैं। भाई महानन्द, सदानंद, सूरतिया, मुख्यानंद और कर्मचन्द उनके शेष पॉच पुत्रों के नाम थे। 'शैरे पंजाब' के लेखक राय कालीराम साहब ने जो वशावली दी है। उसके अनुसार आगे का वर्णन इस प्रकार है—

भाई रूपा के बाद उनका बड़ा पुत्र धर्मसिंह उनका उत्तराधिकारी हुआ। धर्मसिंह की शादी माई मुकन्दी के साथ हुई थी। उससे भाई दयालसिंह का जन्म हुआ। दयालसिंह ने राज्य नाभा मे दयालपुर बसाया। माई सूसी के साथ इनका विवाह हुआ था।

भाई दयालसिंह जी के घर माई सूसी के उदर से (१) गुरुदत्तसिंह (२) उग्रसिंह (३) नानकसिंह और सुखमनसिंह चार लड़के पैदा हुये। जिनमे पहले तीनों पुत्र नि संतान ही संसार से प्रस्थान कर गये। इसलिये आखिर मे सुखमनसिंह ही भाई दयालसिंहजी की सम्पत्ति और जायदाद एवं गद्दी के हकदार हुये।

भाई सुखमनसिंह जी के भी चार लड़के हुये। (१) मेहरसिंह (२) सगतसिंह (३) हरदाससिंह और (४) गुरुमुखसिंह। इनमे भाई संगतसिंह जवानी के आरम्भ दिनों मे ही चल बसे। इनकी वेवा माई गौहर से मेहरसिंह जी ने चादर डालकर विवाह कर लिया। किन्तु माई गौहर के उदर से कोई सतान नहीं हुई। इसलिये भाई मेहरसिंह भी सन्तानहीन ही संसार से विदा हुये। भाई हरिदास जी के भी कोई संतान नहीं हुई। इनकी पत्नी माई सुखां इनसे पहले ही मर गई थीं। भाई गुरुमुखसिंह जी ने तीन शादियॉ कीं। मल्हां, भरधां, और रामकौर उनके नाम थे। इससे सात पुत्र उत्पन्न हुये। माई मल्हा से

१. जिला फीरोजपुर में भाई की समाधि नाम का गाँव आपही की स्मृति में आबाद हुआ था।

अतरसिंह, अनूपसिंह, अनोखसिंह और साहबसिंह नाम के चार पुत्र हुये। जिनमे से अतरसिंह के पुत्र भोलासिंह हुये। जिनकी कि संतान के लोग मौजा ककराला राज्य पटियाला मे रहते हैं। भरधां से वहादुरसिंह और जवाहरसिंह नाम के दो पुत्र हुये। वहादुरसिंह जी के ही सुपुत्र भाई सम्पूरनसिंह हुये। जिनके नाम का प्रकाश अब तक है इन्हीं के लड़के-पोते और पडपोते वागरिया सरदार कहलाते हैं। वहादुरसिंह जी के छोटे पुत्र मूलासिंह थे। भाई वहादुरसिंह ने अपने छोटे भाई जवाहरसिंह जी को मौजा कलाहरान मे आधा हिस्सा देकर अलग कर दिया। जोकि इलाका ककराला मे है।

भाई गुरुमुखसिंह जी की तीसरी पत्नी से एक ही पुत्र महतावसिंह का जन्म हुआ।

सिख महान् कोष गुरुशब्दरत्नाकर के यशस्वी लेखक भाई काहनसिंह जी के कोष से पता चलता है। भाई वहादुरसिंह का देहान्त सं० १६०४, उनके सुपुत्र भाई सम्पूरनसिंह का स० १६१६ मे हो गया।

भाई काहनसिंह जी के वड़े पुत्र नारायनसिंह जी का भी सम्वत् १६४६ में देहान्त हो गया। उनके बाद उनकी कोई सन्तान होने की वजह से भाई अर्जुनसिंह जी गद्दीनशीन हुये। आपका जन्म सम्वत १६३१ वि० मे हुआ था। सम्वत् १६५६ मे आपके अरिदमनसिंहजी का जन्म हुआ। जो अपने खान्दान मे प्रथम ग्रेज्यूएट थे। आपके भी सम्वत् १६७७ मे एक सुपुत्र हो चुके हैं। जिनका नाम भाई हरिधनसिंह जी है। इस तरह वागरिया वर्तमान सरदार अर्जुनसिंह जी पुत्र और पौत्र की सम्पन्न फुलवारी में सर्वानंद का उपभोग कर रहे हैं। ईश्वर का भजन करने मे रुचि सुलक्षणा स्त्री और सुपुत्र पुत्र-पौत्रों से भरा हुआ घर एवं स्वास्थ्य की उपस्थिति यही सर्वानन्द हैं। सरदार अर्जुनसिंह जी के भाई हरधनसिंह समेत तीन पुत्र हैं। अरिगंजनसिंह और गहारिपसिंह उनके नाम हैं। जिनके कि क्रमशः सम्वत् १६६१ और १६७२ वि० मे जन्म हुये हैं।

कलाहरां के आधे हिस्सेदार भाई जवाहरसिंह का लड़का केसरसिंह लावल्द मर गया। अत. उनका हिस्सा भी भाई अर्जुनसिंह के ही हाथ आगया। आपको सरकार की ओर से सरदार वहादुर और ओ० बी० ई० के खिताव भी मिले थे।

हम यह वता चुके हैं कि भाई सम्पूर्णसिंहजी के दूसरे भाई मूलासिंह जी थे। उनके पांच पुत्र हुए। वीरसिंह, भगवानसिंह, विचित्रसिंह, सन्तोषसिंह और वसन्तसिंह इनमें विचित्रसिंह जी के करतारसिंह हुये और दूसरे भाइयों के वारे मे सन्तान सम्बन्धी कोई पता नहीं चलता।

करतारसिंहजी के सम्वत् १६८३ में भाई हरदयालसिंह जी हुए।

भाई मूलासिंहजी के पुत्रों मे से वीरसिंह, सन्तोषसिंह और वसन्तसिंहजी का देहान्त हो गया।

सिख लोग वागरिया सरदारों को भाई रूपाजी के वंशज होने की वजह से प्रेम और सत्कार की निगाह से देखते हैं। यह सब गुरुओं का प्रताप ही समझना चाहिये कि उनके सेवकों के वंशजों का आज तक आदर वना हुआ है और उसी आदर ने सिखों के उरुज के समय भाई खान्दान को जागीरदार और भू स्वत्वाधिकारी की गद्दी पर भी विठा दिया।

वूड़िया

जिला अम्बाला की लाडवह तहसील में यह जागीर अवस्थित है। इसकी स्थापना चौधरी नानूसिंह जो कि इलाका मांझ मे छावल मंडन का रहने वाला था की थी। सिख धर्म की दीक्षा लेकर सरदार नानूसिंह ने भंगी मिसल से मिलकर काम किया और शनै-शनै बूड़िया जैसी रियासत क़ायम करने में सफल हुआ। सन १७६३ ई० में जब जैनखां पर सिखों ने हमला किया यह भी अपने दत्तक पुत्र भागसिंह और मित्र रामसिंह के दल मे शामिल

हुआ और बाद विजय के आवाद हो गया। सन १८६४ ई० में बूडिया पर कब्जा कर लिया।

बूडिया का नानूसिंह से पहले का इतिहास यह है कि यहां पर जैनखां की ओर से लक्ष्मीनारायण नाम का एक हिन्दू अफसर था। जब वह छोड़ कर चला गया तो नरवारिया सिखों ने इस पर हाकिमी हासिल करली। नानूसिंह ने जैनखां के परास्त हो जाने के बाद बूडिया पर अपना स्वतंत्र अधिकार जमा लिया। इससे नरवारिया सिख नाराज रहने लगे।

उस समय औरंगाबाद में पठानो का जोरदार प्रभुत्व था। उन्होंने और नरवारियोंने मिलकर सरदार नानूसिंह को धोखे से औरंगाबाद के किले मे बुलाकर कत्ल कर डाला। इस खबर के सुनते ही रामसिंह और भागसिंह को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने औरंगाबाद के इलाके पर हमला कर दिया। पठानों को औरंगाबाद से मार भगाया और इस इलाके के दो सौ चार गावों पर अपना झंडा फहरा दिया।

सरदार भागसिंह और रामसिंह ने इन गांवो को आपस मे बांट लिया। जगाधरी और दयालगढ़ का इलाका मय चौरासी गांव के रामसिंह के अधिकार में आया और बूडिया मय १२० गांवों के सरदार भागसिंह को मिला।

सरदार भागसिंह का १७८५ ई० मे देहान्त हो गया और रियासत बूडिया उसके बेटे सरदार शेरसिंह के कब्जे मे आया। शेरे पंजाब के लेखक ने बूडिया के पड़ोसी सिख-इलाके के सम्बन्ध में जिस पर कि रामसिंह का अधिकार था लिखा है कि वह सरदार दूलजासिंह के निःसन्तान मरने पर सरकार ने अपने कब्जे मे कर लिया।

सरदार शेरसिंह ने अपने समय मे अंग्रेज अधिकारियों से खूब मेलजोल कर लिया था। कर्नल बैरन साहब के साथ सहारनपुर के मुहासिरे मे भी शामिल हुआ। जहां सन १८०४ ई० मे लडता हुआ मारा गया।

सरदार शेरसिंह के दो लड़के थे जयमलसिंह और गुलाबसिंह इन दोनों ने अपने बाप के मरने पर राज्य को आपस मे बांट लिया। इस बटवारे के समय दोनों भाइयों मे आन्तरिक मन-मुटाव भी पैदा हुआ। सरदार जयमलसिंह अधिक दिनों तक अपने हिस्से की रियासत का उपभोग न कर सका उसकी सन १८१७ ई० मे मृत्यु हो गई।

चूंकि जयमलसिंह ने कोई सन्तान अपने पीछे नहीं छोड़ी थी अत. सारी सम्पत्ति और जागीर का मालिक उनका छोटा भाई गुलाबसिंह ही हुआ। सरदार गुलाबसिंह ने अपने पैतृक भूमिभाग की उन्नति करनी चाही किन्तु इस समय तक महाराजा रणजीतसिंहजी का बहुत प्रभाव बढ़ गया था। उधर अंग्रेज मुँह बाये खड़े थे। इसलिए अपनी ही जायदाद की रक्षा करना मुश्किल हो रहा था। सन् १८४४ ई० में गुलाबसिंह की भी मृत्यु हो गई।

गुलाबसिंह के बाद बूडिया रियासत के अधिकारी उनके पुत्र जीवनसिंह हुये। उस समय उनके पास इतना भूभाग था जिसमें तेतीस हजार आदमी रहते थे और चालीस हजार के करीब सालाना आमदनी हो जाती थी। जीवनसिंह की बहिन की शादी महाराजा पटियाला महेन्द्रसिंहजी के साथ हुई थी। जो कई बार जीवनसिंह जी के आग्रह से बूडिया भी पधारे थे।

खालसा राज्य के खतम करने और सन १८५७ के गदर को दबाने के लिए अंग्रेजों ने जो लड़ाइयां लड़ीं थीं। उनमे सरदार जीवनसिंह ने अपने रिश्तेदार पटियाला नरेश से उत्साहित होकर अंग्रेजों की मदद करने में कोई भी कसर नहीं छोड़ी थी। अत. गदर की समाप्ति के बाद सरकार ने

आपको सी०आई०ई० का खिताब दिया था। सन १८६३ मे आपका देहान्त हो गया।

सरदार जीवनसिंह के पुत्र राजेन्द्रसिंह जी का स्वर्गवास उनसे भी तीन वर्ष पहले १८६० मे हो चुका था। अत. जागीर के मालिक उनके पौत्र सरदार लक्ष्मनसिंह जी हुये। लक्ष्मनसिंह सुशिक्षित और योग्य सरदार थे सरकार की सेवायें उन्होंने भी खूब कीं। इसलिये सरकार ने उन्हें सरदार बहादुर का खिताब बख्शा था। सन १६२१ मे सरदार बहादुर सरदार लक्ष्मनसिंह का देहान्त हो गया। उन्होंने दो छोटे-छोटे पुत्र छोडे। (१) रतनअमोलसिंह (२) लालअमोलसिंह। इनके जन्म क्रमशः सन् १६१६ ई० और १६२० ई० मे हुए थे अतः इनके नाबालिग होने के कारण रियासत का प्रबन्ध कोर्ट आफ वार्डस द्वारा इनके बालिग होने के समय तक के लिए कर दिया गया था।

दमदमे साहब की तलवंडी के महन्त बाबा दीपसिंह मुगलों मे युद्ध करते हुये शहीद हुये थे। दीपसिंह के बाद उनका शिष्य सदासिंह भी धर्म युद्ध मे ही परलोकवासी हुआ। इस बात से सिख बहुत खुश हुए और उन्होंने इनको शहीद के नाम से पुकारा। सदासिंह का उत्तराधिकारी

शाहजादपुर

महन्त कर्मसिंह अपने दोनों पूर्वजों से बढ़कर शूरवीर साबित हुआ। उसने कुछ गावों पर अपना दखल बिठा लिया। कुछ गांव उसे सिख सरदारों ने भी दिये। पटियाला के महाराज ने भी सिरसा तहसील मे सहादरा नाम का गॉव शहीद कर्मसिंह को दिया। इसने सरदार गुरबख्शसिंह और हरीसिंह आदि के साथ मिल कर अनेकों युद्धों मे अपनी बहादुरी का परिचय दिया। संवत १८२५ मे इसने खालसा जत्थों के साथ जलालाबाद लुहाणी के हाकिम पर चढ़ाई की क्योंकि उसमान हाकिम ने एक ब्राह्मण की स्त्री को जबरन घर मे डाल दिया था। कहा जाता है परगना रनखंडी और उसके इर्द-गिर्द का लगभग एक लाख सालाना की आमदनी का इसके अधिकार मे रहा था। संवत-१८५७ में इसका देहान्त हो गया।

इसके बाद शाहसिंह कर्मसिंह का लड़का गुलाबसिंह गद्दी पर बैठा। इसे मुरव्वतवाला और हौसलेमन्द आदमी कहा जाता है किन्तु सहारनपुर के जिले का सारा इलाका इसके ही जमाने मे हाथ से निकल गया था। करनाल तक अंग्रेजो की हकूमत आई देखकर इसने सम्वत् १८६२ ई० मे उनका आश्रय ग्रहण कर लिया।

सम्वत् १६०१ विक्रमी मे गुलाबसिंह का देहांत हो गया। इसका बेटा सरदार शिवकृपालसिंह उत्तराधिकारी हुआ। इसने सिख-अंग्रेज युद्ध और गदर में अंग्रेजो की पूरी सहायता की। जिसकी वजह से अंग्रेज इनसे खुश रहे और जागीर जब्त होने से बची रही। शिवकृपालसिंह जी के दूसरे भाई सरदार ठाकुरसिंह नि सन्तान ही मर गये। अत. जागीर पर कोई झगड़ा नहीं हुआ। शिवकृपालसिंह के लिये तारीख पटियाला के लेखक ने लिखा है यह बहुत ही शराबी था।

सम्वत् १६२८ वि० मे शिवकृपालसिंह का देहान्त होने पर उनके लड़के जीवनसिंह के हाथ जागीर की बागडोर आई। सरदार जीवनसिंह जी का विवाह महाराज महेन्द्रसिंह जी पटियाला की लड़की के साथ हुआ। जिसमें लगभग २० लाख रु० का दहेज उन्हे मिला। दस हजार रुप्या सालाना पटियाला से इनकी सरदारनी जी की पोशाको के लिए आजीवन आता रहा। इनकी खुद की आमदनी जागीर से करीब चालीस हजार रुपया सालाना थी। इनका विशेष विवरण हम शहीदों की मिसल में दे चुके हैं।

सरदार जीवनसिंह के दो पुत्र उत्पन्न हुये। रामसिंह और करतारसिंह। इनमे से सरदार रामसिंह जी पटियाला की सेना मे लेफ्टीनेन्ट कर्नल के पद पर सुशोभित हुए और अपने पिता के बाद जागीर के

भी मालिक हुये। आपके भाई सरदार करतारसिंह के जगजीतसिंह नामक पुत्र हैं जिनका कि जन्म सम्वत् १९७८ वि० मे हुआ है और आपके रनजीतसिंह और अजीतसिंह नाम दो सुपुत्र हैं जो क्रमशः सम्वत् १९७१ और १९७२ मे पैदा हुये हैं। सरदारजी स्वयं समझदार और जमाने की हवा के अनुकूल व्यक्ति थे।

यह जागीर भंगी मिसल का अवशेष है। सरदार हरीसिंहजी के बाद भगी सरदारों के कई दल होगये थे। इस जागीर का आरम्भिक इतिहास तो वही है जो हमने भंगी मिसल के वर्णन मे दे दिया है। हरीसिंह के तीन पुत्र थे। झण्डासिंह, गंडासिंह और नारदसिंह। पहले दोनों बेटे लड़ाइयों मे काम आये। मिसल की बागडोर नारदसिंह के लड़के देसासिंह के हाथ मे पहुच गई। क्योंकि झण्डासिंह के कोई पुत्र था नहीं और गंडासिंह का लड़का अमरसिंह भी मर चुका था। देसासिंह के गुलाबसिंह और कर्मसिंह दो पुत्र थे। जिनमे कर्मसिंह बहादुर होने के कारण मिसल का सरदार बना। इसकी बहादुरी के कारण मिसल के लोग इसे दूलाजी कहते थे। कर्मसिंह के एक लड़का जस्सासिंह और दो पौत्र फतहसिंह और जयमलसिंह थे। जिस समय कर्मसिंह मरा तो उसका पुत्र और पौत्र दोनों ही पास न थे अतः मिसल का अधिपति कर्मसिंह का बड़ा भाई गुलाबसिंह ही बन गया। गुलाबसिंह के जमाने मे भी इलाके पर बड़ी आपत्ति आई। अधीनस्थ सभी छोटे २ इलाके स्वतन्त्र हो गये। जो इलाका हरीसिंह के आगे बीसियों लाख का था। वह अब एक लाख का ही रह गया। अमृतसर शहर, कोहली, मजीठा और नौशहरा वगैरा इलाके ही रह गये। गुलाबसिंह बहुत ज्यादा शराबी थे। रामगढ़ियों की बात मे आकर इसने सम्वत् १८५६ ई० मे महाराजा रणजीतसिंह के विरुद्ध चढ़ाई भी की। जहाँ भसीन के क्षेत्र मे शराब के ही नशे मे मर गया।

पंजवड़ जागीर

इसके मरने के समय इसके लड़के गुरुदत्त की उम्र केवल दस साल की थी, कोहली भी हाथ से निकल गया। इधर मौका पाकर महाराजा रणजीतसिंहजी ने अमृतसर पर चढ़ाई करदी क्योंकि यही इनकी राजधानी था। गुरुदत्तसिंह की माँ सुखां लड़ी तो बहादुरी से किन्तु आखिर स्त्री ही तो थी किला छोड़कर रामगढ़ को मय अपने पुत्र गुरुदत्तसिंह के चली गयी। इस प्रकार सम्वत् १८६० मे इनके पास कोई रियासत नहीं रही। माई सुखा रामगढ़ के सरदार जोधसिंह के पास रहती रहीं और वहीं बैठकर अपने लड़के की शादी व्यवहार किये। जब गुरुदत्तसिंह सयाना हो गया तो इधर-उधर के लोगों के कहने से साहोवाल की जागीर महाराजा रणजीतसिंहजी ने इसे दे दी किन्तु गुरुदत्तसिंह से उसका भी प्रवन्ध नहीं हुआ। आखिर उसकी एवज मे नकद सहायता लेना स्वीकार करके गुरदत्तसिंह अपनी सुसराल मे जा बसा। जहाँ सम्वत् १८८४ वि० मे उसका देहांत हो गया।

गुरुदत्तसिंह के तीन लड़के थे। मूलसिंह, गंडासिंह और अजीतसिंह (नेत्र हीन)। गंडासिंह निः संतान ही मर गया। मूलसिंह और अजीतसिंह अपने पुराने गॉव पंजवड़ मे आ गये जहाँ कि इनकी पुरानी मालिकी थी। मूलसिंह के सम्वत् १८९९ में बसावासिंह नाम का लड़का हुआ। अजीतसिंह के दो लड़के हुये ठाकुरसिंह और हुकमसिंह।

ठाकुरसिंह और हुक्मसिंह दोनों ने ही अंग्रेज सरकार की मदद की। सम्वत् १९१४ के गदर में ये कमिश्नर की आज्ञा के अनुसार बागियों को दबाने के लिये मोरचों पर हाजिर रहे। इसके बाद भी जहाँ पर सरकार को जरूरत हुई। इन्होंने अपने को हाजिर किया। इससे सरकार ने इन दोनों भाइयों को सरदार बहादुर के खिताब और इनामात बख्शे। इनकी जागीर मे दो हजार बीघे से ऊपर जमीन पूर्वजों

संचय की हुई मे से थी। अपनी योग्यता से इन्होंने अपनी इज्जत और संपत्ति को बढ़ाया ही। सरदार ठाकुरसिंह के सम्वत् १६३० मे हरनामसिंह नाम के सुपुत्र पैदा हुये जो कि अपने पिता के उत्तराधिकारी हुये। हरनामसिंह जी के भी दो पुत्र हैं। औतारसिंह और कृपालसिंह जो कि क्रमशः सम्वत् १६६६ और १६७० विक्रमी मे पैदा हुए हैं।

सरदार हुकमसिह के पुत्र सरदार हरदत्तसिंह ने जो कि सम्वत् १६४२ मे पैदा हुए थे। अच्छी उन्नति की। सरकार ने उन्हे आनरेरी मजिस्ट्रेट भी वनाया।

सरदार हुकमसिंह जी के तीन पुत्र है। (१) सरदार गुरुवख्शसिंह जो सम्वत् १६५६ मे पैदा हुये हैं (२) सरदार शिवदेवसिंह का जन्म सम्वत् १६६१ वि०मे हुआ है और (३) सरदार गुरुदयालसिंह सम्वत् १६७३ मे जन्मे हैं।

कर्मसिंह दूला का लड़का जस्सासिंह चान्योट मे था। मिसल का अधिपति गुलावसिंह के वन जाने के कारण वह चान्योटके इलाके पर स्वतंत्र प्रभुत्व जमा वैठा और उस समय तक अधिकारी रहा जवतक कि महाराजा रणजीतसिंह जी ने उस पर अपना कव्जा न कर लिया। जस्सासिह के दो पुत्र थे। फतहसिंह और जयमलसिंह। महाराजा रणजीतसिह जी ने इनके गुजारे को थोड़ी सी जमीन छोड़ दी थी। अन्त में इनके युद्ध मे मारे जाने के कारण इनका इतिवृत भी समाप्त होगया।

इस भंगी मिसल के संस्थापक सरदार हरीसिंह जी के साथियों मे नत्थासिंह नाम का भी एक वहादुर जत्थेदार था। उसके ज्ञानसिंह, गूजरसिंह, निहालसिंह और आलासिंह नाम के चार पुत्र हुये। जिनमे गूजरसिंह वड़ा प्रतापी हुआ है। इसके साथ महाराजा रणजीतसिंह के पिता सरदार महासिंह ने अपनी वहिन राजकौर का विवाह करने मे अपने को सौभाग्यशाली समझा था और फिर गूजरसिंह की ताकत से महासिंह ने लाभ भी उठाया था। गूजरसिंह के पास सारा गुजरात और तिहाई लाहौर का राज्य था।

गूजरसिंह ने अपने समय मे वहुत सारा इलाका बढ़ाया। उसके राज्य की आमदनी तीस लाख सालाना तक पहुँच गई थी। महासिंह की लडाइयों मे जव भी जरूरत पड़ी। गूजरसिंह ने मदद दी। सन् १८७८ ई० मे गूजरसिंह का देहान्त हो गया। अपने पीछे उसने सुखासिंह, साहवसिंह और फतहसिंह नाम के तीन लड़के छोडे। इनमें साहवसिंह वड़ा ही योग्य और वहादुर आदमी था इसलिये वही अपने वाप के राज्य का अधिकारी हुआ। हालांकि गुजरात पर उसने अपने पिता की जिन्दगी मे ही कव्जा कर लिया था।

महाराजा रणजीतसिंह के साथ सरदार साहवसिंह को कई वार भिड़ना पडा। लाहौर फतह के वाद दूसरे ही वर्ष जव महाराजा रणजीतसिंह जी ने गुजरात पर चढ़ाई की तो साहवसिंह ने एक अच्छी रकम नजराने मे देकर उन्हे टरका दिया। अकालगढ़ के अधिपति दलसिंह से साहवसिंह की दोस्ती थी।

महाराजा रणजीतसिंह गुजरात से हटकर लाहौर पहुँचे और उनके पास दलसिंह की शिकायतें पहुँचीं। अत. उन्होंने दलसिंह को धोखे से लाहौर वुला कर कैद कर लिया और फिर आप फौज लेकर अकालगढ़ पर कव्जा करने के लिये चल पड़े किन्तु अकालगढ़ उन्हें सहज ही नहीं मिला। दलसिंह की सरदारनी धर्मकौर ने किले के फाटक वन्द करा के वुर्जों पर तोप चढ़ा दीं और वड़ी हिम्मत के साथ लड़ने लगीं। उधर साहवसिंह के पास मदद के लिये खवर भेजी। इस वात का पता लगते ही महाराजा रणजीतसिंह ने सरदार साहवसिंह पर ही चढ़ाई कर दी। अकालगढ़ का घेरा उठा लिया। साहवसिंह ने तीन दिन तक तो किले के वाहर वहादुरी के साथ सामना किया फिर किले में वैठकर कई दिन लड़ा। अंत में

वेदी साहबसिंह के बीच में पड़ने से समझौता हो गया और साहबसिंह ने अपने को मांडलिक स्वीकार कर लिया।

महाराजा रणजीतसिंह को गुजरात लेना था। वे कोई न कोई बहाना लेकर गुजरात पर चढ़ दौड़ते थे। सन १८१० में तो उन्होंने आखिर गुजरात को ले ही लिया। साहबसिंह ने भी लड़ने और बहादुरी दिखाने में कोई कसर नहीं रक्खी किन्तु इस समय रणजीतसिंह जी की जितनी ताकत बढ़ गई थी। उससे साहबसिंह कहाँ तक मुकाबिला करता। कहा जाता है गुजरात के किले में चालीस लाख नकद का खजाना साहबसिंह का था। उसे महाराज ने अपने काबू में कर लिया। अंत में रिश्तेदारी का कुछ खयाल करके उसके गुजारे के लिये भंगला का इलाका बाकी रहने दिये और सारे राज्य को जब्त कर लिया। इसके एक साल बाद ही साहबसिंह का रजगम में ही देहान्त हो गया। एक लड़का था गुलाबसिंह वह भी सन १८३२ ई० में इस संसार से कूच कर गया।

साहबसिंह का एक भाई फतहसिंह महाराजा रणजीतसिंह की फौजों मे सेना-नायक होगया। सन् १८३२ ई० में उसका भी देहान्त हो गया। इसके बाद उसका लड़का जयमलसिंह पंजवाड़ में ही आ गया। जहाँ कि उनकी जन्मभूमि थी। वहाँ १८७१ ई० में उनका देहान्त हो गया। जयमलसिंह के लडके जवाहरसिंह के चार लड़के हुये। मिहांसिंह, हीरासिंह, बुद्धसिंह और जसवंतसिंह। इनमें मिहांसिंह के दो लड़के तेजासिंह और जन्मेजयसिंह हुये। इनमें तेजासिंह के पुत्र चेतसिंह मौजूद हैं। हीरासिंह के बेटे मोतासिंह के चार पुत्रों में से कृपालसिंह और अतरसिंह दो मौजूद हैं। बुद्धासिंह के पुत्र नाथासिंह का सन १९०१ ई में देहान्त हो गया। जसवन्तसिंह के पुत्र औतारसिंह के तीन पुत्र गुरुचरनसिंह, जावन्दसिंह और अजीतसिंह मौजूद हैं।

प्रतापी सरदार गूजरसिंह के एक भाई ज्ञानसिंह के परिवार का वर्णन अभी शेष है। लाहौर में जो तीसरा हिस्सा सरदार गूजरसिंह का था। उसके प्रबन्धक ज्ञानसिंह के पुत्र चेतसिंह ही थे। लाहौर पर कब्जा करने के लिये जब महाराजा रणजीतसिंह ने चढ़ाई की तो दो साझीदार तो अपनी जान बचाकर भाग गये। किन्तु चेतसिंह कई दिन तक लड़ता रहा। आखिरकार उसे किला खाली करना पड़ा। क्योंकि सेना के लोग भी फूटकर रणजीतसिंह जी से मिल गये। महाराज ने चेतसिंह के गुजारे के लिये केवल दो गाँव दिये। आगे चेतसिंह के लड़के रामसिंह को फौज में स्थान दे दिया और उसकी मदद से खुश होकर उसे इनाम भी दिये। सन् १८८८ में सरदार रामसिंह का देहान्त हो गया। उसके चार लड़के थे। प्रताप सिंह, महताबसिंह, वीरसिंह और चन्दासिंह जिनका कि रामसिंह खुद से भी पहले देहान्त होगया था। इन चारों में महताबसिंह के दो लड़के बूटासिंह और मूलासिंह हुये। बूटासिंह के लड़के का नाम उजागरसिंह है।

बस पंजवाड़ भंगी घराने का यही संक्षिप्त इतिहास है।

सिखों की मिसलों में रामगढ़ियों की मिसल भी बड़ी प्रतापशाली थी।[१] उसका वर्णन हम मिसलों वाले अध्याय में कर चुके हैं। अतः यहाँ उतना ही करेंगे। जितने से कि जागीरी इतिहास से सम्बन्ध है। सरदार जस्सासिंह पाँच भाई थे। जिनमें जैसिंह जी के कोई पुत्र नहीं हुआ। मानसिंह की पीढ़ियों का सिलसिला उसके बेटे वरियामसिंह पर टूट गया। खुशालसिंह के तीन लड़के महताबसिंह, शिवसिंह और गुलाबसिंह हुये। इनका भी सिलसिला

रामगढ़ियों की जागीरें

१ यह मिसल तिरखान अर्थात् बढ़ई लोगों की है।

यहाँ से आगे नहीं मिलता। आगे सरदार जस्सासिंह और तारासिंह की पीढ़ियों का सिलसिला बाकायदा चला है। इन्हीं के वंशजों के पास जागीरें हैं।

सरदार जस्सासिंह रामगढ़िया के दो पुत्र हुये। जोधसिंह और वीरसिंह। जोधसिंह बड़ा बहादुर आदमी था। किन्तु सन् १८१६ ई० मे वह नि सन्तान मर गया। इसके समय मे ही इसके चचेरे भाई दीवानसिंह ने जोकि तारासिंह का लड़का था। इससे जागीर का बटवारा कर लिया।

जोधसिंह के बाद उसका भाई वीरसिंह उत्तराधिकारी हुआ। जो अपने भाई से केवल दस वर्ष बाद ही सन् १८२६ ई० मे इस संसार से चल बसा।

वीरसिंह के दो लड़के थे। जयमलसिंह और मोहरसिंह[1]। जोधसिंह के मर जानेके कारण महाराजा रणजीतसिंह जी ने वीरसिंह, महताबसिंह और दीवानसिंह के लिये ३५ हजार की जागीर छोड़कर सारा इलाका जब्त कर लिया। इसमें से वीरसिंह के पुत्रों के हिस्से मे लगभग दस हजार का इलाका आना था। मोहरसिंह के लड़के का नाम शोभासिंह था। सन् १८४५ ई०में शोभासिंह और सन् १८४८ मे जयमलसिंह का देहान्त होगया। जयमलसिंह ने तीन और शोभासिंह ने एक लड़का छोड़ा।

जयमलसिंह के तीन लड़कों के नाम—उत्तमसिंह, फतहसिंह और ज्वालासिंह थे। इनमे फतहसिंह निःसन्तान मरे और ज्वालासिंह के मगहरसिंह हुये। उत्तमसिंह जी के सुपुत्र धातासिंह थे। जिनके पास ५०००) सालाना की जागीर होने का उल्लेख 'राज खालसा' के लेखक ज्ञानी ज्ञानसिंह जी ने किया है। धातासिंह के गाजूसिंह और छाजूसिंह दो पुत्र हुये।

शोभासिंह जी के पुत्र अतरसिंह या अच्छरसिंह जी के पास श्री हरिगोविन्दपुर मे ६००) सालाना की जागीर थी। उनका सन् १८८० ई० मे देहान्त हो गया। उनके गंगासिंह, तिरखूसिंह, तिरभंगासिंह और कादिरसिंह नाम के चार लडके हुये। जिनमे तिरखूसिह जी के नाथासिह नाम का एक ही पुत्र हुआ है। तिरभगासिंह जिनका कि सन् १६०० मे देहान्त भी होगया है। उनके तीन लड़के सन् १८५८ में धूलासिह, सन् १८६१ मे ठाकुरसिंह और सन् १८६५ में चत्तरसिह पैदा हुये। कादिरसिंह के सन् १८६४ मे विशाखासिंह नाम के पुत्र हुये। गंगासिंह के दीवानसिह का जन्म १८४५ ई० मे हुआ। हीरासिह १८८२ मे मर गये। सुन्दरसिंह (जन्म १८६६) और अर्जुनसिंह (जन्म १८६६ ई०) नाम के चार पुत्र हुये। सुन्दरसिंह जी के लड़के जगजीतसिंह हैं। जिनका कि सन् १८८७ में जन्म हुआ था।

सरदार जस्सासिंह जी के भाई तारासिंह जी के पुत्र सरदार दीवानसिंह बडी जिद के और निडर आदमी थे। जब महाराजा रणजीतसिंह जी ने उनका सारा इलाका जब्त करके तीनों भाईयों को केवल पैंतीस हजार का इलाका दिया तो आपने फौरन लेने से इन्कार कर दिया और पटियाला चले गये। अंत में महाराजा रणजीतसिंह जी ने इन्हें देसासिंह मजीठिया की मारफत बुलवा लिया और बारमूला की लड़ाई मे भेज दिया। जहाँ वह मारे गये।

दीवानसिंहजी के पुत्र सरदार मंगलसिंह महाराजा रणजीतसिंह जी की फौज मे सवारों के अफसर मुकर्रिर हुये जहाँ उन्होंने बड़ी बहादुरी दिखाई। कोट कालूवाला, बतरा, कडोला की जागीर प्राप्त की।

सिख राज्य की डांवांडोल स्थिति को देखकर यह अंग्रेजों के खैरख्वाह होगये। जोधसिंह के

१. सर लेपिलग्रिफिन ने "चीफ्स एण्ड फैमली आफ नोट" में मोहरसिंह को अंकित नहीं किया। शोभासिंह को लिख दिया है,। जिसको राज खालसा का लेखक मोहरसिंह का लडका मानता है।

बाद यह अमृतसर गुरुद्वारे के मैनेजर भी बने। अंग्रेजी सरकार ने इन्हें आनरेरी मजिस्ट्रेट और सितारे-हिन्द का खिताब भी दिया था। सन् १८७६ में इनका देहान्त होगया।

इन्होंने अपने पीछे तीन पुत्र छोड़े। (१) सरदार गुरुदत्तसिंह (२) सुचेतसिंह (३) शेरसिंह। गुरुदत्तसिंह ने अवध की लड़ाई में अंग्रेज सेना में भरती होकर सरकार की मदद की। अन्तिम दिनों में १२००) सालाना की पेन्शन लेकर आप अमृतसर में रहने लगे। आपके दोनों छोटे भाइयों का जोकि सरकारी ओहदो पर अच्छा नाम पा चुके थे। आपसे पहले ही देहान्त हो गया था। आपका देहान्त सन १६०० में होगया। गुरुदत्तसिंहके एक पुत्र सरदारसिंह थे। वे आपसे बहुत पहले १८६२ में फौत हो चुके थे।

सुचेतसिंह जी के पुत्र बिशनसिंह जिनका कि जन्म १८६८ में हुआ था। काफी योग्य निकले। पुलिस मे उन्होंने डिपुटीगिरी की और फिर आनरेरी मजिस्ट्रेटी। उनकी सेवाओं के बदले में सरकार ने उन्हें 'सरदार' का खिताब दिया। आपके चार पुत्र हुये हैं। (१) नारायनसिंह (२) त्रिलोचनसिंह (३) रिपुदमनसिंह और (४) करतारसिंह। जिनमे नारायणसिंह जी का सन् १६२० मे देहान्त हो चुका है। शेष तीनों की उम्र इस सन् १६५३ में क्रमश: ५०, ४६ और ३६ साल की है।

शेरसिंह जी के सन्तसिंह और सुन्दरसिंह नाम के दो पुत्र हुये। जिनमें से सन्तसिंह जी का सन् १८६४ में देहान्त होगया और सुन्दरसिंह जी का सन १६२६ ई० में। सुन्दरसिंह जी ने अपने समय में तरक्की की। फर्स्टक्लास के आनरेरी मजिस्ट्रेट भी रहे। आपके दो लड़के नरेन्द्रसिंह और महेन्द्रसिंह हैं जोकि क्रमशः सन् १६१४, १५ में पैदा हुये है।

इस खान्दान के पास तीन हजार सालाना आमदनी की जागीर सरकार की ओर से है। अमृतसर में इनके मकानात और दीगर सम्पत्ति है। प्राय: यहीं पर रहते भी हैं।

जालंधर जिले में वल्लोकी एक गॉव है। डल्लेवाली मिसल का नेतृत्व जब तारासिंह के हाथ में आगया, तो उसने मिसल डल्लेवाली को बड़ी तरक्की दी। उसने वद्धोवाल, धर्मकोट और घेगराना को जीत कर राहूँ को अपना सदर मुक़ाम बनाया। तारासिंह की बहादुरियों का पूरा हाल डल्लेवाली मिसल के इतिहास मे दिया जा चुका है।

वल्लोकी जागीर

तारासिंह के तीन लड़के हुये थे। गूजरसिंह, दसौंधासिंह और झंडासिंह, तारासिंह के सन् १८०७ ई० में मर जाने से पहले ही इन तीनों ने अपने २ लिये कुछ इलाके बाँट लिये। घुगराना और धर्मकोट पर गूजरसिंह ने कब्जा कर लिया। दक्षिणी वद्धोवाल दसौंधासिंह के अधिकार में रहा। निकोदर, मांभपुर, और वल्लोकी झंडासिंह के अधिकार मे आये। लगभग पॉच लाख का इलाका महाराजा रणजीतसिंह ने जब्त कर लिया। यह वही इलाका था जो कभी तारासिंह के ही कब्जे मे था। यह घटना सन् १८०७ ई० की है। दसौंधासिंह ने किला दक्षिणी को भी छीन लिया था। सन् १८०८ में महाराजा रणजीतसिंह जी ने दसौंधासिंह और गूजरसिंह से घुघराना और वद्धोवाल के इलाके भी छीन कर गुरदित्ता डल्लेवाला को दे दिये। यहॉ यह न भूल जाना चाहिये कि तारासिंह और साहबसिंह के खान्दान एक ही नहीं थे। हां, मिसल एक ही थी। जो साहबसिंह के बाद तारासिंह के हाथ चली गई थी। दसौंधासिंहने बहुत विरोध किया। पर कुछ वश न चलने पर वह इसी रंज मे अपने ससुराल मे नि:संतान मर गया। गूजरसिंह और झंडासिंह को वल्लोकी गॉवों मे आधा मिल गया।

गूजरसिंह के जगतसिंह नाम का लड़का हुआ। जो अपनी निर्मित जागीर मे संतोष से गुजर करता रहा। किन्तु उसके भाग्य मे यह बदा था कि उनके पुत्र लहनासिंह और खजानसिंह दोनों मे से एक

भी नहीं वचा। इस प्रकार गूजरसिंह का भाग भी उनके भाई झंडासिंह के लड़कों के पास चला गया। सरदार झंडासिंह के भी दो पुत्र थे। सरदार नाहरसिंह और सरदार वख्तावरसिंह। सरदारनी रतनकौर जोकि इनकी दादी होती थी और जिसको महाराजा रणजीतसिंह जी की ओर से १८००) माहवार पेन्शन मिलती थी। जव मरगई तो २००) मासिक पेन्शन सरदार नाहरसिंह को मिलती रही। इन दोनों भाइयों का क्रमश. सन १८७२ और सन् १८७३ ई० मे स्वर्गवास हो गया। नाहरसिंह जी के पुत्र का नाम सरदार अमरसिंह था। उनका भी सन् १६०४ ई० मे देहान्त हो चुका है। यही क्यों सरदार अमरसिंह के पुत्र ठाकुरसिंह भी सन् १६०७ ई० मे स्वर्गवासी हो गये। जागीर का प्रवन्ध उनकी सरदारनी की देखरेख मे है।

होशियारपुर जिले मे वावा कलाधारी जी के वंशजों की यह जागीर है। वावा साहव के पॉच पुत्रों मे से जयसिंह जी के सुपुत्र साहवसिंह जी वड़े योग्य हुये हैं। इन्होंने महाराजा रणजीतसिंह और भंगी मिसल के दरम्यान अपने प्रभाव से कई वार समझौता करवाया था।

ऊना

साहवसिंह जी वेदी लड़ने-भिडने में भी काफी चतुर थे। दसौधासिंह से किला दक्खिनी को आपने संवत् १८६४ वि० यानी सन् १८०७ ई० मे छिना कर अपने कव्जे मे कर लिया था। सिख-धर्म का प्रचार भी यह वडे प्रेम से करते थे। वहुत सारा इलाका अधिकार में करके इन्होने ऊना को अपनी राजधानी वनाया। आपका लंगर आठों पहर चलता था। संवत् १८६१ मे आपका देहान्त हो गया। वावा साहवसिंह जी के विशनसिंह और विक्रमसिंह जी दोनों पुत्र वड़े प्रसिद्ध हुये हैं। सरदार तारासिंह जी की सिंहिनी के पास महाराजा रणजीत-सिंह जी के दिये हुये जो गॉव थे वह विक्रमसिंह जी के समय मे उनके ही पास आ गये। इस तरह से वेदी वावाओं के पास काफी इलाका वढ़ गया था। पर जव कि महाराजा रणजीतसिंह जी का साम्राज्य समाप्त हो गया। अंग्रेजो ने संवत् १६०५ मे सारी जागीर जव्त करली। कुछ ऊना ही में इनके खर्चे के लिये रहने दी। संवत् १६२० वि० मे वावा विक्रमसिंह जी का स्वर्गवास हो गया।

आप के दो सुपुत्र थे। एक सूरजसिंह जिनका कि आप से केवल एक वर्ष वाद ही देहावसान हो गया। दूसरे सुजानसिंह। सरकार की ओर से वावा सुजानसिंह जी को सरदार साहव का खिताव भी मिला था। संवत् १६७७ मे सरदार साहव वेदी सुजानसिंह जी का भी परलोकवास हो गया। रामकिशनसिंह, मनमोहनसिंह और शिवदेवसिंह नाम के आप के तीन सुपुत्र हुये थे। जिन मे शिवदेवसिंह जी का आप के सामने ही देहान्त हो गया। वाकी दोनों पुत्रो ने ऊँची शिक्षा प्राप्त की और रामकिशन-सिंह जी आनरेरी मजिस्ट्रेट तथा मनमोहनसिंह सव-रजिस्ट्रार के पद पर नियुक्त होने का लाभ उठा चुके हैं।

सांवलसिंह और देवेन्द्रसिंह नाम के दो पुत्र वेदी रामकिशनसिंह जी साहव के हुये हैं, जिनमे सॉवलसिंह जी का संवत् १६७५ मे देहान्त हो चुका है। देवेन्द्रसिंह जी के—जिनका कि संवत् १६६१ मे हुआ है—मदनसिंह नाम का एक पुत्र संवत् १६७६ हो चुका है।

ये सव लोग जो कि वेदी विक्रमसिंह जी के वंशज हैं, ऊना मे रहते हैं। ऊने मे जो श्री गुरु हरिगोविन्द साहव का पवित्र स्थान दमदमा साहव है। उसका प्रवन्ध इन वेदी साहवान के ही हाथ में है।

वावा विशनसिंह जी वेदी के वंशज कल्लर जिला रावलपिंडी में रहते हैं। वावा विशनसिंह के पुत्र अतरसिंह जी हुये और उनके पुत्र खेमसिंह जी हुये जिन्हें कि सरकार की ओर से 'सर' का खिताव

भी दिया गया। और उनके पुत्र वावा गुरुवख्शसिंह जी को 'सर' के सिवा राजा साहव का,,भी खिताव मिला। संवत् १८५४ में आप के टिक्का सुरेन्द्रसिंह जी का जन्म हुआ है।

सिख लोगों मे वेदी खान्दान के प्रति अत्यधिक श्रद्धा है।

यह जागीर भी भाई भगतू के वंशजों की वसाई हुई है। कैथल के वर्णन मे भाई भगतू का जिक्र आ चुका है। सिद्धू वंश मे यह एक प्रसिद्ध धार्मिक पुरुष हुये हैं। भाई भगतू के एक पुत्र चौधरी गौरा थे और गौरा के चौधरी दयालसिंह उत्पन्न हुये। चौधरी दयालसिंह के सरदार

अरनौली

गुरुवख्शसिंह जी उत्पन्न हुये। जिनका १७५० ईस्वी मे देहान्त हो गया। सरदार गुरुवख्शसिंह जी के छ. पुत्र हुये। बुद्धासिंह, दानसिंह गुरुदासर्सिह, देसूसिंह तख्तसिंह और सुखासिंह।

अरनोली का खान्दान भाई सुखासिंह जी से चलता है। जिनके गुरुदत्तसिंह और विसावासिंह नामक दो पुत्र हुये। इनमे से गुरुदत्तसिंह लावल्द मर गये थे।

विसावासिंह शाति से अपने इलाके मे दिन विताते रहे, उनके पाँच पुत्र हुये। वहादुरसिंह, पंजाव सिंह, गुलावसिंह, काहनसिंह और संगतसिंह। इनमे से तीन नि संतान मर गये। सन्तान गुलावसिंह और संगतसिह के ही हुई। विसाखासिंह का सन् १८२३ ई० में देहान्त हो गया।

धनासिह के लड़के कर्मसिह के मरने पर उनकी स्त्री भागभरी उसके हिस्से की मालिक वनीं। उसके निस्सतान मरने पर उसके इलाके ककराले पर कैथल के रईस लालसिंह का अधिकार हो गया। किन्तु लालसिंह के वाद गुलावसिंह और संगतसिह दोनों उस पर अपना-अपना अधिकार बता कर अंग्रेज सरकार की अदालतो मे मुकदमा लड़े। इस मुकदमे का असर यह हुआ कि इनकी स्थिति कैथल जैसी अर्थात् राज्य जैसी न रह कर जागीरदारों जैसी हो गई। फैसले मे इन्हे सव इलाका वाट दिया गया।

सतलज की लड़ाई के वाद अंग्रेजों ने कैथलिया राज्य और इनके वहुत हिस्सों को अपने राज्य म मिला लिया। सन् १८४५ ई० गुलावसिंह और १८४६ मे मगतसिंह का देहान्त हो गया। गुलावसिंह ने जसमीरसिंह और नौनिहालसिंह नाम के दो लड़के छोड़े थे। जिनमें से नौनिहालसिंह का सन् १८६१ म निसतान ही देहान्त हो गया। अत अपने वाप का कुल इलाका भाई जसमीरसिंह के ही हाथ आया। सन् १८६७ ई० में भाई जसमीरसिंह का भी देहान्त हो गया। उन्होंने भी दो ही लड़के अपने पीछे छोड़े। जिनमें से रनजीतसिंह का सन् १६१२ मे ही देहान्त हो गया। वड़े लड़के शमशेरसिंह अपने पीछे केवल चार वर्ष के वालक शुभशेरसिह को छोड़ कर सन् १६१८ मे चल वसे। इस यही शुभशेरसिंह अरनोली जागीर के मालिक है।

भाई सगतसिंह के लड़के अनोखासिंह हुये जिनका सन् १८६४ मे देहान्त हो गया। उनसे १८ वर्ष वाद उनके लड़के जवरजगसिंह का भी सन् १६१८ मे देहान्त हो गया।

भाई जवरजगसिंह जी ने अपने पीछे फतहजगसिंह और शेरजंगसिंह दो लड़के छोडे। जिनके कि जन्म क्रमश. सन् १६०६ और सन् १६१३ ई० मे हुए है। जो कि अपने हिस्से के इलाके सिद्धू वाल पर काविज है।

समय की गति विचित्र है। कैथल जो किसी समय एक राज्य कहलाता था और वह भी नाभा जीन्द और फरीदकोट की तरह एक शक्ति रखता था। एक वड़ी-सी जागीर भी न रहा। वस अरनोली और सिद्धूवाल उसके पुराने वैभव को याद कराने वाले अवशेप अवश्य मौजूद रहे!

भाई भगतू के पुण्यप्रताप और गुरुओं के आशीर्वाद का जो वृक्ष इतना फला फूला था। वह चाहे नहीं रहा किन्तु भाई भगतू सदैव अमर रहेंगे। आज भी सिख उनका नाम याद करने में गौरवान्वित होते हैं। और आज केवल इसीलिये कि अरनोली और सिद्धूवाल के रईस भाई भगतू के वंशज हैं। उन्हें 'भाई' जैसे प्यारे और गुरुओं के दिये हुये नाम से पुकारते हैं।

आनन्दपुर सिखों का महान तीर्थ है। इसका वर्णन तो आगे के पृष्ठों में करेंगे। यहाँ तो केवल जागीर सम्बन्धी ही उल्लेख करना है। लगभग १६०) सालाना आमदनी की जमीन चन्दपुर, बुरज, चीकुना, मेहदड़ी आदि में आनन्दपुर जागीर से लगी हुई है। खालसा राज्य के समय की ६००) सालाना की जागीर सादू और मुखेडा गाँवों में है। आनन्दपुर की गद्दी सोढ़ियों के हाथ में है।

आनन्दपुर

श्री गुरु हरिगोविन्द जी साहब के साहबजादे सूरजमल जी के वंशज इस गद्दी के मालिक हैं। सूरजमल जी के पुत्र दीपचन्द जी हुये और उनके श्यामसिंह जी। श्यामसिंह जहाँ धार्मिक पुरुष थे। बहादुर भी पूरे थे। यह ठीक है कि सूरजमल जी का गुरुआई पाने के लिये प्रयत्न करते समय रुख अच्छा नहीं रहा था। किन्तु उनके पोते श्यामसिंह जी ने श्री गुरु गोविन्दसिंह जी साहब से अमृत चखकर पिछली भेद-भित्ति को गिरा दिया था। अमृत चखाकर गुरु गोविन्दसिंह जी साहब ने श्यामसिंह जी को एक खडा दिया था। जो इस समय भी आनन्दपुर में सुरक्षित है।

मिसलों के समय में सोढ़ियों के पास कई बार इलाके बढ़ भी गये थे। किन्तु परिवर्तनो के साथ उनके इलाकों में भी परिवर्तन होता रहा। इस गद्दी के अधिकारियों ने कभी इस ओर खास तौर से ध्यान भी नहीं दिया।

श्यामसिंह जी के सात पुत्र हुये। (१) इन्द्रसिंह (२) नाहरसिंह (३) उदैसिंह (४) खेमसिंह (५) प्रेमसिंह (६) धीरसिंह और (७) जवाहरसिंह। इनमें मुख्यतौर से तीन का वंश बढ़ा। इन्द्रसिंह और जवाहरसिंह के कोई संतान नहीं हुई। प्रेमसिंह के एक पुत्र शेरसिंह के बाद यह शृंखला टूट गई।

इस समय आनन्दपुर के जो सरदार समझे जाते हैं। वे नाहरसिंह जी साहब के वंशज हैं। नाहरसिंह जी का सन् १७६५ ई० में स्वर्गारोहण हो गया। उनके दो पुत्र थे। सुरजनसिंह और जयसिंह। दोनों भाइयों का परिवार खूब फला फूला। सुरजनसिंह जी का सन् १८१५ ई० में देहान्त हो गया। उनके तीन लड़के हुये। (१) तिलोकसिंह (२) दीदारसिंह (३) दीवानसिंह। तिलोकसिंह और दीवानसिंह निःसंतान ही क्रमशः सन् १८२४ और १८३६ में चल बसे। दीवानसिंह के भी जिनका कि देहान्त सन् १८५० ई० में होगया। तीन लड़के हुये थे। जिनमें तीसरे लड़के गजेन्द्रसिंह की शृंखला उसके लड़के गुरुबचनसिंह पर सन् १६१२ ई० में समाप्त होगई। दूसरे लड़के नरेन्द्रसिंह जी का परिवार खूब बढ़ा। उनके तो एक ही पुत्र मोतीसिंह हुये। किन्तु मोतीसिंह जी के हरकिशनसिंह, प्रीतमसिंह और हरवंशसिंह नामके तीन लड़के हुये। जिनमें से प्रीतमसिंह के तीन लड़के हैं। (१) महेन्द्रसिंह (२) त्रिलोचनसिंह और (३) जंगबहादुरसिंह उनके नाम हैं। वे क्रमश १६१६, १६१६ और १६२२ ई० में पैदा हुए हैं।

दीवानसिंह जी के ज्येष्ठ पुत्र व्रजेन्द्रसिंह के दो लड़के हरनामसिंह और रामनारायनसिंह नाम के हुये। जिनमें से हरनारायनसिंह जी सन् १८८६ में निःसंतान ही प्रस्थान कर गये। सोढ़ी रामनारायनसिंह जी के औतारसिंह, जगतारसिंह, और करतार हुये। इनमें से औतारसिंह जी का सन १६११ में देहान्त हो चुका है। सोढी जगतारसिंह जी ही जोकि सन् १६०२ ई० में पैदा हुये हैं। इस समय आनन्दपुर की गद्दी

के मालिक हैं। आपके जगजीतसिंह और हरजीतसिंह नाम के दो सुपुत्र क्रमशः सन १६२२ और १६२४ ई० मे पैदा हो चुके हैं।

सोढ़ी जगजीतसिंह जी साहब के सम्बन्ध में कहा जाता है। वे मिलनसार रहमदिल बड़े समझदार आदमी है। बच्चों की शिक्षा की ओर आपका ध्यान है और धार्मिक सत्संग और चर्चा मे रुचि।

कलासवजवा और कलासवाला दोनों के पुरुषा और गोत एक ही हैं। चौधरी कलास जिनका कि गोत बजवा था। उनके दो पुत्र थे। एक आमीशाह और दूसरा पत्ती। कलासवजवा के सरदार पत्ती की संतान के है और कलासवाला के अमीशाह की संतान के। चौधरी कलास ने दो गॉव बसाये। कलासवजवा और कलासवाला। अमीशाह की सन्तान के पास कलासवाला ही रहा। भंगी सरदारों की चढ़ती के दिनों मे अमीशाह की छठी पीढ़ी मे पैदा होने वाले सरदार खुशहालसिंह ने भंगियों के साथ मिलकर अपना जौहर दिखाना आरम्भ किया। कुछ गॉवों पर अधिकार भी किया। किन्तु इधर महाराजा रणजीतसिंह जी के प्रभाव के बढ़ने से कुछ अधिक न कर सका। सन् १८३३ ई० मे खुशहालसिंह का देहान्त हो गया। उनके बेटे सरदार गुलाबसिंह और दूलासिंह मे से दूलासिंह के ६ लड़के हुये। जिनका कि परिवार काफी फला फूला। इस समय इस जागीर के मालिक सरदार गुरुदयालसिंह जी है। जिनका कि जन्म सन् १६०० ई० मे हुआ है।

कलासवाला

सिन्धानवालिये भी उसी वंश के है। जिनके कि महाराजा रणजीतसिंह जी थे। चौधरी बुद्धासिंह और नौधासिंह दो पुत्र थे। महाराजा रणजीतसिंह जी नौधासिंह के प्रपौत्र अर्थात् पोते महासिंह के पुत्र इस प्रकार चन्दासिंह रिस्ते मे महाराजा रणजीतसिंह जी के दादा चड़तसिंह जी के चाचा होते थे और यदि हम इसी प्रकार रिस्ते का हिसाब लगावे तो इस खान्दान के प्रसिद्ध रईस आनरेबुल लेफ्टीनेन्ट सरदार रघुबीरसिंह जी ओ० बी० ई० महाराजा रणजीतसिंह जी के नजदीकी प्रपौत्र साबित होते हैं।

सिंधान वाला

इस खान्दान का आरम्भिक वर्णन मिसल सुकरचकिया के इतिहास मे लिख दिया गया है। अत' उसे दुहाराना आवश्यक नहीं समझते।

चन्दासिंह और नौधासिंह दोनों ही भाई बड़े बहादुर और साहसी थे। इन्होंने संवत्त १७८१ में रसूल नगर पर कब्जा कर लिया और उसका नाम रामगढ़ रख दिया। किन्तु रामगढ़ में बहुत दिन तक ठहर न सके। क्योंकि मजीठे के गिल चौधरी लाहौर के हाकिम के तरफदार थे। इसलिये चन्दासिंह और नौधसिंह को गुजरानवाले की तरफ चला जाना पड़ा, जहॉ उन्होंने सुकरचक को आबाद किया और जिसके नाम पर ही उनका जत्था भी सुकर चकिया नाम से मशहूर हुआ। सम्वत् १७६३ मे मजीठा के पास ही पठानों से मुकाबिला करते हुये सरदार नौधासिंह मय अपने पिता बुद्धासिंह के मारे गये। सरदार चन्दासिंह ने अपने भतीजे चड़तसिंह की उसी प्रकार देख भाल रक्खी और उसे तरक्की दी। जिस प्रकार कि कोई भी पिता अपने पुत्र की देखभाल कर सकता है। अथवा तरक्की दे सकता है। चड़तसिंह का जन्म सवत १७७० मे हुआ। वह भी इस समय सयाना था। अपने चाचा की देखभाल में थोड़े ही दिनों में वह एक योग्य योद्धा होगया। चन्दासिंह और दीदारसिंह नाम के दो पुत्र हुये।

चड़तसिंह ने थोड़े ही दिनों में गुजरानवाला स्यालकोट और लाहौर तक अपना अधिकार कर लिया। तब दीदारसिंह और उनके पुत्र भी अमृतसर के आसपास के इलाके के रईस हो गये। किन्तु यह इलाका उनके पास उनके खर्चों के लिये था। कायदे से कोई बटवारा नहीं हुआ था। संवत् १८४१ मे

दीदारसिंह का देहान्त हो गया।

अपने पीछे दीदारसिंह ने चार पुत्र छोड़े थे। अमीरसिंह, रतनसिंह, गुरमुखसिंह और गुरुवख्श-सिंह। इनमे से गुरुवख्शसिंह सरदार महाराजसिंह के दल मे शत्रुओं से लड़ते हुये नि.संतान मारा गया। शेष तीन की औलाद मे आज सैकड़ों आदमी इस खान्दान मे मौजूद हैं। ये सभी महासिंह और रणजीतसिंह जी के साथ वरावर युद्धों मे शामिल रहे।

हमीरसिंह जी का सम्वत् १८८४ में स्वर्गवास हो गया ! उन्होंने अपने पीछे पॉच पुत्र छोडे। लहना सिंह, विसावासिंह, वुद्धासिंह, अतरसिंह और जयमलसिंह। इनमे से वुद्धासिंहजी का देहान्त भी इसी वर्ष हो गया जिस वर्ष कि उनके पिता का।

वुद्धासिंह जी के पुत्र शमशेरसिंह जी ने अपनी आंखों से सिख साम्राज्य का उत्थान और पतन दोनों देखे और उसमें वे हरेक खुराफात से दूर रहते हुये भी अवलोकन करते रहे। फिर भी उन्होंने उस साम्राज्य को वनाने मे जैसे कोई विशेष भाग नहीं लिया। उसी प्रकार विगाड़ने में भी नहीं। क्योंकि सर-दार शमशेरसिंह जी के कोई सन्तान नहीं थी। अत सरदार लहनासिंहजी के खान्दान मे से सरदार वख्शी-सिंह जी गोद लिये। संवत् १६२८ वि० मे सरदार शमशेरसिंह जी का देहान्त हो गया।

वख्शीसिंह का भी अपने पिता के ३६ वर्ष वाद सम्वत् १६६४ वि० मे देहान्त हो गया। सरदार रघुवीरसिंह जी साहव जिनका कि जन्म १६४६ मे हुआ। उनके उत्तराधिकारी हैं। जर्मन युद्ध के समय उन्होंने सरकार को जन-धन से खूव मदद दी। उन्हे आनरेरी लेफ्टिनेन्ट और ओ० वी० ई० के खिताव सरकार ने सेवाओं से खुश होकर दिये हैं। फर्स्टक्लास आनरेरी मजिस्ट्रेट भी रहे हैं।

सूवे की कौंसिल के कई वार मेम्वर रह चुके हैं। उनके पास जागीर और जमीदारी से कई हजार रुपये साल की आमदनी है। उनके पास यू० पी० में एक अच्छा उपजाऊ भू-भाग है। धार्मिक और सामा-जिक कामों मे खूव दिल खोलकर भाग लेते हैं और सहायता करते है। सन् १६३४ ई० मे आप अखिल भारतीय जाट महासभा के अलीगढ़ महोत्सव के प्रेजीडेण्ट भी रह चुके हैं। सीकर के जाट किसान आन्दोलन के साथ आपने गहरी दिलचस्पी जाहिर की थी। उनकी नई दिल्ली में भी एक आलीशान कोठी है।

सिन्धानवालियों के इतिहास का एक ऐसा भी पहलू है। जिसे कौतूहलवर्द्धक, अनुत्तरदायित्वपन से किया हुआ और विवेकहीनता के नाम से पुकार सकते हैं। हालाकि उन्हे वह सव कुछ परि-स्थिति से मजवूर होकर ही करना पड़ा था किन्तु जो भी कुछ किया गया वह गम्भीरता और सहृदयता और विवेक के साथ नहीं हुआ, यह कहना ही पड़ेगा।

महाराजा रणजीतसिंह जी के वाद जो अंधेरगिर्दी लाहौर में हुई वैसी तो शायद मुगल साम्राज्य के अंतिम दिनों मे नहीं हुई थी। महाराजा रणजीतसिंह जी अपनी उदारता और सीमा के वाहर की निष्पक्षता से कुछ ऐसे व्यक्तियों को ऊँचा चढ़ा गये थे। जो सार्वजनिक और राजवंश के हित की अपेक्षा अपने निज के हित और स्वार्थों के लिए सर्वस्व नष्ट करने और उचित अनुचित का विचार विना किये वुरा भला सव कुछ करने को तैयार रहते थे। इसके अलावा उनके उत्तराधिकारी भी उतने दवग नीति-निपुण और ऊँचे हौसले के नहीं निकले जो इन समस्त प्रपंचियों पर कावू करके इतने वड़े शासन को चला ले जाते। परामुखापेक्षिता और असावधानता उनमें काफी मात्रा में रही। यही क्यों वे उस संघर्ष के समय में भी विलासितापूर्ण जीवन से निर्लिप्त न रह सके।

महाराजा रणजीतसिंह जी के मरने के बाद उनके पुत्र खड्गसिंह जी गद्दी पर बैठे। खड्गसिंह और उनके पुत्र नौनिहालसिंह के एक ही दिन में मारे जाने की घटनायें सिख-इतिहास की एक भारी कौतूहलजनक घटना है।

राजा ध्यानसिंह, राजा गुलाबसिंह और सुचेतसिंह यह तीन डोगरा राजपूत थे जो बडी तंग हालत मे महाराजा रणजीतसिंह की खिदमत में हाजिर हुये थे। बढ़ते २ यहाँ तक बढ़े कि महाराज ने उनके लिये राजा के खिताबों से भी विभूषित किया। जब महाराज खड्गसिंह गद्दी पर बैठे तो उन्होंने चेतसिंह नाम के एक जाट-सिख को मंत्री बना लिया। हालाकि मरते समय महाराजा रणजीतसिंह जी ने खड्गसिंह जी को ध्यानसिंह के ही सुपुर्द किया था। इससे ध्यानसिंह को उम्मीद थी कि मंत्री मैं ही बनूँगा। अत उसने अपनी बुद्धिमानी से महाराजा खड्गसिंह जी से उनके पुत्र नौनिहालसिंह तक को भड़का दिया। और चेतसिंह को मरवा दिया। पिता को नजरबन्दी में पहुँचा कर ध्यानसिंह ने पुत्र को गद्दी पर बिठाया किन्तु बीमारी से जब महाराज खड्गसिंह का देहांत हो गया। उसी दिन नौनिहालसिंह का भी अन्त हो गया।

अब राजा ध्यानसिंह ने अपनी मर्जी के अनुसार शासन चलाने के लिये कुँवर शेरसिंह जी को बुलाया। किन्तु खड्गसिंह की रानी चन्द्रकौर ने बीच में आकर नया प्रबन्ध करा लिया। जिसमें उन्होंने अतरसिंह सिंधानवाला को अपना सलाहकार नियुक्त किया। यह प्रबन्ध भी अधिक दिन नहीं चला। इसलिये रानी साहिबा को अपनी जागीर मे लौट जाना पड़ा और कुँवर शेरसिंह को ही ध्यानसिंह ने अपनी जालसाजी से महाराज बना दिया। चूँकि सिंधानवाले रानी चन्द्रकौर के पक्ष में थे। इसलिये महाराजा शेरसिंहजी ने उनको गिरफ्तार करने का हुक्म दिया। सरदार लहनासिंह तो गिरफ्तार कर लिये गये। अतरसिंह, अजीतसिंह और हरिद्वार की ओर भाग गये।

रानी चन्द्रकौर ने सिखों के सामने अपनी शर्तों मे एक शर्त यह भी रखी थी कि मुझे सिन्धानवालों मे से अजीतसिंह जी को या और किसी योग्य लड़के को गोद ले-लेने दिया जाय और उसे ही गद्दी का अधिकार दे दिया जाय। चूँकि इस समय प्राय: समस्त सिख सरदारों पर राजा ध्यानसिंह और उनके भाइयों का प्रभाव था। अत: यह बात स्वीकार नहीं की गई थी। इससे सिन्धानवाले नाराज भी हुए थे। दूसरे शेरसिंह ने उनके साथ यह व्यवहार किया। बस यहीं से सिंधानवालों के हृदय में कटुता बढ गई। वैसे ज्यादा गौर से हम देखें तो महाराजा रणजीतसिंह जी की ओर से भी एक गलती थी जिस प्रकार उन्होंने दूसरे ऐरे-गैरे लोगों को इतना बढा दिया वहाँ इन अपने भाइयों को कोई तगडी-सी जागीर देकर अलग नहीं कर दिया। यदि इन्हे कोई पूरा जिला दे दिया जाता तो ये बेचारे उसमें दूर रहे आते और डोगरा-गिरदी में फँसकर न तो अपना नाम बदनाम करते और न सिख-साम्राज्य को नुकसान पहुँचाते।

कुछ समय बीत जाने पर महाराज शेरसिंह ने अपने भोले स्वभाव के कारण सरदार लहनासिंह सिन्धानवालिया को तो कैद से रिहा कर दिया और अतरसिंह अजीतसिंह, को वापस बुला लिया जो ओहदे उनके पहले थे, वे ही फिर उनको दे दिये। धीरे-धीरे रंजिश के भाव दोनों ओर से दूर हो रहे थे। मुहब्बत बढ़ती जा रही थी। राजा ध्यानसिंह को जब यह पता चला तो वह शंकित हुआ और उसने सिंधानवालों को भडकाना शुरू किया कि महाराज तो मौका देख रहे हैं। वे तुम्हे जिंदा रहने देने मे अपने लिये खतरा समझते हैं।

सिंधानवालों ने महाराजा शेरसिंह जी के पास जाकर स्पष्ट शब्दों ने कहा कि राजा ध्यानसिंह

आपका दुश्मन है और वह ऐसी बातें हमसे कहता है कि जिससे हम आपके प्राणों के ग्राहक हो जायँ । आप कहें तो हम ध्यानसिंह का खात्मा कर दें । भला जो आपसे छिपी-छिपी दुश्मनी रखता है वह क्या नहीं कर सकता। महाराजा शेरसिंह राजी हो गये और उन्होंने अपने हाथ से लिखकर उन्हें दे दिया। उधर उन्होंने वह पत्र ध्यानसिंह को दिखा दिया और कहा महाराज हमारे ही दुश्मन नहीं हैं किन्तु आपको भी जिन्दा नहीं रहने देना चाहते हैं। अगर तुम सहमत हो तो इस दुश्मन को मिटा ही दिया जाय। ध्यानसिंह सहमत हो गया। उसने भी लिखकर दे दिया। इसके बाद तीनों सिंधानवाले सरदार अपने गाव राजा सांसी चले गये। इधर महाराजा शेरसिंह और राजा ध्यानसिंह दोनों एक दूसरे की मौत के दिन की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे। कहा जाता है कि किसी का बुरा सोचने से बुरा सोचनेवाले का ही बुरा होता है सो इन दोनों का ही बुरा हुआ ।

सन् १८४३ ई० की १५ दिसम्बर को महाराज शेरसिंह शाह बिलावल के पास बारहदरी में कुश्ती देख रहे थे। उनका लड़का प्रतापसिंह बाग में दान-पुण्य कर रहा था। अजीतसिंह तो महाराज के पास गया और लहनासिंह बाग में जा छिपा। अजीतसिंह ने बारहदरी में जाकर महाराज को बन्दूक की गोली का निशाना बना दिया और इधर लहनासिंह ने प्रतापसिंह को मार डाला। महाराजा के साथियों ने भी हथियार संभाले पर एक दो, पचासों आदमियों के सामने क्या कर सकते थे। उनके एक विश्वासी नौकर का भी खातमा हो गया।

अजीतसिंह महाराज शेरसिंह जी के शिर को काट कर ले गया। जब किले में पहुँचा तो उधर से राजा ध्यानसिंह भी मिल गया। जो बड़ा खुश हुआ। अजीतसिंह उसे वापिस लौटा ले गया और पूछा अब क्या करना है। ध्यानसिंह ने कहा, इसके सिवा क्या करना है कि महाराज, दलीपसिंह जी को बना दिया जाय। अजीतसिंह के साथी गुरुमुखसिंह ने जोकि अजीतसिंह का चाचा होता था, कहा ठीक है और मंत्री तो तुम हो ही। हम बनते रहे बेवकूफ। इतना कहकर फड़ाकसे गोली छोड़ दी। और उसके नौकर को भी जोकि भड़क उठा था। उसके साथ सुला दिया और फिर दोनों की लाश एक गन्दी गली में फिकवादीं।

अजीतसिंह आदि सिन्धानवालों ने महाराज दिलीपसिंह को गद्दी पर बिठाया और अजीतसिंह[1] स्वय वजीर बना।

राजा ध्यानसिंह के पुत्र हीरासिंह को जब यह खबर लगी तो वह अपनी जागीर में से सीधा लाहौर पहुँचा और उसने सिख सेनानायकों को भड़काया कि खालसा साहिबान, सिन्धानवालों ने मेरे ही पिता की हत्या नहीं की है। सिख राज्य के एक शुभचिन्तक को खो दिया है और भला जिन्होंने अपने ही रक्त मांस के महाराजा शेरसिंह का कत्ल किया हो वे क्या नहीं कर सकते हैं। मालूम यह भी होता है कि ये अंग्रेजों से मिले हुये हैं। इस तरह इन गद्दारों को जीवित बने रहने देना कहाँ तक ठीक है? सिख सब कुछ बर्दाश्त कर सकते थे। किन्तु उन्हें अंग्रेज के हाथ अपने राज्य को चले जाने की बात सुनते ही क्रोध चढ़ आता था। दूसरे उन्हें यह भी बात बुरी लगी कि सिन्धानवालों ने महाराज शेरसिंह और उनके पुत्र को कत्ल किया। लगभग चालीस हजार सैनिक हीरासिंह के साथ हो लिये और किले का घेरा दे दिया।

भीतर जब सिंधानवालों ने सुना तो वे घबराये किन्तु समझ यह रहे थे कि ध्यानसिंह के मारे जाने से फौज उत्तेजित हो उठी है। अत: उन्होंने ध्यानसिंह और उसके नौकर की लाश सेना में भिज-

१. ज्ञानी ज्ञानसिंह ने लहनासिंह का वजीर बनना लिखा है।

वादी। उस समय ध्यानसिंह की लाश पर बढ़िया से बढ़िया कफन डाल दिया। कहलाया गया कि ध्यानसिंह को तो इस मुसलमान ने मारा था जिसे कि बदला लेने के लिये मार डाला है। एक ध्यानसिंह का ही मामला होता तो फौज शांत भी हो जाती मामला तो महाराज शेरसिंह और उनके पुत्र प्रतापसिंह का भी था। कहा जाता है जब खालसा दल शांत न हुआ तो लहनासिंह ने यह भी कहलवा दिया कि जो कुछ हमने किया है। खूब समझकर किया है और अपने बल पर किया है फिर क्या था किले पर गोली गोलों की वर्षा होने लगी। अजीतसिंह बड़ी बहादुरी से लडा और लडता हुआ ही मारा गया। लहनासिंह ने मोरी के रास्ते भागना चाहा किन्तु सफल नहीं हुआ। एक मुसलमान ने उसका सिर काट लिया और हीरासिंह के पास जाकर पेश कर दिया।

हीरासिंह ने सिंधानवाले मृत सरदारों की लाशों के साथ जो व्यवहार किया वह उसकी इसानियत को जाहिर नहीं करता। उसने लाशों को बाजार मे घसीटवाया। उनके सहायकों और हिमायतियों को भी मार डाला। सरदार सुखसिंह और उनके एक साथी को भी कत्ल कर दिया। उनकी सारी जागीर जब्त कर ली और राजा सांसी के मकानों को ध्वंश करने का हुक्म दिया। उससे जो भी बन पडा उसे करने मे उसने कसर नहीं छोड़ी।

सरदार अतरसिंह मय अपने पुत्र केहरीसिंह के किसी प्रकार निकल गया। कहा जाता है पहले तो अतरसिंह अंग्रेज अफसरों के पास अम्बाला गया। फिर सतबीरसिंह जी के पास चला गया। इधर गुलाबसिंह ने काश्मीरासिंह और पिशोरासिंह के सम्बन्ध में खालसा के पास समाचार भेजे कि अतरसिंह के कहने में आकर वे लाहौर पर चढ़ाई करने की तैयारी कर रहे हैं।

बाबा वीरसिंह सीधे और सच्चे आदमी थे। वे मॉझा के सिखों पर प्रभाव भी खूब रखते थे। उन्होंने अतरसिंह को शरण भी दे दी। साथ ही पंजाब के अनेकों प्रतिष्ठित सिख-सरदारों को चिट्ठियाँ लिखीं कि हीरासिंह जो कुछ कर रहा है उस पर ध्यान दें और यह भी खयाल करें कि रणजीतसिंह का राज्य किसी आदमी का राज्य नहीं समस्त सिखों का राज्य है इसे नष्ट होने से बचायें। योद्धा प्रकृति के सैकडो सिख बाबा वीरसिंह से इस सम्बन्ध मे सलाह के लिये भी आने आरंभ हुये। इधर हीरासिंह ने जब यह समाचार सुना तो उसने सेना की एक टुकड़ी बाबा के स्थान पर भेजी। उस समय काश्मीरासिंह भी वहीं थे। बाबाजी ने अपने जिन्दे रहने तक तो लड़ाई को रोका किन्तु उनके प्राणांत के बाद लडाई न रुकी, दोनों ओर से डट कर लडाई हुई। इसमे अतरसिंह और कश्मीरासिंह भी मारे गये। इस प्रकार सिंधानवाले और महाराजा रणजीतसिंह के वंशजों का बराबर खात्मा डोगरशाही की स्वार्थ-लिप्सा और राज खान्दान की अविवेकता से होने लगा।

सरदार अतरसिंह सिंधानवाला का लड़का केहरसिंह इस समय भी अंग्रेजी इलाके में था। और कई सिंधानवालिये जो कि अतरसिंह के भाई भतीजे होते थे। अंग्रेजी इलाके मे चले गये थे। और वे उस समय तक वहाँ रहे जब तक कि डोगरों का भी सत्यानाश न हो लिया और खालसा राज्य का खातमा न हो गया। इनमे से कुछ उस युद्ध में भी रहे जो अंग्रेजों ने सिखों के विरुद्ध किया।

सिंधानवालों की जागीर तो वापिस आगई किन्तु उतनी नहीं जितनी महाराजा रणजीतसिंह जी के समय मे थी।

अंत में यह कहना पड़ता है कि डोगरों के स्वार्थ और सिंधानवालों के अविवेक ने तथा अन्य सिख विरोधी प्रवृत्तियों ने उस विशाल सिख-साम्राज्य को मिट्टी में मिला दिया जिसकी जड़ें काबुल और

लद्दाख की ओर फैलना चाह रही थीं और अवश्य ही फैलने वाली थीं।

अतरसिंह सिंधानवाला का लड़का केहरसिंह भी सन् १८६४ ई० में स्वर्गवासी हो गया। अजीत-सिंह के उस समय तक कोई संतान थी ही नहीं। सरदार लहनासिंह जी के दो पुत्र थे। प्रतापसिंह और ठाकुरसिंह। ये दोनों ही उस समय अंग्रेजी इलाके मे चले गये थे। शांति के समय अपने गॉव राजा सांसी में आ गये। प्रतापसिंह के लड़के गुरुवचनसिंह गुरुमुखसिंह के प्रपौत्र हरदत्तसिंह के यहा गोद चले गये। ठाकुरसिंह के (१) गुरुवचनसिंह, (२) वख्शीशसिंह, (३) नरेन्द्रसिंह, (४) गुरुदत्तसिंह हुये। इनमें से वख्शीशसिंह जी सरदार बुद्धासिंह जी के पुत्र शमशेरसिंह जी के यहा गोद चले गये। गुरुदत्तसिंह जी के सरूपसिंह और प्रीतमसिंह दो पुत्र हुये है। नरेन्द्रसिंह जी के चार पुत्र हैं। (१) दलपतसिंह (२) कृपालसिंह (३)गजेन्द्रसिंह और (४)विचित्रसिंह। इनमे दलपतिसिंह के तेजेन्द्रसिंह और गजेन्द्रसिंहजी के भूपेन्द्रसिंह जी हैं। बस लहनासिंह जी की सन् १६३६ तक की यही वंश-तालिका है।

हम पिछले पृष्ठों में लिख चुके हैं कि सरदार दीदारसिंह जी के चार पुत्र थे। उनमें से तीन की फुलवाड़ी खूब फली फूली। उनकी सतान मे से इस समय प्रमुख २ सज्जन इस प्रकार हैं।

(१) सरदार ले० रघुवीरसिंह जी ओ० वी० ई० और उनके पुत्र।
(२) सरूपसिंह जी सन् १६१५ में पैदा हुये हैं।
(३) नरेन्द्रसिंह जी के चारों पुत्र अजयपालसिंह }
(४) औतारसिंह और उनके भाई निरंजनसिंह } एक ही बाप की सन्तान हैं।
(५) करतारसिंह और उनके पुत्र जगजीतसिंह }
(६) उजागरसिंह, अमरसिंह और उनके पुत्रगण।
(७) राजेन्द्रसिंह और उनके भाई।
(८) अमलसिंह, अमरसिंह और उनके भाई तथा पुत्र।
(९) कुन्दनसिंह, गुरदयालसिंह और उनके भाई।
(१०) वासदेवसिंह और उनके भाई।

इसी प्रकार अन्य सरदार और उनके भाई हैं। परन्तु प्रांतीय दरबार में स्थान सरदार रघुवीरसिंह जी का ही था।

यह जागीर नकई मिसल का अवशिष्ट भाग है। जहॉ पर हमने नकई मिसल का वर्णन किया है। वहाँ पर इस जागीर के पूर्वजों का परिचय आ गया है। नकई मिसल मे जो प्रमुख सरदार चौधरी हेमराज थे। उन्हीं के वंशज इस जागीर के मालिक हैं। आरम्भ मे ये लोग लाहौर जिले के परगने चूनियाँ मे भडवाल गॉव में रहते थे।

वहरवाल

किसी समय ४५ लाख का इलाका इस जागीर के पूर्वजों के हाथ आ गया था।

चौधरी हेमराज के हीरासिंह और नत्थासिंह नाम के दो पुत्र थे। इनमें हीरासिंह ने वाहुबल से इस मिसल की शक्ति वहुत ज्यादा वढ़ा दी थी। सम्वत् १८२६ वि० में हीरासिंह के पाकपट्टन के शेख सुभान के साथ लड़ते हुये मारे जाने के कारण उनका भतीजा नाहरसिंह मिसल का अधिपति वना। क्योंकि हीरासिंह का खुद का लड़का दलसिंह नावालिग था। नाहरसिंह ने कुल छः वर्ष इस मिसल की सरदारी की। सवत् १८३२ मे तपेदिक में उनका भी देहान्त हो गया। अत सरदारी उसके छोटे भाई रनसिंह के हाथ आई। जिसने अपनी होशियारी से मिसल का अध पतन होने से रक्षा की। इसने भी वहुत

सारे इलाके बढ़ाये। सम्वत् १८३६ में उसका भी देहान्त हो गया।

रनसिंह के तीन पुत्र थे। (१) भगवानसिंह (२)ज्ञानसिंह और (३)खजानसिंह। भगवानसिंह के हाथ सरदारी आई। किन्तु वह उसे सम्भाल नहीं सका। उसके समय में बहुत सारे इलाके हाथ से निकल गये। सम्वत १८४६ मे गृह कलह मे भगवानसिंह मारा गया। उसने अपनी बहिन की शादी महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ करदी थी। उसके छोटे भाई ज्ञानसिंह का जमीन जायदाद पर प्रभुत्व हुआ।

सम्वत १८६४ विक्रमी में ज्ञानसिंह भी मर गया। तब उसके लड़के काहनसिंह को उत्तराधिकार मिला। किन्तु महाराजा रणजीतसिंह जी ने काहनसिंह के पास केवल पन्द्रह हजार की जागीर रहने दी। खजानसिंह के लिये जोकि काहनसिंह का चाचा था नानकोट का इलाका मिला।

इसके बाद पंजाब मे अंग्रेजों का प्रभुत्व बढ़ गया। मुल्तान में जब मूलराज ने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध किया तो काहनसिंह का लड़का अतरसिंह अंग्रेजों के विरुद्ध मूलराज के साथ मिल गया। इनसे अंग्रेज बड़े नाराज हुये और उन्होंने जागीर का एक भाग जब्त कर लिया किन्तु काहनसिंह के बहुत कुछ सफाई पेश करने पर अंग्रेज उस बुड्ढे सरदार से खुश भी हो गये और उसे बहरवाल का आनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त किया। जागीर लगभग बारह हजार रुपये की रह गई। काहनसिंह के चार लड़के थे। चतरसिंह, अतरसिंह, ईश्वरसिंह और हुक्मसिंह। जिनमे हुकमसिंह लावल्द मर गया और ईश्वरसिंह अतरसिंह मुसलमान हो गये। चतरसिंह भी अपने बाप से १७ वर्ष पहले मर गया। सरदार काहनसिंह का देहान्त सवत् १९३१ वि० मे हो गया। अतः चतरसिंह का लड़का रनजोधसिंह जायदाद का मालिक हुआ। किन्तु आपस में मुकदमा चलने पर रणजोधसिंह के पास दो हजार की जागीर रह गई। कुछ ईश्वरसिंह, अतरसिंह और रणजोधसिंह के भाई प्रतापसिंह और ठाकुरसिंह को मिल गई।

सरदार रनजोधसिंह जी के दो पुत्र हुये। ऊधमसिंह और नारायनसिंह। सवत् १९४८ में उनके मरजाने के बाद जागीर के सरदार नरायनसिंह हुये। यह कहना होगा कि ऊधमसिंह के पुत्र और पौत्र सभी का देहान्त हो गया अत जागीर एक ही भाई के पास रही। सरदार नारायनसिंह जिनका कि देहान्त हो चुका है और हरदयालसिंह ही इस समय इस जागीर के मालिक हैं। सन १९२१ ई० में आप के उत्तराधिकारी का जन्म हो चुका है जिनका कि नाम मनमोहन इन्द्रपालसिंह है। अतरसिंह के एक लड़का लाभसिंह हुये थे और खजानसिंह के वंश की फुलवाडी भी खूब फूल रही है।

मिसल नकाई मे चौधरी मीठा के पुत्र कमरसिंह भी एक बडे बहादुर आदमी थे। ये चीमा के रहने वाले थे। जब मिसल का सगठन ढीला पड गया तो इन्होंने नकाई गाँव के आसपास के इलाके पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। कमरसिंह दो भाई थे। उनके दूसरे भाई का नाम वजीरसिंह था। कमरसिंह का सैयदवाले रईस के साथ लडते हुए संवत् १८३७ वि० मे देहान्त हो गया। अब तक भी मिसल मे अच्छा सगठन था। इस समय कमरसिंह के भाई और रनजोधसिंह के लड़के भगवानसिंह मे ज्यादा झगड़ा बढ गया। भगवानसिंह ने सरदार महासिंह सुकरचकिया के लडके प्रतापी रणजीतसिंह के साथ अपनी बहन दातारकौर का विवाह करके ताकत बढ़ाली। इसलिये कमरसिंह के भाई वजीरसिंह को घाटा पडा। महासिंह ने अमृतसर मे भगवानसिंह और वजीरसिंह का समझौता भी कराया किन्तु वह समझौता अधिक दिन न चल सका। और संघर्ष यहाँ तक बढ़ा कि भगवानसिंह वजीरसिंह के ही हाथों से संवत् १८४६ वि० में मार दिया गया। दलसिंह ने जो कि भगवानसिंह का रिश्ते मे दादा होता था वजीरसिंह को मारने की

नकाई

कोशिश की किन्तु वह खुद ही मारा गया। असल में दलसिंह के साथ उसके ही नौकरों ने दगा की।

संवत् १८४७ वि० में वजीरसिंह का भी देहान्त हो गया। मेहरसिंह और मोहरसिंह नाम के उसने अपने पीछे दो लड़के छोड़े थे। मोहरसिंह का वश उसके एक मात्र पुत्र हीरासिंह पर समाप्त हो गया। हमें बताया गया है कि इन दोनों बाप-बेटों की मृत्यु स्यालकोट की लड़ाई में महाराजा रणजीतसिंह जी से लड़ते-लड़ते हुई थी। उन दिनों स्यालकोट भी चार सरदारों के अधिकार में था। जीवनसिंह, साहबसिंह, मोहरसिंह और बाबा नत्थासिंह। इनमें से साहबसिंह तो उस समय गैरहाजिर था। बाबा नत्थासिंह और मोहरसिंह मारे गये। जीवनसिंह को महाराजा रणजीतसिंह ने इलाके देकर छोड़ दिया।

सरदार मेहरसिंह का भी संवत् १६०० में देहान्त हो गया। उनके तीन लड़के जयमलसिंह, धारासिंह और फतहसिंह थे। इनमें जयमलसिंह बचपन में ही मर गया। धारासिंह और फतहसिंह जी के सतानें हुई और खूब कुटुम्ब बढ़ा।

संवत् १६१७ वि० में धारासिंह का देहान्त हो गया। उन्होंने अपने समय में जितना हो सका अंग्रेज सरकार की सेवा की जिससे रही-सही जागीर सुरक्षित रह गई। उनके उत्तमसिंह और शेरसिंह नाम के दो लड़के हुये। इनमें शेरसिंह नि सतान रहे। उतमसिंह के तेजासिंह, लालसिंह और वरियामसिंह, नाम के तीन पुत्र हुये। संवत् १६६४ वि० में सरदार उत्तमसिंह जी का देहान्त हो जाने पर सरदार तेजासिंह जी जिनका कि जन्म संवत् १६२८ में हुआ है जागीर के मालिक हुए। आप के छोटे भाई वरियामसिंह जी के संवत् १६५८ मे महेन्द्रसिंह, संवत् १६६५ मे नरेन्द्र कुमारसिंह, संवत १६६७ में जोगेन्द्रसिंह और संवत् १६७३ में राजेन्द्रसिंह नाम के चार पुत्र हुये हैं, मझले भाई लालसिंह जी के तीन पुत्र हैं। जिनके कि नाम गुरुदयालसिंह, कुमार बसंतसिंह और जगजीतसिंह हैं इन तीनों के जन्म क्रमशः संवत् १६६७, १६७१, और १६७७ विक्रमी में हुये हैं।

सरदार तेजासिंह जी के चार पुत्र हुये हैं। उनमें ऊधमसिंह संवत् १६४६ मे, गुरुचरनसिंह संवत् १६५४ में। हरचरनसिंह संवत् १६५६ और शिवचरनसिंह संवत् १६५६ मे पैदा हुये हैं। सरदार तेजासिंह जी के इन चारों पुत्रों के भी सुपुत्रगण हो चुके हैं। शिवचरनसिंह जी के हरेन्द्रपालसिंह गुरुचरनसिंह जदेश्वरसिंह हैं और हरचरनसिंह जी के सुखवतसिंह और हरवंतसिंह है। बलरामसिंह, मुखरामसिंह दोनों पुत्र ऊधमसिंह के हैं।

सरदार हरदाससिंह जी जिला अमृतसर में मजीठ के रहने वाले थे। सुकरचकिया मिसल के साथ उनके पुत्र गुरुदयालसिंह जी ने बड़ी बहादुरी से काम किया। सरदार चड़तसिंह और सरदार महासिंह जी के साथ बड़ी वीरता और वफादारी के साथ युद्ध करने के कारण सरदार महासिंह ने शाहदरे के पास एक छोटी सी जागीर इन्हे दी थी। सन् १७६१ ई० मे इनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम हरीसिंह था। यह हरीसिंह ही पीछे अपनी बहादुरियों के कारण नलवा के नाम से मशहूर हुआ। सरदार गुरुदयालसिंह जी का सन् १७६८ मे देहान्त हो गया। अतः बालक हरीसिंह जी की देख रेख महाराजा रणजीतसिंह जी के हाथ मे ही रही। वे इन्हें खूब प्यार करते थे।

नलवा खान्दान

सरदार हरीसिंह जी नलवा का जीवन-वृतान्त दूसरी जगह दिया जा चुका है। अत. यहाँ इतना ही बताना चाहते हैं कि जमरूद में सन् १८३७ मे वे पठानों से लड़ते हुये काम आये। उस समय उन्होंने आठ लाख की जागीर और बहुत-सी सम्पति छोड़ी थी।

सरदार नलवा के चार पुत्र थे। (१) सरदार गुरुदत्तसिंह (२) सरदार जवाहरसिंह (३) सरदार-पंजाबसिंह और (४) सरदार अर्जुनसिंह। ये अलग-अलग दो माताओं के थे। क्योंकि सरदार नलवा के दो सरदारनी थीं।

उस समय में इनकी जागीर में गुजरानवाला, कच्ची, नूरपुर, मिठुवाना, कल्लर, गाद, हजारा, खानपुर, और खतक थे। इनकी गरज में दो रेजीमेन्ट सवारों की, एक तोपखाना, एक ऊँटों का दल, हर समय महाराजा रणजीतसिंह जी की सेवा के लिये तैयार रखने पड़ते थे। उस समय गुजरानवाला एक गुलजार शहर बना हुआ था। एक बहुत सुन्दर बाग सरदार हरीसिंह ने लगवाया था जिसमें फ्रान्स और माल्टा से मगा कर नारंगी आदि के बढ़िया-बढ़िया गाछ लगाये थे।

इतनी बड़ी जायदाद को आपस में बांटने के लिये चारों भाइयों में झगड़ा हो गया और वे आपस में खून खच्चर पर उतर आये। यह देख कर महाराजा रणजीतसिंह जी ने कुल जायदाद जब्त करली और केवल उनतीस हजार सालाना की आमदनी का इलाका इनके लिये रहने दिया।

सरदार गुरुदत्तसिंह जी सन् १८०७ में पैदा हुये और सन १८५४ ई० में उनका देहान्त हो गया।

सरदार अर्जुनसिंह जी के अच्छरसिंह और सम्पूरनसिंह नाम के दो पुत्र हुये। अर्जुनसिंह जी का सन् १८४८ ई० में इन्तकाल हो गया। सरदार सम्पूरनसिंह जी के एक पुत्र हुये थे जिनका देहान्त उनके आगे ही सन् १८६८ में हो गया था। सन् १८७४ में सम्पूरनसिंह भी चल बसे।

सरदार अच्छरसिंह जी के सन् १८६७ में एक पुत्र हुये जिनका नाम सरदार नारायणसिंह है। सरकार की ओर से सरदार नारायनसिंह को सरदार बहादुर का खिताब और आनरेरी मजिस्ट्रेटी का दर्जा उनकी सेवाओं के उपलक्ष में दिया गया।

सरदार नारायणसिंह जी के ८ पुत्र हुए। जिनके नाम इस प्रकार हैं—(१) करतारसिंह इनका देहान्त हो चुका है (२) मूलसिंह इनका भी देहान्त हो गया। (३) बलवन्तसिंह आप पी० सी० एस० थे। (४) इकबालसिंह आप केप्टिन आई० एम० एस० थे। (५) सन्तसिंह आप पुलिस में ऊँचे पद पर थे। (६) बख्शीशसिंह (७) कुलवन्तसिंह और (८) इन्दरसिंह।

सरदार नारायणसिंह जी ने सभी पुत्र सुशिक्षित कराये। गुजरानवाला में आपका खान्दान इज्जतदार घरानों में था। जेठे पुत्र बलवन्तसिंह जी के दो पुत्रों का हमें मालूम हो सका है। उनके नाम कुलदीपसिंह और अमरजीतसिंह हैं। शेष भाइयों की सन्तानें भी थीं। लोग सरदार हरीसिंह के नाम से अभी तक इन लोगों को नलवा ही कहकर सन्मान से याद करते हैं।

छब्बीसवाँ अध्याय

सिख-महिला-इतिहास

जिस प्रकार सिख जाति में अनेकों वृद्ध, युवा और बालक धर्मवीर, शूरवीर और देशभक्त तथा विद्वान् हुए हैं। उसी प्रकार अनेकों सिख माताओं, बहिनों और बेटियों के बहादुराना, दिलेराना और अक्लमन्दाना कारनामों से सिख जाति का माथा ऊँचा हुआ है। इस अध्याय में कुछ एक ऐसी ही सिख-महिलाओं के जीवन पर प्रकाश डालते हैं।

बीबी नानकी जी सिख धर्म के आदि प्रवर्तक गुरु नानकदेव जी की बड़ी बहिन थीं। उनका विवाह सुल्तानपुर के नवाब के कारिन्दा जयराम जी के साथ हुआ था। बहुत कुछ परिचय बीबी नानकी जी का पीछे के एक अध्याय में आ चुका है। यहां केवल इतना ही कहना है कि वे परम ईश्वर भक्त बुद्धिमान, साहसी मिलनसार और धर्मप्रिय महिला थीं। संसार से परम विरक्त गुरु नानकदेव जी इनसे इतना प्यार करते थे कि जब भी वे याद करतीं गुरुजी परदेश से उसी समय उनसे मिलने को चल पड़ते थे।

बीबी नानकी जी

बीबी भानीजी सतगुरु अमरदास जी की पुत्री थीं और गुरु रामदास जी के साथ उनका विवाह हुआ था। आपने गुरु अमरदास जी की बडी सेवा की जिनका कि वर्णन हम प्रथम ही कर चुके हैं। कुछ इतिहासकार कहते हैं कि इन्होंने अपनी सेवाओं के द्वारा गुरु अमरदास जी से गुरुआई अपने वंश में स्थिर रहने का वरदान प्राप्त कर लिया था। यह गुरु-भक्त, सेवा-परायण, कष्ट सहने में परम साहसी, परिश्रमशील और दूरन्देश थीं।

बीबी भानी

आप गुरु अर्जुनदेव जी की धर्मपत्नी थीं। ईश्वर में तो आपकी परम निष्ठा थी ही। साथ ही लंगर के काम की भी आप भली प्रकार देख-भाल करती थीं। परसाद छकनेवालों को कभी-कभी आप ही छकाने लगती थीं। छठे पातशाह गुरु हरिगोविन्द जी महाराज आप ही के पुत्र थे। बड़ों का सन्मान करने में आप कभी भी इस बात का खयाल न करती थीं कि मेरा स्थान बहुत ऊँचा है। बाबा बुड्ढा के लिये अपने हाथ से भोजन खिलाना और उनकी सुविधाओं का ख्याल रखना आपके सेवा-भाव के प्रमाण हैं।

माता गंगादेवी जी

गुरु अर्जुनदेव जी की शहीदी के बाद छठे पातशाह के साथ आपने बड़े संकट झेले क्योंकि दुश्मनों से पाला पड़ने के कारण छठे पातशाह को जीवन भर कठिनाइयां उठानी पड़ीं।

अपने भाइयों का सस्कार कर रही हूँ। तुरकों ने फिर पूछा तुमसे किसने कहा कि इनका संस्कार करो। बीबी जी ने बिना ही घबराये हुए बड़े धीरज से कहा। यह मेरा धर्म है। यह मेरे धर्म भाई हैं। इस पर तुर्क आगबबूला हो गये और इन्हें बर्छों से छेद कर ऊपर को उठा लिया और बोले यह क्या है? बीबी जी ने कहा "यह धर्म पर शहीदी" है। शैतान के दिल नहीं होता है। यह कहावत मशहूर है। उन दुष्टों ने बीबीजी को उस धधकती चिता पर फेंक दिया। किन्तु उस वीर बाला ने उफ तक न की।

आनन्दपुर के आखिरी युद्ध में जो लोग दशम पातशाह को बेदावा लिख गये थे। उन्हें बड़ा दुःख हुआ. वे सब पुनः गुरुजी की सेवा के लिये उन्हें ढूंढ़ते फिरे। यह लोग मुक्तसर में गुरु जी के दुश्मनों के साथ लड़ते हुए मारे गये। माई भागो भी इस युद्ध में तुरकों से लड़ी थीं। और उनके कई घाव आये थे। जब गुरु जी ने उन्हें देखा तो उनको पानी पिलाया और उसके जख्मों पर पट्टी बांधी। कहा जाता है माई भागो की वीरता की कोई पुस्तक नान्देड़ में अब तक रक्खी है।

माई भागो

सुराहे गोत के चौधरी मलूका की पौत्री और चौधरी खन्ना की पुत्री का नाम फत्तो था जो आगे चलकर वीर सरदार राजा आलासिंह जी की धर्मपत्नी बनीं। इनका जन्म सन् १६६७ के आसपास हुआ था। ६ वर्ष की उम्र में इनकी शादी हो गई।

रानी फत्तो

रानी फत्तो प्राय प्रत्येक युद्ध में अपने पति के साथ रहती थीं। जहाँ वे निर्भीक थीं वहाँ अक्लमंद भी काफी थीं।

एक बार नवाब मालेरकोटला के कहने से अली मुहम्मदखां रुहेला ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। हालांकि महाराजा की उससे दोस्ती थी किंतु वह नवाब मालेरकोटला की बातों में आगया।

इसके बाद उन्होंने बरनाला को जहां कि महाराज आलासिंह का सदर मुकाम था लूटने के लिये चढ़ाई की किंतु रानी फत्तो ने उनके आने से पहले ही सारा कीमती माल भटिंडा पहुँचा दिया और अपने इलाके का बड़ी मुस्तैदी से प्रबन्ध करती रहीं। महाराजा आलासिंह को सुनाम के किले में बंद किया हुआ था और दो बरस बीत चुके थे आखिर रानी फत्तो ने कर्मसिंह नाम के सिख को और दूसरे सिक्खों को अपने साथ मिलाया। कर्मसिंह सुनाम के किले में पहुँच गया और उसने अपने कपड़े राजा आलासिंह को पहना कर बाहर निकाल दिया। बाहर घोड़े तैयार खड़े थे। जो आलासिंह को लेकर दौड़ आये। पीछे से कर्मसिंह भी पहरेदार को मारकर भाग आया। रक्षकों ने भागे हुए लोगों को पकड़ना चाहा किंतु उन्हें पहले से तैनात सिखों ने मार गिराया। यह बात सन १७४७ ई० की है।

यह कहने में कोई अत्युक्ति नहीं कि राजा आलासिंह यदि महाराज थे तो रानी फत्तो उनकी वजीर थीं। आलासिंह यदि विजेता थे तो वे चतुर प्रबन्धक थीं। यही वजह है कि उनका राज बराबर बढ़ता रहा।

जिस समय अहमदशाह अब्दाली की सेना बरनाला की लूट को आई थी। उस समय रानी फत्तो ने अपनी बुद्धिमानी से अपने परिवार और तमाम संपति की रक्षा करली और उधर अपने आदमी अब्दाली के पास भी सुलह के लिये भेज दिये।

सन् १७६५ ई० में राजा साहब का देहांत हो जाने पर भी उन्होंने धैर्य्य को नहीं छोड़ा उस समय राजकुमार अमरसिंह नाबालिग थे। उन्होंने उन्हें गद्दी पर बिठाकर राज काज चलाना आरम्भ कर दिया। यह याद रहे अमरसिंह जी उनके बड़े पुत्र शार्दूलसिंह के पुत्र थे। शार्दूलसिंह का बाप से

भी पहले देहांत हो चुका था।

अमरसिंह जी के एक सौतेले भाई हिम्मतसिंह थे। उन्होंने राज के लिये झगड़ा उठाया किंतु रानी फत्तो ने दोनों के झगडे को मिटाने के लिये कुछ परगने हिम्मतसिंह को भी दे दिये।

इस वीर रानी का जिसका नाम सारे मण्डल मे मशहूर हो गया था। सन् १७७३ ई० मे पटियाला शहर मे स्वर्गवास हो गया। उनके पति के पास ही उनका संस्कार किया गया। सारे पटियाला मे उनके लिये शोक छा गया और सभी ने उन्हे याद किया।

राज काज को संभालने की योग्यता और बहादुरी के सिवा भी रानी फत्तो मे अनेकों ऐसे गुण थे जिनसे उन्हें पटियाला राज्य में अब तक याद किया जाता है। उनके यहाँ जब सिख संगतें आती थीं तो वे खुद उनके खाने-पीने का इंतजाम अपनी आखों के आगे कराती थीं। दान-पुण्य से भी कभी मुंह नहीं मोड़ती थीं।

अभिमान उनमे तनिक भी न था। अगर उन्हे कोई कड़वी बात कहता तो वे उसे दुख पहुँचाने की चेष्टा नहीं करतीं।

उनकी कोशिश रहती थी कि अपनी बिरादरी के लोगों से राजा आलासिंह कोई भी बखेड़ा नहीं करे और ऐसा ही हुआ भी।

भला ऐसा कौन शिक्षित हिन्दू होगा जो माता गूजरी के नाम से परिचित न होगा। आप दशम पातशाह गुरु गोविन्दसिंह जी की माता और गुरु तेगबहादुर जी की धर्म पत्नी थीं। गुरु गोविन्दसिंह जी के जीवन वृतात के साथ हम आपके सम्बन्ध की घटनाओं पर प्रकाश डाल चुके हैं।

माता गूजरी

यहाँ तो यही कहना है कि आप अत्यन्त बुद्धिमान और धीरज वाली थीं। गुरु गोविंद सिंह जी आपकी किसी भी आज्ञा का उलंघन नहीं करते थे। आनन्दपुर को छोड़ने की उनकी इच्छा न थी। सिखों के साथ ही माता जी ने ही उन्हें आनन्दपुर छोड़ने को बाध्य किया। कारण यह था कि माताजी दयालु भी ऊँचे दर्जे की थीं। चूंकि वहाँ सामग्री के निबट जाने के कारण सिख लोग भूख से छटपटा रहे थे। आप उनके कष्ट को बर्दास्त न कर सकीं और उसका फल यह हुआ कि आपको फिर भारी से भारी विपत्ति झेलनी पड़ी। आपके हृदय मे जो धर्म-प्रेम था। उनका तो पता आपके उस धीरज से चल जाता है। जो अपने नन्हे-नन्हे पौत्रों को सरहिंद मे बलिदान की भूमिका के समय धर्म पर दृढ़ रहने का उपदेश देकर प्रकट किया था।[1]

माता सुन्दरीजी दशमेश की धर्मपत्नी थीं। ससार मे ऐसी बहुत कम माँ रही होगी। जिनके समस्त पुत्र धर्म की बलिपर चढे हों। ऐसी भी कम ही पत्नी रही होंगी। जिनके पति ने अपने पिता, पुत्र, मां और स्त्री सब ही को धर्म पर स्वेच्छा से वार दिया हो। माता सुन्दरी जी को अपने सासु-

माता सुन्दरी जी

ससुर, पति और पुत्रों को धर्म पर निछावर होते देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वह संसार के इतिहास मे अद्वितीय है। उन्होंने भयंकर से भयंकर दिन देखे। किन्तु कभी भी वे घबराई नहीं।

रानी सदाकौर कन्हैया मिसल के सरदार और संस्थापक श्री जयसिंह जी कन्हैया की पुत्रबधू थीं। आपके पति का नाम सरदार गुरुबख्शसिंह जी था। सरदार जयसिंह जी ने सरदार महासिंह के साथ

१ माता गूजरी का देहान्त भी उसी समय पौत्र शोक में हो गया।

रानी सदाकौर

मित्रता करने के उद्देश्य से अपनी पोती महतावकुंवरि का विवाह महासिंह जी के पुत्र रणजीतसिंह जी के साथ कर दिया था। इस प्रकार रानी सदाकौर महाराजा रणजीतसिंह की सास थीं। आपके ससुर और पति जब युद्धमें काम आगये तो अपने राज्य का आप ही प्रबन्ध करने लगीं। उधर सरदार महासिंह के मरने पर नावालिग रणजीतसिंह जी की भी आपने सरपरस्ती की। लड़ाइयों मे आप खुद शामिल होती थी। आपने दोनों राज्यों को बढ़ाया ही। आप बड़ी बहादुर, शूरमा और हिम्मत की स्त्री थीं। आपके स्वभाव में सख्ती जरूर थी। जिसके कारण महाराजा रणजीतसिंह जी समझदार होते ही आपसे स्वतंत्र हो गये। फिर भी आप इस बात की हर समय देख भाल करती थीं कि कोई उनके दामाद के खिलाफ जाल तो नहीं फैला रहे हैं। अंतिम दिनों महाराजा रणजीतसिंह के कहने से उन्होंने अपना कुल राज्य अपने दौहिते शेरसिंह को जागीर में दे दिया। क्योंकि दौहिते के सिवा और किसी का उस पर अधिकार नहीं पहुँचता था। इनकी राजधानी वटाले में थी। यह घटना संवत १८७७ वि० की है। इसके कुछ ही समय बाद रानी सदाकौर का देहान्त हो गया।

इसमें कोई सन्देह नहीं रानी सदाकौर बहुत बहादुर और सिपाही मिजाज की स्त्री थी। उन्होंने रामगढ़िया मिसल के साथ कई महीने तक लड़ाई जारी रक्खी थी। इसके बाद राजा संसारचन्द की सेना के भी छक्के छुड़ाये थे। छोटी-मोटी अनेकों लड़ाइयों में उन्हें सामना करना पड़ा।

प्रबन्ध करने में भी काफी चतुर थीं। उनकी रियासत मे कभी कोई बखेडा उनके जीवन मे खड़ा नहीं हुआ।

वीवी दीपकौर के सम्बन्ध में जितनी जानकारी हासिल होनी चाहिये। उतनी तो नहीं मिलती किन्तु सिखों की प्रत्येक स्त्री वीवी दीपकौर के नाम से परिचित है। उनके जीवन की एक ही घटना ऐसी है। जिस पर प्रत्येक स्त्री चलकर अपने धर्म की रक्षा कर सकती है और सुयश भी प्राप्त कर सकती है।

वीवी दीपकौर

यह घटना उन दिनों की है जब कि दशमेश जी आनन्दपुर मे ही रहते हुए अपने भक्तो को आध्यात्मिक अमृत चखाया करते तथा ज्ञान वर्षा से धर्म-हीन हृदयों को हरा किया करते थे।

दुआवा में तलवन नाम के एक गाँव मे सिख धर्म की प्रेमिका एक युवती रहती थी। यह गाँव उसका सासुरा था। नाम उसका था दीपकौर। उस गाँव मे दूसरे लोगों के हृदयों तक अभी गुरुमत का प्रकाश नहीं पहुँचा था। कुछ वे लोग डरते भी थे। क्योंकि उन्हें मालूम था। मुगल सरकार गुरु लोगों पर खफा हो रही है।

वीवी दीपकौर की इच्छा थी कि कोई संगत इस गाँव मे भी आये और यहाँ के लोगों को भी गुरुमत की शिक्षा देकर उनके हृदयों में प्रकाश करे।'

एक समय उसने सुना कि माझा की एक संगत जिसमें स्त्री पुरुष और बाल युवा सभी हैं। कल इधर से होकर आनन्दपुर जा रही है।

संगत जिस रास्ते से गुजरती वह तलवन से तीन चार मील के फासले पर था।

वीवी दीपकौर का पति घर न था। इसलिये खुद ही संगत को बुलाने जाने का इरादा किया और वह दूसरे दिन प्रातः ही उस मार्ग पर जा बैठी और संगत की बाट जोहने लगी।

लोगों मे आतंक फैलाने के लिये उन दिनों मुस्लिम शासकों की ओर से सैनिक जत्थे भी देहातों में घूमा करते थे। दैवात् उस दिन एक ऐसा ही जत्था उस रास्ते पर उधर से ही आ निकला- जिधर से

संगत आने वाली थी।

बीबी दीपकौर ने पहले तो यही समझा कि सगत आ रही है। किन्तु ज्योंही जत्था नजदीक आ चुका बीबी तुरक सवारों को पहचान गई और रास्ते से हट कर एक खेत मे बैठ गई।

उन दिनो मुस्लिम सैनिको की हिन्दू स्त्रियो के प्रति जैसी भावनायें रहती थीं। यह तो किसी से छिपी हुई बात नहीं है। जत्थेदार सैनिको को रास्ते पर ही खड़ा करके बीबी दीपकौर के पास पहुँच गया और घोड़े से उतर कर उसके पास ही बैठ गया।

उन दिना बीबी दीपकौर की उम्र केवल २० वर्ष की थी। रूप फूटा पड़ता था। जमीदार की लड़की शरीर की मजबूत और रंग की गोरी। सेनानायक बीबी के रूप को देखकर विचलित हो गया। पहले तो उसने बीबी दीपकौर से उनका पता ठिकाना पूछा। फिर उसने कहना शुरू किया। देखो, गुरुलोगों से तो बादशाह नाराज है। उनके शिष्य बागी समझे जाते हैं। उन लोगों के साथ किसी को कुछ भी ताल्लुक नहीं रखना चाहिये। आखिरी बात यह है कि मैं चाहता हूँ तुम्हारे जैसी सुन्दरी से मेरे घर की शोभा बढे। उठो, चलो घोडे पर बैठो। बीबी जी ने पहले ता उसे शाति के साथ ही समझाया। उन्होंने कहा, गुरुमत मे अपना दृढ़ विश्वास है। इसकी हमे कोई चिन्ता नहीं कि गुरुमत से बादशाह नाराज होता है या प्रसन्न। हमारा धर्म हमे सच्चरित्र रहने की शिक्षा देता है। तुम्हे जबान सभाल कर बोलना चाहिये।

जब जत्थेदार ने देखा कि यह लडकी सहज ही काबू मे आने वाली नहीं है तो उसने उन्हे पकड़ने को हाथ बढ़ाया। बीबी जी ने तुरन्त ही कमर से तलवार निकाल ली और सिंहनी की तरह झपट कर उसका सिर काट कर अलग फेक दिया। शीघ्र ही उसके हाथ से बन्दूक लेकर उसी के घोडे पर सवार हो गई।

अपने जत्थेदार की इस प्रकार हत्या होते देखकर शेष सैनिकों ने जो नौ की तादाद मे थे, बीबी जी पर हमला किया। उन्होंने दो को तो तुरन्त ही गोली का निशाना बनाया। घोडे की बाग मुँह मे दबाकर दो पर तलवार से हमला किया। उनमे से दो ने झपट कर बीबी जी पर बर्छे से वार किया। किन्तु वह वार साघातिक नहीं हुआ। इतने मे एक को और मार गिराया। दो भय से भाग गये। दो के साथ बीबी जी बड़ी फुर्ती से मुकाबिला कर रही थीं। इतने मे सगत आ पहुँची। उन दो का भी खात्मा कर दिया गया।

बीबी दीपकौर बच तो गईं। किन्तु उनके शरीर पर कई जख्म आये थे। इससे वे बेहोश हो गईं। सगत के लोगों ने उनके घाव ठीक किये और पट्टियाँ बाधी। फिर डोली मे डालकर सगत उन्हे आनंदपुर ले आई। एक अच्छे से स्थान पर सगत ने डेरा लगाये। वहीं बीबी दीपकौर को सुला दिया।

जिस समय दरबार लगा हुआ था। यह मांझा की संगत भी दरबार मे पहुँची। दशमेश जी चिल्ला उठे। अरे मेरी बेटी कहाँ है ? उन लोगों ने प्रार्थना की महाराज आपकी मुराद किससे है। गुरुजी ने फर्माया। वही मेरी प्यारी बेटी दीपकौर जिसने बहादुरी के साथ अपने धर्म की रक्षा की है।

गुरुजी की आज्ञा से बीबी दीपकौर जी को दरबार मे लाया गया। गुरु जी ने अपने हाथों से उनके घावों को धोया और मरहम पट्टी करके प्रेम से सर पर हाथ फेरकर बीबी जी को आशीर्वाद दिया।

उस दरबार मे खडे होकर बीबी दीपकौर ने अपनी आप बीती घटना को सुनाया। जिसे सुनकर लोगों के हृदय प्रेम से गद्‌गद् हो गये।

सिख लोगों मे बीबी दीपकौर के सतीत्व रक्षण मे की गई बहादुरी के आज तक विशेष समारोहों पर गीत गाये जाते है।

जिला अमृतसर मे पश्चिम की ओर चौंडा नाम का एक गॉव है। जिस घटना का हम जिक्र करना चाहते है वह सिखों की आरम्भिक कष्ट काल की है। इस गॉव मे बहादुरसिंह नाम के एक चौधरी रहते थे। जो सच्चे ईश्वर परस्त और गुरुमत-प्रेमी थे। इस इलाके में जो भी सिख थे। उनके जत्थेदार भी आप ही थे। सवत् १७८२ वि० की बात है। इनके पुत्र की शादी हो रही थी। किन्हीं कारणो से लडकी वाले यहाँ आकर शादी की रस्म अदा कर रहे थे। आस-पास के मिलने वाले सुदूर के रिस्तेदार जमा थे। इसी समय किसी ने आकर खबर दी थी कि माड़ी कम्बेह के गांव वालों की शिकायत पर मियॉ जफरबेग मारपीट करने के लिये आरहा है। वह वहाँ से कभी का चल चुका है। थोडी ही देर मे आया चाहता है।

बीबी धरमकौर

यह जफरबेग वही था जो भाई तारासिंह जी के यहाँ काफी पिट चुका था और खामख्वाह सिखो की जान का दुश्मन बना हुआ था।

सरदार बहादुरसिंह और दूसरे सिख घबराये नहीं और घबराते भी क्यों? जबकि इस तरह की घटनायें उनके लिये अब अचम्भे की चीज नहीं रही थीं। मजे मे विवाह का काम होता रहा। इतने मे जफरबेग ने भी चौंड़ा का घेरा डाल लिया। सरदार बहादुरसिंह ने अपने साथियों से कहा बहादुरो चलो देखते क्या हो? दुश्मन को मारे या शहीद बनें। सबने जोर से हमला किया किन्तु ईश्वर की माया कि वह दुश्मनों के पचासों आदमियों को मार काट कर साफ निकल गये। एक का भी बाल बाका नहीं हुआ।

इस प्रकार का नुकसान होने के बाद जफरबेग ने सरदार बहादुरसिंह के स्त्री बच्चों को सताकर बदला लेने की ठानी। इसलिये उसने बचे हुये पचास आदमियों से बहादुरसिंह के मकान को घेर लिया। घर में उस समय केवल २० स्त्रियॉ थीं। बीबी धरमकौर ने तुरन्त सामना करने का प्रबन्ध कर दिया। उसने दो स्त्रियां तो तलवार लेकर दरवाजे पर अड़ा दीं और दो दीवारों पर बर्छे देकर खड़ी कर दीं। दो स्त्रियों को रिजर्व सैनिकों के तौर पर खड़ा कर दिया। चौदह स्त्रियॉ छत पर चढ़ गईं जिनमे कि बीबी धरमकौर खुद भी थीं। छत पर से ईंट पत्थर और गोलियों से उन्होंने दुश्मनों का सामना किया।

बहुत देर तक सामना करते रहने पर जब ऊपर का सामान निबट गया और देखा कि दुश्मन हल्ला करके घर में घुसना चाहता है। बीबी धरमकौर हाथ मे तलवार लेकर नीचे कूद पड़ीं। कुछ और भी साथिन नीचे आईं। कई आदमियों को भूतल-शायी करके बीबी धरमकौर भी जमीन पर गिर पड़ीं। तलवार अब भी उनके हाथ में थी। इतने में जफरबेग ने देखा कि बस काम बन गया। वह चाहता था कि इसे घोड़े पर ले भागना चाहिये। बहादुरसिंह और तारासिंह की इसी मे नाक कट जायगी।

घोड़े से कूदने की आवाज से बीबी धरमकौर चौकन्ना हो गईं और ज्यों ही जफरबेग उनके पास आया, उन्होंने घुमाकर तलवार का एक जोर का हाथ जमाया। वह तलवार जफरबेग के हाथ में लगी जिससे झन्ना कर वह पछाड़ खाकर गिर पडा था। इतने मे उसके साथी झपट कर उसे उठा ले गये और घोड़े पर डालकर ले भागे।[1]

इस तरह सती धरमकौर ने जहाँ अपने धर्म की रक्षा कर ली, वहाँ अपनी कौम का नाम भी रख लिया। धरमकौर की तरह और भी सिंहनियाँ जख्मी हुई थीं किन्तु सब खुश थीं क्योकि उन्होंने आज अपने ही बल से अपने सतीत्व की रक्षा की थी। यह बीबी धरमकौर सरदार बहादुरसिंह जी की बहू थीं।

१. "बहादुर सिंहनियां" ले० सरदार सेवासिंह।

बीबी प्रधानकौर फत्तो रानी की ही पुत्री थीं इनका जन्म भदौड़ में सम्वत् १७१८ ई० में हुआ था। इनकी शादी पिंड रामदास में बाबा बुढ्ढा जी के खान्दान के लोगों में हुई थी। यह खान्दान रनधावा कहलाता था और इनके पति का नाम सरशामसिंह था।[1] आपके केवल एक ही सन्तान हुई थी वह भी मर गई। इसके कुछ ही दिन बाद आप विधवा हो गईं। इससे अपने पिता राजा आलासिंह जी के ही पास आ गईं और वहीं बरनाले में रहने लगीं। राजा आलासिंह ने तीस हजार सालाना की जागीर इनके गुजारे के लिये जिंदगी भर को इनके नाम करदी। जिसकी आमदनी से इन्होंने कई लोकोपकारी कार्य किये।

बीबी प्रधानकौर

बीबी प्रधानकौर की रुचि ईश्वर भजन और शुभ कार्यों की ओर थी। इसलिये आलासिंह जी ने इनकी शिक्षा और सलाह के लिये चूनिया के पास हरी गाँव तहसील कसूर के भाई निक्कासिंह को बुलाकर इनके पास रख दिया। भाई खुद बड़ी धर्मात्मा प्रकृति के पुरुष थे। संस्कृत और गुरुमुखी के निक्कासिंह विद्वान थे। अत: बीबी प्रधानकौर ने इनसे संस्कृत और गुरुग्रन्थ दोनों ही में अच्छी योग्यता कर ली।

बीबीजी ने भाई निक्कासिंह जी के लिये बरनाला और पटियाला में धर्मशालायें बनवाईं जो कि अब डेहरा बाबा गाधा के नाम से मशहूर हैं। बाबा गाँधासिंह इन्हीं भाई निक्कासिंह जी की पाँचवीं पुश्त में हुये थे किन्तु वे अपनी करामातो और अच्छे स्वभाव से काफी मशहूर हो गये। उनके नाम के अन्य स्थानों पर भी डेरे हैं।

बीबी प्रधानकौर अपनी जागीर की आमदनी का अधिकांश भाग लोक की भलाई के कामों में ही खर्च करती थीं। उन्होंने बरनाला में एक सदावर्त और एक संस्कृत पाठशाला कायम की थी।

संस्कृत में उन्होंने खुद ऐसी योग्यता हासिल कर ली थी कि उन्होंने वशिष्ठ पुराण[2] पर एक भाष्य लिखा था। जिसे छप गया बताते है।

बरनाले के डेरे साहब में एक हस्तलिखित गुरुग्रथ साहब हैं। यह बीबी वीरो के हाथ के लिखे हुये हैं। यह बीबी वीरो बीबी प्रधानकौर की सहेली थीं। प्रधानकौर जी ने इनका आनन्द धर्मसिंह जी रंधावा के साथ पढ़वा दिया था। और उन्हे हर प्रकार की मदद देती रहती थीं।

कहा जाता है बीबी वीरो के कोई सन्तान न थी इसलिये उसने गिल गोत के जाटो मे व्याही हुई अपनी बहिन के लड़के काहनसिंह को गोद ले लिया।

अधिक समय बीबी प्रधानकौर धार्मिक कामों मे ही लगाती थीं। राजधानी मे क्या होता है किसके हाथ में क्या ताकत है इन बातों पर बहुत ही कम ध्यान रखती थीं। फिर भी यह बात न थी कि वे मौका आने पर किसी काम को सम्भाल नहीं सकती थीं। एक बार उन्होंने टीनूमल के व्यवहार को ठीक करने के लिये हस्तक्षेप भी किया था। और उसे कैद भी करा लिया था किन्तु अंत मे बीबी साहबकौर की इच्छा के प्रतिकूल जाना उचित न समझ कर अपना रुख शासन प्रबन्ध की उलझनों की ओर से हटा लिया।

सन् १७८६ ई० मे बीबी प्रधानकौर का देहान्त हो गया।

आप सच्ची ईश्वर भक्त, धर्म-परायण, और साधु सतों की खातिर करने वाली राजकुमारी थीं।

१ 'पटियाला शाही घराने की शूरवीर बीबियां'। पे० २७ ले० आत्मासिंह।

२ सभवत. वशिष्ठ स्मृति।

और जहाँ तक हमे मालूम पड़ता है सिखों मे आप पहली ऐसी महिला थीं जो संस्कृत और गुरुमुखी दोनो मे काफी पाडित्य रखती हो।

वीबी राजेन्द्रकौर जी राजा आलासिंह जी की पोती और उनके द्वितीय पुत्र भूमियांसिंह जी की पुत्री थीं। इनका जन्म १७३९ ई० मे हुआ था। इनके पिता का देहांत जब कि ये केवल नौ वर्ष की थीं हो चुका था। राजा आलासिंह ने इनकी विधवा माता सहजादकौर के नाम अपने राज्य का चौथा भाग जागीर कर दिया था। वीबी राजेन्द्रकौर का विवाह राजा आलासिह जी ने सन् १८५१ ई० मे फगवाड़े के रईस चौधरी तिलोकचद जी के घर कर दिया था। दैवगति न्यारी होती है। थोड़े ही दिन वाद वीबी राजेन्द्रकौर विधवा हो गई। अपने पति से केवल इनके एक लड़की पैदा हुई थी। अपने पति की कुल जायदाद और माल की आप ही मालिक हुईं हालांकि कुछ दावेदार खड़े हुये किंतु आपस मे ही लड़कर खत्म हो गये।

वीबी राजेन्द्र कौर

वीबी राजेंद्रकौर के पास बहुत बड़ी धनराशि थी। जब अहमदशाह अब्दाली को खिराज मे रुपया देने के लिये राजा आलासिंह को जरूरत पड़ी आपने सत्तर हजार रुपये देने का साहस दिलाया था।

राजा आलासिंह की तरह महाराजा अमरसिंह को भी भट्टी मुसलमानों से बराबर लड़ना पड़ा। एक गरीबदास नाम के सरदार ने इन्हीं दिनों पंजोर पर कब्जा कर लिया। जब कि अमरसिंह जी भाटियों से लड़ रहे थे। मनीमाजरे की लड़ाई के वाद महाराज अमरसिंह जी ने गरीबदास और उसके हिमायती हरीसिंह सियालबेवाले पर चढ़ाई की। हरीसिंह के सहायक रामगढ़िया जस्सासिंह और गुरदत्तसिंह, और साहबसिंह आदि कई मिसलपति थे। इन सबने इकट्ठे होकर पटियाला की फौजों पर हमला कर दिया। जिसमे ३०० से ऊपर आदमी पटियाले के काम आये और वे लूट-पाट भी कर ले गये। इस घटना से महाराज वड़े क्रोधित हुये और उन्होंने अपने समस्त भाई-बन्धुओं और रिश्तेदारों को रण-निमत्रण भेजा। फगवाड़े से वीबी राजेंद्रकौर भी लगभग ३०० सैनिक लेकर पटियाला पहुँचीं। कैथल आदि से भी सहायता आई। इसका फल यह हुआ कि छोटी-मोटी लड़ाइयों के वाद हरीसिंह सियालवा से राजीनामा हो गया।

महाराजा अमरसिंह ने वीबी राजेंद्रकौर की इस सहायता और बुद्धिमानी के लिये हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की।

महाराजा अमरसिंह जी के स्वर्गवास के समय महाराजा साहबसिंह छोटी उम्र के थे। केवल छः वर्ष के। वीबी राजेंद्रकौर ने पटियाला पहुँच कर दीवान नानूमल को वजीर मुकर्रिर किया और सारा राज-प्रबन्ध अपनी बुद्धिमानी से जॅचा दिया।

किंतु दो तीन वर्ष वाद ही पटियाला मे गडवड़ पैदा हो गई। कुछ हकदार खड़े हो गये और उन्होंने बगावत मचा दी। इनमें किलेदार शार्दूलसिंह की रानी खेमकौर और सोभासिंह धारीवाल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। माई हुक्मा महाराज साहब की देख-भाल करती थीं। उनके मरते ही विद्रोह हो गया। राज्य मे चारों ओर अराजकता छा गई। और दीवान नानूमल जी को गिरफ्तार कर लिया गया।

जब यह समाचार फगवाड़े मे वीबी राजेंद्रकौर को मिले तो वे तुरत ही सेना लेकर पटियाला आईं। वहाँ पहुँचकर सारी स्थिति की जानकारी हासिल की और वास्तविकता को जानते ही दीवान नानूमल को कैद से छुड़ाकर उसे फिर से वजीर बनाया।

कहा जाता है कि राजेंद्रकौर कुछ ही महीने पटियाले मे न पहुँचती तो राज्य को भारी क्षति पहुँ-

चाने वाली हालत वहाँ पैदा हो जाती ।

दीवान नानूमल को राजेन्द्रकौर ने जेल से छुड़ाकर वजीर बना तो दिया लेकिन खजानें में रुपया तो मालगुजारी और लगान से आता था। देहात के लोग तो यह चाहते ही थे कि राज्य मे झगड़ा रहे। इसी मे उन्हे लाभ भी दिखाई देता था क्योंकि राज के जागीरदार और अहलकार उन्हे बहकाते रहते थे। बीबी राजेन्द्रकौर आसपास के राजा रईसों को दंड दिलाने के लिये मरहठा सरदार धाराराव को जो कि दिल्ली के आसपास था बुला भेजा।

धाराराव की मरहठा सेनायें थानेसर, कैथल होते हुये अम्वाले की ओर आगई। इधर के सरदारों ने पटियाला का जो हिस्सा दवा लिया था उसे वापिस कराया। जो लोग खिराज और माल गुजारी नहीं दे रहे थे उन्होंने मराठों की लूटपाट के डर से चुकाने में हीला-हुज्जत करना छोड दिया। इसी तरह कुछ रुपया भी हाथ आया।

धीरे-धीरे नानूमल का प्रभाव फिर वढ़ गया। और अब वह महाराज, बीबी और उनके दूसरे साथियो की भी परवाह नहीं करने लगा। क्योंकि मरहठों से उसकी दोस्ती हो चुकी थी। उसने वसतसिंह नाम के किलेदार को जो बीबी राजेन्द्रकौर और महाराज का शुभचिन्तक था कैद कर लिया। इससे बीबी राजेन्द्रकौर को बड़ा दुख हुआ। अब वह भी नानूमल की विरोधी हो गई।

नानूमल समझता था कि मरहठों के डर से बीबीजी दवेंगी किन्तु उन्होंने मरहठों के ही लिये कह दिया कि हमें अब उनकी जरूरत नहीं है और न हम उनको खिराज के तौर (चौथ) देंगे। हाँ लड़ाई का खर्च हम जरूर दे देगे।

इस प्रकार लड़ाई की नौवत भी आ गई। मरहठा बीबीजी से नाराज हो गये। उनकी कुछ फौजे भी आ चुकी थीं। दीवान मरहठों के पास चला गया। इधर बीबी जी ने उसके पुत्र देवीदत्त को नजरबंद करा दिया। क्योंकि वे समझती थी कि इस तरह वह कोई दगा न कर सकेगा। किन्तु मामला उल्टा हुआ। दीवान नानूमल अपने पुत्रों को छुड़ाने के ३०००० मरहठों सैनिकों को पटियाला पर चढ़ा लाया। मरहठों ने बहादुरगढ़ पर कब्जा कर लिया। इस बीच बीबी राजेन्द्रकौर ने राजधानी पटियाला मे बहुत सारी सेना इकट्ठी कर ली। छुटपुट हमले भी मरहठों के साथ हुए। इससे मरहठा सेनापति समझ गया कि बीबी राजेन्द्रकौर को डर दिखा कर नहीं दवाया जा सकता। अत में यह तय हुआ कि बीबी मथुरा जाकर महादजी सिंधिया से तय कर आवे। वहाँ से वे जो हुक्म ले आवेंगी उसके अनुसार ही मामला निपट जायगा।

बीबी जी मथुरा गईं। वहाँ उनकी सिंधिया ने काफी आवभगत की। और मामला डेढ लाख रुपया नकद पर निवट गया। किन्तु बीबी जी के पास रुपया कहाँ था। वे पटियाला पहुँच कर देने का वायदा कर आईं।

इधर अहलकार लोगों ने महाराज साहवसिंह जी को भड़का दिया कि बीबी जी तो इस प्रकार अपना प्रभुत्व बनाये रखना चाहती हैं। दीवान नानूमल भी उनसे माफी मांगने को फिरता है। इससे आप के हाथ मे अभी राज्य की वागडोर नहीं आनी है। चुगल लोगों की वातों का साहवसिंह जी पर असर हो गया और उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे राजेन्द्रकौर से अब कोई वास्ता नहीं रक्खेंगे। और राज्य प्रबध भी उन्होंने अपने हाथ मे ले लिया।

जब मथुरा से राजेन्द्रकौर लौट कर आईं तो उनका किसी प्रकार का स्वागत-सत्कार नहीं हुआ।

महाराज कई बार बुलाने पर भी उनके पास नहीं गये। उधर वे मरहठों से जो वायदा कर आई थीं। उसके लिये भी उन्हें दुख हुआ। अत: इन मानसिक वेदनाओं से वे बीमार पड़ गईं और उसी बीमारी में चल वसीं।

बीबी साहबकौर महाराज अमरसिंह जी की पुत्री थीं इनका जन्म सन १७७१ ई० मे रानी राजकौर के उदर से हुआ था। राजा साहब इन्हीं के छोटे भाई थे। आपकी शादी सन १७७७ ई० मे कन्हैया मिसल के नायक सरदार हकीकतसिंह के पुत्र जयमलसिंह के साथ हुई थी। जयमलसिंह इनसे एक वर्ष बडे थे और फतहगढ़ में उनके बाप का सदर मुकाम था।

बीबी साहबकौर

बीबी साहबकौर के पिता राजा अमरसिंह जी का देहान्त १७८१ ई० मे हो गया। उस समय आपकी उम्र १० साल और आपके भाई की ७ साल की थी। यह हम पहले लिख आये हैं कि आप के भाई राजा साहबसिंह को राजकाज मे बीबी राजेन्द्रकौर जोकि उनकी बुआ होती थीं मदद देती रहीं। बीबी राजेन्द्रकौर का भी सन् १७९१ ई० देहान्त हो गया। उस समय राजा साहबसिंह जी की उम्र लगभग १७ साल की हो चुकी थी और बीबी साहबकौर २० वर्ष की हो चुकी थीं।

पटियाला के अहलकारों में धड़ाबन्दी थी। वे आपस मे एक दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश मे रहते थे। महाराज साहब के आगे भी लड़भिड़ बैठते थे। अलाहीबख्श का खून उनके कैम्प मे ही किया गया था। इन बातों मे महाराजा साहब घबरा गये। जैसे तैसे उन्होंने दो वर्ष तो निकाले किन्तु परिस्थिति बिगड़ती जा रही थी। इसलिये सन् १७९३ ई० मे आपने अपनी बहिन साहबकौर को बुला लिया और उन्हें ही वजीर के कुल अधिकार दे दिये। वजारत हाथ मे आते ही बीबी साहबकौर ने सब से पहले अधिकारियों में हेर फेर किया। अपने विश्वास के लोगों को रक्खा। बाकी झगड़ालू और अविश्वस्त लोगों को निकाल दिया। उन्होंने सरदार तारासिंह को तो अपना नायब बनाया और दीवान नानूमल के भतीजे दीवानसिंह को दीवान मुकर्रर कर दिया। दूसरे ओहदों पर भी इसी प्रकार की नियुक्तियाँ कर दीं। इस प्रकार उन्होंने पार्टीबाजी को खतम करने का तरीका अख्तियार किया। जो लाभदायक भी रहा।

जबकि पटियाला मे बीबी साहबकौर इस प्रकार का प्रबन्ध करने में लगी हुई थीं। उसी समय फतहगढ़ में उनके पति जयमलसिंह को उसके चचेरे भाई फतहसिंह ने कैद कर लिया। कैद करने का विवरण इस प्रकार है। सरदार हकीकतसिंह और महताबसिंह दोनों भाई थे। इनमें हकीकतसिंह के लड़के का नाम जयमलसिंह और महताबसिंह के लड़के का नाम फतहसिंह था। जब हकीकतसिंह और महताबसिंह दोनों भाई मर गये तो उनके पुत्रों मे जमींदारी के बटवारे के लिये झगड़ा हुआ। जब तक बीबी साहबकौर फतहगढ़ रहीं तबतक तो वे झगड़े को दबाती रहीं किन्तु उनको इधर पटियाला में फँसा देख कर सरदार फतहसिंह ने सरदार जयमलसिंह को कैद कर लिया।

जब यह समाचार बीबी साहबकौर को पटियाला से मिला तो वे पटियाला से सेना की एक टुकड़ी लेकर फतहगढ़ पहुँचीं। भाभी और देवर की सेनाओं मे खूब लड़ाई हुई। साहबकौर अपनी सेना का खुद ही संचालन करती थीं। देवर हार गया और उसकी सेना भाग खड़ी हुई वे अपने पति को छुड़ा कर और फिर मजबूत प्रबंध करके पटियाला लौट आईं।

उनकी इस बहादुरी का पटियाला मे भी बड़ा असर हुआ। इधर के जो लोग सिर उठाने की तैयारी मे थे वे झिझक गये।

दीवान दीवानसिंह अपने काम में लापरवाह और सुस्त था और पार्टीबाजी मे भी दिलचस्पी लेता था, अत: साहबकौर ने उसे हटा दिया और उसकी जगह रामदयाल को दीवान बनाया। इस प्रकार वे सरकारी आदमियों के कारनामों पर कड़ी नजर रखती थीं। साथ ही वे इस बात का ख्याल रखती थीं कि अहलकार लोग प्रजा को अनुचित तरीके से डरा धमका कर रिश्वत आदि में उसे लूटे नहीं। जमींदारों से मिलने-जुलने की उन्होंने खुली छुट्टी देदी। प्रजाजन उनके पास सीधे जाकर शिकायतें कर सकें, इसका उन्होने ऐलान कर दिया। जार्ज टामसन का जिक्र पिछले अध्यायों में आ चुका है। वह किस प्रकार मरहठों की सेना का अफसर हुआ और फिर किस प्रकार उनसे अलग होकर उसने पंजाब मे अपनी हकूमत की नींव डाल दी। इन बातों को यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं।

टामसन बराबर लूट मार करता था और उसी से अपनी सेना का खर्च चलाता था। उसे पंजाब की रियासतों को लूटने का एक मौका हाथ आया। पंजाब के राजा लाहौर मे इकट्ठे हुये। नादिरशाह के आक्रमण के समय अपनी रक्षा के सम्बन्ध में विचार करने के लिये। टामसन ने इसे अपने लिये एक मौका समझा और वह जीन्द राज्य मे घुस आया। जब तक जीन्द नरेश लाहौर से लौटे वह राजधानी तक पहुँच गया। फिर भी जीन्द की सेना कई दिन तक लड़ती रही।

उधर बीबी साहबकौर ने देखा यह दुश्मन आज जीन्द को तबाह करता है। कल पटियाला को भी लूटेगा। इससे अच्छा यही हो कि उसे जीन्द पर चढ़ाई करने का मजा चखाया जाय और इस समय दो ताकतें उसे हरा भी सकेंगी। अतः उन्होंने एक मजबूत सेना लेकर जीन्द की ओर कूच कर दिया।

दो सेनाओं के बीच में घिरने पर टामसन बड़ी बहादुरी से लड़ा किन्तु आखिरकार उसे विजय होने के कोई लक्षण दिखाई नहीं दिये। उसके खुद के मुकाबिले पर बीबी साहबकौर आ गईं। अत: युद्ध सचालन के काम मे उसे सहूलियत नहीं रही। और उसकी सेना भाग खड़ी हुई। इस प्रकार इस युद्ध में बीबी साहबकौर की विजय हुई।

इस विजय से जहा उनका प्रभाव और आतंक बढ़ा। वहाँ जीन्द राज्य के साथ मुहब्बत के ताल्लुकात भी बढ गये। पटियाला के पार्टीबाज जागीरदार और अहलकारों के दिल मे बीबी जी की दहशत और बढ़ गई।

नाहन की राजपूत रियासत मे उस समय राजा कर्मप्रकाश राज्य करता था। उसके राज्य म मौजीराम नाम के एक रईस ने बगावत उठा रक्खी थी। उसके साथ बहादुर डाकुओ का एक दल था। वह बहुत कोशिश करने पर भी नहीं दबाया जा सका। तब राजा कर्मप्रकाश ने बीबी साहब कौर को याद किया। वे अपनी फौजे लेकर नाहन पहुँची। मौजीराम अपने दल-बल के साथ मुकाबिले पर आया। बड़ी बहादुरी के साथ लडा किन्तु सिखों के आगे उसके आदमी ठहर न सके। बीबी साहब ने उसकी शक्ति को छिन्न-भिन्न कर दिया और जिन स्थानों पर उसने कब्जा कर लिया था वे सब राजा साहब नाहन के कब्जे में कर दिये। राजा कर्मप्रकाश बीबी साहब का बड़ा अहसानमन्द हुआ। उसने बड़ी २ कीमती चीजें बीबी जी को भेट दीं और उन्हे चार महीने तक नाहन मे रखा।

हरिद्वार के कुम्भ के मेले पर भी बीबी जी को अपने धर्म की रक्षा के लिये जाना पडा और उन साधुओं को दड देना पड़ा। जिन्होंने उदासीन संत सतोपसिंह और प्रियतमदास के सैकड़ों साथियों का जुलूस निकालने के विवाद मे मार डाला था।

सन् १७६४ ई० मे बीबी साहबकौर जी को एक कठिन मोर्चा लेना पडा और वह मोरचा मरहठों

से हुआ। १५००० फौज के साथ मरहठा सरदार अन्नाराव और लक्ष्मनराव सिख राज्यों से चौथ वसूल करने के लिये पंजाब मे आ घुसे। छोटे २ जागीरदारों का तो कहना ही क्या था किन्तु जीन्द और कैथल के राजाओं ने भी चौथ देकर अपना संकट टाल दिया।

किन्तु बीबी साहबकौर इस चौथ के झगड़े को अपमान और सदा के लिये दिक्कत समझती थीं अतः उन्होंने पंजाब के सभी छोटे २ सरदारों को लिखा कि आप हमारी मदद को आवे। अगर हम मरहठों से जीत गये तो हमारा और आपका क्लेश मरहठों से सदैव के लिये मिट जायगा।

मराठों की सेना अधिक थी और उसके संचालक भी सुलझे हुए सेनानायक थे। अतः सिख फौजें धीरे-धीरे पीछे की ओर हटने लगीं और संभव था कि थोड़ी देर मे भाग निकलतीं। बीबी साहबकौर को मालूम हो गया कि सिख सिपाहियों पर मरहठों का रौब गालिब हो गया है। वरना इनके आगे मरहठे हैं क्या चीज? कहाँ पंजाब के तगड़े जवान और कहां वे नाटे-नाटे मरहठा। उन्होंने अपना घोड़ा आगे बढ़ाया और अपनी सेना को सम्बोधित करके कहने लगी। "बहादुरो! यह क्या कर रहे हो क्या तुम्हारी माताओं ने इसी दिन के लिए दूध पिलाया था। तुम कैसे मर्द हो। देखो मैं स्त्री हूँ। किन्तु तुमको विश्वास दिलाती हूँ। शरीर की बोटी-बोटी उड़ जाने पर भी मैं रण से पीछे कदम नहीं उठाऊँगी। आओ मैं आगे बढ़ती हूँ। और जरूर बढ़ूगी। क्या आप मुझे छोड़ कर भाग जाओगे। लोग आपको क्या कहेंगे यही न कि अच्छे मर्द हो तुम। एक औरत तो मैदान में डटी रही और तुम मैदान से बाहर भाग आये। क्या आप अपने महाराज की बहिन और अपनी बेटी को लडाई मे अकेली छोड़ कर भाग जाओगे।" इतना कह कर उन्होंने तलवार खींची और आगे की ओर बढ़ीं। फिर क्या था 'वाहि गुरुजी की फतह का नारा लगा कर सिख डट कर लड़ने लगे। दिन भर लड़ाई हुई। कोई भी न हारा। रात हुई और लड़ाई बन्द की गई।

रात के समय बीबी के कैम्प मे रईसों और सेनानायकों की सभा हुई। सबने यही कहा कि कि एक तो मरहठों के पास सेना ज्यादा है। दूसरे युद्ध के तरीके वे खूब जानते हैं। अतः जब यह निश्चय है कि हमारी हार होगी तब उचित यही है कि रातों रात हम अपनी सेनाओं को यहां से बचा ले चलें किन्तु बीबी जी भागने पर हर्गिज तैयार नहीं हुई और उन्होंने उसी समय कालीरात मे ही महरठों पर छापा मारना निश्चय किया। उन्होंने कहा मरहठा फुर्तीले हो सकते हैं। लड़ने मे हुशियार भी होंगे किंतु वे पंजाबियों जैसे मजबूत नहीं है। अतः दिन भर की लड़ाई से वे जरूर थक कर अब सो रहे होंगे। निदान ऐसा ही हुआ। मरहठों की थकी और सोती हुई सेना पर आक्रमण कर दिया गया। मरहठे वीर भले ही थे किंतु चारों ओर से जब दुश्मन उनके बीच मे घुस चुका था तब क्या करते आखिर उन्हें भागना ही पड़ा। क्योंकि उन्हे यह भी ख्याल हो गया था कि सिखों के पास और ताजा सेनायें आगई दिखती हैं।

इस प्रकार हिम्मत और बुद्धिमानी से काम लेने के कारण बीबी साहबकौर को विजय मिल गई।

इस लड़ाई के बाद उनका नाम और भी मशहूर हो गया।

सन् १८६५ ई० मे बीबी जी को बेदी साहबसिंह और नवाब मालेरकोटला के बीच मे पड़ना पड़ा। क्योंकि उसने गौ-वध करना आरम्भ कर दिया था और इस प्रकार की अफवाह फैलाई बेदी ने साहबसिंह ऊना वालों ने। सिख बेदी साहब की बातों पर विश्वास करते ही थे। अतः बीबी साहबकौर ने अपनी सेना मालेरकोटला के साथ युद्ध करने भेज दीं। किंतु महाराज कर्मसिंह जी के साथ नवाब की जो संधि हुई थी। उसके अनुसार उन्हें नवाब की मदद करनी चाहिए थी किंतु धर्म के मामले मे

उन्हें खिलाफ होना पड़ता तो वे पीछे न रहीं। दैवयोग से नवाब बीबी साहबकौर की सलाह को मान गया और उसने बेदी साहबसिंह से समझौता कर लिया।

बीबी जी के उपरोक्त इतिहास में घटनाओं का कुछ हेर-फेर लेखक करते हैं। जार्ज टामसन और नाहन के विवरण को मरहठों के युद्ध से पीछे भी माना जाता है। हमारा मत भी यही है कि जार्ज टामसन से झगड़ा मरहठों की लड़ाई के बाद ही हुआ।

जब बीबी साहबकौर का प्रभाव इस प्रकार बढ़ रहा था तो स्वार्थी लोगों ने महाराज साहबसिंह के कान भरने शुरू किये और एक दिन आया कि दोनों भाई-बहिनों में गहरा मनमुटाव हो गया। और महाराज साहब ने अपनी बहिन पर निम्न इल्ज़ाम लगाये —

(१) बीबी जी ने राजा कर्मप्रकाश नाहन द्वारा दी गई हथिनी को अपनी निजी संपत्ति बना लिया है हालांकि वह फौजी सहायता के बदले में मिली है।

(२) बिना ही महाराज से आज्ञा लिये बीबी जी ने अपनी जागीर भेरिया में एक किला बना लिया है।

(३) साथ ही उन्होंने भेरिया का नाम अपनी ही मरजी से उभयवाल रख दिया है।

(४) बीबी जी महाराज के जो पुत्र हुए उनसे खुश नहीं हुई हैं।

(५) महाराज साहब को यह विश्वास हो गया है कि बीबी जी उनकी आज्ञाओं की कोई परवाह नहीं करतीं।

बस यहीं से दोनों भाई-बहिनों में गहरा मतभेद हो गया। महाराज साहबसिंह ने एक बार तो यहां तक कृतघ्नता करने की हिम्मत की कि कुछ फौज अपनी बहिन की जागीर पर कब्जा करने को भेजना तय कर लिया किन्तु सरदार दलसिंह आदि के समझाने से वह ऐसा तो न कर सके।

एक बार उन्हें पटियाला बुलाकर कैद करने की भी कोशिश की गई किंतु उस समय वह अपनी बुद्धिमानी से निकल गई।

जार्ज टामसन ने भाई बहिन की लड़ाई से लाभ उठाने के इरादे से पटियाला पर धावा करने का इरादा किया। इस डर से महाराज ने फिर मेल कर लिया।

अंतिम दिनों बीबी जी अपनी जागीर उभयवाल में ही रहने लगी थीं किंतु उन्हें अब जीवन से अधिक दिलचस्पी नहीं रह गई थी। वह अपने भाई के बदले हुए रुख को देख कर सदा ही नाराज रहती थीं। आखिर सन् १८०१ ई० में उभयवाल में ही उनका देहांत हो गया।

बीबी साहबकौर बहादुर थीं। बुद्धिमान थीं और थीं हिम्मतवाली। इन बातों से भला कौन इनकार कर सकता है। साथ ही सब किसी को यह भी मानना पड़ता है कि पटियाला राज्य की वे रक्षक भी थीं।

बीबी जी के एक पुत्र पदा हुआ था। जो छोटी ही उम्र में मर गया। इसलिए सन् १८०१ ई० में बीबी साहबकौर जी के देहांत के बाद उनके पति जयमलसिंह जी ने दूसरी शादी कर ली। जयमलसिंह के उस दूसरी सरदारनी से एक लड़की चदकौर नाम की पैदा हुई। यही चदकौर महाराजा रणजीतसिंहजी के पुत्र खड्गसिंह जी के साथ ब्याही गई थीं और इन्हीं चंदकौर के उदर से महाराज नौनिहालसिंह का जन्म हुआ था।

बीबी साहबकौर ने मलवई बुंगा अमृतसर में अपने विश्वासपात्र सरदार तारासिंह जी द्वारा

कई मकान बनवाये थे।

दान-पुण्य मे भी बीबी जी की अच्छी रुचि थी। बहादुरी मे तो पटियाला घराने मे वे अद्वितीय मानी जाती हैं।

लाहौर के हाकिम मीर मन्नू ने सिखों के सताने मे हद कर दी थी। इस बात को तो प्रत्येक भारत-वासी जानता है। उसके समय मे जहाँ सिख पुरुषो के सिरों पर कीमत लगा दी गई थी। वहाँ स्त्रियो और बच्चो के साथ भी काफी बेरहमी की गई थी। मलापुर की बहादुर सिंहिनियों पर उसके द्वारा जो रोमांचकारी जुल्म ढाये गये। उन्हीं का यहाँ हम संक्षिप्त-सा वर्णन करते है।

मलापुर की वीरागनायें

सन १७४७ ई० की बात है। उसके यहाँ देहात से पकड़ी हुई सिख स्त्रियों का एक गिरोह लाया गया। इल्जाम उन पर यही लगाया गया कि इनके खाविन्द हुकूमत के खिलाफ गिरोह बना कर लूट-मार करते फिरते हैं और यह उनके लिये जगलों मे खाना पानी पहुँचाती हैं।

मीर मन्नू ने उन्हे उस प्रसिद्ध कोठरी मे डलवा दिया जो इसी काम के लिये मशहूर हो चुकी थी। धूप के समय उन्हे बाहर निकाल कर प्रत्येक से १८-१८ सेर चना पिसवाने का और भूखी प्यासी रखने का हुक्म दिया गया। और कहा गया कि अगर यह इस्लाम कबूल करलें तो छोड दिया जायगा।

उन्हें इस प्रकार बराबर चार दिन तक तकलीफे दी गई। गर्मी के दिनों मे धूप में बिठाकर चक्की चलवाना और रात को कोठरी मे बन्द कर देना। यह कितनी भयंकर सजा है। सुनने मात्र से ही रोमांच हो आते हैं। चौथे दिन मीर मन्नू खुद उनके पास गया और उनसे इस्लाम कबूल करने की बात कही, उन मर्दानी सिंहिनियों ने जवाब दिया। जिस इस्लाम मे तेरे जैसे नराधम और शैतान पैदा होते हैं जो स्त्रियों पर इस प्रकार का जुल्म कर सकते हैं। इस प्रकार के धर्म का हम नाम भी नहीं सुनना चाहतीं।

हमे बेतों से पिटवा कर भूख और प्यास से परेशान करके धर्म से नहीं डिगाया जा सकता। हमें तो यह सौभाग्य ही होगा कि अपने धर्म पर कुर्बान हों, जिससे गुरुओं के चरणों मे स्वर्ग मे हमे स्थान मिले।

अत्याचार करने वाला कोई भी फला-फूला हो। ऐसा कभी दुनिया मे हुआ नहीं है।

यदि तेरे इन्सानियत होती, तेरे साथियों के दिल मर नहीं गये होते तो हमारे इन बच्चों को जो अभी दूध और पानी पर ही जीते हैं। इस प्रकार निढ़ाल न होना पड़ता। हम इनका तड़पना देख रही हैं। हमारे माता के हृदय हैं। हृदय चीत्कार कर उठते हैं किन्तु हम धर्म पर अटल रहेंगी चाहे जो कुछ हो।

हमें यह भी विश्वास है कि हम तेरी जेल से मुक्त होंगी। हमारे आदमियो को पता चलेगा तो प्राणों की बाजी लगा कर भी हमे छुड़ा ले जायगे और यदि हमारे प्राण तुरकों के हाथ से जाते हैं तो देश में ऐसी आग धधकेगी जो मुसलमानी हुकूमत को राख कर देगी।

मीर मन्नू सिंहिनियों के मुंह से इस प्रकार बातें सुन कर आग-बबूला हो गया। उसके सिपाहियों ने डंडे, लात और घूसों से सिंहिनियों पर हमला कर दिया। उनकी गोद के बच्चे आसमान की ओर उछाल कर बर्छियों से छेद डाले। इसके बाद यह कहता हुआ वह चला गया कि और सोच लो वरना तुम्हें भी भालों की नोंक पर टांग दिया जायगा।

दूसरे दिन मीर मन्नू शिकार को गया हुआ था। उसका घोड़ा एक जानवर को देखकर बिदक गया। वह घोड़े पर से गिर पड़ा किन्तु एक पांव रकाब में उलझा हुआ रह गया। घोड़े ने उसे घसीट-घसीट कर मार डाला। इस प्रकार उसको इन जुल्मों का फल मिल गया।

उधर जब सिखों ने सुना कि उनकी स्त्रिया इस प्रकार गिरफ्तार करके लाहौर ले जाई गई। उन्होंने प्राणों का मोह छोड़कर हमला कर दिया और उस कारावास को तोड़ डाला। लेकिन उनके दिल कांप गये जो कुछ उन्होंने भीतर जाकर देखा उसमें। बच्चों के टुकड़े इधर उधर पड़े हुये थे और स्त्रिया प्राय बेहोश पडी थीं। किसी २ के गले में बच्चों की अन्तडिया पडी थीं जिन्हें मीर मन्नू के आदमी डाल गये थे।

सिख उन देवियों को घोड़ों पर बिठाकर लाहौर से द्रुत गति के साथ निकल गये।

इधर मीर मन्नू की स्त्री पहले तो भागकर दिल्ली पहुँची वहाँ उसे एक ऊँचे ओहदेदार ने अपने घर मे रख लिया किन्तु वह फिर वहाँ से लाहौर में आई इस प्रकार बेचारी को अपने पति के पापों का दण्ड भोगना पड़ा।

हमने इन वीर सिंहिनियों को मुलापुर शीर्षक से इसलिये याद किया है कि मीर मन्नू के कर्मचारियों ने गिरफ्तार करके इन्हे मलापुर मे ही इकट्ठा किया था। यह विभिन्न इलाकोंसे इकट्ठी की गई थीं और इनकी तादाद लगभग २०० थी।

जिन लोगों ने लाहौर के शहीदगंज को देखा है वह अनुमान कर सकता है कि उस गहरे तहखाने मे जहाँ हवा भी मुश्किल से पहुँचती है। गर्मी के दिनो मे २०० स्त्री-बच्चों को कितना सकट रहा होगा। कलकत्ते की वह काल कोठरी जिसे अग्रेज आज तक याद रखते है। शहीदगज के तहखाने की बराबर कभी भी कष्टदायक नहीं रही होगी। धर्म का प्यार भी इसे ही कहते है। वह धर्म ही क्या जिस पर चलने वालों को तकलीफे बरदास्त न करनी पड़ी हों या जिसकी नींव मे बलिदानों का इतिहास न हो।

सिख धर्म को यह गौरव है कि उस पर पुरुष स्त्री और बच्चे सभी ने अपनी बलि चढा कर उसे समुन्नत किया है।

उसी का यह फल है कि आज भी सिख समाज के स्त्री, पुरुष और बच्चे सभी मे अपने धर्म के लिये गहरी श्रद्धा और गौरव है।}

डल्ले वाली मिसल मे सरदार तारासिंह जी एक बडे बहादुर सरदार हुये हैं। कहा जाता है कि प्रसिद्ध आक्रमणकारी बादशाह नादिरशाह छुटपन मे बकरिया चराया करता था और वह बकरियाँ चराने वाला नादिरशाह दिग्विजयी वीरों मे गिना जाने लगा।

सरदार रतनकौर

इसी प्रकार सरदार तारासिंह जी भी आरम्भ मे बकरिया ही चराया करते थे किंतु अमृत चखने के बाद वह ऐसे शूरवीर बन गये कि उन्होंने लगभग आठ लाख आमदनी के इलाके को अपने कब्जे मे कर लिया।

सरदारनी रतनकौर इन्हीं बहादुर सरदार की धर्मपत्नी थी। जब सरदार साहब का देहान्त हो गया तो महाराजा रणजीतसिंह जी मातमपुर्सी के बहाने आपके वहाँ पहुँचे। सरदारनी ने भी महाराज का उचित सत्कार किया उन्हे शहर (राहूँ) से बाहर ठहरा दिया और उनके लिये भेट मे पाच घोड़े, हाथी का एक जजीर और छः लाख रुपये पेश किये और कहलाया कि महाराज हमारी जागीर पर सदैव कृपा दृष्टि रक्खें किन्तु महाराज चाहते थे कि इतनी बड़ी जागीर जो कि पांच लाख रुपये सालाना आमदनी

की है इसे अपने राज्य में मिलालें। अत. उन्होंने बुद्धिमानी से किले पर कब्जा करने के लिये सरदारनी के पास खबर भेजी कि हम किले को देखना चाहते हैं। इस पर सरदारनी ने कहला भेजा मैं सब समझती हूँ। किला तो सहज ही महाराज को न दूंगी। महाराज के पास यह खबर भेज कर उधर किले में लड़ाई की तैयारी करा दी। यह घटना १८०७ ई० की है।

पूरे दिन भर सरदारनी लड़ती रहीं उन्होंने सैनिकों का नेतृत्व खुद किया किन्तु शाम के समय एक नमकहराम ने किले का फाटक खोल दिया। इस प्रकार उनका किला पराजित हो गया।

महाराजा रणजीतसिंह जी भी वीरता से खुश हुये। अत. उन्होंने उनके गुजारे के लिये कई गांव छोड़ दिये। पीछे १८०८) माहवार नकद पेन्शन जीवन भर देते रहे। सन् १८४९ मे इस वीरांगना का देहान्त हो गया।

यह कोट समेर के रईस सरदार बख्शासिंह जी की धर्मपत्नी थीं। समेर उन दिनों भटिंडा के ही जिले से सम्बन्ध रखता था। भटिंडा के सरदार जोधसिंह और राजा आलासिंह में एक घनघोर लडाई हो चुकी थी। कारण यह था। जोधासिंह ने राजा आलासिंह के दुश्मन चौधरी गेंडेराम[1] की लड़की से शादी कर ली। गैंडेराम भवानीगढ़ का मालिक था। सन् १७४९ ई० में राजा आलासिंह और गेंडेराम मे युद्ध हुआ था। कहा जाता है कि गेंडेराम ने अपनी लडकी की मगनी (सगाई) कैथल के गुरुबख्शसिंह के साथ कर रक्खी थी। किन्तु जब उसने देखा कि कैथल का गुरुबख्शसिंह तो आलासिंह का दोस्त है। उसने अपनी लड़की की शादी बजाय गुरु बख्शसिंह के जोधसिंह के साथ कर दी।

सरदारनी राजू

सरदार जोधसिंह पर इसी अपराध मे राजा आलासिंह ने चढ़ाई कर दी। जोधसिंह ने इस बहादुरी से मुकाबिला किया कि आलासिंह के होश फाख्ता हो गये। अतः उसने बुढ़ासिंह के दल को मदद के लिये बुलाया तब कहीं जोधसिंह काबू मे आया। कहा जाता है। यह लडाई बराबर तीन महीने तक चली थी।

सुलह मे सरदार जोधसिंह को बहुत सारा इलाका आक्रमणकारियों को देना पड़ा। यह घटना १७५९ ई० की है।

सरदानी राजू अथवा राजकौर इन्हीं जोधसिंह की के स्थानापन्न सुखचैनसिंह साबू गोत के जाट की लड़की थीं।

सुखचैनसिंह भी बड़ा बहादुर सरदार था। इस पर आलासिंह के उत्तराधिकारी राजा अमरसिंह ने चढ़ाई की। एक साल तक लड़ाई होती रही। उसके बाद संधि होगई। सुखचैनसिंह को केवल १२ गाँव रहने दिये गये।

राजा अमरसिंह के मरजाने के बाद और भवानीगढ़मे विद्रोह होनेपर सरदारनी राजूने भी विद्रोह कर दिया। जब दीवान नानूमल चढ़कर आया तो इसने उसको मुकाबिला बड़ी बहादुरी से किया और उसे निराश होकर लौट ही जाना पड़ा।

आखिर विवश होकर नानूमल को समेरी के पास ही एक गढ़ बनवाना पड़ा। जिसमें फौज सरदारनी के मुकाबिले के लिये रख दी गई।

१. चाहिल गोत के जाट।

अम्वाले के सरदार गुरुबख्शसिंह जी जिन्होंने कि अपने समय मे काफी ख्याति प्राप्ति की थी। जब मर गये तो उनकी रानी दयाकौर राज-काज को चलाने लगीं। सन १८०७ ई० मे महाराजा रणजीतसिंह ने अम्वाले का दौरा किया। उस समय उन्होंने कुछ नजराना देकर उन्हे टरका दिया। किन्तु महाराज की इच्छा तो अम्वाले को ले लेने की थी।

रानी दयाकौर

रानी दयाकौर प्रवन्ध करने में चतुर थीं। वे रियासत का काम भली प्रकार चलाती थीं और प्रजाजन भी उनसे खुश थे किन्तु दूसरे वर्ष महाराजा रणजीतसिंह फिर अम्वाला आ धमके। अब उनके साथ काफी सेना थी। रानी दयाकौर उनके इरादे को जान गई। उन्होंने लड़ाई के लिये तैयारी की। किन्तु दूसरी ओर उन्हे यह भी पता था कि इधर अंग्रेज बढ़े चले आरहे है। उन्होंने सोच लिया कि आखिर राज्य तो अपने पास रहना नहीं है। इससे तो अच्छा यही हो कि अंग्रेजों के बजाय सिखो के ही पास रहे।

किला उन्होंने खाली कर दिया। महाराज ने वहाँ का प्रवन्धक गंडासिंह सानी को बनाया।

रानी दयाकौर ने अपने अतिम दिन भजन-पूजा मे काटे।

जैसा उनका नाम था, वैसी ही उनमे दया थी। इसलिये उनके मां बाप ने उनका नाम दयाकौर रक्खा था।

अकालगढ़ मे सरदार दलसिंह का आधिपत्य था। दलसिंह ने सरदार महासिह सुकरचकिया के साथ मिल कर इतनी उन्नति की थी। किन्तु महासिंह के मर जाने के बाद वह साहबसिंह भंगी का साथी बन गया। महाराजा रणजीतसिंह को यह बात अखरी उन्होंने दलसिंह को लाहौर बुलाकर कैद कर लिया।

सरदारनी धर्मकौर

सरदानी धर्मकौर इन्हींकी धर्मपत्नी थीं। ज्योही उन्हे यह समाचार मिला वे ताड गई कि महाराजा रणजीतसिह अकालगढ़ पर जरूर हमला करेगा। अत. उसने किले के दरवाजे बन्द करा दिये और सैनिकों को हथियार ठीक करने का हुक्म दे दिया।

हुआ भी यही महाराजा रणजीतसिंह जी अपनी सेनाये लेकर अकालगढ पर चढ़ गये। किन्तु उन्हे अकालगढ़ लेना मुश्किल हो गया। घेरा डाल दिया गया। दोनों ओर से तोपे चलती थीं। सरदारनी घूम २ कर किले की देखभाल करती थी। इससे भी बढ़कर काम उन्होने यह किया कि साहबसिंह के पास फौजे भेजने को आदमी भेज दिया।

महाराजा रणजीतसिंह को इस बात का पता चला गया। अतः उन्हेने अकालगढ पर से घेरा उठाकर साहबसिह को अकेला जा घेरना उचित समझा। चार दिन की लड़ाई के बाद साहबसिंह और महाराज मे संधि होगई। उस संधि के अनुसार महाराज ने दलसिंह को छोड़ दिया।

दलसिंह अकालगढ़ पहुँचा और उसने अपनी सरदारनी की इस प्रकारकी बहादुरी और बुद्धिमानी की प्रशसा की। किन्तु अपनी कैद होने के दु.ख से उसका दिल शर्मिन्दा हो गया था। अतः वह चंद ही दिन में इस ससार से चल बसा। पति के इस प्रकार स्वर्गवास से सरदारनी धर्मकौर को भी बडी विरक्तता हुई और जब दुबारा महाराजा रणजीतसिंह अकालगढ़ आये तो उसने उन्हे किले की चाबियाँ देदीं। महाराज ने भी उनके जीवन-निर्वाह के लिये दो गाँव उनको जिंदगी भर के लिये बिना खिराज के देकर उनका सन्मान किया।

भंगी सरदारों में अमृतसर पर सरदार गुलाबसिंह का अधिकार था। लोहगढ़ में उनका महल था।

सरदार गुलावसिंह के देहान्त होते ही महाराजा रणजीतसिंह सेना लेकर अमृतसर पहुँच गये। अपनी रियासत का प्रवन्ध सरदार गुलावसिंह की स्त्री सुक्खां करती थीं। महाराज ने उनके पास खवर भेजी कि तोप जमजमा हमें दे दी जायं तो हम वापिस लौट सकते हैं। भाई सुक्खां ने कहला भेजा। तोप तो वाहुवल से प्राप्त की गई थी और तभी दी जा सकती है जव हमारी वाहुओं का वल घट जायगा।

माई सुक्खा

महाराज तो तैयार होकर आये ही थे। उन्होंने किले को चारों ओर से घेर लिया और कहलवा दिया कि अव हम भी वाहुवल से ही ले जावेंगे। माई सुक्खा भी तो आखिर शेरनी थी। लड़ाई हुई और कई दिन लगातार हुई और उस समय तक उन्होंने दरवाजों से महाराज के सैनिकों को नहीं घुसने दिया जव तक कि किले की दीवारें गोलों की मार से ढह नहीं गईं।

फिर भी माई ने आत्म समर्पण नहीं किया अपने पुत्र को साथ लेकर वरसते हुये पानी में कड़कती हुई विजली की रोशनी का सहारा पाकर किले से साफ निकल गईं और जोधसिंह रामगढ़िया के पास सहायता देने को कहा किन्तु उसकी हिम्मत महाराजा रणजीतसिंह जी से लड़ने की न थी। अत उसने मध्यस्थ का काम किया और महाराजा रणजीतसिंह जी को सुलह के लिये तैयार कर लिया।

किला और शहर अमृतसर महाराज के हाथ रहे और उन्होंने माई सुक्खां और उनके लड़के के लिये कुछ गॉव जागीर में छोड़ दिये।

सिख लेखकों ने लिखा है कि अमृतसर अपने अधिकार मे आने से महाराज ने विजय उत्सव मनाया था और वहुत कुछ दान-पुण्य भी किया था।

कैथल के भाई खान्दान का भी प्रताप एक दिन काफी वढ़ गया था। कैथल एक राज्य वन चुका था। महाराजा रणजीतसिंह जी के समय कैथल मे राजा लालसिंह, राज्य करते थे। आप के दो पुत्र हुये एक उदयसिंह और दूसरे प्रतापसिंह, दोनों ही पुत्रों का राजा लालसिंह जी ने शान के साथ विवाह किया किन्तु दैव की मर्जी दोनों ही लावारिस मर गये। राजा लालसिंह जी के स्वर्गवास के वाद उदयसिंह की रानी महतावकौर ने अपने राज्य की वागडोर संभाली। उदयसिंह जी को अच्छे-अच्छे मकान वनाने और वाग लगवाने का वड़ा शौक था किन्तु परमात्मा ने उन्हें मौका ही नहीं दिया। कैथल राज्य की उस समय चार लाख सालाना की आमदनी थी जवकि रानी महतावकौर के हाथ मे राज्य आया। यह घटना सन् १८४६ ई० के अंतिम दिनों की है।

रानी महतावकौर

रानी महतावकौर स्वाभिमाननी और वीर प्रकृति की स्त्री थीं। उन्हें अपने प्रवंध में अंग्रेजों का हस्तक्षेप अखरा। अंग्रेज तो धीरे-धीरे कैथल पर हाथ साफ करना चाहते थे किन्तु उन्हें चालाकी से काम निकालने की वजाय मैदान में ही आना पड़ा। रानी महताव कौर भी अपनी सेना के साथ लड़ाई के लिये तैयार हो गईं। अंग्रेजो की सेना से उनकी सेना लड़ी तो वहादुरी से किन्तु आखिर वह छोटी सेना कर क्या सकती थी। रानी महतावकौर ने भी भागना ही उचित समझा ताकि वे वाहर से सेनायें लाकर अंग्रेजों से लड़ायें क्योंकि रुपये का उनके यहाँ घाटा नहीं था। किन्तु भागने मे वे सफल नहीं हो सकीं। अंग्रेजी सेना ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। और पौदा नामक गॉव मे उनके पति द्वारा वनवाई गई भव्य कोठी में उन्हें वीस हजार सालाना की पेंशन देकर नजर वन्द कर दिया। कहा जाता है आजीवन उनके हृदय में एकवार फिर लड़ने की साध रही।

पंजाव में जहॉ, अंग्रेजों ने सर्व प्रथम अपनी सुदृढ़ छावनी डाली थी और जहॉ सिखों ने अंग्रेजों

को भारत से उखाड़ फेंकने के लिये प्रबल युद्ध किया था। इसी फीरोजपुर जिले में अब से करीब एक सौ वर्ष पहिले रानी लक्ष्मणकौर का राज्य था।

रानी लक्ष्मणकौर

सुकरचकिया मिसल में सरदार महासिंह जी के साथ एक सरदार धन्नासिंह थे। वही फीरोजपुर के आसपास के इलाके के रईस बन गये। जब महाराजा रणजीतसिंह गद्दी पर बैठे तो इन्होंने उनकी सेना के साथ रहकर काफी साथ दिया। महाराज भी इनका खयाल रखते थे। फीरोजपुर उनका खिराजगुजार बन गया था। एक बार वे खुद भी खिराज लेने के लिये फीरोजपुर आये थे। रानी लक्ष्मणकौर ने उस समय महाराज का काफी स्वागत-सत्कार किया क्योंकि इस समय तक सरदार धन्नासिंह मर चुके थे और अब प्रबन्ध उनकी सरदारनी लक्ष्मणकौर ही करती थीं। उनका बहुत कुछ इलाका आस-पास के रईसों ने दबा लिया था। अतः महाराज उसे भी वापिस करा गये।

जब महाराज ने देखा कि अंग्रेज बराबर पंजाब की ओर पैर बढ़ाते चले आरहे हैं और वे कोई ऐसा समझौता करना चाहते हैं जिसके अनुसार हमारी सेनायें सतलज के नीचे की ओर न जा सकेंगी। अतः सन्धि होने से पहले महाराज ने फीरोजपुर को भी अपने राज्य में मिला लेने का विचार किया। लक्ष्मणकौर को जो उस समय तक सरदारनी ही कहलाती थीं। अंग्रेजों ने बहका लिया और उन्हें रानी का खिताब देकर स्वतन्त्र हो जाने की उनसे घोषणा करा दी।

रानी लक्ष्मणकौर शासन करने में निपुण थीं, दयाशील थीं। सिख-धर्म में प्रेम रखती थीं किन्तु इतना कहना पड़ेगा कि वे अधिक चतुर न थीं। उसी का नतीजा यह हुआ कि महाराजा रणजीतसिंह जी के बाद, रानी लक्ष्मणकौर का राज्य अंग्रेजों ने अपने कब्जे में कर लिया। फिर भी हम उन्हें अच्छे शासक के रूप में तो याद कर ही सकते हैं।

पंजाब केसरी महाराजा रणजीतसिंह जी की बहुत प्यारी रानी और खालसा राज्य की अधीश्वरी महारानी जिन्दा को हम भारत की दूसरी लक्ष्मी कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। यह ठीक है कि वे रानी लक्ष्मी की तरह अंग्रेजों से युद्ध में नहीं लड़ीं। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि अंग्रेजी राज्य को उखाड़ने के लिये उन्होंने जो प्रयत्न किये उनके बाद रानी लक्ष्मी के सिवा किसी भी भारतीय राज-रानी ने नहीं किये।

महारानी जिन्दा

औलका के जाट सरदार मन्नासिंह की पुत्री और सरदार जवाहरसिंह जी की बहिन थीं। महाराज रणजीतसिंह जी इन पर बहुत प्यार करते थे। वास्तव में आप बहुत सुन्दरी थीं। आपका शरीर सुगठित और रंग उज्ज्वल था। चेहरे पर वैसा ही तेज था जैसा राजरानी के हुआ करता है। स्वभाव गम्भीर, विचार सुलझे हुए और प्रभावशाली लेखिका और बोलचाल का ढंग सौम्य था।

१६, २० वर्ष की उम्र में आप महाराज के राजमहलों में आई थीं। २१ वर्ष की उम्र में आपके एक सुन्दर और सलौने राजकुमार का जन्म हुआ। जिसकी ग्रीवा लंबी मजबूत स्कन्ध और बड़ी-बड़ी आंखें थीं। इस राजकुमार का नाम दिलीपसिंह रक्खा गया। और जिसके कारण ही एक दिन जिन्दा रानी से राजमाता और चन्द ही दिन बाद बृटिश राज्य के चाकरशाहों की निगाह में विद्रोही समझी गईं।

राजपुरुष और दरबारियों की लगभग पौन दर्जन आदमियों की हत्या हो जाने के बाद दरबारियों ने उनके सुकोमल राजकुमार दिलीपसिंह जी को गद्दी पर विठाया। सो इस इच्छा से नहीं कि महाराज दिलीपसिंह के राजत्व-काल में शान्ति और अमन कायम रहे तथा राज्य की जड़ मजबूत हो किन्तु इस

इच्छा से उन्हें गद्दी पर बिठाया गया कि बालक राजा की राजगी में राज्य के कर्त्ता-धर्त्ता हम बिना किसी दस्तन्दाजी के रहें और मनमाने ढंग से इस विशाल राज्य का उपयोग करें। इस स्थिति में महारानी जिन्दा सिख-समाज और सिख-राष्ट्र के मंच पर आईं।

महाराज दिलीपसिंह के भी कैसे भाग्य थे-उन्हे तीन बार राजतिलक किया गया। एक बार राजा शेरसिंह को मारने के बाद सिन्धानवालों ने, दूसरी बार सिन्धानवालो का दमन कर के ध्यानसिंह के लड़के हीरासिंह ने और तीसरी बार खालसा सेना को परास्त करके अंग्रेजों ने। महारानी जिन्दा ने हर बार इस तमाशे को देखा। उन्होंने हर किसी पर विश्वास भी किया किन्तु उसके प्रति उन सभी का अविश्वास रहा। यह उनके भाग्य की विचित्रता थी।

हम इस इतिहास का आरम्भ वहां से करते है जब शेरसिह के मारे जाने और सिंधानवालों के दमन के बाद दूसरी बार महाराज दिलीपसिंह गद्दी पर बिठाये गये। महारानी जिन्दा ने राज काज में दिलचस्पी लेना आरम्भ कर दिया।

एक दिन[1] उन्होंने अपने भाई जवाहरसिंह से कहा कि सब दरबारियों को साथ लेकर पलटनों में जाओ और महाराज के वास्ते पलटनों का अभिवादन कराओ। जब महाराज पलटनों मे पहुँचे तो सभी पलटनों ने प्रेम से उनको सलामी दी। महारानी जी ने ऐसा इसलिये किया कि वह चाहती थीं कि पलटन के लोगों के दिल मे महाराज के प्रति प्रेम बढे। हुआ भी ऐसा ही कर्नल महताबसिंह व जनरल महिमासिंह की जो दो पलटनें सिरफिरी हो रही थीं। महाराज को देखकर उन्होंने भी भक्ति के साथ सिर झुकाया।

इसी प्रकार की महारानी जिन्दा की और भी अनेकों बातें हैं। जो कि उनकी निपुणता, निर्भीकता न्याय-प्रियता और बुद्धिमानी की परिचायक हैं।

सम्वत् १६०२ के वैसाख की ही बात है अमृतसर के हिंदुओं ने आकर महारानी जी के सामने अर्ज की कि राजमाताजी! अमृतसर मे हिंदू मुसलमानों मे एक कुएँ पर पानी भरते समय झगड़ा होगया वह कुआं हिंदुओं का ही है। पास ही में एक मन्दिर भी था जो इस बात की साक्षी है किंतु हिंदू उस पर मुसलमानों को भी पानी भरने से रोकते नहीं थे। अब झगड़ा हो जाने के बाद मुसलमानों ने आवाज उठाई कि कुआं हमारा है। हीरासिंह जी जो अमृतसर के प्रबधक है। उन्होंने रिश्वत लेकर कुएँ के पास के मन्दिर को तुड़वा दिया है और कुआ मुसलमानों को बता दिया है। मुसलमान वहाँ मसजिद बनाने की तैयारी में हैं। हिंदुओं ने इस विरोध मे हड़ताल कर रक्खी है। महारानी जी ने सही घटना को समझ लिया उन्होंने हिंदू पंचों को मंदिर बनवाने के लिये तो पाँच सो रुपया दे दिये और जवाहरसिंह को बुलाकर हुक्म दिया कि हीरासिंह को वहाँ से तुरन्त हटा दो प्रजा के साथ इस प्रकार का अन्याय बर्दाश्त नहीं किया जा सकेगा।

वास्तव मे वे प्रजा के आगे अपने पारिवारिक लोगों के हित का कुछ भी खयाल नहीं करती थीं। एक बार फौज के कुछ पंच इकट्ठे होकर उनके पास गये। उन्होंने कहा, राजामाता जी महाराज जिस समय हाथी पर चढ़कर बाहर निकला करें तो जवाहरसिंह उनके साथ न बैठा करें। हम उनसे राजी नहीं है। महारानी ने तुरन्त ही कहा ठीक है। इसमे तो कोई हर्ज नहीं। अपने महाराज के बराबर मे तुम चाहे जिसे बैठने दो चाहे जिसे नहीं। दूसरे दिन उन्होंने अपने भाई से कह दिया कि वह अवश्य दिलीपसिंह का

१. वैसाख सम्वत १६०२

मामा है किन्तु महाराज दिलीपसिंह की बराबरी में बिना सिखों को खुश किये उसे नहीं बैठना चाहिए। प्रजा के प्रति प्रेम की एक और घटना सुनिये। महारानी जी के पास खबर आई कि शहर में बीमारी फैल रही है और लोगों का विश्वास है कि कुछ ब्राह्मणों को भोजन कराया जाय तो शांति हो। महारानी जी ने हुक्म दे दिया। अच्छा पचास ब्राह्मण रोज पूजापाठ करें, उनका खर्च हम देंगे। इसी प्रकार एक बार दुकोहर गाँव के जमीदारों ने आकर शिकायत की कि हमारी फसल को अकालियों के एक दल ने लूट लिया। महारानी ने तुरन्त ही हुक्म दिया कि एक फौजी दस्ता जाकर इस बात की जांच करें। पल्टन के वहाँ पहुँचने पर अकालियों के जत्थे ने अपना कसूर मान लिया और कहा हमने भूख से विवश होकर ऐसा किया है। सेना के प्रमुख ने महारानी के दिये हुये रुपयों में से कुछ तो जमीदारों के नुकसान का दे दिया। बाकी अकालियों को देकर हिदायत कर दी कि महारानी जी अपनी प्रजा को किसी के भी द्वारा पीड़ा देना पसंद नहीं करतीं।

सेना के जिन सरदारों को किसी कारण दण्ड दिया जाता था। महारानी उनके साथ भी न्याय का ही बर्ताव करतीं। जब उन्हें मालूम हुआ कि कुमेदान सरदार महिमासिंह कैद में हैं। उन्होंने महाराज को तोशा खाने में भेजकर उसे छुड़ा दिया और महाराज ने उसे उपहार भी दिया।

यदि कोई उनके हुक्म की उदूली करता था तो उसके साथ में सख्ती का भी व्यवहार करतीं थीं। जब इन्हीं कुमेदान ने उनके हुक्म को फाड़ डाला जो उन्होंने सेना के नाम जवाहरसिंह की सलाह मानने के लिखा था—तो आपने आज्ञा दी। उन आदमियों की इतनी बेइज्जती करो ताकि फिर किसी को इस प्रकार का हौसला न हो सके।

अपने भाई जवाहरसिंह के साथ उनका स्नेह था और वे उस पर विश्वास भी करती थीं। वे डोगरा लोगों या गैर सिखों का बहुत ही कम विश्वास करती थीं। एक बार उन्होंने सेना के पंचों से कहा था। अगर आप लोग जवाहरसिंह को अपना वजीर बनालें तो इससे मुझे राज करने में बहुत सुविधायें प्राप्त हो जॉय। दूसरे लोगों के सामने बहुत सी बातें खुलकर मैं नहीं कह सकती हूँ और न उनसे निजी मामलात पर विचार ही किया जा सकता है। अगर आपलोग मेरी बात मान लेंगे तो मैं आपके बालक महाराज के राज्य और आपकी भलाई के बहुत से काम कर सकूंगी।

खेद है कि सिख सेना ने जयचदों के बहकावे में आकर एक दिन महारानी के भाई जवाहरसिंह जी को मार डाला। इससे महारानी को बहुत ही ज्यादा दुःख हुआ। उनकी आँखें रोते२ सूज गईं। उनने हाथ-पैर जमीन पर पटक मारे। सेनानायकों ने बहुत ही उनकी खुशामद की। तब कहीं अपने भाई की लाश को जलाने के लिये दिया।

वे परमात्मा से प्रार्थना करके उस दिन की बाट देखने लगीं। जब उनका प्यारा पुत्र दिलीप बालिग हो जाय और मजबूती के साथ दरबारियों की जालसाजियों और सेना की उद्दंडता का दमन करके अपनी प्रजा को खुश करने लायक शासन कर सके।

किन्तु "मेरे मन कछु और है करता के कछु और।" वाली कहावत हुई और सन् १८४५ई० खतम होते न होते ही सिखों और अंग्रेजों की जंग छिड़ गई और विजय होते ही अंग्रेजों ने घोषणा कर दी। अब सिख राज्य स्वतंत्र नहीं रहेगा। उसका सचालन हमारी सलाह के अनुसार होगा। हम लाहौर पहुँच कर नये सिरे से शासन की व्यवस्था करेंगे। यह घोषणा २० फरवरी सन् १८४६ को की गई थी।

युद्ध के दंड में स्यालकोट और काश्मीर उनके राज्य से निकल गये। कौंसिल का प्रेसीडेंट भी एक अंग्रेज ही वनाया गया। थोड़े ही दिनों मे दो तीन सधियॉ गढ़ी गईं और अव महारानी जी को महलों के अन्दर विठा दिया गया। राज काज से उन्हे कतई अलग कर दिया गया। फौज भी काफी घटा दी गई। अव जितनी रही उसमे कौम परास्तों की सख्या वहुत थोड़ी थी।

अव महारानी जिन्दा के सामने यह दूसरा सकट आ गया। जो पहले से वहुत भयानक था। फिर भी उन्होंने धैर्य वाधा और इस जाल मे से अपने राज्य को मुक्त करने के लिये वे कुछ विश्वस्त लोगों के साथ सलाह-मशविरा करने लगी। प्रजा का उनकी ओर आकर्षण वढे इसलिये आप वहुत-कुछ दान-पुण्य भी करने लगीं। किंतु अंग्रेज कुछ कम चालाक नहीं होते। रेजीडेंट को इन वातों मे सन्देह हो गया और उसने एक पत्र लिखकर महारानी जी को न केवल सरदारों से मिलने में ही सीमा निश्चित करने की सलाह दी। किन्तु दान-पुण्य मे कमी करने और उन्हे राजपूत रानियों की तरह पर्दे में रहने की सलाह दी।

यद्यपि मूलराज भी पिछले दिनो सिख राज्य के साथ विश्वासघात कर चुका था। किंतु अंग्रेजों से चौकन्ना वह भी हो गया था। महारानी ने उसके साथ कोई विगाड़ करने की नहीं सोची। किंतु उसके यहॉ अपनी दासियॉ राजी खुशी के समाचार लेने भेजीं। महारानी जिंदा की यह वाते उनकी राजनीतमत्ता को सूचित करती हैं। किंतु रेजीडेंट ने इस वात की भी महारानी जी से कैफियत तलव करली।

सन् १८४७ की १६ वीं अगस्त को उन्हे शेखूपुरा के किले मे भेज दिया गया और मासिक वृत्ति भी केवल चार हजार मासिक कर दी गई। महाराजा दिलीपसिंह अपनी माता से अलग होकर वड़े दु.खी हुये। मॉ के हृदय की व्यथा को तो कहा ही कैसे जा सकता है। उन्होंने शेखू पुरा मे पहुँचते ही दूसरे दिन राजी खुशी के समाचार खाने को मिठाई और खेलने को तोते भेजे। रेजीडेंट को यह वात भी अखरी और उसने कुछ दिन के वाद महारानी को ताकीद करदी कि वह महाराज के पास सीधा कोई समाचार नहीं भेज सकतीं। इस आदेश को पाकर महारानी जिंदा एक ठंडी सांस लेकर चुप हो रहीं।

इसके कुछ ही समय वाद मुल्तान मे गड़वड़ी फैल गई। मूलराज अंग्रेजों से विगड़ गया। महारानी ने इस सम्वंध के समाचार जानने को दो आदमियों को भेजा। अंग्रेजो ने उन्हे दैवात लड़ाई मे पकड़ लिया। उन्हे तो प्राणदण्ड दे दिया गया। किंतु इस घटना का अर्थ यह लिया गया कि मुल्तान विद्रोह में महारानी जिंदा का भी हाथ है। उनका हाथ रहा हो या नहीं। किंतु इसमें सदेह नहीं अंग्रेजों के लिये महारानी जिंदा के हृदय मे कोई सहानुभूति शेष नहीं रही थी। वह उन्हें घर मे घुसा हुआ सॉप समझ चुकी थीं।

इन वातों से इनकार नहीं किया जा सकता कि शेखू पुरा पहुँचकर भी उन्होने सरदारों से मिलना जुलना नहीं छोड़ा वह उनके हृदय को टटोलती रहीं। सेना के लोगों को भी वुलातीं रहीं। इन वातों का भी रेजीडेंट कैरी को पता चलगया और उसने साहवसिंह आदि सरदारों को वुलाकर वुरी तरह से डाटा।

महारानी जिंदा को भी यह वात असहनीय थी। उन्होंने सरदार जीवनसिंह को अपना वकील वनाकर कलकत्ता लाट साहव के पास इसलिये भेजा कि क्या रेजीडेंट को महारानी जिंदा के ऊपर इतने कडे प्रतिवंध लगाने का अधिकार है। किंतु गवर्नर ने जो उत्तर दिया वह निहायत वेहूदा था। जो उसकी दुर्भावनाओं को व्यक्त करने वाला है। गवर्नर ने कहा "चूंकि रानी जिंदा ने अपनी दरख्वास्त में अपने को महाराजा रणजीतसिंह की विधवा और महाराज दिलीपसिंह की मॉ कह कर सम्वोधित किया है। अत. वे मुझसे कुछ आशा न करें।

इसके बाद महारानी जिन्दा के लिये पंजाब से बाहर निकलने का हुक्म जारी कर दिया गया मक्कार रेजीडेंट ने उस हुक्म पर महाराज दिलीपसिंह की मुहर लगवा दी। १४वीं जून को हडसन और लिमसडन नाम के दो अंग्रेज कुछ सैनिकों के साथ शेखूपुरा भेज दिये गये।

महारानी ने रेजीडेंट का पत्र पढा। उसमें लिखा था 'आप के पास यह दो अंग्रेज आ रहे हैं आप को शेखूपुरा से बाहर ले जावेंगे आप इनके साथ हो लें। कोई दुर्व्यवहार आप के साथ न होगा। हमारी सरकार का यही इरादा है कि आप शेखूपुरा छोड दें। महारानी ने उस समय बडे धैर्य का परिचय दिया वे रोई नहीं, न उन्होंने अपने होश को खोया।

जब पंजाब की सीमा से बाहर हुईं तो उन्होंने हडसन से कहा, रेजीडेंट से कह देना। महाराजा रणजीतसिंह जी की विधवा के साथ अंग्रेज सरकार जो भी कर रही है वह शायद अच्छा ही कर रही होगी।

बनारस में उन्हे रक्खा गया मेजर मेकग्रेगर उनके रक्षक नियुक्त किये गये। यहाँ कुछ दिन बाद उन्हें बताया गया कि पंजाब में आप एक भीषण षडयन्त्र अंग्रेजी राज्य को उखाड़ने के लिये रच रहीं थीं। आप के दस्तखतों की ऐसी कई चिट्ठियां भी पकडी गई हैं। इस अपराध में आपके पास जितने भी जेवर और नकद रुपये हैं वह सरकार के हवाले कर दो और अब आपको पेंशन भी केवल एक हजार रुपये सालाना मिलेगी। इस बात को सुनकर महारानी स्तब्ध हो गईं, उनके पैर के नीचे से जमीन धसकने लगी। पिंजडे में बंद सिंह केवल दहाड मार कर अपने क्रोध को प्रकट करके रह जाता है उसी तरह महारानी अपने ओठ चबा कर चुप हो रहीं। उनके पास से लगभग पचास लाख के जेवर और नकद दो लाख रुपये जमा करा लिये।

महारानी के देश निकाले के समाचारों से सिख विक्षुब्ध हो उठे और वह चिल्लाने लगे। जब हमारी राजमाता पंजाब से निकाल दी गई है तो हम अंग्रेजों का साथ नहीं दे सकते। हम मूलराज के साथ मिलकर लडेंगे। ये जो हमारे सरदार इस समय भी अंग्रेजों के साथ हैं। हम इन्हें छोड़ देंगे। सेना में शहर में और देहात में एक ही चर्चा और उत्तेजना फैल गई और इस सबका जो फल हुआ वह था सिखों का दूसरा युद्ध। महारानी जिंदा के राज्य में चार लाख सिख रहते थे। उनमें से साठ हजार बागी हो गये। यदि उस समय महारानी जिंदा बाहर होतीं तो वे अवश्य रानी लक्ष्मी की तरह उनका नेतृत्व करतीं और वे फिर बता देतीं कि वह महाराजा रणजीतसिंह का ही अर्द्धांग हैं किंतु शोक है कि बनारस के मकान में उन्हे इन समाचारों से भी अनभिज्ञ रक्खा गया।

साथ ही उनके साथ कठोर से कठोर व्यवहार भी किया जाने लगा। उनसे किसी को नहीं मिलने दिया जाता था। वह किस प्रकार खर्च करती हैं। इसकी भी जाँच रक्खी जाने लगी। महारानी जिंदा के इन कष्टों को लक्ष्य में रख कर अंग्रेजों के ही पत्र 'इंगलिश मैन' ने लिखा था। "इस नारी के साथ जैसा कठोर बर्ताव किया जा रहा है वह हमारे जातीय कलंक का एक उदाहरण है।"

जीवनसिंह ने न्यूमार्च नामक एक अंग्रेज को वकील बना कर महारानी की पेंशन बढवाने के लिये कोशिशे कीं किंतु वे सभी बेकार हुईं। टालमटूल की नीति से कोई भी ध्यान नहीं दिया गया। चूँकि बनारस धार्मिक स्थान था। वहाँ प्रत्येक प्रांत के हिंदू इकट्ठे होते थे। महारानी जिंदा के समाचार उनके कानों तक सही रूप में नहीं तो अफवाह के तौर पर तो पहुँचते ही थे। इसलिये उन्हें बनारस की बजाय चुनार में रख दिया गया।

सहन करने की कोई हद होती है। इसके अनुसार महारानी जिन्दा ने वहुत सहा। उनके हृदय मे इस वात के लिये आग धधक उठी कि किसी प्रकार अंग्रेजों से इन अपमानों का वदला लिया जाय। अत. वे चुनार के किले से निकलीं। और भटकती-भटकती नैपाल पहुँचीं। नैपाल के महाराज ने उनका अच्छा स्वागत-सत्कार किया। उनके रहने का भी प्रवन्ध कर दिया और वीस हजार सालाना उनके लिये खाने-पीने को पेन्शन नियुक्त कर दी। किंतु महारानी जिस उद्देश्य से गईं थीं वह पूरा न हुआ। भला अंग्रेजो से लड़ने की हिम्मत कौन कर सकता है। जव अंग्रेजों को पता लगा तो वे वड़े आश्चर्य मे हुये और उन्हे भय भी पैदा हुआ। इसलिये वे हृदय से इस वात की इच्छा करने लगे कि महारानी नैपाल से वापिस लौट आयें। उनके खर्चे के लिये तीन हजार मासिक का प्रवन्ध कर दिया जायगा। इस काम के लिये सम्भव है अंग्रेजों ने ही एक अपरिचित आदमी को महारानी के हितैपी के रूप मे खड़ा कर दिया और उससे महारानी जिंदा से भारत मे लौटने और उचित पेंशन देने की दरख्वास्त दिलादी। इस समय तक महाराज दिलीपसिंह को राज्य छीन कर पञ्जाव से वाहर निकाल दिया गया था यहाँ तक उन्हे ईसाई भी वना लिया और उसके वाद वह इगलिस्तान जा चुके थे।

वास्तव मे मनुष्य जव विपत्ति मे फँसता है और कोई उसका सहायक नहीं होता है तो उसे अनेकों भूल करनी पड़ती हैं। महारानी की भी यह भूल थी किंतु यह सव उनके कुदिन करा रहे थे।

उधर महाराज दिलीपसिंह जी ने अपनी माता की इस इस प्रकार की कष्ट-कथा सुनी तो वे भारत आने को तैयार हुए और अंग्रेजों ने की अवसर से लाभ उठाने के लिये उन्हे इजाजत दे दी।

जनवरी सन् १८६१ ई० मे महाराज भारत आये कलकत्ते के स्पेनिस होटल मे उन्हे ठहराया गया। चन्द दिन वाद महारानी जिन्दा वुलाई गईं। दोनों मां-वेटा, वाप-वेटे, गले से चिपट कर रोये। एक दूसरे की हालत को देख कर दुखी हुये।

वेटे के स्नेह से महारानी जिंदा विलायत जाने को राजी हो गईं। वे इंगलैण्ड चली गईं किंतु वहाँ का रहन-सहन उन्हें पसन्द नहीं आया। वे उसी वेश मे रहीं जो उनका हिंदुस्तान में था। प्रात-सायं वे अपने घर मे सिख-रीत्यानुसार भजन कीर्तन करतीं। विशेप अवसरों पर कडाह प्रसाद वनातीं। अपनी मॉ के इन धार्मिक और पवित्र भावों को देखकर महाराज दिलीपसिंह को शनै-शनै सिख धर्म से प्रेम होने लगा। उनकी मॉ उनको गुरुओं के पवित्र जीवन और शहीदों की कुर्वानियों के इतिहास सुनातीं जिससे महाराज का खून खौल उठता। उनके विचार एकदम वदल गये।

महाराज ने गिरजाघरों में जाना, अंग्रेजी सुसाइटियों में शामिल होना सव कुछ छोड़ दिया। इससे भयभीत होकर कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ने महारानी को दिलीपसिंह से अलग रहने का प्रवध कर दिया।

परदेश में भी मॉ-वेटे एक साथ न रहने दिये गये। इसका महारानी जिंदा के जीर्ण शीर्ण स्वास्थ्य पर वहुत वुरा असर पड़ा और वे चिंताओं से तिल-तिल कर सन् १८६३ ई० मे इस ससार से चल वसीं।

महारानी जिंदा इस संसार मे नहीं रहीं किंतु वे वहुत कुछ अपने अपूर्व तप का प्रभाव छोड़ गई हैं। वह जव भी हमे याद आयेगा। हमारा सिर उनके लिये झुकता रहेगा।

वीवी हरनामकौर

सन् १६३४ ई० के अप्रैल महीने मे अखवारों के पृष्ठों पर जिस वीर युवती के चित्र और वहादुराना समाचार प्रकाशित हुए थे। वह वीवी हरनामकौर उस समय केवल १७ वर्ष की थीं। फीरोजपुर जिले मे थाना पुराना के अंतर्गत चौधरीवाला एक गॉव है जिसे पजावी वोलचाल मे पिंड चौधरीवाला कहते हैं। वीवी हरनामकौर वहीं के

जमीदार सिख सरदार की पुत्री है। उस समय तक आपकी शादी नहीं हुई थी जिस समय कि आपने अपनी बहादुरी से हिन्दुस्तान भर में शोहरत पाई थी।

रात के समय सशस्त्र चार डाकुओं ने आपके घर पर हमला किया। बीबी हरनामकौर-अपने भाई समेत डाकुओं के मुकाबिले पर खड़ी हो गई। दो डाकुओं को तो मार गिराया और एक को आपने पकड़ लिया। आप पर इस डाकू ने घातक हमला किया किंतु उसे आपने काफी घायल होने पर भी नहीं छोड़ा। एक भाग गया।

आपकी इस छोटी उम्र में इस प्रकार की बहादुरी की प्रशंसा चारों ओर फैल गई। सरकार ने दोनों भाई-बहिनों को एक एक हजार रुपया और इनकी माँ को दस रुपया महीना पेन्शन कर दी। इसके अलावा दो एकड़ जमीन भी सरकार ने दी। सिख संस्थाओं ने भी बीबी जी का खूब ही सन्मान किया। गुरुद्वारा डेरा साहब की ओर से आपको सरोपा मिला और सिंह सभा की ओर से भरे दीवान में मुबारिकबादी दी गई।

वास्तव में इस बीसवीं सदी में आपने बीबी दीपकौर की तरह बहादुरी दिखाकर अपनी कौम का नाम ऊँचा किया था।

सिख जगत् की वीरांगनाओं, विदुषियों और माता-बहिनों का इतना थोड़ा-सा वर्णन करके हम इस अध्याय को समाप्त करते हैं। सिख जाति ने एक से एक बढ़ कर धर्म भक्त और बहादुर महिलाओं को जन्म दिया है। जो हमारे देश के लिए महान् गौरव की चीज है। हमने तो कुछेक का ही यहाँ वर्णन किया है। जिन्हें अधिक जानना हो वे पंजाब-विभाजन के समय सिख माताओं, बहिनों और पुत्रियों के बलिदान की कहानियों को पढ़ें।

सत्ताईसवाँ अध्याय

सामाजिक दशा

किसी भी जाति की उन्नत और अवनति दशा का पता उसके रहन-सहन, खान-पान, स्वास्थ्य, वर्ताव, शिक्षा, साहित्य, संगठन और जीवन निर्वाह के साधनों को देखकर सहज ही चल सकता है। इन्हीं दृष्टियों से हम सिख जाति की अवस्था का दर्शन करना चाहते हैं।

रहन-सहन

आमतौर से सिखों का रहन-सहन आडम्बरपूर्ण नहीं है। उनमें जो ठाठ बाट से भी रहते हैं उसमे भी विलासिता की गन्ध बहुत कम होती है। शहरों का रिवाज अभी गाँवों में बहुत कम पहुँची है। पुरुष पगड़ी, कुरता, कच्छ, पाजामा, धोती, कोट, अचकन, सलवार आदि पहनते हैं। साधारण पहनावा कच्छा, कुर्ता और पगड़ी का ही है। धोती प्राय. तहमद्नुमा बाँधते हैं।

अपेक्षाकृत सिख स्त्री-पुरुष और बच्चे साफ सुथरे रहते हैं। देहातों मे भी अपने सम व्यवसायी अन्य लोगों की अपेक्षा सफाई की ओर उनका ध्यान अधिक रहता है।

खान-पान

अधिकाँश में सिखों की आवादी देहात में ही ज्यादा है और जो शहरों में भी हैं वह भी खान-पान सम्बन्धी अपनी पैतृक आदतों को बहुत दूर तक पालते हैं। गाय भैंसे अधिक रखने के कारण घी दूध खूब खाते हैं। लस्सी उनका उतना ही प्रिय पेय है जितना कि अंग्रेजों का चाय। कडाह प्रसाद (हलवा) उनका सबसे प्यारा भोजन है। प्रत्येक उत्सव और त्यौहार पर कडाह प्रसाद अवश्य बनवाते हैं। महमान की खातिरदारी मे भी कडाह प्रसाद का ही ऊँचा स्थान है। ब्रज के जमीदार जिस प्रकार खीर को देवताओं का भोजन का नाम देकर प्रिय मानते हैं उसी प्रकार सिख कडाह प्रसाद मे धार्मिक भावना रखते हैं।

भोजन को रसोई, खाना और भोज्य न कहकर प्रसादा कहते हैं भोजन करने को प्रसादा छकना कहते हैं। उनके यहाँ साधारण भोजन (दाल, रोटी, साग आदि) प्रसाद कहलाता है हलुवा कडाह प्रसादा और मांस भोजन महाप्रसाद कहलाता है। वैसे महाप्रसाद कडाहप्रसाद की तरह ऊँचा स्थान नहीं रखता और न उसके खानेको लाजिमी करार दिया गया है किंतु चूंकि आरंभ मे जो जातियां सिख पंथ में शामिल हुई थीं उनमें से अधिकाँश माँस के आदी नहीं थे इसीलिए इसको महाप्रसाद इतना बड़ा नाम

दिया गया उन दिनों सिखों की हालत यह हो ही गई थी कि जंगलों मे भूखे मरने की नौबत मे महा-प्रसाद से ही प्राण-रक्षा की जा सकती थी। महाप्रसाद ताजा मांस का बनता है इसीलिए झटके का खाना निहित बताया गया है।

सिख धर्म के अदर कुछ ऐसे भी सम्प्रदाय हैं जिनमे मांस कतई नहीं खाते। पंजाब जैसे देश मे जहाँ गेहूँ और बाजरा जैसे वलिष्ठ अन्न वहुतायत से पैदा होते हैं सौभाग्य से सिखों का वही उपनिवेश है।

स्वास्थ्य

खान-पान का सुढग और सादगी इसके अलावा कुसंस्कारों से निवृत और परिश्रम से रुचि। यह वाते ऐसी है जो स्वास्थ्य की सर्वोतम गारटी है। यही कारण है कि दूसरे लोगों की अपेक्षा सिख अधिक तगड़े, सुदृढ़ और वलवान होते हैं। अपनी इस मजबूती के कारण उन्होंने सैनिक जातियों मे अपनी सर्वोच्च गणना कराने का सौभाग्य हासिल किया है। वे शारीरिक मानसिक परिश्रम से नहीं घवराते हैं अत. खेती और सरकारी सर्विस मे वे उन्नति पर है। उनके स्वास्थ्य भारत ही नहीं किंतु ससार मे सर्वोपरि वना देने लायक है। किंतु खेद है कि व्यायाम का इनमें वहुत कम चलन है। सिख-गाँवों मे अखाडों (मल्लयुद्ध के स्थान) और दड वैठक लगाने वालों की कमी है। फिर भी वे अपनी मजवूती और अच्छे स्वास्थ्य के लिए भारत मे अच्छा स्थान रखते हैं।

सिख स्वभाव से विनोदी और हँसमुख होते है। चिड़चिड़ापन वहुत ही कम उनके मिज़ाज मे

स्वाभाव और वर्तात्र

होता है। पहली वार की मुलाकात मे ही वे खुलकर वातें करते है। उनसे मिलने पर ऐसा नहीं मालूम पड़ता कि किसी नये और अपरिचित व्यक्ति से वाते की जा रही हैं। यद्यपि उनके अंदर राजसी गुण अधिक है फिर भी वे हृदय के तीव्र और कठोर नहीं होते।

वातचीत वे स्पष्ट कहने और सुनने की आशा करते हैं जहाँ तक भी हो सकता है उनकी वातचीत लाग लपेट की नहीं होती। उनके स्वभाव मे अहंमन्यता की झलक भी नहीं होती। वड़ों का आदर करने की उनमे विशेषता है। साधु-संतो के प्रति उनके दिल में भक्ति है। ब्राह्मणों के लिये उनके लिये उनके धर्म मे उतना ऊँचा दर्जा नहीं किन्तु उनके दिल मे उनसे कोई घृणा भी नहीं है। यद्यपि उनका उत्थान मुसलमान शासकों की जायदाद के कारण हुआ। किन्तु पड़ोसी मुसलमान के साथ वे सदैव हमदर्दी का व्यवहार करते हैं। ऐसा वे किसी पालिसी से करते हों, यह वात नहीं। किन्तु उनका स्वभाव ही ऐसा है।

दान-पुण्य करने मे उनका स्वभाव और मन कंजूस नहीं, यही कारण है कि उनके धार्मिक स्थानों पर इतनी आमदनी होती है। जितनी कि भारत की किसी भी वड़ी रियासत की हो सकती है।

वे अपमान को वहुत कम वर्दास्त करते हैं। वह फिर चाहे अपने घरवालों की ओर से हो चाहे वाहरवालों की तरफ से। इस मामले से वे कभी-कभी विवेक को भी ताक मे रख देते हैं, यही कारण है कि आये वर्ष प्रत्येक जिले मे उनमे आपस मे भी खून-खराबियाँ हो जाती है।

सैनिक प्रधान जाति होने के कारण धोखा और दगा-फरेब भो वे किसी के साथ नहीं करते यों अपवाद सभी जगह होते है।

अपनी वात के लिये उनके स्वभाव मे जिद भी है। कभी-कभी तो 'हमीर हठ' का रूप उनकी वात धारण कर लेती है।

नाच रंग में सामूहिक रूप से उनकी रुचि बहुत ही कम है। खेल कूद और घोड़े की सवारी उनकी रुचि की चीजे हैं।

उनकी स्त्रियों का स्वभाव भी सकुचित और कटुतापूर्ण नहीं होता। कथा कीर्तन मे उनकी रुचि पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक होती है। उन्हे बढ़ा हुआ कुटुम्ब अच्छा लगता है। सिख स्त्री की लालसा रहती है कि उसकी कई सहेली हों और घर मे देवरानियों का टोला। किन्तु जमाने के साथ अब उनमें से यह भावना विनष्ट होती जा रही है।

पंजाब या भारत के किसी भी हिस्से के उन लोगो को जिन्होंने सिख धर्म ग्रहण किया है। उनके लिये पारमार्थिक लाभ कितने हुये हैं। यह तो सिख ही जाने। किन्तु दो लाभ तो इतने प्रत्यक्ष हैं कि उहे कोई भी आदमी जिसे तनिक भी समझने का माद्दा है सहज ही मे जान सकता

जीवननिर्वाह के साधन है। एक तो है समाजिक समानता का जिसपर हम आगे के पृष्ठों में प्रकाश डालेंगे। दूसरा है पेशे की आजादी का। खत्री सिख चाहे तो दर्जी और मोची का काम कर सकता है और दर्जी सिख चाहे तो ज्ञानी और ग्रन्थी बन सकता है। जोकि अब जमाने के परिवर्तन के साथ ऐसी स्थिति हो गई है कि दूसरी जातियाँ भी चाहे जिस पेशे को कर सकती है। किन्तु सर्व प्रथम यह आजादी दी थी सिख धर्म ने ही। पेशे और जाति का सिख धर्म से कोई खास सम्बन्ध नहीं है। इसका फल यह हुआ कि सिखों ने आर्थिक अवस्था ठीक बनाये रखने के लिये चहुंमुखी उन्नति की। राज्य का ऐसा कोई महकमा नहीं जिसमे सिख न मिलेगे। ज्ञात संसार का ऐसा कोई कोना नहीं जहाँ सिख जीवन-निर्वाह के लिये नहीं पहुँच गये हों। कला-कौशल, दस्तकारी आदि सभी धंधो को सीखने में उन्होंने पहल की है।

खेती के काम मे भी नये आविष्कारो को आजमाने मे वे पीछे नहीं रहे। गाय बैलों की नस्ल सुधारने तथा अच्छे २ पशु पालने मे उनकी रुचि सदैव उन्नत रही है। अच्छे बीज, अच्छा गुड़, अच्छी कपास पैदा करके सिखों के खेतिहर समुदाय ने अपने को अग्रणी ही साबित करने की कोशिश की है।

हिन्दुस्तान मे खास तौर से हिन्दुओं मे उन्होंने सर्वप्रथम ईरान और काबुल से घोड़ों और हथियारों के लाने का व्यापार आरम्भ किया था।

इस प्रकार जीवन निर्वाह के प्रत्येक धंधे मे मे सिख रुचि रखते हैं। यही कारण है कि उत्तरोत्तर उनका समाज हरेक क्षेत्र में उन्नत होता जा रहा है।

किसी भी मानव समाज का संगठन किन्हीं विशेष परिस्थितियों में किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये होता है। परिस्थितियों के निकल जाने अथवा उद्देश्य की पूर्ति के बाद स्वभावत. उस सगठन का छिन्न-भिन्न हो जाना अनिवार्य है। पर चूकि वह उत्तम सगठन सदैव बना रहे

सङ्गठन इसलिये उसे स्थायित्व देने के लिये उन साधनों के प्रति अटूट श्रद्धा के भाव पैदा होना आवश्यक होता है जिनके सहारे वह सगठन उन्नत होकर उद्देश्य की पूर्ति करता है। प्रत्येक ऐसे सगठन के जिसका कि आरम्भ धार्मिक भित्ति पर हुआ हो कम से कम पाच साधन होते हैं। (१) धर्म पुस्तक (२) धर्मस्थान अथवा तीर्थ (३) पर्व और त्यौहार (४) अनुशासन और (५) प्रथाये।

सिखों की धर्म पुस्तक श्री ग्रंथसाहब जो हैं इस सम्बन्ध में हम पिछले अध्याय मे काफी लिख चुके है। अत शेष चार आचारों पर अब कुछ प्रकाश डालना चाहते हैं।

सिखों के पांच प्रकार के धर्म स्थान हैं (१) वे जहाँ-जहाँ गुरु साहिबान ठहरे थे और अब उन स्थानों पर स्मारक स्वरूप धर्मशालायें, गुरुद्वारे अथवा दमदमा हैं। (२) जहाँ-जहाँ गुरु साहिबान का जन्म हुआ था और वे स्वर्गारोहण हुये। (३) वे स्थान जहां-जहां गुरु साहब ने बावली, तालाब आदि बनवाये। (४) जहाँ-जहाँ गुरु और उनके प्यारे शहीद हुये। (५) जहाँ-जहाँ उनके भक्त उनकी दी हुई वस्तुओं को ले गये और जहाँ कि उन्होंने उन वस्तुओं के रखने के लिये स्मारक स्थान बना लिये। इनके अलावा आज भी जहाँ-जहाँ सिख हैं प्रायः वहीं-वहीं गुरुद्वारे बने हुये हैं और बनते जारहे हैं किन्तु पुराने धर्मस्थान वे ही हैं जो उपरोक्त पाँच प्रकारों में से हैं। हालांकि उनमें कुछ तो बहुत पीछे के बने हुये हैं फिर भी उनकी स्मृति का महत्व उस समय से सम्बन्ध रखता है जिस समय का कि उनके साथ इतिहास जुड़ा हुआ है।

यह तो निर्विवाद सही बात है कि धार्मिक भावनाओं के अनुसार, प्रत्येक धर्मस्थान तीर्थ होता है किंतु लौकिक भाषा में तीर्थ उसे कहते हैं जहाँ किन्हीं विशेष पर्वों पर भारी जन-समुदाय इकट्ठा होकर प्रथा के अनुसार धार्मिक क्रियाओं को पूरा करता हो।

सिखों में इस प्रकार के बड़े-बड़े तीर्थों की संख्या इस प्रकार है:—(१) श्री बावली साहब (२) अमृतसर (३) मुक्तसर (४) दमदमा साहब (५) करतारपुर (६) तरनतारन (७) ननकाना (८) गोविन्द वाल बावली साहब (९) डेहरा गुरु श्री अर्जुनदेव (१०) डेहरा बाबा नानक (११) पटना साहब (१२) अविचलनगर (१३) फतहगढ़ सरहिंद (१४) चमकौर साहब (१५) खडूर साहब इनके सिवा करतारपुर और कीरतपुर आदि भी है।

इनमें इतने तख्त है। (१) अकाल तख्त जो अमृतसर में है (२) तख्त पटनासाहब (३) तख्त केशगढ़ आनन्दपुर में (४) तख्त हुजूर साहब अविचलनगर।

इनमें तरनतारन और अमृतसर का तो इतना बड़ा नाम हो रहा है जिन्हे सारा हिंदुस्तान और हिंदुस्तान से बाहर के लोग भी जानते हैं किंतु यदि हम सिलसिले से आरम्भ करें तो पहिले ननकाना साहब का वर्णन करना होगा। लाहौर से ४८ मील पच्छिम शेखूपुरा जिले में रायबुलारकी जो तलवण्डी थी और जिसमें कि गुरु नानकदेव जी महाराज का अवतार हुआ था वही अब गुरुजी के नाम पर ननकाना अथवा नानकायन अर्थात् नानदेव का घर कहलाता है। वहाँ 'जन्म स्थान' गुरुद्वारा बना हुआ है। यह गुरुद्वारा बड़ा आलीशान है। गुरुद्वारे से अठारह हजार एकड़ जमीन और नौ हजार आठ सौ बानवे रुपये साल की जागीर लगी हुई है। लगभग बीस हजार रुपया साल चढ़ावे में आ जाते हैं।

जन्म स्थान के सिवा इतने स्थान यहाँ और है।

(१) कियारा साहब—जहाँ प्रथम बार आपने अपने पशु चराये थे। इस गुरुद्वारे से ४५ मुरब्बे जमीन लगी हुई है।

(२) तम्बू साहब—जहाँ कि गुरु नानकदेव जी सच्चा सौदा करने के बाद लौट कर बैठे थे।

(३) पट्टीसाहब—जहाँ कि पाधे के पास उनके पिताजी ने पढ़ने बिठाया।

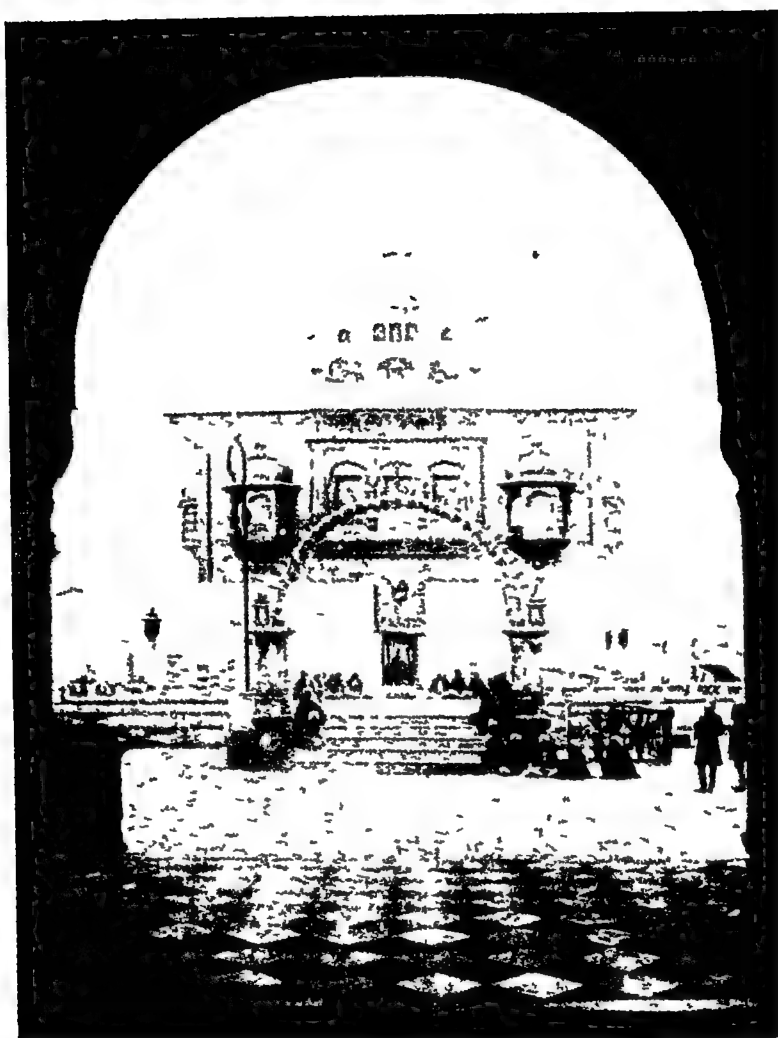
(४) बाललीला—जहाँ कि बाल-क्रीड़ा करते थे। इस गुरुद्वारे में १२० मुरब्बे जमीन और इकतीस रुपये सालाना की जागीर है।

(५) मालजी साहब—जिस माल वृक्ष के नीचे गायें चराते हुये सो गये थे और वृक्ष की छाया स्थिर रही थी। इस स्थान से १८० मुरब्बे जमीन और ५०) सालाना नकद जागीर है।

(७) वे स्थान जो गुरु अर्जुनदेवजी और गुरु हरिगोविंदजी की यात्रा की यादगार में है जोकि इस



अकाल बुंगा अमृतसर



दरबार तरनतारन साहिब

तीर्थ भूमि के दर्शनों के लिये आये थे। इस स्थान से १३ वीघे जमीन माफी मे है।

यहाँ पर कार्तिक की पूर्णमासी पर बड़ा भारी मेला भरता है। अत भक्तजन इस स्थान के लिये उसी प्रकार उमड़ते हैं। जिस प्रकार भगवान कृष्ण की जन्मभूमि मथुरा, वृन्दावन को देखने के लिये लोग आते हैं और वास्तव मे ही ननकाना सिखों का वृन्दावन है। व्रज मे जैसा हम देखते हैं कि यहा भगवान खेले थे। यहाँ उन्होंने दधि-माखन खाया था। यहा काली-मर्दन किया था। यहाँ उनकी गायों का खिरक था इसी प्रकार ननकाना मे सिख-दर्शक गुरु नानकदेव जी के समस्त स्मारक स्थान देखते है। जहाँ गुरु नानकदेव स्नान करते थे और जिसे कि रायबुलार ने तालाब का रूप दे दिया था। आदि इसी प्रकार के श्रद्धापूर्ण स्थानों के दर्शन ननकाना मे होते हैं।

सवत् १६२१ वि० मे श्री गुरु रामदास जी ने गुरु अमरदास जी की आज्ञा से तुंग गुमटाला और सुल्तानपिंड नामक गाँवों के पास एक तालाब खुदवाया जिसे गुरु अर्जुनदेवजी ने पूरा करा कर अमृतसर नाम रक्खा। यह बात सवत् १६४५ वि० की है इससे पहले ही संवत् १६३१ वि० मे ही गुरु का चक नाम से एक आबादी गुरु रामदास जी ने कर ली थी। गुरु अर्जुनदेव जी ने अपने समय मे 'गुरु के चक' का नाम रामदासपुर रक्खा और उसे खूब तरक्की दी। यहाँ उन्होंने सभी श्रेणियों के लोगों को बसाया। सवत् १६४३ वि० में उन्होंने उस तालाब को भी पक्का कराना आरभ किया। यह नाम रखने का जो कारण था उसका उल्लेख पहले हो चुका है। इस सरोवर की लम्बाई ५०० फुट चौडाई ४६० फुट और गहराई १७ फुट है। संवत् १६४५ में इस सरोवर के निकट गुरु अर्जुनदेवजी ने हरिमन्दिर जी के तैयार हो जाने पर सवत् १६६१ वि० में उसमें ग्रन्थ साहब की स्थापना की। अमृतसर (सरोवर) के नाम पर ही धीरे-धीरे नगर भी इसी नाम से प्रसिद्ध हो गया।

अमृतसर

यह हरिमदिर सिखों के समस्त गुरुद्वारों मे शिरोमणि है। सिखों के लिये अमृतसर का वही स्थान है जो हिंदुओं के लिये काशी और मुसलमानों के लिये काबा का है।

यहाँ पर वैसाखी और दीपमालिका पर दो भारी मेले होते हैं।

इस पवित्र स्थान को मुस्लिम शासकों ने नुकसान पहुँचाया था किंतु जस्सासिंह अहलूवालिया आदि सिख सरदारों ने पुनः ठीक करा दिया। इसके साथ काफी इतिहास है। जिसे हम कुछ-कुछ विभिन्न स्थलों पर इस ग्रंथ में लिख भी चुके हैं।

महाराजा रणजीतसिंह के राज्य में इस नगर के शामिल हो जाने के बाद इसकी खूब उन्नति हुई महाराज ने हरिमदिर जी के फर्श संगमरमर के और कलस स्वर्ण के बनवा कर उन्हे देदीप्यमान करने का सौभाग्य प्राप्त किया था।

अमृतसर सिखों की धार्मिक राजधानी है। दरअसल तो यह नगर पजाब के समस्त हिंदुओं का तीर्थ बना हुआ है। यहाँ पर सतोपसर, कोलसर, विवेकसर रामसर नाम के और भी तालाब हैं।

हरिमदिर जी के अलावा निम्निलिखित और गुरुद्वारे तथा धार्मिक स्थान अमृतसर में हैं। (१) अकालतख्त (२) अटलराइ जी का देहरा (३) सालोभाई की धर्मशाला (४) गुरु के महल (५) चरसती-अटारी (६) टाहली साहब (७) थड़ा साहब (८) मंजी साहब (८) दमदमा साहब (६) दरसनी ड्योढ़ी (१०) दुखभंजनी वेरी (११) पिप्पली साहब (१२) गुरुद्वारा लोहगढ़।

अकालतख्त में गुरु साहबान और धर्म पर कुर्बान होने वाले तथा अन्य योद्धाओं के शस्त्र

रक्खे हुये हैं। अमृतसर मे अकाली अथवा निहंगवीरों के साथ बाबा फूलासिंह अकाली रहते थे। उनकी स्मृति मे वहाँ एक गुरुद्वारा भी है।

जिला अमृतसर मे अमृतसर नगर से चौदह मील उत्तर की ओर यह गुरु स्थान है। गुरु अर्जुनदेवजी साहब ने खरीद कर संवत् १६४७ वि० के १७ वैसाख को खारा और पालासुर नामक गाँवों के पास एक तालाब की नींव डाली। इसके ६ वर्ष बाद सवत १६५३ मे यहीं पर एक नगर बसाना आरम्भ किया। उन दिनो इस स्थान से तीन मील के फासले पर नूरुद्दीन का लड़का अमीरुद्दीन नाम का पठान जेलदार रहता था। उसने उन सब ईंटों को जो तालाब और नगर के लिये बनवाई थीं उठवा कर अपनी सराय मे लगवा दिया। इस प्रकार लगभग ७० वर्ष तक यह स्थान अर्द्धपूर्ण हालात मे रहा। संवत् १८२३ ई० मे सरदार बुधसिंह फैजलपुरिया और दूसरे सरदारो ने जोर पकड़ा और उस सराय के मकानों की एक-एक ईंट खुदवा डाली और तरनतारन सरोवर के दो किनारे पक्के करा दिये। इसके बाद महाराजा रणजीतसिंह जी ने शेष दो किनारे पक्के करा दिये। कुँवर नौनिहालसिंह जी के समय मे तरनतारन के निर्माण का काम पूरा हुआ। यहाँ गुरु अर्जुनदेव जी ने कुष्ठियों को आराम पहुचाने का कार्य किया था अत. यह दुख निवारन भी कहलाता है। ४६६४) सालाना की जागीर भी उसी समय की इस गुरुद्वारे से लगी हुई है। चढ़ावे से चालीस हजार सालाना तक की आमदनी हो जाती है।

तरनतारन

इसके सिवा यहाँ परिक्रमा मे एक मंजी साहब हैं। दूसरी मंजी शहर से बाहर गुरु के खूह के पास है। दूसरा खूह बीबी भानी जी के नाम पर है।

तरनतारन सरोवर की लम्बाई ६६६ फुट और चौड़ाई ६६० फुट है।

जिला अमृतसर मे तरनतारन जी से १० मील के फासले पर खडूर साहब नाम की एक बस्ती है। गुरु अगद जी यहीं पर निवास करते थे। यहीं से उनका सचखड प्रस्थान हुआ था। अतः उनकी स्मृति में यहाँ एक देहरा है। गुरु अगददेव जी के समय मे इस नगर को धर्म-चर्चा का अच्छा सौभाग्य प्राप्त हुआ था। गुरु नानकदेव जी यहाँ पधारे थे और गुरु अमरदास जी ने तो यहाँ वर्षों गुरु अगददेव जी की सेवा की थी। आबादी के अन्दर गुरुद्वारा है जिससे २६००) सालाना की जागीर लगी हुई है। दरबार साहब की परिक्रमा में किल्ले का वह करीर भी है। जहाँ गुरु अमरदास जी को अपने गुरु अंगददेव जी के स्थान को पानी लाते समय ठोकर लगी थी। इसके अलावा यहाँ यह स्थान और दर्शनीय हैं।

खडूर साहब

(१) तपियाना—जहाँ गुरु अंगददेव जी तप किया करते थे। इसी स्थान के पास भाई बालाजी की समाधि है।

(२) थड़ा साहब—जहाँ पर कि गुरु अंगददेव जी बैठकर पाठ किया करते थे। एक चबूतरा बना हुआ है।

मल्ल अखाड़ा जहाँ पर बैठ कर गुरु अगददेव गाँव के बच्चों को कुश्ती लड़ने की प्रेरणा किया करते थे।

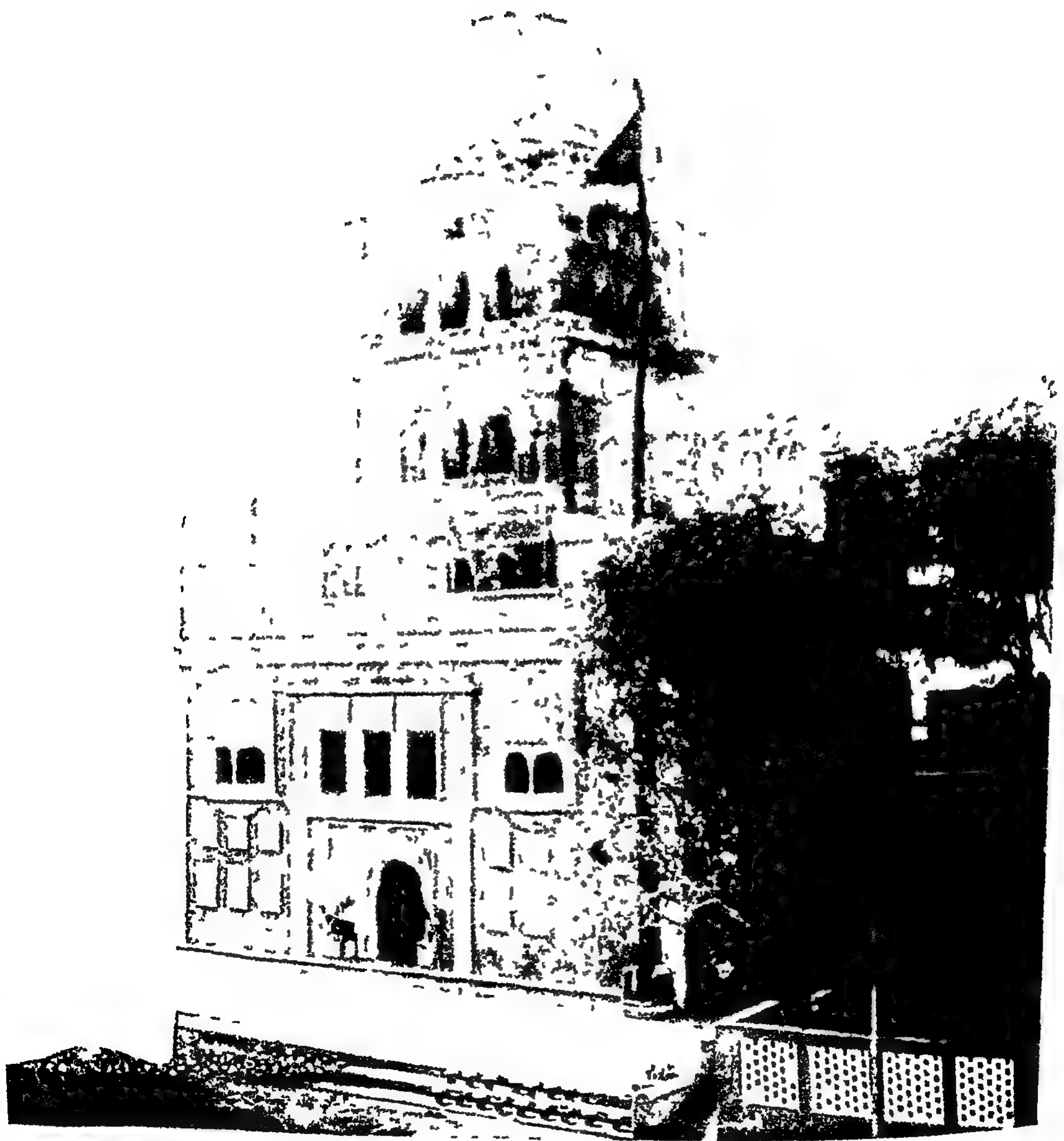
तरनतारन स्टेशन से अग्निकोण मे १५ मील के फासले पर गोइन्दवाल नाम का नगर है। गुरु अमरदास जी की सहायता से गोइन्दा नाम के एक खत्री ने इसे बसाया था। अत. उसी के नाम पर यह गोविन्दवाल नाम से मशहूर हुआ। यहाँ पर संवत् १६१६ में गुरु अमरदास जी ने

खडूर साहिब



निवास स्थान श्री गुरु अंगद देव जी

थम्ब साहिब



करतारपुर

बावली साहब — एक बावड़ी बनवाई थी। जो शनैः शनैः सिखों के परिश्रम सहायता और प्रेम से सुन्दर बन गई। इसमें ८४ सीढ़ियाँ हैं।

धार्मिक भावनाओं में यह गया जी से प्रतिस्पर्द्धा करती है। यहाँ क्वार की ५ के दिन बड़ा भारी मेला लगाता है। प्रत्येक सीढ़ी पर अनेक श्रद्धालु सिख जपुजी का पाठ करते हैं। बावली साहब की मान्यता इतनी बढ़ी थी कि मुगल हाकिमों के समय में जागीर लगना सम्भव हुआ। उस समय की १११५) की जागीर लगी हुई है। कपूर्थला और नाभा की ओर से भी कुछ-कुछ जागीरें हैं। कई स्थानों पर इस धर्म-स्थान के मकान हैं। जहाँ से किराया आता है।

यहाँ पर कई गुरुद्वारे और धर्मस्थान हैं। यथा—

(१) अनद जी का स्थान—गुरु अमरदास जी के पुत्र मोहरी जी के बेटे साहब का नाम अनंद जी था। उन्हीं की स्मृति में बाजार में एक मजी बनी हुई है।

(२) हवेली साहब—श्री गुरु अमरदास जी के रहने का मकान। गुरु जी चौबारे की जिस कीली को पकड़ कर खड़े हुये भजन करते थे। भक्त लोगों ने अब उस कीली को चाँदी से मढ़वा दिया है। इस हवेली में वह पालकी भी रक्खी है। जिसमें रखकर गुरुवाणियाँ अमृतसर पहुचाई गई थीं। बरांडे में वह स्थान है। जहाँ रामदास जी को गुरुआई दी गई थी। यहाँ पर बीबी भाणी जी का चूल्हा भी है। जिसे भक्तों ने अब संगमरमर का बनवा दिया है।

(३) गुरु रामदास जी का बनवाया हुआ यहाँ एक खूह (कूप) भी है।

(४) गुरु अमरदास जी के बड़े पुत्र मोहन जी का चौबारा यहाँ बना बना हुआ है।

कुछ विवरण बावली साहब का अन्य स्थानों पर भी आ चुका है। सिखों का सर्व प्रथम यही स्थान है। जहाँ मेला लगना आरम्भ हुआ था।

सिख धर्म में पहली शहीदी गुरु अर्जुनदेव जी की हुई है। बादशाह जहाँगीर की आज्ञा से चन्दू ने जो तकलीफें गुरु अर्जुनदेव जी को दी थीं। उनकी याद मात्र से रोमांच हो आता है। उन्हीं महान् गुरु

देहरा साहब गुरु अर्जुनदेव जी — का किले के सामने एक भव्य देहरा बना हुआ है। जहाँ कि महाराजा रणजीतसिंह जी की समाधि भी है। दरबार साहब के भीतर एक दीवानखाना भी है। महाराजा रणजीतसिंह जी की लगाई हुई इस पवित्र स्थान से जागीर है। रियासत नाभा से भी कुछ रकम बंधी हुई है।

यहाँ पर गुरु अर्जुनदेव जी के शहीदी दिन की याद में प्रति वर्ष जेठ सुदी चतुर्थी को भारी मेला लगता रहा है।

डब्बी बाजार में गुरु जी के नाम पर एक बावली है। गुरु जी ने इसे छज्जू व्यापारी के दिये हुये धन से बनवाया था। शाहजहाँ के समय में इस बावली को पाट दिया गया था। किन्तु महाराजा रणजीत-सिंह जी के समय में उसे फिर दुरुस्त करा दिया गया। इसके साथ ११२ दुकान थीं। जिनसे काफी आमदनी होती रही है।

इनके सिवा यहाँ (१) श्री गुरु नानकदेव जी का गुरुद्वारा (२) चूनामडी में गुरु रामदास जी का जन्मस्थान (३) जन्मस्थान के पास ही गुरु रामदास जी की धर्मशाला (४) मुंजग के बीच श्रीगुरु हरि-गोविन्द जी का स्थान (५) भाटी दरवाजे में गुरु हरिगोविन्द जी का गुरुद्वारा (६) भाई मनीसिंह जी का शहीदगंज (७) भाई तारुसिंह जी का शहीदगंज और सिंहिनियों का शहीदगंज आदि और भी कई स्थान

दर्शनीय है। खेद है कि लाहौर के सब स्थान अब पाकिस्तान मे हैं।

गुरु रामदास जी का जन्मस्थान काफी विशाल और आकर्षक है।

जिला होशियारपुर मे कीरतपुर नाम का नगर है। यहाँ पर बावा गुरुदित्ता जी का देहरा बहुत मशहूर है। किंतु गुरु हरिकिशन जी की जन्मभूमि होने का भी इस नगर को सौभाग्य प्राप्त है। इसे गुरु हरिगोविंद जी ने संवत् १६८३ विक्रमी मे कहलूर के राजा से भूमि खरीदकर गुरुदित्ता जी की मारफत आबाद कराया। आबादी के बीच मे जो शीशमहल है उसी मे गुरु हरिगोविंद जी साहब रहते थे। इसी शीशमहल मे गुरु हरिकिशन जी का जन्म हुआ था। यहीं पर गुरु हरिगोविंद जी का एक गुरुद्वारा है। जो हरिमंदिर भी कहलाता है। उनका बनवाया हुआ एक कुआँ भी है।

कीरतपुर हरिमन्दिर

जहाँ साईं बुड्ढनशाह से गुरु नानकदेव जी ने ज्ञानचर्चा की थी। वहाँ पर एक नानकदेव जी का भी गुरुद्वारा है।

शहर के बीच मे गुरु हरिराय जी साहब का भी गुरुद्वारा है। जिसमे एक बड़ा चुहबच्चा है। जहाँ घोड़ियो के लिये दाना भरा जाता था। दमदमा साहब, पातालपुरी और तीर मंजी आदि और भी कई दर्शनीय स्थान है।

यहाँ दो एक स्थान को छोड़ सभी से जागीरे लगी हुई हैं। किंतु यह जागीरें बहुत ज्यादा नहीं हैं।

यहाँ पर गुरु हरिराय जी साहब का भी देहरा काफी अच्छा बना हुआ है। इस पर चढ़ावा अच्छा होता रहा। पटियाला से कुछ निश्चित आमदनी बधी हुई थी।

दिल्ली से गुरु तेगबहादुर जी का शीश जहाँ लाकर यहाँ रक्खा गया था। वहाँ निशानगढ़ बना हुआ है।

इस नगर मे होली पर भारी मेला होता है। जो बाबा गुरदित्ता जी के देहरे पर मनाया जाता है।

यह हम पहले लिख चुके है कि श्री गोविन्दसिंह जी का जन्म उनके पिता जी के प्रवासकाल में मगध देश की राजधानी पटना मे हुआ था। उनके जन्मस्थान पर आज हरिमन्दिर की भव्य इमारत खड़ी दिखाई देती है और सिख इसे दूसरा तख्त कह कर आदर देते हैं। इस हरिमन्दिर को महाराजा रणजीतसिंह जी ने बनवाया था। तब से अब तक अन्य श्रद्धालु लोग भी बराबर इसमे वृद्धि करते रहे है।

हरिमंदिर पटना

यहाँ पर गुरु जी की स्मृति मे इतनी वस्तुयें दिखाई जाती हैं :—

(१) पंघुड़ा साहिब—पालना जिसमे बालपन में विराजते थे, (२) तार तीर, (३) एक छोटी तलवार, (४) एक छोटा खंडा, (५) एक छोटा कटार, (६) चन्दन का कघा, (७) हाथ दाँत की खड़ाऊँ और इनके अलावा नवम गुरु जी की खडाऊँ भी है।

इस हरिमन्दिर के लिये ३१—)॥ माहवार सरकार देती है। १०००) साल की आमदनी बिहार के अमीर गोपालसिंह जी की दी हुई जमीन से होती है। ५००) रियासत नाभा, ४७०) रियासत जीन्द,७२०) रियासत पटियाला से सालाना मिलते हैं। ४५६।) सालाना फरीदकोट देता है। १६०) सालाना रामीपुर मुहल्ले की २२ बीघे जमीन की आमदनी है। इसके अलावा और भी जमीन भूभागों से कुछ आमदनी होती है और चढ़ावे में भी काफी आता है।

हरिमन्दिर जी के सिवा गुरु तेगबहादुर जी की मंजी, बड़ी सगत और छोटी सगत आदि स्थान

हैं। जो निर्मले सिखों के प्रबंध मे है।

पटना मे वैसाख सुदी पचमी को मंजी साहब पर मेला लगता है।

संवत १७२३ वि० मे गुरु तेगबहादुर जी ने नैनादेवी पहाड़ के पास माखोवाल गॉव की धरती खरीद कर जो नगर सतलज के पास आबाद किया था वही आनन्दपुर के नाम से मशहूर है। दशमेशजी ने इस नगर को एक समय समस्त सिखों का जीवन प्रसारक केन्द्र बना दिया था। उन्होंने संवत १७४६ वि० मे इस नगर की रक्षा के लिए पॉच किले आनंदगढ़, लोहगढ़, फतहगढ़, केशगढ़, और होलगढ़ के बनाये। आज इन किलों के स्थान पर गुरुद्वारे बने हुए हैं।

तख्त केशगढ़ साहब आनन्दपुर

इस गुरुपुरी में निम्न स्थान स्मारक स्वरूप बने हुए हैं। (१) तख्तसाहब शहर के मध्य गुरुद्वारा शीशगंज के अहाते मे गुरुभाई मिलने की स्मृति को कायम रखने वाला उनके नाम का एक गुरुद्वारा है।

(२) एक गुरुद्वारा आनंदगढ़ में है यह आनंदगढ़ आनंदपुर से केवल आध मील दूर है। यहॉ पर एक बावली है जिसमे भूलभुलैयां जैसी कोठरिया है। सब मिलाकर लगभग २०००) साल की जागीर इनसे बंधी हुई है।

(३) गुरु तेगबहादुर जी का शीश लाकर जहा आनदपुर मे रक्खा गया था। वह शीशगज कहलाता है। लगभग २००) सालाना की आमदनी पटियाला आदि से बंधी हुई है।

(४) तख्त केशगढ़ आनंदपुर के पास ही है। यहीं पर खालसा पथ की रचना हुई थी। यहा पर होली के दिन बड़ा भारी मेला होता है। दूसरा मेला वैसाखी पर भी होता है। यहा पर गुरु जी की निम्न वस्तुएँ हैं।

(१) नागनी बरछी जो ८ फुट ६ इंच लम्बी है।

(२) भाला जो ८ फुट ११॥ इंच लम्बा है। तथा जिसका सिरा २ फुट ६ इंच लम्बा है।

(३) सैफ दस्ते समेत ४ फुट ३ इंच है इसके एक परसे पर 'तोहफा अस्त अली फातिमा हुसैन व हसन' लिखा हुआ है

(४) खंडा दुधारा इसी से सिखों की परीक्षा हुई थी। जिसमे पांच प्यारे बने थे।

(५) कटार यह दस्ते समेत २ फुट ३ इंच लम्बी है। वहां पर गुरु के महल, दमदमा साहब, मत्री साहब, भेरासाहब आदि और दर्शनीय स्थान है।

गुरुद्वारा केशगढ़ से काफी जागीरें लगी हुई हैं। यथा ११५०) सालाना की जागीर होशियारपुर जिले के बड्डों गाव मे इसे सरदार बघेलसिंह ने लगाया था। ४००) सालाना की गांव गीगनवाल जिला जालंधर में, सरदार मितसिंह जी जत्थेदार द्वारा दी हुई। ११००) सालाना की मोठेपुर गांव मे जोकि आनंदपुर के परगने मे ही है। इसे सरदार चढ़तसिंह डल्लेवालिया ने भेंट किया था। ७५) सालाना की बिलासपुर रियासत की। ३७५) मालाना राज्य पटियाला ३७) राज्य कलसिया द्वारा दी हुई आमदनी हैं।

इन स्थानों को देखकर सिखों के नवजीवन दाता की महानता हृदय मे हिलोरे मारने लगती हैं। प्रत्येक श्रद्धालु और प्रेमी सिख के मन में स्वभावत कल्पना उठती है वह समय कितना सुन्दर रहा होगा जब दशमेश जी अपने चारों साहबजादों के साथ अपनी इस आनंदपुरी मे रहते होंगे।

'अम्बाला जिला की रोपड़ तहसील मे चमकौर एक गॉव है किंतु सिख इतिहास में इसका स्थान बहुत ऊँचा है आनंदपुर से निकलने के बाद यहां चालीस सिखों और अपने पुत्रों के साथ गुरुजी ही ने

चमकौर साहब

यवनों के अपरिमित दल का सामना किया था। आपके दो साहबजादे श्री अजीतसिंह जी और जुझारसिंह जी यहीं शहीद हुए थे। उनकी शहीदी के स्थान पर जो गुरुद्वारा है वह कतलगढ़ कहलाता है। संवत १७६१ वि० की पूष की ८ वीं को यह शाका हुआ था। अतः पौह की ८ वीं को यहां भारी मेला होता है।

इस पुण्य स्थान से १०० बीघे जमीन सिख राज्य के समय की लगी हुई है। ३००) सालाना की जागीर रायपुर से लगी हुई है और ६५१) सालाना आमदनी पटियाला राज्य से होती है।

गुरु दशमेश जी की यादगार में यहां एक दमदमा भी है। जिस पर कि वे एक बार कुरुक्षेत्र जाते हुए ठहरे थे। १७ घुमाव जमीन इस दमदमा साहब से लगी हुई है।

करतारपुर

जिला गुरुदासपुर मे रावी किनारे संवत १५६१ वि० मे गुरु नानकदेव जी ने अपने रहने के लिए एक स्थान बनवाया था। जोकि धर्मशाला के रूप मे था। धीरे-धीरे वहां पर एक नगर बस गया जो करतारपुर कहलाया। संवत १५७६ वि० से गुरुजी यहां निश्चित रूप से रहने लग गये, क्योंकि अब तक उन्होंने बड़ी-बड़ी यात्राये करली थीं। यहीं पर संवत १५६६ वि० में उनका स्वर्गारोहण हो गया। भक्त लोगों ने नगर के पास ही गुरुजी की समाधि बनवा दी। जिसे रावी की बाढ़ ने नगर समेत अपने में लीन कर लिया।

करतारपुर द्वितीय
जिला जालधर

बाबा लक्ष्मीचन्द जी और श्रीचंदजी ने पुनः अपने पिता का डेरा बनवाया और नगर भी बसाया जो अब देहरा बाबा नानक के नाम से मशहूर है। गुरुद्वारे के लिये ३७५) सालाना जागीर और ७० बीघा जमीन लगी हुई है। यहां कई स्थान और वस्तुये दर्शनीय हैं। यहां के शीशमहल मे जिसे कि पांचवें और छठे पातशाहों ने बनवाया था। गुरु अर्जुन देव जी के भाई गुरुदास जी द्वारा लिखाये हुये ग्रन्थ साहब, गुरु हरिगोविंद जी का ६सेर पक्के तौल का खड्ग और गुरु हरिरायजी का खड्ग आदि वस्तुये रक्खी हुई हैं।

फतहगढ़

सरहिंद के मुसलमान शासकों ने आरम्भ से ही सिखों पर पाशविक अत्याचार किये थे। दशमेश जी के दो नन्हे साहबजादे श्री जोरावरसिंह और फतहसिंह जी को सरहिंद मे ही शहीद किया गया था। बहादुर बंदासिंह जी के नेतृत्व मे सरहिंद पर चढ़ाई करके यहाँ के हाकिम वजीरखाँ को मार डाला और सरहिंद को ध्वंश कर दिया। जहाँ साहबजादे शहीद हुये थे। वहाँ सिख लोगों ने एक विशाल गुरुद्वारा बनवा दिया जो फतहगढ़ कहलाता है।

इस स्थान से सिख-राज के समय की और पटियाला की दी हुई चार हजार रुपया सालाना की जागीर लगी हुई हैं। प्रति वर्ष पूष की १३ वीं को यहाँ मेला लगता है।

इसके अलावा यहाँ इतने गुरुद्वारे और है।

(१) शहीदगंज-युद्ध में मारे गये ६ हजार शहीदों के संस्कार का स्थान।

(२) शहीदगज (द्वितीय) जहाँ जैनखां के साथ युद्ध करते हुये जत्थेदार सूबासिंह जी शहीद हुये।

(३) शहीदगंज (तृतीय) जहाँ इसी युद्ध मे मल्लसिंह जी शहीद हुये।

(४) ज्योतिस्वरूप जहाँ पर माता गूजरी जी और साहबजादों का सस्कार हुआ।

(५) थड़ा साहब—यहाँ पर गुरु हरिगोविंद जी साहब एक समय थोड़े काल तक विराजे थे।

(६) माता गूजरी जी का बुरज—जिसे कि ठडा या खूनी बुर्ज भी कहते हैं और जहाँ पर कि माता जी और साहबजादे पकड़े जाने के बाद कैद मे रक्खे गये थे।



देहरा बाबा नानक जी

(४) गोविन्द वाग—दरवार साहव के पास ही है।

(५) नगीनाघाट—जहां पर कि गुरु जी ने सिखों के भेट किये हुये नगीने नदी मे फेंक

(६) बन्दा थान—जहां पर कि वहादुर वंदासिह तप करते थे और गुरु जी ने उन्हे शिक्षा

(७) माता साहवकौर जी का स्थान—यहाँ पर दशमेश जी की द्वितीय धर्मपत्नी कुछ रही थीं।

(८) माल टोकरी—यहाँ पर गुरु जी को गुप्त खजाना मिला था। जिससे उन्होंने पठान को तनख्वाह वांटी थी।

शीशगंज, रकावगंज

ये दोनो गुरुद्वारे देहली मे हैं और दोनों ही गुरु तेगवहादुर जी की स्मृति में वने हुये हैं। गज तो वह स्थान है, जहाँ अत्याचारी औरंगजेव की कठोर यातनाये सहने के वाद गुरु जी ने अपना सिर दिया था और रकावगज वह स्थान है। जहाँ गुरु जी का धड उनके भक्तों ने सस्कार किया था। इनमे पहला चाँदनी चौक देहली में और नई दिल्ली मे सचिवालय के पास है।

पजाव मे सिखो का एक और प्रसिद्ध धर्म-स्थान है। वह है पंजा साहव जिसका कि जिक्र हम नानकदेव जी के जीवन मे कर चुके हैं।

भारत और भारत से वाहर लगभग ८०० स्थान ऐसे है। जिनसे गुरुओं का सम्बन्ध है अर्थात् सव गुरुओं की यादगार में वने हुए हैं। जिनमे से कुछ मे सिंह प्रवन्धक हैं कुछ मे निर्मले और उदासी महत है। पंजाव के गुरुद्वारो के लिये सन् १९२५ ई० मे गुरुद्वारा एक्ट वन गया है। जो सिखों के धर्म आदोलन का फल है।

गुरुद्वारो के सम्वन्ध मे इतना वर्णन करने का हमारा मतलव गुरुद्वारों का इतिहास देना नहीं किन्तु इतना वताना मात्र है कि उनके यहाँ धार्मिक स्थानों की चिरकाल तक उन्हे सगठित वनाये रखने के लिये—कमी नहीं है। संगठन का यह मजवूत अग वहुविस्तृत और पारमार्जित अवस्था मे है तथा यह अग उनकी श्रद्धा का एक केन्द्र वना हुआ है। गुरु-ग्रन्थ के वाद उनके यहाँ गुरुद्वारों का वहुत ऊंचा स्थान और मान है। यही कारण है कि ये गुरुद्वारे एक प्रकार के छोटे-मोटे गढ़ और महल जैसे वने हुये है और लाखों ही रुपये साल इन पर चढ़ावा चढ़ता है।

शिक्षा

शिक्षा के क्षेत्र मे भी सिख समाज ने वड़े जोरों से उन्नति की है। महाराजा रणजीतसिंह जी के समय तक तो शिक्षा मे यह समाज काफी पीछे था, किन्तु आज पंजाव मे उनका स्थान किसी से पीछे नहीं। प्रारम्भिक और धार्मिक शिक्षा के लिये तो गुरुद्वारे ही काफी मदद देते हैं। ऊचे दर्जे की शिक्षा के प्रवंध करने वाली एक संस्था सिख-शिक्षा कान्फ्रेंस वनाई गई थी। जिसे स्थापित हुए ४०-४२ वर्ष हो गये। यह प्रत्येक अधिवेशन पर एक हाईस्कूल खोल देती थी।[१] २२ वे अधिवेशन मे जोकि लाहौर मे रायवहादुर सरदार विसाखासिंह जी देहली के सभापतित्व मे हुआ था। खालसा कालेज अमृतसर या यूनीवर्सिटी वना देना निश्चय किया गया था और उसमें उसी समय ढाई लाख रुपया इकट्ठा भी हो गया था।

अमृतसर में सिखों का एक वड़ा खालसा कालेज है। इसकी नींव ५ मार्च सन् १८९२ ई० में

१ अधिवेशन प्रत्येक वर्ष भिन्न-भिन्न शहरों में होते है।

पंजाब के तत्कालीन लाट साहब सर जेम्स लायल के हाथों रक्खी गई और १२ अप्रैल सन् १६०४ मे नाभा नरेश महाराजा हीरासिंह जी की अध्यक्षता मे एक भारी जलसा हुआ था जिसमे समस्त रियासतों के प्रतिनिधि और उस समय के पजाब के गवर्नर सर चार्लस रिवाज भी मौजूद थे इस जलसे में बहुत धन इकट्ठा हुआ था इस कालेज का रकवा कई मीलों मे होकर है और सभी सिख राज्यों से बधी हुई आमदनी होती रही है। पंजाब सरकार से भी सहायता मिलती रही है। इसके अलावा सिखों के और भी कालेज हैं। जिनमे लाहौर और लायलपुर के पाकिस्तान मे रह गये।

पजाब के बाहर जहाँ भी सिखो की आबादी है वहाँ-वहाँ सब जगह छोटे-बड़े स्कूल है। दिल्ली में दरियागज मे एक दस्तकारी का स्कूल है। इसके अलावा कुछ दस्तकारी के और भी स्कूल है।

लड़कों की शिक्षा की तरह सिखों ने लड़कियों की शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया है। उतना तो नहीं किन्तु कुछ असतोपजनक भी नहीं है। सन् १८८७ तक तो २२७ स्त्रियों पीछे एक लड़की सिखों की पढ़ी लिखी थी। उस समय सरकार की ओर से जो कन्या-पाठशालाये खुली थीं। उन्हीं मे खास २ घरों की लड़कियाँ जाती थीं। अमृतसर मे खेमसिंह जी वेदी ने एक कन्याशाला खोली थी जिसमे वे अपने ढग से केवल धार्मिक शिक्षा ही देते थे।

सन् १८६० ई० के आस-पास प्रोफेसर गुरमुखसिंह, भाई हितसिंह ज्ञानी, नौरंगसिंह और डाक्टर चरनसिंह जैसे कुछ पुरुषों ने स्त्री-शिक्षा का आन्दोलन उठाया। इन्होंने एक सिंह सभा बनाई। उसी के द्वारा कुरीतियों के निवारण और धर्म-प्रचार का काम भी होता था। प्रोफेसर गुरुमुखसिंह जी के प्यारों मे एक भाई तख्तसिंह जी थे। कहा जाता है कि सिख जाति मे स्त्री जाति के वे परम उद्धारक और हिमायती थे। उन्होंने फिरोजपुर मे एक कन्या विद्यालय स्थापित किया। जो आगे चलकर पजाब मे स्त्री-शिक्षा का एक प्रसिद्ध केन्द्र बन गया।

सन् १६११,१२ ई०की सरकारी रिपोर्ट मे भाई तख्तसिंहके जोकि जाट जमींदार के घर पैदा हुए थे। कन्या विद्यालय के लिये इस प्रकार लिखा गया था—"यह स्कूल भाई तख्तसिंह और उसकी सुपत्नी का खाला हुआ है। इन दोनो ने इस स्कूल को चलाने के लिये धन सग्रहार्थ हिंदुस्तान, जापान और अमरीका देश का भ्रमण किया है। (रिपोर्ट मे अमरीका जाना भूल से छपा है। वे मलाया गये थे।) इन दोनों स्त्री पुरुषों ने स्कूल के लिये अपना जीवन अर्पण कर दिया है।

सन् १६३८ ई० मे भाई तख्तसिंह जी का स्वर्गवास हो गया। जन्म सन् १८६० ई० में हुआ था। असली निवासी मरोवाल जिला लुधियाना के थे। इनके पिता सरदार देवासिंह फीरोजपुर मे मुलाजमत पर आये थे। यहीं भाई जी का जन्म हुआ।

वास्तव मे भाई तख्तसिंह सर्वप्रिय थे। हिंदू-मुसलमान सभी उनकी प्रशंसा करते हैं। अब यह स्कूल सिख कन्या महाविद्यालय के नाम से मशहूर है बहुत दिनों तक भाई जी की सुपुत्री बीबी गुरबख्शकौर जी इसकी संचालक तथा आचार्य्या रही थीं।

भाई धर्मसिंह जी ठेकेदार दिल्ली ने चार लाख रु० कन्या-शिक्षा के लिये दिये और प्रबध करने के लिये एक ट्रस्ट बना दिया था। इस धनराशि से लड़कियों को वजीफा दिया जाता रहा है। लगभग १०० पाठशाओं के चलाने मे भी इस धन से सहायता दी जाती रही है। और प्रत्येक क्षेत्र मे सिख लड़कियाँ से ऊँचे ओहदों पर पहुँच रही हैं। उनमे ज्ञानी, विशारद, डाक्टर लेखक, कवि आदि भी अनेकों हैं।

इस प्रकार लड़के और लड़कियों दोनों ही की शिक्षा में सिख संतोपजनक रीति से आगे बढ़ रहे

हैं। एक खास बात यह है कि प्राइवेट संस्थाओ में धार्मिक शिक्षा अनिवार्य है और सिख प्रायः संस्थाओं मे पढ़ते है जो उनकी हैं। इन्हे सरकार ग्रांड देती है। इनकी डिग्रियाँ सरकार से स्वीकृत हैं।

सिख साहित्य

सिखों का अधिकांश साहित्य पंजाबी जवान और गुरमुखी लिपि मे है। साहित्य मे सिखों आशातीत उन्नति की है। वैसे इस समय सिखों की लिखी हुई बहुत सारी किताबे है। किंतु दूसरी भा। के मुकाबिले मे कम ही हैं। जितनी भी हैं, उनमे धार्मिक अधिक हैं। वैसे जीवन हर पहलू पर थोड़ा बहुत साहित्य सिखों ने तैयार किया है। गुरमुखी भा में सबसे पहले जो ग्रथ लिखा गया था। वह थी भाई वाले जी की साखी। द्वितीय गुरु अगददेव जी ने लिखाया था। इसमें गुरुवाणियों के सिवा गुरु नानकदेव जी का जी. वृत्तांत भी था। कुछ समय तक तो इसने धार्मिक ग्रंथ का भी काम दिया था। पाँचवें पातशाह गुरु अर्जु देव जी के समय मे आदि ग्रंथ साहब की रचना हुई। जो जन-भापा मे भारत मे अनूठा धार्मिक ग्रन्थ है भाई बाला जो की सखी का आदर उत्तरोत्तर गिरता गया। क्योंकि उनमे बराबर असैद्धान्तिक बातों वृद्धि दूसरे लोग करते रहे। पंजाब के साहित्यकारो मे भाई गुरुदास जी का दर्जा बहुत ऊँचा है और क जाता है कि जिस समय भाई गुरुदास जी की रचनाओं को गुरु अर्जुनदेव जी ने देखा तो .. इन्हे गुरुग्रन्थ साहब की कुंजी कहा। भाई गुरुदास जी की पंजाबी वारों के साथ ही उनके हिन्दी भापा लिखे हुए कवित स्वय एक वड़े गौरव की चीज है।

भाई सतोपसिंह जी का महान् ग्रन्थ सूरजप्रकाश एक बड़ी अद्भुत रचना है। जिनमे सिख गुरुओं के जीवन दिये हुए हैं।

गुरु ग्रन्थ साहब के पश्चात् सिखों मे जिस ग्रन्थ का अधिकतम आदर है। वह है श्री गोविंदसिंह जी दशम पातशाह की रचना। उस एक ही महान ग्रन्थ मे जोकि दशम ग्रन्थ के ही नाम से प्रसिद्ध है। अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का समावेश है।

इतिहासों ग्रन्थों मे सिख लोग मैकालिफ साहब के लिखे इतिहास को ज्यादा महत्त्व देते हैं। यह इतिहास भाई काहनसिंह जी, ज्ञानो दितसिंह, शार्दूलसिंह आदि की मदद से लिखा गया था। आधुनिक सिख लेखकों मे भाई काहनसिंह जी बहुत ऊँचे लेखक थे। उनका लिखा गुरु रत्नाकर शब्दकोष शायद सब लेखकों के ग्रन्थों से बड़ा है सिखों के वृद्ध लेखकों मे भाई वीरसिंह जी ने काफी लिखा है।

भाई वीरसिंहको यदि आधुनिक पंजावी साहित्य का पिता कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। उनकी रचनाओं मे से कोई छः सौ के करीब खालसा ट्रैक्ट सोसायटी के लिये लिखे हुए ट्रैक्ट हैं। गुरु नानक चमत्कार, कलगीधर चमत्कार जैसे ग्रन्थ लिखकर उन्होंने पंजाबी गद्य मे एक नई रूह फूंक दी थी। गुरु ग्रन्थ कोष भी प्राय. उनका ही लिखा हुआ है और भाई सतोपसिंह रचित सूरजप्रकाश जैसे महान ग्रन्थ का १४ जिल्दों मे संपादित करना उनके महान कार्यों मे से है। इनके अलावा उन्होंने 'सुन्दरी' और 'विजयसिंह' जैसे अनेकों ऐतिहासिक उपन्यास लिखकर सिखों मे जागृति पैदा करने मे बड़ा भाग लिया है। काव्य मे प्राय एक सत कवि हैं।

हिन्दी मे गुरुमत साहित्य का प्रचार भाई मोहनसिंह जी वैद्य ने अच्छा किया। कुछ थोड़ा सा साहित्य हिन्दी में प्रोफेसर (अब डाक्टर) गडासिंह जी ने भी लिखा है। संत गोविंदसिंह ने हिन्दी म इतिहास गुरु खालसा अच्छी पुस्तक लिखी है। विज्ञान, दर्शन, काव्य, शिल्प, कला और राजनीति की ओर सिख लेखकों की रुचि बराबर बढ़ी है।

अट्ठाईसवाँ अध्याय

सिख धर्म के अन्तर्गत सम्प्रदायों की विवेचना

संसार मे जितने भी धर्म हैं। उनमे शायद एक भी ऐसा नहीं होगा जिसके अंदर फिरके न हों। इस्लाम के अंदर ७२ फिरके बताये जाते हैं। 'ईसाइयों' में भी कई फिरके है। वैष्णव, शैव और शाक्त भी फिरकेबन्दी से खाली नहीं। यह फिरके अच्छे भी होते हैं और बुरे भी। अच्छे तो उस हालत में होते हैं जब वे प्रगतिशील हों किंतु बुरे तो वे हर हालत मे ही हैं। सिर्फ उन दिशाओं को छोड़कर जब किसी विशेष अवसर पर मतभेद को भूलकर एक लाइन में खड़े हो जांय। सिख धर्म के अंदर भी ऐसे सम्प्रदाय हैं। उन्हीं में से कुछ प्रमुख संप्रदायों का संक्षेप सा परिचय यहां देना चाहते हैं।

यह सम्प्रदाय सारे भारत मे फैला हुआ है। यह सिखों का अग है भी और नहीं भी। है तो यों कि गुरु ग्रंथसाहब को यह अपना धार्मिक ग्रथ मानते हैं इनके डेरों में ग्रंथ साहब का पाठ होता है और गुरु नानकदेव जी से लेकर इस बीसवीं सदी के आरम्भ तक उन्होंने इस पवित्र ग्रन्थ के उपदेशों का प्रचार किया है। दूसरे वे गुरु नानकदेव जी के पुत्र बाबा श्रीचन्द जी को अपने सम्प्रदाय का एक उद्धारक (प्रवर्तक भी) मानते हैं। गुरु नानकदेव जी और बाबा श्रीचन्द जी के उद्देश्यों मे कोई मौलिक भेद भी न था। बाबा श्रीचन्दजी का तप इतना बढ़ा हुआ था कि सिख गुरु उनकी कदर करते थे और भेट भी देते थे। बाबा श्रीचन्दजी ने अपने पिता की वाणियों और उपदेशों का कोई खडन भी नहीं किया है। लगभग साढ़े तीन शताब्दी तक सिख और उदासीन दूध और पानी की तरह हिल-मिल कर रहे हैं। गुरु मंतव्यों का प्रचार और गुरुद्वारों की पूजा प्राय: उदासीनों के ही हाथ रही है। अब गुरुद्वारों के प्रबध के ऊपर झगड़ा होने पर इस ३०-३५ वर्ष के अंदर दोनों ओर से मतभेद हो गया है।

उदासीन

जिस प्रकार पंजाब मे गुरुद्वारो का घनत्व है उसी प्रकार पंजाब में उदासियों के डेरों का भी महत्व है यही नहीं किंतु भारत से बाहर यूरोप मे भी उदासियों के प्रबन्ध में सिख गुरुद्वारों के होने का पता चलता है। चुनांचे एक ऐसा गुरद्वारा सेंटपीटर्सबर्ग मे सन् १७८२-८३ मे था जिसका कि जिक्र जार्ज फौस्टर ने अपने सफरनामे में किया है। बाद में भी एक ऐसे ही गुरुद्वारा के होने का पता मिलता है। उदासियों के डेरे तो पंजाब के अलावा, सिन्ध, बिहार और यू०पी० मे भी काफी है और उनमें प्राय: सभी स्थानों से गुरु

नानकदेव, गुरु तेगबहादुर और गोविन्दसिंह जी आदि का इतिहास जुड़ा हुआ है। सिन्ध में साधु ५. उदासियों का एक बहुत बड़ा धर्म स्थान है।

उदासीन मत को शिखरत्व देने मे बाबा श्रीचन्द जी का बड़ा प्रभाव था। इसमें कोई संशय नहीं बाबा श्रीचन्दजी संवत् १५५१ में सुल्तानपुर में पैदा हुए थे उनके दूसरे छोटे भाई बाबा लक्ष्मीचन्दजी जिन्होंने करतारपुर में अपना उपनिवेश रक्खा। बाबा श्रीचन्दजी भी जन्म से सांसारिक मामलों में दिल चस्पी नहीं लेते थे। अतः उन्होंने अपना विवाह भी नहीं किया था। संस्कृत के वे अद्भुत विद्वान् थे शास्त्रार्थ में उन्होंने कई बार अच्छे २ पंडितों को हराया था। उनके तप के स्थानों के नाम ८ाला... और बारठगॉव पड़ गये हैं। यह स्थान गुरदासपुर जिले मे है। बारठ गॉव मे ही गुरु अर्जुन ... उनसे मिले थे। यहीं पर गुरु हरगोविन्दजी से उन्होंने गुरदिता जी को अपनी सेवा के लिये लिया था। बा श्रीचदजी के भी कई स्मारक स्थान हैं। नगरठडा दौलतपुर, चम्बा शहर में भी उनके स्थान है। वे ... सौ उन्नीस वर्ष तक जिंदा रहे। उनके भक्तों का ख्याल है कि सच्चे मन से पाठ करने वालों को अब भी दर्शन देते हैं।

बाबा श्रीचंदजी की करामातों का भी एक इतिहास है। बादशाह जहॉगीर ने भी उनकी करामातें देखी थीं ऐसा उदासीन लेखकों का कहना है।

उदासीन संतों में अनेक प्रसिद्ध संत हुए हैं। जिनकी पंजाब में कई स्थानों पर यादगारे बनी हुई हैं। संस्कृत के ऊँचे दर्जे के कई विद्वान अभी भी इस संप्रदाय में हैं।

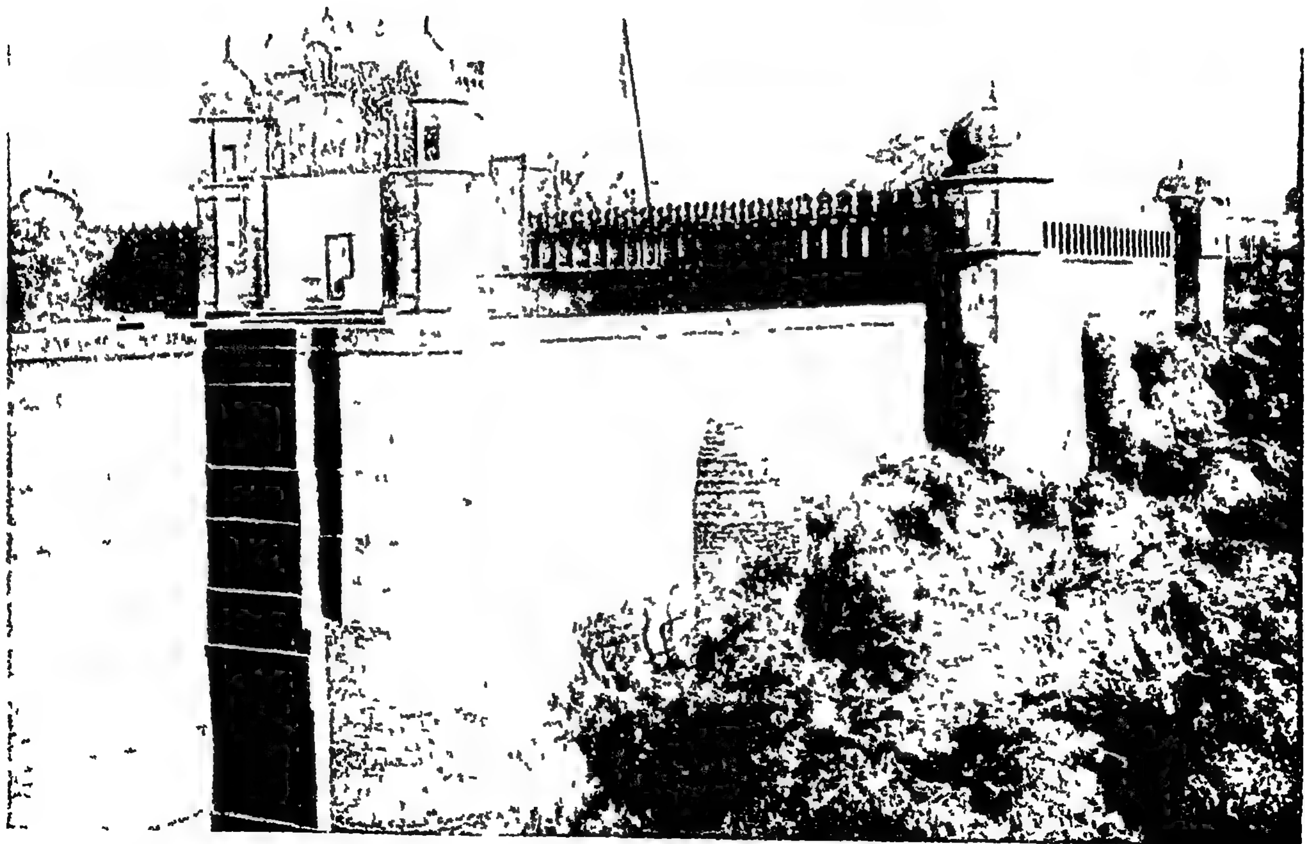
यह हम लिख चुके हैं कि बाबा श्रीचंदजी के पहले चेले गुरदित्ता जी हुए। आगे उनके चार सेवक हुये। (१) बालू हसना (२) अलमस्त (३) फूलसाह और (४) गोबिन्दजी। यह चारों बड़े प्रसिद्ध संत हुये है।

अलमस्त वा अलमस्त मुनि[1] काश्मीर के रहने वाले पं० हरदत्तजी के पुत्र थे। वह बाबा श्रीचंद जी के संवत १६३१ ई० मे शिष्य हुए। बचपन से ही यह ईश्वर-भक्त थे। शिष्य होने के बाद इन्होंने बाबा श्रीचंदजी की अपूर्व भक्ति के साथ सेवा की। सदैव उनके साथ रहने और कम्बल और गुदड़ी लादने के कारण यह कमलिया भी कहलाने लगे। आज्ञाकारी ऐसे थे कि बाबा जो भी कुछ कह देते थे उसका अक्षरश. पालन करते। अपने गुरु और ईश्वर की भक्ति में हर समय प्रसन्न रहने के कारण यह अलमस्त भी कहलाते थे। बाबा श्रीचंदजी ने इन्हे वरदान दिया था कि तेरे शिष्यों में भी विद्वान और धर्मी लोग होंगे। तू खुद भी बड़ी ख्याति प्राप्त करेगा। वृद्धावस्था के दिनों मे तो बाबा को कमलिया जी कंधे पर बिठाकर जहां वे चाहते ले जाते थे।

बालू हसना जी का सही नाम बालकृष्ण जी था। यह अलमस्त अथवा कमलियाजी के छोटे भाई थे। संस्कृत में आपने भी भारी योग्यता प्राप्त की थी। शास्त्रों के और ईश्वर के मनन में आप इतने दत्तचित्त होते थे कि अपने शरीर की भी सुध-बुध भूल जाते थे। एक समय इसी बेसुधी मे एक छत के गिर जाने के कारण आप मृत प्रायः हो गये। आपको शमशान ले जाने की तैयारी होने लगी किन्तु बाबा श्रीचन्द जी ने यह कहकर उन्हे जीवित कर दिया कि तुम कहते हो बालू जी मर गया देखो तो वह तो हँस रहा है सबने देखा तो सचमुच वे हँस रहे थे। तभी से वे बालू हसना नाम से मशहूर हुये।

१ उदासीन लोग इसी सम्मानप्रद उपाधि से उन्हें याद करते हैं।

डेरा बाबा गुरदित्ता जी



तिलक स्थान



चमकौर साहिब

गोइन्द (गेदा जी) और फूलसिंह जी के सही नाम गोविन्ददेव और पुष्पदेव जी थे। इनके पिता जयदेव और माँ सुभद्रा श्रीनगर के रहने वाले थे। एक समय यह दम्पति बावाजी के पास गये और संतान होने का आशीर्वाद चाहा। बावा जी ने तथास्तु कह दिया। और कहा तुम्हारे दो पुत्र होंगे। इन स्त्री-पुरुषों ने अपने-अपने मन मे एक पुत्र बावा जी को भेट करने का निश्चय कर लिया। जब पुत्र पैदा हुये तो स्त्री ने कहा मैंने बडा पुत्र देने का संकल्प किया था पुरुष ने कहा मैंने छोटा देने का संकल्प किया था। अन्त मे यही तय हुआ कि जब संकल्प दोनो का हो गया है तो दोनों ही भेट कर दिये जाय। बड़े होने पर यह दोनों ही उदासीन मत के अच्छे प्रचारक साबित हुये।

इसी प्रकार इन महात्माओं के अन्य बहुत से प्रसिद्ध शिष्य हुये है। जिनमे अनेकों संस्कृत और शास्त्रों के धुरंधर विद्वान् हुये हैं। इनसे संस्कृत साहित्य का बहुत कुछ प्र चार हुआ था। इन्हीं संतों द्वारा जपु जी पर संस्कृत टीका भी हुई थी।

बावा श्रीचंद जी ने भी अपने पिता की तरह बहुत यात्राये की थीं। काबुल, सिंध, काश्मीर, यू० पी० आदि प्रान्तों मे उन्होंने यात्रा करके सतधर्म का प्रचार किया। सिन्ध मे हिन्दुओं पर जो अत्याचार मुसलमान शासक करते थे आपने उधर भी यात्रा की। बावाजी की जीवन यात्रा, उपदेशों शास्त्रार्थों पर उदासियों के यहाँ काफी साहित्य मिलता है।

अत में इतना कहकर हम इस सम्प्रदाय के इतिवृत्त को समाप्त करते है कि हिन्दू और सिखों की शृखला को जोड़ रखने के लिए उदासीन सम्प्रदाय ने एक मजबूत कड़ी का काम किया है।

गुरु गोविंदसिंह जी महाराज ने भाई रामसिंह कर्मसिंह, गंडासिंह, वीरसिंह और शोभासिंह जी को काशी में संस्कृत विद्या पढ़ने को भेजा था। यह निर्मला शब्द खालसा शब्द का संस्कृत रूपान्तर है आगे जो भी कोई इनके पास विद्या पढ़ता और फिर धर्म-प्रचार मे लग जाता वही निर्मल हुआ। इस प्रकार यह प्रचारकों का समूह निर्मला नाम से मशहूर हुआ। गुरु जी के बाद धर्म-प्रचार मे इनका बहुत हाथ रहा। इसलिये अकाली और दूसरे सभी प्रकार के सिखों मे इनका आदर है।

निरमले

इनमें कई बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वान् और संत हुये हैं। उदासियों की तरह इन्होंने भी बहुत से डेरे स्थापित किये। बाबा श्रीचद जी जैसे महान् व्यक्तित्व का कोई पुरुष तो अवश्य ही इस सम्प्रदाय को नहीं मिला किन्तु सिख धर्म को बढ़ाने मे और उसकी महत्ता प्रकट करने मे इस समुदाय ने काफी प्रयत्न किया है।

उदासीन सम्प्रदाय के महात्मा प्रीतमदास ने हैदराबाद के वजीर नानकचन्द से सात लाख रुपया लेकर प्रयाग में अपने सम्प्रदाय के प्रमुखों को इसलिए सौंप दिया कि तीर्थों में इस रुपये से स्थान बनाये जायं जिसमें देश-देशान्तर से आने वाले उदासीन संत ठहर सके। इस रुपये से प्रयाग, कनखल (हरिद्वार) और काशी आदि में अनेक अखाडे बनाये गये। संत गंगाराम, कूटस्थ ब्रह्म, और अटल ब्रह्म इन अखाड़ों के ट्रस्टी बनाये गये।

सतोखदास, हरिनारायनदास आदि ने भी कुछ अखाड़े उदासियों के बनाये। इनमे से एक कनखल में भी है। इससे निर्मले सत-सिख भी उत्साहित हुये। उन्होंने भी तीर्थों में अखाड़े बनाने का उद्योग किया। भाई तोतासिंह जी महताबसिंह जी और रामसिंह जी आदि संतों की प्रेरणा से संवत १६१८ में महाराज नरेन्द्रसिंह पटियाला, महाराजा भरपूरसिंह नाभा, महाराजा सरूपसिंह जींद ने क्रमश ८००००)

नकद ४०००) सालाना की जागीर १६०००) नकद ५७५) सालाना की जागीर और २००००) नकद और १३००) सालाना की जागीर देकर अखाड़ो का प्रवन्ध कर दिया और इस प्रवन्ध का नाम धर्म-पूजा रक्खा। इस धर्म-पूजा के पहले महंत भाई महताबसिंह जी नियत किये गये।

अखाड़ा निरमला के प्रबंध के लिये जो नियम बनाये गए है। वह दस्तूर-उल-अमल अखाड़ा कहलाते हैं। इनमे महत के चुनाव महंत की योग्यता और प्रतिवंध लंगर के प्रबंध आदि नियमों का उल्लेख है। और इन नियमों की पूर्ति तीनों ही राज्यों की जानकारी और सूचना में होनी चाहिए। यह भी इसमे साकेतिक उल्लेख है।

सिखों मे निहंग एक ऐसा दल है जिसे शहीदी का उम्मीदवार दल कह सकते है। निहंग के अर्थ निशंक के है। जिसे मौत की चिंता न हो वह निहंग है। सिख साहित्य मे निहंग के अर्थ आत्मज्ञानी और निर्लेप भी हैं। निहंगों के संबंध मे अनेकों कहावते भी है, यथा.—(१) विचरे निहंग। जैसे पिलंग।[1] (२) निरभय होइये भया निहंगा। (३) निहंग कहावै सो पुरुष दुख सुख मन्ने न अङ्ग।

निहंग

निहंग लोग सिर पर फरहरे वाला ऊँचा (मक्खियों जैसा) दमाला बांधते है उसके ऊपर चक्र लगाते है, खड्ग, कृपान आदि शस्त्र रखते हैं, वस्त्र नीले पहनते हैं, मृत्यु क्या है इसकी उन्हे कोई चिंता नहीं, धर्म पर कुर्बान होने के लिये हर समय तैयार रहते है।

निहग दल कब से बना। इसके संबंध में सिख साहित्य मे कई उल्लेख है। (१) यह कि साहब जादे फतहसिंह सिर से दमाला लपेट कर विनोद करतें हुए गुरुगोविंदसिंह जी के पास हाजिर हुए। गुरु ने उन्हे देखकर कहा कि इस वाणे का भी सिखो मे एक पंथ होवेगा। या इसे यों कह सकते हैं। "सिर बांधि कफनवा हो शहीदों की टोली निकली।" (२) खयाल यह है कि जब गुरुगोविंदसिंह ने नीले वस्त्र फाड़ फेंके तब उनमे से एक चीर भाई मानसिंह ने बांध ली थी। उसी रूप को याद रखने के लिये यह नीला वस्त्र पहनते है।

बहादुर बाबा बन्दा जी का जीवन वृत्तान्त किसी पिछले अध्याय मे काफी लिखा जा चुका है। यहां तो केवल यह बताना है कि कुछ सिख उनके श्रद्धालु, और भक्त हैं जो बन्दई कहाते हैं।

बन्दई सिख

चन्द्रभागा नदी के किनारे रियासी के परगना में भम्मर नामी गॉव के पास डेरा बन्दा के नाम डेरा बाबा बन्दा है।

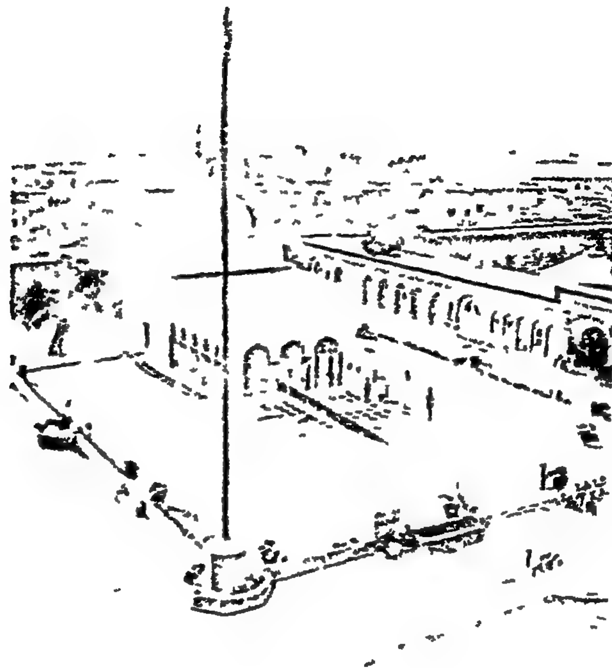
बन्दई "गुरु ग्रन्थ साहब" को ही अपना धर्म ग्रंथ मानते है। दसों गुरुओं को ही अपना गुरु मानते हैं अरदासा की समाप्ति के बाद चार पांच आदमी गुरु गोविन्दसिंहजी की स्तुति करते हुये बन्दासिंह और उनके तीन उत्तराधिकारियों के नाम लेते हैं।

डेरे के पास बाबा बन्दा का दमदमा है उसमे एक पहर रात रहे नौबत बजती है और सुबह शाम को कीर्तन होता है। बन्दई लोग मृतक के फूलों को मेले के अवसर पर डेरे के पास चन्द्रभागा मे प्रवाहित करते हैं।

बाबा बन्दासिंह जी की शहीदी के बाद उनके पुत्र रणजीतसिंह जी गद्दी पर बैठे। रणजीतसिंह के जोरावरसिंह हुये। जोरावरसिंह के बेटे अर्जुनसिंह हुये। अर्जुनसिंह जी के खड्गसिंह और खड्गसिंह के

१. पिलिंग=पील=हाथी।

ननकाना साहिब





जन्म-स्थान श्री गुरु नानक देव जी

नामधारी सम्प्रदाय के संस्थापक

बाबा बालक सिंह

नामधारी सम्प्रदाय के संस्थापक



बाबा राम सिंह जी

दयासिंह जी हुए। दयासिंह जी के दो पुत्र अतरसिंह और सुजानसिंह जी हुए। इस समय गद्दी पर बाबा अतरसिंह जी ही हैं। इस गुरुद्वारे में बाबा बन्दासिंह के सम्बन्ध की कोई पुस्तक बताई है। इनके इस देहरेसे महाराजा रणजीतसिंहजी और उनके दरबारी राजा गुलाबसिंह जी की लगाई हुई जागीर भी है।

महाराजा रणजीतसिंह जी के बाद गैर सिख लोगों ने किस प्रकार उनके साम्राज्य का ध्वंश किया यह बात विस्तार से हम पीछे लिख आये हैं। यह भी लिख चुके है कि लालसिंह और तेजसिंह नाम के दो सेनापतियों ने महारानी जिन्दा को भी बहका कर खालसा सेना को बुरी तरह नष्ट करा दिया था। हित और अनहित की पशु पक्षी भी जान लेते हैं। अपना विनाश होने पर सिखों के दिल में तेजसिंह और लालसिंह से घृणा पैदा होनी ही थी। किंतु चूंकि थोड़े दिनों बाद उन्होंने भी अपने कर्मों का फल पा लिया। अत. सिखों के दिल में अब ब्राह्मणों के लिये घृणा पैदा हुई कारण कि ये दोनों ही ब्राह्मण थे। इस घृणा का घनत्व रूप हुआ बाबा बालकसिंह उन्होंने प्रण कर लिया कि सिखों में अब तक भी ब्राह्मण धर्म के लिये जो श्रद्धा है उसे उखाड़ कर फेंक दूंगा।

नामधारी या कूका

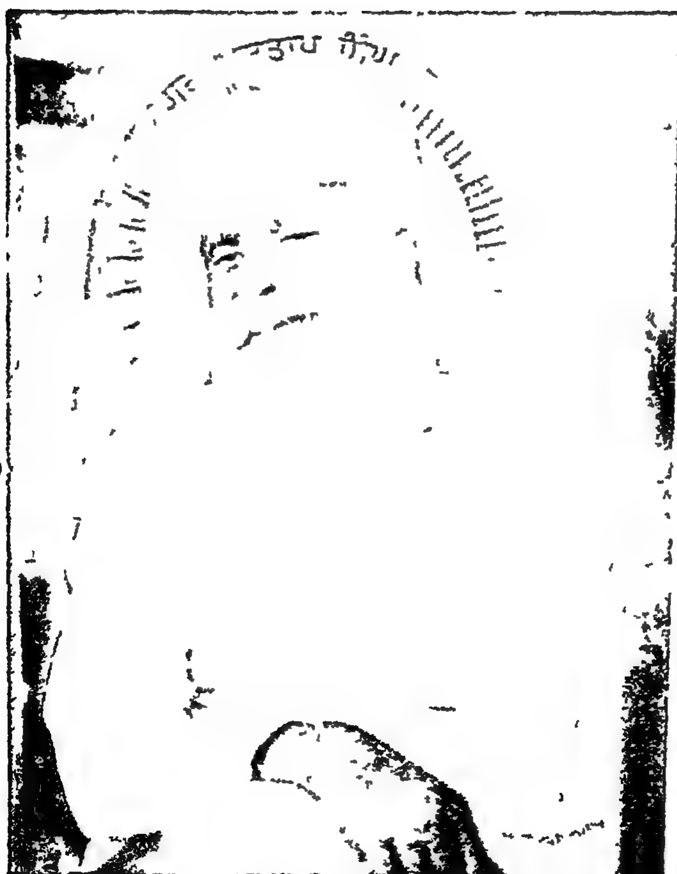
इन्हीं बाबा बालकसिंह के शिष्य हो गये बाबा रामसिंह। बाबा रामसिंह जी का जन्म लुधियाने जिले के राहिया की भैणी में जस्सासिंह जी के घर सवत् १८७२ की माघ सुदी पंचमी को हुआ था। छोटी उम्र से ही अपने धर्म के प्रति इनके खयाल बड़े पक्के थे। देश भक्ति से भी हृदय लबालब भरा था उन दिनों महाराजा रणजीतसिंह जी लाहौर के शासक थे। आप आरम्भ में उन्हीं की सेना मे जाकर भर्ती हो गये। किन्तु महाराज की मृत्यु के बाद नौकरी को छोड़ आये। आपका मन देशभक्ति और ईश्वर-भक्ति मे लगा हुआ था। लाहौर से आते ही बाबा बालकसिंह जी के पास आगये। जिनसे कि उनका पूर्व परिचय था। आपकी प्रतिमा, उपदेशों में अमृत वर्षा और सत्य धर्म की पराकाष्ठा को देखकर आपके समूह के लोग आपसे बहुत श्रद्धा रखते थे। भैणी साहब में आपका एक स्वर्गोपम स्थान था। यहीं प्राय. आप रहते थे। धीरे-धीरे सारे लुधियाना जिले मे आपका प्रभाव फैल गया। हजारों ही आदमी आपके श्रद्धालु हो गये।

पंजाब को विजय करनेके बाद अंग्रेज सरकारने मुसलमानोंको स्वभावत. सिर पर चढ़ाया। क्योंकि उसकी नीति ही ऐसी थी। पंजाब में कहीं भी चाहे वह मुस्लिम राज्य ही क्यों न हो महाराजा रणजीत-सिंह जी के समय गौ-वध नहीं होता था। अब स्थान स्थान पर कबेले खुलने लगे। धार्मिक भावों से ओत-प्रोत होने के कारण आपके अनुयाइयों को यह बात सहनीय नहीं हुई। मालेरकोटला और मलौद के चूचड़ गायों को ले जाते हुए संवत् १६२६ वि० मे रामसिंह जी के समूह के लोगों ने जो नामधारी और कूका के नाम से मशहूर हैं बुरी तरह से मार डाला। सरकार ने इसे खुली बगावत समझा। उसने ४० नामधारियों को तोपसे उड़वा दिया और तीस आदमियों को फांसी लगा दी। इस काम के लिए न कोई प्रमाणिक जाच की गई और न मुकदमा चला। इसके बाद नामधारियों का सरकार ने दृढ़ता के साथ दमन करना शुरू कर दिया। इस दमन मे समस्त रियासतों ने भी साथ दिया। बाबा रामसिंह जी और उनके साथी सूबों को सरकार ने कैद करके रगून भेज दिया। नामधारी सिखों ने उसी समय से अंग्रेज सरकार से असहयोग कर दिया था।

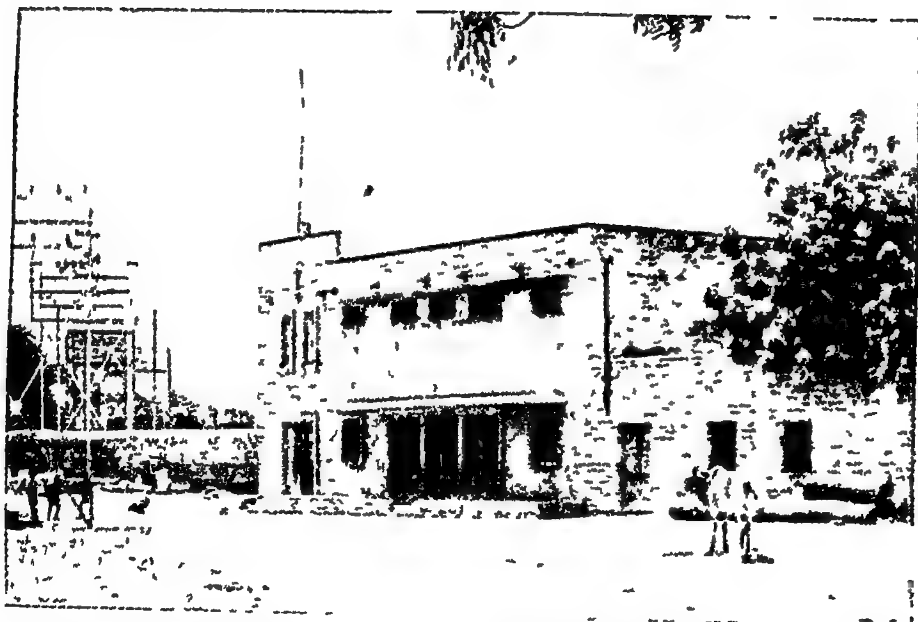
बाबा रामसिंह जी के बाद गद्दी पर उनके भाई बुधसिंह जी बैठे जो हरीसिंह नाम से मशहूर हुए। आजकल बाबा प्रतापसिंह जी उनके उत्तराधिकारी हैं।

नामधारी सिख नाम की उपासना पर विशेष जोर देने से, नामधारी कीर्तन मे घोर कूक लगाने से

कूके कहे जाते हैं। सफेद वस्त्र और प्रायः स्वदेशी पहनते हैं। हरिकीर्तन के समय जोर-जोर से गाते हैं भक्ति मे विभोर होकर नाच भी उठते हैं। वाहिगुरु के मंत्र का उपदेश कान मे कहा जाता है। हवन बड़े प्रेमी हैं। भैणीसाहब को देखनेवालों का कहना है कि ईश्वर-भक्ति का यहां जो प्रवाह बहता है वैसा थोड़े ही स्थानों पर होता होगा। रामसिंह जी व उनके उत्तराधिकारियों को उनके अनुयायी गु कहते हैं। और दूसरे सिख उन्हे बाबा कहते हैं।



बाबा प्रतापसिंह जी



गुरुद्वारा जोधपुर

उन्तीसवाँ अध्याय

सिख-संस्थायें और उनका इतिहास

पिछले अध्याय मे हमने सिख-समाज के अतर्गत जिन सम्प्रदायों का वर्णन किया है। वे एक दिन संस्थाओं के ही रूप मे थी किंतु पुरातन जमाने में जो संस्था कायम होती थी वह आगे चलकर सम्प्रदाय का रूप धारण कर लेती थी इस प्रकार की साची इतिहास मे काफी भरी पड़ी है। और कोई भी संस्था भविष्य में भी सम्प्रदाय का ही रूप धारण कर सकेगी यदि उसके संचालक या नेताओं का चुनाव उस संस्था के जन-साधारण के हाथ मे न आ जायगा।

सिखों की जमात मौजूदा समय मे प्राय. सम्पूर्णत' ऐसी संस्था गुरुद्वारा शिरोमणि प्रबधक कमेटी है जिसके संचालकों का चुनाव सिखों के सर्व-साधारण के हाथ है। यह सस्था सिखों की प्रजातत्री सस्था है इसके अलावा सिखों की कई संस्था हैं। जो भिन्न-भिन्न अवसरों पर तत्कालीन परस्थितियों के कारण प्रकाश में आई हैं और उन्होंने कार्य भी सफलतापूर्वक किया है ऐसी ही कुछ सस्थाओं का वर्णन यहाँ हम करते हैं—

सब से पहले संवत् १६३० विक्रमी में अमृतसर मे 'गुरसिंह सभा' नाम की एक संस्था सिखों ने स्थापित की। इसके प्रधान बाबा खेमसिंह जी वेदी बनाये गये थे। सरदार ठाकुरसिंह सिंधानवालिये सरदार मानसिंह जी और भाई ताम्रसिंह जी आदि इसमें आरम्भ मे सहयोगी रहे।

श्री गुरुसिंह सभा

इस संस्था ने रस्म-रिवाज सम्बन्धी कुरितियों को दूर करने और सिख धर्म का प्रचार करने का काम किया।

इससे छ वर्ष बाद लाहौर मे भी इसी नाम की सभा कायम हुई। इसकी स्थापना और सचालन मे हरिमन्दिर तरनतारनजी के ग्रथी भाई हरखासिंह, सरदार गुरमुखसिंह, सरदार जवाहरसिंह, भाई निक्का-सिंह, भाई बसन्तसिंह और सरदार करतारसिंह जी आदि ने आरम्भ में अच्छा काम किया। आरम्भ में प्रधान भाई बूटासिंहजी थे।

इस सभा की ओर से "खालसा गजट' नाम का एक उर्दू अखबार भी निकाला गया। इसके संपादक सरदार मइयासिंह जी हुए थे। कुछ समय बाद इसी सभा ने "खालसा अखबार' भी जारी किया किया। जिसके भाई झंडासिंह जी और ज्ञानी दितसिंह जी संपादक रहे।

इसी लाहौर सिंह सभा ने संवत् १६४२ विक्रमी मे एक प्रतिनिधि सभा खालसा दीवान के से मुकर्रिर की। इसके प्रधान बाबा खेमसिंह वेदी ही बनाये गये और सरदार गुरुबख्शसिंह, ग।णेश।" भाई बूटासिंह, भाई जैमलसिंह आदि सभा के मन्त्री और खजांची आदि मुकर्रि हुए। यह सभा शनैः-शनैः बढ़ रही थी। दो जलसे भी इसके हुए। किंतु कुछ ही मे इसका काम ढीला सा पड़ गया।

खालसा दीवान और चीफ खालसा दीवान

खालसा दीवान का काम शिथिल-सा पड़ जाने के कारण संवत १६५८ विक्रमी के वैस.. मे अमृतसर मे मेले मे आये हुये प्रमुख २ सिखो ने दीवान का काम सुचारु रूप से चलाने और फिर से मजबूत संगठन बनाने के लिए एक कमेटी मुकर्रिर की जिसके सयोजक सरदार गु: बख्शसिंह जी बैरिस्टर बनाये गये। लगभग सात महीने बाद अमृतसर मे लगभग १२०० प्रमुख सिखों ने एकत्रित होकर लाहौर खालसा दीवान को एक चिट्ठी इस आशय की लिखी कि कोई सर्व-सम्मत संगठन किया जाय किंतु वहाँ से छः महीने तक भी कोई उत्तर न मिलने पर आखिरकार संवत १६५६ विक्रमी मे एक बडा अधिवेशन करके "चीफ खालसा दीवान" नाम की एक बड़ी संस्था खड़ी की गई। इसके प्रधान भाई अर्जुनसिंह जी बग्गारिया और मंत्री सरदार सुन्दरसिंह जी मजीठिया उपमंत्री सोढी सुजान सिंह जी पटियाला नियुक्त हुये। २१ सज्जनों की वर्किङ्ग कमेटी बना दी गई। सवत १६६० वि० तदनुसार सन १६०३ ई० मे यह सस्था रजिस्टर्ड हो गई।

इसने धार्मिक और विद्या-प्रचार मे काफी काम किया है। जितने स्कूल और कालेज हैं वे सभी इसी सस्था के प्रयत्नों का फल है।

खालसा कालेज कौंसिल

सन् १८६२ ई० मे सिख सरदारो ने एक भारी दीवान करके खालसा कौलेज कमेटी का निर्माण किया। इस कमेटी ने इसी वर्ष के दिसम्बर मे एक इजलास किया। इसके बाद सन् १८६३ के मई महीने में कालेज की स्थापना के सकल्प से स्कूल जारी कर दिया गया। कालेज की स्थापना के सकल्प से स्कूल जारी कर दिया गया। कालेज सम्बन्धी थोड़ा-सा परिचय अन्यत्र भी दिया जा चुका है। यहाँ इतना ही काफी होगा कि उत्तर भारत की तीन प्रसिद्ध शिक्षण-संस्थाओं—हिन्दू यूनीवर्सिटी बनारस और मुस्लिम यूनीवर्सिटी अलीगढ़—मे खालसा कालेज अमृतसर एक है। जिसे कि सिख यूनीवर्सिटी बनाने के यत्न किये जा रहे हैं।

शिक्षा परिषद्

कालेज को उन्नत किये जाने के लिये यह भी आवश्यक था सिख आबादियों के केन्द्रों मे हाईस्कूल भी हों और साथ ही जाति मे शिक्षा का भाव भी अधिक पैदा हो इसलिये अब से लगभग तीस साल पहले एक सिख एजूकेशन कान्फ्रेंस की भी आयोजना की गई। जिसने प्रति वर्ष नये स्थान मे अपना इजलास करके एक हाईस्कूल स्थापित करने की स्कीम बनाई। उसी के अनुसार यह कान्फ्रेंस प्रति वर्ष भिन्न शहरों में होती है। इजलास मे जो अपील की जाती है उसमे पचासों हजार रुपया इकट्ठा हो जाता है। और फिर लोकल कमेटी बनाकर हाईस्कूल खोल दिया जाता है। और खुले हुये स्कूल को सहायता दी जाती है।

खालसा बिरादरी सभा

यह हमने कई जगह जिक्र कर दिया है कि सिखों मे अनेकों बिरादरियों के लोग हैं। क्योंकि गुरुमत का द्वार सभी धर्मों और सभी जातियों के लोगो के लिये खुला हुआ है। समय की लहर ने समझदार सिखो मे इस बात के भाव पैदा किये कि समस्त सिख एक है। उनके अन्दर खत्री अरोड़े और तिरखान आदि के भेद न होने चाहिये। इसी उद्देश्य को लेकर सन्

प्रेस और प्लेटफार्म की वजह से जागृति बराबर होती है। ख्यालातों मे भी सुधार होता है। परदेश आने जाने से भी अपनी हालत सुधारने के खयाल पैदा होते हैं। सिख भी भला क्यों न जागते। जिन्होंने जागृति के लिये पिछली शताब्दी मे काफी कुरबानी की थी। गुरुद्वारों का उस समय प्रबन्ध उदासी और निर्मले संतों के हाथ मे था और गुरुद्वारों मे अतुल संपत्ति थी और प्रति वर्ष आती भी थी। किन्तु उससे सिख समाज का भला कुछ भी नहीं होता था। यह बात समझदार सिखों को खटकती थी। इससे भी आगे सन् १९२० ई० की १२वीं अक्टूबर को एक और घटना होगई। उस समय 'खालसा बिरादरी सभा' का दीवान हो रहा था। कुछ कथित अछूतों ने उसी समय सिख धर्म की दीक्षा ले ली और हरिमंदिर जी मे भेंट लेकर दर्शन के लिये गये। पुजारी उन्हे भीतर आता देखकर मन्दिर से बाहर भाग गये। चूंकि सिखों की प्रणाली के अनुसार तख्त साहब सूने नहीं रहते हैं अत उसी समय वहाँ पर २५ सिख मुकर्रिर कर दिये गये। पुजारी डि० कमिश्नर के समझाने से भी जब मंदिर मे नहीं लौटा तो डि० कमिश्नर ने श्री दरबार साहब और अकाल तख्त के प्रबन्ध के लिये नौ आदमियों की एक कमेटी मुकर्रिर कर दी।

शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी

इसी कमेटी ने १५ नवम्बर सन् १९२० को सिखों का एक दीवान किया। इजलास ने १७५ आदमियों की गुरुद्वारा प्रबंध के लिये एक प्रतिनिधि कमेटी बनाई। जिसका 'शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी' नाम रक्खा गया। इस कमेटी की पहली बैठक अगले महीने दिसम्बर मे १२वीं तारीख को श्री अकालतख्त साहब में हुई। जिसमें पदाधिकारियों का निर्वाचन हुआ। ३० अप्रैल १९२१ ई० को इसकी रजिस्ट्री हो गई।

कमेटी ने सगठित होते ही गुरुद्वारों के सुधार अर्थात् अपने प्रबन्धमे लेने का काम आरम्भ किया। श्री तरनतारन में प्रबध सरकार की ओर से था। कमेटी ने एक जत्था तरनतारन पर कब्जा करने के लिये भेजा। किन्तु पुजारी ने इस घमण्ड में कि यहाँ पर तो सरकार का प्रबन्ध है। जत्थे के साथ मार पीट करादी। इस मारपीट मे १२ अकाली और ११ पुजारी दल के आदमी जख्मी हुये।

इसके बाद ही ननकाना साहब पर कब्जा करने के लिये कमेटी ने ऐलान निकाला। महन्त नारायण दास जी को बड़ी चिन्ता हुई। वे ननकाना साहब को सिखों का मानते भी न थे। उसे स्वतंत्र रूप से उदासियों का मानते थे। सरकारी लोगों ने भी उन्हे इसी रास्ते पर डाला और जल्दी मे ऐसा काम हुआ जो सिख और उदासियों के लिये किसी भी हालतमे लाभदायक नहीं था। २० फर्वरीको १६आदमियों का जत्था लेकर सरदार लक्ष्मणसिंह ननकाना पहुँचे। जब यह जत्था भीतर पहुँचा। तो मारपीट आरम्भ होगई, छुरी और पिस्तौलों का भी प्रयोग हुआ। अनेकों आदमी मारे गये। उसके बाद सिख भड़क गये और भारी संघर्ष करने के बाद उन्होंने ननकाना साहब पर कब्जा कर लिया। सरकार ने महन्त और सिख दोनों ही को दंड देने की नीति का अवलम्बन किया।

इससे अधिक रोमांचकारी काड है 'गुरु के बाग का' इस पर कब्जा करने के लिये जो कुर्बानियां सिखों ने कीं। वह भारत के इतिहास मे अद्वितीय हैं।

इस प्रकार शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्ध कमेटी के द्वारा आदोलनों का फल यह हुआ कि सरकार ने सन् १९२५ ई० मे गुरुद्वारा एक्ट नाम का कानून बना दिया। इस कमेटी के एक समय मास्टर तारा सिंह जी प्रधान और मत्री ज्ञानी करतारसिंह जी रहे हैं।

उपरोक्त एक्ट के अनुसार इस काम के लिए एक विशेष ट्रिब्यूनल है। जिससे इसी प्रकार के

गुरुद्वारा सम्बन्धी मुकदमे फैसल होते हैं।

शिरोमणि कमेटी में चुने हुये मेम्बर होते हैं यह चुनाव उसी प्रकार होता है जिस प्रकार असेम्बलियों के लिये होता है।

इन संस्थाओं के अलावा सिखों की अन्य भी कई संस्थायें हैं। उदाहरणार्थ "सर्वहिंद सिख मिशन सिखों की वह संस्था है जो भारत के प्रत्येक कोने में सिख धर्म का प्रचार करने का यत्न कर रही है यह सिखों में गुरमत साहित्य का प्रकाशन भी कर रही है एक समय इसके प्रधान मास्टर तारासिंह, प्रचार मंत्री मा. सुजानसिंह और मंत्री सरदार हरीसिंह थे। खालसा ट्रैक्ट सोसाइटी नियमित रूप से सिख इतिहास के सम्बन्ध में जानकारी भरे ट्रैक्ट निकालती है।

इन संगठनों के अन्दर रह कर अपने आन्दोलन के सफल होने के बाद भी सिखों ने अपने को अपने अधिकारों का पता दिया है। उन्हें धार्मिक और राजनैतिक दोनों ही प्रकार के अधिकारों के लिये सरकार और दूसरी शक्तियों से लड़ना पड़ा है। ननकाना साहब, गुरु के बाग के सिवा जैतों के स्थान पर रिपुदमनसिंह जी के देश निकाले के बाद उन्होंने अखण्ड पाठ किया। जिसमें बहुत से लोगों की गिरफ्तारी हुई और कष्ट उठाये, इनकी स्थिति का निरीक्षण करने के लिये जाने पर पंडित जवाहरलाल नेहरू को भी हवालात में बंद किया गया। सन् १९०७ ई० में कालोनी कानून में कुछ परिवर्तन कर दिया गया और बारी दुआब में मालियाना बढ़ा दिया गया। इन दोनों इलाकों में सिखों की आबादी अधिक थी। सरकार के इन इरादों के खिलाफ सिखों ने दुर्दमनीय आन्दोलन द्वारा अपने अधिकारों की रक्षा की। सरदार अजीतसिंह को इस आन्दोलन में देश निकाला हुआ।

उसके बाद ही सिखों को कृपाण रखने के अधिकार पर भी लड़ना पड़ा क्योंकि शस्त्र कानून के अनुसार सरकार कृपाण बांधना जुर्म करार देना चाहती थी।

सन् १९१४ ई० में कोमागाटामारू की दुर्घटना भी सिखों के ही साथ हुई थी। वहां से सैंकड़ों सिख बाबा गुरदित्तसिंह के नेतृत्व मे कोमागाटामारू जहाज में बैठ कर कनाडा गये थे किन्तु उन्हें कनाडा में नहीं घुसने दिया गया। विवश उन्हें लौटना पड़ा किंतु जब जहाज कलकत्ता आया तो वहां गोरे लोगों ने पुलिस की सहायता से उन्हें जहाज से उतरने से रोका। आखिर अंग्रेजों की यह ज्यादती थी सिख भिड़ गये। इसके अपराध में उन्हें कठिन से कठिन दण्ड काले पानी का दिया गया।

जब नई दिल्ली बसाई जाने लगी तो सरकार से यहां भी सिखों को भिड़ना पड़ा। कारण कि नई दिल्ली स्थित रकाबगंज के गुरुद्वारे की इमारत को भी हानि पहुँचाने की बात इन्जीनियरों ने सोच ली। और एक दीवार का थोड़ा सा भाग क्षत-विक्षत भी कर दिया। इस समाचार से पंजाब में सनसनी फैल गई। सितम्बर सन १९२० में हजारों बहादुर सिखों ने प्रतिज्ञा की कि या तो हम अपने प्राण गवा देंगे या दीवार की मरम्मत करा देंगे। एक दल भी बनाया गया किन्तु बुजुर्ग लोगों की आज्ञानुसार उन्होंने फिर वैधानिक लड़ाई सरकार के प्रति स्वीकार करली।

एक राजनैतिक संस्था सिखों में राष्ट्रवादी सिखों की भी है जो प्रत्येक मामले को राष्ट्रीय दृष्टिकोण से देखती है। जो शिरोमणि खालसा दल कहलाती है इस समय अकाली दल और खालसा दल सिखों के दो प्रतिद्वन्द्वी राजनैतिक अखाड़े है।

अन्त में हम इन शब्दों के साथ इस अध्याय को समाप्त करते हैं कि सिख जहाँ बहादुर हैं वहां अनुशासनशील और नियंत्रण में रहने वाले भी प्रथम कोटि के हैं।

तीसवां अध्याय

पंजाब-विभाजन

सिखों पर पिछले चार सौ वर्ष में जितनी मुसीबतें आईं और उनको जिस प्रकार उन्होंने पार किया उनका वर्णन इस ग्रन्थ के पिछले पृष्ठों में हो चुका है किन्तु इस बीसवीं सदी के द्वितीय चरण के अन्तिम वर्षों (सन् १९४६-४७) मे जो मुसीबत आई वह कम भयानक नहीं। पिछली किसी मुसीबत ने उनको सामूहिक रूप से अपने देश से गॉव से और घर से विताडित नहीं किया था किन्तु इस मुसीबत ने जहां उन्हे अन्य हिन्दुओं के साथ उनकी आवास भूमियों से विताड़ित किया वहॉ उनके हाथ से सदा के लिये वह भूमियॉ चली गईं और पाकिस्तान के जन्म के साथ ही उनकी जननी जन्मभूमि पंजाब और सीमाप्रांत के दो टुकड़े होगये। जिनमें पंजा साहिब के जैसे तीर्थ स्थान और लाहौर के जैसे ऐतिहासिक नगर उनके हाथ से निकल गये। यद्यपि संयुक्त पजाब मे वे शेष हिन्दुओं समेत भी अल्पसंख्यक थे किन्तु पंजाब पुकारा और समझा सिखों का ही जाता था।

मुस्लिम लीग के प्रत्यक्ष-झगड़े (डाइरेक्ट-एक्शन) से हिन्द सिखों की सीमान्त पंजाब और बगाल में जो क्षति हुई वह अपरिमित है किन्तु सिखों की जो पंजाब मे हानि हुई वह इसलिये शोचनीय है कि सिख जैसी सामरिक कौम जिसने मुसलमानों की बादशाहत के दिनों मे भी मुस्लिम सेनाओं के दॉत खट्टे कर दिये थे। इस समय लीगी गुंडों से अपनी इतनी जन-धन की हानि कैसे करा बैठी ? इसके कुछ कारण हैं जिन पर सिख नेताओं का उन दिनों ध्यान नहीं गया।

(१) वह अपने को हिन्दुओं से अलग समझे हुए बैठे थे और पंजाब के हिन्दू भी उनसे खिंचे हुए थे अत. हिन्दू और सिख मुस्लिम लीग के बार-बार के ऐलानों के होते हुए भी कोई संयुक्त मोरचा व दल न बना सके जैसे कि मुस्लिम लीग ने उत्पातों के लिये मुस्लिम वालियन्टर कोर और मस्लिम गार्ड बनाये हुए थे।

(२) सिख सेनाओ का एक दल अंग्रेजो पर बड़ा विश्वास करता था। वह समझता था कि अग्रेजों ने जब उनकी हिन्दुओं से अलग होने मे पीठ थप थपाई है तो वे उनका कोई नुकसान नहीं होने देंगे बल्कि जब वे हिन्दुस्तान छोड़ेंगे तो हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बीच वे एक तटस्थ राज्य सिखिस्तान की और स्थापना कर जायंगे।

सिखों के इस जन-धन की हानि की कथा बड़ी ही करुणाजनक और हृदय विदारक है। यहॉ

हम कुछ हवाले उस रिपोर्ट से उद्धृत करते हैं "सिविलियन गुरुदास ... कमेटी" की ओर से मुस्लिम लीगियों के अत्याचार नामक प्रकाशित हुई है।

उत्तर भारत में मुस्लिम लीग ने अपने कार्यों को शुरु आत गड़बड़ी सर्व के हजारा जिले से की, जहाँ यहा मुस्लिम आबादी ९४ फीसदी था। सन् १९४६ ई० को १० दिसम्बर को बटल, गुलबहादुर कुम, ... जल्लो और इसी नाम के गांवों पर पहला हमला हुआ। इस हमले में बटल गांव के ११ सिक्ख मारे गये और ११ ही घायल हुए। इसी के बाजार को लूट लिया और आग लगायी सिख-हिन्दुओं ... हुई। इन दोनों गांवों से भिन्न-भिन्न भागकर तुमदलाई भूंग में पहुंच गये थे। यहां भी हमला हुआ और १४ आदमियों को जान से मार डाला गया तथा २० को जख्मी किया गया। गढ़ी ... के गुरुद्वारे को नष्ट कर दिया गया।

२८-१२-४६ को मानसेरा तहसील के एक गांव बाड़ा हबीबुल्ला पर हमला हुआ। यहां एक ... को पहले तो लूटा गया फिर उसे नष्ट कर दिया गया। दूसरे गांव पर कई हमले हुए जिसमें बग ... यहा के हिन्दू-सिख मिलिटरी की रक्षा में पंजाब की ओर चल पड़े। उनमें एक काफिला पहले ता० १०-१-१९४६ को ... गांव पर ... गया जिसमें ... पर ... हुए ४० शरणार्थी इस हमले के शिकार हुए। उनमें से १० कत्ल कर दिये गये। बाकी घायल हुए। ... लूट लिये गये।

इन गांवों के अलावा ओघी, सिरन, ..., सिन्दल, ..., ..., ..., ..., मुहाडी, ..., मलाई, ..., ..., ..., ..., ..., ..., ..., बालाकोट और भाटा। इन तथा अन्य सभी स्थानों पर लूट पाट और धार्मिक स्थानों के ध्वंस के अलावा कत्ल हुए।

चूंकि उस तक सरहद में डाक्टर खान (कांग्रेस) की सरकार थी। इसलिये कांग्रेस ने केवल शरणार्थियों को सान्त्वना देने के सिवा उन अत्याचार के विरुद्ध कोई जोरदार कार्यवाही नहीं की। इस हजारा में मुस्लिम अफसर इमामों के मददगार रहे। यही कारण था कि गुंडे लोग पूरी तरह मनमानी करते ही किसी ... से बाहर होते थे। भाटा गाँव में ११६ सिख ... जला दिये गये। मलाई में ११८ हिन्दू सिख कत्ल किये गये।

पंजाब में उन दिनों सर खिजर हयात खां की सरकार थी जो यूनियनिस्ट पार्टी के नेता थे। इस सरकार को सिवा मुस्लिम लीगियों के सभी पार्टियों का सहयोग था और सर खिजर हृदय से भी दो-राष्ट्र सिद्धान्त के विरोधी थे। वह मुस्लिम लीग के प्रोग्राम को कतई पसन्द नहीं करते थे। इसलिये उन्होंने सरहद की आग को पंजाब में बढ़ने से भरसक रोका। सर खिजर की इस बुलंदी से मुस्लिम लीग बहुत चिढ़ गई और उसने पंजाब में खिजर विरोधी जुलूस निकालने तथा नारे लगाना आरम्भ कर दिया। इन गति विधियों में सिकन्दर हयात के साहबजादे शौकत हयात और बेगम शाह निवाज जैसे सर छोटूराम कालीन यूनियस्ट भी शामिल होगये। साथ ही पंजाब के तत्कालीन गवर्नर ने भी मत्रि-मंडल को सहयोग देना छोड दिया। मुस्लिम लीग की ओर से जगह-जगह लूट पाट कत्ल और जोर जबर आरम्भ हो गया।

इस गुंडापन को सर खिजर कतई पसन्द नही करते थे पुलिस का उन्हे पूर्ण सहयोग मिल नही रहा था। आखिरकार उन्होंने त्याग पत्र दे दिया। त्याग-पत्र देते समय उन्होंने बताया "मुस्लिम लीग को अन्य पार्टियों के साथ समझौता करने के लिये खुला मार्ग छोड़ने की भावना से मैं यह त्याग पत्र दे रहा हूँ।"

खिजर हयात के वजारत छोड़ने पर मुस्लिम लीग की अल्प-संख्या के कारण पंजाब मे वजारत नहीं बन सकी इसलिए इंडिया एक्ट की धारा ९३ के अनुसार वहाँ गवर्नरी शासन हो गया।

मुस्लिम लीगको पंजाब में अपनी वजारत न बनने से बड़ा धक्का लगा। ब्रटिश सरकारके ऐलान अनुसार पंजाब मुस्लिम लीग को तभी मिल सकता था जब कि वहा उसका मन्त्रिमण्डल होता। अत- वह और भी तेजी से झगड़ों पर उतर आई। पंजाब के ऊपरी जिलो मे मुस्लिम आबादी का अनुपात उस समय ६० से लेकर ६० प्रतिशत था।

सारे पश्चिमी पंजाब मे ५ मार्च से मुस्लिमदलों के आक्रमण आरम्भ हुए थे कहीं इनका रूप छुट-पुट था कहीं मध्यम गति का और कहीं सामूहिक और तीव्रतर। रावलपिंडी डिवीजन में जिसके कि प्रत्येक जिले में मुस्लिम आबादी ८० फीसदी से ६० फीसदी तक थी यह हमले एक दम हुए।

रावलपिंडी डिवीजन इस डिवीजन मेशुरूमें शहरों के हिन्दू सिखोंने इन हमलों का बड़ी दिलेरी और हिम्मतसे मुकाबला किया। उन्होंने गलियों मे मोरचे लगाकर हमलों को बराबर विफल किया। रावलपिंडी खास मे हिन्दू-सिख विद्यार्थियों के जुलूस पर जब मुसलमानों ने हमला किया तो हिन्दू-मुस्लिम बड़ी बहादुरी से लड़े और हमलावरों के छक्के छुड़ा दिए उन्हें भागते ही बना। किन्तु देहातो मे जो हमले हुए उनमें हिन्दू-सिखों की जन-धन की भारी हानि हुई।

रावलपिंडी जिले के गांवों मे तो एक प्रकार से कत्लआम ही शुरू कर दिया गया। रावलपिंडी के गांवों पर ७ मार्च (१९४७) से हमले आरम्भ हुए और पूरे मार्च भर रहे। वहां जो तबाही हुई वह नोआखाली से कम नहीं थी। इस जिले मे जो नृशंसता हुई उसका अन्दाज इस बात से चलता है कि १२८ गाँवों मे ७००० आदमी मारे गये और प्राय सभी को वे घरबार कर दिया वे जैसे तैसे उन शरणार्थी कैंपों मे पहुँच पाये जो पंजाब से लेकर यू० पी० तक मे फैले हुए थे। एक हजार से ऊपर स्त्रियां उड़ाई तथा बेइज्जत की गईं। स्त्रियों को उनके भाई बेटों और पुरुषों के सामने भी बेइज्जत किया ये हमले ढोल बजाकर खुलेतौर पर होते थे। घरों में आग लगा दी जाती थी। धार्मिक स्थान ध्वंस किये जाते थे और धार्मिक ग्रंथों को फाड़ फेंका जाता था। यह सब गवर्नरी शासन मे हो रहा था। जब गांव लुट-पुट जाते थे तब कहीं बड़ी मुश्किल से फौजी दस्ते भेजे जाते थे।

लूटपाट और मारकाट के अलावा जबर्दस्ती धर्म-परिवर्तन भी कराया जाता था किन्तु धर्म-परिवर्तन से अधिकांश हिन्दू-सिखों और उनकी बहादुर बहू बेटियों ने धर्म पर निछावर होना ही उचित समझा। इस डिवीजन के थोहा गांव की ९३ स्त्रियों के उच्च बलिदान की गाथा एक मिसाल है। यह घटना अधिक प्रसिद्ध है किन्तु इस प्रकार की और भी अनेकों घटनायें हैं।

अत्याचार इन्सानियत को पार कर गये थे। बच्चों को बर्छों की नोक पर टांगना, स्त्रियों की छातियां काटना आदि साधारण बात हो रही थी। कई स्थानों पर गर्भवतियों के पेट फाड़ दिये गये। इसी जिले के दुनेरन गांव की आबादी मे से एक भी सिखों जिन्दा नहीं छोड़ा गया। उनकी ६० स्त्रियां अपहरण की गईं। १०० जान से मार दिये गये। १५ बलात् मुसलमान बनाये गये। सारा माल लूट लिया गया। इसी भांति भागपुर की सारी सिख आबादी खत्म कर दी गई। बच्चे और स्त्रियों को नही छोड़ा गया। केवल गांव के ४०० हिन्दू-सिख स्त्री बच्चों ने गुरुद्वारे मे शरण ली, उस गुरुद्वारे मे आग लगा दी गई और किसी को भी जिन्दा नहीं छोड़ा गया। यही हाल थमाली गाव मे हुआ। वहां के गुरुद्वारे में भी आग लगा दी वहा ४०० में से २० आदमी बचे। नकाऊली गांव

मे २४ सिख मारे गये। स्त्रियों ने आत्मघात कर लिया। ५० सिखों को जबर्दस्ती बेधर्म किया ग। सैयद गांव मे ३० सिख मारे और कुछ जबरन मुसलमान बनाये गये। ८ मार्च १६४७ को ह दि गाव मे १०० से ऊपर मारे गये। और ५० जबरन मुसलमान बनाये गये। ६ मार्च १६४ मद्रे गाव मे २०० सिख मारे गये। गुरुद्वारा और स्कूल नष्ट कर दिये गये। कटुहे मे ६० सिख मारे गये और ५०० स्त्रियों का अपहरण किया गया। हरनाली मे २५ सिख मारे गये। स्त्रिया अपहरण की गईं। प्रसिद्ध सिख नेता मास्टर तारासिंह के गांव मे २० सिख मारे गये। तारा सिंह के घर को ध्वस कर दिया गया और उस पर हल चलाया गया। थांधली गांव मे ८०। मारे गये। यहा सिखों ने अपनी स्त्रियों को उनके कहने पर अपने हाथों कत्ल करके उनकी लाज बचाई मछीआ गाव के २०० सिखो मे से २०० ही मार दिये गये। इसी प्रकार सारे ।ज्य।ज वहशीपन चला।

अमृतसर मे लडाई ५ मार्च (१६४७) को आरम्भ हुई वहां मुस्लिम लीग ने पूरी तैयारी थी। एक सिख सिपाही को पत्थरों से मार डाला। वैसे अमृतसर सिखों का जाता है किन्तु यहां उनकी आबादी मुसलमानों से तिहाई थी, हां हिन्दुओं समेत हजार वे मुसलमानो से ज्यादा थे किन्तु, मुसलमानों के पास यहां ८००० ट्रेनिङ्ग गार्ड थे। और पुलिस उनकी पीठ पर थी।

अमृतसर

गली, मुहल्ले, रेलवे स्टेशन, कालेज, स्कूल सभी जगह कत्ल आरम्भ हो गये। हिन्दू सिख ८ ही वे खबर थे वे ५ मार्च की प्रात. तक भी यही समझते रहे कि शायद यहां झगड़ा न होगा। उनकी आशाओं पर पानी फिर गया और अमृतसर की पवित्र भूमि लहू से लाल होने लगी। ११-४-४७ से २२-५-४७ तक रिपोर्ट के जो आंकड़े इकट्ठे किये गये उसके अनुसार १६७ हिन्दू ५६४ मारे गये किन्तु चू कि यहां हिन्दू सिखो ने लाचार होकर जवाबी कार्यवाही आरम्भ कर दी थी। इस उनके द्वारा भी ३१६ मुसलमान मारे गये। अमृतसर मे मारकाट का यह सिलसिला जून तक जारी १.

रावलपिंडी, लाहौर, मुल्तान, और गुजरानवाला मे ये फिसाद मार्च से आरम्भ हे अगस्त तक जारी रह। शेखू पुरा मे यह फसाद १७ अगस्त के बाद आरम्भ हुये कि यह जिला पाकिस्तान को मिलने का एलान हो गया। और एक हफ्ते मे इस के गांव और शहर सिख हिन्दुओं से खाली कर लिए। ता० २५-२६ अगस्त को व सिख हिन्दू यहा मारे गये। अकेले आत्माराम की फैक्टरी मे ३००० हिन्दू मारे गये। इस कत्ल अ कोई १५००० हिन्दू-सिख मारे गये। शेखू पुरे के इस नरमेध की जांच करने जब पं० नेहरू - लियाकतअली गये थे तो शेखू पुरे जिले मे २२००० आदमियों के मारे जाने का अन्दाजा किया गया

सेखूपूरा

लाहौर मे हमले ४ मार्च (१६४७) को ही आरम्भ हो गये थे। यहां मकानो पर पैट्रोल छिड़क आग लगा दी जाती थी। और जब बचाव के लिये हिन्दू सिख बाहर निकलते उन्हे बाहर खड़ी भीड़ कत्ल कर देती थी, सिख-हिन्दुओं को कत्ल करने के लिये ला से बाहर के गुण्डे मुसलमान भी बुला लिये गये थे। भूले बिछुड़े रास्तागीरों को ६ बाज कत्ल कर देते थे। ये हमले मई मे और भी बढ़ गये। १८ मई को दस हजार की मुसलिम भीड़ भजंग पर हमला किया। मुस्लिम थानेदार ने उन्हे थाने के हथियार दे दिये जिन्हे कातिल अपना . करने के बाद थाने में लौटा गये। पहले तो आग लुक छिपकर लगाई जाती थी अब खुल्लम-खु.

लाहौर

लगाई जाने लगी। और जब पाकिस्तान बनने का एलान हो गया तो हमले दस गुने बढ़ गये।

लाहौर में बैठा हुआ अंग्रेज गवर्नर रक्षा की कार्यवाही करता था किन्तु गुण्डापन को दबाने की नहीं। चार महीने की मार काट और लूटपाट ने हिन्दुओं को लाहौर से भागने पर मजबूर कर दिया। यही अंग्रेज गवर्नर और मुस्लिम लीग का मंशा था जो पूरा हुआ। हमारे कथन का सबसे बड़ा सबूत लाहौर किले के नीचे जहां फौज भी थी डेहरा गुरु अर्जुनदेव के नष्ट हो जाने का है। मुसलिम गार्डों ने इस गुरुद्वारे को जला डाला। और गुरुद्वारा बावली साहब में तो बिलोच मुस्लिम सैनिकों ने खुद सिखों को संगीनों से छेद कर कत्ल किया। अंग्रेज गवर्नर चाहता तो लाहौर के सिख हिन्दुओं की रक्षा के लिये हिन्दू-सिख सिपाही भी बुलवा सकता था।

इन हत्याकांडों का विवरण थोड़ा नहीं है। इस पर शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी ने "मुस्लिम लीगिया दे अत्याचार' नामक जो रिपोर्ट प्रकाशित की है। वह काफी प्रमाणित है। अधिक जानकारी के इच्छुक उसीमें उस समय की भयानक स्थितियों का एक सूक्ष्म दृश्य देख सकते हैं। उसी रिपोर्ट से हम अति संक्षेप में एक तालिका कत्लों की यहां देते हैं—

हजारा जिले में ३६ स्थानों पर मुस्लिम गुण्डों द्वारा मार काट, लूट पाट और अग्निकांड हुए। इस जिले के बाफा गांव में एक सिख मारा गया और ७ स्त्रियां अपहरण की गईं। सिंहालिया में दो कत्ल किये गये। जाबोरी में १६ हिन्दू मानसहरे से लौटते हुए मार्ग में कत्ल कर दिये गये। बाला कोट में एक सिख को कत्ल कर दिया गया। भाटा में ११६ सिख जीते जला दिये गये। इनमें से जो भागे उन्हें गोलियों से भून दिया गया। मलक्छ में ११५ सिख-हिन्दू, झाड में १५० सिख कत्ल कर दिये गये। स्त्रियां उड़ा ली गईं। पुरनाला, फिवा, पंचनद को तबाह कर दिया गया। बटस, उग्गी, मूस, दुहड़ में ५५ सिख-हिन्दू मारे गये, ३० गांव तबाह कर दिये गये। इस जिले से सबको भगा दिया।

रावलपिंडी की गुज्जरखान तहसील में नडाली गांव पर १५००० मुसलमानों ने हमला किया। गांव को लूट लिया गया और अनेकों सिख-हिन्दुओं को कत्ल किया। यही दशा इस तहसील के गोरमीआं गांव में हुई। ढुंडियाल और अडियाला में स्कूल मन्दिर गुरुद्वारे सब नष्ट कर दिये गये खोज खोज कर सिख हिन्दुओं को कत्ल किया गया। ४० को जबरन मुसलमान बनाया। रावलपिंडी के ही सधरा गांव में २०० सिख मारे गये। ४० का पता नहीं चला।

जेहलम तहसील के घुग्गा गांव में १२८ सिख मारे गये। ४० स्त्रियां अपहरण की गईं। जीहा-बाघा में १८ सिख मारे गये। ५२ बेदीन किये गये। 'सरकाल कसेर' ४३ व दरवाल में ६ नारंग में ६ भसीन में ३५ नमाजीआं में ५ हिन्दू सिख मारे गये सैंकड़ों जबरन मुसलमान बनाये गये। सब को लूट लिया गया।

कैम्बलपुर जिले की फतहजंग तहसील के राजड़ गांव में ३००० सिख-हिन्दुओं को मारा गया। ६५ स्त्रियों को जबर्दस्ती मुस्लिम बनाया गया और जो बच्चे मुस्लिम नहीं बने उन्हें कत्ल कर दिया गया। इसी जिले के २३ गांवों में ६१० सिख हिन्दुओं को मारा गया। १६५६ घर (हिन्दू-सिखों के) नष्ट कर दिये गये। १३६१ लूट लिये गये। इस जिले में लगभग ५० गांवों में हत्याकांड लूट पाट और आगजनी हुई।

गुजरात जिले के ३१-३२ गांव लूटे गये और अकेले डिंगा गांव में ३३०० सिख कत्ल हुए। अनेकों गांवों के कत्ल की सूचना प्राप्त नहीं हो पाई।

रावलपिंडी के कत्लों की संख्या का ब्यौरा पहले दिया जा चुका है जिसमें ७००० सिख हिन्दुओं

के कत्ल का पता लग चुका था।

मुल्तान जिले मे कोई २५-२६ स्थानो पर हमले हुए जिनमे अकले भेलसी कैम्पमे २०००हिन्दू-सिख मारे गये वहां हमला मुस्लिम फौजने किया था। मुल्तान में पहले हमले मे २०० सिख-हिन्दू मारे गये थे।

गुरदासपुर जिले मे भी कोई कसर हमलावरों ने नहीं छोड़ी थी और उसे हद तक पहुंचा दिया विलोच सैनिकों ने। यह सब अग्रेज अफसरों की जानकारी में हुआ।

सियालकोट जिले के कोटल पठाणा, गॉव को भीड़ और मुस्लिम सिपाही दोनो ही ने लूटा। कई स्त्रियों को अपहरण किया और अनेकों सिख हिन्दुओं को मौत के घाट उतार दिया। स्यालकोट खास मे १३ अगस्त को गुंडों के साथ फौज और पुलिस के मुसलमान सिपाहियों ने लूट पाट की। वजीराबाद आई हुई शरणार्थियों की ट्रेन पर हमला किया और उसे लूट लिया तथा अनेकों की जाने लीं। इसके अलावा नारेवाल, पंजगराईं, लोहारिया, मेगियां, संम वडियाल, खान खास, भुपाल वाला, शकर गढ़, वावली ताहिरा, नूरपुर, नारोरयीआ, घघेड़ा, गूजर वाली, जाजा वाला, गेता, संखतरा, रनसीवास, सजादा, सलारीआ, फुलेरा, थनेवान, ढिली, वद्दोमन भोई, सिधेवाला, वुधेपुर, कोट कलाल आदि पचासों ...वों पर हमले हुए। गुरुद्वारों को नष्ट किया गया। घरों को लूटा गया, स्त्रियों को उड़ाया गया और मर्द ... बच्चों को कत्ल किया गया। तहसील उमकाके ३५ गॉवों मे २५०० हिन्दू सिख मारे गये थे।

लायलपुर जिले में भी कोई कसर नहीं छोड़ी गई। खास लायलपुर शहर मे ही मुस्लिम ... ने खूब उपद्रव किया और चक ३७ के पास शरणार्थी ट्रेन को लूट लिया। इस लूट पाट मे ५० सिख ... गये। इसी जिले के जंडावाला कस्बे के आस-पास के गॉवों और शरणार्थी कैम्पों पर धावे किये गये १००० सिख-हिन्दू जान से मारे गये और १०००-१२०० घायल हुए। तांदलिया मे ३०० जाने ली गई और वारहू, २,३,४ मे १६०० हिन्दू-सिख कत्ल किये गये और ४०० स्त्रियों को उड़ाया गया। पच्चीस ह... की भीड ने यह हमला २८-६-४७ को किया था, जिसमें पुलिस और फौज के मुस्लिम सिपाही भी ... थे। झडावाला और झूमरा के तमाम चकों मे से पीट-पीट कर सिखों को निकाल दिया। इन और ... चकों मे डेढ़ हजार से ऊपर आदमी मारे गये अकेले चक न० १४३ (समुन्दरी तहसील) में ७०० में से ... आदमी बचे थे। कमालिया में ३५०० झुग्गी मे ३७४२ को गोलियों से मुस्लिम सैनिको ने भून दिया। च... न० ७४ और चक न० ३०१ मे भी ऐसा ही हुआ। टोवा टेकसिंह और डवावाला स्टेशनों के ... शरणार्थी ट्रेन को रोककर १४०० हिन्दू सिखों को मारा गया।

यही दशा माटगुमरी, सयालकोट, गुजरावाला, गुरदासपुर, सरगोधा, शेखपुरा, ...ल झंग, मुल्तान, मुजफर गढ़ आदि जिलों में हुआ। सब स्थानों के कत्ल और स्त्रियों के साथ किये बल... को लिखने मे भी हमारा तो हाथ कांपता है। पाठक इसीमे अन्दाज लगाले कि यह कैसा नर मेध था जिसमे एक पूरी जाति को नष्ट करने की कमर बॉधी गई थी।

दगे शान्त हो जाने और मजहवी पागलपन तथा प्रतिहिंसा की भावना दूर हो जाने पर सिख हिन्दू और मुसलमान सभी को इन घटनाओं पर खेद है और इसमे सन्देह नहीं कि ... समय उन मुसलमानों ने जिनके दिल में ईश्वर की सत्ता मौजूद थी। हिन्दू और सिखो को बचाने ... कोशिश की किन्तु उनकी सख्या धर्मान्धों के आगे नगण्य ही रही। हिन्दू सिख वहुल इलाकों मे भी ... शोध के समय अनेकों हिन्दू-सिखो ने मुसलमानों की रक्षा की। यही बाते हैं जो उन पशुतापूर्ण कार्यों ... भूल जाने और परस्पर हिलमिल कर रहने को उत्साहित करती हैं।

इक्कीसवां अध्याय

सिख धर्म और गुरुमत दर्शन

संसार में जितने भी धर्म हैं। उनका आधार कम से कम पाँच बातों पर निर्भर है। अथवा यों कहना चाहिये कि मनुष्यों का कोई भी समूह जब इन बातों के अनुसार अपना जीवन और रहन सहन बना लेता है। तब वह किसी एक धर्म का अनुयायी समझा जाता है। वे पाँच बाते यह हैं—(१) मार्ग दर्शक या प्रवर्तक (२) हिदायत नामा जो कि धर्म ग्रन्थ के नाम से अभिहित होने लगता है। (३) जीवनान्त का लक्ष्य या सार्थक जीवन की लक्ष्य (४) उपास्य और उपासना विधि। (५) आचार और संस्कार।

सिख धर्म की देन

ऐतिहासिक दृष्टि से यह कहना कोई भी गुनाह नहीं होगा कि संसार में जितने भी मजहब हैं वे किसी न किसी महान् पुरुष द्वारा प्रवर्तित किये हुए हैं। अतः यह स्वाभाविक है कि मनुष्य जब किसी धर्म को मानता है तो वह उस धर्म के प्रवर्तक की अवश्य मान्यता करता है। और चूंकि धर्म एक मार्ग होता है[1] अथवा उन नियमों का सग्रह होता है जो उस महा पुरुष ने नियत किये थे अथवा उसके अन्तःकरण से प्रादुर्भूत हुये थे। प्रत्येक धर्म के अनुयायी उस महापुरुष के निर्धारित अथवा कहे हुये नियमों को सग्रह भी कर लेते हैं क्योंकि ऐसा करना जरूरी होता है। यही सग्रह उस प्रवर्तक अथवा नियामक के अनुयायियों का धर्म ग्रन्थ कहलाता है। उन वचनों को श्रद्धापूर्ण भाषा में, मंत्र, प्रवचन, आयत, वाणी आदि ऐसे ही आदर सूचक नामों से पुकारते हैं। इन मंत्र, प्रवचन और वाणियों में प्रवर्तक की अन्तरात्मा की वह आवाजें होती हैं जो मनुष्य जीवन को स्वच्छ, ऊंचा और आदर्श बनाने के लिये निकलती हैं। और प्रायः सभी धर्म प्रवर्तक मनुष्य-जीवन का अंतिम लक्ष्य ईश्वर की शरण में अनन्तकाल के लिये स्थान प्राप्त करना मानते हैं। जिन धर्म-प्रवर्तकों ने ईश्वर को नहीं माना है उन्होंने भी जीव के लिये—अनन्तकाल के लिये-मुक्ति प्राप्त करना तो अंतिम लक्ष्य रक्खा ही है। अतः प्रत्येक धर्म में उपासना, उसका एक आवश्यक अंग होता है। लक्ष्य पूर्ति के लिये मनुष्य को जितनी योग्यतायें आवश्यक हैं। उनकी प्राप्ति के लिये जो कसौटी प्रवर्तकों द्वारा रक्खी गई हैं, वही उस धर्म के आचार और संस्कार हैं। प्रत्येक धर्म का यही संक्षिप्त स्वरूप है।

१. सिख लोग तो अपने धर्म को कहते भी मार्ग (पथ) ही हैं।

अब हम सिख धर्म की इन्हीं पॉच बातों का परिचय देना चाहते हैं।

प्रवर्तक

सिख धर्म-जिसे कि "गुरमत" कहना भी सार्थक है—के प्रवर्तक श्री गुरु नानकदेव है। गुरु अगद जी से लेकर गुरु गोविंदसिंह जी तक और जो नौ गुरु हैं। वे भी नानक देव ही हैं। सिख सम्प्रदाय की यह दृढ़ भावना सारे संसार के धर्मों से विचित्र किन्तु अपने धर्म मे अचिन्त्य श्रद्धा के लिये अत्यत उपयोगी है। मुसलमानों की धारणा है कि उनके कई पैगम्बर हुए है किन्तु साथ ही वे यह भी कहते है कि हजरत मुहम्मद उन सब मे अधिक ऊंचे और खुदा के प्यारे थे। इस प्रकार की भावना से शेष पैगम्बरों का न चाहते हुए भी अपमान हो जाता है। हिन्दुओं मे भी दस अवतारों का मानने वाला प्रत्येक हिन्दू इस चिन्ता मे अवश्य पड़ता है कि इनमे अधिक कलावान (प्रतापवाला) कौनसा था? इसी हेतु उनमे रामानुजी, माध्वाचारी आदि अनेक भेद भी हो गये। किन्तु सिखों मे यह सवाल नहीं उठता कि अमुक गुरु की वाणीं अमुक गुरु से अच्छी हैं। या निबल। न वह ऐसा मानते हैं कि अमुक गुरु इतनी कलाओं के औतार थे। उनका दृढ़ विश्वास है कि सभी गुरु नानक देव ही थे। अथवा उन्हीं की ज्योति आगे के गुरुओं मे प्रकाश मान थी। इस प्रकार वे प्रत्येक गुरु को अपने पूर्व गुरु का पूरक मानते हैं। जिस प्रकार 'आत्मावै जायते पुत्र।' अर्थात् पुत्र पिता ही होता है—का एक सिद्धान्त है उसी प्रकार "आत्मा वै मथीयते शिष्य" अर्थात गुरु के विचारों का प्रतीक ही उसका शिष्य-गुरु है। इस सिद्धान्त को सिख मानते है। लेकिन प्रत्येक शिष्य उसी प्रकार गुरु नहीं हो सकता जिस प्रकार प्रत्येक पुत्र अपने पिता का साक्षात संस्करण नहीं होता। यह सिद्धान्त सिख समाज का निर्धारित किया हुआ सिद्धांत नहीं है। अपितु यह बात स्वय गुरु नानकदेव जी ने कही थी। लहना जी को अगद नाम उन्होंने इसीलिये दिया था कि उन्होने उनको बिल्कुल अपना सस्करण समझ लिया था।

गुरु नानक देव जी से पीछे जिन गुरुओं ने जो भी प्रवचन किये, वे उन्होंने अपने नाम से नहीं किये। ग्रथ साहब मे दूसरे गुरुओं के जो प्रवचन या वाणिया हैं। इनमे गुरु नानक देव जी का ही नाम है। उदाहरणार्थ "हम अपराधी निरगुनियारे। ना किछु सेवा ना करमारे। गुरु बोहिथु बड़ भागी मिलिया। नानक दास सगि पाथर तरिया।" पढ़ने वाला यही समझेगा यि यह बाणी गुरु नानक देव जी की है, किन्तु है वास्तव मे पाचवे गुरु अर्जुनदेव जी की। इस प्रकार अन्य गुरुओं की बाणियों मे भी 'नानक' नाम ही आता है। इसका भाव यही है कि गुरु नानक देव जी के समस्त उत्तराधिकारी गुरुओं का यह दृढ़ विश्वास था कि हमारे अन्दर जो भी महानतम् ज्योति है। वह गुरु नानक देव जी की है। इसी धारणा के अनुसार सिख लोगों मे तीसरे नानक देव, चौथे नानक देव कहने की भी प्रथा पाई जाती है।

इस धारणा से कि दसो गुरु नानक देव ही हैं सिखों मे अपने प्रवर्तकों के प्रति अगाध और समान श्रद्धा है। और इस श्रद्धा का उन्होंने समय समय पर परिचय भी दिया है।

सिख धर्म के ये प्रवर्तक गुरु कहलाते हैं। और सिख गुरु से ऊपर केवल परमात्मा को ही स्थान देते हैं। इसलिये उनके व्यवहार मे परमात्मा का सब से प्यारा नाम वाहिगुरु है।

गुरुओं के सम्बन्ध में सिखों की धारणा है कि वे मुक्त-पुरुष हैं। परमात्मा ने उन्हे मानव जाति के कल्याण के लिये भेजा था। गुरु नानकदेव जो से वेईं नदी में दैवी ज्योति ने साक्षात किया था। यह

घटना सिख इतिहास में उससे कहीं ऊंचा स्थान पाती है जितना कि मुस्लिम इतिहास में जिब्राइल द्वारा हजरत मुहम्मद साहब को खुदा के दर्शन कराना। मुसलमानों का विश्वास है कि फरिश्ता जिब्राइल ने हजरत मुहम्मद के कालिब में उज्ज्वल वस्तु को रक्खा था और जो काला निशान था, उसे बदल दिया था। जिसके अर्थ होते हैं कि उस समय से उनमें खुदा के महान् प्रकाश की ज्योति प्रज्वलित हो गई। सिख लोगों की धारणा इससे कुछ अधिक आगे है वे मानते हैं कि गुरु नानकदेव जी उस प्रकाश को जन्म से ही साथ लाये थे। उनकी यह धारणा बौद्ध और मुसलमान दोनों से ही आगे है। वह अपने गुरु को घटनाओं से प्रभावित हो कर परिवर्तित हुआ नहीं मानते। किन्तु परमात्मा की ओर से इसी काम को भेजा हुआ मानते हैं। इस धारणा का जन्म सिखों में पीछे से हुआ हो ऐसी बात नहीं है किन्तु स्वयं दसवें नानकदेव गुरु गोविन्दसिंह जी ने कहा है —

"तिन प्रभु जब आयुस मुह दिया।
तब हम जन्म कलू महि लिया।
चित न भयो हमारो आवन कहि।
चुभी रही श्रुति प्रभु चरनन महि।
जिउँ तिउँ प्रभु हमको समझायो।
इम कहि कै यह लोक पठायो।

इससे पहले के पदों में उन्होंने जन्म धारण करने से पूर्व की अपनी स्थिति भी बताई है। कहा है —

"हेम कूट पर्वत है जहाँ, सप्तश्रृङ्ग सोभित है तहाँ।
सप्तश्रृंग तह नाम कहावा, पडुराज जह जोग कमावा।
तहँ हम अधिक तपस्या साधी, महाँ काल काल का अराधी।
इहि विधि करत तपस्या भयो, द्वै ते एक रूप है गयो।

इन पदों में यह बात अधिक ध्यान देने की है कि "द्वै ते एक रूप है गयो।"

गीता में श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन से कहा था —

"यदाहि यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत
अभ्युत्थानस् धर्मस्य तदात्मनम् सृजाम्यहम् ॥

इन दोनों महापुरुषों के वाक्य में एक लम्बी दूरी तक समानता है। अन्तर केवल इतना है कि श्रीकृष्ण का कहना तो है कि जब जब धर्म की हानि होती है। मैं अवतार लेता हू और गुरु गोविन्दसिंह कहते हैं। "धर्म की स्थापना के लिये मुझे भेजा गया है।" यह अन्तर केवल इसलिये है कि गीता वेदान्त का एक अंग है और वेदान्त ईश्वर और जीव में द्वैत नहीं मानता।

हमारे इस कथन का यह भी अर्थ है कि सिख धर्म के प्रवर्तक द्वैतवादी थे। और दो से एक रूप होने के लिये जो मुख्य साधन सिख धर्म मे है–वह है सतगुरु की प्राप्ति।

गुरु नानकदेव जी ने सतगुरु के सम्बन्ध में बहुत ही कुछ कहा है। यथा:—

"गुरुमुखि बूझै अकथु कहावै। सचे ठाकुर साचौ भावै।" यही नहीं कि गुरु की महानता पर नानकदेव जी ने ही जोर दिया हो किन्तु सभी गुरुओं ने गुरु के महत्व का वर्णन किया है। तीसरे गुरु अमरदास जी ने कहा है:—

"पूरे गुरु कै सबदि मिलाए ।
नानक नामु मिलै वडि आई आपे मेलि मिलावणिआ ।"

इस प्रकार सिखों में गुरु का दर्जा बहुत ऊंचा है। और यही कारण है कि उन्होंने अपने धर्म प्रवर्तकों को गुरु नाम दिया है। इस तरह सिख साहित्य में गुरु के मानी केवल उस महापुरुष के हैं जो वाहिगुरु अर्थात् परमात्मा से मिलाने की शक्ति रखता हो।

सोलहवीं सदी में गुरु नानक देव जी और उनके उत्तराधिकारियों की इस घोषणा में कि "सत गुरु तो वही है जो वाहि गुरु से मिला सकता हो।" उस समय के सीमा पर पहुँचे हुए गुरुडम को निश्चय ही बड़ा धक्का लगा था। जब हम पन्द्रहवीं और सोलहवीं सदी का धार्मिक इतिहास देखते हैं तो सहज ही पता लग जाता है कि उस समय गुरुओं की बड़ी भरमार थी। जिसके मन में आया वही गुरु बन बैठता था। एक-एक शिष्य के बीस-बीस गुरु होते थे। और एक गुरु के पीछे हजारों चेले लगे फिरते थे। इन लाखों गुरुओं में भले बुरे की पहचान के लिए आखिर कोई कसौटी होनी चाहिये थी और वह कसौटी यही थी कि वाहिगुरु को पहचानने और उससे मिलाने वाला ही गुरु हो सकता है।

इस प्रकार सिखों के गुरु उनके इहिलोक के ही सुधारक नहीं किन्तु ईश्वर से मिलाने वाले भी थे। इतना ऊँचा स्थान है गुरुओं का सिखों के हृदय में।

इन गुरुओं के रास्ते पर चल कर सिखों ने इस लोक में भी बहुत उन्नति की है। सिखों का दर्जा हिन्दुस्तान की वर्तमान सभी जातियों, समाजों और समुदायों में आदरणीय है। उनका यह विकास किस प्रकार हुआ ? प्रत्येक गुरु के जमाने में वे कितने आगे बढे। इन बातों का जिकर हम गुरुओं के जीवन चरितों में कर चुके हैं। यहाँ केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि गुरुओं ने हिन्दु जाति को मानसिक गुलामी से मुक्त करने में एक बड़ा काम किया था। जिन अन्ध-विश्वासों को गजनवी का मूर्तिध्वंसक कार्य और औरंगजेब की कठोर यातनायें भी दूर न करा सकी थीं। गुरुओं की मीठी वाणियों से वह सहज ही दूर हो गया। यही नहीं किन्तु गुरुओं के उपदेशों से मुस्लिम तहजीब का भी बहुत कुछ परिमार्जन हुआ था। गुरुओं ने जिस शैली से अपने खयालात लोगों तक पहुँचाये। वह शैली एकदम सात्विक शैली थी। इस्लाम के प्रचारकों की तरह न तो अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिये उन्होंने तलवार उठाने का उपदेश दिया और न ईसाइयों की तरह किन्हीं भौतिक पदार्थों का लोभ।

उन्होंने मनुष्य को कभी भी बुरा नहीं कहा। आर्य, दस्यु और मोमिन काफिर जैसे दूसरों को कडवे और अपने लिये मीठे शब्दों से उन्होंने मनुष्य जाति का कोई विभाजन नहीं किया। ग्रंथ-साहब के आधार पर जो कि गुरुवाणियों का सग्रह ग्रन्थ है। सिख धर्म को विशुद्ध 'प्रेम धर्म' कहा जा सकता है। इस तरह गुरु साहिबान प्रेम धर्म के जन्मदाता और प्रेम के साक्षात अवतार थे। मनुष्य-मनुष्य को सच्चा प्रेम करे और उस प्रेमी समाज का सम्पूर्ण प्रेम परमात्मा में केन्द्रित हो। तब वह समाज, वह देश कितना अच्छा होगा ? गुरुओं का वह प्रयत्न पूर्णतया सफल हुआ या नहीं ? सिख लोग भी गुरुओं के मार्ग पर सोलह आने आरूढ़ हैं या नहीं ? यह बातें तो दूसरी है किन्तु गुरु साहिब जिस आदर्श समाज की रचना करना चाहते थे वह उद्देश्य तो बहुत महान् था।

बौद्ध और खीष्ट धर्मों के प्रवर्तकों में गुरुओं से पहले यही बात हम देखते हैं। व्यक्ति निर्माण और प्रेम धर्म पर उन्होंने भी बड़ा जोर दिया है किन्तु बौद्ध धर्म दर्शनिकता प्रधान होने के कारण उत्कट विद्वानों के अधिक काम की चीज था और खीष्ट धर्म शुष्क तर्क और ऐतिहासिक ढग पर वर्णित होने के

कारण आस्था पैदा नहीं कर सकता था। गुरुओं ने जो भी कुछ कहा है वह सहज ही समझ में आने वाला और सरल होने के कारण सर्वसाधारण के काम की चीज़ बन गया।

सिखों का धर्म ग्रन्थ "आदि श्री गुरु ग्रन्थ साहब" है। वे अपने धर्म ग्रन्थ का नाम उसी प्रकार इज्जत के साथ लेते हैं जिस प्रकार हिन्दू वेदों को वेद भगवान् और मुसलमान कुरान को कुरान शरीफ बोलते हैं। वे भी बड़ी श्रद्धा और प्रेम के साथ 'ग्रन्थ साहिब जी' कहते हैं।

धर्म ग्रन्थ

अपनी पवित्र धर्म पुस्तक के सम्बन्ध में सिखों की एक और मान्यता है वह यह कि ग्रन्थ साहिब जी गुरुओं का ज्योति-स्वरूप है। ऐसी मान्यता की वृद्धि इस पद से हुई है।

"गुरु ग्रन्थ जी मानियहु प्रगट गुरां की देह। जो प्रभु को मिलबो चहै, खोज शब्द में लेह।"

गुरु ग्रन्थ साहब का सिख लोग इतना भारी मान करते है जिसे देख कर लोग उन पर भी मूर्ति पूजा का दोषारोपण करने लगे हैं। ग्रन्थ साहिब जी पर चॅवर ढाला जाता है। और उसे स्वच्छ सुन्दर वस्त्रोंसे आच्छादित करके रखते हैं। रखने का स्थान ऊचा और पवित्र होता है। यह है ग्रन्थ साहबके प्रति सम्मान का एक उत्कृष्ट ढग ।

'ग्रन्थसाहिब' के पठन को पाठ कहते हैं और पाठ दो प्रकार का होता है। (१) साधारण पाठ और (२) अखंड पाठ। अखड पाठ आरम्भ करके बीचमें बन्द नहीं किया जासकता और प्राय ४८ घण्टेमे समाप्त हो जाता है। पाठ के समय पाठक जिसे कि पाठी कहते हैं। स्वच्छ और शुद्ध अंग वस्त्रों से बैठता है। कोई सहारा वह नहीं लगा सकता, न सर नंगा रख सकता है। श्रोता लोग इस समय ऊचे आसन पर नहीं बैठ सकते। आने वाले सभी सिख-जन मत्था टेक कर 'श्री ग्रन्थसाहिब' का अभिवादन करते हैं।

पाठ का प्रारम्भ अरदास (मंगल-प्रार्थना) से होता है अरदास हाथ जोड कर और खड़े होकर की जाती है। अखड पाठमें कडाह प्रसाद भी किया जाता है। घी, आटा, और खाण्ड सम भागसे जो हलवा बनता है उसे कडाह प्रसाद कहते हैं। यह कम से कम १। रु० का होता है।

गुरुद्वारों में गुरु ग्रन्थ साहिबजी की सेवा में जो आदमी रहता है वह ग्रन्थी कहलाता है। ग्रन्थ साहब की वाणियों के अर्थ समझने वाले को ज्ञानी कहते हैं। यह शब्द शास्त्री का समवाची है।

"श्री आदि ग्रन्थ" के बाद सिख दशम ग्रन्थ को स्थान देते हैं। धार्मिक कृत्यों में आदि ग्रन्थ का उपयोग होता है। हिन्दुओं में जो स्थान गीता का है मुसलमानों में जो स्थान कुरान का है सिखोंमे वह स्थान ग्रन्थ साहिब का है। और सन्मान अपने ग्रन्थ का इन दोनों से कहीं अधिक श्रद्धा से करते हैं।

गुरु ग्रन्थ मे सात गुरुओं और ३६ अन्य संतों की वाणियों का संग्रह है। गुरुओं मे छटे, सातवें और आठवे गुरुओं ने कुछ नहीं लिखा। दसवे गुरुजी की वाणी का एक ही चरण है। कहा जाता है। गुरु तेग बहादुर जी ने कारागार से जो पत्र गुरु गोविंदसिंह जी को लिखा था। उसके उत्तर में ईश्वर इच्छा का जो भाव गुरु गोविंदसिंह जी ने व्यक्त किया था वही गुरु ग्रथ मे शामिल हैं।

बल छुट गयो बन्धन पडे कछू न होउ उपाय।
कहु नानक अब ओट हरि गज ज्यों छोड सहाय।
बल होआ बन्धन छुटे, सब किछु होत उपाय।
नानक सब कछु तुमरे हाथ में तुम्ही होत सहाय। ५४

यह पद गुरु गोविन्दसिंह जी का बताया जाता है जो कि मुद्रित ग्रन्थ में महला ६ के अतर्गत ही अंकित है।

गुरु ग्रंथ साहब का संकलन सर्व प्रथम श्री गुरु अर्जुनदेव जी ने जोकि पाचवे पातशाह थे।

था। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती गुरुओं और अपनी वाणियो तथा अन्य संतोकी वाणियोंका जो संग्रह ि था। वह गुरु अर्जुनदेवजी द्वारा कीगई ग्रंथ साहब की बीड़ कहलात है। इससे पहले शिष्य और श्रद्धालु लोग गु वाणियों को जो शब्द कहलाते हैं, जबानी याद करते थे। गुरुअंगदजीने अपने समयमे एक ग्रंथ लिखाया थ वह एक जन्म साखी कहलाता था। उसमे गरु नानकदेव जी के जीवन वृतान्त और उनके कुछ शब्द दे न ही चीजे संग्रहीत थीं। और जब तक ग्रंथ साहिबजी का निर्माण नहीं हुआ था, सिखों के लिये यह ।थी ही[1] धार्मिक-ज्ञान वृद्धि मे सहायता देती थी।

गुरु अर्जुनदेवजी ने बाबा बुढ्ढा को बुला कर जोकि पहिले गुरुजी के समयसे अबतक जीवित थे। उनसे शेष गुरुओं के शब्द भी सग्रह करा लिये। बाबा बुढ्ढा अमृतसर जिले के जाट जमींदार-घरमे उत्पन्न हुए थे। सिखोमे और गुरु घर मे इनका दर्जा राज पुरोहित का जैसा ऊचा होगया था। इन्हे अपने समय तकके सभी गुरुओंकी वाणियां याद थीं। इसके इलावा गुरु अर्जुनदेव ने गोइन्दवालके बाबा मोहिनजी से गुरुवाणी की वह सचिया भी प्राप्त कीं जोकि वहां गुरु अमरदास जी के समय से चली आरही थीं। यह सचियां विशेषतया गुरु ग्रथके संकलनमे सहायक हुईं। इस प्रकार गुरु अर्जुनदेव जीके समय मे गुरु ग्रंथ साहब की पहली बीड़ बांधी गई। कहा जाता है भाई गुरुदास जी ने आदि ग्रथ मे लेखक का काम किया था।[2] इस पवित्र ग्रंथ के पहले ग्रन्थी बाबा बुढ्ढा ही बनाये गये।

ग्रंथ साहब का सकलन रागों के सिलसिले से है। यथा राग गोरी के सब पद एक जगह मिलेंगे। चाहे वह गुरु नानकदेव जी के हो चाहे अमरदास आदि गुरुओं के। कौन शब्द किस गुरु के हैं? इसका ज्ञान महलों से होता है। महला १ जहाँ लिखा हो वह शब्द प्रथम गुरु नानकदेव जी के और इसी क्रम से अन्य गुरुओं के पहचाने जा सकते हैं।

सिखों का यह पवित्र धर्मग्रन्थ उपासना प्रधान ग्रन्थ है। उपनिषदों को जिस प्रकार हम ज्ञान प्रधान और गृहसूत्रों को कर्म प्रधान ग्रन्थ मानते हैं। उसी प्रकार ग्रन्थ साहब उपासना प्रधान ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ ने सोलहवीं सदी से लेकर उन्नीसवीं सदी के तृतीय चरण तक पंजाब, सिंध और काश्मीर के हिन्दुओं की आध्यात्मिक प्यास को बुझाकर वह अपरमित शाति प्रदान की थी जो हिन्दू धर्म की रक्षा का एक प्रधान कारण हुई। हम बीसवीं सदी में धार्मिक ग्रन्थों के सरल भाषा मे जो ढेर देखते है। अब से पचास वर्ष पहले उनका एक दम अभाव था। हिंदू-धर्म की समस्त बातें और उसूल संस्कृत मे थे। जो सर्व साधारण की समझ मे तनक भी न आ सकती थीं। उसके ऊपर भी पाबन्दी थी। सस्कृत को केवल ब्राह्मण ही पढ़ सकते थे। धर्मग्रन्थों के पाठ का अधिकार भी ब्राह्मणो को ही था। इसलिये हिंदू-धर्म चन्द ब्राह्मणों की आलमारियो मे बन्द था और वह बडी महँगी कीमत पर सुनने को—सो भी द्विजों के लिये—मिलता था। हिंदुओं की इस स्थिति से मुसलमान प्रचारक खूब लाभ उठा रहे थे। आध्यात्मिक प्यास बुझाने के लिये हिंदू समाज बडी द्रुतगति से मुस्लिम फकीरो और मुल्लाओं की शरण में जा रहा था। जाता भी क्यो न जब कि "ओं नमो भगवते वास देवाय" कहने का भी समान रूप से सभी हिंदुओ को अधिकार न था। ऐसे ही समय मे गुरुलोगों का अवतार हुआ और उनकी कृपा से ग्रथ साहब की रचना हुई। जिससे अपनी आध्यात्मिक प्यास बुझाने की प्रत्येक मनुष्य को आजादी थी। ग्रंथ साहब की वाणियों रूपी अमृत की यह वर्षा उसी भाषा मे हुई जो पंजाब और प्राय सारे उत्तर भारत की रोज की बोलचाल की भाषा

१. साखी से अभिप्राय जीवन गाथा से है।
२. भाई गुरुदास जो, गुरु जी की माता के चचेरे भाई थे।

है। इससे हिंदू जाति विधर्मी होने से बच गई। ग्रंथ साहब से एक चूहड़े से लेकर ब्राह्मण तक सभी ने आत्मिक शांति प्राप्त की। यही नहीं हजारों मुसलमानों ने भी गुरु नानकदेव जी की वाणियों को श्रवण और ग्रहण करके लाभ उठाया। उत्तर भारत के पतनोन्मुख हिंदू समाज के लिये 'ग्रंथ साहब' साक्षात सजीवन बूटी साबित हुए।

"गुरु ग्रंथ साहिब" में कबीर, नामदेव और सूर, आदि संतों की वाणियों के संग्रह को देखकर बहुत से लोगों के दिल में सवाल उठता है कि गुरुवाणियों के साथ उनका संग्रह क्यों किया गया? सीधा सा उत्तर तो केवल इतना ही है कि गुरु लोग उदार थे और इसी वृत्ति से उन्होंने अपने समकालीन संतों की वाणियों को भी अपने ग्रंथ में स्थान दे दिया। परन्तु हम एक गहराई की बात कहना चाहते हैं। जिन लोगों ने महाभारत का अध्ययन किया है वे जानते हैं कि उसमें शैव, शाक्त और वैष्णव सभी प्रकार आचार्यों के प्रतिपादित सिद्धान्तों को स्थान दिया गया है। और इन प्रतिपादनों को संग्रह करने के लि महाभारत के तीसरे[1] संपादक सौति को यह आवश्यक जान पड़ रहा था कि बौद्ध धर्म के मुकाबिले इन सबका एक हो जाना आवश्यक है। ग्रंथ साहब में हम जिन संतों के नाम देखते हैं वे भारत प्रत्येक कोने के प्रतिनिधि थे। यथा जयदेव बंगाल के और धन्ना राजपूताने के, यही नहीं प्रत्येक जाति भी उनमें प्रतिनिधि है। रैदास चमार और नामा छीपी इसके उदाहरण हैं। इस ग्रंथ साहब को सारे का और उसमें बसने वाली प्रत्येक जाति का धर्म ग्रंथ बनाने की भावना से ही उन सभी संतों की वाणि इस ग्रंथ में संग्रह करदी गई जो करीब करीब उन्हीं उसूलों को मानते थे। जिनका कि प्रतिपादन गुरुलो करते थे। यदि हमारा यह अनुमान ठीक है तो हम कहेंगे ग्रंथ साहब द्वारा भारत का एक धर्म एक जाति औ एक मन कर देने का एक महान् कदम उठाया गया था।

संसार के धर्म ग्रंथों में हम एक बात और देखते हैं। वह यह कि उनमें थोड़ा बहुत इतिहास अप प्रवर्तक का या उस समय के अन्य लोगों का होता है। बाइबिल और कुरान में क्रमश क्रिश्चियन औ इस्लाम मत के प्रवर्तकों के सम्बन्ध में बहुत कुछ इतिहास है। किंतु ग्रंथ साहब में ऐसा इतिहास नहीं है वह अधिकांशत उपासना ग्रंथ है।

यहाँ हम 'गुरु ग्रंथ' के पूर्ण परिचय के लिये विभिन्न शीर्षकों में कुछ सार पूर्ण सामग्री उपस्थि करते हैं। इससे 'ग्रंथ साहब में क्या है? प्रश्न का बहुत दूर तक हल पाठकों को मिल जायगा।

भाषा

श्री गुरु ग्रंथ साहब की भाषा—'गुरु कालीन' भारत की समस्त प्रचलित भाषाओं में से अधिक का समुच्चय है। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि प्रथम गुरु नानकदेव ने समस्त भारत की चार यात्रा कीं और उन्होंने प्रायः सभी जनपदों को देखा। उन जनपदों के संतों विद्वानों और आचार्यों से सतस किया। उन्हें अपनी बातें समझाई। यह स्वाभाविक है कि जब कोई यात्री किसी देश में जाता है औ विशेषतः प्रचार के लिये तो वह उस देश की भाषा के अनेक शब्दों को अपनी बात समझाने के लिये ग्रह करता है। दूसरे यह कि ग्रंथ साहब में जिन अन्य संतों अथवा भाटों की कविताएँ हैं, उनमें उन के

१. अबतक महाभारत कमसे कम तीन बार संपादित हो चुका है। द्वैपायन व्यास का जय नामक ग्रंथ जो कि यु की समाप्ति पर बना वही जन्मेजय के नाग यज्ञ के बाद वैशम्पायन द्वारा संपादित होने पर भारत कहल चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में शौनक आश्रम में इसे महाभारत का रूप सौति ने दिया।

की भाषाओं के शब्दो का आना स्वाभाविक है, जिन प्रदेशों के कि वे निवासी थे। यथा जयदेव जी कविता मे संस्कृत और नामदेव की कविता मे मरहटी शब्दो का होना अनिवार्य है। शेख फरीद कविता मे फारसी शब्दो का होना भी स्वाभाविक है।

'गुरु ग्रंथ' बहुत बड़ा ग्रथ है। उसमे आये सभी शब्दों पर कुछ लिखना एक लम्बे समय स्थान की अपेक्षा रखता है, इसलिये हम कुछ शब्दों के उदाहरण ही यहाँ दे रहे हैं। जिससे पाठक स कि गुरु ग्रंथ साहब किस प्रकार भारत की शाब्दिक एकता का सूचक ग्रंथ है।

शब्द	भाषा
(अ) अन्दरि, असूले, अलाहि	(अरबी)
(आ) असगाहु, आखहि, आथि, अमृतवेला, आपै, अतै, अमुल, अखरी, अखरा,	(पंजाबी हिंदी)
असख (असख्य) अगंम (अगम्य)	(संस्कृत)
(इ,ई) इकदूइक	(पंजाबी)
इंद्र, इंद (इंद्र) इदासणि (इद्रासन)	
ईसरु (ईश्वर)	(संस्कृत-हिंदी)
(उ) उपरि	(मगही, हिंदी)
उज्जले	(बंगीय-हिंदी)
(ए) एवॅ, ऐहि, ऐतु	(पंजाबी)
(ओ) ओहु, ओड़क, ओथे	(पंजाबी)
(क) कागदि, कलाम, कादीआ, कतेबा	(फारसी)
कुदरति, सिफति, सलामत, मसकति	(फारसी)
कीता, के, किव, किउ, कवाउ, कुडिआर, कुतू	(पंजाबी)
करता, करते, कवण, कामु, करमी	(हिंदी)
(ख) खेह, खाहि	(हिंदी)
खिथा, खल्ला, खावै, खाही, खादकु खाणीचारे	(पंजाबी)
(ग) गलबढ़, गिरहा, गावारा, गाह, गइआँ, गेडा, गल्ला	(पजाबी-हिंदी)
गरंथ (ग्रथ) गिआनु (ज्ञान) गणत (गणित)	(हिंदी)
(घ) घाडति, घडीआहि	(पजाबी)
(च) चगा, चोट चाउ (चाव) चितगुप्तात (चित्रगुप्त)	(हिंदी)
(ज) जावै, जुगा, जीआ, जीउ, जावा, जिव, जि, जे, जे वडु	(पजाबी हिंदी)
जुग-तारे (युगातर)	(हिंदी)
(ट) टकसाल	(हिदी)
(ठ) ठाक, ठीस	(पंजाबी)
(त) तुहे,	(मगही और पंजाबी)
तासु, तुध, तितै	(पजाबी)
तिसु, तिल, ताड, तेता	(हिंदी)

(थ) थापिआ, थाव, थिति (पजाबी-हिंदी)
इनकी ठेठ हिंदी थाप, थाम, तिथि
(द) दाति, दिसै, दुआर (ब्रजी हिंदी)
देदा, दइआ, दतू (पजाबी)
दरिगह, दरिआउ, दरि (पारसी)
(ध) धिआनु, धौलि, धोवै (पंजाबी-हिंदी)
धनले, धातु, धू (हिंदी)
(न) नाल, नालि, नाउ, नेड़े (पंजाबी)
नीमाणु (अरबी)
नदरि, नवरी (पर्शियन नजर का अपभ्रंश
(प) पडि, परवाणु, परधान पसादु, पुत्री, पवहि, पउण, पाणी,
पवदिआ (पजाबी-हिंदी)
पालि, पोहि (पजीबी)
पलीता (अरबी) पातशाही (फारसी)
(फ) फुरमाण (फर्मान) (पारसी)
(ब) बंना, बीचारु बुझै, बडिआई, बीजि (पंजाबी-हिंदी)
बदिखलामी बखशे (अरबी)
बैसंतर, बरमे (वैश्वानर, ब्रह्मा), (सस्कृत-उर्दू
(भ) भिख, भुख, भलिआ, भवाइअहि, भखुसार भरीऐं (पंजाबी हिन्दी)
भाव, भाणा, भगनि, भवण, भखनि (ब्रजी हिन्दी)
(म) मुहॉं, मुहि, मुक्कम, (पजाबी)
मन्ने, मति, मनु, मान, मति, मुखि, मोख (पजाबी हिन्दी)
महतु (बंगला-हिन्दी
(र) रजाई (फारसी)
राहु, राजानु, रीस, रग (हिन्दी)
रुती (ऋतु) रिखीसर (ऋपिश्वर) (अपभ्रंश सस्कृत)
(ल) लिवतार लेडे (पजाबी)
लेखा (हिन्दी) लोउ (लोग) (मागधी)
(व) विखम, विगसे, वरमा, विसाहि, विभूति (हिन्दी)
विदिआ, वेला, वापारिए, विआई, विडाणु (पजाबी-हिन्दी)
वेखे, वेखाणीर वाचै (पजाबी)
(स) सहस, सामतर, सगल, सिमृति, अपभ्रंश हैं सहस्र, शास्त्र सकल, स्मृति (सस्कृत शब्दों के)
सतोख, (सतोष) साई (स्वामी) (हिन्दी)
सुरति, (पजाबी-हिन्दी)
सलाह, (सिफति) (अरबी)

सावूण (साबुन) (पारसी)
सुणिश्रा, समि, सुश्रासित, सति, सुहाणी, समाले सिउ, सोहनि (पंजाबी हिन्दी)
संजोग, सोहे, सिरठी (सृष्टि) सद (हिन्दी)
(ह) होसी (राजस्थानी-हिन्दी)
हुकमि, हुकम आदि (फारसी) हादरा, हाई (अरबी)
होर (पजाबी) हरामखोर (फारसी) हड हडये (मगही)

यह शब्द गुरु नानक देव जी की वाणियो से लिये हुए है। ग्रन्थ साहब मे उनकी भापा . अधिक क्लिष्ट और कई भापाओं का समुच्चय है। दूसरे गुरु अगद जी की भापा गुरुनानक की भा५ मिलती हुई है हलाकि उतनी जटिल नहीं है। इनके शब्दों मे हिन्दी का पंजावीकरण रूप व हु‚ से है । यथा:—

"जिन बडिआई तेरे नाम की यह रते मन माहि। नानक अमृतु एक हैं दूजा अमृतु नाहि ॥
नानक अमृतु मनै माहि पाईए गुरु परसादि। तिनी पीता रग सिउ जिन कउ लिखिया आदि ॥
(सलोक सारग की वार महला

तीसरे गुरु अमरदास जी की रचनाओ मे वही रूप हिन्दी का है जो गुरु अंगद देव जी की नाओं मे है। अंतर इतना है, जिस प्रकार गुरु नानकदेव से अगद देव की रचनाएँ सुबोध उसी तरह गुरु अगद देव से गुरु अमरदास जी की रचना सुवोध है। इनकी सबसे अधिक प्रिय ‘ 'आनन्द,' है जो सिखों मे प्रत्येक आनन्दोत्सव पर गाई जाती है। भापा की सरलता और हिन्दी के . के दर्शनार्थ उसका कुछ अंश हम यहा देते हैं —

"अनदु भइआ मेरी माए सतिगुरु मै पाइआ। सतिगुरु त पाईआ सहज सेती मनि वजीआ बधाईआ ॥[१]
राग रतन मरवार परीआ सवद गावण आईआ। सबदोत गावहु हरी केरा मनि चिनी वसाईआ।
कहै नानकु आनदु होआ सतिगुरु मै पाइआ ॥ (रागु रामकली महला ३)

चौथे गुरु रामदास जी की रचना पिछले तीनो गुरुओं से अधिक सरल और प्रवाह पूर्ण उसमें हिन्दी शब्दों का उत्तरोत्तर वाहुल्य है।

यथा —

सो पुरखु निरजनु, हरि पुरखु निरजनु, हरि अगमा अगम अपारा
सभि धिआवहि सभि धिआवहि तुधु जी हरि सच्चे सिरजण हारा।
सभि जीउ तुम्हारे तू जीआ का दातारा।

(रागु आसा ...

आवहो सत जनहु गुण गावहु गोबिंद केरे राम। गुरमुखि मिलि रहिए घर बाजहि सबद घनेरे राम ॥
सवद घनेरे हरि प्रभु तेरे तू करता सभ थाई। अहिनिस जपी सदा सालाही साच सवद लिवलाई ॥
अनुदिन सहजि रहै रगिराता रामनामु रिद पूजा। नानक गुरमुखि एकु पछाणै अवरु न दूजा ॥
(रागु सूही छत ह...

१ इसका ठेठ हिन्दी रूप यह हो सकता है:—

आनद भये मेरी माता, सुनि सतगुरु मै पाया, सतगुरु मिले सहज सनआ, मन में गवा बधाया।
अथवा आनद भये सुनि मोरी, माता सतगुरु मै पाये, सतगुरु मिले सहज सन आ, मन मे बजे बधाये।

इस पद के तेरे, तू, थांई, गावहु शब्दों का अधिक प्रयोग व्रज भाषा मे होता है। अथवा यों कहिये कि ये व्रज देशीय लोगों की हर समय की बोल चाल के शब्द है। गुरु अर्जुन देव की रचनाओं के समुचित अध्ययन से यह बात भली भाति समझ मे आ जाती है कि उनकी रचनाये लोक भाषा से उठ कर नागरिक भाषा मे चली गई थी।

यथा —

जाको रामनाम लिव लागी।
सजनु सुहृद सुहेला सहजे, सो कहिए बड भागी। रहित विकार अलिप माइआते अहँ बुद्धि बिखु तिआगी॥
दरस पिआस आस एकहि की, टेक हिये प्रिय पागी। अचिंत सोइ जागनु उठि बैसनु अचिंत हसत बैरागी॥
कहु नानक जिनि, जगतु ठगाना सु माइआ हरिजन ठागी।

(रागु सारग महला ५)

इस पद मे केवल एक शब्द बैसनु लोक भाषा (पजाब की जनपदीय भाषा) का है।

इनकी रची हुई 'सुखमनी' का पाठ सिख घरों मे नित होता है। हमारे अपने विचार से वह अब तक की प्रार्थना सम्बन्धी हिन्दी रचनाओं मे सर्व श्रेष्ठ रचना है। इसका पाठ करते समय सहज ही आत्म विभोर हो जाना पड़ता है।

छटवें, सातवे और आठवे गुरुओ ने कोई रचनाएँ नहीं कीं 'गुरु ग्रथ साहब' मे पांचवे गुरु अर्जुन देव जी के बाद गुरु तेग बहादुर जी की वाणिया है। इनकी रचना की भाषा पन्द्रह आना हिंदी है। ठेठ पंजाबी शब्दो (सज्ञा अथवा क्रियाओं) की इनकी भाषा मे बहुत ही न्यूनता है इसका कारण है कि गुरु लोग अब केवल पजाब के न रहकर समस्त उत्तरी भारत के गुरु बन चुके थे। उनकी शिक्षाओं के सुनने के लिए पटना से लेकर अनन्तनाग तक के लोग उत्सुक रहते थे। काशी, मथुरा और हरिद्वार मे उनके सिद्धान्तो पर बराबर चर्चा होने लगी थीं। रचना माधुर्य्य मे इनके पद सूरदास से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। यथा —

"यह मनु नैक न कहिओ रै।
सीखु सिखाइ रहिओ अपनी सी दुरमति ते न टरै।
मद माइआ के भइयो बावरो हरिजसु नहि उचरै।
करि परपचु जगत कउ डहकै अपनो उदरु भरै।
सुआन पूछ जिउ होइ न सूधो कहिओ न कान धरै।
कहु नानक भजु राम नाम नित जाते काजु सरै।

इस पद मे नैंक, कहिओ, (कह्यो) रहिओ (रह्यो), टरै, भइओ बावरो, डहकै, भरै, सूधी, कान धरैं, काज सरै, शब्द और वाक्य ठेठ व्रज भाषा के हैं।[1]

इसी प्रकार उनकी रचनाओं मे मध्य देशीय अथवा सौरसैनी हिन्दी का ही प्रयोग है।

चूकि गुरु ग्रन्थ एक विशाल ग्रन्थ है। उसका अखण्ड पाठ किया जाय तो सौ से लेकर सवा सौ घटे लग सकते है। वैसे ग्रन्थी लोग (कथावाचक) सात दिन में पाठ पूरा किया करते हैं। इतने बड़े ग्रन्थ का सागोपाग अध्ययन सब किसी के लिये संभव नहीं होता। अत यह आवश्यक है कि प्रत्येक गुरु और

१ नैक=तनक, जरासी। कह्यो=कहना (आज्ञा) रह्यो=रहा है। टरै=टलता, हटता। भइओ बावरे=पागल हो गया हैं। डहकै=ठगता हैं। भरै=भरता हैं। सूधी=सीधी। कान धरै=सुनना, मानना। काजु सरै=काम बनना

उनके उपदेशों का संग्रह अलग-अलग करके जनता तक पहुँचाया जाय। हिन्दी पाठकों के लिए उन उपदेशों के समझने मे कोई कठिनाई नहीं होगी और इस प्रकार हिन्दी साहित्य के भंडार में वृद्धि होगी।

गुरु ग्रन्थ साहब मे जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग प्रत्येक गुरु ने किया है उसका वर्णन हमने कर दिया। अन्य संतों की भाषा के जो नमूने हैं उन्हे हिन्दी पाठक भी देखते रहते हैं वैसे उनका वर्णन आगे के पृष्ठों मे हमने भी दे दिया है थोड़ा सा प्रकाश भाटों की कविता पर भी डाल दिया है वैसे भाटों की नमूने हर प्रात मे देखने को मिलते है। फिर यह संत और भाट सब के सब पंजाबी भी न थे।

कविता

अब हम यह देखते है कि 'गुरु ग्रन्थ साहब' में जो कविता है। वह किस कोटि की है। अथ किस ओर जनमत को ले जाने वाली है। तथा जिन छंदों अथवा रागों मे यह कविता कथी गई है उ रूप और नाम क्या क्या है 'गुरु ग्रन्थ साहब''की अधिकांश रचना राग रागनियों में है। उनका बहुत थोड़ा भाग सवैये, कवित्त, श्लोक और चौबोलों मे है। इस प्रकार ग्रन्थ साहिब की रचना को हम दो मे बांट सकते हैं। (१) संगीत अथवा राग भाग (२) छन्द भाग। ग्रन्थ साहब के दोनों ही भागों राग रागनियों और सलोक सवैयो आदि मे भी गुरुओं के अलावा अन्य सत और भगतजनो की हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) श्री कबीर जी—इनके तीन सौ से ऊपर पद रागनियों मे और २४० से अधिक श्लोक

(२) श्री फरीद जी—कबीर जी के बाद फरीद जी का स्थान है। रागों के तो इनके १० ही पद है। श्लोक १३० है।

(३) श्री नामदेव जी—कबीर जी की भाति ही इनकी वाणियां भी गुरु ग्रंथ मे अनेक रागो मे जिनकी पद संख्या कम से कम १०० है।

(४) श्री रविदास जी—पद संख्या के लिहाज से उनका चौथा नम्बर है। कई रागों ही मे इनकी बाणिया हैं।

(५) श्री त्रिलोचन जी—इनके श्री गूजरी और धनासरी रोगों मे ८ पद गुरु ग्रन्थ साहब मे है।

(६) श्री वैणी जी— रामकली और प्रभाती राग मे इनके ७ पद गुरु ग्रन्थ साहब में हैं।

(७) श्री जैदेव जी—इनके गूजरी और मारूराग मे ६ पद गुरु ग्रथ साहब मे हैं।

(८) श्री धन्ना जी—इनके भी ६ ही पद गुरु ग्रंथ साहब मे हैं जो कि आसा और धनासरी राग मे

(९) श्री राई बलवंड और डूमि के ८ पद रामकली की वार में हैं।

(१०) श्री भीखन जी—इनके दो पद सोरठि राग में हैं।

(११) श्री सैणु—धनाश्री राग में इनका १ पद है।

(१२) श्री पीपा जी—इनका भी धनाश्री में ही १ पद है।

(१३) श्री रामानन्द—बसंत राग में रामानन्द जी का १ पद है।

(१४) श्री सूरदास—सारंग राग में सूरदास जो का १ पद है।

(१५) श्री सधना—इनका राग बिलावल में १ पद है।

(१६) एक नाम सारंग राग में परमानन्द और आता है किन्तु उस पद में नानक नाम भी है इसलिये कहना कठिन है कि परमानन्द ईश्वर के लिये आया है अथवा कोई व्यक्ति ही है।

इन राग रागनियों में कौन से राग हैं और कौन सी रागनिया यह बता देना भी उचित ही होगा।

इनमें सिरी (श्री राग) बसंत, नटनारायन, भैरव राग और शेष रागनिया हैं। कौन रागिनी किस राग की है इसका पता राग शास्त्र इस प्रकार देता है—

गउडी (गौरी) मारु (मारवा) धनासिरी, देव गंधारी, आसा, रागनिया हैं श्री राग की। टोढ़ी रागनी हैं बसंत राग की। कानडा रागिनी है पंचम राग की। बैराडी गूजरी रागिनी है भैरउ राग की। मलार, सोरठि, रागिनी हैं मेघराग की, कल्याण, रागनी है नटनारायन राग की बिलावल और रामकली रागनी हैं हिन्डोल राग की। केदारा, गौड़ रागनिया हैं, दीपक राग की।

राग शास्त्र के आचार्यों का एक मत ऐसा है जिसके अनुसार, जैजैवंती, माझ, सूही जैतासिरी। और प्रभावती क्रमश: भार्या हैं। दीपक, मेघ, भैरउ, मालकोप हिंडोल राग की। इसका अर्थ है कि ये रागिनियां भी इन्हीं रागों का अग हैं। इसी प्रकार विहागड़ा श्री राग का पुत्र अथवा अंग है। सारङ्ग मेघ राग का और विडहंस मालकोप राग का (पुत्र) अग है। तिलग, माली गउडा, तुखारी, यह किस राग के अग हैं यह पता हमें नहीं लगा। वैसे संस्कृत साहित्य मे ३६ राग रागनियां हैं जिनमें से अनेकों के नाम भी लोप हो गये हैं।

इन राग रागनियों के गाने के मास, ऋतु और काल निश्चित है यथा.—

भैरव राग क्वार कार्तिक महीने (शरद्ऋतु)मे गाया जाता था। श्रीराग मार्गशीर्ष (अगहन) और पौष के महीने में (हेमन्तऋतु) मे गाया जाता था। इसी प्रकार मालकोप राग माघ फागुन के (शिशिरऋतु) में, हिन्डोलराग चैत्र, वैसाख के महीने (वसतऋतु) मे दीपक राग जेष्ठ आषाढ़ (ग्रीष्मऋतु) मे और मेघराग श्रावण, भादवा (वर्षाऋतु) में गाया जाता था। आज के देहात के लोग इन राग रागनियों को ऋतु अनुसार ही गाते हैं। व्रज देश की स्त्रियां मल्हार श्रावण के ही महीने मे गाती हैं। चाहे जब नहीं।

'गुरु ग्रंथ साहब' मे जो राग रागनियां हैं। उनके साथ तालों का उल्लेख नहीं किया गया है। इससे ऐसे गायक (रागी) को जो पंजाब का न हो उन राग रागनियों को गाने मे प्रथम बार दिक्कत का सामना करना पड़ता है। कभी कभी तो वे यह भी कह बैठते हैं ग्रथ साहब की राग रागनियों मे ताल, ठाट, लय और ठेका किसी का पता नहीं। बात ऐसी नहीं है। उसमें लिखा अवश्य नहीं गया कि अमुक राग अमुक ताल के साथ गाया जाता है किन्तु राग शास्त्र के जानने वाले के लिये इन चीजों का उन रागों मे ढूंढ़ लेना कठिन नहीं है। यहां हम एक राग का हवाला देते हैं। ग्रथ साहब में गुरु नानक की वाणियों में भैरव राग में एक पद यह है —

मनरे राम भगति चित लाईऐ।
गुरु मुखि राम नाम जपि हिरदै सहज सेति घर जाईऐ।
भरम भेद भउ कबहु न छूटसि आवत जात न जानी।
बिनु हरि नामु कोउ मुकति न पावसि डूबि मुए बिनु पानी।
धंधा करत सगलि पति खोवसि भरमु न मिटसि गवाए।
बिनु गुरु सबद मुकति नहीं कबही अधुले धघु पसाए।

इस मे ताल 'तिताला' है और इस पद की ताल और लयों के साथ इसे वखूवी • य सकता है।

करि अभिमान विषय सूं राख्यो श्याम सरण नहि आयो ॥
यह ससार है फल सेमर को सुन्दर देखि भुलायो।
चाखन लाग्यो रूई उडि गई हाथ कछु नहि आयो ॥
कहा होत अब के मन सोचे पहले नाहि कमायो।
कहत सर भगवन्त भजन बिनु सिर धुनि धुनि पछतायो।

हमें ऐसा भी जान पड़ता है कि गुरु नानकदेव ने प्रत्येक राग को आरम्भ करने से पहले दो का पद दोहा अथवा इसी प्रकार के किसी अन्य छंद मे कहा जैसा कि इसी पद "मनरे राम चितु लाईऐ" के ऊपर "हिरदै नामु सरवु, धनु धारण" गुर परसादी पाईए है लेकिन ऐसा राग के साथ ही है अन्य रागों के साथ नहीं। इससे जान पड़ता है गुरु नानकदेव ने अपने भैरव सिंध भैरवी समेत लिखा है। आरभ मे सिंध भैरवी की दो दो पक्तिया है फिर भैरव राग है।

हमे ऐसा भी जान पड़ता है कि गुरुओं के समय पजाब मे—भारत की चार संगीत मतिय शिव मति का प्रचार अधिक था और मध्यभारत मे हनुमत अथवा कृष्ण मति का प्रचार था। गुरु ग्रंथ साहव से पहले का पंजावी भापा मे अथवा पंजावी सगीतज्ञ द्वारा लिखा हुआ के (राग रागनियों का) उपलब्ध नहीं है। अत. इस विपय पर अधिक नहीं लिखा जा सकता है।

और छन्द भाग मे चौपदे, चौबोले श्लोक, सवैये, दोहे और रागमाला के पद्य शामिल है। राग रागनियो मे गुरुओं ने रचना की है उनकी सख्या और नाम इस भांति हैं। सिरी (श्री) गउडी (गौरी) आसा, गूजरी, देव गंधारी, विहागड़ा, वडहसु, सोरठि, धनासरी, (धनी श्री) जै (जैत श्री) टोडी, वैराड़ी, तिलंग, सूही, मिलावलु, गौड, रामकली, नटनाराइन, माली गउड़ा, तुखारी, केदारा, भैरउ, बसत, सारंग, मलार (मल्हार) कानड़ा कलियान (कल्याण) प्रभाती, ज

'जपु', 'सोदर', 'सुणिवड्डा' और सोहिला रागों मे नहीं वांधे गये हैं। ये रागों से इस कारण कि प्रार्थना प्रधान है। रागों का समय और लय होते है। प्रार्थना समय और लय से नहीं जाय तभी वह सर्व जन प्रिय और चाहे जब अलापने योग्य होती है।

गुरु नानकदेव की रचनाये समझने मे दुर्गम और पढ़ने मे क्लिष्ट अवश्य है किन्तु हैं ऊचे दर्जे की। उनमे भक्तिरस उसी भाति भरा हुआ है जिस भांति नारियल मे दूध भरा रहता उनकी जपुजी तो ईश्वर महिमा पर लोक भाषा में अद्वितीय रचना है। सोदर, सोहिला और भी भक्ति का प्रवाह पैदा करने वाली हैं।

गुरु अगद जी की वाणी गुरुओं की वारों के बीच-बीच मे श्लोक, माझ, सोरठि, रामकली, सारग आदि रागों में है। इन्होंने प्रेम, विरह और वैराग्य का बड़ा सुन्दर दृश्य सामने है।

तीसरे गुरु अमरदास जी की रचनाओं मे 'आनन्दु' ने आनन्दोत्सवों पर मंगल गायन धारण कर लिया है। यह रामकली राग मे है। इनकी भाषा रसदार और उच्च श्रेणी की है।

गुरु रामदास जी की रचनाओं मे 'सोपुरखु' अत्यन्त प्रिय पद हैं। इनकी वारे और छद पूर्ण हैं।

गुरु नानक के पश्चात् सब से अधिक रचना गुरु अर्जुनदेव की है। इनके पदो की संख्या कई सैंकड़े है। सुखमनी तो इतनी सुन्दर रचना है कि भक्ति की जैसी अमृत वर्षा वह करती है, वह बार-बार सराहने योग्य है।

गुरु तेगबहादुर की रचना मे वैराग्य की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। संसार का मोह कम करने की भावना आपके पदो के पाठ से सहज ही उत्पन्न होती है। अनित्यता सम्बधी इनके श्लोकों का पाठ सिख लोग मृतक सस्कारों के समय पर किया करते हैं। भाषा इनकी मजी हुई और प्रवाहपूर्ण है।

सिख लोग इन रचनाओं मे से जपु जी का प्रात काल जप अथवा पाठ करते हैं और उसके बाद आसादीवार का कीर्तन करते हैं। संध्या समय 'रहिरास' के पद गाते है और सोते समय कीर्तन 'सोहिला' का गायन करते है। कडाह परसाद बरताने और विवाह आदि के शुभ अवसरों पर आनद पढा जाता है।

'गुरु ग्रंथ साहब' मे रागों के पश्चात् 'श्लोक सहसकृती' (श्लोक संस्कृत) आते हैं। इन श्लोकों के सम्बंध में हम इतना ही कहेंगे कि जिस प्रकार गुरुओं ने अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिये पंजाबी से इतर भाषाओं के शब्दो का पंजाबी-करण किया था। वैसे ही सस्कृत शब्दों का भी पंजाबी-करण किया है। जिससे उनके श्लोक यानी सलोक अति सुगम बन गये है। यद्यपि उनका सम्बध न तो पंडितों की सस्कृत से है और न अपभ्रष्ट सस्कृत से। महला १ अर्थात गुरु नानकदेव का रचा एक श्लोक इस प्रकार है।

पढि पुस्तक सधिआ बाद। सिल पूजसि बगुल समाध।
मुखि झूठ विभूखन सार। त्रै पाल तिहाल विचार।
गलि माला तिलक लिलाट। दोइ धोती बसत्र कपाट।
जो जानसि ब्रह्म करम। सभ फोकट निसचै करम।
कहु नानक निचसौ ध्यावे। विनु सतिगुर बाट न पावें।

यह श्लोक वसन्ततिलका छंद मे है। इस छद में १४ मात्राएं होती हैं। वेदों के छदों को मंत्र औ स्मृतियों अथवा पुराणों के छदों को श्लोक कहने की परिपाटी पड़ गई है।[1]

आगे वाले और इस श्लोक द्वारा गुरु नानकदेव ने ब्राह्मणों के थोथेपन का खाका खींचा है। -" कहा है कि वे सध्या, विवाद प्रतिमा पूजन और समाधि आदि दिखावे के रूप में करते है। उस परम परमात्मा को नहीं पहचान सके हैं। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र सब मे है।

चार सलोकों के पश्चात पांचवे गुरु अर्जुनदेव के ६७ सलोक हैं जिनमे ससार को नाशवान औ ईश्वर को सत्य तथा गुरु की महिमा का वर्णन किया गया है। यह श्लोक अनेक वृत्ति छदों मे हैं। ५ महलाकी गाथा भी सलोकों मे ही है जो २४ द्विपदी सलोकों में समाप्त की गई है। इस गाथा में गु अर्जुनदेव ने बताया है कि रुधिर, मज्जा हड्डी आदि से बनी देह पर अभिमान करना व्यर्थ है। यह मर्त देह कपूर और पुष्पगंध से सुगंधित नहीं होती।

जीवन मे साधु संगति ही श्रेष्ट है साथ में केवल यश जायगा, माया और नातेदार सब यहीं र

१. मत्र के लक्षण—प्रयोग सबधित अर्थ का प्रकाशक वाक्य विशेष, द्रव्य देवतादि का प्रकाशक वाक्य विशेष २९ छंदोवद्ध वाक्य विशेष चातुष्पादः (न्याय के लक्षण सग्रह से।)

जावेंगे] केवल 'गोपाल भजन' काम आयेगा। गोपाल गाथाही ऐसी है जो काम वासनाओंका हरण है।] हरीकीर्तन और साधुओं के वचन ही बड़े कर्म हैं। साध संगति भाग्यवानों को ही अच्छी नानक हरिनाम जपनेवाले को संसार सागर नहीं व्यापता है। यह जो वहुत ही गूढ़ गाथा है इसे ही जानता है। संसार की वासनाओं को छोड़कर गोविन्द का भजन और साधुओं की संगति यही है, जो करोड़ो दुखों का नाश करने वाला है।

जो एकोंकार को हृदय मे रखते है। वह वडभागी है और उनका सारा ही कुल उद्धर जाता

इन श्लोकों के पढ़ने मे आनन्द आता है और जितना ही अधिक पढते हैं उतने ही अच्छे है। वर्ण और मात्राओं की संख्या सीमा से इनमे से अनेकों सलोक मुक्त है और अनेकों स। भीतर हैं। जो वर्ण और मात्राओं की सीमासे मुक्त है उन्हे मिश्रित छंद समझना चाहिये। भाई न नाभा ने भी अपने 'गुरु छद दिवाकर' मे यही बात कही है। गुरु ग्रंथमे आई हुई कविताओं के उनके लेख का सार इस प्रकार है:—

कई गिआनी अखदे आते लिखदे हन कि गुरवाणी
छंद नियमा तें बाहर हैं, परन्तु इह उन्हा दी भुल्ल है।
हा असीं इह आख सकदे हा कि असीं गुरवाणी दे
सारे छदा दे रूप नहीं जाणदे। अरु जिन्हा छंदा दे लक्खण
असीं जान दे भी हां, उन्हा दे सारे रूपा दा ज्ञान नहीं
रखदे, खास करके मुक्तक छदां तो असी पूरे अणजाण हा। गुरुछद दिवाकर पृष्ठ २

इस गाथा के आगे अर्जुनदेव के 'फुनहे' है। इस प्रकार के फुनहे निर्गुण सम्प्रदाय के अनेकों ने लिखे हैं। जो अध्यात्मिक होते हुए भी शृंगारिक हो गये है। गुरु अर्जुनदेव ने अपने 'फुनहों' मर्यादा मे ही रक्खा है और अध्यात्मिक ही हैं। इनकी सख्या २३ है। प्रत्येक फुनहा चौपदा है।

एक अनुपम रूपवती को लक्ष्य करके उन्होंने कहा है :—"तेरी मुँह की शोभा का वर्णन नहीं सकता तू नानक के दर्शन से मोह गई है। इसके लिये बलिहारी। उस परमात्मा ने इस जीव को सिंगार सौप दिये है। पिया की आसा और प्रेम की पिआस मे तैने सेज विछाई है किन्तु प्रभु ने जो मस्तक मे लिखा होगा तो साजन पा जायगी। हे सखी, तैने आँखों में काजल लगाया है, गलेको से शोभित किया है। होंठों को पान की लाली से रंगा है। सोलह शृंगार किये हैं। जो घर तेरे (स्वामी) आगये तो सब कुछ पा लिया। और जो प्रभु (कन्त) नहीं आये तो सब शृंगार व्यर्थ जाय जिसका पति घर है वही बड़भागिनी है और वही सुहागिणी है। आशावान की आशा की सतगुरु की दयालता पर निर्भर है।

मेरा शरीर तो अवगुणों से भरा हुआ है। सतगुरु दयाल हो गये हैं इससे मन ठहर गया उसकी चंचलता जाती रही है। इस असार ससार से सतगुरु ही तार सकता है। जो पूरा गुरू मिल तो आवागमन मिट जाता है।

पर स्त्री की ओर रावण की दृष्टि गई इससे उसको लज्जित होना पड़ा।

ऊपर आकाश नीचे धरती है। दसों दिशाएँ खुल पड़ी हैं, बिजली चमकती है। परदेशों में ढू से पति स्वामी नहीं मिलेगा जो मस्तक मे लिखा है। उसके (सहज ही) दर्शन हो जायेंगे अर्थात् जायगा।"

इन पदों मे जीव को स्त्री रूप मान कर परमात्म-प्रीतम की दर्शन लिप्सा एवं मिलन इच्छा झाकी कराई है।

इसी प्रसग मे गुरु अर्जुनदेव ने अमृतसर और रामदासपुर की सराहना की है और कहा है जो लोग वृन्द-वृन्द जल को भटकते फिरते है उन्हे अमृतसरमे जाकर स्नान और जलतृप्ति करनी चाहिये। ... मे कहा है। ईश्वर के लिये इधर उधर भटनता व्यर्थ है। वह तो प्रभु की शरण मे जाने से ही प्राप्त होगा और सब भव रोगो की औषधि राम नाम है।

फुनहे के पश्चात् इन्हीं पाँचवे गुरु अर्जुनदेव जी के चौबोले है। दो पदो के वध मे यह ११ है इनमे गुरु अर्जुनदेव ने बताया है कि — ईश्वर प्राप्ति लग्न से होती है वैभव से नहीं।

महला ५ के चौबोलों के पश्चात् कबीर जी के श्लोक हैं। हमे ऐसा याद नहीं आता कि कबीर जी के श्लोक 'गुरु ग्रन्थ साहब' के अलावा कहीं अन्यत्र भी हैं। इन श्लोकों का प्रवाह अवश्य कबीर जी दोहों से मिलता जुलता है। वैसे गुरु ग्रन्थ साहब मे जितने श्लोक है वे विभिन्न छंदो मे हैं। यह ह पहले भी कह चुके हैं। किन्तु कबीर जी के श्लोक दोहा छंद मे ही हैं। गुरु ग्रन्थ साहब मे कबीर जी इन श्लोको (दोहों) का पजाबी ढग ही है। छाया को छाइया, दिया का दिआ, रचाई का रचाइआ। ... ही ग्रन्थ साहब मे लिखा गया है।

इन श्लोकों को क्रियाओ का ठेठ हिन्दी-करण करके पढ़ने से इनका अर्थ सहज ही समझ आ जाता है। सारी रचना हिन्दी शब्दों मे है किंतु चार-छ जगह पंजाबी के शब्द भी आ गये है यथा—

झुगीआ, (स० १५) छेक, हरुए (स० ३५) पड़िवो (४५) खिथा (स० ४७) झीवर ... (सं० ४६) तूठा (स० ५६) सो दरु (सं० ६६) कुछ फारसो अरबी के भी इन श्लोकों मे शब्द हैं जैसे ... नउबति (नौबत) (स० ८०) कलम (स० ८१) गोर (सं० १२७) नापाक (स० १३६) मुला, मुनारे, ... (स० १८४) सेख, सबूरी-हज, काबा, साबति, खुदाई (स० १८५) जोरी-जुलम हलाल, दफ्तर, ... (स० १८६) फुरमाई (स० १६७) खता-पीर (स० १६८) जवाब (स० २००) दीवान (स० २०१) इन श्लो मे राजस्थानी हिन्दी का भी एक शब्द मोकला (स० ५६) है।

कबीर जी के इन श्लोकों मे शाक्त लोगों की खूब खबर ली गई है। यथा —

"कबीर बैसनउ[1] की कू[2]करि भली, साकत[3] की बुरी माइ।
ओह नित सुनै हरिनाम जस, उह पाप बिसाहन जाइ।
(स० ५२)

'होनहार सो होइ हैं साकत सगि न जाउ'। (स० ६६)
साकत कारी कांबरी धोए होइ न सेत, (स० १००)
कबीर साकत सग न कीजिऐ... (स० १३१)
साकत ते सूकर भला राखै आछा गाउ (स० १४३)

(सोरहं महला ५ का १ अष्टपद)

इन श्लोकों से पता चलता है कि शाक्तों से कबीर साहब को उनके बलिदानों की हिंसा के ... अत्यन्त घृणा थी। उनसे वह वैष्णवों को अच्छा समझते थे किन्तु यह नहीं कि वैष्णवों के उन्हे आ... पसन्द हो इसलिए उन्होंने उनके लिए भी कहा।

साकत सगुन की जई पियारे जोका पार बसाइ।

१ बैष्णव २ कुतिया ३ शाक्त

जितु मिलिए हरि नितरें विसारे सो मुह काले उठिजाइ।

"कबीर बैसनो हूआ त किआ भइआ माला मेलीं चारि।

बाहरि कचन बारहा भीतरि भरी भगार।" (सं० १४५)

इन श्लोकों मे वैराग और ज्ञान कूट-कूट कर भरा हुआ है। बनी गहराई और वेदना मे त को प्रकट किया गया है। गुरु और राम इनमे मे प्रत्येक की अलग-अलग तथा उपयोगिता है। इस कबीर साहब ने यह निर्णय दिया है।

"कबीर सेवा कउ दुइ भले, एकु सतु एक राम।

राम जु दाता मुकति को, सतु जपावै नामु।" (स० १६८)

राम मुक्ति देता है और सत राम का नाम जपाता है इसलिए दोनों की ही आराधना उचित है। किन्तु इससे पहले उन्हीं श्लोकों मे वे यह भी कहते है।

"कबीर साचा सतिगुरु किआ करै, जउ सिखा महि चूक।

अंधे एक न लागहि जिउ बास, बजाइऐ फूक।" (सं० १७८)

अर्थात् सतगुरु क्या करेगा जब सिख (चेला) ही लायक न होगा जैसे कि फूटे बास मे देने से बांसुरी की आवाज ही आ सकती है।

हिन्दी मे ऋ, ॠ, ऌ, ॡ समेत ५२ अक्षर हैं। कबीर साहब ने इनके सम्बन्ध में श्लोक १७३ कहा है।

"कवन अखर सोधि हरि चरनी चित लाउ।"

हमने कहा है कि गुरु ग्रन्थ साहब मे "सलोक भगत कबीर" के शीर्षक मे २४३ श्लोक है। श्लोक २१६ के बाद एक श्लोक महला ३ अर्थात् गुरु अमरदास जी का है। श्लोक २२१ से २३३ ऐसे श्लोक है जिनमें भोग कबीर हैं महला ५ के भीतर। श्लोक २३४, २३५ ऐसे है जो कबीर के व नहीं जान पड़ते उनमें भोग भी कबीर का नहीं है २३७ से २४० तक श्लोकों मे कबीर का नाम २२१ वां श्लोक नामा (नामदेव) का और २४२ रविदास का तथा २४३वा सलोक फिर कबीर साहब का

'सन्त इतिहास' के लेखकों को इस बात मे सन्देह है कि कबीर साहब गुरु नानक के समय भी जीवित थे। फिर कबीर के वचनो का सग्रह गुरु ग्रन्थ साहब मे क्योंकर किया गया। इसके दो हैं एक तो यह कि कबीर की विचार धारा नानक मत से मिलती-जुलती थी। दूसरे कबीर न सही पथी से तो नानको का सम्पर्क पडा ही होगा। हमारे अनुमान से यह श्लोक राम रतन नाम के पंथी से सग्रह किये जान पड़ते हैं जो गुरु अर्जुन देव के समय मे पंजाब मे गुरु दर्शनों को आया होगा। इन श्लोकों मे श्लेष से राम रतनु शब्द आया है यथा—

"कबीरा तू ही, कबीरु तू तेरो नाम कबीरु।

राम रतनु तब पाईऐ, जउ पहले तजे सरीरु॥ (स० ३१)

अर्थात्—तू ही कबीरा है कबीरु भी तू है नाम तेरा कबीरु है। राम पी रतन तो तब मि जब शरीर को त्याग देना। दूसरा इसका यह अर्थ है कि हे राम रतन! तुझे तेरा सतगुरु-कबीर शरीर छोड़े नहीं मिलने का। अर्थ वह तो परलोक मे है।

"कबीर राम रतनु मुख कोथरी पारख आगे खोलि।

कोई आइ मिलैगो गाहकी लेगो महगे मोलि॥ (स० २२५)

अर्थात—कबीर तू अपनी राम नाम के रतन वाली कोथरी (थैली) का मुँह किसी पारखी सामने खोलना जिससे वह उसका अच्छा दाम चुका कर गाहकी करले। इसका दूसरा अर्थ यह भी कि राम रतन कबीर-वाणी कोथरी का मुँह पारखियों के सामने ही खोला कर। जिससे उसके अ शब्दो का आदर हो। और कोई अच्छा सा गुण गाहक मिल गया तो अच्छे ही दाम देगा।

गुरु अर्जुनदेव अच्छे पारखी भी थे और दान दाता भी, इसलिये यह श्लोक उन्हे ही सं ोधि करके कहा जान पडता है।

इन २४३ श्लोको की कविता बहुत ऊँचे भावों वाली और प्रवाहशील है। विचारों को ० करने की शैली बहुत ही मनोहर है।

कबीर साहब के श्लोको के पश्चात गुरु ग्रन्थ साहब मे 'शेख फरीद' के श्लोक हैं।

पंजाब मे अजोधन (पाक पट्टन) के रहने वाले ख्वाजा शेख मुहम्मद के लड़के थे। इन असल नाम शेख ब्रह्म अथवा इब्राहीम था। बाबा फरीद की औलाद मे होने से फरीद ही यह भ कहलाते थे।

आदि फरीद की तरह यह भी ऊँचे थे। और उनकी ग्यारवीं पीढ़ी में पैदा हुए थे।

गुरु ग्रन्थ साहब मे इनके दो पद और १३० श्लोक है गुरु नानकदेव के साथ उनकी दो ... ज्ञान चर्चा हुई थी। इन्होंने उनसे एक बार कहा था अपने पास तो काठ की रोटी हैं जिसका उत्तर ... नानकदेव ने यह दिया था कि खाओ तो कुछ भी किन्तु वह पीड़ा देने वाला न हो।

कई पंजाबी लेखक इन्हे लहँदा भाषा का आदि कवि मानते हैं।

इनकी भाषा का झुकाव पजाबी की ओर है। यह श्लोक भी दोहों मे आबद्ध है। शेख फरीद ... इन श्लोकों की संख्या १३० है जिनमे पहला अष्टपदी और शेष द्विपदी हैं। इन श्लोकों मे फारसी ... की भरमार हैं क्रियाये भी शब्दों की पजाबी भाषा मे ही हैं। इन श्लोकों के बीच १२ वे श्लोक के ब महला ३ लिखा हुआ है किन्तु भोग शेख फरीद का ही है। श्लोक ८१ के बाद म० ५ लिखा हुआ है प्रत्येक श्लोक मे नाम फरीद का ही है। श्लोक १०३ के बाद फिर महला ३ अकित है। और श्लोक १० के बाद फिर महला ५ आरम्भ हो जाता है। श्लोक १०७, १०८, १०६, ११० सबके साथ महला ५ लि. हुआ है। किन्तु इन सभी श्लोकों मे फरीद का नाम है।

इन श्लोको में कुछ अति गहरे अर्थ वाले और कुछ सहज गम्य हैं कुछ मे आत्मा परमात्मा वर्णन है कुछ उपदेश हैं।

कुछ नमूने—

जितु दिहाडै धनवरी साहे लए लिखाइ।
मलुक जिकनी सुणीदा मुहु दिखाले आइ।
जिंदु निमाणी कढिए हडा कूं कडकाइ।
साहे लिखे न चलनी जिंदूकं समझाइ।
जिंद वहुटी मरण तरु लैजासी परणाइ।
आपण हथी जोलिकं गलि लगं धाइ।
वालहु निकी पुरसलात कनी न सुणी आइ।
फरीदा किड़ी पवंदई खड़ा न आपु मुहाई॥ (स०—१)

अर्थात—जिस दिन धन का ब्याह होने वाला था उसका साहा पहिले ही लिखा जा चुका और जिस दूलहे की चर्चा थी वह मुँह दिखावनी कराने के लिये आ पहुँचा। हाडों को कड़का कर व धन को अपने साथ ले जायगा।

उस वहू को समझा दे (कि वह रोये झींके नहीं) दूल्हा तो उसे ब्याह कर ले ही जायगा (कि साहा टल नहीं सकता।)

(विदा होते समय अब) वह किसके गले मे गलबहियां डालेगी क्या सुना नहीं कि वह ॰ वाल से भी कोमल है। फरीद जब तेरा बुलावा आवे तो अपने को असमजस मे न डालना तुरन्त को खड़ा हो जाना।

भाव यह है कि मौत का दिन निश्चित है काल रूप दुलहा आत्मा रूपी दुलहिन को उस मु॰ अवश्य ही ले जायगा। आत्मा को उस समय कोई सहारा रुकने का नहीं होगा। इसलिये फरीद तो से ही तैयार है मौत चाहे जब आजाय।

× × × ×

फरीदा जे तू अकलि लतीफ काले लिखनु लेख,
आपनदे गिरीवान महि सिरु नीवा करि देखु, (सलोक ६)

अर्थ—फरीदा यदि तू बारीक अकल रखता है तो (दूसरों की बुराई के) काले लेख मत क्योंकि तू अपने गरेवान की ओर देखेगा तो पता चलेगा तू स्वयम् कितना बुरा है।

× × × ×

फरीदा खाकु न निंदीए खाकू जेडु न कोइ।
जीवदि आ पैरा तलै मुइआ उपरि होइ॥ (स० १७)

अर्थ—फरीद खाक की निन्दा मत करो इसका जैसा कोई नहीं है जीवन मे तो यह ॰ रहती हैं मरने पर ऊपर छा जाती है। अर्थात एक दिन मिट्टी मे ही मिल जाना है।

श्लोक ३१ मे शेख फरीद और गुरु नानक के सवाल जवाब है।

शेख फरीद कहते है—

साहुरे ढोई नालहै पेइये नाही थाउ।
पिरु बावडी ना सुहाई धन सोहागिणी नाउ (स० ३१)

अर्थात्—सासरे मे ढोई न लेना उनका पता मिलता नहीं पति नहीं पूछता है फिर उस धन का नाम सुहागिणी कैसे है।

गुरु नानक ने उत्तर दिया—

साहुरें पेइए कतकी कत अगमु अथाहु।
नानक सो सोहागिणी जु भावे दे परवाइ। (स० ३२)

अर्थात्—सासुरे मे कन्त कहाँ है वह अगम्य और अथाह है नानक वही सुहागिणी है जो नि॰ है अर्थात जानती है कि पिया दूर नहीं।

कविता की दृष्टि से शेख फरीद के यह श्लोक क्लिष्ट होते हुए भी सरस और मन को ॰ करने वाले हैं। इन श्लोकों मे शृंगार रस के माध्यम से भक्ति रस का सुहावना प्रवाह बहाया ॰॰

शेख फरीद के श्लोके के बाद 'गुरु-ग्रन्थ' मे पांचवे गुरु अर्जुनदेव जी के सवैये हैं। इनमे

का पूरा प्रवाह है। गण और मात्राओं की परिसीमा से सदैव मुक्त हैं। इनकी संख्या ६ है। इनमें ईश्वर की प्राप्ति के लिए गुरु की शरण आने के लिये ससार भंवर मे फँसे हुए लोगों को आमन्त्रण है। इनके बाद ही इन्हीं गुरु अर्जुनदेव के ११ सवैये और हैं। इनमें अन्तर यह है कि पहले ६ सवैया षष्ट पदी हैं और पिछले ११ चतुष्पदी। पिछले ११ सवैयो मे संतुलित प्रवाह यथेष्ट है। इन्हे मुक्त नहीं कहा जा सकता।[१]

इनके बाद प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पंचम गुरु की प्रशंसा मे भाटों के सवैये है। जिनमे कविता और भाव वैसे ही हैं जैसे यह लोग अपनी परम्परा से अपने यजमानों के करते आये हैं।

पहले महले के सवैयो में कहा गया है—

"सन्तो के आधार और वर दाता एक परमात्मा के चरणों को हृदय मे धारण करके परम गुरु नानक के गुण गाता हूँ। उनके गुणों को सब कोई, जोगी, जंगम, देवता, ऋषि, मुनि और सूरमा गाते है। जिनमे कपिल, कणादि अक्रूर आदि सब हैं। यहाँ तक कि शेष महेश और ब्रह्मा भी गाते हैं। गुरु नानक को सतयुग का वावन, त्रेता का राम, द्वापर का कृष्ण और कलियुग का नानक समझना चाहिये।

यह किसी कल नाम के कवि की कविता है।

'सवइये महले दूजे के' मे गुरु अगद की प्रशसा है। कवि कहता है जिसकी (लहणा की) ~ ~ अमृतमयी है जिससे क्षण भर मे कालौंच उतर जाती है और तिमिर के नास होने से द्वार दीखने लगता है। जिन्होंने उनकी सेवा की है उनका भव भार हल्का हो गया है। (लहणा) तू राजा जनक का अवतार है। जो इस संसार मे 'जल कमलवत' रहता है। उनकी दृष्टि से लोभ मोह का नाश होता है और ~ ~ भवसागर से पार होने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। आदि आदि—

यह रचना भी कल नाम के कवि की ही है।

"सवइऐ महले तीजे के" मे गुरु अमरदास जी की स्तुति अथवा गुणगान है। कवि कहता गुरु 'अमरदास' की सभी प्रशसा करते हैं, उनका यश सभी दिशाओं मे छाया हुआ है।

कवि कल्युचरे जालपु और भिक्खे नाम के तीन कवियों ने गुरु अमरदास जी की प्रशंसा ~ ये सवैये बनाये हैं—

'सवइए महले चउथे के' का रचियता ठाकुर हरदास का लड़का कवि कल्य है। इस कल्पय ने ~ कल नाम से पहले और दूसरे गुरुओं के सवैये भी बनाये हैं। इसने गुरु रामदास जी के लिये कहा है

'जगत उधारण नव निधानु भगतह भव तारणु।
अमृत बूंद हरि नामु विस की विखौ' निवारणु॥"

हैं। पंजम गुरु के सवैयों के रचयिता कल्य और मथुरा दो कवि हैं।

इन दोनों के सवैयों की बानगी इस प्रकार है।

"जै जै कारु जासु जग अन्दरि मन्दरि भागु जुगति सिव रहता।
गुरु पूरा पायउ बड भागी लिव लागी मेदानि मरु सहता।

१. कबीर और फरीद जी की इन वाणियों के सिवा सलोक महिला ३ श्रीराग में कबीर त्रिलोचन भगत वेणी ~ और रविदास की वाणिया हैं।

भय भंजन पर पीर निवारन कल्य सहार तोहि जसु बकता।
कुलि सोडी गुर रामदास तनु धरम धुजा अरजुन, हरि भगता।"

(सवैया ६)

"कलि समुद्र भये रूप प्रगटि हरिनाम उधारनु।
वसहि सन्त जिसु रिद दुख दारिद्र निवारनु।"
निरमल भेख अपार तासु बिनु अवरु न कोई।
मन बच जिनि जाणिअ भयउ तिह समसर सोई।
भनि मथुरा कछु भेद नहि गुरु अर्जुन परतख्य रूप हरि।

इन भाटों के सवैयों के बाद "सलोक वाराते वधीक" है। अर्थात् वह श्लोक जो वारों मे कहे गये है।

यह श्लोक गुरु नानक देव के है। इनकी संख्य ३६ है जिन मे २८ श्लोक जिनका कि एक है गुरु अमरदास के हैं जिनमे कहा गया है "अमृतसरु सिफती दा घरु" क्योंकि इनमे पहले २७ वे मे गुरु नानक देव ने "उसका भी एक ही पद है" कहा था "लाहौर सहरु जहरु कहरु सवा पहरु"।

इसके आगे तीसरे गुरु अमरदास जी के श्लोक है। इनकी संख्या ६७ है। इनमें से कुछ सबन्धी हैं। कुछ मे गुरुनानक की महिमा है और कुछ में बताया गया है। बड़भागी वही है ... सतगुरु का उपदेश और हरिचर्चा है—वे कहते हैं—

(१) अतिथि शंकाशील नहीं होना चाहिए।
(२) दुखो का नाश शब्द ज्ञान से ही होता है।
(३) जवानी के जाने मे देर नहीं लगती, बुढ़ापे मे कोई बात नहीं पूछना।
(४) सच्चा बसत तो वही है जहां हरीहरि हैं। क्योंकि बिना हरिआली के बसत कैसा ?
(५) जोग न तो रंगे कपड़ों में न मैले कपड़ों मे उसे तो सतगुरु ही जानता है।

महिला ३ के श्लोकों के बाद महला ४ के श्लोक है। जो गिनती मे ३० है। गुरु रामदास इन श्लोकों मे सत संगति और गुरु सिखी पर अच्छा प्रकाश डाला है।

इनके बाद पाचवे महले के श्लोक है जिनमे गुरु अर्जुन देव जी ने भारत के प्रसिद्ध राग सोरठि की सार्थकता बताई है और कहा है कि इनमे गुरु के शब्दो की आराधना हो रामनाम की महिमा जाती हो, क्योंकि उनके समय तक इन रागो में अधिकाश विरह वर्णन किया जाता था। इन दो २ से आगे अर्जुनदेव जी ने गुरु महिमा और नाम महिमा का वर्णन किया है इन श्लोकों की सख्या २

इनसे आगे ५८ श्लोकों मे नवे गुरु श्री तेगबहादुर जी की अमृत वर्षा करने वाली वाणी है ठेठ हिन्दी भाषा मे रची गई है। नमूने के तौर पर देखिए—

सग सखा सभ तज गये कोउन निबह्यो साथ।
कहु नानक इह विपति मे टेक एक रघुनाथ।

ये श्लोक प्राय दोहो मे आबद्ध हैं।

गुरु तेगबहादुर जी के श्लोकों के पश्चात् "मुदावणी महला ५" है। जिसमे कहा गया है। के बीच तीन वस्तु हैं "सत, संतोष और ईश्वर का नाम जो अमर है। उसे ही प्राप्त करना ।

ये जो तीन वस्तु है इनका आहार अथवा उपयोग करने वाले का उद्धार हो जाता है। ये तीनों वस्तुएँ छोडने की नहीं हृदय मे रखने की हैं।

इस मुदावाणी के साथ ही गुरु अर्जुन देव जी का एक श्लोक और है। इस श्लोक के बाद ही सबसे अन्त मे राग माला है इसमे कहा गया है।

एक राग की पाच स्त्रियां हैं। आठ पुत्र हैं। पहिले 'राग भैरउ को गाइये जिसके साथ ही पाचों रागनियों का भी उच्चारण करिये। भैरवी, विलावली, वगाली और असलेखी ये पाच भैरउ राग की स्त्री हैं। पंचम, हरख, दिसाख, वगालम, मधु, माधव, ललित और विलावल ये भैरउ राग के आठ पुत्र हैं इन सब को क्रमश गाना चाहिये।

भैरव राग के पश्चात् "मालक उसक राग" (मालकोप राग) का गायन करे। इसके भी साथ इसकी पाचों रागनियों से गावे। गौडकरी, देवगधारी, गधारी, सीहुती (श्रीहुति) धनासरी (धनाश्री) ये पांच 'भैरउ' राग की स्त्रिया हैं। मारु,-मसत, अग (मस्ताग) मेवारा, प्रवल, चड, खटखट और भवरानद ये भैरउ राग के पुत्र हैं।

तीसरे नम्बर पर हिन्डोल राग का गायन करें। जिसकी पाच स्त्रिया और आठ पुत्र हैं। तेलगी, देवकरी, वसती, सदूर और अहेरी भैरों राग की स्त्रियों के नाम हैं। पुत्रो के नाम सुरमानन्द, भास्कर, चन्द्रबिंब, मगल, सरसवान, विनोदा, वसन्त और कमोद हैं।

हिन्डोल के पश्चात् दीपक राग के गाने की वारी है। कछेली, पटमजरी, टोडी, कामोदी, और गूजरी इसकी पाच स्त्रिया हैं और कालका, कुन्तस, रामा, कमल, कुसुम, चम्पक, गौरा, कानरा और कल्यान आठ पुत्र हैं।

सिरी राग (श्री राग) की पांच स्त्रियो के नाम वैरारी, करनाटी, गउरी, आसावरी, और सिधकी हैं। मालू, सारंग, सागरा, गौड, गंभीर, गुंड, कुंभ, हमीर उसके आठ पुत्र हैं।

छटा राग मेघ राग है। जिसकी सोरठि, गौडमलारी, आसा, सुही पाच स्त्रिया और वैराधर, गजधर, केदारा, जबलीधर, नट, जलधारा, शंकर और श्याम आठ हैं।

यह षट (छ) राग हैं जिनकी कि तीस रागनिया हैं और ४८ पुत्र हैं।

यह राग माला मनहरण छन्द मे हैं जिसके प्रत्येक चरण मे सोलह मात्राये हैं प्रत्येक छद के अत मे २४ मात्राओं वाले द्विपदी झूलना हैं। राग माला ठेठ हिन्दी मे है और सहज ही समझी जा सकती है।

उपदेश और शिक्षायें

वास्तव मे तो 'गुरु ग्रन्थ साहब' प्रार्थना-ग्रन्थ है, 'किन्तु उसमे प्रसगवश उपदेश और शिक्षाये भी हैं। उन्हीं उपदेशों और शिक्षाओं में से कुछ-एक हम यहाँ उद्धृत करते हैं :—

जो कुछ बोलो समझकर बोलो।

"जितु बोलिऐ पति पाईऐ सो बोलिआ परवाणु।
फिक्का बोलि विगुच्चणा सुनि मूरख मनि अजाणु॥" (श्री राग महला १)

वाणी संयम—क्योंकि फीका (व्यर्थ) बोलना (वाणी का) विगुच्चन है इस प्रकार के बो... वाले को मूर्ख ही समझा जायगा।

ऐसा भी मत बोलो, जिससे पराई निन्दा होती हो —

"पर निन्दा पर मलु मुख सुधी अगनि क्रोध चंडाल।" (श्री राग महला १)

अपने मुंह (वाणी) से जहाँ तुम पराई निन्दा से बचो, वहाँ किसी की स्तुति (खुशामद) भ करो। अर्थात् निन्दा और खुशामद दोनों को छोड़ दो।

"उस्तुति निंदा दोहु त्यागै खोजै पद निरवाना। (गौड़ी म० ९)

"गुरमुख बूझै शब्द पतीज उस्तुति किसकी कीजै ॥ (बसन्त महला ९)

क्योंकि जो न तो पर निन्दक हैं और न खुशामदी हैं। तथा जिन्हें लोभ, मोह या हर्ष ... नहीं गये है। वे साधारण आदमी नहीं योगीजन हैं। यथा :—

"पर निन्दा अस्तुति नहि जाकै, कन्चन लोह समाने।

हरख सोग ते रहे अतीता, जोगी ताहि बखाने ॥" (धनी श्री महला ९)

मन संयम—वाणी संयम जिस प्रकार व्यर्थ-भाषण और अस्तुति-निन्दा के त्यागने में है उसी प्रकार मन का संयम, काम, (वासना) लोभ, मोह, क्रोध और बुरे विचारों के छोड़ने में है।त इस सम्बन्ध मे 'ग्रन्थ साहब' कहते हैं :—

"काम क्रोध लोभ मोह तजारी, दृढ़ु नाम दान, इसनानु सुचारी।"

"लोभ, मोह मगन अपराधी, करणहार की सेवन साधो ॥" (सूही राम म९

"परहर काम, क्रोध, झूठ, निन्दा, तजि माइआ अहंकार चुकावै।

तज काम, कामनी, मोह तजै, ता अजन माहि निरजन पावै ॥" (महला ४ वार

"पर तिय रूप न पेखे नेत्र, साधु की टहल सत सग हेत।" (गौडी सुख मनी महल

सत संग—अच्छी संगति में उठने बैठने का उपदेश हमारे देश में अनन्त काल से चला है। एक हिन्दी कवि ने कहा है :—

"तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिये तुला एक अग।

तुलै न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सत सग ॥"

गुरु ग्रथ साहब में सत संग की काफी महिमा वर्णन की गई है।

चौथे गुरु श्री रामदास जी कहते है :—

"जिउ चन्दन निकट वसे, हिरड बपुरा।

तिउ सति सगति मिलि पतित परवारु ॥" (गौड राग)

अर्थात्—चन्दन के निकट बसने से जैसे अरड आदि अन्य वृक्ष सुगधित हो जाते है। प्रकार सतसग से पतित लोग भी पार हो जाते है।"

इसी प्रकार पाँचवे गुरु श्री अर्जुनदेव जी ने कहा है :—

"खोजत खोजत सुनी इहि सोय।

साधु सगति विनु तरयो न कोइ ॥" (राग आशा)

इस सम्बन्ध में गुरु नानकदेव ने एक और भी बात कही कि 'सतसग' भी वह श्रेयष्कर है हरिचर्चा होती हो। यथा :—

सति सगति वैसी जाणिए, जिथै एको नाम बखाणिए।" (श्रीराग)

सेवा—गुरु महानुभावों ने सेवा को भी पूरा महत्त्व दिया है। गुरु अगद और अ ...द।

सेवाओं की कहानियाँ ओजस्विनी हैं। गुरु नानकदेव ने तो कहा है कि यदि तुम ईश्वर के घर । चाहते हो तो ।

"विच दुनियां सेव कमाइये।
ता दरगह बैसणु पाइए।।" (श्री राग)

श्री गुरु अमरदास जी ने कहा है --

"सति गुरु की सेवा सफल है जे को करे चितु लाइ।
मन चिन्दआ फलु पावणा हउमैं विचहु जाय।।" (वारसोरठ)

अर्थात्--जो कोई श्री गुरु की सेवा चित्त लगाकर करेगा वह संसार मे मनोवाछित पायेगा।

जत्थे वन्दी—सिख पंथ में जत्थं वन्दी ही सिख समाज का जीवन है। जत्थे वन्दी ने ही भारी सकटों से पार किया और उसी ने उनको ससार में चमकाया है। ग्रन्थ साहब मे मिल जुल रहने और आपस मं न लड़ने के काफी उपदेश हैं।

मिलि वे की महिमा वरनन साकूँ, .. (महिला ५)

भारत के आदि विधान निर्माता और समाज-व्यवस्थापक मनु ने धर्म के दश लक्षण बताये धृति (धीरज) क्षमा, मन का दमन, पवित्र रहना, इन्द्रियों पर काबू रखना, विद्या प्रवुद्ध होना, सत्यवादी वनना, क्रोध को त्यागना और चोरी न करना। गुरुओं ने इन सभी वातों पर जोर दिया है उन्होंने कहा है अपनी कमाई पर सन्तोष क यथा —

क्षमा, सन्तोष और दया

"सम सन्तोष करहू जन भाई। खिमा रहहु सतगुरु सरनाई। (मारु महला १)
सहस खटे लख कउ उठ धावे। तृपत न आवै माया पाछे पावे।
अनिक भोग विखिया के करै। नहि त्रिपतावै खपि खपि मरे।"
विना सन्तोषु नहीं कोऊ राजै। सुपन मनोरथ विरथ सब काजै। (म० ५ सुखमनी

शील और क्षमा मनुष्य के लिये गुरु नानक की दृष्टि मे कितने महत्वपूर्ण थे? इसका । इस पद से लगता है—

खिमा गही व्रत शील सन्तोषं। रोग न व्यापै ना जम देख।—(गौडी महला १)

मनुष्य की इहलौकिक और पारलौकिक दोनों उन्नतियों मे लोभ, मोह, काम, और अहकार सदा वाधक रहे हैं। सारे ही प्राचीन ऋषि, मुनियों ने इन्हे मनुष्य शत्रु माना है। गुरु महानुभाव भी इन्हे परमात्मा के मार्ग मे विकट रोड़े मानते इसलिये वार-वार उन्होंने इनका त्याग करने का उपदेश दिया है। यथा—

काम क्रोधादि का त्याग

"अवरि पच हम एक जना। किउ राखहु घर वार मना।
मारहि लूटहि नीत नीत। किस आगे करी पुकार जना। (म० १ राग

अर्थात्, हम (जीवात्मा) तो अकेले हैं और हमारे शत्रु पॉच हैं। हे, मन इन्हे क्यों रख हो? यह हमको प्रतिदिन मारते और लूटते हैं। किसके आगे इनके विरुद्ध फरियाद करें। कारण इसमें किसी दूसरे का क्या चारा है जव कि इन्हे घट भीतर पाल रक्खा है। गुरु अर्जुन देव तो पाच श ओं के सम्बन्ध में कहते हैं—

चारि बरन चउहा के मरदन, खटु दरसन कर तली रे।
सुन्दर सुघर सरूप सिआने पंचहु मोहि छलीरे।
जिनि जिनि मारे पंच सूरबीर, ऐसो कउनु बलीरे।
जिनि पंच मारि बिदारि सो पूरा इह कलीरे। (आसा म०५)

अर्थात्, चार वर्ण जिनके हाथ में हैं [illegible] छह शास्त्रों (जिन्होंने) मान मर्दन कर दिया है। यह बहुत लुभावने हैं। इसलिये इन्होंने सबको छल रखा है। जिन्होंने इन विकारों को मार लिया है उन्हें ही तो इस कलियुग में पूरा धनी अर्थात् भाग्यवान मानना है। कहा है —

"निमख काम सुआद कारणि, कोटि दिनस दुखु पावहि।
घरी मुहत रंग माणहि, फिरि बहुरि बहुरि पछुतावहि।" (म० ५ राग

पल भर के स्वाद और घड़ी मुहूर्त के रंग के कारण ही दिन तक बराबर पछताना ही होता। ऐसे (वासना) को लोग क्यों न नमस्कार करते हैं। यह इस वाणी का भावार्थ है।

क्योंकि काम-वासना से —"नरक वास अनेक योनियों का भ्रमण, चित्त का अपहरण, लोकों में शोक और सारे जन्म में किये गये जप, तप का नाश हो जाता है" यथा.—

हे काम नरक बिस्राम बहु जोनी भ्रमावणह।
चित हरण त्रैलोक गम्य जप तप सील बिदारणह॥

इसी भांति क्रोध के बारे में श्री गुरु रामदास जी ने कहा है—

'उना पासि दुआसि न भिटीऐ, जिन अंतरि क्रोधु चंडालु। (श्री राग)

उनके अड़ोस पड़ोस को भी मत छुओ जिनके हृदय में चंडाल क्रोध का वास है।

तीसरे गुरु अमरदास जी ने एक श्लोक में लोभ के सम्बन्ध में यों लिखा है.—' का वेसाहु न कीजै, जे का पारि वसाइ।" जिसका तनक भी वश चले वह लोभी का विश्वास न करे।

इसी तरह मोह के सम्बन्ध में गुरुओं ने लोगों को सावधान किया है।

ऐ तू मोह डुबा ससार, गुरमुख कोई उतरे पार—(आसा० महला १)
मोह की जेवरी बाधिउ चोर —(गौड़ी महला ५)
मोह मगन कूप अंध ते नानक गुर काढ —(बिलावल महला ५)

अहंकार के विनाश के लिये ग्रंथ साहब में अनेकों स्थल पर अनेकों चेतावनी है। यथा अर्जुन देव कहते हैं।

"हे जनम मरण मूल अहंकार पापातमा।
मित्र तजति सत्र द्रिडति अनिक माया विस्तीरनह।"

अर्थात् बार-बार के जन्म मरण का मूल कारण अहंकार ही है और यही ऐसा शत्रु है कि [illegible] कारण मित्र भी साथ छोड़ जाते हैं और शत्रु मजबूत होते हैं। तथा इसीसे अनेक मायाओं का वि[illegible] होता है।

भारतवर्ष में दान पुण्य की महिमा अनन्त काल से चली आती है। गुरु लोगों ने इस [illegible]

१. छिन सुख लागि जन्म शत कोटी। परहिं नरक महि तिय सम को खोटी।—तुलसीदास

दान पुण्य को पूर्ववत ही महत्व दिया है ग्रन्थ साहब मे इस सम्बन्ध मे इस प्रकार प्रकाश डाला गया है—

"घाल खाइ किछु हथहु देइ। नानक राह पछाणहि सेइ॥" (सूही महला ५)

अर्थात्—परिश्रम की कमाई को भी कुछ हाथ से देकर अर्थात दान करके खाना चाहिए। जो ऐसा करते हैं। वे ही भगवान के जानने वाले है।

दान देना मनुष्य के लिए उतना ही आवश्यक है जितना शरीर को स्वच्छ रखना और स्नान करना। तथा ससार से पार होने के लिये ईश्वर के नाम-स्मरण मे दृढ़ता। यथा—

"दृढ नाम दान, इसनान सुचारी। कहु नानक यह तत विचारी।" (सूही महला ५)

आपे का सुधार

"पर उपदेश कुशल बहुतेरे। निज आचरहि ते जन जग थोरे" की कहावत अति पुरातन काल से चली आती है। इस सम्बन्ध मे 'ग्रन्थ-साहब' कहते हैं—

"अवर उपदेसै आपु न करै। आवत जावत जन्मै मरै।"

अर्थात—"औरो को तो उपदेश करे किन्तु स्वयम उस पर न चले।" ऐसे लोग संसार मे बार-बार जन्मते मरते हैं। वह कभी भी मोक्ष नहीं पा सकते। क्योंकि ऐसे लोग जो "उपदेस करै, आपु कमावै। तत सबद न पछाने ढग के होते है।[1] इसलिये यह आवश्यक है कि—

"प्रथमे मन पर-बोधि अपना पाछे अवर रिझावै। (आसा महला ५)

सार्थक-निरर्थक

हमारे कौनसे काम सारवान है और कौनसे नि सार अथवा कोनसे कर्म मिथ्या (व्यर्थ) है और कौनसे करने योग्य हैं। इस सम्बन्ध में भी 'ग्रन्थ साहब' से अच्छा प्रकाश मिलता है यथा—

"मिथिया स्रवन पर निंदा सुनहि। मिथिआ हसत पर दरब कउ हिरहि॥
मिथिआ नेत्र पेखत त्रिअ रूपाद। मिथिआ रसना भोजन अनस्वाद॥
मिथिआ चरन पर-बिकार कउ धावहि। मिथिआ मन पर लोभु लुभावहि॥
मिथिआ तन नहि पर उपकारा। मिथिआ बासु लेत बिकारा॥"

(गौडी सुखमनी महला ५

अर्थात—वे श्रवण (कान) निन्दा योग्य हैं जो पराई निन्दा सुनकर प्रसन्न होते है। वे हा' निंदनीय हैं जो पर द्रव्य को हरने मे तत्पर होते हैं। उन नेत्रों को धिक्कार है जो पराई स्त्री के रूप लाव पर ललचाते हैं। वह जिह्वा भी किसी काम की नहीं जिसे भोजन मे स्वाद नहीं आता है। वे पैर नहीं जो पराया अहित करने को दौड़ पड़ते हैं। वह मन झूठा है जो पराये पदार्थों पर लुभाता है।'

असल मे तो'—

"वह जिह्वा भली है, जो हरि गुण गाती है। वे कान अच्छे हैं, जिन्हें हरिकीर्तन सुनना अच लगता है। वह सिर अच्छा है,जो गुरुजनो के चरणों की ओर झुकता है। वे नेत्र प्रशसा योग्य है जो सा (भले आदमियों) के दर्शनों को लालायित रहते हैं। वे हाथ पवित्र हैं जो हरिकथा लिखते हैं। वे पूजने लायक हैं, जो धर्म मार्ग पर चलते हैं।[2]

गुरुओं को बनावटी जीवन से बहुत घृणा थी। वे चाहते थे कि लोग सही मार्ग पर चलें औ सही जीवन को अपनाये इस सम्बन्ध मे उनके उपदेशो का सार 'ग्रन्थ साहब' मे २ प्रकार है —

१. आसा महला ३।

"करतूत पसू की मानस जाति। लोक पचार करै दिन राति ॥
बनाघटी जीवन — बाहरि भेखु अन्तरि मल माइआ। छपसि नाहें कछु करै छपाइआ ॥
बाहरि गिआन घिआन इसनान। अंतरि बिआपै लोभु सुआन ॥
अन्तरि अगनि बाहरि तनु सुआह। गलि पाथर कैसे तरै अथाह ॥
—(गौडी सुखमनी महला

अर्थात्—जो रात दिन लोक-प्रपंच मे लगे रहते हैं। वे मनुष्य-यौनि मे रहते हुए भी कर्त्तव्यों के कारण पशु हैं।

उनका बाहरी भेस तो अच्छा होता है किन्तु अन्दर दुर्वासनाओं और दुर्भावनाओं से भरा है। वे अपनी करतूतो को चाहे जितना छिपाने का यत्न करे किन्तु वे प्रगट हो ही जाती हैं। जो बाह तो बड़े ज्ञानी, ध्यानी और स्नान-पूजा करने वाले हैं किन्तु अन्दर मे लोभ रूपी कुत्ता बैठा रक्खा और जिनके भीतर तो (द्वेप की) अग्नि धधकती है किन्तु बाहर शात दीख पड़ते है। गले में (पाप पत्थर बांधे हुए, ऐसे लोग अथाह संसार सागर से कैसे पार होंगे।

१. मागृध कस्यास्विद्धनम्। (ईशावास्योपनिपद)

२. सा रसना धन धन्न है, मेरी जिन्दुडीए, गुण गावै हरि प्रभु के रे राम।
ते स्रवन भले सोभनीक हरि मेरी जिन्दुडीए, हरि कीरतन सुणहि हरि तेरे राम ॥ विहागडा

'ग्रन्थ साहब' में कुछ ऐसे भी वाक्य समूह हैं जो उपदेश करते समय अनायास बन पड़े हैं अब मजे के साथ कहावतों के तौर पर प्रयुक्त किये जा सकते हैं। इनमें सूत्र
कहावतों द्वारा — वही उपदेश है जोकि मुहावरो व कहावतो मे पाये जाते हैं। यथा.—

१—जब लग दुनिआ रहिए नानक किछु सुणिए किछु कहिए। —धना श्री महला १

अर्थात्—जब तक दुनिया मे रहना है, कुछ न कुछ कहना भी पड़ेगा और सुनना भी पड़ेगा।

२—विखिआ माते भरम भुलाऐ उपदेश कहिऐ किस भाई। —रामकली महला ३

अर्थात्—दुनियां तो विपयों मे डूबी हुई और भ्रम मे भूली पड़ी है। उपदेश किसे किया जाय

३ – इक कहि जाणहि कहिआ बूझहि तेनर सुघड सरूप। —वार सारग महला १

अर्थात्—एक कहना जानता है किन्तु सुघड (चतुर) वह है जो कहे हुए को समझता भी है।

४—परथाइ साखी महापुरख बोलदे साझी सगल जहानै। —वार सोरठ महला ३

अर्थात्—महापुरुष लोग प्रसंगानुसार ऐसी बात कहते हैं जो सारे संसार के काम की होती है

५—अमृत छोडि विखिया लोभाने सेवा करहि विडानी। —श्री राग महला ३

अर्थात्—परमात्मा को छोड़ कर जो सासारिक विषयों में आसक्त हो जाते हैं। वे वास्तव पराये दास हैं।

६—सुखिए कउ सभ पखे सुखिया
रोगी के जाणे सभ रोगी। (सोरठ महला ५)

अर्थात्—जो सुखी हैं उनके जाने सारी दुनियां सुखी है और जो रोगी हैं उनके जाने सा ससार रोगी है।

७—जिउ मन देखहि पर मन तैसा—
जैसी मनसा तैसी दसा—प्रभाती अष्टपदी महला १

अर्थात्—जैसा तुम दूसरों के बारे में सो[illegible] वै[illegible] ही दूसरे तुम्हारे बारे में सोचेंगे। क्योंकि जैसी मनसा (भावनाएँ) होती हैं वैसे ही हाला[illegible] ल लख आक

८—आपुन बुरा मिटावे, ताहि बुरा नि[illegible] भाल थके, वेद कहि[illegible]री बावन अक्षरी महला ५

अर्थात्—अपनी बुराइयों को मिटा[illegible] पाताल हैं। [illegible] [illegible]ोग फटकते भी नहीं।

'श्री आदि गुरु ग्रन्थ साहब' के [illegible] 'नहीं है और [illegible]न्थ' का स्थान है। यह गुरु गोविन्द सिंह जी की रचना है।❀ [illegible]द जिन साज[illegible]

इस ग्रन्थ को विभिन्न विषयों का [illegible] ष्ट और [illegible]हा जा सकता है क्योंकि इसके विषय स्वयम में एक-एक पुस्तक हैं। [illegible] पडे[illegible]नी।

दशम ग्रन्थ के विषयों का विभाजन इस प्[illegible]र [illegible] जाता है—

(१) जापुजी, यह गुरु नानकदेवजी की रचना जपुजी का अनुसरण है। इसमें १९८ छन्द है जिनका पाठ प्रात काल की प्रार्थना मे सिख समाज मे किया जाता है।

(२) अकाल उसततु—(अकाल स्तुति) इसका पाठ भी प्रात काल ही होता है।

(३) विचित्र नाटक—इसके प्रारम्भ में गुरु गोविन्दसिंह जी ने अपना ससार में आने का कारण तथा वश वर्णन किया है। अनन्तर गुरुओं के मिशन और उन युद्धों का वर्णन किया है जिनमें स्वयम गुरु गोविन्दसिंह जी को लड़ना पडा था।

(४)—(५) इन दोनों भागों का नाम चडी चरित है। पहले मे महिसासुर, चड, मु ड, सुंभ, निसुंभ आदि दैत्यों के साथ हुए युद्धों का वर्णन है। दूसरे मे चंडी विपयक अन्य बातें है।

(६) चडी दी वार—यह तीसरी पुस्तक भी चडी (देवियो) सम्बन्धी हैं। इसमे चडी विपयक वार्तायें हैं। यह गुरु गोविन्दसिंहजी की उत्कृष्ट पजावी रचना है।

(७) गिआन प्रवोध—इसमे महाभारत कालीन राजाओं का साकेतिक वर्णन और परमात्म-बोध सम्बन्धी बातें हैं।

(८) चौवीस अवतारों की चौपई—इस भाग मे उन चौवीस अवतारो की कथाये हैं जिनका वर्णन हिन्दू-पुराणों मे काफी विस्तार से किया गया है।

(९) महदी पीर—इस भाग का नाम अव इसी शीर्पक से प्रसिद्ध है हालाकि ग्रन्थ मे नाम नहीं दिया गया है। इसमें कादियानी मुसलमानों की उस कल्पना का वर्णन है जिसमे कहा गया है कि कलगी अवतार के वाद महदी का अवतार होगा।

(१०) ब्रह्मावतार—इसमें, वाल्मीक, व्यास, कश्यप, वच्छ आदि ब्रह्मा के अवतारो की कथा है यह भाग भी इसी नाम से प्रकाश मे आता है। ग्रंथ मे यह नाम नहीं दिया गया है।

(११) रुद्रावतार—इस भाग मे रुद्र अथवा शिवजी के अवतारों का वर्णन है। इस भाग का भी मूल ग्रंथ में नाम नहीं लिखा है किन्तु अव इसी नाम से इस भाग को याद करते हैं।

(१२) शस्त्र नाम माला—इस भाग मे विभिन्न प्रकार के उन हथियारों की नामावली दी गई है जो महाभारत काल से लेकर गुरु जी के समय तक अस्तित्व मे थे।

❀ इसके कुछ स्थलों पर सिख विद्वान यह सन्देह भी प्रकट करते हैं कि वह स्थल वास्तव में दशम गुरु जी के हैं अथवा किन्हीं दरवारियों के।

पाताला पाताल लख आकासा आकास ।
ओडक ओडक भाल थके, वेद कहिंहि इक बात ।

अर्थात् लाखों आकाश और लाखों पाताल हैं। उनका भेद लेने में सब थक गये। परन्तु वेदों ने इस सम्बन्ध में एक बात कही है। अर्थात् "नहीं है ओर। नहीं है छोर"।

चच्चा चारे वेद जिन साजे चारे खान चार जुगान।

अर्थात् चारों युग चारों प्रकार की सृष्टि और चारों वेद ईश्वर ने ही उत्पन्न किये हैं।

चार वेद होय सचियार, पडे गुनी जिन चार विचार।
भाव भगति कर नीच सदावें, नानक तो मोखतर पावें।

अर्थात्—चारों वेद सत्य का कथन करते हैं यदि गुनी लोग उन्हें विचारपूर्वक और अपने को साधारण (नीच) समझकर भाव भगति के साथ तो वह मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

गुरु महिमा का वर्णन करते हुए भी उन्होंने वेदों की महत्ता इस प्रकार स्वीकार की है।

गुरु मुख नाद गुरु मुख वेद गुरुमुख रहा समाई।

ईश्वर की महानता का वर्णन करते हुए जहा उन्होंने वेदों का हवाला दिया है वहा यही कहा है कि उसके बारे में निश्चयात्मक बात तो वेद भी नहीं कह सके हैं। अथवा वेद भी उसका गुण वर्णन करते हुए थक गये हैं इसका अर्थ यह नहीं कि वेद कुछ भी नहीं बल्कि यह अर्थ है कि ईश्वर के सम्बन्ध में जो सबसे अधिक जानकारी रखने वाला वेद है वह भी इसे बताने और उसका गुणगान करने में अपूर्ण रहा है। यही शब्द वेदों के महान् भक्त संत तुलसीदासजी को "नेति नेति कहि वेद पुकारे।" पद में कहने पड़े हैं।

वेदों के लिए जहा गुरुओं ने अच्छे भाव प्रकट किये हैं। वहा पुराणों का भी उन्होंने—आर्यसमाजियों की भाति—बहिष्कार नहीं किया है। अपने उपदेशों में उन्होंने जगह-जगह पौराणिक कथाओं के दृष्टांत दिये हैं। यथा अहंकार की निंदा करते हुए उन्होंने बताया है—

अहमं गरबु कीआ नहीं जानिआ। वेद की विपति पडी पछुतानिआ।
+ × ×
बलि राजा माइआ अहकारी। जगन[1] करे बहु भार अफारी।
× × ×
हरीचंदु दान करे जसु लेवै। बिनु गुर अंतु न पाइआ भेवै।
+ + +
दुरमति हरणाखसु दुराचारी। प्रभु नाराइण गरब प्रहारी।
प्रहलाद उधारे किरपाधारी।
भूलो रावण मगधु अचेति। लूटी लका सीस समेति।
सहसबाहु मधु कीट महि खासा[1]। हरणाखसु[2] ले नखहु बिधासा।
दैंत सघारे बिनु भगति अभिआसा।
जरासंध कालजमुन[3] सघारे। रक्त बीजु कालुनेमु बिदारे।
दैंत सघारि सत निसतारे।

१, जगन = यज्ञ १ महिषासुर। २ हरिणकश्यप ३ कालियवन

मे भी मिलता है। उत्कृष्ट हिन्सावादी—जो नर बलि देने से भी नहीं चूकते थे—ऽ।
छोडकर उन्होंने कबीर पन्थियों, रैदासियों, नामदेव पन्थियों, धन्नाभगतियों रामानन्दियों और
पथियों यहाँ तक कि सूफियों तक से विचार विनिमय किया और फिर इस प्रकार की अमृतवाणी
मत) उनके सामने पेश किया जो सब का साझे का हो सके तथा जो ढोंग ढकोसलों से अ-
भी न हो।

यही कारण है कि गुरु नानक देव ने किसी भी धर्म-सम्प्रदाय की बुराई नहीं की अपितु
बातें उन्हें किसी धर्म-सम्प्रदाय में बुरी जँची उनकी आलोचना भर की। यही काम उनके परवर्ती
अमरदास आदि गुरुओं का रहा।

अन्य सम्प्रदायों की आलोचना

गुरुमत पर लिखने से पहले हमें यह भी आवश्यक जचता है कि गुरु महानुभावों ने किस
सम्प्रदाय की किन बातों को अनुचित समझा। और उनकी आलोचना अथवा
चीनी सुधार की दृष्टि से थी अथवा विनाश की दृष्टि से।

जनेऊ

सब से पहली आलोचना गुरु नानक देव जी द्वारा यज्ञोपवीत की हुई थी। आरम्भिक आ।
उद्देश्य जनेऊ के सम्बन्ध में बहुत उच्च था। वे उसे शुभ कामों का प्रेरक
किन्तु गुरु नानक के समय में जनेऊ पहनने से लोग अपने को उच्च जातीय
झने लग पड़ते थे। इस प्रकार जनेऊ अहमन्यता का प्रतीक बन रहा था।
कहा— दया कपाह सतोष सूत जतु गढी सतु वटु। ऐहु जनेऊ जीव का हइ त पाडे घतु॥ श्लोक महला[1]

अर्थात्—हमें तो दया रूपी कपास के संतोष रूपी सूत की जतों से गढ़ा (गूँथा) हुआ
चाहिए।—वह नहीं जो दूसरों के प्रति हमारे मन में घृणा और अपने लिए माया-लोभ पैदा करता है

पिंडदान

गया में उन्होंने—पंडों के यह कहने पर कि अपने पितरों की शान्ति के लिए पिंडदान तो कर
कहा था – पिंड पत्तल मेरी के सो क्रिया सच्च नाम करतार।
इत्यै उत्यै आगे पीछे यह मेरा आधार॥

अर्थात्, मृतकों के लिये मेरे पास पिंड-पत्तल के नाम पर भगवान का सच्चा
है जो चारों तरफ व्याप्त है। (पितरों का) यह करतार का नाम ही सहारा है।

इससे पहले उन्होंने कुरुक्षेत्र के स्नान-पर्व के समय भी जब कि लोग सूरज को जल-अर्पण
रहे थे। करतारपुर की ओर पानी फेंकना आरम्भ कर दिया था, लोगों के पूछने पर बताया कि मैं अ
खेतों को सींच रहा हूँ। जब लाखों कोस दूर तुम्हारा जल सूर्य को मिल जायगा तो मेरा फेंका हुआ
कुछ ही-सौ मील पर मेरे खेतों में भी पहुँच जायगा।

आरती

जगन्नाथ पुरी में जब उनसे आरती मे शामिल होने के लिए कहा गया तो उन्होंने कहा —
गगन में थाल रवि चन्द्र दीपक बने, तारका मडल जनक मोती।
धूप मलिआन लो पावन चँवरा करे, सगल बनराय फूलन्त जोती।

अर्थात् मेरे ईश्वर की आरती कुदरत करती है। गगन थाल है। उसमें चन्द्र

1 महाभारत ग्रन्थ का पहला नाम जय और फिर भारत था। जब शौनिक ने जो कि बौद्धकाल में हुआ है उ
सम्पादन किया तो उसका नाम महाभारत रख दिया क्योंकि उसने उसमें पर्याप्त सामग्री बढाई थी। देखो
महाभारत मीमासा सी० वी० वैद्य रचित।

गुरु नानक देव योग को बुरा नहीं समझते थे। वे नाथ और जोगियो के जो योग पाखण्ड थे। उन्हे छोडने को कहते थे। किसी मत्स्येन्द्री पन्थ के जोगी से योग पर जो उनकी बाते उनका आभास रामकली राग के महला १ से इस प्रकार चलता है।

सुनि माछिन्द्रा नानक बोले। वसिगत पच करै नहि डोलै।
ऐसी जुगति जोग कहु पाले। आपु तरै सगले कुल तारै।
सो अउधूत ऐसी मति पावै। अहिनिस सुन्न समाधि समावै।
भिखिआ भाइ भगति भै चलै। होवै सुत्रिपत सतोष अमूलै।
धिआन रूप होइ आसण पावै। सत नाम ताडी चित लावै।
आसा माहि निरास वुलाए। निहचउ नानक करते पाए।
दीखिआ दारु भोजन खाइ। दरसन की सोझी पाइ॥

अर्थात्—काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार नाम के जो पाच विकार है। इन्हे वश और मन को कहीं न डुलावे, यदि ऐसी युक्ति का जोग करले तो आप भी तर जाय और अपने कुटुम्ब को निस्तार दे। सच्चा अवधूत वह है जो रात दिन शून्य मे अपने चित्त को लगाये रहता है संसार के आकर्षणों से एक दम अलग होकर आसन मार परमात्मा के ध्यान मे मग्न रहता है।

भिक्षुक भाव की भक्ति पर चलै न कि जोर जबरदस्ती (हठ योग) की भक्ति पर। आत्मा में संतोष और मनमे अमूल्य तृप्ति पैदा होगी।

ध्यान मग्न होकर आसन लगा सत्यनाम का त्राटक चित्त मे साधे। आशा मे उद नता (उन्मन अवस्था) धारण करले। अर्थात् आशा पूर्ति के लिये उतावल न रक्खे। नानक कहते इसमे निश्चय ही परमात्मा की प्राप्ति होगी।

दीक्षा रूपी नशे का भोजन बनावे। अर्थात् गुरु उपदेश की मस्ती मे मस्त रहे। इसी मे शास्त्रों का मर्म पाया जा सकता है।

गुरु नानक ने नकली साधुओं के लिये भी लताड़ा है और तीर्थों की ि *तिलक, छापे, तीर्थ, वेश* भी बतलाई है।

"जे आगे तीरथ ता मलु लहे छप्पडि नासै सगवी मलु लाए।
तीरथपूरा सतिगुरु जो अनु-दिनु हरि हरि नामु धिआए।

× × × ×

इकि कद मूलु चुणि खाहि वण खडि वासा। इकि भगवा भेसु करि फिरहि जोगी सनिआसा।
अन्तरि तृसना बहुतु छादन भोजन की आसा। बिरथा जनमु गवाइ न गिरही न उदासा॥

(सलोक महला

श्राद्ध (मृतक) पितरो की तृप्ति के लिये क्वार के महीने मे हिन्दुओं में जो श्राद्ध की प्रथा है। उसके सम्बन्ध मे गुरु ग्रथ मे ये शब्द हैं—

"आइआ गइआ मुइआ नाउ। पिछै पतल सदिहु काउ।
नानक मनमुख अन्ध पिआर। बाझ गुरु डूबा ससार।" —महला १ वार माझ

अर्थात—आने वाला तो चला गया। उसका नाम तक शेष नहीं। फिर उसकी ग... पत्तल किसे देते हो।

गुरु नानक देव कहते हैं। मनमुखों (निगुरे) [illegible] और [illegible] है कि बिना अच्छे गुरुओं के सारा संसार ही [illegible] रहा है।

दर्शन

संसार में कोई भी ऐसा धर्म नहीं जिसका कोई दार्शनिक [illegible] न हो। [illegible] में अनेकों धर्म-सम्प्रदाय हैं जिनमें एक सिख-सम्प्रदाय भी है। सिख लोग अपने धर्म-सम्प्रदाय [illegible] अथवा गुरुमत कहते हैं। उनका भारत में [illegible] और ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है। उनकी यह धारणा दृढ़ होती जा रही है कि सिख [illegible] है और उनका अपना अलग धर्म-ग्रंथ है।

इस अलगाव (पृथकता) की नींव [illegible] आरंभ हुई। [illegible] आधार गुरु महानुभाव अथवा सिख नेता न होकर हिन्दुओं के पुरोहित और [illegible] हुए। [illegible] ठेका पढ़े, पुरोहितों अथवा ब्राह्मणों के पास था। वे चाहते थे [illegible] पढ़ने लिखने का अधिकारी समझते चाहे जिसे नहीं। वेदान्त के प्रसिद्ध ग्रंथ विचार सागर के रचयिता [illegible] (प्रसिद्ध [illegible]) काशी के पंडितों ने तब पढ़ाया। जब उनने अपनी असली जाति (जाट) [illegible] गुरुओं के शिष्यों में जाट, अरोड़े और ऐसी ही कृषिकार जातियों के शिष्यों [illegible] संस्कृत पंडितों की भाषा थी। जो कि देव नागरी में लिखी जाती थी [illegible] गुरु अंगद जी ने [illegible] लिपि को अपनाया। जो कि आगे गुरुमुखी के नाम से प्रसिद्ध हुई। गुरुओं ने जो भी उपदेश दिये वे सब इसी लिपि में बद्ध किये गये। और शिष्य लोग इसी लिपि में पढ़ने लिखने लग पड़े। इस प्रकार हिंदू के आचार्य अथवा अगुवा ब्राह्मणों से पंजाब के उन लाखों लोगों का अलगाव आरंभ हो गया जो गुरुओं के शिष्य बनने जा रहे थे। यह पहला अलगाव था जो लिपि के माध्यम द्वारा हिंदुओं की उन धर्म पुस्तकों के पठन पाठन में हुआ जो कि संस्कृत भाषा और देव नागरी लिपि में थीं।

दूसरा अलगाव गुरु रामदास जी के समय में तब हुआ जब कि समस्त सिखों के लिये [illegible] रिवाज और मर्यादाओं की बात सामने आई। यह सर्व विदित बात है कि ब्राह्मण लोग शूद्र जातियों [illegible] संस्कार नहीं कराते हैं। गुरु रामदास जी ने चार लावा रची जो आनन्द के नाम से प्रसिद्ध हैं। सिखों [illegible] विवाह संस्कार इन्हीं लावाओं को पढ़कर होने लगे। वैदिक आर्यों में भी चार ही भांवरें (लावा) [illegible] थीं। नामकरण और मृतक संस्कार भी सिखों ने अपने तरीके (किंतु गुरुओं के बनाए अनुसार) निर्धारित कर लिए। इस प्रकार सिखों के हिंदुओं से पृथक होने का यह दूसरा कदम था।

तीसरा अलगाव (पृथकता) पांचवे गुरु अर्जुन देव जी के समय में हुआ, जब उन्होंने अमृत[illegible] के तालाब को तीर्थ का रूप दिया। कुरुक्षेत्र और हरिद्वार जहां पजाब के बच्चे बच्चे के सर्वोपरि तीर्थ थे वहां अब उन पंजाबियों के लिये अमृतसर और तरन तारन के तडाग मुख्य तीर्थ हो गये।

चौथा अलगाव भेषभूषा का गुरु गोविंदसिंह जी के समय में आरंभ हुआ। केशों का [illegible] ऐसा अलगाव है, जो देखते ही बिन कुछ पूछे ताछे बता देता है कि यह व्यक्ति सिख है।

गुरु महानुभाव हिन्दुओं में प्रचलित अनेकों ढोंगों को पसन्द नहीं करते थे। वे हिंदू-धर्म का स[illegible]धन करना चाहते थे किंतु हिंदुओं के पेशवाओं अर्थात् ब्राह्मणों ने उनके इस कार्य में रोडे अटकाये, उन[illegible] मुखालफत की। यही नहीं मुस्लिम शासकों से उन्होंने और उनके प्रमुख अनुयाइयों ने चुगली की। [illegible]

गुरुनानक और अगद से पीछे होने वाले प्रत्येक गुरु को पीढ़ी दर पीढ़ी अपने शिष्यों को इन ब्राह्मण पुरोहितों के संसर्ग मे अलग रखने के प्रयत्न करने पडे।

हमें बिना हीलेहवालेके यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि सिख हिन्दुओंमे एक अलग उपजाति है। वैसेही जैसे कि जैन और बौद्ध हैं। और यह भी सच है कि वे अनेको रिवाजें भी अलग रखते हैं। लेकि वे नस्ल से उतने ही हिंदू हैं जितना कोई भी सनातनी जैन अथवा आर्यसमाजी हिंदू हो सकता है। वे बाते जिनमे सिख हिंदुओं मे अपने को अलग घोषित करते हैं बहुत स्पष्ट हैं।

यथा —

(१) वे बहुदेव उपासक नहीं हैं।

(२) वे अवतारों को ईश्वर नहीं मानते।

(३) उन्होंने अनेको हिन्दू रीतियों को त्यागा हुआ है। यथा श्राद्ध और ग्रहों का पूजन और मुहूर्तों का अभाव।

(४) उन्होंने ब्राह्मण पुरोहितो की गुलामी से मुक्ति पा ली है।

(५) वे जाति पाति व ऊंच नीच के भेदों को पसन्द नहीं करते।

(६) उन्होंने दीक्षा का एक नया नियम अपना लिया है।

(७) उन्होंने अपने अलग तीर्थ और पूजा स्थान बना लिये हैं।

इसका मतलब है कि जहा तक सामाजिक रस्म रिवाज का सम्बन्ध है। सिख पौराणिक हिन्दुओ से काफी अलग हो चुके हैं किन्तु शेष बाते ऐसी हैं जो आज भी उन्हें हिन्दुओं से अलग नहीं कर सकी हैं। जिनमें से मोटी-मोटी यह हैं।

(१) उनके नाम सिंह और कौर पर रक्खे जाते हैं जैसे कि भारत के अन्य क्षत्रिय रखते है।

(२) उनकी दैनिक चर्य्या ठीक वैसी ही है—और गुरुओं ने उसका अत्यन्त क्रियात्मक रूप मे उदाहरण पेश किया था—जैसा कि मनु चाहते थे। "ब्राह्मे मुहूर्ते बुद्धेत".. .. .."

अर्थात् अमृत वेला (ऊषा काल) मे उठो, शौच, स्नान, ध्यान करो और फिर काम मे जुटो।

दांत, केश, और नाखुनों को साफ रक्खो।

सोने से पहले प्रात साय की भांति ही ईश्वर प्रार्थना करो।

(३) राम और कृष्ण उनके भी वैसे ही बुजुर्ग हैं। जैसे अन्य हिन्दुओं के। गुरु गोविन्दसिंह जी ने तो इस बात को बड़े जोर के साथ दुहराया था कि हम राम के पुत्रो—लवकुश की सन्तान हैं।[१]

(४) गुरु नानक से लेकर गुरु गोविन्दसिंह जी तक किसी भी गुरु ने किसी भी अभारतीय (गैर-हिन्दू) मजहब को नही अपनाया। जो कुछ भी उन्होंने कहा, वह अपनी ओर से कहा। अत. जब वेदान्त के मानने वाले भी उतने ही हिन्दू हो सकते हैं। जितने कि मीमासा के मानने वाले। तब गुरु ग्रन्थ साहब के मानने वाले अपने को लाख अलग समझते हुए भी हिन्दुओं से अलग नहीं हैं।

'गुरु ग्रथ' भी हिन्दुओं का अपना वैसा ही निज ग्रन्थ है जैसा गीता, वेद अथवा भागवत हैं। 'ग्रंथ साहब' में ऐसी कोई बात नहीं जो हिन्दुओं के लिये कल्याणकारी न हो।[२]

१ देखो विचित्र नाटक। (२) पजाब और सिन्ध के हिन्दुओं के लिये तो आज भी 'ग्रन्थ साहब' ही वेद है।

(५) सिखों की भाषा भी वही है जो पंजाब के अन्य हिन्दुओं की है।

(६) पंजाब के सिख और हिन्दुओं के नाते रिश्ते भी बराबर होते हैं।

भारत में अनेक सम्प्रदाय है जिनकी अनेकों बातें आपस में नहीं मिलती हैं। ब्रज के ए और बंगाल के हिन्दू के खानपान और रहन-सहन में बड़ा अन्तर है। रस्म-रिवाज में अन्तर है

हम जिस विषय पर लिखने जा रहे थे। उससे इन बातों का कोई गहरा सम्बन्ध नहीं। वश ही यह बीच में आगई।[1]

हम "गुरु-मत-दर्शन" की चर्चा कर रहे हैं उसी पर हमें अब लिखना है।

किन्तु 'गुरु-मत-दर्शन' पर अब तक जितने भी देशी विदेशी विद्वानों ने लिखा है। वे ही रहे है। यह केवल हमारी ही राय नहीं। पंजाबी में 'गुरु-मत-दर्शन' के लेखक प्रोफेसर ने भी इसी बात को पूरे ब्यौरे के साथ खोला है। विदेशी लेखकों में डाक्टर ट्रम्प और मिस्टर मे ने इस ओर लिखने की चेष्टा की है किन्तु वे सिखधर्म (Sikh Religion) पर ही प्रकाश डालने हो सके हैं। सिख विद्वानों में से भी कई ने इस ओर कलम उठाया है किन्तु वे भी दर्शन तक न सिद्धान्तो और आदेशों तक ही चक्कर काटते रहे हैं।

इसका स्पष्ट कारण यह है कि सिख विद्वानों ने जिन्होंने इस ओर लिखने का प्रयत्न कि 'दर्शन' साहित्य का काफी अध्ययन नहीं किया। वास्तव में दर्शन है क्या? जब तक यह न जा जाय तब तक दर्शन का लेखक चाहे वह किसी भी पंथ का दर्शन लिखना चाहे सफल नहीं हो

इसके साथ ही हम जिस किसी भी पंथ या धर्म का दर्शन लिखना चाहें उसके लिये यह होगा कि हम उस पंथ के देश के दार्शनिक-प्रवाह का अध्ययन कर लें। क्या वह व्यक्ति इस्लाम यथार्थ रूप में व्यक्त कर सकेगा, जो अरब के दर्शन-प्रवाह के इतिहास से अनभिज्ञ है।

इस्लाम की दार्शनिकता को अधिक से अधिक सही रूप में व्यक्त करने के लिए अरब धर्मों-मूसाई, ईसाई, इसरायली और जिब्राइली—के दर्शन को जानना आवश्यक है।

इसी भांति हमें सिख-धर्म के दार्शनिक तत्वों अथवा 'गुरु-मत-दर्शन' को जानने के लि में दर्शन उत्तरोत्तर विकसित होने अथवा विभिन्न शाखाओं में फैलने वाले दर्शन का अध्य श्यक होगा।

इन्हीं दो बातों—दर्शन क्या है—भारतीय दर्शन उत्तरोत्तर किस प्रकार बहुमुखी हुआ— हम थोड़ा सा प्रकाश डालना आवश्यक समझते हैं।

दर्शन क्या है?

जो वस्तुएँ हमें आँखों से दिखाई देती है। उनके सम्बन्ध में अधिक से अधिक वाली विद्या को विज्ञान कहा जाता है और जो अदृश्य हैं जिन्हें हम न देख सकते हैं और न कानों को जिनका बोध है। अर्थात् जो इन्द्रियों की बाहर है। उनके सम्बन्ध में जो हमें अनुभूति होती है। उस जानकारी

१ दक्षिण में मामा की लड़की के साथ शादी कर लेते हैं। जौनसार बाबर में बहुपतित्व प्रथा है। बड़े अन्तर के बाद भी दक्षिण के लोग जब हिन्दू हैं तो सिख उनमें कहीं अधिक निकट हैं। आर्य हरि, राम, गोविन्द और गोपाल नामों को ईश्वर वाची नाम नहीं मानते किन्तु गुरुग्रन्थसाहब इन ईश्वर वाची समझता है तब सिख आर्य समाजियों की अपेक्षा कहीं अधिक हिन्दू हैं।

कहा गया है ? वैसे यह नहीं कि दर्शन दृश्य वस्तुओं की वास्तविकता पर भी प्रभाव न डालता हो।

ऐसी चीजे न जिनका पता कानों को है न आँखों को और न छूने में आती हैं। और न स ही समझने में। उनका नाम ईश्वर, जीव और प्रकृति अब तक के विचारकों ने बताया है। इन चीजों के बारे में अधिकतम जानकारी कराने वाली बातें ही दर्शन हैं।

ईश्वर क्या है ? कहाँ है ? उसका रूप रंग कैसा है ? वह क्या करता है ? हमारे साथ उसके सम्बन्ध हैं ? क्या हम उसे देख सकते हैं ? उससे मिल सकते हैं ? हम क्या हैं? जीव है तो जीव क्या है उसका अस्तित्व इस महान् संसार में क्या है। संसार के बनाने में ईश्वर जीव का कितना हाथ है ? क्यों बनाया जाता है ? क्या संसार का नाम ही प्रकृति है और प्रकृति क्या है ? वह जड है अ चेतन है ? आदि प्रश्न हैं ? इन प्रश्नों के उत्तरों और इस सम्बन्ध की मान्यताओं का नाम ही दर्शन है

मनुष्य जीवन का अन्तिम लक्ष्य क्या है ? यह प्रश्न और इसका उत्तर दर्शन का फैलाव करते है दर्शन का कतई फैलाव नहीं होता यदि मनुष्य के साथ मोक्ष का मोह दार्शनिक न बाँध देते।

ऐसे दार्शनिक तो अनेकों हुए हैं जिन्होंने कह दिया है कि ईश्वर नाम का कोई तत्त्व नहीं ? ऐसे दार्शनिक कार्लमार्क्स से पहले एकाध ही हुए हैं। जिन्होंने मनुष्य जीवन का सर्वोत्तम लक्ष्य मोक्ष बतलाया हो।

संसार में दर्शन ग्रंथ तो अनेक हैं। किन्तु दर्शन के केवल दो ही अंग है। (१) भौतिक (२) आध्यात्मिक। पूर्व ने आध्यात्मिक और पश्चिम ने भौतिक दर्शन के विकास में उन्नति की है।

दर्शन के सम्बन्ध में यह हमारी अति लघु परिभाषा है। किन्तु विषय को समझ लेने के लिये यह काफी ही है।

आर्यों के आदि ग्रंथ ऋग्वेद में जो दार्शनिक चर्चा है, वही भारतीय दर्शन का आदि रूप है। आदिम आर्य सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि और वरुण (बादलों) के प्रति बडे कृतज्ञ थे। इनसे उन्हें बहुत कुछ मिलता था और आजतक सारी दुनिया को मिलता है। सूर्य से प्रकाश, जीवन-दायिनी विभिन्न ऋतुएँ चन्द्रमा से शीतलता और अमृतमयी वनस्पतियाँ, वायु से प्राण (श्वास प्रश्वास) अग्नि से स्वास्थ्य, हिंसक जीवों से रक्षा, और रात्रि में प्रकाश वरुण अथवा बादलों से पानी। इसलिये वे इन्हें अपने जीवन का आधार होने के कारण अपना सबसे अधिक हितू समझते थे और इसी कारण उन्होंने इनकी प्रशंसा में अनेकों छन्द और गीत बनाये। जिन्हें वे अनेक प्रसन्नता के अवसरों पर बडे प्रेम से गाते थे। इन्हें वे देवता अर्थात् दिव्य-गुणों वाला कहकर पुकारते थे।

भारतीय दर्शन का इतिहास

कालान्तर में इन देवताओं के प्रति अधिक आकर्षण ने इन्हें उनके सम्बन्ध में जानने की उत्कंठा पैदा की। इस उत्कंठा और जिज्ञासा के उत्तर जो उन्हें बहुत कुछ सोचने और विचारने के बाद मिले वही वेदों का दर्शन भाग है।

वेदों ने जितना दार्शनिक ज्ञान जगत को दिया। उसका सार इतना है। (१) सबसे महान सत्ता ईश्वर है। जो सत, चित और आनन्दपूर्ण है। ईश्वर के बाद जीव अथवा आत्मा है। जो सतचित है। तीसरी सत्ता प्रकृति अथवा माया है जो केवल सत है।

सत क्या है ? इसको समझाने के लिये वेद ने कहा है—हमारे जो कान हैं। इनमें जो सुनने वाला

है। वही सत है। क्योंकि कान तो सुनने का स्थान (गोलक) है। सुनने वाला तो कोई और ही है। मे जो देखने वाला है वही सत है।

यह सत सजग है। आँख न रखते हुए भी देखता है। कान न रहते हुए भी सुनता है। चेतन है।

जीव भी सत् चित है। वह आत्मा है। जब वह समझ लेता है कि मैं वही हूँ जो यह स- है। तब वह परमात्म रूप हो जाता है। वेदों ने इस सम्बन्ध मे जो कुछ कहा, उपनिषदो ने उसकी - करदी। व्याख्या मे असल विषय बढ़ जाता है। इस सम्बन्ध की जानकारी भी बढ़ी। अत .. पहुँचा जा सकता है या नहीं ? और कौन सी दीवार है ? जो हमे ईश्वर से दूर रख रही है। इ निपटारा उपनिषदों मे है।

षट-शास्त्र जो षड-दर्शन के नाम से मशहूर है और जिनके नाम वेदांत, साख्य, न्याय, और मीमांसा है। उन्होंने एक-एक विषय को लेकर दर्शन का विस्तार किया है।

वेदात ईश्वर और जीव दोनों को एक मानता है। गुरु गोबिन्दसिंह जी ने भी कहा " "द्वैते एक रूप है गयो' (दशम ग्रथ) वे एक हैं। यह वह बड़ी गहन दलीलों से सिद्ध करता है। वह को स्वप्नवत मानता है। वह कहता है। भ्रम का नाम संसार है। 'योग' परमात्मा के मिलने का - साधन चित्त की वृत्तियों को काबू मे करना बताता है और चित्त की प्रवृति काबू मे कैसे होती है योग का मुख्य विषय है।

'मीमासा' दर्शन मे उन यज्ञ कर्मों पर विचार किया है। जिनके करने से मनुष्य का हित हो अथवा स्वर्ग-सुख प्राप्त हो सकता है। 'सांख्य' के अर्थ गिनती के होते हैं। उसने २५ तत्वों पर किया है। इस पच्चीस तत्वों में ५ ज्ञानेन्द्रिय और ५ कर्मेन्द्रिय तथा ग्यारहवा मन भी शामिल है कैसे बनती हैं ? आदि पर इसमें विचार-किया गया है।

वैशेषिक-शास्त्र मे परमाणुवाद को महत्व दिया है। संसार की रचना मे वह मुख्य मानता है।

'न्याय' मे ईश्वर को तर्कों दलीलों से सिद्ध किया गया है। न्याय का अर्थ ही तर्क (दलील है। न्याय कहता है कि ससार परिमाणुओं (जर्रो) से ही बनता है। ठीक वैसे ही जैसे कि मिट्टी बनते है। किन्तु बर्तनों को बनानेवाला जैसे कुम्हार है। उसी भाति परिमाणुओ से ससार को वाला भी कोई है और वही परमेश्वर है।

दर्शन का यह प्रवाह जिसका हमने ऊपर वर्णन किया है। सीधा तीर की भांति नहीं है। जलधारा अथवा नदी के पथ के समान है, जो अपने सामने आने वाली ऊँची-नीची, अथवा जमीन के आने पर बनाती है।

इस धारा को सबसे पहले शैव सिद्धान्तों ने अवरोधित किया। पुन. चारवाक, जैन सिद्धान्तों ने। चारवाक लोग मानते थे। ईश्वर नाम की कोई सत्ता नहीं। वह अदृश्य मे कोई नहीं करते थे। चारवाकों का कहना था, न कोई आत्मा है और न परमात्मा। यह सारी सृ महाभूतों—पृथ्वी, जल, तेज और वायु से बनती है। इन चारों के विभिन्न तरीकों और मिलने से विभिन्न प्रकार के प्राणी उत्पन्न हो जाते है।

बौद्ध लोग भी चारवाको की भाति आत्मा परमात्मा को नहीं मानते थे। वे मन को

मानते थे। सृष्टि के सम्बन्ध मे उनका कहना था कि आलय विज्ञान (साइंस के घर) से सारी रचना है। आलय विज्ञान की भांति ही वे प्रवृत्ति विज्ञान को महत्व देते हैं। उनका कहना है कि आलय वि की तरगो से जड़ सृष्टि और प्रवृत्ति विज्ञान की तरगों से चेतन सृष्टि बनती है।

जैन लोग आत्मा की सत्ता को स्वीकार करते हैं। उनके विचार से मोक्ष प्राप्त आत्मा ही ' . है। वे सृष्टि को पुद्गलो (सूक्ष्म जर्रों) से बनी मानते है। उनके मत के अनुसार जर्रों मे रूप, रस – स्पर्श तीन गुण होते है। आत्मा और अणुओं के संयोग से वे सृष्टि का होना मानते हैं।

वैदिक दर्शन की जलधारा के सामने यह अवरोधन दर्शन-पहाड़ियाँ जब आईं तो उसका रूप हुआ जो पहाडों से नदियो का होता हैं। या तो उसके अनेक प्रवाह हो जाते है या मुड़ना पड़ता

हिन्दुओं के जो छ दर्शन—वेदात, योग, मीमासा आदि है वे एक नदी की विभिन्न धाराये जिनका आरम्भ मे (मूल) एक था और अत मे भी एक है।

छ हो दर्शनो मे अलग-अलग बातों पर विचार किया गया है किन्तु छ हों के अध्ययन से एक निष्कर्ष बनता है।

'वेदान्त' ने जिसका अर्थ वेदों का अंतिम भाग होता है। आत्मा और परमात्मा की एकता विचार किया है। 'मीमांसा' ने जिसका अर्थ विचार अथवा मनन करना होता है। वेदों के उस क ' का पर विचार किया है, जिससे मनुष्य जीवन सफल होता है। तथा मोक्ष मिलती है। 'योग' दर्शन ने तरीकों पर प्रकाश डाला है, जिनसे जीव (आत्मा) परमात्मा को प्राप्त करले। 'न्याय' ने दलीलों द्व ई‌श्वर की सत्ता को प्रमाणित किया है। 'वैशेषिक' के परिमाणुवाद को स्पष्ट किया है, उसने बताया है, कि सृष्टि परिमाणुओं से बनती है वे परिमाणु कैसे हैं? उनसे सृष्टि कैसे बनती है? यह वैशेषिक मुख्य विषय है। 'साख्य' जिसके कि अर्थ संख्या के होते है-ने बताया है कि यह सारा पसारा २५ तत्व पर अवलम्बित हैं। जिनमे पाच ज्ञानेन्द्रिय पाच कर्मेन्द्रिय, ग्यारहवा मन और पृथ्वी, जल, अ ।२ आदि पाच महाभूत शामिल है।

इन छ हों शास्त्रों का सगम होता है, श्रीमद्‌भगवत गीता मे आकर। वह मुख्यत षडदर्शन का सार है।

दर्शन एक बडा गहन विषय है। इसे समझने के लिये जहा बड़ी बुद्धि की आवश्यकता है। वहां समझाने के लिये भी बुद्धि चाहिये। इसलिये यह ज्ञान विद्वानो तक ही सीमित रह गया। उधर बौद्ध और जैन धर्म बराबर बढ़ने लगे क्योंकि उनके अनुयायी बजाय दार्शनिक बातों के महात्मा बुद्ध और भगवान महावीर में अधिक आस्था रखते थे। इनमे कोई सन्देह भी नहीं कि बौद्ध, जैन प्रवाहों ने वैदिक धर्म और वैदिक दर्शन को पीछे धकेल दिया था। हर नगर और हर गॉव में बुद्ध और महावीर की पूजा होने लग पडी थी।

तब बुद्ध और महावीर के मुकाबिले हिन्दू पुरोहितो ने भगवान राम और कृष्ण को पूजा के लिये खड़ा किया और कहा गया कि राम और कृष्ण परमात्मा की एक शक्ति विष्णु के अवतार हैं। बस ईश्वर के अवतार लेने की बात यहाँ से आरम्भ हुई।

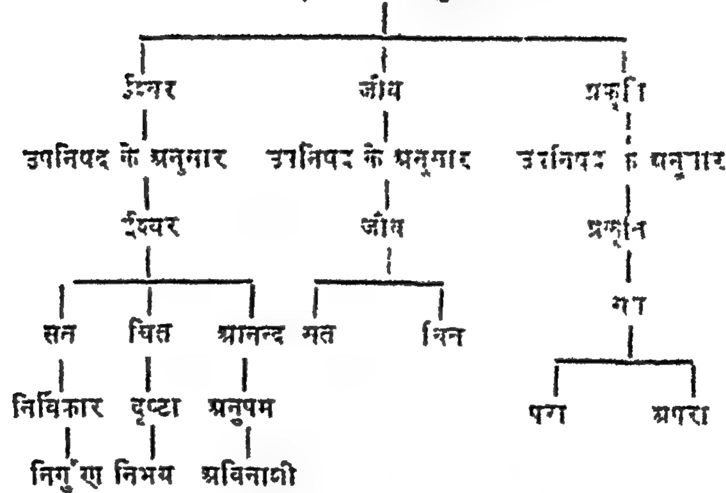
इस कल्पना का प्रचार किया गया पुराणों द्वारा। इस उपासना पद्धति का नाम सगुण उपासना रक्खा गया। यहा से हिन्दू दर्शन की फिर दो धाराये हो गईं। एक सगुण उपासकों की और दूसरी निरगुण उपासकों की।

भारतवर्ष में इस समय हिन्दुओं के जितने भी सम्प्रदाय हैं, वे इन्हीं दो मुख्य धाराओं हुए हैं। दर्शन की यह दो धारायें "संतकाल" में जो ईसा की दसवीं सदी से अठारहवीं सदी तक और भी बलवती हुईं।

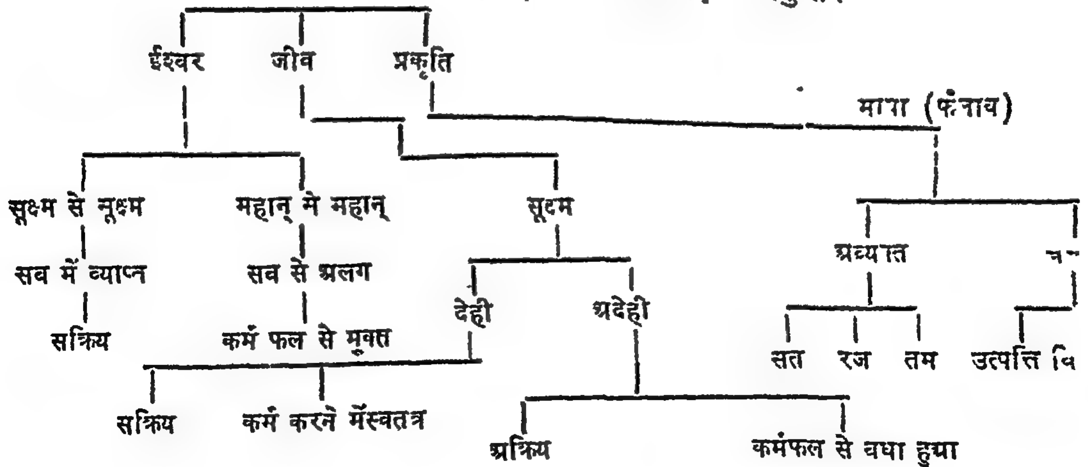
अब तक के इस विवरण का नकशा इस भांति दिया जा सकता है।

अस्तित्व और गुण

(१) वेद के अनुसार

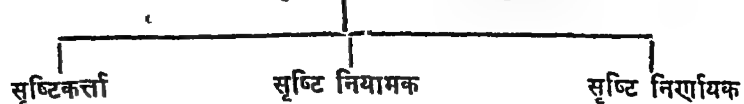


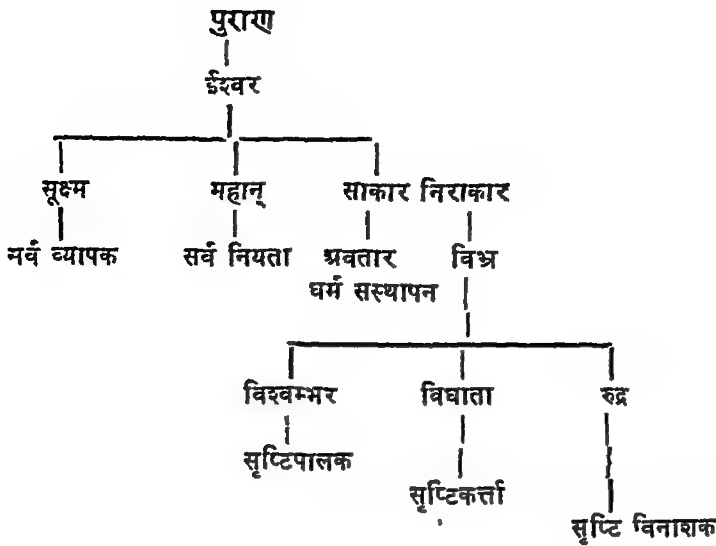
(२) वेद । उपनिषद के अनुसार



(३) ईश्वर के कार्य

वेद+उपनिषद्+षड-शास्त्र के अनुसार





संतकाल में सगुण धारा के प्रवाहकों में बंगाल के चैतन्य, जयदेव, महाराष्ट्र के रामदास तुका॰ उत्तर-प्रदेश के सूर, तुलसी, दक्षिण के रामानुज और माधव वल्लभ, निम्बार्काचार्य राजस्थान की ॰ बाई। निरगुण पंथ के प्रवाहक कबीर, रैदास, नामदेव और गुरु नानक देव हैं। इनमें सगुण धारा ॰॰ और निरगुण धारा वेद उपनिषदों के अधिक निकट पड़ती है।

भारतीय दर्शन का यह संक्षिप्त सा इतिहास है। इस प्रकरण को समाप्त करने से पहले हम यह और बता दें कि संत काल की यह धारा ईश्वर के सम्बन्ध में ही अलग हुई है। प्रकृति और जीव बारे में निरगुणोपासक संतों ने अधिक विचार नहीं किया है। हां, उन्होंने ईश्वर प्राप्ति के कुछ सरल मार्ग अवश्य नियत किये हैं। इस प्रकार निर्गुणी संतों का दर्शन ऐसे ढंग का बन जाता है जो ॰॰ भी है और वैदिक भी। अगले पृष्ठों में हम इसी दृष्टि से गुरमत पर विचार करेंगे।

सृष्टि-सृजन

सृष्टि की रचना किस प्रकार हुई ? इस प्रश्न के उत्तर में गुरुओं ने कहा है —

साचे ते पवना भया पवनै ते जलहोइ।" —श्री राग महला १ घरु १
जल ते त्रिभुवणु साजिआ घट घट जोति समोइ॥

अर्थात्—उस सत (परमात्मा) से पवन हुआ। पवन से जल हुआ। जल से तीनों लोकों ॰ रचना की। प्रत्येक घट (घटक, इकाई) में उसी का प्रकाश संजोया हुआ है।

और

राती रुती थिती वार। पवण पाणी अगनी पाताल।
तिसु विचि धरती थापि रखी धरम साल॥
तिसु विचि जीअ जुगति के रंग।
तिनके नाम अनेक अनन्त॥

अर्थात्—तिथि, दिन, ऋतु (सूर्य्य, चन्द्र) हवा, पानी, अग्नि और पाताल आदि लोक व उसने इनके मध्य पृथ्वी की स्थापना की। पृथ्वी के बीच में अनेकों प्रकार के जीव बनाये हैं। जो गिनत हैं और जिनके नाम (प्रकार) भी अनेकों हैं। और वास्तविक बात तो यह है कि—

"जल, थल, महीअल पूरिआ स्वामी सिरजन हार।
अनेक भाति होइ पसरिआ नानक एक कार॥ —गौडी थिती महला ५

अर्थात्—अपनी इस रचना मे वह सृजनहार स्वयम पूर रहा (व्याप्त) है। पृथ्वी पर और क्या थल सभी मे वह एक ओंकार (परमात्मा) अनेक भाति से पसरा (फैला) हुआ है। और क्यों ? वह तो.—

"आपै रसिआ आपुहि रस आपै रावणहारु।
आपै होवै चोलडा आपै सेज भतारु॥
रगी रत्ता मेरा साहिबु रवि रहिआ भरपूरि।—श्री राग महला ३ घरु ३

अर्थात्—आप ही रस है और आप ही उन रसों का भोक्ता है। अथवा आप ही उन पैदा करने वाला है ?

आप ही काया (शरीर) हो जाता है और आपही उस काया कामनी के साथ रमण करने भरतार (जीव) बन बैठता है। वह रगीला अर्थात् अनेक दृश्य दिखाने वाला है। और जगत भी कुछ है वह उसमे पूर्ण रूपेण रमा हुआ है।

इसी बात को ईशोपनिषद् कार ने इस भांति कहा था।

"ईशावास्यमिद सर्व यत्किच जगत्याम् जगत।"

अर्थात्—संसार मे जो भी कुछ है वह सब ईश्वर से आच्छादित है।

"साचे ते पवना भया, पवनै ते जल होय।

सृष्टि रचना के सम्बन्ध मे प्राय यही मत उपनिषद् और दर्शनों का भी है। 'गुरु-मत' 'साचे' (परमात्मा) से प्रथम ही पवन का होना मानते है। तैतिरीयोपनिषद् कार प्रथम आकाश और पवन का होना कहता है। यथाः—"आत्मन आकाश सभूत। आकाशाद्वायु। मायोरग्नि। अग्नेर अद्भ्य. पृथ्वी। पृथिव्या ओषधय।"—अर्थात् उस आत्मन (परमात्मा) से आकाश हुआ। आकाश वायु हुई। वायु से अग्नि हुई। अग्नि से जल हुआ और जल से पृथ्वी हुई।

चूंकि आकाश अगतिशील अदृश्य और अविनष्ट है शायद इसीलिये गुरुओ ने उसकी पर प्रकाश नहीं डाला। वैसे एक स्थान पर यह कहा अवश्य है कि "पउण पाणी सुन्ने ते साजे।" शून्य (आकाश) का प्रयोग सत साहित्य मे ईश्वर के लिये भी है।

सृष्टि कब रची गई। इसका विकास वादियों—भौतिक शास्त्र के जानने वालों ने विस्त वर्णन किया है। हिन्दू ज्योतिष दर्शन ने एक लम्बा समय बताया है।[१] किन्तु गुरु नानक देव और परवर्ती गुरुओं ने इस सम्बन्ध मे जो कुछ कहा है—वह इस प्रकार है —

'कवणु सु वेला वखत कवणु कवणु थिति कवणु वारु।
कवणि सि रुती माहु कवणु जितु होआ आकारु।
वेल न पाइआ पडिती जि होवै लेखु पुराणु।
वखतु न पाइओ कादिआ जि लिखनि कुराणु।

२ लगभग पौने दो अरब वर्ष।

तिथि वारु न जोगी जाणै रुति माहु न कोई ।
जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई । (जपुजी)

अर्थात्—किस समय, किस महीने, किस ऋतु और किस तिथि वार में सृष्टि रची गई । न त उसका पता पंडितों को है न काजियों को, क्योंकि पुराण और कुराण जिन्हे कि लिखते और पढ़ते हैं इस सम्बन्ध मे कुछ नहीं बताते । योगियों को भी सृष्टि रचना के काल का पता नहीं है । इसे तो सही रूप वही जानता है जिसने इसे रचा है ।

और यह प्रश्न तो ऐसा ही है जैसे कि कोई पुत्र से उसके पिता के जन्म के तिथि मुहूर्त्त पूछे ।[1] जिसने इसे रचा है वही इसके रचना काल को जानता है और तो केवल विचार (अन्दाज) ही कर सकते हैं ।[2] यही बात गीता में श्री भगवान कृष्ण ने भी कही थी । यथा—

"न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं नमहर्षय ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणा च सर्वश ।।" (अध्याय १० श्लोक २)

अर्थात्—मेरी (ईश्वर) की उत्पत्ति (रचना) के सम्बन्ध मे देवता और ऋषि मुनि भी नहीं जानते क्योंकि देवता और ऋषि मुनि मुझ (परमात्मा) से पीछे ही तो पैदा हुए हैं, उन सबका आदि पुरुष तो मैं (परमात्मा) ही हूँ ।

सृष्टि की उत्पत्ति कहाँ से होती है और फिर प्रलय काल मे यह सब भौतिक पदार्थ कहाँ चले जाते हैं ? इस सम्बन्ध मे 'गुरुमत' इस प्रकार है.—

"उतपति परलउ सबदे होवै । सबदे ही फिरि ओपति होवै । (माझ महला ३)

अर्थात्—उत्पत्ति और प्रलय शब्द (परमात्मा) से होती हैं । और प्रलय और उत्पत्ति के बीच के समय मे सभी भूत उसी परमात्मा मे आरोपित रहते हैं ।

"इकस ते होइउ अनंता । नानक ऐकस माहि समाये जीउ ।"—माझ अष्टपदी ५ महला ५

जिस प्रकार उत्पत्ति काल मे वह एक से अनेक होता है । उसी भाति यह सब कुछ प्रलय काल मे उस एक (परमात्मा) मे ही समा जाता है ।

ईश्वर के सम्बन्ध में

सृष्टि प्रकरण मे हमने जो 'गुरुमत' के सृष्टि रचना सम्बन्धी हवाले दिये हैं उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह संसार जो हमारे सामने है । यों ही नहीं बन गया । इसका भी बनाने वाला है । और वह बनाने वाला कोई साधारण पुरुष नहीं अपितु मानव सृष्टि के प्रथम जनक ब्रह्मा का भी बनाने वाला है । विद्युत से अधिक गतिवान मन को भी उसी ने बनाया है । उसी ने ऊँचे से ऊँचे पहाड़ों को बनाया है और उसी ने (सूर्य चन्द्र बनाकर) युगों का निर्माण किया है । संसार के प्रथम ज्ञान-ग्रन्थ वेदों को भी उसी ने बनाया है ।[3]

१. 'पिता का जनम कि जाने पूत । सगल परोई अपने सूत ।
जिसकी सिरठी सो करणै हार । अवर न बूझ करत विचारे । (गौरी सुखमनी महला ५)

२. लगभग पौने दो अरब वर्ष ।

३ "ओ ओंकार ब्रह्मा उतपति । ओ ओंकार कीआ जिनि चिति ।।
ओ ओंकार सैल जुग भये । ओ ओंकार वेद निरमये । (रामकली महला ?)

उस महान् निर्माता का नाम क्या है ? इसका उत्तर प्रत्येक काल में भारत के ऋषियों, और धर्म संस्थापकों की ओर से यही दिया गया है कि उसका नाम "ओ" है।

नाम

भारत के पौराणिकों ने "ॐ" शैवों ने ॐकार, जैनियों ने 'ॐ', आर्यसमाजियों ने 'ओ३म' कह के पुकारा और लिखा है गुरु नानक देव ने कहा यह '१ ओं' चूंकि वह सृष्टि के आदि से है। युगों के आदि से है। अब भी है। आगे भी रहेगा। अतः उसका 'सत' है।[1]

अत्यन्त आदिम युग में जब कि ज्ञान का प्रवाह आरम्भ ही हुआ था। ऋग्वेद के एक ऋषि ने यही कहा था—एक सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" अर्थात्—उस सत को जो एक ही है—विद्वान लोग उसे अनेक नामों से पुकारते है। (ऋ० १, ३, ६४, ४६ और १०-११४-५) अनेक नामों से पुकारने का कारण 'सत' अथवा 'एकोंकार' के वे गुण और कृपायें है जिनका कि मनुष्य-समाज आभारी है। और वह किसी भी युग में उऋण नहीं हो सका है और न हो सकता है। वेद ने जहाँ उसे ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, अमृत, भव. स्व जनः तप. और मह' आदि विशेषणों से याद किया तथा जहाँ उसे इन्द्र, वरुण, वायु, रुद्र आदित्य संज्ञायें दी। वहाँ पुराणों ने उसे विष्णु, नारायण, विश्वम्भर, ... त्रिलोकी नाथ, असुर निकन्दन, हरि, आदि नामों से पुकारा। भक्तिकाल में राम, कृष्ण, दामोदर माधव, गोविन्द, गोपाल, दीन दयाल, कृपानिधान आदि मधुर नामों से उसे स्मरण किया जाने ...

गुरु नानक और उनके परवर्ती गुरुओं ने अपने समय के जन साधारण में प्रचलित सभी (... बोधक) नामों को अपना लिया। उन्हीं विभिन्न नामों से हरि-स्मरण की प्रणाली डाली उसके अलावा मुसलमानों द्वारा प्रचलित अल्लाह और रब आदि नामों को भी गुरु-ग्रंथ साहब में स्थान दिया।

'गुरु-ग्रथ साहिब' और 'दसम् ग्रथ' में परमात्मा के जो नाम आते हैं उनकी सूची इस ... सकती है—

"एकोंकार, सत, अकाल पुरुष, हुक्मी, साहिब, दातार, निरंजन, गुणनिधान, करता, ... गोविन्द, नाथ, सिरजनहार, जगदीश, राम, सँवारनहार, हरि, माधव, अगमागम, अपारा, दु... रणहार, ठाकुर, पारब्रह्म, बे अन्त, (अनन्त), भगवन्त, निरभय, देवणहार, अविनाशी, ... अन्तरजामी, विधाता, करतार, सच्चा पातिसाह, मुरारी, सत गुरु, कीता, दयाल, अमृत, मिहरवान, परवरदगार, करण कारणस्वामी, समदरसी, कृपाल, अल्लहु, अगम, अपार, अलख, करीम, कबीर, कबिरा, रहीम, अगोचर, अभेवा, दीन दयाल, गोपाल, मधुसूदन, कृष्ण, केशव, गहिर गंभीर, दुःख भंजन, निधान, अमोले, निरभय, निर्वैर, अथाह, अतोले, अकाल-मूरति, ... स्वयम्, ओनमो, भगवन्त, गुसाईं, जगन्नाथ, जगजीवन, भवभंजन, हृषीकेश, हरिमुकन्द, ... नरहरि, वासुदेव, प्रीतम (आदि ग्रथ)[3]

१. आदि सचु जुगदि सचु। है भी सचु नानक होसी भी सचु। (जपु जी)

२ लक्ष्मी नारायण, मनोहर, वासुदेव, निरंजन, भमसा कत, अविनाशी, अविगत, अगोचर, श्री रंग, वैकु... मच्छ, कच्छप, कर्म, केशव, निराहार, निर्वैर, चतुर्भुज, सांवला, बनमाली, कमल नयन, पीताम्बर, ... सारगधर, नीछला, निह केवल, धनजय, पतित पावन, दुःख भजन, भव खडन, जोति स्वरूप, कान्हा, गोविंद, जगदीश, नारायण, चिन्तामणि, श्रीराम। (आदि ग्रंथ)

३ पीछे से सिखों में परमात्मा का एक और नाम प्रचलित हुआ। "वाहि गुरु".

भगवन्त, भगवान, विष्णु, विश्वम्भर, ब्रह्म, चक्रमनि, चक्रभरने, पीताम्बर धारी, गोपीनाथ रघुराय, सारंगधर, सॉवल, श्याम, अकाल, पुरुष वासुदेव मोहन, अच्युत ।

इन नामों में कुछ तो परमात्मा की सर्व व्यापकता को प्रकट करने वाले हैं—जैसे कि, अगम अगोचर, अपरम्पार, पारब्रह्म, अलख, निरजन, निरंकार आदि कुछ उनकी दयालुता के बोधक हैं जैसे दीनदयाल, कृपानिधान, दातार, बचावनहार, पालनहार, मिरजनहार। कुछ नाम भक्तों ने उसके प्र अपना अगाध प्रेम जताने के लिये रख लिये हैं। यथा पीउ (परमपिता) प्रीतम, मीत आदि। बाकी वे नाम हैं जो हिन्दुओं के अवतारों के थे,किन्तु व्यवहार में परमात्मा को याद करने के लिये ही बरते जाते रहे हैं। यथा:-विष्णु, नारायण, नरहरि, राम, कृष्ण, रघुनाथ, जगन्नाथ, दामोदर मुरारे, गोपाल, गिरधर, गोवर्धनधारी आदि आदि। कुछ नाम ईश्वर सम्बन्धी मुसलमानों द्वारा पुकारे जाने वाले भी है। उदाहरण स्वरूप -खुदा, मालिक, अलाहि, करीम, रहीम आदि, इन नामों का प्रचलन उस समय के आम पंजाबियों में हो गया था।

गुरु ग्रंथ साहिब में ईश्वर के समस्त नामों में सबसे अधिक प्रयोग 'हरि' का हुआ है। बहुत कम पृष्ठ हैं। जिनमें हरि का नाम न आया हो और अनेकों पृष्ठों की लाइन की लाइन 'हरिजीउ' से ओत प्रोत हैं।

'वाहि गुरु' नाम ग्रंथ वाणी में कहीं नहीं है। वैसे यह सिखों में प्रयोग खूब होता है। वास्तव में तो यह एक उल्लासपूर्ण नारा है ठीक वैसा ही जैसा कि "जय हो भगवन्" "धन्य हो परमात्मा" अथवा "सुभान अल्लाह" और "वन्डर फुल गौड" हैं।

वह कैसा है? यह सिद्ध हो जाने अथवा मान लेने पर कि परमात्मा "है" सदैव से यह प्रश्न उठता रहा है कि फिर वह है कैसा? इस सम्बन्ध में उपनिषदों ने कहा है —

"वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् से महान् है।"

अणो रणीयानम् महतो महीयानम्—कठोपनिषद्

"वह एक से अनेक हुआ है? यह संसार उसकी अनेकता का ही रूप है।

एकोऽहम् बहुस्यामि प्रजायेय । वेदान्त । तदैक्षत बहुस्याम प्रजायेति—छान्दोग्य

"उसका कोई स्थूल रूप (शरीर) नहीं। किन्तु वह देखता है, चलता है और सुनता है।"[1]

1 अपाणि पादो जवनो गृहीता।—श्वेताश्वेतरो०

"वह सबमें व्याप्त है और सबसे अलग भी है।"

बिनु पद चले सुने बिनु काना—रामायण

आसीनो दूर व्रजति शयानो याति सर्वत ।—कठोपनिषद्

"वह जाना नहीं जाता अपितु महसूस (अनुभव) किया जाता है।"

नैव वाचा तत्त्वभावे प्रसीददति—कठोपनिषद्

गुरु महानुभावों ने इन्हीं बातों पर इस प्रकार प्रकाश डाला है :—

"बीज बीज देखउ बहु प्रकारा। फल पाके ते एकोंकारा।

घटक बीज महि रवि रहिउ, जाके तीन लोक विस्तार।" (गौडी बावन)

अर्थात्—वह महान् इतना है कि तीनों लोकों में उसका विस्तार है और सूक्ष्म इतना है कि बीज मे भी समाया हुआ है। यही क्यों वह तो—

"सागर में महि बूँद बूँद महि सागर। (रामकली महला १)

की भांति सूक्ष्म होते हुए महान् में और महान् होते हुए सूक्ष्म में व्याप्त है।

एकसु ते सब रूप हहि रंगा।

पवणु पाणि वैसंतरु सभि सहलंगा।

भिन्न भिन्न वेखै हरि प्रभु रंगा।

एक अचरज एको है सोई।

गुरमुखि विचारे विरला कोई—(गौडी गुआरो महला ३ अष्ट)

अर्थात्—वह एक है उसीसे यह रंग बिरंगा संसार है। पवन, पानी और अग्नि जो भी दिखाई देते है सब उसी (एक) प्रभु के रंग हैं।

"करण कारण एकु ओही जिनि कीआ आकार।" (श्रीराग महला ५)

वही करता है। तत्व भी वही है।

एको एकु आपि इकु एकै एकै है सगला पासारे।

जपि जपि होए सगल साध जन एकु नामु धिआइ बहुतु उधारे।

अनिक विसथार एक ते भए।—(सुखमनी)—आसा महला ५

वह केवल एक है उस एक ने अपने एकाकी पन से एक एक करके इतना सारा वि॰ दिया है।

वह एक है और एक से अनेक हो गया है। (आपहि एक आपहि अनेक) —सुखमनी।

३— रूप न रेखा मिति नहीं कीमत सबद भेद पतियाइया (राग मारू सोलहे महला १)

तिस रूप न रेखा वरन न कोई गुरमति आप बुझावणिया (राग माझ महला ३)

तिस रूप न रेखिया घट घट देखिया गुर मुख अलख लखावणिया। (राग महला ४ अष्टपदी)

अर्थात्—उसका कोई भी न तो रूप (स्थूल) है और न रंग और वरण।

"सहस तव नैन नन नैन हहि तोहि कउ सहस नना एकु तोही।

सहस पद विमल नन एक पद गंध बिनु सहस तव गंध इव चलत मोही।" (राग धना श्री महला

अर्थात्—अनेत्री होते हुए भी तेरे सहस्त्र नेत्र है। बिना पाँव वाला होते हुए भी तेरे ९ है। निर्गन्ध होते हुए भी हजार नासिकाओं से सूंघने वाला है।

४—नाना रूप धरे धरे बहु रंगी सभते रहे निआरा।—राग बिहागड़ा म॰ ९

सो अंतरि सो बाहरि अनंत। घटि घटि बिआपि रहा भगवंत॥

धरनि माहि आकास पइआल। सरब लोक पूरन प्रतपाल॥—सुखमनी

अर्थात्—वह अनन्त परमात्मा बाहर भीतर सब जगह व्याप्त है। पृथ्वी, आकाश औ लोक पाताल आदि हैं—उन सब मे वह घट घट वासी प्रभु समाया हुआ है। और भी.—

नगर महि आप बाहरि फुनि आपन,

प्रभु मेरे को सगल बसेरा।

अपनी माया आप पसारी आप ही देखन हारा।

नाना रूप धरे बहु रंगी सभते रहे निआरा॥

सभ तै नेर सभते दूरि। राग बिहागड़ा महला ९

नानक आपि अलिपत रहिआ भरि पूर। (सुखमनी)

"कथना कथी न आवै तोटि। कथि कथि कथी कोटि कोटि।"

उसका कितना ही बखान करो उसका छोर नहीं आ सकता। करोड़ों ही उसका बखान करते थक गये हैं।

बोल अबोल मधि है सोई। जस उहु है तस लखै न कोई। (गौडी बावन अखरी)

वह शब्द और निःशब्द के बीच मे है और जैसा वह है उसे कोई देख नहीं सकता। ८०।८०

काहे रे बन खोजन जाई।

सरब निवासी सदा अलेपा तोही संगि समाई।

पुहप मधि जिउ बास बसतु है मुकर माहि जैसे छाई।

तैसे ही हरि बसे निरन्तर घट ही खोजहु भाई।—(महला ९)

ईश्वर है और वह सर्व व्यापक है। वही इस संसार मे पसरा हुआ है। उसी ने इस ससार बनाया है। यह जान लेने के पश्चात् यह जानना भी आवश्यक है कि 'गु

सगुण निर्गुण

उसके सगुण निर्गुण होने के सम्बन्ध मे क्या विचार रखता है? क्योंकि 'गुर भारत मे उस समय फैला जब कि यहाँ ईश्वर को सगुण और निर्गुण दो भेदों विभक्त किया जा चुका था। कुछ एक सम्प्रदाय सगुणोपासक और कुछ निर्गुणोपासक बन चुके थे।

'गुरु ग्रन्थ' साहब के समग्र अध्ययन से जो नतीजा निकलता है उसके आधार पर यही पड़ता है कि गुरु लोग सगुण और निर्गुण दोनों ही रूपों को मानते थे। हालाकि अधिक झुकाव उन निर्गुण की ओर था। जैसा कि नीचे दिये हुए इन पदों से पता चलता है —

"अनेक रग निरगुन एक रगा। आपै जलु आपहि तरगा

आप ही मन्दरु आपहि देवा। आपहि पुजारी आपहि सेवा।

खोजत खोजत दरसन चाहे। भांति भांति बन अवगाहे।

निरगुण सरगुण हरि हरि मेरा कोई है जीउ आणि मिलावै जीउ।—(माझ म० ५)

निरगुनीआर इआनिआ सो प्रभु सदा समालि।

जिनि कीआ तिसु चीति रखु नानक निबही नालि॥—गोडी सुखमनी म० ५ श्लोक ४

इतु निरगुनु गुनु कछू न बूझै।

बखसि लेहु तउ नानक सीझै—सुखमनी अष्टपदी

निरगुनीआरे की बेनती देहु दासु हरि राइआे। राग गोडी माझ महला ५

काम क्रोध लोभि मोहि मनु लीनो निरगुण के दातारे।—रागगौडी पूरबी म० ५

राखु पिता प्रभु मेरे। मोहि निरगुन सभगुन तेरे। गौडी म० ५

निरगुण सरगुण आपे सांई। राग माझ अष्टपदी महला ३

तू निरगुण सरगुण सुख दाता। तू निरवाण सरगुण रसिया रगराता॥ माझ महला ५

तूं आदि पुरखु अपरम्पारु करता जी तुधु जे वड अवर न कोई।

तूं जुगु जुगु एको सदा सदा तूं एके जी तूं निहचलु किरता सोई।

तुधु आपे भावै सोई वरतै जी तू आपे करहि सो होई। राग आसा म० ४

तू दरिआउ सभ ही तुझ ही माहि । तुझ बिन दूजा कोई नाहि ।
जीअ जत सभि तेरा खेलु । राग आसा महला ४
सहस घटा महि एक अकासु । घट फूटे ते ओही प्रगासु । (गूजरी महला ५)
बाजीगर डक बजाई । सभ खलक तमाशे आई ॥
बाजीगर स्वांग सकेला । अपने रंग रवै अकेला—राग सोरठ कबीर बाणी
बाजीगरि जैसे बाजी पाई । नाना रूप भेख दिखलाई ।
सागु उतरि थंमिउ पासारा । तब एको एकंकारा ।—सूही महला ५
पचलु सुपनै ही उरझाइओ । इतनी बूझ नाहू पलना बिना भ्रमओ सगि माइओ । देवगधारी
इहि परपचु कीआ प्रभ सुआमी, सभु जग जीवनु जुगता ।
जिउ सललै सलल उठहि बहुलहरी, मिलि सललै सलल समाने—नट म० ४
मेरे प्रभि साचै इकु खेलु रचाया, कोइ न किस ही जेहा उपाइआ—मारू महला तीन३
ब्रह्म दीसै ब्रह्म सुणिऐ, ब्रह्मो ब्रह्म बखाणिए ।
आतम पसारा करण हारा, ब्रह्म भिन्न न जाणिए ।

'गुरु मत' का यह मध्य मार्ग है। उन्होंने निर्गुण और सगुण दोनों विचार धाराओं के बीच वैसा ही एक मार्ग निश्चित कर दिया। जैसा कि द्वैत और अद्वैत के बीच विशिष्टाद्वैत का मार्ग है। मे तो गुरु लोग निर्गुण के गुण-गायक थे। किन्तु वे सगुण की भी अवहेलना करना नहीं चाह। इस प्रकार हम उनके मत को "एक विशिष्ट प्रकार का निर्गुण-पन्थ" कह सकते हैं।

श्री रामनुज के शिष्य सम्प्रदायों के सगुण ब्रह्म और गुरुओं के सगुण ईश्वर मे एक भेद यह है कि उनका ब्रह्म अवतार लेकर भगतों, सन्तों, देवताओं और गौ-ब्राह्मण की हित-साधना करता और गुरुओं का हरि अपने भक्तों को आत्म-दर्शन से तृप्त करता है और उनके लिए अपने अतुल से सारी नियामतें बख्श देता है।

जिन जिन धर्मों और सम्प्रदायों ने ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार किया है। उन उन ने ईश्वर की विशिष्टता महानता के सम्बन्ध मे अपनी अपनी रुचि के अनुसार अनेक ख्याल जाहिर किये हैं। गुरु महानुभावों ने उसकी महानता को निम्न प्रकार व्यक्त किया है:

(१) वह एक है और केवल एक है। दूसरा जो भी कुछ देखने मे आता है वह उसी का अथवा खेल है। माया (प्रकृति) उसका कौतुहल और जीव उसका वैसा ही एक अंश है जैसा कि अ...

सभि गुण तेरे मै नाही कोइ । विणु गुण कीते भगति न होइ । जपु जी पौड़ी २१
निरकार आकार आपो निरगुन सरगुन एक । एकहि एक बखानने नानक एक अनेक—गौड़ी बावन

नोट—भाई काहनसिंह ने निरगुण का अर्थ विना गुण वाला किया है। जो हमारी सम्मति में उचित नहीं, त्मक पक्ष में निर्गुण के अर्थ होते हैं प्रकृतिजन्य अथवा जीवोपम धर्म (जन्म, मरण, उत्पत्ति, लय से रहित। गुरुओं की दृष्टि में परमात्मा जन्म, मरण, उत्पत्ति, लय के प्रपचों से रहित होने के कारण गुण और सृष्टि का कर्ता, पोषक और विनाशक होने के कारण सगुन है। वे पौराणिक की भांति स अर्थ सगुण और निराकार का अर्थ निरगुण नहीं लेते थे।

घटाकाश होता है। और इसकी उपमा उन्होने बाजीगर के खेल से दी है। उनका यह मत बहुत दूर वेदान्त से मिलता है। वेदान्त जिस प्रकार संसार को स्वप्न मानता है। उसी भांति गुरु महानुभाव मानते हैं। जीव और प्रकृति (माया) का वे नाम तो लेते हैं किन्तु उनकी दृष्टि में इसकी महत्ता नहीं जब केवल (एक मात्र) ईश्वर ही है तो वह सब कुछ है। और उस सब कुछ की जितनी भी अभि- व्यक्ति गुरु महानुभाव कर सकते थे। उतनी उन्होंने की है। इस अभिव्यक्ति में केवल ईश्वर ही दिख देता है और सब कुछ उसी के नीचे दब जाता है। यथा—

२—वह आज से नहीं बीच से भी नहीं। युगों के आरम्भ के आदि से है। सृष्टि के आदि से है सदैव से है और सदैव रहेगा।

३. वह करता पुरुष है। कर्ता भी सम्पूर्ण सत्ता सम्पन्न।

४—वह निरभय है। क्योंकि उसका प्रतिद्विन्दी कोई नहीं।

५—उसका किसी से भी वैर नहीं। क्योंकि सभी उसी के आश्रित है। कोई स्वतत्र नहीं।

६. वह अकाल है काल की परिधियों से वधा हुआ नहीं बल्कि काल का नियंता है।

७. वह किसी से पैदा हुआ नहीं है अपितु स्वयम्भू है।

८—वह सभी जीवों का दाता है। जो कुछ पदार्थ हैं उनका पैदा करने वाला वही है।

९—उसके पास अतुल भंडार है। कितना ही वह उसमें से दे। घट नहीं सकते।

१०—चाँद, तारे सूरज, पृथ्वी, हवा और पानी सभी उसके हुक्म में हैं।

११—उसकी रचनाओं का छोर नहीं है। उसमें असख्य ब्रह्मण्ड और असख्य आकास पाताल

गुरुओं का ईश्वर तो इतना महान है किन्तु ईश्वर के साथ से ही चली आ रही प्रकृति औ जीवों की क्या स्थिति है यह जानना भी आवश्यक है।

जीव, प्रकृति

साख्यों, बौद्धों, जैनों और बार्हिस्पत्यों के अनुसार तो प्रकृति ही सब कुछ है किन्तु गुरुओंने प्रकृ को कोई अधिक महत्व नहीं दिया। न उसके विकास, पर। आध्यात्मिक वर्णन में जो कुछ उनके कथन में प्रकृति (माया) के सम्बन्ध मे आ गया है उसमें से यत्र, तत्र फैले हुए कुछ उद्धरण यहाँ देते है—

प्रकृति क्या है ?

कुदरति दिसै कुदरति सुणीऐ कुदरति भउ सुख सारु।
कुदति पाताली आकासी कुदरति सरब आकार ॥
कुदरति वेद पुराण कतेबा कुदरति सरब वीचार।
कुदरति खाणा पीणा पैन्हणु कुदरति सरब पिआरु ॥
कुदरति जाती जिनसी रगी कुदरति जीअ जहान।
कुदरति नेकीआ कुदरति बदीआ कुदरति मानु अभिमानु ॥
कुदरति पउण पाणी बैसतरु कुदरति धरती खाकु।
सभ तेरी कुदरति तू कादिर, करता पाकी नाई पाकु।
नानक हुकमै अंदरि वेखै वरतै ताको ताकु ॥ आसा महला १

अर्थात्—यह जो दृश्य और श्रवणीय तथा सांसारिक सुखों के पदार्थ हैं सब प्रकृति है। आका. पाताल सर्व प्रकार के स्थूल रूप प्रकृति है। वेद, पुराण और कुरान आदि ग्रथों मे जो ज्ञान है वह प्रकृति है। खाने, पीने और पहनने के समस्त पदार्थ प्रकृति हैं। जाति, वस्तु, रग और जहान भर के जीव जन्तु प्रकृति हैं। नेकी, बदी, मान, अभिमान, पवन, पानी, अग्नि, धरती और अणु परिमाणु सब प्रकृति हैं।

लेकिन यह जो प्रकृति के नाम से अभिहित होते है। सब हे प्रभु तेरी ही माया है। इस तू ही है।[१] जो कि पवित्रतम् पवित्र है। नानक कहते हैं यह तेरे ही अनुशासन मे संचालित है और तू ही इसको देखता तथा निरीक्षण करता रहता है।

तुधु आप जगतु उपाइकै आपु खेल रचाइआ।
त्रै गुण आपि सिरजिआ माइआ मोहु वधाइआ॥[२]

(राग सोरठ महला ३ ६)

अर्थात्—हे प्रभु तैने आप ही आप (बिना किसी की सहायता के) इस जगत को बन लिए एक खेल की रचना की है। त्रिगुणात्मक माया का सृजन करके तैने ही मोह ममता की वृद्धि

तू करण कारण समरथु हहि करते मै तुझ बिनु अवर न कोई।
तुधु आपे सिसटि सिरजीआ आपे फुनि गोई। (श्लोक महला ३ पौडी २९)

अर्थात्—हे, भगवन् तुम्ही इस सृष्टि की रचना मे कारण और तुम्ही करता हो, तुम सृष्टि को रचते हो और आप ही उसकी प्रलय करते हो।

केते जुग वरते गुबारै। ताडी लाई अपर अपारै।
धधूकारि निरालम बैठा ना तदि धधु पसारा हे।
प्रलय समय जुग छतीह तिनै वरताए जिउ तिसु भाणा तिवै चलाए।
तिसहि सरीकु न दीसै कोई आपे अपर पसारा हे।
गुपते बूझहु जुग चतुआरे घटि घटि वरतै उदर मझारे।
जुग जुग एका एकी वरतै कोई बूझै गुरु, विचारा हे।

अर्थात्—जब प्रलय हो जाती है तो प्रलय उत्पत्ति के बीच के समय मे वह परमात्मा त... जाता है। उस दशा मे जो कि गुबार (धुंध) पूर्ण होती है। कितने ही युग बीत जाते हैं। उस धुंध वह निरावलंब (ठाली) बैठा रहता है और उस धुंध से पसारा (रचना) नहीं करता। इस रि छत्तीस युग बीत जाते हैं। फिर जो कुछ उसे भाता है उसी भांति सचालित होता है। उसके ... कोई साझीदार तो है नहीं। आप ही अपना फैलाव कर लेता है। चारों युगो के कहां रहने के गु को पूछो तो उसका उत्तर यह है कि यह उस घट घट वासी प्रभु के उदर मे रहते हैं। प्रत्येक युग में ही एक व्याप्त है। उस सम्बन्ध की पूरी जानकारी तो कोई विचार शील गुरु ही जानता है।

यह प्रश्न सदैव से उठता रहा है कि प्रलय काल मे वह सारा पसारा अर्थात् माया और रहे कहा? रहते कहा है? इसका उत्तर गुरुओं ने जो दिया है वह यह है—

सुंने अलख अपार निरालमु सुंने ताडी लाइदा। मारु महला १

१. माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मा पश्यसि नारद।

कृष्ण नारद वाद (महाभारत शान्ति पर्व ३३९...

अर्थात्—हे नारद तुम जिसे देख रहे हो, यह माया मेरी ही उत्पन्न की हुई है।

२. त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत। गीता अध्याय ७ श्लोक १३

अर्थात्—यह सारा जगत मुझ (वासुदेव) ने त्रिगुणात्मक माया से बनाया है।

अर्थात्—उस प्रभु ने शून्य मे तारी लगाई।

प्रलयकाल मे वह प्रभु शून्य मे तारी (समाधि) लगा कर रहा तो फिर वह शून्य क्या है? इस सम्बन्ध मे गुरु कहते हैं—

शून्य क्या है?

सु न कला अपरवरिधारी। आपि निरालमु अपर अपारी।
आपे कुदरति करि करि देखे सु नहु सु न उपाइदा॥
पउण पाणी सुने ते साजे। सृसटि उपाइ काया गड़ राजे।

अर्थात्—अपार कला वाली शून्य वह स्वयम् निरावलंब परमात्मा ही है। वह शून्य से पैदा करके अपनी कुदरति को आप ही देखता है। पवन पानी आदि महातत्वों को वह शून्य से ही रचता है। और सृष्टि का सृजन करके उसके शरीर गढ़ मे (स्वयम ही) विराजता है।

सु नहु धरति अकासु उपाय विनु थमा राखे सचु कल पाए।
त्रिभवण साजि मेखुली माइआ आपि उपाइ खपाइदा।
सु नहु खाणी सु नहु वाणी। सु नहु उपजी सु नि समाणी।
उतभुज चलतु कीआ सिरि करतै विसमादु सवदि दिखाइदा। (मारूमहला १)

अर्थात्—शून्य से पृथ्वी और आकाश को उत्पन्न किया जो कि विना खभों के टिके हुए हैं। तीनों भुवनों को माया मेखुली से सजाया है। प्रकृति लय और उत्पत्ति भी शून्य से उपज कर शून्य मे ही समा जाती हैं। अडज, स्वेदज और उद्भिज जीवों को शून्य से पैदा करके आश्चर्यजनक काम उस प्रभु ने किया है।

परन्तु यह सब वास्तविक कुछ नहीं वाजीगर का खेल भर है। कारण कि "कीता वेखै साहिव आपणा कुदरति करै किचारो। कुदरति वीचारे धारण धारे जिन कीआ सो जाणे। आपे वेखे आपे बूझै आपे हुकमु पछाणे। जिमि कुछ कीआ सोई जाणै ताका रूप अपारो। न ... कसनो रोईए वाजी हैं यह ससारो।"

(बडहस महिला १ दखणी)

प्रकृति (कुदरति) अथवा माया सम्बन्धी इस वर्णन का सार यही है कि गुरुमत मे माया अकाल पुरुप के उस पसारे अथवा खेल का नाम है जिसे वह मर्जी से फैलाता है और अपनी मर्जी से ही समेट लेता है। वास्तव मे प्रकृति का स्वतन्त्र कोई अस्तित्व नहीं।

सभि तेरी कुदरति करतां पाकि नाई पाकु। आसा महला १

यही वात गीताकार ने भी कही है और वेदान्ती भी यही समझते हैं कि प्रकृति परमेश्वर से ही उत्पन्न हुई है। "प्रकृतिं स्वामविष्ठाय" (गीता अध्याय ४ श्लोक ६) अर्थात् प्रकृति अधिष्ठाता मैं (परमेश्वर) हूँ।

प्रकृति अथवा माया के वर्णन के वाद अब हम यह देखते हैं कि जीव के सम्बन्ध मे गुरुओं का मत क्या है? मारू महला १ मे गुरु नानक कहते हैं—

"पंच ततु मिलि काइआ कीनी। तिस महि राम रतन लै चीनी।
आतम रामु रामु है आतम हरि पाइऐ सवदि वीचारा हे।" ७

अर्थात्—पाच तत्वों को मिलाकर शरीर की रचना की। और फिर उस शरीर में रामरतन (जीव) की स्थापना कर दी। आत्मा (जीव) राम (ईश्वर) है और राम (ईश्वर) आत्मा (जीव) है। जो शब्दों के रहस्य को जानते हैं वे ईश्वर को प्राप्त होते हैं।

"नउ घर थापे थापन हारे । दसवा वासा अलख अपारे ।—मारू महला १

अर्थात्—इस शरीर में उस स्थापन कर्त्ता ने नौ घरों की स्थापना की और दसवां . अपने अथवा आत्मा के निवास के लिये ।

जीआं अंदरि जुगति समाइ रहिओ निरालमु राइआ ।
जग तिसुकी छाइआ जिस बापु न माइआ ॥ मारू महला १

अर्थात्—वह निरावलम्ब प्रभु युक्ति पूर्वक जीवों के अंदर समा रहा है । और यह ज प्रभु की छाया (रचना) है जिसके न माँ है और न पिता ।

इन्हीं वातों को गुरु अमरदास जी ने रामकली राग (आनंद) में इस प्रकार कहा है:—

ऐ शरीरा मेरिआ हरि तुम महि जोति रखी ता तू जग महि आइया ।
हरि जोति रखी तुध विच ता तू जग महि आया ।
हरि आपे माता आपे पिता जिनि जिउ उपाइ जगतु दिखाइआ
गुरु परसादी बूझिआ ता चलतु होआ चलतु नदरी आइआ ।
कहै नानक सृसटि का मूलु रचिआ जोति राखी ता तू जग महि आइआ

अर्थात्—ऐ ! मेरे शरीर तुझ में परम पिता परमात्मा ने प्रकाश किया है तब तू इस . सका है । तेरे में प्रभु ने प्रकाश रखा है तब इस जगत में आया है । प्रभु के न कोई मां है और न स्वयम ही मां है स्वयम ही पिता । ऐसे नकुल (अकुल) प्रभु ने जीव की उत्पत्ति करके संसार का किया है ।

गुरु के प्रसाद (आशीष) से मैं यह समझ सका हू कि यह शरीर चलने वाला अथवा होगया है और चलता हुआ नजर आता है । ऐ मेरे शरीर सृष्टि के मूल और रचनाकर्त्ता प्रभु ने अन्दर प्रकाश स्थापित किया है तब तू इस संसार में आ पाया है।

गुरु अर्जुन देव कहते है । उस प्रभु की सृष्टि मे असंख्य जीव है । जो चौरासी लाख मे फैले हुए है । उनमे मनुष्य को प्रभु ने श्रेष्ठता दी है । यथा —

"लख चौरासीह जोनि सबाई । माणस कहि प्रभि दीई वडिआई ।
इसु पउडी ते जो नर चूके । सो आइ जाइ दुखु पाइदा ।"

—मारू सोलहे

इस सम्बन्ध मे सब मिलाकर गुरुओं का यही मत है कि अंश रूप से परमात्मा ही ज ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि आग से चिनगारिया, जल से तरगे और मिट्टी से कण[1] पृथक है ईश्वर से जीव पृथक होकर अनेकों योनियों (चोलों) मे चले जाते हैं और फिर उसी परमात्मा मे हो जातें है।

१—जैसे एक आग ते कनूका कोट आग उठे निआरे निआरे हुइके फेरि आग में मिलाहिगे ।
जैसे एक धूरते अनेक धूर धूरत हैं, धूर का कनूका फेरि धूर ही समाहिगे ।
जैसे एक नद ते तरग कोट उपजत है पान के तरंग सबै पान ही कराहिगे ।
तैसे विश्व रूप ते अभूत भूत प्रगट होइ ताही के उपज सब ताही में समाहिगे ।
—(अकाल उस्तुति १७—२)

ऊपर के इन वाक्यों से हमें यह तो पता चल गया कि जीव ईश्वर का अंश है और जीव विभिन्न चोलों को धारण करता है उनका निर्माण पांच तत्वों से परमात्मा द्वारा होता है।

गुरुमत मे प्रकृति की कोई स्वतन्त्र स्थिति न होने के कारण जीव की स्थिति भी अधिक मायने में नहीं है। (वैसे उनका यह कथन बहुत अंशों में वेदान्त से मिलता जुलता है क्योंकि वह पूर्ण रूपेण ईश्वराधीन है। जैसा कि नीचे की इन वाणियो से पता चलेगा।

जीव की स्थिति क्या है ?

"वसतु माहि लै वसत गडाई। ताहु भिन्न ना कहना जाई। (सुखमनी)

अर्थात्—एक ही वस्तु से कोई दूसरी वस्तु बनाई जाय तो वह भिन्न नहीं कही जा सकती उदाहरणार्थ सोने से हार बनवालो, करधनी, कड़े और छाप, छल्ले कुछ बनवालो नाम तो इनके अलग अलग अवश्य पुकारे जायेंगे किन्तु उनमे जो पदार्थ हैं वह तो सोना ही कहा जायगा। आकृतियो की विभिन्नता से उसके मूल रूप में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

जिउ जल महि जल आई खटाना। तिउ जोती सन जोति समाना।

मिट गये गवन पाई बिसराम—

अर्थात—जिस प्रकार जल, जल मे आकर एक हो जाता है त्यों ही यह (सूक्ष्म) प्रकाश वाला जीव (महान्) प्रकाश (परमात्मा) मे विलीन हो जाता है।

कारण कि—

"ब्रह्म महि जन जन महि पार ब्रह्म

ओति पोति रविआ रूप रंग। —सुखमनी

ब्रह्म मे जीव है और जीवों में ब्रह्म है वह सभी रूपों और रंगों अर्थात आकार प्रकार वाले जीवों मे रमा हुआ है।

जीव जब परमात्मा का ही अंश है तो उसमें उसके कुछ तो गुण होने ही चाहिये। इस सम्बन्ध मे गुरु महानुभावों का कहना है।

अजर-अमर

"ना जिउ मरै न डूबै तरै। जिनि किछु कीआ सो किछु करै।"[1] —राग गौडी महला १

मरणहार यह जीअरा नाहीं —राग गौडी महला ५

ना जिउ मरै न कबहू छीजै।" राग वडहंस महला ५

अर्थात—वह अजर अमर है। साथ ही एक रस अथवा सम है न घटता है न बढ़ता है।

अपने पिता की भांति वह जीव अजर और अमर तो है किन्तु अधिकार इसके कुछ नहीं हैं। यह जो कुछ करता है वे कर्म भी इसकी निजी प्रेरणा के नहीं होते।

अधिकार कहा है—

"मारै राखै एको आपि। मानुख के किछु नाही हाथि।

तिसका हुकमु बूझि सुख होई। तिसका नामु रखु कंठ परोइ।"—'सुखमनी'

अर्थात्—जैसे वह प्रभु रखेगा चाहे मारकर (दुख से) चाहे रक्षा (सुख) मे वैसे ही रहना

१—नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावक (गीता)

पड़ेगा। (इसमें) मनुष्य का कुछ वश नहीं।

तिसके हुक्म (रजागुस) को समझ लेने से सुख होता है इसलिए इसमें नाम को पंड

अर्थात् एक क्षण भी नाम लेना मत भूलो।

गुरु अर्जुनदेव ने अपनी उस बात को और भी अधिक स्पष्ट किया है।

वे कहते हैं :—

"आगिआकारी बपुरा जीउ जो तिसु भावै सोई थीउ।
कबहू ऊची नीच महि बसै। कबहू सोग हरख रंगि हँसै।
कबहू निंद चिंद बिउहार। कबहू ऊभ अकास पइआर॥
कबहू वेता ब्रह्म बीचार। नानक आप मिलावण हार॥
कबहू निरति करै बहु भांति। कबहू सोइ रहै दिन राति॥
कबहू महा क्रोध बिकराल। कबहू सरब की होति रवार॥
कबहू होइ बहै बड राजा। कबहू भेखारी नीच का साजा॥
कबहू अपकीरति महि आवै। कबहू भला भला कहावै।
जिउ प्रभु राखै तितिही रहै। गुर प्रसादि नानक सचु कहै।

× × × ×

कबहू कीट हसति पतग होइ जीआ। अनिक जोनि भ्रमै भ्रमीआ।
नाना रूप जिउ स्वागी दिखावै। जिउ प्रभु भावै तिवै नचावै॥ (सुखमनी)

अर्थात्—जीव तो बेचारा आज्ञाकारी है। उस प्रभु को जो कुछ भाता है वही होता है।

जीव तो कभी ऊँच और कभी नीच बन जाता है। कभी शोक में आकुल होता है। क
की रंगीनी से हँसता है।

कभी निंदनीय और कभी चिन्तनीय दशा में पहुँच जाता है। कभी उच्च आकाश
कभी पाताल में जा पहुँचता है।

कभी (ब्रह्म) सम्बन्धी विचारों का वेत्ता बन जाता है (किन्तु) इन संयोगों का मिलाने व
प्रभु ही है।

कभी अनेक भांति के नृत्य (नाच रंग) करता है। कभी रात और दिन सोने में ही बिता
कभी अत्यन्त क्रोध से भयानक बन बैठता है। कभी उस सर्वेश्वर को (शीतल) जोति
बन जाता है।

कभी राजा महाराजा हुआ फिरता है। कभी भिखारी होकर नीच वेश वाला बन जाता
कभी ऐसे काम करने लगता है जिससे उसका अपयश फैल जाता है और कभी ऐसे मार्ग
निकलता है कि चारों ओर से भला ही भला कहा जाता है।

लेकिन सच तो यह है कि (इन कामों में वह स्वयम कुछ नहीं) जैसे प्रभु उसे रखते ह
ही रहता है।

जब जीव की यह स्थिति है। उसके हाथ में कुछ भी नहीं। कतई तौर पर वह ईश्वराधीन है वह क्या करे ? कैसे रहे ? जिससे कि उसका जीवन सुख और शांति पूर्वक ~

सुख शांति और मोक्ष हो जावे और अंत में आवागमन के चक्कर से छूट कर उस परमानन्द को प्र करले जो मोक्ष कहलाता है।

इसके लिये गुरुओं ने जो उपाय बताये हैं। वे निम्न प्रकार हैं :—

(१) जीव अहम् (हउमे) को छोड़ दे और वह पूर्णतः अपने को गोविन्दार्पण करदे। अर्थात् भाव बनाले "हे प्रभु मेरा तो सब कुछ तूही है।

(२) दूसरों की निंदा स्तुति से अपने को अलग करले।

(३) साधु (अच्छे) लोगों की संगति में रहे।

(४) ऐसे गुरु की शिक्षाओं पर चले जो सतगुरु अर्थात् परमात्मा को पहचानता हो।

(५) संसार में इस भांति रहे जिस भांति कमल जल में रहता है।

(६) चोरी, झूठ, पर स्त्री गमन, लोभ, मोह का परित्याग करदे।

(७) मन को अच्छे मार्ग और हरि चरणों में प्रेरित करे।

(८) ऐसे धंधे करे जो पर पीड़क न हों, और न ईश्वरीय मार्ग में बाधा डालने वाले हो।

(९) माया से विमुक्त होने का बराबर प्रयत्न करे।

(१०) सत्य ज्ञान को अवश्य प्राप्त करे। क्योंकि ज्ञान ईश्वर-मिलन के लिये आवश्यक है।

(११) जीवन के समस्त कामों से ऊपर भक्ति को समझे और सब प्रकार के प्रपंचों को छोड़ हरि~ बनने का यत्न करे।

संभव है गुरुओं ने इससे भी अधिक कोई और उपाय जीव के कल्याण के लिये—उसके कर्त~ सम्बन्धी बताये हों। किन्तु हम जितना समझ सके हैं। यह तालिका उसी के अनुसार ही है।

साधारण भाषा में अहम् का अर्थ "मैं ही हूँ" ऐसा होता है। इस अहम् को सिख साहित्य 'हउमे' कह कर याद किया गया है।

अहम् अहम् से मनुष्य को बहुत हानि उठानी पड़ती है। यह सभी जानते हैं किन्तु ~ लोग पाप और पुण्य में भेद नहीं करते। स्वर्ग और नर्क के अस्तित्व को स्वीकार न~ करते। ईश्वर को ठाली दिमाग की उपज बताते हैं वे अहम् पर ही जीते हैं। ईश्वर के भक्त अहम् ~ अपने प्रियतम से मिलने में दीवार मानते हैं। यही कारण है कि समस्त सन्त सम्प्रदाय अहम् के विरोध रहे हैं। सिख धर्म के संस्थापकों ने अहम् की काफी भर्त्सना की है। वे कहते हैं —

"हउ विचि आइआ, हउ विचि गइआ।
हउ विचि जम्मिआ, हउ विचि मुआ।
हउ विचि दित्ता, हउ विचि लइआ।
हउ विचि खटिआ, हउ विचि गइआ।

× × ×

हउ विचि मूरख, हउ विचि सिआणा।
मोख मुकति की, सार न जाणा।

हउ विचि माइआ, हउ विचि छाइआ।
हउमे करि करि जत उपाइआ।" —सलोक

अर्थात्—अहम् के कारण ही आवागमन है। अहम् से ही जन्मना और मौत है। सब प्रकार के लेन देन हैं और अहम् मे ही मिलन विछुरन है।

× × ×

अहम् में मूर्ख है और सियानप भी है किन्तु संसारी बन्धनों से छुटकारा पाकर करने का सार (तत्व) अहम् मे नहीं है। अहम् मे माया तो है ही किन्तु छाया अर्थात् थोथी वस्तु

× × ×

"अन्तरि अलखु न जाई लखिआ विचि पडदा हउमै पाई।"
माइआ मोह सभो जगु सोइआ इहु भरमु कतहु किउ जाई॥
—राग गौडी पूरबी

अर्थात्—अहम् का ऐसा पर्दा पड़ा हुआ है कि अन्तर मे बैठे प्रभु भी अलख हो रहे अहम् से पैदा होने वाले माया मोह मे सारा जगत सोया हुआ है। यह भ्रम कैसे मिटे ?

हउमै मैला इहु ससारा। नित तीरथि नावै न जाइ अहकारा।
बिनु गुरु भेटे जमु करै खआरा।
सो जनु साचा जि हउमै मारै, गुर कै सबदि पच सहारे।
आपि तरै सगले कुल तारे। गौडी महला ३

अर्थात्—यह संसार अहम् से मलीन हो रहा है। नित तीर्थों मे स्नान करने से भी (अहकार) नहीं जाता है। यदि इसे छुडाने वाला कोई सतगुरु नहीं मिला तो जिन्दगी विगाड़ देगा।

वही सच्चा मनुष्य है जो 'अहम्' को मार देता है। गुरु उपदेशो से काम, क्रोध, मोह, पाच शत्रुओं का विनाश कर देता है। ऐसा मनुष्य स्वय तो (इस भव से) पार हो ही जाता है अपने समस्त कुटुम्ब का निस्तार भी कर देता है।

'त्रैगुण मेटं चौथे चितु लाइआ। नानक हउमै मारि ब्रह्म मिलाइआ।" राग गौडी महला

अर्थात्—अहम् को मारने का एक उपाय है। माया के तीनो गुणों (सत, रज तम से चौथी अवस्था (उन्मन अथवा उदासीन वृत्ति) मे चित का लगाना। अहम् के मरने से ब्रह्म हो जायगी।

× × ×

हउमै वडा गुवार, है हउमै विचि बुझि न सके कोई।
हउमै विचि भगति न होवई, हुकमु न बूझिआ जाइ।
हउमै विचि जीउ बधु है, नामु न बसै मन आइ। —बडहस

अर्थात्—अहम मे बड़ा गुबार है, अहम् के होते हुए कोई (सत्य) को नहीं समझ सकता न 'अहम्' के होते हुए भक्ति हो सकती है। और न ईश्वरीय आदेश को समझा जा सकता है।

'अहम्' जीव के लिये बन्धन है। इसके होते हुए परमात्मा का नाम भी मन मे अ बसता। क्योंकि —

हउमै नावै नालि विरोधु है, दुइ न वसहि इक ठाइ ।
हउमै विचि सेवा न होवइ, ता मनु विरथा जाइ ।"

अर्थात्—'अहम्' और राम नाम मे विरोध है । दोनों एक स्थान पर नहीं रह सकते कारण कि 'अहम्' वाले मनुष्य से सेवा नहीं हो सकती उसका मन व्यर्थ बातों मे फँसा रहता है ।

साराश यह कि विना 'अहम्' (अहकार) के छोड़े जीव ईश्वर को नहीं प्राप्त कर सकता है ।

लेकिन अहम् छूट कैसे ? यह एक बडा टेढ़ा प्रश्न है । उपनिषदों और स्वयं गुरुओ ने 'अहम्' छोडने के जो साधन बताये है । उनमे संसार से विरक्ति और प्रभु के प्रति अनुरक्ति पैदा होना मुख्य हैं किन्तु संसार से विरक्ति और प्रभु से अनुरक्ति विना इस ज्ञान के तो नहीं हो सकती कि ससार और ॰ को समझा जाय । बस, इस समझने का नाम ही आध्यात्मिक ज्ञान है । आध्यात्मिक अथवा ब्रह्म ज्ञान सम्बन्ध मे गुरुओं का मत इस प्रकार है—

"ब्रह्म गिआनी सदा निरलेप । जैसे जल महि कमल अलेप ।
ब्रह्म गिआनी सदा निरदोख । जैसे सूरु सरब कउ सोख ॥
ब्रह्म गिआनी क दृसटि समानि । जैसे राज रक कउ तुलि लागै पवान ।

× × ×

ब्रह्म गिआनी निरमल ते निरमला । जैसे मैलु न लागै जला ॥
ब्रह्म गिआनी कै मनि होइ प्रगास । जैसे धर ऊपर आकासु ।
ब्रह्म गिआनी कै मित्र शत्रु समानि । ब्रह्म गिआनी कै नाहीं अभिमान ।

× × ×

ब्रह्म गिआनी सदासद जागत । ब्रह्म गिआनी अह बुधि तिआगत ।
ब्रह्म गिआनी कै मनि परमानन्द । ब्रह्म गिआनी कै घरि सदा आनद ॥
ब्रह्म गिआनी ब्रह्म का वेता । ब्रह्म गिआनी एक सगि हेता ।
ब्रह्म गिआनी कै होइ अचिंन । ब्रह्म गिआनी का निरमल मत । सुखमनी

× × ×

अर्थात्—ब्रह्म ज्ञानी सव तरह की वासनाओं से उसी प्रकार निरलिप्त रहता है जिस प्रकार कि कमल जल मे रहते हुए पानी से भीगा हुआ नहीं होता ।

जैसे सूर्य्य सर्व रसों का सोखने वाला होते हुए भी निर्दोप है उसी भाति ब्रह्म ज्ञानी (गृहस्थ-धर्म का पालन करते हुए भी) निर्दोप है कारण कि वह अपने कर्त्तव्य को पूरा करता है उनमे आसक्त नहीं होता ।

जिस प्रकार कि पवन गरीव,-अमीर सभी को समान रूप से लगता है उसी प्रकार ब्रह्मज्ञानी सवको समान दृष्टि से देखता है (क्योंकि वह सव मे ही परमात्मा का प्रकाश देखता है) ।

× × × ×

ब्रह्म ज्ञानी उसी भाति निर्मल से निर्मल है । जिस प्रकार (वहता हुआ) जल निर्मल रहता है ।

जिस भाति पृथ्वी के ऊपर आकाश प्रकाशमान है उसी भाति ब्रह्म ज्ञानी के हृदय मे प्रकाश होता है ।

ब्रह्म ज्ञानी अपनी ओर से न किसी से शत्रुता रखते है और न मित्रता और यदि शत्रुता मित्रता करे तो वे न तो शत्रुता करने वाले से कुपित होते है और मित्रता करने वाले है। क्योंकि ब्रह्म ज्ञानी मान, अभिमान की परिध से बाहर होते है।

× × ×

ब्रह्म ज्ञानी को जागृत अवस्था प्राप्त हो जाती है। उनका 'अहम्' भी छूट जाता है।

ब्रह्म ज्ञानी ब्रह्म (आत्म) ज्ञान का जानकार अथवा व्याख्याता हो जाता है क्योंकि ब्रह्म हेत (ध्यान) एक प्रभु से ही लगा रहता है।

ब्रह्म ज्ञानी का मन निर्मल हो जाता है और वह चिन्ताओं मे छुटकारा पा जाता है।

आगे गुरु अर्जुनदेव ने यहाँ तक कह दिया कि—"ब्रह्म गिआनी मुकति जुगति जीअ ब्रह्म गिआनी पूरन पुरखु विधाता" है। वेदान्त का भी यही मत है और इसीका प्रतिपादन गुरु ने इन शब्दों मे किया था। "जिनी आत्म चिनिआ परमात्म सोई।[1] अर्थात् जिन्होंने आत्मा को जान लिया वह परमात्मा ही है।

किन्तु ब्रह्म ज्ञान ऐसी चीज तो नहीं कि चाहा और हो गया। इस सम्बन्ध मे सत ने कहा था—"विनु गुरु हो कि ज्ञान, ज्ञानकि होय वैराग विनु। गावहिं वेद पुराण सुख कि भगति विनु।" अर्थात् ज्ञान गुरु के विना नहीं हो सकता और विना (ब्रह्म) ज्ञान का होना सम्भव नहीं। ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति के लिए पहले मिलना आवश्यक है। सतगुरु ही होता है जो इस संसार के माया मोहों (वैराग) करा सकता है और वैराग के उत्पन्न होते ही जीव अपने को पहचानने लगता है। मे इसी हेतु सतगुरु की महिमा इन शब्दों मे गाई है।

गुरु की आवश्यकता

जो सौ चंदा उगवहि, सूरज चढहि हजार।
ऐत चानण होंदिआ गुरु विन घोर अन्धार। (वार आशा महला २)

अर्थात्—अनेक सूर्य्य चन्द्रों के प्रकाश से भी हृदय का अन्धेरा दूर नहीं हो सकता। शिक्षा ही से दूर होगा। किन्तु —

"सत पुरख जिन जानिआ सतगुर तिसका नाउ।
तिसके सग सिख उधरै नानक हरि गुन गाउ॥" (सुखमनी)

अर्थात्—सच्चा गुरु वह है जो सत्य पुरुष (परमात्मा) को जानता है। उसके संसर्ग से का उद्धार हो सकता है। और

"जिसु मिलिए होइ अनदु, सो सत गुरु कहिए।
मन की दुविधा बिनसि जाइ हरि परम पद लहिए।" गौडी महला ४

अर्थात्—जिसके मिलने से प्रसन्नता प्राप्त हो, मन की दुविधा मिट जाय। हरि च लग जाय वह सत गुरु है।

दुविधा अथवा सशय' जहाँ मनुष्य की उन्नति मे वाधक हैं वहाँ उनके रहते परमात्मा भी सच्ची निष्ठा नहीं हो सकती। इसलिये पांचवे पातशाह गुरु अर्जुन देव ने कहा था:—

१. आसा राग अष्ट पदी महला ७

ऐसा कोई जि दुविधा मारि भगावै । इसहि मारि राज योग कमावै । रहाउ--
जो इसु मारै तिस कउ भउ नाहि । जो इसु मारे सो नाभि समाहि ।
जो इसु मारै तिसकी त्रिसना बुझै । जो इसु मारे सु दरगह सिझै ।
जो इसु मारे सो धनवन्ता । जो इसु मारे सो पतिवन्ता ।
जो इसु मारे सोइ जती । जो इसु मारे तिसु होवै गती ।"—गोडी महला ५

अर्थात्—कोई ऐसा है जो इस दुविधा (सशय) को मार भगावे क्योंकि इसके मारने से । योग की कमाई हो सकती है । इसके मारने से तृष्णा बुझ सकती है । इसका मारने वाला ही सच्चा व और लाजवन्त है । इसका मारने वाला ही जती है । इसके मारने वाले को ही सुगति प्राप्त हो सकती

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था--"हे अर्जुन तू समस्त सशयों[1] (दुविधाओं) को छो. मेरी बात पर विश्वास कर । यही बात गुरुओं ने जन जन से कही कि ससार के दुखों से छुटकारा ने लिये, चौरासी के चक्कर से बचने के लिये, जम के दण्ड से विमुक्त होने के लिये, नर्क य तन बचाव के लिये सत गुरुओं की शरण में आओ । यथा —

"बलिहारी गुरुदेव चरन ।
जाके सग पारब्रह्म धिआइऐ, उपदेश हमारी गति करन ।
दूख रोग भै सगल बिनासै, जो आवै हरि सत सरन ।
आप जपै अवरहि नाम जपावै, वड समरथ तारन तरन ॥--सारग महला ५

× × × ×

काटे कसट पूरे गुरु देव । सेवक कउ दीनी अपनी सेव ॥
मिट गई चित पुनी मन आसा । करी दइआ सतगुर गुण तासा ॥
दुख नाठे सुख आइ समाए । ढील न परी जा गुरु फुरमाए । –गौडी महला ५

× × × ×

गुरु का वचन सदा अविनासी । गुरु कै बचनि कटी जम फासी
गुरु का वचन जीअ कै सगि । गुरु कै वचनि रचै राम कै रगि

+ × × ×

गुरु कै वचनि नरकि न पवै । गुरु कै बचनि रसना अमृतु रवै ॥ —गोडी गुआरेरी महला

× × × ×

सतिगुरु सिख के वधन काटे । गुर का सिखु विकार ते हार्टै ।
सति गुरु सिख कउ नाम धन देइ । गुर का सिख वडि भागी हे : —सुखमनी

× × × ×

मेरे मन गुर जे वडु अवरु न कोई । दूजा थाउ न को सुझै गुरु मेले सचु सोइ ।
सगल पदारथ तिसु मिले जिनि गुरु डिट्ठा जाइ । — रहाउ
गुरु चरणी जिनि मनु लगा से वड भागी माइ ।—श्री राग महला ५
गुरु मुखि नाद गुर मुखि वेद, गुर मुखि रहा समाई
गुरु ईसरु गुर गोरख वरमा. गुरु पारवती माई—अपुजी

१. 'संशयात्मा विनश्यति ।

अर्थात्—गुरुदेव के चरनों को बलिहारी है।

जिनके पास बैठकर पारब्रह्म पिता को स्मरण करने का अवसर प्राप्त हुआ है। गुरुदेव ~ हमारी सुगति करने वाला है। जो भी कोई इन हरि के सन्तों की शरन मे आता है उसके भय, रोग सब मिटा देते है। ये संत (गुरु) आप हरि का नाम जपते है और दूसरों को जपाते हैं। निस्तार करने मे यह बडे समरत्थ हैं।

× × × ×

पूरे गुरू ने अपनी सेवा देकर मेरे समस्त कष्ट दूर कर दिये है। सतगुरु के दया करने मनोकामनाये पूरी हो गई है और चिंता मिट गई है। दुख नष्ट हो गये हैं और सुखो की प्राप्ति है। गुरु ने जो भी फरमाइश की उस सेवा मे मैंने ढील नहीं की है।

× × × ×

गुरु का वचन सदैव सत्य है। गुरु के वचन (आशीर्वाद) से जम का फंदा भी कट गया का वचन जीवनदायी और राम के रंग से भरा हुआ है।

× × × ×

गुरु वचनों पर चलने वाला नरक से बच जाता है, गुरु वाणी मे अमृत बरसता है।

× × × ×

सच्चा गुरु अपने शिष्य के बंधनों को काट देता है। और शिष्य समस्त विकारों को ९।१ है। सच्चा गुरु अपने शिष्य को हरिनाम रूपी महाधन देता है। वह शिष्य बडभागी है [सके गुरू प्राप्त है।

× + \ ×

मेरे मन में तो गुरू से बड़ा कोई नहीं है। दूसरा मार्ग मुझे तो कोई सूझता नहीं। गुरु ने मार्ग पर डाल दिया है वह सच्चा मार्ग है। उसको सभी पदार्थों—की प्राप्ति हो गई जिसने गुरु लिया हे। वास्तव मे तो वे बड़भागी हैं जिनका मन गुरु चरणों मे लग गया है।

ईश्वर प्राप्ति के दोनों साधन नाद (शब्द) और वेद (ज्ञान) गुरु वचनों में है। गुरु ही ना। आदि कर्ता शिव और गोरखनाथ है तथा वेद का प्रथम व्याख्याता ब्रह्मा भी गुरु ही है पारबती सरस्वती मां भी गुरु हैं जो कि क्रमश नाद और वेद की प्रथम श्रोता हैं।[1]

गुरदेव माता गुरदेव पिता गुरदेव सुआमी परमेसुरा।
गुरदेव सखा अगिआन भजनु गुरदेव बधिप सहोदरा।
गुरदेव दाता हरिनामु उपदेसै, गुरदेव मतु निरोधरा।
गुरदेव साति सति बुद्धि मूरति गुरदेव पारस परसपरा।
गुरदेव तीरथु अमृत सरोवरु गुर गिआन मज्जनु अपरपरा।
गुरदेव करता सभि पाप हरता गुरदेव पतित पवित करा।

अर्थात्—गुरु माता है और पिता है। स्वामी है और ईश्वर है। गुरु ही अज्ञान का दूर वाला मित्र है। गुरु कुटुम्बी जन और मा जाया भाई है।

१. कहा जाता है कि निर्जन कैलास में जब शिवजी ने नाद किया तो वहा उसको सुनने वाली अकेली पारवती थी। और वेदो का प्रथम व्याख्यान भी सरस्वती देवी ने सुना था।

गुरु हरिनाम का उपदेश करने वाला (भक्ति) का दाता है। गुरु ही चित्त की वृत्तियों के ि करने वाला मत्र है। गुरु शांति, सद्बुद्धि की मूर्ति और स्पर्श से ही लोहे को सोना बनाने ा पारस है।

गुरु तीर्थों में अमृतसर है मन के मार्जन (शुद्धि) के लिये अगाध ज्ञान है।

गुरु ही पापों का हरने वाला कर्त्ता पुरुष है। गुरु ही गिरे हुए लोगों को पवित्र करने वाला है।

— गौडी बावन अखरी महला

× × × ×

अब प्रश्न यह होता है कि गुरु इतना समरथ और महान् क्यों होता है? इसका उत्तर यह है गुरु (१) ईश्वर की भक्ति करता है। (२) गुरु ईश्वर मिलन की साधना में अपने को खपा देता है (३) गुरु को ईश्वर के सिवा कुछ सूझता ही नहीं। वह उसके लिये बिना जल की मछली, ५०७ प्रीतम की प्रिया और बिछडे चातक की चकवी की भांति तडपता है। इस तरह गुरु पूरा हरिजन है सगुण की उपासना करने से वह भक्त है। आत्मज्ञान की साधना में सलग्न रहने से साध है और निर्गु को पा लेने की तड़प से संत है।

गुरुमत के प्रवर्त्तकों ने इन तीनों ही प्रकार के हरिजनों को आदर दिया है और कहा है ि साधुओं की सगति करो, भक्त जनों से हरिकीर्तन सुनो और संतों की शरण में जाओ। गुरु ग्रन्थ साह में स्थान स्थान पर भक्त, साध और संतों की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है। यथा —

'चरन साध के धोइ धोइ पीउ। अपि साध कउ अपना जीउ॥
साध की धूरि करहु इसनानु। साध उपरि जाइये कुरबानु॥
साध सेवा वडभागी पाईए। साध सगि हरि कीरतनु गाइए।
अनिक विघन ते साधू राखै। हरि गुन गाइ अमृत रस चाखै।" — सुखमनी

अर्थात् साधु के चरनों को धो-धो कर पीना चाहिये। अपना प्राण भी उसके अर्पण कर दे चाहिए। साधु की चरण रज भी पवित्र है। उसके ऊपर कुर्बान रहना चाहिये। साधु की सेवा बड़े भ से मिलती है। उसके साथ मिलकर हरि कीर्तन करना चाहिये। साधु अनेकों विघ्न बाधाओं से बच वाला है वह हरिगुण गाकर अमृत रस का आस्वादन करता है।

× × × ×

सुनि हरि कथा उतारी मैलु। महा पुनीत भये सुख सैलु।
वडै भाग पाइआ साध सगु। पारब्रह्म सिउ लागो रगु। गौडी गुआरेरी महला ५

× × × ×

तेरी महिमा तू है जाणहि। अपाणा आपु तू आपि पछाणहि।
हउ बलिहारी सतन तेरे। जिनि कामु, क्रोध लोभु पीठा जीउ।
तू निरवैर सत तेरे निरमल। जिन देखे सभ उतरहि कलमल॥ माझ महला ५

× × × ×

सतन की महिमा कवन वखानहु। अगाधि बोधि किछु मिति नही जानउ॥
पारब्रह्म मोहि कृपा कीजै। धूरि सतन की नानक दीजै॥ —गौडी गुआरेरी महला ५

× × × ×

जेते माइआ रग रस बिनसि जाहि खिन माहि ।
भगत रते तेरे नाम सिउ सुख भुंचहि सभ ठाइ ।—आसावरी महला ५
चल चित्त वित्त भ्रमाभ्रम जगु मोह मगन हित ।
थिरु नामु भगत दिडमती गुर वाकि सवद रत ।। —गूजरी महला १ घरू
आपि नचाए सो भगतु कहीऐ आपरणा पिआरु आपि लाए ।
आपे गावै आपि सुणावै इसु मनु अन्धे कउ मारगि पाए ।।—गूजरी महला
जो तुध भावहि सेई नाचहि जिन गुरमुखि सवदि लिव लाए ।
से भगत से ततु गिआनी जिन कउ हुकम मनाए ।। —गूजरी महला ३
सफलु जनमु भगतां कीता । गुर सेवा आपि लाए ।
सवदे राते सहजै माते अनदिनु हरि गुण गाए । —सोरठि महला ३

अर्थात्—परमात्मा की महत्ता को परमात्मा ही जानता है। और वह स्वयम क्या है वह (परमात्मा) स्वयम् ही जानता है। मैं तो बलिहारी उसके संतो की हूँ, जिन्होंने काम, क्रोध, को पछाड़ दिया है

हे ! भगवन तू जहॉ निरवैर है। वहां तेरे सत निर्मल है। जिनके दर्शन से सब दु जाते हैं।

× × × ×

संतों की महिमा को कौन वर्णन कर सकता है। वे अथाह हैं उनका बोध (जानकारी) उनकी गम्भीरता की कुछ भी सीमा तो नहीं जान पाया हूँ।

× × × ×

संसार मे माया द्वारा दिखाई देने वाले जितने भी रस रंग है वे क्षण भंगुर हैं किन्तु हे .. तेरे भक्तजन सभी जगह सुख भोगते है ।

× × × ×

अनस्थिर वृत्ति वाला मन मोह मे मगन होकर संसार मे भ्रमाया है किन्तु भक्त जन :र नाम को जो स्थिर है दृढ़ता के साथ पकडे हुए है। और गुरु के उपदेशों में तल्लीन है।

परमात्मा संसार को नचाता है किन्तु भगत वह है जो अपने प्यार को परमात्मा मे स्वयम परमात्मा को नचाये।

भगत परमात्मा का ही गायन करता है उसे ही सुनाने को गाता है, और यह जो अंधा इसको सही मार्ग पर डाल देता है।

ईश्वर को जैसा अच्छा लगता है वैसा ही नाच नाचता है। जिन गुरुमुखों (शिष्यों) मे ध्यान लगाया हुआ है वही भगत हैं। वही तत्वज्ञानी है जिन्होंने परमात्मा को मना लिया है अनुकूल कर लिया है ।

गुरु सेवा मे अपने को लगाने वाले भगतों का जीवन सफल हो गया है। वे शब्द मे रंगे सहजि मे मगन है और रात दिन ईश्वर का गुण गान करते है।

'गुरुमत' के संस्थापकों का दृढ़ विश्वास था कि जो मनुष्य किसी अच्छे गुरु के उ' अनुसार चलता है। साधु सगति मे रहता है। भगतों के साथ मिलकर हरि चर्चा करता है। संतों बैठकर ईश्वर का चिन्तन करता है। वह अवश्य ही इस भव सागर से पार हो जायगा।

वास्तविक बात यह है कि जिस प्रकार के लोगों मे हम बैठते हैं। उनके आचरणों का ह प्रभाव पडता है। हमारा मन आजाद अवश्य है किन्तु श्रवणों से जो सुना जाता है। आँखों से जो जाता है, जिह्वा से जो चखा जाता है त्वचा से जो स्पर्श किया जाता है। नासा से जो सूंघा ज ता। उसका हमारे मन पर असर न पड़ता हो ऐसी बात नहीं है। श्रवणों से हम यदि किसी का विलाप हमारे मन में दया एवं करुणा उत्पन्न होगी। शृंगार रस के गाने सुनें तो मन मे विषय वासना होगी। जिह्वा से हम स्वादिष्ट पदार्थ खावे तो मन मे मधुरता आयेगी और सड़े गले खावे तो व्याकुलता पैदा होगी। त्वचा से हम यदि रेशम अथवा स्त्री केश जैसी कोमल वस्तुओं को छुऐ तो गुदगुदाहट पैदा होगी और बिजली के तार को छू ले तो मन धडकने लगेगा। फूलों को सूंघने से ताजगी आती है और दुर्गन्ध से मन मे मिचलाहट पैदा होती है। सुन्दर वस्तुओं को देखकर चित्त होता है और भयानक वस्तुओं को देखकर सिकुडता है। तात्पर्य यह है कि इन्द्रियों की स्थितियो का मन प्रभाव पड़ता है। अतः मन को अच्छे रास्ते पर लाने के लिये हरिनाम, हरिस्मरण, हरि जाप हरि और हरि दर्शन की लालसा पैदा करने का संत धर्म मे यह सर्वोत्तम साधन समझा जाता था कि की समस्त प्रवृत्तियों को हरि मे केन्द्रित कर दो और यह सतगुरु, संत, साधु और भगत जन ही कर थे अत प्रत्येक संत सम्प्रदाय ने इसी साधन पर जोर दिया और चू कि सिख गुरु सत ही थे अत भी इसी साधन को मनुष्य के कल्याण का आधार माना।

मनुष्य के उत्थान और पतन का मुख्य कर्त्ता सदैव से और सभी मत मतान्तरों मे 'मन' गया है। अतः किसी ने उसे मारने की शिक्षा दी है। किसी ने वश मे करने की और किसी ने उसके को मोड़ देने की। किसी ने यह भी कहा है कि मन दो हैं। एक बाह्य वृत्तियों वाला और एक अन्तर्वृ वाला। बाह्य वृत्तियों वाले मन को नष्ट करदो और अन्त वृत्तियों वाले मन को जगा दो।

बात सब की एक है। कहने के तरीके भिन्न-भिन्न अवश्य हैं। यहां हम मन के सम्बन्ध मे मे प्रचलित कुछ मत उद्धृत करते हैं।

"मानस प्राणिनामेव सर्व कर्मककारणम्।
मनोनुरूप वाक्यं च वाक्येन प्रस्फुटं मन।"—नारद पचरात्र १-७-१८

अर्थात्—मन ही लोगो के सर्व कर्मों का एक मात्र कारण है। जैसा मन होता है। वैसी ही चीत निकलती है और बातचीत से मन प्रगट होता है।

"मनो पुब्बङ्गमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया।
मनसाचे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा।
त तो न दुक्ख मन्वेति चक वा वहतो पद॥'—धम्मपद

अर्थात्—सभी धर्म पहले मनमे उत्पन्न होते हैं। मन ही मुख्य है। वे मनोमय हैं। जब मलिन मन से बोलता व कार्य करता है। तब दुख उसके पीछे वैसे ही हो लेता है, जैसे (गाड़ी के पहिए बैल के पैरों के पीछे हो लेते हैं। और मन साचे पसन्नेन भासति वा करोति वा। ततो नं मन्वेति छाया व अन्त पाविनी।" अर्थात् जब आदमी प्रसन्न मन से बोलता व कार्य करता है तो उसके पीछे छाया की भांति हो लेते हैं।

"न त माता पिता कयिरा अञ्ञे वापिच ञातिका।
सम्मापणि हित चितम् सेय्य सोनं ततो करे।" धम्म पद

अर्थात्—मन तभी उपदेश को समझता है, जब वह निश्चिन्त हो जाता है। और निश्चिंत होता है जो चित को अचित से अलग कर देता है।

मन मेरो गज जिहवा मेरी काती। मपि मपि काटौं जम की फांसी—नामदेव

अर्थात्—मेरा मन गज है और जिह्वा कैंची है। मन रूपी गज से नाप कर जिह्वा रूपी से मैं जम के फन्दे को काट रहा हूँ। भाव यह कि मैं मन का उपयोग अपने पाप निवारण मे कर रहा

× × × ×

"कबिरा मनहि गयन्द है, आंकुस दै-दै राखु।
विष की वेली परिहरी, अमृत का फल चाखु॥
मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
कह कबीर पिउ पाइये, मनही की परतीत॥
मन गयद मानै नहीं, चले सुरति के साथ।
दीन महावत क्या करै, अंकुश नाही हाथ॥
मन कु जर महमत है, फिरता गहर गंभीर।
दोहरी तिहरी चौहरी, डारहु प्रेम, जजीर॥"—'कबीर'

अर्थात्—मन हाथी रूप है। इसे अंकुश के द्वारा मन चाहे मार्ग पर चलने से रोको। विपय ९ विप वेलि को उखाड़ कर फेंक दो और अमृत फल को चाखो। स्वाद लो।

"मन से हार जाने पर (जीव की) हार है और मन को जीत लेने पर जीत क्योकि ँय (परमात्मा) तभी मिलेगा जब हमें मन पर विश्वास हो जायगा।

हस्ती रुपी मन (सहज ही) नहीं मानता, सुरति के साथ दौड़ा फिरता है। जिस महावत हाथ मे अंकुश नहीं है वह गरीब इसे कैसे वश मे कर सकेगा।

मन मस्त हाथी है। वह गह्वर वनों में फिरता है। उसका इलाज यही है कि प्रेम रूपी दुह तिहरी और चौहरी जंजीरों से उसे जकड़ दिया जाय। क्योंकि यदि उसे मारा जायगा तो टुकड़े टुकड़े हो जायगा।[1]

चल मन, हरि चटसाल पढाउं।
गुरु की साठि ग्यान का अच्छर, बिसरै तौ सहजि समाधि लगाऊं।
प्रेम की पाटी सुरति की लेखनि, ररौ ममौ लिखि आंक लखाऊ॥
इहि विधि मुक्त भये सनकादिक, रिदै विचार-प्रकाश दिखाऊ॥
कागद कँवल, मसि कर निर्मल, बिन रसना निस दिन गुन गाऊ।
कहि रैदास, राम भजु भाई, सत साखि दे वहुरि न आऊ।"—रैदास भगत

अर्थात्—मन चल तुझे भगवान् की पाठशाला मे पढ़ा दूं। उस पाठशाला मे छड़ी (७८६ बच्चों को पीटने का बेत) गुरु रूप है। ज्ञान रूप अक्षर हैं। इस पढ़ाई को तू भूलेगा तो मैं सम लगाकर तुझे ठीक करूं गा। अर्थात् हिलने डुलने नहीं दूंगा।

उस पाठशाला में प्रेमरूप पाटी (तख्ती) है और सुरति रूपी लेखनी (कलम) है। इस पट्टी पर मैं तुझे रा और म (राम) अक्षर लिख कर दिखाऊंगा। सनक आदि मुनीश्वर इसी विधि से सांसारिक

1 कबीर मारों मन कु, टूक-टूक ह्वै जाय।

बंधनों से छूटे थे। हृदय में शुभविचारों का प्रकाश रहता है।

जब तू इस पट्टी की पढ़ाई को समाप्त कर लेगा। तब (हृदय) तखत ही कागज बना कर, निर्मल स्याही से हरिगुन गान का गीत पाठ लिखाऊंगा। इस सम्बन्ध में संतों की साखी है कि इस से राम भजन का करने वाला आवागमन से मुक्त हो जाता है।

'मन निर्मल तन निर्मल भाई। आन उपाइ विकार न जाई॥
जो मन कोयला तो तन कारा। कोटि करै नहिं जाइ विकारा॥
जो मन विषहर तो तन भुवंगा। करै उपाइ विषै फुनि संगा॥
मन मैला तन उज्जल नाहीं। बहुत पचिहारे विकार न जाहीं॥
मन निर्मल तन निर्मल होई। दादू साच विचारै कोई॥—'दादू दयाल'

अरे मन जहँ अमृत बरतं। निर्मल नीर तहँ जात।
निर्गुण नाउ फल अगम अपार। सन्तन जीवन प्राण अधार।
शीतल छाया सुखी सरीर। चरण सरोवर निर्मल नीर।
सुफल सदा फल बारह मास। नाना वाणी धुनि परकास।
तहा बास बसि अमर अनेक। तहँ चलि दादू इहै विवेक।—दादू दयाल

अर्थात—मन की निर्मलता से ही शरीर निर्मल हो सकता है। क्योंकि यदि मन कोयले सा काला है तो शरीर भी काला है कितने ही उपाय करो विकार नहीं जा सकते। यदि मन विषधर है तो तन भयानक सांप है। यत्न करने से विष ही हाथ पड़ता है। मन मैला है तो शरीर उज्ज्वल नहीं हो सकता। बहुतों ने उपाय किये हैं किन्तु वे थककर हार ही गये हैं। मन की निर्मलता से ही शरीर की निर्मलता है। यही सत्य है और इसी का विचार करना चाहिये।

भाव यह है कि शरीर के जो अन्य अंग हैं वह सब इन्द्रियां मन के अधीन हैं। यदि चाहते हो हमारी आंखें किसी को कुदृष्टि से न देखें। हमारे कान बुरी बात न सुनें (आदि) तो मन को और निर्मल बनाओ।

मन निर्मल कैसे बने इसके उत्तर में दादू दयाल का दूसरा पद है जिस में वे कहते हैं.

'अरे मन चल वहां बसें जहां निर्मल सत-जन हैं।

वहां उन्हों ने अमृत सदावर्त लगा रक्खा है। उन संतों का जीवन प्राण निर्गुन हरि जप का फल है वहाँ शरीर को सुखी करने वाली शीतल छाया है। निर्मल नीर वाले सरवर हैं। नाना प्रकार की वाणियों के उपदेश रूपी सुन्दर फल वहां बारह मास फलते हैं। वहां अनेक ने अमरत्व को प्राप्त कर लिया है।

भाव यह कि मन संतजनों की सगति में ही निर्मल हो सकता है क्योंकि वे अपनी वाणी से सुन्दर उपदेश करते हैं। उनकी रहनी और ज्ञान चर्चा का प्रताप ही मनको निर्मल कर देता है।

मनके लिये सिख गुरुओं ने भी यह भाव जाहिर किये हैं जैसा कि नीचे लिखे से प्रकट है:—

"मन मुख मन अजित है, दूजै लगै जाइ।
तिसनो सुख सुपनै नहीं दुखे दुख विहाइ।

घर घर पड़ पंड पंडित थके, सिध समाधि लगाइ।
इहु मन वसि न आवही, थके करम कमाइ।
भेख धारी भेख करि थके, अठसठ तीरथ नाइ।
मन की सार न जाणनी हउमैं भरम भुलाइ।
गुर परसादी भउ पइआ वड़ भाग वसिआ मन आइ।
भै पइए मन वसि होआ, हउमैं सबद जलाइ।"—वार सोरठ महला ३

अर्थात्—स्वतंत्र हुए मन का जीतना कठिन है। क्योंकि वह दूसरे ही मार्ग को ग्रहण कर है। (और जिसका मन ऐसा हो गया है) तिसे स्वप्न मे भी सुख नहीं है। दुःख ही दु ख की वृद्धि है।

पंडित पढ़ते पढ़ते थक गये और सिद्ध समाधि लगाते लगाते, यह मन वश मे ही आता है। अनेकों वेशों वाले सम्प्रदायी वेश धरि धरि के थक गये। और तीर्थों मे जाने वाले तीर्थ की यात्रा करके थक गये।

वास्तव में बात यह है कि यह लोग 'अहम्' के भ्रम में भूले हुए हैं। इसलिये मन के सार नहीं जान सके।

गुरु के प्रसाद से मेरा सौभाग्य है कि भयभीत हुआ मन वश मे आ गया है, कारण कि 'अहम्' को जला दिया है।

× × × ×

"गुरु मुख करणी कार कमावै। ता इस मन की सोझी पावै।
मन मैमत मैगल सिक दारा। गुरु अकुस मार जीवालण हारा॥
मन असाध साधे जन कोई, अचर चरै ता निरमल होई।
गुरु मुख इहु मन लइआ सवार, हउमैं विचहु तजै विकार।"—धनाश्री महला ३

अर्थात्—मन की गति पर वही काबू पा सकता है। जो गुरुमुख होकर गुरु के बताये हुए कर्मों को करता है। मन मद मस्त हाथी के समान है। गुरु (मन्त्र) अंकुश है। जिसके मारने से इसे होश में जा सकता है।

इस असाध्य मन को वही सभाल सकेगा जिसका गुरु के बताये आचरणों पर चलने से मन निर्मल हो गया है।

"मन कुचर काइआ उदिआने, गुर अकुस सचु सबदु नीसानै।"
—राग गौड़ी अष्टपदी महला १

अर्थात्—यह शरीर तो उद्यान (गह्वर वन) है। इसमें विचरने वाला मन मस्त हाथी जैसा है। इसे वश में लाने के लिये गुरु (मंत्र) अंकुश और सत्य उपदेश निशाने हैं।

"साधो इहु मनु गहयो न जाई।
चचल त्रिसना सगि बसत है, याते थिर न रहाई॥"—गौडी महला ९

अर्थात—संतजनो! यह मन पकड़ में नहीं आ रहा है। कारण चचल तृष्णा साथ में बसी हुई है। वही इसे स्थिर नहीं रहने देती है। भाव यह कि मनको स्थिर करनेके लिये तृष्णाको छोड़ना पड़ेगा।

"मन हठ करम कमावदे नित नित होइ खुआर।
अंतर साति न आवई ना सच लगै पिआर॥"—श्रीराग अष्टपदी महला ३

अर्थात्—ओ ! मन हठ करके जो तू (अकर्म) कर्म कर रहा है। इससे तो नित खराब ही तेरे इन कामों से न तो अन्त' करण मे शांति आ रही है और न उस सत्य सरूप परमात्मा मे प्यार ही लग रहा है।

"काइआ नगर इकु बालक बसिआ, खिन पल थिर न रहाई।
अनेक उपाव जतन कर थाके, बारंबार भ्रमाई ॥"—बसंत अष्टपदी महला ४

अर्थात्—शरीर रूपी नगर मे मन रूपी एक चंचल बालक बसता है (यह इतना नट कि) जो क्षण भर भी स्थिर नहीं रहता है। अनेक उपाय और यत्न किये गये हैं किन्तु यह बार जाता है।

"मन खुट रह, तेरा नहीं विसासु, तू महा उदमादा।
खर का पैखर तउ छूटै जउ ऊपर लादा ॥—विलावल महला ५

अर्थात्—अरे मन बंधा रह तेरा विश्वास नहीं है। क्योंकि तू बड़ा उपद्रवी है। (गधे के पैरों का रस्सा तब खोला जाता है जब उस पर बोझा लाद दिया जाता है। भाव यह । संयम मे रखने मे ही हित है।

"इह मनु आरसी कोई गुरमुख वेखे, मोरचा न लागै जा हउमै सोखै ॥"माझ अष्टपदी

अर्थात्—यह मन दर्पण है, जो कोई गुरुमुख हैं वही इसे देखते है। इस पर जंग न चढ़ इसलिये इसके 'अहम्'को सुखा देना चाहिये। भाव यह है कि जैसा मन होगा वैसा ही तन होगा दर्पण मे जिस भांति चेहरा अच्छा दिखाई देता है। वैसे ही स्वच्छ मन वाले की शारीरिक अच्छी होती हैं।

"मनि जीते जगु जीत ॥ जपु

अर्थात्—मन को जीत लेने में ही मनुष्य की सच्ची जीत है।

× × × ×

सिख गुरुओं ने जहाँ अपने मन को वश मे करने का उपदेश दिया है। वहाँ यह भी कहा मन मुख लोग अर्थात् निगुरे भवसागर से पार नहीं हो सकते।

हरिरग कउ लोचै सभ कोई, गुरमुख रग चलूणा होई।
मनमुख मनमुख मुगध नर कोरा होई, जे सउ लोचै रंग न होवे कोई ॥—सूही महला ४

अर्थात्—सब कोई हरि रंग (हरि नाम के रंग) को पसन्द करते है और यह रंग गुरुमुख चढ़ता है कि टिकाऊ रहता है। सार यह कि गुरु ऐसे (हरि प्रेम रंग मे रग देता है जो सहज छूटता। मन मुख मनुष्य बेरग होता है। क्योंकि जो सब रगों को देखता है उसे कोई भी लगता।

"मन की मति तिआगहु हरिजन ऐहा बात कठंनी।
अनदिन हरि हरि नाम धिआवहु गुरु सतगुरु की मति लेनी।"—बिलावल महला ४

अर्थात्—हरिजनो ! मन मुख पने को छोड़ दो और रात दिन गुरु अर्थवा सतगुरु की लेकर हरिनाम का स्मरण करो।

"माइआ मोहु गुबार है, तिसदा न दिस्सै उरवारु न पारु।
मनमुख अगिआनि महा दुख पाइदे डुब्बे हरिनामु बिसारि।"—सलोक महला ३

अर्थात्—माया मोह का जो गुबार है। उसका कोई ओर छोर नहीं दिखाई देता। मनमु जो मूर्ख हैं वह यहाँ दु ख पाते हैं और हरिनाम को त्याग देने के कारण उस गुबार (भँवर) मे डू जाते हैं।

"मन मुख करम कमावणे, जिउ दोहागणि तनि सीगारु।
सेजै कंतु न आवही नित नित होइ खुआरु।
पिर का महलु न पावही ना दीसै घरु बारु।"—श्री राग महला ३

अर्थात्—मनमुख का काम ऐसा है जैसे दोहागिनी स्त्री का शृंगार। क्योंकि वह नित नि शृंगार करके दु.खी होती है। कारण कि उसकी सेज पर उसका पति नहीं आता है। वह न तो पति महल (अटारी) को पा सकती है और न उसे घर बार ही दीखता है। और जो :—

"गुरमुखि सदा सुहागणी पिरु राखिआ उरधारि।
मिठा बोलहि निवि चलहि सेजै रवै भतारु॥"—श्री राग महला ३

अर्थात्—गुरुमुख जो हैं वह सदा सुहागिन की भांति हैं। क्योंकि उसका पति उन्हे हृदय में ध रण किये रहता है। वह मीठा बोलती है। विनम्र होकर व्यवहार करती है। उसका पति उसकी सेज पर पौढ़ कर उसकी तृप्ति करता है।

भाव यह है कि जो लोग अपने मन के मुताबिक चलते हैं। उन्हे ईश्वर नहीं मिल सकता। ई.. तो उन्हीं लोगों को मिलेगा जो सतगुरुओं के बताए मार्ग पर चलते हैं अर्थात् हरि कीर्तन और हरि स्मरण में जिनका मन लगा हुआ है।

सिख गुरुओं के कथनानुसार गुरुमुख लोगों के लिये यहाँ भी शाति है क्योंकि वह गुरु उपदेशों से माया मोह के फंदे से छूट जाता है और अपने 'अहम्' को त्याग कर प्रभु में अपने को रमा लेता है। और उनका परलोक भी सुधर जाता है क्योंकि वह हरि रूप ही हो जाते हैं।

मनमुख गुरुओं की दृष्टि मे नदी किनारे का वृक्ष है।

गुरु मत में अधिक से अधिक जिस बात पर बल दिया गया है 'हरि नाम' का स्मरण है। म गु बड़ा इसलिये है कि वह हृदय को 'हरि आवास' बनाने लायक बनाता है। भगत बड़ा इसलिये है कि वह हरि दर्शनों का प्यासा है और गुरु बड़ा इसलिये है कि मनमुखों को हरि की ओर लगाकर उनके हृदय को शुद्ध बनाता है। सारांश कि यह सब इसलिये बड़े हैं कि उनका लक्ष्य 'हरिनाम' है। सिख गुरुओं का कोई वाक्य कोई उपदेश ऐसा नहीं जिसमे हरि और 'हरिनाम' का जिक्र न आता हो। उनकी दृष्टि मे जप, तप, संयम, वेद, पुराण और शास्त्र सब सार हीन हैं यदि वे हरि को बताने मिलाने और उसके प्रति प्रेम पैदा करने मे असमर्थ हैं। इसलिये जहाँ उन्होंने 'हरि स्मरण' की बार बार शिक्षा दी है और हरि स्मरण को ही मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य बताया है वहाँ उन्होंने नाम की महिमा पर भी बहुत कहा है। यथा.—

नाम महिमा

"नाम के धारे सगले जन्त। नाम के धारे खंड ब्रह्मण्ड॥
नाम के धारे सिमृत वेद पुरान। नाम के धारे सुनन गिआन घिआन।
नाम के धारे आगास पाताल। नाम के धारे सगल आकार॥
नाम के धारे पुरिआ सभ भवन। नाम कै संगि उधरे सुनि स्रवन।
करि किरपा जिसु आपनै नामि लाए। नानक चउ पद महि सो जन गति पाये। सुखमनी।

अर्थात्—सब जीव जन्तु नाम के ही आधार पर है। सारे ब्रह्मांड भी नाम पर आश्रित हैं स्मृति, वेद और पुराणों का आधार भी (हरि) नाम ही है। श्रवण मनन और ध्यान भी नाम का ह किया जाता है। आकाश, पाताल और सभी साकार वस्तुओं का धारण करने वाला वह नाम रूप ० नगर और नगरों के घर सभी नामाधार हैं। नाम के धारण करने और श्रवण से अनेकों का उद्धार ० गया है।

कृपा करिके ईश्वर ने जिन्हें अपने नाम स्मरण में लगा लिया है। वह आदमी चौथी १.५ (तुरीय) को प्राप्त होकर सुगति पा जायेंगे।

महान् भक्त तुलसीदास ने भी हरि नाम की खूब प्रशंसा की है उन्होने कहा है राम से राम नाम कहीं बड़ा है। क्योंकि राम ने तो एक अहिल्या का ही उद्धार किया था। राम के नाम ने अजामिल, गीध आदि अनेको पापियों को निस्तार दिया।

नाम के चमत्कारो की प्रशंसा मे गुरु लोगो ने कहा है "हथ कंगन को आरसी क्या"? ५ पुराना इतिहास उठाकर देख लो 'नाम स्मरण' से कितनों का कल्याण हो गया है।

"सुणि साखी मन जपि पिआर। अजामिलु उधरिआ कहि एक बार।
बालमीकै होआ साध संगु। ध्रू कउ मिलिआ हरि निसंग।,
तेरिआ संता जाचउ चरन रेन। ले मसतकि लावउ करि किरपा देन। १।
गनि का उधरी हरि कहै तोत। गजइन्द्र धिआइओ हरि कीओ मोख। । रहाउ।
विप्र सुदामे दालदु भंज। रे मन तू भी भजु गोविन्द।
बधिकु उधारिओ खमि प्रहार। कुबिजा उधरी अंगुसट धार।
बिदुर उधारिआ दासत भाइ। रे मन तू भी हरि धिआइ ॥
प्रहलाद रखी हरि पैज आप। बसत्र छीनत द्रोपती रखी लाज।
जिनि जिनि सेविआ अंतवार। रे मन सेवि तू परहि पार।
धन्नै सेविआ बाल बुधि। त्रिलोचन गुरि मिलि भई सिधि।
बेणी कउ गुरि किओ प्रगासु। रे मन तू भी होइ दासु।
जैदेव तिआगिओ अहंमेव। नाइ उधरिओ सैनु सेव।
मनु डीगि न डोलै कहूं जाइ। मन तू भी तरसहि सरणि पाइ।
जिह अनुग्रह ठाकुरि किओ आपि। से तै लीन्हे भगत राखि।
तिनका गुण अवगुण न विचारिओ कोइ। इह विधि देखि मनु लगा सेव।
कबीरि धिआइओ इक रंग। नाम देव हरि जीउ बसहि संगि।
रविदास धिआए प्रभ अनूप। गुरु नानक देव गोविन्द रूप। बसंत महला ५ घरु १

अर्थात्—अरे मन इन घटनाओं (साखियों) को सुन कर प्रभु का प्यार के साथ स्मरण अजामिल तो एक बार के उच्चारण से ही तर गया।

बाल्मीक को साधुओं के सत्संग से (हरिनाम) का बोध हो गया और फिर उसने (हरि स्मरण अपना उद्धार कर लिया। और ध्रुव को तो परमात्मा (सच्चे प्रेम के कारण) बिना ही किसी मिल गये।

गोतम की त्रिया (अहिल्या) चरण रज के मस्तक पर लगते ही तर गई।

गणिका अपने तोते को राम नाम पढ़ाने से ही पाप निवृत्त हो गई और स्वर्ग को चली गई और गजेन्द्र ने ग्राह (मगर) से पकड़े जाने पर जब हरि नाम स्मरण किया तो उसे भगवान ने ऐन मौ॰ पर ग्राह से मुक्त कर दिया।

अरे मन तू भी परमात्मा का भजन कर, देख उसने सुदामा जैसे दरिद्र ब्राह्मण के दुख दूर ॰ उसका बेड़ा पार कर दिया।

वधिक का उद्धार खंभ के प्रहार से कर दिया। कंस की दासी कुब्जा का उद्धार पैर के अगूठे के पैर से दबाकर कर दिया।

महात्मा विदुर को उसके दास भाव की भगति से प्रसन्न होकर उद्धार दिया। अरे मन तू ॰ अपने उद्धार के लिये हरि स्मरण कर।

प्रहलाद की पैज (हरि नाम न छोडने की जिद) को अहंकारी हरिणाकुश को जिसने कि रात दिन घर बाहर और देव दानव तथा मनुष्य किसी से भी न मरने के वरदान हासिल कर लिये थे—मार कर रक्खा। और द्रोपदी की—दुष्ट दु शासन द्वारा वस्त्र हरण करके नंगी होने से बचाकर लाज की रक्षा की। जिस जिसने भी हरिनाम को याद किया चाहे अत समय मे ही सही उनका उद्धार हुआ। अरे मन तू भी हरि स्मरण कर जिससे तेरा बेड़ा पार हो जाय।

धन्ना भगत ने बाल बुद्धि से उसे याद किया तो उसकी बालहट को पूरा किया और त्रिलोचन को गुरु को मिलने पर उनके बताये मार्ग से सिद्धि हुई।

वेणी भगत के हृदय मे गुरु ने राम नाम का प्रकाश किया अरे मन तू भी भगवान का सेवक बन जा।

जयदेव ने हरि दर्शन के लिये अहँकार को छोड़ दिया। हरि भगत के कारण सेना नाई का उद्धार हो गया। मन तू भी डिगै मत हरि शरण मे जाने से तू भी तर जायेगा।

उस प्रभु ने जिस पर भी दृष्टि की, उसका ही निस्तार कर दिया उसने किसी के गुण अवगुणों का खयाल नहीं किया इसी भरोसे पर तू भी उसकी शरण मे जा।

कबीर ने उसकी उपासना केवल एक रंग (निगुण भाव) से की। नामदेव उसे (मूर्ति रूप) में माथ रखता रहा। रैदास ने उसका भजन विचित्र रूप को सामने रख कर किया और गुरु नानक देव ने गोविन्द रूप से। तू भी उसे भज। वर्ना तो—

"कण विना जैसे थोथर तुखा। नाय विहून सूने से मुखा।
नाम विना नाही मुखि भागु। भरते विहून कहा सोहाग॥
नाम विसारि लगं अन सुआइ। ताकी आस न पूजं काहि।
मनु रे नामु जपं सुख होइ। गुर पूरा सालाहिए सहज मिले प्रभु सोइ।

अर्थात्—अन्न के दोनों के विना जैसे तुख (सिट्टे) थोथे (व्यर्थ) हैं। उसी प्रकार विना (हरि) नाम के मुँह थोथा है। हरि नाम से खाली मुँह उसी भाति निरभाग है जैसे कि विना भरतार के स्त्री सुहाग व्यर्थ है। जो हरि नाम को छोड़ कर दूसरे मजे लेते हैं। उनकी इच्छाये पूरी नहीं होती हैं। इसलिए हे मन! सुख तो हरि नाम के जपने से ही मिलेगा। उस पूरे गुरु की सराहना करनी चाहिए जिससे कि प्रभु का मिलना सरल हो जाता है।

ईश्वर प्राप्ति के लिये जहाँ भक्ति का होना आवश्यक है वहाँ भक्ति के तरीको की जानकारी भी

आवश्यक है। भारतीय भक्ति परम्परा में भक्ति-प्रदर्शन के नौ प्रकार बताए गये हैं। जो नवधा-भक्ति नाम से अभिहित होते हैं। 'ग्रन्थ साहब' का अनुशीलन करने से हम इस ि

भक्ति के प्रकार पर पहुँचे हैं कि सिख गुरुओं ने मानव कल्याण के लिये नवों प्रकार की भक्ति को नाया है। वे नौ प्रकार श्रवण अर्थात् १–ईश्वरके नाम और गुणों का सुनना २–क ईश्वर के नाम और गुणों का गायन। ३—स्मरण—ईश्वर के नाम और गुणों का जप। ४—सेवन अपने मन से ईश्वर की सेवा तथा उसमें प्रीत करना ५—अर्चन—आत्मा को परमात्मा का समीपी सम कर उसके संग रहने की भावना। ६—वन्दना—परमात्मा को महान् समझ कर (उसके सामने) वि होना। ७—सेवक भाव—ईश्वर को अपने तन मन और सर्वस्व का मालिक समझ कर उसकी इच्छा अनुकूल चलने का प्रयत्न करना। ८—मित्र भाव—यह समझना कि मेरा सबसे बड़ा सच्चा हितैषी ई है जो सुख, दु.ख और आपत्ति सम्पत्ति में सदा मेरा सहायक है। ६—आत्म समर्पण—यह भक्ति है जि में मनुष्य यह समझ लेता है कि मैं कुछ नहीं। न मेरे करने से कुछ होने का है। परमात्मा जैसे खे मैं रहूँगा और उसकी शरण में रहने में ही मेरा कल्याण है।

'ग्रन्थ साहब' मे इन नवों प्रकार की भक्ति के सम्बन्ध में इस प्रकार प्रकाश डाला गया है।

"सुणिऐ पडि पडि पावहि मान। सुणिऐ लागहि सहुजि धिआनु।
श्रवण सुणिऐ अंधे पावहि राहु। सुणिऐ हाथ होवै असगाहु।
नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दूख पाप का नासु। —जपु जी

अर्थात्—सुनने और फिर सुने हुए को पढ़ने से उसके मान (परिमाण) का पता चलता अर्थात ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त होता है।

उसके सम्बन्ध मे सुनने से सहज ध्यान मे मन लग जाता है।

ईश्वर मार्ग के सम्बन्ध में जो अन्धे हैं अर्थात् जिन्हे ईश्वर के सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं वे उसके गुणों को सुनकर राह पर चल निकलते हैं। सुनने से ही अगम्य पदार्थ (ईश्वर प्रेम) लगता है।

ईश्वर के सम्बन्ध मे सुनने से भक्तों का सदैव विकास होता है। दुःख और पापों का नाश हरिगुण सुनने से होता है।

"ऐसा कीरतनु करि मन मेरे। ईहा ऊहा जो काम तेरै।रहाउ।
जासु जपत भउ अपदा जाय। धावत मनुआ आवै ठाइ।—गौडी महला ५

\+ \+ \+ \+

कीर्तन "राति न विहावी साकतां, जिन्हा विसरै नाउ।
राती दिनस सुहेलिया, नानक हरि गुण गाउ॥—सलोक म० ५

\+ \+ \+

हरि कीरति साधु संगति है सिर करमन के करमा।
तेरे सेवक इह रग माता।
भयउ कृपालु दीन दुख भंजन हरि हरि कीरतन इहु मन राता।—सोरठ महला ५

\+ \+ \+ \+

"भली सुहावी छापरी जासहि गुन गाए ।
कित ही कास न धवलहर जित हरि विसराए ।"—सूही महला ५

\+ \+ \+ \+

"हउ बलिहारी जो प्रभु धिआवत । जलनि बुझै हरि हरि गुन गावत ।"—बिलावल म०

\+ \+ \+ \+

"मनूआ नाचै भगति द्रिडाए । गुर कै सबद मन मनै मिलाए ।
सचा ताल पूरे माइआ मोह चुकाए । सबदे निरत करावणिआ ।"—माझ महला ३ अ

अर्थात्—मेरे मन ऐसा कीर्तन कर जो इस लोक और उस लोक दोनों मे तेरे काम आवे। जिसके जपने से भव (संसार) की आपदा चली जाय और दौड़ता हुआ मन ठिकाने पर आजाय।

\+ \+ \+ \+

"अरे शाक्त रात को व्यर्थ मत गँवावे। उसके नाम को छोड़ने से—और इन अकृत्यो को से—तेरा जन्म व्यर्थ ही जायगा इसलिये रात दिन तू हरि गुण का सुहेला गा।

\+ \+ \+ \+

साधु सगति और हरि कीर्तन सब कर्मों मे सिरमौर (श्रेष्ठ) है। प्रभु के सेवक इसी रंग मे अपने को रगते है। इनको भगवान की दया से हरि कीर्तन ही अच्छा लगता है।

\+ \+ \+ \+

उन महलों से जहाँ कि मनुष्य ईश्वर के गुण-गान को भूल जाता है वह झोंपड़ी अच्छी है जहाँ हरि कीर्तन होता है।

\+ \+ \+ \+

'मैं उन लोगों पर निछावर हूं। जो भगवान का ध्यान करते हैं। क्योंकि हृदय की जलन तो हरि के गुणों का कीर्तन करने से ही शांत होती है।

\+ \+ \+ \+

"भक्ति में मन का दृढ़ होना ही सच्चा नाच है। गुरु के शब्दों का मन मे मिलान कर लेना सच्चा संगीत है और माया मोह का छोड़ देना सच्ची लय (ताल) है। शब्द ही सच्चा नृत्यकार है।

\+ \+ \+ \+

"प्रभु कै सिमरन गरभ न वसै । प्रभु कै सिमरन दूख जम नसै ।।
प्रभु कै सिमरनि काल परहरै । प्रभु कै सिमरन दुस्मन टरै ।।
प्रभु सिमरत कछु विघन न लागै । प्रभु कै सिमरन अनुदिन जागै ।।—गौडी सुखमनी महला ५

स्मरण

"सो सुरता सो बैसनो सो गिआनी धनवत ।
सो सूरा कुलवत सोइ जिन भजिआ भगवत ।।
खत्री ब्रहमण सूद वैस उधरै सिमर चंडाल ।
जिन जानिउ प्रभु आपना नानक तिसहि रवाल ।।—गौडी थिती महला ५
जाकै सिमरन होइ अनंदा, बिनसै जनम मरन भै दुखी ।
चार पदारथ नवनिधि पावहि, बहुरि न तिरसना भुखी ।—सोरठ महला ५
सचि सिमरिऐ होवै परगासु । ताते बिखिआ महि रहै उदासु ।—धनाश्री म० १ घरु दूजा

अर्थात्—प्रभु के स्मरण से मनुष्य गर्भवास के कष्टों से छुटकारा पा जाता है अर्थात् वह ॰ और मरण के चक्कर से छूट जाता है। और प्रभु के स्मरण से यम-यातनाओं के दुःख भी नष्ट जाते हैं।

प्रभु के स्मरण से मृत्यु भी छोड देती है। अर्थात सहज ही नहीं आती। और दुश्मन का भय प्रभु स्मरण से टल जाता है।

प्रभु-स्मरण से हानि कुछ भी नहीं होती। अपितु जो प्रभु का स्मरण करता है वह सदैव ज ॰। रहता है।

\+ \+ \+ \+

वही श्रोता अथवा वेदज्ञ है। वही वैष्णव, ज्ञानी और सच्चा धनी है और शूरवीर कुलीन भी वही है—जिसने कि भगवान का भजन किया है। उस परम पिता परमेश्वर को स्मरण से क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, और शूद्र–यहा तक कि चंडाल भी उद्धर गये है।

जिन्होंने प्रभु के साथ अपनापन जोड़ लिया है नानक तिन पर बलिहार है।

\+ \+ \+

उसके स्मरण से आनन्द प्राप्त होता है और जन्म मरण के भय और कष्ट नष्ट होते हैं। यही उसके स्मरण से जीवन के जो परम लक्ष्य—अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष नाम के चार पदार्थ हैं वे और प्रकार की निधियां प्राप्त होती हैं और तृष्णा की भी भूख मिट जाती है। ऐसा है हरि स्मरण।

\+ \+ \+

(वास्तविक बात तो यह है कि) उस सत्य स्वरूप के स्मरण से हृदय का अन्धकार दूर हो है और निर्मल ज्ञान का प्रकाश हो जाता है। हृदय मे ज्ञान का प्रकाश होने से मनुष्य विषय-व॰ ॰ ओं ओर से उदासीन हो जाता है और विषय-वासनाओं से जहाँ हृदय खाली हुआ, वहीं उसका स ॰ते कल्याण है। *कारणकि*

"कलि महि राम नामु सारु।" (धनाश्री महला १ घरु ३)

अर्थात्—कलियुग मे हरि नाम ही सार है।

साकार प्रभु की सेवा करने वालो ने मन्दिरों और मठो मे उसके अनेक नामों पर मूर्तियां ॰ करली है किन्तु जो निराकार के उपासक है। वे परमात्मा की सेवा कैसे करें। उसका विधान समस्त नि॰ सन्तों ने यह बताया है कि उसकी मानसिक सेवा करो। इस सम्बन्ध मे सिख गुरुओं ने जो कुछ ॰ उसका थोड़ा सा अंश इस प्रकार है:—

"तुझ बिन कौन हमारा, मेरे प्रीतम प्राण अधारा।
अतर की विधि तुमही जानी, तुमही सजन सुहेले।
सेवन   सरब सुखा मैं तुझते पाए, मेरे ठाकुर अगह अतोले।
बरन न साकिउ तुमरे रगा, गुण निधान सुख दाते।
अगम अगोचर प्रभु अविनासी' पूरे गुरते जाते।"—गौडी महला ५
"हम मल मल धोवहि पाव गुरु के जो हरि हरि कथा सुनावै।—गौडी महला ४
"सतगुरु की सेवा गाखडी, सिर दीजै आप गवाइ।
सबद मिलहि ता हरि मिलै, सेवा पवै सभ थाइ॥—श्री राग म० ३

"जेते जीअ तेते सभि तेरे, विणु सेवा फल किसै नहीं।"—आसा महला १

ऐसी सेवकु सेवा करै, जिसका जीउ तिसु आगै धरै।—धनाश्री महला १ घरु दूजा

अर्थात्—ओ, मेरे प्राणों के आधार प्रियतम (परमात्मा) तेरे विना हमारा कौन है ? मेरे अन्त करण में जो कुछ है उसे तुम भली प्रकार जानते हो। क्योंकि —

"तू मेरा पिता तू है मेरा माता, तू मेरा बधुप तू मेरा भ्राता।

तू मेरा सभनी थाई, ताभउ केहा काडा जीउ।[1]

ओ, मेरे अथाह और अतोल ठाकुर सारे सुख मैंने तुझ से ही पाये हैं।

ओ ! गुण निधान और सुखदाता ! मैं तुम्हारी विचित्राओं का वर्णन कैसे कर सकता हूँ क्योंकि तुम अगम अगोचर हो। हे अविनाशी ! तुम्हे पूरे गुरु के द्वारा ही जाना जा सकता है।

× × ×

हम उस गुरु के पैरों को मल कर धोते है जो ईश्वर की कथा का वर्णन हमसे करता है।

× × ×

सतगुरु की सेवा अति कठिन है। किन्तु फिर भी अपने को गॅवा कर और सिर देकर भी उसकी सेवा करनी चाहिए। जब अनहद शब्द का घोष ब्रह्माण्ड में होने लगे तो समझ लो हरि मिल गये और सेवा तो सब स्थानों पर प्राप्त की जा सकती है।

× × ×

इस ससार मे जितने भी जीव हैं। वे सब है परमात्मा तेरे ही हैं। विना सेवा के इन सब का जन्म निष्फल है अर्थात् सेवा अनिवार्य है।

× × ×

हमारी समझ मे उस निरंकार की सेवक ऐसी सेवा करे कि कहदे कि हे प्रभु यह तेरा जीव तेरे आगे है।

जो सेवक यह कह देगा कि 'साहब भावै सो परवाणु।' उसके लिये यह निश्चय है "सो सेवकु दरगाह पावै माणु।" अर्थात् वह सेवक ईश्वर की दरगाह मे सन्मान पावेगा।

प्रचलित अर्थों मे अर्चन का अर्थ पूजा लिया जाता है। और पूजा का अर्थ मूर्ति पूजन समझा जाता है। मूर्तियों पर लोग फूल, चावल, सुपारी, हल्दी, तिलक आदि चढ़ाते हैं। इन्हीं रिवाजो को देखते हुए संत रैदास ने कहा था:—

"दूध तो बछरे थनहु बिटारिउ। फूल भॅवर जल मीन विगारिउ।

अर्चन × × ×

मैलागिरि बेरे है भुइ अगा। बिख अमिरत बसहि इक सगा।

धूप दीप नईवेदहि बासा। कैसे पूज करै तेरी दासा।"

अर्थात्—दूध तो बछड़े ने थन में ही जूठा कर दिया। फूल को भौरे ने जूठा कर दिया। मलयगिरि पर चन्दन के वृक्षों से सांप लिपटे हुए हैं जिससे चन्दन की अमृतमयी सुगन्धि में सांपों की श्वास-प्रश्वांस का विप मिल गया है। धूप और नैवेद्य बासी हैं। ताजा नहीं। यह तेरा दास फिर किससे तेरी पूजा करै।"

१. तुमेव माता च पिता तुमेव। तुमेव बन्धुश्च सखा तुमेव (भागवत)

किन्तु धूप, दीप, नैवेद्य तथा दूध और फल फूलों से तो साकार पंथी पूजा अर्चन करते थे। नि
कार पंथी अपने प्रभु की पूजा कैसे करें ? इसके लिये सिख गुरुओं ने कहा—

"आतमादेउ पूजिए, बिनु सतगुर बूझ न पाइ।"—वार श्रीराग महला ३
तेरा नाम करी चानणाठीआ जे मन उरसा होइ।
करणी कुगु जे रलै, घट अन्तर पूजा होइ। —गूजरी महला १

अर्थात्—आत्मदेव की जो कि घट भीतर है पूजा करो। किन्तु इस पूजा की विधि सतगु
समझाये बिना समझ में नहीं आ सकती।

× × ×

हे प्रभु ! तेरे नाम की तो चन्दन वटी बनाई जाय और अपने मन को (मनुष्य) बनावे
फिर सुकृत्यों की केसर मिला कर घिसे। इस प्रकार की जो पूजा है वह अन्तःकरण मे ही हो सकती है
उस पूजा और अर्चना की तो सिख गुरुओं ने भर्त्सना ही की है। जो मन्दिर और मठों में
लोग करते हैं। जैसा कि इस एक पद से ही प्रकट हो जायगा।

"मन बेकारी वेड़िया वेकारा करम कमाइ।
दूजै भाइ अगिआनी पूजदे दरगहि मिलै सजाइ। —वार श्रीराग महला ३

अर्थात्—मन तो बिना काम के लम्पट हो गया है। जो व्यर्थ के कर्मों में उलझा हुआ
परमात्मा को मूर्तियों मे पूजना द्वैत भाव है जो अज्ञानियों का काम है। इन अज्ञानियों को ईश्वर
दरगाह में सजा मिलेगी।

कालान्तर मे कुछ हेर फेर के साथ यह पूजा पद्धति सिखों मे 'ग्रंथ साहिब' के प्रति अगाध
के रूप में प्रस्फुटित हुई।

बंदना हरि बंदना गुण गावहु गोपाल राइ। —रहाउ॥
बडै भागि भेटे गुर देवा। कोटि पराध मिटे हरि सेवा।
वन्दना चरन कमल जाका मन रापै। सोग अगनि तिसु जन न विआपै।—धनाश्री
नमस्कार ताकउ लखवार। इहु मनु दीजै ताकउ वारि।
सिमरनि ताकै मिटहि सन्ताप। होई अनन्दु न बिआपहि ताप॥—भैरव महला ५
सुभ दिवस आए गहि कंठ लाए प्रभ ऊँच अगम अपारे।
बिनवंति नानक सफलु सभु किछु प्रभु मिले अति पिआरे॥—बिहागड़ा महला ५
निवि निवि पाइ लगउ गुर अपुने आतम रामु निहारिआ।
करत बिचारु हिरदै हरि रविआ हरदै देखि बिचारिआ।—आसा महला १

अर्थात्—हरि का बन्दन करो। एक बार नहीं अनेकों बार हरि की बन्दना करो।
गुणों का गायन करो। (इस प्रकार का उपदेश देने वाले) गुरुदेव का मिलन बड़े भाग्य से हुआ
परमात्मा की सेवा से करोड़ों अपराध मिट जाते हैं। जिस मनुष्य का मन प्रभु के चरण कमलों
जाता है। उसे चिन्तारूपी अग्नि नहीं जलाती।

उस प्रभु के लिये लाखों वार नमस्कार है। जिसके स्मरण से समस्त संताप (कष्ट) मिट जा
तथा आनन्द की प्राप्ति हो जाती है और दैहिक, दैविक तथा भौतिक नाम के तीनों प्रकार के जो ताप
पास नहीं आते। इस मन को उस प्रभु पर निछावर कर दो।

+ + +

यह प्रथम दिन का आगमन है जो उस महान् और अगम अपार प्रभु ने मेरे को कंठ से लगा लिया है। नानक अति नम्रता से उस प्रभु की वन्दना करते हैं क्योंकि सब कुछ प्यारे प्रभु के मिलने से सफल हो गया।

\+ + +

अपने गुरु के पैरों की झुककर वन्दना करो। जिनके उपदेश से अपने आपको पहचानने में समर्थ हुए। यह हृदय मे विचार करके देख लिया है कि परमात्मा हृदय मे ही रम रहा है।

\+ + +

सेवक-भाव

तिसु सेवक कै हउ बलिहारी जो अपने प्रभ भावै।
तिसकी सोइ सुणी मनु हरिआ तिसु नानक परसण जावै।—आसा महला ५

ठाकुर का सेवक आगिआकारी। ठाकुर का सेवक सदा पूजारी।
ठाकुर के सेवक कै मन परतीति। ठाकुर के सेवक की निरमल रीति।
ठाकुर कउ सेवक जानै सगि। प्रभ का सेवक नाम कै रंगि।—सुखमनी

अर्थात्—उस सेवक की हम बलिहार जाते हैं जो अपने प्रभु को अच्छा लगता है। हमने उसकी यश (गंध) सुनी है। तिसका स्पर्श (आलिंगन) करने जाने को नानक का मन चाहता है।

\+ + +

ठाकुर के सेवक मे कुछ अद्भुत गुण होते है। वह अपने को ठाकुर का आज्ञाकारी समझता है। सदा ही वह उसी की पूजा करता है। उसके मन मे अपने प्रभु का अगाध विश्वास होता है। उसके समस्त रीतिया शुद्ध पवित्र हो जाती हैं। क्योंकि वह कोई पाप नहीं करता कारण कि वह अपने प्रभु को सदैव अपने इर्द गिर्द समझता है और वह समस्त झगड़ों और सोच-विचारों को छोड़कर प्रभु के रंग में रंग जाता है।

\+ + +

जब सेवक इस प्रकार अपने को अपने प्रभु की सेवा मे अर्पण कर देता है तो—

"सेवक कउ प्रभ पालन हारा। सेवक की राखै निरकारा।"

× × ×

"अपने जन का परदा ढाकै, अपने सेवक की सर पर राखै।
अपने दास कउ देइ वडाई, अपने सेवक कउ नाँव जपाई।
अपने सेवक की आप पति राखै। ताकी गति मित कोउ न लाखै।"—सुखमनी

अर्थात्—प्रभु भी अपने सेवक का पालनहार बन जाता है। और निरंकार होते हुए भी उसकी बात, जिद अथवा पैज को रखता है।

\+ + +

वह अपने सेवक की पुरानी बुराइयों पर परदा डालता है। और उसके सिर की पगड़ी की रक्षा करता है। (एक अर्थ यह भी है कि उस की बात को ऊंची रखता है) ।

अपने सेवक से नाम का जाप कराकर उसकी कीर्ति को फैलाता है। (लोग कहने लगते हैं अमुक व्यक्ति तो बडा भारी भगत है)

मन मुख सेती दोसती थोड़ड़िआ दिन चार।
मित्र-भाव इस परीती तुटदी बिलम न होवई, इहु दोसती चलन विकार।—वार वडहंस
मनमुख सउ करि दोसती सुख कि पुछै मित।
गुरमुख सउ करि दोसती सतगुर सिउ लाइ चित।
जमण मरण का मूल कटीए ता सुख होवी मित।—सलोक वारां ते वधीक ५
मिलिआ होइ न वीछड़े जे मिलिआ होई।—सूही महला १
मिलिऐ मिलिआ ना मिलै, मिलै मिलिआ जो होइ।
अन्तर आतमै जो मिलै, मिलिआ कहिऐ सोइ।—वार सूही महला २
अपना मीतु सुआमी गाइऐ।
आस न अवर काहू की कीजै—सुखदाता प्रभु धिआइऐ।—सारग महला ५
तू मेरे मीत सखा हरि प्रान।
मनु धनु जीउ पिंडु सभ तुमरा इहु तनु सीतो तुमरै धान।—सारग महला ५
हरि सा मीतु नाही मै कोई। जिनि तनु मनु दीआ सुरति समोई।—मारु
कोउ है मेरो साजनु मीतु। हरिनाम सुनावै नीत।
बिनसै दुख बिपरीति। सभ अरपउ मनु तनु चीतु।—नट पडताल महला ५

अर्थात्—ऐसे लोगों से—जिनका मन काबू में नहीं है अर्थात् भ्रष्ट आचरण वाले हैं—
निभने वाली नहीं होती। चार छः दिन में ही टूट जाती है। और ऐसी मित्रता का चलना भी वे-

\+ × ×

मनमुखों से दोस्ती करके कोई सुख चाहे वह मूर्ख है। दोस्ती तो गुरुमुखों से करनी चाहिये जो सदाचार के रास्ते पर चल रहे हों। और सतगुरु परमात्मा में चित्त लगाना चाहिये जिससे मरण की व्याधियां मिट जाय और सुख शांति मिले।

× × ×

सच्चा मेली (मित्र) मिलने पर कभी बिछुड़ता नहीं। और ऐसा मेली (मित्र) तो ही है।

\+ + +

मिलने वाले अनेकों मिलते हैं किन्तु सच्चे मिलने वाले तो मिलते नहीं। सच्चा मेली (तो वह है जो अन्त: करण (आत्मा) में समा जाता है। (ऐसा मेली तो परमात्मा ही है)

× × ×

आपका जो वास्तविक मित्र अर्थात (परमात्मा) है। उसी का गुण-गान करो और किसी दू- आस मत लगाओ।

\+ + +

हे प्राणाधार भगवान् तू ही मेरा सच्चा सखा और मित्र है। मेरा यह तन, मन, धन और सब कुछ तेरा ही है। यह मेरा शरीर पृथ्वी जैसा है। मेरे इस शरीर में अपने प्रेम रूपी हल (से आप भक्ति रूपी धान बीजिए।

\+ + +

हरि सरीखा मेरा कोई मित्र नहीं है जिसने इस शरीर में सुरति (सुबुद्धि) का संयोग

को रचा है। जिससे कि हम उसका चिन्तन कर सकते है ।

\+ + +

कोई मेरा ऐसा सज्जन मित्र है ? जो मुझे नित हरि गुन सुनाता रहे । जिससे मेरे विरोधी दुखों नाश हो और मै अपने तन, मन अथवा सर्वस्व को जिसे अर्पण कर दूं । (ऐसा मित्र सिवा के कौन है)

समर्पण-भाव पूर्ण समर्पण भाव मे भक्त अपने और परमात्मा के मध्य में पत्नी और पति का अपना लेता है ।

निर्गुणवाद के प्राय सभी सन्तों ने भक्ति के इस प्रकार को अपनाया है यथा —

"मै बौरी मेरा राम भतार । रचि-रचि ताको करो सिंगार ॥
भले निंदौ भले निंदो भले निंदो लोग । तन मन मेरा राम पियारे जोग ।" —नामदेव (सत सुधासार

अर्थात्—मेरा भरतार (प्रियतम) राम है । मैं उसी पर बावली हुई फिरती हूँ । उसी से मिलने लिये मैं सुधार-सुधार कर शृंगार करती हूँ ।

लोग मेरी चाहे जितनी निन्दा करो । मैंने अपने तन, मन को राम प्रियतम से जोड़ लिया है ।

हू वारी, मुख फेरि पियारे । करवट दे मोहि काहे को मारे ।
करवत भला, न करवट तेरी । लाग गरे सुन विनती मेरी ।
हम तुम बीच भया नहिं कोई । तुमहिसो कत नारि हम सोई ॥
कहत कबीर सुनो नर लोई । अब तुम्हरी परतीत न होई ।।—कबीर (सत सुधासार)

\+ + +

अर्थात्—मैं तो वारी (नवीना) हूँ । मेरे प्रियतम मेरी ओर मुँह करलो । करवट बदल कर अर्थात पीठ देकर मुझे क्यो दुखी करते हो । तेरी करवट भली नहीं है भली तो करवत (गलबांही) है । इसलिये मेरी विनय सुनकर गले से चिपट जा । तुम्हारा जैसा कंत और हमारी जैसी काता हमारे तुम्हारे जमाने मे तो कोई हुए नहीं हैं । अरे (दुनियांदार) लोगों तुम्हारा अब विश्वास जाता रहा है और मैंने तो अपने मन को प्रभु-प्रियतम मे लगा लिया है ।

\+ + +

"मै बेदनि कासनि आखू , हरि बिन जिव न रहै कस राखू ।
जिव तरसै ल्यौं आसरु तेरा, करहु सँभाल न सुर मुनि मेरा ।
विरह तपै तन अधिक जरावै, नींद न आवै भोज न भावै ।
सखी सहेली गरब गहेली । पिय की बात न सुनहु सहेली ।
मै रे दुहागिनि अघ कर जानी । गया सो जोबन साध न मानी ।—रैदास-(सत सुधासार)

\+ + +

अर्थात —मैं वैद्य को क्या रोग बताऊ ।

प्रियतम के बिना यह जीव नहीं रहता, इसे किस विधि से रक्खूं । जब यह जीव तरसता है तभी तेरा आसरा लेती हूँ । मेरी सँभाल तो तुम्हीं करो क्योंकि मेरे तो संभाल करने वाला कोई ऋषि, मुनि और देवी, देवता भी नहीं है ।

जो साथिन है वे अभिमानिनी हैं । और हे सखी उस पति (परमेश्वर) की बात न पूछो । मैं तो

दुहागिन (दुर्भागी) रही। सिर्फ पाप कर्म करके ही मैंने जाने हैं। यौवन अब चला जा रहा है। कोई पूरी नहीं हुई।

+ + +

कहियो जाइ सलाम हमारी राम कूं। नैन रहे झड़लाय तुम्हारे नाम कूं।
कमल गया कुम्हलाय कलिया भी जायसी। हरि हर, वाजिद, इस वाडी में बहुरि न भँवरा आयसी।

—'वाजिद' (सन्त ...

अर्थात्—राम से जाकर हमारी नमस्कार कहना कि तुम्हारे दर्शन के लिये नैनो में झड़ी रही है।

कमल तो कुम्हला गया है। कलिया भी मुरझा कर गिरने वाली हैं। फिर इस वाटिका मे आकर क्या करेगा।

+ + +

इस आत्म समर्पण भक्ति को सिख गुरुओं ने भी अपनाया था उन्होंने भी कहा—

"मै मनि तनि विरहु अति अगला किउ प्रीतमु मिलै घरि आइ।
जा देखा प्रभु आपणा प्रभि देखियै दुख जाइ।
जाइ पुछा तिन सज्जणा प्रभु कितु विधि मिलै मिलाइ।"—श्री राग महला ४ घरू १

+ + +

मिलु मेरे प्रीतमा जिउ तुधु विनु खरी निमाणी।
मै नैणी नीद न आवै जीउ भावै अन्नु न पाणी।
पाणी अन्नु न भावै मरीऐ हावै बिनु पिरु किउ सुखु पाईऐ।—गौडी महला ३

+ + +

× × × ×

गुनु अवगुनु मेरो कछु न बीचारो।
नह देखिओ रूप रग सींगारो॥
चज अचार किछु बिधि नहीं जानी।
बाह पकरि प्रिय सेजै आनी॥
सुनिवो सखी कंति हमारो कीअलो खसमाना।
करु मसतकि धारि राखिओ करि अपुना किआ जानै इहु लोक अजाना॥

—आसा

अर्थात्—मेरे तन, मन में विरह की अत्यन्त तड़पन है। किसी तरह प्रीतम घर आकर जिसने अपने प्रियतम को देख लिया है। उसका दु:ख चला गया। क्योंकि प्रियतम के तो दे दु:ख चला जाता है। मैं अपने साजन से पूछती हूँ। प्रभु जिस विधि से तुम मिलते हो, उसी मिल जाओ।

× × × ×

मेरे प्रियतम मिल जाओ। तुम्हारे बिना मैं दुर्बल हो रही हूँ। मेरे नेत्रों की नींद उड़

और अन्न पानी कुछ भी नहीं भाते हैं। अन्न पानी अच्छा नहीं लगता है। जी मे मरने की आती है क्योंकि विना प्रियतम के सुख कहाँ है।

× × × ×

प्रियतम जब मेरे ऊपर निहाल हो गये तो उन्होंने न तो मेरे गुण अवगुणों को देखा और न रंग और शृंगार को।

चर्य्या (रोज मर्हि के रहन महन के ढंग) और आचार विचार की किसी विधि को भी जाना। बाँह पकड़ कर प्रियतम ने सेज पर सुला ली।

सखी! हमारे प्रियतम के खममाने के ढंग को सुना। अब प्रियतम से निवेदन है कि कोमल हस्त को मेरे मस्तक पर रक्खे रहो। अनजानो से भरा हुआ यह लोक भी क्या जानेगा? प्रीत ऐसी होती है।

सतों और गुरुओ के इन समस्त पदों मे आत्मा को नारी और परमात्मा को पुरुष मान कर विरह का रूपक बांधा है जो ईश-मिलन के लिये भक्ति की पराकाष्ठा मे होता है। इस प्रकार की भक्ति नाम "आत्म-समर्पण" भक्ति है।

भक्ति-भाव में हरिजनो ने ईश्वर को बालक, माता पिता, सखा और प्रियतम विभिन्न रूपों देखा है। इन भावनाओं के अनुसार ही उसे हँसाने, खिलाने, पालन पोषण करने और "बिगरे काज" सँवारने के लिये प्रेरित किया है।

गुरु-मत मे भक्ति को किसी भी संत सम्प्रदाय से कम महत्व नहीं दिया गया है।

भक्ति और योग

वैदिक आर्य्य यहि लोक और परलोक के सुखों की प्राप्ति के लिये कर्म, ज्ञान और उपासना को आधार मानते थे।

कर्मों में शुभ कर्म, कुकर्म दो भेद थे। चोरी, व्यभिचार, दगा, फरेब, अहंकार, ईर्षा द्वेष आदि कुकर्म अथवा त्याज्य कर्म समझे जाते थे। परोपकार, परहित, दान, क्षमा, दया आदि शुभ कर्म कहे जाते थे। शुभ कर्मों मे अग्नि-होत्र का एक विशेष स्थान था। यह अग्नि होत्र ही बड़े पैमाने पर होने के कारण यज्ञ कहलाए।

प्राचीन आर्य्यों का यह भी ख्याल था—जोकि पौराणिक काल मे पूर्णता को प्राप्त होगया था—कि अमुक्त जीवों के लिये उनके कर्मों के अनुसार या तो स्वर्ग नर्क मे जाना पड़ता है या विभिन्न योनियों मे भटकना पड़ता है। पुराणकारों ने इन योनियों की संख्या चौरासी लाख निर्धारित की थी और सात स्वर्ग और चौदह नर्क गिनाये थे।

पौराणिक आर्य्यों की दृष्टि में यह कोई नियम न था कि जीव को चौरासी लाख योनियाँ भुगतनी ही पड़ें। उनकी निगाह मे तो यह दंड प्रकार था ठीक वैसे ही जैसे कि ताजीरातहिन्द मे पाँचसौ दस दफायें हैं किन्तु वे किसी भी एक आदमी पर लागू नहीं होती बल्कि जो जैसा अपराध करता है वह वैसी ही सजा का भागी होता है। जैसे कि दगा फरेब के लिये दफा ४२० अथवा कत्ल के लिये ३०२ हैं। उसी भांति चौरासी लाख योनियाँ भी भिन्न२ अपराधों की सजा भुगतने के लिये कल्पना मे लाई गईं थीं। यथा कजूसों के लिये सर्पयोनि का उल्लेख था, योवन पर घमंड करनेवालों का गुबरीला कीडा बनने की कल्पना थी।[1]

१. जो जानै मैं जोवन वंतु। सो होवन विसटा का जतु।—सुखमनी

ऐसे अपराध जिनमे किसी भी योनिद्वारा सजा पूरी होने की संभावना नहीं थी। उन्हें भुगतने लिये चौदह प्रकार के नर्क थे और चूंकि समस्त कर्मों मे यज्ञ श्रेष्ठ कर्म थे। अतः यज्ञ करने वालों के लि स्वर्ग थे।

आर्य्यों की कर्म फिलास्फी का यही संक्षिप्त व्याख्यान है। ज्ञान फिलास्फी संसार को स्व को और जो ससार और स्वयम से ऊपर है। उसे समझने के लिये काम की चीज थी। जिज्ञासा, म चिंतन और हल ज्ञान-फिलास्फी के आधार थे।

यह निश्चित हो जाने तथा मान लेने पर कि ससार और हमारे से कोई ऊपर भी है और सबका नियंता तथा पोषक भी है तथा पूर्ण आनन्द उसकी प्राप्ति मे है। उपासना का प्रादुर्भाव हु और ज्यों ज्यों प्रभु-मिलन की उत्कण्ठा प्रबल हुई उपासना के विभिन्न प्रवाह हो गये। जिनमे योग भक्ति मुख्य हैं।

ज्ञान ने यह बताया कि परमात्मा है किन्तु उससे मिलन आत्मा का ही हो सकता है। आत्मा को परमात्मा का साक्षात् होने मे बाधा क्या है? वह दीवार कौनसी है? जो दोनों के बीच मे है प्रश्न का हल भी ज्ञान फिलास्फी ने किया। ज्ञान ने कहा, आत्मा तो चार कोषों से ढका हुआ पांचवाँ है। अन्न, प्राण, मन और ज्ञान कोषों के बाद आनन्दमय कोष है। आत्मा का मुख्य स्थान यही है।

जैसा हम अन्न खाते हैं। वैसा हमारा प्राण और मन बनता है। सड़ा गला अन्न खाने से कमजोर और मन मलीन रहेगा। जैसा मन वैसी बुद्धि। और बुद्धि ही ज्ञान की प्रेरक है। निष्कर्ष निकला कि ऐसा खाद्य सेवन करो जो प्राण को पुष्ट करने वाला, मन को निर्मल बनाने वाला सद्-बुद्धि का उत्पन्न करने वाला है। अतः परमात्म-प्राप्ति के लिये आहार भी एक विषय बन । अहिंसा, दया और आचार इस आहार-शास्त्र के अंग हुए।

अन्न पूर्ण मिलता है अथवा आवश्यकता से भी अधिक मिलता है और प्राण भी पुष्ट इन्द्रिय स्फूर्तिवान होने के कारण चचल होंगी। चचल इन्द्रिया अनिष्ट कर्म भी कर सकती है। इस का समाधान ज्ञान ने यह कह कर किया कि इन्द्रिया मन से बधी हुई है। वही इनका प्रेरक है अतः वृत्ति पर काबू पा लो। मन की वृत्ति पर काबू पाने का नाम ही संयम हुआ। सत्यंवद, प्रियम्वद, म परदारेषु मातृवत और परद्रव्येषु लोष्टवत् संयम शास्त्र के अंग हुए।

शरीर की शुद्धि, प्राण की शुद्धि, मन की शुद्धि और बुद्धि की शुद्धि केवल आत्मा की के लिये अनिवार्य सिद्ध हो गये।

शरीर की शुद्धि ने स्नान, उबटन, क्षौर, मर्दन और व्यायाम को जन्म दिया। प्राण की श अरण्य निवास, उद्यान भ्रमण, ब्रह्मचर्य्य और प्राणायाम को जन्म दिया। मन की शुद्धि ने ध्यान, धारणा और अन्तर्वृत्ति को जन्म दिया। बुद्धि की शुद्धि के भावों ने सत्सग, स्वाध्याय और शुभ के निर्णय तथा स्थित-प्रज्ञता को पैदा किया।

इस प्रकार आत्मा के परमात्मा तक पहुँचने तथा तदाकार होने का जो राज मार्ग बना व निम्न भाति सामने आता है।

१—शरीर को स्वच्छ और स्वस्थ रक्खो। उसे शुद्ध व स्वस्थ रखने के लिए—न्हाओ धोओ करो, मर्दन करो और सात्विक आहार करो तथा श्रम एवं व्यायाम करो।

२—मन को स्वस्थ रक्खो। कायिक वाचिक, और मानसिक किसी प्रकार का पाप न करने से मन स्वच्छ और स्वस्थ रहता है। किसी को कटु वचन कहना, किसी की निन्दा करना, झूठ बोलना आदि वाचिक पाप हैं और किसी को पीटना, किसी का द्रव्य हरण करना, बुरी दृष्टि से देखना, दुर्गन्ध ... योनि ससर्ग करना आदि कायिक पाप हैं। किसी के अहित की योजनाए बनाना। बुरे विचार करना मानसिक पाप हैं।

३—प्राणों को सबल और स्वस्थ बनाओ। प्राणों की सबलता सुगन्धित द्रव्यों युक्त स्वच्छ वायु सेवन और प्राणायाम से होती है।

४—बुद्धि का सदुपयोग करो। बुद्धि के सदुपयोग की प्रेरणा स्वाध्याय और सत्संग से होती है और यदि बुद्धि अच्छी हो तो मन को सुमार्ग पर डाल सकती है। ज्ञान को जागृत कर सकती है। जगा हुआ ज्ञान ही परमात्मा और जीवात्मा को मिलाने वाला है।

५—आत्मा को ईश्वरोन्मुख कर दो।

ऊपर के समस्त प्रयत्नों के पूर्ण होते ही आत्मा ईश्वरोन्मुख हो जाती है।

बस इस सारे ही साधनों से सज्जित होने का नाम योग था। योग से जीवात्मा परमात्मा को प्राप्त करता है और उसमें लीन हो जाता है।

ज्ञान से जीवात्मा अपनी स्थिति का बोधत्व अथवा सजगता प्राप्त करता है। मन से वह ... बन्धनों को तोड़ता है और प्राण से क्रियाशील अथवा स्फूर्तिवान रहता है। अन्न प्राणों का आधार है

अत. जीवात्मा के परमात्म-प्राप्ति मे प्राण मन और ज्ञान सभी की सहायता अपेक्षित है। और इन सभी साधनों को यथावत जुडाने अथवा प्रयोग मे लेने का नाम ही योग है।

योग और भक्ति अर्थों मे अलग अलग भले ही हैं किन्तु लक्ष्य अथवा साधन दोनो का एक ही है। योग का अर्थ मिलना है और भक्ति का अर्थ अलग करना है। योग मन को प्रवृत्त करता है साधना मे। प्राणों को प्रयुक्त करता है ध्यान मे। भक्ति मन को अलग करती है माया मोह और अहम् से प्राणों को चिन्ता से।

योग का आधार ज्ञान है और भक्ति का आधार श्रद्धा और प्रेम। योगी परमात्मा का ...त्कार करता है और भक्त उसमें अपने को खो देता है।

सिख गुरुओं ने स्वर्ग, नर्क, चौरासी लाख योनि, कर्मफल, और यम और उसके दूत एव ... (चित्र गुप्त) का अस्तित्व वैसा ही माना है जैसा पौराणिक काल के आर्य्य मानते थे किन्तु उन्होंने ती... श्राद्ध और पूजा अर्चा को उसी रूप मे स्वीकार नहीं किया।

ईश्वर के मिलने के जो दो मार्ग योग और भक्ति थे। उनमें से उन्होंने भक्ति को प्रधानता दी। ... योग को भी अपनाया किन्तु योग के हठ अग को नहीं अपनाया। प्राणायाम मे से रेचक कुम्भक को छो... दिया किन्तु जप को अपना लिया।

हठ योग के नेति धोती और वस्ती आदि षट कर्मों को अग्राह्य कहते हुए भी उन्होंने हठ योगियों के इस कथन को स्वीकार किया कि नाभि कमल मे अमृत झरता है और उसकी ऊर्ध्व गति होने प... अमृतपान किया जा सकता है।

हठ योग के एक अंग (नासा) स्वर विज्ञान मे उन्होंने इड़ा, पिंगला का वर्णन किया है किन्तु व...

अर्थात्—बुरे कर्मों के लिये श्रम और गुरु निन्दा पचते नहीं हैं। इनका कुफल भोगना ही है। और जब मनुष्य भ्रम मे भूल जाता है घने दुख उठाता है। (अंत मे) जमदूत उसकी हड्डी ले को तोडकर खलिहान बना देते हैं।

अन्त.करण तो विष मे भरा हुआ हो और मुंह से मीठा बोले। ऐसा आदमी बाध कर जमपुर जाया जाता है जहाँ उसकी कुटाई होती है।

× × × ×

"ऐथै कमावै सो फलु पावै मनमुखि है पति खोई।

जमपुरि घोर अन्धार महतुगुबारु ना तिथै भैण न भाई।"—वडहंस महला ३

अर्थात्—यहा जो हम करते हैं उसी के फल भोगने पडते हैं। यह मनमुख होने का नतीजा है यमपुरी मे भयानक अन्धेरा है और गहरे गुबार (धुआं) मे ढकी हुई है। वहाँ अपना कोई नहीं है।

"लालचि लागै नामु विसारिओ आवन जावन जनमु गइआ।

जा जमु धाइ केस गहि मारै सुरति नही मुख काल गइआ।

अर्थात्—लोभ मे पड़कर परमात्मा के नाम को विसार दिया। जिससे आवागमन मे ही जन्म बीत गये। कितनी बार केस पकड़ कर के जम ने मार लगाई है। यह याद ही नहीं क्योंकि बहुते समय काल के मुंह मे चला गया।

लेकिन जम का त्रास किस प्रकार दूर हो इस पर गुरुओं ने कहा है—

'एक ऊपर जिस जन की आसा। तिसकी कटिऐ जम की फासा।

अर्थात्—जिस मनुष्य की आस एक (परमात्मा) मे ही लगी रहती है। उसके लिये जम फां कट जाता है।

जम की भाति ही गुरुओं ने चित्र गुप्त को भी याद किया है गुरु नानक देव ने कहा है—

"गावति तुधनोचितुगुपतु लिखि जाणनि लिखि धरा विचारै" (सोदरु म० १)

अर्थात्—कर्मों का हिसाब रखने वाला चित्र गुप्त भी तुम्हारा ध्यान करता है।

संत कबीर ने तो झुंझला कर कहा था—

"बाबा अब न बसउ इह गाउ। घरी घरी का लेखा मागै काइथु चेतू नाउ।"

अर्थात्—अब मैं (जीव) इस (काया) नगर मे नहीं बसूंगा क्योंकि चित्र गुप्त घडी-घड़ी हिसाब मागता है। (राग मारू)

"अधिक जनम भ्रमे जोनि माहि। हरि सिमरन बिनु नरक पाहि।

स्वर्ग नर्क —बसन्त महला ५ घरु १ दुतुके

बैकुंठ गोबिंद चरन नित धिआउ। मुकति पदारथु साधू सगति अमृत हरि का नाउ। (सारग महला ५

"ईहा दुखु आगै नरकु भु चे बहु जोनि भरमावै। —सारंग महला ५

अर्थात्—ईश्वर के सिमरन को भूल जाने से अनेको योनियों का भ्रमण और नरक वास है।

१. यहा यह ध्यान में रखने की बात है कि नरक दड भी सावधि (मियादी) है। जोकि पाप के माप के अनुसार निश्चित है।

गोविन्द के चरणो के नित के ध्यान से बैकुंठ मिलता है। साधु संगति मुक्ति का हेतु और नाम अमृत है।

हरि के भूल जाने से यहां दुख है और आगे (मरने पर) नरक तथा योनियो का भ्रमण है।

योगियों का कहना है कि नाभि चक्र के ऊपर एक सर्पिणी रूप नाड़ी है। उसे उलट दिया तो ब्रह्मांड से जो अमृत श्राव होता है उसका रसास्वादन योगी स्वयम कर सकता है गुरुओं ने इस ५ मे कहा है.—

अमृत श्राव "अदिसटु अगोचरु पार ब्रहमु मिलि साधु अकथु कथाइआ था।
अनहद सबदु दसम दुआरि वजिओ तह अमृतु नाम चुआइआ था—(मारु महला ५)

अर्थात्—अदृश्य और न समझ मे आने वाले परमात्मा के सम्वन्ध मे एक साधु ने मिलने : विचित्र कथा कही थी कि जब दसवे द्वार (ब्रह्माड) मे अनहद शब्द का रव हुआ तो वहा अमृत स्राव हुआ।

इसी बात को भगत वेणी जी ने इस प्रकार कहा था —

इडा पिंगला और सुखमना तीन बसहि इक ठाईं।
वेणी सगमु तह पिरागु मन भजन करे तिथाई।"

× × × ×

उपजे गिआनु दुरमति छीजे। अमृत रस गगनतरि भीजे। (रामकली)

निरगुनी संतों ने एक ऐसे लोक की कल्पना की थी जहाँ केवल ईश्वर के भक्त ही जा ` सिख गुरुओं ने इस प्रकार के एक स्थान की कल्पना की है और उसे सुख महल दिया है यथा—

सुख महल "सुख महल जाके ऊंच दुआरे। ता महि बसहि भगत पिआरे।
सहज कथा प्रभ की अति मीठी, विरले काहू नेत्रहु डीठी। ।रहाउ।
तह गीतनाद रवारे सगा। अरा सत करहि हरि रगा।
तह मरणु न जीवणु सोगु न हरखा। साच नाम की अमृतबरखा।—सूही महला ५

अर्थात्—उस सुख महल (आनन्द भवन) के ऊंचे-ऊंचे दरवाजे है। उसमें बस्ती भगत ले है। वहां प्रभु की सहज मधु कथाओं का कीर्तन होता है। किसी विरले ने ही उसे नेत्रो से देखा : तहाँ नृत्य के साथ (हरि) गीतों का घोर रव होता है, और सत लोग हरि के साथ मिलकर रग हैं। वहा मरण जीने का झंझट नहीं। न शोक और हर्ष है। वहाँ तो हरि नाम की अमृत ' मुख्य है।

गुरु अर्जुनदेव जी ने रामकली राग मे इसी 'सुख महल' को 'आनन्द भवन' के नाम से ५ किया है। गुरु नानक देव ने इसी सुख महल (आनन्द भवन) को सचखंड कहा था। उनका "सच खड वसै निरंकारु। करि करि वेखै नदरि निहाल।" —जपुजी

भावातिरेक में गुरुओं ने इस सचखड को सुख महल, आनन्द भवन कहने के सिवा अनुभव और बेगमपुरा नाम भी दिये हैं। गुरु अर्जुन देव ने तो यहा तक कहा है कि "इन्द्रपुरी महि मरना। ब्रह्मपुरी निहचल नहीं रहना। शिवपुरी का होइगा काला।" अर्थात् जिसका विनाश नहीं वह यह "सुख महल" अथवा सचखंड ही है।

यह सचखंड कहा है। इसका कुछ-कुछ पता नानकदेव जी की पवित्रतम वाणी जपु जी से चलता है (पौडी ३५ और ३६)

पहिले धर्म खंड है फिर ज्ञान खड तीसरा सरम (शील) खंड है चौथा कर्म और पाचवा सच खंड है।

इनमें धर्म खड मे परमात्मा धरम साल अथवा धर्मराज के रूप मे सृष्टि रचता और मनुष्यों के कर्म फलों के निर्णायक का काम करता हुआ बताया गया है। वहाँ उन्हीं को प्रवेश मिलता है जो कच्चे नहीं हैं और सच्चे सिद्ध हुए हैं क्योंकि यह दरबार ही सच्चा है। कहने का मतलब यह कि जो लोग अपने जीवन में सच्चे उतरते हैं वे इस (धर्म खण्ड) लोक को प्राप्त होते हैं।

ज्ञान खण्ड मे यह विवेचन किया जाता है कि कितनी प्रकार की वायु हैं ? कितने जल और वैश्वानर हैं[1] तथा कितने कान्ह (विष्णु) और महेश हैं। अनेक रूप रंग और केशों से रचना करने वाले कितने ब्रह्मा हैं।[2]

काम मे आने वाली कितनी भूमियां हैं और मेरु (पहाड़) कितने हैं। कितने ध्रुव देश हैं और कितने (उप=दूसरे+देस) दूसरे देश हैं। कितने इन्द्र हैं कितने चन्द्र और सूर्य्य हैं और कितने इनके मडल-देश हैं। (मंडल देश से अभिप्राय सौर मंडल अथवा सौर परिवार चन्द्र मडल आदि से है) इन मडल देशों में कितनी प्रकार के सिद्ध-बुद्ध और नाम है तथा देवियों के कितने प्रकार हैं। कितने देव, दानव, ऋषि, मुनि, और कितने रतनागार एवं समुद्र हैं। आदि आदि।

इस प्रकार ज्ञान खड मे ज्ञान की ही प्रबलता है अर्थात् वहां ज्ञान विज्ञान का लेखा जोखा रहता है। वहा शब्द-विनोद का घना आनन्द है।

शील (सरम) खंड मे वाणी सौंदर्य अथवा वाणी की मधुरता ही प्रमुख है। उसकी रचना अति विचित्र है। वहां की विचित्रता का वर्णन नहीं किया जा सकता। जो कोई वहा के सम्बन्ध मे कहेगा तो पीछे पछतायेगा कि मैं तो उसका कुछ भी नहीं कह सका। वहा पर सुरति (स्मरण) मति मनन, बुद्धि और शूर वीर व सिद्धों की शुचिता की रचना होती है।

कर्म खंड मे वाणी प्रबल है। उसमें केवल योद्धाओं, महावीरो और शूरवीरों का प्रवेश है और किसी का नहीं। उनमें परमात्मा रामरूप मे बसता है। वहा शाति सीता के यश गान के रूप में है। वे लोग जो कि वहां रहते हैं न तो मरते हैं और न ठगे जाते है क्योंकि उनके मन मे परमात्मा रामरूप मे बसते हैं।

सचखंड में स्वयम् निरकार परमात्मा का वास है। जहां से वह प्रत्येक खंड और खंड मडलों तथा

१. कहते हैं ४९ प्रकार की वायु सात प्रकार के जल और पाच प्रकार के वैश्वानर (अग्नि) हैं।

२. ब्रह्मा विष्णु, और महेश के सम्बन्ध में गुरु नानकदेव के ये शब्द भी विचारणीय हैं। एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु। इकु संसारी इकु भडारी इकु लाइ दीवाणु। जपु

अर्थात—एक मां ने युक्ति पूर्वक तीन बच्चे शिष्य रूप से जन्मे। उनमें से एक तो संसार को संवारने वाला हुआ। दूसरा भडारी अर्थात पालन कर्त्ता बना, तीसरा दीवाल अर्थात दंडधिकारी बना।

विभिन्न प्रकार के लोकों पर प्रसन्न दृष्टि डालता है तथा उन्हे नियत्रण मे रखता है। वहीं से देखने (सभालने) और विनिष्ट करने के विचार (आयोजन) करता है।

गुरु गोविन्दसिंह जी ने इस सच खंड का और भी भव्य चित्र खींचा था।

अपनी रचना 'विचित्र नाटक' में गुरु गोविन्दसिंह जी ने शरीर धारण से पूर्व जो कुछ उसका वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है —

"उत्तरा खंड मे एक हेमकूट पर्वत है। उसके सात शृंग (शिखर है) यह सातों शिखर शोभा चांदी के कलसों की तरह बढाते हैं। प्रात:काल मे जब सूर्य किरणें इन चोटियों पर इनका रंग देखते ही बनता है। इसे दूर से देखने से मालूम पडता है मानो तप्त सोना चमक रहा

इन चोटियों के नीचे एक ढलाव है। जहां समथल है। वहां स्वच्छ पानी का स्रोत भी की विचित्र माया यह है कि इन बर्फीली चोटियों के बीच यह स्रोत गर्म पानी देता है।

यहां एक छोटी-सी किन्तु मनोहर वाटिका है। उस वाटिका मे एक सुन्दर कुटिया है। इसी मे गुरु गोविन्दसिंह जी कहते हैं कि मैंने तपस्या की थी।

यहीं से तपस्वी गुरु गोविन्दसिंह जी की श्रुति रस और रंग के देश को पार करके होती हुई अनन्त में पहुंची थी।

उस अनन्त का वर्णन विचित्र नाटक के अनुसार इस प्रकार है वह अनन्त निर्जीव और नहीं किन्तु सजीव है और स्वयम् प्रकाशमान चेतना है। वह अनन्त मूर्ति अमूर्ति और अकाल वह अनन्त अनादि अयोनि और आनन्द स्वरूप है किन्तु ऐसा नहीं जैसा हम समझते है समझ से बाहर की और उसी के समझने की चीज है। वह स्वयम् अक्रिय है किन्तु होता सब करने से है। वह अनयन है किन्तु देखता सब कुछ है और सारा ससार जो देखता है वह देखने मिलती उसी मे है। अनन्त मे जो यह चमत्कार है इसका नाम 'आयुस' है। 'यह आयुस' ही कल्याण के लिये विशिष्ट आत्माओं को संसार में भेजता है।

वह अनन्त निर्जन भी नहीं है। इसमे बस्ती है। घर ऐसे पदार्थों के बने है जिनके लिये भाषा मे कोई शब्द नहीं है। अर्थात् ससार के मानवी घरों से यह विचित्र है।यह तो न पुराने न जीर्ण शीर्ण सदैव ही एक से रहते हैं। यहा न अपराधी हैं और न अपराधों को रोकने वाले अपराध ही नहीं। फिर यह मकान ऐसे हैं जब जैसी इच्छा करो बन जाते हैं। यह विचारों से सूक्ष्म-किसी वस्तु के बने है इनमे जो रहते है वे भी प्रकाश मूर्ति है। उनके चेहरे सूर्य से प्रकाशवान और चन्द्र से भी अधिक सौम्य हैं। खाने को यहा नाम-रस और कीर्तन नामक पदार्थ ही तृप्ति होती है यहां किसी को भूख नहीं। और है तो यही कि अनन्त के मध्य मे जो यह नगर अविचल विश्राम रहे। यहा फूल है किन्तु तोडने से वे घटते नहीं। इस नगरी के परे एक है वह बिलकुल दिव्य उसकी उपमा नहीं दी जा सकती। दीवारे भी तो प्रकाश की ही बनी हैं। यह महल सारे ससार के प्रकाश का केन्द्र है। संसार को जो भी कुछ मिलता है या कुछ मिलता है या ससार मे जो भी कुछ है उसका पसारा यहीं से होता है। वहां का प्रकाश चौंधियाता नहीं ठंडक देता है। इस महल मे एक सिंहासन है वह भी प्रकाश की किरणों से ही पडता है। इस सिंहासन पर जो ज्योति है वही वाहि गुरु हैं। वही जगत का पसारा है। इस निकट ही मुक्त पुरुषों को स्थान मिलता है। वे भी ज्योति मय ही दिखाई देते हैं।

मुक्ति-पथ

इस सचखंड की प्राप्ति एवं ईश मिलन के लिये जो साधन एव सीढ़ियां ग्रन्थ साहब मे यत्र-तत्र वर्णन की है उन्हें यदि एक स्थान पर संग्रह कर दिया जाय तो गुरुमत का मुक्ति-पथ इस भांति बन जाता है।

मुक्ति के इच्छुक को पहले संसारी मोह से निवृत्त होना पडेगा। क्योंकि गुरुनानकदेव ने कहा है :–

"परविरती नरविरति पछाणै। गुरु कै संगि सबदि घरु जाणै।

किसही मंदा आखि न चलै सचि खरा सचिआरा हे।" मारु महला १

अर्थात् पहले तो किसी सत गुरु से शब्द (ईश्वर) के घर के बारे मे जान ले कि वह कैसा है और किस प्रकार प्राप्त हो सकता है। फिर प्रवृत्ति और निवृत्ति का ज्ञान प्राप्त करले और किसी को बुरा कह कर न चले अर्थात दूसरों के अवगुणों को देखने की बजाय अपने अवगुणों को ढूंढे और अपने ही को खरा और सत्यवादी बनाये।

इस पद मे ये बातें कही गई हैं –ईश्वर के घर की जानकारी प्राप्त करना, प्रवृत्ति निवृत्ति का बोध, दूसरों की निन्दा स्तुति से अपने को अलग रखना और आपे को सुधारने का प्रयत्न अथवा अपने को सत्य मय बनाने को चेष्टा करना।

अनन्त काल से भारतीय दार्शनिक कहते आये हैं कि ईश्वर तो महान् से महान् है वह अगम् है। अगोचर है। अपरम्पार है। दूर से दूर है किन्तु सूक्ष्म से सूक्ष्म और निकट से निकट भी है। यही बात गुरुओं ने भी कही है जैसा कि इन पदों से स्पष्ट होता है।

"वडा साहिब ऊँचा थाउ। ऊँचे उपरि ऊँचा नाउ॥

ए वड ऊँचा होवे कोइ। तिस वडे कउ जाणै सोइ॥"—जपु जी २

× ×

"पार ब्रह्म अपरम्पार देवा। अगम अगोचर अलख अभेवा॥"—मारु महला ५

× ×

"जब देखउ तब सभ किछु मूलु, नानक सो सूखम सोई असथूल।"—सुखमनी ४

× - ×

"एक पुरख में तेरा देखिआ, तू सभना माहि रवंता।"—सोरठ महला १

अर्थात्–परमात्मा बहुत बड़ा है। उसका स्थान भी बहुत ऊँचा है। ऊंचे से ऊंचा उसका नाम है। वह कितना बडा और कितना ऊंचा है। इसे तो वही बता सकता है जो उससे भी बडा और ऊंचा हो।

× × × ×

वह पारब्रह्म परमात्मा अगम्य है। इन्द्रियों की पहुँच से बाहर है। न उसे देखा जा सकता न उसके भेदों को जाना जा सकता है।

× × × ×

जब हम अधिक गहराई से उसे देखते हैं तो वह सब कुछ का मूल (आधार) दिखाई देता स्थूल भी है और सूक्ष्म भी।

एक अपूर्वता (अनोखापन) हमने और देखा है कि वह (महान् से महान् होते हुए भी) रमा हुआ है।

मोक्ष के आकांक्षी के लिये यही सहारा है कि वह सब जगह है और सब में है यहाँ घट ही माहिं समा रहा है और उसे वन में अथवा पर्वतों में खोजने के लिये जाने की आवश्यकता

जब मुमुक्षु को यह विश्वास हो जाय कि ईश्वर सब में है और मेरे घट में भी है। तब न की निन्दा करे और न खुशामद "स्तुति निन्दा दोनों त्यागे खोजे पद निर्वाना" और न किसी की करे। इससे चित्त निर्मल होगा। निर्मल चित्त में ही परमात्मा का प्रकाश होता है।

यह पता जब चल गया कि ईश्वर का घर तो अपने घट भीतर ही है तो फिर यह देखना है कौनसी ओट है जो हमें अपने भीतर बैठे परमात्मा को नहीं देखने देती है। गुरु कहते हैं कि ससार (माया) की अनुरक्ति अर्थात् मेरे तेरे में प्रवृत्ति।

माया से विरक्त होने के लिए गुरुओं ने निम्न शब्दों में सोये हुए लोगों को जगाया है।

सगि न चालसि तेरै धना, तू किआ लिपटा वहि मूरख मना।
सूत मीत कुटम अरु बनिता, इनते कहहु तुम कवन सनाथा॥
राज रग माइआ बिसथार, इनते कहहु तुम कवन छुटकार।
असु हसती रथ असवारी, झूठा डंफु झूठु पासारी।
जिनि दीए तिसु बुझै न बिगाना, नामु विसारि नानक पछताना॥—सुखमनी

× ×

जिनि कीता माटी ते रतनु, गरभ महि राखिआ, जिनि करि जतनु।
जिनि दीनी सोभा वडिआई, तिस प्रभ कउ आठ पहर धिआई॥

× ×

जिनि कीता मूड ते बकता, जिनि कीता बे सुरति ते सुरता।
जिसु परसादि नवै निधि पाई, सो प्रभु मनते विसरति नाही॥
जिनि दीआ निथावे कउ थानु, जिनि दीआ निमाने कउ मानु।
जिनि कीनी पूरन सभ आसा, सिमरउ दिनु रैनि सास गिरासा॥—गौडी गुआरेरी

अर्थात्—ओ मूर्ख मन, तेरे साथ न तो यह धन जायगा और न पुत्र, स्त्री, मित्र और जायेंगे, इनसे तू भला कैसे अपने को सनाथ मानता है और क्यों लिपटा हुआ है। राज (: यह तो माया का फैलाव है। इससे तुम्हारा कब छुटकारा होगा। हाथी, घोडे, रथ और अनेकों सवारियाँ सब ढोंग और मिथ्यापन का पसारा है और जिसने यह सब कुछ दिया है उसे तू नहीं है। पराई वस्तु अर्थात् धरोहर पर जान दे रहा है। तूने हरिनाम को छोड़ दिया है। इसके पछताना पड़ेगा।

× × × ×

जिस परमात्मा ने तुझ मिट्टी के पुतले को रतन का रूप दिया है। और गर्भ के भीतर यत्न से तेरी रक्षा की और जिसने तुझे यह शोभापन और वड़प्पन दिया है। उस प्रभु का ध्यान कर (नहीं फिर पछताना पड़ेगा)।

× × × ×

जिस परमात्मा ने तुझे मूढ़ से ज्ञानी और वेसुरति (नासमझ) से सुरतिवान (...) वनाया है। तथा जिसकी कृपा से नवोनिधि प्राप्त की हैं, उस प्रभु को मन से विसार न देना। परमात्मा ने विना सहारे वाले को सहारा और विना मान वाले का मान दिया है तथा जिसने स... आशाओं की पूर्ति की है उसे प्रत्येक श्वास के साथ याद करो।

गुरुओं ने विरक्ति-पक्ष में यह भी कहा —

"वालकु मरै वालक की लीला, कहि कहि रोवहि वालु रगीला।"

× × × ×

"भरि जोवन मरजहिकिजे, मेरा मेरा करि रोवीजे।"—मारू महला १

अर्थात्—वालक मर जाता है तो वालक के चुलवुल पन और उसके रंग ढग को याद कर रोते हैं।

× × × ×

जवान मर जाता है तो "मेरे लिये वह ऐसा था। वह जीता होता तो मेरे लिये यह करता" ऐसा कह कर रोते हैं।

भाव यह कि वालक के मरने से हमारे मनोरजन और भावी आशाओं को धक्का लगता है और युवा के मरने से हमारे हितों और स्वार्थों को चोट पहुँचती है। इसलिये रोते हैं वरना कोई किसी के लिए नहीं रोता है। गुरुओं के इस उपदेश के साथ हमें याज्ञवल्क्य ऋषि का वह उपदेश याद आता है जो उन्होंने मैत्रेयी को दिया था कि हे मैत्रेयी! पुरुष स्त्री को इसलिये नहीं प्यारा है कि वह पुरुष है अपितु इसलिये प्यारा है कि वह उसकी आकांक्षाओं को पूरी करता है और स्त्री पुरुष को इसलिये प्यारी नहीं है कि वह स्त्री है। अपितु इसलिये प्यारी है कि वह उसके अभाव की पूरक है।

इस प्रकार संसार से विराग का उपदेश देते हुए गुरुओं ने वताया है कि माया से वचना यदि हो तो ईश्वर की ओर (हरि-उन्मुख) हो जाओ क्योंकि —

"जह अछल अछेद अभेद समाइआ।
ऊहा किसहि विआपत माइआ॥"—सुखमनी म० १

अर्थात्—जहाँ केवल परमात्मा का ध्यान है वहाँ माया की व्यापना नहीं हो सकती।

मनुष्य ससारी वस्तुओं को पराई अर्थात् ईश्वर की समझते हुए उन्हें इस भाति वरते कि ये ईश्वर की धरोहर है। धरोहर मे मेरा मोह न होना चाहिए। क्योंकि —

"वसतु पराई अपनी करि जाने।
हउमे विचि दुख घाले॥—सुखमनी महला १

अर्थात्—पराई वस्तु के अपनी समझने मे अहम् पैदा होता है जो दुख का कारण है। वल्कि कवीर के शब्दों मे यह भाव होना चाहिये कि —

"मेरा मुझको कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर। तेरा तुझको सोपते क्या लागै है मोर॥"

गुरु नानक कहते हैं कि बस इस वृत्ति को धारण करें —

"राम जपुहि अन्तरि गति घिआने ।

लालच छोडि रचहु अपरम्परि इहु पावहु मकति दुआरा ।।" - मारु महला १

अर्थात्—अन्तः करण मे ध्यान पूर्वक राम का भजन करो। लोभ लालचों को छोड़ उस अपर परमात्मा के रग मे रंग जाओ। बस तुम्हें मुक्ति का द्वार मिल गया ऐसा समझ लो और इस . नाम ही ब्रह्मज्ञान है जो वैराग्य से ही प्राप्त हो सकता है।

जहाँ इस प्रकार का वैराग्य हुआ नहीं कि मनुष्य के ज्ञान कपाट खुल जाते हैं। वह बन जाता है।

यह एक स्वय-सिद्ध सिद्धान्त है कि यह ससार सागर अनेक संशय रूपी विकारों से भरा है।सशयों का निवारण ब्रह्मज्ञानी ही कर सकता है।यह एक गोपनीय अथवा रहस्य पूर्ण बात है। वही समझ सकता है जिनकी आत्मा को किसी ब्रह्मज्ञानी ने जगा कर इस रस का आस्वादन कराया

क्योंकि —

गिआनु अजन मै भजना देखु निरजन भाइ ।

गुपतु प्रगटु सभ जानिए जे मनु राखै ठाइ ।।"—श्री राग महला १

अर्थात्—क्योंकि ज्ञानांजन ही संसार के माया मोहों को नष्ट करने वाला है। इसी से को देखा जा सकता है। ससार और ईश्वर के जो रहस्य है, वे भी इसी से जाने जा सकते हैं। इसी मन को स्थिर रखा जा सकता है।

ज्ञान मन को समझा कर कह सकता है :—

"परिहरि कामु क्रोध झूठ निंदा तजि माइआ अहंकार चुकावै ।

तजि काम कामिनी मोह तजैता अजन माहि निरजन पावै ।।"

अर्थात्—काम, क्रोध, झूठ, निन्दा को छोड दे। इसके छोडने से माया छूट जायगी और खत्म हो जायगा और काम वासनाओं तथा कामिनी के मोह को भी छोड़ दे। इनके छोडने वाले को परम दृष्टि-गत होने लगता है।

लेकिन इस प्रकार का ज्ञान विना गुरु के नहीं हो सकता है। यथा :—

"भाई रे गुरु विनु गिआन न होई ।

पूछहु ब्रह्मे नारदै वेद विआसै कोई ।।"

अर्थात् —ब्रह्मा, नारद, और वेद व्यास चाहे जिससे पूछ लो वह यही कहेगा कि ज्ञान गुरु प्राप्त होता है।

१—"इहि ससारु विकारु सहजे रखि, तरिओ ब्रह्म गिआनी ।

जिसहि जगाइ पिआवै इहु रस, अकथ कथा तिनि जानी ।।"—राग गोडी पूर्वी महला ५

क्योंकि—

चारि पदारथ कहै सभु कोई । सिमृति सासत पडित मुखि सोई ।

बिनु गुर अरथु विचारु न पाइया । मुकति पदारथु भगति हरि पाइआ ।

(गौडी महला १)

+ + +

जनमि मरै त्रैगुण हित फारु । चारे वेद कथहि आकारु ।
तीन अवसथा कहहि वखिआनु । तुरी अवसथा सतिगुर ते हरि जान ।
(गौडी महला

\+ + +

अर्थात्—स्मृति, शास्त्र और प्रमुख पण्डित सब कोई ऐसा कहते हैं कि अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चार पुरुषार्थ हैं जो मनुष्य जीवन का लक्ष्य हैं किन्तु बिना गुरु के उपदेश के यह भाव विचार मे ही नहीं सकता है कि मनुष्य जीवन का जो अन्तिम लक्ष्य मुक्त पदार्थ है। वह हरि भगति से ही प्राप्त हो सकता

\+ + +

चारों वेदों का यह कथन है कि जीव का मरण जीवन उसके त्रिगुणात्मक प्रकृति के फंदे में पड़ने है। भाव यह कि प्रकृति के सतगुण की अधिकता से जीव अच्छे सात्विकी कर्म करता है और रजोगुण तमोगुण की प्रधानता से राजसी और तामसी कर्म करता है। यह कर्म ही उसको भली बुरी योनियो लाने ले जाने के कारण है।

जीव की तीन अवस्थाओं जाग्रत, स्वप्न और सुपुप्त की तो सब कोई व्याख्या कर सकते हैं चौथी तुरीय अवस्था का अनुभव तो हरि का जानने वाला सत-गुरु ही करा सकता है।

इस व्याख्या मे गुरुओं का अभिप्राय है कि गुरु ही ज्ञानी है। ज्ञानी और गुरु दो नहीं हैं। कि दुनिया के जितने भी महादेव, ब्रह्मा, गोरख, व्यास, नारद आदिक ज्ञानी थे वह गुरु थे ज्ञानी ही हो सकता है। और वही सत असत और मनुष्य जीवन तथा मक्ति के रहस्यों को बता सकता है। प्रकार गुरु मत का सम्पूर्ण उपदेश सार रूप से इस पद "परविरती नरविरती पछाणै गुरु कै स सवदि घरु जाने"। अर्थात् गुरु के सतसग से प्रवृत्ति निवृत्ति (परा अपरा विद्या, के रहस्य को समझ ले और शब्द (ईश्वर) के घर अर्थात् ब्रह्म विद्या को प्राप्त कर ले और साथ ही "किस ही मदा आखि न सचि खरा सचियारा है।" अर्थात दुनियां के दूसरे लोगो के अवगुणों को देखने की बजाय अपने को सत्य स्वरूप परमात्मा के अनुरूप बनाये।

लेकिन सभी लोग तो किसी भी सम्प्रदाय में मुक्ति के अभिलापी नहीं होते। अधिकाश तो में रहकर अपने जीवन को नेक बनाने के इच्छुक होते हैं। उन के लिए भी गुरुओं ने कुछ स्थिर किये थे।

उन्होंने सच्चा होने की सलाह तो सब को दी थी। कहा था —

बावा एहु लेखा लिखि जाणु। जित्थै लेखा मंगीए तित्थै होइ सच्चा निसाणु।

अर्थात् अपने भविष्य के लिए ऐसा लेखा (हिसाब) डालो कि जब वहा (परलोक में) माँगा जाय तो सच्चा उतरे। और

"अनदिन कीरतनु केवल वखयानु। गृहसत महि सोई निरवानु"

अर्थात्–गृहस्थ का केवल प्रतिदिन के हरि कीर्तन और हरि चर्चा से ही कल्याण हो जाता क्योंकि —

कल मैं एक नामु किरपानिधि जाहि जपे गति पावै।
और धरम ताके सम नाहित इहि विधि वेद बतावै। सोरठि म० ६

वैसे पूर्ण धर्म तो वह था जिसे लोग सतयुग मे वरतते थे किन्तु उसका ह्रास बराबर होता है यथा:—

सत युग साच कहै सभ कोई। सचि वरतै साचा सोई।
अंते धरम कला इक चूकी। तीन चरन इक दुबिधा सूकी।

+

दया दुआपुरि अधी होई। गुरमुखि विरला चीन्हे कोई।

+

इस कथन का अभिप्राय था कि जो लोग पूरा धार्मिक जीवन बिताना चाहते हैं, वे सत्य अ
वाले बनें। अपनी नेक कमाई में से दान पुण्य भी करते रहें।[1] और दीन दुखियों पर दया भाव र
हरि का सच्चे दिल से स्मरण करें। बस यही गृहस्थ के लिये कल्याण का मार्ग है। एक बात उन्होंने
के लिये और बड़े जोर की कही थी कि कोई किसी का शोषण न करे। उनके इस सम्बन्ध के र
मार्मिक है यथा —

"जे रत्त लगे कपड़े जामा होए पलीत। जो रत्त पीवें माणसा तिन कउ निरमल चीत।"

अर्थात्–कपड़ों को लगने वाला रक्त जब अमिट होता है तो उन लोगों के चित्त कैसे नि
जो मनुष्य का रक्त पीते हैं और इसी हेतु गुरु नानक ने अमीर मलिक भागों का भोजन गरीबों
में सना हुआ कह कर खाने से इन्कार कर दिया था।

१. घालि खाहि कछु हथहु देहि।
२. हिंसा तउ मन ते नहीं छुटी जीअ दया पाली।

अनुकूल-प्रतिकूल

ग्रन्थ साहब में जहाँ गुरु महानुभावो की अपनी वाणियाँ है। वहाँ अन्य,भगतों की भी है। भगतो की वे वाणियाँ है वे भी अधिकांशत. उन्हीं विचारों के निकटवर्ती थे जिनका कि गुरु मह प्रचार करते थे। अत. उन्होंने इस प्रकार के भक्तों की वाणियों का तो संग्रह किया ही साथ ही सम्बन्धी उन विधियों को भी 'ग्रन्थ साहब' मे स्थान दिया है जिन्हें कि कबीर, नामदेव, दादूदयाल रैदास प्रभृति संत मान्य करते थे।

इसी भांति जिन संतों अथवा भगतो से गुरुओं का मत नहीं मिलता था उनकी बहुत सी का ग्रन्थ साहब में खंडन भी किया है। इस प्रकार के सम्प्रदायों मे अवधूत, नाथ, आई, नारदीय थे। वैष्णव लोगों का मत गुरु-मत के निकट नहीं था किन्तु चूंकि श्री रामानन्द जी एक उदार वैष्णव इसलिये वैष्णवों के सम्बन्ध मे केवल इतना कहकर ही गुरु लोग चुप हो गये कि '—

वैसनो सो जिसु ग्रपरिसु प्रसन्न। विसनकी माइग्रा ते होइ भिन्न ॥
करम करत होवे निह करम। तिसु वैसनो का निरमल धरम ॥"—सुखमनी

अर्थात्—वैष्णव तो वह है जिससे अस्पृश्य (अछूत) भी प्रसन्न रहे और जो विष्णु की माया बचा हुआ हो। अर्थात् जिसे धन दौलत का मोह न हो। कर्म करते हुए भी निष्कर्म हो, (बिना फल इच्छा से किये कर्म निष्कर्म कहलाते हैं)। इस तरह का जो वैष्णव है उसका ही धर्म शुद्ध है। इसी मिलती जुलती बात किसी संत ने इन शब्दों में कही थी —

"वैष्णव जन तो तैने कहिए पीर पराई जाने रे।"

वैष्णवों की भाति ही उन्होंने भागवत लोगों के लिये कहा था कि सच्चा भागवत तो वह है जो:

"भगउती भगवत भगति का रंगु, सगल तिआगे दुसट का सगु।
मनते विनसै सगल भरमु, करि पूजै सगल पारब्रह्म।
साध सगि पापा मलु धोवै, तिसु भगवती की मति ऊतम है ॥"—सुखमनी

अर्थात्—जिसे एक भगवान की भक्ति का रंग लगा हो और जिसने सब प्रकार के दुष्ट संग को छोड़ दिया हो तथा जो मन के समस्त संशयों को दूर करके केवल पारब्रह्म का पुजारी बना हुआ हो। बस वही उत्तम भागवत है जिसने साधुओं के सतसग से अपने पापों को धो डाला है।

भागवत और वैष्णवों की भाति ही पंजाब मे उन दिनों साधुओं की एक सम्प्रदाय रामदासियों के नाम से भी प्रख्यात थी, उसके सम्बन्ध में भी गुरुओं ने कहा था :—

"जिसके मनि पार ब्रह्म का निवासु, तिसका नाम सति रामदास।"

× ×

"सगल संगि आतम-उदासु, ऐसी जुगति नानक रामदासु।"

अर्थात्—जिसके मन में केवल परमात्मा का निवास है। उसी को सच्चा रामदास क० सकता है।

× × × ×

सर्व प्रकार के झंझटों को छोड़कर जो अपने आत्मचिन्तन में रहता है। ऐसी ही युक्ति आदमी रामदास है।

ऐसा जान पड़ता है कि पंजाब में अथवा निचले भारत में कोई अस्पर्श (अपरस) नामक सम्प्रदाय था और यह लोग अपने को किसी से भी छू जाने से बचते थे। ऐसे लोगों को गुरुओं शब्दों में समझाया था —

"मिथिआ नाहि रसना परस, मन महि प्रीति निरंजन दरस

× ×

"पर त्रिय रूप न पेखे नेत्र, साध की टहल संत संग हेत।
करन न सुनै काहू की निंदा, सभतें जानै आपस कउ मंदा॥
गुरु प्रसादि बिखिआ परिहरे, मन की बासना मन ते टरै।
इन्द्री जीत पंच दोख ते रहत, नानक कोटि मधे ऐसा अपरस—सुखमनी

अर्थात्—जिसकी जिह्वा ने स्वादों को छोड़ दिया है। मन में निरंजन के दर्शन की ... पर स्त्री के रूप पर जिसके नेत्र चंचल नहीं हो उठते हैं। साधु सतों की सेवा में अपना समय ...ता। कानों से किसी की निन्दा नहीं सुनता, अपने को सबसे छोटा मानता है। गुरु के आशीर्वाद से समस्त और मानसिक विकारों को छोड़ दिया है। इन्द्रियजित होकर पाचों प्रकार के दोषों से मुक्त हो चुक ऐसा ही मनुष्य सच्चा अस्पर्श (अपरस) है जो करोडो में ढूढने पर मिलता है।

भारतवर्ष मे पंडितों का कभी भी कोई सम्प्रदाय नहीं रहा किन्तु वे सदैव ही स... अगुवा रहे है और प्रत्येक नये समाज संशोधक ने उनके सम्बन्ध में टीका की है। महात्मा बुद्ध था '—"पंडित तो वह है जिसके हृदय में ज्ञान का प्रकाश है दृष्टि मे समता है और जो प्राणियों नहीं समझता है। तथा जिसने अपने को वासनाओं से मुक्त कर लिया है।

इसी प्रकार गुरुओ ने भी कहा—

"सो पंडितु जो मन पर बोधे। रामनाम आतम महि सोधे।

× × × ×

वेद पुराण सिमृत बूझै मूलु। सूखमं महि जानै असथूलु।
चहु वरना कउ दे उपदेसु। नानक उस पंडित कउ आदेसु। —सुखमनी

अर्थात्—पंडित तो वह है जिसने मन को समझ लिया है और रामनाम को आत्मा दिया है। वेद पुरान और स्मृतियों के मूल भाव को समझ लिया है और इस सत्य को जिसने ... लिया है कि स्थूल भी सूक्ष्म का ही रूप है। और चारो ही वरणों को उपदेश देता है। ऐसा ... पंडित है और वही बलिहारी योग्य है।[1] उस समय के भारत मे कुछ सम्प्रदाय ऐसे भी थे जो यह

१. उस समय के पंडित शूद्र वर्णन को उपदेश देना पाप समझते थे।

थे कि आदमी इस जीवन में भी मुक्त हो जाता है।[1] इस प्रकार के विचार रखने वालो के लिए गुरु मत था कि—

"प्रभ की आगिआ आतम हितावै। जीवन मुकत सोऊ कहावै।
तैसा हरखु तैसा उसु सोगु। सदा अनदु तह नहीं बियोगु।
तैसा सुवरन तैसा उसु माटी। तैसा अम्रतु तैसी बिखु खाटी।
तैसा मानु तैसा अभिमानु। तैसा रकु तैसा राजानु।
जो वरताए साई जुगति। नानक ओहु पुरखु कहिए जीवन मुकति। —सुखमनी

अर्थात्—जिसने अपने आपको प्रभु की रजायुस पर छोड़ दिया है और जिसके लिये हर्ष, शोक, मिलन, वियोग सुवरन, माटी, अमृत, विष, मान, अपमान, राजा रंक सब समान है तथा जो प्रभु युक्ति पर चलता है वही मनुष्य इस जीवन में जीवन्मुक्त है। नारदीय सम्प्रदाय के पूजा विधान गुरुओं ने इस भांति कटाक्ष किया था—

"हिन्दू मूले भूले अखूटी जाही। नारद कहिआ पूज कराही।
अंधे गूंगे अन्ध अधार, पाथर लै पूजहि मुगध गवार
उहिजा आप डूबे, तुम कहा तारणहार। (वार बिहाग महला १)

अर्थात्—हिन्दू आरम्भ से ही गलती करते हैं कि अक्षय वट के पास जाकर नारद के द्वारा कही गई रीति से (मूर्ति) पूजन करते हैं। ये पत्थरों के पूजने वाले जब आप ही (मूर्खता) में डूब रहे तब यह औरों का क्या निस्तार करेंगे।

एक और स्थान पर इसी भांति कहा है कि "नारद करै खुआरी।" अर्थात् लोगो को सही राह पर जाने से यह नारद-पन्थी रोकते हैं।

कुछ साधु वैरागी कहलाते थे। यह प्रायः वैष्णवों का ही एक दल था जो लोग घर बार को छोड़ कर जंगलों और तीर्थों में जाकर भजन करते थे। उन्हें लोग वैरागी और उदासी दोनों नामों से याद करते थे। गुरु नानक स्वयम् वैरागी होगये थे, वैरागी लोग गृहस्थ में उलटना पसन्द नहीं करते थे। जब नानकजी जब से अपने परिवार को लेकर करतारपुर की धर्मशाला में रहने लगे तो उनसे वैरागियों ने पूछा भी कि तुम्हारा कैसा वैराग है तब अथवा ऐसे ही अन्य अवसर पर उन्होंने कहा था—

हरि की भगति रते बैरागी, चुके मोह पिआसा।
नानक हउमै मार पतीजे विरले दास उदासा। —आसा महला १ छन्द
गुर वचनी बाहर घर एकै नानक भया उदासी। मारु महला १

अर्थात्—वैरागी वह है जो मोह को छोड़ कर हरि भगति में अनुरक्त हो गया हो और जिसने अहम् को भी मार दिया हो। ऐसा आदमी चाहे घर रहे चाहे बाहर क्योंकि गुरु का उपदेश तो घर बाहर एकसा है। उसे कहीं भी पालन कर लो।

गोरख पंथी लोगो के हठ निग्रह के तो गुरु लोग कतई विरुद्ध थे जैसा कि नीचे लिखे पदों से पता चलता है।

१ शंकर मत के कुछ अनुयायी अपने को जीवन में मुक्त हुआ खयाल कर लेते थे।

निउली करम खट् करम करीजै । रामनामु विन विरथा सासु लीजै ।

× + × ×

सुण माछिन्द्रा नानक बोलै । वसिगत पच करै नहि डोलै ।

ऐसी जुगति जोग कहूँ पालै । आप तरै सगले कुल तारै ।—रामकली महला १

अर्थात्—हठ योग सम्बन्ध नौली आदि छहों कर्म विना राम नाम के व्यर्थ हैं।

× × × ×

मच्छीन्द्रनाथ के अनुयायी सुनो—नानक ने कहा—पांचों विकारों से बचाव करले वही योग है।

'आई पंथ' के लोगों से उन्होंने कहा था.—

"आई पथी सगल जमाती मन जीते जगु जीत।" (जपु)

अर्थात्—सच्चा "आई" तो वह है जो सव को अपनी जमात (सम्प्रदाय) का मानता जिसने मन पर कावू पा लिया है।

पंजाव के हरियाना इलाके मे साध लोगों का एक सम्प्रदाय था। उनके पड़ोस में ही नाथ उनसे ऊपर सिद्ध। इन लोगों के सम्वन्ध में गुरु नानक देव ने कहा था—"आपिनाथ नाथी सभ रिद्धि-सिद्धि अवरा साद।" (जपु)

अर्थात्—रिद्धियों (करामातों) के दिखाने वाले सिद्ध लोग और दूसरे साध लोग त इन सव का नाथ (मालिक) एक वही परमात्मा है जिसने सारी दुनिया को नाथ रक्खा है नकेल डाल रक्खा है। अत. इन सव को व्यर्थ की वातों को छोड़ कर उसी जगत् नाथ की शरण में चाहिए।

ये तो हैं वह वाते जिनका गुरु-मत के सस्थापकों ने विरोध किया। अब हम उन वातों पर डालते हैं जो उन्होने अन्य सन्त सम्प्रदायों की भांति ही ग्रहण करलीं थीं।

परमात्मा को निर्गुन भाव मे मानने वाली समस्त सन्त सम्प्रदायों ने अनहद नाद की दर्शन के आकांक्षियों का ध्यान दिलाया है। गुरु गोरखनाथ ने कहा था कि प्राणों के ब्रह्मरन्ध्र नासा तक पहुंचने पर नाद सुनाई-देता है जो गहिर गम्भीर और सार का है।[1] इन्द्रियों के दमन और ससार के विकारों से उदासीन रहने से यह अनह वजता है।[2] कवीर साहव ने इसी वात को यों कहा था.—"जव कुम्भक लीना। तह वाजै अनहद वीणा।"

अनहद

गुरु नानक देव ने अनहद के सम्बन्ध मे अपनी स्वीकारोक्ति इस प्रकार दी थी —पाच अनहद वाजे हम घर साजन आये।" (सूही महला १)

निर्गुनै सतों का खयाल था कि परमात्मा का जव निर्मल हृदय से चिन्तन किया ज ता ब्रह्माड मे एक अद्भुत प्रकार का शब्द होता है जो वड़ा ही अच्छा लगता है और यह निरन्तर ज इस सुन लेने पर फिर किसी वस्तु की इच्छा नहीं रहती। जैसे वीण पर सर्प मुग्ध होकर खेलने ल

१ सारम् सार गहिर गभीर गगन उछलिम्रो नाद।

२. अवघू दम को गहिवा उनमनि रहिवा ज्यू वाजवा अनहद तूर।

और हरिण चरना छोड़ कर आत्म-विभोर हो जाता है। अनहद को सुनकर वही दशा योगी अथवा की हो जाती है।

गगन मंडल अर्थात् ब्रह्माण्ड में इस अनहद को सुन वही सकता है जो उन्मनि अवस्था को कर लेता है गोरख, कबीर, नाम देव आदि सभी ने इस उनमनि पर जोर दिया यथा —

उनमनि

"उनमनि रहिबा भेद न कहिबा पीयबा निर्झर पाणी।—गोरख नाथ

× × × ×

पवन पति उनमनि रहन खरा। नहीं मिरतू न जनम जरा—कबीर—रामकली।

गुरुओं ने इसी मत को इस प्रकार व्यक्त किया जो हमारी समझ में कहीं अधिक सहज गम्य है "रसिक रसिक गुन गावहु गुरमति लिव उनमनि नाम लगान। अम्रितु रसु पीआ गुरसबदी हम न विरहु कुरबान।"

परमात्मा के मिलन के लिये जो मार्ग बहुत सोच विचार के बाद पुरातन ऋषियों ने तय किया वह था योग मार्ग। आगे चलकर योग मार्ग दो पगडंडियों में विभक्त हो गया एक हठ योग मार्ग दूसरा राज-योग-मार्ग। बौद्ध-मत के योगियों ने इन्हें वज्रयान और सहज यान परिणत कर दिया। सतकाल में हठ योग-नाथ, सिद्ध जोगियों और अवधूतों सीमित रह गया। कबीर के परवर्ती और उनसे प्रभावित दूसरे सन्तों ने सहज मार्ग को अपनाया। कि नीचे उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है—

सहजि

दादू भाडा देह का तेता सहजि विचारि।
जेता हरि बीचि अन्तरा, तेता सबै निवारि।—दादू दयाल
मन का भ्रम मनही तें भागा। सहज रूप हरि खेलन लागा—कबीर

गुरुओं ने इस सहजि के सम्बन्ध में इस प्रकार के अपने विचार प्रकट किये थे —

भाई रे गुर बिनु सहजि न होइ।
सबदेहीते सहजि ऊपजै हरि पाइआ सच सोइ।—श्रीराग महला ३

× × ×

सहिज सालाही सदा सद सहिज समाधि लगाई।—श्रीराग महला ३

× × ×

गुर कै चरनि कीओ राज योग।—गौडी म० अष्टपदी

× × ×

गुरु सत सभा दुख मिटै रोग। जन नानक हरिवर सहिज योग—बसंत महला १

समस्त निर्गुणी सन्तों की वाणियों में शून्य शब्द का व्यवहार हुआ है जो निर्जन और पारब्रह्म दोनों ही के लिये प्रयुक्त हुआ है।

गुरुओं ने कहा था —

शून्य

"सुन कला अपरम्परि पारी। आपु निरालमु अपर अपारी।
भावै कुदरति करि करि वेखे सुनहु सुन उपाइदा।"

इसी शून्य को दूसरे संतो ने जिस प्रकार अपनी वाणियो मे प्रयोग किया है उसके ु इस भांति है :—

"सु नि मडल में सोधिले, परम जोति परकास।"—कवीर

× × ×

सहज सुन्नि सब ठौर है, सब घट सबही माहि।
तहा निरजन रमि रहा, कोउ दुख व्यापै नाहि।—दादू दयाल

× × ×

वसती न शून्य, न बसती अगम अगोचर ऐसा।—गोरख

निरगुनी सन्तों मे इसी प्रकार की भाव-व्यजना सम्बन्धी अनेकों समता है। सुरति, शब्द, सत्य लोक, और निर्वाण का वर्णन लगभग सबका—कुछ ही अन्तरों से एकसा है।

इस प्रकार हम देखते है महात्मा बुद्ध और शंकराचार्य के बाद जिस निर्गुण कल्प-तरु ु वपन हुआ था। उसके पौदे की गोरख ने बाढ़ की। कबीर और उनसे प्रभावित नामा, दादू ने सींचा और गुरुओं ने उसे खाद देकर बड़ा किया और यह भी कहा जा सकता है कि उसको की। बस 'गुरु-ग्रन्थ साहब' से जिस 'गुरु-मत' की झांकी होती है वह वही निर्गुन पंथ है। ु और शंकर के पश्चात् पौदा अकुरित हुआ जो अनेकों एकेश्वरीवादी सन्तों द्वारा पालित- गुरुओं के हाथों मूर्त रूप को प्राप्त हुआ। आचार्य विनोवा भावे ने इस धर्म-वृक्ष (गुरु-मत) को के अधिक नजदीक बताया है।

सिखों का स्वर्ग

स्वग की कल्पना नई नहीं है और न यह दो चार सदियो से ही है। ससार में ऐसा कोई भी धर्म नहीं जिसने किसी न किसी रूप में स्वर्ग की कल्पना न की हो। वैदिक आर्यों से लेकर मूसावी, ईसाई, जरदुश्थी मुहम्मदी सभी ने स्वर्ग की कल्पना की है। नास्तिक लोगों ने भी निर्वाण और परमानन्द के रूप मे—आशिक तौर ही सही-स्वर्ग को माना है।

स्वर्ग कहाँ है ? यह प्रश्न होने पर उसके स्थान का भी पता दिया है। ईसाइयो ने चौथे आसमान पर औ। मुसलमानो ने सातवें आसमान पर अपने स्वर्ग (बहिश्त) का अस्तित्व माना है। जो लोग आस्मान को ठोस पदा नहीं मानते-और वास्तव मे वह ठोस है भी नहीं-वे इस बात का सहज ही उपहास उड़ाते रहे हैं। वैसे बात है सही यही कि आस्मान स्थूल न होने के कारण गिने भी नहीं जा सकते। किन्तु विज्ञान की अधिक खोज बताती है कि इस पोल मे भी मडल अथवा स्तर हैं। जहा का Timedphere (वायुमडल) (एक के बाद · का) अलग है। इस तरह के चार स्तरों का पता उन वैज्ञानिकों ने लगा लिया है जो मगल या चन्द्र की यात्रा प्रयत्नों मे लगे हुए हैं। इन स्तरों अथवा मण्डलों पर कैसा लगता है ? वहा का वातावरण कैसा है ? मन को प्रफुल्लि करने वाला है अथवा डराने वाला ? इसकी सूचना वैज्ञानिक शायद उस समय सही रूप में दे सकेंगे जब इन स्तर पर अड्डे कायम करना सभव हो जायगा।

यह हो सकता है कि पच्छिम (यूरोप) के प्राचीन ज्योतिषियों ने तारों की खोज के साथ ही इन स्तर (मडलों) का भी आभास कर लिया हो और ज्योतिषियों की उसी सूचना के आधार पर ईसाई लोगो ने यह कहा हो कि हमारा स्वर्ग चौथे आसमान पर है। मुस्लिम धर्म प्रचारकों के अपने बहिश्त को सातवे आसमान पर बताने के दो कारण हो सकते हैं एक तो यह कि ईसाइयों से ऊँचे पर अपने स्वर्ग को बताया दूसरे अरब अथवा मिश्र के नजू मियों (ज्योतिषियों) की जानकारी मे सात आसमानो (वातावरण) के स्तर जॅच गये हों।

पौराणिक आर्य्यों ने स्वर्ग को बैकुंठ नाम भी दिया है। और इसे विष्णुलोक में बताया है। उन्होंने स्वर्गों की गिनती भी दी है। "सात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिये तुला इक अग" मे तुलसीदास ने यही सकेत किया है। वह विष्णुलोक कहा है ? यह तो नहीं बताया गया किन्तु बताया उसे कहीं आस्मान मे ही है। जहा वह स्वर्ग है वहा कोई क्षीर सागर है। वहीं विष्णु रहते हैं। पौराणिक आर्य्यों में जो लोग शैव हैं वह शिवलोक में स्वर्ग मानते हैं। शिवलोक में कोई कैलाश है, वहाँ शिवजी रहते हैं। ब्रह्मा के उपासकों ने अपना स्वर्ग ब्रह्मलोक मे माना था।

पौराणिक लोगों से पहले के लोग जिन्हे वैदिक आर्य की संज्ञा इतिहासकार देते हैं। स्वर्ग को (सम्भवतया) इन्द्रलोक मे मानते थे जो देवलोक भी कहलाता था। इस स्वर्ग में सदा सुख ही सुख का भोग था। भोगों के फलों

का विधान नहीं था। दुख का नामनिशान न था। इन्द्रियां यहां जिन भोगों को प्राप्त करने में असमर्थ लालायित रह जाती थीं वे सब भोग इस स्वर्ग में थे। उपनिषद् काल तक ऐसे ही स्वर्ग की कल्पना आर्यों में आ रही थी। यम ने नचिकेता को इसी स्वर्ग का प्रलोभन दिया था।

इस स्वर्ग-सुखको वही लोग प्राप्त कर सकते थे जो शुभ कर्म कर सकते थे। शुभ कर्मों का सार पंच मह में केन्द्रित कर दिया गया था। इन पंच महाकर्मों को ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथि यज्ञ और बलिवैश्व नाम से पुकारा जाता था। सब प्रकार की ईश्वर प्रार्थनाएँ ब्रह्मयज्ञ में शामिल थीं और सर्व प्रकार के—द पाक्षिक[2], ऋत्विक[3], पार्विक[4] और समारोहिक[5] अथवा सोद्देश्यिक[6] अग्निहोत्र (हवन) देव-यज्ञ कहे आगत लोगों के भोजन और सत्कार तथा दीन और विद्वानो को दान अतिथि यज्ञ कहलाते थे। गाय, बैल, कीट आदि के प्रति सदय होना और उनके लिए खाने को देना तथा दूसरे रूपसे उनका हित करना बलिवैश्व

इन समस्त यज्ञो का मुख्य आधार त्याग, परोपकार और अपनी कमाई का समाज के हित मे ७.थे बहिश्त की प्राप्ति के लिए मुसलमानों ने भी पांच ही लाजिमी महाकर्म (रूकुन) तय किये थे। नमाज, रोजा, सुन्नत और हज उनके नाम दिये थे।

हिन्दुओं में पौराणिक युग के बाद सिद्ध, योगी, अवधूत और साधु, सन्तो का क्रमश: युग आता है। और योगियों ने दर्शनो के मार्ग का ग्रहण किया और योग के द्वारा आत्मा की मुक्ति के प्रयत्न को अपनाया ध्यान मे रखने की बात है कि वैदिक-उपनिषद कालीन आर्य्य मुक्ति और स्वर्ग दोनों को मानते हुए भी मु अधिक इच्छुक थे किन्तु पौराणिक काल के आर्य जिन्हें कि हिन्दू कहना अधिक उपयुक्त है। स्वर्ग प्राप्ति के इच्छुक थे। सिद्ध, अवधूत और योगियों के बाद भक्त और सन्तों का समय आया। भक्त लोगों का मु बजाय ईश्वर-दर्शन व वैकुण्ठवास की ओर और सन्तो का मुक्ति एवं निरंजन के सामीप्य की ओर अधिक रहा। पौराणिक लोगो का धार्मिक नेतृत्व ब्राह्मणों के हाथ और भक्तिकाल के लोगो का नेतृत्व विरक्त वैरागी भक्त लोगों के हाथ रहा। ये भक्त, वैरागी अथवा साध लोग विचारो की दृष्टि से पौराणिकों के अधिक न किन्तु कर्मकाण्ड इनका यज्ञ, हवन न होकर पूजा और भक्ति प्रधान था। सन्त लोग विचार की दृष्टि से औपनिषदिक और दार्शनिक लोगों के अधिक निकट थे किन्तु मोक्ष के लिये इन्होने योग के कठिन साधनो का न करके सहजि मार्ग को अपनाया और मुक्ति अथवा निर्वाण के बाद जीव की स्थिति के सम्बन्ध में ऐसी कल्प जिसमें मुक्त पुरुष को मुक्ति और स्वर्ग दोनों का आनन्द प्राप्त हो जाय।

यों तो भारत मे कई प्रमुख सन्त हुए हैं किन्तु उत्तरी हिन्दुस्तान मे कबीर और नानक ही दो ऐसे है जिनके लाखो लाख अनुयायी हैं। रैदास, नामदेव, पीपा और दादू कबीर से ही अनुप्राणित थे।

कबीर ने निर्वाण के साथ ही स्वर्ग को भी स्वीकार किया था। उनके स्वर्ग का स्वरूप हम उन वाणियो से इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं:—

लोक दस हैं। जिसका जैसा ज्ञान और साधना है उसी के अनुसार भक्त लोग इन लोको को प्राप्त हैं। इन दसो लोकों —नासूत, मलकूत, जबरूत, लाहूत, अचित्य, सोहंग, इच्छा, ओंकार, सहज, मे सत्यलोक सर्वोच्च लोक है। कबीर पंथियों का यह लोक विभाजन सूफियो और निर्गुनियो दोनो के लिये

१—दैनिक-प्रात. सायं किये जाने वाले हवन। २—पाक्षिक अमावस, पूर्णिमा पर होने वाले। ३—ऋत्विक ऋतुओं (मौसमों) के आरम्भ पर होने वाले। ४—पार्विक पर्वो एव त्यौहारो पर होने वाले। ५ रोहिक जन्म, मरण, ब्याह शादी, विजय पर होने वाले। ६—सोदेश्यिक उद्देश्य पूर्ति से लिये जैसे राजसूय, २४

त्मक विभाजन है। इन दस लोकों की कल्पना कबीर के पश्चात् कबीर-पंथियों द्वारा की गई कल्पना है। स्वयं कबीर जी के पदों से सत्यलोक रंग महल और बेगम देश का ही पता चलता है। वे गगनमंडल में सत्यलोक को मानते हैं। उसी सत्यलोक में बेगम देश है और बेगम देश में रंगमहल है। वही कबीर का स्वर्ग है। यथाः—

"सत्यलोक सतपुरुष का करे सुरति से ध्यान।"

\+ + +

"अवधू बेगम देस हमारा।
धरन, अकास-गगन कछु नाहीं, नहीं चन्द्र नहीं तारा।
सत्य धर्म की हैं महरावें, साहिब के दरबारा॥

× × ×

जोग जुगति सो रंग महल में पिय पायो अनमोल रे।
कहैं कबीर आनन्द भयो है, बाजत अनहद ढोल रे।

× × ×

अपनें विचारि असवारी कीजै। सहजै के पावडें पाव जब दीजै।

× × ×

दे मुहरा लगाम पहराऊँ। सिकली जीन गगन दौराऊँ।
चलि बैकुंठ तोहि लै तारौं। थकि हित प्रेम ताज नें मारूं।

× × ×

जहां जरा मरण व्यापै नहीं, मुवा न सुणिए कोइ।
चलि कबीर तेहि देसड़ें, वैद विधाता होइ।
कबीर हरि चरणों चला, माया मोह ते छूटि।
गगनमण्डल आसन किया, काल गया सिर कूटि।

× × ×

देखो करम कबीर का, कछु पूरब जन्म का लेखा।
जाका महल न मुनि लहैं, सो दोसत किया अलेखा।

गुरु महानुभावों ने भी अपने पूर्ववर्ती एवं समकालीन निर्गुनिये संतों की भांति स्वर्ग की कल्पना की है। उनके स्वर्ग का नाम सच खंड है। यह सचखंड पांचवा लोक है। इन पांचो स्वर्गों (खंडों) का सिलसिला इस प्रकार है। (१) धर्मखण्ड (२) ज्ञानखण्ड (३) सरमखण्ड (४) कर्मखण्ड (५) सचखण्ड। इस सचखण्ड में ही परमात्मा का वास है।

गुरुनानक देव जी ने इन पांचो खण्डों पर इस प्रकार प्रकाश डाला है.—

रातो रुती थिती वार। पवन पाणी अगनी पाताल।
तिसु विचि धरती थापि रखी धरमसाल।
तिसु विचि जीअ जुगति के रंग। तिनकें नाम अनेक अनंत।
करमी करमी होइ वीचारु, सचा आपि सचा दरबारु॥
तिथै सोहनि पंच परवाणु। नदरी करमि पवै नीसाणु॥
कच पकिआई ओथै पाइ। नानक गइआ जापै जाइ।, ३४॥
धरम खन्ड का एहो धरमु। (गियानखन्ड का आखहु करमु)।

अर्थात्—(उस अकाल पुरुष ने) (अधो)—रात्रि के पश्चात ऋतुओं, तिथियों और वारों में का विभाजन किया। फिर पवन से पानी और पाताल ने अग्नि को विभक्त करके धरती को स्थापित किया। सृष्टि के सम्बन्ध में परम्परा से भारतीयों का यह मत रहा है कि सृष्टि रचना से पूर्व अर्थात् प्रलय की स्थिति में एक धुं (कुहरा) जैसा आच्छादन था। उसी का ठोस रूप होने और तत्वों के विभाजन से जगत बन गया अग्नि, पानी, और पृथ्वी तत्वों के अलग अलग होने से जो पोल हुई, अर्थात् आसमान बना, उस आसमान और पाताल मे पृथ्वी की स्थापना की। यह पृथ्वी (स्वर्ग एव मोक्षके अभिलाषियोंके लिये उनके आवागमन के मार्ग मे) धर्म जैसी है। सूफी साहित्य मे भी जगत को सराय फानी कहा गया है।

फिर इस पृथ्वी पर युक्ति के साथ अनेकों रंगों (प्रकारों) के जीवों की रचना की। जिनके कि उनके बनावट, चालढाल और कार्य अथवा जीवन के ढगों के अनुसार अनेक नाम है, और वे हैं भी; अनेकों प्रकार

ये जीव इस पृथ्वी पर जैसा कर्म करते हैं उन कर्मों पर सत्य (धर्म) रूप परमात्मा अपने मन पर विचार करता है।

उस दरबार में उन्हें ही शोभा (प्रतिष्ठा) प्राप्त होती है जो पच परवाण हैं। अर्थात् जिन्होंने पाप से अपना आचरण मुक्त रखा है। अपने शुभ कर्मों के कारण वे वहा रहने का निशान प्राप्त करते हैं। उ परमात्मा की कृपा दृष्टि प्राप्त होती है।

वस (सक्षेप) में धर्मखण्ड अथवा धर्मलोक का यही धर्म (व्यवहार एवं कारोबार) है।

(धरम खंड का एहो धरमु)। गिआन खंड का आखहु करमु॥
केते पवण पाणी वैसन्तर केते कान्ह महेस।
केते बरमे घाडति घडीअहि रूप रंग के वेस।
केतीआ करम भूमी मेर केते केते धू उपदेस।
केते इन्द चन्द सूर केते केते मंडल देस।
केते सिध बुध नाथ केते केते देवी वेस।
केते देव दानव मुनि केते केते रतन समुंद।
केतीआ खाणी केतीआ बाणी केते पात नरिंद।
केतीआ सुरती सेवक केते नानक अंतु न अंतु॥ ॥ ३५ ॥
गिआनखंड महि गिआनु परचंडु। तिथै नाद विनोद कोड अनंदु।

अर्थात्—अब ज्ञान खण्ड अथवा ज्ञानलोक के व्यवहार व कारोबार के सम्बन्ध मे कहते हैं। परमा विराट विश्व मे कितनी ही प्रकार की अग्निया हैं। कितनी ही प्रकार के पवन और पानी है। और कितनी भूमिया हैं। इन कर्मभूमियो मे कितने ही मेर अर्थात् उच्च स्थान और कितने ही ध्रुवप्रदेश और रतनों के समुद्र हैं अर्थात् इन कर्मभूमियों में जल-थल वाले तथा शीत और उष्ण सभी प्रकार के देश हैं। जिनके लिये ही इन्द्र और कितने ही चन्द्र, सूर्य्य हैं और उन चन्द्र. सूर्य के कितने ही मडल (अर्थात सौर मडल और च आदि) हैं। अभिप्राय यह कि इन चन्द्र, सूर्यो के साथ ही उनके मडल भी हैं (इन ग्रहों के प्रत्येक मडल में उपग्रह होते हैं)।

इन सभी कर्मभूमियों के लिये कितने ही कृष्ण (विष्णु) महेश और ब्रह्मा हैं। जो कि इसका सृजन और विनाश करने के काम में लगे हुए हैं। इन भूमियों में कितने ही धर्माचार्य अर्थात् कपिल (सिद्ध) सिद्धार्थ गौतम (बुद्ध) कितने ही गोरख मछेन्द्र आदि (नाथ) और शाक्त उपासक हैं। तथा कितने ही देव,

इन भूमियों में अनेका प्रकार के जीव (प्राणी) हैं और उनकी अनेकों ही बोलियां हैं। उस अकाल पुरुष इस विराट विश्व का सञ्चालन ज्ञानखण्ड अथवा ज्ञानलोक से होता है जहां कि नाद (अनहद ध्वनि) और विनो (चिदानन्द) का बहुतेरा आनन्द है।

(इसके पश्चात् सरम खंड अथवा शील लोक की बात सुनो ।)

सरम खंड की बाणी रूप। तिथै घाडित घडीए बहुत अनूप।
ताकीआ गला कथीआ ना जाहि। जे को कहै पिछै पछुताइ॥
तिथै घडीऐ सुरति मनि बुधि। तिथै घडीऐ सुरा सिधा की सुधि॥

अर्थात्—सरम (शील) खंड की अभिव्यक्ति वाणी से नहीं अपितु उसके सौंदर्य से होती है जहां पर (परमात्मा अपने) विराट विश्व की विचित्रताओं का सृजन करता है। उस विचित्रताओं के रचना सौंदर्य की बात कही नहीं जा सकती अर्थात् उसे कहने को शब्द और भाव व्यंजना शक्ति दोनों का ही अभाव है। जो कोई कहने की चेष्टा भी करेगा तो उसे पीछे पछताना पडेगा। क्योंकि वह समझेगा कि मैं ठीक से उसका वर्णन नहीं कर सका। वहां पर सुरति, मनोभाव और बुद्धि (मेधा) का सृजन होता है। और वहीं देवताओं और सिद्ध पुरुषों के लिये सुधि (दिव्य गुणों और साधनाओं) की रचना होती है।

और—

करम खंड की बाणी जोरु। तिथै होरु न कोई होरु।
तिथै जोध महाबल सूर। तिन महि राम रहिआ भरपूर।
तिथै सीतो सीता महिमा माहि। ताके रूप न कथने जाहि।
ना ओहि मरै न ठगे जाहि। जिनकै रामु वसै मन माहि।
तिथै भगत वसहि के लोअ। करिहि अनन्दु सचा मन सोइ।

अर्थात्—कर्म खंड की यदि हम वाणी द्वारा व्याख्या करें तो कहना होगा कि वह शक्ति लोक है।[1] वहां पर महाबली शूरवीर योद्धाओं का वास है और कोई वहां नहीं प्रवेश पाता। इनमे वीर रूपसे राम व्याप्त होरहा है और महिमा (कीर्ति) रूप से सीता जी हैं। उनके सौंदर्य का बखान नहीं किया जा सकता। उन लोगों के हृदय मे राम का वास है। इसलिये वे न तो मरते हैं और न ठगे जाते हैं। वहां कई प्रकार के भक्तों का वास है। जिनका कि मन सच्चा था वे वहां (पहुँच कर) आनन्द (मौज) कर रहे हैं।

"सचि खंड वसै निरंकार। करि करि वेखै नदरि निहाल।
तिथै खंड मंडल वर भंड। जे को कथै अतन अंत।
तिथै लोअ लोअ आकार। जिव जिव हुकमु तिवै तिवकार।
वेखि विगसै करि विचार। नानक कथना करडा सारु।

अर्थात्—(इन सब लोकों मे जो सबसे ऊपर लोक है वह सचखण्ड है) सचखण्ड (सत्य लोक) में निराकार परमात्मा का वास है। यहां से ही वह अपनी रचना को कृपापूर्ण दृष्टि से अवलोकन करता है। वहां उस सचखण्ड में बड़े २ श्रेष्ठ मंडल हैं। उनके सम्बन्ध में कहा जाय तो पार नहीं आ सकता वहां अनेकों प्रकार के लोग हैं जब जिसे जो हुकुम दिया जाता है उसे करने को वह प्रस्तुत रहते हैं।

नानक कहते हैं मेरे लिये (वहां की रचना का) कथन करना लोहे के चने चबाना जैसे कठिन है। (मैं

१. पौराणिक लोगों ने इस लोक का नाम सूरलोक, सूर्य मण्डल और शिवलोक दिया था। जहां पर युद्ध क्षेत्र में मरने वाले जाते थे।

इतना ही कह सकता हूँ कि) उसे देखने और विचार करने से ही चित्त प्रफुल्लित हो जाता है।

इन पाचों प्रकार के खण्डों (लोकों) के वर्णन में गुरु जी ने जो कुछ कहा है उसका सार यह है। मात्मा ने 'अहोरात्रि' काल की सामाप्ति पर ऋतुओं, तिथियो और वारों में काल का विभाजन किया। ५५ अग्नि और पृथ्वी के रज कणों से जो धु धूकारा छाया हुआ था। उसे अलग अलग करके आकाश और मध्य में पृथ्वी को जीवों के लिये एक धर्मशाला (सराय) के रूप मे स्थापित किया। इसका भाव यह है जीव यह ससार एक सराय के रूप में है यह उसका वास्तविक घर नहीं है यहा उसे चन्द दिन रहना है।

इस पृथ्वी पर अनेकों योनियों वाले जीव हैं उनमें जो कर्मी जीव हैं (यह याद रहे कि प्राय: सभी तो केवल भोग योनिया हैं। इन मे कुछ ही कर्म योनिया और भोग योनिया दोनों हैं। मनुष्य योनि भोग ही कर्म योनि भी है) उनके कर्मों पर धर्मखण्ड (धर्म लोक) में सच्चे प्रभु के सच्चे दरबार मे विचार होता है से जो श्रेष्ठ कर्मों वाले होते हैं वही वहा ठहरते हैं और उन्हें ही वहा रहने का चिह्न मिलता है। और जो हैं उन्हें पक्के (सच्चे) होने के लिये वापिस कर दिया जाता है। बस यही धर्म खण्ड का वर्णन है। तात्पर्य यह धरती रूपी धर्मशाला में रैन बसेरा करने वाले मुसाफिरों में कुछ को तो उनके अच्छे आचरण के फल स्व खण्ड में रोक लिया जाता है और जो आचरण के कच्चे साबित होते हैं वे फिर इधर ही वापिस कर दिये जाते धर्म खण्ड में साधारण ग्रहस्थ भी अपने कर्त्तव्य में सच्चे उतर जाय तो जा सकते हैं।

ज्ञान खण्ड में ज्ञानियों के लियें ही स्थान है। और ज्ञान खण्ड की विचित्रता का तो कहना ही ५५ पृथ्वी पर क्या है। वहा तो ऐसी पृथ्वियो के रचने वाले ब्रह्मा तक हैं आदि आदि। वहा पहुचने वालों के ही आनन्द है।

ज्ञान खण्ड में परमात्मा के विराट विश्व दर्शन हैं तों सरम खण्ड में मनुष्यों के लिये घड़ी जानी व सम्पदायें बुद्धि, विवेक, शील आदि हैं।

कर्म खण्ड में उन लोगों का प्रवेश है जो परोपकार के लिये अपने प्राणों की बाजी लगाते हैं। महिमा की देवी सीता और बल के स्वरूप राम के दर्शन होते हैं।

सचखण्ड में केवल वे ही लोग प्रवेश पाते हैं जो कि हुक्मी के हुक्म पर चले अर्थात् जिन्होंने ईश्वर के अर्पण कर दिया है।

ससार के सुधार के लिये भी इस सचखण्ड में से ही (सुधारक) भेजे जाते हैं। इस सचखण्ड में ही नामका एक नगर है। उस नगर में जो सुख महल (आनन्द भवन) है। सत लोग उसी में स्थान पाते हैं। गुरु सिहजी के कथनानुसार उन्हें इस पृथ्वी लोक में परमात्मा ने इसी सच खण्ड नाम के लोक से भेजा था।

"सुख महल जाके ऊच दुआरे। तामहि बसहिं सत पिआरे" इस सम्बन्ध का वर्णन हम पीछे के ट चुके हैं। पाठक इस सदर्भ और उस वर्णन को साथ साथ मिला कर पढें, इससे उनकी जानकारी--इस सम्बन्ध भी वृद्धि होगी।

सिख-गुरुओ का स्वर्ग सम्बन्धी यह कल्पना चित्र आध्यात्मिक है तब भी अच्छा हैं और यदि वा ऐसे कहीं स्वर्ग हों तब भी अच्छा है।

आज जबकि आस्था पर तर्क हावी है। सहज ही लोगों की समझ में नहीं आता है कि स्वर्ग विशेषों पर हो सकतें हैं किन्तु यदि हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि स्वर्गों की कल्पना दो चार नहीं और नहीं किसी एक देश की ही है।

जो लोग कर्म-फल- सद्धान्त को मानते हैं उन्हें कर्म फलोंके भोग के लिये, योनि-प्रवाह (आवागमन

(Interval) और इति (End) अथवा मोक्ष भी मानना पड़ेगा। और अस्थायी और स्थायी विश्रामों की अवधिमें किसी स्थान की कल्पना कर ली जाय तो हमारे वर्तमान जीवन को उन्नत बनानेमें कोई बाधा भी नहीं पहुँचती। अपने जीवनमें जहां हम अनेक आशाओं और मनोइच्छाओं की पूर्ति के लिये जूझते रहते हैं वहां स्वर्ग की प्राप्ति के लिये भी प्रयत्न करें तो कुछ बुरा भी नहीं होगा और जब स्वर्ग मिलने के लिये कर्म भी ऐसे बताये गये हों जिनमें दूसरों का हित भी सन्निहित है तो भला ही भला है।

अब रहा यह प्रश्न कि स्वर्ग को देखकर कोई लौटा हो तो उससे तसल्ली की जावे। इसका तो सीधा सा उत्तर है कि चन्द्र, सूरज और राहु, केतु को कोई भी देखकर नहीं लौटा है। अतः ज्ञान से अथवा विज्ञानसे जब पुराने लोगों द्वारा इनके सम्बन्धमें बताये गये अन्वेषण काफी दूर तक सच हैं तो फिर स्वर्ग के सम्बन्धकी सूचनायें भी सही हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

अपनी ओर से तो इस सम्बन्ध में हम इतना ही कह सकते हैं कि गुरु नानक देव जी ने सूख महल का और गुरु गोविन्दसिंहजीने सचखण्ड का जैसा चित्र खींचा है उसके अनुसार सिखोंका सचखड (स्वर्ग) निहायत भव्य है। तथा हृदय में प्राप्ति के लिये भावनाओं का बीज बोता है। और आत्मा कहती है कि ऐसे स्वर्ग की अस्ति (हूद) सच ही हो। कल्पना नहीं।

गुरुमत हमारी दृष्टि में

सिखों के सम्बन्ध मे लिखते हुए विभिन्न विभिन्न विचारकों ने गुरु-मत पर एक से ही वि
प्रकट नहीं किये। डाक्टर ट्रम्प ने 'ग्रन्थ साहब' का जो अनुवाद अंग्रेजी मे किया था उसमें लिख
कि गुरु नानक एक पूर्ण हिन्दू-विचारक थे।[1] उन्होंने यह भी लिखा था कि उन पर इस्लाम मत
प्रभाव था वह भी इस्लाम-जन्य नहीं अपितु सूफी-जन्य था जो कि हिन्दुओं के ही सर्वात्मवाद का
रूप है किन्तु "दी डिक्शनरी आफ इस्लाम" मे—सिख धर्म पर एक निवन्ध लिखते हुए फेडरिक :
ने उन्हे इस्लाम धर्म्मावलम्वी वताया था और पंजावियों के सुपरिचित मित्र मैकालिफ साहव ने 'दि।
रिलीजन" नामक पुस्तक मे गुरु-मत को नितान्त तीसरा धर्म माना है।

फेडरिक पिंकाट के कथन का समर्थन तो कोई भी नहीं करता न सिख और न ही मुसलमान
मानते है। हॉ यह बात अवश्य है कि गुरु नानक की यह भावना अवश्य रही थी कि हिन्दू और
दोनों धर्म अपनी-अपनी बुराइयो को छोड़कर एक दूसरे के निकट आ जावें हालांकि उस समय की
यह थी कि "हिन्दू कहू तो मारा जाऊँ मुसलमान मैं नाहीं।" लेकिन फिर भी गुरु नानक और
परवर्तियों ने इस्लाम धर्म की त्रुटियों की खुले दिल से आलोचना की।

"गुरु-मत" तीसरा धर्म है। वाहर से देखने और सुनने मे ऐसा ही लगता है किन्तु यह
ग्रन्थ साहब से सिद्ध नहीं होती। क्योंकि तनिक से मतभेद से अथवा विचार-स्वातन्त्र्य की
से "गुरु-मत" तीसरा धर्म है तो उसे तीसरा न कहकर हजारवां कहना भी गलत न होगा क्योंकि
वेदों, छ हों शास्त्रों और सभी उपनिपदों मे एक ही प्रश्न का उत्तर देने के लिये मत स्वातन्त्र्य का पूरा
किया गया है।

वास्तव मे तो "ग्रन्थ-साहव" में एक तीसरा पंथ चलाने की कोई बात ही नहीं है। वहां तो
है कि मनुष्य अपने जीवन को सच्चा वनावे—ताकि वह सत्य स्वरूप परमात्मा को प्राप्त कर
परमात्मा की प्राप्ति के लिये जो साधन बताये गये हैं वे भी सहस्रों उन साधनों में से ही हैं जो कि।
धर्म-ग्रन्थों मे विभिन्न ढंगों से कहे गये हैं। अत: गुरु-मत की उपमा हम वृक्ष की उस डाल से दे
हैं जो पुरानी डालों के बीच मे एक नवीन-जीवन को लेकर नव पल्लवों से आच्छादित होती हुई
पड़ती है।

यही कारण है कि उस विशाल हिन्दू धर्म-वृक्ष से खाद्य प्राप्त करते हुये भी 'गुरु-मत'

१. दी आदि ग्रन्थ इन्ट्रोडक्शन पृ० ९७—११८।

शाख अपना अलग ही अस्तित्व दिखाती है। प्रमाण के लिये हम यहा कुछ शीर्षकों के साथ ग्रन्थ साहब के कुछ स्थलों पर विचार करते है।

द्वैत अद्वैत

गुरु महानुभाव द्वैतवादी थे या अद्वैतवादी "ग्रन्थ साहव" को पढ़ने के पश्चात् यह प्रश्न स्वभावत. मस्तिष्क मे उठता है? जिन लोगो का द्वैतवाद की ओर झुकाव है वे 'ग्रथ साहव' में से द्वैतवाद सिद्ध कर सकते हैं और जिन लोगों का 'अद्वैत' से मोह है वह अद्वैत के प्रमाण—'ग्रन्थ साहव' मे से सामने लाकर रख देगे। जैसा कि नीचे के उद्धरणों से प्रकट है :—

"तू पिर गुणवन्ता हउ अउगुण भारा। (राग वडहस म० ४) —द्वैत

'कहु नानक हम नीच करमा'

सरणि परे की राखहु संरमा।—(राग आसा म० ५) —द्वैत

नाहि न गुन नाहि न कछु जपु तपु कउन करम अव कीजै।

नानक हारि परियो सरनागति, अभै दान प्रभ दीजै। (राग जैतश्री म० ६) —द्वैत

हारि परियो सुआमी के दुआरे दीजै बुद्धि विवेका। (रा० सो० म० ५) —द्वैत

जो दीसै सो तेरा रूप (राग तिलग म० १)—अद्वैत

जिउ जल तरग जलु जलहि समावहि—राग वडहस अष्टपदी म० ४ —अद्वैत

नानक आपि आपै रमइआ —अद्वैत

जव इनु किछु करि माने भेदा।

तव ते दूख दड अरु खेदा। राग गौडी अष्टपदी। महला ५ —अद्वैत

प्रणवै नामा भए निह कामा को ठाकुर को दासा रे। राग माली।—अद्वैत

इस प्रकार दोनो पक्षों के पचासों उदाहरण 'ग्रन्थ साहव' से दिये जा सकते हैं। और जिन लोगो ने गम्भीरता से गुरु-मत दर्शन का अध्ययन नहीं किया है। वे अपना चाहे जैसा मत बना सकते हैं।

ऊपर के उदाहरणों के अनुसार यदि कोई कहता है कि गुरु लोग द्वैतवादी थे तो हिन्दू-दर्शन में द्वैतवादी मीमांसक हैं ही और यदि कोई उन्हे अद्वैतवादी बतावे तो वेदान्ती सामने हैं। हिन्दू दर्शन बहुत विस्तृत है उसका सक्षिप्त रूप ग्रन्थ-साहब है।

द्वैत अद्वैत के सम्बन्ध में हमारा अपना निर्णय यह है कि गुरु महानुभाव थे तो अद्वैतवादी ही। किन्तु उन्होंने अपने अहम् को इस स्थिति तक समाप्त कर दिया था कि वे द्वैतवादी से जान पड़ते हैं वे यह कहने का साहस ही नहीं करते कि "मैं ही ब्रह्म हूँ"। सोऽहम अथवा "तत्वमसि" कहने के बजाय उन्होंने अपने लिये "मैं कीट, मैं नीच" आदि शब्दों का प्रयोग किया है। "घटाकाश और महाकाश" के सिद्धान्त को मानते हुए भी उन्होंने परमात्मा को सागर कहा है तो अपने लिये उसकी बूंद माना है। उसे सूर्य्य कहा है तो अपने लिये उसकी किरण कहा है। "मैं वही हूँ" यह दावा उन्होंने कहीं नहीं किया। बस वेदान्त के अद्वैत और ग्रन्थ साहब के अद्वैत मे यही अन्तर है। वेदान्ती कहता है जीव ब्रह्म ही है। माया के आवरण मे ढका होने के कारण वह अपने को अथवा 'स्वात्म' को पहचान नहीं पाता है अत वह जीव है। माया के पर्दे के हटते ही वह ब्रह्म है। गुरु लोग भक्त तुलसी दास की भाति कहते हैं "जीव ईश्वर का अंश है।[1] माया से छुटकारा पाते ही वह ईश्वर मे उसी भाति समा जाता है जैसे जल, जल मे मिल

१ ईश्वर अश जीव अविनासी। रामायण

जाता है ।[1] जब तक पानी का बुलबुला पानी में नहीं मिलता तब तक सभी लोग उसे बुलबुला ही [illegible] है । इसी प्रकार जब तक जीव ईश्वर में नहीं मिलता है तब तक गुरुओं ने उसे जीव ही माना है चूंकि वह अपने किन्हीं अवगुणों के कारण ही ईश्वर में मिलने से वंचित है। [illegible] अतः उसे [illegible] और नीच भी कहा है । वह अपनी सेवा से अथवा प्रेम से ईश्वर को प्राप्त कर लेने का यत्न [illegible] गुरुओं के शब्दों में वह सेवक, दास और प्रियतमा है और [illegible] होने पर "ज्यों जल [illegible] जल होइ है तथा सेवक ठाकुर भये एका" हो जाता है । उस समय न सेवक सेवक रहता है और न ठाकुर, दोनों का एक रूप (ब्रह्म) हो जाता है । गुरुमत के [illegible] जीव को [illegible] नहीं द्वैत का भास होने [illegible] किन्तु यह द्वैत न तो स्थायी है न वास्तविक यह तो मायवि और [illegible] है ।

इस बात को हम यों भी कह सकते हैं कि गुरुमत आदि में अद्वैत को मानता है और [illegible] भी अद्वैत को मानता है किन्तु बीच के समय में जब तक कि ईश्वर से अलग हुआ जीव ईश्वर नहीं समा जाता है 'द्वैत' को मानता है और वास्तव में [illegible] उस समय तक रहता भी है [illegible] गुरु गोविन्दसिंह जी ने कहा है कि "द्वैत एक रूप है गयो ।" किन्तु [illegible] बहुत तपस्या साधी । महां काल काल का आराधी" अर्थात काल का भी जो महाकाल (प्रभु) है आराधना करते हुए बहुत समय तक तप किया एवं—अपने में जो अवगुण और [illegible] हैं उन [illegible] किया तब हमारा द्वै से एक रूप हुआ ।

गुरु लोग बीच के जिस समय को जीव के लिये "द्वैत काल" मानते हैं उसे वेदान्त 'भ्रम' कहता है । गुरु-मत अद्वैत होने के लिये भक्ति को प्रमुख साधन मानता है और वेदान्त आत्म-[illegible] प्रमुखता देता है । वास्तव में गुरु-मत अद्वैतवाद को सिद्धान्त के तौर तो वेदान्त की भांति मानता किन्तु साधन उसका वेदान्तिक न होकर भागवतिक है ।

हम समझते हैं कि ईश्वर जीव अथवा द्वैत और अद्वैतवाद के सम्बन्ध में गुरुओं का जो उसकी हमने सही अभिव्यक्ति की है । अब संसार के सम्बन्ध में जो गुरु-मत है उस पर विचार [illegible]

संसार

वेदान्तका मत है कि यह संसार मिथ्या है किन्तु न्याय दर्शन ऐसा नहीं मानता भांति 'गुरु ग्रंथ' में भी दोनों ही मतों की पुष्टि करने वाली सामग्री मिलती है कि नीचे दिये गए उद्धरणों से स्पष्ट है.—

जगु सुपना बाजी बनो, खिन महि खेलु खिलाइ ।
सजोगी मिलि एक से विजोगी उठि जाइ ॥—(श्री राग महला १)

× × × ×

मृग त्रिसना जिउ जग रचना यह देखहु रिदै विचारि । (राग देव गधारी म० ६)
यह जग धुए का पहार । तै साचा मानिआ किह बिचार । (राग बसन्त महला ६)

× × × ×

इस संसार की रचना मृग-मरीचिका जैसी है ।

जैसे धुंए का पहाड नहीं है । वैसे यह जगत सत्य नहीं है ।

यह वाणियाँ तो कहती हैं कि संसार—स्वप्न, मृग—मरीचिका और धुँए के पहाड़ की मिथ्या है ।

१. जल जल माहि खटाना—ग्रन्थ साहब
२. तब ही आतम तत्त को दरसै परम पुरुष कह पावै । गुरु गोविन्दसिंह

और निम्न वाणियां कहती हैं कि उस सत्य से उत्पन्न सब कुछ सच्चे हैं।

यथा सचे तेरे खण्ड सचे ब्रह्मण्ड। (राग आ० वा० म० १)

× × × ×

आपि सति धारी सभु सति। तिस प्रभु ते सगली उतपति (सु० अ० म० ५)

अर्थात् तेरे खण्ड-ब्रह्माण्ड सब सच है।

जब आप सत्य का धारण करने वाला है तो जो कुछ भी तैंने किया है सब सत्य है क्योंकि सब की उत्पत्ति तुझ सांचे से ही तो है।

इन दोनों तरह की वाणियों को पढने वाले के लिये भ्रम होना सहज बात है किन्तु यह दोनों बातें अधिक गौर करने पर विरोधी नहीं अपितु एक दूसरे की पूरक हैं। जहाँ तक इनके अस्तित्व का प्रश्न है। यह सब सत्य हैं क्योंकि जिन पाँच तत्व और पच्चीस प्रकृतियों से यह संसार अथवा ससार के पदार्थ बने हुए हैं। उनका अस्तित्व तो है ही किन्तु जहाँ उनके इसी रूप में रहने की स्थिरता का सवाल है यह विनष्ट होने वाले हैं।[1] और इन्द्रियों के भोग के लिये भी सब सच हैं किन्तु आत्मा के भोग के लिये तो यह कुछ भी नहीं है। अतः संसार संसारी की दृष्टि में सत्य है। जिन तत्वों से बना है वे भी सत्य हैं किन्तु उन तत्वों का वर्तमान रूप चिरकाल तक के लिये स्थायी न होने के कारण नाशवान अथवा मिथ्या है और इसी भांति इन्द्रियाँ जिन वस्तुओं का भोग करती हैं इन्द्रियों के लिए सब सत्य हैं किन्तु आत्मा जो स्वयम एक तत्व है उसके लिए यह कोरा स्वप्नवत ही हैं। हम समझते हैं कि षड-दर्शन का भी संसार के सम्बन्ध में (समन्वयात्मक) भाव यही है।

हिन्दू दर्शन ने कर्म सिद्धान्त का मथन करके यह निर्णय किया है कि "संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण" तीन तरह के कर्म होते हैं। वर्तमान में जैसे भी—सुकर्म अथवा कुकर्म—कर्म हम करते हैं।

कर्म-सिद्धान्त

वे 'क्रियमाण' कर्म कहलाते हैं। और इन किये हुए कर्मों का योग जो होता है। वही संचित कर्म के नाम से पुकारे जाते हैं। उदाहरण के लिए एक आदमी एक रुपया रोज कमाता है और बारह आने खर्च करता है तो चार आने बचत वाले उसका संचित धन (कर्म) हैं। यदि पिछले दिन के चार आने और उसकी जेब में हैं तो आज उसके पास आठ आने संचित हैं।[2] इस संचित धन (कर्मों) के भोग का नाम ही प्रारब्ध कर्म है। प्रारब्ध को ही लेखा-जोखा ? 'कर्म रेख', 'भाग्य लिखा' आदि संज्ञायें दी गई हैं। हिन्दू कर्म विज्ञान ने कर्म-फल का भोग भोगना तो जीव के लिये अनिवार्य बताया है किन्तु उसे कर्म करने में स्वतन्त्र और फल भोगने में संस्काराधीन अथवा ईश्वराधीन रक्खा है। अच्छे कर्मों के भोगने के लिये अच्छी स्त्री, अच्छे पुत्र, अच्छी विद्या अच्छे घरों में जन्म और अच्छी संगति की प्राप्ति के अलावा स्वर्ग मिलन का विधान और है। इसी प्रकार बुरे कर्मों के भोगने के लिये चौरासी लाख योनिया एव विभिन्न प्रकार के नरक और यम की यातनायें हैं। गुरुओं ने इन सब को स्वीकार किया है।

यथा— बहु जोनी भवहि धुरि किरति लिखि आसा।

जैसा बीजहि तैसा खासा—(गौडी गुइआरेरी म० ९)

\+ + + +

१. सचित कर्म (धन) ऋण और भोग दोनों ही दिशाओं में होता है।

२. दिसट मान सब बिनसिये · (बिलावल म० ५)

कई जनम भये कीट पतंगा । कई जनम गज मीन कुरंगा ।
कई जनम पखी सरप होइओ । कई जनम हैवर[1] बृख[2] जोइओ ।

+ + + +

फल पावहि मिटै जम त्रास । नित गावहि हरि हरि गुण जास । (गौड़ी गुआरेरी म०

+ + + +

ऐ तु मोहु फिर जोनी पाइ । मोहे लागा जमपुरि जाइ ।-- (माझा महला १)

+ + + +

मरन नहीं धार ब्रह्म को मिटिया आवागमन । —(गौड़ी थिती महला ५)

+ + + +

स्वर्ग वास ना बाछीए, डरीए न नरक निवास ।
होना है सो होइ है मनहि न कीजै आस ।
रमइया गुन गाइए जाते पाइए परम निधान ।

+ + + +

त्रिबिधि करम कमाईअहि आस अन्देसा होइ । (श्री राग म० १)

+ + + +

कर्म के प्रसंग में जहां सर्व मान्य सिद्धान्त हिन्दू-दर्शन का यह है कि जो जैसा करेगा उसे भोगना पड़ेगा । वहां कर्म-विपाक का विधान भी है और यह मत कि यदि किसीने कोई बुरा काम कि और उसके करने से उसे मानसिक वेदना हुई है तो कर्म की गुरुता के अनुपात से ही उसे प्रायश्चित चाहिये । इस प्रकरण में 'हिन्दू-कर्म-विधान' विभिन्न कर्मों के प्रायश्चित के लिये विभिन्न ही बताता है किन्तु गुरुमत इस सम्बन्ध में हिन्दू-दर्शन का साथ न देकर सन्त मार्ग का ही अनुकरण है और बड़े मजे के साथ कहता है—

"जब होवत प्रभ केवल धनी । तब बन्ध मुकति कहु किस कउ गनी ॥
जब अबिगत अगोचर प्रभ एका । तब चित्र गुपत किसु पूछत लेखा । (सुखमनी)

अर्थात—जब केवल प्रभु ही हमारा धनी हो जाता है । अर्थात् हम प्रभु की शरण में च हैं । तब बन्धन और मुक्ति किस लेखे में हैं । और जब केवल परमात्मा ही हमारा धनी है । तब गुप्त भी किस से हिसाब पूछेगा । इसका भाव यह है कि बन्ध, मोक्ष और स्वर्ग नर्क तो उन लो लिये हैं जो संसारी हैं और जब हम केवल राम के हो जाते हैं तब इनकी हमें क्या परवाह है ।

ईश्वर के मिलने के जो अनेकों मार्ग पूर्ण विकास पर पहुँचे हुए हिन्दू-दर्शन अथवा धार्मिक भ बताये गए हैं उनमें से गुरुओं ने भी अन्य निरगुनी संतों की भांति सहज म

सहजि ही अपनाया है । अंतिम लक्ष्य उनका सच खंड प्राप्ति अथवा ईश्वर मिलन

नानक महान्

इस कथन के पश्चात कि गुरु नानक देव पिछली दस शताब्दियों में एक महान् पुरुष थे . प्रसंग को समाप्त करते हैं । उनकी महानता को साधारण जनता ही नहीं अपितु उनके युग के

१— हैवर=घोड़ा २ बृख=भेड़िया । बृखभ=बैल ।

भी स्वीकार किया था। इसके कुछ प्रमाण जो हमें मिल सके हैं इस प्रकार हैं:—

पानप, नानक, रैदास, कबीरा। एक तत्व के चारि शरीरा।[1]
नानक सूरज रूप, भूप सारे परकासे। मघवा दास कबीर ऊसर सूसर वरखा से।
दादू चंद सरूप, अमीकर सबको पोषै। बरन निरजनी मनो त्रिषा हृदि जीव सतोषै।
ये चारि महत चदु चक्कवै चारि पथ निरगुन थपे।
नानक, कबीर, दादू, जगन, राघो परमातम जपै।—राघोदास निरंजनी सन्त

अर्थात्—कबीर, नानक, रैदास और पानप नाम के जो चार महासंत हुए हैं। वे एक ही तत्व चार शरीर थे। (इनमें) नानक सूर्य्य रूप थे जिनका सभी लोकों में प्रकाश है। कबीर इन्द्र की तरह जिन्होंने ऊसर जमीन को भी उपजाऊ बना दिया अर्थात् नास्तिकों को आस्तिक बना दिया। दादू चन्द्र की भांति उपदेश रूपी अमृत की वर्षा करने वाले थे। ये चारों निर्गुणी पन्थ के चक्रवर्ती थे।

१ पानपदासी सम्प्रदाय की जन श्रुति (उतरी भा० की० सं० प)

परिशिष्ट

विविध विषय

सिखों की जन-सख्या सन् १६५१ ई० की गणना के अनुसार कुल भारत मे ६२ लाख है ब्योरा निम्न प्रकार है। उत्तरप्रदेश १ लाख ६७ हजार ६ सौ १२, विहार ३८ हजार ७ सौ ३, ४ हजार १ सौ ६३, पश्चिमी बंगाल ७६ हजार ८ सौ ६७, आसाम ४ ह । ७, मद्रास २ हजार ८ सौ २६, बम्बई ३८ हजार १७, मध्यप्रदेश ३३ ह ७ ६६, मैसूर ३ हजार २ सौ ४७, ट्रावनकोर राज्य २ सौ ७५, सौराष्ट्र ८ सौ ८ भारत १२ हजार ५ सौ २१, हैदराबाद ८ हजार ४ सौ ४६, राजस्थान १ लाख ४४ हजार २ सौ ३१, १ लाख ३७ हजार ६६, पेप्सू १७ लाख २१ हजार ६ सौ ३५, अजमेर राज्य ३ हजार ६ सौ ६४, ५०, त्रिपुरा ३५, कुर्ग ६, कच्छ ४ सौ ७८, विन्ध्य प्रदेश ५ सौ २६, भूपाल ५ सौ ६२, हिमांचल ' १६, अंडमान १ सौ २६, सिक्कम १८।

जन-संख्या

इनमें सिख जाटों की संख्या अन्य १७ जातियों की सयुक्त संख्या से भी दो गुनी है। २ अन्य बड़ी से बड़ी किसी भी सिख जाति से जाट सिख १४ गुने से भी अधिक हैं। अरोड़े । बीस गुने और खत्रिय सिखों से चालीस गुने हैं। रियासतों की जन-संख्या मे उनका अनुपात इस कहीं ज्यादा है। किन्तु शिक्षा में वे उतने अग्रसर नहीं जितने कि संख्या मे हैं।

पंजाब, सीमान्त और काश्मीर से बाहर के अन्य सूबों मे जो आबादी सिखों की है। व शहरों मे है। देहात में बहुत ही सूक्ष्म है। यह भी याद रहे उपरोक्त गिनती मे उदासी और ्रिं लोगों की गिनती शामिल नहीं है। न भारत से बाहर की संख्या इसमें शामिल है।

एक समय था जब पजाब के समस्त इलाके मे सिख सिक्के चलते थे। महाराजा ने अपने राज्य में सिक्के ढलवाने की टकसाल खुलवा रक्खी थी। पटियाला, नाभा, जीन्द कैथल मे भी अपने रुपये चलते थे।

सिख मुद्रायें

कहा जाता है सबसे पहला सिख-सिक्का गुरु गोविन्दसिंह जी ने था और आनन्दपुर मे एक टकसाल भी खोली थी। यह असंभव बात नहीं है प्रमाणों का अभाव अवश्य है।

"सैरे पंजाब" के लेखक को कुछ सिक्के पंजाब के सिखों के मिले थे। उसने लिखा है यह सरदारान सिख इस मुल्क में फैल गये। हरेक ताइफउल्मुल्क होगया और दारुलजर अपनी रियासतों का बतौर खुद जारी करके सिक्का जुदागाना जारी कर दिया। चुनाचे बहुत किस्म के ।

(रुपये) इस दुआबा सतलज व जमुना में हमने जारी पाये। उनकी जिस कदर तफसील मालूम कैद मरुजा कीमत हाल जैल है। इन सिक्कों के अक्षर पढ़ने में नहीं आते हैं।

जगाधड़ी ॥।—) सगतसिंह ॥।) जीन्द स्वरूपसिंह ॥≈) कैथली ॥।—) पटियाला शाही नाभा शाही ॥।≈) यह कीमत पंजाब पर प्रभुत्व हो जाने के बाद अंग्रेज सरकार ने स्थिर की थी।

सभी सिक्को पर एक ओर "देगो तेगो फतहो नुसरत व दरग। याफ्त अज नानक गुरु • सिंह" लिखा रहता था। पटियाले के सिक्के पर एक ओर इस प्रकार लिखा रहता था "हुक्म शुद कादरे बे चू व अहमद बादशाह। सिक्कह जन बर सीमो जर अज ओ जे माही ता बमाह।" यही ॐ जीन्द के सिक्के पर भी होती थी। नाभा के सिक्के की इबारत खालसा शाही या नानक शाही । . भाति होती थी। किसी-किसी सिख राज्य में सोने के भी सिक्के थे।

सिखो के पूरे शस्त्रों के नाम दशम ग्रन्थ में शस्त्र नाम माला मे श्री गुरु गोविन्दसिंह जी ने ।ि हैं किन्तु कूटस्थ पद होने के कारण समझने मे गलती होने की सम्भावना होती है। वैसे अनेक धर्म पर गुरु गोविन्दसिंह जी के शस्त्र दिखाये भी जाते है। आम तौर से जो सिख योद्धा बांधते थे उनके नाम इस प्रकार हैं।

सिख शस्त्र

खड्ग—तलवार जैसा शस्त्र सिख सवार प्राय इसे कंधे के सामने करके चलते हाथ का समकोण बनाकर मूंठ को इस प्रकार पकडते थे कि सिर ऊपर की ओर हो। यह हथियार के सामने आ जाता है। कभी २ कमर मे भी लटकाया जा सकता है।

वर्छी—भाला और वर्छी मे अधिक अन्तर नहीं होता इसकी नोके त्रिधारा होती हैं यह। के पास नौ-नौ फुट तक की होती थी। यह दोनों ही हाथ से हूल-हूल कर चलाई जाती है।

कृपाण—यह तो सिखों के पंच ककार मे शामिल है और उनका चिर सहचर हथियार है। त मे और इसमे कोई खास अन्तर नहीं है।

चक्र—यह कन्धे पर बगल मे होकर लटकाया जा सकता है। घुमाकर चलाने का शस्त्र है।

तीरकमान—सिर तक ऊंची कमान और तीक्ष्ण तीर चलाने मे सिख बड़े पैने साबित होते

बन्दूक—तुफग भी कहलाती थी।

तोप—पिछले समय मे अच्छी २ तोपें आ गई थीं।

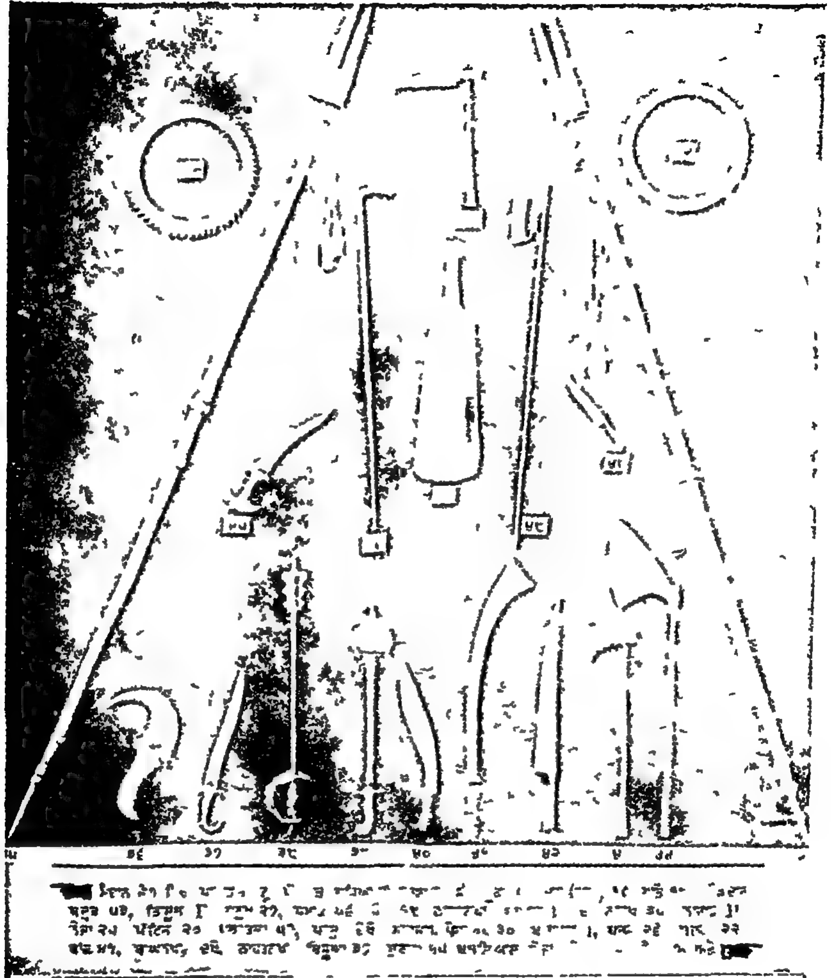
बघनख—यह भी लाहौर के किले मे है।

जिरह बख्तर—जिन्हें पहनकर गोली का भी डर नहीं रहता था।

लौह टोप—जो सिर पर पहने जाते थे।

भाई काहनसिंह जी ने गुरु शब्द रत्नाकर महान् कोष में शस्त्रों के चार चित्रों मे नामावली प्रकार दी है —

१, असि २. अर्धचन्द्र ३ परशु ४. शमशेर ५. सारग ६ सिरोही ७. सूल ८ सैफ ६. कती : करद ११, करौती १२ किरच, १३. कुहुकबाण १४. कुकरी १५. कृपाण १६. खजर १७ खंडा १८. १६. गुरज २०. गोफिया २१ चपड़ा २२. जमदाड़ २३. तंबर २४. ढाल २५. धनुष बाण २६ तेग बन्दूक २८ त्रिशूल २६. नेजा ३० बरछा ३१. बघनख ३२. पेकाकस ३३ रामपल आदि लगभग ६२ न बताये हैं। इन शस्त्रा के नमूने पटियाला के म्यूजियम मे आज भी मौजूद हैं।



३५ नाचक, ३६ बगनक, ३७ बिछुआ, ३८ बज्र, ३९ गुर्ज,
४० कुकरी, ४१ फाक, ४२ छुरा, ४३ परशु, ४४ तबर, ४५ चुगदा,
४६ गुप्ती ४७ मुगदर, ४८ छोई, ४९ कृपाण, ५० चक्कर पुराना,
५१ जम्भुआ, ५२ चक्कर नया।



५२ तोडेदार बन्दूक ५४ पथरकला, ५५ रिवाल्वर, ५६ धमाका, ५७ जम्बूरक, ५८ मसाले टोपीदार बन्दूक, ५६ मीनमुखा तीर, ६० जजोल, ६१ तमचा।

सिखों के झंडे का रग केसरी है और उसके बीच मे चक्र और कृपाणो का चित्र होता

पताका — सिखों का धार्मिक और राजनैतिक दोनों प्रकार का झंडा है। इसे सिख ले साहब के नाम से पुकारते हैं। प्रत्येक ग्राम मे और प्रत्येक गुरुद्वारे पर यह फहराता रहता है। झडे की सलामी देने की प्रथा सिखों मे नहीं है किन्तु नहीं कि वे अपने झडे के सन्मान मे कोई बड़ी कुर्बानी न कर सकते हों।

विजयोत्सव तथा उल्लास में वे 'सत श्री अकाल' नारा लगाते हैं। सभाओं मे हर्ष-वर्द्ध

कौमी नारा — सिख धर्म के सन्मान की बात आने पर "एक आदमी जोर से चिल्ला कर - 'जो बोले सो निहाल' फिर समस्त जन घोर धुनि के साथ बोलते हैं "सत श्री नमस्कार जयकारा की जगह 'वाहि गुरुजी का खालसा वाहि गुरुजी लिखते हैं।

जिस समय खान बहादुर जकरिया खान माहियाखान और मीर मन्नू के जमाने में त

सिंहों के बोले — के अत्याचारों से पैदा हुये कष्टों मे गुजर रहे थे तो उनके मन की ०४ अन्दाजा उन शब्दों से लगाया जा सकता है जो कि उन्होंने उस समय रचे और प्यास से मरते थे लेकिन दुखित जीवों की तरह वे निराशापूर्ण और ... नहीं होते और कहते थे कि खालसा 'कड़ाके' हैं। लंगर में जब कोई चीज न पकी हो तो 'लंगर' कहते। जब खाने पीने को कुछ न मिलता और घास फूस पर गुजारा करना पड़ता, ईश्वर सन्तुष्ट उसे 'स्वादी' के नाम से पुकारते, खाते तो वे चने होते किन्तु नाम उन्हे 'वादाम' का देते। ज अकेला ही सिंह शत्रुओं से घिर जाता तो घबरा कर निस्सहाय होने की बजाय अपने आपको लाख' घोषित कर शत्रु पर टूट पड़ता और जब कोई शत्रु से लड़ता भिड़ता मर जाता तो उसे । गया या चढ़ाई कर गया पुकारते। जब किसी ओर को जाने को तैयार होते तो कहते फौजें अ पर धावा बोल रही हैं। और जब किसी कार्य्य के लिए तैयारी करते तो कहते खालसा ने 'कमर कर लिया। फौज मे कुछ ऐसे शब्द बोले जाते हैं जो साहित्यिक भाषा से घनिष्ठ सम्बन्ध न रखने व हुए भी स्फूर्ति दायक होते हैं। अपने कष्ट व सैनिक काल में खालसा वीरों ने भी ऐसे अनेकों की रचना की थी। यहां हम कुछ ऐसे ही शब्दों को देते हैं जो सिख जबान में 'सिंहा दे बोले' कह

कमर कस्सा = तैयार, (अंग्रेजी में रैडी शब्द जैसा)
महा प्रसाद = जगी खाना, गोश्त का भोजन
रामजगे = बन्दूक
सिंह जी = पुरुष का सबोधन
सिहणी = स्त्री का सबोधन
भुजंग = बालक
भुजंगिनी = बालिका
अफलातून = रजाई, रुई वाला ओढ़ने का कपडा
सरब रस = नमक (स्वतन्त्रता के सैनिक को सचमुच नमक ही सर्व रस है)
सजना = तैयार होना — पाच लख = पाच
अथक्क = मरियल टट्टू — अकाली फौज = शहीदी दल

असवारा करना = चढ़ाई करनी
अरदासा = प्रार्थना
सुचालासिंह = लंगड़ा
लखबॉहा = लुंजा
लख अक्खां = काणां
रूपा = प्याज
लड्डू = टींड
खुरमे = बेर
जलेबी = जंड की फली
दाख = पीलू
बदाम = चने
सवा लख = एक
अकल दान = सोटा, डंडा
आनन्द = विवाह
बाज = खुरपा
कुही = दांती
पतालपुरी = कस्सी
सफाजंग = तकुआ
सिरखंडी = शकर
कलगासिंह = गंजे
सूरासिंह = अंधे
स्वर्गद्वारी—नकटा
ठीकरी = रुपया

कुछ ऐसे भी शब्द हैं जो विभिन्नपरिस्थितियों से सम्बन्ध रखते हैं। बानगी देखिये:— असवारा = गुरु ग्रंथ साहब की बीड़, आकाशपरी = बकरी, अंजनी = रात, ऐरावत = भैंसा, वेला = प्रात काल, इन्द्रजल = वर्षा का पानी, इन्द्राणी = तवा, सचखड = स्वर्ग, सच्चा शाह = गुरु, शिकारी = व्यभिचारी, शीशमहल = झोंपड़ी, कच्चा पिल्ला = मर्यादा हीन, कोतल = च।. गोपाल चदन = मरहम ।

इसी प्रकार के सैकड़ो शब्द हैं। यह सब साकेतिक शब्द हैं। षड़यन्त्र कारियों और क्रान्ति को इन शब्दों को पढ़कर आश्चर्य होगा कि मुगल हुकूमत को नष्ट करने का कठोर व्रत लेने वाले ^ कितनी २ बुद्धिमानी से काम लेना पड़ा था।

सहायक पुस्तक सूची

इस हिन्दी "सिख इतिहास' को लिखने मे जिन पुस्तको का अध्ययन किया गया तथा जिनसे किसी रूप में सहायता ली गई उनमें से प्रमुख पुस्तकों की सूची इस प्रकार है—

अंग्रेज लेखकों की

दी हिस्ट्री आफ सिख	कनिंघम ।
हिस्ट्री आफ पजाब राजाज एव पजाब चीफस	सर लेपिल ग्रिफन
सर लोगन एन्ड महाराजा दिलीपसिंह	मिसेज लोगिन
दी सिख रिलीजन	एम० ए० मैकालिफ
दी आदि ग्रन्थ इन्ट्रोडक्शन	डा० ट्रम्प
दी डिक्शनरी आफ इस्लाम	फ्रेडरिक पिंकाट
दी आर्यन रूल इन इंडिया	ई० वी० हैवल
ओरीजन आफ दी सिख	एच० टी० प्रिन्सिप
हिस्ट्री आफ दी सिख	डब्ल्यू० एल० एम० ग्रेगर
रणजीतसिंह	सर लेपिल ग्रिफन

मुस्लिम लेखकों की

हिस्ट्री आफ दी पजाब—फ्रोम एन्टी क्वालिटी आफ टाइम		सैयद मुहम्मद लतीफ
तारीख फरिश्ता		मुहम्मद कासिम
तारीख काशमीर		मुहम्मद फौक
आइने अकबरी	(उर्दू)	अबुल फजल
तुजुक जहागीरी	(उर्दू)	
औरगजेब नामा	(उर्दू)	
सैर-उल-मुताखरीन	(उर्दू)	मुशी लतीफ
दास्ताने हिन्द	(उर्दू)	मकबूल शाह
बाबा फरीद (गज शकर)	(उर्दू)	बशीर अहमद
सवाने हयात दातागज	(उर्दू)	, ,

हिन्दू लेखकों की

तारीख पंजाब	(उर्दू)	भाई परमानन्द
साखी गुरु नानक देव	(उर्दू)	ला० दौलतराम
,, ,, गोविन्दसिंह	(उर्दू)	,, ,,
सिखों का परिवर्तन	(हिन्दी)	डाक्टर गोकुलचंद नारंग
सिखों का उत्थान पतन	(हिन्दी)	प० नन्दकुमार शर्मा
पंजाब हरण और दिलीपसिंह	(हिन्दी)	,, ,, ,,
इतिहास गुरु खालसा	(हिन्दी)	सन्तोषसिंह
जाट इतिहास	(हिन्दी)	ठाकुर देशराज
मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण	(हिन्दी)	प० इन्द्र विद्या [illegible]
भारतवर्ष का इतिहास	(हिन्दी)	ला० लाजपतराय
तारीख पंज हजार साला	(उर्दू)	अज्ञात
रिपोर्ट बन्दोबस्त पंजाब	(उर्दू)	अज्ञात
गुरु का बाग	(हिन्दी)	प्रताप प्रेम
भारत में अंग्रेजी राज	(हिन्दी)	प० सुन्दरलाल
गुरुकुल (काव्य ग्रंथ)	(हिन्दी)	मैथलीशरण गुप्त
सन्त सुधासार	(हिन्दी)	वियोगी हरि
उत्तरी भारत की संत परम्परा	(हिन्दी)	परशुराम चतुर्वेदी
कबीर की विचारधारा	(हिन्दी)	डा० गोविन्द त्रिगुणायत
श्री रामानन्द ग्रन्थ माला	(हिन्दी)	अवधकिशोर 'श्रीवैष्णव'
हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय	(हिन्दी)	डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल
कबीर पदावली	(हिन्दी)	डा० रामकुमार वर्मा
श्रीचन्द्रदिग्विजय	(हिन्दी काव्य)	प० अखिलानन्द शर्मा
कल्याण 'संत अंक'	(हिन्दी मासिक)	गोरखपुर
भारत का धार्मिक इतिहास	(हिन्दी)	प० शिवशंकर मिश्र
सिखों का बलिदान	(हिन्दी)	श्रीमती कुमुदिनी
गुरु नानक	(हिन्दी)	श्री शालिग्राम ,,
गुरु गोविन्दसिंह	(हिन्दी)	श्री रामवृक्ष शर्मा
उदासीन कमल	(हिन्दी)	श्री ब्रह्मकेतु
गुरु गोविन्दसिंह	(हिन्दी)	श्री राधामोहन गोकुल
गुरु गोविन्दसिंह के पुत्रों की धर्म बलि	(हिन्दी)	पुरोहित हरनारायण
पंजाबी शब्द भंडार	(गुरुमुखी)	भाई विशनदास पुरी
दसम ग्रंथ कोष	(उर्दू)	अनुवादक प० सुखलाल
सूफी काव्य संग्रह	(हिन्दी)	परसुराम चतुर्वेदी

सहायक पुस्तक सूची

नाथ सम्प्रदाय	(हिन्दी)	हजारी प्रसाद द्विवेदी
गोरखनाथ जी	(हिन्दी)	पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल

सिख लेखकों की

सूरज प्रकाश	(गुरुमुखी)	
पन्थ प्रकाश	(गुरुमुखी)	
भाई गुरुदास की वारें	(गुरुमुखी)	भाई गुरुदास
तवारीख राज खालसा	(गुरुमुखी)	भाई ज्ञानसिंह
तवारीख सिंधू बराड़ा अते खानदान फूल	(गुरुमुखी)	
तारीख कपूरथला	(उर्दू)	
तारीख पटियाला	(उर्दू)	
तारीख नाभा	(उर्दू)	
सिख सिंहनियां	(गुरुमुखी)	अज्ञात
बीबी दीपकौर	(„)	भाई मोहनसिंह
गुरु नानक प्रकाश चार भाग	(हिन्दी)	भाई सतोखसिंह
पंजाब केसरी महाराजा रणजीतसिंह	(अंग्रेजी)	प्रो० डासिंह केवल
गुरु शब्द रत्नाकर महान् कोष	(गुरुमुखी)	भाई कान्हसिंह
पंजाब दीआं वारां	(गुरुमुखी)	डा० गंडासिंह
गुरमत प्रकाश	(„)	प्रो० साहबसिंह
गुरमत दिवाकर	(गुरुमुखी)	प्रो० गुरमत-प्रेस अमृतसर
अनहद शब्द दसम दुआर	(गुरुमुखी)	भाई रणधीरसिंह
गुरमत-दर्शन	(गुरुमुखी)	प्रो० शेरसिंह ज्ञानी
गुरमत फिलास्फी	(गुरुमुखी)	ज्ञानी प्रतापसिंह
सूफियां दा कलाम	(गुरुमुखी)	डा० मोहनसिंह
कतक कि वैसाख	(गुरुमुखी)	स० कर्मसिंह
बाबा फरीद दर्शन	(गुरुमुखी)	प्रो० दीवानसिंह
अरदास	(गुरुमुखी)	स० ब० जोधसिंह
सिख धर्म की रूपरेखा	(हिन्दी)	शिरोमणि गु० द्वा० प्र
मुस्लिम लीगियों के अत्याचार	(गुरुमुखी)	„
सिख रहित मर्यादा	(हिन्दी)	„
विचित्र नाटक	(„)	„
गुरमत लेक्चर	(गुरुमुखी)	ज्ञानी प्रतापसिंह
सिख इतिहास लेक्चर	( )	„
सिखी की है ?	( )	प्रिंसिपल जोधसिंह

टीका जपुजी साहिब	(हिन्दी)	प्रो० तेजसिंह
जीवन कथा गुरु हरिगोविन्द सा०	(गुरुमुखी)	प्रो० ग गासिंह
सरदार हरीसिंह जलुवा	(गुरुमुखी)	बाबा प्रेमसिंह

धार्मिक ग्रन्थ

श्री० आदि गुरु ग्रन्थ साहिब	(गुरुमुखी हस्तलिखित स० १८२६)	
श्री० ,, ,,	(हिन्दी सस्करण) शि० गु० प्र० कमेटी)	
ऋग्वेद सहिता	(हिन्दी टीका समेत) आ० सा० मडल	
ईश-केन-कठ० छादोग्य आदि दस उपनिषदे	(हिन्दी टीका समेत) (विभिन्न प्रकाशकों की)	
छ. दर्शन	(हिन्दी टीका)	वेंकटेश्वर प्रेस
श्रीमद्भागवत	(प० ज्वालाप्रसाद जी हिन्दी टीका समेत)	
गीता रहस्य	(हिन्दी सस्करण)	लोकमान्य तिलक
धम्मपद	(हिन्दी टीका)	आनन्द का० ९५ ५
जपु जी टीका	(हिन्दी टीका)	प्रो० तेजासिंह
जपु साहिब टीका	(गुरुमुखी टीका)	प्रो० साहिबसिंह
सुखमनी साहिब	(गुरुमखी टीका)	,, ,,
अवधूत गीता		श्री० वेंकटेश्वर
नारद पचरात्र		तरनतारन से प्रका

पत्र पत्रिकाएँ

फुलवाडी	(गुरुमुखी)	सन् १६३८ से १
प्रीत लडी	(गुरुमुखी)	,, ,,
कल्याण	(हिन्दी)	सत अक
सिख वीर	(हिन्दी)	
सतजुग	(गुरुमुखी)	सत अक स० १६ बसत अक स० १
निर्गुणीआरा	(गुरुमुखी)	सन् १६३२ से १६ अंक

नोट—इनके अलावा प जाब के कुछ जिलों के गजटियर, मर्दु मशुमारी की रिपोर्ट। (अग्रेजी) मे ट्रेक्ट सुसायटी और शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के अनेको ट्रेक्ट (गुरुमुखी) मे देखने का भी अवसर सबके नाम देने की आवश्यकता नहीं समझी गई।

दान-दाताओं की सूची

श्री शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर	५०००)
स० रघुराजसिंह शिवराजसिंह सुपुत्र स० रणजीतसिंह जी गाँव बादल	२०००)
स० जोगेन्द्रसिंह जी गाँव झांडवाली	१०००)
स० राजेन्द्रसिंह जी ,, ,, ,,	२५०)
स० नरेन्द्रसिंह जी ,, ,, ,,	२५०)
स० प्रेमसिंह करतारसिंह जी गाँव गोबिन्दगढ	१०००)
स० कपूरसिंह जी (डाक्टर) सुपुत्र स० प्रतापसिंह जी सिद्धू गाँव गोबिन्दगढ	१०००)
पत्नी स० धोकलसिंह जी गाँव गोबिन्दगढ	१००)
स० नारायणसिंह, बिशनसिंह, बसन्तसिंह जी गाँव अजीमगढ (अबोहर)	१०००)
स० थानासिंह, लखमीरसिंह, जयमलसिंह, भागसिंहजी गाव हौजगन्दड (फाजिलका)	१०००)
स० जोधसिंह नगेन्द्रसिंह जी सुपुत्र स० नारायणसिंह जी गाव दानेवाला	५००)
पत्नी सरदार साहिबसिंह जी दानेवाला	५००)
सरदारनी प्रतापकौर, धर्मपत्नीस्व० स० बूटासिंह जी दानेवाला	२००)
स० बलवन्तसिंह जी गाव दानेवाला	१२५)
स० जसवन्तसिंह जी ,, ,	१२५।
स० रणजीतसिंह जी ,, ,,	१२५)
स० चरनसिंह जी गाव दानेवाला	८०)
स० सन्तसिंह जी ,, ,, ,,	५०)
स० कोयरसिंह जी ,, ,, ,,	५०)
स० निधानसिंह जी गाव बाम	५००)
श्री सन्त रामसिंह जी, गुरुद्वारा फाजिलका	५००)
स० पृथ्वीसिंह जी सिद्धू, फाजिलका	५००)
श्री डाक्टर मोहनसिंह जी, फाजिलका	५०)
सरदार हरिसिंह जी इन्सपेक्टर महकमा जिरायत, फाजलका	५)
स० बचनसिंह जी गाव बाडीवाली	५००)
स० लालसिंह जी गाव बाडीवाली	१०१)
चौ० मगलूराम देवीलाल जी गाव बाडीवाली	१०१)
स० हरिसिंह जी ,, ,, ,,	१००)
स० निरजनसिंह, अजमेरसिंह जी ,, ,,	१००)
स० उत्तमसिंह जी ,, ,, ,,	५१)
स० बहालसिंह जी ,, ,, ,,	५१)
स० हजूरसिंह जी ,, ,, ,,	५०)
स० माहलासिंह जी ,, ,, ,,	३०)
स० गुरुबखशसिंह जी ,, ,, ,,	२५)

स० दिलीपसिंह, [illegible] जी गांव [illegible] — ५०१)

स० हरनामसिंह जी [illegible] स० [illegible], गांव [illegible] — ५००)

स० [illegible]सिंह, [illegible] जी गांव [illegible] — [illegible]

स० महेन्द्रसिंह जी गांव महेन्द्रनगर ([illegible]) — ५००)

स० गुर[illegible]सिंह जी, गांव [illegible] — [illegible]

स० [illegible]सिंह, [illegible]सिंह जी गांव [illegible] — [illegible]

स० पूर्णसिंह जी [illegible] गांव [illegible] — ५००)

स० कुलवन्तसिंह जी, [illegible] ([illegible]) — [illegible]

स० मोहरसिंह जी गांव पूर्णपुरी — [illegible]

स० [illegible]सिंह, [illegible]सिंह [illegible]सिंह जी गांव [illegible] — [illegible]

चौ० हनुमान [illegible] जी नम्बरदार गांव [illegible] — [illegible]

चौ० सुरजाराम राजाराम जी ,, ,, ,, — [illegible]

स० [illegible]सिंह जी ,, ,, ,, — [illegible]

चौ० चुन्नीलाल जी ,, ,, ,, — [illegible]

महन्त मुन्शासिंह जी ,, [illegible] — १००)

स० अर्जुनसिंह जी ,, [illegible] — [illegible]

ल० सज्जनसिंह जी ,, ,, ,, — १००)

श्री ज्ञानी हरनामसिंह जी ,, [illegible] — १००)

स० जीवनसिंह दयालसिंह जी गांव शेरवाला — १००)

स० ईश्वरसिंह जी ,, गदौदोय — १००)

स० नन्दसिंह जी सरवापक पंजाबी प्रेस, सदर बाजार, देहली — [illegible]

स० वरियामसिंह जी, अकाल इञ्जीनियरिंग वर्क्स सदर बाजार, देहली — ५०)

श्री सूद एण्ड कम्पनी ,, देहली — ५१।=)

स० शामसिंहजी ,, मुकत — ५०)

स० गुरुचरणसिंह डाक्टर ,, मण्डी [illegible] — ५०)

ला० रामधनदास जी ,, ,, ,, — ५०)

ला० मोहनलाल जी ,, ,, ,, — २५)

ला० लाहौरीराम जी ,, ,, ,, — १५)

स० करनैलसिंह जी ,, माहूआना — ५०)

स० नारायणसिंह जी गाँव लुडियाना — २५०)

स० दलसिंह जी ,, सिंघेवाला — ३००)

स० श्रवणसिंह जी ,, सिंघेवाला — १००)

स० अर्जुनसिंह जी ,, सिंघेवाला — २५)

स० हरचन्दसिंह जी ,, मिठडी — १००)

स० जगनन्दनसिंह जी ,, तापलेड़ा — १००)

स० हकीकसिंह जी ,, ढाबाग्रोलस — ५०)

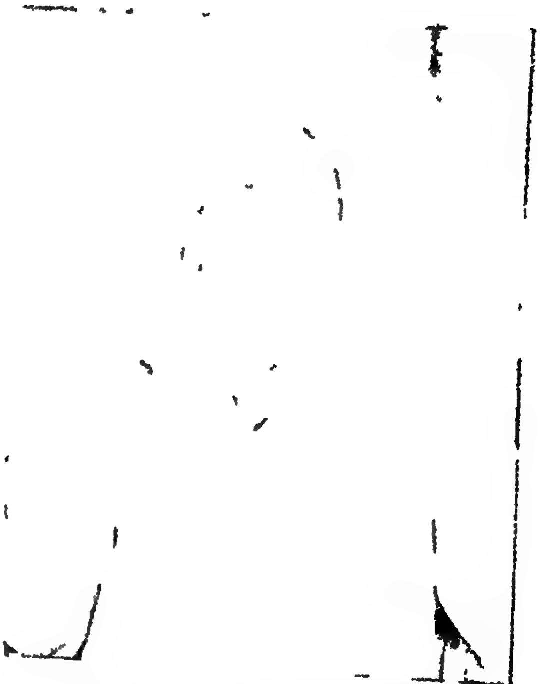
आर्थिक सहयोग देने वाले जिन महानुभावों के फोटो हमे प्राप्त हो सके हैं उनके चित्र आगे दिये जा

प्रकाशक



स्वर्गीय सरदार नन्द सिंह जी
मालिक व संस्थापक
पंजाबी प्रेस, सदर बाज़ार देहली-६


स० करतारसिङ्ग्जी, गोविन्दगढ़


स० प्रताप सिङ्ग् जी सिद्धु, गोविन्दगढ़



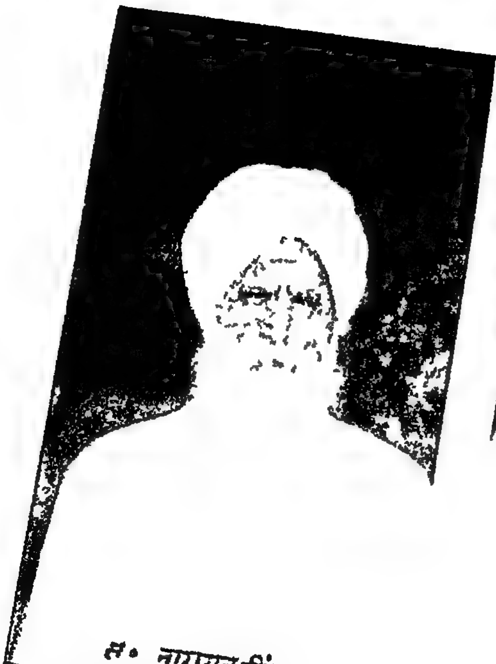
श्रीमती ईश्वर कौर व स० जोगिन्द्र सिंह जी भौंडवाली



स० रणजीत सिंह ढिल्लों, बादल



सन्त राम सिंह जी, गुरुद्वारा फाजिलका



स० नारायण सिह जी,अजीमगढ



स० विशन सिह जी, अजीमगढ



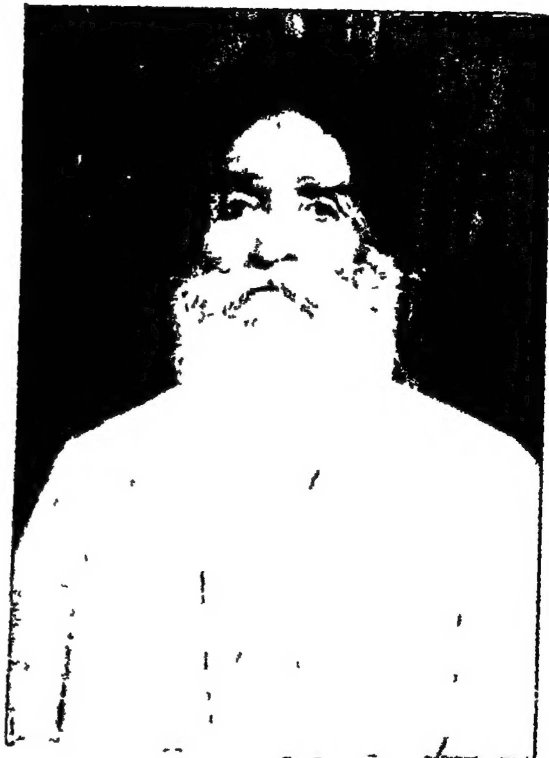
स० वसन्त सिह जी, अजीमगढ़



सरदार रणजीतसिंह ढेहगिल जी, अबलाखराना (फाजलका)



स्वर्गीय सरदार बूटासिंह जी दानेवाला



सरदार निधानसिंह जी, वाम (फाजिलका)



स० लाल सिंह जी, चांडीवाला।



स० बचन सिंह जी, चांडीवाला।



स० नारायण सिंह जी, दानेवाला

